अद्वैतसिद्धिः।

प्रथमो भागः

ब्र० श्रीयोगेश्वरदत्तशर्मा

॥ श्रीः ॥

श्रीस्वामिमधुसूदनसरस्वतीप्रणीता ।

अद्वैतसिद्धिः ।

ब्रह्मचारिश्रीरामेश्वरदत्तशर्म्मप्रणीतसरलाख्यव्याख्यया

सम्वलिता ।

तेनैव संस्कृता च ।

सेयं

मुम्बय्यां

'मणिलाल इच्छाराम देशाई' इत्यनेन स्वकीये गुजरातीमुद्रणयन्त्रालये,

श्रीपेटलादवास्तव्यकेशवलालात्मजश्रीनारायणभाई

श्रेष्ठिने मुद्रिता ।

वि० सम्वत् १९८०. शके १८४५.

मूल्यम् १० रूप्यकाः ।

प्राप्तिस्थानम्—
राज्यरत्ननगरसेठ नारायणभाई केशवलाल.
पेटलाद, बडोदा स्टेट, देश—गुजरात।

"गुजराती" प्रिन्टिंग प्रेसमें
मणिलाल इच्छाराम देशाई इन्होंने छापा.
कोट—सरकल, सासून बिल्डिंग, नं० ८ बंबई.

श्रीगणेशाय नमः ।

सरलासहित अद्वैतसिद्धिकी

प्रस्तावना—

पूर्वपक्ष,—

वेदान्तका अधिकारी नहीं है अतः टीका बनाना निष्फल है, यह समय अर्थ तथा कामका है, चार्वाकतासे भरा हुआ यूरूपखण्डीय पवन अखण्डरूपसे भारतीय प्रजाके रोमरोममें व्याप्त हो रहा है, और व्याप्त होनेवाला है; वेदान्तके मुख्याधिकारी संन्यासी लोगभी अर्थ कामके ही दास हो रहे हैं, चारों तरफ विषयासक्तिकी ही अग्नि धधक रही है, त्यागका वेष रखनेवाले अधिकांश लोग कुटीचर बनने, या परिचित प्रदेशमें परिचित भक्तोंमें ही रहनेकी इच्छावाले देखनेमें आते हैं; वेपधारिओंके मुख्य अड्डे काशी हरिद्वार हृषीकेशवगेरामें थोडे दिन रहकर त्यागवेषधारिओंका संसर्ग रखनेपर स्पष्ट विदित होता है कि,—एक वेपधारी दूसरेको देखना नहीं चाहता है, विद्यारहितसाधुनामधारिवर्ग अपने सान्निध्यमें आनेवाले भक्तोंके पास अधीतसाधुनामधारिलोगोंकी घटिताघटित निन्दाकर भक्तोंको अपने पक्षेमें रखनेकी चेष्टा करता है, और अधीतवेपधारिवर्ग अपने पास आनेवाले भक्तोंके समक्ष अनधीतवेपधारिओंकी निन्दाकर भक्तोंको अपने हाथमें रखना चाहता है, इस अधीतानधीतकी सामुदायिक दलबन्दीसे अतिरिक्त समुदायघटक प्रत्येक व्यक्तिकी प्रातिस्विक=वैय्यक्तिक दलबन्दी स्वतन्त्र रहती है; फलतः जिसको देखो वह भक्तोंको ही हाथमें करनेकी या हाथमें रखनेकी चेष्टा कर रहा है; मुखसे अदृष्टकी और ईश्वरकी बातोंका पहाड खडा कर देते हैं, परन्तु इन दोनोंपर विश्वास किसीका नहीं है; तथा ईश्वरका भय किसीको नहीं है; यदि ईश्वरपर वेशधारिओंका विश्वास हो और ईश्वरका भय हो तो इन लोगोंसे रहस्यमय पापोंका अनुष्ठान, तथा भक्त और भक्तिनिओंको हाथमें रखनेके लिए छलकपटप्रयुक्त अशास्त्रीयव्यवहार कभी न हो; तथा कितने ही वेपधारी लोग वैद्य बनकर द्रव्य एकत्रित करते हैं; तथा कितने ही क्षेत्रोंके नामसे, कितने ही पाठशालाओंके नामसे, कितने ही धर्मोन्नत्यर्थ सभाओंके नामसे, कितने ही भण्डारा करनेके नामसे, कितने ही मन्दिर धर्मशाला गुहावगेराके जीर्णोद्धारके नामसे, और कितने ही देवप्रतिष्ठाके नामसे, कितने ही पुनः प्रतिष्ठाके नामसे, कितने ही कुटी बनवानेके नामसे, और कितने ही मेलाओंकी तयारीके नामसे, कितने ही तीर्थयात्राके नामसे, तैसे कितने ही पुस्तक-वस्त्रकमण्डलुप्रभृति छोटे २ निमित्तोंके नामसे पैसा इकट्ठा करते हैं, और यह विषय निर्णीत है कि उक्तनिमित्तोंसे जो पैसा वेपधारिओंको मिलता है उसमेंसे कमसे कम आधा पैसा वह वेपधारी खास अपने उपयोगमें लगाता है; और अवशिष्ट पैसा यद्वा तद्वा रूपसे उक्तनिमित्तोंमें लगाता है; और वेशधारिओंका बहुतसा पैसा वणियावगेराभक्तोंके यहां ही पडा रहता है, और वेपधारी

अचानक चलबसता है, उक्त निमित्तोंसे जो द्रव्य संग्रह करना पडता है, उसके लिए पद पदपर गृहस्थोंके सामने मिथ्याभाषण करना पडता है, और शतशः स्थानोंमें अवमानित होना पडता है, और दूसरोंकी निन्दाकर अपनी प्रशंसा करनी पडती है, और मैं बड़ाभारी विरक्त तथा मुमुक्षु हूं यह भाव प्रजाके सामने शब्दान्तरोंसे बतलाना पडता है; तैसे मण्डलीवगेरा लेके फिरनेवालोंको द्रव्य निकालनेके लिए मध्यमें धूर्त दलाल बनाने पडते हैं, और आदिसे लेकर अन्ततक उनको मिथ्या व्यवहार करना पडता है; यदि यहांपर कोई प्रश्न करे कि यह सर्व प्रपञ्च किस लिए है ? तो इस प्रश्नका सीधा और सच्चा उत्तर यही है कि,—यह सर्व अर्थ कामकी लिप्साकी पूर्तिके लिए है; वेदान्तकी मुख्य गद्दीके अधीश शंकराचार्य्य कहलानेवाले लोगोंकी तो औरभी विचित्र लीला है, उनको संन्यासीके लिए स्वप्नमेंभी विहित नहीं ऐसा नरवाहन चाहिए, पादुका रजतवगेरासे जटित ही चाहिए, भोजन बनानेके लिए जहांतक विधवा मिले तहांतक दूसरेकी बिलकुल आवश्यकता नहीं, क्योंकि विधवाओंके हाथसे बना हुआ षड्रससम्पन्न भोजन सुरुचिकर सुस्वादु तथा सुसन्तुष्टिकर माना जाता है, सामान्यदण्डिओंमें जाकर बैठिए तो वहां मुख्य काण्ड भिक्षाका ही रहता है, और चातुर्मास्यका विचार हुआ करता है, एक चातुर्मास्य समाप्त नहीं होता है और दूसरेकी चिन्ता आकर घुस बैठती है,—क्योंकि चातुर्मास्यमें सर्वत्र नित्यप्रति षड्रस भोजनका मिलना सुलभ नहीं है, इस लिए इस विषयमें बहुत आगा पीछा शोचना पडता है, इन लोगोंमें महत्त्वामहत्वभी चातुर्मास्योंकी अधिकतान्यूनतापर ही निर्भर रहता है; इनमेंभी किसी दक्षिणी दण्डीको निर्विघ्न भोजन करा देना मानो लङ्कागढका ढाहना है, इनको छः प्रकारकी चटनी चाहिए, सम्पूर्ण खाद्यपेयादि पदार्थोंमें योग्य रसकी अभिव्यक्ति अबाधितरूपसे होनी ही चाहिए, अभी एक ब्राह्मणने एक दक्षिणी दण्डिसंन्यासीको भिक्षाके लिए कहा था, और दण्डीजीको यथासमय भिक्षाके लिए बुला लाया, और विधिपूर्वक भिक्षा करनेके पाटलेपर बिठाया, बडीही कठिनतासे मण्डलादिकी कडा कूटसे पारंगत हुआ, और अनेक प्रकारके अपनी योग्यतासे बाहर तयार किये खाद्यभी परोश दिये, परन्तु हतभाग्य होनेसे नारियलकी चटनी बनानेको भूल गया था, बस भोजनपात्रमें नारियलकी चटनीका अभाव देखकर संन्यासीजीके पित्तका पारा सातवें आकाशपर चढ गया, और आप एकदम झल्लाकर उठ खडे हुए और झुँझलाकर अनाप सनाप व्यक्ताव्यक्त बकते झकते ब्राह्मणके झोपडेसे झपटते हुए अपने उतारेपर चले गये; यह सर्व प्रपञ्च किस लिए है ? केवल रसनाकी तृप्तिके लिए तैसे नैष्ठिक ब्रह्मचारी कहलानेवाले लोगभी वेदान्तके अधिकारी नहीं है, इन लोगोंमें प्रायः किसीभी प्रकारका ज्ञान ध्यान है ही नहीं, झूंठमूंठ जटाएँ बढाकर गांजा तमाखू अफीम शंखिआवगेरा अपवित्र तथा भांगवगेरा मूर्खतावर्द्धक तथा मूर्खतारक्षक नशेकी वस्तुएँ खाया पिया करते हैं, तैसे कितने ही संन्यासी तथा ब्रह्मचारी वाममार्गके नामसे अवैध मद्यपानभी करते हैं, कितने ही ब्रह्मचारी चीशकर उडानेके लिए अग्निहोत्रका पाखण्ड रखते हैं, फलतः इन लोगोंका वेदान्तके साथ कोई सम्बन्ध नहीं, और ये लोग वेदान्तके अधिकारीभी नहीं; जहां भारतके त्यागिओंकी यह हालत है, तहां रातदिन मिथ्या व्यवहारमें निरत सन्तानोत्पत्ति ही अपना

मुख्य कर्त्तव्य समझनेवाले गृहस्थ लोग तो कहाँसे वेदान्तके अधिकारी हो सकते हैं; और जो समाजमें प्रतिष्ठाके लिए और लोगोंको ठगनेके लिए कितने ही गृहस्थलोग वेदान्ती बननेका डंफास मारते हैं वह मिथ्या है, वे लोग भीतरसे बिलकुल अन्धे हैं, फक्त ऊपरसे अज्ञानिओंके सामने ज्ञानी बनना चाहते हैं और अन्तःकरणमें भरे हुए सूचीभेद्य अज्ञानरूप अन्धकारको छिपाना चाहते हैं, कितने ही मूर्ख गृहस्थलोग महीनेमें दो एक वखत 'अहं ब्रह्मास्मि' इस शब्दोच्चारणकर लेनेको ही ब्रह्मज्ञान समझते हैं, इनको यहभी खबर नहीं है कि—उच्चारण जिसका होता है वह क्या है, और उच्चार्यमाण वाक्यका अर्थ क्या है, और उक्त वाक्यबोध्य-वाक्यार्थघटक प्रत्येक पदार्थको अवगाहन करनेवाला ज्ञान कौन है, और समुदितार्थ अखण्ड है या सखण्ड; तैसे वाक्य तथा वाक्यार्थ, एवं वाक्यार्थावगाहिनी वृत्ति, तथा वाक्योच्चारण एवं वाक्यविषयक श्रावणप्रत्यक्ष इतने पदार्थोंका सम्बन्ध, 'अहं ब्रह्मास्मि' इसके साथमें है, इनमें कितने पदार्थ साध्य हैं, और कितने असाध्य हैं, जो जो अंश साध्य हैं उन्होंके भिन्न भिन्न कौन कौन साधन शास्त्रमें निर्णीत हैं, और इन अंशोंमें ब्रह्मज्ञान नाम किस अंशका है, और उस अंशके साधन कौन हैं, और ब्रह्मज्ञानके जो साधन निर्णीत हैं वे मुझमें हैं या नहीं; यदि नहीं हैं, तो मैं ब्रह्मज्ञानी कैसा; क्योंकि निर्णीत साधनों विना यदि कार्य्य होता हो तब तो मृत्तिकादिके विना घटभी होना चाहिए, भोजनादिके विना क्षुधाकी निवृत्तिभी होनी चाहिए, इत्यादि विचारसे हीन ये लोग जन्मभर अविद्याके गर्त्तमें पडे रहते हैं; इन पामरोंको अपना दम्भ छिपानेके लिए आर्थवादिक राजा जनकका दृष्टान्त हाथ लगा है; परन्तु ये लोग उसकाभी अर्थ नहीं समझते हैं; तथाहि—राजा जनकके दृष्टान्तका क्या मतलब है,—क्या उसमें विवेक वैराग्य षट्सम्पत्ति मुमुक्षुता ये साधन नहीं थे और उसको अपरोक्ष ब्रह्मज्ञान था, या जन्मान्तरमें उसने साधनोंका अनुष्ठान कर लिया था इस लिए इस जन्ममें साधन विना ही ज्ञान हो गया था, इसी रीतिसे हम लोग जो कि मिथ्याभाषणसे और छलकपटसेभी नहीं डरते हैं दूसरे जन्मोंमें सर्व साधनोंका अनुष्ठान कर आये हैं, अतः इस जन्ममें साधनोंके विना ही हमको ब्रह्मज्ञान हो गया है; यदि प्रथम पक्ष कहें तो साधनविधायक सकल शास्त्रोंके साथ विरोध है; क्योंकि जब एकस्थानमें विवेकादिसाधनोंके विना ब्रह्मज्ञान हो गया, तब विवेकादिका और ब्रह्मज्ञानका कार्य्यकारणभाव नहीं रहा, क्योंकि व्यभिचाराभावसहकृतसहचार=नियतपूर्ववृत्तित्व कारणताका ग्राहक होता है, और आपके कथनानुसार जनकमें व्यभिचार होनेसे विवेकादिमें नियतपूर्ववृत्तिता नहीं रही,—जैसे महानस चत्वर गोष्ठ पर्वतादिमें वह्निधूमके साथ २ रहनेपरभी तप्तायःपिण्डादिमें व्यभिचार होनेसे=धूमको छोडकरभी वह्निके रह जानेसे धूम वह्निका कारण नहीं होता है; यदि द्वितीय पक्ष कहो तो यह प्रष्टव्य है कि—क्या पूर्वजन्ममें सम्पूर्ण साधन सम्पन्न हो गये थे, या न्यूनता रह गई थी; यदि प्रथम पक्ष कहो तब तो पूर्वजन्ममें ही ज्ञान हो जाना चाहिए, क्योंकि साधनोंकी सम्पूर्णता होनेपर कभीभी कार्य्य रुक नहीं सकता है; अन्यथा कुलालादि सर्व सामग्री होनेपरभी घट न होगा और इस जन्ममें या जन्मान्तरमेंभी किसीको ब्रह्मज्ञान न होगा; यदि यों कहो कि पूर्वजन्ममें पापरूप या पुण्यरूप

प्रतिवन्धक था इस लिए ज्ञान नहीं हुआ था; तब पूर्वजन्ममें सम्पूर्ण साधन थे यह कथन ही आपका मिथ्या हो गया क्योंकि पूर्वजन्ममें पुण्य या पापरूप प्रतिवन्धकके रह जानेसे सर्व साधन ही नहीं थे: क्योंकि प्रतिवन्धकका अभावभी सर्व साधनोंके बीचमें आ जाता है सो तो नहीं था; इससे यह फलित हुआ कि जन्मान्तरमें और तो सम्पूर्ण ब्रह्मज्ञानके साधन थे परन्तु एक प्रतिवन्धकाभाव नहीं था इस लिए ज्ञान नहीं हुआ, जब यों हुआ तब तो इस जन्ममें दूसरे सर्वसाधनभी होने चाहिए और प्रतिवन्धकाभावभी होना चाहिए तभी ब्रह्मज्ञान होगा जैसे किसीको घट वनाना हो, और उसने पूर्वदिनमें दण्ड चक्र सूत्र सलिलवगेरा सर्वसामग्री संगृहीत कर ली हो फक्त एक मृत्तिकारूप साधन अवशिष्ट हो और वह मृत्तिकारूप साधन दूसरे दिन मिल जाय, तब पूर्वदिनकी ईषन्न्यूनसामग्री और उत्तरदिनकी मृत्तिकारूप अवशिष्ट सामग्री इन दोनोंको मिलाकर घट बनाता है; कुछ पूर्वदिनतक संग्रहीत दण्डादिसामग्रीको छोडकर केवल मृत्तिकासे घट नहीं वनता है, तैसे पूर्वदिनकी सामग्रीके ध्वंससहित जो उत्तर-दिनकी मृत्तिकारूप सामग्री है उससेभी घट नहीं वनता है, तैसे जिस पुरुषमें पूर्वजन्ममें सम्पूर्ण साधन सम्पन्न हो गये हों, केवल प्रतिवन्धक रह गया हो तो उसको इस जन्ममें विवेकादिक सर्वसाधनभी चाहिए और प्रतिवन्धकाभावभी चाहिए तभी इस जन्ममें ब्रह्मज्ञान होगा विवेकादिके विना किसीभी जन्ममें ब्रह्मज्ञान नहीं हो सकता है, और जैसे घटरूपदृष्ट-फलकत्वेन दण्डादिरूप साधनोंकी स्वरूपसे नियतपूर्ववृत्तिता चाहिए तैसे ब्रह्मज्ञानरूपदृष्टफल-कत्वेन विवेकादिकाभी ब्रह्मज्ञानसे पूर्व स्वरूपतः नियतपूर्ववृत्तिता चाहिए, न कि दम्भमात्रो-त्तेजकसंस्कारादिरूपतः।

प्रश्न,—तो फिर जनकका क्या करोगे ? क्योंकि पामर और विषयासक्त तथा महापापी और उपपापी इन सर्वको तो समाजमें ब्रह्मज्ञानी बननेका साधन केवल जनकका दृष्टान्त ही है;

समाधान,—क्यों मूर्खताके गर्त्तमें गिरकर पुरुषार्थ रहित बननेकी चेष्टा करते हो, ब्रह्मज्ञान दालभात या मालपुआ जैसा सरल पदार्थ नहीं है, जिसको उठाकर झटपट पेटमें रख लिया; जिसके विषयमें साक्षात् वेद क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गम्पथस्तत्कवयो वदन्ति (कठ० ३।१४) इत्यादि कह रहे हैं, और जिसके लिए चतुर्दशविद्यापारंगत सर्व साधनागार देवर्षि नारदको सनत्कुमारको गुरु वनाना पडा है, (छां० अ० ७) और जिसका प्रश्न उपस्थित होनेपर चार वेदवेदिता जगत्कर्त्ता ब्रह्माजीकाभी मस्तक भन्ना उठा था, और उनकी लाजरक्षाके लिए विष्णुको हंसावतार लेना पडा, (भागव० ११) और जिसके लिए त्रिलोकाधिप पुण्यकर्मा इन्द्रको ब्रह्माके पास सैकडों वर्षोंतक ब्रह्मचर्य्य रखना पडा था, (छां० अ० ८) और जिसकी दुर्गमता सकलमत और सकलशास्त्र सिद्ध है; और जिसके विषयोंमें क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम् (गी० १२।५) इत्यादि कृष्णभगवान् खुद कह रहे हैं; ऐसे ब्रह्मज्ञानको दालभात समझना यह सर्वसे वडी मूर्खता है, ऐसी मूर्खतावाला मनुष्य अनादिकालतक संसारमें पडा रहेगा, न ऐसे मिथ्याज्ञानीसे धर्मका अनुष्ठान होगा और न भक्ति होगी, रह गई जनककी वात सो राजा जनक एक सत्संगी आदिमी था सर्व

गुणी लोगोंका और विशेषतया विद्वान् लोगोंका सत्कार करना राजाओंका धर्म है इस धर्मको राजा जनक पालता था, धर्मकी जिज्ञासाके साथ आत्मज्ञानकीभी उसमें जिज्ञासा थी, जनककी जिज्ञासाको जान शैकडों मतमन्तारवादी आचार्य्य लोग उसके यहां आकर डटे थे, और अपना अपना मत समझाते थे, जैसा कि नीचेके प्रमाणसे सिद्ध होता है,—तस्य स्म शतमाचार्य्या वसन्ति सततं गृहे। दर्शयन्तः पृथक् धर्मान् नानापाखण्डवादिनः।

(महाभारत शान्तिपर्व अध्याय २२० श्लो० ४ निर्णयसागरीय पु०)

अर्थ—नानापाखण्डोंके कहनेवाले पृथक् पृथक् धर्मोंको दिखलाते हुए उस जनक राजाके घरमें सैकडों आचार्य्य निरन्तर निवास करते थे, राजा जनकको साधनोंके विना अपरोक्ष ब्रह्मज्ञान हो गया था अथवा वह ब्रह्मज्ञान हो जानेके वादभी राजव्यवहार करता था, ऐसे २ विचार विलकुल मिथ्या, हैं, राजा जनक धर्मनिष्ठ था और राजकार्य्य करता हुआ सत्संगभी करता था, जब उसको कुछ साधन प्राप्त हुए तब उसने राजकार्य्य विलकुल छोड दिया और निरन्तर ज्ञान ध्यानके अभ्यासमें लग गया राजकार्य्य उसका पुत्र चलाता था, यह विषय उपरिदत्तप्रमाणोंसे विलकुल स्पष्ट है, फिरभी मूर्ख लोग अनर्थमें पडनेकी चेष्टा करते हैं,—

(महाभारत शान्तिपर्व अध्याय ३२३ श्लोक,—९५।९६।९७।९८; नि० सा० पु०)

गते मुनिवरे तस्मिन् कृते चापि प्रदक्षिणम्।
दैवरातिर्नरपतिरासीनस्तत्र मोक्षवित्॥
गोकोटिं स्पर्शयामास हिरण्यस्य तथैव च।
रत्नाञ्जलिमथैकैकं ब्राह्मणेभ्यो ददौ तदा॥
विदेहराज्यं च तदा प्रतिष्ठाप्य सुतस्य वै।
यतिधर्ममुपास्यंश्चाप्यवसन् मिथिलाधिपः॥
साङ्ख्यज्ञानमधीयानो योगशास्त्रं च कृत्स्नशः।
धर्माधर्मं च राजेन्द्र प्राकृतं परिगर्हयन्॥

चतुर्थ श्लोकका अर्थ,—हे राजेन्द्र=युधिष्ठिर, वह जनक प्राकृतं=व्यावहारिक कार्य्योंको घृणाकी दृष्टिसे देखता हुआ ज्ञान ध्यान धर्माधर्म इन पदार्थोंके स्वरूपको समझानेवाले शास्त्रोंका अभ्यास करता हुआ यतिधर्मसे निवास करता था। फलतः सर्वसाधनों विना किसीको अपरोक्ष ब्रह्मज्ञान नहीं होता है। तैसे वहुतसे गृहस्थलोग ब्रह्मज्ञानी बनते हैं, परन्तु इन्होंका व्यवहार पामरों जैसा ही रहता है, शास्त्रकी मर्य्यादासे कार्य्य नहीं करते हैं केवल दम्भसे ऐहिक कीर्त्त्यादिरूप फलोंके लिए ही कार्य्य करते हैं, अतः ऐसे दम्भि और लोकसंग्रहके लोलुप आजकलके गृहस्थभी ब्रह्मज्ञानके अधिकारी नहीं हैं; जैसे इस समय ब्रह्मज्ञानके अधिकारी नहीं है, तैसे ब्रह्मज्ञानके साधन धर्मके तथा भक्तिकेभी अधिकारी नहीं है, क्योंकि धर्मके नामसे केवल पाखण्ड ही चल रहा है, और भक्तिके नामसे केवल व्यभिचार चल रहा है, क्योंकि भक्तिमेंसे केवल शास्त्रीयविधिसे शून्य मूर्खजनकवलीकृत केवल मूर्त्तिपूजा ही रह गई

है, उसके आश्रयसे बराबर व्यभिचारकी वृद्धि हो रही है; और इस समय भक्तिमार्गका अपनेको आचार्य्य माननेवाले, और भोलीभाली वन्यप्राय प्रजामें और खासकर स्त्रिओंमें अपनेको कृष्णका अवतार बतानेवाले लीलाधारी मिथ्या आचार्य्य कितने आचार विचारसे भ्रष्ट हो गये हैं, और विद्यासे रहित हैं, तथा घोर कुकर्मी और कापुरुषोचित घिनौनी बिमारिओंसे आक्रान्त रहते हैं, इन विषयोंमें जिसको प्रमाण देखने हों वे लोग मुम्बईका प्रसिद्ध महाराज-लायबलकेश नामक ग्रन्थको, तथा कच्छमांडवीके एक गृहस्थका बनाया हुआ पुष्टिमार्ग नामक पोथेको एवं स्वामी ब्लाकटानन्दके बनाये हुए ग्रन्थोंको देखें; यदि ये लोग कृष्णका अवतार हैं तो देशका उद्धार क्यों नहीं करते हैं, कृष्णको अतिप्रिय गौओंकी रक्षा क्यों नहीं करते हैं; जिन नगरोंमें शतशः सहस्रशः नित्य प्रति गौओंका कतल होता है वहां रहनेवाले जगत्की उत्पत्ति स्थिति तथा संहारका सामर्थ्य रखनेवाले इन अवतारोंको भोजन विष क्यों नहीं हो जाता है, अथवा अपनेको अवतार मानने और कहनेमें लज्जित क्यों नहीं होते हैं; क्या निरक्षरता व्यभिचार तथा नानाप्रकारके रोगोंका शिकार होना यही अवतारका लक्षण है; क्या घरके कोनेमें बैठे २ सर्ववेदप्रतिपाद्य और सर्वशास्त्रमान्य अनादिकालतः प्रजामें पूज्यमान सकलेश्वरीयलक्षणसम्पन्न महेश्वरादिदेवताओंकी और वैदिकाचारतत्पर संन्यासीवगेराकी पामर लोगोंके पास निन्दाकर उनको सन्मार्गसे विमुखकर सनातन धर्मका शत्रु बनाना ये ही अवतारके चिह्न हैं; फलतः जो लोग व्यभिचारी तथा निरक्षर हैं, एवं प्रजामें विद्वेष फैलानेवाले हैं, वे लोग ईश्वरके भक्त ही नहीं हैं और ऐसे लोगोंको ईश्वर नरकमें डालता है, तो ऐसे लोग भक्तिमार्गके आचार्य्य कैसे हो सकते है।

इससे अतिरिक्त यहभी विचारणीय है कि आजकल वेदान्तका तथा भक्त्यादिका कोई आदर्शभी नहीं मिलता है, और जिस विषयके आदर्श नहीं मिलते हैं उसका प्रचारभी नहीं होता है, और उसके उपदेशका फलभी नहीं होता है; जब असहकारी महात्मा गान्धीने भारतके उद्धारके लिए सर्व सुखोंको तृणवत् छोडकर खादी धारणकी और निर्भय होकर प्रजाके हितकी बातोंका उद्घाटन करना आरम्भ किया, तब आज लाखों भारतीयोंके शिरपर खादीकी टोपी और शरीरपर खादीकी पोशाक देखनेमें आती है, यदि महात्माजी खुद पार-दर्शक ढाकाशाही शरबती पहन कर घूमते तो उपदेश देनेपरभी आज खादीका नाम निशानभी न होता; यदि महाशय चित्तरञ्जनदास सर्व सुखोंको और सर्व व्यक्तिकस्वार्थोंको छोडकर दुःखागार जेलको स्वर्गवत् समझकर न ग्रहण करते तो आजन्मलेखनीमात्रके भारको वहन करनेवाली मृणालकल्प अङ्गुलिओंवाले तथा पुष्पस्तरणयोग्य—शीतातपस्पर्शशून्य—सुमृदुकायवाले अनन्त बंगाली लोग निम्नराजकर्मचारिओंसे अनेकविध लाञ्छित होते हुए सुखलेश रहित जेलोंको न भरते; यदि सर्व सुखसेवी ज्ञानवृद्ध तथा अवस्थावृद्ध पण्डित मोतीलाल नेहरू तथा बाबू भगवान्दास प्रभृति सर्व आरामोंको छोडकर जेल न जाते तो संयुक्त प्रान्तकी जेलें कभीभी चुने हुए सज्जनोंसे न भरतीं, और न केवल संयुक्त प्रान्तमें ही जेल जानेके लिए ९५ पच्चानवे हजार स्वयं सेवक एक सप्ताहमें तयार होते, सारांश यह कि;—आदर्श विना संसारमें

कठिन या सुलभ कोईभी विषय ठीक २ नहीं चलता है; वेदान्तका आदर्श आजकल नहीं है यह प्रथम दिखला दिया है, जो लोग त्यागी कहे जाते हैं उनकोभी ब्रह्मानन्दमें सन्तोष नहीं है; इन्द्रियसुख तथा शारीरक सुख सबको चाहिए; जिस त्यागीको जितनी अनुकूलता और जितना विषयसुख मिलता जाता है उतना वह ग्रहण करता जाता है और अप्राप्त वस्तुओंमें सर्व संसार ही विरागी है, वह खास विरागका लक्षण नहीं है; मुख्य त्याग तभी होता है जब कि अनुकूल वस्तुओंके प्राप्त होनेपरभी यथाकथञ्चित् शरीररक्षणमात्रमें उपयोगी शास्त्रनियत वस्तुमात्रका ग्रहण होना, सो तो आजकल कहींभी देखनेमें नहीं आता है, फलतः प्रजा वैराग्यसे हीन है, तैसे श्रुत्युक्त आत्मक्रीड आत्मरति इस समय कोई नहीं है, जिन लोगोंको ब्रह्मानन्दका भान हो रहा है वे लोग काकविष्ठावत् समझे जानेवाले दुःखमय संसारिक सुखोंमें क्यों पड़ेंगे, क्या जीवन्मुक्तिके आनन्दसे संसारके विषयोंका सुख अधिक है; यदि प्रारब्धपर बात छोड दी जाय, तब तो साधनविधायक और पुरुषार्थविधायक सकलशास्त्र निष्फल हो जायँगे, दूसरे प्रारब्ध सो हरएक विषयका साधारण कारण है वह शास्त्रबोधित असाधारणकार्य्यकारणभावपर व्याघात नहीं कर सकता है, और प्रारब्धको ही प्रबल मानें तो किसीको कभीभी जीवन्मुक्तिके आनन्दका अनुभव न होगा क्योंकि सर्व जीवन फलसम्मुखीन प्रारब्ध नामधारी कर्मके फलसे ही प्रतिरुद्ध है; इस असंगत प्रारब्धवादने प्रजाको आलसी अकर्मण्य तथा एकान्ततः दम्भी बना दिया है, प्रारब्धवादकी मिथ्या बातें प्रजाको समझाकर आजकल धूर्त्तलोग माल चीर रहे हैं, और अपना जीवन अपवित्र बनानेके साथ साथ दूसरोंकोभी प्रमादी बना रहे हैं; और वेदान्तका कोई प्रसिद्ध आदर्श बहुत दिनोंसे हुआभी नहीं है, बडे भारी वेदान्ती आद्य शंकराचार्य्य थे, वे वाममार्गी थे यह षड्दर्शनसमुच्चयनामक ग्रन्थमें लिखा है, तथा वे एक राजाके शरीरमें प्रवेशकर कामपरायण हो गये थे, वेदान्तका ज्ञान उन्होंका कर्पूर हो गया था, फिर उनके चेलोंने आकर उनको ज्ञान दिया, इत्यादि माधवकृत शंकरदिग्विजयमें स्पष्ट है; और आजकल भाषामें वेदान्त फैलानेवाले निश्चलदासने दो स्त्री रक्खी थीं, यह बात प्रसिद्ध चली आती है; इससे अतिरिक्त निश्चलदासने अपने विचारसागरके पञ्चम तरङ्गमें स्त्रियोंके अङ्गोंकी बीभत्सताका वर्णन किया है, वह वर्णन यथार्थ अनुभव विना नहीं बन सकता है इससेभी वे विषयासक्त थे यह बात सिद्ध होती है; तथा निश्चलदास जातिके जाट थे यह उन्हींके युक्तिप्रकाश ग्रन्थकी भूमिकामें उनके किसी भक्तने लिखा है, इस लिए निश्चलदासके ग्रन्थ ब्राह्मणों तथा दण्डिसंन्यासिओंके पढनेके लायक नहीं हैं; जैसे उक्त ज्ञानका आदर्श नहीं है तैसे भक्तिकाभी आदर्श नहीं है; क्योंकि भक्त नामाजीवगेराके बनाये हुए भक्तमालवगेरा ग्रन्थोंमें जो प्राचीन भक्तोंके चमत्कार लिखे हैं वे चमत्कार आजकल किसी भक्तनामधारीमें देखनेमें नहीं आते हैं, इस लिए कोईभी भक्त नहीं है; तैसे धर्मकाभी कोई आदर्श नहीं है, प्रथम ब्राह्मणलोग साक्षात् देवताओंको बुलाकर उनका भाग देते थे सो अब तो देवताओंका कहीं नाम निशानभी नहीं है, केवल बहुतसे खाद्यपदार्थ अग्निजला देता है और बहुतसे ब्राह्मण खा जाते हैं इससे अतिरिक्त और तो कुछ देखनेमें नहीं आता है; फलतः

ज्ञान और उसके साधनोंका कोई आदर्श नहीं है; तैसे औरभी एक विचारणीय विषय है; इन तीनों मार्गोंपर चलनेके लिए और इन मार्गोंका अधिकारी बननेके लिए प्रथम सोपान सत्य-व्यवहार सत्य भाषण है सो इस समय प्रजामें बिलकुल नहीं है; सर्वत्र सत्यकी महत्ताको और उसकी आवश्यकताको बतलानेवाले थोडेसे वाक्य नीचे लिखते हैं,—

अमेध्यो वै पुरुषो यदनृतं वदति तेन पूतिरन्तरतः ।

शतपथ, काण्ड १, ब्राह्मण १, कण्डिका १;

अर्थ,—जो अनृत बोलता है वह निश्चयतः अपवित्र है, अन्तरतः—अन्तःकरणसे वह पूतिः=सडा हुआ दुर्गन्धयुक्त है=प्रकरणतः वह अग्निहोत्रादिरूप किसीभी देवकार्य्यादिके लायक नहीं है ।

स वै सत्यमेव वदेत् । एतद्ध वै देवा व्रतं चरन्ति यत्सत्यम् । श० प० १।१।५;

अर्थ,—सः—वह अग्निहोत्रादिरूप वैदिककार्य्य करनेवाला सत्यमेव=सत्य ही वदेत्=बोले; क्योंकि=एतत् ह वै=यह सत्य ही देवोंका व्रत है; इस लिए असत्य बोलनेवालोंसे देवताओंका सम्बन्ध नहीं हो सकता है अतः सत्य ही बोलना यह निष्कृष्टार्थ है ।

न सत्यादगाः छा० ४।४।५;

यो वै स धर्मः सत्यं वैतत् सत्यं वदन्तमाहुर्धर्मं वदन्ति । वृ० १।४।१४ ।

कस्मिन् दीक्षा प्रतिष्ठितेति सत्य इति तस्मादपि दीक्षितमाहुः सत्यं वदेति । सत्ये ह्येव दीक्षा प्रतिष्ठिता । वृ० ३।९।२३ ।

देवाः सत्यमेवोपासते । वृ० ५।५।१;

ये च अमी अरण्ये श्रद्धां सत्यमुपासते वृ० ६।२।१५;

ऋतं वदिष्यामि सत्यं वदिष्यामि तै० १।१।१;

सत्यं वद धर्मं चर तै० १।११।१;

सत्यान्न प्रमदितव्यम् तै० १।११।१;

ऋतमवादिषं सत्यमवादिषम् । तै० १।१२।१;

सत्येनैनं तपसा योऽनुपश्यति । श्वेत० १।१५;

येनाक्षरं पुरुषं वेद तत्सत्यम् । मुं० १।२।१३;

श्रद्धा सत्यं ब्रह्मचर्य्यं विधिश्च । मुं० २।१।७;

सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा । मुं० ३।१।५;

सत्यमेव जयते नानृतम् । मुं० ३।१।६;

सत्येन पन्था विततो देवयानः । मुं० ३।१।६;

ऋतं च सत्यं च महानारायण । १।६;

ऋतं तपः सत्यं तपः । म० ना० ८।१;

सत्यधृतिर्व्रतासि । कठ० २।९;

सत्येन न सुवर्गाल्लोकाच्च्यवते । महानारायण २१।२;

सतां हि सत्यं तस्मात् सत्ये रमन्ते। म० ना० २१।२।

सत्येन वायुरावाति सत्येनादित्यो रोचते दिवि। म० ना० २२।१।

सत्यं वाचः प्रतिष्ठिता सत्ये सर्वं प्रतिष्ठितं तस्मात् सत्यं परमं वदन्ति। म० ना० २२।१।

येषु सत्यं प्रतिष्ठितम्। प्रश्न, २।८।

स सत्यात्पूतो भवति नृ० ता० ५।३।

बिभ्रत् श्रियं सत्यं ब्रह्मचर्य्यम्। महोपनिषद् २।

ब्रह्मचर्य्यमहिंसा चापरिग्रहं च सत्यं च। आरुणेय, ४।

सम्यगालोकनात् सत्यात्। मुक्तिकोपनिषत्। २।१७।

क्षमा सत्यं दमः शमः। गी० १०।४।

सत्यं प्रियहितं च यत्। गी० १७।१५। इत्यादि।

ब्रह्मघ्नो ये स्मृता लोके ये च स्त्रीबालघातिनः। मित्रद्रुहः कृतघ्नस्य ते ते स्युर्ब्रुवतो मृषा। मनु० ८।९०।

सत्यपूतां वदेद् वाचम्, मनु० ६।४५;

सा मा सत्योक्तिः परिपातु विश्वतः। ऋ० सं० मण्डल १० सूक्त ३७ मं० २ इससे अतिरिक्त केवल ऋक्संहितामें ही १५० डेढसो वारसे अधिक सत्य शब्दका प्रयोग आया है; और यजुर्वेदमें ४६ छिआलिस वारसे अधिक, तथा सामसंहितामें ३० तीस वारसे अधिक, एवं अथर्वसंहितामें असी ८० वारसे ऊपर सत्यशब्दका प्रयोग आया है, और अधिकांशस्थलोंमें सत्यभाषणमें ही इनका पर्य्यवसान होता है; और यदि ब्राह्मणग्रन्थ-कल्पगृह्यसूत्र स्मृतिपुराण-वगेराके वाक्योंका संग्रह किया जाय तो सत्यसे सम्बन्ध रखनेवाला एक आच्छा ग्रन्थ तयार हो जाय; फलतः सत्यके नियम विना मनुष्य धर्मका या भक्तिका अथवा एतदुभयसाध्य ब्रह्मज्ञानका अधिकारी नहीं हो सकता है; अतः टीकादिद्वारा अजागलस्तनायमान वेदान्तका प्रचार छोड कर अब आप लोगोंको हिन्दूसाहित्यका मन्थनकर ऐसे ग्रन्थ बनाने चाहिए जिससे बहुत कालसे उत्साहहीन, और साहसरहित, समयानुसार कर्त्तव्याकर्त्तव्यमें विमूढ मृतप्राय विशृङ्खलित इस हिन्दूजातिमें पुनरपि जीवनज्योतिका संचार हो, जिस प्राचीनतम हिन्दूसाहित्यका अवलम्बन कर हिन्दूजाति संपूर्ण पृथिवीका असङ्ख्य वर्षोंतक सुशासन करती रही है, सो क्या अब उस हिन्दूसाहित्यमें इसको जीवित रखनेका, और सर्व पृथिवीके शासनकी बातको एक किनारे रखकर केवल आत्मरक्षण करनेमें अनुकूल बल देनेकाभी सामर्थ्य नहीं है; हम जहां देखते हैं तहां इसको ही मारखाते पाते हैं, क्या सम्पूर्ण पृथिवीका शासन करनेवाले अपने पूर्वज लोगोंका अब इसमें एकभी रक्तका बिन्दू नहीं रहा है; मैं समझता हूं कि हिन्दूसाहित्यभी वही है, और अभीतक हिन्दूजातिमें अपने पूर्वज लोगोंका खौलता हुआ सञ्जीवनशक्ति लानेवाला रक्तभी विद्यमान है, परन्तु आचार्य्यनामधारी लोगोंकी कर्त्तव्यविमुखतासे, और उक्त आचार्य्योंके देशाभिमानके राहित्यसे; तथा वीरताव्यञ्जक एवं देशाभिमानोत्पादक साहित्यके अध्ययनाभावसे और धर्मके नामसे असंगत बाडाबन्दियां हो जानेसे, हिन्दूजातिको

यथार्थ उपदेश नहीं मिलता है, इसी लिए यह जाति नगण्य और अकर्मण्य हो रही है, इन्होंकी उस प्रचण्डशक्तिका कोईभी उद्बोधक नहीं है, अभी असहकारके प्रचारसे कुछ उत्तेजन मिला था परन्तु देशके अभाग्यसे और अपनी अनभिज्ञतासे गांधी महात्माने बारडोलीका कार्य्यक्रम स्थगितकर धार्मिक जगत्‌का वडाभारी अनिष्ट किया है; हिन्दूओंका धर्मशास्त्र एक महारत्नाकर समुद्र है, परन्तु समयानुसार उन रत्नोंको निकालकर अतिस्पष्टरूपमें प्रजाके सामने रखनेवाले विद्वान् नहीं है, जैसे मोक्षके साधनोंका सूक्ष्मातिसूक्ष्म विचार किया गया है तैसे अर्थ कामके साधनोंकाभी सूक्ष्मातिसूक्ष्म विचार होना चाहिए क्योंकि प्रायः लोग अर्थकामकी ही इच्छा रखते हैं और सामान्य धर्मका अनुस्यूतरूपसे विचार होना चाहिए; और हिन्दूजातिका संगठन करनेवाले वीसों सूत्र ऐसे निष्पक्षपात और समानरूपसे उपादेय निकालने चाहिए कि जिनमेंसे किसी एक सूत्रपर सूचीके अग्रभागका प्रतिघात होनेपरभी एक क्षणमें ही विना कहे सुने ही सर्व हिन्दूजातिका समकालीन समुत्थान हो जाय और उस प्रतिघातकी निवृत्तिके लिए, अपने प्राणसे लेकर सर्वस्वको तृणवत् समझा जाय जीवनमरण विलकुल मामूली घटना एक लडकौंका खेल ही माना जाय=जीवनमरणका महत्त्व कपडोंके वदलनेसे अधिक न माना जाय; वैयक्तिक सुखको तुच्छ समझकर सामाजिक सुखको ही सुख समझा जाय; प्रत्येक हिन्दूको समग्रहिन्दूजातिको अपना शरीर ही समझा जाय इत्यादि; फलतः इस समय हिन्दूजातिमें छिपी हुई जीवनशक्तिको प्रकट करनेवाले और उक्त विषयोंको हिन्दूप्रजामें प्रचार करनेवाले ग्रन्थोंको वनाना चाहिए; वेदान्तका कोई अधिकारी नहीं है अतः अद्वैतसिद्धिकी टीका वनानी निष्फल है।

इति शङ्कापक्षः।

अथ समाधान,—

प्रथम जो कहा है कि त्यागवेषधारिओंमें साधनसम्पत्ति नहीं है इस लिए वेदान्तका प्रचार करना अनुचित है; इसका समाधान यह है कि–सभी वेषधारी एक जैसे ही हों ऐसा कोई नियम नहीं है कितने ही लोग सज्जन तथा साधनोंके लिए यत्नवान् भी हैं; और अधिक भागमें पूर्ण वैराग्य नहीं है इसका मुख्यकारण यह है कि आजकल जितने लोग वेष लेते हैं, वे सवके सव पूरा विचार कर ही नहीं लेते हैं,–केवल आत्मजिज्ञासासे ही सर्व लोग वेष नहीं लेते हैं, पचासों वर्षोंसे भारतीय प्रजाके अधिकांशको पेटभर रूखा सूखा अन्न और मर्य्यादारक्षणके लिए मोटा झोटा वस्त्रतक नहीं मिलता है; यद्यपि अन्न इस देशमें वहुत होता है परन्तु इस देशकी प्रजाके दौर्भाग्यसे इस देशके व्यापारके सर्व सूत्र विदेशिओंके हाथमें हैं, इस लिए यहांका कच्चामाल सव विदेशमें चला जाता है, और उसके वदलेमें अत्यल्प द्रव्य मिलता है, और वह द्रव्यभी वस्त्रवगेरा खरीदनेमें फिर विदेश चला जाता है इस लिए इस अभागी प्रजाके पास न तो खानेका अन्न ही रहता है और न अन्न खरीदनेका द्रव्य ही रहता है; लाखों मातापिता खुद भूखोंसे मरकरभी अपने सन्तानोंका पालन पोषण नहीं कर सकते हैं, ऐसी हालतमें निराश्रित लोग क्षुधार्त्त होकर या तो ईसाईवगेराका शरण लेते हैं या वेष ले लेते हैं और जैसे

तैसे अपने प्राणोंकी रक्षा करते हैं; बडे आदिमी कहलानेवाले जो लोग एक रतल मांसके साथ विलायती शरावका एक अध्धा उडाकर उसकी गरमीमें आपेसे बाहर होकर बडी २ सभाओंमें साधुओंसे विरुद्ध व्याख्यान झाडते हैं और खरडेवगेरा खडे करते हैं, और जो पत्र सम्पादकवगेरा आराम कुरसिओंपर लेटे २ साधुओंसे विरुद्ध नुक्ता चीनी किया करते हैं, इन लोगोंसे यदि कोई पूछे कि अमुक दुकालके समय आपने अपने शराव कबावमें न्यूनता कर साधनहीन केतने भारतियोंका रक्षण किया है तो इन्होंके पाससे सिवा बगलें झाकनेके और कुछ उत्तर न मिलेगा; वस्तुस्थितिको समझे विना ही वेपधारिओंपर आक्रमण करना और उनमें दोप ही निकालना केवल अन्याय है; देशमें कृषिकर्मको छोडकर और किसीभी प्रकारका व्यवसाय या मजूरी है नहीं, समयपर दो एक वृष्टिके न होनेपर असंख्य जनता हाथ पैर रहते हुयेभी विना हाथ पैरकी बन जाती है दो दिनकी झडी लग जानेपर चूल्हा चक्की बन्द हो जाते हैं, लोटा थाली हुआ तब तो उसको वणिओंके यहां रखकर मुठ्ठीभर चणा चबाकर जलके आश्रयसे करोंडो आदमिओंको दिन काटने पडते हैं, लोटा थाली न हो तो दो दिनकी झडीमें ही करोडों आदिमिओंके यहां साफ उपवासोंकी धारा चल पडती है जिस देशकी अधिकांश यही दशा है उस देशमें यदि थोडीसी प्रजा वेपवगेरासे अपने प्राणोंका रक्षण करे तो उसमें वह अन्याय क्या करती है; यह तो भारतवर्ष ही धर्मप्रधान ऐसा देश है, जहाँ कि अधिकांश प्रजा अन्न वस्त्रके लिए त्राहि त्राहि पुकारती हुई अपना शरीर छोड देना अच्छा समझती है, परन्तु दूसरोंके आनन्दमें विघ्न डालना अन्याय समझती है, अतएव यहांका अधिकारिवर्ग तथा व्याजभक्षिवर्ग और दस्युप्राय क्षुद्र भूस्वामिवर्ग गरीब प्रजाकी कमाईपर गुलछर्रे उडा रहा है और गरीब दरिद्र बुभुक्षित प्रजा सर्व समझती हुईभी धर्मभीरुतासे शान्तिसे जीवन विसर्जन कर रही है, अस्तु इस देशकी प्रजाको धर्म नहीं छोडना चाहिए ईश्वर साहाय्य करेगा; फलतः ऐसे देशमें अधिक साधुओंका हो जाना और उन्होंका पूरा साधनसम्पत्तिपर ध्यान न देना अस्वाभिक नहीं है; और जो कहा कि साधुओंके पास जो द्रव्य जाता है उसके अधिकांशका अपव्यय होता है, इसका समाधान यह है कि–धन देनेवालोंको पूरा ध्यान रखना चाहिए; और अपव्ययका मुख्यकारण तो यह है कि, साधुओंको जो द्रव्य मिलता है वह प्रायः निर्वंश और पापिओंसे ही मिलता है और पापीका द्रव्य जिसके पास जाता है उसकी बुद्धिको भ्रष्ट करता है, और उसको अमार्गमें घसीट ले जाता है;

प्रश्न ?—पापी द्रव्यका लक्षण क्या है;

समाधान,—रुद्रयामलवगेरा उपासनाशास्त्रोंमें लिखा है कि,–व्यापारीवगेराको महीने महीनेमें अपना हिसाब करना चाहिए जो महीनेमें वृद्धि हुई हो उसमेंसे आवश्यक खर्च निकालकर अवशिष्ट द्रव्यके पांच भाग करने चाहिए, उनमेंसे तीन भाग अपने लिए पृथक् रखने चाहिए, और दोमेंसे एक भाग अपने धर्म तथा उपासनाका उपदेश देनेवाले गुरुको देना चाहिए और एक भाग देवकार्य्य पितृकार्य्य अतिथिसत्कारवगेरा धर्मकार्य्योंके लिए पृथक् रखना चाहिए; ऐसा विभाग करनेपर जो तीन भाग इसके पास रहेंगे वे शुद्ध कहे जायँगे;–

उदाहरणके लिए किसी व्यापारीने एक महीनेमें पचास ५० रुपये प्राप्त किये, और उसको उक्त धन प्राप्तिमें साहाय्य देनेवाले १०।१० के वेतनवाले दो नौकर हैं, तो वीस रुपये उन दोनों नौकरोंको दे देना चाहिए फिर अवशिष्ट तीस रुपयेके पञ्च भाग करनेपर एक एक भाग छः छः रुपयेका होनेपर अठारह रुपये अपने नामसे रखने चाहिए, और छः रुपये धर्मके नामसे रखने चाहिए, और छः रुपये अपने उक्तविध गुरुको दे देना चाहिए; यह विभाग अपने इष्ट-देवकी तिथिको करना चाहिए; जो लोग उक्त विभाग करते हैं उनका द्रव्य शुद्ध कहा जाता है, उनके यहां लक्ष्मीजीका स्थायी निवास होता है, और बुद्धिभी उन लोगोंमें रहती है, और वंशभी चलता है; और जो लोग उक्तविध विभाग नहीं करते हैं, उन लोगोंका तीन पुरुषके बीचमें या तो द्रव्य नष्ट हो जाता है या वंश नष्ट हो जाता है या दोनों नष्ट हो जाते हैं, और उस कुटुम्बके आदिमी अल्पकालमें ही निर्बुद्धि तथा कुकर्मी हो जाते हैं और वह द्रव्य जिसके पास जाता है उसकी बुद्धिको भ्रष्ट करता है और उसको साथमें लेकर खुद अमार्गमें वितरित होता है, और ऐसे अपवित्र द्रव्यका संग्रह करनेवाला तो नरकमें जाता ही है; क्योंकि प्रचुरद्रव्यका सम्पादन प्रचुर पाप विना नहीं हो सकता है; आजकल यह विभागतत्व अधि-कांशमें प्रजाकी दृष्टिसे निकल गया है, इसी लिए पृथिवीपर अशान्ति वैमनस्य तथा असन्तोष विकरालरूपसे फैला हुआ है और वालशेविज्म वगेराकी आवश्यकता वताई जा रही है; यह विभाग यथायोग्य वेतनोपभोगी लोगोंकोभी करना चाहिए; आजकल वेतनोपभोगिओंकी यह दशा है कि १०० सौ रूपये मासिक मिलें तो भी अपना ही भरण पोषण करें, और तीनसों मिलें तो तीनसोको ही आत्मसात् कर जायँ, पांचसो मिलें तोभी अपने घरमें ही खर्च कर डालें फिर घरमें आदिमी चाहे तीन ही क्यों न हों, परन्तु ऐसा करना यहभी एक प्रकारकी चार्वाकता है, और श्वेतपामरता है, इत्यादि; फलतः अपना वहुत आवश्यक खर्च निकालकर विभाग सर्वको करना चाहिए; साधुओंको जो क्षेत्रवगेराके लिए द्रव्य मिलता है वह विभाग रहित अपवित्र मिलता है, इस लिए उसका अपव्यय होना और उससे साधुओंकी बुद्धिका भ्रष्ट होना न्यायप्राप्त ही है; और जो महन्तवगेरा साधुवेषधारी लोग धन संगृहीत ही करते जाते हैं वे लोग विभाग न करनेवाले गृहस्थों जैसे महापापी ही है, ऐसे ऐसे कापुरुष लोगोंके धनसे ही अन्तमें वेश्या वगेराका पालन पोषण होता है; और वेश्यावगेरा लक्षाधिपति वनते हैं; दाताओंको यह वात ध्यानमें रखनी चाहिए कि वेषधारी धूर्त्त लोग गरीब साधुओंके नामसे वस्त्र वगेरा मागते हैं परन्तु गरीब साधुओंको देते नहीं है; अतः दाताको खुद साधु-ओंकी स्थिति देखकर जो कुछ देना हो वह साक्षात् देना चाहिए किसी धूर्तके वाग्जालकी चकाचौंधमें अन्धे नहीं बन जाना चाहिए; इस रीतिसे साधुओंका सुधार हो जायगा; और अब साधुओंकी संख्याभी नित्यप्रति घट रही है; क्योंकि रातदिवस देशभक्तलोगोंके आन्दो-लनसे; और विशेषतः अनवरत प्लेगके आक्रमणसे, और उपरा उपरी पडनेवाले दुर्भिक्षोंसे, और सुभिक्षमेंभी अन्नके न मिलनेसे, और इन्फुलेन्जाके अती व कठोर आघातसे इस गरीब साधनहीन दीन प्रजाका घान निकल जानेसे=प्लेग वगेरा कारणोंसे प्रजाके न्यून हो

जानेसे अब थोडी मजदूरी मिलने लगीं है 'कितना हृदयविदारक समाचार है—चार वर्ष पहिले जो इन फुलेञ्ज़ानामकज्वर चलाथा जिसे अखवारवाले युद्धज्वर कहते थे. उस ज्वरसे केवल दो महीनेमें ही इस अभागी प्रजाके सत्तरलक्ष ७०००००० से अधिक आदिमी मर गये थे; सरकारी रिपोर्टमें निकला था कि सत्तरलक्षका हिसाव मिला है, परन्तु लोग बहुत शीघ्रतासे मर रहे थे इस लिए पूरी संख्या अज्ञात है इत्यादि' तात्पर्य्य यह कि मजदूरी संक्षेपसे मिलने लगी है इस लिए अब संख्या घटती जा रही है, और ईसाई लोगभी मस्तकपर हाथ रखकर रो रहे हैं क्योंकि जिसको दूसरे दिनभी रूखा सूखा टुकडा मिलेगा वह कभीभी ईसाईओं जैसे वालबुद्धि लोगोंके पञ्जेमें जा नहीं सकता है; कितनी ही साधुओंकी जगहें खाली पडी हैं महन्तोंको चेले नहीं मिलते हैं; और जो साधुलोग हैं वे अब अपने मुख्य कर्त्तव्यकोभी समझने लगे हैं; अन्तःकरणकी शुद्धिके लिए परोपकारकी दृष्टिसे अब बहुत विज्ञ साधु लोग जेलभी जाने लगे हैं, कितने ही साधुलोग आजकल जेलमें हैं भी;—यह देशका सौभाग्य समझना चाहिए, और साधुलोगोंके वैराग्य तथा तितीक्षा वगेरा साधनोंके दृढ करनेका ज्वलन्त साधन है, एक शंकराचार्य्यभी देशके हितके लिए आजकल जेलमें हैं; जब भारतीय साधुमात्रके मनसे जेल मार फांसी वगेराका भय निकल जायगा, और उक्त निर्भय मनमें पृथिवीकी सर्व प्रजाके सुखशान्तिका ध्यान उत्पन्न होगा तभी भारतको स्वतन्त्रता=स्वाराज्य स्वयं प्राप्त होगा, और भारतको स्वतन्त्र होनेपर भारतके अध्यात्मभावभावितशान्तियुक्तविचारोंका मानपुरःसर सम्पूर्ण पृथिवीमें संचार होगा तभी पृथिवीपर सुखदायि चिरस्थायि शान्ति प्रतिष्ठित होगी; और जो लोग 'सर्वभूतहिते रताः' (गी० ५।२५) इस गीतावाक्यके अनुसार केवल प्रजाके सुखके लिए ही जेलवगेराकी यन्त्रणाओंको भोगते हुए अपने वैराग्य प्रभृति साधनोंको दृढ कर रहे हैं वे लोग वेदान्तके पूर्ण अधिकारी हैं; फलतः साधुलोग इस समय वेदान्तके अधिकारी नहीं है इस लिए वेदान्तका प्रचार टीकावगेरासे करना निष्फल है, यह जो पूर्वपक्षवादीने कहा था वह ठीक नहीं; और शंकराचार्य्यके विषयमें जो नरवाहनवगेराका आक्षेप है, उसमें यह कहना है कि; यह सर्व धीरे २ भक्तवगेराके आग्रहसे घुस गया है; मूल शंकराचार्य्य नरवाहनवगेरापर चलते थे और राजसी ठाठवाठ रखते थे इसमें तो कोई प्रमाण नहीं है, मूल शंकराचार्य्यके वाद उनके गद्दीनसीनोंका मान बढ़ा, और धर्मप्रचारके लिए संन्यासी तथा पण्डितवगेराकी मण्डलीके साथ जहां तहां जाना आना पडता था, और रास्तोंमें वडे २ मैदान और जंगलभी आते थे तो ऐसे समय भोजनादिकी बहुत आवश्यक कुछ सामग्री साथमें लेकर भक्त लोगभी साथमें रहते थे, शंकराचार्य्य खुद द्रव्यवगेरा नहीं छूते थे, किन्तु उन्होंके साथमें रहनेवाले गृहस्थवगेरा द्रव्यादिक रखते थे, क्योंकि जहां चार आदिमिओंका समुदाय होता है वहां आवश्यक सामग्रीका होना अनिवार्य्य है; और जब इस रीतिसे व्यय बढने लगा तब प्रजाने भेटादिरूपसे द्रव्य देनाभी सुरू कर दिया, उस भेटवगेराका द्रव्य भक्तलोग अपने साथ रखते थे, इस रीतिसे कुछ दिन काम चला; इसके वाद एक जैसे आदिमी सर्वदिन नहीं मिलते हैं, अतः द्रव्यके विषयमें भक्तोंकी गडवडी अवस्था देखकर शंकराचार्य्यने

आयव्ययका पत्रक देखना सुरू कर दिया, और धीरे २ कालपाके कोशाध्यक्षभी शंकराचार्य्यको ही वनना पडा; फिर इसकी परम्परा चल पड़ी, इस रीतिसे यह फांसका वांस वना; इसी रीतिसे कण्टकप्रधान किसी प्रदेशमें शंकराचार्य्यको पादुकाधारण करनेके लिए वाधित होना पडा और मृदुताके लिए कोई भक्त रजतका पत्र जडवा लाया इसके वाद धीरे २ यह नियम चल पड़ा कि पूर्वाचार्य्य रजतयुक्त पादुका धारण करते थे इस लिए उत्तराचार्य्यको वैसी पादुकाएँ होनी हीं चाहिए, मतलव यह कि यहभी कालपाके तिलका ताल वन गया; तैसे किसी शंकराचार्य्यने विदेशमें अर्थात् जहां शरीर छूटनेसे उनको सद्गतिमें सन्देह था वहां वीमार हो जानेपर अपने आश्रमपर या कहीं पुण्यक्षेत्रपर जानेके लिए रुग्ण अवस्थामें भक्त लोगोंके आग्रहसे नरवाहनका स्वीकार किया था पश्चात् धीरे २ नरवाहन भी आवश्यक समझा जाने लगा, सारांश यह कि यहभी कालपाके, सुईका भाला वन वैठा; तथा साथमें देवपूजावगेरा रहनेसे तदुपकरणीभूत छत्रचामर छडीवगेराभी रहने लगे देवपूजाके लिए पालकीभी आगयी, और कालक्रमसे यह देवपूजाकी सामग्रीभी शंकराचार्य्यका अङ्ग वन वैठी, अर्थात् यहभी नावदानका नाला वन गया, इसी रीतिसे रजगजन्यायसे, और अजगजन्यायसे रूढियाँ घुसती गई इत्यादि; पूर्वकालमें विद्वान् लोग संन्यासाश्रम ग्रहण कर इन गद्दिओंसे अपनी परिमार्जित वुद्धिसे प्रजाको व्यावहारिक तथा पारमार्थिक लाभ पहुँचाते थे, सो अव विद्वान् लोग अपने लिए केवल गृहस्थाश्रम ही समझते हैं और टूटे फूटे मैले कुचैले सडे हुए झोपडोंमें तिथि वार नक्षत्र वगेराका विचार छोडकर वृद्धावस्थातक सन्तान उत्पन्न करते रहना यही अपना मुख्य कर्त्तव्य समझते हैं, और सन्तानाधिक्यसे वढते हुए दारिद्र्यको और तत्प्रयुक्त दुःखको देखकर कलियुग २ चिल्लाया करते हैं, अन्य सर्व खण्डोंमें सत्ययुग है परन्तु इन पण्डितोंकी कृपासे भारतवर्ष जैसी ऋषिमुनिसेवित चौवीस अवतारोंकी लीलास्थली इस पवित्र भूमिमें और विशेषतः पण्डितोंके घरमें कलियुग घँस आया है, इन विचारोंको यह खवर नहीं पडती है कि कर्त्तव्यहीन पुरुष ही साक्षात् कलियुग हैं दूसरा कलियुग तो कर्त्तव्यतासे हीन हो जानेपर आ पडता है; ' यहाँपर इस वातको ध्यानमें रखना चाहिए कि–हिन्दूधर्मशास्त्रके देखनेसे यह वात विलकुल स्पष्ट हो जाती है, हिन्दूगृहस्थके लिए वारहमासमें स्त्रीसंगमके लिए निर्दोष एक दो दिवसभी वडी ही कठिनतासे निकलते हैं; इस विषयका हम धर्मशास्त्रसारसंग्रह नामक निवन्धके सामाजिक प्रकरणमें स्पष्ट निरूपण करेंगे ' पण्डितोंकी यह दशा देखकर कितने ही साधारण लोगोंने आजकल इन स्थानोंको ऐस आरामका साधन समझकर आश्रयण करना सुरू कर दिया है, इस अन्धाधुन्धमें थोडे दिनोंसे वडा ही गडवडाध्याय चल रहा है, वीसों आदिभी अपने मनसे शंकराचार्य्य वैन वैठे हैं, इनमें कितने ही लोग एकदम व्यवहार परमार्थ दोनोंके ज्ञानसे रहित हैं; उदाहरणके लिए एक जगहका अनुभव दिखलाते हैं, कई वर्ष पूर्व, मैं एक छोटे नगरमें उतरा हुआ था, वहाँ एक आत्मीय संन्यासी शंकराचार्य्यकी उपाधी लेकर आया और एक गृहस्थके यहाँ उतरा, कुतूहलके लिए अथवा सत्यभावनासे कुछ लोग मिलने गये, एक कुछ विज्ञ आदिमी मिलने गया तव उसने क्या देखा कि शंकराचार्य्य

उपाधिधारी वह डंडी संन्यासी एक वणियेंके साथ झूलनेपर बैठा झूल रहा है उस वणिआके पैरोंपर बूटभी चढा ही था इस रीतिसे उस सबूट वणियेके साथ अति लघु आसनपर बैठे हुए संन्यासीजी वडे ही आनन्दसे धर्मकी वातें कतर रहे थे; अस्तु थोडे दिनके वाद–शंकराचार्य्य ग्रामान्तरमें चले गये वहाँसे जाके उस वणिएको एक पत्र लिखा, उस पत्रमें शंकराचार्य्यने अपने तरफसे ही अपने वीसों विशेषण लिख मारे, और वणिएको 'शिष्यकोटिप्रविष्ट' यह विशेपण लिख दिया था इस विशेपणको देखते ही उस घमण्डी वणिएके सर्व शरीरमें उत्तप्त-घृतनिक्षिप्त जलवत् एक क्षणावच्छेदेन नखसे लेकर शिखातक क्रोधाग्नि भभक उठी, और क्रोधकी लपटोंसे झुलसकर ववण्डरमें पतित=वात्यानिक्षिप्त तृणवत् उसकी बुद्धि भ्रमित होगई, इसी क्रोधावेशमें वह अपने ओष्ठोंको ओष्ठोंसे रगडता हुआ और मध्य मध्यमें दन्तोंसे ओष्ठोंको काटता हुआ और वीच वीचमें मोच्छके वालोंको मुखमें डालकर चवाता हुआ और भर्जनकपालस्थ वन्हिवत् अन्तर्विलीन क्रोधाग्निसे अनुक्षण सूखते हुए अपने ओष्ठोंपर आर्द्र जिह्वा फेरकर उनको आर्द्र रखनेकी चेष्टा करता हुआ मेरे पास आ पहुँचा, और आते ही संक्षेपसे नमस्कार पत्र निकाला और कहा कि देखो यह उस शंकराचार्य्यका पत्र है इसमें वह मुझको शिष्यकोटिप्रविष्ट कैसे लिखता है, मैंने उसके पास कुछभी पढा नहीं है न मैंने उससे मन्त्र ही लिया है, न मैं उसमें गुरुभाव ही रखता हूं, तव मुझको वह शिष्यकोटिप्रविष्ट कैसे कह सकता है; फिर उस पण्डितम्मन्य गेहेनर्दी वणिएने कहा कि–आजसे दश वर्ष प्रथम उसके वहुत आग्रहसे मैंने, आत्मा शावलेयवृत्त्यवृत्तिशावलेयनिष्ठजातिमान् संयोगित्वात्, शावलेयवत्–तत्त्वप्रदीपिका (परि० २ प्र० २) यह अनुमान पूछ दिया था उसका आज दश वर्ष हुए मुझको उससे उत्तर नहीं मिला है, उसने एक छोटासा पुस्तक वनाया था उसमें मैंने पचास अशुद्धियां निकाल दी थीं इत्यादि कह कर उसने कहा कि वह शंकराचार्य्य आपका छात्र है अतः आप पत्र लिख दो कि मुझको 'शिष्यकोटिप्रविष्ट' कभी न लिखें इत्यादि; इस घटनासे अध्येतृवर्ग विचारकर सकता है कि कैसी कैसी अनभिज्ञ व्यक्तियां शंकराचार्य्य वन वैठी हैं; जो वणिया सबूट एक छोटे आसनपर, दण्डीसंन्यासी शंकराचार्य्यके साथ वैठ सकता है, उसको ही पत्रमें 'शिष्यकोटिप्रविष्ट' लिखना कितनी अनभिज्ञता है; अस्तु विलकुल निरास नहीं होना चाहिए; समयने पलटा खाया है, अव सामान्यदण्डिओं जैसे ये लोगभी सेकण्डक्लास वगेरासे आने जाने लगे हैं; और अव अन्धे भक्तोंकी संख्याभी नित्यप्रति घटती जाती है, और जव आंखके अन्धे और गांठके पूरे भक्तोंकी संख्या अतिन्यून हो जायगी तव ये लोगभी सुधर जायँगे; और तूफानी पवनके निकल जानेपर समुद्रवत् ये लोगभी प्रकृतिस्थ हो जायँगे । और वेदान्तकी तरफ ध्यान देंगे तथा वेदान्तसे आत्माको अजर अमर समझकर प्रायः अज्ञानिजनकल्पितरूढिमात्रावशिष्ट वहुविधकुरीतिओंसे जर्जरीभूत विशृङ्खलित सर्वतो भावेन मध्यतः पूति इस हिन्दूसमाजके सुधारमें लग लायँगे, और यों करते २ सर्वसाधनसम्पन्न हो जानेपर मोक्षकेभी अधिकारी हो जायँगे; यही रास्ता दूसरे दण्डिसंन्यासिओंके लिएभी है अव इनमेंभी धीरे २ जीवन आने लगा है, कितने ही दण्डी

देशके हितकी बातेंभी सुनने लगे हैं, और कोई कोई इस अभागे देशके हितके लिए भारतकी जेलोंकोभी पवित्र कर रहे हैं; यह इन लोगोंके लिए तथा समग्रदेशके लिए महत्त्वका विषय है; दण्डी लोगोंका आचार विचार बहुत ही प्राचीन है; भारतमें सत्ययुगसे चले आते चतुर्थाश्रमके ये लोग ज्वलन्त उदाहरण हैं; यह हिन्दूधर्मके लिए बडे ही गौरवकी बात है कि बाह्याचारसे ही सही किन्तु लाखों वर्षोंसे अपना आदर्श टिका रहा है, और किसी जातिका इतना प्राचीन आदर्श ऐसा पूर्ण रूपमें नहीं मिलता है, तात्पर्य यह कि, शंकराचार्य्य तथा अन्य संन्यासी लोगभी शनैः २ रास्तेपर आरहे हैं इस लिए ये लोगभी वेदान्तके अधिकारी हैं, फलतः टीकादिद्वारा वेदान्तका प्रचार करना उचित ही है; और यह जो कहा कि–ब्रह्मचारी लोग गंजेडी भंगेडीवगेरा हैं इन्होंका वेदान्तमें अधिकार नहीं है; यहांपर यह कहना कि गंजेडी भंगेडीवगेरा मिथ्या ब्रह्मचारिओंका अधिकार न होनेपरभी आगे इस वर्गमेंभी अच्छे लोगोंके निकलनेकी सम्भावना है और इस वर्गमेंभी कितने ही लोग जितेन्द्रिय तथा फक्कड तो होते आते हैं, अतः सर्वथा निर्वीज तो इस वर्गकोभी नहीं कहसकते हैं; इससे अतिरिक्त अब भारतको बहुत ब्रह्मचारिओंकी और ब्रह्मचारिणिओंकी आवश्यकता प्रत्यासन्न है, देशहितैषी लोग स्वराज्यकी बात करते हैं सो अनुमोदनीय है, परन्तु जबतक लाखों नवयुवक तथा लाखों नवयुवतियाँ देशोद्धारके लिए आजन्मब्रह्मचर्य्यका नियम न करेंगे तबतक स्वराज्यका मिलना कठिन है; थोडे दिनोंमें ही भारतीय लोग समझने लगेंगे कि अवैध रीतिसे असमयमें अयोग्य दम्पतिसे उत्पन्न होनेवाली बाललप्रका फलभूत आर्पतेजोबुद्धिसाहससे रहित ह्रस्वग्रीवहस्तपाद सङ्कुचितनेत्रकर्णवक्षस्थल लम्बमानोदर वानराकृति या कङ्कालमात्राकृति इस अकर्मण्य प्रजासे देशका उद्धार न होगा और कदाचित् उद्धार होनेपरभी उसका रक्षण न होगा; और निर्माल्य बहुत प्रजाकी आवश्यकता नहीं है, प्रजा भले थोडी हो परन्तु चाहिए ज़र्मनों जैसी, जिसकी संख्या लगभग सात करोडकी ही होनेपरभी डेढ अरब प्रजासे खचाखच भरी हुई पृथिवीको ऐसा धक्का मारा है कि अभीतक पृथिवी डग भगा रही है, उसको प्रकृतिस्थ होनेमें शतशः वर्ष लग जायँगे, और इस एक ही धक्केसे कितने ही बडे बडे साम्राज्य धूडधानी हो गये, और कितने ही हो जानेवाले हैं; और जबतक भारतीय साम्यभावयुक्त शान्तिमूलक वेदान्तका प्रचार सर्व पृथिवीपर न होगा तबतक इस धक्केका न्यूनाधिक प्रभाव रहेगा; और जहां तहां ज्वालामुखी पहाड फूटा करेंगे; तात्पर्य्यतः थोडी ही प्रजा हो परन्तु उसको सुशिक्षित, सुदृढ़, सुवीर्य्य न्यायप्रिय पापभीरु कट्टर देशभक्त ईश्वरभक्त होना चाहिए; जिन लोगोंके पास अपने खानेका ठिकाना नहीं है; तथा रहनेके लिए स्थान नहीं है, स्वसन्तानोंके शिक्षणके लिए द्रव्य नहीं हैं; उन लोगोंको प्रजाको उत्पन्न करनेका और लग्न करनेका क्या अधिकार है; जो लोग स्त्रीके भरणपोषणकी योग्यतासे रहित हैं, और सन्तानोंके भरणपोषणकी तथा शिक्षणकी सामग्रीसे रहित हैं, अथच लग्न करते हैं और सन्तान पैदा करते हैं वे लोग खुदके और स्त्रीके तथा सन्तानोंके एवं समाज तथा देशके घोर शत्रु हैं, और वे लोग विषयलोलुप तथा पापी हैं, और जिसके पास एक सन्तानके रक्षणकी तथा शिक्षणकी

सामग्री हो और वह एकसे अधिक सन्तान उत्पन्न करे तो वहभी पापी है, जो मातापिता पूरा शिक्षण दिये विना ही सन्तानोंका लग्न कर देते हैं, वे लोग पूरे खूसट और जंगली तथा मूर्ख हैं; ऐसे पूर्वापरविचारशून्य विषयासक्त पशुप्राय पिताओंकी आज्ञासे कभीभी लग्न करना ही नहीं चाहिए, क्योंकि वे तो दो दिनमें चल वसते हैं, और जन्मभरके लिए दुःखका पहाड़ दम्पतीपर आ टूटता है; इत्यादि; जव देशके हितके लिए प्रजाके मनमें ऐसे पवित्र विचारोंका उदय होगा, तव घरघरमें ओजस्वी ब्रह्मचारी लोग और दिव्यतेजोमय मूर्त्तिधारिणी ब्रह्मचारिणियाँ उत्पन्न होने लगेंगी, उस समय उन ब्रह्मचारिओंको और ब्रह्मचारिणिओंको फ्रेंच ब्रह्मचारी तथा ब्रह्मचारिणिओंकी भावनासे रहित रखनेके लिए तथा जितेन्द्रिय वनानेके लिए एवं आत्माको अजर अमर समझकर लोकहितमें अनवरत प्रवृत्ति करानेके लिए एवं बुद्धिको कुशाग्र वनानेके लिए वेदान्तकी सवसे अधिक आवश्यकता होगी; और वाममार्ग वगेराका समय अव निकल गया है अव लोगोंके हृदयमें दूसरी भावनाएँ उत्पन्न होने लगी हैं; फलतः ब्रह्मचारी लोगभी वेदान्तके अधिकारी हैं, और होंगे, अतः ब्रह्मचारिओंके लिएभी टीकादिद्वारा वेदान्तका प्रचार करना उचित ही है; और जो कहा है कि—गृहस्थलोग मिथ्या व्यवहार करते हैं, और अज्ञानी रहते हैं, उनको वाक्य तथा वाक्यार्थप्रमृतिके भेदका ज्ञान नहीं रहता है, अतः ये लोग वेदान्तके अधिकारी नहीं है; यहाँ प्रतिवक्तव्य यह है कि सर्व गृहस्थभी एक जैसे नहीं होते हैं, कितने ही व्यापारी गृहस्थ वगेराभी अधिकारी पुराणवगेरामें सुननेमें आये हैं; और आत्मज्ञानकी पूर्ण सामग्री तो अल्पातिअल्प लोगोंमें ही होती है, और जिनमें पूर्ण साधन होते हैं, उन्हींको ब्रह्मानन्दका भान होता है, और पूर्ण साधनोंके विना यथार्थ अप्रतिवद्ध अपरोक्षज्ञान किसीकोभी नहीं होता है यह सर्वशास्त्रोंका सिद्धान्त है; और शंकराचार्य्यभी प्रथमसूत्रके भाष्यमें ही लिखते हैं,—उच्यते—नित्यानित्यवस्तुविवेकः, इहामुत्रार्थभोगविरागः, शमदमादिसाधनसम्पत्, मुमुक्षुत्वं च; तेषु हि सत्सु प्रागपि धर्मजिज्ञासाया ऊर्ध्वं च शक्यते ब्रह्म जिज्ञासितुं ज्ञातुं च न विपर्य्यये; वे० १।१।१ और साधनोंकी दुर्लभतासे ही आत्मज्ञानका अतिमहत्त्व,—एकशतं ह वै वर्षाणि मघवान् प्रजापतौ ब्रह्मचर्य्यमुवास, (छा० ८।११।२) इत्यादि श्रुतिओंमें वतलाया है; खण्डनकारनेभी कहा है,—

ईश्वरानुग्रहादेषा पुंसामद्वैतवासना,

महाभयकृतत्राणा द्वित्राणां यदि जायते; खं० परि० १ का० २४ अपरोक्ष आत्मज्ञानकी दुर्लभता और एक प्रकारसे अशक्यता होनेपरभी,—आत्माको देहादिसे पृथक् जान लेना, और जीवात्माभी कोई साधारण पदार्थ नहीं है, किन्तु शुद्धस्वरूपसे ब्रह्म है, और विशिष्टस्वरूपसेभी थोडेसे कार्य्योंको छोडकर प्रायः ईश्वर जितना ही सामर्थ्य रखता है, और उस सामर्थ्यकी अभिव्यक्ति योगादिसे कालपाके हो सकती है, जगत् अनित्य है, सदा एकसा नहीं रहता है, प्रियलोगोंका संग स्थायी नहीं है; स्त्रिओंके तथा पुरुषोंके शरीरका चाकचक्य=रूपलावण्यभी देखते देखते फक्क हो जाता है, सुखमें एकदम विकशित हो जाना और दुःखमें घवरा जाना अनुचित है, स्त्रीपुत्रादिक वस्तुतः स्वार्थी हैं इनके मोहमें फंसकर पापका संग्रह करना अन्याय है, ईश्वर

सर्वत्र व्यापक है और सर्व द्रष्टा है इस लिए ईश्वरके देखते हुए किसीभी पापका करना महा-धृष्टता है=महानास्तिकता है; जबतक मनुष्यबुद्धिपूर्वक पाप करता है तबतक वह आस्तिक हो नहीं सकता है; बुद्धिपूर्वक थोडाभी पाप करनेवाला पुरुष धर्मभक्तिज्ञान इनमें किसीकाभी अधिकारी नहीं है; इत्यादि विषयोंको जान लेना गृहस्थोंके लिएभी आवश्यक है, और इन विषयोंका यथार्थ ज्ञान वेदान्तसे ही होता है; इस लिए मुख्य प्रयोजनके लिए नहीं तो भी अवान्तर प्रयोजनके लिए गृहस्थोंकोभी वेदान्तके श्रवणका अधिकार है; परन्तु जबतक साधनोंकी सम्पूर्णता न हो जाय तबतक धर्म और भक्तिकी तरफसेभी हाथ नहीं खींच लेना चाहिए; ऐसा करनेवाला मनुष्य उभयभ्रष्ट होकर फिर अल्पकालमें ही विषयासक्त बन कर पामर बन जाता है, और अपनी साधनहीनताको तथा पामरताको छिपानेकेलिए अपनेको पूर्वजन्ममें कृतोपास्ति बताता है, और राजा जनक तथा कृष्णवगेराके दृष्टान्तोंका आश्रयण करता है; देशके दौर्भाग्यसे आजकल विषयासक्त वेषधारिओंमें और विशेषतः गृहस्थोंमें उपरोक्त मिथ्या और बातूनी वेदान्ती बहुत होने लगे हैं; फिरभी दम्भी लोगोंके भयसे अधिकारिओंका अधिकार नहीं मिटाया जा सकता है; पूर्वकालमें राजावगेरा लोग व्यवहारमें सहायताके लिएभी वेदान्तका श्रवण करते रहते थे; रावणवगेराभी अच्छे ज्ञातालोग थे रावणका वेदोंपर भाष्य तो प्रसिद्ध ही है, परन्तु कणाद महर्षिके न्यायसूत्रोंपरभी उसका भाष्य है; अर्जुनकोभी व्यवहारमें मोह उत्पन्न हो गया था उसको कृष्ण भगवान्ने निवृत्त कर दिया तब उसने निधडक लाखों मनुष्योंका संहार कर डाला; कृष्णके उपदेशसे अर्जुनके अन्तःकरणमें ब्रह्माकार वृत्ति उत्पन्न हो गई थी और ब्रह्माच्छादक अविद्या उक्त वृत्तिसे नष्ट हो गई थी; ऐसा समझना यह केवल मूर्खता है; अर्जुनको श्रीकृष्णके उपदेशसे कुछ नवीनप्रकारयुक्त आत्माका ज्ञान हो गया था जो कि व्यवहारमें उपयोगी था और मारकाटमें निर्भय बनाने वाला था; यदि अविद्यानाशक यथार्थ आत्मज्ञान हो गया होता तो अविद्याके कार्य्य आवरणका अस्तित्व न रहता; और वह तो था ही क्योंकि आगे चलकर पुनः अर्जुनने आत्मज्ञानकी जिज्ञासा प्रकटकी तब उसको उत्तर गिताका उपदेश दिया गया; फिरभी पूर्णसाधनसम्पत्ति न होनेसे यथार्थ आत्मज्ञान नहीं हुआ, और अन्तमें हिमालयमें गलकर स्वर्ग गया विदेहमुक्ति उसको नहीं प्राप्त हुई, और स्वर्ग जानेसे प्रथम उसको यथाकथञ्चित् थोडे दिन नरकमेंभी रहना पडा था, यह महाभारतके स्वर्गारोहणपर्वके द्वितीय तथा तृतीय अध्यायमें स्पष्ट है; तैसे भीष्मभी अच्छे ज्ञानी थे यह तो शान्तिपर्वमें तथा अनुशासनपर्वमें जो उन्होंने युधिष्ठिरादिको उपदेश दिया है उससे स्पष्ट मालूम पडता है, फिरभी व्यावहारिक खटपटोंमें पडे रहनेसे ब्रह्माकार वृत्तिका अभ्यासकर अविद्याका उच्छेद न कर सके, इस लिए सद्गतिकी आशासे उत्तरायणतक बाणशय्यापर ही पडे रहे और अन्तमें शरीर छोडकर स्वर्गमें ही गये हैं, यहभी स्वर्गारोहण-पर्वमें स्पष्ट है; तैसे ब्रह्मज्ञानसे लबालब भरे हुए योगवासिष्ठ जैसे पोथेका श्रवण करनेपरभी साधनसम्पत्ति ठीक न होनेसे राजादशरथका मोह न छूटा, और अपनी प्रियाके प्रेमजालमें फँसे हुए मरकर स्वर्ग गये; फलतः जबतक पूर्णसाधनसम्पत्ति नहीं हो तबतक अवान्तर प्रयोजनके

लिए,-ईश्वरकी भक्ति और धर्मानुष्ठान करते हुए वेदान्तका श्रवण करना चाहिए; मिथ्या भाषण तथा मिथ्या व्यवहार इन दोनोंका त्याग करना चाहिए, इन दोनोंको त्यागकर वेदान्तका श्रवणभी बहुत पवित्र कर्म है, उससे अदृष्टकी उत्पत्ति होती है; परन्तु जो लोग मिथ्या भाषण करते हैं और छल कपट करते हैं, और इस देवदुर्लभ रहस्यका दुरुपयोग करते हैं, वे लोग साक्षात् पापकी मूर्ति ही हैं, उनको यह पवित्र विद्या शाप देती है; और जो लोग खानपानवगेराके मोहसे या औरभी किसीभी प्रकारके लोभसे उक्त पापिओंकी हां में हां मिलाकर दम्भसे ऐसे लोगोंको वेदान्त सुनाते हैं और विषयोंको काकविष्ठावत् बतलाते हुएभी खुद विषयोपभोगमें तत्पर रहते हैं वे लोग उनसे अधिक पापी हैं; यह विषय नीचे लिखे प्रमाणोंसे सुज्ञात होता है,—

विद्या ह वै ब्राह्मणमाजगाम गोपाय मा शेवधिष्टेऽहमस्मि ।
असूयकायानृजवेऽयताय न मा ब्रूया वीर्य्यवती तथा स्याम् ॥

निरुक्त अध्याय २ खण्ड ४ मन्त्र १ ।

अधर्मेण च यः प्राह यश्चाधर्मेण पृच्छति ।
तयोरन्यतरः प्रैति विद्वेषं चाधिगच्छति ॥ मनु० २।१११
यमेव तु शुचिं विद्यात् नियतब्रह्मचारिणम् ।
तस्मै मां ब्रूहि विप्राय निधिपायाप्रमादिने ॥ मनु० २।११५
नापरीक्षितचारित्रे विद्या देया कथञ्चन । म० शां० ३३५।४५

इत्यादि; सारांश यह कि मिथ्याभाषण वगेरा छोडनेवाले कितने ही गृहस्थभी मुख्य प्रयोजनके लिए नहीं किन्तु अवान्तर प्रयोजनके लिए वेदान्तके श्रवणके अधिकारी हो सकते हैं अतः उक्तविध गृहस्थोंके लिएभी वेदान्तका प्रचार न्यायविसंगत नहीं है; और यह जो कहा कि-ज्ञानके साधन धर्मकाभी इस समय कोई अधिकारी नहीं है, धर्मके नामसे केवल पाखण्ड चल रहा है; इस विषयमेंभी यह कहना कि-अपने लोगोंकी धार्मिक क्रियाओंमें बहुत कुछ न्यूनताएं आगई हैं यह बात यथार्थ है; परन्तु इनके मध्यमें सत्यधर्म अनुगत है, सत्यधर्मका गन्ध अभीतक इन क्रियाओंसे नहीं चला गया है; अपना धर्म बहुत प्राचीन है, सहस्रों वर्षोंसे अपने हाथमें राजसत्ताके न रहनेसे अपने हरएक विषयमें विशृङ्खला उपस्थित होगई है, बहुत दिनोंसे संशोधन नहीं हुआ है इसी लिए निराशा उत्पन्न हो गई है; परन्तु सर्वथा निराश होना विचारशील पुरुषोंका लक्षण नहीं है, संशोधनका यत्न करना चाहिए; इस समय देशमें एक दल ऐसा उत्पन्न हो रहा है जो कि वस्तुस्थितिके समझे विना ही केवल ब्राह्मणोंके ऊपर ही आक्रमण करना चाहता है, और कहता है कि-ब्राह्मणोंने देशका सत्यानाश कर दिया है, सबको विद्या नहीं पढाई, इत्यादि, यह सब अकाण्डताण्डव है, जिस स्थितिमें सहस्रों वर्षतक भारतको गुजरना पडा है, उसकी भयङ्करताका विचार करते हुए यही कहना पडता है कि, ब्राह्मणोंने सब राजसुखोंको छोडकर जो वेदकी-पाठमात्रतः सही रक्षाकी है, और यज्ञादिकी

व्यवस्था यथाशास्त्र टिका रक्खी है–भले अंशतः सही, वहभी वहुत है; यज्ञादिस्थलको देखनेपर मालूम पडता है कि आजभी भारतमें मूर्तिमान् होकर सत्ययुग खडा है, और सर्व पृथिवी भारतके सामने इस विषयमें जंगली है, गर्भाधानादि संस्कारोंकी व्यवस्थाभी अभी-तक कहीं कहींपर अच्छी चली आती है, इस लिए धन्यवाद देना चाहिए इस ब्राह्मण जातिको जिसने लोभमोहको छोडकर कोपीनमात्रको धारण करभी जैन वौद्ध यवन वगेराकी व्रजकल्प दंष्ट्राओंमें रहकरभी हमारे सत्ययुगके आदर्शकी आजतक रक्षा की; अब ब्राह्मणोंकी निन्दाका समय नहीं है, किन्तु जितनेकी ब्राह्मणोंने रक्षाकी है उतनेको अब मिलकर संभाल लेना चाहिए, और जो अशास्त्रीय रूढियाँ आकर घुस गई हैं उनको निकाल देना चाहिए; क्योंकि ब्राह्मणोंकी निन्दाकर और ब्राह्मणोंसे पृथक् रहकर यदि कोई समाज भारतमें महत्त्वके कार्य्यकी आशा रखता हो तो वह समाज सबसे वडा अज्ञानी तथा उद्दण्ड समझा जायगा, जो कुछ राजनैतिक क्षेत्रमें चहलपहल देखनेमें आती है उसका कारणभी यही है कि–इस विषयके मुख्य सूत्रधार ब्राह्मण ही हैं; तात्पर्य्य यह कि ज्ञानके साधन धर्मका स्वरूप अभीतक विलकुल नष्ट नहीं हुआ है, किन्तु अधिकांशमें अविवेचितावस्थामें–एक प्रकारकी अनुपस्कृतावस्थामें है; और ज्ञानके द्वितीय साधन भक्तिके विषयमें जो कहा है कि–भक्तिमार्गके आचार्य्यलोग भ्रष्ट हैं, और इस विषयमें महाराजालायवलकेशवगेराको प्रमाण वताया है; इस विषयका समाधान यह है कि,–इन वातोंको पचीसों वर्ष होनेको आये हैं, और इतने समयमें वडा परिवर्त्तन हो जाता है, और अब इन लोगोंकोभी अपनी स्थिति अवश्य सुधारनी पडेगी, और व्यभि-चारप्रभृति अपवित्र कार्य्य करनेवालोंकों अवभी प्रजा गुरु तथा ईश्वर मानेगी यह वहुत न्यून सम्भव है, अपना देश वडा है, और अधिकांशमें निरक्षरताका राज्य है, और स्त्रीलोग तो एक प्रकारसे अज्ञानकी राशि ही हैं, इसी लिए पशुप्राय जनता अन्धमेषीन्यायसे जिधर झुकती है उधर ही झुक जाती है; परन्तु अब ज्ञानकी ज्योत्स्ना चारों तरफ छिटकने लगी है, इस लिए पचीस वर्षके वीचमें अन्धेभक्तोंकी मूर्खताका अधिकांश नष्ट हो जायगा, और अन्धे लोगोंकी अविद्या ही भारतके सर्व पाखण्डिओंका आश्रय है; फलतः इस अविद्याका नाश होनेपर पाखण्डीलोग स्वयं ही रास्तेपर आ जायँगे; और भारतकी प्राचीनतम जो स्मार्त्त उपासना=मुख्यत्वेन पञ्चदेवोपासना–जिसके चिह्न सर्व भारतमें व्यापक हैं, वह फिर चल पडेगी, और ऐसा होनेपर पुनरपि भक्तिका सत्यस्वरूप प्रजाके सामने आजायगा; आनन्दकी वात है कि जो निरक्षर वणिये वगेरे प्रथम नेत्रहीन होनेसे पाखण्डिओंके वहकानेसे 'शिव' उच्चारणमें पाप समझने लगे थे वे ही आजकल वी, ए, एल, एल वी, एम, ए, वगेरा उपाधियाँ धारण कर वेदादिके वडे वडे ग्रन्थ उलट पलट रहे हैं, और महादेवप्रभृतिकी यात्रा तथा पूजन वगेराका आरंभ कर दिया है, और कहने लगे हैं,–वेद महाभारत वगेरा तो शिवजीके ही माहात्म्यसे भरे पडे हैं, इनमें यह तो कहींपरभी नहीं लिखा है कि शिवजी विष्णुके भक्त हैं; और मोक्षका ठेका विष्णुके पासमें है; और अठारह पुराणोंमें दश पुराण तो केवल शिवजीकी ही प्रधानता वतलाते हैं, और आठमें दूसरे सर्वदेवता हैं, और वेदादिमें ऐसा तो

कहींपरभी नहीं लिखा है कि, वणिओंका उपास्य देव विष्णु है, और ब्राह्मणोंका उपास्य देव शंकर है; ये कल्पनाएँ केवल निरक्षर लोगोंकी वाडा वन्दी करनेके लिए धूर्तोंने ही गढ ली थीं; और जब शिक्षित वणिये प्रभृति नाममात्रके निरक्षराचार्य्यके पास जाके ऐसे २ प्रश्न उपस्थित करते हैं, तब उनको बगलें झाँकनी पडती हैं, और आघ्रातद्वित्रकाव्य घोंघाशंकर खोखाधर शास्त्रीको बोलाना पडता है, ब्राह्मण होनेसे भीतरसे सर्व जानते हुए और मानते हुएभी आजीविकाके पाशसे जकडे हुए शास्त्रीजीभी यद्वा तद्वा करने लगते हैं, और प्रश्न-कर्त्ताको यथार्थ उत्तर न मिलनेसे उसकी श्रद्धा दोनोंपरसे उतर जाती है; ऐसी घटनाएँ अब घटने लगी हैं, ये सर्व चिह्न आगे होनेवाले पाखण्डके नाशके द्योतक हैं, और भावि सनातन धर्मकी प्रवृत्तिकेभी सूचक है; तथा यहाँपर यहभी विचारणीय है कि—भक्तिमार्गका प्रचार सर्व भारतमें है, और इसके प्रचारकभी बहुत लोग हैं वे सर्वलोग विषयी नहीं हैं; और यह समय देशके उत्थानका है, इस लिए जो पात्र अपवित्र हो गया हो उसके फोडनेकी चेष्टा करनेसे प्रथम उसके संस्कारके लिए चेष्टा करनी चाहिए; हिन्दूजातिका संगठन करना आवश्यक है, इस लिए कीसीभी निमित्तसे जिन व्यक्तिओंका अधिकव्यक्तिओंपर प्रभाव पडता हो उस व्यक्तिको सुधार लेना चाहिए, और उसके प्रभावकोभी कायम रखना चाहिए, ऐसा होनेपर समाजसंगठनमें उस व्यक्तिका प्रभाव हमको साहाय्य देगा; परन्तु ऐसा करनेके लिए उस प्रभावशाली व्यक्तिको निजके स्वार्थमें बहुत कुछ संकोच करना पडेगा; यदि वह व्यक्ति अपना सुधार न कर अपने प्रभावका फल खुद ही भोगना चाहेगी, तो इस प्रगतिशील कालमें न तो उसका प्रभाव ही रहेगा और न उसको उसका फल ही मिलेगा यह निश्चय है; फिरभी देश-भक्तोंका यह कर्त्तव्य है कि—जबतक विध्यात्मक साधनोंसे समाजका संगठन होसके तबतक निषेधात्मक साधनोंके अनुष्ठानकी आवश्यकता नहीं; स्वार्थत्याग विना सम्भूय समुत्थान नहीं हो सकता है यह बात सर्वको ध्यानमें रखनी चाहिए; और प्रत्येक समाजमें धीरे २ इस समय सुधारका संचार हो रहा है, और आजीविकाके लिए भक्तोंको हाथमें रखनेके लिएभी भक्तिमार्गिओंको अपना सुधार करना ही पडेगा, और ऐसा होनेपर देशमें शान्ति होनेपर भक्तिकी पवित्र गंगा फिर भारतमें प्रवाहित होगी, और लोगोंके अन्तःकरणोंको स्वच्छ करेगी; तात्पर्य्य यह कि ज्ञानके साधन धर्म तथा भक्तिका लोप नहीं हुआ है, और आगे इनका स्वरूप व्यक्त होनेवाला है, अतः इन दोनों साधनोंसे शुद्धान्तःकरणवाले मुमुक्षुओंके ज्ञानके साधन वेदान्तका प्रचार करना चाहिए; और जो कहा है कि वेदान्तका आदर्श नहीं है, इस लिए इसका प्रचार नहीं हो सकता है; सो यद्यपि थोडे दिनोंसे साधनसम्पन्न ब्रह्मानन्दका अनुभव करनेवाले लोग भारतमें देखनेमें नहीं आते हैं; तथापि इतः पूर्वमें केतने ही लोग ऐसे होते आये हैं और आगेभी होंगे, और दूसरी बात यह है कि—ऐसे आदर्श सर्व दिन थोडे ही होते हैं, ऐसे आदर्शोंके अजाओं जैसे समुदाय कभीभी जगत्में न थे और न हैं और न होंगे; हां पापका त्याग करना साधनोंके लिए यत्न करना ईश्वरपर विश्वास रखना सर्वभूतहिते रताः, इस गीतावाक्यके अनुसार सर्वके हितमें रत रहना; इन साधनोंवाले लोगभी ज्ञानके तथा

धर्मके एवं भक्तिके आदर्श हो सकते हैं; देशके भाग्योदयसे इस समय भारतमें लाखों आदमी ऐसे हैं, जो कि अन्यकी भलाईके लिए अपने सर्व सुखोंको लात मारकर, अपने ऊपर प्रहार करनेवालोंकेभी ऊपर प्रहार न कर प्रत्युत भीतरसे प्रहार करनेवालेकी भलाईको चाहते हुए, मारखाने जेलजाने और फांसीपर लटकनेके लिए तयार हैं; ये सर्व ज्ञानके तथा भक्तिके एवं धर्मके अवान्तर साक्षात् आदर्श हैं;

आजकलके कर्मयोगी नवीन वेदान्ती असहकारवादिओंने, साधनहीन अकर्मण्य प्रमादी शुद्धब्रह्मकी बातें करनेवाले और गृहस्थोंके दास वनके रहनेवाले और उन्होंके लडकोंको खेलानेवाले खुसामदी टट्टू प्राचीन ढंगके बुढिया वेदान्तिओंको एकदम नीचा दिखला दिया है, फलतः मुख्य आदर्शोंके न होनेपरभी अवान्तर आदर्श इस समयभी हैं; और शंकराचार्य्यपर जो दोष लगाया गया है कि वे वाममार्गी थे सो मिथ्या है, दर्शनसमुच्चयके कर्त्ताने ऐसा लिखा है परन्तु वह जैनी था, और वेद ईश्वर देवता ब्राह्मण इन चारकी निन्दा करनी यह जैन लोगोंका मुख्य लक्षण है; इन लोगोंके ग्रन्थोंमें आधेसे अधिक भागमें निन्दा रहती है, इसी लिए मलीन पदार्थसे भरे गर्त्तमें पाषाणका निक्षेपभी अपवित्रताका सम्पादक है यह समझकर वैदिक लोगोंने इनकी उपेक्षा कर दी, और शंकराचार्य्यनेभी (वे० सू० अ० २ पा० २ सू० ३६ के भाष्यमें) इस मतको उपेक्षणीय बताया है, फलतः दर्शनसमुच्चयके कर्त्ताका लेख, और उसकी पूंछको पकडकर चलनेवाले आत्माराम जैनीके अज्ञानतिमिरभास्करका लेख मिथ्या है; परन्तु ये सर्व प्राचीन जैनिओंकी बातें हैं; आजकलके जैनभी समझने लगे हैं कि ईश्वरका न मानना एक प्रकारकी असभ्यता और जंगलीपन है, और भीतर भीतर ईश्वरका भजनभी अब जैनी लोग करने लगे हैं, और भीतर २ महादेवका पूजन और रुद्रीवगेराभी कराने लगे हैं, तैसे कण्ठी और यज्ञोपवीतके लिएभी लालायित हो रहे हैं, कच्छदेशमें कितने ही जैनिओंने कण्ठी बांधनी सुरु कर दी थी परन्तु नास्तिक्यके प्राधान्यसे उनको कितने ही लोगोंने कण्ठी छोडनेके लिए वाधित किया था लगभग वीसवर्ष हुए होंगे तब इस विषयका केश मुंबईमें चला था; कच्छादिदेशमें बहुत जैन स्त्रीपुरुष रामका स्मरण कर अपनी सद्गतिका मार्ग शुद्ध कर रहे हैं; अपढ जैनी जब सुनते हैं कि जैन मतमें जगत्का मालिक ईश्वर नहीं माना जाता है तब एकदम घवडा जाते हैं; और पढे लिखे जैनीभी समाजमें अब स्पष्ट नहीं कह सकते हैं कि हमलोग ईश्वरको नहीं मानते हैं; सारांश यह कि धीरे २ इन लोगोंमेंभी आस्तिक्य बढ रहा है; और शंकराचार्य्यका अपना शरीर छोडकर राजाके शरीरमें प्रवेश करना और विषयभोग करना तथा राजाके शरीरसे मद्यपान करना ये सर्व बातें मिथ्या–अप्रमाण हैं, यद्यपि माधवने अपने शंकरदिग्विजयके दशमसर्गमें ये बातें लिखी हैं, परन्तु वह दिग्विजय एक प्रकारका मनगढन्त काव्य है, उसके लिखनेवालेको यह तो खबर ही नहीं है कि शंकराचार्य्य हुए कब, फिर उसकी दूसरी बातें कैसे प्रामाणिक हो सकती हैं, यह दिग्विजय शंकराचार्य्यके सहस्रशः वर्षके बाद गढा गया है, इस काव्यके कर्त्ताने अपनी रुचिके अनुसार कुछ वेशिरपैरकी सुनी सुनाई बातें और कुछ कपोलकल्पनाएं लेकर इस ग्रन्थको बना डाला है, और कवी

लोगोंका ऐसा स्वभाव होता है कि जबतक थोडीसी मिथ्या बातें और इधर उधरकी गप्पें न हांके तबतक उनको शान्ति नहीं मिलती; तुलसीदास भक्त कवि थे फिरभी कहीं २ पर उन्होंने खूब ही मनमानी गप्पें मारी हैं, आद्यकवि वाल्मीकिने रामायणके बालकाण्डमें रामके विवाहका एकदम सादा थोडे शब्दोंमें वर्णन कर दिया है, उस साधारण घटनाको लेकर तुलसीदासने आकाशपाताल एक कर डाला है, अपनी रुचिके अनुसार बालबुद्धि-लोगोंको हसानेके लिए, वाल्मीकिरामायणमें तथा अध्यात्मरामायणमें जिसका नाम निशानभी नहीं है ऐसा लक्ष्मणपरशुरामका असभ्य सम्वाद लिख मारा है, उससे मालूम पडता है कि--उस समय राजपुत्रोंको बातचीत किस रीतिसे करना, और वृद्धलोगोंके समाजमें कैसा व्यवहार करना यहभी मालूम न था; तैसे दक्षप्रजापतिकी पुत्री सतीजीका आख्यान सत्ययुगसे सम्बन्ध रखता है, उसका तुलसीदासने रामके साथ सम्बंध जोड दिया है; राम ईश्वरावतार है या नहीं इस विषयकी परीक्षाके लिये सीताजीको ढूंढते हुए रामके आगे सीताजीका वेश लेकर सतीका बैठना, और रामका सतीको पहिचानना, और सीताजीका वेश लेनेसे शिवका सतीको मनसे त्यागना, इत्यादि बातें बिल्कुल मिथ्या हैं, फिरभी जो कुछ मनमें आया वह आँखें मूंदकर तुलसीदासने घसीट डाला; तैसे अंगद और रावणका लम्बा चौडा सम्वादभी बालबुद्धिका आश्रयण लेकर ही लिखा है, वहभी असत्य ही है; क्योंकि वाल्मीकिरामायणमें यह घटना बहुत ही सभ्यतापूर्वक थोडे शब्दोंमें कह दी है; तुलसीदासके पोथेसे मालूम होता है कि--रावणवगेरालोग दूतके साथ राजाको साक्षात् बात कब करनी चाहिए और मन्त्रिओं-द्वारा कहांतक बात करनी चाहिए, और असाधारण प्रस्तुतविषयपर बात करनी चाहिए कि हास्यवर्द्धक असम्बद्ध चण्डूबाज और गाँजेखोरों जैसी बातें करनी चाहिए, इत्यादिविषयोंको जानते ही न थे, जहाँ तहाँ तुलसीदासने रावणवगेराको एकदम नीचे उतार देनेकी चेष्टाकी है वह तुलसीदासकी अपनी क्षुद्रता है, रावण मेघनाद वगेराभी बडेभारी विद्वान् सुशिक्षित नीतिज्ञ और पूर्ण सभ्यथे; इसी रीतिसे अधिकांश दाक्षिणात्यलोग लशुन वगेरा अति अपवित्र वस्तुओंके खानेसे कांमुक और विषयान्ध विशेष होते हैं [महाभारत कर्णपर्व अध्याय ३४ पुस्तक निर्णयसागरीयमें दाक्षिणात्योंका मिथ्याभाषित्व क्षुद्रत्व, असरलत्व, व्यभिचारित्व, महपापित्व, पवित्रतारहितत्व, स्त्रिओंका यथेष्टाचारित्व, कामुकत्व, असम्बन्धगानकर्तृत्व, लज्जा-रहितत्वप्रभृति खासलक्षण बतलाया है, तैसे इन लोगोंकी कामान्धता वात्स्यायनकृत कामसूत्र, अधिकरण २ अध्याय ४ प्रकरण ४ सूत्र १० अधिकरण ७ अध्याय २ सूत्र १५ प्रभृतिमें स्पष्ट बतलादी है, कामसूत्रोंका बनानेवाला वात्स्यायनभी द्रविण दाक्षिणात्य था यह पञ्चनदीय पण्डित सुदर्शनाचारीने न्यायभाष्यकी टीकाकी भूमिकामें लिखा है] इसी लिए अपने अनुभवके अनुसार जब माधवने शंकराचार्यके ज्ञानपूत प्रमाताका राजाके शरीरमें प्रवेश करा दिया, तो झटपट उसको शराबभी पिलादी 'देखो उक्त दिग्विजयका दशमसर्ग' और शृङ्गाररसमें इतना डुबा दिया मानों शंकराचार्यकी आत्माने अपना अधीनकका सर्वजीवन वात्स्यायनके कामसूत्रोंके मनन करनेमें और उन्होंके प्रयोगमें ही व्यतीत किया हो; मतलब

यह कि माधवके नामसे प्रचलित यह पुस्तक प्रमाण नहीं और इसके अनुसार किसीभी बातका निश्चय नहीं हो सकता है; और विरोधि तथा निन्दावादिपक्षका होनेसे दर्शनसमुच्चयके कर्त्ताका कथन सत्य नहीं है, इस लिए आद्यशंकराचार्यके जीवनमें किसीभी प्रकारकी अनुचित शंका नहीं हो सकती है; तैसे निश्चलदासने दो स्त्रियाँ रक्खी थीं और उन्होंके साथ निश्चलदासका अवैध सम्बन्ध था, इस विषयमें कोईभी प्रमाण नहीं है; सृष्टिका ऐसा नियमसा है कि, विद्वान्लोगोंकेभी अकारण शत्रु रहते हैं, दूसरेके उत्कर्षको सहन करनेका बल इस पृथिवीपर अत्यल्प लोगोंमें होता है, सम्भवतः ऐसे लोगोंने ही ये बातें उडाई हैं;

एक ब्रह्माण्डनन्दनामक पुराना त्यागी दशनामी परमहंस गतपूर्व प्रयागके कुम्भके बाद श्रीकाशीजीमें अपारनाथके टेकरेमें मुझको मिला था वह कहता था कि–अपरेश्वरानन्दनामक दशनामी परमहंसके गुरुका निश्चलदासके साथ शास्त्रार्थमें पराजय हो गया था तो उसके चेले अपरेश्वरानन्दने निश्चलदासके विरुद्ध ऐसे २ बातें फैलाई थीं, तैसे आजसे कोई बावीस वर्ष प्रथम अपरेश्वरानन्द कच्छ देशमें गये थे, और उनके पीछे दो वर्षके बाद मैं कच्छ देशमें गया था, तो नाग्रेचाके तथा कोटडीग्रामके प्राचीन सत्संगी लोग कहते थे कि अपरेश्वरानन्द निश्चलदासके साथ ईर्ष्या रखते थे इत्यादि; और पञ्चम तरंगमें जो स्त्रिओंके अङ्गोंका वर्णन किया है, वह तो शास्त्रकी दृष्टिसे और श्रवण की हुई बातोंसे और भौतिक पदार्थोंकी रचनाके अनुमानोंसेभी हो सकता है इसमें सर्वांशमें अपरोक्षानुभवकी आवश्यकता नहीं है; और यह जो लिखा है कि–निश्चलदासका शरीर जाटका था सो ठीक नहीं, क्योंकि आजसे एकीस वर्ष पूर्व मैं फक्कड अवस्थामें पञ्जाबमें रावी नदीके किनारे घूमता था उस समय रावीसे कुछ दूर दक्षिणकी तरफ तुलम्बानामक ग्राममें एक वृद्ध साधु मुझको मिला था उसका नाम शीतलदास था और वह दादूके सम्प्रदायका था, और साधु अच्छा था उसका मेरा कई दिनोंतक साथ रहा था और दोनों जने साथ ही साथ कबीरवालातक गये थे, तब उसने निश्चलदासके विषयमें सर्वबातकी थी, वह निश्चलदासकी सेवामें रह था वह कहता था कि निश्चलदासका शरीर सारस्वत ब्राह्मण था, किसी स्त्रीके साथ उनका सम्बन्ध न था, बहुत दिनोंतक जटाएँ रखनेसे जटाओंकी गरमीसे उनका स्वास्थ्य बहुत अच्छा नहीं रहता था; और एक साधु रामदास नामक मगरभीममें मिला था वह उदासीनसम्प्रदायका साधु था वह ज्ञानी मूलचन्दके साथ बहुत दिनोंतक रहा था (ज्ञानी मूलचन्दभी अपने समयमें एक प्रतिष्ठित महात्मा माने जाते थे और उन्होंनें वेदान्तका एक बहुत अच्छा वेदान्तपदार्थमञ्जूषा नामक ग्रन्थ बनाया है, ये सिन्धुदेशमें रहा करते थे) वह कहता था कि मूलचन्द ज्ञानी निश्चलदासको बहुत प्रतिष्ठित दृष्टिसे देखते थे यहांपर यह कहनेका प्रयोजन नहीं कि–निश्चलदास तथा मूलचन्द ज्ञानी ये दोनों एक कालमें थे; तैसे साधुसिंह नामक निर्मलसम्प्रदायके साधुनेभी आर्य्यसमाजीय सत्यार्थप्रकाशके खण्डनात्मक अपने सत्यार्थविवेकनामक ग्रन्थमें स्वामी दयानन्द सरस्वतीके तर्फसे निश्चलदासपर किये गये आक्षेपका उत्तर देते हुए निश्चलदासपर अपनी अटूट श्रद्धा प्रकटकी है; तैसे निश्चलदासने अपने वृत्तिप्रभाकर ग्रन्थके अनुपलब्धि प्रकरणमें

नवर्थ निरूपणावसरमें, (अब्राह्मणो नाचार्य्यः)=ब्राह्मणसे भिन्न आचार्य्य होनेके लायक नहीं है, यह लिखा है इससेभी उनका ब्राह्मण होना सिद्ध होता है, क्योंकि अन्यजातिवाला पण्डितम्मन्य कभी ऐसा लिख नहीं सकता है, और जैसे तैसे साधारण साधुलोग स्वार्थविशेष विना ब्राह्मणोंकी प्रशंसा नहीं कर सकते हैं; यह प्रसिद्ध है कि ब्राह्मणेतर अधिकांश साधुलोग (ब्रह्म जानाति ब्राह्मणः) इस अशास्त्रीय वाक्यसे अपनेको ब्राह्मण सिद्ध कर बतानेकी इच्छा रखते हैं; और युक्तिप्रकाशकी भूमिकामें जो लिखा है कि—निश्चलदास जाट थे वह ठीक नहीं, क्योंकि युक्तिप्रकाशकी लेखनशैली भिन्न होनेसे वह निश्चलदासका बनाया हुआ ग्रन्थ नहीं है, और निश्चलदासने कहींपर अपने ग्रन्थोंमें उसका उल्लेखभी नहीं किया है, सम्भवतः युक्तिप्रकाशका बनानेवाला कोई निश्चलदासका शिष्य होगा और वह जातिका जाट होगा और वह निश्चलदासके बाद प्रसिद्ध आदिमीके नामसे प्रकाशित होनेपर ग्रन्थका प्रचार अधिक होगा ऐसा समझकर निश्चलदासके नामसे युक्तिप्रकाशको प्रकाशित करनेकी बात कहकर स्वर्गस्थ होगया होगा, पश्चात् छपानेवालोंने उसकी जातिकाभी आरोप निश्चलदासपर कर दिया होगा; फलतः निश्चलदासके ब्राह्मण होनेमें संशय नहीं हैं, इस लिए निश्चलदासके ग्रन्थोंको ब्राह्मणादिकभी पढ सकते हैं;

भारतीय देशभक्तोंकी कारावास कहानी नामक एक हिन्दीका पुस्तक है उसमें नवरत्नोंका निर्वासन शीर्षक लेखमें लिखा है कि निश्चलदासको हुए ३०० वर्ष हुए हैं सो भूलसे ३० स्थानमें ३०० सो हो गये हैं, जिस समयसे वह लेख सम्बन्ध रखता है उस समय निश्चलदासको हुए ३० तीस वर्ष हो गये थे; यह बात प्रसिद्ध है कि वि० स० १९२९ में निश्चलदासका शरीर छूटा है; यहाँपर इस बातपरभी ध्यान रखना चाहिए कि—जाट नाम सुनकर घबडा नहीं जाना चाहिए, जाट कोई भयङ्कर पदार्थ नहीं है, ये लोग शुद्ध क्षत्रिय हैं, कितने ही दिनोंसे उपनयन संस्कार छूट गया है, फिरभी ये लोग भोले भाले वीर तथा कट्टर सनातन धर्मी एवं ईश्वरके भक्त आस्तिक हैं, वेद ब्राह्मण देवता लोक परलोक सर्व कुछ मानते हैं, और अतिथिके सत्कारमें तत्पर रहते हैं; और जो कहा कि यज्ञादिमें देवता देखनेमें नहीं आते हैं, ब्राह्मणलोग खा जाते हैं इस लिए धर्मका आदर्श नहीं है,—इसका उत्तर यह है कि—आजकल मनुष्योंमें सत्यादिधर्मशीलता न रहनेसे यद्यपि देवता देखनेमें नहीं आते हैं, फिरभी प्रथम देखनेमें आते थे और आगेभी कालपाके आवेंगे, परन्तु देवतालोग प्रत्यक्ष आवें तभी यज्ञादिक यथार्थ हुए माने जावें अन्यथा नहीं ऐसा कोई शास्त्रीय नियम नहीं है, देवताका ध्यानकर हविष् वगेरा देना ऐसा शास्त्रका सिद्धान्त है,—'यस्यै देवतायै हविर्गृहीतं स्यात् तां ध्यायेद्वषट्करिष्यन्' (ऐतरेय ब्राह्मण ३।८।१) और देवतालोग आतेभी हैं परन्तु अन्तर्ध्यान कियासे युक्त रहते हैं इस लिए देखनेमें नहीं आते हैं,—यह—ब्र० सू० अ० १ पा० ३ सू० २७ के भाष्यमें परैश्च न दृश्यन्तेऽन्तर्धानक्रियायोगात्, इत्यादि शंकराचार्य्यने कहा है,—आगे चलकर फिर ब्र० १।३।३३ सूत्रके भाष्यमें आचार्य्य कहते हैं,—तस्माद्धर्मोत्कर्षवशात् चिरन्तना देवादिभिः प्रत्यक्षं व्यवजह्रुरिति श्लिष्यते; और देवतालोग साक्षात् तो अन्नपाना-

दिक खाते पीते नहीं हैं न वै देवा अश्नन्ति न पिबन्ति, छा० ३।७।१; ३।८।१; ३।९।१; ३।१०।१; किन्तु संस्कृत अग्निमें तथा अनिषिद्धब्राह्मणोंमें जो कुछ देवताओंको उद्देश्यकर त्याग किया जाता है उसको देवता लोग स्वीकार कर लेते हैं, और त्याग करनेवालेको फल देते हैं यह धर्मशास्त्रकी मर्यादा है, संस्कृत अग्निमें त्यक्तवस्तु देवताओंको प्राप्त होती है और अनिषिद्ध ब्राह्मणोंको खिलाया हुआ भोजन देवताओंको तृप्त करता है, इन विषयोंसे अपना धर्मशास्त्र भरा हुआ है, फिरभी दो चार वाक्य नीचे लिखते हैं,—

अग्निरकामयत अन्नादो देवानां स्यामिति; (तै० ब्रा० ३।१।४।१)

इत्यादि; अग्निरन्नादः (वृ० १।४।६) यथाग्निर्वै देवानामन्नादः (मै० ६।१०) अग्निस्त एकं मुखम्, कौपीतकि ब्राह्मण, (अ० २ म० ९)

स हैष यज्ञ उवाच, नग्नताया वै बिभेमीति, का तेऽनग्नता, अभित एव सा परिस्तृणीयुरिति तस्मादेनदग्निमभितः परिस्तृणन्ति, तृष्णाया वै बिभेमीति, का ते तृप्तिरिति ब्राह्मणस्यैव तृप्तिमनुतृप्येयमिति तस्मात् संस्थिते यज्ञे ब्राह्मणं तर्पित वै ब्रूया यज्ञमेवैतत्तर्पयति, शत० काण्ड १ प्रपाठक ६ ब्रा० १ कण्डिका २८;

उत्तरार्धका सारांश यह कि ब्राह्मणोंको यज्ञमें, उत्तम रीतिसे तृप्त करनेपर यज्ञ पूरा हुआ माना जायगा अन्यथा तृष्णायुक्त रहेगा और यजमानको हानि पहुंचावेगा;

ये ते वै यज्ञमवन्ति ये ब्राह्मणाः शुश्रुवांसः अनूचाना एते हि एनं तन्वते एते एनं जनयन्ति यस्य ह्येते भूयिष्ठा भवन्ति स हि यज्ञपतिर्वर्द्धते; १।६।३।२८।

अर्थ—वेदादिका व्याख्यान करनेवाले विद्वान् ब्राह्मण ही यज्ञकी रक्षा करते हैं और वे ही लोग यज्ञका विस्तार करते हैं तथा यज्ञको उत्पन्न करते हैं जिस यज्ञमें विद्वान् ब्राह्मण बहुत होते हैं उस यज्ञका मालिक पुत्रधनपश्वादिरूपसे वृद्धिको प्राप्त होता है;

ब्राह्मणस्त एकं मुखम्; (कौपीतकि ब्राह्मण अ० २ मं० ९ ।

उत्पत्तिरेव विप्रस्य मूर्त्तिर्धर्मस्य शाश्वती ।
स हि धर्मार्थमुत्पन्नो ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ मनु० अ० १ श्लो० ९९
यस्यास्येन सदाश्नंति हव्यानि त्रिदिवौकसः ।
कव्यानि चैव पितरः किम्भूतमधिकं ततः ॥ म० १।९५
ब्राह्मणो जायमानो हि पृथिव्यामधिजायते ।
ईश्वरः सर्वभूतानां धर्मकोशस्य गुप्तये ॥ म० १।९९
सर्वस्वं ब्राह्मणस्येदं यत्किंचित् जगतीगतम् । म० १।१००
स्वमेव ब्राह्मणोभुङ्क्ते स्वं वस्ते स्वं ददाति च ।
आनृशंस्याद्ब्राह्मणस्य भुञ्जते इतरे जनाः । म० १।१०१

तपस्तप्त्वासृजद्ब्रह्मा ब्राह्मणान् वेदगुप्तये ।
तृप्त्यर्थं पितृदेवानां धर्मसंरक्षणाय च । याज्ञ० आचारकाण्ड दानप्रकरण १

इत्यादि; और विधिपूर्वक योगोपासनाप्रभृतिसे आवश्यक शुद्धि होनेपर आजकलभी देवताओंका प्रत्यक्ष हो सकता है (देखो,–यो० द० २।४४) और यह जो कहा कि–नाभाजी वगेराने जो चमत्कार पुराने भक्तोंमें लिखे हैं वे आजकल किसीमें देखनेमें नहीं आते हैं इस लिए आजकल कोई भक्त ही नहीं है; उसका समाधान यह है कि,–नाभाजी वगेराने जो प्राचीन भक्तोंमें चमत्कार बतलाये हैं उन चमत्कारोंसे वे लोग भक्त नहीं सिद्ध हो सकते हैं; ऐसे २ चमत्कार तो अल्पप्रयत्नसाध्य भूतप्रेतवगेराकी सिद्धिसेभी हो सकते हैं, वे चमत्कार सच्चे चमत्कार नहीं हैं; सच्चे भक्त वे ही लोग हो सकते हैं जिन्होंने अपनी इन्द्रियोंको स्वाधीन कर लिया है, और काम क्रोध लोभ मोह मद मत्सर इन षट् शत्रुओंको जिन्होंने जीता है, बडेसे बडा लाभ और बडीसे बडी हानि जिनको नीतिके मार्गसे गिरा नहीं सकती है, और जो ईश्वरसे अतिरिक्त किसीकोभी अपना आश्रय नहीं समझते हैं, और कीसीसे कीसीभी प्रकारकी आशा नहीं रखते हैं, आजका भोजन मिलनेपर कलकी जिनको चिन्ता नहीं रहती है, भूलसेभी पापकर्ममें हाथ नहीं डालते हैं, और बडे २ राजाओंसे लेकर रंकतकको और सुमेरुसे लेकर तृणतकको समान तथा तुच्छ समझते हैं, केवल मनुष्यजातिका कर्त्तव्यमान कर ही सर्वको मान देते हैं, उपकारी तथा अपकारी दोनोंके प्रति अपने शास्त्रीय और स्वच्छ कर्त्तव्यको नहीं त्यागते हैं, स्वीयसुखादिको तृणवत् समझकर प्रजाको यथायोग्य मार्गपर लानेमें लगे रहते हैं, मनवाणीकाम इन तीनोंमें एकता रखते हैं साधारण दृष्टिसे बहुत मृदुस्वभाव होनेपरभी शास्त्रीय नियमोंके पालनेमें और विपत्तिके समय वज्र जैसे कठिनस्वभाववाले हों, शीत उष्ण हर्ष शोक लाभालाभ मित्रताशत्रुता जिनको अपने नियमोंसे च्युत न कर सकती हो, जिन्होंकी क्रियामें दम्भका लेशभी न हो जिन्होंकी क्रियाओंसे बिलकुल इतरव्याजता निकल गई हो; ऐसे लोग सच्चे महात्मा और सच्चे भक्त हैं, इन चमत्कारोंके विना जो चमत्कार हैं वे मरुस्थलके जलके समान या ऐन्द्रजालिक चमत्कार हैं, वे चमत्कार केवल बालबुद्धि लोगोंके लिए चमत्कार हैं, विद्वानोंकी दृष्टिमें उन चमत्कारोंमें कुछ महत्त्व नहीं है; उक्त चमत्कारोंके लिए ही घोर यत्न करना चाहिए; और ऐसे चमत्कारोंवाले आजभी भारतवर्षमें पवित्र असहकारके आन्दोलनकी कृपासे महात्मा गान्धी जैसे सहस्रों हैं, इस लिए धर्म तथा भक्तिके आदर्शका सर्वथा लोप नहीं हुआ है; नाभाजी-वगेराने जो सिद्धियां लिखी हैं वेभी मन्त्रादिके योगसे कालपाके भक्तोंमेंभी हो सकती हैं, परन्तु उन सिद्धिओंके भावाभावोंसे भक्ताभक्तोंका निर्णय नहीं हो सकता है; और यह जो कहा कि–सत्यभाषणके विना मनुष्य ज्ञानका तथा ज्ञानके साधन धर्मका या भक्तिका अधिकारी नहीं हो सकता है और आजकल प्रजामें सत्य नहीं है, इस लिए वेदान्तका प्रचार करना निष्फल है; इसका समाधान यह है कि,–यद्यपि यह बात बिलकुल सत्य है कि सत्य भाषण विना मनुष्य

धर्मादिका अधिकारी नहीं हो सकता है तथापि प्रजामेंसे एकदम सत्य चला नहीं गया है यदि सत्य न हो तब तो सर्व व्यवहार ही बन्द जाय, परन्तु सत्यप्रतिज्ञ लोग इस समय देखनेमें नहीं आते हैं ऐसा पूर्वपक्षका अभिप्राय है,–पाश्चात्य शिक्षणसे और पाश्चात्य लोगोंके संसर्गसे भारतीय प्रजामें मिथ्याभाषणका प्रचार वढता ही जाता है, जिनको शिक्षित और वडेसे वडा आदिमी कहा जाता है उनको मिथ्याभाषणमें इस समय किसीभी प्रकारका संकोच ही नहीं है; दिव्यपरीक्षाओंके निकल जानेसे साक्षिमात्रके आश्रयसे जीवनेवाले न्यायालय केवल मिथ्याभाषणमें सहायभूत वन रहे हैं, शिक्षित कहलानेवाले वकील वैरिस्टर सोलीसिटर रात दिन प्रजाको मिथ्याभाषणके नये नये पाठ पढाया करते हैं; यद्यपि ये सर्व निराशा व्यञ्जक चिह्न हैं तथापि असहकारकी कृपासे सत्याऽऽलोकका विरलप्रसर भारतमें देखनेमें आने लगा है, और जहांतहां सत्यवक्तालोग देखनेमें आने लगे हैं, और जब भूतलपर शान्ति होगी तब भारतीय सभ्यताका निखिल भूतलपर अवश्य विस्तार होगा और भारतीय सभ्यताके साथ सत्यकाभी प्रचार होगा, उस समय सर्व पृथिवीके लिए वेदान्तकी आवश्यकता होगी; और अब ईश्वरकी कृपासे स्त्रिओंमेंभी शिक्षणका प्रचार होने लगा है और ये लोग वकील वैरिस्टर वगेराभी होने लगी हैं, सम्भवतः थोडे कालवाद ये लोगभी अपने सामर्थ्यको समझेंगी, और मनुष्योंने मूर्खतासे या धूर्त्ततासे ईश्वरदत्त जिन अधिकारोंसे इनको अभीतक वञ्चित रक्खा है उनको फिर ये विद्याबुद्धिके वलसे सम्पादन करेंगी, और स्त्रीजातिका संगठनभी ऐसे समयपर होगा, उस समय स्त्रिओंके खास तीन विभाग होंगे–कुमारीवर्ग, सधवावर्ग, मृतधवावर्ग; इन तीनों वर्गोंमेंसे कुमारीवर्गमें जो तीव्रबुद्धिशालिनी होंगी और आजन्म ब्रह्मचर्य्य रखकर अपना पवित्र जीवन स्वतन्त्र विताना चाहेंगी उनके लिए वेदान्त बहुत उपयोगी होगा, और सरला जैसे ग्रन्थोंसे उनकी बुद्धि बहुत सूक्ष्म हो जायगी और वे समझ लेंगी कि विवाहमें कुछभी सार नहीं है; लग्न करनेसे परतन्त्रता वढती है, और लडके लडकी होनेपर हरवखत अपवित्रता रहती है, कभी कभी लडके गोदमेंही मलमूत्रका उत्सर्ग कर देते हैं, और विना कारण रोते हैं; और हजारों तरहकी सन्तानोंके साथ उपाधियां लगी रहती हैं, इस लिए विवाहका स्फुरण ही मनसे निकाल देना चाहिए, सारांश यह कि–ऐसे २ पवित्र विचार-वाली कुमारिकाओंका मुख्य आधार उस समय वेदान्त ही होगा, तैसे मृतपतिकाओंके लिएभी हिन्दूधर्ममें पुराणवगेरामें कलियुगके लिए पुनर्लग्नका निषेध किया है, और जैसे इस दुर्लभ मनुष्यजन्मको पाकर पुरुषका द्वितीय लग्न पुरुषकी पामरताका और ईश्वरविमुखताका तथा कर्त्तव्यज्ञानराहित्यका सूचक है, तैसे ही विधवाओंकी पुनर्लग्नकी इच्छाभी उनकी पामरतावगेराकी सूचक है, अर्थात् विचारदृष्टिसेभी विधवाओंका लग्न करना न्याययुक्त नहीं है; फलतः पवित्र जीवन रखकर देशकी सेवा करनेवाली विधवोंकोभी वेदान्तकी वडी आवश्यकता होगी और स्त्रीजातिका यथावत् संगठन होनेपर विषयी तथा ईश्वरविमुख रँडुए लोगोंकोभी रास्तेपर आना पडेगा फलतः उन्होंके लिएभी वेदान्तही शरण होगा; और वेदान्तप्रचारका विशेष प्रयोजन यहभी है कि,–इस समय सर्व पृथिवीपर तथ्यातथ्य जाननेके

लिए विद्वज्जन छानवीन कर रहे हैं, और यह बात निर्विवाद हो चुकी है कि आजकल प्रचलित धर्मग्रन्थोंमें वेद सर्वसे अधिक प्राचीन हैं, और भारतीय सभ्यता सर्वसे प्राचीन सभ्यता है; परन्तु भारतीय प्रजाके परतन्त्र होनेकी वजह अभीतक पृथिवीकी स्वतन्त्र प्रजायें भारतीय प्रजाको नगण्य तथा घृणास्पद दृष्टिसे देखती हैं, इस लिए उसके धर्मका तथा सभ्यताका यथावत् पृथिवीपर प्रचार नहीं हो रहा है; परन्तु भारतीय प्रजाके स्वतन्त्र होनेपर जापानवत् उसकी नगण्यता और घृणास्पदता निकल जायगी तब अवश्य ही वैदिक धर्मकी और भारतीय सभ्यताकी विजयवैजयन्ती निखिल पृथिवीपर फहरायेगी, उस समय पृथिवीके विद्वन्मण्डलकी दृष्टि ठीक २ भारतीय साहित्यपर पडेगी, गवेपणा करनेपर सर्व पृथिवीको यह मालूम हो जायगा कि,—स्थायी शान्तिको रखनेवाली और आध्यात्मिक ज्योतिसे जगमगाती हुई और सम्पूर्णतासे युक्त भारतीय सभ्यता ही है; और उसमेंभी निष्पक्षपात दृष्टिसे सूक्ष्मतत्त्वका जब अवलोकन किया जायगा तब तब शांकर मत ही प्रजाको अध्यात्मभावमें सविशेष देखनेमें आवेगा; यद्यपि अन्य लोगोंनेभी श्रुत्यादिकी व्यवस्थाकी है, परन्तु खींचतानसे यथास्थान जैसा विशदतत्त्व शंकराचार्य्यने श्रुत्यादिका प्रकाशित किया है, वैसा अन्य लोगोंसे नहीं हो सका है, यह विषय, जब पृथिवीके विद्वन्मण्डलका अभिप्राय संगृहीत किया जायगा तब स्पष्ट हो जायगा; अमेरिका तथा यूरोपमें शंकरमत धीरे धीरे स्थान करता जा रहा है; जब मैं श्रीकाशीजीमें रहता था तब ईसाइओंका उपरी ज्ञानसेन साहब मेरे यहां कभी कभी आता था, और अपने साथमें कभी कभी किसी फ्रेंचको और कभी किसी जर्मन या अमेरिकनकोभी ले आता था, यह ज्ञानसेन साहब काम चलाऊ संस्कृतमें बात चीत कर लेता था, तब ज्ञानसेनके साथमें आनेवाले लोगोंकी बातचीतसे यह मालूम होता था कि वे लोग शंकरमतमें विशेष श्रद्धा रखते हैं; एक समय मि० ज्ञानसेनके साथ एक भारतीयदर्शनाध्यापक जर्मन विद्वान् आया था वहभी संस्कृतमें बात चीत करता था, पूछनेपर उसने कहा कि,—हम लोगोंने द्वैताद्वैतवगेरा सम्प्रदायोंके ग्रन्थ देखे हैं, परन्तु हम लोगोंको उपनिषदोंके ऊपर जो शंकराचार्य्यका भाष्य है वह सर्वसे अधिक शान्ति देनेवाला प्रतीत होता है; उस भाष्यके देखनेसे मालूम होता है कि लिखनेवालेमेंभी शान्ति है, और रामानुजादिके सूत्रभाष्यादिभी देखे हैं, उन लोगोंनेभी तत्त्वका विवेचन किया है परन्तु उन लोगोंकी लेखशैली स्वाभाविक नहीं है, वे लोग प्रथमसे ही आकृष्टाकृष्टी=खींचातानी करने लगते हैं, और उनके हृदयमें शान्ति है ऐसा नहीं मालूम होता है; एक समय काशीजीमें फ्रांससे एक प्रोफेसरा आई थीं उन्होंने काशीस्थ गोस्वामी दामोदरलालजीके यहां कुछ विषय समझनेके लिए कितने ही विद्वानोंको बुलाया था उनमें मेराभी नाम आगया था मैं भी कुतूहलवशात् नियत समयपर पहुँच गया, गोस्वामीजीने उनको दो तीन कलाकतक द्वैतवाद समझाया, पश्चात् प्रोफेसरासे अभिप्राय पूछा जानेपर उसने कहा कि मैं तो शंकरमतको ही मानती हूं और वही मुझको प्रसन्नभी है; इत्यादि प्रमाणोंसे यह सुविदित हो रहा है कि पृथिवीपर व्यापक शान्ति होनेपर शांकरमतकी सार्वभौमता होनेमें विलम्ब न लगेगा; एक वखत भारतको स्वतन्त्र होना चाहिए; और वर्त्तमान घटनाओंको

देखते हुए भारतका स्वतन्त्र होना असम्भावनीय नहीं है, क्योंकि वर्त्तमान कालमें बलपूर्वकभी सर्व पृथिवीपर मनमाना शासन करनेका यदि किसी जातिमें बल था, तो वह गोरण्ट लोगोंमें ही था, यह अभी गतयुद्धमें इन लोगोंने जो वीरताके साथ अपनी अलौकिक बुद्धिका परिचय दिया है उससे अतिस्पष्ट हो चुका है; परन्तु इन लोगोंके इस कौशलमें धर्मतत्त्व या अध्यात्मतत्त्व विलकुल न था, इनका बल केवल अर्थ कामका ही पोषक था वस्तुतः अर्थकामकाभी पर्य्यवसान धर्मतत्त्वमें ही होना चाहिए, ऐसा सभी धर्मग्रन्थोंका अभिप्राय है; परन्तु अनन्तलक्ष्मी और असीम आधिपत्य मिल जानेपर लोग धर्मग्रन्थोंको और परलोकको एक खेल जैसा बालकोंको समझानेका पदार्थ समझने लगते हैं;

न साम्परायः प्रतिभाति बालं प्रमाद्यन्ते वित्तमोहेन मूढम् ।
अयं लोकः नास्ति पर इति मानी पुनःपुनर्वशमापद्यते मे ॥

यह यमराजका नचिकेताके प्रति वाक्य है; (कठ० २।६)

साम्पराय=नाम परलोकका है; अतः यूरोपके लोगभी धर्ममोक्षको छोडकर अर्थकामको ही सर्वस्व समझने लगे, परन्तु धर्मको छोडकर ये दोनों पदार्थ स्थायी हो नहीं सकते हैं, इस अर्थको प्रमाणित करनेके लिए, और इन लोगोंसे पृथिवीको जो कुछ भौतिक लाभ मिलनेवाला था वह मिल गया है, अब इन लोगोंका पृथिवीपर स्थायी राज्य रहेगा तो केवल चार्वाकता ही बढेगी और धार्मिकभावनाका रहा सहा भी नाश हो जायगा ऐसा समझकर ईश्वरने ही युद्धके लिए इन लोगोंको उत्कंठित किया, और युद्धका फल यह हुआ कि यूरोपखण्डका कमसे कम सोरह आनेमेंसे दश आना बल नष्ट हो गया है; अब प्रायः छः आना बल रहा है, परन्तु ईश्वरके संकेतसे इन लोगोंने जो सन्धिके नियम किये हैं उनमें ऐसा तत्त्व रख दिया है कि जिससे अल्पकालमें ही ऐसे संयोग आ पडेंगे कि जिन्होंसे छः आना बलभी नष्ट हो जायगा, और रही सही लक्ष्मीभी यूरोपसे चली जायगी; और इन लोगोंमें जो परस्पर नित्यप्रति नईनई ग्रन्थियां पड रही हैं वे जबतक भीरत भीतर सुलगती हुई रोषाग्निसे यूरोप खण्ड जलकर भस्म न हो जायगा तब तक खुलनेवाली नहीं हैं; ईश्वरेच्छासे विजेतापक्षका सन्धिके नियम बनाते समय जर्मन वगेराको सदाके लिए भूमिसात् कर देनेकी तरफ पूर्ण ध्यान रहा है; परन्तु जर्मन वगेराके भूमिसात् होनेके साथ सम्पूर्ण यूरोप भूमिसात् हो जानेवाला है इस तरफ किसीकाभी ध्यान नहीं गया है; सारांश यह कि–यूरोपखण्डकी बचीखुची शक्तिका ध्वंस अनिवार्य्य है, और यूरोपके बलका ध्वंस एशियाकी स्वतन्त्रतामें हेतु होगा, क्योंकि–थोडे दिनोंमें इनको अपना घर ही संभालना कठिन हो जायगा; और अब पृथिवीकी सर्व प्रजा इन लोगोंकी वकवृत्तिता और चालबाजीभी समझ गई है, और अब उसकी दृष्टिसे चर्मकी धवलिमाका महत्त्व निकल गया है; यहां इस बातपर ध्यान रखना चाहिए कि–यूरोपकी सर्व प्रजा वकवृत्तिवाली और धूर्त्त है ऐसा नहीं है, कितनीही प्रजा धर्मपर तथा ईश्वरपर विश्वास रखनेवाली है, परन्तु जो लोग राजनैतिक खटपटके

साथ सम्बन्ध रखते हैं उन्होंमें अधिकांशलोग चलचलिया और वकवृत्तिवाले ही हैं-,ये लोग धर्मकी बातें अर्थकामके लिए ही करते हैं, फलतः पृथिवीपर खलबली मचानेवाले यूरोपका ध्वंस अवश्यम्भावि होनेसे अल्प कालमें ही सर्व पृथिवीपर एक संगठन होगा, तभी स्थायी शान्ति भूतलपर प्रतिष्ठित होगी, और उस संगठनमें तथा स्थायीशान्तिकी रक्षामें सर्वसे अधिक सहायता शाङ्कर मतसे ही मिलेगी यह निश्चय है, तथा च टीकादिद्वारा वेदान्तका प्रचार आवश्यक है; और यह जो कहा है कि-भारतीय विद्वानोंको भारतीय प्रजामें सञ्जीवनी शक्तिलानेवाले ग्रन्थोंकी रचना करनी चाहिए; सो बिलकुल यथार्थ है, ऐसे ग्रन्थोंके बनानेका इस समय बडा प्रयत्न होना चाहिए; मैं ऐसे ग्रन्थके बनानेके विचारमें ही हूं उसके लिए प्रयाणोंका संग्रह कर रहा हूं ।

जिस वेदान्तके प्रचारकी आवश्यकता ऊपर बतलाई गई है, उसी वेदान्तका यह अद्वैतसिद्धि ग्रन्थ है, शाङ्कर मतमें यह ग्रन्थ बडी ही प्रतिष्ठाकी दृष्टिसे देखा जाता है, और इस ग्रन्थके जाने विना आजकल कोई शाङ्करमतका पूरा वेदान्तीभी नहीं हो सकता है, सर्व द्वैतवादिओंकी सर्व शङ्काओंका पूर्ण समाधान इस एक ही ग्रन्थमें मिलता है, खण्डनखण्डखाद्य प्रभृति अन्यभी वेदान्तके प्रतिष्ठित तथा प्रसिद्ध ग्रन्थ बहुत हैं, फिरभी वादिविजय और तत्त्वबोधके लिए संग्रहात्मक ऐसा दूसरा ग्रन्थ नहीं है; इसमें विशेषता यह है कि-नव्यन्याय बन जानेके बाद यह ग्रन्थ बना है इस लिए इसमें प्रत्येक पदार्थका अन्तिम परिष्कृत स्वरूप दिखलाया गया है; और अनुमानोंकी रचना बहुत स्पष्ट हुई है, यह ग्रन्थ बुद्धिको सूक्ष्म बनानेके लिएभी आस्तिक नास्तिक सर्वको देखना चाहिए; और द्वैतवादिओंको द्वैतवादका परिष्कृत और अन्तिमस्वरूप सखण्डन एक ही स्थानमें देखनेके लिए इस ग्रन्थको देखना चाहिए; इस ग्रन्थमें आदिसे लेकर अन्ततक खण्डनमण्डन ही चला है; और अनुमान तथा तर्कका आश्रयणकर अर्थका निर्णय किया गया है; इस लिए यह ग्रन्थ सर्वके देखनेलायक है; मेरा छोटी अवस्थासे ही वेदान्तकी तरफ स्नेह चला आता है, और अन्यान्यग्रन्थोंके साथ जब इसका यथासम्भव अध्ययन किया तब मालूम हुआ कि यह ग्रन्थ मुमुक्षुओंको हरवखत मनन करने जैसा है, इस लिए संस्कृतमें आवश्यक थोडीसी टिप्पणियाँ लिखकर उन्होंके सहारेसे इस ग्रन्थका मनन करते रहना चाहिए; यह विचार कार्य्यरूपमें परिणतभी न हो सका था तब तक दूसरा विचार उत्पन्न हुआ कि यह ग्रन्थरत्न अद्वितीय है, और इसका प्रचार सामान्य प्रजामें तो क्या विद्वन्मण्डलीमेंभी नाममात्रका ही है; जब श्रीकाशीजीमें हमने अपनी मित्रमण्डलीसहित इस ग्रन्थको लेकर घूमना आरम्भ किया तब इसको निर्भ्रान्तरीतिसे कोई पठानेवाला ही नहीं मिला जब श्रीकाशीजीकी यह दशा है तब अन्यत्रकी तो बात ही क्या करनी है; कुम्भघोणमें यह पुस्तक मुद्रित हुआ है और एक बडे भारी शास्त्रीने इसका संशोधन किया है, परन्तु उसमें आद्योपान्त्य अशुद्धिओंकी भरभार है; मुम्बईका निर्णयसार अपनी शुद्धिका बडा अभिमान रखता है; उसनेभी थोडे दिनोंपर मद्रास तरफके कोई बडेभारी वेदान्ताध्यापकसे संशोधन कराकर सटीक इस ग्रन्थको छाप दिया है, प्रसङ्गवशात् उसका द्वितीय

परिच्छेद मैं वांचने लगा तो केवल एक द्वितीय परिच्छेदमें ही असीके लगभग भ्रममें डालनेवाली अशुद्धियां देखनेमें आई, इस ग्रन्थरत्नकी यह दशा देखकर मेरे मनमें यह दृढ संकल्प हो गया कि हिन्दी भाषामें मिताक्षरा सरलानामक टीका बनाकर इस पवित्र ग्रन्थका प्रचार करना चाहिए, उस संकल्पके अनुसार ईश्वरकी कृपासे आज सरलाके साथ इस ग्रन्थको प्रजाके सामने उपस्थित कर सका हूं; जो साधुलोग विचारसागर वृत्तिप्रभाकर प्रभृति ग्रन्थोंको जानते हैं और मनन शील हैं वे लोग सरलासे मूलका अभिप्राय सहजमें ही समझ सकेंगे, और जो लोग न्याय वेदान्तकी व्युत्पत्ति रखते हैं वे लोग सरलाके सहारेसे मूलका पूरा अर्थ समझलेंगे; और जो लोग वैसे व्युत्पन्न नहीं हैं वे लोगभी पुनः २ इसकी आवृत्ति करेंगे तो उनको पुण्यकी प्राप्ति होगी, और सिद्धान्तकी बातें तो सभी लोग समझेंगे; विषयकाठिन्यसे सरलाभी नितान्त सरल नहीं हो सकी है; परन्तु प्रारम्भिकभागको ही देखकर घबडा नहीं जाना चाहिए; किन्तु एक दो बार आद्यन्तग्रन्थको वाँच जाना चाहिए, तो मालूम होगा कि कहां कहांपर क्या क्या रत्न इसमें भरे हैं, और फिर समझमेंभी आने लगेगा; जो लोग आरम्भमें ग्रन्थको कठिन देखकर उसको लपेटकर रख देते हैं, वे लोग जन्मभर मूर्खतासे दबे रहते हैं; क्योंकि ये ग्रन्थ अन्तिम ग्रन्थ हैं, और ईश्वरके सूक्ष्मातिसूक्ष्म स्वरूपसे सम्बन्ध रखते हैं; इस लिए इनको समझनेके लिए पूर्वजन्मका पुण्यभी चाहिए, और ईश्वरकी भक्ति तथा अन्तःकरणकी शुद्धि एवं अनवरत प्रयत्नभी चाहिए, और जो देशकालानभिज्ञ केवल संस्कृतज्ञम्मन्य अर्द्धशिक्षित लोग हैं–देशीभाषाका नाम सुनकर नाकमुख सिकोडते हैं, उन्होंको सरलाको छोडकर केवल संस्कृत ही मूलग्रन्थ देखना चाहिए; अभीतक जो अद्वैतसिद्धिकी पुस्तकें छपी हैं उन्होंमें मूलग्रन्थमें आनेवाले श्रुतिस्मृत्यादिके वाक्योंका पता बिलकुल नहीं दिया गया है; और इस पुस्तकमें तपासकर पूरा पता लिखा गया है; इस लिए इसका महत्त्व बढ गया है; कितने ही कर्मकाण्डसे सम्बन्ध रखनेवाले तैत्तिरीय प्रभृति ब्राह्मण ग्रन्थोंके और आपस्तम्बप्रभृति श्रौतसूत्रोंके वाक्योंका पता रह गया है, वह द्वितीयावृत्तिमें गवेषणाकर दिया जायगा; औरभी सुविज्ञ लोग यदि न्यूनताओंकी सूचना करेंगे तो द्वितीयावृत्तिमें यथाशक्य सुधार कर दिया जायगा; यदि किसीको इस ग्रन्थके छापनेकी इच्छा हो तो टीकाकारको पूछ लेना चाहिए, क्योंकि जो लोग उत्तम कागजपर उत्तम टाईपसे छापनेका करार करेंगे तथा अच्छी जिल्दबंधवानेका करार करेंगे उन्होंकोही छापनेकी आज्ञा मिलेगी, केवल द्रव्यके लोभसे पुस्तकके सौन्दर्यके नष्ट करनेकी चेष्टा करनेवालोंको इसके मुद्रणकी आज्ञा नहीं मिलेगी, क्योंकि इस टीका बनानेवालेका या इस पुस्तकको छपवानेवालेका इस पुस्तकसे किसीभी प्रकारका द्रव्य मिले ऐसा बिलकुल उद्देश ही नहीं केवल प्रजामें ज्ञानप्रचारके उद्देशसे ही दोनोंकी प्रवृत्ति है;

और आगे ईश्वरवादप्रभृति जो ग्रन्थ मैं बनानेवाला हूं उन्होंकी भाषा बहुत ही सरल रहेगी, ईश्वरवादवगेरा दो तीन ग्रन्थोंकी इस समय प्रजाको बड़ी भारी आवश्यकता है, इस लिए मैं इनके लिए सामग्री संगृहीत कर रहा हूं; ईश्वरकी इच्छा होगी तो यह कार्य्यभी कभी हो जायगा, ईश्वरके विषयमें मेरा यह कहना है कि–(नित्यज्ञानइच्छाप्रयत्नवाला जगत्का कर्त्ता

ईश्वर है) इस विषयपर शास्त्रार्थ करनेके लिए मैं प्रत्येक समय तयार रहता हूं, शास्त्रार्थ संस्कृतमें या हिन्दी भाषामें हो सकता है, यदि इस विषयमें कोई मेरा पराजय करे तो इस विषयमें मैं उसका मत माननेके लिए तयार हूं, केवल दुराग्रहमात्रसे मैं ईश्वरको या और किसी पदार्थको मानना नहीं चाहता हूं जब ईश्वरवादादि कोई ग्रन्थ तयार होगा तब उसकी जाहिर खबर किसी प्रसिद्ध अखबारमें दे दी जायगी; इस पुस्तकके लिखनेमें तथा प्रतिलिपि करनेमें एवं मुद्रणमें जिन लोगोंने न्यूनाधिक साहाय्य दिया है उन्होंके नाम कृतज्ञतापूर्वक नीचे प्रकाशित करते हैं—

श्री० रा० सेठ नारायणभाई, श्री० वि० भू० पं० हीरालाल सराफ,
श्री० सेठ छोटालाल भक्त, श्री० सि० सं० भू० वि० भा० कौशिकराम महेता,
श्री० सेठ रमणलाल दातार, श्री० सेठ चन्दूलाल,
श्री० सेठ छोटालाल सराफ, श्री० शा० अम्बालाल अध्या० सं० पा० क० वी०
श्री० सेठ गोकुलदास सराफ, श्री० सेठ रत्नलाल, ना० भा० से० भागिनेय,

विशेष सूचना—

पुस्तकके आरम्भमें दो तीन फरमोंमें कितनी हीं अशुद्धियां रह गई थीं, इस लिए अन्तमें शुद्धिपत्र लगा दिया है, उसपर ध्यान रखना चाहिए; और कितने ही सज्जनोंकी प्रेरणासे पारिभाषिकशब्दोंका कोशभी सङ्क्षेपसे अन्तमें रख दिया है; और इस ग्रन्थमें बहुत स्थानोंमें 'त्त्व' के स्थानमें 'त्व' बुद्धिपूर्वक रह गया है उसको बाँचते समय 'त्त्व' ही बोलना चाहिए; और 'एव' शब्दके अर्थ 'ही' को और 'अपि' शब्दके अर्थ 'भी' को सर्वत्र अन्य शब्दोंसे पृथक् लिखना और छापना चाहिए, परन्तु इस ग्रन्थमें अन्य शब्दोंके साथभी अनेक स्थानोंमें ये दोनों शब्द बुद्धिपूर्वक छप गये हैं सो उच्चारण करते समय इनका उच्चारण पृथक् करना चाहिए; कितने ही स्थानोंमें प्रचलित हिन्दी भाषाकी लेखशैलीके अनुसार समस्तपदभी असमस्तरूपमें छापे गये हैं, वहाँपर विज्ञलोगोंको यथायोग्य व्यवस्था कर लेनी चाहिए। द्वितीयवार प्रूफ देखनेके अतिरिक्त फिर मुझको सम्पूर्ण पुस्तक देखनेका अवकाश नहीं मिला है अतः तीन फरमेंसे आगेभी कहींपर प्रेससम्बन्धि अशुद्धि हो तो उसको सुधारकर बांचना चाहिए।

निवेदक भवदीय कु० ब्र० रामेश्वरदत्तशर्मा
(अ० ना० श्यामानन्द)
मु० चाणोद (स्टेट बडोदा.)

श्रीअद्वैतसिद्धेरनुक्रमणिका—

अद्वैतसिद्धिः।

सरलाख्यव्याख्यासंवलिता।

प्रथमः परिच्छेदः।

मायाकल्पितमातृतामुखमृपाद्वैतप्रपञ्चाश्रयः
सत्यज्ञानसुखात्मकः श्रुतिशिखोत्थाखण्डधीगोचरः।
मिथ्याबन्धविधूननेन परमानन्दैकतानात्मकं
मोक्षं प्राप्त इव स्वयं विजयते विष्णुर्विकल्पोज्झितः॥ १॥

अथ सरलाख्यव्याख्या।

मङ्गलाचरणम्।

श्रीगणेशायनमः। श्रीसरस्वत्यै नमः।

एवं स्तुता सुरैर्दिव्यैः कुसुमैर्नन्दनोद्भवैः।
अर्चिता जगतां धात्री तथा गन्धानुलेपनैः॥ १॥
भक्त्या समस्तैस्त्रिदशैर्दिव्यैर्धूपैः सुधूपिता।
प्राह प्रसादसुमुखी समस्तान्प्रणतान्सुरान्॥ २॥

प्रारिप्सित—प्रारंभ करनेकी इच्छाका विषयीभूत जो ग्रन्थ है उसकी निर्विघ्नपरिसमाप्तिके लिए ग्रन्थकार, स्वान्तःकरणमें किया जो इष्टदेवताका अनुसन्धानरूप मंगल उसे हमारे शिष्य भी मंगलकरें, एवंभूत शिष्यशिक्षार्थ ग्रन्थतः निबन्धन करते हैं, मायेति।

अनादिभावरूपत्वे सति ज्ञाननिवर्त्यत्वादिवक्ष्यमाणलक्षणोंसे लक्षित जो माया है उस मायासे कल्पित जो मातृतामुख=अन्तःकरणावच्छिन्नचेतनरूपप्रमातृवृत्ति धर्म है मुख—प्रधान अग्रगण्य जिसमें ऐसा जो मृषारूप द्वैत=अनात्म तद्रूप जो प्रपञ्च उसका आश्रय=कल्पित तादात्म्यसंबन्धसे अधिष्ठान; एवं त्रिकालबाध्यरूप सत्यस्वरूप, जडविलक्षण प्रकाशरूप ज्ञानस्वरूप, दुःखभिन्ननिरतिशयप्रेमाऽऽस्पदरूप आनन्दस्वरूप; तथा कर्मकाण्डरूप एवं उपासनाकाण्डरूप जो श्रुतियाँ हैं उनका उपकार्य्यरूप जो महावाक्य है उसका नाम है श्रुतिशिखा, उस श्रुतिशिखारूपमहावाक्यसे उत्थ=उत्पन्न जो अखण्ड=संसर्गानवगाहि धी=अन्तःकरणकी वृत्ति उसका गोचर=विषय; एवं निरतिशयापरिच्छिन्न सुखमात्रस्वरूप जो मोक्ष उसको प्राप्त हुए जैसा; तथा मिथ्याबन्धका जो विधूनन=निवृत्ति उस निवृत्तिसे ज्ञाप्य जो मिथ्यात्वव्यापकी-

भूत दृश्यत्वावच्छिन्नविकल्पपदवोध्यदृश्यनिष्ठप्रतियोगितानिरूपक अभाव तादृशाभावविशिष्ट; विष्णुः=व्यापकजीवस्वरूप, स्वयं विजयते,-स्वेतरप्रकाशानपेक्ष होकर प्रकाशित हो रहा है। इति पदार्थाः।

शंकाः—इस पद्यमें अखण्डधीगोचर जीवस्वरूपको उद्देश्य कर मोक्षप्राप्ति विधेय है, परन्तु ऐसा हो नहीं सकता है, क्योंकि उद्देश्यतावच्छेदककालावच्छिन्नत्वका विधेयमें भान अनुभव सिद्ध है। जैसे (धनवान् सुखी) यहांपर धनवत्पदार्थ उद्देश्य है उद्देश्यता धनवन्निष्ठा है उद्देश्यतावच्छेदक धन है, और विधेय सुख है तहां सुखमें उद्देश्यतावच्छेदकरूपधनावच्छिन्न-कालावच्छिन्नत्वका भान होता है। अर्थात् धन तथा सुखमें समानकालीनत्व है। परन्तु प्रकृतमें ऐसा नहीं है, क्योंकि उद्देश्य अखण्डधीगोचर जीवस्वरूप है उद्देश्यता उक्तजीवस्वरूपनिष्ठा है उद्देश्यतावच्छेदक विषयतासबन्धेन उपरोक्त अखण्ड धी है, और विधेय स्थूल तथा सूक्ष्म एतद्-उभयरूपेण अविद्यानिवृत्ति है-जिसको कि अविद्यास्तमय कहेते हैं। वार्तिककारने यही मोक्षका स्वरूप बतलाया है:—

अविद्यास्तमयो मोक्षः सा च बन्ध उदाहृतः।

श्री चित्सुखाचार्यने भी कहा है:—'निवृत्तिरात्मा मोहस्य ज्ञातत्वेनोपलक्षितः'। संस्कारादिरूपसे भी अविद्याके न रहनेका नाम है अविद्याका अस्तमय, तथाच फलित यह हुआ कि विदेहताकालीन जो अस्तमय है उसीको मुख्य मोक्ष कहते हैं; तथा ज्ञातत्वोपलक्षित आत्मा भी विदेहता कालीन ही हो सकता है, जीवन्मुक्ति कालीन आत्मा तो ज्ञातत्वोपहित भी है, अतः ज्ञातत्वोपलक्षितत्वका असंभव है। तथा जीवन्मुक्तावस्थामें संस्कारादिरूपसे अविद्या रहती है, और स्थूलाज्ञानकी निवृत्तिको आत्मरूप माननेकी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि तत्त्वज्ञानरूप जो मनका परिणाम विशेष है तद्रूपही स्थूलाज्ञानकी निवृत्ति मान लेंगे अतः उद्देश्यतावच्छेदक तथा विधेयको भिन्नकालीनत्व होनेसे उद्देश्यतावच्छेदकावच्छिन्नकालाव-च्छिन्नत्व विधेयमें नहीं है इसलिए उपरोक्त अर्थ असंगत है॥

समाधानः-आपने जो नियम बताया है वह औत्सर्गिक है, सार्वत्रिक नहीं, इसका अपवाद भी है; तथाहि—सर्गाद्यकालीनं द्व्यणुकं जन्यतासंबंधेन कर्तृविशिष्टं, कार्यत्वात्। इस अनुमानमें सर्गाद्यकालीन द्व्यणुक उद्देश्य है, उद्देश्यताच्छेदक सर्गाद्यकाल है, और जन्यता-संबन्धेन निरवच्छिन्नकर्त्ता विधेय है, अर्थात् कर्त्तामें सर्गाद्यकालावच्छिन्नत्व विवक्षित नहीं है क्योंकि वसी विवक्षाका कुछ प्रयोजन नहीं है, फलतः यहांपर जैसे उद्देश्यतावच्छेदककालाव-च्छिन्नत्वका विधेयमें भान नहीं होता है, तैसेही प्रकृतमें भी समझना चाहिए। इसी अर्थको मूलकारने मिथ्याबन्धविधूननेन-विकल्पोज्झितः, इस वाक्यसे कहा है। यहांपर बन्धविधूननसे अविद्यातत्कार्य्यकीनिवृत्ति लेनी और विकल्पाभावसे अनादिसाधारण दृश्यकी निवृत्ति लेनी, इस रीतिसे दोनोका भेद है। अविद्यातत्कार्य्यकी निवृत्ति व्याप्यत्वेन ज्ञापिका है; और अनादिसाधारणदृश्यकी निवृत्ति व्यापकत्वेन ज्ञाप्य है, इन दोनो निवृत्तिओंका परस्पर

हेतुहेतुमद्भाव नहीं है ऐसा होनेसे अभावोंकी अनवस्था चलेगी, अतः ज्ञानोत्पत्तिके द्वितीयक्षणमें अविद्या तत्कार्य्य वियदादि तथा अविद्यास्थितिप्रयुक्तस्थितिक=अविद्याचित्सबंन्ध–जीव-ईशादि एवं तत्वज्ञान इन सबकी निवृत्ति होती है, इसलिए ज्ञानका साक्षात् जिनके साथ विरोध है ऐसे अविद्यातत्कार्य्यका अभाव, अनादिसाधारणदृश्याभावको त्यागकर नहीं रह सकता है इसलिए व्याप्यव्यापकभावप्रयुक्त ज्ञाप्यज्ञापक भाव कहा है । बन्धमें मूलकारने ज्ञाननिवर्त्त्यत्वरूप मिथ्यात्वका निवेश किया है इससे उद्देश्यतावच्छेदक तथा विधेयमें भिन्नकालीनता द्योतित होती है। क्योंकि समानकालीनपदार्थोंका निवर्त्यनिवर्त्तक भाव अनुपपन्न है। अथवा इस वाक्यका है ऐसा अर्थ करना–यतः अविद्यारूपबन्धध्वंसवान, अतः सर्वदृश्यध्वंसवान्। इससे अविद्याध्वंसमें दृश्यध्वंसनिरूपितव्याप्यताका लाभ होता है, और अविद्यारूपबन्धमें मिथ्यात्व कहनेसे अविद्याप्रयुक्तदृश्यमात्रमें मिथ्यात्वसिद्ध होता है, इससे अनादिदृश्य जो अविद्याचित्संबन्धादि उसमें भी ज्ञाननिवर्त्यत्वका लाभ होनेसे उपरोक्त अविद्याध्वंसमें व्याप्यताका लाभ बन सकता है । तथाच सर्वदृश्यनिवृत्त्युपलक्षितपरमानन्दरूपआत्मरूपकैवल्यप्राप्ति, तत्त्वज्ञानसे उत्तरकालमेंही होती है, न कि तत्त्वज्ञानोत्पत्तिक्षणमें, इसलिए उद्देश्यतावच्छेदककालावच्छिन्नत्व विधेयमें विवक्षित नहीं है।

श्रीरामविश्वेश्वरमाधवानामैक्येन साक्षात्कृतमाधवानाम्।
स्पर्शेन निर्धूततमोरजोभ्यः पादोत्थितेभ्योऽस्तु नमो रजोभ्यः ॥ २ ॥

अब अपने गुरुओंको प्रणाम करते हैं। श्रीरामेति । स्वस्वरूपके साथ अभेदरूपसे साक्षात्कारकिया है मायाधिष्ठानरूप परब्रह्मका जिन्होंने ऐसे जो हमारे परमगुरुके गुरु तथा विद्यागुरु–श्रीराम, विश्वेश्वर, माधव हैं, उनके चरणोंसे स्पृष्ट ऐसे जो रज हैं तिन रजोंके लिए मेरा नमस्कार हो, कैसे हैं वे रज, अपने स्पर्शमात्रसे भक्तलोगोंके तम और रजको धोडाला है जिन्होंने । एतावता, 'यस्य देवे पराभक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ । तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः' (श्वे.। ४।२३) इस श्रुतिमें कही गई गुरु भक्तिको आत्मज्ञानमें अन्तरङ्गता बोधनकी ॥ २ ॥

बहुभिर्विहिता बुधैः परार्थं विजयन्तेऽमितविस्तृता निबन्धाः।
मम तु श्रम एष नूनमात्मंभरितां भावयितुं भविष्यतीह ॥ ३ ॥

इस विचारणीय विषयमें बहुत विद्वानों द्वारा रचे गये नितान्तविस्तृत निबन्ध दूसरोंके लिए सुशोभित हो रहे हैं। और मेरा तो यह श्रम निश्चयही मन्निष्ठस्वार्थसम्पादकताके ही उत्पादन करनेके लिए होगा। भावार्थ–अन्योक्तदोष–उद्धार–पूर्वक स्वसिद्धान्तसमर्थक यह जो प्रारब्ध ग्रन्थ हैं सो अतिलोकोत्तर है अतः जबतक अन्यलोगोंको इसका दर्शन नहीं होगा तब तक वे लोग इसकी इच्छा नहीं करेंगे–एतद्विचारजन्य जो तत्त्वज्ञान है उसको यह ग्रन्थ उन लोगोंके लिए नहीं उत्पन्न करेगा, अतः मुझसे एतद्ग्रन्थजन्य तत्त्वज्ञान प्रथम कामित होनेसे प्रथम यह ग्रन्थ मुझमें ही तत्त्वज्ञान उत्पन्न करेगा ॥ ३ ॥

श्रद्धाधनेन मुनिना मधुसूदनेन संगृह्य शास्त्रनिचयं रचितातियत्नात्।
बोधाय वादिविजयाय च सत्वराणामद्वैतसिद्धिरियमस्तुमुदे बुधानाम् ॥ ४ ॥

श्रद्धारूपधनसे धनवान् मननशील श्रीमधुसूदनसरस्वतीद्वारा शास्त्रसमुदायका संग्रह कर, ब्रह्मबोधके लिए तथा वादिविजयके लिए अतियत्नसे रचीगई यह अद्वैतसिद्धि सत्वर=उत्कट-जिज्ञासाविशिष्टविद्वानोंके आनन्दके लिए हो ॥ ४ ॥

तत्राद्वैतसिद्धेर्द्वैतमिथ्यात्वसिद्धिपूर्वकत्वात् द्वैतमिथ्यात्वमेव प्रथममुपपादनीयम्। उपपादनं च स्वपक्षसाधनपरपक्षनिराकरणाभ्यां भवतीति तदुभयं वादजल्पवितण्डानामन्यतमां कथामाश्रित्य संपादनीयम्।

तत्र=अद्वैतसिद्धिमें द्वैतमिथ्यात्व=द्वैतधर्मिकमिथ्यात्व ही प्रथम–पहले उपपादनीय–उपपादन–निरूपण करनेके योग्य है। क्योंकि अद्वैतसिद्धेः–अद्वैतनिश्चयको द्वैतधर्मिक मिथ्यात्व निश्चयपूर्वकत्व होनेसे।

प्रश्न–द्वैतमिथ्यात्वनिश्चयपूर्वकत्व अद्वैतनिश्चयको कैसे है?।

उत्तर–एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म, इस श्रुतिसे उत्पन्न होनेवाला जो अद्वैतत्वोपलक्षितशुद्धब्रह्मविषयकनिर्विकल्पक ज्ञान है उस ज्ञानमें ब्रह्मविशेष्यकद्वैताभावप्रकारक=ब्रह्मद्वैताभावविशिष्टं, इत्याकारक ज्ञान द्वारीभूत है, और इस द्वारीभूत ज्ञानमें विषयितासंबन्धेन द्वैताभावको प्रविष्ट होनेसे इस ज्ञानको निषेधज्ञान भी कह सकते हैं, और निषेध ज्ञान प्रसक्तिपूर्वक होता है–अत एव सर्षपधर्मिकसुमेरुप्रतियोगिक=सर्षपे सुमेरुर्नास्ति इत्याकारक ज्ञान नहीं होता है। और सर्षपे सुमेरुर्नास्ति इस वाक्यका प्रयोक्ता बुद्धिमानोंमें उपहासाऽऽस्पद होता है। तथाच द्वैतवत् ब्रह्ममेंही यह ज्ञान द्वैतवत्त्वकालावच्छेदेन द्वैताभावको विषय करता है। एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म। (छा. ।६।२।१) इस श्रुतिसे पूर्व जो, सदेव सोम्येदमग्र आसीत्। (छा. ।६।२।१) श्रुति है इस श्रुतिका घटक जो 'इदम्' पद है इस इदंपदसे सद्रूपब्रह्मके साथ तादात्म्यापन्नत्वेन प्रसक्त जो द्वैत है वही यहां पर द्वैताभावनिष्ठविधेयतानिरूपित–उद्देश्यतावच्छेदक है, और उद्देश्यतावच्छेदककालावच्छिन्नत्वका भान विधेयमें औत्सर्गिक है, यदि ऐसा न हो तो, गन्धप्रागभागविशिष्टो घटो गन्धवान्, यह वाक्य भी प्रमाण हो जायगा, क्योंकि इसके अप्रामाण्यमें हेतु यही है कि उद्देश्यतावच्छेदकप्रागभावकालावच्छिन्नत्व गन्धरूप विधेयमें नहीं रहता है, और द्वैतानधिकरणीभूत जो विद्योत्तर काल है इस कालमें द्वैताभावविषयक ज्ञान, तरति शोकमात्मवित्। (छा. ।७।१।३) विद्वान् नामरूपाद्विमुक्तः। (मु. ३।२।८) ज्ञात्वादेवं मुच्यते सर्वपाशैः (श्वे. ।१।८) इत्यादि श्रुतिओंसेही सिद्ध है अतः तदर्थ यह वाक्य व्यर्थ हो जायगा, तथा च एककालावच्छेदेन प्रतियोगि तथा अभावनिष्ठ जो एकाधिकरणनिरूपित वृत्तिता तादृश वृत्तिताका ज्ञानही मिथ्यात्व निश्चय है यह मिथ्यात्व निरुक्तिमें स्पष्ट होगा, फलतः द्वैतवत्ब्रह्मधर्मिकद्वैताभावविशिष्टबुद्धिरूप मिथ्यात्वनिश्चयको निर्विकल्पाद्वैतनिश्चयके प्रति हेतुता=व्यापारता होनेसे प्रथम द्वैतमिथ्यात्वकाही निरूपण होना चाहिए।

उपपादनं च=द्वैतमिथ्यात्वका उपपादन=निरूपणतो स्वपक्षसाधन=स्थापनीय पक्षका-स्थापन परपक्षनिराकरण=खण्डनीयपक्षकाखण्डन इन दोनोंसे होता है अतः तदुभयं=मिथ्या-त्वकासाधन, और सत्यत्वकानिराकरण ये दोनों, वाद, जल्प, वितण्डा, इन तीन कथाओंमेंसे अन्यतम=कोई एक कथाको आश्रय कर सम्पादनीय हैं। प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय, निगमन, इन पञ्च अवयवरूपउपकरोपेत जो वाक्य है उसे कथा कहते हैं, वह कथा उपरि-निर्दिष्टभेदसे तीन प्रकारकी होती है। तहां—तत्त्वबुभुत्सु=तत्त्वज्ञानकी इच्छा रखनेवालेके साथ जो कथा होती है, उसे वाद कहते हैं। तैसे विजिगीषु=जयकी इच्छा रखनेवालेके साथ जो कथा होती है उसे जल्पकहते हैं। एवं स्वपक्षस्थापनाहीन कथाका नाम है—वितण्डा। इन कथाओंका सविस्तर निरूपण गौतमीय दर्शन तथा उसके भाष्यमें है, अनुपयुक्त होनेसे यहां विस्तार नहीं किया गया।

तत्र च विप्रतिपत्तिजन्यसंशयस्य विचाराङ्गत्वान्मध्यस्थेनादौ विप्रपत्तिः प्रदर्श-नीया। यद्यपि विप्रपत्तिजन्यसंशयस्य न पक्षतासंपादकतयोपयोगः सिसाधयिषाविरह-सहकृतसाधकमानाभावरूपायास्तस्याः संशयाघटितत्वात्; अन्यथा श्रुत्यात्मनिश्चयव-तोऽनुमित्सया तदनुमानं न स्यात्; बाधादीनां निश्चयवत्त्वेन संशयासंभवादाहार्यसंशय-स्यातिप्रसञ्जकत्वाच्च; नापि विप्रतिपत्तेः स्वरूपत एव पक्षप्रतिपक्षपरिग्रहफलकतयोपयोगः, 'त्वयेदं साधनीयं,' 'अनेनेदं दूषणीय' मित्यादिमध्यस्थवाक्यादेव तल्लाभेन विप्रति-पत्तिवैयर्थ्यात्;

अब विप्रतिपत्तिवाक्यको विचाराङ्गत्वसिद्ध करते हैं, तत्रचेति। तत्र=वादकथारूप विचा-रमें आदौ=पहले मध्यस्थेन=मध्यस्थद्वारा विप्रपत्ति=एकविशेष्यकपरस्परविरुद्धधर्मप्रकारकबोध-जनकवाक्यरूप विप्रपत्ति प्रदर्शनीय=दिखलानेके योग्य है; क्योंकि विप्रतिपत्तिजन्यसंशयको वादकथारूप विचारका अङ्ग होनेसे। ननु विप्रतिपत्तिका प्रदर्शन युक्त नहीं है, क्योंकि विप्रतिपत्तिका विचारमें स्वरूपतः उपयोगाभावात्, यदि ऐसा कहो कि स्वरूपसे उपयोग न होनेपर भी विप्रतिपत्तिजन्यसंशयका विचारमें उपयोग है अतः स्वजन्यसंशयद्वारा विप्रतिपत्तिका भी उपयोग होगा सो भी ठीक नहीं, क्योंकि संशयका भी विचारमें उपयोग नहीं है। यदि ऐसा कहो कि संशयका साक्षात्उपयोग न होनेपर भी पक्षतासंपादकतया उपयोग होगा वहां कहते हैं, यद्यपीति। यद्यपि=जो कि विप्रतिपत्तिजन्यसंशयका पक्षतासंपादकतया=पक्षतास्व-रूपघटकतया विचारमें उपयोग नहीं है, क्योंकि सिसाधयिषाविरहविशिष्टसाध्यसिद्ध्यभाव पक्ष-ताको संशयसे अघटित होनेसे; इस पङ्क्तिका संक्षेपसे विवरण—प्राचीनलोग साध्यसिद्ध्यभाव, तथा पक्षमें विषयता संबन्धसे रहनेवाला साध्यसंदेह इन दोनोंको पक्षता कहते आते थे, और इन दोनोंका मूल न्यायभाष्यकी इस वात्स्यायनीय पङ्क्तिमें विद्यमान है—'नानुपलब्धेऽर्थे न निर्णी-तेऽर्थे न्यायः प्रवर्तते किन्तु संदिग्धेऽर्थे।' इस पङ्क्तिमें निर्णीतार्थमें न्यायकी प्रवृत्तिका अभाव

कहनेसे, निर्णयरूप साध्यसिद्धिमें प्रतिबन्धकता द्योतितकी है, और कार्य्यत्वावच्छिन्न यावत्कार्य्योंमें प्रतिबन्धकाभाव कारण होता है, इसलिए निर्णयाभाव है दूसरा नाम जिसका ऐसा जो साध्यसिद्ध्यभाव है उसमें कारणता सिद्ध होती है और संदिग्धपदसे संशयमें कारणता बतलाई है तथाच उपरोक्त मतद्वय एतत्पङ्क्तिमूलक हैं अथवा यह पङ्क्ति उपरोक्तमतद्वयमूलक है, परन्तु ये दोनों प्राचीनोंके लक्षण अव्याप्तिदोषसे ग्रस्त हैं, क्योंकि कहींपर प्रमाणान्तरसे निर्णीतार्थमें भी अनुमित्सावशात् न्याय प्रवृत्त होता है, जैसा कि टीकाकार=वाचस्पतिमिश्रने कहा है:—'प्रत्यक्षेणाऽऽकलितमप्यर्थं तर्केण बुभुत्सन्ते तर्करसिकाः।' तैसेही जहांपर घनगर्जितसे—गगनं मेघवत् गर्जनात्, ऐसा अनुमान होता है, वहां अनुमित्सा और संदेह दोनोंका व्यभिचार है, इस रीतिसे उपरोक्त पक्षताके लक्षणमें दोष निरीक्षणकर गाङ्गेशोपाध्यायने यह लक्षण न्यायचिन्तामणिमें किया है इसमें दोष नहीं है। इस लक्षणका एकदेशरूप जो 'साधकमान' है उसका अर्थ है—साध्यसिद्धि, और अनुमितिकी इच्छाका नाम है—सिसाधयिषा, और सिसाधयिषाका अभाव साध्यसिद्धिका विशेषण है, सिद्धिनाम—निर्णयात्मक ज्ञानका है, तथाच सिसाधयिषाका जो विरह—अभाव, तत्सहकृत=तद्विशिष्ट साधकमान—साध्यसिद्धि तिसका जो अभाव उसका नाम पक्षता है, समुदितार्थ यह हुआ कि सिसाधयिषानिष्ठप्रतियोगितानिरूपकाभावनिष्ठप्रकारतानिरूपितविशेष्यतासमानाधिकरणप्रतियोगितानिरूपक जो अभाव है वही पक्षता है, और कारणीभूताभावका जो प्रतियोगी होता है उसे प्रतिबन्धक कहते हैं, इसलिए यहांपर सिसाधयिषाविरहविशिष्टसाध्यसिद्धि प्रतिबन्धक है, इस प्रतिबन्धकाभावको अपने विशिष्टाभाव भी कह सकते हैं क्योंकि—विशेषणकेसहितका नाम विशिष्ट है, सो यहां साध्यसिद्धिरूप जो प्रतिबन्धक है वह विशेषण सहित है,—साध्यसिद्धिका विशेषण सिसाधयिषाका विरह है। और यह विशिष्टाभाव तीन प्रकारका होता है—विशेषणाभावप्रयुक्तविशिष्टाभाव, विशेष्याभावप्रयुक्तविशिष्टाभाव, उभयाभावप्रयुक्तविशिष्टाभाव। अब इस पक्षताके लक्षणका कहीं भी व्यभिचार नहीं आवेगा तथाहि;—जहांपर प्रमाणान्तरसे अर्थकानिर्णयरूप साध्यसिद्धि है, और सिसाधयिषा भी है तहांपर अनुमिति होगी, क्योंकि वहांपर विशेषणाभावप्रयुक्त विशिष्टाभाव है,—साध्यसिद्धिरूपप्रतिबन्धकमें विशेषणीभूत जो सिसाधयिषाका विरह है वह यहांपर स्वप्रतियोगीरूप सिसाधयिषाके रहनेसे नहीं है, अतएव सिसाधयिषाके विरहका विरह है इसीका नाम विशेषणाभाव है, और जहांपर सिसाधयिषा तथा साध्यसिद्धि ये दोनों नहीं है तहांपर भी अनुमिति होगी क्योंकि ऐसे स्थलमें विशेष्याभावप्रयुक्त विशिष्टाभाव है,—सिसाधयिषाके न होनेसे सिसाधयिषाका विरहरूप साध्यसिद्धिका विशेषण तो है परन्तु साध्यसिद्धिरूप विशेष्य नहीं है अत एव इसे विशेष्याभावप्रयुक्त विशिष्टाभाव कहते हैं, और जहांपर सिसाधयिषा तो है और साध्यसिद्धि नहीं है वहांपर भी अनुमिति होगी क्योंकि ऐसे स्थलमें—उभयाभावप्रयुक्त विशिष्टाभाव है,—सिसाधयिषाके होनेसे सिसाधयिषाका विरहरूप जो विशेषण है वह नहीं है किन्तु सिसाधयिषाके विरहका विरह है, और साध्यसिद्धिरूप विशेष्य भी नही है तथाच उभयाभावप्रयुक्त विशिष्टाभाव सिद्ध

हुआ, इस रीतिसे कहीं पर भी पक्षतास्वरूपमें संशयका प्रवेश नहीं । अन्यथा=साध्यसंशयको ही पक्षता माननेसे, श्रुत्या=श्रुतिरूप प्रमाणसे आत्मनिश्चयवालेको अनुमित्सया=अनुमितिकी=आत्मानमनुमिनुयाम्, इत्याकारक इच्छासे तदनुमानं=आत्माका अनुमान नहीं होगा । तथा वादि प्रतिवादि मध्यस्थ इन सबको अपने २ पक्षका निश्चय होनेसे संशयका तो असंभवही है, यदि कहो कि निश्चय होनेपर भी आहार्य्य संशय हो सकता है क्योंकि आहार्य्य ज्ञानका निश्चय विरोधी नहीं है सो भी सम्यक् नहीं है क्योंकि आहार्य्यसंशयको यदि अनुमितिका हेतु मानोगे तो आहार्य्यपरामर्शादिमें भी हेतुता माननी पडेगी । किसीने अतिप्रसंगका अर्थ यह किया है कि आहार्य्यसंशय अनुमितिके अनन्तर भी हो सकता है अत; अनुमित्साविरह दशामें भी पक्षता हो जायगी । यहांपर आहार्य्यसंशयस्यके स्थानमें चन्द्रिकाकारने, 'संशयहेतुत्वस्वीकारस्य,' व्याख्यान किया है सो ठीक है, क्योंकि आहार्य्यसंशय अतिप्रसञ्जक नहीं है किन्तु तन्निष्ठ हेतुत्वका स्वीकारही आहार्य्यपरामर्शादिमें अतिप्रसञ्जक है, क्योंकि आहार्य्यपरामर्शादिको कोई अनुमितिके प्रति हेतु नहीं मानता है । प्रश्न, आहार्य्यज्ञानका लक्षण क्या है ? उत्तर, 'स्वविरोधिधर्मितावच्छेदकस्वप्रकारकं ज्ञान माहार्य्यज्ञानम् ।' यह लक्षण है । इसका अर्थ—स्वविरोधी है धर्मितावच्छेदक जिसमें ऐसा जो स्वप्रकारक ज्ञान उसका नाम है—आहार्य्यज्ञान । उदाहरण—वन्ह्यभाववान् पर्वतो वन्हिमान् । यहां वन्हिपदार्थका धर्मविषया भान होता है और पर्वतका धर्मिविषयाभान होता है तथाच धर्मी पर्वत है धर्मिता पर्वतमें रहती है धर्मितावच्छेदक वन्ह्यभाव है, क्योंकि वन्ह्यभावविशिष्टपर्वतमें वन्हिरूपधर्मका भान करना है, फलतः लक्षणघटक स्वशब्दसे वन्हिका ग्रहण किया स्वविरोधी हुआ—वन्ह्यभाव क्योंकि अभाव तथा प्रतियोगीका विरोध होता है, वह वन्ह्यभाव इस ज्ञानमें पर्वतवृत्तिधर्मितावच्छेदकरूपसे भासित होता है । तथा च इस ज्ञानको स्वविरोधिधर्मितावच्छेदकक कह सकते हैं, इसका विग्रह ऐसा होता है—स्वविरोधि धर्मितावच्छेदकं यत्र तत्तथा दूसरा ककार बहुव्रीहिसे प्राप्त हुआ है, पुनः यह ज्ञान स्वप्रकारक भी है—स्वशब्दसे वन्हि लीजिए । दुसरा सीधा लक्षण यह है—बाधकालीनेच्छाधीनत्वम् । इसका अर्थ स्पष्टही है, अब इस प्रसक्तानुप्रसक्तार्थको यहींपर समाप्त कर फिर प्रकृतमें आते हैं । और स्वरूपतः संशयको द्वार न बनाकर साक्षात् ही पक्षप्रतिपक्षपरिग्रहफलकतयोपयोगः=पक्ष=धर्मिमें प्रतिपक्ष=प्रतिनियत—भावाभावान्यतरका परिग्रह—प्रयोगरूप जो फल है तत्कत्वेन भी विप्रतिपत्तेः=विप्रतिपत्तिका नोपयोगः= उपयोग नहीं है क्योंकि तुमसे यह साधनीय है, और इनसे यह दूषणीय है ऐसा जो मध्यस्थका वाक्य है उस वाक्यसेही तल्लाभेन=एक धर्मिमें प्रतिनियतपक्षका लाभ हो जानेसे विप्रतिपत्तिका वैयर्थ्य है ।

तथापि विप्रतिपत्तिजन्यसंशयस्यानुमित्यनङ्गत्वेऽपि व्युदसनीयतया विचाराङ्गत्वमस्त्येव । तादृशसंशयं प्रति विप्रतिपत्तेः क्वचिन्निश्चयादिप्रतिबन्धादजनकत्वेऽपि स्वरूपयोग्यत्वात् ।

यद्यपि से लेके यहांतक विप्रतिपत्तिमें पूर्वपक्ष किया गया, अब समाधान करते हैं तथापीति। तथापि=तो भी विप्रतिपत्तिजन्यसंशयको पक्षतादिरूपेण अनुमितिके प्रति अनङ्गता होनेपर भी व्युदसनीयतया=विचारसे साध्य जो अभाव है तादृशाभावप्रतियोगितया, विचाराङ्गत्वं=विचारविषयक जो प्रवृत्ति है उस प्रवृत्तिका कारणीभूत जो संशयाभावरूप फलज्ञान उस ज्ञानमें विशेषणविधया प्रविष्टत्व तो है ही। तादृश संशय=विचारका अङ्गभूत जो संशय है उसके प्रति कहींपर निश्चयादिरूपप्रतिबन्धसे विप्रतिपत्तिको अजनकत्व होनेपर भी स्वरूपयोग्यत्वरूप कारणत्व तो है ही, क्योंकि प्राचीनमतमें विप्रतिपत्तिरूप वाक्यको शाब्दधीरूप संशयका हेतु बतलाया है। और संशय प्रत्यक्षात्मकही होता है इस बातको मानलें तो भी संशयका कारणीभूत जो कोटिद्वयकाज्ञान उसके हेतुभूत जो पद हैं उनपदोंसे विप्रतिपत्तिको घटित होनेसे सुतरां हेतुता है ही। तथाच वादिओंको निश्चयकालमें संशयके न उत्पन्न होनेपर भी संशय कारणरूपसे ज्ञात जो विप्रतिपत्ति है वह संशयका स्मरण करा देती है क्योंकि जिन दो पदार्थोंका संबन्ध पूर्वमें ज्ञात हो उनमेसे एक संबन्धिका ज्ञान दूसरेका स्मरण करा देता है, तथाच निश्चयकालमें विप्रतिपत्तिका संशय स्मारक विधया उपयोग है।

वाद्यादीनां च निश्चयवत्वे नियमाभावात् 'निश्चितौ हि वादं कुरुत' इत्याभिमानिकनिश्चयाभिप्रायं, परपक्षमालम्ब्याप्यहंकारिणो विपरीतनिश्चयवतो जल्पादौ प्रवृत्तिदर्शनात्। तस्मात् समयबन्धादिवत् स्वकर्तव्यनिर्वाहाय मध्यस्थेन विप्रतिपत्तिः प्रदर्शनीयैव।

वादि प्रतिवादि मध्यस्थ इन सर्वको विशेषदर्शनवत्ता होनेसे विप्रतिपत्तिको कहीं भी स्वाव्यवहितोत्तरत्वसंबन्धसे संशयविशिष्टत्वही नहीं है, इसलिए तादृशसंशयके प्रति विप्रतिपत्तिको स्वरूपयोग्यत्वरूप कारणत्व भी नहीं हो सकता है; क्योंकि कहीं भी स्वाव्यवहितपूर्वत्वसंबन्धसे फलावच्छिन्ननिष्ठजातिमत् ही स्वरूपयोग्य होताहै; अत आह वाद्यादीनामिति। वादि प्रतिवादि, मध्यस्थ इन सर्वको कथासे प्रथम तत्त्वनिश्चयवत्ता होनेका नियम नहीं है, फलतः कहीं पर विशेषदर्शनशून्यवाद्यादिकमेंहीं विप्रतिपत्तिजन्यसंशय सिद्ध हुआ, अतः जहांपर वादिप्रभृति संशयरहित हैं वहांपर भी विप्रतिपत्तिमें स्वरूपयोग्यता रूपकारणता है। शंका—कथासे प्रथम वादी तथा प्रतिवादिके तत्त्वनिश्चयनियममें, 'निश्चितौ हि वादं कुरुतः' अर्थात् निश्चयवाले ही वाद करते हैं, यह प्राचीनवचनही प्रमाण है; उत्तर, यह वचन मैं निश्चयवालाहूं इस रीतिसे ज्ञापन करते हुए ही वादीलोग विवाद करते है, इत्याकारक आभिमानिक निश्चयाभिप्रायसे कहा गया है क्योंकि तत्त्वनिश्चय, वाद कथाके उत्तरमें होता है। अन्यदीयपक्षका आलम्बन करके भी विपरीत निश्चयवाला जो अहंकारी वादी है उसकी जल्पादिमें प्रवृत्ति देखते हैं, तथाच जल्पादिमें प्रवृत्त्यन्यथानुपपत्त्या कल्पना करते हैं कि कथासे प्रथम वाद्यादिको तत्त्वनिश्चय नियमसे नहीं होता है, और जहां वादिओंको तत्त्वका निश्चय होता है वहां सभापत्यादिके संशयाभावको उद्देश्यकर विचारमें प्रवृत्ति होती है। ननु जहांपर दोनों वादिओंको तथा सभामें स्थित पारिषद्योंको निश्चय है वहांपर तो निश्चितार्थमें संशयाभावको उद्देश्यकर

वादिओंकी प्रवृत्ति नहीं होती है किन्तु विजयकीर्तिआदिको उद्देश्यकरही प्रवृत्ति होती है और विजयादिमेंतो विप्रतिपत्तिका उपयोग नहीं है; अत आह तस्मादिति। आपने जो स्थल वतलाया है वहांपर तिसकालमें संशयाभावका निश्चय होनेपर निश्चयजन्य जो संस्कार है तादृश संस्कारके कालान्तरमें जो उच्छेदकी शंका है उस शंकासे संशयकी उत्पत्तिका संभव है, अतः संशयोत्पत्तिसंभवज्ञानसे उक्तस्थलमें ऐसी इच्छा भी होती है कि कालान्तरमेंभी संशयाभावकी अनुवृत्ति हो तथा आपकेद्वारा वतलाये गये स्थलमें केवलविजयादिमात्रही उद्देश्य नहीं है। किञ्च जैसे समयवन्ध=इस मतको अवलम्वन करके ही तुम दोनोंको विचार करना होगा, इत्याकारक नियम जैसे मध्यस्थके द्वारा कर्त्तव्य है—अन्यथा वादिओंको मतान्तरमें प्रविष्ट हो जानेसे अव्यवस्था होनेका संभव है, और जैसे मध्यस्थके द्वारा वादिओंकी परीक्षा कर्त्तव्य है, अन्यथा मूर्खोंकी मध्यस्थता करनेसे अन्तमें मध्यस्थकोही उपहास्यत्व होगा, तैसे विप्रतिपत्ति भी मध्यस्थ द्वारा करनीही चाहीए, अन्यथा प्रसंगप्राप्तविषयको लेके दो वादिओंमेसे एकके जयका स्वीकार हो जानेसे प्रस्तुत विषयमें वादिओंके जय तथा पराजयका व्यवस्थापनरूप जो मध्यस्थका कार्य्य है उसका निर्वाह न होगा। और जब विप्रतिपत्ति की जाती है तब तो सभास्थलोगोंके द्वारा उसका श्रवण हो जानेसे विप्रतिपत्तिकी विषयीभूत जो कोटियाँ हैं उनका अपलापकर प्रसंगप्राप्तविषयान्तरका अवलम्वकर वादिओंके द्वारा विजय स्वीकार नहीं किया जा सकता है अतः सर्वकालमें होनेवाला जो संशयाभाव है उसका प्रयोजक जो संस्कार उस संस्कारकी दृढताके लिए तथा उपरोक्तव्यवस्थापनरूपस्वकर्त्तव्यनिर्वाहके लिये मध्यस्थद्वारा विप्रतिपत्ति दिखलानी ही चाहिए।

तत्र मिथ्यात्वे विप्रतिपत्तिः ब्रह्मप्रमातिरिक्ताबाध्यत्वे सति सत्त्वेन प्रतीत्यर्हं चिद्भिन्नं प्रतिपन्नोपाधौ त्रैकालिकनिषेधप्रतियोगि न वा पारमार्थिकत्वाकारेणोक्तनिषेधप्रतियोगि न वेति। अत्रच पक्षतावच्छेदकसामानाधिकरण्येन साध्यसिद्धेरुद्देश्यत्वात् पक्षैकदेशे साध्यसिद्धावपि सिद्धसाधनतेति मते शुक्तिरूप्ये सिद्धसाधनवारणाय ब्रह्मज्ञानेतराबाध्यत्वं पक्षविशेषणम्। यदि पुनः पक्षतावच्छेदकावच्छेदेनैव साध्यसिद्धिरुद्देश्या, तदैकदेशे साध्यसिद्धावपि सिद्धसाधनाभावात् तद्वारकं विशेषणमनुपादेयम्। इतरविशेषणद्वयं तु तुच्छे ब्रह्मणि च बाधवारणायादरणीयमेव।

अब पक्षतावच्छेदकका विचार करते हैं तत्रेति।=तत्र यहां सप्तमी निर्धारणार्थमें है, तथाच अवश्यप्रदर्शनीय विप्रतिपत्तिओंमें मिथ्यात्वे=मिथ्यात्वसिद्धिके अनुकूल, अथवा मिथ्यात्वकोटिक=ब्रह्मप्रमातिरिक्त इत्यादि वाक्यरूप विप्रतिपत्ति है, ऐसा संबन्ध समझना। प्रथम विप्रतिपत्तिरूपवाक्यके घटकपदोंका अर्थ समझ लेना चाहिए तो वाक्यार्थ समझनेमें विलम्ब न लगेगा। प्रतिपन्न=स्वसम्वन्धितयाज्ञात, उपाधि=अधिकरण, इन दोनोंका अभेदान्वय है,—तथाच स्वसंबन्धितयाज्ञाताधिकरणमें इतना प्रतिपन्नोपाधौ का अर्थ है; कालत्रयमें होनेवालेका

नाम है त्रैकालिक, निषेधपदसे अत्यन्ताभावका ग्रहण है और इन दोनोंका कर्मधारयसमास है तथाच त्रैकालिकाभिन्नात्यन्ताभाव—यह त्रैकालिकनिषेधपदका अर्थ है, इस अर्थका स्वनिष्ठ-आधेयतानिरूपित—अधिकरणताश्रयत्वसंबन्धसे, प्रतिपन्नोपाधिमें अन्वय है, तथाच स्वसंबन्धित-याज्ञाताधिकरणवृत्तित्रैकालिकात्यन्ताभाव, यह मिलितार्थ हुआ; इस अत्यन्ताभावका स्वनिरू-पितप्रतियोगिताश्रयत्वसंबन्धसे प्रतियोगिमें अन्वय है, न वा शब्दार्थ विकल्प है उसके साथ उपरोक्ताऽऽश्रयत्वका अन्वय है; ब्रह्म=निर्विकल्पब्रह्म, प्रमा=अहं नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वरूपनिर्वि-कल्पब्रह्मास्मि, इत्याकारक अप्रामाण्यज्ञानानास्कन्दित—अनाहार्य्यज्ञान अतिरिक्त=इयं शुक्तिः इत्यादि ज्ञान, अबाध्य=बाध्यभिन्न, सत्वेन प्रतीत्यर्ह=सत्वप्रकारकज्ञानका विषयतासंबन्धसे आश्रय होनेकेलायक, चिद्भिन्नं=ब्रह्मप्रतियोगिकभेदवत्; ब्रह्मका स्वनिष्ठविषयतानिरूपितविष-यिताश्रयत्व संबन्धसे प्रमामें अन्वय है, प्रमाका स्वप्रतियोगिक=भेदनिरूपित—अनुयोगिताऽऽ-श्रयत्व—संबन्धसे अतिरिक्त पदार्थमें अन्वय है, अतिरिक्तपदार्थका स्वबाध्यभिन्नत्वेन अबा-ध्यमें अन्वय है, अबाध्यका अभेद संबन्धसे सत्त्वेन प्रतीत्यर्हमें अन्वय है, सत्त्वेन प्रतीत्यर्हका अभेदेन चिद्भिन्नमें अन्वय है, चिद्भिन्नका नवार्थसहित प्रथमोक्त आश्रयत्वमें अन्वय है; तथाच समुदितार्थ यह हुआ—ब्रह्मविषयकत्वविशिष्टप्रमाप्रतियोगिकभेदाधिकरणं यत् तद्बाध्यप्रतियो-गिकभेदाधिकरणाभिन्नं सत्त्वेन प्रतीत्यर्हाभिन्नं यच्चिद्भिन्नं तत् स्वसंबन्धितया ज्ञाताधिकरण-निरूपितवृत्तित्वविशिष्टाभिन्नत्रैकालिकाभिन्नात्यन्ताभावनिरूपितप्रतियोगिताऽऽश्रयत्ववन्न वा; यहां भावकोटि विशुद्धब्रह्मवादिओंकी है, और निषेधकोटि कट्टर द्वैतवादिमाध्वादिकी है । यही भावकोटि, ‘ प्रपञ्चो मिथ्या दृश्यत्वात् शुक्तिरूप्यवत् ’ इस वक्ष्यमाण अनुमानमें साध्यरूपसे विवक्षित है । यहांपर प्रपञ्च पक्ष है, उसमें तीन विशेषण दिये गये हैं, जैसे कि—ब्रह्मप्रमाति-रिक्ताबाध्यत्व; सत्वेन प्रतीत्यर्हत्व; चिद्भिन्नत्व; अनुमितिके करणका नाम अनुमान है—अनुमिति फल है, अनुमान करण है, और अनुमानका फलरूप जो अनुमिति है जिसे अनुमानके प्रसं-गमें साध्यसिद्धिभी कहते हैं; वह अनुमिति दो प्रकारकी होती है—पक्षतावच्छेदकसामानाधि-करण्येन, तथा पक्षतावच्छेदकावच्छेदेन; तहां पक्षतावच्छेदकसमानाधिकरणात्यन्ताभावप्रति-योगिसम्बन्धानुयोगिसाध्यप्रकारिका अनुमितिको पक्षतावच्छेदकसामानाधिकरण्येन कहा जाता है, ऐसी अनुमिति, “ पर्वतो वह्निमान् ” यह है, यहां पर्वत पक्ष है पक्षता पर्वतनिष्ठा है पक्षता-वच्छेदक पर्वतत्व है, तत्समानाधिकरण जो अत्यन्ताभाव=वह्निशून्यपर्वतवृत्ति पर्वतप्रतियोगिक-वह्न्यनुयोगिकसंयोगाभाव, तदनुयोगी=वह्निरूपसाध्य, तत्प्रकारिका “ वह्निमान् पर्वतः ” यह अनुमिति है, तैसे पक्षतावच्छेदकव्यापकीभूतसंबन्धानुयोगिसाध्यप्रकारिका अनुमितिको पक्षता-वच्छेदकावच्छेदेन कहते हैं; ऐसी अनुमिति “ तद्रूपवान् तद्रसात् ” यह है, यहां तद् घटको पक्ष किया, पक्षतावच्छेदक तत्त्वविशिष्टघटत्व हुआ तद्व्यापकीभूतसम्बन्धानुयोगित्व तद्रसमें है; तहां सामानाधिकरण्येन साध्यसिद्धिको उद्देश्य=फलत्वेन ज्ञातकर जिस पक्षमें अनुमान प्रवृत्त होता है उस पक्षमें प्रथम विशेषणकी सार्थकता बताते हैं अत्रेति । अत्र=इस अनुमानमें

पक्षतावच्छेदकसामानाधिकरण्येन साध्यसिद्धिरूप अनुमितिको उद्देश्य=फलत्वेन अभिप्रेत होनेसे पक्षैकदेशे=पक्षतावच्छेदकविशिष्टके एकदेशमें साध्यसिद्धि होनेपर भी सिद्धसाधनता नामक दोष होता है, इतिमते=इस मतमें शुक्तिरूप्यमें सिद्धसाधनवारण करनेके लिए ब्रह्मज्ञानेतराबाध्यत्व पक्षका विशेषण है; और यदि पक्षतावच्छेदकावच्छेदेन साध्यसिद्धि उद्देश्य हो तो पक्षतावच्छेदकविशिष्टैकदेशमें साध्यसिद्धि होनेपर भी सिद्धसाधन न होनेसे, तद्वारकं=सिद्धसाधनवारक विशेषण अनुपादेय=उपादेय नहीं है; क्योंकि पक्षतावच्छेदकसामानाधिकरण्येन साध्यसिद्धिका पक्षतावच्छेदकसामानाधिकरण्येन अनुमितिके प्रति विरोध है। पक्षतावच्छेदकावच्छेदेन अनुमितिकेप्रति नहीं, और पक्षतावच्छेदकावच्छेदेन साध्यसिद्धिका, पक्षतावच्छेदकसामानाधिकरण्येन, तथा पक्षतावच्छेदकावच्छेदेन, इन दोनों अनुमितिओंके प्रति विरोध है; इस द्वितीयपक्षमें भी इतर जो विशेषणद्वय हैं वे तो तुच्छ तथा ब्रह्ममे बाधनिवारणके लिए आदरपात्र हैं। यहांतक एकपंक्तिको छोडकर उपरिधृत मूलका अक्षरार्थ किया गया है, अब प्रसंगतः इन विशेषणोंका थोडासा स्पष्टीकरण करते हैं—यहां पक्षमें यदि प्रथम विशेषण नहीं देंगे तो शुक्तिरूप्यादिरूप प्रातिभासिक पदार्थ भी पक्षकुक्षिमें निक्षिप्त हो जायँगे, क्योंकि इन पदार्थोंमें सत्वेन प्रतीत्यर्हत्व तथा चिद्भिन्नत्वरूप दोनों विशेषण रहते ही हैं, और इनमें मिथ्यात्व प्रथमही सिद्ध है अन्यथा इनको दृष्टान्तता कैसे होगी, तथाच प्रथमपक्षसे सिद्धसाधन दोष प्रसक्त हुआ, इस लिए शुक्तिरूप्यादिको पक्षकुक्षिसे बहिष्कार करनेके लिए आद्य विशेषण है, आदिम विशेषणसे इनका बहिष्कार हो जाता है, क्योंकि ये ब्रह्मप्रमातिरिक्त ज्ञानसे अबाध्य नहीं हैं, किन्तु ब्रह्मप्रमासे अतिरिक्त जो, नेदं रजतं किन्तु शुक्तिरियं, इत्यादि ज्ञान हैं इनसे ये बाध्यही हैं। शंका—यदि शुक्तिरूप्यादिरूप प्रतिभासिक पदार्थोंकेही वारणार्थ प्रथम विशेषण है तो "अबाध्यत्वेसति" इतनाही कह दीजिए इसीसे काम चल जायगा, ब्रह्मप्रमेतर, इतना और जोडकर इसे हनुमल्लाङ्गूलवज्जम्भमान क्यों करते हो। समाधान। हमारे मतमें आकाशादि भी बाध्य हैं उन्हें हमे पक्षकुक्षिमें डालना है, यदि अबाध्य मात्र देंगे तो वे पक्षकुक्षिमें नहीं आयेंगे अतः "ब्रह्मप्रमेतर" इस हिस्सेको भी रखना चाहिए, इसके रखनेसे वियदादि आजाते हैं, क्योंकि वियदादि ब्रह्मप्रमासे बाध्य होनेपर भी ब्रह्मप्रमेतरसे अबाध्य हैं। शंका-इस विशेषणमें प्रमा देना व्यर्थ है ब्रह्मज्ञान कह देनेसेही शुक्तिरूप्यादिका वारण हो जायगा, क्योंकि शुक्तिरूप्य शुक्तिज्ञानसे निवृत्त होता है नकि ब्रह्मज्ञानसे। समाधान। सर्वे प्रत्यय वेद्येऽस्मिन् ब्रह्मरूपे व्यवस्थिते। इस मतमें प्रत्ययमात्रकोही ब्रह्मज्ञानत्व अभिप्रेत होनेसे शुक्तिज्ञान भी ब्रह्मज्ञान है, अतः शुक्तिरजतादिवारण करनेके लिए प्रमापद चाहिए।

प्रश्न—सत्वेन प्रतीत्यर्ह यह विशेषण क्यों दिया गया है ?

उत्तर—यह विशेषण यदि नहीं देंगे तो असत्पदार्थभी पक्षकुक्षिमें निविष्ट हो जायगा, और असत् में साध्यतो नहीं है अतः बाधदोष अनुमानमें आवेगा क्योंकि पक्षत्वेन इष्टपदार्थमें साध्याभावका नामही तो बाध है, अतः बाधवारण करनेके लिए यह विशेषण देना चाहिए।

शंका—असत्‌को तो पक्षत्वही नहीं वन सकता है, और असत्‌को पक्षमानोंगे तो उसमें धर्मसम्बन्धित्वरूप सविशेषत्व आजायगा। समाधान। असत्‌को पक्षत्व होता है और धर्मसम्बन्धभी होता है, वन्ध्यासुतो न वक्ता अचेतनत्वात् घटवत्। इस अनुमानमें असत्पदार्थ पक्ष है, और 'ध्वस्तो घटो ज्ञातः' यहांपर असत् घटकेसाथ ध्वंसका अनुयोगिप्रतियोगिभाव तथा ज्ञानका विषयविषयिभावरूपसम्बन्ध प्रतीत होता है, अतः असत्‌को पक्षत्वभी होता है और सम्बन्धित्वभी होता है इस लिए असत्‌में पक्षत्वके वारणके लिए मध्यम विशेषण देना चाहिए, जैसे अन्यान्यधर्म असत्‌में रहते हैं तैसे चिद्भिन्नत्वभी रहता है इस लिए चिद्भिन्नसे असत् की व्यावृत्ति नहीं हो सकती है, यदि चिद्भिन्नत्व असत्‌में नहीं रहेगा तो चित् भी असत् हो जायगा, अतः द्वितीयविशेषण आवश्यकहै। ब्रह्ममे बाधवारणके लिए चिद्भिन्नत्वदिया गया है, क्योंकि पूर्व दोनों विशपण ब्रह्ममेंभी है, इसलिए ब्रह्मभी पक्षकोटिमें आजायगा, और मिथ्यात्वरूप साध्यतो ब्रह्ममें नहीं है, अतः पक्षमें साध्याभावरूपबाधदोप इस अनुमानमें आजायगा, इस लिए ब्रह्मको पक्षकुक्षिसे निकालनेके लिए तृतीयविशेपण है क्योंकि ब्रह्मको चिद्रूपहोनेसे चिद्भिन्नत्व नहीं है, इस रीतिसे निरुक्तविशेपणत्रयविशिष्टद्वैत त्रैकालिक निपेधका स्वरूपसे प्रतियोगी है या नहीं यह प्रथम विप्रतिपत्तिका अर्थहै। ननु जिसरुपसे तथा जिस संबन्धसे जो वस्तु जहां है, वहां ही उसवस्तुका तद्रूपावच्छिन्नतत्सम्वन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताक अभाव नहीं रहसकता है, क्योंकि अभाव और प्रतियोगिका विरोध है, अत आह—पारमार्थिकत्वेति। पारमार्थिकत्व=ब्रह्मसमानसत्ताकत्व, आकारशब्दका अर्थ रूप है तृतीया काअर्थ अवच्छिन्नत्व है, यह तृतीयार्थ प्रतियोगिपदका जो अर्थ है उसअर्थका एकदेशरुप जो प्रतियोगित्व उसकेसाथ अन्वित होता है; तथाच ब्रह्मतुल्यसत्ताकत्वावच्छिन्नं यत् प्रति योगित्वं तद्वन्न वा, यह द्वितीय वाक्यका अर्थ है, यहांपर विप्रतिपत्तिका घटक अभाव व्यधिकरणाभाव है व्यधिकरणाभाव कई प्रकारका होता है, कहींपर प्रतियोगिताव्यधिकरणधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताक होता है जैसे पटत्वेन घटाभाव, कहींपर व्यधिकरणसंबन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताक होता है, जैसे कपालमें संयोगसंबन्धसे घटका अभाव है, कहींपर विशेपधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकसामान्याभाव होता है, जैसे तद्घटत्वेन घटसामान्याभाव, इसवातको ध्यानमें रखना चाहिए कि उपरोक्त-व्यधिकरणाभाव केवलान्वयी=सार्वत्रिक हुआ करते हैं। अनात्मनिरूपणसे ही अपनेको कृतकार्य्य समझनेवाले आधुनिक तार्किकोंने, अनात्मजालके विस्तारार्थ व्यधिकरणाभावादिको लेके दोदो चारचार ग्रन्थ गढ डाले हैं, इसलिए यहांविशेपलिखनेकी आवश्यकता नहीं है, विशेप उपयुक्तांश सर्वत्र दिखलाया जायगा। विस्तारभयसे यहांपर सिद्धसाधनकी दूपकताका विचार नहीं किया है, हां, सिद्धान्तकी इतनी वात समझलेनी चाहिए—पक्षताविघटकतया जैसे सिद्ध-साधनको अनुमितिकेप्रति प्रतिबन्धकता है, और पक्षताघटकतया उसके विरहको हेतुता है, तथा अंशतः सिद्धसाधन भी अनुमितिका प्रतिबन्धक है और उसका अभाव पक्षता है।

प्रत्येकं वा विप्रतिपत्तिः वियन्मिथ्या नवा, पृथिवी मिथ्या नवेति। एवं वियदादेः प्रत्येकं पक्षत्वेऽपि न घटादौ संदिग्धानैकान्तिकता। पक्षसमत्वात् घटादेः। तथाहि

पक्षे साध्यसंदेहस्यानुगुणत्वात् पक्षभिन्न एव तस्य दूषणत्वं वाच्यम्। अत एवोक्तं 'साध्याभावनिश्चयवति हेतुसंदेहे एव संदिग्धानैकान्तिकते' ति। पक्षत्वं तु साध्यसंदेहवत्त्वं साध्यगोचरसाधकमानाभाववत्त्वं वा। एतच्च घटादिसाधारणम्। अत एव तत्रापि संदिग्धानैकान्तिकत्वं न दोपः। पक्षसमत्वोक्तिस्तु प्रतिज्ञाविपयत्वाभावमात्रेण। नचतर्हि प्रतिज्ञाविपयत्वमेव पक्षत्वम्; स्वार्थानुमाने तद्भावात्।

वा=अथवा प्रत्येकं=एकएकमें=आकाशमिथ्या है या नहीं, पृथिवी मिथ्या है या नहीं, इति=इसप्रकारकी विप्रतिपत्तिसमझना;। ननु यदि आकाशमात्रादिको ही पक्षकरोगे तो निश्चितसाध्याभाव जिसमें रहता है उसमें हेतुके रहनेका संदेह होनेसे जैसे संदिग्धानैकान्तिकतानामक दोप होता है, तैसे पक्षसे भिन्न और निश्चित हेतुवाला जो पदार्थ है उसमें साध्यसंदेह होनेसेभी संदिग्धानैकान्तिकता दोप होता है, ऐसा होनेसे घटादिमें संधिग्धानैकांतिकता हो जायगी क्योंकि घटादि पक्षसे भिन्नहैं और दृश्यत्वादिरूपहेतु इसमें रहता है और साध्यका संदेह भी है अत आह—एवं=इसप्रकारसे वियदादि प्रत्येकको पक्षत्वेऽपि=पक्षहोनेपरभी घटादौ=घटादिमें संदिग्धानैकान्तिकतादोप न=नहीं है। घटादेः=घटादिको पक्षसमहोनेसे, तथाच निश्चितहेतुवाला जो पदार्थ है उसमें साध्यसंदेहको यदि दोप माना जायगा तबतो अनुमानमात्रकाही उच्छेदप्रसक्त होगा, इसलिए पक्ष तथा पक्षसमको छोडकर अन्यत्र उपरोक्त साध्यसंदेह होनेपर संदिग्धानैकान्तिकतादोप होता है, और घटादिकतो पक्षसम हैं अतः इनमें यह दोप नहीं है यह भावहै। तथाहि=दिखलातेहैं, पक्षे=पक्षमें साध्यसंदेहस्य=विपयतासंवन्धसे साध्यसंदेहको अनुगुणत्वात्=अनुमितिके अनुकूलहोनेसे पक्षभिन्न एव=पक्षपक्षसमसे भिन्नमेंही, तस्य=साध्यसंदेहको दूपणत्व वाच्य है, अतएव=इसलिए ही साध्याभावनिश्चयवति=साध्याभावका निश्चय विपयता संवन्धसे रहता है जिसमें, उसमें, हेतुसंदेहे=हेतुके अस्तित्वका संशय होनेपर संदिग्धानैकान्तिकता होती है; इति=ऐसा प्राचीनोंने उक्तं=कहाहै। पक्षत्वं तु=पक्षत्व तो विपयतासम्वन्धसे साध्यसंदेहवत्त्व वा=अथवा साध्यगोचर=साध्यविपयक जो साधकमान=साध्यनिश्चय उसका जो अभाव है तद्वत्त्व है। एतच्च=यह पक्षत्व तो घटादिसाधारण है; अत एव=घटादिसाधारणपक्षत्व होनेसे ही तत्रापि=घटादिमें भी संदिग्धानैकान्तिकत्वरूपदोप न=नहीं है। यदि घटादि पक्षहैं तव पक्षभेद घटित पक्षसमत्व क्यों कहते हो अत आह—पक्षसमत्वकी उक्ति तो प्रतिज्ञाविपयत्वका अभाव घटादिमें है एतन्मात्रनिमित्तकहै। भावार्थ यह कि "पक्षसम" इत्याकारक व्यवहारमें पक्षपदसे प्रतिज्ञाका विपय लिया जाता है, और "पक्षभिन्ने हेतुमति साध्याभावसंदेहो दूपणम्" यहांपर साध्यसंदेहवत् लियाजाता है। तर्हि=तव प्रतिज्ञाविपयत्वही पक्षत्व हो नच=नहीं, क्यों? स्वार्थानुमाने=स्वार्थानुमानमें तदभावात्=प्रतिज्ञा का अभाव होनेसे। वहां साध्यतावच्छेदकसंवन्धावच्छिन्नसाध्यतावच्छेदकावच्छिन्नसाध्यनिष्ठप्रकारतानिरूपितपक्षतावच्छेदकावच्छिन्नपक्षनिष्ठविशेष्यताकवोधजनक जो वाक्यहै उसे प्रतिज्ञा कहते हैं, उसका उपयोग महावाक्यघटकविधया परार्थानुमान में होता है

स्वार्थानुमानमें महावाक्य=हेत्वादिद्योभकवाक्यका प्रयोजन नहीं, अतः प्रतिज्ञा विषयत्वरूप-पक्षत्व स्वार्थानुमानमें नहीं है।

एवं विप्रतिपत्तौ प्राचां प्रयोगाः। विमतं मिथ्या, दृश्यत्वात्, जडत्वात्, परिच्छिन्नत्वात्, शुक्तिरूप्यवदिति। नात्रावयवेष्वाग्रहः। अत्र स्वनियामकनियतया विप्रतिपत्त्या लघुभूतया पक्षतावच्छेदो न विरुद्धः। समयबन्धादिना व्यवधानात्तस्यानुमानकालासत्त्वेऽप्युपलक्षणतया पक्षतावच्छेदकत्वम्। यद्वा विप्रतिपत्तिविषयतावच्छेदकमेव पक्षतावच्छेदकम्। प्राचां प्रयोगेष्वपि विमतमिति पदं विप्रतिपत्तिविषयतावच्छेदकावच्छिन्नाभिप्रायेणेत्यदोषः।

एवं=इस उक्तप्रकारसे, विप्रतिपत्तौ=विप्रतिपत्तिके सिद्धहोनेपर प्राचां=प्राचीनब्रह्मवादिओंके प्रयोगाः=प्रयोग हैं। विमतं=विप्रतिपत्तिजन्य जो संशय=मिथ्यात्वमिथ्यात्वाभावरूपकोटियुगलावगाही ज्ञानविशेष तिसका विषय फलतः विप्रतिपत्तिजन्यसंशयविशेष्य; मिथ्या=वक्ष्यमाणलक्षणकमिथ्यात्ववत्; दृश्यत्वात्=दृश्य होनेसे; जडत्वात्=जड होनेसे; परिच्छिन्नत्वात्=परिच्छिन्न होनेसे, शुक्तिरूप्यवत्=शुक्तिमें कल्पित अनिर्वचनीयरूप्यवत्। अत्र=वेदान्तसिद्धांन्तमें अवयवेषु=प्रतिज्ञादिरूप-अवयवोंमे, आग्रह=संख्याविशेषका आग्रह न=नहीं है। नैयायिक; प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय, निगमन, ये पञ्च अवयव मानते हैं, और मीमांसक लोग प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, ये तीन अथवा उदाहरण, उपनय, निगमन, ये तीन अवयव मानते हैं। बौद्धलोग, उदाहरण, उपनय ये दोही अवयव मानते है, परन्तु हमको अवयवोंमें आग्रह नहीं है, जितने अवयवोंसे वादि आदिक ठीक २ समझ जायँ उतनोंका प्रयोग करना चाहिए। ननु—यहांपर पक्षतावच्छेदक कौन है, यदि कहो कि अविशेषित विप्रतिपत्ति ही है तो यह नहीं कह सकते हो क्योंकि ऐसा होनेसे शुक्तिरूप्यादिमें सिद्धसाधन होगा और ब्रह्ममें बाध होगा, क्योंकि पक्षविशेषणोंसे अविशेषित विप्रतिपत्ति तो इनमें भी रह सकती है। यदि घटादिमात्र है विशेष्य जिसमें एसी विप्रतिपत्तिको पक्षतावच्छेदक कहो तो प्रपञ्चमात्रमें मिथ्यात्व सिद्ध न होगा। अतः कहते हैं, अत्र=इन प्रयोगोंमें, स्व=विप्रतिपत्तिका, नियामक=विप्रतिपत्तिनिष्ठप्रकृतानुमानपक्षतावच्छेदकत्वकी योग्यताका संपादक जो ब्रह्मप्रमातिरिक्ताबाध्यत्वादिविशिष्टविशेष्यकत्व उससे नियत=विशेषित, फलतः पूर्वोक्त जो विप्रतिपत्ति उस विप्रतिपत्तिसे-" ननु पूर्वोक्त विप्रतिपत्तिका पक्षविशेषणअबाध्यत्वादिघटितरूपसे पक्षतावच्छेदकमें निवेश करते हो तो लाघवसे पक्षविशेषण अबाध्यत्वादिकोही क्यों नहीं पक्षतावच्छेदक मानते हो अत आह, लघुभूतया=तद्व्यक्तित्वादिलघुरूपविशिष्टत्वेनही विप्रतिपत्तिको अवच्छेदकत्व है; तथाच ब्रह्मप्रमेत्यादिकथितरूपसे परिचित जो विप्रतिपत्ति है उस विप्रतिपत्तिको तद्व्यक्तित्वेन अवच्छेदकता मानते हैं" पक्षतावच्छेदो=पक्षताका अवच्छेदन, न=नहीं विरुद्ध होता है, इसका व्यवहितसे अन्वय करना। ननु—अनुमिति जो होती है वह पक्षतावच्छेदकसामानाधिकरण्येन

होती है, यह "पर्वतो वह्निमान्" यहांपर सिद्ध है, तब तो अनुमितिकालमें विद्यमान जो धर्म है उसीको पक्षतावच्छेदक मानना उचित है, और विप्रतिपत्ति तो अनुमिति कालमें नहीं है, क्योंकि मध्यमें होनेवाले समयबन्धादिसे व्यवहित है; अतः कहते हैं, समयवन्धादिना=मतनियमनादिसे व्यवधान हो जानेसे तिसको अनुमान कालमें न होनेपर भी उपलक्षणरूपसे पक्षतावच्छेदकत्व है–अर्थात् विशेषणविधया अवच्छेदकत्व न होनेपर भी उपलक्षणविधया हो सकता है, यद्यपि अनुगत तथा अनतिप्रसक्त उपलक्ष्यतावच्छेदक धर्मके न होनेपर विप्रतिपत्तिको उपलक्षणता भी नहीं हो सकती है, तथापि विप्रतिपत्तिको उपलक्षणत्व बन सकता है; क्योंकि वहींपर अनुगत उपलक्ष्यतावच्छेदक आवश्यक होता है, जहांपर ज्ञापनीयव्यावृत्तिसे उपलक्षण न्यूनवृत्ति होता है जैसे (काकवत् देवदत्तगृहम्) यहांपर उत्तृणत्वादि हैं; और प्रकृतमें तो उपलक्षणरूप जो विप्रतिपत्ति है वह विषयतासंबन्धेन स्वप्रत्याय्यव्यावृत्तिसे अन्यूनदेशवृत्ति है। शंका–अतीत विप्रतिपत्तिको व्यावृत्तिधीजनकत्व कैसे हो सकता है, समाधान–धर्मज्ञानको व्यावृत्तिधीजनकत्व है, धर्मको स्वरूपतः नहीं, 'कुरूणां क्षेत्रम्' यहांपर कुरुओंकाही क्षेत्र, इस व्यावृत्तिधीका हेतु स्वरूप सत् ज्ञान ही है, कुरुपदार्थ नहीं–उसको अविद्यमान होनेसे। ननु–जब उपलक्ष्यतावच्छेदक नहीं है तब पक्षताभी कैसे होगी; समाधान–" विषयजन्यं ज्ञानं प्रत्यक्षं" इस प्रत्यक्षलक्षणमें विषयत्वेन अभिमत जो घटादिक हैं उन घटादिकमें स्वज्ञानसे पूर्व विषयत्वके न होनेपर भी विषयत्वेन अवच्छेद्य जो ज्ञानके प्रति जनकता वह तो है ही तद्वत् प्रकृतमें भी समझिए। शंका–आपने विप्रतिपत्तिका परिचायक ब्रह्मप्रमातिरिक्ताबाध्यत्वादिविशिष्टविशेष्यकत्व बतलाया है; तथाच प्रथमोपस्थित होनेसे परिचायकघटक ब्रह्मप्रमातिरिक्ताबाध्यत्वादिको ही क्यों न पक्षतावच्छेदक मानें तहां कहते हैं–यद्वेति। यद्वा=अथवा विप्रतिपत्तिविषयतावच्छेदक जो अबाध्यत्वादि है वही पक्षतावच्छेदक है। प्राचीनोंके प्रयोगोंमें भी विमत पद विप्रतिपत्तिकी जो विषयता–पक्षनिष्ठा है तादृशविषयतावच्छेदक जो अबाध्यत्वादि तदवच्छिन्न जो पक्ष है तादृश पक्ष बोधनाभिप्रायसे है इस लिए दोष नहीं।

ननु–किमिदं मिथ्यात्वं साध्यते, न तावत् 'मिथ्याशब्दोऽनिर्वचनीयतावचन' इति पञ्चपादिकावचनात् सदसदनधिकरणत्वरूपमनिर्वाच्यत्वम्; तद्धि किं असत्त्वविशिष्टसत्त्वाभावः, उत सत्त्वात्यन्ताभावासत्त्वात्यन्ताभावरूपं धर्मद्वयं, आहोस्वित् सत्त्वात्यन्ताभाववत्त्वे सति असत्त्वात्यन्ताभावरूपं विशिष्टम्। नाद्यः, सत्त्वमात्राधारे जगत्यसत्त्वविशिष्टसत्त्वानभ्युपगमात्, विशिष्टाभावसाधने सिद्धसाधनात्। नद्वितीयः; सत्त्वासत्त्वयोरेकाभावे अपरसत्त्वावश्यकत्वेन व्याघातात्, निर्धर्मकब्रह्मवत् सत्त्वासत्त्वराहित्येऽपि सद्रूपत्वेन अमिथ्यात्वोपपत्त्याअर्थान्तराच्च, शुक्तिरूप्ये अबाध्यत्वरूपसत्त्वव्यतिरेकस्य सत्त्वेन बाध्यत्वरूपासत्त्वस्य व्यतिरेकासिद्ध्या साध्यवैकल्याच्च। अतएव न तृतीयः, पूर्ववद्व्याघातात्, अर्थान्तरात्साध्यवैकल्याच्च–इति चेत्, मैवम्।

अब प्रथम मिथ्यात्वका निर्वचन करते हैं ननु इति। मिथ्यात्वं=मिथ्याशब्दार्थताका अ–

च्छेदक, साध्यते=पक्षविशेषणरूपसे निर्दिश्यमान किमिदं=क्या है, भाव यह है कि मिथ्याशब्दार्थतावच्छेदकविशिष्टत्वरूपसे मिथ्याशब्दार्थ यहांपर तादात्म्यसे साध्य है तहां विशेषणरूप निगद्यमान मिथ्यात्व क्या है, यह वाक्यार्थ है। 'मिथ्याशब्द अनिर्वचनीयत्वको कहनेवाला है' इस पञ्चपादिकाके वचनसे सद्=सत्त्व, असद्=असत्त्व इन दोनोंका अनधिकरणत्वरूप अनिर्वाच्यत्वरूप मिथ्यात्व है इति न तावत्=यह युक्त नहीं है, क्योंकि सत्त्वासत्त्वानधिकरणत्वका ही निर्वचन नहीं होसकता है; इसी अर्थको तद्धीत्यादिसे पूर्वपक्षी कहता है। तद्धि=सत्त्वासत्त्वानधिकरणत्व ही किं=वक्ष्यमाण जो प्रकारत्रय हैं उनमें किंरूप है; क्या असत्त्वसेविशिष्ट जो सत्त्व तादृश सत्त्वका अभावरूप है। उत=अथवा, सत्त्वप्रतियोगिक जो अत्यन्ताभाव, तथा असत्त्वप्रतियोगिक जो अत्यन्ताभाव एतद्अत्यन्ताभावरूप जो द्वय तद्रूप जो धर्मद्वय तद्रूप है; आहोस्वित्=अथवा सत्त्वात्यन्ताभाववत्त्वे सति=सत्त्वात्यन्ताभावसमानाधिकरण जो असत्त्वात्यन्ताभावरूपविशिष्ट तद्रूप है; विकल्पकरके अव निषेध किया जाता है—नाद्य:=असत्त्वविशिष्टसत्त्वाभावरूप अर्थ नहीं हो सकता है; क्योंकि माध्वमतमें सत्त्वमात्रका आधार जगत् है उसमें असत्त्वविशिष्ट सत्वका अनङ्गीकार होनेसे असत्वविशिष्टसत्त्वका अभावसाधन करनेपर सिद्धसाधन है,—विशेषणाभावप्रयुक्तविशिष्टाभाव माध्वमतसे जगत्में सिद्धही है, उसीको आप अनुमानसे सिद्ध करते हैं। नद्वितीय:=दूसरा निर्वचन भी नहीं बन सकता है; क्योंकि सत्त्वासत्त्वयो:=सत्त्व तथा असत्त्व इन दोनोंको परस्पर अभावरूप होनेसे दोमेंसे एकका अभाव होनेपर दूसरेके सत्त्वको नियमसे प्राप्त होनेसे व्याघात है; तथा सत्त्वासत्त्वका राहित्य होनेपर भी द्वैतमें ब्रह्मवत् सद्रूपता होनेसे अर्थान्तर भी है; भावार्थ यह कि—जैसे ब्रह्ममें बाध्यत्वाभावरूपसत्त्वादि धर्म नहीं है, क्योंकि 'केवलो निर्गुणश्च' इत्यादि श्रुतिमें निषेध है; और यदि ब्रह्मनिष्ठसत्त्वको अबाधित मानोंगे तो अद्वैत श्रुतिका विरोध भी होगा इस लिए ब्रह्ममें सत्त्वनामक कोई धर्म नहीं है, तैसे ब्रह्ममें बाध्यत्वादिरूप धर्म भी नहीं है, क्योंकि ब्रह्म श्रुतिसे प्रमित है और साक्षित्व होनेसे बाध्यत्व बन भी नहीं सकता है, अर्थात् स्वेतरनिखिलबाधका साक्षी ब्रह्म है तो ब्रह्मका बाध किंसाक्षिक होगा, फलतः धर्मानधिकरण होनेपर भी जैसे ब्रह्म सद्रूप है तैसे प्रकृतानुमानसे प्रपञ्चमें उपरोक्तसत्त्वाभावके सिद्ध होनेपर भी प्रपञ्च बाध्य नहीं है, क्योंकि स्वेतरप्रमाणानपेक्षप्रामाण्यकप्रत्यक्षप्रमाका विषय है, इस लिए प्रपञ्च भी सद्रूपही है, इस प्रकारसे सद्रूपताका विरोधि जो मिथ्यात्व है उसकी असिद्धि है अतः अर्थान्तर है; तैसे शुक्तिरूप्ये=शुक्तिमें अध्यस्त दृष्टान्तरूपरजतमें अबाध्यत्वरूपजो सत्त्व है उसके व्यतिरेक=अभावको विद्यमान होनेसे बाध्यत्वरूप असत्त्वके व्यतिरेककी असिद्धिसे साध्यवैकल्य=साध्याभाव है। अतएव=पूर्ववत् दोषत्रयके होनेसे ही न तृतीय:=तृतीयपक्ष भी ठीक नहीं है, अतः शब्दका विवरण करते हैं पूर्ववत् इति। द्वितीयनिर्वचनमें जो दोष हैं वे तृतीयमें भी हैं, क्योंकि द्वितीयनिर्वचन जैसे अभावद्वयसे घटित है, तैसे तृतीय भी अभावद्वयसे घटित है, भेद केवल इतना है कि—द्वितीयमें अभावोंका परस्पर सामानाधिकरण्येन वैशिष्ट्य

विवक्षित नहीं है, और तृतीयमें विवक्षित है परन्तु अभावद्वयघटित होनेसे दोपसाम्य है; इतिचेत्=ऐसा यदि कहो तो मैवम्=नहीं कहना; क्योंकि,

सत्त्वात्यन्ताभावासत्त्वात्यन्ताभावरूपधर्मद्वयविवक्षायां दोपाभावात्–। न च व्याहतिः। सा हि सत्त्वासत्त्वयोः परस्परविरहरूपतया वा, परस्परविरहव्यापकतया वा परस्परविरहव्याप्यतया वा।

सत्त्वात्यन्ताभाव तथा असत्त्वात्यन्ताभावरूपधर्मद्वयकी विवक्षामें दोप नहीं है; अर्थात् द्वितीयनिरुक्तिको लक्षणविधया विवक्षाकरनेमें दोप नहीं है। व्याहतिः=उपरोक्त व्याघात दोप है, नच=नहीं है; साहि=वह=व्याहति क्या सत्त्वासत्त्वयोः– सत्त्व तथा असत्त्व इन दोनोंके परस्परविरहरूपत्वेन है; अर्थात् सत्त्वका अभाव असत्त्व है, और असत्त्वका अभाव सत्त्व है, अतः व्याहति है वा=अथवा सत्त्वासत्त्व इन दोनोंको परस्पर विरह=अभावका व्यापक होनेसे; अर्थात् सत्त्वाभावका व्यापक असत्त्व है और असत्त्वाभावका व्यापक सत्त्व है इस लिए व्याहति है वा=अथवा सत्त्वासत्त्व इन दोनोंको परस्पर विरहव्याप्यत्वेन है, अर्थात् सत्त्वाभावका व्याप्य असत्त्व है और असत्त्वाभावका व्याप्य सत्त्व है अतः व्याहति है।

तत्र नाद्यः। तदनङ्गीकारात्। तथाह्यत्र त्रिकालाबाध्यत्वरूपसत्त्वव्यतिरेको नासत्त्वम्, किन्तु क्वचिदप्युपाधौ सत्त्वेन प्रतीयमानत्वानधिकरणत्वम्। तद्व्यतिरेकश्च साध्यत्वेन विवक्षितः। तथाच त्रिकालबाध्यविलक्षणत्वे सति क्वचिदप्युपाधौ सत्त्वेन प्रतीयमानत्वरूपं साध्यं पर्यवसितम्। एवं च सति न शुक्तिरूप्ये साध्यवैकल्यमपि। बाध्यत्वरूपासत्त्वव्यतिरेकस्य साध्याप्रवेशात्। नापि व्याघातः; परस्परविरहरूपत्वाभावात्। अतएव न द्वितीयोऽपि; सत्त्वाभाववति शुक्तिरूप्ये विवक्षितासत्त्वव्यतिरेकस्य विद्यमानत्वेन व्यभिचारात्। नापि तृतीयः; तस्य व्याघाताप्रयोजकत्वात्, गोत्वाश्वत्वयोः परस्परविरहव्याप्यत्वेऽपि तदभावयोरुष्ट्रादावेकत्र सहोपलम्भात्। यच्च–निर्धर्मकस्य ब्रह्मणः सत्त्वराहित्येऽपि सद्रूपवत् प्रपञ्चस्य सद्रूपत्वेनामिथ्यात्वोपपत्त्या अर्थान्तरं–उक्तम्। तन्न। एकेनैव सर्वानुगतेन सर्वत्र सत्प्रतीत्युपपत्तौ ब्रह्मवत् प्रपञ्चस्य प्रत्येकं सत्स्वभावताकल्पने मानाभावात्, अनुगतव्यवहाराभावप्रसंगाच्च।

तत्र=उपरोक्त तीन प्रकारोंमेंसे नाद्यः=आदिम प्रकार समीचीन नहीं है क्योंकि तिस प्रकारका अङ्गीकार नहीं है, प्रकृतमें निवेशनीय जो सत्त्व तथा असत्त्व है वह परस्पर विरहरूप नहीं है फलतः सत्त्वके अभावको हम यहांपर असत्त्व नहीं मानते हैं तैसेही असत्त्वके अभावको सत्त्व नहीं मानते हैं, तथाहि=दिखलाते हैं अत्र=लक्षणमें त्रिकालाबाध्यत्वरूप जो सत्त्व है उसका व्यतिरेकरूप जो असत्त्व वह असत्त्व विवक्षित नहीं है, किन्तु=लेकिन किसी भी आधारमें सत्त्वेन=सत्त्व विशिष्टरूपसे प्रतीयमानत्वका अनधिकरणत्वरूप असत्त्व विवक्षित

है। तादृश असत्त्वका व्यतिरेक साध्यरूपसे विवक्षित है। ननु एतादृश असत्त्वका व्यतिरेक कहनेसे पक्षमात्रमें सत्त्वेन प्रतीयमानत्व ज्ञापित होता है परन्तु सत्त्वेन प्रतीयमानत्व दृश्यमात्रमें नहीं है, क्योंकि "घटोगुरुः" इत्यादि प्रमामात्रसे सिद्ध जो गुरुत्व है उसके सत्त्वेन प्रतीयमानत्वमें कोई प्रमाण नहीं है, और 'प्रमाणाभावसे सत्त्वेन प्रतीयमानत्वयोग्यत्व भी नहीं कह सकते हैं, ऐसी आशंका करके ही मूलकारने सत्त्वका विशेषण "कचिदप्युपाधौ" यह दिया है, इससे ऐसा अर्थ समझना, यत्किञ्चित् अधिकरणनिरूपितवृत्तित्वविशिष्टं यत्सत्त्वं तेन सत्त्वेन प्रतीयमानत्वम्; अर्थ यह कि, कोई भी अधिकरणमें रहनेवाला जो सत्त्व है उस सत्त्वसे प्रतीयमानत्व; जब ऐसा अर्थ हुआ तब गुरुत्वादिभी घटाद्यवच्छिन्नचेतनमें आरोपित हैं, अतः घटाद्यवच्छिन्न चेतनके सत्त्वका गुरुत्वादिमें आरोप होता है। तथा "पृथिव्यादिनिष्ठं गुरुत्वादिकं सत्" ऐसा प्रत्यय होता है इसलिए सर्व दृश्यमें सत्त्वेन प्रतीयमानत्वयोग्यत्व है। तथाच त्रिकालाबाध्यसे विलक्षण होकर किसी भी अधिकरणमें सत्त्वेन प्रतीयमानत्वरूपसाध्य फलित हुआ। एवं च सति=जब इस रीतिसे लक्षण परिष्कृत हुआ तब शुक्तिरूप्यमें भी साध्याभाव नहीं है; क्योंकि बाध्यत्वरूप जो असत्त्व है उसके व्यतिरेकका साध्यमें प्रवेश नहीं है; और उपरिष्टात् निर्दिष्ट जिस असत्त्वके व्यतिरेकका साध्यमें प्रवेश है, उस व्यतिरेकका प्रतियोगीरूप असत्त्व शुक्तिरूप्यमें नहीं है, तथाच उपरोक्त अभावद्वयरूपमिथ्यात्वके रह जानेसे शुक्तिरूप्यमें साध्याभाव नहीं किन्तु साध्य ही है। नापि व्याघातः=पूर्वोक्त व्याघात भी नहीं है, क्योंकि सत्त्व तथा असत्त्वको परस्पर विरहरूपता नहीं है; यह कहही चुके हैं। सत्त्व तथा असत्त्वको परस्परविरह व्यापक होनेसे व्याघात है; इस पक्षको दूषित करते हैं; अत एव=व्याघात दोषका अप्रयोजक होनेसे ही द्वितीय भी नहीं, क्योंकि त्रिकालाबाध्यत्वरूप जो सत्त्व है तादृशसत्त्वके अभाववाला जो शुक्तिरूप्य उसमें विवक्षित असत्त्वके व्यतिरेकको विद्यमानता होनेसे परस्पर विरहव्यापकके नियमका व्यभिचार है, अर्थात् सत्त्वाभावका व्यापक असत्त्व नहीं हुआ क्योंकि निगदित रीतिसे शुक्तिरूप्यमें व्यभिचार है; और निर्धर्मक ब्रह्ममें दोनोंका व्यभिचार है, क्योंकि वहांपर सत्त्वाभाव तथा असत्त्वाभाव ये दोनों हैं, परन्तु इनके व्यापकीभूत असत्त्व तथा सत्त्व ये दोनों नहीं हैं। नापि तृतीयः=परस्परविरहव्याप्यत्वेन व्याघातका उद्भावनरूप तृतीय पक्ष भी ठीक नहीं, तस्य=परस्पर विरहव्याप्यत्वको व्याघातके प्रति अप्रोयजकत्व होनेसे; गोत्व तथा अश्वत्व इन दोनोंको परस्पर विरह व्याप्यत्व है, क्योंकि गवेतर निखिल पदार्थोंमें गोत्वाभाव रहता है, अतः अश्वत्व गोत्वाभावको छोडके नहीं रह सकता है, तैसेही अश्वेतरमें सर्वत्र अश्वत्वाभाव रहता है तथाच गोत्व भी उसे छोडकर नहीं रह सकता है, स्वाभाववदवृत्तित्वका नाम ही तो व्याप्यत्व है तथा च उपरोक्त गोत्व तथा अश्वत्व परस्पर विरहके व्याप्य हैं, फिर भी गोत्वाभाव तथा अश्वत्वाभाव ये दोनों अभाव उष्ट्रादिरूप एक अधिकरणमें साथ उपलब्ध होते हैं; तथैव सत्त्वासत्त्वको परस्पर विरह व्याप्यत्व होनेपर भी दोनोंके अभाव एकत्र रह सकते हैं। निर्धर्मकब्रह्मनिष्ठसत्त्वराहित्य होनेपर भी सद्रूप ब्रह्म है, तद्वत् प्रपञ्चको भी सद्रूपत्व होनेसे

अमिथ्यात्वका संभव है, अतः अर्थान्तर हैं, ऐसा यत्=जो, उक्तम्=कहा है, तन्न=वह ठीक नहीं है, क्योंकि सर्वानुगत एक पदार्थसेही सर्वत्र सदाकार प्रत्ययकी उपपत्ति हो सकती है तो घटपटादिरूप प्रत्येक प्रपञ्चमें सत्त्वभावता=सदाकार प्रत्यय विशेषणताके कल्पनेमें कोई प्रमाण नहीं हैं; एवं घटपटादिरूप प्रत्येक प्रपञ्चमें सत्त्वभावताकी कल्पना करोगे तो 'घटः सन्' 'सामान्यं सत्' इत्यादिरूप अनुगत=एकाकार=समानप्रकारकव्यवहाराभाव प्रसक्त होगा। इस विषयमें विशेष आगे कहा जायगा।

सत्प्रतियोगिकासत्प्रतियोगिकभेदद्वयं वा साध्यम्। तथाचोभयात्मकत्वेऽन्यतरात्मकत्वे वा, तादृग्भेदासंभवेन ताभ्यामर्थान्तरानवकाशः। नच—असत्त्वव्यतिरेकांशस्यासद्भेदस्य च प्रपञ्चे सिद्धसाधनमिति—वाच्यम् 'गुणादिकं गुण्यादिना भिन्नाभिन्नं समानाधिकृतत्वादिति भेदाभेदवादिप्रयोगे तार्किकाद्यङ्गीकृतस्य भिन्नत्वस्य सिद्धावपि उद्देश्यप्रतीत्यसिद्धेर्यथा न सिद्धसाधनं, तथा प्रकृतेऽपि मिलितप्रतीतेरुद्देश्यत्वान्न सिद्धसाधनम्। यथा तत्त्वाभेदे घटः कुम्भ इति सामानाधिकरण्यप्रतीतेरदर्शनेन मिलितसिद्धिरुद्देश्या, तथा प्रकृतेऽपि सत्त्वरहिते तुच्छे दृश्यत्वादर्शनेन मिलितस्य तत्प्रयोजकतया मिलितसिद्धिरुद्देश्येति समानम्। अत एव सत्त्वात्यन्ताभाववत्त्वे सत्यसत्त्वात्यन्ताभावरूपं विशिष्टं साध्यमित्यपि साधु। नच—मिलितस्य विशिष्टस्य वा साध्यत्वे तस्य कुत्राप्यप्रसिद्ध्या अप्रसिद्धविशेषणत्वं, प्रत्येकं सिद्ध्या मिलितस्य विशिष्टस्य वा साधने, शशशृङ्गयोः प्रत्येकं प्रसिद्ध्या शशीयशृङ्गसाधनमपि स्यादिति—वाच्यम्; तथाविधप्रसिद्धेः शुक्तिरूप्ये एवोक्तत्वात्। नच—निर्धर्मकत्वात् ब्रह्मणः सत्त्वासत्त्वरूपधर्मद्वयशून्यत्वेन तत्रातिव्याप्तिः; सद्रूपत्वेन ब्रह्मणः तदत्यन्ताभावानधिकरणत्वात् निर्धर्मकत्वेनैवाभावरूपधर्मानधिकरणत्वाच्चेति दिक्।

इति सदसद्विलक्षणत्वरूपमिथ्यात्वविचारः।

वा=अथवा सत्प्रतियोगिक=सत्त्वविशिष्टप्रतियोगी है जिसका ऐसा जो भेद; असत्प्रतियोगिक=असत्त्वविशिष्ट है प्रतियोगी जिसका ऐसा जो भेद; एवम्भूत जो भेदद्वय सो साध्य है, ऐसा साध्य करनेसे प्रथमोक्त व्याहति अर्थान्तर साध्यवैकल्यमेंसे कोई भी दोष नहीं है; भेदद्वयनिवेशका फल बतलाते हैं तथाचेति। तथा च=एवम्भूत साध्यविवक्षित होनेसे, प्रपञ्चके उभयात्मकत्वमतमें तथा अन्यतरात्मकत्वमतमें तादृग्भेद=उपरोक्त सत्प्रतियोगिकभेद तथा असत्प्रतियोगिकभेदके असंभव होनेसे ताभ्यां=उभयात्मकत्व, अन्यतरात्मकत्व इन दोनोंसे अर्थान्तरका अवकाश नहीं है; इसका स्फोरण यह है;—प्रपञ्चमें दो धर्म माने जाते हैं—सत्यात्मकत्व तथा असत्यात्मकत्व, तहां कोई वादी दोनों धर्ममानता है, और कोई वादी एक धर्मको मानता है; न्यायपेटिकाकारवाचस्पतिमिश्रने उभयात्मकत्व माना है; उन्होंने लिखा है कि-भ्रमज्ञानविषयीभूत जो अलीक संसर्ग है तद्विशिष्टत्वेन प्रपञ्च असत्यात्मक है और रूपान्तरसे

सत्यात्मक है। आख्यातिवादी कहते हैं कि भ्रमका विषयीभूत संसर्ग भी देशान्तरमें है इस लिए अलीक=असत्यात्मक कोई पदार्थ नहीं किन्तु सकल प्रपञ्च सत्यात्मकही है। बौद्धलोग ज्ञानातिरिक्त सर्व प्रपञ्चको असत्यात्मकही मानते हैं। मूलमें अर्थान्तरपदसे सिद्धसाधन भी ले लेना; तथाच यदि सत्प्रतियोगिकभेदकोही साध्य करें तो बौद्धोंको सिद्धसाधन है क्योंकि उनके मतमें सत्प्रतियोगिक भेद सिद्धही है। तैसे असत्प्रतियोगिकभेदका ही निवेश करें तो आख्यातिवादीको सिद्धसाधन है; क्योंकि उसके मतमें असत्प्रतियोगिकभेद सिद्धही है; तैसेही जिस मतमें उभयात्मक प्रपञ्च है उस मतमें केवल सत्प्रतियोगिक या केवल असत्प्रतियोगिक एकभेदके रहजानेसे सिद्धसाधन है; परन्तु उभयभेदका निवेशकरनेसे उपरोक्त पक्षत्रयमें कहीं भी भेदद्वयके न रहनेसे कहीं भी सिद्धसाधन या पूर्वोक्त अर्थान्तरादि दोष नहीं है। शंका करते हैं न चेति। असत्त्वप्रतियोगिक जो अत्यन्ताभाव है तादृश अत्यन्ताभावरूपसाध्यके एक देशको; च=तथा असद्भेदस्य=असत्त्वविशिष्टप्रतियोगिक जो भेद है तादृशभेदरूपसाध्यैकदेशको; प्रपञ्चे=पक्षरूप प्रपञ्चमें सिद्धत्वेन=प्रत्यक्ष प्रमाणसे सिद्ध होनेसे आपके अनुमानमें अंशतः सिद्धसाधन दोष है; जैसे पक्षतावच्छेदकोंके बहुत होनेपर किसी अधिकरणमें पक्षतावच्छेदकावच्छेदेन साध्यको ज्ञात होनेसे उस पक्षांशमें सिद्धसाधन दोष होता है; तैसे ही जहांपर साध्यतावच्छेदक नाना हों वहांपर भी सिद्धरूपसाध्यांशमें सिद्धसाधन है; क्योंकि साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नसाध्यप्रकारकपक्षतावच्छेदकावच्छिन्नपक्षविशेष्यकज्ञानरूप जो सिद्धसाधनताका बीज है वह उभयत्र तुल्य है; इति=ऐसा, वाच्यम्=कहना चाहिए, नच=नहीं कहना चाहिए। गुणादिकं=गुण, क्रिया, जाति, विशिष्टरूप, अवयवी, अंशी; ये सर्व क्रमशः गुण्यादिना=गुणी, क्रियावान, व्यक्ति, केवलरूप, अवयव, अंश, इनके साथ भिन्नाभिन्नं=भेद तथा अभेदवाले हैं, क्यों ? समानाधिकृतत्वात्=अभेदसंसर्गक जो ज्ञान तादृश ज्ञानीयविषयताके योग्य होनेसे—अन्योंसे अङ्गीकृत जो समवाय तथा तादात्म्यसे भिन्न जो संयोगादि हैं उन संयोगादिकोंमेंसे किसी भी सम्बन्धसे गुण्यादिविशेषणक जो ज्ञान है उससे भिन्न जो गुण्यादि विशेषणक ज्ञान है तादृश ज्ञानविशेष्यत्व होनेसे; नीलो घटः, चलः पटः, सन् घटः, मृद् घटः, इदं धान्यं, अयं व्रीहिः, इत्यादि ज्ञानोंमें गुणादिक विशेष्य हैं, इस अभेदसंसर्गकज्ञानविशेष्यत्वरूप हेतुमें पक्षधर्मता=पक्षनिरूपित वृत्तिता है, यहांपर अन्वयव्याप्ति तो नहीं है, क्योंकि दृष्टान्त नहीं है किन्तु व्यतिरेक व्याप्ति है, उसका ऐसा आकार समझना, जो घटत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदाभेदोभयाभाववान् है वह घटत्वावच्छिन्नोक्तविशेषणताकज्ञानविशेष्यत्वाभाववान् है; जैसे घटत्वावच्छिन्न घट तथा पटत्वावच्छिन्न पट है; क्योंकि घटोघटः; तथा पटः पटः; इत्याकार प्रमा नहीं होती है। गुणादिक गुण्यादिकसे सर्वथा भिन्न हैं यह तार्किकोंका मत है, और भिन्नाभिन्न हैं यह भट्टसांख्यपातञ्जलादिका मत है, इन दोनों मतोंका परस्पर वादियोंने निरसन तथा समर्थन किया है और यहांपर चन्द्रिकाकारने भी इस विषयका अच्छानिरूपण किया है। परन्तु अपनी सरलाके अध्येता सरलबुद्धिवाले जिज्ञासुओंके लिए अनुपयुक्त जानकर यहांपर इस कडाकूटको नहीं उतारा, प्रविष्ट लोग

वहां हीं देखें। इति=इत्याकारक जो भेदाभेदवादिप्रयोगे=भट्टसांख्यपातञ्जलादिद्वारा तार्किकोंके प्रति क्रियमाण न्यायप्रयोग, उस न्याय प्रयोगमें तार्किकादिसे अङ्गीकृत जो गुणगुण्यादिका भेद उस भेदको सिद्धावपि=निश्चित होनेपर भी, उद्देश्यप्रतीत्यसिद्धेः=निर्दिष्टप्रयोगके तात्पर्य्यकी विषयीभूत जो "गुणादिकं गुण्यादेर्भेदाभेदोभयवत्" इत्याकारिका प्रतीति तादृशप्रतीतिरूप उद्देश्यकी, असिद्धेः=सिद्धि न होनेसे जैसे सिद्धसाधन नहीं है; उपर्युक्त वाक्यमें "उद्देश्या चासौ प्रतीतिः" ऐसा कर्मधारय समास है। तथा=तिसीप्रकारसे प्रकृतेऽपि=उपरोक्तमिथ्यात्वसाधकन्यायप्रयोगमें भी मिलित प्रतीतेः=सत्प्रतियोगिक तथा असत्प्रतियोगिक जो भेदादिद्वय तादृश भेदादिद्वयवत्ता प्रतीतिको, उद्देश्यत्वात्=फलत्वेन अभिप्रेत होनेसे, न सिद्धसाधनम्=सिद्धसाधन नहीं है। उभयत्वरूपावच्छिन्नविषयकत्वविशिष्ट अनुमितिमें प्रत्येक रूपावच्छिन्नसाध्यसिद्धिको प्रतिबन्धकता नहीं है; इस लिए निगदित दोष नहीं है यह तात्पर्य्य है। ननु दृश्यत्वरूप जो हेतु है वह सत्प्रतियोगिकभेदविशिष्ट निखिल पदार्थोंमें रहता है, इसलिए दृश्यत्वके उपपादकत्वेन सत्प्रतियोगिकभेदको ही साध्य कीजिए द्वितीयदल क्यों देते हो, अतः कहते हैं यथेति। जैसे तत्त्वाभेदे=अत्यन्ताभेद होनेपर "घटः कुम्भः" इत्याकारक समानाधिकरण्यप्रतीतेः=भेदसमानाधिकरण जो अभेद तादृश अभेदसंसर्गविषयक प्रतीतिको न देखनेसे भेदाभेद वादिओंके प्रयोगमें मिलितकी सिद्धि उद्देश्य है। तथा=तैसेही सत्त्वरहिते तुच्छे=सत्त्वात्यन्ताभाववाला तथा सत्त्वावच्छिन्नप्रतियोगिकभेदवाला जो शशशृंगादिरूप तुच्छपदार्थ है उस तुच्छ पदार्थमें दृश्यत्वको नहीं देखनेसे मिलितस्य=उभयाभाव या उभयभेदको तत्प्रयोजकतया=दृश्यत्वका प्रयोजक होनेसे प्रकृतेऽपि=मिथ्यात्वसाध्यक अनुमानमें भी मिलित=उभयाभाव वा उभयभेदकी सिद्धिः=निश्चिति उद्देश्या है, इति=इस प्रकारसे भेदाभेदवादिओंके अनुमानके समान यह अनुमान भी निर्दोष है, अत एव=दोष निराससेही सत्त्वात्यन्ताभाव विशिष्ट जो असत्त्वात्यन्ताभाव—तद्रूपजो विशिष्ट है वह साध्य है, इत्यपि साधु=यह कथन भी शोभन है। शंकाकरके कहते हैं नचेति। मिलित=परस्परविशेष्यविशेषणभावापन्नत्वेन अविवक्षित जो अभावद्वय है उसको, वा=अथवा विशिष्टस्य=सामानाधिकरण्येन सत्त्वात्यन्ताभावविशिष्ट—असत्त्वात्यन्ताभावको साध्य=साध्यता होनेपर तस्य=उपरोक्त मिलित तथा विशिष्टको कहीं पर भी सदसदधिकरणमें प्रसिद्ध न होनेसे अप्रसिद्ध विशेषणत्व है, अर्थतः विशिष्टको साध्यकरो तो साध्यका विशेषणीभूत सामानाधिकरण्य अप्रसिद्ध है, और मिलितको साध्यकरो तो साध्यरूप विशेषण अप्रसिद्ध है। उभयको साध्यता होनेपर साध्यरूप विशेषण कहींपर भी प्रमित नहीं हुआ है तथाच अन्वयदृष्टान्तके न मिलनेसे व्याप्तिग्रह न होगा इसी दोषमें अप्रसिद्धविशेषणताका पर्य्यवसान है, प्रत्येककी सिद्धिसे मिलित या विशिष्टका साधन करनेमें "शशशृंग" एतद् घटक प्रत्येकको प्रसिद्ध होनेसे शशीयशृंग=शशसंबन्धि शृंगका साधन भी होगा; शंका—विशिष्टके साधनमें यह दूषण दिया गया है मिलितके साधनमें नहीं, इसलिए दोष-

दाताकी न्यूनता है, समाधान। शशीयशृंगसाधनं, इस वाक्यके दो अर्थ हैं—शशीयत्वविशिष्ट शृंगका संयोगादिसम्बन्धसे साधन, यह एक अर्थ है; और "शशीय शृंग है" इस रीतिसे तादात्म्यसे साधन, यह दूसरा अर्थ है; फलतः तादात्म्यसम्बन्धसे शशीय तथा शृंगको कहींपर भी ज्ञात न होनेसे साध्याप्रसिद्धि है, तथाच उभयके साधनमें भी यह दोष है। इति=इस प्रकारसे कहना चाहिए, नच=नहीं कहना चाहिए, क्यों? तथाविध=मिलित तथा विशिष्टकी प्रसिद्धिको शुक्तिरूप्यमेंही उक्त होनेसे, श्रीचित्सुखाचार्य्यने साध्यकी प्रसिद्धि इस अनुमानसेकी है—सत्त्वासत्त्वे एकधर्मिनिष्ठात्यन्ताभाव प्रतियोगिनी, धर्मत्वात् रूपरसवत्। तैसेही इष्टसिद्धिकारके अनुमानसे भी साध्यप्रसिद्धि होती है:—सत्त्वं असत्त्वानधिकरणानात्मनिष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगि, धर्मत्वात् रूपवत्। शंका करते हैं नचेति, ब्रह्मको निर्धर्मक होनेसे सत्त्वासत्त्वरूपधर्मद्वयशून्यत्व होनेसे तत्र=ब्रह्ममें अतिव्याप्ति है, नच=नहीं है, ब्रह्मको सद्रूप होनेसे सत्त्वात्यन्ताभावाधिकरणत्व नहीं है, अथवा निर्धर्मक होनेसेही अभावरूपधर्मका अनधिकरणत्व है; शंका—यहांपर ब्रह्मको निर्धर्मक कहा है सो कैसे हो सकता है क्योंकि "सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म" (तै–२।१।१) इत्यादि श्रुतिओंमें तो ब्रह्मको सत्यत्वादि धर्मविशिष्ट वतलाया है; समाधान, श्रुतिओंमें जो ब्रह्मके धर्म वतलाये हैं वे सत्त्वादि–उपहितमेंहीं समझना, अर्थात् सत्त्वादिधर्मोपहित ब्रह्ममेंहीं सत्त्वादि धर्मका संवन्ध है, शुद्धमें नहीं, क्योंकि धर्मधर्मिका तादात्म्य अङ्गीकृत होनेसे, तत्त्वज्ञानसे धर्मका नाश होनेपर ब्रह्मरूप धर्मिका भी नाश होजायगा यदि ऐसा कहोकि–धर्मीके समान सत्तावाला जो धर्म होता है उस धर्मके नाश होनेपर धर्मीका नाश होता है और आरोपित जो धर्म है वहतो वास्तविक धर्मही नहीं है, अतः उसके नाश होनेपर भी धर्मिका नाश नहीं होता है; तव तो कैवल्यमें शुद्ध ब्रह्मके होनेपर भी वहां किसी धर्मका भान नहीं होता है, अतः शुद्धमें कोई धर्म नहीं है यही मानना ठीक है; आचार्य्यने कहा भी है:—'रागेच्छा सुखदुःखादि वुद्धौ सत्यां प्रवर्तते। सुषुप्तौ नास्ति तन्नाशे तस्माद्बुद्धेस्तुनात्मनः' ब्रह्मको स्वप्रकाशता होनेसे वृत्तिविषयत्व भी शुद्धमें नहीं है, किन्तु वृत्त्युपहितमें ही है यह वाचस्पतिमिश्रको सम्मत है तथा उक्तयुक्तिसे सत्त्वादि धर्म भी सत्त्वोपहितमेंहीं हैं शुद्धमें नहीं, इसी लिए ब्रह्ममें उभयाभाव रह जानेसे अतिव्याप्ति कही है। प्रश्न, अतिव्याप्ति तो समझगये परन्तु इसका समाधान अभीतक समझमें नहीं आया है? उत्तर, "सद्रूपत्वेन ब्रह्मणः" इत्यादिसे समाधानभी समझ लीजिए "सद्रूपत्वेन बाध्यत्वाभाववत् होनेसे' इस कथनसे यह सूचित किया कि भावरूप धर्म हम ब्रह्ममें नहीं मानते हैं परन्तु अभाव रूप धर्म मानते हैं तथा च बाध्यत्वाभावरूपसत्त्वब्रह्ममें रह जानेसे तदत्यन्ताभाव नहीं रहा अतः अतिव्याप्ति नहीं है; यदि ऐसा कहोकि जैसे सत्त्वादिभावरूप धर्म सत्त्वोपहितमें रहते हैं तैसेही अभावरूप धर्मभी अभावरूपधर्मोपहितमें ही रहेगा शुद्धमें नहीं, तहां मूलकार कहते हैं निर्धर्मकत्त्वेनेति, जब यों हुआ तब तो निर्धर्मक होनेसेही शुद्धब्रह्ममें उपरोक्त दोनों अभावरूप मिथ्यात्वभी ब्रह्ममें नहीं रहा अतः सुतरां अतिव्याप्ति नहीं है, अभावद्वयोपहितमें ही अभाव-

द्वय रहेगा और उपहितका तो मिथ्यात्व हम शुद्धब्रह्मवादिओंको इष्ट ही है, इति=इस प्रकारसे आदिमिथ्यात्वका दिक्प्रदर्शनवत् थोडासा निरूपण किया गया.

इति सरलायां प्रथममिथ्यात्वनिरुक्तिः।

अथद्वितीयमिथ्यात्वोपपत्तिः ।

प्रतिपन्नोपाधौ त्रैकालिकनिषेधप्रतियोगित्वं वा मिथ्यात्वम् । ननु–प्रतिपन्नोपाधौ त्रैकालिकनिषेधस्य तात्विकत्वे अद्वैतहानिः, प्रातिभासिकत्वे सिद्धसाधनं, व्यावहारिकत्वेऽपि तस्य बाध्यत्वेन तात्विकसत्त्वाविरोधितया अर्थान्तरं, अद्वैतश्रुतेरतत्वावेदकत्वं च तत्प्रतियोगिनः प्रातिभासिकस्य प्रपञ्चस्य पारमार्थिकत्वं च स्यादितिचेन्न; प्रपञ्चनिषेधाधिकरणीभूतब्रह्माभिन्नत्वान्निषेधस्य तात्त्विकत्वेऽपि नाद्वैतहानिकरत्वम् । न च तात्त्विकाभावप्रतियोगिनः प्रपञ्चस्य तात्विकत्वापत्तिः; तात्त्विकाभावप्रतियोगिनि शुक्तिरजतादौ कल्पिते व्यभिचारात् ।

अथ सरलायां द्वितीयमिथ्यात्वम् ।

अब द्वितीय मिथ्यात्वका निर्वचन करते हैं प्रतिपन्नेति । प्रतिपन्न=स्वप्रकारकधीविशेष्य उपाधि=अधिकरण इन दोनों पदार्थोंका अभेदान्वय है सप्तमीका अर्थ वृत्तित्व है इसका अन्वय निषेधमें है, त्रैकालिकनिषेधशब्दसे अत्यन्ताभाव लेना उसका प्रतियोगित्वमें अन्वय है; उप=समीपे आधीयते यत्किञ्चिद् अस्मिन्निति उपाधिः, इस प्रकारकी व्युत्पत्तिसे उपाधिपद अधिकरणका बोधक है, तथाच मिलितार्थ यह हुआकि–स्वप्रकारक धीविशेष्याभिन्नाधिकरणवृत्त्यत्यन्ताभावप्रतियोगित्व मिथ्यात्व है । शुक्तिरूप्यरूपदृष्टान्तमें लक्षण घटा लीजिए; स्वपदसे कल्पित पदार्थका ग्रहण है तथा च रजतप्रकारक जो धी ,' इदं रजतम्" इत्याकारक शुक्त्यधिष्ठानक मिथ्याज्ञान तादृश मिथ्याज्ञानमें विशेष्यरूप जो इदमाभिन्न शुक्तिसामान्यस्वरूप तद्वृत्ति जो, "शुक्तौ रजतं, नासीत्, न भविष्यति, नास्ति" इत्याकारक अत्यन्ताभाव तादृशात्यन्ताभावका प्रतियोगित्व शुक्तिमें अध्यस्त रजतमें रह गया, इसलिए दृष्टान्तमें लक्षणसमन्वय हुआ । अब पक्षमें घटाइए; स्वप्रकारक धीसे "द्वैतवद् ब्रह्म" इत्याकारक जो भ्रान्त लोगोंको धी उत्पन्न होती है उसका ग्रहण किया इस धीमें विशेष्यरूप जो ब्रह्म तद्रूप जो अधिकरण उसमें रहनेवाला जो अभाव="नेह नानाऽस्ति किञ्चन" (बृ. ।४।४।१९) इस श्रुतिसे बोधितात्यन्ताभाव तत्प्रतियोगित्व पक्षरूपद्वैतमें रह गया, इसलिए लक्षणसमन्वय हुआ । "नेह नानाऽस्ति किञ्चन" इस श्रुतिका अर्थ यह है कि–इदं पदसे प्रत्यासत्त्या ब्रह्मका ग्रहण है, सप्तमीका अर्थ वृत्तित्व है, नाना किञ्चन ये दोनोंपद प्रतियोगिरूप द्वैतके उपस्थापक हैं, नकारका अर्थ अत्यन्ताभाव है, क्योंकि सप्तमीके समभिव्याहारमें–आकाशेरूपं नास्ति, इत्यादि स्थलमें नकारको अत्यन्ताभावका बोधकत्व ही देखा गया है, तथाच मिलितार्थ यह हुआ

कि–ब्रह्माभिन्नाधिकरणवृत्त्यन्ताभावप्रतियोगि किञ्चननानापदबोध्यम् । प्रथमान्तार्थमुख्यविशेष्यकशाब्दबोध होता है, उस नियमके अनुसार यह द्वैतविशेष्यकशाब्दबोध लिखा है; अभावविशेष्यकशाब्दबोधका आकार ऐसा होगा कि–किञ्चननानापदबोध्यनिष्ठप्रतियोगितानिरूपकब्रह्मरूपाधिकरणवृत्त्यन्ताभावः, इस लक्षणमें "प्रतिपन्नोपाधौ" असत्‌में अतिव्याप्तिवारणके लिए है, क्योंकि त्रैकालिकनिषेधप्रतियोगित्वतो असत्‌में भी है; जब उपरोक्त विशेषण दिया तब लक्षण नहीं गया क्योंकि असत्प्रकारकधी ही अप्रसिद्ध है, अतः तद्घटित लक्षणका भी असत्‌में असंभव है; अभावमें यदि त्रैकालिकपद न दे तो प्रागभाव तथा प्रध्वंसाभावको लेके सिद्धसाधन होगा, क्योंकि स्वप्रकारकधीसे "घटवत्कपालं" यह धी ली तादृशधीमें विशेष्यरूप जो कपाल है तादृशकपालवृत्तिप्रागभावका तथा प्रध्वंसाभावका प्रतियोगित्व घटमें सिद्धही है, अतः सिद्धसाधन होगा, जब अभावांशमें त्रैकालिक विशेषण दिया तब यह दोष नहीं, क्योंकि प्रागभाव तथा प्रध्वंसाभाव त्रैकालिक नहीं है=प्रागभाव तथा प्रतियोगि जिस कालमें है उसकालमें प्रध्वंसाभाव नहीं; और जिस कालमें प्रतियोगी या प्रध्वंसाभाव है उसमें प्रागभाव नहीं। यद्यपि त्रैकालिक पद देनेपर भी घटप्रतियोगिककपालवृत्त्यन्योन्याभावको लेके सिद्धसाधन तदवस्थ है, तथापि 'त्रैकालिक निषेध' पदसे अत्यन्ताभाव ही विवक्षित है, क्योंकि संदर्शितार्थकउपरोक्तश्रुतिमूलक यह लक्षण है, और श्रुतिमें अत्यन्ताभावका ही ग्रहण है । शंका करते हैं नन्विति। प्रतिपन्नोपाधौ=स्व है प्रकार जिसमें ऐसी जो धी तादृशधीमें विशेष्यरूप जो अधिकरण उस अधिकरणमें वृत्ति त्रैकालिक निषेधस्य=अत्यन्ताभावको तात्त्विकत्वे=अबाध्यत्व होनेपर अद्वैतहानिः="नेह नानाऽस्ति किञ्चन"(बृ० ४।४।१९) इत्यादि श्रुतिओंसे ज्ञापित जो ब्रह्ममें दृश्यसामान्याभाव उसका विरोध होगा। उपरोक्त अत्यन्ताभावको प्रातिभासिकत्वे=ज्ञानसमकालीनसत्ताकत्वरूप प्रातिभासिकत्व होनेपर सिद्धसाधन है; 'कपाले घटो नास्ति' इत्याकारक जो भ्रमज्ञान है उसका विषयीभूत प्रातीतिक अत्यन्ताभाव होता है यह भाव है । व्यावहारिकत्वेऽपि=निगदित अत्यन्ताभावको व्यावहारिकत्वे=ब्रह्मज्ञानेतरज्ञानाबाध्यत्वरूप व्यावहारिकत्व होनेपर तस्य=व्यावहारिकात्यन्ताभावको बाध्यत्वेन=बाध्यता होनेसे, तात्त्विकसत्त्वाविरोधितया=प्रतियोगिरूपप्रपञ्चको अबाध्यत्व होनेपर भी प्रपञ्चाधिकरणमें संभावित होनेसे अर्थान्तरम्=प्रपञ्चमें सत्यत्वका विरोधि जो मिथ्यात्व है तादृश मिथ्यात्वकी सिद्धिरूप जो प्रकृतानुमानका प्रयोजन है उससे भिन्न साध्यसिद्धिमात्ररूप प्रयोजनकी सिद्धि है; अद्वैतश्रुतेः="नेहनानाऽस्ति किञ्चन" इत्यादि श्रुतिओंको अतत्त्वाऽऽवेदकत्वं=बाध्यविषयकत्वरूप अतत्त्वावेदकत्व होगा; च=और तत्प्रतियोगिनः=व्यावहारिक अत्यन्ताभावके प्रतियोगि प्रपञ्चको जो कि दो सत्तावादीकी रीतिसे प्रातिभासिकत्वेन अभिप्रेत है, पारमार्थिकत्वं=अबाध्यत्व होगा। भाव यह है कि समानसत्तावाले भाव तथा अभावका विरोध होता है, अतः अभावको व्यावहारिक होनेसे अभावका प्रतियोगिरूप जो प्रपञ्च है, उसे ब्रह्मज्ञानान्यज्ञानसे अबाधित होनेसे प्रातिभासिकत्वकी अनुपपत्ति होनेसे बलतः पारमार्थिकत्व होगा; इति चेन्न=ऐसा नहीं

कहना, क्यों ? प्रपञ्चके निषेधका अधिकरणीभूत जो ब्रह्म है, उस ब्रह्मके साथ अभिन्न होनेसे निषेधको; निषेधस्य=प्रपञ्चात्यन्ताभावत्वविशिष्टके साथ जो तादात्म्यापन्न स्वरूप उस स्वरूपको तात्त्विकत्वेऽपि नाद्वैतहानिकरत्वम्=अबाध्यत्व होनेपर भी अद्वैतहानिकरत्व नहीं है। फलतः मिथ्याभूतप्रपञ्चघटित प्रपञ्चात्यन्ताभावत्वेनात्यन्ताभावको बाध्य होनेपर भी केवल-रूपसे ब्रह्मके साथ अत्यन्ताभिन्न होनेसे अद्वैतहानिकरत्व नहीं है। शंका—प्रपञ्चके अध्यासार्थ अधिष्ठानरूप ब्रह्मका स्फुरण तो माननाही होगा और प्रपञ्चप्रतियोगिकत्रैकालिकाभावरूपा-त्यन्ताभावको ब्रह्मरूपता होनेसे ब्रह्मका स्फुरण ही मानों उपरोक्तात्यन्ताभावका स्फुरण है, और जिस अधिकरणमें जिस वस्तुका अभाव जिस कालमें स्फुरित होता है उसकालमें उस वस्तुका उस अधिकरणमें भ्रम नहीं होता है अन्यथा भ्रमकी निवृत्ति न होगी तथाच प्रपञ्चका भ्रम ब्रह्ममें नहीं बनेगा; समाधान। सत्वादिरूपसे अधिष्ठानाभिन्न अत्यन्ताभावका स्फुरण होनेपर भी प्रपञ्चात्यन्ताभावत्वेन स्फुरणके न होनेसे भ्रमकी अनुपपत्ति नहीं है। शंका—आपके मतमें प्रपञ्चात्यन्ताभावत्वादि जो जो ब्रह्मवृत्ति धर्म हैं उन्हें यदि ब्रह्मसे अतिरिक्त मानोगे तो ब्रह्म-निर्विशेष सिद्ध न होगा, अतः प्रपञ्चात्यन्ताभावत्वादि भी केवल ब्रह्म ही हैं तथाच ब्रह्मके स्फुरणके साथही ब्रह्मात्मक प्रपञ्चात्यन्ताभावत्वादिका भी स्फुरण हो जायगा; अतः अध्यासानु-पपत्ति तदवस्थ है; समाधान। उपरोक्त प्रपञ्चात्यन्ताभावत्वादिको ब्रह्मरूपता होनेपर भी और अध्यासाधिष्ठानत्वादिरूपसे प्रकाशमानता होनेपर भी प्रपञ्चात्यन्ताभावत्वेन प्रकाश न होनेसे अध्यासानुपपत्ति नहीं है।

शंका—आकाशादिभावरूपप्रपञ्चप्रतियोगिक जो अत्यन्ताभाव है तद्रूप यदि ब्रह्मको मानोगे तो जैसे भावभूतघटादिप्रतियोगिकात्यन्ताभाव अनुपलब्धि प्रमाणसे गम्य होता है तैसे ही ब्रह्मको भी अनुपलब्धि गम्यता होगी; तथाच भावरूपताका भंग होगा; समाधान। निषेधकी समान सत्तावाला जो प्रतियोगी है तादृशप्रतियोगिक जो अत्यन्ताभाव वह अत्य-न्ताभाव अनुपलब्धिसे गम्य होता है, और प्रकृतमें तो प्रपञ्चप्रतियोगिकात्यन्ताभावका प्रति-योगी जो प्रपञ्च वह अत्यन्ताभावकी समानसत्तावाला नहीं है, अतः प्रपञ्चात्यन्ताभाव अनु-पलब्धि गम्य नहीं है, और तद्रूप ब्रह्ममें भी अनुपलब्धिप्रमाणकत्व नहीं है; शंका, उक्त निषेधको यदि ब्रह्मरूप कहोगे तो उस निषेधमें त्रिकालसंगरूप त्रैकालिकत्व नहीं बनेगा, क्यों ? असंग-ब्रह्मबोधक श्रुतिके साथ विरोध होनेसे; समाधान। ब्रह्ममें कल्पित त्रिकालसंग रहता है; और श्रुतिमें वास्तविक संगका निषेध किया गया है, इस लिए कोई विरोध नहीं, अथवा त्रैकालिक पदका अर्थ त्रिकालसङ्गित्व नहीं करना किन्तु "प्रागभावाप्रतियोगित्वे सति ध्वंसाप्रतियोगित्वम्" करना, तो भी उपरोक्त दोष नहीं है; शंका—आपने जो त्रैकालिकका लक्षण किया है वह तो रासभशृंगादिरूप असत् पदार्थोंमें चला गया, क्योंकि प्रागभावाप्रतियोगित्वे सति ध्वंसाप्रति-योगित्वं गर्दभशृंगादिमें रहता ही है; समाधान। रासभशृंगादिरूपधर्मिको ही न होनेसे उसमें धर्म भी नहीं है; प्रथम मतान्तरकी रीतिसे सम्बन्ध बताया गया। तात्त्विकाभावप्रतियोगिनः=

अबाध्याभावका प्रतियोगी जो प्रपञ्च है उसको अबाध्यत्वकी आपत्ति है–यदि ऐसा न मानों तो प्रपञ्चरूपप्रतियोगिको मिथ्या होनेसे अभावको भी मिथ्यात्वही आवेगा, क्योंकि अभावकानिरूपक प्रतियोगी जब मिथ्या है तब निरूप्यरूप अभाव सत्य कैसे हो सकता है; कुच्छ शुक्तिरूप्यनिरूप्य सादृश्यादिक अप्रातिभासिक नहीं होते हैं, किन्तु प्रातिभासिक शुक्तिरूप्यनिरूप्य होनेसे प्रातिभासिक ही होते हैं, यह शंकाकर्त्ताकाभाव है, नच=ऐसी शंका नहीं करना; क्यों ? तात्विकाभावका प्रतियोगी जो कल्पित शुक्तिरजतादि उसमें व्यभिचार होनेसे= जो जो तात्विकस्वरूपाभावका प्रतियोगि है सो सो तात्विक है इस व्याप्तिमें व्यभिचार है; भावार्थ यह कि–प्रपञ्चात्यन्ताभावको प्रपञ्चात्यन्ताभावत्वेन मिथ्याभूतप्रतियोगिनिरूपित होनेसे मिथ्यात्व है, और केवल स्वरूपाभिन्न जो ब्रह्म है उसको उक्तनिरूपितत्व न होनेसे मिथ्यात्व नहीं है; अत एव केवल स्वरूपसे शुक्तिरूप्यादिका अभाव भी अधिष्ठान चिद्रूपही है, और प्रातीतिकप्रतियोगिनिरूपितत्वेन प्रातीतिक है; और अधिष्ठानतावच्छेदक जो शुक्ति है तदवच्छिन्न जो प्रातिभासिकप्रतियोग्युपलक्षिताभावत्वविशिष्टरूप तिसरूपसे व्यावहारिक है, और उपरोक्त केवल चिद्रूपसे तात्त्विक है, जब यों हुआ तब निरूपकं निरूप्यतावच्छेदकविशिष्टसमसत्ताकमेव यह व्याप्तिका स्वरूप फलित हुआ, और ऐसी व्याप्ति माननेसे हमारी कोई हानि नहीं।

अतात्विक एव वा निषेधोऽयम्। अतात्विकत्वेऽपि न प्रातिभासिकः, किंतु, व्यावहारिकः। नच–तर्हि निषेधस्य बाध्यत्वेन तात्विकसत्ताविरोधित्वादर्थान्तरमिति–वाच्यम्; स्वाप्नार्थस्य स्वाप्ननिषेधेन बाधदर्शनात्। निषेधस्य बाध्यत्वं पारमार्थिकसत्त्वाविरोधित्वे न तन्त्रम्, किंतु निषेध्यापेक्षया न्यूनसत्ताकत्वम्; प्रकृते च तुल्यसत्ताकत्वात् कथं न विरोधित्वम्।

वा=अथवा अयं=उपरोक्तप्रपञ्चप्रतियोगिकात्यन्ताभाव अत्तात्विकः=बाध्य, एव=ही है। यदि ऐसा है तब तो एकाधिकरणमें भाव तथा अभाव असमसत्ताक रहते हैं तथाच व्यावहारिक घटादिका प्रकृतानुमानसे प्रातिभासिक ही अत्यन्ताभाव कहना होगा तब तो पूर्वोक्त स्पष्ट ही सिद्धसाधन होगा ऐसी आशंका मनमें लाके कहते हैं–अतात्विकत्वेऽपि न प्रातिभासिकः=अतात्विक होनेपर भी प्रातिभासिक नहीं है किन्तु व्यावहारिक है। अत्यन्ताभावत्वरूपसे अभावको प्रतियोगिनिरूप्य होनेसे अत्यन्ताभावत्वरूपसे ही प्रतियोगि–विरोधिता है, उस विरोधिताकी निवृत्तिके लिए प्रतियोगीसे भिन्न सत्ताकत्व अभावको अपेक्षित है; अर्थात् विरोधितावच्छेदकरूपावच्छिन्नत्वेन अपेक्षित है, और एतद्रूपावच्छिन्नत्वेन अभावको प्रतियोगीसे विषमसत्ताक न मानकर केवल ब्रह्मरूपसे भिन्नसत्ताकत्वका स्वीकार व्यर्थ है तथा अभावकी ब्रह्मस्वरूपताका स्वीकार भी व्यर्थ है, और भाव तथा अभाव इन दोनोंको एक अधिकरणमें समसत्ताक मानलेनेमें भी दोष नहीं है यह अर्थ स्वप्नराज तथा स्वप्नराजके अभावको दृष्टान्त-बनाकर कहनेवाले हैं हीं यह भाव है। शंका करते हैं न चेति। तर्हि=अभावको व्यावहा-

रिकत्व होनेपर निषेधस्यवाध्यत्वे=निषेधको ब्रह्मज्ञानसे वाध्यता माननी पडेगी, और वाध्यता होनेसे तात्त्विकसत्त्वका अविरोधित्व होगा और अविरोधित्व होनेसे अर्थान्तर है, भावार्थ यह है:—जैसे जीवमें ईशप्रतियोगिक व्यावहारिकभेद रहता है परन्तु इस भेदको वाधित होनेसे स्वप्रतियोगीभूत जो अभेद है तादृश अभेदनिष्ठपारमार्थिकत्वका विरोधित्व नहीं है, तैसे प्रपञ्चप्रतियोगिकनिषेधको वाधित होनेसे स्वप्रतियोगीभूत प्रपञ्चवृत्ति पारमार्थिकसत्त्वका विरोधित्व नहीं होगा; तथा च अभावको व्यावहारिक माननेसे आपको अभिप्रेत जो प्रपञ्चमें मिथ्यात्व उससे विलक्षण पारमार्थिकत्व सिद्ध होनेसे अर्थान्तर है, इति वाच्यम्=ऐसा कहना चाहिए, नच=नहीं कहना चाहिए; क्यों ? स्वप्नकल्पितार्थका स्वप्नकल्पित निषेधसे वाध देखनेसे, वाधनाम=मिथ्यात्व व्यवहारका है। यदि निषेधका वाध्यत्व स्वप्रतियोगिपारमार्थिकत्वका अविरोधिहो तब तो स्वप्नार्थका स्वप्ननिषेधके साथ वाध न होगा, क्योंकि वाध्यमान जो निषेध तद्वृत्ति वाध्यत्वही स्वप्रतियोगिपारमार्थिकत्वके अविरोधित्वमें तन्त्र हो जायगा। निषेधस्य=निषेधनिष्ठ वाध्यत्वं=मिथ्याव्यवहारविषयत्व पारमार्थिकसत्त्वके अविरोधित्वमें तन्त्र=व्याप्य नहीं है; किन्तु=लेकिन निषेध्यापेक्षया=प्रतियोगीकी अपेक्षासे न्यूनसत्ताकत्वं=निषेधनिष्ठन्यूनसत्ताकत्व पारमार्थिकसत्त्वाविरोधित्वमें तन्त्र है; च=और प्रकृते=व्यावहारिक प्रपञ्च तथा उसका निषेध; एवं स्वाप्नपदार्थ तथा तिनका निषेध इन स्थलोंमे निषेध तथा प्रतियोगीको तुल्यसत्ताक होनेसे निषेधको स्वप्रतियोगिपारमार्थिकत्वका कैसें विरोधित्व न होगा; तथाच अर्थान्तर नहीं है। और मिथ्यात्वका यह लक्षण फलित हुआ कि=स्वान्यूनसत्ताकस्वसमानाधिकरणात्यन्ताभावप्रतियोगित्वम् ।

नच—निषेधस्य निषेधे प्रतियोगिसत्त्वापत्तिरिति—वाच्यम्; तत्र हि निषेधस्य निषेधे प्रतियोगिसत्त्वमायाति, यत्र निषेधस्य निषेधबुद्ध्या प्रतियोगिसत्त्वं व्यवस्थाप्यते, न निषेधमात्रं निषिध्यते, यथा रजते नेदं रजतमिति ज्ञानानन्तरं इदं नारजतमिति ज्ञानेन रजतं व्यवस्थाप्यते। यत्र तु प्रतियोगिनिषेधयोरुभयोरपि निषेधस्तत्र न प्रतियोगिसत्त्वम्; यथा ध्वंससमये प्रागभावप्रतियोगिनोरुभयोर्निषेधः। एवं च प्रकृतेऽपि निषेधवाधकेन प्रतियोगिनः प्रपञ्चस्य निषेधस्य च वाधनान्ननिषेधस्य वाध्यत्वेऽपि प्रपञ्चस्य तात्त्विकत्वम्; उभयोरपि निषेध्यतावच्छेदकस्य दृश्यत्वादेस्तुल्यत्वात् । न चातात्त्विकनिषेधवोधकत्वे श्रुतेरप्रामाण्यापत्तिः, ब्रह्मभिन्नं प्रपञ्चनिषेधादिकं अतात्त्विकमित्यतात्त्विकत्वेन वोधयन्त्याः श्रुतेरप्रामाण्यासंभवात् ।

शंका करते हैं न चेति। निषेधस्यनिषेधे=उपरोक्त अत्यन्ताभावका अभाव होनेपर प्रतियोगीके सत्त्वकी प्राप्ति है क्योंकि–'अभावविरहात्मत्वं वस्तुनः प्रतियोगिता;' इस औदयनवाक्यसे अभावाभावको प्रतियोगिरूपता ही वतलाई गई है; इति=इस प्रकारसे नच वाच्यम्=नहीं कहना। तत्र=वहां ही पर निषेधका निषेध होनेपर प्रतियोगिसत्त्व आता है,

जहां निषेधप्रतियोगिक जो निषेध है तादृशनिषेधविषयत्वविशिष्टबुद्धिसे प्रतियोगिका सत्त्व व्यवस्थित किया जाता है और निषेधमात्र ही नहीं निषिद्ध किया जाता है; यथा=जैसे रजते=व्यावहारिक रजतमें नेदं रजतम्=यह रजत नहीं है ऐसा ज्ञान हुआ इस ज्ञानके बाद इदं नारजतम्=यह अरजत नहीं है इत्याकारक ज्ञानसे रजतत्व व्यवस्तित किया जाता है; यत्र तु=जिस स्थलमें प्रतियोगि तथा निषेध इन दोनोंका निषेध एककालमें होता है तत्र=तिस स्थलमें प्रतियोगीका सत्त्व नहीं होता है; जैसे ध्वंसके समयमें प्रागभाव और प्रागभावका प्रतियोगी इन दोनोंका निषेध है, फलतः प्रागभावरूप अभावका ध्वंसावच्छेदेन निषेध है परन्तु वहां पर प्रतियोगिका सत्त्व नहीं हैं। क्योंकि प्रागभाव प्रतियोगि प्रध्वंस, इन तीनोंमेंसे अन्यतमका अधिकरणीभूतकाल इतर द्वयका अनधिकरण होता है यह नियम है इस बातको पहले भी कह चुके हैं। प्रागभावप्रतियोगिनोः इत्यादि पङ्क्तिका यथा श्रुत अर्थ कर दिया है; परन्तु इसका वास्तविक अर्थ ऐसा करना कि–प्राक्=निषेधधीसे पूर्व; अभाव पदसे अत्यन्ताभाव लेना और प्राक् पदसे उत्तर और अभावपदसे पूर्व=प्राग् तथा अभावपद इन दोनोंके मध्यमें आरोपित पदका अध्याहार करना और अध्याहृत पदको अभाव तथा प्रतियोगीका विशेषण समझना तथाच सम्मिलित अर्थ यह हुआ कि–निषेधधीसे पूर्व आरोपित जो अत्यन्ताभाव तथा प्रतियोगि उन दोनोंका निषेध है। भावार्थ यह है कि=प्राचीनन्यायमतमें यत्कालावच्छेदेन जिस वस्तुमें जिस वस्तुका एकसंसर्गाभाव रहता है तत्कालावच्छेदेन उस वस्तुमें उस वस्तुका दूसरा संसर्गाभाव नहीं रहता है तथाच ध्वंसकालावच्छेदेन घटका कपालमें व्यावहारिक अत्यन्ताभाव नहीं है, इसलिए आरोप बन सकता है; अतः "इदं कपालं घटवन्नवेति" इस संशयरूप आरोपके बाद इस कपालमें घट तथा घटका अत्यन्ताभाव ये दोनों नहीं हैं, इस रीतिसे निषेध होनेपर जैसे प्रतियोगीरूप घटका सत्त्वरूप अमिथ्यात्व नहीं आता है, तद्वत् प्रकृतमें भी इत्यादि उत्तरान्वयी है। उपरोक्त पङ्क्तिका यह अन्तिम अर्थही उपयुक्त है, क्योंकि अत्यन्ताभावका अत्यन्ताभाव होनेपर प्रतियोगीका सत्त्व होता है यह प्रकृत है, उसमें प्रागभावके अत्यन्ताभावको घसीटकर व्यभिचार पिशाचके सञ्चारका प्रदर्शन अप्रासंगिक होगा; एवञ्च=जब यों हुआ तब प्रकृतेऽपि=संशोध्यमान अनुमानमें भी निषेधबाधकेन=प्रपञ्चके अभावका जो अभाव उसका ग्राहक जो मिथ्यात्वका अनुमापक दृश्यत्वादिरूप हेतु उस हेतुसे प्रतियोगी जो प्रपञ्च और उसका निषेध इन दोनोंके बाधनात्=मिथ्यात्वका निश्चय होनेसे निषेधस्य=प्रपञ्चाभावस्य बाध्यत्वेऽपि=निषेधेऽपि=प्रपञ्चाभावका निषेध होनेपर भी प्रपञ्चको तात्त्विकत्वं=अमिथ्यात्वं न=नहीं है; उभयोरपि=प्रपञ्चाभाव तथा प्रपञ्च इन दोनोंमें भी निषेध्यतावच्छेदकस्य=उपरोक्त मिथ्यात्वसाधक जो अनुमान है तादृश अनुमानीयपक्षतावच्छेदकका घटक जो चिद्भिन्नत्वसमानाधिकरण सत्त्वेन प्रतीत्यर्हत्वरूप दृश्यत्व वह है आदिमें जिसके एवम्भूत निषेध्यतावच्छेदकको तुल्यत्वात्=मिथ्यात्वकी जो अनुमिति है तादृश अनुमितिविशेष्यतावच्छेदकत्वेन दोनोंमें प्रतीयमान होनेसे। शंका करते हैं न चेति। अतात्त्विकनिषेध बोधकत्वे=मिथ्याभूत बाधित निषेधका बोधकत्व होनेपर श्रुतेः=नेहनानेत्यादि

श्रुतिका वाध होगा=अप्रामाण्यापत्ति है, नच=नहीं है; ब्रह्मसे भिन्न जो प्रपञ्च निषेधादिक है, वह अतात्विकम्=मिथ्या है, इस रीतिसे अतात्त्विक पदार्थको अतात्त्विकरूपसे बोधन करनेवाली श्रुतिके अप्रामाण्यका असंभव है; फलतः जो पदार्थ जैसा है उस पदार्थको उस रूपसे बोधन करती हुई श्रुति अप्रमाण नहीं हो सकती है।

शंका—"नेह नानाऽस्ति किञ्चन" (बृ. ।४।४।१९) इस श्रुतिसे मिथ्यात्वेन प्रपञ्च तथा प्रपञ्चाभावका बोध कैसे होगा; क्योंकि इस श्रुतिसे ब्रह्ममें प्रपञ्चात्यन्ताभावका ज्ञान होनेपर भी उस अभावमें प्रपञ्चके सामानाधिकरण्यका और प्रपञ्चकी सत्तासे अन्यूनसत्ताकत्वका बोध नहीं होता है। समाधान=इस श्रुतिमें जो इह पद है उससे प्रपञ्चवत् ब्रह्मका बोध होता है और किञ्चनपदसे "अतोऽन्यदार्त्तम्" (बृ. ।३।४।२) इत्यादि श्रुतिसे विनाशित्वेन प्रमित दृश्यमात्र लिया जाता है, तथाच "विनाशिदृश्यविशिष्टे ब्रह्मणि विनाशि दृश्यं नाऽस्ति" इत्याकारक बोध श्रुतिसे बन सकता है; विनाशिदृश्यविशिष्ट ब्रह्ममें विनाशिदृश्याभाव उपरोक्त श्रुतिसे प्रमित है और श्रुतिसे प्रमित होनेसे उसमें प्रातिभासिकत्वका बाध है, फलतः विनाशिदृश्यत्वावच्छेदेन अप्रातिभासिक तथा स्वसमानाधिकरण जो अत्यन्ताभाव तादृश अत्यन्ताभावप्रतियोगित्वका निश्चय उक्त अनुमितिद्वारा श्रुतितात्पर्यका विषय है, यह शंका तथा समाधान स्वसमानाधिकरणस्वान्यूनसत्ताकात्यन्ताभावप्रतियोगित्वं मिथ्यात्वम्। इस परिष्कृत लक्षणको उद्देश्य कर है।

ननु—तन्निषेधप्रतियोगित्वं किं स्वरूपेण, उतासद्विलक्षणस्वरूपानुपमर्देन पारमार्थिकत्वाकारेण वा। नाद्यः; श्रुत्यादिसिद्धोत्पत्तिकस्यार्थक्रियासमर्थस्याविद्योपादानकस्य तत्त्वज्ञाननाश्यस्य च वियदादेः रूप्यादेश्च धीकालविद्यमानेन असद्विलक्षणस्वरूपेण त्रैकालिकनिषेधायोगात्। नापि द्वितीयः अवाध्यत्वरूपपारमार्थिकत्वस्य वाध्यत्वरूपमिथ्यात्वनिरूप्यत्वेन अन्योन्याश्रयात्, पारमार्थिकत्वस्यापि स्वरूपेण निषेधे प्रथमपक्षोक्तदोषापत्तिः, अतस्तस्यापि परमार्थिकत्वाकारेण निषेधे अनवस्था स्यात्—इति चेन्मैवं; स्वरूपेणैव त्रैकालिकनिषेधप्रतियोगित्वस्य प्रपञ्चे शुक्तिरूप्ये चाङ्गीकारात्।

ननु तन्निषेधप्रतियोगित्वं=आपके अनुमानसे तथा नेहनानेत्यादिश्रुतिओंसे ज्ञायमान जो निषेध प्रतियोगित्व है वह क्या स्वरूपपेण है=स्वशब्दसे प्रतियोगीको पकडना चाहिए, उस स्वरूप प्रतियोगीका जो रूप=असाधारणसामान्यधर्म दृश्यत्वादि, विशेष धर्म आकाशत्वादि तद्रूपेण है; अर्थात् जैसे पुरोवर्त्तिशुक्त्यादिमें रजतत्वेन रजताभाव रहता है; तैसे ब्रह्ममें दृश्यत्वादि जो असाधारणसामान्यादि धर्म हैं तद्धर्मेणैव अभाव है; उत=या पारमार्थिकत्वरूपसे असद्विलक्षणस्वरूपानुपमर्देन=असद्विलक्षणके स्वरूपका उपमर्द नहीं होता है जिससे, फलतः, एवम्भूतपारमार्थिकत्वरूपसे। इसका सीधा सादा अर्थ यह है=जिस अधिकरणमें यद्देशावच्छेदेन यत्कालावच्छेदेन यद्रूपावच्छिन्न जो वस्तु रहती है उसी अधिकरणमें तद्देशावच्छेदेन तत्कालावच्छेदेन तद्रूपावच्छिन्न यदि उसी वस्तुका अभाव हो तो उसके स्वरूपका उपमर्द कहा

जाता है और उसी अधिकरणमें तद्देशावच्छेदेनैव तत्कालावच्छेदेनैव प्रतियोगिताव्यधिकरण-धर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताक उसी वस्तुका अभाव होनेपर भी स्वरूपका उपमर्द नहीं कहा जाता है, क्योंकि जिस रूपसे प्रतीति हुई है उस रूपसे वह रह गया है। "अध्ययनेन वसति" यहांपर जैसे फल हेतुमें तृतीया है अर्थात् अध्ययनके लिए रहता है तैसाही अर्थ यहांपर भी करना, ब्रह्ममात्रवृत्ति धर्मका नाम पारमार्थिकत्व है तथाच यह अर्थ हुआकि—असत्पदार्थसे विलक्षण जो प्रपञ्च है उसके स्वरूपके उपमर्दाभावके लिए ब्रह्ममात्रवृत्ति, अत एव प्रतियोगिताव्यधिकरणपारमार्थिकत्वरूपावच्छिन्नप्रतियोगित्व है; आकार शब्दका अर्थ रूप है। प्रथम विकल्पको लेके दोष देते हैं नाद्य इति। प्रथम पक्ष ठीक नहीं है, क्यों ? श्रुत्यादि-सिद्धोत्पत्तिकत्वादिविशेषणविशिष्टके निषेधका अयोग होनेसे । ऐसा सम्बन्ध समझना; **श्रुत्यादिसिद्धोत्पत्तिकस्य**="इदं सर्वमसृजत" (बृ. । १।२।५) इस श्रुतिमें पूर्वप्रकृतब्रह्म कर्तृत्वेन विवक्षित है; इदं सर्वं=परिदृश्यमान यह व्यावहारिक, तथा प्रातिभासिक प्रपञ्च इसको ब्रह्म असृजत=उत्पन्न करता भया। "सत्यं चानृतं च सत्यमभवत्" (छा. ।७।२।१) सत्यं=ब्रह्म, सत्यं=व्यावहारिक, अनृतं=प्रातिभासिक, अभवत्=विवर्त्तित होता भया इत्यादि श्रुति; तथा प्रपञ्चः, उत्पत्तिमान् सावयवत्वात् घटादिवत् इत्यादि अनुमान और स्मृत्यादि जो आदिपदसे गृहीत हैं इन सर्वसे सिद्ध है उत्पत्ति जिसकी एवम्भूत जो प्रपञ्च है उसका; अर्थक्रि-यासमर्थस्य=अर्थक्रिया नाम है कार्य्यका; समर्थ नाम है=प्रयोजकका; एवम्भूत जो प्रपञ्च उसका; **अविद्योपादानकस्य**=अविद्या है उपादान जिसकी एवम्भूत जो प्रपञ्च उसका; तत्वज्ञानना-श्यस्य=अधिष्ठान ज्ञानसे नाश्य एवम्भूत जो प्रपञ्च उसका; तहां प्रपञ्चको अविद्योपादानक-त्व=अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां (श्वेताश्व० ४।५) इत्यादि श्रुतिओंसे तथा "मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्" (गीता ९।१०) इत्यादि स्मृतिओंसे सिद्ध है; और तत्त्वज्ञाननाश्यत्व= "विद्वान् नामरूपाद्विमुक्तः" (मु. ।३।२।८) "ज्ञात्वादेवं मुच्यते सर्वपाशैः" (श्वे. । १।८) "तरति शोकमात्मवित्" (छा. ।७।१।३) "भिद्यते हृदयग्रन्थिः छिद्यन्ते सर्वसंशयाः" (मु. । २।२।८) इत्यादिश्रुतिओंसे सिद्ध है; प्रवृत्तिधीविषयत्वरूप प्रयोजकत्व शुक्तिरूप्यमें भी है, अतः द्वितीय विशेषणसे शुक्तिरूप्य भी अनाक्रान्त नहीं, तथा विशेषणचतुष्टका अन्वय समानरूपसे वियदादि तथा शुक्तिरूप्यादिके साथ करना इसी लिए उभयसाधारण प्रपञ्चपदका प्रयोग हमनें टीकामें किया है। धीकालविद्यमानेन=धी शब्दसे दृश्यकी धी लेना; तथाच दृश्यधीका अधिकरणीभूत जो काल उस कालका संबन्धि; भावार्थ यह कि—कालके साथ संसृष्ट—सम्बद्ध जो दृश्य उसमें विशेषणरूपसे प्रतीयमान एवम्भूत जो असद्विलक्षण स्वरूप=असतः विलक्षणम् इति असद्विलक्षणं=दृश्यमितियावत्। तस्यस्वरूपं=तद्वृत्तिधर्मः, असद्विलक्षणदृश्यवृत्ति दृश्य-त्वादिरूप धर्म उस धर्मसे त्रैकालिकनिषेध=अत्यन्ताभाव नहीं बन सकता है; निष्कृष्टार्थ यह हुआ कि—उपनिगदितविशेषणचतुष्टयविशेषित दृश्यका स्ववृत्तिधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिता-कात्यन्ताभाव अनुपपन्न है। नापि द्वितीयः=द्वितीयपक्ष भी नहीं बन सकता है । क्यों ?

अबाध्यत्वरूप जो पारमार्थिकत्व है उसको बाध्यत्वरूप मिथ्यात्वसे घटित होनेसे अन्योन्याश्रयात्=अन्योन्याश्रय दोष होनेसे। भावार्थ यह कि—मिथ्यात्वके ज्ञानके विना मिथ्यात्वसे घटित पारमार्थिकत्वका ज्ञान नहीं होगा, और पारमार्थिकत्वके ज्ञानके विना पारमार्थिकत्व घटित मिथ्यात्वका ज्ञान नहीं होगा अतः अन्योन्याश्रय है। पारमार्थिकत्वका भी स्वरूपेण=स्वनिष्ठधर्मसे निषेध होनेपर प्रथम पक्षोक्त दोषकी प्रसक्ति है; इस लिए तस्यापि=पारमार्थिकत्वका भी पारमार्थिकत्वेन निषेध होनेपर अनवस्था होगी; भावार्थ यह कि—प्रपञ्चमें पारमार्थिकत्वके निषेधके लिए बुद्धिपूर्वक आरोप मानना होगा, और आरोप जो होता है वह अनिर्वचनीयपदार्थविषयक होता है तथाच प्रपञ्चमें आरोपसे अनिर्वचनीय पारमार्थिकत्व सिद्ध होगा, और अनिर्वचनीय पदार्थका स्वरूपसे निषेध नहीं बन सकता है यह पहले ही कह चुके हैं, तथाच प्रथमआरोपविषयीभूत अनिर्वचनीय पारमार्थिकत्वका निषेध भी पारमार्थिकत्वेन ही मानना होगा, अतः पुनरपि पारमार्थिकत्वका आरोपमानना पडेगा और आरोपका विषय अनिर्वचनीय होता है, तथाच द्वितीय पारमार्थिकत्वका भी स्वरूपेण निषेध नहीं होगा, क्योंकि प्रथमपक्षोक्त दोषका प्रसंग है तथाच इस पारमार्थिकत्वका निषेध पारमार्थिकत्वेन हीं कहना होगा और आगे बढते जानेमें अनवस्था होगी; इति चेत्=ऐसा यदि कहो तो मैवम्=नहीं कहना, क्यों? स्वरूपेणैव=स्ववृत्ति जो दृश्यत्वादि तथा रजतत्व धर्म है उस धर्मसे ही अत्यन्ताभावके प्रतियोगित्वका प्रपञ्च तथा शुक्तिरूप्यमें अङ्गीकार होनेसे।

तथाहि—शुक्तौ रजतभ्रमानन्तरं अधिष्ठानतत्त्वसाक्षात्कारे रूप्यं नास्ति नासीन्नभविष्यतीति स्वरूपेणैव, 'नेहनाने' तिश्रुत्या च प्रपञ्चस्य स्वरूपेणैव निषेधप्रतीतेः नच—तत्र लौकिकपरमार्थरजतमेव स्वरूपेण निषेधप्रतियोगीति—वाच्यम्; भ्रमबाधयोर्वैयधिकरणापत्तेः, अप्रसक्तप्रतिषेधापत्तेश्च। नच तर्ह्युत्पत्त्यसंभवः, नह्यनिषिद्धस्वरूपत्वमुत्पत्त्यादिमत्त्वे तन्त्रम्, परैरनिषेध्यरूपत्वेनाङ्गीकृतस्य वियदादेरुत्पत्त्याद्यनङ्गीकारात्, किंतु वस्तुस्वभावादिकमन्यदेव किंचित् प्रयोजकं वक्तव्यम्। तस्य मयापि कल्पितस्य स्वीकारात्। नच—त्रैकालिकनिषेधं प्रति स्वरूपेणापणस्थं रूप्यं पारमार्थिकत्वाकारेण प्रातिभासिकं वा प्रतियोगीतिमतहानिः स्यादिति—वाच्यम्; अस्याचार्य्यवचसः पारमार्थिकलौकिकरजततादात्म्येन प्रतीतं प्रातिभासिकमेव रजतं प्रतीयोगीत्यर्थः। तच्च स्वरूपेण पारमार्थिकत्वेन वेत्यनास्थायां वा शब्दः। एतावदुक्तिश्च पुरोवर्तितादात्म्येनैव रजतं प्रतीयत इतिमतनिरासार्थं लौकिकपरमार्थरजततादात्म्येनापि प्रतीयत इति प्रतिपादयितुं च।

यदि ऐसी आशंका हो कि अभाव तथा प्रतियोगिका विरोध होनेसे ऐसा कैसे हो सकता है तहां अनुभवानुरोधसे ऐसा हो सकता है इस बातको दिखलाते हैं। तथाहि=दिखलाते हैं, शुक्तौ रजतभ्रमानन्तरं=शुक्तिरूप अधिकरणमें 'इदं रजतं' इत्याकारक भ्रमके

बाद तथा ब्रह्ममें प्रपञ्चभ्रमके बाद, अधिष्ठानत्त्वसाक्षात्कारे=अधिष्ठान जो शुक्ति तथा ब्रह्म इनका तत्त्व=असाधारणधर्म नीलपृष्ठत्रिकोणत्वादि, अद्वितीयत्व नित्यमुक्तत्वादिका साक्षात्कार होनेपर, रूप्य नहीं है, नथा, न होगा, इस रीतिसे, स्वरूप=स्ववृत्तिधर्मसेही निषेधकी प्रतीति होनेसे। च=और "नेह नाना" (बृ. ४।४।१९) इत्यादि श्रुतिसें प्रपञ्चकी स्वरूपसे ही निषेधप्रतीति होनेसे । अन्यथा पारमार्थिकत्वेन रूप्यं नास्ति, परमार्थिकत्वेन रजतं नास्ति ऐसा उल्लेख होना चाहिए । शंका करते हैं नचेति । तत्र=शुक्तिमें, लौकिक-परमार्थं रजतमेव=परमार्थरूपसे लोकमें सिद्ध अर्थतः व्यावहारिक रजतही स्वरूपसे निषेध प्रतियोगि है, इति नच वाच्यम्=ऐसा नहीं कहना क्यों भ्रम तथा बाध इन दोनोंको वैयधिकरण्यापत्ति होनेसे । अर्थात् भ्रम और बाध इनको भिन्न विषयकत्व होगा, और भ्रम तथा बाधको भिन्न विषयकत्व इष्ट नहीं है, क्योंकि ये दोनों समान-विषयक ही देखे जाते हैं, फलतः इन दोनोंके समानविषयकत्वका नियम है। च=और अप्र-सक्तके निषेधकी प्रसक्ति होनेसे;=शुक्तिमें व्यावहारिकरूप्यकी तादात्म्यसंबन्धसे ज्ञातत्वरूप प्रसक्ति नहीं है, अतः शुक्तिमें उस रजतके निषेधमें अप्रसक्त निषेध है, और अप्रसक्तका निषेध मानना अनुभवसे विरुद्ध हैं; क्योंकि प्रथम "इदं रजतं" ऐसी प्रसक्ति होके ही उत्तरमें निषेध होताहै। और "इदं रजतं" यह ज्ञान पुरोवर्तिवृत्ति रजतको ही विषय करता है, आपणस्थ रजतके साथ संबन्ध न होनेसे उसे नहीं विषय कर सकता है। शंका करते हैं नचेति । तर्हि=प्रपञ्चमें तथा शुक्तिरूप्यादिमें स्वरूपसे ही निषेधप्रतियोगित्वके उक्त प्रमाणसे सिद्ध होनेपर प्रपञ्च तथा शुक्तिरूप्यादिकी उत्पत्तिका असंभव है, नच=नहीं है; अनिषिद्धस्वरूपत्व उत्पत्त्या-दिमत्त्वमें तन्त्र—समन्यापक नहीं है, अर्थात् अनिषिद्धस्वरूपत्व तथा उत्पत्त्यादिमत्व ये दोनों पर-स्पर व्याप्य तथा व्यापक नहीं है; क्यों ? तार्किकादिद्वारा अनिषेध्यरूपसे अङ्गीकृतवियदादिकी उत्पत्तिका अनङ्गीकार होनेसे। इस रीतिसे अनिषेध्यस्वरूपत्वका व्यापकत्व उत्पत्त्यादिमत्वमें प्रतिषिद्ध हुआ और व्याप्यत्वका प्रतिषेध "किन्तु वस्तुस्वभावादिकं" इत्यादिसे किया जायगा अतः न्यूनता नहीं है। लेकिन वस्तु स्वभावादिक अन्य ही कुछ उत्पत्त्यादिमत्वमें तंत्र कहना चाहिए, वस्तुस्वभावशब्दसे, जीवेश विशुद्धचित् जीवेशका विभाग अविद्या अविद्याका चित्के साथ कल्पिततादात्म्यसंबन्ध एतत् षड्भिन्न दृश्यत्व लेना, फलतः "एतत् षड्भिन्न दृश्यत्वं यत्र तत्र उत्पत्त्यादिमत्वम्" ऐसी व्याप्ति है। मूलमें अन्यदेव इस एवकारसे यह द्योतित किया है कि उत्पत्त्यादिव्यापकत्वभी अनिषिद्धस्वरूपत्वमें नहीं, क्योंकि उत्पत्यादिवाले पदार्थकाभी श्रुति तथा अनुभवके बलसे निषेध होताहै यह कह चुके हैं; तस्य=वस्तुस्वभावादिक कल्पित प्रयोजकका मुझसे भी स्वीकार होनेसे। पूर्वाचार्यके आशयको नहीं समझनेवाले वादीके प्रश्नका अनुवाद करते हैं न चेति। अत्यन्ताभावके प्रति स्वरूपसे आपणस्थरूप्य प्रतियोगी है, वा=या पारमार्थिकत्वरूपसे प्रातिभासिक रजत प्रतियोगी है इति मतहानिः स्यात्=इस पूर्वाचार्य्यकी उक्तिके साथ विरोध होगा, क्योंकि आप भ्रमज्ञानविषयीभूत प्रातिभासिक

रजतका निषेध वतलाते हैं, इस पूर्वाचार्य्यकी उक्तिमें तो आपणस्थ रजतको ही प्रतियोगी वताया है इति न च वाच्यम्=ऐसा नहीं कहना। अस्य आचार्य्यवचसः=इस आचार्य्यके वचनका पारमार्थिकलौकिकरजततादात्म्येन प्रतीत प्रातिभासिक ही रजत प्रतियोगी है, यह अर्थ है—जहांपर पारमार्थिकलौकिकरजतशब्दका प्रयोग हो वहांपर व्यावहारिक रजत उसका अर्थ समझना; पूर्व इस वाक्यका अर्थ कर आये हैं उसे नहीं भूलना। च=और, तत्= वह प्रातिभासिक रजत स्वरूपसे अथवा पारमार्थिकत्वेन प्रतियोगी है, वा शब्द अनास्थामें है, अर्थात् स्वरूपसे ही जब प्रतियोगी प्रातिभासिक रजत वन सकता है तब अनवस्थासे ग्रस्त दूसरे पक्षमें वैसे आदरकी आवश्यकता नहीं। यह जो इतनी वडी पूर्वाचार्य्यकी उक्ति है वह पुरोवर्त्ति जो शुक्ति है है उसके साथ तादात्म्यापन्न होके ही रजत प्रतीत होता है इस मतके प्रत्या-देशार्थ हैं; और व्यावहारिक रजतके साथ तादात्म्यापन्न होके भी प्रातिभासिक रजत प्रतीत होता है इस अर्थके प्रतिपादनके लिए है। तथाच इस पूर्वाचार्य्यकी पङ्क्तिका अन्वय ऐसा करना कि "आपणस्थं रूप्यं प्रातिभासिकं त्रैकालिकनिषेधं प्रति स्वरूपेण पारमार्थिकत्वेन वा निषेध-प्रतियोगि।"

तदुक्तं तत्त्वदीपिकायां—'तस्माल्लौकिकपरमार्थरजतमेव नेदं रजतमिति निषेधप्रतियोगीतिपूर्वाचार्याणां वाचोयुक्तिरपि पुरोवर्तिनि रजतार्थिनः प्रवृत्तिदर्शनात् लौकिकपरमार्थरजतत्वेनापरोक्षतया प्रतीतस्य कालत्रयेऽपि लौकिकपरमार्थरजमिदं न भवतीतिनिषेधप्रतियोगितामङ्गीकृत्य नेतव्ये' ति।—अयमाशयः—एकविभक्त्यन्तपदोप-स्थापिते धर्मिणि प्रतियोगिनि च नञोऽन्योन्याभावबोधकत्वनियमस्य व्युत्पत्तिबल-सिद्धत्वात् "घटः पटो न भवती"ति वाक्यव "दिदं रजतं न भवती"ति वाक्यस्य अन्योन्याभावबोधकत्वे स्थिते अभिलापजन्यप्रतीतितुल्यत्वादभिलप्यमानप्रतीतेः "नेदं रजत"मिति वाक्याभिलप्यप्रतीतेरन्योन्याभाव विषयत्वमेव। तथाचेदंशब्दनिर्दिष्टे पुरोव-र्तिप्रातीतिकरजते रजतशब्दनिर्दिष्टव्यावहारिकरजतान्योन्याभावप्रतीतेरार्थिकंमिथ्यात्वम्, 'नात्र रजत'मिति वाक्याभिलप्या तु प्रतीतिरत्यन्ताभावविषया भिन्नविभक्त्यन्तपदो-पस्थापितयोरेव धर्मिप्रतियोगिनोर्नञः संसर्गाभावबोधकत्वनियमात्। स च पुरोवर्तिप्रती-तरजतस्यैव व्यावहारिकमत्यन्ताभावं विषयीकरोतीति कण्ठोक्तमेव मिथ्यात्वम्। अतो नापसिद्धान्तो नान्यथाख्यात्यापत्तिर्न वा ग्रन्थविरोध इत्यनवद्यम्। ख्या

तत्त्वदीपिकामें इस अर्थको कहा है—लौकिकपरमार्थरजत=परमार्थत्वेन लोकसिद्धरज-त ही 'नेदं रजतं' इस निषेधका प्रतियोगि है ऐसी पूर्वाचार्य्योंकी वाचोयुक्ति है वह पुरोवर्तिमें रजतार्थीकी प्रवृत्ति देखनेसे व्यावहारिकरजतत्वेन=व्यावहारिक रजतके साथ तादात्म्यापन्न-त्वेन अपरोक्षरूपसे ज्ञात प्रातिभासिकरजतनिष्ठ जो कालत्रयमें भी व्यावहारिक रजत यह नहीं है इत्याकारक अन्योन्याभावकी प्रतियोगिता तादृश प्रतियोगिताको अंगीकारकर नेय है।

आचार्य्यके आशयका विशदीकरण करते हैं; अयमाशयः इत्यादिसे, तात्पर्य्य यह है-समानविभक्त्यन्तप्रातिपदिकोंसे धर्मी तथा प्रतियोगीके उपस्थापित=स्मारित होनेपर उपस्थित नञ्को अन्योन्याभावबोधकत्वके नियमको कार्य्यकारणभावका जो बल है उस बलसे सिद्ध होनेसे; (घटः पटो न भवति) इस वाक्यको जैसे अन्योन्याभावबोधकत्व हैं तैसे 'इदं रजतं न भवति' इस वाक्यको अन्योन्याभावबोधकत्वके स्थित होनेपर नञ्घटितवाक्यरूपअभिलापजन्य जो प्रतीति है उस प्रतीतिके तुल्य अभिलप्यमान प्रतीतिको होनेसें 'नेदं रजतं' इत्याकारकवाक्यसे अभिलप्य जो प्रतीति है उस प्रतीतिको अन्योन्याभाव विषयत्व ही है। यहां मूलमें "एकविभक्त्यन्तपद" इस वाक्यके घटक पदपदसे प्रातिपदिकका ग्रहण है, क्योंकि "चैत्रो न पचति" यहांपर एकविभक्त्यन्तपदसमभिव्याहृत नञ्को अन्योन्याभावबोधकत्व नहीं है किन्तु अत्यन्ताभावबोधकत्व है; पदका अर्थ प्रातिपदिक करनेसे इस नञ्की व्यावृत्ति होगई क्योंकि 'पचति'की प्रातिपदिक संज्ञा नहीं है। वह्निप्रकारकपर्वतविशेष्यक अनुमिति "पर्वतो वह्निमान्" इत्याकारक जो तादात्म्यसंबन्धावच्छिन्नवह्निमन्निष्ठप्रकारताकबोधजनक वाक्य है उससे अभिलप्य=स्वनिष्ठजनकतानिरूपितजन्यतासमानाधिकरणविषयितानिरूपितविषयतावच्छेद्यविषयतानिरूपितविषयिताविशिष्ट है, स्वपदसे शब्दका ग्रहण है, जन्यतासमानाधिकरण विषयिता शब्दजन्यप्रतीतिमें है; अवच्छेद्यविषयता=समानविषयकज्ञानीय विषयता है, विषयिताका आश्रय वही पडेगा। अभिलापजन्यप्रतीति तथा अभिलप्यमान प्रतीति इनमें मूलोक्त तौल्य समानविषयकत्वरूप है। तथाच=फलित यह हुआ कि 'नेदं रजतं' इत्याकारकवाक्यघटकीभूत जो 'इदं' शब्द है उस इदं शब्दसे निर्दिष्ट=उपस्थापित पुरोवर्त्ति प्रातिभासिक रजतमें उपरोक्तवाक्यघटकरजतशब्दसे निर्दिष्ट व्यावहारिकरजतका अन्योन्याभाव प्रतीत होनेसे अर्थतः पुरोवर्त्तिवर्त्तिरजतका मिथ्यात्व सिद्ध हुआ। नात्र रजतं=पुरोवर्त्तिमें रजत नहीं है इस वाक्यसे अभिलप्य जो प्रतीति=भ्रमके बाधकालमें सर्वानुभवसिद्ध ज्ञान तो अत्यन्ताभावविषया है; क्यों ? भिन्नप्रथमादिविभक्तियाँ हैं अन्तमें जिन्होंके ऐसे जो पद हैं तादृशपदोंसे धर्मी तथा प्रतियोगी इन दोनोंके उपस्थापित=स्मारित होनेपर ही नञः=नञको संसर्गाभावके बोधकत्वका नियम होनेसे। साच=वह प्रतीति तो पुरोवर्तिमें प्रतीत रजतसाधारणरजतमात्रके ही स्वरूपसे या पारमार्थिकत्वसे व्यावहारिकात्यन्ताभावको विषय करती है, इति=अतः मिथ्यात्व कण्ठोक्तमेव=बाधकज्ञानविषय ही है। अतः=इससे नापसिद्धान्तः='स्वरूपसे प्रातीतिक रजतका निषेध नहीं है इत्याकारक जो सिद्धान्तकी हानिरूप दोष है वह नहीं है; क्योंकि उपरोक्त अर्थ हमलोगोंके प्राचीन विशुद्धब्रह्मवादी आचार्य्योंको अभिप्रेत नहीं है; आपलोगोंने भ्रान्तिसे विपरीत अर्थ समझा है, नान्यथाख्यात्यापत्तिः=व्यावहारिक रजतका ही स्वरूपसे निषेध स्वीकार होनेसे भ्रम और बाधका वैयधिकरण्य न हो जाय एतदर्थ भ्रमज्ञानको भी व्यावहारिक रजतविषयक ही मानना ठीक है, तथाच तार्किकाभिमत अन्यथाख्यातिकी आपत्ति हुई इस प्रकारसे जो अन्यथाख्यातिकी आपत्ति थी वह भी नहीं है क्योंकि हमारे आचार्य्योंको प्रातिभासिक रजतका ही निषेध अभीष्ट है। न वा

ग्रन्थविरोधः=पञ्चपादिकाविवरणादि ग्रन्थ व्यावहारिक रजतका निषेध बताते हैं और आप प्रातिभासिकका निषेध बताते हैं अतः ग्रन्थविरोध है, एवंभूत जो ग्रन्थविरोध प्रसक्तथा वह भी नहीं है क्योंकि पञ्चपादिका–आदिग्रंथोका भी उक्त प्रकारसे प्रातिभासिकके निषेधमें ही तात्पर्य्य है; इत्यनवद्यम्=इस रीतिसे लक्षण दोषरहित है।

शङ्काः—प्रातिभासिक रजतकी व्यावहारिक रजतके साथ तादात्म्यापन्न होके जो प्रतीति आपने कही वह ठीक नहीं है; क्योंकि प्रातिभासिक रजत व्यावहारिक रजतके अज्ञानका कार्य्य नहीं है, और जो वस्तु जिसके अज्ञानका कार्य होता है वह उसके साथ तादात्म्यापन्न होके प्रतीत हो सकता है जैसे शुक्त्यज्ञानका कार्य्य रजत शुक्तिके साथ तादात्म्यापन्न होके प्रतीत होता है; तथा प्रातिभासिक पदार्थ स्वोपादान जो अज्ञान उस अज्ञानका निवर्त्तक जो ज्ञान उस ज्ञानका जो विषय उस विषयके साथ तादात्म्यापन्न होके प्रतीत होता है; इसी लिए पुरोवर्तिके विशेषज्ञानविना व्यावहारिक रजतत्वका ज्ञान होनेपर भी प्रातिभासिक रजतकी निवृत्ति नहीं होती है; 'शुक्लः पटः' यहांपर शुक्ल तथा पट इन दोनोंको एक ज्ञानसे नाश्य होनेसे तथा एकत्र अध्यास होनेसे तादात्म्य बनता है, यदि ऐसा कहो कि एक ज्ञानसे नाश्य होनेपर तथा एकत्र अध्यस्त होनेपर यदि तादात्म्यप्रतीत होता है तो घट तथा पट ये दोनों भी एकज्ञाननाश्य हैं तथा एकत्र अध्यस्त हैं, अतः इनका भी 'घटः पटः' ऐसा तादात्म्य प्रतीत होना चाहिए; तो ऐसा नहीं कहना, क्योंकि तादृशप्रतीति होनेपर ही निमित्तकी कल्पना की जाती है न कि निमित्त होनेसे तादृशप्रतीतिकी कल्पना, 'आरोपे सति निमित्तानुसरणं, नतु निमित्तमस्तीत्यारोपः' इस न्यायसे; और व्यावहारिक रजतके साथ सन्निकर्ष भी चक्षुका नहीं है, और व्यावहारिक रजतके साथ इन्द्रियका सन्निकर्ष न होनेसे ही आप लोगोंने अन्यथाख्यातिका खण्डन किया है, तथाच लौकिकपरमार्थ रजत=व्यावहारिक रजत ही यहांपर प्रतिषिद्ध होता है यही अर्थ आपके पूर्वाचार्य्योंके वचनोंका ठीक है, और आपने जो भ्रमबाधका वैयधिकरण्य बतलाया है वह तो दण्डापूपन्यायसे हमको अनुकूल ही है, फलतः बाधको व्यावहारिक रजत विषयकत्व होनेसे भ्रमको भी व्यावहारिकरजतविषयकत्व ही मानना युक्तियुक्त होगा, और ऐसा माननेपर अन्यथाख्यातिकी आपत्ति है और वह हमको अनुकूल ही है यही हुआ दण्डापूपन्याय; तथाच अपसिद्धान्तआदिदोष तदवस्थ हैं।

समाधान। 'प्रातिभासिक रजतकी व्यावहारिक रजतके साथ तादात्म्यसे प्रतीति युक्त नहीं है' यह जो आपने कहा है सो युक्त नहीं है; क्योंकि 'शुक्तिरजत शुक्त्यवच्छिन्नचैतन्यनिष्ठमूलाविद्याका कार्य्य है' इस पक्षमें शुक्तिरजतको व्यावहारिक रजताज्ञानका कार्य्य न होनेपर भी शुक्तिरजत मूलाविद्याका कार्य्य है इस पक्षमें शुक्तिरूप्य तथा व्यावहारिक रजत इन दोनोंको एकाज्ञानका कार्य्य होनेसे शुक्लः पटः वत् तादात्म्य बन सकता है; और यह जो कहा कि 'प्रातिभासिक स्वोपादान जो अज्ञान उस अज्ञानका निवर्त्तक जो ज्ञान उस ज्ञानका जो विषय उस विषयके साथ तादात्म्यापन्न होता है, सो भी ठीक नहीं क्योंकि ब्रह्मतत्त्वका ज्ञान न होनेपर शुक्तितत्त्वज्ञानमात्रसे प्रातिभासिक रजतका उपादान जो ब्रह्माज्ञान उसकी निवृत्ति

नहीं होती है; अन्यथा शुक्तितत्त्वज्ञानसे ही मोक्ष हो जायगा । और यह जो कहा कि "व्यावहारिक रजतके साथ इन्द्रियका सन्निकर्ष न होनेसे व्यावहारिक रजतके साथ तादात्म्य कैसे प्रतीत होगा" वह भी समीचीन नहीं; क्योंकि भूतलादिके साथ जैसा अभावका सन्निकर्ष होता है वैसाही रजतादिका भी इन्द्रियसंयुक्तेदमंशविशेषणतारूप सन्निकर्ष बन सकता है; यदि ऐसा कहो कि भूतलमें तो अभाव रहता है इस लिए उसका उपरोक्त सन्निकर्ष बन सकता है परन्तु शुक्तिमें तो व्यावहारिक रजत है ही नहीं फिर सन्निकर्ष कैसे होगा; तो नहीं कहना क्योंकि पञ्चीकरणप्रक्रियासे शुक्तिमें व्यावहारिक रजत है; शंका—यदि शुक्तिमें व्यावहारिक रजत है तब तो व्यावहारिक रजतकीही प्रतीति होगी । समाधान । ठीक कहते हो व्यावहारिक रजतके साथ तादात्म्यापन्न प्रातिभासिक रजतकी प्रतीति ही व्यावहारिक रजतकी प्रतीति है । शंका—यदि यों है तब तो पञ्चीकरणप्रक्रियासे घटादिमें भी रजत विद्यमान है तब घटादिमें भी रजतकी उपलब्धि होनी चाहिए । समाधान । रजतका विरोधि जो घटत्व है तादृश घटत्वप्रकारकज्ञान होनेसे रजतकी उपलब्धि घटादिमें नहीं होती है, क्योंकि घटत्वप्रकारक उपलब्धि उसकी विरोधिनी है । शंका—यदि शुक्तिमें रजत है तो सबको क्यों नहीं प्रतीत होता है । समाधान । सबमें दोष नहीं हैं इस लिए नहीं प्रतीत होता है । शंका—सत्यज्ञानमें दोषकी अपेक्षा नहीं बन सकती है । समाधान । प्रातिभासिकरजततादात्म्यापन्नत्वेन ही व्यावहारिक रजतकी प्रतीति शुक्तिमें होती है और इसमें दोषकी अपेक्षा होनेसे दोष आवश्यक है; तथाच व्यावहारिकरजततादात्म्यापन्न प्रातिभासिक रजतकी उत्पत्ति तथा निषेध पूर्वाचार्य्योंको अभिप्रेत होनेसे अन्यथाख्यात्यापत्त्यादि कोई दोष नहीं ।

ननु—एवमत्यन्तासत्त्वापातः प्रतिपन्नोपाधौ त्रैकालिकनिषेधप्रतियोगित्वंह्यन्यत्रासत्त्वेन संप्रतिपन्नस्यघटादेः सर्वत्र त्रैकालिकनिषेधप्रतियोगित्वं पर्यवसितम्; अन्यथा तेषां अन्यत्र सत्त्वापातात्, नहि तेषामन्यत्र सत्तासंभवतीतित्वदुक्तेश्च; तथाच कथमसद्वैलक्षण्यम्, नहि शशशृङ्गादेरितोऽन्यदसत्वम् । नच निरूपाख्यत्वमेव सदसत्त्वम्, निरूपाख्यत्वपदेनैव व्याख्यायमानत्वात् । नाप्यप्रतीयमानत्वमसत्वम्; असतोऽप्रतीतौअसद्वैलक्षण्यज्ञानस्यासत्प्रतीतिनिरासस्यासत्पदप्रयोगस्यचायोगात् । न चापरोक्षतया अप्रतीयमानत्वं तत्; नित्यातीन्द्रियेष्वतिव्याप्तेः—इति चेन्मैवम्;

शंका करते हैं नन्विति । एवं=पूर्वोक्तप्रकारसे शुक्तिरूप्य तथा आकाशादिनिष्ठ स्वरूपसे त्रैकालिक निषेधका प्रतियोगित्व अङ्गीकृत होनेपर अत्यन्तासत्त्वापातः=अवच्छिन्नवृत्तिक जो अत्यन्ताभाव उस अत्यन्ताभावसे भिन्न सर्वदेशवृत्तिक जो अत्यन्ताभाव तादृशात्यन्ताभावप्रतियोगित्वरूप जो असत्त्व है उस असत्त्वका पक्षमें आपात होगा तथाच प्रपञ्चधर्मिक मिथ्यात्वसाधनमें प्रवृत्त जो अनुमान है उसमें अर्थान्तर होगा; ननु प्रतिपन्नोपाधिनिष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगित्वमात्र अनुमानसे सिद्ध होताहै तो फिर आपका बतलाया हुआ असत्त्व कैसे होगा, और तत्प्रयुक्त अर्थान्तर भी कहांसे आवेगा; तहां कहते हैं प्रतिपन्नोपाधिमें अवच्छिन्न वृत्तिकान्य जो अत्यन्ताभाव

है तादृशात्यन्ताभावप्रतियोगित्व अन्यत्रासत्त्वेन=प्रतिपन्नोपाधिसे अन्यस्थलमें रहनेवाला जो अवच्छिन्नवृत्तिकान्यात्यन्ताभाव तादृशात्यन्ताभावप्रतियोगित्वेन सम्प्रतिपन्नस्य=प्रमित जो घटादि तादृशघटादिनिष्ठ सार्वत्रिकात्यन्ताभावप्रतियोगित्वरूप पर्य्यवसित होगा; अन्यथा= सर्वदेश तथा सर्वकालमें रहनेवाले उपरोक्तात्यन्ताभावका प्रतियोगित्व यदि न मानो तो घटादिका अन्यत्र=स्वका अनधिकरणीभूत जो उपाध्यन्तर उसमें सत्त्वापात होगा; फलतः सत्त्वको लेके अर्थान्तर होगा। ननु प्रतिपन्नोपाधिसे भिन्न देशमें सत्त्वका संदेह होनेसे अत्यन्तासत्त्व कैसे होगा; तहां कहते हैं नहीति। प्रतिपन्नोपाधिसे भिन्न स्थलमें घटादिकी सत्ताका संभव नहीं इस प्रकारकी तुमारे आचार्य्योंकी उक्ति होनेसे; फलतः अन्यत्र अभावका निश्चय ही है तथाच पक्षमें असत्से वैलक्षण्य कैसे ? इतः—सर्वदेशमें रहनेवाला जो व्याप्यवृत्त्यत्यन्ताभाव तादृशात्यन्ताभावप्रतियोगित्वसे अन्यत्=भिन्न शशशृङ्गादेः=शशशृङ्गादिनिष्ठ असत्त्व नहि=नहीं है। शशशृङ्गादिनिष्ठ असत्त्व निरूपाख्यत्व=शब्दवृत्यविषयत्व रूप ही है नच=नहीं हैं; निरूपाख्यत्वपदेनैव=निरूपाख्यपदसेही व्याख्यायमानत्वात्=वृत्तिसम्बन्धसे सम्बध्यमान होनेसे; भावार्थ यह कि=निरूपाख्यादिपदोंको अलीकविषयक अनुभवके प्रति शक्ति न होनेपर भी अननुभवरूप अलीक विषयक जो विकल्प है उस विकल्पकेप्रति योगवृत्तिसे अथवा लक्षणावृत्तिसे अथवा संकेतविशेषसे अलीकोपस्थितिद्वारा जनकत्व अवश्य है; और तादृशविकल्प साक्षिसिद्ध है; शंका—अलीक पदार्थमें कोई धर्मतो नहीं रहता है फिर निरूपाख्यादिपद योगादिवृत्तिसे कैसे बोधन करेंगे। समाधान। अन्यधर्मके न रहने परभी अभाव तथा विकल्पविषयत्वादिरूप धर्म रहते हैं; तथा अनेनपदेनालीकंबोध्यम्; ऐसे संकेतकाभी संभव है। अप्रतीयमानत्वरूपभी असत्त्व नहीं है क्यों ? असत्प्रतीति न मानोंगे तो असत्के वैलक्षण्यका ज्ञान तथा असत्की प्रतीतिका निरास और असत्पदका प्रयोग ये तीनों बातें न बनेंगी=असद्वैलक्षण्यज्ञानके लिए प्रतियोगीरूप असत्का ज्ञान चाहिए; एवं निरासको प्रसक्तिपूर्वकत्व होनेसे असत्की प्रतीतिका निरासभी असत्की प्रतीति विना नहीं वन सकता है; और अर्थज्ञानपूर्वक शब्दप्रयोग होताहै तथाच असत्पदार्थके ज्ञानविना असत्पदका प्रयोगभी न होगा। अपरोक्षरूपसे अप्रतीयमानत्वरूप ही तत्=असत्त्व है, नच नहीं है, क्यों ? नित्यातीन्द्रियेष्वतिव्याप्तेः= नित्य अतीन्द्रिय जो परमाण्वादि उनमें अतिव्याप्ति होनेसे यहांपर अपरोक्षतया अप्रतीयमानत्वका अर्थ प्रमाणजन्यप्रत्यक्षाविषयत्व करना; ऐसा अर्थ न करनेसे नित्यातीन्द्रियोंमें अतिव्याप्ति नहीं होगी क्योंकि उनमें ईश्वरीयज्ञानको लेके अपरोक्षतया प्रतीमानत्व ही है; और उपरोक्तार्थसे अतिव्याप्ति प्रदर्शन ठीक है; क्योंकि प्रमाणजन्यप्रत्यक्षाविषयत्व नित्यातीन्द्रियोंमें है ही; इति चेन्मैवम्=ऐसा यदि कहो तो नहीं कहना; क्योंकि—

सर्वत्र त्रैकालिकनिषेधप्रतियोगित्वं यद्यपि तुच्छानिर्वाच्ययोः साधारणम्; तथापि क्वचिदप्युपाधौ सत्त्वेन प्रतीत्यनर्हत्वं अत्यन्तासत्त्वम्, तच्च शुक्तिरूप्ये प्रपञ्चे च बाधात् पूर्वं नास्त्येवेति न तुच्छत्वापत्तिः। नच बाधात्पूर्वं शुक्तिरूप्यं प्रपञ्चो वा

सत्त्वेन न प्रतीयते । एतदेव सदर्थकेनोपाधिपदेन सूचितम् । शून्यवादिभिः सदधिष्ठानभ्रमानङ्गीकारेण क्वचिदप्युपाधौ सत्त्वेन प्रतीत्यनर्हत्वरूपासद्वैलक्षण्यस्य (क्वचिदप्युपाधौ सत्त्वेन प्रतीत्यर्हत्वरूपस्य) शुक्तिरूप्ये प्रपञ्चे चानङ्गीकारात् ।

सर्वदेश तथा सर्वकालवृत्ति-अत्यन्ताभावप्रतियोगित्व यद्यपि तुच्छ तथा अनिर्वचनीय इन दोनोंमे समान है; तथापि किसी भी अधिकरणमें सत्त्वेन प्रतीत्यनर्हत्व जो है वह अत्यन्तासत्त्व है; तत्=वह अत्यन्तासत्त्वतो ब्रह्मके अपरोक्ष ज्ञानसे जो प्रपञ्चका बाध होता है उस बाधसे पूर्व शुक्तिरूप्य तथा व्यावहारिक प्रपञ्चमें नहीं ही है; इसलिए शुक्तिरूप्यमें तथा प्रपञ्चमें तुच्छत्वकी प्रसक्ति नहीं है; तथाच सामान्यानुमानमें सत्त्वेन प्रतीत्यर्हत्वको पक्षका विशेषण होनेसे तादृश विशेषणविशिष्ट प्रपञ्चमें उपरोक्त मिथ्यात्वके सिद्ध होनेपर भी अलीकत्व नहीं है। ननु—शून्यवादि–माध्यमिकके मतमें 'सर्वमिथ्या' ऐसा स्वीकार होनेपर भी 'घटः सन्' इत्यादि धी अङ्गीकृत है क्योंकि सर्वके अनुभवसे सिद्ध उक्त धीका अपलाप असंभव है; और उस धीमें अबाध्यत्वरूप सत्त्वका भान नहीं होता है किन्तु अर्थक्रियाकारित्वरूप सत्त्वका भान होता है ऐसा वे लोग मानते हैं तथा दूसरे लोगोंको भी उपरोक्त स्थलमें बौद्धसम्मत ही सत्त्व कहना चाहिए; ऐसी आशंकाकर कहते हैं न चेति । बाधोदयसे पूर्व शुक्तिरूप्य या प्रपञ्च सत्त्वेन=अबाध्यरूपसत्तादात्म्येन=अबाध्यरूप जो सत् तादृश सत्के साथ तादात्म्यापन्नरूपसे न प्रतीयते=शून्यवादिओंसे भिन्न सर्ववादिओंद्वारा नहीं प्रतीत होता है नच=नहीं, फलतः=अवश्यप्रतीत होता है; ननु तौभी उपरोक्तविशेषणको पक्षमें न देनेसे विशेषानुमानमें अर्थान्तर होगा; और उक्तमिथ्यात्व मिथ्याका लक्षण न होनेसे अलीकमें जायगा तथाच अतिव्याप्ति होगी ऐसी आशंका कर कहते हैं एतदिति । एतदेव=प्रपञ्चका सत्तादात्म्यरूपसे प्रतीयमानत्व ही सदर्थकेन=अबाध्यार्थकप्रतिपन्नपदयुक्त उपाधिपदसे सूचित किया है; स्वके समीपमें रहनेवाले पदार्थमें स्ववृत्तिधर्मका जो संक्रामक होता है उसे उपाधि कहते हैं स्वसमीपवृत्तिदृश्यत्वावच्छेदेन स्वगत जो सत्वादि धर्म हैं उन धर्मोंका भ्रमजनकत्व ही यहांपर उपाधिपदके तात्पर्यका विषय है; सर्वका अधिष्ठानभूत जो सत् वही यहांपर उपाधिपदका अर्थ है यह भाव है। शून्यवादिओंसे सत् है अधिष्ठान जिसका एवंभूत भ्रमका अङ्गीकार न होनेसे किसी भी उपाधिमें सत्त्वेन प्रतीत्यनर्हत्वरूप जो असत्त्व है तद्वत् जो असत् उस असत्से वैलक्षण्यका=किसी भी उपाधिमें सत्त्वेन प्रतीत्यर्हत्वरूपका शुक्तिरूप्य तथा प्रपञ्चमें अङ्गीकार न होनेसे ।

नन्वेवंसति—यावत्सदधिकरणात्यन्ताभावप्रतियोगित्वं पर्यवसितम् । तथाच केवलान्वय्यत्यन्ताभावप्रतियोगिषु अवृत्तिषु गगनादिषु तार्किकाणां सिद्धसाधनम्; यदधिकरणं यत् सत् तन्निष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगित्वं तस्य मिथ्यात्वमिति विवक्षायां, अधिकरणपदेनावृत्तिनिराकरणेऽपि संयोगसंबन्धेन समवायसंबन्धेन वा यत् घटाधिकरणं समवायसंबन्धेन संयोगसंबन्धेन वा घटस्य तन्निष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगितया सर्वेषु वृत्ति-

मस्तु दुरुद्धरं सिद्धसाधनम्, येन संबन्धेनयद्यस्याधिकरणं तेन संबन्धेन तन्निष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगित्वमिति विवक्षायां अव्याप्यवृत्तिषु संयोगादिषु सिद्धसाधनं–इति चेन्न। येन रूपेणयदधिकरणतया यत् प्रतिपन्नं तेन रूपेण तन्निष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगित्वस्य प्रतिपन्नपदेन सूचितत्वात् । तच्च रूपं संबन्धविशेषोऽवच्छेदकविशेषश्च । नहिसम्बन्धविशेषमन्तरेण भूतले घटाधिकरणता प्रतीयते । अवच्छेदकविशेषमन्तरेण वा वृक्षे कपिसंयोगाधिकरणता । तथाच येन संबन्धविशेषेण येन चावच्छेदकविशेषेण यदधिकरणताप्रतीतिर्यत्र भवितुमर्हति, तेनैव संबन्धविशेषेण तेनैव चावच्छेदकविशेषेण तदधिकरणकात्यन्ताभावप्रतियोगित्वं तस्य मिथ्यात्वमिति पर्यवसिते क्व सिद्धसाधनम् ।

शंका करते हैं नन्विति । एवं सति=मिथ्यात्वको सर्वप्रतिपन्नोपाधिसे घटित होनेपर यावत् जो सदधिकरण तन्निष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगित्वरूप मिथ्यात्व पर्य्यवसित हुआ । तथाच= जब यों हुआ तब केवलान्वयी जो अत्यन्ताभाव तादृश अत्यन्ताभावके प्रतियोगी जो अवृत्ति पदार्थ गगनादि उन गगनादिमें तार्किकोंको सिद्धसाधन है, वहां सर्वदेश और सर्वकालमें रहने वाला जो अत्यन्ताभाव है उसे केवलान्वय्यत्यन्ताभाव कहते हैं; और संयोग तथा समवाय इन दोनों संबन्धोंसे जो वस्तु किसीमें भी न रहती हो उसे अवृत्ति कहते हैं, न्यायमतमें आकाश नित्य तथा विभु होनेसे अवृत्ति माना जाता है तैसे आत्मादिको भी समझना; तथाच न्यायरीतिसे गगनादिमें अवृत्तित्व होनेसे उपरोक्त अत्यन्ताभावप्रतियोगित्व है ही उसको अनुमानसे सिद्ध करनेपर नैय्यायिकोंको सिद्धसाधन है । यदधिकरणं=यस्य अधिकरणं यदधिकरणं ऐसा षष्ठी तत्पुरुषसमास है, जिसका अधिकरण जो सत् तादृश सन्निष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगित्वरूप मिथ्यात्व उसका है इति=इस प्रकारकी विवक्षा होनेपर; अधिकरणपदसे अवृत्तिओंका व्यावर्त्तन होनेपर भी संयोगसम्बन्धसे या समवाय सम्बन्धसे जो घटका अधिकरण है तन्निष्ठ जो समवायसम्बन्धसे या संयोगसंबन्धसे घटात्यन्ताभाव तादृश अत्यन्ताभावका प्रतियोगित्व घटमें होनेसे सर्व वृत्तिमत्पदार्थोंमें दुरुद्धर सिद्धसाधन है; भावार्थ यह कि–संयोगसंबन्धसे घटाधिकरणमें समवायसंबन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताक घटात्यन्ताभाव है; और समवायसंबन्धसे घटाधिकरणमें संयोगसंबन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताक घटात्यन्ताभाव प्रथमत एव सिद्ध है अतः अनुमानसे साधनमें सिद्धसाधन है; सामान्यतः संयोग या समवायसम्बन्धसे किसीमें रहनेवालेको वृत्तिमत् कहा जाता है; जिस संबन्धसे जो पदार्थ जिसका अधिकरण हो उस सम्बन्धसे तन्निष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगित्वरूप मिथ्यात्वकी विवक्षा करनेपर तो अव्याप्यवृत्तिषु=स्वका जो अभाव उस अभावके समानाधिकरण संयोगादिमें सिद्धसाधन है इति चेन्न=ऐसा नहीं कहना । क्योंकि जिसरूपसे यदधिकरणतया जो पदार्थ प्रतिपन्न हो तिसरूपसे तन्निष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगित्वको मिथ्यात्व प्रतिपन्नपदसे सूचित है । च=और तत् रूपं=उक्षणघटकरूप संबन्धविशेष तथा अवच्छेदकविशेष है, क्योंकि संबन्धविशेषके बिना भूतलमें घटाधिकरणता नहीं प्रतीत होती है और अवच्छेदकविशेषके बिना वृक्षमें

कपिसंयोगाधिकरणता भी नहीं प्रतीत होती है, तथाच=फलित यह हुआ कि=जिस संवन्ध-विशेषसे च=और जिस अवच्छेदकविशेषसे जिसके अधिकरणताकी प्रतीति यत्र=जहां होनेको योग्य है उस ही सम्बन्धविशेषसे तथा उस ही अवच्छेदकविशेषसे तदधिकरणकात्यन्ताभावप्रति-योगित्व तन्निष्ठ मिथ्यात्व है इति=इस प्रकारके मिथ्यात्वके पर्य्यवसित होनेपर कहां सिद्ध-साधन है; निष्कृष्टार्थ यह हुआ कि–यद्धर्मावच्छिन्नयत्संवन्धावच्छिन्नयद्देशावच्छिन्नयत्काला-वच्छिन्न–आधेयतानिरूपिताधिकरणता यत्र तत्रैव तद्धर्मावच्छिन्नतत्संवन्धावच्छिन्नतद्देशावच्छिन्न-तत्कालावच्छिन्नात्यन्ताभावप्रतियोगित्वं मिथ्यात्वम् ।

यदिपुनः ध्वंसप्रागभावप्रतियोगित्वमिवात्यन्ताभावप्रतियोगित्वमाकाशादौ न स्यात्; साधकमानाभावस्य तुल्यत्वात्, इहाकाशोनास्तीति प्रत्यक्षप्रतीत्यसंभवात्, अनुमाने चानुकूलतर्काभावात्, सामान्यतो दृष्टमात्रेण ध्वंसप्रागभावप्रतियोगित्वस्यापि सिद्धि-प्रसंगात्, तद्व्यतिरेकेण कस्यचित् कार्य्यस्यानुपपत्तेरभावाच्च, एवं संयोगसंवन्धेन घटवति भूतले समवायसम्बन्धेन घटाभावसत्त्वे मानाभावाल्लाघवेन घटात्यन्ताभावत्वेनैव घटसा-मानाधिकरण्यविरोधित्वकल्पनात् संवन्धविशेषप्रवेशे च गौरवात् घटसमवायमात्रविषय-तया प्रतीतेरुपपत्तेराधाराधेयभावस्य प्रत्यक्षसिद्धत्वेन घटस्यावृत्तित्वशङ्कानुदयादुक्त-युक्तेश्च न घटादेरत्यन्ताभावसामानाधिकरण्यम्; एवं संयोगतदभावयोर्नैकाधिकरण्यम्; अग्रेवृक्षः कपिसंयोगी मूले ने'ति प्रतीतेरग्रमूलयोरेव संयोगतदभाववत्तयोपपत्तेः, तदा सन्मात्रनिष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगित्वमेव मन्तव्यम् ।

ननु उपरोक्त सिद्धसाधन नहीं हो सकता है; क्योंकि प्रकृतानुमानके अवतारसे पूर्व ही अवृत्ति जो गगनादि उनके अत्यन्ताभावप्रतियोगित्वमें तथा वृत्तिमत्पदार्थोंके स्वसमानाधि-करणात्यन्ताभाव प्रतियोगित्वमें निगदिष्यमाणरीतिसे प्रमाण नहीं है; तहां कहते हैं यदीति। यदि मिथ्यात्वानुमापक अनुमानावतारसे पूर्व ध्वंसप्रागभावप्रतियोगित्ववत् अत्यन्ताभावप्रति-योगित्व भी आकाशादिमें नहीं है; साधकमानके अभावको उभयत्र समान होनेसे; यहां आकाश नहीं है इत्याकारक प्रत्यक्ष प्रतीतिका असंभव है। क्योंकि आकाशका अप्रत्यक्ष होनेसे तत्प्र-तियोगिकाभावका प्रत्यक्ष नहीं बन सकता है।

शंका—जिस मतमें आकाशका प्रत्यक्ष नहीं होता है उसमतमें आकाशात्यन्ताभावका प्रत्यक्ष नहीं होताहै यह ठीक है; परन्तु अनुमानोंसे तो आकाशात्यन्ताभाव सिद्ध होताहै अनुमानोंका स्वरूप यों है–गगनं, भूतलादिनिष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगि भूतलादिनिष्ठस्यवृत्तिनि-यामकसंवन्धस्याप्रतियोगित्वात, तज्जलवत् इत्यादि; समाधान अनुमानमें अनुकूल तर्क नहीं है; इस प्रसंगको गगनवत् आत्मादिमेंभी घटाना; विप्रतिपन्नकेप्रति सहसा आत्माकोभी प्रत्यक्षत्व नहीं कहा जा सकता है। अन्यथा सामान्यतो–दृष्टमात्रसे=तर्करहित अन्वयव्यतिरेकिहेतुसे प्रागभाव तथा ध्वंसप्रतियोगित्वकी भी सिद्धिका प्रसंग होगा; तर्करहित सामान्यतो दृष्टका प्रयोगयों है:—गगनं, ध्वंसप्रागभावप्रतियोगि, गगनतज्जलान्यतरत्वात्, तज्जलवत्। ननु–

ऐसा होनेपर आकाशादिमें घटादिकाभेदभी न होगा क्योंकि अप्रत्यक्षाधिकरणमें भेदका प्रत्यक्ष तो हो ही नहीं सकता, और अनुमानमें अनूकूल तर्क नहीं है तहां कहते हैं तदिति। आकाशसे यदि घट अभिन्न होगा तो घटत्वको अतिप्रसक्त हो जानेसे घटत्वावच्छिन्न कपाल-निष्ठकारणतानिरूपित कार्य्यताका जो घटमें प्रत्यक्षरूप कार्य्य होता है वह न होगा क्योंकि नित्यसाधारणधर्मको कार्य्यतावच्छेदकत्व नहीं हो सकता है; तद्व्यतिरेकेण=आकाशात्यन्ताभावके न स्वीकार करनेसे किसीभी कार्य्यकी अनुपपत्ति नहीं है; इसीरीतिसे संयोगसंबन्धसे घटवत् भूतलमें समवायसंबन्धसे घटाभावके सत्त्वमें कोई प्रमाणके न होनेसे लाघवसे घटात्यन्ताभावत्वेन ही घटसामानाधिकरण्यके प्रतिविरोधित्वकी कल्पना होनेसे=संबन्धघटित अभाव तथा प्रतियोगी इन दोनोंके विरोधमाननेकी अपेक्षा संबन्धाघटित अभावप्रतियोगीके विरोध माननेमें लाघव है; संबन्ध विशेषके प्रवेशमें गौरव है। और भूतलमें समवायेन घटोनास्ति इत्याकारक निषेधधीका विषय तो घटीयत्वविशिष्ट समवायही है न कि घट; जैसे "शिखी चैत्रो नष्टः" यहांपर चैत्रीयशिखामें ध्वंसप्रतियोगित्व है चैत्रमें नहीं तद्वत्; भूतल तथा घटके आधारआधेयभावको प्रत्यक्षसिद्धता होनेसे घटसंबन्धि अवृत्तित्वकी शंकाका उदय नहीं होता है। ननु घटाधिकरणं भूतलं, घटाभाववत्, भूतलनित्यरूपान्यतरत्वात्, नित्यरूपवत् इस अनुमानसे घटवत् भूतलमें घटाभाव सिद्ध करेंगे; तहां कहते हैं उक्तयुक्तेश्च=तर्क नहीं है। 'भूतलं, घटध्वंसवत्, कपालभूतलान्यतरत्वात्, कपालवत्' इस अनुमानकी भी आपत्ति होगी; घटवत् भूतलमें घटात्यन्ताभाव नहीं माननेसे कोई अनुपपत्तिभी नहीं है। तथाच उपरोक्त प्रकारसे घटादिनिष्ठ स्वप्रतियोगिकात्यन्ताभावका सामानाधिकरण्य नहीं है; एवम्=इसी रीतिसे संयोग और संयोगाभाव इन दोनोंमें भी एकाधिकरण्य=सामानाधिकरण्य नहीं है; क्यों ? अग्रावच्छेदेन वृक्ष कपिसंयोगवाला है मूलावच्छेदेन नहीं इत्याकारक प्रतीतिसे अग्र तथा मूल इन दोनोंकी क्रमशः संयोग तथा संयोगाभाववत्त्वेन उपपत्ति होनेसे; तदा=यदि पुनः से लेकर यहां तक कहेगये अर्थका संभव है तब तो सन्मात्रनिष्ठ=सत्त्वव्यापक जो अत्यन्ताभाव तादृशात्यन्ताभावप्रतियोगित्व ही मिथ्यात्व मन्तव्य है।

नचैवं सति–भावाभावयोरविरोधात्तज्ज्ञानयोर्बाध्यबाधकभावो न स्यादितिवाच्यम्; भिन्नसत्ताकयोरविरोधेऽपि समसत्ताकयोर्विरोधात्। यत्र भूतले यस्य घटस्यात्यन्ताभावो व्यावहारिकः तत्र स घटो न व्यावहारिक इति नियमात्। नचैवंसति–'शुक्तिरियं न रजत'मिति ज्ञानविषयीभूताभावस्य व्यावहारिकत्वेन पुरोवर्तिप्रतीतरजतस्य व्यावहारिकत्वापहारेऽपि प्रातीतिकसत्त्वानपहारात् बाधोत्तरकालेऽपि 'इदं रजत'मिति प्रतीतिः स्यादिति–वाच्यम्; तत्र 'इयं शुक्ति'रित्यपरोक्षप्रमया प्रातीतिकरजतोपादानाज्ञान-निवृत्तौ प्रातीतिकसत्त्वस्याप्यपहारात्, शुक्त्यज्ञानस्य प्रातीतिकरजतोपादानत्वेन तदसत्त्वे प्रातीतिकरजतासत्त्वस्यावश्यकत्वात्। अतएव यत्र परोक्षयाधिष्ठानप्रमया न भ्रमोपादानाज्ञाननिवृत्तिः, तत्र व्यावहारिकत्वापहारेऽपि प्रातीतिकत्वानपहारात्। 'तिक्तोगुड'

इत्यादिप्रतीतिरनुवर्तत एव। एवमखण्डब्रह्मसाक्षात्कारात्पूर्वं परोक्षबोधेनप्रपञ्चस्य व्यावहारिकत्वापहारेऽपि प्रतीतिरनुवर्तत एव, अधिष्ठानाज्ञाननिवृत्तौ तु नानुवर्तिष्यते। एतेन—उपाधिशब्देनाधिकरणमात्रविवक्षायामर्थान्तरम्, वाय्वधिकरणकात्यन्ताभावप्रतियोगित्वेऽपि रूपस्यामिथ्यात्वात्, अधिष्ठानविवक्षायां तु भ्रमोपादानाज्ञानविषयस्याधिष्ठानत्वेनान्योन्याश्रयत्वं, ज्ञानस्य भ्रमत्वे विषयस्य मिथ्यात्वं, विषयस्ये मिथ्यात्वे च ज्ञानस्य भ्रमत्वमितीति—परास्तम्; उक्तरीत्या अधिकरणविवक्षायां दोषाभावात्। नच—'स एवाधस्ता'दिति श्रुत्याप्रतिपन्ने देशकालाद्युपाधौ परमार्थतोब्रह्मणोऽभावात्तत्रातिव्याप्तिरिति—वाच्यम्, निर्धर्मके तस्मिन्नभावप्रतियोगित्वरूपधर्माभावात्। न चैवं—सत्यत्वमपि तत्र न स्यात्, तथाच 'सत्यं ज्ञानमनन्त'मित्यादिश्रुतिव्याकोप इति—वाच्यम्; अधिकरणातिरिक्ताभावानभ्युपगमेनोक्तमिथ्यात्वाभावरूपसत्यत्वस्य ब्रह्मस्वरूपाविरोधात्। एतेन—स्वप्रकाशत्वाद्यपि—व्याख्यातम्; परप्रकाश्यत्वाभावो हि स्वप्रकाशत्वम्, कालपरिच्छेदाभावो नित्यत्वम्, देशपरिच्छेदाभावो विभुत्वम्, वस्तुपरिच्छेदाभावः पूर्णत्वमित्यादि। तथा च भावभूतधर्मानाश्रयत्वेऽपि ब्रह्मणःसर्वधर्माभावरूपतया न काप्यनुपपत्तिरिति सर्वमवदातम्॥

इति अद्वैतसिद्धौ द्वितीयमिथ्यात्वविचारः।

शंका करते हैं न चेति। एवं सति=पूर्वोक्त अनुमानको उपरोक्त मिथ्यात्वका साधकत्व होनेपर भावाभावयोरविरोधात्=भाव तथा अभाव इन दोनोंको एकाधिकरणमें रह जानेसे इन दोनोंका विरोध न होगा, और विरोधके न होनेसे तज्ज्ञानयोः=भावज्ञान तथा अभाव ज्ञान इन दोनों ज्ञानोंका बाध्यबाधकभाव न होगा; इति नचवाच्यम्=ऐसा नहीं कहना क्यों? भिन्नसत्तावाले भाव तथा अभावोंका अविरोध होनेपर भी समसत्ताकभावाभावोंका विरोध होनेसे; इसीको स्पष्ट करते हैं यत्रेति। जिस भूतलमें जिस घटका अत्यन्ताभाव व्यावहारिक है तत्र=तिस भूतलमें वह घट व्यावहारिक नहीं है किन्तु 'प्रातीतिक' है ऐसा नियम होनेसे। एवंसति=समसत्ताकभावाभावोंकाही विरोध होता है इस अर्थके अभ्युपगत होनेपर 'शुक्ति यह है रजत नहीं' इत्याकारक ज्ञानका विषयीभूत जो अभाव है उसे व्यावहारिकता होनेसे पुरोवर्ति=शुक्तिशकलमें प्रतीतरजतनिष्ठ कल्पित व्यावहारिकत्वका अपहार=उच्छेद होनेपरभी प्रातीतिकसत्त्व=प्रातिभासिक स्वरूपका उच्छेद न होनेसे उपरोक्त बाधसे उत्तरकालमें भी 'इदं रजतं' इत्याकारक प्रतीति होनी चाहिए; इति नचवाच्यम्=ऐसा नहीं कहना क्यों? 'इयं शुक्तिः' इत्याकारिका जो अधिष्ठानप्रमा है उस प्रमासे प्रातीतिक जो रजत है उस रजतके उपादानभूत अज्ञानकी निवृत्ति होनेपर प्रातीतिकसत्त्वस्यापि=प्रातिभासिक स्वरूपकाभी उच्छेद होनेसे; शुक्त्यज्ञानस्य=शुक्त्यवच्छिन्नचेतननिष्ठआगन्तुकदोषसचिवाज्ञानको प्रातिभासिक रजतका उपादान होनेसे तदसत्त्वे=उपरोक्ताज्ञानके निवृत्त होनेपर प्रातिभासिक

स्वरूपके भी उच्छेदको आवश्यक होनेसे। परिणामिभूत अज्ञानका उच्छेद होनेपर परिणामभूत प्रातीतिक रजतका उच्छेद आवश्यक है क्योंकि दोनोंका तादात्म्य है यह भाव है। अतएव=अज्ञानोच्छेद तथा अज्ञानोच्छेदप्रयुक्तोच्छेद इन दोनोंका विप्रकर्ष न होनेसेही यत्र=जहांपर परोक्षरूपाधिष्ठानप्रमासे भ्रमोपादान–अज्ञानकी निवृत्ति नहीं है तहांपर व्यावहारिकत्वके मिथ्यात्वका निश्चय हो जानेपर भी प्रातिभासिक स्वरूपका उच्छेद न होनेसे 'गुड तिक्तहै' इत्यादि प्रतीतिकी अनुवृत्ति होती है एवं अखण्डब्रह्मके अपरोक्षज्ञानसे पूर्व परोक्षज्ञानसे प्रपञ्चमें व्यावहारिकत्वके मिथ्यात्वका निश्चय होनेपर भी प्रपञ्चकी प्रतीति अनुवृत्त होती है; अधिष्ठानाज्ञाननिवृत्तौ तु=व्यावहारिक तिक्तत्वाभावविशिष्टगुडके तथा जीव-ब्रह्मैक्यके अज्ञानकी प्रतिबन्धकदोपोत्सारणाधीन–अधिष्ठानसाक्षात्कारसे निवृत्ति होनेपर-अनुवृत्त न होगी। एतेन='प्रतिपन्नोपाधौ' इत्यादिके उक्तव्याख्यानसे; "उपाधिशब्दसे यदि आप अधिकरणमात्रकी विवक्षा करेंगे तो अर्थान्तर होगा, क्योंकि वायुरूपाधिकरणवृत्ति–अत्यन्ताभावका प्रतियोगित्व होनेपर भी रूपको मिथ्या न होनेसे; उपाधिशब्दसे अधिष्ठानकी विवक्षा होनेपर तो भ्रमोपादान जो अज्ञान तादृश–अज्ञानके विपयको अधिष्ठान होनेसे अन्योन्याश्रयत्व है–क्योंकि ज्ञानको भ्रमत्व होनेपर विपयका मिथ्यात्व होगा और विषयका मिथ्यात्व होनेपर ज्ञानका भ्रमत्व होगा यह कथन परास्त=प्रत्याख्यात हुआ; क्योंकि उक्त रीतिसे विवक्षा होनेपर दोप नहीं। 'स एवाधस्तात्' (छा०।७।२५।१)=वह परमात्मा ही निम्नदेशमें है इस श्रुतिसे प्रतिपन्ने=ब्रह्मसंबन्धिरूपसे ज्ञात जो देशकालादिरूप उपाधि उस उपाधिमें परमार्थतः=पारमार्थिकत्वेन तथा स्वरूपेण ब्रह्मको अप्राप्त होनेसे उस ब्रह्ममें अतिव्याप्ति है इति न च वाच्यम्=ऐसा नहीं कहना; क्यों? निर्धर्मक उस ब्रह्ममें अभावप्रतियोगित्वरूप धर्मका अभाव होनेसे। एवं=इस प्रकारसे अभावप्रतियोगित्वरूपधर्मके न रहनेसे सत्यत्व भी तत्र=उस ब्रह्मके स्वरूपमें न होगा तथाच 'सत्यं ज्ञानमनन्तं (तै–२।१।१) इत्यादि स्वरूपात्मकसत्यत्वादिबोधक श्रुतिओंका व्याकोप होगा इति न च वाच्यम्=इसका अर्थ पूर्ववत्। क्यों? अधिकरणसे अतिरिक्त अभावको न माननेसे व्याख्यातमिथ्यात्वाभावरूप सत्यत्वको ब्रह्मस्वरूप होनेसे विरोधाभावात्। एतेन=इस सत्यत्वके व्याख्यानसे स्वप्रकाशत्वादि भी व्याख्यात हुए;=परप्रकाश्यत्वाभावका नाम स्वप्रकाश्यत्व है, कालपरिच्छेदाभावका नाम नित्यत्व है, देश-परिच्छेदाभावका नाम विभुत्व है; वस्तुपरिच्छेदाभावका नाम पूर्णत्व है, इत्यादि और भी समझना। तथाच=सत्यत्वादिको अभावरूप होनेपर; भावभूतधर्मानाश्रयत्वेऽपि=मिथ्यात्वादि धर्मोंके प्रति संबन्धविशेपसे आश्रय न होनेपर भी ब्रह्मको सर्वधर्माभावरूपतया=स्वाधिष्ठानक सर्वधर्मोंका अभावरूप होनेसे कोई अनुपपत्ति नहीं है इति=इस रीतिसे जो कुछ प्रकरणमें उपादेयबुद्धया कहा गया है वह सर्व शुद्ध है।

इति सरलायां द्वितीयमिथ्यात्वनिरुक्तिः।

अथ तृतीयमिथ्यात्वविचारः ।

ज्ञाननिवर्त्यत्वं वा मिथ्यात्वम् । ननु–उत्तरज्ञाननिवर्त्ये पूर्वज्ञाने अतिव्याप्तिः, मुद्गरपातादिनिवर्त्ये च घटादावव्याप्तिः, ज्ञानत्वेन ज्ञाननिवर्त्यत्वविवक्षायामप्ययं दोषः, अधिष्ठानसाक्षात्कारत्वेन निवर्त्येशुक्तिरजतादौ च ज्ञानत्वेन ज्ञाननिवर्त्यत्वाभावात् साध्यविकलता, ज्ञानत्वव्याप्यधर्मेण ज्ञाननिवर्त्यत्वविवक्षायां ज्ञानत्वव्याप्येन स्मृतित्वेन ज्ञाननिवर्त्ये संस्कारे अतिव्याप्तिः–इति चेन्न; ज्ञानप्रयुक्तावस्थितिसामान्यविरहप्रतियोगित्वं हि ज्ञाननिवर्त्यत्वम् ।

अब तृतीयमिथ्यात्वका निर्वचन करते हैं ज्ञानेति । ज्ञानप्रयुक्त जो अभाव तादृश अभावप्रतियोगित्वरूप मिथ्यात्व है; दृष्टान्त तथा पक्ष उभयत्र लक्षण घटता है=ज्ञानसे "शुक्तिरियं नेदं रजतम्" इत्याकारक ज्ञानलिया तत्प्रयुक्तविरह=रजतका विरह हुआ तत्प्रतियोगित्व शुक्तिशकलकल्पित रजतमें रहगया; तैसे ज्ञानसे–अहं ब्रह्मास्मि (बृ० १।३।१०) इत्याकारक ब्रह्मज्ञान लिया तत्प्रयुक्तप्रपञ्चाभाव है तत्प्रतियोगित्व प्रपञ्चमें रहगया । शंका करते हैं नन्विति । उत्तरज्ञानसे निवर्त्य पूर्वज्ञानमें अतिव्याप्तिः=सिद्धसाधन है; स्पष्टीकरण–विभुवृत्ति जो योग्यत्वविशिष्टविशेषगुण हैं वे स्वोत्तरवृत्तिस्वसमानाधिकरणविशेषगुणसे नाश्य माने जाते हैं । "अयं-घटः" यह ज्ञान प्रथम हुआ इसके बाद अयंपटः ऐसा ज्ञान हुआ तहां अयंपटः इस ज्ञानसे पूर्वाजात अयंघटः इस ज्ञानका ध्वंस होता है तथाच ऐसा ज्ञाननिवर्त्यत्व तो हमलोग प्रथमसे ही मान रहे हैं इस अनुमानसे सिद्ध करनेमें सिद्ध साधन होगा, इससे अतिरिक्त मुद्गरके आघातादिसे निवर्त्य घटादिमें अव्याप्ति भी है; क्योंकि पक्षकुक्षिमें तो वह घट भी है परन्तु मुद्गरनिवर्त्यत्वके रहनेसे ज्ञाननिवर्त्यत्वरूप मिथ्यात्व नहीं है; ज्ञानत्वेन ज्ञाननिवर्त्यत्वकी विवक्षा होनेपर भी अयं=अव्याप्तिरूप दोष है; फलतः ज्ञानत्वेन कहदेनेसे उत्तरज्ञानसे निवर्त्यपूर्वज्ञानमें सिद्धसाधन तो नहीं है क्योंकि वहांपर उत्तरज्ञानको ज्ञानत्वेन निवर्तकता नहीं है किन्तु उत्तरवृत्तियोग्यविभुविशेषगुणत्वेन इच्छादिसाधारणरूपसे निवर्त्तकता है परंतु उक्तघटमें अव्याप्ति है; और दोष भी देते हैं:—अधिष्ठानसाक्षात्कारत्वेन निवर्त्य जो शुक्तिरजतादिरूप दृष्टान्त है उसमें ज्ञानत्वेन ज्ञाननिवर्त्यत्वके न रहनेसे साध्याभाव है; यदि ज्ञानत्वव्याप्य धर्मसे ज्ञाननिवर्त्यत्वकी विवक्षा होतो ज्ञानत्वव्याप्याधिष्ठानसाक्षात्कारत्वेन ज्ञाननिवर्त्य शुक्तिरजतमें साध्याभावके न होनेपर भी ज्ञानत्वव्याप्यस्मृतित्वेन स्मृतिसे निवर्त्यसंस्कारमें सिद्धसाधन है; इति चेन्न=ऐसा यदि कहो तो नहीं कहना; क्योंकि अधिष्ठानविषयक जो तत्त्वज्ञान तादृशज्ञानका व्यापकीभूत जो स्वस्वीयसंस्कारान्यतरका अभाव तादृश अभावका प्रतियोगित्व ही ज्ञाननिवर्त्य है ।

अवस्थितिश्च द्वेधा; स्वरूपेण कारणात्मना च; सत्कार्य्यवादाभ्युपगमात् । तथाच मुद्गरपातेन घटस्य स्वरूपेणावस्थितिविरहेऽपि कारणतात्मनावस्थितिविरहाभावात् ब्रह्म-

ज्ञानप्रयुक्त एव स इति नातीतघटादावव्याप्तिः । अत एवोत्तरज्ञाननिवर्त्ये पूर्वज्ञाने न सिद्धसाधनम्; नवा वियदादौ ब्रह्मज्ञाननाश्यत्वेऽपि तद्वदेव मिथ्यात्वासिद्ध्यार्थान्तरम्; उत्तरज्ञानेन लीनस्य पूर्वज्ञानस्य तुकारणात्मनावस्थानादवस्थितिसामान्यविरहानुपपत्तेः । शशविषाणादावस्थितिसामान्यविरहेऽपि तस्य ज्ञानप्रयुक्तत्वाभावान्नातिव्याप्तिः ।

प्रकृत अवस्थितिपदका अर्थ दो प्रकारका है स्वरूपेण=अज्ञान तथा अज्ञानप्रयुक्त स्वरूपसे, कारणात्मना=और स्थूलावस्थाका कारणीभूत जो संस्कार तादृश संस्काररूपसे; क्यों ? सत्कार्यवादका अभ्युपगम होनेसे; भावार्थ यह कि–अधिष्ठानके तत्त्वका साक्षात्कार जबतक नहीं होता है तब तक कार्य्यका किञ्चित् रूप अवश्य वाच्य है, प्रलयकालमें भी अदृष्टादिजन्य कार्य्यकी अवस्था प्रलयकालमें प्रपञ्चके प्रतिपादन करनेवाली श्रुतिओंसे सिद्ध है जैसे कि– "तद्धेदं तर्ह्यव्याकृतमासीत्" (बृ. । १।४।७) इत्यादि श्रुतियां हैं; प्रलयकालमें वह यह प्रसिद्ध प्रपञ्च अनभिव्यक्तावस्थामें था यह अर्थ है; "उत्पत्तितः प्रथम भी कार्य्य सत् है" इस सत्कार्यवादाका सविस्तर निरूपण सूत्र भाष्य भामती कल्पतरु परिमलादिमें किया गया है; और हम भी "ईश्वरवाद" में करेंगे। तथाच=ज्ञानप्रयुक्त इत्यादि लक्षणके करनेपर मुद्गरपातसे घटकी स्वरूपसे अवस्थिति न रहनेपर भी संस्काररूपसे अवस्थितिके विरहका विरह होनेसे स एव=अज्ञानप्रयुक्ततत्संस्कारान्यतराभावरूपावस्थिति सामान्यविरह ही ज्ञानप्रयुक्त है, इस लिए अतीत घटादिमें अव्याप्ति नहीं है। अत एव=यथा श्रुत ज्ञाननिवर्त्यत्वको साध्य न होनेसे ही उत्तरज्ञानसे निवर्त्य पूर्वज्ञानमें सिद्धसाधन भी नहीं है; तथा आकाशादिको ब्रह्मज्ञानसे नाश्यत्व होनेपर भी तद्वदेव=पूर्वज्ञानको उत्तरज्ञानसे नाश्यत्वके तुल्य मिथ्यात्वकी असिद्धिसे अर्थान्तर भी नहीं है; भावार्थ यह कि–जैसे पूर्वज्ञानको उत्तरज्ञानसे नाश्य होनेपर भी वादिओंको मिथ्यात्व इष्ट नहीं है ऐसा मिथ्यात्व आपभी नहीं मानते हैं तैसे ब्रह्मज्ञानसे आकाशादिके नाश्य होनेपर भी मिथ्यात्व न होगा इसलिए अर्थान्तर है ऐसी आशंका है; इसका समाधान यह किया गया कि–यथाश्रुत लक्षणको लेके आप दोष देते हैं परन्तु लक्षण यथाश्रुत नहीं है किन्तु अस्मदुक्तोपस्कारसे उपस्कृत है अतः दोष नहीं। इसी अर्थका विवरण करते हैं उत्तरेति। उत्तरज्ञानसे लीन जो पूर्वज्ञान है उस ज्ञानको स्वकारणरूपसे अवस्थित होनेसे अवस्थितिके सामान्यविरहकी अनुपपत्ति है=एक रूपसे रहजानेसे अवस्थितिसामान्यविरह नहीं है क्योंकि विशेषाभावकूटको सामान्याभावके प्रति प्रयोजकता है। शशशृंगादिकी अवस्थितिका सामान्यविरह होनेपर भी तस्य=उस विरहको ज्ञानप्रयुक्तत्व न होनेसे शशविषाणादिमें अतिव्याप्ति नहीं है।

शुक्ति रजतादेश्चापरोक्षप्रतीत्यन्यथानुपपत्त्या प्रतिभासकाले अवस्थित्यङ्गीकारान्नबाधकज्ञानं विना तद्विरह इति न साध्यविकलता। अतएवोक्तं विवरणाचार्यैः–अज्ञानस्य स्वकार्येण प्रविलीनेन वर्तमानेन वा सह ज्ञानेन निवृत्तिर्बाध इति। वार्तिककृद्भिश्चोक्तम्–

'तत्वमस्यादिवाक्योत्थसम्यग्धीजन्ममात्रतः । अविद्या सहकार्येण नासीदस्ति भविष्यति ॥' इति। 'सहकार्य्येण नासी' दिति लीनेन कार्य्येणसह निवृत्त्यभिप्रायम्। सहकार्य्येण न भविष्यती'ति तु भाविकार्य्यनिवृत्त्यभिप्रायमित्यन्यदेतत्। रूप्योपादानमज्ञानं स्वकार्य्येण वर्तमानेन लीनेन वा सहाधिष्ठानसाक्षात्कारान्निवर्तते। तत्तद्रूप्योपादानानां अज्ञानानां भेदाभ्युपगमादिति न दृष्टान्ते साध्यवैकल्यम्; मुद्गरपातानन्तरं घटो नास्तीति प्रतीतिवदधिष्ठानज्ञानानन्तरं शुक्त्यज्ञानं तद्गतरूप्यं च नास्तीति प्रतीतेः सर्वसंमतत्वात्।

ननु शुक्ति रजतादिको भी शशशृंगवत् अलीक होनेसे शुक्तिरजतादिमें ज्ञानप्रयुक्त उक्त सामान्याभावप्रतियोगित्वरूप साध्यके न रहनेसे दृष्टान्तभूत शुक्तिरजतादिमें साध्यविकलता है; तहां कहते हैं शुक्तिरजतेति। अपरोक्षप्रतीतिकी अन्यथानुपपत्तिसे स्वप्रतिभासकालमें शुक्तिरजतादिकी अवस्थितिका अङ्गीकार होनेसे बाधकज्ञानविना तद्विरह=शुक्तिरजतका विरह नहीं होता है=फलतः उस विरहमें ज्ञानप्रयुक्तत्व है इसलिए दृष्टान्तमें साध्यविकलता=साध्याभाववत्ता नहीं है; अतएव उक्तात्यन्ताभावको ज्ञानाधीन होनेसे ही अथवा उक्तप्रध्वंसको ज्ञानाधीन होनेसे ही=अज्ञानकी स्वकार्य्येण=स्वप्रयुक्त जो संस्काररूपसे तथा स्थूलरूपसे रहनेवाला कार्य्य है उस कार्य्यके साथ ज्ञानेन=ज्ञानप्रयुक्त जो निवृत्तिः=अत्यन्ताभाव या प्रध्वंस इसका नाम बाध है इति=इस प्रकारसे विवरणाचार्य्यैः=विवरणाचार्य्यने उक्तम्=कहा है। यहां निवृत्तिमें जो ज्ञानप्रयुक्तत्व कहा गया है वह ज्ञानव्यापकत्वरूप है या स्वरूपसंबन्धविशेष है। च=और तत्त्वमस्यादि वाक्यसे उत्पन्न जो सम्यग्धी=भ्रमभिन्न—अनाहार्य्य—अप्रामाण्यज्ञानानास्कन्दित जीवब्रह्मैक्यज्ञान उस ज्ञानके जन्ममात्रसे अतीत=अनागत—वर्त्तमानकार्य्यके साथ अविद्याकी निवृत्ति होती है इति=इस प्रकारसे वार्तिककारने भी कहा है। 'सहकार्य्येण नासीत्' यह जो वार्तिककारका कथन है वह लीनकार्य्यके साथ अविद्याकी निवृत्तिके अभिप्रायसे है; और 'सहकार्य्येण न भविष्यति' यह कथन भावि कार्य्यकी निवृत्तिके अभिप्रायसे है। भावार्थ यह कि—कार्य्यजनक अदृष्टादिका अत्यन्ताभाव होनेसे अदृष्टादिजन्यकार्य्यकी जो अत्यन्ताभावरूप निवृत्ति है उस निवृत्तिके सहित अज्ञानकी निवृत्तिके अभिप्रायसे है। अन्यदेतत्=कारणाभावसे जो कार्य्याभाव होता है वह ज्ञानविना भी होता है इसलिए उसको बाधरूपता नहीं है तथाच भाविकार्य्याभावको भी तादृश होनेसे उसको बाधरूपता नहीं है इसलिए प्रकृतमें अनुपयुक्त है यह भाव है। ननु जिस पक्षमें अज्ञान एक ही माना जाता है उस पक्षमें शुक्तिरूप्यादिकी ब्रह्मज्ञान विना तो निवृत्ति न होगी, यदि शुक्त्यादिके ज्ञानसे निवृत्ति मानोगे तो ब्रह्मज्ञान विनाही मोक्ष हो जायगा, तथाच शुक्तिरूप्यमें ज्ञान निवर्त्यत्वका उक्तानुमानसे प्रथम ग्रहण न होनेसे व्याप्तिग्रहका असंभव है; तहां कहते हैं रूप्येति। प्रातिभासिकरूप्यका उपादान जो अज्ञान है वह अज्ञान वर्तमान स्वकार्य्यके साथ तथा लीनस्वकार्य्यके साथ अधिष्ठानके साक्षा-

स्कारसे निवृत्त होता है; क्यों? तिस तिस रूप्यके उपादान–अज्ञानोंके भेदका अभ्युपगम होनेसे इस रीतिसे दृष्टान्तमें साध्यका वैकल्य=अग्रह नहीं है; तथाच यह लक्षण नाना अज्ञान पक्षको लेके ही प्रवृत्त हुआ है यह भाव है। मुद्गराऽऽपातके बाद घट नहीं है इस प्रतीतिवत्, अधिष्ठानके तत्त्वज्ञानके बाद शुक्त्यज्ञान नहीं है शुक्तिगतरूप्य नहीं है इत्याकारक प्रतीतिको सर्वसम्मत होनेसे।

ज्ञानत्वव्याप्यधर्मेण ज्ञाननिवर्त्यत्वमित्यपि साधु। उत्तरज्ञानस्य पूर्वज्ञाननिवर्तकत्वं च न ज्ञानत्वव्याप्यधर्मेण? किंत्विच्छादिसाधारणेनोदीच्यात्मविशेषगुणत्वेन उदीच्यत्वेन वेति न सिद्धसाधनादि। नापीच्छाद्यनिवर्त्ये स्मृतित्वे न ज्ञाननिवर्त्ये संस्कारे अतिव्याप्तिः; स्मृतित्वेन स्मृतेः संस्कारनिवर्तकत्वेमानाभावात्। स्मृतौ हि जातायां संस्कारो दृढो भवतीत्यनुभवसिद्धम्। तेषां दृढत्वं च समानविषयकसंस्कारानेकत्वमित्य दोषः। वस्तुतस्तु, साक्षात्कारत्वेन ज्ञाननिवर्त्यत्वं विवक्षितम्; अतो न पूर्वोक्तदोषः। नापि निश्चयत्वेन ज्ञानत्वव्याप्यधर्मेण ज्ञान निवर्त्ये संशये अतिव्याप्तिरिति सर्वमवदातम्॥

इति तृतीयमिथ्यात्वविचारः॥

ज्ञानत्वव्याप्यधर्मसे ज्ञाननिवर्त्यत्व मिथ्या है यह लक्षण भी निर्दोष है। और उत्तर ज्ञानको जो पूर्वज्ञानके प्रति निवर्त्तकत्व है वह ज्ञानत्वव्याप्यधर्मसे नहीं किन्तु इच्छादिसाधारण जो उदीच्य-आत्मविशेषगुणत्व है तादृश-उदीच्यात्मविशेषगुणत्वेन है; यहांपर गुणत्वेन ही यदि निवर्त्तकत्व कहें तो संख्यादिमें निवर्त्तकत्व प्रसक्त होगा अतः विशेषगुण कहा है केवलविशेषगुण-ही कहें तो शब्दको भी ज्ञानके प्रति निवर्त्तकत्व आजायगा अतः आत्मविशेषगुण कहा है यदि इतनामात्र ही कहें तो स्वसे स्वकी निवृत्तिकी प्रसक्ति होगी अतः उदीच्य कहा, और इतना कहनेपर भी धर्माधर्ममें प्रसक्ति है अतः योग्यविशेषण भी जोडना; तथाच योग्योत्तरात्मविशेषगुणत्वेन उत्तर ज्ञानको पूर्वज्ञानके प्रति निवर्त्तकत्व है ज्ञानत्वव्याप्यधर्मेण नहीं; किसी-भी उदीच्यको योग्यविभुविशेषगुणके प्रति नाशकता मान लेनेमें बाध नहीं है, अतः लाघवसे कहते हैं–उदीच्यत्वेन ही वा उत्तरज्ञानको पूर्वज्ञानके प्रति निवर्त्तकता होनेसे सिद्धसाधनादि=सिद्धसाधन तथा उक्तार्थान्तर नहीं है; तैसे इच्छादिसे अनिवर्त्य और स्मृतित्वेन ज्ञानसे निवर्त्यसंस्कारमें भी अतिव्याप्ति नहीं है क्यों? स्मृतित्वेन स्मृतिको संस्कारनिवर्तकत्वमें प्रमाण न होनेसे। हि=यतः स्मृतिके उत्पन्न होनेपर संस्कार दृढ होता है, यह अनुभवसिद्ध है=विलक्षण स्मृतिरूप कार्य्यसे अनुमेय है यह भाव है। च=और उन संस्कारोंका दृढत्व तो समानविषयकसंस्कारोंका अनेकत्व है इसलिए दोष नहीं; फलितार्थ यह कि:–समानविषयकत्वसामानाधिकरण्य एतदुभयसंबन्धसे संस्कारविशिष्टसंस्कारत्वेन संस्कारको विलक्षण स्मृतिकेप्रति हेतुता अङ्गीकृत होनेपर भी स्मृतिको संस्कारके प्रति नाशकता नहीं कल्पित करते हैं; वस्तुतः साक्षात्कारत्वेन ज्ञाननिवर्त्यत्वविवक्षित है, अतः पूर्वोक्त=सिद्धसाधनादिरूप दोष नहीं है, तैसे ही साक्षात्कारत्वेन ज्ञाननिवर्त्यत्वकी विवक्षाकरनेपर ज्ञानत्वव्याप्यधर्म जो निश्चयत्व

तादृशनिश्चयत्वेन ज्ञाननिवर्त्यसंशयमें; अतिव्याप्ति भी नहीं है इति सर्वमवदातम्=इस रीतिसे तात्त्विक-तत्त्वज्ञानिओंने जो कुछ इस विषयमें कहा है वह सर्व दोषरहित है।

इति सरलायां तृतीयमिथ्यात्वनिरुक्तिः।

अथ चतुर्थमिथ्यात्वविचारः।

स्वाश्रयनिष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगित्वं वा मिथ्यात्वम्। तच्च स्वात्यन्ताभावाधिकरण एव प्रतीयमानत्वम्। अतः पूर्ववैलक्षण्यम्। दूषणपरिहारः पूर्ववत्। नच-संयोगिनि समवायिनि वा देशे तदत्यन्ताभावासम्भवः, संभवेतूपादानत्वाद्यनुपपत्तिरिति वाच्यम्; काले सह संभववद्देशेऽपि सहसंभवाविरोधात्, प्रागभावसत्त्वेनोपादानत्वाविरोधाच्च। नच-अत्यन्ताभावाधिकरणे प्रागभावस्याप्यनुपपत्तिरिति-वाच्यम्; काले व्यभिचारात्। नच-काले प्रागभावात्यन्ताभावयोः सामानाधिकरण्यमिदानीं घटात्यन्ताभाव इदानीं घटप्रागभाव इति प्रतीतिबलादङ्गीकृतम्, देशे तु तदुभयसामानाधिकरण्ये न किंचिदपि प्रमाणमिति-वाच्यम्; मिथ्यात्वानुमितेः श्रुत्यादेश्च प्रमाणत्वात्। विपमसत्ताकभावाभावयोरविरोधः पूर्वमुपपादितः। नच असत्यतिव्याप्तिः; स्वात्यन्ताभावाधिकरण एव सत्त्वेन प्रतीयमानत्वस्य विवक्षितत्वात्। नच-'तद्धैक आहुरसदेवेदमग्र आसी'दिति श्रुत्या असतः सत्त्वप्रतीतेस्तत्रातिव्याप्तिर्दुष्परिहरेति-वाच्यम्; 'सदेवेदमग्र आसी'दित्यस्यार्थस्याभाव एव नञा प्रतिपाद्यते, न त्वसतः सत्त्वम्; विरोधात्। अतो नातिव्याप्तिः। सर्वं चान्यत् पूर्वोक्तमेवानुसन्धेयमित्युपरम्यते।

इति चतुर्थमिथ्यात्वविचारः॥

अथ सरलायां चतुर्थमिथ्यात्वनिरुक्तिः॥

वा=या स्वाश्रयनिष्ठ=स्वसमानाधिकरण जो अत्यन्ताभाव तादृश अत्यन्ताभावप्रतियोगित्वरूप मिथ्यात्व है। स्व शब्दसे शुक्तिरूप्य तथा व्यावहारिक प्रपञ्चको लीजिए तत्समानाधिकरण जो प्रत्यक्षात्मकबाधबोधित तथा श्रुत्यादिबोधित शुक्ति तथा ब्रह्मनिष्ठ—अत्यन्ताभाव तादृश—अत्यन्ताभावप्रतियोगित्व क्रमशः दृष्टान्त तथा दार्ष्टान्तमें रहगया इस रीतिसे लक्षणसमन्वय करना। और वह प्रतियोगित्व तो स्वका जो अत्यन्ताभाव तादृश—अत्यन्ताभावका जो अधिकरण तादृश अधिकरणमें ही प्रतीयमानत्वरूप है; । अतः द्वितीयसे वैलक्षण्य है; उपाधिओंमें विवक्षाकृत भेद है कपालादिमें संयोगादिसम्बन्धसे घटादिके अभावको लेके जो सिद्धसाधनादि दूषण है उसका परिहार पूर्ववत्=जिस सम्बन्धसे यद्वत्त्वेन जो जो प्रतीत हो तन्निष्ठाभावीयतत्सम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगित्वकी विवक्षाकर करना। तत्संयोगी तथा तत्समवायी देशमें तत्के अत्यन्ताभावका असंभव है; और यदि संभव होगा तो उसे उपादानत्वादि न बनेगा क्योंकि अत्यन्ताभावाधिकरणको उपादानता नहीं देखी गई है;

इति न वाच्यम्=ऐसा नहीं कहना, क्यों कालमें प्रतियोगी तथा अत्यन्ताभावका जैसे सह संभव है तैसे देशमेंभी सहसंभवमें विरोध न होनेसे प्रागभावका सत्त्व होनेसे उपादानत्वके विरोधका अभाव हैं; अर्थात् जहां जिसका प्रागभाव होता है वहां वह उत्पन्न होता है अत्यन्ताभावके वहां होने न होनेमें कुछ विशेषता नहीं है।

शंका—जबकि स्वात्यन्ताभावाधिकरणमें ही घटादि रहते हैं तब तो भावाभावके व्यावहारिक विरोधकी कथाभी समाप्त हो गई। और जैसे भावाभावका विरोध नहीं है तैसे द्वैताद्वैतकाभी विरोध न होगा, तथाच अद्वैतज्ञानको जो आपके द्वारा द्वैतज्ञाननिवर्त्तकत्व माना जाता था वह भी दत्तजलाञ्जलि हो गया। समाधान। भाव तथा अभावका विरोध होता है वह समसत्तावालोंका होता है अर्थतः समसत्ताकभावाभाव एकाधिकरणमें नहीं रह सकते हैं इस लिए व्यावहारिकी कथाका उच्छेद नहीं है। और द्वैताद्वैतका विरोध न होनेपर भी अद्वैतको श्रुतितात्पर्यविषयत्व होनेसे प्राबल्य है और तादृशप्राबल्यवत्-अद्वैतके ज्ञानको द्वैतविषयक प्रत्यक्षके प्रति बाधकता है अतः भवदुक्त कोई दोष नहीं। अत्यन्ताभावके अधिकरणमें प्रागभावकी भी अनुपपत्ति है इति न च वाच्यम्। पूर्ववत्। क्यों? काले=कालमें नियमका व्यभिचार होनेसे; अर्थात् जैसे कालमें घटका प्रागभाव तथा अत्यन्ताभाव ये दोनों रहते हैं तैसे ही कपालमें भी दोनों रहें इसमे कोई हर्ज नहीं। कालमें तो प्रागभाव तथा अत्यन्ताभाव इन दोनोंका सामानाधिकरण्य 'इस कालमें घटका अत्यन्ताभाव है' 'इस कालमें घटका प्रागभाव है' इस प्रकारकी प्रतीतिके बलसे अङ्गीकृत है: तु=और देशमें अत्यन्ताभाव तथा प्रागभाव इन दोनोंके सामानाधिकरण्यमें कोई भी प्रमाण नहीं है; इति न च वाच्यम्=ऐसा नहीं कहना, क्यों? मिथ्यात्वसाधिका अनुमितिको च=तथा श्रुत्यादिको प्रमाण होनेसे। असत् पदार्थमें अतिव्याप्ति है नच=नहीं है; क्यों? स्वात्यन्ताभावाधिकरणमें सत्त्वेन प्रतीयमानत्वको विवक्षित होनेसे। तत्=तत्र=उत्पत्तिसे प्रथम निरूपणीय विषयमें, एके=शून्यवादी वैनाशिक लोग कहते हैं कि इदं=परिदृश्यमान जगज्जात अग्रे=स्वोत्पत्तिसे प्रथम असत् आसीत्=असत् था इत्याकारक (छां० ६।२।१) श्रुतिसे असन्निष्ठसत्त्वकी प्रतीति होनेसे तत्र=असत् पदार्थमें अतिव्याप्ति दुष्परिहरा है इति न च वाच्यम्=पूर्ववत्। क्यों? प्रथम सत् ही था इस अर्थके अभावकाही नञ्से प्रतिपादन होता है, असन्निष्ठसत्त्वका नहीं विरोध होनेसे; भावार्थ यह कि असत्त्व तथा सत्त्वका विरोध होनेसे असत्त्वविशिष्ट असत्में सत्त्व नहीं रह सकता है। एतत्-लक्षणघटक अत्यन्ताभावको लेके यदि संशयादि उत्पन्न हो तो उसकी निवृत्त्यर्थ द्वितीयनिरुक्तिमें जो कुछ कहा गया है वही अनुसन्धेय है अतः उपराम किया जाता है॥

इति सरलायां चतुर्थमिथ्यात्वनिरुक्तिः॥

अथ पञ्चममिथ्यात्वम्।

सद्विविक्तत्वं वा मिथ्यात्वम्। सत्त्वं च प्रमाणसिद्धत्वम्। प्रमाणत्वं च दोषासह-

कृतज्ञानकरणत्वम् । तेन स्वप्नादिवत् प्रमाणसिद्धभिन्नत्वेन मिथ्यात्वं सिद्धयति । प्रमाणसिद्धत्वं चाबाध्यत्वव्याप्यमित्यन्यत् । अत्राप्यसति निर्धर्मके ब्रह्मणि चातिव्याप्तिवारणाय सत्त्वेन प्रतीयमानत्वं विशेषणं देयम्; तयोः सत्त्वप्रकारकप्रतीतिविषयत्वाभावात् । अतएव–'सद्विविक्तत्व'मित्यत्र सत्त्वं सत्ताजात्यधिकरणत्वं वा, अबाध्यत्वं वा, ब्रह्मरूपत्वं वा । आद्ये घटादावाविघ्नकजातेस्त्वयाभ्युपगमेनासम्भवः; द्वितीये बाध्यत्वरूपमिथ्यात्वपर्यवसानं तृतीये सिद्धसाधनमितिनिरस्तम्; अनभ्युपगमादेव । सदसद्विलक्षणत्वपक्षोक्तयुक्तयश्चात्रानुन्धेयाः । अवशिष्टं च दृष्टान्तसिद्धौ वक्ष्यामः ॥

इत्यद्वैतसिद्धौ पंचममिथ्यात्वनिरुक्तिः ॥

अथ सरलायां पञ्चममिथ्यात्वनिरुक्तिः ।

वा सत्प्रतियोगिकभेदवत्त्व मिथ्यात्व है । च=और सत्त्वतो प्रमाणसिद्धत्वरूप लेना । च=तथा प्रमाणत्व दोषासहकृतज्ञानकरणत्वरूप लेना । इस अर्थका विशदीकरण–दोषरूपसे ज्ञानमें निमित्तकारण अविद्या है और अविद्यानिष्ठकारणताका निरुपक तत्त्वमस्यादिवेदान्तवाक्योंसे अजन्य ज्ञान है, क्योंकि उपरोक्त ज्ञान भ्रमरूप होता है; और वेदान्तवाक्यजन्यज्ञान भ्रमरूप नहीं है क्योंकि तत्त्वमस्यादिरूप वेदान्तवाक्यजन्य ज्ञानको प्रमा होनेसे; यहांपर इस बातको ध्यानमें रखना–इस लक्षणका लक्ष्य वृत्त्युपहित ब्रह्म–शुद्धब्रह्म–अलीक इन तीनोंसे भिन्न है; अन्यथा वृत्त्युपहित ब्रह्ममें अव्याप्ति हो जायगी, क्योंकि तत्त्वमस्यादिवेदान्तवाक्यरूपप्रमाणसिद्धभिन्नत्व उसमें नहीं है किन्तु प्रमाणसिद्धत्वही है; जब साध्य यों हुआ तब दृश्यत्वरूप हेतुका भी इसके अनुसार यह अर्थ करना=उपरोक्त ब्रह्म तथा अलीक एतदुभयाविषयवृत्ति विषयत्व । ननु–व्यावहारिक जो घटादिक हैं उन घटादिको विषय करनेवाली जो घटाद्याकारवृत्ति है उस वृत्तिमें दोषरूपसे अविद्या कारण है इस अर्थमें कोई प्रमाण नहीं है; तहां कहते हैं तेनेति । तेन=दोषासहकृतज्ञानकरणसिद्धभिन्नत्वेन=दोष जिसका सहायक नहीं एवम्भूत जो करण तादृश करणसे जो सिद्ध उस सिद्धसे भिन्नत्वरूप हेतुसे प्रमाणसिद्धभिन्नत्वेन जैसे स्वप्नादिका मिथ्यात्वसिद्ध होता है तैसेही घटादिका भी मिथ्यात्व सिद्ध होता है; फलतः स्वप्न घटादिवत् व्यावहारिक प्रपञ्चमें भी "विद्वान्नामरूपाद्विमुक्तः" (मु० ३।१।८) इत्यादि श्रुतियोंसे ब्रह्मज्ञानबाध्यत्वका बोध होनेसे घटाद्याकारवृत्तिको भ्रमत्व है अतः भ्रमरूप घटादिज्ञानमें अविद्या–काम–कर्मको निमित्त हेतुता आवश्यक है । (काम शब्दसे रागका ग्रहण है) अविद्यामें दो शक्तियाँ रहती हैं–विक्षेप तथा आवरण, विक्षेपशक्तिमती अविद्या विपरीत कार्य्यका हेतु है; और आवरणशक्तिमती अविद्या "अस्ति" "भाति" इस ज्ञानकी प्रतिबन्धिका है, यह अविद्यामें रहनेवाली कारणता पित्तादिदोषनिष्ठकारणतावत् निमित्तरूपा है । और ऐसा एक न्याय है कि–यद्विशेषयोः कार्य्यकारणभावः तत्सामान्ययोरपि जैसे कि तद्घटत्वेन तद्दण्डत्वेन कार्य्यकारणभाव होता है तो घटत्वेन दण्डत्वेन भी कार्य्यकारणभाव होता है तैसे पित्तादि-

दोषरूपसे परिणत-अविद्याको-पित्तत्वादिरूपसे जैसे हेतुता है तैसेही पित्तत्वादिका व्यापकीभूत जो अविद्यात्व तादृश अविद्यात्वसे ही भ्रमत्वावच्छिन्नके प्रति हेतुता माननेमें कोई आपत्ति नहीं। और अविद्यादोषरूपसामान्यकारणके रहने पर भी प्रातिभासिक भ्रमोंमें अन्वयव्यतिरेकतः पित्तादिदोषविशेषोंको दोषविधया हेतुता है; और व्यावहारिक भ्रमोंमें इन्द्रियसन्निकर्षादिको दोषविधया हेतुता है। ननु-'दोषासहकृत' इत्यादिरूपप्रमाणसिद्धत्वका निवेश क्यों किया क्योंकि अबाध्यविषयधीविषयत्वरूपका भी तो निवेश हो सकता था, अतः कहते हैं; च=और, प्रमाणसिद्धत्वं=उपरोक्त जो प्रमाणसिद्धत्व है वह अबाध्यत्व व्याप्य है= अबाध्य जो शुद्धब्रह्म है उस शुद्धका जो वृत्त्युपहितरूप है उस रूपका व्याप्य=उस रूपको छोडकर नहीं रहता है; इति=इस हेतुसे अन्यत्=बाध्यत्व घटितसे भिन्न है=अर्थात् बाध्यत्वसे घटित जो अबाध्यत्व उससे अतिरिक्त है फलतः बाध्यत्वसे घटितका निवेश करनेमें बाध्यत्वसे इतरांशका वैयर्थ्य हो जायगा, इस लिए बाध्यत्वसे अघटितका ही निवेश युक्त है; भावार्थ यह कि-यदि अबाध्यविषयधीविषयत्वका निवेश करेंगे तो मिथ्यात्वका लक्षण ऐसा होगा कि अबाध्यविषयकधीविषयत्वाश्रयान्यत्वं मिथ्यात्वं, तहां एतल्लक्षणघटक बाध्यत्वको ही मिथ्यात्व कहनेमें कोई दोष नहीं है फिर इतरांश व्यर्थ है; इसी लिए बाध्यत्वघटितलक्षण नहीं किया। अत्रापि=इस लक्षणमें भी असत्में तथा निर्धर्मक शुद्धब्रह्ममें अतिव्याप्तिवारणके लिए सत्त्वेन प्रतीयमानत्वरूप विशेषण देना क्यों? असत् तथा ब्रह्म इन दोनोंको सत्त्वप्रकारकप्रतीतिका अविषय होनेसे। प्रश्न? ब्रह्ममें तथा असत्में लक्षण कैसे चला गया? उत्तर—तत्त्वमस्यादिवाक्यजन्यधीविषयत्वाश्रयान्यत्व मिथ्यात्वका लक्षण निष्पन्न है तहां तत्त्वमस्यादिवाक्यजन्यधीविषयत्व जो है वह तत्वमस्यादिवाक्यजन्यधीसे उपहित जो ब्रह्म है उस ब्रह्ममें रहता है तादृश विषयत्वका आश्रय वही उपरोक्त धीसे उपहित ब्रह्म हुआ उस आश्रयसे अन्यत्व=भिन्नत्व जैसे अविद्या तत्कार्य्यरूप प्रपञ्चमें रहता है वैसेही निर्धर्मक=विशुद्ध ब्रह्ममें भी रहता है और शशशृङ्गादिरूप असत्में भी रहता है अतः अतिव्याप्ति है। और जब सत्त्वेन प्रतीयमानत्व कहा तब अतिव्याप्तिका वारण हुआ। अलीक पदार्थ वृत्तिका विषय नहीं है क्योंकि वृत्ति सत् है अतः उसका असत्के साथ सम्बन्ध नहीं बन सकता है, और अलीकको न विषयकरके भी विकल्पनामक वृत्तिसे शशशृङ्गादिरूपपदोंकी उक्तिरूप व्यवहार बन सकता है अथवा विकल्पको असद्विषयक मान भी लें तो भी वह भ्रम नहीं है क्योंकि प्रमाणसे जिस ज्ञानके विषयका बाध होता हो उस ज्ञानको भ्रम कहा जाता है विकल्प ऐसा नहीं है अतः तद्विषयमें मिथ्यात्व इष्ट नहीं है अतः वहांपर लक्षण अतिव्याप्त है उसके वारणका उपाय ऊपर बतला चुके हैं। तत्त्वमस्यादिवेदान्तवाक्यजन्यधीविषयत्वरूप ही सत्त्व है सत्ताजात्यादिमत्त्वरूप नहीं इसी अर्थमें नियामक दूसरा दोष देते हैं अत एव=अनभ्युपगमादेव=अनङ्गीकार होनेसेही यह कथन भी खण्डित हुआ ऐसा सम्बन्ध है; सद्विविक्तत्वं यह जो लक्षण है तादृश लक्षणका घटक जो सत्पदार्थ है उस सत्पदार्थमें प्रकारीभूत जो सत्त्व है, वह क्या सत्तारूप जो जाति उस जातिका अधिकरणत्वरूप है, अथवा अबाध्यत्वरूप है या ब्रह्म-

रूपत्व रूप है। विकल्पकरके दोष देते हैं आद्य इति। प्रथम पक्षमें घटादिमें अविद्यारूप जातिको तुमसे अभ्युपगम होनेसे असंभव है, षडस्माकमनादयः इस नियमके अनुसार घटत्वादिरूप कोई अनादि जातियाँ वेदान्तमें नहीं अङ्गीकार की जाती हैं इसीलिए आविद्यकपदका अर्थ अविद्यारूप किया अविद्यारूपत्व या चिद्रूपत्व तो जाति वन सकता है। द्वितीये=द्वितीयपक्षमें बाध्यत्वरूप मिथ्यात्वमें पर्य्यवसान होगा; तथा च नातिदूरे उल्लिखित प्रकारसे इतरांश व्यर्थ है। तृतीये=तृतीयपक्षमें सिद्धसाधन है=प्रपञ्चमें ब्रह्मस्वरूपका भेद हम भी मानते हैं। ननु सत्त्वेन प्रतीयमानत्वे सति सद्भिन्नत्वरूप मिथ्यात्वको आपने साध्य किया है तहां प्रपञ्चमें सत्त्वेन प्रतीयमानत्व तो हमारे मतसे प्रथमसेही सिद्ध है अत आंशिक सिद्धसाधन है; तहां कहते हैं-सदसदिति सदसद्विलक्षण पक्षमें जो "गुणादिकं गुण्यादिनाभिन्नाभिन्नम्" इत्यादि युक्तियाँ कही हैं उनका अनुसंधान यहां भी करना, भावार्थ यह कि मिलितकी सिद्धि-उद्देश्य है वह किसीके मतसे सिद्ध नहीं है। ननु सत्ख्यातिवादमें या असत्ख्यातिवादमें 'इदं रजतम्' इत्यादि भ्रमोंमें सत्यरजतादिका या अलीक रजतादिकाही भान अङ्गीकृत होनेसे इस अनुमानसे प्रथम आरोपणीय शुक्तिरजतादिमें भी मिलितकी प्रसिद्धि नहीं है अत आह अवशिष्टमिति। अवशिष्टं=इस विषयमें जो अवशिष्ट है उसको आगे चलकर दृष्टान्तसिद्धिमें कहेंगे= 'रजतं पश्यामि' इस अनुभवानुरोधसे अनिर्वचनीय ख्यातिपक्षही समीचीन है यह निर्णय करेंगे यह भाव है।

इति सरलायां पञ्चममिथ्यात्वनिरुक्तिः।

अथ मिथ्यात्वसामान्योपपत्तिः।

ननु—उक्तमिथ्यात्वस्य मिथ्यात्वे प्रपञ्चसत्यत्वापातः एकस्मिन् धर्मिणि प्रसक्तयोः विरुद्धधर्मयोःएकमिथ्यात्वे अपरसत्यत्वनियमात्, मिथ्यात्वसत्यत्वे च तद्वदेव प्रपञ्चसत्यत्वापत्तेः उभयथाप्यद्वैतव्याघात—इति चेन्न; मिथ्यात्वमिथ्यात्वेऽपि प्रपञ्चसत्यत्वानुपपत्तेः। तत्रहि विरुद्धयोर्धर्मयोरेकमिथ्यात्वे अपरसत्वम्, यत्र मिथ्यात्वावच्छेदकमुभयवृत्ति न भवेत्; यथा परस्परविरहरूपयो रजतत्वतदभावयोः शुक्तौ, यथावा परस्परविरहव्यापकयोरजतभिन्नत्वरजत्वयोः तत्रैव; तत्र निषेध्यतावच्छेदकभेदनियमात्, प्रकृते तु निषेध्यतावच्छेदकमेकमेव दृश्यत्वादि, यथा गोत्वाश्वत्वयोरेकस्मिन् गजे निषेधे गजत्वात्यन्ताभावव्याप्यत्वं निषेध्यतावच्छेदकमुभयोस्तुल्यमिति नैकतरनिषेधे अन्यतरसत्वं तद्वत्। यथाच सत्यत्वमिथ्यात्वयोर्न परस्परविरहरूपत्वम्, नवा परस्परविरहव्यापकत्वम्, तथोपपादितमधस्तात्। परस्परविरहरूपत्वेऽपि विषमसत्ताकयोरविरोधात्, व्यावहारिकमिथ्यात्वेन व्यावहारिकसत्यत्वापहारेऽपि काल्पनिकसत्यत्वानपहारात्, तार्किकमतसिद्धसंयोगतदभाववत् सत्यत्वमिथ्यात्वयोः समुच्चयाभ्युपगमाच्च। एकस्य साधकेन अपरस्यबाध्यत्वंविषमसत्ताकत्वे प्रयोजकम् यथा शुक्तिरूप्यतदभावयोः। एकबाधकबाध्यत्वं च सम-

सत्ताकत्वेप्रयोजकम्,यथा शुक्तिरूप्यशुक्तिभिन्नत्वयोः। अस्ति च प्रपञ्चतन्मिथ्यात्वयोरेक-व्रह्मज्ञानवाध्यत्वम् । अतः समसत्ताकत्वान्मिथ्यात्ववाधकेन प्रपञ्चस्यापि वाधान्नाद्वैत-क्षतिरिति कृतमधिकेन ॥

इति मिथ्यात्वसामान्योपपत्तिः ॥

अथ सरलायां मिथ्यात्वमिथ्यात्वोपपत्तिः ।

शंका करते हैं नन्विति । उपरोक्त जो मिथ्यात्व है उस मिथ्यात्वको मिथ्यात्व होनेपर प्रपञ्चमें सत्यत्वका आपात होगा; क्यों ? एक धर्मिमें प्रसक्तयोः=ज्ञात जो विरुद्ध दो धर्म हैं उन दोनों धर्मोंमेंसे एकमिथ्यात्वे=एकतरका मिथ्यात्व होनेपर अन्यतरकी अधिकसत्ताका नियम होनेसे; जैसे आत्मामें मिथ्यात्व तथा सत्यत्व ये दोनों धर्म प्रसक्त हुए तहां मिथ्यात्वका मिथ्यात्व होनेपर सत्यत्वका सत्यत्व अधिकसत्तावाला होता है। तथाच जगत्, सत्यं, मिथ्याभूत-मिथ्यात्वकत्वात्, आत्मवत् यह अनुमान फलित हुआ । मिथ्यात्वसत्यत्वेच=और मिथ्याको सत्यत्व होनेपर तो तद्वदेव=मिथ्यात्ववत् ही प्रपञ्चके सत्यत्वकी आपत्ति है, भाव यह कि जैसे मिथ्यात्वमें मिथ्यात्वसाधकानुमान नहीं प्रवृत्त होता है तैसेही प्रपञ्चमें भी नहीं प्रवृत्त होगा । दोनों प्रकारसे अद्वैतमें व्याघात है, इति चेन्न=ऐसी आशंका नहीं करना; क्यों ? मिथ्यात्वको मिथ्यात्व होनेपर भी प्रपञ्चसत्यत्वकी अनुपपत्ति होनेसे; उसी स्थलमें विरुद्ध दोधर्मोंमेंसे अन्यतरका मिथ्यात्व होनेपर दूसरेका अधिकसत्ताकत्व आता है, जहां मिथ्यात्वका अवच्छेदक उभयवृत्ति न हो; उदाहरण वतलाते हैं यथेति=जैसे परस्परविरहरूप जो रजतत्व तथा रजतत्वका अभाव इन दोनोंका शुक्तिमें निषेध होनेपर=एक एकका निषेध होनेपर अपरका सत्यत्व आता है क्योंकि यहांपर निषेध्यतावच्छेदक भिन्न भिन्न हैं । तहां शुक्तौ रजतं नास्ति, यहां निषेध्यतावच्छेदक रजतत्व है, शुक्तौ रजतत्वाभावो नास्ति, यहां निषेध्यतावच्छे-दक रजतत्वाभावत्व है तथाच यहांपर निषेध्यतावच्छेदकके भिन्न होनेसे एकका निषेध करनेपर अपरका सत्त्व आता है, दूसरा उदाहरण देते हैं यथावेति । तत्रैव=उपरोक्तशुक्तिमें ही परस्पर-विरहके व्यापक जो रजतभिन्नत्व और रजतत्व हैं उनका उक्तप्रकारसे निषेध होनेपर एकका सत्त्व होता है; रजतभिन्नत्वाभावका व्यापक रजतत्व है क्योंकि रजतभिन्नत्वाभाव रजतमात्र-वृत्ति है, और रजतत्वाभावका व्यापक रजतभिन्नत्व है क्योंकि रजतत्वाभाव रजतेतरनिखि-लवस्तुओंमें रहता है और वहीं पर रजतभिन्नत्व भी रहता है यहांपर निषेध्यतावच्छेदकका भेद है अतः एकका निषेध होनेपर अपरका सत्त्व होता है प्रकृतमें तो दृश्यत्वादि निषेध्यतावच्छेदक उभयवृत्ति एकही है; जैसे गोत्व तथा अश्वत्व इन दोनोंका एकगजमें निषेध होनेपर निषेध्यता-वच्छेदक गजत्वात्यन्ताभावव्याप्यत्वरूप एकही है अतः गोत्व या अश्वत्वरूप अन्यतरकेनिषेध होनेपर अपरका सत्व प्रसक्त नहीं होता है; तद्वत् प्रकृतमें भी है । गजत्वात्यन्ताभावव्याप्यत्व गोत्व अश्वत्वमें रहता है; स्वाभाववदवृत्तित्वको व्याप्यत्व कहते हैं; स्वशब्दसे गजत्वका अत्य-न्ताभाव लिया, वह गजेतर अखिलपदार्थोंमें रहता है तथाच गजेतरनिखिलपदार्थगजत्वात्यन्ता-

भाववत् हुए, और गजत्वात्यन्ताभावात्यन्ताभाववत् गजही हुआ तन्निरूपितवृत्तिता गजदन्तगजकेशादिमें रह गई अवृत्तिता गोत्व तथा अश्वत्वपर आ गई। ननु—गोत्व तथा अश्वत्वको परस्परविरहरूप न होनेसे एकनिषेध्यतावच्छेदकावच्छिन्नत्व बन सकता है अतः दोषकी प्रसक्ति नहीं है; परन्तु परस्परविरहरूप जो सत्यत्व तथा मिथ्यात्व इन दोनोंमें निषेध्यतावच्छेदकके एकत्वका असंभव है अतः प्रकृतमें दोषोद्धार न होगा, तहां कहते हैं यथाचेति। यथा= जिसप्रकारसे सत्यत्व तथा मिथ्यात्वको परस्पर विरहरूपता नहीं है और परस्पर विरहव्यापकताभी नहीं है तथा=वहप्रकार, अधस्तात्=पहले, उपपादितं=ज्ञापितकरदिया है; भावार्थ यह है कि–जैसे सत्त्वासत्त्वको परस्परविरहरूपता नहीं है क्योंकि प्रपञ्चमें एकका असत्त्वहोनेपर द्वितीयकाभी असत्त्व होनेसे तैसे सत्यत्व और मिथ्यात्वकोभी परस्पर विरहरूपता नहीं है क्योंकि तुच्छमे सत्त्यत्वाभावके रहनेपरभी मिथ्यात्वको न होनेसे; इस अर्थका एकदेश प्रथममिथ्यात्वविचारावसरमें कहा गया और एकदेश ज्ञापित किया गया। ननु तो भी परस्पर अभावके, व्याप्य जो सत्त्यत्व तथा मिथ्यात्व हैं उनदोनोंको व्यावहारिक मानकर सामानाधिकरण्य नहीं हो सकता है; तथा द्वितीय मिथ्यात्वके निर्वचनकी समाप्तिमें आपने स्वयंही कहाहै कि–मिथ्यात्वाभावरूपं सत्त्यत्वं इस कथनसे परस्पर विरहरूपता भी है ही; ऐसेही जिसमतमें तुच्छपदार्थ नहीं माना जाता है उसमतमें परस्पर विरहव्यापकत्व भी है; तहां कहते हैं परस्परेति। मिथ्यात्व तथा सत्यत्व इन दोनोंको परस्परविरहरूपत्व या परस्परविरहव्यापकत्व तथा परस्परविरहव्याप्यत्व होनेपर भी मिथ्यात्व तथा सत्त्यत्व ये दोनों धर्म प्रपञ्चमें रहसकते हैं। क्यों ? विषमसत्तावाले भावाभावका विरोध न होनेसे प्रपञ्चवृत्ति व्यावहारिक मिथ्यात्वसे व्यावहारिक सत्त्यत्व=प्रातीतिकसे भिन्नका अपहार होनेपर भी काल्पनिक=प्रातिभासिक सत्त्यत्वका अपहार न होनेसे। जैसे शुक्तिरूप्यमें व्यावहारिकमिथ्यात्व रहता है और प्रातिभासिक सत्त्यत्व रहता है तैसेही प्रपञ्चमें भी व्यावहारिक मिथ्यात्व तथा प्रातिभासिक सत्त्यत्व है, और शुक्तिरूप्यमें जैसे व्यावहारिकमिथ्यात्वके अज्ञानसे प्रातिभासिक सत्यत्व उत्पन्न होता है, और व्यावहारिक मिथ्यात्वज्ञानसे स्वकारणीभूत अज्ञानके साथ निवृत्त हो जाता है; तैसेही प्रपञ्चमें भी व्यावहारिक मिथ्यात्वज्ञानसे प्रातिभासिक सत्यत्व उत्पन्न होता है व्यावहारिकमिथ्यात्वके ज्ञानसे स्वकारणीभूत अज्ञानके साथ निवृत्त हो जाता है यह भाव है। शंका:—शुक्तिरूप्यवृत्तिसत्यत्वको प्रातिभासिक इस लिए मानते हैं कि उसकी ब्रह्मप्रमान्यप्रमासे निवृत्ति हो जाती है; परन्तु प्रपञ्चवृत्ति सत्यत्वकी तो ब्रह्मप्रमान्यप्रमासे निवृत्ति नहीं होती है इसलिए इसे कैसे प्रातीतिक मान सकते हैं; ऐसी आशंका कर व्यावहारिक सत्यत्व तथा मिथ्यात्वका भी समुच्चय प्रपञ्चमें बन सकता है इस बातको संयोगके दृष्टान्तसे कहते हैं; तार्किकेति। तार्किकमतसे जैसे संयोग और संयोगाभावका समुच्चय माना जाता है तैसे सत्यत्व और मिथ्यात्व इन दोनोंके समुच्चयका अभ्युपगम होनेसे। गोत्व और गोत्वाभाव इन दोनोंका सामान्यतः विरोध देखागया, परन्तु संयोग और संयोगाभाव इन दोनोंका उपरोक्तविरोधसे विलक्षण एकावच्छेदेन ही विरोध तार्कि-

कोद्वारा माना जाता है तैसे हम लोग भी परस्परविरहरूप भी मिथ्यात्वसत्यत्वका समुच्चय मानते हैं क्योंकि जैसे तार्किकके मतमें प्रमाण है तैसे हमारे मतमें भी अनुमान तथा श्रुत्यादि प्रमाण हैं। शंका—यदि इस रीतिसे समुच्चय मानोंगे तो 'भाव तथा अभाव ये दोनों समसत्ताक होके एक अधिकरणमें नहीं रहते हैं' इस नियमका भंग होगा। समाधान। यह नियम औत्सर्गिक है कहीं २ इसका अपवाद भी होता है जैसे कि स्वप्नका गज तथा स्वप्नगजका अत्यन्ताभाव ये दोनों समसत्ताक होके भी समुचित होके रहते हैं। ननु—जहांपर मिथ्यात्वका अवच्छेदक उभयवृत्ति नहीं है वहांपर भी एकका वाध्यत्व होनेपर अपरके अधिक सत्ताकत्वमें क्या युक्ति है, तहां कहते हैं—एकस्येति। एक अर्थके साधकसे अपरअर्थनिष्ठवाध्यत्वविषयसत्ताकत्वका प्रयोजक=व्याप्य है यथा शुक्तिरूप्य तथा शुक्तिरूप्यके अभावमें; फलतः इन दोनोंमें एकके साधकसे अपरका नियमसे वाध होता है अतः ये दोनों विषमसत्ताक हैं। एकवाधकवाध्यत्वं=एकके वाधकसे अपरनिष्ठ वाध्यत्व समसत्ताकत्वका व्याप्य है, जैसे शुक्तिरूप्य तथा शुक्तिभिन्नत्व इन दोनोंमे जिसकालमें शुक्तिमें 'इदं रजतं,' ऐसा ज्ञान होता है उसी कालमें पुरोवर्त्ति पदार्थमें शुक्तिभिन्नत्वका ज्ञान होता है, और जब 'नेदं रजतं किन्तु शुक्तिरियम्' ऐसा रजतका वाधक ज्ञान उत्पन्न होता है तब शुक्तिभिन्नत्वका भी वाध हो जाता है तथाच एकवाधकवाध्यत्व होनेसे ये दोनों समानसत्ताक हैं। च=तथा प्रपञ्च=स्ववृत्तिसत्यत्वविशिष्ट प्रपञ्च और प्रपञ्चावृत्तिमिथ्यात्व इन दोनोंको एकज्ञानवाध्यत्व है अतः प्रपञ्चवृत्तिमिथ्यत्वका जो वाधक उस वाधकसे स्वनिष्ठसत्यत्वविशिष्टप्रपञ्चका भी वाध होनेसे अद्वैतकी हानि नहीं। यहांपर यह भी विचारणीय है—प्रपञ्चमिथ्यात्वनिष्ठत्वेन सत्यत्वंमिथ्यात्वका विकल्पकर प्रपञ्चमिथ्यात्वके अभ्युपगन्ता हम लोगोंके प्रति दूषणोक्ति नित्यसमाजाति=एक प्रकारका दोष है, नित्यसमाजातिका प्राचीनाऽऽचार्य्योंने लक्षण यह किया है 'धर्मस्य तदतद्रूपविकल्पानुपपत्तितः। धर्मिणस्तद्विशिष्टत्वभङ्गो नित्यसमोभवेत्'। अर्थ—धर्मस्य=साध्यनिष्ठ जो तद्रूपत्व तथा अतद्रूपत्वके दो विकल्प=साध्यधर्मिककोटिद्वयान्यतरावलम्बि दोविकल्प, उन विकल्पों की जो अनुपपत्ति उस अनुपपत्तिसे, धर्मिणः=पक्षनिष्ठतद्विशिष्टत्वस्य=साध्यविशिष्टत्वका भङ्ग=असंभव नित्यसमो=नित्यसम नामक जातिविशेषरूप दोष होता है। प्रकृतमें लक्षण घटाइए साध्यशब्दसे लिया प्रपञ्चवृत्तिमिथ्यात्व उस मिथ्यात्वनिष्ठ जो तद्रूपत्व तथा अतद्रूपत्वके विकल्प= मिथ्यात्वमें मिथ्यात्व है कि सत्यत्व है इत्याकारक विकल्प। उन विकल्पोंकी जो अनुपपत्ति= मिथ्यात्वमें मिथ्यात्व होगा तो प्रपञ्च सत्य हो जायगा, यदि मिथ्यात्वमें सत्यत्व होगा तो अद्वैतकी हानि होगी इत्याकारिका अनुपपत्ति उस अनुपपत्तिसे प्रपञ्चमें मिथ्यात्व तथा सत्यत्व एतदुभयान्यतरके न सिद्ध होनेसे प्रपञ्चमें असत्त्वापत्ति होगी उस असत्त्वापत्तिसे मिथ्यात्वरूप साध्यके वैशिष्ट्यका प्रपञ्चमें भङ्ग होगा क्योंकि व्यावहारिकसद्रूपमिथ्यात्वका असत्प्रपञ्चके साथ उपराग नहीं वन सकता है, इत्यादि दोषोंके अभिप्रायसेही मूलकारने 'कृतमधिकेन' कहा है। शंका—जैसे ब्रह्ममें सप्रपञ्चत्व तथा निष्प्रपञ्चत्व ये दो धर्म रहते हैं तहां सप्रपञ्चत्व व्यावहा-

रिक है और निष्प्रपञ्चत्व पारमार्थिक है सप्रपञ्चत्वसे निष्प्रपञ्चत्वका वाध नहीं होता है, तैसेही प्रपञ्चवृत्ति व्यावहारिक मिथ्यात्वसें प्रपञ्चवृत्तिसत्यत्वका प्रतिक्षेप न होगा। समाधान। धर्मिसे विषमसत्ताक जो धर्म होता है वह स्वसमानाधिकरणस्वविरोधिधर्मका प्रतिक्षेपक नहीं होता है और धर्मिसमानसत्ताक जो धर्म होता है वह स्वसमानाधिकरणस्वविरोधिधर्मान्तरका प्रतिक्षेपक होता है। ब्रह्ममें सप्रपञ्चत्वनामक जो धर्म है वह व्यावहारिक होनेसे ब्रह्मसमानसत्ताक नहीं है अतः स्वविरोधिस्वाधिकरणवृत्तिनिष्प्रपञ्चत्वका प्रतिक्षेपक नहीं, और प्रपञ्चवृत्ति मिथ्यात्वतो धर्मिसमानसत्ताक है अतः स्वविरोधि स्वसमानाधिकरणसत्यत्वका प्रतिक्षेपक है अतः कोई अनुपपत्ति नहीं।

इति सरलायां मिथ्यात्वस्य मिथ्यात्वोपपत्तिः।

अथ दृश्यत्वहेतूपपत्तिः।

ननु—मिथ्यात्वे साध्ये हेतूकृतं यद्दृश्यत्वं तदप्युपपादनीयम्। तथाहि—किमिदं दृश्यत्वं? वृत्तिव्याप्यत्वं वा १ फलव्याप्यत्वं वा २ साधारणं वा ३ कदाचित् कथंचिद्विषयत्वं वा ४ स्वव्यवहारे स्वातिरिक्तसंविदन्तरापेक्षानियतिर्वा ५ अस्वप्रकाशत्वं वा ६। नाद्यः; आत्मनो वेदान्तजन्यवृत्तिव्याप्यत्वेन तत्र व्यभिचारात्। अतएव न तृतीयोऽपि। नापि द्वितीयः; नित्यातीन्द्रिये शुक्तिरूप्यादौ च तदभावेन भागासिद्धिसाधनवैकल्ययोः प्रसङ्गात्। नापि चतुर्थः; ब्रह्मपूर्वं न ज्ञातमिदानीं वेदान्तेन ज्ञातमित्यनुभवेन आत्मनि व्यभिचारात्। नापि पञ्चमः; ब्रह्मण्यप्यद्वितीयत्वादिविशिष्टव्यवहारे संविदन्तरापेक्षानियतिदर्शनेन व्यभिचारात्। नापि षष्ठः; स हि अवेद्यत्वे सत्यपरोक्षव्यवहारयोग्यत्वाभावरूपः। तथाच शुक्तिरूप्यादेरपि अपरोक्षव्यवहारयोग्यत्वेन साधनवैकल्यात्—इति चेन्मैवम्;।

अथ सरलायां दृश्यत्वहेतूपपत्तिः।

दृश्यत्वरूप जो आद्य हेतु है उस हेतुमें दोषोंके परिहारके लिए तथा पूर्वपक्षमुखसे दोषोंके उद्घाटनके लिए पहले भूमिका रजते हैं नन्विति। मिथ्यात्वके साध्य होनेपर हेतूकृतं= ज्ञापकत्वेन उपन्यस्त यत्=जो दृश्यत्व, तत्=वह, अपि=भी उपपादनीयम्=उपपादन करनेके लायक है, परन्तु उपपादन हो नहीं सकता है अतः पक्षमें साध्यकी सिद्धिभी नहीं होगी यह शंका कर्त्ताका भाव है। उपपादन क्यों नहीं हो सकता है? तहां द्वैती कहता है तथाहीति। यह हेतुत्वेन उपन्यस्त दृश्यत्व क्या है? क्या वृत्तिव्याप्यत्वरूप है।—वृत्तिनिष्ठ जो आकाराख्यविषयत्व है उसे वृत्तिव्याप्यत्व कहते हैं; प्रत्यक्षस्थलमें इन्द्रियद्वारा वहिर्निर्गतान्तःकरणका घटाद्याकार परिणाम होता है वहांपर स्वाकारसदृशाकारत्वरूप इन दोनोंका संबंध होता है उसका नाम वृत्तिव्याप्यत्व है परन्तु यह संबंध रूपरसादिरूप विषयका वृत्तिकेसाथ नहीं बन सकता है अतः विषय तथा वृत्तिका स्वरूपसम्बन्धविशेषरूप ही सम्बन्ध है अतः उसीका नाम वृत्तिव्याप्यत्व

है, और "ह्रीर्धीर्भीः" (वृह० १।५३) इत्यादि श्रुतिसे अनुद्यमानधीत्वरूप जातिविशेषका नाम वृत्तित्व है और यह वृत्तित्व जिसमें रहता है उसे वृत्ति कहते हैं । शंका—यह जो धीत्व-रूप धर्म है वह भ्रमरूपाविद्यावृत्तिमें रहता है या नहीं ? यदि पहलापक्ष लो तो एतत्सर्वं मन एव (वृह० १।५३) इसकी असंगति हो जायगी क्योंकि अविद्यावृत्तिको मनका परिणाम न होनेसे मनके साथ उसका तादात्म्य नहीं वन सकता है; यदि द्वितीय पक्ष लो तो शुक्तिरूप्यमें साधनाभाव है, क्योंकि धीत्वरूप वृत्तित्वको रजताकार अविद्यावृत्तिमें न रहनेसे धीत्वरूपवृत्तित्व विशिष्ट-वृत्तिसंवन्धित्व शुक्ति रजतमें नहीं है । समाधान । दोनों पक्षमें दोप नहीं; क्योंकि उपरोक्त श्रुतिमें मनः परिणामभूत धीकाही निर्देश होनेसे उस धीकाही मनके साथ तादात्म्य कहना उपयुक्त है, और उक्तश्रुतिमें धीमात्रका निर्देश हो तो भी विशेष्यविशेषणाकारवृत्तिद्वयावच्छिन्न चितिमे भी धीव्यवहार है और धीद्वयसे घटितधीको तो विशेष्याकारमनोवृत्तिघटित होनेसे मन एव ऐसा निर्देश वन सकता है; और उपरोक्त धीत्वको अविद्यावृत्तिमें न स्वी-कार करें तो भी दोप नहीं, क्योंकि 'शुक्तिरुप्यादिकं मिथ्या' यह जो वाधकात्मक मनो-वृत्ति है तादृशवृत्तिविपयत्वेन भी शुक्तिरूप्यमें लक्षणसमन्वय हो सकता है । तथाच दृष्टान्तमें साधन वैकल्य नहीं ॥ १ ॥ वा=अथवा फलव्याप्यत्वरूप दृश्यत्व है । स्वाकारवृत्तिमें प्रतिविम्बित जो चेतन है उसे फल कहते हैं, तद्व्याप्यत्वका अर्थ तद्विपयत्व है तथाच वृत्तिप्रतिफलित=प्रतिविम्बितचेतनविपयत्व, अथवा स्वाकारवृत्त्या भग्नावरणकचित्सम्ब-न्धित्व फलव्याप्यत्वका अर्थ है ॥ २ ॥ वा=या, साधारणम्=उभयसाधारण=वृत्तिव्याप्यत्व फलव्याप्यत्वयोरन्यतरवत्त्वम्, अर्थात् वृत्तिव्याप्यत्व और फलव्याप्यत्व एतदुभयान्यतरवत्त्वरूप दृश्यत्व है ॥ ३ ॥ वा=या, कदाचित्=किञ्चित्कालावच्छिन्न, कथंचित्=आवृतानावृत्त साधारणचिद्विपयत्वम्=चित्तादात्म्यरूप दृश्यत्व है ॥ ४ ॥ स्वव्यवहारे=स्वविपयक जो स्फुर-णरूप तथा शब्दप्रयोगरूप व्यवहार उस व्यवहारमें स्वभिन्न जो संविदन्तर उसकी अपेक्षाकी नियति; फलतः स्वातिरिक्तसंविदपेक्षाव्याप्यस्वव्यवहारकत्वम्, अर्थ यह कि स्वातिरिक्त जो संवित् तादृश संवित्की अपेक्षाका व्याप्य जो स्वव्यवहार तादृश स्वव्यवहारकत्व ॥ ५ ॥ या स्वप्रकाशत्वाभावका नाम दृश्यत्व है ॥ ६ ॥ विकल्पकर प्रपञ्चि—प्रतिपक्षी दोपोद्भावन करता है नाद्यइति । प्रथमपक्ष ठीक नहीं है; क्यों ? आत्माको भी वेदान्तविचारजन्य अहं ब्रह्मास्मि इत्याकारकवृत्तिका विपय होनेसे तत्र=आत्मामें व्यभिचार होनेसे । साध्यवत्में वृत्ति होके साध्याभाववत्में वृत्तिका नाम व्यभिचारी है और उसमें जो साध्यवन्निरूपितवृत्तित्वसमाना-धिकरणसाध्याभाववन्निरूपितवृत्तित्व है उसका नाम व्यभिचार है, यहांपर वृत्तिव्याप्यत्वमें उभयनिरूपितवृत्तित्वके रहजानेसे व्यभिचार दोप है; अतः साध्याभाववन्निरूपितवृत्तित्वका ज्ञान हो जानेसे हेतुमे साध्याभाववन्निरूपितवृत्तित्वाभावरूपव्याप्तिज्ञान नहीं होगा तदभावात् अनु-मिति भी नहीं होगी । अत एव=व्यभिचार दोपसे ही तृतीयपक्ष भी समीचीन नहीं । नापि द्वितीयः=फलव्याप्यत्वरूपद्वितीयपक्ष भी निर्दोप नहीं; क्यों ? नित्यातीन्द्रिये=सर्वदा इन्द्रिय-

जन्यज्ञानीयविषयतासे अनाक्रान्त गुरुत्वादिमें च=और, शुक्तिरूप्यादिमें तदभावेन—फलव्याप्यत्वका अभाव होनेसे; भागासिद्धि तथा साधनवैकल्य इन दोनों दोषोंके प्रसंगसे। यहांपर यह अर्थ ज्ञातव्य है:—प्रत्यक्षपदार्थमें प्रतिवृत्तियहिर्गत जो अन्तःकरण है उस अन्तःकरणमें प्रतिविम्वित जो विषयचैतन्य तादृशविषयचैतन्यके साथ अभिन्न जो प्रमातृचैतन्य तादृश प्रमातृचैतन्यविषयत्व रहता है। और परोक्षपदार्थमें स्वस्थानस्थितान्तःकरणमें प्रतीबेम्वित जो प्रमातृचैतन्य तादृशप्रमातृचैतन्यविषयत्व रहता है। आद्यस्थलमें असत्त्वापादक तथा अभानापादक एतत्शक्तिद्वयविशिष्ट—आवरणका नाश होता है, और द्वितीयस्थलमें केवल असत्त्वापादक-शक्ति विशिष्ट आवरणका नाश होता है। आद्यस्थलमें अन्तःकरण विषयप्रदेशमें जाता है और द्वितीय स्थलमें नहीं, यद्यपि घटमें रूपादिके प्रत्यक्षके लिए अन्तःकरणका गमन आवश्यक है और वहीं पर गुरुत्व भी रहता है तथापि योग्यत्वघटित इन्द्रियका सन्निकर्ष गुरुत्वके साथ न होनेसे अन्तःकरणका गमन तद्देशमें अकिञ्चित्कर है इसीलिए गमनाभाव कहा है। और शुक्तिरजतस्वाप्नगजादि प्रातिभासिकपदार्थोंमें स्वाकार जो अविद्यावृत्ति=अधिष्ठानसामान्यस्वरूपावगाहि इदमाकारवृत्त्यवच्छिन्नचैतन्यनिष्ठसत्त्वप्रधान अविद्याका विषयावच्छिन्नचेतननिष्ठतमःप्रधानाविद्यापरिणामभूतप्रातिभासिकविषयविषयकत्वविशिष्ट परिणाम है उस वृत्तिमें प्रतिविम्वितसाक्षिचैतन्यरूपप्रमातृविषयत्व रहता है। इन तीनों ज्ञानोंका भेद ध्यानमें रखना चाहिए, प्रथमज्ञानमें विषयावच्छिन्न चैतन्य तथा प्रमातृचैतन्यका अमेद होता है। द्वितीयमें दोनों चैतन्योंका अमेद नहीं होता है; और तृतीयमें आरोप्याकार अन्तःकरणकी वृत्ति नहीं, और प्रातिभासिक पदार्थ अज्ञातसत्ताक नहीं होते हैं अतः इसे उपरोक्त दो शक्तिओंमेंसे किसी शक्तिकी नाशकता भी नहीं।

प्रश्न—वहिर्गत—अविद्याका परिणामरूप जो वृत्ति है उस वृत्तिमें अन्तःकरणोपहितरूप साक्षिचैतन्यका प्रतिविम्व कैसे है? । उत्तर—अधिष्ठानीयसामान्यस्वरूपावच्छिन्नचैतन्यका प्रतिविम्व उपरोक्तवृत्तिमें पडता है और वह उपरोक्त विषयावच्छिन्नचैतन्यका प्रतिविंवही स्वतादात्म्यापन्नेदमाकारबहिर्निस्सृतान्तःकरणवृत्तिप्रतिविम्वितेदमवच्छिन्नचैतन्याभिन्नत्वेन साक्षीका कहा जाता है; रान्तका वृत्तिके साथ कर्मधारय है। ये शंकासमाधान विषयावच्छिन्नचैतन्यनिष्ठअविद्याकाही परिणाम अर्थाध्यास तथा ज्ञानाध्यास है इस पक्षको लेके किये गये, अविद्यावृत्ति-शब्दार्थमें जिसमतका उल्लेख किया है उस मतसे नहीं उस मतमें तो अंतःकरणोपहितचैतन्यका स्वाश्रिताविद्याकी परिणामभूत वृत्तिमें साक्षात् प्रतिविम्व बन सकता है। उक्त तीन प्रकारके ज्ञानोंमेंसे प्रथम ज्ञानका जो विषय है उसे फलव्याप्य कहते हैं, फलव्याप्यवृत्तिधर्मका नाम फलव्याप्यत्व है जिसका निर्वचन दो प्रकारसे हो चुका है। तहां गुरुत्वादिनित्यपरोक्षविषयक अनुमानादिसे अन्तःकरणकी वृत्ति शरीरके भीतरही उत्पन्न होती है, वहिर्गमन उस वृत्तिका नहीं होता है तथाच गुरुत्वादिको उक्तवृत्तिदेशस्थता न होनेसे वृत्त्यवच्छिन्नचैतन्यके साथ गुरुत्वाद्यवच्छिन्नचैतन्यका अमेद न होनेसे तादृश चैतन्यके साथ तादात्म्यरूप विषयत्व गुरुत्वादिमें नहीं है, और पक्षतावच्छेदकसे आक्रान्त तो गुरुत्वादिरूप नित्यातीन्द्रिय हैं हीं अतः भागा-

सिद्धि है। तैसे उपरोक्त प्रकारसे शुक्तिरूप्यमें भी एतादृश विषयत्व नहीं है, अतः दृष्टान्तमें साधनविकलता है । नापिचतुर्थः=चौथा पक्ष भी अदोष नहीं। क्यों? ब्रह्म पूर्वमें नहीं जाना गया इस कालमें वेदान्तसे जाना गया इत्याकारक अनुभवसे आत्मामें व्यभिचार होनेसे। नापिपञ्चमः=पञ्चमपक्ष भी ठीक नहीं। क्यों? ब्रह्मविषयक जो अद्वितीयत्वादि-विशिष्ट व्यवहार उस व्यवहारमें ब्रह्मातिरिक्तवृत्तिरूपज्ञानान्तरकी अपेक्षाकी नियति देखनेसे व्यभिचार है। नापिषष्ठः=छठापक्ष भी कमनीय नहीं। क्यों? वह तो अवेद्यत्वे सत्यपरोक्षव्यवहारयोग्यत्वाभावरूप होगा, तथाच शुक्तिरूप्यादिके भी अपरोक्षव्यवहारयोग्यत्वसे साधन वैकल्य होनेसे; वहिर्देशस्थान्तःकरणका परिणामरूप जो विषयाकार वृत्ति है तादृशवृत्तिप्रतिविम्बितचिद्विषयत्वको वेद्यत्व कहते हैं और वेद्यत्वाभावका नाम अवेद्यत्व है, और अवेद्यत्वसमाधिकरण—अपरोक्षव्यवहारयोग्यत्वको स्वप्रकाशत्व कहते हैं, और तदभावको अस्वप्रकाशत्व कहते हैं; सो ऐसा अस्वप्रकाशत्व शुक्तिरूप्यादिमें नहीं रहा क्योंकि शुक्तिरूप्यादिमें तो फलाव्याप्यत्वसमानाधिकरण—अपरोक्षव्यवहारयोग्यत्वरूपस्वप्रकाशत्वही रहता है । भावार्थ यह कि—अविद्याप्रतिविम्बितसाक्षिरूपफलव्याप्यत्व शुक्तिरजतादिमें है, अन्तःकरणवृत्तिप्रतिविम्बितचैतन्य—रूपफलव्याप्यत्व नहीं, अतः प्रातिभासिक पदार्थोंमें हेतुका अभाव है; इति चेन्नैवम्=यदि ऐसा कहो तो नहीं कहना; क्यों?

फलव्याप्यत्वव्यतिरिक्तस्य सर्वस्यापि पक्षस्य क्षोदक्षमत्वात्। नचवृत्तिव्याप्यत्वपक्षे ब्रह्मणि व्यभिचारः; अन्यथा ब्रह्मपराणां वेदान्तानाम् वैयर्थ्यप्रसङ्गादिति—वाच्यम्; शुद्धं हि ब्रह्म न दृश्यम्; "यत्तदद्रेश्य"मिति श्रुतेः; किंतूपहितमेव, तच्च मिथ्यैव; नहि वृत्तिदशायाम् अनुपहितं तद्भवति। नच—'सर्वप्रत्ययवेद्येऽस्मिन् ब्रह्मरूपे व्यवस्थिते' इति स्ववचनविरोध इति—वाच्यम्; तस्याप्युपहितपरत्वात्।

फलव्याप्यत्वसे भिन्न सर्वपक्षको क्षोदक्षमत्वात्=विचार सह होनेसे। वृत्तिव्याप्यत्वरूप दृश्यत्व है इसपक्षमें दृश्यत्वका ब्रह्मणि=ब्रह्ममें व्यभिचार है, अन्यथा=ब्रह्मको वृत्तिव्याप्यत्व न अङ्गीकार करनेपर, ब्रह्मपराणाम्=ब्रह्मपरत्वेन अङ्गीकृत वेदान्तवाक्योंका वैयर्थ्य होगा; इति न च वाच्यम्=ऐसा नहीं कहना; क्योंकि शुद्धब्रह्म तो दृश्य नहीं है; यत=जो वेदान्त प्रसिद्धब्रह्म है तत्=वह, अद्रेश्यम् (मुं० । १ । १ । ६)=अदृश्य है इसश्रुतिसे; किन्तु=लेकिन, उपहितं=वृत्ति–विषयत्वोपहितं एव=ही दृश्य है; च=और, तत्=उपहित मिथ्यैव=मिथ्या ही है; फलतः साध्यके भी रहजानेसे व्यभिचार नहीं है; । ननु वृत्तिदशामें तो उपहितही रहता है और उपहितको मिथ्यात्व होनेपर सत्यरूपाधिष्ठानको शून्यतापत्ति होगी, तहां कहते हैं नहीति। वृत्तिदशामें अनुपहितं=शुद्ध जो अधिष्ठानरूप है वह शुद्धब्रह्म तत्=उपहित नहि भवति=नहीं होता है; तथाच उपहित दशामें भी अनुपहितको विद्यमान होनेसे अधिष्ठानके शून्यताकी आपत्ति नहीं। सर्वप्रत्ययवेद्येऽस्मिन् इत्यादि भवदीय आचार्यवचनके

साथ विरोध है क्योंकि इस वचनमें सर्वप्रत्ययवेद्यब्रह्म बतलाया गया है, इति नच वाच्यम्, क्यों? तिस वचनको भी उपहितपरत्व होनेसे; अर्थात् घटाद्याकारवृत्तिसे घटाद्युपहित सद्रूप ब्रह्मका ही ग्रहण होता है अनुपहितका नहीं।

नच—एवंसति शुद्धसिद्धिर्नस्यादिति वाच्यम्; स्वत एव तस्य प्रकाशत्वेन सिद्धत्वात्। ननु—अज्ञाते धर्मिणि कस्यचिद् धर्मस्य विधातुं निषेद्धुं वा अशक्यत्वेन शुद्धे दृश्यत्वं निषेधता शुद्धस्य ज्ञेयत्वमवश्यं स्वीकरणीयम्, नच—स्वप्रकाशत्वेन स्वतः सिद्धे शुद्धे श्रुत्या दृश्यत्वनिषेध इति—वाच्यम्; शुद्धं स्वप्रकाशमिति शब्दजन्यविशिष्टवृत्तौ शुद्धाप्रकाशे तस्य स्वप्रकाशत्वासिद्धेः—इति चेन्न; वृत्तिकाले वृत्तिरूपेण धर्मेण शुद्धत्वासंभवात् शुद्धस्य वृत्तिविषयत्वं न संभवति, अतः 'शुद्धं स्वप्रकाश' मिति वाक्यस्य लक्षणया अशुद्धत्वमस्वप्रकाशत्वव्यापकमित्यर्थः। तथाच अशुद्धत्वव्यावृत्त्या शुद्धे स्वप्रकाश्यता पर्यवस्यति, यथा भेदनिषेधेन अभिन्नत्वम्। नच—शुद्धपदेन अभिधया लक्षणया वा शुद्धाप्रकाशे तत्प्रयोगवैयर्थमिति—वाच्यम्; पर्यवसितार्थमादाय सार्थकत्वोपपत्तेः। एवं च 'शुद्धं न दृश्यं न मिथ्ये' त्यस्याप्यशुद्धत्वं दृश्यत्वमिथ्यात्वयोर्व्यापकमित्येतत्परत्वेन शुद्धे दृश्यत्वमिथ्यात्वयोर्व्यतिरेकः पर्यवस्यति। एतेन—स्फुरणमात्रमेव मिथ्यात्वे तन्त्रम्; लाघवात्, अतः "स्वतः स्फुरदपि ब्रह्म मिथ्यैवे" ति—शून्यवादिमतमपास्तम्; स्वतः स्फुरणरूपतायाः शुक्तिरूप्यादावभावात्, स्फुरणविषयत्वस्य ब्रह्मण्यसिद्धेः।

शंकते न चेति। एवं सति=शुद्धब्रह्ममें वृत्तिव्याप्यत्वके न अङ्गीकार करनेपर शुद्धकी सिद्धि=संशयाद्यविषयत्व नहीं होगा; इति न च वाच्यम्; क्यों? तस्य=उस शुद्धब्रह्मको स्वत एव=वृत्तिव्याप्यत्वके विनाही स्वप्रकाशत्वेन सिद्ध=संशयाद्यगोचरत्व होनेसे। शङ्कते नन्विति। अज्ञातधर्मीमें किसी भी धर्मका विधान करनेको या निषेध करनेको अशक्य होनेसे शुद्धमें दृश्यत्वं=वृत्तिव्याप्यत्वका निषेध करनेवालेसे शुद्धस्य=शुद्धनिष्ठज्ञेयत्व अवश्य स्वीकरणीय है; स्वप्रकाशहोनेसे सिद्ध शुद्धमें श्रुतिसे दृश्यत्वका निषेध है; इति न च वाच्यम्; क्यों? 'शुद्धं स्वप्रकाशम्' इत्याकारक जो शब्द है तादृशशब्दसे जन्य जो विशिष्ट वृत्ति है उस विशिष्टवृत्तिमें शुद्धका प्रकाश न होनेपर तस्य=शुद्धके स्वप्रकाशत्वकी असिद्धि होनेसे इति चेन्न=ऐसा यदि कहो तो नहीं कहना; क्यों? शुद्धनिष्ठवृत्तिविषयत्वके स्वीकार होनेपर वृत्तिकालमें वृत्तिरूप धर्मसे शुद्धत्वका असंभव होनेसे, और शुद्धको वृत्तिविषयत्व होनेपर स्वप्रकाशत्वका विरोध है अतः शुद्धको वृत्तिविषयत्व नहीं बनता है; अतः 'शुद्धं स्वप्रकाशं' इस वाक्यका लक्षणासे अशुद्धत्वं=उपहितत्व अस्वप्रकाशत्वका व्यापक है यह अर्थ है। तथाच अशुद्धत्वव्यावृत्त्या उपहितत्वरूप अशुद्धत्वकी व्यावृत्ति=निषेधसे तद्व्याप्यभूत अस्वप्रकाशत्वका भी निषेध होगा, अर्थतः स्वप्रकाशता ब्रह्ममें पर्य्यवसित होगी, यथा भेदनिषेधसे अभिन्नत्व पर्य्यवसित होता है='घटे घटभेदो नास्ति' इस वाक्यका शक्यार्थ घटभेदका

निषेध है; अर्थतः अभेद प्राप्त होता है । इस विषयका सविस्तर विचार द्वितीय परिच्छेदमें होगा। शुद्धपदसे शक्तिवृत्तिसे या लक्षणावृत्तिसे शुद्धका प्रकाश न होनेपर शुद्धपदके प्रयोगका वैयर्थ्य है, इति न च वाच्यम्, क्यों ? पर्य्यवसितार्थको लेके सार्थकत्वकी उपपत्ति होनेसे; एवम्=शुद्धको वृत्तिविषयत्वके विना भी शुद्धमें अर्थसिद्धिका संभव होनेपर, 'शुद्धं न दृश्यं न मिथ्या' इस वाक्यको भी अशुद्धत्व दृश्यत्व तथा मिथ्यात्व इन दोनोंका व्यापक है, लक्षणाद्वारा एतदर्थपरक होनेसे, शुद्धमें दृश्यत्व तथा मिथ्यात्व इन दोनोंका व्यतिरेक वृत्ति विनाही दृश्यत्व मिथ्यात्वके भ्रमकी तथा भ्रमोपादानभूत अविद्याकी निवृत्तिसे स्वतः सिद्ध होता है। एतेन=मिथ्यात्वका साधक जो हेतु है उस हेतुमें ब्रह्म-अवृत्तित्व स्थापनसे स्फुरणमात्रही मिथ्यात्वमें तन्त्र है लाघवात्=स्वभिन्नत्वानुपादानप्रयुक्त लाघव होनेसे अतः स्वभिन्नत्वका उपादान न होनेसे स्वतः स्फुरत्=स्वविषय ब्रह्म भी मिथ्याही है इति=यह शून्यवादीका मत एतेन=ब्रह्ममें वृत्तिविषयत्वके निषेधसे स्वविषयत्वके निषेधातिदेशसे निराकृत हुआ। ननु-ब्रह्ममें वृत्तिरूपज्ञानविषयत्वके न अंगीकार होनेपर भी ज्ञानस्वरूपत्वही मिथ्यात्वमें हेतु रहो; विज्ञानवादीके मतमें सर्वको ज्ञानरूप होनेसे शुक्तिरूप्यमें साधनाभाव नहीं है, तहां कहते हैं स्वत इति। हमारे मतमें शुक्तिरूप्यादिमें स्वतः स्फुरणरूपताका अभाव होनेसे साधनाभाव तदवस्थ है। भावार्थ यह कि=सर्व जडको स्वावच्छिन्न-चेतनमें कल्पित होनेसे ज्ञानतादात्म्यापन्नरूपताको शुक्तिरूप्यमें होनेपर भी ज्ञानात्यन्ताभिन्नस्वरूपताका शुक्तिरूप्यमें हमारे मतमें स्वीकार न होनेसे हम लोगोंके प्रति ज्ञानरूपत्व हेतुसे ब्रह्मनिष्ठत्वेन मिथ्यात्वसाधन करनेके लिए शक्य नहीं है; ननु-तब शुक्तिरूप्यादिमें ज्ञानविषयत्वके रहनेसे ज्ञानविषयत्वही मिथ्यात्वमें हेतु रहो मेरे मतमें ज्ञानमात्रकोही स्वविषयत्व होनेसे ब्रह्मरूपज्ञानमें भी स्वविषयत्व है ही तहां कहते हैं-स्फुरणेति ब्रह्ममें स्फुरणविषयत्वको हमारे मतमें असिद्ध होनेसे; फलतः प्रतिवादीके प्रति असिद्ध हेतुका प्रयोग नहीं करना चाहिए क्योंकि ऐसे स्थलमें प्रतिवादीको अनुमितिजनक परामर्शका संभव नहीं है।

ननु-विशिष्टज्ञाने विशेष्यस्यापि भाने श्रुत्या विशिष्टस्य दृश्यत्वेनैव विशेष्यस्यापि दृश्यत्वाद्यभिचारः, नच-'विष्णवे शिपिविष्टाये' त्यादौ विशिष्टस्य देवतात्ववत् विशिष्टस्य विषयत्वम्, अग्नीषोमयोर्मिलितयोर्देवतात्ववद्वा मिलितस्य विषयत्वम्, अतो न विशेष्ये विषयत्वमिति-वाच्यम्; तद्वदेव विशेषणस्याप्यविषयत्वे भागासिद्धिप्रसङ्गात्-इति चेन्न; विशेष्यतापन्नस्य विषयत्वेऽपि क्षत्यभावात्, तस्य मिथ्यात्वाभ्युपगमात्। अतएव-उपहितविषयत्वेऽप्युपधेयविषयत्वमक्षतमेव इति-अपास्तम्; उपहितात्मना तस्यापि मिथ्यात्वाभ्युपगमात्, ज्ञानान्तरविषयत्वेन विशेषणे भागासिद्ध्यभावाच्च।

शङ्कते नन्विति। विशिष्टज्ञानमें विशिष्ट शुद्धसे अतिरिक्त नहीं होता है, इस पक्षसे विशेष्यका भी भान होनेसे श्रुत्या=गुणविशिष्टब्रह्मबोधकश्रुतिसे विशिष्टस्य=विशिष्टके दृश्यत्वेन=

ज्ञेयत्वसेही विशेष्यको भी ज्ञेयत्व होनेसे व्यभिचार है; " वालरश्मिविशिष्टविष्णु=सूर्य्यके लिए, इत्यादिस्थलमें विशिष्टस्य=विशेषणविशेष्यतत्संसर्ग इन तीनोंसे अतिरिक्त विशिष्टको देवतात्ववत्=जैसे देवतात्व होता है वैसे 'यः सर्वज्ञः सर्ववित्' (मुं. । १ । १ । ९) इत्यादि श्रुतिओंको विशेषण विशेष्य तत्संसर्ग इन तीनोंसे भिन्न जो विशिष्ट तादृश विशिष्टविषयत्व है;– शिपिविष्टपदका व्याख्यान दुर्गाचार्य्यकृतभाष्यसहित निरुक्त नैगमकाण्ड अध्याय ५ खण्ड ८ में देखना चाहिए । अग्नीषोमीयं पशुमालभेत, यहांपर अग्नीसोमौ देवता अस्य, इस प्रकारकी व्युत्पत्तिसे जैसे मिलित अग्निसोमको देवतात्व होता है वैसे मिलित=विशेषण विशेष्य तत्संसर्ग एतत्त्रितयपर्य्याप्तविषयत्व है; अतः न विशेष्ये विषयत्वम्=इस लिए विशेष्यमात्रमे विषयत्व पर्याप्त नहीं है–इति न च वाच्यम्; क्यों ? तद्वदेव=देवतात्ववत् ही केवल विशेषणमें भी विषयत्वके न रहनेसे भागासिद्धिका प्रसंग होनेसे इति चेन्न; ऐसा यदि कहो तो नहीं कहना क्यों ? विशेष्यतापन्नको विशेष्यत्वेन विषयत्व होनेपर भी क्षतिका अभाव होनेसे तस्य= विशेष्यतापन्नके मिथ्यात्वका अभ्युपगम होनेसे । 'उपहितको विषयत्व होनेपर उपधेयका भी विषयत्व अविपन्नही है' इति यह कथन भी अत एव=अभ्युपगमसेही अपास्त हुआ, इसीका विवरण करते हैं उपहितात्मना=उपहितत्वरूपसे ही तस्यापि=उपधेयका भी मिथ्यात्वाभ्युपगम होनेसे । शंका–विशिष्टज्ञानमें यदि शुद्धका भान नहीं मानोंगे तो विशिष्टज्ञानके बाद शुद्धमें संशयादि होंगे । समाधान । विशिष्टविषयकनिश्चयको भी केवलविषयकसंशयादिके प्रति प्रतिबन्धकता होनेसे ऐसा नहीं होगा । शङ्का–घटादिको भी विशिष्टरूपसे विषयत्व है केवलरूपसे नहीं क्योंकि हम निर्विकल्पक नहीं मानते हैं और निर्विकल्पक मान भी लें तो भी नित्यातीन्द्रियोंमें निर्विकल्पकके अनङ्गीकारसे केवल घटादिमें भागासिद्धि है । समाधान । केवल-घटादि यदि ज्ञानके विषय न होंगे तो नृशृंगवत् अलीक हो जायेंगे । ज्ञानान्तरविषयत्वेन=विशिष्टाविषयक जो ज्ञान है तादृशज्ञानविषयत्वेन विशेषणमें भागासिद्धिका अभाव है ।

ननु—वेदान्तजन्याखण्डवृत्तेरुपहितविषयत्वे तदानीमुपाध्यन्तराभावेन तस्या एवोपधायकत्वात् स्वविषयत्वापत्तिः, न चेष्टापत्तिः, शाब्दवोधे शब्दानुपस्थिताभाननियमेन वृत्तेः शब्दानुपस्थितायाभानानुपपत्तेः, यथाकथंचिदुपपत्तौ वा न ततोऽज्ञानतत्कार्ययोर्निवृत्तिः स्यात्; अज्ञानतत्कार्याविषयकज्ञानस्यैव तदुभयनिवर्तकत्वात्, अन्यथा "अहमज्ञः अयंघट' इत्यादिज्ञानानामप्युपहितविषयकत्वेन अज्ञाननिवर्तकत्वप्रसङ्ग इति– चेन्न; वृत्तेः शाब्दवृत्तावनवभासमानाया एवोपधायकत्वाभ्युपगमात् । तदुक्तं कल्पतरुकृद्भिः– 'शुद्धं ब्रह्मेति विषयीकुर्वाणा वृत्तिः स्वेतरोपाधिनिवृत्तिहेतुरुदयते, स्वस्या अप्युपाधित्वाविशेषात् । एवं च नानुपहितस्य विषयता; वृत्त्युपरागोऽत्र सत्तयोपयुज्यते, न भास्यतया विषयकोटिप्रवेशेने' ति ।

शंकते नन्विति। वेदान्तसे उत्पन्न अखण्डवृत्तिको उपहितविषयत्व होनेपर तदानीं=वेदान्तजन्यअखण्डवृत्तिकालमें उपाध्यन्तराभावेन=उक्तवृत्तिरूपोपाधिसे अतिरिक्त उपाधिका अभाव है इस लिए तस्याएव=उपरोक्तवृत्तिकोही उपधायकत्वात्=उपाधित्व होनेसे स्वविषयत्वापत्ति है। शंका—उक्तवृत्तिकालमें आत्मामें अध्यस्तसुखादि भी आत्माकी उपाधि वन सकते हैं तथाच सुखाद्युपहित आत्माको वृत्ति विषय कर सकती है, अतः 'तस्या एवोपाधायकत्वात्' यह मूलकारका कथन असंगत है। समाधान। उक्तवृत्तिकालमें नियमसे सुखादि नहीं रहते हैं; इसलिए उक्तवृत्तिकालमें नियमसे यज्जातीय उपाधिका संभव है तज्जातीय उपाधि वृत्ति ही है सुखादिक नहीं, इस लिए मूलकारका कथन ठीक ही है,। शंका—स्थूलशरीरादि तो उपाधि हो सकते हैं। समाधान। शुद्धब्रह्मका जो वृत्तिउपहित रूपहै तद्विषयक वृत्तिको ही अज्ञान निवर्त्तकत्व है, अन्यथा घटाद्युपहितविषयकज्ञानसे भी अज्ञानके निवृत्तिकी आपत्ति है अतएव सुखादिको भी उपाधित्वका सम्भव नहीं है; तथाच 'उपाध्यन्तर' का अर्थ यह है कि अज्ञाननिवर्त्तकवृत्तिविषयत्वेन संभव हो जिसका एवम्भूत् जो उपाध्यन्तर; अथवा अज्ञान और अज्ञानका कार्य्य=अज्ञानप्रयुक्त इन दोनोंका नाश ज्ञानरूपही है और ज्ञानका नाश ज्ञानोपलक्षित आत्मा है इसमतमें ज्ञानकालमें शरीरादिका अभाव है अत एव इसमतमें जीवनमुक्ति भी नहीं मानी जाती है तथा इसमतसे यथाश्रुतार्थही ठीक है;। तथाच वृत्तिको स्वविषयत्वापत्ति दृढरूपसे प्राप्त है, इष्टापत्तिः=उपाधिविषयत्वमें इष्टापत्ति है 'नीलो घटो ज्ञातः' यहांपर नीलत्वरूप उपाधिमें भी ज्ञातत्व प्रतीत होनेसे नच=इष्टापत्ति नहीं हो सकती है; क्यों? शाब्दबोधमें शब्दसे अनुपस्थित=अस्मारितके अभानका जो नियम है तादृशनियमप्रयुक्त शब्दतः अनुपस्थितवृत्तिके भानकी अनुपपत्ति होनेसे;—वाक्यघटकीभूतपदजन्यपदार्थोपस्थितिविषयीभूतपदार्थोंके परस्परसंसर्गावगाहिज्ञानका नाम शाब्दबोध है इस शाब्दबोधमें वाक्यघटकीभूतपदजन्यपदार्थोपस्थितिके विषयीभूत पदार्थोंकाही भान होता है और 'शुद्धं ब्रह्म' या 'अहं ब्रह्मास्मि (बृ.। १।४।१०) इत्यादिवाक्य वृत्त्युपस्थापकपदसे अघटित हैं तथाच शब्दानुपस्थितवृत्तिका निर्दिष्टवाक्यजन्यशाब्दबोधमें भान कैसे होगा यह शंका कर्त्ता द्वैतीका अभिप्राय है। यथा कथञ्चित्=शाब्दवृत्तिमें शाब्दवृत्तिसे भिन्न शब्दानुपस्थितका भान नहीं होता है ऐसा नियम बनाके शाब्दवृत्तिमें शाब्दवृत्तिके भानकी उपपत्ति करनेपर तो ततः=उक्तवृत्तिसे अज्ञान तथा अज्ञानकार्य्य=अज्ञानप्रयुक्त इन दोनोंकी निवृत्ति न होगी; क्यों? अज्ञान और अज्ञानका कार्य्य एतदुभयाविषयक ज्ञानकोही तदुभय=अज्ञानतत्कार्य्य एतदुभयनिवर्त्तकत्व होनेसे, अन्यथा 'अहमज्ञः' 'अयंघटः' इन ज्ञानोंको भी अज्ञानोपहित तथा तत्कार्य्योपहितविषयक होनेसे अज्ञान निवर्त्तकत्वका प्रसंग होगा इति चेन्न=अर्थपूर्ववत्। क्यों? शाब्दवृत्तिमें विषयतासम्बन्धसे अप्रविष्ट वृत्तेः=वेदान्तजन्यवृत्तिकोही उपाधित्वका अभ्युपगम होनेसे। सारांश यह कि—वेदान्तजन्य अखण्डवृत्ति स्वनिष्ठविषयितानिरूपितविषयतासे अनाक्रान्त होकेही स्वोपहितको उक्तविषय-

तासे आक्रान्त वना देती है। इस अर्थमें कल्पतरुकारकी सम्मति देते हैं–उक्तमिति। शुद्ध-ब्रह्मेति=शुद्धब्रह्मका जो वृत्ति–उपहितरूप उस रूपको विषयकरती हुई वृत्ति स्वः स्वेतरश्च य उपाधिः=दृश्यम्=स्वरूप और स्वेतररूप जो दृश्य तादृश दृश्यकी जो निवृत्ति तादृश निवृत्तिका व्याप्यभूत होके उदय होती हैं स्वस्या=वृत्तिको भी उपाधित्व=स्वनिवर्त्याज्ञानप्रयुक्तत्वको अविशेष होनेसे। एवं च=स्वसे उपहित जो ब्रह्मस्वरूप उस ब्रह्मस्वरूपसे अन्यको नहीं विषय करनेवाली वृत्तिकोही सर्व दृश्योच्छेदकत्व होनेपर नानुपहितस्य=वृत्त्युपहितसे अन्य शुद्धब्रह्मको या दृश्यको विषयत्व नहीं है; ननु वृत्त्युपहितको विषयत्व होनेपर वृत्तिको भी विषयत्व आवश्यक है, 'नीलोपहितघटो ज्ञातः' यहांपर जैसे नीलको ज्ञातत्व होता है; तहां कहते हैं वृत्त्युपराग इति। अत्र=वृत्त्युपहितं ब्रह्म विषयः इस व्यवहारमें वृत्त्युपरागः=वृत्तिका विषयत्वरूपसम्बन्ध सत्तया=अविषयव्यावृत्तिकर्तृत्वविशिष्टविद्यमानत्वेन उपयुक्त होता है विषय-कोटिप्रवेशप्रयुक्तभास्यत्वेन नहीं फलतः विषयघटकतया नहीं।

अयमभिप्रायः—यथा अज्ञानोपहितस्य साक्षित्वेऽपि नाज्ञानं साक्षिकोटौ प्रविशति; जडत्वात्, किन्तु साक्ष्यकोटावेव, एवं वृत्त्युपहितस्य विषयत्वेऽपि न वृत्तिर्विषय-कोटौ प्रविशति; स्वस्याः स्वविषयत्वानुपपत्तेः, किंतु स्वयमविषयोऽपि चैतन्यस्य विषयतां सम्पादयतीति न काप्यनुपपत्तिः। एतेन—ज्ञानाज्ञानयोरेकविषयत्वं—व्याख्यातम्; अज्ञानमपि हि स्वोपधानदशायामेव ब्रह्म विषयीकरोति; स्वानुपाधानदशायां स्वस्यैवाभावात्। तथाच ज्ञानाज्ञानयोरुभयोरप्युपाध्यविषयकत्वे सत्युपहितविषयकत्वात् समानविषयत्वमस्त्येव। एतेनउपाधिविषयज्ञानानामज्ञानानिवर्तकत्वं—व्याख्यातम्; अज्ञानस्योपाध्यविषयकत्वेन समानविषयत्वाभावात्, समानविषयत्वेनैव तयोर्निवर्त्यनिवर्तकभावात्।

यह अभिप्राय है–जैसे अज्ञानोपहित चैतन्यको साक्षित्व होनेपर भी अज्ञान साक्षिकोटिमें नहीं प्रविष्ट होता है किन्तु साक्ष्यकोटिमें ही प्रविष्ट होता है जड होनेसे, ऐसेही वृत्त्युपहित चैतन्यको विषयत्व होनेपर भी वृत्ति विषयकोटिमें प्रविष्ट नहीं होती है स्वके स्वविषयत्वकी अनुपपत्ति होनेसे किन्तु वृत्ति स्वयं विषय न होकर भी चेतननिष्ठविषयताको सम्पादन करती है इसलिए कोई अनुपपत्ति नहीं। यहांपर अज्ञान्वितस्वविषयत्वमें अनन्वित होके विद्यमानावस्थामें स्वविषयकी व्यावर्त्तक होनेसे वृत्तिको स्वविषयत्वके प्रति उपाधित्व है; नीलो घटोज्ञातः इसव्यवहारमें नीलत्वादि विशेषण हैं। एतेन=वेदान्तजन्यपूर्वोक्तवृत्तिको स्व। तथा स्वेतररूपजो उपाधि है तादृश उपाध्यविषयकत्व होके उपहितविषयकत्वके व्याख्यानसे ज्ञानाज्ञानयोः=ब्रह्मज्ञान तथा अज्ञान इन दोनोंको एकविषयत्वं=समानविषयत्वव्याख्यात हुआ। ननु–अज्ञान तो शुद्धब्रह्मविषयक है; और वृत्ति उपहितविषयक है फिर समान विषयकत्व कैसे है क्योंकि उपहित तथा शुद्धका भेद होता है अन्यथा घटका निर्विकल्पकज्ञान तथा घटत्वप्रकारक ज्ञान इन दोनोंको समानविषयता हो जायगी ऐसी आशंका मनमें लाके

अज्ञान भी उपहित विषयकही है इस अर्थका प्रतिपादन करते हैं अज्ञानमपीति । अज्ञान भी स्वोपधानदशायामेव=स्वं=अज्ञान तद्रूप उपधान=उपाधि जिसकालमें ब्रह्ममें है उसकालमें ही ब्रह्मको विषय करता है; और अज्ञानरूप उपाधि जिसकालमें नहीं है उसकालमें स्वकाही अभाव होनेसे अज्ञानविषयत्व नहीं है, यहांपर यह बात ध्यानमें रखनी चाहिए प्रतिजीव अज्ञानभेदपक्षसे यह विचार हो रहा है । तथाच=फलित यह हुआकि—ब्रह्मज्ञान तथा अज्ञान इन दोनोंको उपाध्यविषयकत्वपूर्वकउपहितविषयकत्व होनेसे समानविषयत्व है ही । एतेन—उक्तार्थकी व्यवस्थासे उपाधि है विषय जिन्होंकी एवम्भूत जो ज्ञान हैं तादृश ज्ञानोंको अज्ञानके प्रति अनिवर्त्तकत्व व्याख्यात हुआ; अज्ञानको उपाधिविषयत्व न होनेसे उपाधिविषयक ज्ञानोंको समानविषयत्व नहीं है और समानविषयत्वप्रयुक्त ही ज्ञानाज्ञानको निवर्त्यनिवर्त्तकभाव है ।

वस्तुतस्तु शब्दाजन्यवृत्तिविषयत्वमेव दृश्यत्वम्; अन्यथा शशविषाणं तुच्छमित्यादिशब्दजन्यवृत्तिविषये तुच्छे व्यभिचारस्य दुरुद्धरत्वात् । एवंच सति शुद्धस्य वेदान्तजन्यवृत्तिविषयत्वेऽपि न तत्र व्यभिचारः; तुच्छशुद्धयोः शब्दाजन्यवृत्तिविषयत्वानभ्युपगमात् । यद्वा—सप्रकारकवृत्तिविषयत्वमेव दृश्यत्वम्, प्रकारश्च सोपाख्यः कश्चिद्धर्मः; तेन निष्प्रकारकज्ञानविषयीभूते शुद्धे निरुपाख्यधर्मप्रकारकज्ञानविषयीभूते तुच्छे च न व्यभिचारः । अभावत्वस्यापि सोपाख्यत्वादभावत्वप्रकारकज्ञानविषयीभूते अभावे च न भागासिद्धिः । उपाख्याचास्तीतिधीविषयत्वादीत्यन्यत् । एतेन वृत्तिव्याप्यफलव्याप्ययोः साधारणं व्यवहारप्रयोजकविषयत्वरूपं दृश्यत्वमपि हेतुः; ब्रह्मणि तुच्छे च व्यभिचारपरिहारोपायस्योक्तत्वात् ।

स्वप्रकाश ब्रह्ममें भी कल्पिताज्ञानकी निवृत्त्यर्थ वृत्तिविषयत्वको युक्त होनेसे शुद्ध ब्रह्म भी वृत्तिविषय है ऐसा मानना चाहिए । किञ्च 'अहमस्मि न वा,' 'अहं जानामि न वा,' 'अहं नास्मि,' 'अहं न जानामि' इत्याकारक संशयविपर्य्ययके न होनेसे सदंशमें तथा चिदंशमें अज्ञान नहीं है, और 'अहं पूर्णानन्दो नवा' 'नाहं पूर्णानन्द' इत्याकारक संशय विपर्य्ययसे पूर्णानन्दांशमेंही अज्ञान प्रतीत होता है तथाच पूर्णानन्दरूप शुद्धब्रह्ममें अज्ञानकी निवृत्तिके लिए वृत्तिकी विषयता माननी चाहिए, किञ्च 'केवलो निर्गुणश्च' (श्वे०।६।११) इत्यादि श्रुतिओंसे शुद्ध ब्रह्ममेंही सर्वधर्मका निषेध मानना चाहिए, यदि उपहितमें मानोगे तो उपहितको कल्पित होनेसे अधिष्ठानसापेक्षत्वप्रयुक्त शुद्धमें तादात्म्य मानना पडेगा और तैसा होनेपर ब्रह्ममें सर्व धर्मकी निषेधिका श्रुतिके साथ विरोध होगा अतः वृत्तिविषयत्व ब्रह्ममें माननाही चाहिए, तथा पूर्वाचार्य्योंने भी वृत्तिविषयत्व माना है तथाहि—फलव्याप्यत्वमेवास्य शास्त्रकारैर्निराकृतम् । ब्रह्मण्यज्ञाननाशार्थं वृत्तिव्याप्यत्वमिष्यते इत्यादि अरुचिओंको उक्तार्थमें देखकर कहते हैं वस्तुत इति । वस्तुतः शब्दसे अजन्य जो वृत्ति तादृशवृत्तिविषयत्वही दृश्यत्व है;

अन्यथा=शब्दाजन्यत्वरूप वृत्तिका विशेषण न देनेपर 'शशविषाणं तुच्छम्' इत्याकारक शब्दजन्यवृत्तिके विषयीभूत तुच्छमें व्यभिचार दुरुद्धर होगा। एवं च सति=शब्दाजन्यत्वरूप वृत्त्यंशमें विशेषण देनेपर शुद्धको वेदान्तजन्यवृत्तिविषयत्व होनेपर भी तत्र=शुद्धमें व्यभिचार नहीं है। क्यों? शुद्ध तथा तुच्छ इन दोनोंमें शब्दाजन्यवृत्तिविषयत्वका अनङ्गीकार होनेसे। ननु—तुच्छं, वृत्तिविषयः, तुच्छादिपदविषयत्वात्। तुच्छं, न क्षणिकं, अकारणत्वात्, इत्यादि अनुमानोंसे भी तो तुच्छ ज्ञापित होता है अतः शब्दाजन्यवृत्तिविषयत्वको तुच्छमें रह जानेसे अतिव्याप्ति=व्यभिचार तदवस्थ है; तहां कहते हैं यद्वेति। सप्रकारक जो वृत्ति है तादृश वृत्तिविषयत्वही दृश्यत्व है=जिस वृत्तिमें विषयितासम्बन्धसे किसी विशेषणका भान होता हो उसे सप्रकारक कहते हैं। लक्षणघटक प्रकार तो उपाख्याके सहित कोई धर्मरूप ग्राह्य है; तेन=निरुक्तदृश्यत्वसे निष्प्रकारकज्ञानविषयीभूत शुद्धमें च=और निरुपाख्यधर्मप्रकारकज्ञानविषयीभूत तुच्छमें व्यभिचार नहीं है। और अभावत्वको भी सोपाख्यत्व होनेसे अभावमें भागासिद्धि नहीं है। उपाख्या च=उपाख्या तो 'अस्ति' इत्याकारक जो धी तादृश धीविषयत्वादिरूप है; फलतः अस्तिधीविषयत्वका नाम उपाख्या है, अस्तिधीविषयत्वविशिष्टका नाम सोपाख्य है, यह धर्म द्रव्यमस्ति, अभावोऽस्ति, अभावत्वमस्ति इत्यादि प्रतीतिओंसे शुद्धभिन्न—भावाभाव साधारण है, और तुच्छमस्ति, ऐसी प्रतीति न होनेसे तुच्छमें नहीं है। आदिपदसे सत्तादात्म्यासत्तादात्म्यत्वान्यातरवत्त्वका ग्रहण करना, सत्तादात्म्यवत्त्वेन अविद्या आकाशादि संगृहीत होते हैं असत्तादात्म्यवत्वेन असद्वृत्त्यभाव प्रतियोगित्वादिका ग्रहण होता है; तुच्छकी व्यावृत्ति है क्योंकि तुच्छ किसीके साथ तादात्म्यापन्न नहीं। एतेन=इस कथनसे वृत्तिव्याप्य तथा फलव्याप्य इन दोनोंमें साधारणं=अनुगतव्यवहारप्रयोजक विषयत्वं=व्यवहारके प्रयोजक जो चित्तादात्म्य तथा वृत्तिविषयत्व एतदन्यतरस्वरूप दृश्यत्व भी हेतु है, तुच्छ तथा ब्रह्ममें व्यभिचारपरिहारके उपायको उक्त होनेसे।

यद्वा—दृश्यत्वं चिद्विषयत्वम्, तच्च यथाकथंचिच्चित्सम्बन्धित्वरूपं हेतुः, तच्च न चैतन्ये; अभेदे भेदनान्तरीयकस्य सम्बन्धस्याभावात्, अतो न व्यभिचारः। तुच्छे च व्यभिचारः परिहरणीयः। यद्वा—स्वव्यवहारे स्वातिरिक्तसंविदपेक्षानियतिरूपं दृश्यत्वं हेतुः; संविच्छब्देन विषयाभिव्यक्तं वा वृत्त्यभिव्यक्तं शुद्धं वा चैतन्यमात्रमभिप्रेतम्, तथा च घटादौ नित्यातीन्द्रिये साक्षिभास्ये च सर्वोऽपि व्यवहारः स्वातिरिक्तसंवित्सापेक्ष इति नासिद्धिः। व्यवहारश्च स्फुरणाभिवदनादिसाधारणः। तत्र ब्रह्मणः स्फुरणरूपे व्यवहारे नित्यसिद्धे स्वातिरिक्तसंविदपेक्षा नास्तीति नियतिपदेन व्यभिचारवारणम्। स्वगोचरयावद्व्यवहारे स्वातिरिक्तसंविदपेक्षायां पर्य्यवसानात्। अत एवास्वप्रकाशत्वरूपं दृश्यत्वमपि हेतुः; स्वप्रकाशत्वं हि स्वापरोक्षत्वे स्वातिरिक्तानपेक्षत्वम्, 'यत् साक्षादपरोक्षात् ब्रह्मे'ति श्रुतेः। तथा चान्यानधीनापरोक्षत्वं पर्यवस्यति; तन्निरूपितभेदवत्त्वं

हेतुः। तच्च नित्यपरोक्षे अन्याधीनापरोक्षे च घटादावस्तीति नासिद्धिः। नच—ब्रह्मणोऽपि ब्रह्मप्रतियोगिककाल्पनिकभेदवत्त्वात्तत्र व्यभिचारः अकल्पितभेदस्य क्वाप्यसिद्धत्वादिति—वाच्यम्; तद्भेदस्यान्यानधीनापरोक्षत्वरूपधर्मानिरूपितत्वात्, जीवत्वेश्वरत्वादिरूपस्यान्यधर्मस्य तन्निरूपकत्वात्। एवं चावेद्यत्वे सत्यपरोक्षव्यवहारयोग्यत्वाभावरूपं दृश्यत्वमपि हेतुः; नच—फलव्याप्यत्वाभावविशिष्टं यदपरोक्षव्यवहारयोग्यत्वं तस्य ब्रह्मणी वाविद्यान्तःकरणादौ शुक्तिरूप्यादौ च सत्त्वेनासिद्धिसाधनवैकल्ये इति—वाच्यम्; अज्ञानविवर्तकवृत्तिविषयत्वयोग्यत्वस्यापरोक्षव्यवहारयोग्यत्वपदेन विवक्षितत्वात्, तस्य चाविद्यादौ शुक्तिरूप्यादौ चासत्त्वात् नासिद्धिसाधनवैकल्ये। यथाच घटादेः फलव्याप्यत्वं, तथाग्रे वक्ष्यामः। अविद्यानिवृत्तेः पञ्चमप्रकारत्वपक्षे तत्र व्यभिचारवारणायाज्ञानकालवृत्तित्वं हेतुविशेषणं देयम्, तेनैव तुच्छेऽपि न व्यभिचारः। एवमेव सर्वेषु हेतुषु व्यभिचारपरिहाराय यतनीयम्। सद्विविक्तत्वमात्रे तु साध्ये तुच्छे पञ्चमप्रकाराविद्यानिवृत्तौ च न व्यभिचारगन्धोऽपीति सर्वमवदातम्॥

॥ इति अद्वैतसिद्धौ दृश्यत्वहेतूपपत्तिः॥

अथवा चिद्विषयत्वरूप ही दृश्यत्व हेतु है, तच्च=चिद्विषयत्व तो यथाकथंचित्= साक्षात् परम्परासाधारण चित्संबन्धित्वरूप है। तहां शुक्तिरजतका यदि शुक्त्यवच्छिन्न—चैतन्यमें अध्यास हो तवतो उसका साक्षात् संबन्ध है, और यदि इदमाकारवृत्त्यवच्छिन्न—चैतन्यमें अध्यास हो तो साक्षिविषयत्व, स्वतादात्म्यापन्नेदन्तातादात्म्यरूपपरम्परासे आवेगा। तैसेही स्वाश्रितवृत्तिविषयत्वरूप परम्परा चित्संवन्धित्व असत्‌में भी है, अतएव असत्‌में व्यभिचारकी वारणीयता मूलकार बताते हैं, तच्च=शुद्धचित्संवन्धित्व शुद्धचैतन्यमें तो नहीं है; क्यों? अभेदे=अत्यन्ताभेद होनेपर भेदनान्तरीयकस्य=भेदव्याप्यसंबन्धका असंभव होनेसे। इस लिए शुद्ध चित्‌में व्यभिचार नहीं है, तुच्छमें उपरोक्तरीतिसे व्यभिचार है वह परिहरणीय है; अर्थात् हेत्वंशमें विशेषण देके परिहरणीय है; अस्तित्वप्रकारकधीविषयत्वाधिकरणनिरूपितवृत्तित्वविशिष्टं यत् चित्संवन्धित्वं तत्त्वं दृश्यत्वम्। यों परिष्कृत करनेसे तुच्छमें व्यभिचार वारित होगा। अथवा स्वविषयकव्यवहारमें स्वातिरिक्तसंवित् की अपेक्षाकी नियतिरूप दृश्यत्वरूप हेतु है लक्षणघटक संवित् शब्दसे विषयाभिव्यक्त=विषयावच्छेदेन भग्न है आवरण जिसका एवम्भूत चेतन, या विषयगतवृत्तिमें प्रतिविम्बित चेतन, वृत्त्यभिव्यक्त=अन्तःकरणावच्छेदेन भग्नावरणचेतन या अन्तःकरणावच्छेदेन वृत्तिप्रतिविम्बितचेतन, चैतन्यमात्रम्=विषयाभिव्यक्तत्वादिरूपसे अविशेषित चेतन अभिप्रेतम्=चित्त्वेन अभिप्रेत है। तथाच=फलित यह हुआकि, घटादिमें नित्यातीन्द्रियमें साक्षिभास्यमें सर्वव्यवहार स्वातिरिक्तसंवित्सापेक्ष है इसलिए असिद्धि नहीं है। वहां घटादिमें अपरोक्षत्वरूप व्यवहार घटाद्यभिव्यक्तचेतन सापेक्ष

है । नित्यातीन्द्रियगुरुत्वादिविषयक जो अस्तित्वादिरूप व्यवहार है वह नित्यातीन्द्रियविषयक मनोऽवच्छेदेन वृत्त्यभिव्यक्त चेतन सापेक्ष है, और सुखादिमें जो अपरोक्षत्वादिरूप व्यवहार है वह सुखाद्यभिव्यक्तत्वसे अविशेषित सुखाद्यवच्छिन्नचैतन्यसापेक्षहै । यह त्रिविधचित्साधारणनिवेशका फल है । व्यवहारश्च=लक्षणघटक व्यवहार तो स्फुरण अभिवदन आदिशब्दतः लब्ध इच्छाप्रवृत्त्यादि साधारण है । तहां ब्रह्मका स्वरूपभूत जो साक्षिरूप नित्यस्फुरण है तद्रूप जो व्यवहार उस स्फुरणरूप व्यवहारको अनादि होनेसे स्वातिरिक्तसंवित्‌की अपेक्षा नहीं है इस रीतिसे नियतिपदसे व्यभिचारवारण करदिया । स्वगोचरयावत् व्यवहारमे स्वातिरिक्त संवित् की अपेक्षामें ही लक्षण का पर्य्यवसान होनेसे; । भावार्थ यह कि—स्वगोचरव्यवहारत्वावच्छिन्नत्वाधिकरणनिरूपितवृत्तित्वविशिष्ट—अत्यन्ताभावीयप्रतियोगितावच्छेदकानवच्छिन्न जो स्वातिरिक्तसवित्सापेक्षकत्व उसको हेतु वनाते हैं, तथाच ब्रह्मगोचर शब्दप्रयोगादिरूप व्यवहारको स्वातिरिक्तसंवित्सापेक्षकत्व होनेपरभी स्वगोचरस्फुरणरूपव्यवहारत्वावच्छिन्नत्वावच्छेदेन स्वातिरिक्तसंवित्सापेक्षकत्वका अभाव रह जानेसे ब्रह्ममें अतिव्याप्ति=व्यभिचार नहीं है ।

अतएव=जिससेकी ब्रह्मस्फुरणको ब्रह्मसे अतिरिक्त चिदधीनत्व नहीं है, और घटादिव्यवहारोंको घटादिसे अतिरिक्त चिदधीनत्व है यह अर्थ पूर्वलक्षणके परिष्कारके लिए कहा गया है और साधु है अतएव अस्वप्रकाशत्वरूप दृश्यत्व हेतुभी साधु है; हि=यतः स्वप्रकाशत्व जो है वह स्वापरोक्षत्वमें स्वातिरिक्तानपेक्षत्व रूप है जो ब्रह्म साक्षात् अपरोक्षरूप है (बृ० ३-४-१) इस श्रुतिसे । तथाच अन्यानधीनापरोक्षत्व पर्य्यवसित होगा । तहां जिसपदार्थमें लक्षण घटाना है उससे अतिरिक्त निखिल पदार्थोंको अन्यपदसे लेना और उन अन्यपदार्थोंके आधीन हो अपरोक्षत्व जिसका उसका नाम है अन्याधीनापरोक्ष और अन्याधीनापरोक्षसे अतिरिक्त जो पदार्थ है उसका नाम है अन्यानधीनापरोक्ष, और अन्यानधीनापरोक्षमें रहनेवाले असाधारण धर्मका नाम है अन्यानधीनापरोक्षत्व, तन्निरूपितभेदवत्व हेतु है, तत् शब्दसे अन्यानधीनापरोक्षत्वावच्छिन्न लेना तथाच अन्यानधीनापरोक्षत्वावच्छिन्ननिष्ठप्रतियोगितानिरूपकतादात्म्यसंबन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताक—अभाव हेतु हुआ अथवा तच्छब्दसे अन्यानधीनापरोक्षत्वरूपधर्मही लेना तोभी भेद तदवच्छिन्नही मिलेगा, क्योंकि जैसे स्वाश्रितसेनिरूपित स्वनिरूपितभी कहा जाता है तैसे स्वावच्छिन्नसे निरूपितको स्वनिरूपित कहनेमें कोई आपत्ति नहीं । यहांपर अन्यानधीनत्व विशेषण है अपरोक्षत्व विशेष्य है तादृशविशेषणविशिष्टका भेद हेतु है तच्च=उपरोक्तभेदवत्त्व तो नित्यपरोक्षमें च=तथा अन्याधीनापरोक्षघटादिमें है इस हेतुमें असिद्धि नहीं । नित्यपरोक्षमें अपरोक्षत्वरूप विशेष्यके न रहनेसे लक्षणसमन्वय हुआ, और नित्य—अपरोक्षमें=घटादिमें अपरोक्षत्वके रहनेपरभी उस अपरोक्षत्वको अन्याधीन होनेसे अन्यानधीनत्वरूप विशेषणके न रहनेसे लक्षणसमन्वय हुआ । ब्रह्मकोभी ब्रह्मप्रतियोगिक जो काल्पनिक भेद तादृश भेदवत्ता होनेसे तत्र=ब्रह्ममें व्यभिचार है; क्यों ? अकल्पितभेदको कहींभी असिद्ध होनेसे इति न च वाच्यम्; क्यों ? तद्भेदस्य=ब्रह्मप्रतियोगिकभेदको अन्यानधीनत्वरूपविशेषणसे विशेषित जो अपरोक्षत्वरूपधर्म तादृश धर्मसे अनिरूपितत्वात्=तादृशधर्मावच्छि-

नानुयोगिताकत्वका अभाव होनेसे='जीवो ब्रह्म न,' 'ईशो ब्रह्म न' इत्यादि अनुभवसे सिद्ध जो भेद है उस भेदको शुद्धचिद्रूपब्रह्मप्रतियोगिक होनेपरभी जीवत्वादि धर्मसे उपहित जो ब्रह्म है तादृश ब्रह्मनिष्ठहोनेसे तिसभेदकी अनुयोगिता जीवत्वादि धर्मावच्छिन्न है और उक्तस्वप्रकाशत्वावच्छिन्न नहीं यह भाव है । जीवत्वईश्वरत्वादिरूपअन्यधर्मको तन्निरूपकत्व होनेसे=अनुयोगितावच्छेदकत्वहोनेसे । एवं च=यथाश्रुतका न आदरकर व्याख्यान करनेपर अवेद्यत्वविशिष्ट जो अपरोक्षव्यवहारयोग्यत्व तादृशयोग्यत्वप्रतियोगिक जो अभाव तादृश-अभावरूप दृश्यत्वभी सद् हेतु है; यहांपर "स्वावच्छिन्नचिद्विषयक जो अभानापादकाज्ञान तादृश-अज्ञाननिवर्त्तक जो वृत्ति तादृशवृत्तिव्याप्यत्वरूप जो फलव्याप्यत्व है" वह वेद्यत्वेन विवक्षित है। यह वेद्यत्व ब्रह्ममें नहीं है क्योंकि जहांपर उक्तव्यात्वका स्थापन करना है वह स्वपदार्थ है और ब्रह्मावच्छिन्नचित्को अप्रसिद्ध होनेसे ब्रह्म स्वपदसे नहीं लिया जा सकता है । और शुक्तिरूप्यादिमें भी यह व्याप्यत्वरूप वेद्यत्व नहीं है क्योंकि शुक्तिरूप्यादिको ज्ञातसत्ताक होनेसे शुक्तिरूप्यादिमें अवच्छेदकतासम्बन्धसे अभानापादकाज्ञान नहीं है अतएव अभाना-पादकाज्ञाननिवर्तकवृत्तिव्याप्यत्वरूप वेद्यत्व भी नहीं । शंकते न चेति । फलव्याप्यत्वा-भावविशिष्ट जो अपरोक्षव्यवहारयोग्यत्व है तस्य=उसको ब्रह्मवत् अविद्या तथा अन्तःकरणा-दिमें च=और शुक्तिरूप्यादिमें होनेसे असिद्धि तथा साधनवैकल्य=साधनाभाव है; भावार्थ यह कि-अभानापादकाज्ञानाविषयत्व, अभानापादकाज्ञानाविषयत्वविशिष्टचित्तादात्म्य, एतद्-द्वया-न्यतरवत्त्वका नाम है-अपरोक्षव्यवहारयोग्यत्व, इन दोनोंमें आदिमस्वरूप जैसे ब्रह्ममें रह जाता है तैसे द्वितीयस्वरूप अविद्यामें रह जाता है तथाच अविद्यादिरूप पक्षमें हेतु स्वरूपा-सिद्ध है और शुक्तिरूप्यादिरूप दृष्टान्तमें साधनाभाव है. इति नचवाच्यम्; क्यों ? अज्ञान-निवर्त्तक जो वृत्ति तादृशवृत्तिविषयत्वयोग्यत्व, अपरोक्षव्यवहारयोग्यत्वपदसे विवक्षित है, भवदुक्तान्यतरवत्त्व नहीं, तस्य=तिस अपरोक्षव्यवहारयोग्यत्वको अविद्या और शुक्तिरूप्या-दिमें नहीं होनेसे असिद्धि और साधनवैकल्य नहीं; वृत्तिपदसे मनोवृत्तिका ग्रहण है वह वृत्ति घटादिमें इन्द्रियजन्या रहती है और ब्रह्ममें वेदान्तजन्याखण्डा है, और अविद्यादिविषयकम-नोवृत्ति माननेका प्रयोजन नहीं और कभी मानेंभी तो उसवृत्तिको अज्ञाननिवर्त्तकत्व नहीं है । और घटादिकोमें जैसे फलव्याप्यत्व है तैसे आगे कहेंगे । अविद्यानिवृत्तिको पञ्चमप्रकार-त्व पक्षमें तत्र=अविद्यानिवृत्तिरूप पञ्चमप्रकारमें व्यभिचारवारणके लिए अज्ञानकालवृत्तित्व हेतुका विशेपण देय है तेनैव=उक्ताज्ञानकालवृत्तित्वरूपविशेपणसेही तुच्छमें भी व्यभिचार नहीं है; न्यायमकरन्दके कर्त्ता आनन्दबोधाचार्य्यने अविद्यानिवृत्तिको उद्देश्यकर ऐसा विचार किया है कि:-आत्मामें अविद्याकी निवृत्ति होती है उसनिवृत्तिको सद्रूपा नहीं कह सकते हैं क्योंकि ऐसा कहनेसे अद्वैतकी हानि होगी; और असद्रूपा भी नहीं कह सकते हैं क्योंकि ऐसाकहनेसे ? ज्ञानसाध्यत्व नहीं बनेगा; तथा सदसद्रूपाभी नहीं कहसकते हैं; क्योंकि सद्रूप तथा असद्रूपका विरोध है; वैसे अनिर्वचनीय भी नहीं कह सकते हैं क्योंकि अनिर्वचनीय

सादि पदार्थ नियमसे अज्ञानोपादानक होता है तथाच मुक्तिकालमें अज्ञानकी भी अनुवृत्ति माननी पडेगी, इस रीतिसे इन चारों प्रकारोंकी अनुपपत्ति होनेसे इनचारोंसे विलक्षण पञ्चमप्रकाररूपा अविद्यानिवृत्ति है, इस अविद्यानिवृत्तिरूप पञ्चमप्रकारमें फलव्याप्यत्वाभावविशिष्टापरोक्षव्यवहारयोग्यत्वाभावरूप हेतु है और साध्य नहीं है इसलिए अतिव्याप्ति है और तुच्छमें उपरोक्त लक्षण रहगया इसलिए तुच्छमें भी अतिव्याप्ति=व्यभिचार है, इन स्थलोमें व्यभिचार वारणार्थ हेतुमें अज्ञानकालवृत्तित्वरूप विशेषण देना तथाच, अज्ञानकालवृत्तित्वसमानाधिकरण जो फलव्याप्यत्वाभावविशिष्टापरोक्षव्यवहारयोग्यत्वाभाव वह अभाव हेतु है फलतः अज्ञानकालवृत्तित्वरूपविशेषणांशके न रहनेसे व्यभिचार वारित हो गया, इसी रीतिसे सर्व हेतुओंमें व्यभिचारपरिहारके लिए यत्न करना। सद्विविक्तत्वमात्र यदि साध्य हो तो तुच्छमें तथा पञ्चमप्रकार–अविद्यानिवृत्तिमें व्यभिचारका लेशभी नहीं है;–सत्त्वावच्छिन्नप्रतियोगिताक भेदही यदि साध्य हो तब तो तुच्छ तथा पञ्चमप्रकाराविद्यानिवृत्तिमें भी साध्यके रह जानेसे व्यभिचार नहीं है यह भाव है इति=कथितप्रकारसे जो कुछ पूर्वाचार्य्योंने प्रस्तुतविषयमें कहा है वह सर्व निर्दोष है।

इति सरलायां दृश्यत्वहेतूपपत्तिः।

अथ जडत्वहेतूपपत्तिः॥

जडत्वमपि हेतुः। ननु–किमिदं जडत्वं ? अज्ञातृत्वं वा, अज्ञानत्वं वा, अनात्मत्त्वं वा। नाद्यः; त्वन्मते पक्षनिक्षिप्तस्यैवाहमर्थस्य ज्ञातृत्वात्तत्रासिद्धेः; शुद्धात्मनोऽज्ञातृत्वेन तत्र व्यभिचाराच्च। नापि द्वितीयः; वृत्त्युपरक्तचैतनस्यैव ज्ञानत्वेन केवलाया वृत्तेः केवलस्य चैतनस्य चाज्ञानत्वेन वृत्तावसिद्धिपरिहारेऽपि चैतन्ये व्यभिचारतादवस्थ्यात्। नापि तृतीयः; आत्मत्वस्यैव निरूपयितुमशक्यत्वात्। तद्धि न जातिविशेषः; त्वयात्मन एकत्वाभ्युपगमात्, विशिष्टात्मनां भेदेऽपि तेषां पक्षकुक्षिनिक्षिप्तत्वात्। नाप्यानन्दरूपत्वम्, वैषयिकानन्दे तद्व्यतिरेकस्य हेतोरसिद्धेः, तस्याप्यात्मत्वे अज्ञानपक्षोक्तदोषः प्रसञ्जनीय इति–चेत्, मैवम्; द्वितीयतृतीयपक्षयोर्दोषाभावात्।

अथ सरलायां जडत्वहेतूपपत्तिः।

प्रपञ्चधर्मिक मिथ्यात्वप्रकारिका अनुमितिकेप्रति जडत्वभी हेतु है। तहां प्रपञ्चसत्यत्वाभिनिवेशी–द्वैती विकल्पकर दोष देता है नन्विति। यह हेतुत्वेन विवक्षित जडत्व क्या है ? वा=क्या अज्ञातृत्व=ज्ञातृभिन्नत्व है; या अज्ञानत्वं=ज्ञानभिन्नत्वरूप है; वा=या अनात्मत्वं=आत्मभिन्नत्वरूप है। नाद्यः=ज्ञातृभिन्नत्वरूप प्रथमपक्ष ठीक नहीं है; क्यों ? पक्षनिक्षिप्तस्यैव=पक्षतावच्छेदकसे आक्रान्त जो अहमर्थ=प्रमाता है उसप्रमातारूप अहमर्थकोही ज्ञाता होनेसे

तत्र=अहमर्थरूपज्ञातामें असिद्धेः=हेतुको स्वरूपासिद्ध होनेसे,जैसे घटमें घटभिन्नत्व अनुपपन्न है तैसे ज्ञातृमें ज्ञातृभिन्नत्वभी असांदृष्टिक है; च=और शुद्ध जो आत्मा है उस आत्माको ज्ञातृभिन्न होनेसे तत्र=उस ज्ञातृभिन्नशुद्धात्मामें व्यभिचार है। नापिद्वितीयः=द्वितीयपक्षभी युक्तियुक्त नहीं क्यों ? वृत्तिसे उपरक्त जो चैतन्य है उस चैतन्यकोही ज्ञानत्व होनेसे केवल-वृत्तिको तथा केवल चैतन्यको अज्ञानत्वेन=ज्ञानभिन्नत्व होनेसे वृत्तिमें असद्धिका परिहार हो जानेपर भी चैतन्यमें व्यभिचारका तादवस्थ्य है; ऊपर वृत्त्युपरक्त चैतन्यको ज्ञान कहा है उसका अर्थ यह है कि—'यदाकारवृत्त्युपरक्तं चैतन्यं यत् तत् तद्विषयकं ज्ञानं' जैसे अयं घटः, इत्याकारकवृत्त्युपरक्त जो चैतन्य है वह घटविषयकज्ञान कहा जाता है। सुखादिविषयक भी वृत्ति माननी उचित है यदि सुखादिविषयकवृत्ति नहीं मानेंगे तब सुखाद्यवच्छिन्न चैतन्यको सुखादिज्ञान कहना होगा, तब सुखादिविषयक संस्कार न होंगे क्योंकि ज्ञानकी सूक्ष्माव-स्थाका नाम ही तो संस्कार है और कार्य्यकीही सूक्ष्मावस्था स्वीकार की जाती है। आत्मभि-न्नत्वरूप तृतीयपक्ष भी सामञ्जस्यविशिष्ट नहीं, क्यों ? आत्मत्वकोही निरूपण करनेके लिए अशक्य होनेसे=जब आत्मत्वका निरूपण न हो सकेगा तब आत्मत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताक-भेदका सुतरां निरूपण नहीं होगा; हि=यतः तत्=आत्मत्व जातिविशेष नहीं है=जैसे घटत्वादि जातियाँ हैं तैसे आत्मत्व ब्रह्मवादिओंके मतमें जाति नहीं हो सकता है त्वया=तुम-अद्वैतीसे आत्माका एकत्व अङ्गीकृत होनेसे; और एकव्यक्तिमात्रवृत्तिधर्म तो फलाभावसे जाति नहीं हो सकता है। विशिष्टात्मनां=जीवोंका भेदेऽपि=नानात्व होनेपर भी तिन जीवोंको पक्षकुक्षिमें निक्षिप्त होनेसे=फलतः जीवोंमें स्वरूपासिद्धि है। आनन्दरूपत्वभी आत्मत्व नहीं हो सकता है, क्यों ? वैषयिकानन्दे=स्रक्चन्दनादिसंयोगजन्यमनोवृत्त्यवच्छिन्न चैतन्यमें तद्व्यतिरेकस्य= आनन्दभेदरूपहेतुको असिद्ध होनेसे, तस्यापि=वैषयिकानन्दकोभी, आत्मत्वे=आत्मस्वरूपत्व-स्वीकार होनेपर अज्ञानपक्षमें कहा गया जो दोष है वह प्रसञ्जनीय है=वृत्त्युपरक्त चैतन्यकोही ज्ञानत्व होनेपर जैसे केवल चित्में ज्ञानभिन्नत्वरूप अज्ञान रह गया तैसे विषयसंयोगजन्यमनो-वृत्त्यवच्छिन्न चैतन्यकोही आनन्दत्व होनेसे केवल चैतन्यमें अनानन्दत्वरूप हेतुके रहजानेसे व्यभिचार है। इति चेत्=मैवम्=ऐसा यदि कहो तो नहीं कहना; क्यों ? द्वितीय तथा तृतीय इन दोनों पक्षोंमें दोषके न होनेसे।

तथाहि—'अज्ञानत्वं जडत्वमि'ति पक्षे नात्मनि व्यभिचारः, अर्थोपलक्षितप्रकाश-स्यैव ज्ञानत्वेन मोक्षदशायामपि तदनपायात्। नचअभावे सप्रतियोगित्ववदिच्छाज्ञाना-दिष्वपि सविषयकत्वस्य स्वाभाविकत्वादिच्छायामिव ज्ञानेऽपि तस्य समानसत्ताकत्वमि-ति—वाच्यम्; ज्ञानस्य हि सविषयत्वं विषयसंवन्धः, सच न तात्त्विकः; किंत्वाध्यासिकः; वक्ष्यमाणरीत्या तात्विकसंवन्धस्य निरूपयितुमशक्यत्वात्, अतो न तस्य स्वाभाविकत्वम्; नहि शुक्तौ रूप्यं स्वाभाविकम्।

तथाहि=दिखलाते हैं, 'अज्ञानत्व जडत्व है' इस पक्षमें आत्मामें व्यभिचार नहीं है, क्यों ? अर्थोपलक्षित प्रकाशस्यैव=वृत्त्यादिरूप जो दृश्य है तद्रूप जो अर्थ तादृश–अर्थोपलक्षित प्रकाशकोही ज्ञानत्वेन=अज्ञानत्वरूप जो हेतु है तादृश हेतुमें प्रविष्ट जो ज्ञानपदलक्ष्यचित्स्वरूप तादृश चित्स्वरूपत्वसे मोक्षदशामेंभी अपाय न होनेसे; मोक्षदशा शब्दका ऐसा अर्थ करना–मोक्षः दशा=स्वरूपं यस्याः सा मोक्षदशा=शुद्धा चित् तस्यामित्यर्थः । फलितार्थ यह हुआ कि शुद्धचित्का नाम मोक्षदशा है । तथाच शुद्धचैतन्यमें ज्ञानभिन्नत्वरूप हेतुके न रहनेसे व्यभिचार नहीं है । इस उक्तार्थकोही दृढ करनेके लिए पुनः आक्षेप करते हैं नचेति । अभावमें सप्रतियोगित्ववत् इच्छाज्ञानादिमेंभी स्वविषयकत्वको स्वाभाविकत्वात्=अनारोपित होनेसे इच्छामें रहनेवाले सविषयत्ववत् ज्ञानमेंभी तस्य=उस सविषयत्वको समानसत्ताकत्व है; भावार्थ यह कि–अभावमें जैसे सप्रतियोगित्व, गगनमें नैल्यवत् आरोपित नहीं होता है किन्तु अनारोपित होता है तैसेही इच्छाज्ञानादिमें भी सविषयकत्व अनारोपित है और इच्छामें रहनेवाला सविषयकत्व जैसे इच्छाके समानसत्ताक होता है तैसेही ज्ञानमें रहनेवालेकोभी होना चाहिए जब यों हुआ तब तो सर्वदृश्यका उच्छेद होता है जिसमें ऐसा जो मोक्ष उस मोक्षमें ज्ञानत्वोपलक्षितस्वरूपत्वका असंभव है और अर्थोपलक्षितज्ञानत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदका सुतरां असंभव है और तादृश भेदमें हेतुताका सुतमां असंभव है; इति न च वाच्यम्; क्यों ? ज्ञाननिष्ठसविषयत्व विषयसम्बन्धरूप है और वह सम्बन्ध तात्त्विक नहीं है किंतु आध्यासिक है वक्ष्यमाणरीतिसे तात्त्विकसम्बन्धको निरूपण करनेके लिए असंभव होनेसे अतः सविषयकत्वको स्वाभाविकत्व नहीं है शुक्तिमें रूप्य स्वाभाविक नहीं होता है ।

एवं च ज्ञानोपाधिकस्यैव सविषयत्वस्य इच्छादिष्वभ्युपगमात् नतरां तत्र तस्य स्वाभाविकत्वम् । नचैवं–ज्ञानवत् विषयसंबन्धं विनापि कदाचिदिच्छायाः सत्त्वापत्तिरिति–वाच्यम्; सविषयत्वप्रयोजकोपाध्यपक्षेया अधिकसत्ताकत्वस्य तत्र प्रयोजकत्वात् । इच्छायाश्च तत्समानसत्ताकत्वात् । नच–त्वया मोक्षावस्थायामात्मनो निर्विषयत्वाङ्गीकारात् आनन्दाप्रकाशे तदपुमर्थत्वं स्यादिति–वाच्यम्; तदा ह्यानन्द एव प्रकाशो नत्वानन्दस्य प्रकाशत्वम्, अर्थोपलक्षितप्रकाशत्वं वा तदास्त्येवेति न ज्ञानत्वहानिरित्युक्तम् ।

एवं च=ज्ञान तथा विषय इन दोनोंके वास्तविक सम्बन्धके न सिद्ध होनेपर ज्ञानोपाधिक सविषयत्वकाही इच्छादिमें अभ्युपगम होनेसे तत्र=इच्छादिमें तस्य=सविषयत्वरूप सम्बन्धका बहुत अच्छी रीतिसे स्वाभाविकत्व नहीं है । भावार्थ यह कि–इच्छाका विषयके साथ कोई स्वतंत्र सम्बन्ध नहीं किन्तु स्वजनकज्ञानविषयत्वरूप सम्बन्ध है स्वपदसे इच्छाका ग्रहण है; यहांपर यह शंका होती है कि जहां घट पट चट मठ तट वट नट विट इत्यादिको ग्रहण करनेवाला समूहालम्बनात्मक एक ज्ञान हुआ है और इच्छा समूहालम्बनात्मक ज्ञानके विषयीभूत पदार्थजातमेंसे किसी एककी हुई तहांपर उपरोक्तसम्बन्ध इच्छाका कैसे बनेगा क्योंकि वह

सम्बन्ध निखिल समूहित पदार्थोंपर पहुंचता है और इच्छा निखिलविषयक है नहीं; इस शंकाका समाधान यह है कि इच्छाका सम्बन्ध स्वजनकतावच्छेदकीभूतविषयितानिरूपित-विषयताश्रयत्वरूप है। अयं घटः। या; घटः इत्याकारक ज्ञानके बाद 'घटो मे स्यात्' ऐसी इच्छा होती है इस इच्छाका जनक हुआ उल्लिखितघटज्ञान जनकता रही उक्त ज्ञानपर जनक-तावच्छेदकीभूत विषयिता=घटत्वनिष्ठप्रकारतानिरूपितप्रकारिताख्याविषयिता हैं; घटनिष्ठ-विशेष्यतानिरूपितविशेष्यिताख्याविषयिता है तदुभयसंसर्गनिष्ठ संसर्गतानिरूपित संसर्गि-ताख्याविषयिता है तादृश विषयितानिरूपितविषयताश्रयत्व घटत्वादिमें है समूहालम्बनस्थलमें भी यद्विषयक इच्छा होगी तदनुयोगिक इच्छाप्रतियोगिक उपरोक्त सम्बन्ध बनेगा अन्यके साथ नहीं अतः कोई दोष नहीं। इच्छाके अन्तमें जो आदिपद है उससे प्रयत्नको लेना चाहिए, जानाति, इच्छति, यतते, इस नियमके अनुसार इच्छाके बाद प्रयत्न होता है अतः उपरोक्त संवन्धबोधकवाक्यघटकस्वशब्दको निकाल कर उसके स्थानमें स्वजनक और जोड देना तो प्रयत्नका विषयके साथ सम्बन्ध बन जायगा; यहांपर 'नतरां' घटक जो 'तरप्' है उसका मतलब यह है कि ब्रह्म चैतन्य स्वरूप ज्ञानको सत्यत्व होनेसे तन्निष्ठ सविषयत्वरूप विषयसंवन्धका सत्यत्व कभी संभावित भी हो सकता है; और इच्छादिको मिथ्या होनेसे तदीय-सविषयत्वमें तो सत्यत्वकी संभावना भी नहीं कीजा सकती है। शंकते न चेति। उक्त प्रकारसे ज्ञानवत्=जैसे ज्ञान विषयके संवन्ध विना भी रहता है तैसे विषयके संबन्ध विना भी किसी कालमें इच्छाके सत्त्वकी आपत्ति=प्राप्ति है इति न च वाच्यम्; क्यों? सविषयत्वकी प्रयो-जक जो उपाधि=विषय है उस उपाधिकी अपेक्षासे अधिकसत्ताकत्वको तत्र=विषयसम्बन्ध विना भी अस्तित्वमें प्रयोजक होनेसे; फलतः जहांपर विषयसे विषयी अधिक सत्तावाला होता है तहां विषयको छोडकर भी विषयीकी सत्ता होती है और जहां दोनों समानसत्ताक होते हैं तहांपर विषयको छोडकर विषयी नहीं रह सकता है; इच्छाको उपाधिसमानसत्ताक होनेसे विषयको छोडकर इच्छाके सत्त्वकी आपत्ति नहीं। शङ्कते न चेति। त्वया=तुम अद्वैति-ओंसे मोक्षावस्थामें आत्माका निर्विषयत्व अङ्गीकृत होनेसे आनन्दाप्रकाशे=आनन्दसम्बन्धि-प्रकाशके न होनेसे मोक्षावस्थामें आत्माको अपुमर्थत्वम्=अपुरुषार्थत्व हो जायगा इति न च वाच्यम्; क्यों? उस मोक्षकालमें आनन्दरूपही प्रकाश है आनन्दका प्रकाशत्व नहीं; फलतः मोक्षावस्थामें आनन्दसम्बन्धि प्रकाशका अभाव हम लोगोंको इष्ट है, और पुरुषार्थत्व जो आत्माको है वह भी पूर्णानन्दविषयक जो आवरण तादृशावरणकी विरोधिनी जो वृत्ति तादृशवृत्तिविशिष्टत्वेन है और तादृशवृत्तिविशिष्टत्व भी मोक्षकालमें नहीं है किन्तु तादृश वृत्तिकालमेंही है और तावता ही उपरोक्त आत्मरूप पुरुषार्थको उद्देश्यकर श्रवणादिमें प्रवृत्तिका संभव है। शंका—मूलकारने जो 'तदा' कहा है वह ठीक नहीं है क्योंकि आपकी रीतिसे विदेहमुक्तिमें कालादिका अभाव होनेसे विदेहमुक्तिमें कालसंवन्धित्व नहीं बन सकता है। समाधान। इदानींतन कालको लेके कालवासनया युक्तोंके प्रति तदा व्यवहार किया जाता है। ननु—तौ भी परममुक्तिमें ज्ञानत्वका अभाव होनेसे ज्ञानभिन्नत्वरूप हेतु है अतः व्यभिचार है,

तहां कहते है, अर्थेति। वा=और पूर्वोक्त अर्थोपलक्षित प्रकाशत्व=ज्ञानत्वोपलक्षित स्वरूपत्व तो मोक्षकालमें है ही इति=इसलिए ज्ञानत्वकी हानि नहीं यह कहा है तथा च व्यभिचार नहीं है।

नतु–तथापि ज्ञातुरभावात् तदा तन्न ज्ञानम्; नहि भोक्तृहीना भुजिक्रियाभवति, नच–अनादित्वेन क्रियारूपत्वाभावात् अनपेक्षत्वमिति–वाच्यम्; अनादेः प्रागभावस्य प्रतियोगिनि जातेर्व्यक्तौ जीवब्रह्मविभागस्य धर्मप्रतियोगिनोः अज्ञानस्य चाश्रयविषययो-र्ब्रह्मसत्तायाश्च कर्तर्यपेक्षादर्शनात्, अन्यथा 'अस्तिब्रह्मे'त्यादौ कर्तरि लकारो नस्यात्। एवं चातीतादिज्ञानस्य ईश्वरज्ञानस्य च उत्पत्त्यर्थमर्थानपक्षेत्वेऽपि तन्निरूप्यत्वदर्शनेन ज्ञानस्य ज्ञातृज्ञेयनिरूप्यत्वं स्वभावः, अन्यथा 'इदमहं जानामि'इत्यनुभवो न स्यात्, 'ज्ञातु-रर्थप्रकाशस्य ज्ञानत्वा'दिति विवरणविरोधश्च स्यात्–इति चेन्न; जातेर्व्यक्तिनिरूप्यत्वेऽपि कदाचित्तद्संवन्धवदुपपत्तेः; संवन्धप्रयोजकोपाध्यपेक्षया अधिकसत्ताकत्वात्। अत एव ज्ञानस्य सज्ञेयत्वं सज्ञातृत्वंच न स्वाभाविकम्।

द्वैती शङ्कते नन्विति। तदा=मोक्षावस्थामें ज्ञातुरभावात्=ज्ञाताके न होनेसे तत्= मुक्तात्मस्वरूप न ज्ञानम्=ज्ञान नहीं हो सकता है। भावार्थ यह कि धातुत्वेन सकलधातुवाच्या-क्रिया होती है, अतः 'ज्ञा'में धातुत्व लानेके लिए ज्ञानको क्रिया अवश्य मानना चाहिए जब ज्ञानमें क्रियात्वको मान लिया तब क्रियात्व नाम है साध्यत्वेन प्रतीयमानत्वका और साध्यत्व-नाम है उत्पाद्यत्वका यह वैयाकरण लोगोंका सिद्धान्त है तथाच नित्य आत्मा कभी भी ज्ञाधात्वर्थ क्रियारूप नहीं हो सकता है किन्तु आत्मासे अतिरिक्त जन्यरूप कोई ज्ञाधात्वर्थ कहना होगा और उसको कर्त्ताकी अपेक्षा आवश्यक है, ज्ञाधात्वर्थः कर्त्रपेक्षः, क्रिया-त्वात् भुजि क्रियावत्' इस न्यायसे। इसी अर्थको व्यतिरेकमुखसे कहते हैं नहीति। भोक्ताके विना भुजिक्रिया नहीं होती है। ज्ञानत्वविशिष्टको सादित्व होनेपर भी ज्ञानत्वोपल-क्षितको अनादित्वेन=अनादित्व होनेसे अनपेक्षत्वं=कर्त्रनपेक्षत्व है; इति न च वाच्यम्। क्यों? अनादिभूत प्रागभावकी प्रतियोगीमें, अनादि भूत जातिकी व्यक्तिमें, अनादि-भूत जीवब्रह्मविभागकी अनुयोगी तथा प्रतियोगी इन दोनोंमें, अनादिभूत–अज्ञानकी आश्रय तथा विषय इन दोनोंमें और अनादिब्रह्मसत्ताकी कर्त्तामें अपेक्षाके देखनेसे; यहांपर प्रागभावादिको प्रतियोग्यादिकी अपेक्षा तज्ज्ञानं विना प्रत्यक्षाविषयत्वरूप है; क्योंकि–'इह कपाले घटो भविष्यति,' 'अयं घटः' 'नाहमीश्वरः' 'घटमहं न जानामि' इन प्रत्यक्षोंमें प्राग-भावादि प्रतियोग्यादिके साथ संसृष्ट होकेही प्रतीत होते हैं। अन्यथा=नित्यब्रह्मसत्ताको यदि ज्ञानमें भी कर्त्ताकी अपेक्षा न होतो 'अस्ति ब्रह्म' इत्यादिमें कर्त्तामें लकार न होगा; इसी रीतिसे अतीत तथा अनागतविषयविषयकज्ञानको च=और ईश्वरज्ञानको स्वोत्पत्तिके लिए अर्थकी अपेक्षा न होनेपर भी तन्निरूप्यत्वदर्शनेन=स्वविषयविशिष्टरूपसे प्रकाशमानत्वके देख-

नेसे ज्ञानका ज्ञातृज्ञेयनिरूप्यत्वं=ज्ञातृज्ञेयविशिष्टरूपसेही प्रकाशमानत्व स्वभाव है; अन्यथा= ज्ञातृज्ञेयविशिष्टत्वरूपसेही प्रकाशमानत्व नहीं मानोंतो, इदं=इसको अहम्=मैं जानामि= जानता हूँ ऐसे विशिष्टरूपका अनुभव न होगा । 'ज्ञाताके अर्थप्रकाशको ज्ञानत्व होनेसे' इस विवरणवाक्यके साथ विरोध भी होगा क्योंकि इस वाक्यसे उपरोक्त स्वरूपकोही ज्ञानता प्रतीत होती है; इति चेन्न=ऐसा यदि कहो तो नहीं कहना; क्यों ? जातेः=शुद्धजातिको व्यक्तिनिरूप्यत्वेऽपि=कदाचित् व्यक्तिसंसृष्टरूपसेही प्रकाशमानत्व होनेपर भी=शुद्धजाति-प्रकाशको व्यक्तिप्रकाशव्याप्यत्व होनेपर भी कदाचित् असंबन्धवत्=अश्वादिमें गोत्वादिके संसर्गारोपकालमें गोत्वादिमें गवादिव्यक्तिओंके निरूप्यत्वरूपसंबन्धाभाववत् उपपत्तेः=ज्ञानत्वो-पलक्षितको कदाचित् विषयनिरूप्यत्वके होनेपर भी कदाचित् विषयानिरूप्यत्वका संभव होनेसे-जैसे भ्रमभिन्नजातिप्रत्यक्षत्व व्यक्तिप्रत्यक्षत्वका व्याप्य है तैसे ज्ञानत्वविशिष्ट प्रकाशत्व विषय-प्रकाशत्वका व्याप्य है ज्ञानत्वोपलक्षित प्रकाशत्व नहीं; भ्रमभिन्नप्रत्यक्षीयजातिविषयता जैसे नियमसे व्यक्तिविषयतानिरूपित होती है तैसेही ज्ञानत्वविशिष्टविषयता विषयवैशिष्ट्यविषयता-निरूपित होती है फलतः ज्ञानत्वेन ज्ञानभानकोही विषयवैशिष्ट्यके भानमें प्रयोजकत्व है यह भाव है । अतएव=मोक्षमें ज्ञेयसामान्यके तथा ज्ञाताके नहीं प्रकाशमान होनेपर भी ज्ञानत्वो-पलक्षितके प्रकाशसेही ज्ञानस्य=ज्ञानत्वोपलक्षितको सज्ञेयत्व तथा सज्ञातृत्व स्वाभाविक= अनारोपित न=नहीं है । क्यों ?

तथाहि—सज्ञेयत्वं तावत् ज्ञेयजन्यत्वं वा ज्ञेयव्याप्यत्वं वा । नाद्यः; परोक्षज्ञाने ईश्व-रज्ञाने चाभावात् । नापि द्वितीयः; 'यदा ज्ञानं तदा अर्थ' इति कालिकव्याप्तौ पूर्ववत् व्यभिचारात्, दैशिकव्याप्तिस्तु दूरनिरस्तैव । न च यदा 'अपरोक्षज्ञानं तदार्थ' इति कालिकव्याप्तौ नास्ति व्यभिचारः, आत्मा च 'यत् साक्षात् अपरोक्षात् ब्रह्मे'ति श्रुतेरप-रोक्षज्ञानरूप इति सोऽप्यर्थव्याप्त इति—वाच्यम्; ईश्वरज्ञाने योगिज्ञाने च व्यभिचारात् । 'यदैन्द्रियकं ज्ञानं तदार्थ' इति तु व्याप्तिः सर्वसंमता । न चात्मरूपे ज्ञाने ऐन्द्रियकत्वं अस्तीति न तथा विरोधः । ननु—'यदा अपरोक्षं ज्ञानं तदार्थ'इति व्याप्त्यनभ्युपगमे 'इदं रजत' मित्यपरोक्षज्ञानान्यथानुपपत्त्या अनिर्वचनीयरजतसिद्धिर्न स्यात्, अर्थं विनाप्यप-रोक्षत्वोपपत्तेः—इति चेन्न; 'इदं रजतमहं जानामी'त्यनुसन्धीयमानं यत् ज्ञानाविषयत्वं तस्याश्रयान्तरानुपपत्त्या अनिर्वचनीयरजतसिद्धेर्वक्ष्यमाणत्वात् । अतएव परोक्षभ्रमेऽपि अनिर्वचनीयार्थसिद्धिः ।

दिखलाते है तावत्=पहिले सज्ञेयत्व क्या है यही विचार लो । क्या ज्ञेयजन्यत्व-रूप है, या ज्ञेयव्याप्यत्वरूप है नाद्यः=ज्ञेयजन्यत्वरूप प्रथमपक्ष न्यायानपेत नहीं क्यो ? परोक्षज्ञानमें तथा ईश्वरमें अभाव होनेसे=अतीत तथा अनागत पदार्थका भी परोक्षज्ञान होता

है और अतीत तथा अनागतको जनकता नहीं हो सकती है क्योंकि कार्य्याव्यवहितपूर्वभाव-कोही प्रवलबाधकके विना हेतुता आचार्य्योंको अभिप्रेत है; तैसे अन्यदीयमतमें ईश्वर-ज्ञानको अजन्य होनेसे और हमारे मतमें भी इन्द्रियसन्निकर्षवत् विषयसे भी ईश्वरीय ज्ञानको अजन्य होनेसे अव्याप्ति है; फलितार्थ यह हुआकि—परोक्षज्ञानको तथा ईश्वरीयज्ञानको विषयजन्यत्व न होनेसे ज्ञेयजन्यत्वरूपसज्ञेयत्व नहीं वन सकता है; नापि द्वितीयः=ज्ञेयव्याप्य-त्वरूपसज्ञेयत्व भी साधु नहीं क्यों ? 'यदा ज्ञानं तदा अर्थः'=जिसकालमें जिस अर्थका ज्ञान होता है उसकालमें वह अर्थ होता है, यह जो कालिकव्याप्ति है इसमें पूर्ववत् व्यभिचार होनेसे,—परोक्षज्ञान इसकालमें हमलोगोंको युधिष्ठिरादि—अतीतोंका और कल्क्यादि अनागतोंका हो रहा है परन्तु इसकालमें वे अर्थ कहां हैं; तैसे वर्तमानकालमें अतीत तथा अनागतविषयक ईश्वरका ज्ञान है परन्तु इसकालमें वे अतीत तथा अनागत अर्थ कहां है; 'यस्मिन्देशे ज्ञानं तस्मिन्देशे अर्थः' यह व्याप्ति तो दूरत एव खण्डित है क्यों ? ज्ञानाधिक-रणमें घटादिके न रहनेसे। उक्तदोषके वारणार्थ वादी यत्न करता है न चेति। 'यदा अप-रोक्षज्ञानं तदा अर्थः'=जिसकालमें जिसविषयका अपरोक्षज्ञान होता है उसकालमें वह विषय होता है इत्याकारककालिकव्याप्तिमें व्यभिचार नहीं है, आत्मा तो 'जो साक्षात् अपरोक्षब्रह्म है' (वृ.३।४।१) इस श्रुतिसे अपरोक्षज्ञानस्वरूप है और वह भी अर्थ व्याप्त है इति न च वाच्यम्, क्यों ? ईश्वरज्ञानमें तथा योगिज्ञानमें इस व्याप्तिका व्यभिचार होनेसे। ईश्वरका अतीत तथा अनागतविषयविषयक ज्ञान भी अपरोक्ष ही है। क्योंकि 'स एतदैक्षत (वृ.१-२-५)' 'पश्यत्य-चक्षुः' स शृणोत्यकर्णः' (श्वे.।३।१९) इत्यादि श्रुतिओंमें ईश्वरज्ञानका अपरोक्षार्थक धातुओंसेही उल्लेख किया गया है योगिज्ञानमें व्यभिचार न्यायकी रीतिसे है जोकि योगज धर्मको इन्द्रियकी प्रत्यासत्ति मानते हैं। 'यदा ऐन्द्रियकं ज्ञानं तदा अर्थः' जिसकालमें जिसविषयका इन्द्रिय-जन्यज्ञान होता है उसकालमें वह विषय होता है इति=यह व्याप्ति=नियमतो सर्व संमत है; आत्मरूप ज्ञानमें इन्द्रियजन्यत्व नहीं है इसलिए इसव्याप्तिके मान लेनेमें कोई हानि नहीं। शंकते नन्विति। जिसकालमें जिसविषयका अपरोक्ष ज्ञान होता है उसकालमें वह विषय होता है इत्याकारक व्याप्तिका न अङ्गीकार होनेपर 'इदं रजतम्' इस अपरोक्षज्ञानकी अन्यथानुपपत्तिसे अनिर्वचनीय रजतकी सिद्धि न होगी क्यों ? अर्थके विना भी अपरोक्षत्वकी उपपत्ति होनेसे। इति चेन्न=यदि ऐसा कहोतो नहीं कहना क्यों ? 'इस रजतको मैं जानता हूं' इसरीतिसे अनुसन्धीयमानं=इदमवच्छिन्न जो चित् तादृश चित्तादात्म्यविशिष्टरजतनि-ष्ठत्वेन ज्ञायमान जो ज्ञानविषयत्व है तस्य=उस विषयत्वके आश्रयान्तरकी अनुपपत्तिसे=रज-तसे अतिरिक्त आश्रयान्तरके न मिलनेसे अनिर्वचनीय रजतकी सिद्धिको वक्ष्यमाण=कही-जानेवाली होनेसे। फलतः—जैसे रजतको भ्रमज्ञान विषयकरता है तैसाही रजत सिद्ध होता है क्योंकि ज्ञान स्वविषयमें शूर होता है व्यवहार कालमेंही वाध होजानेसे उस रजतको व्याव-हारिकत्व नहीं है किन्तु प्रातिभासिकत्वतो है ही, और तादृश रजतकी यदि भ्रमज्ञानसे सिद्धि नहीं मानोंगे तो घटादिमें भी रूपादिमत्ता न सिद्ध होगी क्यों ? भ्रमज्ञानवत् घटादि-

ज्ञानको भी श्रुत्यादितः बाधित होनेसे; अतएव=भ्रमस्थलीयानुभव विशेषसे ही परोक्षभ्रममें भी अनिर्वचनीय-अर्थकी सिद्धि है।

जन्यापरोक्षत्वेन वा अर्थव्याप्यता; आर्षज्ञानस्यापरोक्षत्वानभ्युपगमात्। तथाच नानिर्वचनीयरजतसिद्ध्यनुपपत्तिः। एवं सज्ञातृकत्वमपि किं ज्ञातृजन्यत्वं, ज्ञातृव्याप्यत्वं, ज्ञातृसमवेतत्वं वा। आद्ये ईश्वरज्ञाने व्यभिचारः; ज्ञाननित्यत्वस्य साधयिष्यमाणत्वाच्च। द्वितीयेऽपि अप्रयोजकता। न तृतीयः ज्ञानजन्यत्ववत् ज्ञानसमवेतत्वस्यापि संभवात्, ज्ञानस्य गुणत्वक्रियात्वयोरनभ्युपगमेन द्रव्याश्रयत्वानुमानायोगात्, कदाचित् ज्ञातृज्ञेयसंबन्धेनैव अनुभवस्य विवरणवाक्यस्य च उपपत्तेः। 'अस्तिब्रह्मे'ति च लकारो न ब्रह्मसत्तां प्रति ब्रह्मणः कर्तृत्वमाह; नित्यत्वेन तदसंभवात्, किंतु साधुत्वार्थ इति द्रष्टव्यम्।

या जन्यापरोक्षत्वेन अर्थव्याप्यता है अर्थात् जिसकालमें जिसविपयका जन्य-अपरोक्ष होता है उसकालमें वह विषय होता है। ईश्वरको जो विद्यमान-विषयकज्ञान है वह अपरोक्ष है तथा अर्थव्याप्तभी है, और अनागतविषयक, अनुमित्यात्मक तथा अतीतविषयक जो स्मृत्यात्मक ज्ञान है वह परोक्ष है और अर्थव्याप्त नहीं। ननु तथापि योगजधर्मजन्य जो अपरोक्ष ज्ञान है उसको अर्थव्याप्यत्व नहीं अतः उपरोक्त नियम नहीं बन सकता है तहां कहते हैं, आर्षेति। आर्षज्ञानस्य=योगजधर्मजन्यज्ञानके अतीत-अनागत-अर्थविषयक-अपरोक्षत्वका अभ्युपगम न होनेसे। भावार्थ यह कि-अनावृत जो साक्षी तादृश-साक्षितादात्म्यविशिष्टविषयकत्वेन ज्ञानको अपरोक्षता है, आर्षज्ञानको अनावृतत्वका संपादकत्व होनेपरभी ज्ञानकालमें अतीत तथा अनागत न होनेसे उन्होंका साक्षिके साथ तादात्म्य नहीं है अतएव आर्षज्ञानको तदंशमें साक्षितादात्म्यविशिष्टविषयकत्व न होनेसे अपरोक्षत्व नहीं है, वर्त्तमानविषयकत्वविशिष्टांशमें अपरोक्षता है और तदंशमें अर्थव्याप्तभी है। तथाच=उक्तव्याप्तिके क्लृप्त हो जानेसे भ्रमस्थलमें अनिर्वचनीय रजतकी सिद्धिकी अनुपपत्ति नहीं। इसी रीतिसे ज्ञानमें सज्ञातृकत्वभी क्या है? क्या ज्ञातृजन्यत्वरूप सज्ञातृत्व है, वा ज्ञातृव्याप्यत्वरूप है, या ज्ञातृसमवेतत्वरूप है। ज्ञातृव्याप्यत्वका अर्थ यह कि-जो जो ज्ञान होता है उसमें समवेतत्व सम्बन्धसे ज्ञाता रहता है आदिम पक्ष ठीक नहीं हैं; क्यों ईश्वरज्ञानमें व्यभिचार होनेसे। ज्ञान तो ईश्वरज्ञानभी है परन्तु ईश्वर ज्ञानकी नित्यतामाननेवाले तार्किकादिके मतमें वह ज्ञातृजन्य नहीं हैं; ज्ञानत्वोपलक्षित नित्यत्वको साधयिष्यमाण होनेसेभी=ज्ञानत्वसे उपलक्षित चिद्रूपका नित्यत्व आगे सिद्ध किया जायगा, इसलिएभी ज्ञातृजन्यत्व नहीं बन सकता है द्वितीयपक्षमेंभी अप्रयोजकता=व्यभिचारशंकानिवर्त्तकतर्कशून्यता है; यदि ऐसी आशंका होकि ज्ञानत्वोपलक्षितचिद्रूपं स्यात् तत्र समवेतत्वसम्बन्धेन ज्ञाता न स्यात्। तो इस शंकाका निवर्त्तक कोई तर्क नहीं है; न तृतीयः=तृतीयपक्षभी समीचीन नहीं; क्यों? ज्ञाननिष्ठजन्यत्ववत् ज्ञाननिष्ठ समवेतत्वकाभी संभव होनेसे; जैसे ज्ञाननिष्ठजन्यत्व वास्तविक नहीं है किन्तु कादाचित्क=

औपाधिक है वैसे ज्ञाननिष्ठ समवेतत्वभी औपाधिक है इसी अर्थको स्पष्ट करते हैं ज्ञानस्य=ज्ञाननिष्ठगुणत्व तथा क्रियात्व इन दोनोंका अभ्युपगम=अङ्गीकार न होनेसे ज्ञाननिष्ठद्रव्याश्रयत्वके अनुमानका अयोग हैं; और कदाचित् ज्ञेय तथा ज्ञाताके सम्बन्धसेही; 'इदमहं जानामि,' यह अनुभव तथा उपनिगदित विवरणवाक्य इन दोनोंकी उपपत्ति होनेसे। 'अस्ति ब्रह्म' यह जो लकार वह ब्रह्मसत्तां=ब्रह्मकी सत्ताकेप्रति ब्रह्मका कर्तृत्व नहीं कहता है; क्यों ? नित्यत्वेन=अनादि होनेसे कर्तृत्वका असंभव है अर्थात् अनादिपदार्थनिरूपित कर्तृत्वका असंभव है; किन्तु पदसाधुत्वके लिए है ऐसा समझना।

ननु–प्रमाभ्रमभिन्नं न ज्ञानम्, न चात्मरूपं ज्ञानं प्रमा तद्विषयस्याविद्यादेस्तात्त्विकत्वापातात्, नच अप्रमा; दोष्यजन्यत्वापातात्–इति चेन्न तार्किकसिद्धेश्वरज्ञानवत् घटादिनिर्विकल्पकवच्च स्वभावत उभयवैलक्षण्येनाप्युपपत्तेः, तत्रापि ईश्वरज्ञानस्य प्रमात्वे गुणजन्यत्वस्य भ्रमत्वे दोषजन्यत्वस्य चापत्तेः, निष्प्रकारके च निर्विकल्पके तद्वति तत्प्रकारकत्वस्य तदभाववति तत्प्रकारकत्वस्य चानुपपत्तेः, जन्यसविकल्पकत्वेन भ्रमप्रमान्यतरत्वनियमे चास्माकं क्षत्यभावात्, विलक्षणवृत्तिद्वयोपरागेण च स्वभावतो भ्रमप्रमाविलक्षणस्याप्यात्मज्ञानस्य तदुभयरूपेण व्यवहारोपपत्तेः। नच–ज्ञानपदवाच्यभिन्नत्वविवक्षायां उपाधेरपि ज्ञानपदवाच्यत्वात्तत्रासिद्धिः, ज्ञानपदलक्ष्यभिन्नत्वविवक्षायां तु घटादेरपि ज्ञानपदलक्ष्यत्वात्तत्राप्यसिद्धिरिति–वाच्यम्; ज्ञानपदजन्यप्रतीतिविशेष्यभिन्नत्वविवक्षायामुक्तदोषाभावात्। एवमानन्दभिन्नत्वरूपमनात्मत्वमुपपाद्यम्। वैषयिकानन्दस्यापि ब्रह्मरूपत्वात्, तदुपाधिमात्रस्यैवोत्पत्तिविनाशप्रतियोगित्वात्। नच–ज्ञानभिन्नत्वस्यानन्दभिन्नत्वस्य च काल्पनिकस्य ब्रह्मणि सत्त्वात् तत्र व्यभिचार इति–वाच्यम्; धर्मिसमानसत्ताकतद्भेदस्य हेतुत्वात्। अनौपाधिकत्वेन वा भेदो विशेषणीयः, तुच्छे पञ्चमप्रकाराविद्यानिवृत्तौ च व्यभिचारपरिहारः पूर्ववत्। एवं अस्वप्रकाशत्वं वा जडत्वम्, तच्च पूर्वमेवोपपादितमिति शिवम् ॥

इति अद्वैतसिद्धौ जडत्वहेतूपपत्तिः।

शंकते नन्विति। प्रमाभ्रमभिन्नम्=त्रिकालाबाध्य जो विषय है तादृश विषयकत्वसे घटित जो प्रमात्व तादृश प्रमात्वाश्रयका नाम है प्रमा एवंभूत प्रमा तथा भ्रम इन दोनोंसे अतिरिक्त ज्ञान नहीं है=ज्ञान दो प्रकारका है प्रमात्मक तथा भ्रमात्मक; आत्मस्वरूप जो ज्ञान है वह प्रमात्मक नहीं है; क्यों ? आत्मस्वरूप ज्ञानके विषय जो अविद्यादि हैं उन अविद्यादिके तात्त्विकत्व=पारमार्थिक सत्यत्वका आपात=आपत्ति होनेसे; आत्मस्वरूप ज्ञान अप्रमा है यह भी नहीं हो सकता, क्यों ? दोषजन्यत्वका आपात होनेसे; न्यायमतमें प्रमा गुणजन्या मानी जाती है और अप्रमा दोषजन्या मानी जाती है ब्रह्मवादिओंके सिद्धान्तमें स्वतःप्रामाण्योत्पादवादका अङ्गीकार होनेसे गुणजन्यत्व प्रमाके लक्षणका घटक नहीं इस

लिए आत्मरूपज्ञानमें प्रथमपक्षको लेके गुणजन्यत्वकी आपत्ति नहीं की, और अप्रमाज्ञानतो नियमसे सिद्धान्तमें दोपजन्य है जहां दोपान्तरका संभव न हो तहां सर्वजन्य दोपोंकी जननी अविद्याही दोप है इसीलिए अप्रमात्वपक्षको लेके आत्मस्वरूपज्ञानमें दोपजन्यत्वकी आपत्तिकी इति चेन्न=ऐसा यदि कहो तो नहीं कहना; क्यों ? तार्किकमतसें सिद्ध जो ईश्वरज्ञान तद्वत्। च=और घटादिविपयक जो निर्विकल्पकज्ञान होता है तद्वत् स्वभावतः=वृत्तिसे अविशिष्ट जो चिद्रूप तादृश चिद्रूपसे उभयवैलक्षण्येनापि=प्रमात्व तथा भ्रमत्व एतदुभयशून्यत्वरूपसे भी आत्मस्वरूपज्ञानका संभव होनेसे=न्यायमतमें जैसे ईश्वरका ज्ञान प्रमा तथा भ्रमसे विलक्षण होनेपर भी ज्ञानही है, कुछ अज्ञान नहीं; और जैसे घटादि-विपयकविपयतात्रितयानवगाहि–निर्विकल्पकज्ञान प्रमा तथा भ्रमसे विलक्षण होनेपर भी ज्ञानही है, कुछ अज्ञान नहीं; तैसेही आत्मस्वरूपका ज्ञानभी प्रमा तथा भ्रमसे विलक्षण होके भी ज्ञानही है अज्ञान नहीं। इसी अर्थको स्पष्टकरते हैं तत्रापि=तार्किकमतमें भी ईश्वरज्ञानको प्रमात्व होनेपर गुणजन्यत्वकी च=और ईश्वरज्ञानको भ्रमत्व होनेपर दोपजन्यत्वकी आपत्ति होनेसे; तथा निष्प्रकारक जो निर्विकल्पक ज्ञान है उसमें तद्वतितत्प्रकारकत्वरूप प्रमात्वकी और तदभाववति तत्प्रकारत्वरूप भ्रमत्वकी अनुपपत्ति होनेसे। तहां साधारण रीतिसे तद्वत्में तत्प्रकारक ज्ञानका नाम प्रमा है; जैसे घटत्ववत् घटमें घटत्वप्रकारक (अयं घटः) यह ज्ञान प्रमा है और तदभाववत्में तत्प्रकारक ज्ञानका नाम भ्रम है–जैसे रजतत्वाभाववत् शुक्तिमें रज-तत्वप्रकारक 'इदं रजतम्' यह ज्ञान है। जन्य जो सविकल्पक ज्ञान है वह भ्रमप्रमान्यतररूप होता है इत्याकारक नियम करनेमें हमलोगोंकी कोई हानि नहीं। हमारे मतमें तो स्वभावतः=वृत्त्यनुपरक्तचित्स्वरूपेण भ्रम तथा प्रमा इन दोनोंसे विलक्षणभी आत्मस्वरूपज्ञानको विलक्षण-वृत्तिद्वयोपरागेण=विलक्षणञ्च तत् वृत्तिद्वयञ्च इति विलक्षणवृत्तिद्वयं तस्य उपरागः=कल्पित-तादात्म्यसंबन्धः इति विलक्षणवृत्तिद्वयोपरागः तेन=विलक्षणवृत्तिद्वयोपरक्तस्वरूपेण, परस्परविल-क्षण जो अविद्या तथा अन्तःकरणका परिणामरूप भ्रमप्रमापरपर्य्यायवृत्तिद्वय तादृशवृत्तिद्वयो-परागप्रयुक्त जो तदुभयरूप=प्रमात्व भ्रमत्व एतदुभयरूप तादृशोभयरूपत्वेन व्यवहारकी उपपत्ति होनेसे। भावार्थ:-यह कि–हमारे सिद्धान्तमें आत्मस्वरूपज्ञान प्रमाभी नहीं और भ्रमभी नहीं परन्तु अविद्या तथा अन्तःकरणकी विलक्षण वृत्तिओंके संबन्धसे आत्मा प्रमात्वेन तथा भ्रमत्वेन व्यवहृत होता है। ज्ञानपदवाच्यभिन्नत्व यदि आपको अज्ञानत्वसे विवक्षित होतो वृत्तिरूप उपाधिकोभी ज्ञानपदवाच्यत्व होनेसे तत्र=वृत्तिरूप उपाधिमें अज्ञानत्वरूप हेतु स्वरूपासिद्ध है यदि ज्ञान-पदलक्ष्यभिन्नत्वकी विवक्षा हो तो ज्ञानपदके लक्ष्य तो घटादिभी हैं अतः तत्र=घटा-दिमेंभी असिद्धि है; इति न च वाच्यम्। क्यों ? ज्ञानपदसे जन्य जो प्रतीति तादृश प्रतीतिमें जो विशेष्य तादृशविशेष्यभिन्नत्वकी विवक्षामें दोप नहीं; यहांपर ज्ञानपदसे "ज्ञा" धातु लेना क्योंकि 'ज्ञान' इस समुदायकी ज्ञानमें शक्ति नहीं किन्तु समुदायघटक ज्ञाधा-तुकी ज्ञानमें शक्ति है, ल्युट प्रत्ययकी शक्ति प्रकरणाधीन कर्त्ताकरणभाव इनमेंसे किसीमें

हुआ करती है तदनुसार तीनप्रकारसे ज्ञानपदकी व्युत्पत्ति होती है; 'जानातीति ज्ञानम्' 'ज्ञायते अनेनेतिज्ञानम्' ज्ञप्तिर्ज्ञानमिति। इसी रीतिसे आनन्दभिन्नत्वरूप जो अनात्मत्व है वह भी उपपादनकरने योग्य है=आनन्द भिन्नत्वका अर्थ ऐसा करनाकि आनन्दपदजन्यप्रतीति-विशेष्यभिन्नत्व। ननु—वृत्त्यवच्छिन्न चिद्रूपजो आनन्दपदार्थ है ब्रह्मको उस आनन्द पदार्थसे अतिरिक्त होनेसे ब्रह्ममें व्यभिचार है तहां कहते हैं,—वैपयिकानन्दस्येति। वैपयिकानन्दस्यापि= विषयसेवासे उत्पन्न जो वृत्ति तादृशवृत्त्यवच्छिन्न चिद्रूपआनन्दत्वोपलक्षितस्वरूपको भी ब्रह्मरूप होनेसे; उस ब्रह्मकी उपाधिभूत वृत्तिमात्रको ही उत्पत्ति तथा विनाशका प्रतियोगी होनेसे। काल्पनिक ज्ञानभिन्नत्व तथा काल्पनिक आनन्दभिन्नत्वको ब्रह्ममें भी होनेसे तत्र=ब्रह्ममें व्यभिचार है इति न च वाच्यम्, क्यों? धर्मिसमानसत्ताक जो ज्ञानभेद तथा आनन्दभेद उस भेदको हेतु होनेसे—जिसमें भेद रखना हो उसे धर्मि कहते हैं और ब्रह्ममें जो ज्ञानभेद तथा आनन्दभेद है उसे काल्पनिक होनेसे वह धर्मिसमानसत्ताक नहीं अतः व्यभिचार नहीं वा=या भेदका विशेपण अनौपाधिकत्व देना। अभेदरूपसे प्रतीत होनेपर भी इच्छारूप उपाधिसे आनन्दो ब्रह्मणो रूपं इत्यादि भेद औपाधिक है इसको छुडानेके लिए अनौपाधि-कत्व विशेपण दे देना चाहिए। तुच्छ तथा पञ्चमप्रकार—अविद्यानिवृत्तिमें लक्षणका परिहार पूर्ववत् करना=ज्ञानभिन्नत्व तथा आनन्दभिन्नत्व जैसे माया तथा तत्प्रयुक्तोंमें है तैसे ही तुच्छ तथा पञ्चमप्रकार अविद्यानिवृत्तिमें भी है अतः अतिव्याप्ति है उस अतिव्याप्तिकी निवृत्तिके लिए अविद्याकालवृत्तित्व देना तो व्यभिचार वारित हो जायगा, तथाच अविद्याकालवृत्ति-त्वेसति ज्ञानपदजन्यप्रतितीविशेष्यभिन्नत्वम्; इत्यादि रीतिसे लक्षण करना। इसी रीतिसे अस्वप्रकाशत्वरूप भी जडत्व हो सकता है और वह अस्वप्रकाशत्वरूप जडत्व तो पूर्व ही उपपादित हो चुका है, इति=इस रीतिसे प्रस्तुतविपयमें जो कुछ पूर्वाचार्य्योंने कहा है वह सर्वं शिवम्=भव्य है।

इति सरलायां जडत्वहेतूपपत्तिः।

अथ परिच्छिन्नत्वहेतूपपत्तिः।

परिच्छिन्नत्वमपि हेतुः। तच्च देशतः कालतो वस्तुतश्चेति त्रिविधम्। तत्र देशतः परिच्छिन्नत्वमत्यन्ताभावप्रतियोगित्वम्। कालतः परिच्छिन्नत्वं ध्वंसप्रतियोगित्वम्। वस्तुतः परिच्छिन्नत्वं अन्योन्याभावप्रतियोगित्वम्। ननु समवायसम्बन्धेनात्यन्ताभावप्र-तियोगित्वं आत्मनि व्यभिचारि; तस्याप्याकाशादिवत् क्वाप्यसमवेतत्वात्, संयोगसंब-न्धेनात्यन्ताभावप्रतियोगित्वमाकाशादावसिद्धम्; तस्य यावन्मूर्तयोगित्वनियमात्, अमू-र्तनिष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगित्वाभिप्राये तु आत्मनि व्यभिचारस्तदवस्थः, सर्वसंवन्धित्वा-भावविवक्षायामपि सर्वसंवन्धशून्ये परमात्मनि, व्यभिचारः, अज्ञाने सर्वसंवन्धित्वसिद्धिश्च, ध्वंसप्रतियोगित्वमपि आकाशवदासिद्धम्, तेपां परैर्नित्यत्वाभ्युपगमात्, अन्योन्याभावप्र-

२१

तियोगित्वं चात्मनि व्यभिचारि; तस्य जडनिष्ठान्योन्याभावप्रतियोगित्वात्, अन्यथा जडत्वापत्तेः—इति चेन्न;

अथ सरलायां परिच्छिन्नत्वहेतूपपत्तिः।

परिच्छिन्नत्वमपि हेतुः=प्रपञ्चरूप धर्मिमें मिथ्यात्वको विषय करनेवाली जो अनुमिति है उसमें परिच्छिन्नत्व भी निर्दोष हेतु है। तत्=परिच्छिन्नत्व, च=तो देशतः परिच्छिन्नत्व, कालतः परिच्छिन्नत्व, च=तथा वस्तुतः परिच्छिन्नत्व इति=इस रीतिसे त्रिविधं=तीन प्रकारका है=किसी देशमें विद्यमानत्वका नाम देशतः परिच्छेद है; किसीकालमें विद्यमानत्वका नाम कालतः परिच्छेद है; कोई वस्तुके साथ तादात्म्यापन्नत्वका नाम वस्तुतः परिच्छेद है; इन परिच्छेदोंसे जो मथितार्थ निकलता है उसे मूलकार बतलाते हैं तत्रेति। तत्र=उन तीनोंमेंसे अत्यन्ताभावका प्रतियोगित्व जो है उसको देशतः परिच्छिन्नत्व कहते हैं, ध्वंसप्रतियोगित्वका नाम कालतः परिच्छिन्नत्व है। अन्योन्याभावप्रतियोगित्वका नाम वस्तुतः परिच्छिन्नत्व है; शंकते नन्विति। समवायसंबन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताक जो अत्यन्ताभाव तादृशात्यन्ताभावप्रतियोगित्वरूप यदि परिच्छिन्नत्व हो तो आत्मामें व्यभिचारि है, क्यों? तस्यापि=आत्माकोभी आकाशादिवत् कहीं भी समवायसंबन्धसे न रहनेसे, आदिशब्दसे ईश्वरादिको लेना चाहिए=जैसे आकाश तथा ईश्वरादि न्यायरीतिसे नित्यद्रव्य होनेसे कहींभी समवायसम्बन्धसे नहीं है तैसे आत्माभी समवायसंबन्धसे कहीं नहीं रहता है; और जो पदार्थ जिस संबन्धसे नहीं रहता है उस पदार्थका वहां तत्संबन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकात्यन्ताभाव कहा जाता है तथा च एतादृश अत्यन्ताभावप्रतियोगित्वको आत्मामें रहजानेसे आत्मामें अतिव्याप्ति है। संयोगसंबन्धेन=संयोगसंबन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताक जो अत्यन्ताभाव तादृशात्यन्ताभावप्रतियोगित्वरूपपरिच्छिन्नत्व तो आकाशादिमें असिद्ध है क्यों? तस्य=आकाशादिरूपविभुद्रव्यको सर्वमूर्तोंका संयोगित्व होनेसे; 'घटे आकाशम्' 'मठे आकाशम्' इत्यादि प्रतीतिओंसे आकाशमें सर्वमूर्त्त=पृथिवी, जल, तेज, वायु मन संयोगित्व सिद्ध होता है और जो पदार्थ जहां जिस कालमें जिस संबन्धसे रहता है उसी पदार्थका उसी अधिकरणमें उसी कालमें उसी संबन्धसे अभाव नहीं रहता है तथाच संयोगसंबन्धसे आकाशादि यावन्मूर्त्तवृत्ति होनेसे संयोगसंबन्धसे उसका अत्यन्ताभाव नहीं मिल सकता है सुतरां आकाशादिमें तत्प्रतियोगित्वरूपपरिच्छिन्नत्वके न रहनेसे आकाशादिमें हेतु असिद्ध है। अमूर्त्त=उपरोक्त पृथिव्यादि पञ्चसे भिन्नमें रहनेवाला जो संयोगसंबन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकात्यन्ताभाव तादृशात्यन्ताभावप्रतियोगित्वमें जो अभिप्राय=एतादृशप्रतियोगित्वमेव परिच्छिन्नत्वं स्यात्, तादृशाभिप्रायके होनेपर तु=तो आत्मामें अतिव्याप्ति तदवस्थ है; फलतः अमूर्तोंमें जैसे आकाशादि नहीं रहते हैं तैसे आत्माभी नहीं रहता है तथाच उभयत्र उक्तात्यन्ताभावप्रतियोगित्व समान है। सर्वसंबन्धित्वाभावकी यदि हेतुत्वेन विवक्षा=वक्तुमिच्छा हो तो सर्वसंबन्धशून्यपरमात्मामें व्यभिचार है; और सर्वके साथ संबन्धरखनेवाले अज्ञानमें असिद्धि भी है;=सकल पदार्थोंके साथ संबन्धाभावका नाम परिच्छि-

न्नत्व है यदि ऐसी विवक्षा हो तो आकाशादि तथा घटपटादिमें लक्षण चला गया घटवृत्तिरूपादिके साथ आकाशका समवाय भी नहीं संयोगभी नहीं आधारआधेयभावादिभी नहीं तैसे घटका पटवृत्तिरूपादिके साथ तथा पटका घटवृत्तिरूपादिके साथ संबन्ध नहीं अतः प्रायः पक्षतावच्छेदकावच्छेदेन हेत्वधिकरणता है परन्तु शुद्धपरमात्मामें व्यभिचार है क्योंकि उपहित परमात्माको ही सर्वसंबन्धित्व तथा साक्षित्व है शुद्धको नहीं; तैसे स्वोपहितचिद्भास्यत्वरूप संबन्धसे अज्ञान सर्वका संबन्धि है अतः उसमें सर्वसंबन्धित्वाभावरूप हेतुके न रहनेसे भागासिद्धि है । ध्वंसप्रतियोगित्वरूपपरिच्छिन्नत्व भी आकाशादिमें असिद्ध है; क्यों ? परैः=तार्किकोंसे तेषां—आकाशादिके नित्यत्वका अभ्युपगम होनेसे । च=और अन्योन्याभावप्रतियोगित्वरूप परिच्छिन्नत्व आत्मामें व्यभिचारि है तस्य—आत्माको जडनिष्ठ—जडधर्मिक अन्योन्याभावका प्रतियोगि होनेसे; अन्यथा—यदि उपरोक्तान्योन्याभावका प्रतियोगित्व नहीं मानों तो आत्माको जडत्वकी आपत्ति है; इति चेन्न—ऐसा यदि कहो तो नहीं कहना क्यों ?

अत्यन्ताभावे अन्योन्याभावे च प्रतियोगिसमसत्ताकत्वविशेषणेन आत्मनि व्यभिचारपरिहारात्; अज्ञानाकाशादौ च स्वसमानसत्ताकात्यन्ताभावान्योन्याभावप्रतियोगित्वसत्त्वेन असिद्ध्यभावात् । अविद्याकाशादेर्व्यावहारिकस्य पारमार्थिकाभावपक्षे 'स्वान्यूनसत्ताके'तिविशेषणं देयं; अतएव प्रातिभासिकशुक्तिरूप्यादेर्व्यावहारिकाभावप्रतियोगित्वेऽपि न साधनवैकल्यम् । निरुक्तमिथ्यात्वप्रकाराणामेवंरूपत्वाभावात् न साध्याविशिष्टता । ध्वंसप्रतियोगित्वं चाकाशादौ नासिद्धम्; 'तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः' संभूतः इति श्रुतिसिद्धजन्यत्वेनानुमितत्वात्; 'आकाशवत्सर्वगतश्चनित्य' इत्यत्र चात्मनिदर्शनत्वं स्वसमानकालीनसर्वगतत्वेनआभूतसंप्लवावस्थायित्वेन चेति द्रष्टव्यम् । 'अतोऽन्यदार्त्त' मिति श्रुत्या अनात्ममात्रस्यैव विनाशित्वप्रतिपादनात्; ।

अत्यन्ताभावमें च=तथा अन्योन्याभावमें प्रतियोगिसमसत्ताकत्वरूपविशेषणसे आत्मामें व्यभिचारका परिहार होनेसे; अज्ञानाकाशादिमें तो स्वसमानसत्ताकात्यन्ताभाव तथा स्वसमानसत्ताकान्योन्याभावका प्रतियोगित्व होनेसे असिद्धि नहीं है ।=उपरोक्त समवायसंबन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताक या संयोगसंबन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताक दोमेंसे कोईभी अत्यन्ताभाव लीजिए प्रतियोगिसमसत्ताकत्वविशेषण देनेसे आत्मामें व्यभिचार नहीं; क्योंकि प्रपञ्चधर्मिकात्यन्ताभावका प्रतियोगी आत्मा होगा उसकी पारमार्थिक सत्ता है परन्तु प्रपञ्चधर्मिक किसी भी अत्यन्ताभाव की पारमार्थिकसत्ता है ही नहीं किन्तु व्यावहारिक या प्रातिभासिक सत्ता है; तथाच आत्मरूपप्रतियोगिसमानसत्ताकात्यन्ताभावको अप्रसिद्ध होनेसे आत्मामें व्यभिचार नहीं यही रीति अन्योन्याभावघटितलक्षणमेंभी समझिए । स्वसमानसत्ताकेत्यादिवाक्यघटकस्वशब्दसे जिसपदार्थमें हेतु की स्थापना करनी हो उसे पकडना; व्यावहारिक जो अविद्याकाशादि हैं उन अविद्याकाशादिके पारमार्थिकाभावपक्षमें 'स्वान्यूनसत्ताक' इति=यही

विशेषण देय है; अतएव=इसविशेषणके देनेसे ही प्रातिभासिक शुक्तिरूप्यादिको व्यावहारिका-भावका प्रतियोगित्व होनेपरभी दृष्टान्तरूप शुक्तिरूप्यमें साधनाभाव नहीं है;=द्वितीयमि-थ्यात्वकी निरुक्तिके प्रसंगमें लक्षणघटक अभावकी दो गतियाँ बतलाईथीं ब्रह्माभिन्नत्वेन पारमार्थिक है, या व्यावहारिक है। तहां अभावको व्यावहारिक मानने परतो स्वसमानसत्ताक-अभावमें विशेषण देनेसे प्रायः हेतु निर्दोष हो जाता है, परन्तु जिसपक्षमें अभाव पारमार्थिक है उसपक्षमें प्रपञ्चरूप स्वप्रतियोगिसे अभावको अधिकसत्ताक हो जानेसे हेतु स्वरूपासिद्ध है; अतः अभावमें 'स्वान्यूनसत्ताक' यही विशेषण देना; जिसपदार्थमें प्रतियोगित्वरूप हेतुकी स्थापना करनी हो उसे स्वपदसे लेना; नञ्का अर्थ भेद है; अतः अन्यूनसत्ताकका अर्थ हुआ=न्यूनसत्ताकसे भिन्न; न्यूनसत्ताकसे भिन्न समानसत्ताक तथा अधिकसत्ताक हुआ करते हैं, और कान्तका अत्यन्ताभावके साथ कर्मधारय करना, तथाच यह फलितार्थ हुआ कि=स्वस-मानसत्ताकात्यन्ताभावप्रतियोगित्वं, स्वाधिकसत्ताकात्यन्ताभावप्रतियोगित्वं वा परिच्छिन्नत्वम्; जब यों हुआ तब व्यावहारिक तथा पारमार्थिक दोनों अत्यन्ताभावोंको लेके लक्षण की उपपत्ति होती है; इस विशेषणके देनेसे 'स्वसमानसत्ताक' इस विशेषणकी आवश्यकता नहीं इसीलिए 'इति' शब्दका अर्थ 'यही' किया है, और 'स्वसमानसत्ताक' इस विशेषणके देनेपर भी शुक्तिरूप्यमें साधनवैकल्य बना रहता था क्यों कि शुक्तिरूप्यमें प्रातिभासिकत्व है और जागरण-कालीन तदीयात्यन्ताभावमें व्यावहारिकत्व है तथाच स्वसमानसत्ताकात्यन्ताभावप्रतियोगित्व शुक्तिरूप्यमें नहीं है; और उपदर्शित विशेषणसे तो अधिकसत्ताकात्यन्ताभावका भी ग्रहण होता है तथाच दृष्टान्तमें भी हेतु रह गया। सदसद्विलक्षणत्वादिरूपसे निरुक्त जो मिथ्यात्वके प्रकार हैं उनप्रकारोंको एवंरूपता नहीं है इसलिए हेतुमें साध्याविशिष्टता नहीं=निरुक्त जो मिथ्यात्वके प्रकार हैं उनप्रकारोंमें जोजो प्रकार इस हेतुसे विलक्षण हों उनप्रकारोंको साध्यकर यह हेतुत्वेन उपन्यस्तव्य है यह भाव है। ध्वंसप्रतियोगित्वभी आकाशादिमें असिद्ध नहीं है; क्यों ? तस्माद्वा=व्यवहितब्राह्मणवाक्यसे उक्त या 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' (तै० २।१।१) इस मंत्रसे उक्त जो परमात्मा है उस परमात्मासे आकाशः=शब्दगुणवालाभूतविशेष सम्भूतः= समुत्पन्न हुआ, (तै० २-१-१) इस श्रुतिसे सिद्ध जो आकाशनिष्ठजन्यत्व उसजन्यत्वसे ध्वंसप्रति-योगित्वको अनुमितहोनेसे=जन्यमात्रका प्रलयमें संस्काररूपनाश होता है अतः जन्यत्वेन ध्वंसप्र-तियोगित्वका अनुमान होता है। आकाशवत् सर्वगत तथा नित्य आत्मा है इत्यत्र=इस श्रुतिमें आत्मनिदर्शनत्वं=आत्मनिरूपितदृष्टान्तत्व तो स्वसमानकालीनसर्वमूर्त्तसंयोगित्वसे और भूतसं-प्लवाव्यवहित पूर्वकालपर्यन्तवृत्तित्वसे है इति=ऐसा द्रष्टव्यम्=समझना।=आकाश यदि ध्वंसका प्रतियोगी होगा तो आकाशके दृष्टान्तसे आत्मामें सर्वगतत्व और नित्यत्व कैसे सिद्ध होगा ऐसी आशंका कर समाधान किया कि आकाश जिसकालमें होता है अर्थात् जिसकालमें आकाशका अस्तित्व है उसकालमें सर्वमूर्त्तसंयोगित्वरूपसर्वगतत्व आकाशमें है उस अंशको लेके आत्माको सर्वगत बताया है और जबपर्य्यन्त भूतोंका संप्लव=प्रलय नहीं होता है तबप-र्य्यन्त आकाशको स्थायी होनेसे नित्यत्व बताया है और तदंशको लेके आत्मामें नित्यत्व कहा है सर्वथा आकाशके नित्यत्वकी आवश्यकता नहीं जगत्के महास्थूलपदार्थोंमें आकाशही जरा

श्रुतिभगवतीको दृष्टान्तके योग्य दीख पडा इसलिए किसी एक अल्पकालीन अंशको लेके भी दृष्टान्तप्रिय सरल जिज्ञासुओंको आत्माके समझाने की श्रुतिभगवतीने चेष्टा की है वस्तुतः आत्मा किसीके भी सादृश्यका प्रतियोगी या अनुयोगी है ही नहीं यह तात्पर्य्य है, निदर्शन नाम दृष्टान्तका है । अतः=इस आत्मासे अन्यत्=अतिरिक्त आर्त्तम्=ज्ञाननिवर्त्य (बृ० ३-४।२) है इसश्रुतिसे अनात्ममात्रस्यैव=आत्मभिन्नमायातत्प्रयुक्तनिखिलप्रपञ्चके ही विनाशित्वका प्रतिपादन होनेसे ।

अतएव घटादयः स्वानुगतप्रतिभासे वस्तुनि कल्पिताः विभक्तत्वात्, यथा सर्पमालादिकं, स्वानुगतप्रतिभासे रज्ज्वा इदमंशे विभज्यते, 'एवं ब्रह्मण्यनुगच्छति घटादिकं विभज्यते सन् घटः सन् पट' इति—आनन्दबोधोक्तमपि साधु । विभक्तशब्देन स्वसमानसत्ताकभेदप्रतियोगित्वरूपवस्तुपरिच्छेदस्य विवक्षितत्वात् न ब्रह्मतुच्छयोर्व्यभिचारः । नच—' खण्डो गौर्मुण्डो गौ ' रित्येवमादिस्वानुगतप्रतिभासे गोत्वादौ व्यक्तीनामकल्पितत्वात् व्यभिचार इति—वाच्यम्; सत्सामान्यातिरिक्तगोत्वादिसामान्यानभ्युपगमात्, गोत्वाद्यभ्युपगमेऽपि गोत्वादिव्यञ्जकतावच्छेदकसामान्यानभ्युपगमात् व्यक्तिविशेषाणामेवाननुगतानां सास्नादिमत्त्वाद्युपाध्यनुगतानां वा तद्व्यञ्जकत्ववत् व्यक्तिविशेषविशिष्टत्वेन सत्सामान्यस्यैव तत्तद्व्यवहारजनकत्वोपपत्तेः ।

अतएव=विभक्तशब्दसे स्वसमानसत्ताक जो अन्योन्याभाव तादृशान्योन्याभावप्रतियोगित्वरूपवस्तुपरिच्छेदको विवक्षित होनेसे ही घटादिक अनात्मवस्तु स्वानुगतप्रतिभासे=स्वेन अनुगतः प्रतिभासो यस्य सः तस्मिन्। स्वके साथ तादात्म्यापन्न होके स्वरूपसे भान होनेके योग्य जो वस्तु है उसवस्तुमें कल्पिताः=ज्ञाननिवर्त्ययोग्य हैं; विभक्तत्वात्=स्वसमानसत्ताकान्योन्याभावका प्रतियोगित्व होनेसे; जो जो स्वसमानसत्ताकान्योन्याभावका प्रतियोगी होता है वह वह स्वानुगतप्रतिभासवस्तुमें कल्पित होता है; जैसे सर्पमालादिक स्वानुगतप्रतिभासरूप जो रज्जुका इदमंश है उसमें विभक्त होते हैं ऐसेही ब्रह्मके अनुगत होते हुए घटादिक विभक्त होते हैं; 'सन् घटः' 'सन् पटः' इत्यादि प्रतीतिसे, इति=यह आनन्दबोधोक्तभी साधु है । विभक्तशब्दसे स्वसमानसत्ताकान्योन्याभावप्रतियोगित्वरूपवस्तुपरिच्छेदको विवक्षित होनेसे और ऐसी विवक्षासे ब्रह्म तथा तुच्छ इन दोनोंमें भी व्यभिचार नहीं है । शंकते न चेति । 'खण्ड गौ है मुण्ड गौ है' इत्यादिस्थलोंमें स्वानुगतप्रतिभासगोत्वादिमें व्यक्तिओंको अकल्पित होनेसे उक्तनियममें व्यभिचार है इति न च वाच्यम्; क्यों ? सद्रूप जो सामान्य है उस सामान्यसे अतिरिक्त सामान्यका अनभ्युपगम होनेसे; गोत्वादिकोही अवच्छेदकत्व नहीं है किन्तु गोत्वादिकी अपेक्षा विना भी कार्यप्रयोजकता हो सकती है इसमें दृष्टान्त देते हैं गोत्वादीति । गोत्वादिका अभ्युपगम होनेपरभी गोत्वादिव्यञ्जकतावच्छेदकसामान्यका अनभ्युपगम है; अननुगतव्यक्तिविशेषोंकोही या साक्षादिमत्त्वाद्युपाध्यनुगतव्यक्तिविशेषोंको तद्व्यञ्जकत्ववत्=

गोत्वादिव्यञ्जकत्ववत् व्यक्तिविशेषसंसृष्टरूपसे सद्रूपसामान्यसेही तत्तद्व्यवहार=गौः इत्यादि व्यवहारोंके जनकत्वकी उपपत्ति होनेसे ।=गोत्वघटत्वादिरूप अनेकसामान्योंके माननेकी आवश्यकता नहीं एकही सद्रूपसामान्य मानना चाहिए उसीसे अनुगतप्रतीति तथा अवच्छेद्य-अवच्छेदकभावादिव्यवहार बन सकते हैं और गोत्वादिरूप सामान्योंकी अपेक्षा न करके भी गवादिव्यक्तिओंको व्यवहारके प्रति प्रयोजकता है; गोत्वादि जातियाँ व्यङ्ग्य होती हैं और तदाश्रयभूतगवादिव्यक्तियाँ व्यञ्जक होती हैं तहां गोत्वादिनिष्ठव्यङ्ग्यतानिरूपितव्यञ्जक-तावच्छेदक कोई गवादिनिष्ठसामान्यान्तर नहीं माना जाता है अतः अननुगतव्यक्तिविशेषों-कोही तद्व्यञ्जकत्व माना जाता है अथवा सास्नादिमत्त्वाद्युपाध्यनुगत व्यक्तिविशेषोंको तद् व्यञ्जकत्व माना जाता है इस वाक्यका ऐसा अर्थ करना—सास्ना आदिर्येषां ते सास्नादयः; सास्नादयः सन्ति येषां येषु वा ते सास्नादिमन्तः सास्नादिमतां भावः सास्नादिमत्त्वं, सास्ना-दिमत्त्वं आदिर्येषां ते सास्नादिमत्त्वादयः सास्नादिमत्त्वादयश्च ते उपाधयश्च इति सास्नादिमत्त्वा-द्युपादयः तैः उपाधिभिः अनुगतानां व्यक्तिविशेषाणामिति; जातिनिष्ठ जो लौकिकप्रत्यक्ष=न्यायरीतिसे संयोगादिषोढासन्निकर्षजन्य प्रत्यक्ष है उसप्रत्यक्षके प्रति स्वविषयसमवेतत्व-संबन्धसे प्रत्यक्षको कारणता है और जातिप्रत्यक्षप्रयोजक जो उक्तसंबन्ध है उससंबन्धमें घटकविधया व्यक्तिओंका प्रवेश होनेसे व्यक्तिओंको जातिव्यञ्जकता है; उपदर्शितसंबन्धबो-धकवाक्यघटकस्वपदसे प्रत्यक्षको लेना, विषयपदसे व्यक्तिओंको लेना तत्समवेतत्व जातिमें हैही; तथाच उपसंग्राहकत्वेन अभिमत कल्पितसामान्योंके विनाभी व्यक्तिओंको व्यञ्जकत्व होनेसे अन्यव्यवहारोंमें भी गोत्वादिरूप सामान्योंकी आवश्यकता नहीं है एकसद्रूपसामान्यसे ही सर्वव्यवहार उपपन्न हो जायेंगे, तथाच घटावच्छेद्य चैतन्यका नाम घटत्व है । पटावच्छेद्य चैतन्यका नाम पटत्व है; इसी रीतिसे लता-लतार्क-लवन-लम्बोदर-लवण-लवणोद-लवङ्गलशुना-द्यवच्छेद्योंमें भी समझना ।

अतएव—घटादिकं, सद्रूपे कल्पितम् प्रत्येकं तदनुविद्धत्वेन प्रतीयमानत्वात्, प्रत्येकं चन्द्रानुविद्धजलतरङ्गचन्द्रवत्—इति ब्रह्मसिद्धिकारोक्तमपि साधु । ननु—सदर्थस्य ब्रह्मणः रूपादिहिनस्यासंसारमज्ञानावृतस्य शब्दैकगम्यस्य कथं घटः सन्नित्यादिबुद्धिवि-षयता स्यात्? तथाच 'घटोऽनित्य' इत्यनेन घटगतानित्यतेव 'घटः स' न्नित्यनेनापि घटगतमेव सत्त्वं गृह्यते । नच—स्वरूपेणाप्रत्यक्षस्य राहोश्चन्द्रावच्छेदेनेव ब्रह्मणोऽपि घटा-द्यवच्छेदेनैव प्रत्यक्षतेति—वाच्यम्; शब्दाद्यवच्छिन्नस्यापि गगनादेः श्रावणत्वाद्यापातात्, राहोस्तु दूरदोषेणाज्ञातस्य नीलस्य योग्यस्य शुक्लभास्वरचन्द्रसंबन्धाच्चाक्षुषता उक्ता-इति चेन्न; यतः सदात्मना न ब्रह्मणो मूलाज्ञानेनावृतत्वम्; किंतु घटाद्यवच्छिन्नशक्त्य-ज्ञानेनैव; तथाच चक्षुरादिजन्यवृत्त्या तदावरणभङ्गे सति सन्घटः' इत्यत्र ब्रह्मणः स्फुरणे बाधकाभावात् । नच—रूपादिहीनतया चाक्षुषत्वाद्यनुपपत्तिः बाधिकेति—वाच्यम्; प्रतिनियतेन्द्रियग्राह्येष्वेव रूपाद्यपेक्षानियमात्, सर्वेन्द्रियग्राह्यं तु सद्रूपं ब्रह्म, नातो

रूपादिहीनत्वेऽपि चाक्षुषत्वाद्यनुपपत्तिः सत्तायाः परैरपि सर्वेन्द्रियग्राह्यत्वाभ्युपगमाच्च । तदुक्तं वार्तिककृद्भिः–' अतोऽनुभव एवैको विषयोऽज्ञातलक्षणः । अक्षादीनां स्वतः सिद्धो यत्र तेषां प्रमाणता ॥' इति ।

अत एव=सत्त्वादिप्रकारक व्यवहारोंके प्रति ब्रह्मरूपचैतन्यको हेतुत्वका संभव होनेसेही; घटादिक सद्रूपे कल्पितं=सद्रूपके तत्त्वज्ञानसे निवर्त्य हैं; तदनुविद्धत्वेन=सद्रूपके साथ तादात्म्यापन्न होके प्रत्येकं=हर एक घटादिको प्रतीयमानत्व होनेसे=घटादि–अनात्मपदार्थोंको सत्के साथ तादात्म्यापन्न होके प्रतीयमान होनेसे घटादिपदार्थ सद्रूपके ज्ञानसे निवर्त्त्य हैं। जो जिसके साथ तादात्म्यापन्न होके प्रतीत होता हैं वह उसके ज्ञानसे निवर्त्त्य होता है इस व्याप्तिमें दृष्टान्त देते हैं; प्रत्येकमिति । चन्द्रानुविद्ध=आकाशस्थचन्द्रके साथ अनुविद्ध होके प्रतीत होनेवाले प्रत्येक जलतरंग चन्द्रवत्=कौमुदीमती यामिनीमें अनिलाचलितविशालजलालय-अमलवहुलजलीयतरङ्गोंमें 'अयं चन्द्रः' 'अयं चन्द्रः' इस रीतिसे आकाशस्थचन्द्रके साथ अनुविद्ध=अनुस्यूत होके अनेक चन्द्र प्रतीत होते हैं; एकत्वप्रकारकचन्द्रविशेष्यक ज्ञानसे उनमें मिथ्यात्वका निश्चय हो जाता है तैसेही प्रत्येकपदार्थ ब्रह्मके साथ अनुस्यूत होके प्रतीत होता है और अधिष्ठानभूत जो ब्रह्म हैं उसके यथार्थज्ञानसे निवृत्त होता है । इति=यह जो ब्रह्मसिद्धिकारने कहा है वह भी निर्दोष है । द्वैती शंकते नन्विति । रूपादिहीनस्य=चक्षुरादि इन्द्रियोंके प्रवृत्तिके निमित्त जो रूपरसगंधादि हैं उनसे रहित; आसंसारम्=जबतक कार्य्यभूत संसार है तब पर्य्यन्त कारणभूताज्ञानसे आवृत=स्फुरणरूप व्यवहारके अयोग्य केवलशब्दसेही गम्य एवंभूत जो सद्रूप ब्रह्म है उस सद्रूप ब्रह्मको 'घटः सन्' इत्यादि ज्ञानकी विषयता कैसे होगी ? फलतः प्रथमानुमानमें तथा द्वितीयानुमानमें जो सद्रूप ब्रह्मका भान इन्द्रियजन्यज्ञानमें मानकर व्यवस्था की है वह साध्वी नहीं; तथाच 'घटोऽनित्यः' इस ज्ञानसे जैसे घटगतअनित्यताका ग्रहण होता है तैसे 'घटः सन्' इसज्ञानसे भी घटगतसत्त्वकाही ग्रहण होता है। स्वरूपसे अप्रत्यक्ष जो राहु है उस राहुका जैसे चन्द्रावच्छेदेन प्रत्यक्ष होता है तैसे ब्रह्मको भी घटाद्यवच्छेदेनैव प्रत्यक्षता है=निरवच्छिन्नरूप आवृत है अवच्छिन्न नहीं इति न च वाच्यम्=ऐसा नहीं कहना, क्यों ? शब्दाद्यवच्छिन्नगगनादिके भी श्रावणत्वादिका आपात होनेसे=शुद्धको आवृत्त होनेपर विशिष्टको भी आवृतही मानना चाहिए इसी लिए विशिष्टरूपसे भी गुरुत्वादि आवृत रहते हैं; दूरतारूपदोषसे अज्ञात नीलरूपवाला और प्रत्यक्ष्यके योग्य जो राहु है उस राहुकी शुक्लभास्वररूपवाला जो चन्द्र है उस चन्द्रके संबन्ध=सान्निध्यसे चाक्षुषता=चक्षुर्जन्यज्ञानविषयता युक्ता=उचित है इति चेन्न=ऐसा यदि कहो तो नहीं कहना; क्यों ? यतः=जिस लिए कि–सद्रूपसे ब्रह्मको मूलाज्ञानसे आवृतत्व नहीं है=सत् भान आनन्द इन तीन अंशोंमेंसे आनंद अंशसेही ब्रह्म मूलाज्ञानसे आवृत है, क्योंकि 'पूर्णानन्दो मे न भाति' एसी प्रतीति होती है; और 'सद्भानरूपे मे भातः' एसी प्रतीति भी होती है फलतः संसारकालमें सदंशका भान होता

है। यदि सदंश तथा चिदंश अनावृत हैं तब तो घटाकारवृत्तिके विनाभी घटः सन् घटो भाति ऐसी बुद्धि होनी चाहिए तहां कहते हैं किन्त्विति। घटाद्यवच्छिन्न जो शक्त्यज्ञान=मूलाज्ञानकी अवस्थारूप तूलाज्ञान है उससेही आवृत है सदंश; तथा चिदंश; तथाच=जब यों हुआ तब चक्षुरादिजन्यवृत्तिसे तदावरणभङ्गे=घटाद्यवच्छिन्नावरणके भङ्ग होनेपर 'सन् घटः' इत्याकारकवृत्तिमें ब्रह्मके स्फुरणमें बाधकका अभाव होनेसे। रूपादिसे हीन होनेसे जो चाक्षुपत्वादिकी अनुपपत्ति है वही उपरोक्तप्रत्यक्षमें ब्रह्मके स्फुरणमें बाधिका है इति न च वाच्यम्; क्यों? प्रतिनियतेन्द्रियग्राह्येषु=सर्वइन्द्रियोंसे अग्राह्य जो पदार्थ हैं उन पदार्थोंमेंही रूपादिकी अपेक्षाका नियम है; और सद्रूप ब्रह्म तो सर्वेन्द्रिय ग्राह्य है अतः रूपादिसे हीनत्वके होनेपर भी चाक्षुपत्वादिकी अनुपपत्ति न=नहीं है। परैः=मीमांसकादिसे सत्ताके सर्वेन्द्रियग्राह्यत्वका अभ्युपगम होनेसे भी। इस अर्थको वार्तिककारने कहा है:-अतः अनुभवसे भिन्नको अज्ञातत्वके न होनेसे अनुभवकोही प्रमाणका विषय होनेसे अक्षाणां=इन्द्रियादिजन्य जो मनोवृत्तियाँ हैं तिनका तथा दोषजन्य जो अविद्याकी वृत्तियाँ हैं तिनका विषयः=विषय अनुभव एवैकः= सद्रूप आत्माही है, क्यों? वही अज्ञातलक्षण है=जडको अज्ञातत्व न होनेसे विषयत्व नहीं है किन्तु विषयीभूतसद्रूपका अवच्छेदकत्व है; वह आत्मरूप अक्षोंका विषय स्वतःसिद्धः= अनारोपित है; एवम्भूत आत्माही यदि प्रमाणोंका विषय न होगा तो प्रमाणोंको प्रमाणताही नहीं होगी क्योंकि, अज्ञाताबाधितार्थविषयकत्वही तो प्रमाणनिष्ठ प्रमाणता है इस अर्थको कहते हैं यत्रेति। यत्र=जिस आत्मरूपमेंही अक्षोंकी प्रमाणता है। भ्रममें भी बाधसे पूर्व जो प्रमात्व है वह सद्रूपको लेकेही है।

कालस्य च रूपादिहीनस्य मीमांसकादिभिः सर्वेन्द्रियग्राह्यत्वाभ्युपगमात्। नच—शब्दावच्छिन्नस्याकाशस्यापि श्रावणत्वं स्यादिति वाच्यम्; स्वभावतो योग्यस्य हि केनचिन्निमित्तेन प्रतिरुद्धयोग्यताकस्यावच्छेदकादिना योग्यता संपाद्यते, यथा दूरदोषेण प्रतिरुद्धयोग्यताकस्य राहोश्चन्द्रसंबन्धेन। एवं चावरणेन प्रतिरुद्धयोग्यताकं ब्रह्म घटाद्यवच्छेदेन योग्यं भवति, नभस्तु स्वभावायोग्यमेव; न प्रतिरुद्धयोग्यताकं, येन शब्दावच्छेदेन योग्यं भवेत्। यद्वा—द्रव्यग्रहे चक्षुषो रूपापेक्षा, नत्वन्यग्रहे, ब्रह्म तु न द्रव्यम्; 'अस्थूलमनण्वह्रस्वमदीर्घ' मिति श्रुत्या चतुर्विधपरिमाणनिषेधेन द्रव्यत्वप्रतिषेधात्, अतो नानुपपत्तिः। अस्तु वा द्रव्यम्; तथाप्यध्यस्तद्रव्यत्ववति गुणादौ रूपानपेक्षचाक्षुषत्वदर्शनेन धर्म्यन्यूनसत्ताकद्रव्यत्ववत्येव चक्षू रूपमपेक्षते; ब्रह्मणि च द्रव्यत्वं धर्म्यपेक्षया न्यूनसत्ताकमेवेति न तद्ग्रहे रूपाद्यपेक्षा। कल्पितत्वं च स्वाभाववति प्रतीयमानत्वं वा, स्वरूपज्ञाननिवर्त्यत्वं वेत्यन्यदेतत्। तस्मात् परिच्छिन्नत्वमपि भवतिहेतुरिति सिद्धम्॥

॥ इति परिच्छिन्नत्वहेतूपपत्तिः ॥

च=तथा रूपादिसे हीनकालका मीमांसकादिसे, 'न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके यत्र कालो

न भासते’ इत्यादि वचनोंसें सर्वेन्द्रियग्राह्यत्वका अभ्युपगम है; शब्दावच्छिन्नआकाशकाभी श्रावणत्व=श्रवणजन्यज्ञानविषयत्व होगा इति न च वाच्यम्; क्योंकि स्वभावसे योग्य=प्रत्यक्षके योग्य हो, और कोईभी निमित्तसे प्रतिरुद्धयोग्यताक हो एवम्भूत पदार्थकीही अवच्छेदकादिसे योग्यता सम्पादित होती है; जैसे दूरतारूपदोषसे प्रतिरुद्धयोग्यताक राहुकी चन्द्रके संबन्धसे। इस रीतिसे आवरणेन=घटाद्यवच्छिन्न जो आवरण है उस आवरणसे घटाद्यवच्छेदेन प्रतिरुद्धयोग्यताक जो ब्रह्म है वह घटाद्याकारवृत्तिसे घटाद्यवच्छेदेन योग्य होता है; नभस्तु=आकाश तो स्वभावायोग्यम्=इन्द्रियसे ग्रहण करनेको अशक्य है; प्रतिरुद्धयोग्यताक नहीं है, जिससेकी शब्दावच्छेदेन योग्य हो। तहां बाह्य पञ्चज्ञानेन्द्रियोंमेंसे घ्राण रसन श्रोत्र ये तीन तो द्रव्यके ग्राहकही नहीं; और चक्षु तथा त्वक् ये दोनों क्रमशः रूपवत् तथा स्पर्शवन् द्रव्यका ग्रहण करते हैं आकाशमें रूप तथा स्पर्श नहीं है इसलिए आकाशका ग्रहण इन्होंसें भी नहीं हो सकता है; ननु यदि यों है तब तो इनसे सद्रूपद्रव्यका भी ग्रहण न होगा क्योंकि सद्रूपद्रव्यमें रूप तथा स्पर्श नहीं है तहां कहते हैं—यद्वेति। द्रव्यग्रहमें चक्षुको रूपकी अपेक्षा है और द्रव्यसे अतिरिक्त रूपसामान्यादिके ग्रहणमें नहीं; ब्रह्म तो द्रव्य नहीं है; अस्थूल है अनणु है, अह्रस्व है, अदीर्घ है; (बृ. ।३।८।८) इस श्रुतिसे चतुर्विधपरिमाणके निषेधसे द्रव्यत्वका प्रतिषेध होनेसे अतः ‘सन् घटः’ इत्यादिमें ब्रह्मके भानमें कोई अनुपपत्ति नहीं,—परिमाण चार प्रकारका होता है; महत्त्व अणुत्व, दीर्घत्व, ह्रस्वत्व, इन चारोंके पूर्व ‘परम’ शब्दके लगानेसे और न लगानेसें यह आठ प्रकारका हो जाता है न लगानेका स्वरूप ऊपर लिखा हुआ है और लगानेसे परममहत्त्व, परमाणुत्व, परमदीर्घत्व, परमह्रस्वत्व, ऐसा स्वरूप बनेगा; तहां परममहत्त्व, तथा परमदीर्घत्व ये दोनो परिमाण, आकाश काल, दिक्, आत्मा इन चारोंमेंही रहते हैं; परमाणुत्व तथा परमह्रस्वत्व ये दोनों परमाणुमात्रवृत्ति हैं; अवान्तराणुत्व तथा अवान्तरह्रस्वत्व, ये दोनों द्व्यणुकमात्रवृत्ति हैं; महत्व तथा दीर्घत्व ये दोनों त्रसरेणुसे लेके महावयविपर्यन्त रहते हैं, कुवलयादिमें अणुत्वव्यवहार समिदादिमें ह्रस्वत्वव्यवहार गौण है; यह वैशेषिकोंकी प्रक्रिया है; श्रुतिमें अस्थूलशब्दसे परममहत्व और परमदीर्घत्वका निषेध है; अनणुशब्दसे परमाणुत्व तथा परमह्रस्वत्वका निषेध है; अह्रस्वशब्दसे अवान्तराणुत्व तथा अवान्तरह्रस्वत्वका निषेध है; अदीर्घशब्दसे दीर्घत्व और महत्वका निषेध है, तथाच ब्रह्ममें किसी भी प्रकारका परिमाण न होनेसे वह द्रव्य नहीं है क्योंकि नित्य द्रव्य कीसी भी समयमें परिमाणसे हीन रही नहीं सकता है यह वादिओंका सिद्धान्त है। ननु—परिमाणवाले ब्रह्ममें भी परमार्थतः श्रुति परिमाणका निषेध करती है अतः ब्रह्म द्रव्यही है तहां कहते हैं; अस्तु वेति। वा=अथवा ब्रह्म द्रव्यही रहो; तो भी अध्यस्त है द्रव्यत्व जिनमें ऐसे जो गुणादि हैं उन गुणादिमें रूपानपेक्ष चाक्षुषत्वको देखनेसे धर्मीसे अन्यूनसत्ताक जो द्रव्यत्व तादृशद्रव्यत्ववन् जो पदार्थ उस पदार्थके प्रत्यक्षमेंही चक्षु रूपकी अपेक्षा करता है, ब्रह्ममें तो द्रव्यत्व धर्मीरूप ब्रह्मकी अपेक्षासे न्यूनसत्ताकही है इसलिए ब्रह्मरूपद्रव्यग्रहमें चक्षुको रूपादिकी अपेक्षा नहीं=किसीको रूपमें ‘इदं द्रव्यम्’ इत्याकारकद्रव्यत्वप्रकारक भ्रम हुआ तहां अध्यस्तद्रव्यत्ववन् रूप हुआ

उस रूपके प्रत्यक्षमें रूपवृत्तिरूपकी अपेक्षा नहीं है क्योंकि रूपमें रूप है ही नहीं; अतः ऐसा नियम बना कि धर्मीसे अन्यूनसत्ताक जो द्रव्यत्व है वह द्रव्यत्व जिसमें रहता है उसके प्रत्यक्षमें चक्षुको रूपकी अपेक्षा है जैसा कि घटादियें देखा जाता है, और रूपमें द्रव्यत्वको रूपरूपधर्मीसे न्यूनसत्ताक होनेसे रूपप्रत्यक्षमें चक्षुको रूपकी अपेक्षा नहीं तैसेही ब्रह्ममें भी द्रव्यत्वको ब्रह्मरूप धर्मीकी अपेक्षासे न्यूनसत्ताक होनेसे ब्रह्मप्रत्यक्षमें चक्षुको रूपकी अपेक्षा नहीं। वस्तुतः ब्रह्मको चाक्षुषादिप्रत्ययोंका अविषय होनेपर भी ब्रह्मत्वादिओंकी कोई हानि नहीं। क्योंकि घटादिविषयक वृत्तिसे भी घटाद्यवच्छेदेन सद्रूपके आवरणका अभिभव होता है और इतनेसे ही घटादिमें सद्रूपके तादात्म्यका भान बन सकता है अतः प्रकृतानुमानमें कोई दोष नहीं; और घटाद्याकारवृत्तिको अज्ञाताविषयकत्व होनेपर भी अज्ञाततावच्छेदक जो घटादि तद्विषयकत्वेन प्रमात्वका संभव है; और अज्ञानविषयकत्वसे घटित जो तात्त्विक प्रमात्व है वह तो ब्रह्माकारवृत्तिमें हीं है ऐसा भी कह सकते हैं; परन्तु ब्रह्मको चाक्षुषादि-ज्ञानकी विषयताका आधार मान लें तो भी कोई हानि नहीं इस अभिप्रायसे ऊपर कहा गया है। और ब्रह्ममें परिमाणादिके अस्तित्वमें कोई प्रमाण नहीं है इस बात को तो न्यायकीट शिरोमणिआदिने भी मान लिया है; उनने अपने पदार्थखण्डननामक ग्रन्थमें कहा है कि-ईश्व-रके परिमाणवत्तामें कोई प्रमाण नहीं त्रुटित्ववत् द्रव्यत्वको परिमाणसाधकत्व नहीं त्रुटित्वसे जैसे द्व्यणुकादिके परिमाणकी सिद्धि नहीं होती है वैसे द्रव्यत्वसे भी परिमाणकी सिद्धि नहीं हो सकती है; और इसकी टीकामें सार्वभौम नामक बडे नैयायिकने कहा है कि=इसी रीतिसे जीव तथा ईश्वरके द्रव्यत्व मे भी कोई प्रमाण नहीं, और जीवेशादिके संयोगमें भी कोई प्रमाण नहीं, आत्ममनःसंयोग ज्ञानका हेतु है इसमें भी कोई प्रमाण नहीं है इत्यादि; इन लोगोंके इस कथनसे इतना तो स्पष्ट प्रतीत होता है कि जो तार्किक ईश्वर तथा गुरुके भक्त हैं एवं विषयासक्तिसे रहित हैं वे श्रुत्यर्थके पासतक अन्तमें पहुंच जाते हैं और जो उपरोक्त साधनोंसे शून्य हैं और प्राचीन लोगोंके तात्पर्यको नहीं समझते हैं, शास्त्रीयज्ञान जिनका बहुत थोडा हैं वे लोग सर्वथा ब्रह्मविद्यासे तिरस्कृत और अनात्मदुराग्रहग्रहगृहीतान्तःकरणक हुए संसारकूपकेही मण्डूक बने रहते हैं; तार्किकोंके परम गुरु उदयनाचार्यने भी आत्मतत्त्व विवेकमें अपनी श्रद्धा वेदान्तमें ही दिखलाई है। कल्पितत्वं च=उक्तदोनों साध्योंमें कल्पित-शब्दका अर्थ तो स्वाभाववत्में प्रतीयमानत्व या स्वरूपज्ञानसे निवर्त्यत्व इत्यन्यदेतत्=यह दूसरी बात है=अर्थात् हेतुके प्रसंगमें साध्यके विशेषविचारकी आवश्यकता नहीं; यतः कोई दोष नहीं है तिससे परिच्छिन्नत्व भी मिथ्यात्वानुमितिमें हेतु है इति सिद्धं=यह सिद्ध हुआ।

॥ इति सरलायां परिच्छिन्नत्वहेतूपपत्तिः ॥

अथ अंशित्वहेतूपपत्तिः।

चित्सुखाचार्यैस्तु-'अयं पटः, एतत्तन्तुनिष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगी, अंशित्वात्, इत-रांशिवत्-इत्युक्तम्। तत्र तन्तुपदमुपादानपरम्, एतेनो पादाननिष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगि-

त्वलक्षणमिथ्यात्वसिद्धिः । नच—कार्य्यस्य कारणाभेदेन तदनाश्रितत्वात् सिद्धसाधनम् , अनाश्रितत्वेनान्याश्रितत्वेन वा उपपत्त्या अर्थान्तरं च इति—वाच्यम्; अभेदे कार्य्यकारणभावव्याहत्या कथंचिदपि भेदस्यावश्याभ्युपेयत्वात् । नच 'तदनन्यत्वमारम्भणशब्दादिभ्य' इत्यधिकरणविरोधः उपादानव्यतिरेकेणोपादेयं नास्तीत्यस्यैव तदर्थत्वात् । बाधात्तन्मात्राश्रितत्वेन पक्षविशेषणाद्वा नार्थान्तरम् । न च प्रकृतेऽपि बाधः; तस्योद्धरिष्यमाणत्वात् । न चात्यन्ताभावस्य प्रामाणिकत्वाप्रामाणिकत्वविकल्पावकाशः, तस्य प्रागेव निरस्तत्वात् । नच—कस्यचित् पटस्य संयोगवृत्त्यैतत्तन्तुषु सत्त्वेन तत्र व्यभिचार इति वाच्यम्; तत्समवेतस्य तन्निष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगित्वमङ्गीकुर्वतः तत्संयोगिनस्तन्निष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगित्वाङ्गीकारेण पक्षसमत्वात् ।

चित्सुखाचार्य्यने तो यह पट, एतत्तन्तुनिष्ठात्यन्ताभावका प्रतियोगी है, अंशित्वात्= कार्य्य होनेसे इतरकार्य्यवत् इत्युक्तम्=यह कहा है । ननु—पटका उपादान तन्त्वच्छिन्न चित है तन्तु नहीं इसमतमें सिद्धसाधन है क्योंकि इसमतसे तो तादात्म्यसंबन्धेन तन्तुओंमें पटका अभाव है ही । किञ्च दूसरे पटमें तन्तुनिष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगित्वका जो अनुमान है तत्साधारणएकोक्तिका भी इससे लाभ नहीं होता है तहां कहते हैं तत्रेति । तत्र=चित्सुखाचार्य्यकी उक्तिमें तन्तुपद उपादानका बोधक है; और एतत्पद पक्षीभूतव्यक्तिपर है इस तात्पर्य्यसे एतत्पदके स्थानमें स्वपदका प्रयोग करते हैं—स्वेति । एतेन=इस चित्सुखाचार्य्यके कथनसे स्वोपादाननिष्ठ जो अन्यन्ताभाव तादृश—अत्यन्ताभावप्रतियोगित्वरूप मिथ्यात्वकी सिद्धि होती है; शंकते न चेति । कार्य्यको कारणाभेदेन=स्वोपादानके साथ अभिन्न होनेसे तदनाश्रितत्वात्=कारणके प्रति अनाश्रितत्व होनेसे सिद्धसाधन है=जैसे पटमें पटका अत्यन्ताभाव रहता है क्यों कि स्वतादात्म्यके साथ अत्यन्ताभावका विरोध नहीं किन्तु स्वाधिकरणकत्वके साथ स्वात्यन्ताभावका विरोध है तैसे पटात्मकतन्तुओंमें भी पटात्यन्ताभाव रह सकता है अतः सिद्धसाधन है; अनाश्रितत्वेन=तिसपटके अनाश्रितत्वसे या अन्याश्रितत्वेसे उपपत्त्या=स्वात्यन्ताभावसामानाधिकारण्यकी उपपत्ति होनेसे अर्थान्तर है=तन्तुसे अतिरिक्तपदार्थोंमें तो पटका अनाश्रितत्व सिद्ध ही है और तन्तुओंमें भी पट नहीं है ऐसा कहनेपर पटमें अनाश्रितत्व सिद्ध होता है; अथवा 'विशेषका निषेध शेषविधिका अनुज्ञापक होता है' इस न्यायसे तन्तुओंमें पटका असत्त्व होनेपर अन्याश्रितत्व सिद्ध होता है दोनों रीतिसे मिथ्यात्व सिद्ध नहीं होता है, और परिणामवादिओंको सिद्धसाधन है क्योंकि तिसके अनधिकरणमें तिसका अत्यन्ताभाव सर्वसम्मत है; इति न च वाच्यम्; क्यों ? अभेदे=अत्यन्ताभेदमें कार्य्यकारणभावका व्याघात होनेसे किसी भी प्रकारसे भेदस्य=उपादानउपादेयके भेदको अवश्य अभ्युपेय होनेसे—कार्य्यकारणका सर्वथा अभेद हो तो पौर्वापर्य्यभाव नहीं बन सकता; और पटादिका कार्य्य भी तन्त्वादिकसेही होना चाहिए, तैसे 'घटः क्रियते' इसके

स्थानमें कदाचित् तन्तवः क्रियन्ते ऐसा व्यवहार भी होना चाहिए; तन्तुभ्यः पटो जायते इसके स्थानमें कदाचित् 'पटात् पटो जायते' ऐसा व्यवहार भी होना चाहिए। कार्य्यकारणका यदि भेद मानोंगे तो तदनन्यत्वं=कार्य्यकारण इन दोनोंका अनन्यत्व=अभेद है आरम्भणशब्दादिसे (वे २।१।४) इस अधिकरणके साथ विरोध है नच=नहीं है क्यों? उपादानसे अतिरिक्त उपादेय नहीं इसको ही तदर्थ होनेसे। बाधात्=पटादिमें अनाश्रितत्वके बाधसे वा=या तन्मात्राश्रितत्वेन=उपादानभिन्नानाश्रित होकर उपादानाश्रितत्वरूपपक्षके विशेषणसे अर्थान्तर नहीं है=पटादिमें उपादानीयाऽऽश्रितत्वके न अंगीकार करनेपर भी भूतलादिनिरूपितआश्रितत्वके अङ्गीकारसे अनाश्रितत्व बाधित है; उपादानसे भिन्नपदार्थमें उपादानजन्यतावच्छेदकसंबन्धसे असंबन्धित्व यह पक्षका विशेषण देना चाहिए इनप्रकारोंसे अर्थान्तरका वारण होता है। प्रकृतेऽपि=प्रकृतमिथ्यात्वसाधकअनुमानमें भी बाध है नच=नहीं है; क्यों? तस्य=उस बाधको उद्धारकियाजानेवाला होनेसे। लक्षणघटकअत्यन्ताभावधर्मिकप्रामाणिकत्व-अप्रामाणिकत्वके विकल्पका अवकाश है=प्रपञ्चात्यन्ताभाव प्रामाणिक है या अप्रामाणिक है यदि प्रामाणिक है तो अद्वैतकी हानि है यदि अप्रामाणिक है तो बाधित होनेसे प्रपञ्चमें सत्यत्वापत्ति है इत्यादि विकल्पोंको अवकाश है नच=नहीं है; क्यों? तिस अवकाशको प्रागेव=द्वितीयमिथ्यात्वनिरुक्तिकेही प्रसंगमें निरस्त हो चुकनेसे। किसीएक पटको संयोगवृत्त्या=संयोगसंबन्धसे एतत्तन्तुपु=इन उपादानभूततन्तुओंमें होनेसे तत्र=संयोगसंबन्धसे रहनेवाले पटमें व्यभिचार है=एतत्तन्तुनिष्ठात्यन्ताभावका प्रतियोगित्वरूप साध्य नहीं है और अंशित्वरूप हेतु है अतः व्यभिचार है; इति न च वाच्यम्; क्यों? तिसमें समवायसंबन्धसे रहनेवालेके तन्निष्ठात्यन्ताभावके प्रतियोगित्वको अङ्गीकार करनेवाला जो है उसको तिसमें संयोगसंबन्धसे रहनेवालेके तन्निष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगित्वके अङ्गीकारसे पक्षसम होनेसे=जो पदार्थ जहां समवाय संबन्धसे रहता है उसी पदार्थका वहींपर जो समवाय संबन्धसे अत्यन्ताभाव अङ्गीकार करता है, उसको संयोगसे रहनेवालेका संयोग संबन्धसे ही अत्यन्ताभाव मान लेनेमें कितनी देर लगेगी अतः संयोगेन वृत्तिपट भी पक्षसमही है।

न चाव्याप्यवृत्तित्वेनार्थान्तरम्; पटतदभावयोरेकाधिकरणवृत्तौ विरोधस्य जगति दत्तजलाञ्जलित्वप्रसंगात्, संयोगतदभावयोरप्येकाधिकरणवृत्तित्वानभ्युपगमात्। अभ्युपगमे वा एतत्तन्तुत्वावच्छिन्नवृत्तित्वमत्यन्ताभावस्य विशेषणं देयम्; एवमेतत्कालीनत्वमपि। तेन कालान्तरीयाभावमादाय नार्थान्तरम्। नचेह तन्तुपु पट इति प्रत्यक्षबाधः; तस्य भ्रमसाधारणतया चन्द्रप्रादेशिकत्वप्रत्यक्षवदप्रामाण्यशङ्कास्कन्दितत्वेनाबाधकत्वात्। बाधोद्धारे च विस्तरेणैतद्वक्ष्यामः। नच-अन्यासमवेतस्यांशित्वमेतत्तन्तुसमवेतात्वं विना न युक्तमिति विरुद्धो हेतुरिति वाच्यम्; एतत्तन्तुनिष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगित्वेऽप्येतत्तन्तुसमवेतस्य सत्वेनांशित्वस्य साध्येनाविरोधात्। एतत्तन्तुनिष्ठात्यन्ताभावाप्रतियोगित्वं-

हि एतत्समवेतत्वे प्रयोजकं न भवति; परमते केवलान्वयिधर्ममात्रस्य एतत्समवेतत्वापत्तेः, किन्त्वेतन्निष्ठप्रागभावप्रतियोगित्वादिकम्; तच्चैतन्निष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगित्वेऽपि न विरुद्धमित्युपपादितमधस्तात्। एतत्समवेतत्वं चैतदुपादानकत्वम्, नतु नित्यसंबन्धशालित्वम्; तस्यानभ्युपगमात्।

पट तथा पटाभाव इन दोनोंको अव्याप्यवृत्ति=स्वसमानाधिकरणात्यन्ताभावप्रतियोगित्व होनेसे अर्थान्तर है नच=नहीं है; क्यों? पट तथा पटाभाव इन दोनोंको एकाधिकरणनिरूपित वृत्तित्व होनेपर अभावप्रतियोगीके विरोधको जगत्में दत्तजलाञ्जलित्वका प्रसंग होगा;। ननु=' तन्तुओंकी दशामें पट नहीं है' ऐसा अनुभव होता है इससे पटका तादात्म्यादिसंबन्धसे भी तन्तुओंमें अव्याप्यवृत्तित्व सिद्ध होता है; तहां कहते हैं-संयोगेति। संयोग और संयोगाभाव इन दोनोंके भी एकाधिकरणनिरूपितवृत्तित्वका अनभ्युपगमहोनेसे='अग्रे वृक्षः कपिसंयोगी नतु मूले' यह धी वृक्षके अग्रभागमें संयोगका अवगाहन करती है और मूलभागमें संयोगाभावको अवगाहन करती है किन्तु वृक्षनिष्ठत्वेन दोनोंका अवगाहन नहीं करती है फलतः एकको भी अव्याप्यवृत्तित्व नहीं है। ननु यदि यों है तब तो मूलादिमें भी संयोगादिका सत्व सिद्ध न होगा; क्योंकि 'भूतले उपरिभागे संयोगो नत्वन्यभागे, उपरिभागे तद्विशिष्टसंयोगो नत्वन्यदिशि ऐसा प्रत्यय होता है; अतः मूलादिनिष्ठावच्छेदकत्वका अवगाहन होनेसे और वृक्षादिनिष्ठाधिकरणत्वका अवगाहन होनेसे संयोगादिनिरूपिता मूलाद्यवच्छिन्ना वृक्षादिनिष्ठा अधिकरणता अपलप्या नहीं है; तहां कहते हैं अभ्युपगम इति। संयोग और संयोगाभावके अव्याप्यवृत्तित्वका अभ्युपगम होनेपर तो एतत्तन्त्वावच्छिन्नवृत्तित्व=तत्पटानवच्छेदकावच्छिन्नवृत्तिकान्यत्व अत्यन्ताभावका विशेषण देना=तत्पटनिष्ठतादात्म्यसंबन्धावच्छिन्नाधेयतानिरूपिताधिकरणतावच्छेदकप्रतियोगिकभेदाधिकरणतावदभिन्नावच्छेदकावच्छिन्नवृत्तिकप्रतियोगिकभेदवत्त्व अत्यन्ताभावमें विशेषण देना; अव्याप्यवृत्तिअत्यन्ताभावमें यह विशेषण नहीं जायगा; कपिसंयोगाभावमें इसके अभावको देखना चाहिए; उपादानमें उपादेय तादात्म्यसंबन्धसे रहता है संयोग उपादेय है और वृक्ष उपादान है अतः तादात्म्यसंबन्धावच्छिन्नाधेयतानिरूपिताधिकरणता वृक्षमें रहती है तादृश संयोगीयाधिकरणताका अवच्छेदक अग्रभाग है तादृश-अवच्छेदकप्रतियोगिकभेदाधिकरणतावदभिन्नावच्छेदक मूलभाग है तदवच्छिन्नवृत्तिक संयोगाभाव है तदवच्छिन्नवृत्तिकप्रतियोगिकभेदवत् नहीं; इसी रीतिसे तन्तुओंमें दशावच्छेदेन जो पटात्यन्ताभाव है उसमें भी यह विशेषण नहीं जायगा वृत्तिकान्त उसमें घटेगा तत्प्रतियोगिकभेदवत्ता उस अत्यन्ताभावमें आवेगी जो कि पटावच्छेदेन है, और वही साध्य है अतः अर्थान्तर नहीं। प्रकृतमें दशानाम कपडेके छोरका है जिसे वस्त्रान्त भी कहते हैं। एवं=इसी रीतिसे अभावमें एतत्कालीनत्व भी देना तिससे कालान्तरीय अभावको लेके अर्थान्तर नहीं है। 'इन तन्तुओंमें यह है, इत्याकारक जो प्रत्यक्ष है इस प्रत्यक्षसे आपके अनुमानमें बाध है नच=नहीं है; क्यों? तस्य=प्रत्यक्षज्ञानको भ्रमसाधारण होनेसे चन्द्रधर्मिकप्रादे-

शिकत्वके प्रत्यक्षवत् अप्रामाण्यशंकास्कन्दितत्वप्रयुक्तबाधकत्वाभाव होनेसे; च=और प्रत्यक्षादि-बाधोद्धारमें आगे चलकर विस्तरेण=प्रभूत शब्दोंसे एतत्=अबाधकत्वको कहेंगे । अन्यासमवेतस्य=एतत्तन्तुओंसे अतिरिक्त और किसीमें समवायसंबन्धसे नहीं रहनेवाले पटका एतत्तन्तु-समवेतत्वके विना अंशित्व युक्त नहीं है इसलिए हेतुविरुद्धः=साध्याभावका साधक है; इति न च वाच्यम्; क्यों ? एतत्तन्तुनिष्ठ जो अत्यन्ताभाव तादृशात्यन्ताभावका प्रतियोगित्व होनेपर भी एतत्तन्तुसमवेतत्वके होनेसे अंशित्वका साध्यके साथ विरोध न होनेसे; एतत्तन्तुनिष्ठात्य-न्ताभावका अप्रतियोगित्व एतत्समवेतत्वका प्रयोजकम्=समव्यापक नहीं होता है, परमते=न्यायमतमें केवलान्वयिधर्ममात्रको एतत्समवेतत्वकी आपत्ति होनेसे; प्रमेयत्व, वाच्यत्वादि केवलान्वयिधर्मोंका स्वाश्रयके साथ समवाय नहीं माना जाता है । किन्तु एतन्निष्ठप्रागभाव-प्रतियोगित्वादिक एतत्समवेतत्वके प्रयोजक हैं आदिशब्दसे मतान्तरकी रीतिसे शक्यत्वादिका ग्रहण करना । तच्च=निरुक्तप्रतियोगित्वादिक तो एतन्निष्ठात्यन्ताभावका प्रतियोगित्व होनेपर भी विरुद्ध नहीं है यह उपपादन कर चुके हैं द्वितीय तथा चतुर्थ मिथ्यात्वनिरुक्तिमें । और एतत्समवेतत्वसे एतदुपादानकत्व लेना नित्यसंबन्धशालित्व नहीं क्यों ? नित्यसंबन्धरूपसमवा-यका अभ्युपगम न होनेसे ।

ननु—अयं पट एतत्तन्तुनिष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगी न, एतत्तन्त्वारब्धत्वात्, व्यतिरे-केण पटान्तरवदिति प्रतिरोधः, नचाप्रसिद्धविशेषणत्वम्; एतन्निष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगित्वं, किंचिन्निष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगि, संसर्गाभावप्रतियोगित्वव्याप्यत्वात्, प्रागभावप्रतियोगि-त्ववदिति सामान्यतस्तत्प्रसिद्धेः । नच—आकाशात्यन्ताभावस्य घटादौ संसर्गाभावप्रतियो-गित्वव्याप्यत्वग्रहात् तस्य च केवलान्वयित्वेन किंचिन्निष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगित्वाभावात् तत्र व्यभिचार इति—वाच्यम्; संसर्गाभावप्रतियोगित्वानधिकरणे केवलान्वयिनि धर्मे स-त्त्वेनाकाशात्यन्ताभावस्य संसर्गाभावप्रतियोगित्वाव्याप्यत्वेन व्यभिचाराभावात् इति चेन्न;

सत्प्रतिपक्षकी शंका करते हैं नन्विति । यह पट एतत्तन्तुनिष्ठ जो अत्यन्ताभाव है उस अत्यन्ताभावका प्रतियोगी नहीं है इन तन्तुओंसे आरब्धत्वहोनेसे; व्यतिरेकव्याप्तिसे पटान्त-रवत्=यत् एतन्निष्ठात्यन्ताभावाप्रतियोगि न भवति तत् एतत् तन्त्वारब्धमपि न भवति यथा पटान्तरम्; इस अनुमानसे प्रथम अनुमान सत्प्रतिपक्षित हुआ और प्रथमसे यह=द्वितीय सत् प्रतिपक्षित हुआ क्योंकि स्वसाध्यविरोध्युपस्थापनसमर्थसमानबलोपस्थित्या प्रतिरुद्धकार्य्यक-लिङ्गत्वरूप सत्प्रतिपक्षत्व उभयत्र है; इस अनुमानमें अप्रसिद्ध विशेषणत्व=अप्रसिद्धसाध्यकत्व है नच=नहीं है क्यों ? एतन्निष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगित्व किञ्चिन्निष्ठात्यन्ताभावका प्रतियोगि है संसर्गाभावप्रतियोगित्वका व्याप्य होनेसे जो संसर्गाभावप्रतियोगित्वका व्याप्य होता है वह किञ्चिन्निष्ठात्यन्ताभावका प्रतियोगि होता है इसमें उदाहरण—प्रागभावप्रतियोगीत्ववत् । प्रागभाव-प्रतियोगित्व संसर्गाभावप्रतियोगित्वका व्याप्य है; प्रागभावप्रध्वंसाभावसामयिकाभावात्यन्ताभाव

इन चारोंका नाम संसर्गाभाव है, अतः संसर्गाभावप्रतियोगित्व इन चारोंके प्रतियोगिओंमें रहता है और प्रागभावप्रतियोगित्व इन चारोंके प्रतियोगिओंमें व्यासज्यवृत्ति नहीं है अतः संसर्गाभावप्रतियोगित्वका यह व्याप्य है; और किञ्चिन्निष्ठात्यन्ताभावका प्रतियोगि भी है=आकाशादिनिष्ठात्यन्ताभावका प्रतियोगि है क्योंकि आकाशादिअनादिपदार्थोंमें प्रागभावप्रतियोगित्व नहीं है; इति=इस अनुमानसे सामान्यरूपसे तत्प्रसिद्धेः=साध्यकी प्रसिद्धिसे। 'संसर्गाभावप्रतियोगित्वव्याप्यत्व जहां रहता है वहां किञ्चिन्निष्ठात्यन्ताभाव-प्रतियोगित्व रहता है' इस व्याप्तिमें व्यभिचारकी आशंका करते हैं न चेति। आकाशात्य-न्ताभावनिष्ठ घटादिमें संसर्गाभावप्रतियोगित्व व्याप्यत्वका ग्रह है=हेतु है; च=और तस्य=आकाशात्यन्ताभावको केवलान्वयित्वेन=सर्ववृत्ति होनेसे किञ्चिन्निष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगि-त्वके अभावसे=साध्यके अभावसे उपरोक्त व्याप्तिमें व्यभिचार है इति नच वाच्यम्; क्यों ? संसर्गाभावका जो प्रतियोगित्व है उसप्रतियोगित्वका अनधिकरण जो प्रमेयत्वादिरूप केवलान्व-यिधर्म है उस धर्ममें आकाशात्यन्ताभावका सत्त्व होनेसे आकाशात्यन्ताभावको संसर्गाभाव-प्रतियोगित्वका अव्याप्य होनेसे=हेतुके भी न रहनेसे व्यभिचाराभाव होनेसे। इति चेन्न=ऐसा यदि कहो तो नहीं कहना; क्यों ?

यत्रैतत्तन्तुनिष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगित्वं, तत्रैतत्तन्त्वारब्धत्वाभाव इति व्यतिरेक-व्याप्तावेतन्निष्ठप्रागभावाप्रतियोगित्वस्योपाधित्वेन प्रतिरोधस्य हीनबलत्वात्, एतत्तन्त्वा-रब्धत्वाभावव्यापकस्यैतत्तन्तुनिष्ठप्रागभावाप्रतियोगित्वस्य पक्षावृत्तेः पक्षवृत्तितयासंदिह्य-मानैतत्तन्तुनिष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगित्वाव्यापकत्वात्, दृश्यत्वाद्यनुपपत्तिप्रतिकूलतर्कपराह-तेर्वक्ष्यमाणत्वाच्च। अतएव एतत्तन्त्वनारब्धत्वमपि नोपाधिः; उपाधिव्यतिरेकेण साध्य-व्यतिरेके साध्यमाने सोपाधिकत्वस्योक्तत्वात्, अव्याप्यवृत्तिसंयोगाभ्युपगमे तत्र व्यभि-चाराच्च; अतएव यत्रैतत्तन्तुनिष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगित्वं तत्रैतत्तन्त्वनारब्धत्वमिति न साध्यव्यापकताग्रहोऽपि तत्रैव व्यभिचारादिति सर्वमनवद्यम् ॥

एवंच—'विमतं, ज्ञानव्यतिरेकेणासत्, ज्ञानव्यतिरेकेणानुपलभ्यमानत्वात्, स्वप्ना-दिवदि'ति-विद्यासागरोक्तमपि साधु ज्ञानव्यतिरेकेणासत्त्वमुक्तमिथ्यात्वान्यतमत्वं सा-ध्यम्। ज्ञानव्यतिरेकेणानुपलभ्यमानत्वं चिदाभासे सत्येवोपलभ्यमानत्वं हेतुरिति न किंचिदनुपपन्नम्। एवमन्येषामपि प्रयोगा यथायोगमुपपादनीया इति शिवम् ॥

इत्यंशित्वहेतूपपत्तिः।

जहां एतत् तन्तुनिष्ठात्यन्ताभावका प्रतियोगित्व है वहां एतत्तन्त्वारब्धत्वाभाव है इति=इस व्यतिरेकव्याप्तौ=अभावोंकी व्याप्तिमें एतन्निष्ठप्रागभावाप्रतियोगित्वको उपाधित्व होनेसे प्रतिरोधस्य=सत्प्रतिपक्षको हीनबलत्व होनेसे=साध्यका व्यापक होके साधनका अव्यापक हो उसे उपाधि कहते हैं, यहां पर एतत्तन्त्वारब्धत्वाभाव साध्य है, एतत्तन्तुनिष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगित्व

साधन है, तहां एतन्निष्ठप्रागभावाप्रतियोगित्वरूपोपाधिमें साध्यव्यापकत्व तथा साधनाव्यापकत्व दिखलाते हैं एतदिति। एतत्तन्त्वारब्धत्वाभावका व्यापक जो एतत्तन्तुनिष्ठप्रागभावाप्रतियोगित्व है उस एतत्तन्तुनिष्ठप्रागभावाप्रतियोगित्वको पक्षावृत्तेः=एतत्पटरूप पक्षमें न रहनेसे, पक्षवृत्तितया=एतत्पटरूपपक्षमें वृत्तित्वेन संदिह्यमान जो एतत्तन्तुनिष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगित्व तादृशप्रतियोगित्वका अव्यापकत्व होनेसे; तहां स्वव्यभिचारित्वप्रयुक्त जो हेतुधर्मिकसाध्यव्यभिचारित्वानुमान वह उपाधिका फल है इस पक्षसे प्रस्तुतमें ऐसा व्यभिचारज्ञान होगा कि—एतत्तन्तुनिष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगित्वं एतत्तन्त्वारब्धत्वाभावव्यभिचारि एतत्तन्त्वारब्धत्वाभावव्यापकीभूत—एतन्निष्ठप्रागभावाप्रतियोगित्वव्यभिचारित्वात् अतः प्रतिरोधको व्याप्तिरूपबलसे शून्य होनेसे सिद्धान्तीका अनुमान इससे सत्प्रतिपक्षित नहीं हो सकता है। ननु—आपके अनुमानमें अनुकूल तर्क नहीं है प्रत्युत प्रतिकूल तर्क है जिसको कि हम कहनेवाले हैं; तहां कहते हैं; दृश्येति। प्रपञ्चको सत्यमाननेपर दृश्यत्वादिकी जो अनुपपत्ति है उस अनुपपत्तिको और जो आपका प्रतिकूल तर्क है उसकी पराहति=निराकरणको वक्ष्यमाण होनेसे भी=दृश्यत्वादिकी अनुपपत्ति और अनुकूल तर्क इनका निरूपण हम आगे चलके सविस्तर करेंगे और आपके प्रतिकूल तर्कोंका भी खण्डन करेंगे इससे भी हमारा अनुमान सर्वथा निर्दोप है यह भाव है। अत एव=फलीभूतसत्प्रतिपक्षको सोपाधिकत्वके होनेसे ही, एतत्तन्त्वनारब्धत्व यह उपाधि भी नहीं; क्यों? उपाधिके व्यतिरेकसे साध्यव्यतिरेकके साध्यमान होनेपर सोपाधिकत्वको उक्त होनेसे;=अयं पटः एतत्तन्तुनिष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगी अंशित्वात् इतरांशिवत् इस अनुमानमें एतत्तन्तुअनारब्धत्व उपाधि है—जहां जहां उक्तप्रतियोगित्व है तहां तहां एतत्तन्त्वनारब्धत्वरूप उपाधि है अतः साध्यकी व्यापक है और अंशित्व तो प्रकृत पटमें भी है और एतत्तन्त्वनारब्धत्व नहीं है अतः साधनकी अव्यापक भी है; तहां उपाधि स्वाभावको हेतु बनाकर साध्याभावको सिद्ध करती है इस पक्षसे यहांपर ऐसा सत्प्रतिपक्ष खडा होगा कि; अयं पटः एतत्तन्तुनिष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगी न एतत्तन्त्वारब्धत्वात् व्यतिरेकेण पटान्तरवत्, और इस सत्प्रतिपक्षकी व्यतिरेकव्याप्तिमें सोपाधिकत्व बतला चुके हैं; अव्याप्यवृत्तिसंयोगका अभ्युपगम होनेपर तत्र=अव्याप्यवृत्तिसंयोगमें व्यभिचारके भी होनेसे=एतत्तन्त्वारब्धत्व तो तिस संयोगमें है परन्तु एतन्निष्ठात्यन्ताभावका अप्रतियोगित्व नहीं किन्तु प्रतियोगित्व है अतः व्यभिचार है; अतएव=इस व्यभिचारसेही जहांपर एतत्तन्तुनिष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगित्व है वहांपर एतत्तन्त्वनारब्धत्व है इस रीतिका साध्यव्यापकताग्रह भी नहीं है क्यों? तत्रैव=संयोगमें ही व्यभिचार होनेसे=संयोगमें एतत्तन्तुनिष्ठात्यन्ताभावका प्रतियोगित्व तो है परन्तु एतत्तन्त्वनारब्धत्व नहीं किन्तु आरब्धत्वही है, इति=इसलिए अंशित्वहेतुमें जो कुछ चित्सुखाऽऽचार्यादिने कहा है वह सर्व निर्दोप है। एवञ्च=इसी प्रकारसे विमतं=विप्रतिपत्तिविषयतावच्छेदकावच्छिन्न ज्ञानव्यतिरेकसे असत् है, ज्ञानव्यतिरेकसे अनुपलभ्यमान होनेसे स्वप्रादिवत्; यह विद्यासागरोक्त अनुमान भी निर्दोप है। ज्ञानव्यतिरेकेणासत्त्वशब्दसे उक्तपञ्चविधमिथ्यात्वमेंसे अन्यतम विवक्षित है=उक्त मिथ्यात्वान्यतमत्व साध्यत्वेन विवक्षित है। और ज्ञानव्यतिरेकेणानुपलभ्यमानत्वसे

चिदाभासे सत्येव उपलभ्यमानत्व विवक्षित है । चिदाभासे सत्येव उपलभ्यमानत्वका अर्थ यह है कि स्वावच्छिन्नचित्के विना अनुपलभ्यमानत्व=स्वावच्छिन्नचित्के विना जिसका भान होता हो तद्भिन्नत्व, फलितार्थ यह हुआ कि स्वप्रकाशभिन्नत्व इस रीतिसे कुछ भी अनुपपन्न नहीं है; वेदान्तकौमुदीकारने मिथ्यात्वके साधक दो अनुमान बतलाये हैं जैसे कि:-विमतं, मिथ्या, धीकाले एवान्यथाप्रमितत्वात् चित्रनिम्नोन्नतादिवत्; विमतं, मिथ्या, भारूपवस्तुसंलग्नत्वात्, सवितृछिद्रादिवत् । तहां प्रपञ्चके धीकालमेंही 'इदं सर्वं यदयमात्मा' (बृ. ।४।५।७) यह जो कुछ देखनेमें आता है वह सर्व यह आत्मा है इत्यादिश्रुतिओंसे सर्व अनात्मपदार्थ आत्मत्वेन प्रमित हैं; अतः प्रथम हेतु असिद्ध नहीं है; तैसे 'घटादि स्फुरति' इस रीतिसे भासे संलग्न होके ही घटादिका भान होनेसे द्वितीय हेतुभी असिद्ध नहीं ऐसी स्थितिके होनेपर भी द्वैती विकल्प कर दोष देता है; तहां प्रथम हेतुका यदि आत्मत्वेन प्रतीयमानत्व अर्थ करो तो सद्रूप-आत्मत्वेन प्रतीतत्वको अमिथ्यात्वका व्याप्य होनेसे विरुद्ध=साध्याभावसाधक हेतु है; और प्रतिपन्नोपाधिनिष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगित्वरूप अर्थ करो तब तो असिद्ध है; और व्यर्थविशेषणता भी है=धीकाले देनेका कुछ फल नहीं है । द्वितीय हेतु सवितामें तथा आत्मामें व्यभिचारी है क्योंकि 'सविता प्रकाशते,' 'आत्मा स्फुरति' इस अनुभवसे वे दोनों भासे संलग्न होके प्रतीत होते हैं; तहां कहते हैं;-एवमिति । ऐसेही अन्योंके प्रयोग भी यथायोग्य उपपादनीय हैं;=अन्यथा प्रमितत्वात्का अर्थ यह है कि प्रपञ्चसे विलक्षणरूपसे जो प्रमित है उसके साथ तादात्म्यहोनेसे; और कल्पिततादात्म्यतो ब्रह्ममें भी है अतः धीकाले कहा है; धीकालेका अर्थ स्वधीकाले है और ब्रह्मधीकालमें तो ब्रह्ममें कल्पिततादात्म्य नहीं है क्योंकि ब्रह्मधी स्वेतरनिखिलद्वैतकी विरोधिनी है=स्वेतरकल्पितकी नाशिका है । भारूपसंलग्नत्वका अर्थ यह है कि स्वप्रकाशस्वरूपावृत्तिधर्मवत्त्व सवितामें व्यभिचारकी शंका नहीं करना क्योंकि सविता भी पक्ष है । इति शिवम्=इस रीतिसे सर्व निर्मल है ।

इति सरलायां अंशित्वहेतूपपत्तिः ।

अथ सोपाधिकत्वनिरासः ।

ननु-दृश्यत्वादिहेतवः सोपाधिकाः तथाहि-स्वबाधकाभिमताबाध्यदोषप्रयुक्तभानत्वं स्वबाधकाबाध्यबाधकं प्रति निषेध्यत्वेन विषयत्वं वा विपक्षाद्व्यावृत्तं समव्याप्तम्, अतएव व्यतिरेकव्याप्तिमदुपाधिः-इति चेन्न; ब्रह्मज्ञानमात्रबाध्ये देहात्मैक्ये मिथ्याभूते-साध्याव्यापकत्वात्; पर्वतावयववृत्त्यन्यत्वादिवत् साध्यवत्पक्षमात्रव्यावर्तकविशेषणत्वेन पक्षेतरत्वतुल्यत्वाच्च । नच बाधोन्नीतत्वात् सोऽप्युपाधिः; बाधस्याग्रे निरसिष्यमाणत्वात् । अपि च यद्व्यतिरेकस्य साध्यव्यतिरेकसाधकत्वं तस्यैव साध्यव्यापकत्वम्; इतरांशेऽनुकूलतर्काप्रसरात् । तथाच 'क्षित्यादिकं, न कर्तृजन्यम्; शरीराजन्यत्वा' दित्यत्र यथा शरीरविशेषणवैयर्थ्यान्न शरीरजन्यत्वं कर्तृजन्यत्वव्यापकम्, एवं 'वियदादिकं, न मिथ्या,

स्वबाधकाभिमताबाध्यदोषप्रयुक्तभानत्वरहितत्वा' दिति साध्यव्यतिरेकसाधने स्वबाधकाभिमताबाध्यभागस्य वैयर्थ्यात् स्वबाधकाभिमताबाध्यदोषप्रयुक्तभानत्वं न मिथ्यात्वव्यापकम्।

अथ सरलायां सोपाधिकत्वभङ्गः।

शङ्का करते हैं नन्विति। दृश्यत्व जडत्वादि हेतु सोपाधिक हैं; तथाहि=सोपाधिकत्व दिखलाते हैं-स्वबाधकाभिमताबाध्यदोषप्रयुक्तभानत्व यह उपाधि है; स्वपदसे जिसमें उपाधिकी स्थापना करनी हो उसे लेना चाहिए। तथाच-स्वपदसे लिया शुक्तिरूप्य शुक्तिरूप्यबाधकत्वेन सिद्धान्तीको अभिमत है 'इयं शुक्तिः' यह ज्ञान इस ज्ञानसे अबाध्य जो दोष=अविद्यातज्जन्यलोभादिरूप दोष तदधीनभानत्व शुक्तिरूप्यमें है तथाच साध्यव्यापकत्व है और दृश्यत्वादि हेतु तो वियदादिमें भी हैं परन्तु वहांपर यह उपाधि नहीं इस लिए साधनका अव्यापक है;। प्रश्न-वियदादिमें यह उपाधि क्यों नहीं है ? उत्तर-वियदादिका बाधक ब्रह्मतत्त्वसाक्षात्कार है और तत्त्वसाक्षात्कारको अविद्यातत्कार्य्यका विरोधी होनेसे वियदादिबाधकाभिमतसे अबाध्य कोई दोष नहीं है अतएव तादृशदोषप्रयुक्तभानत्व भी वियदादिमें असिद्ध है। वा=या यह उपाधि लगाना। स्वबाधकाबाध्यबाधकं प्रति निषेध्यत्वेन विषयत्व; स्वशब्दसे पूर्ववत् शुक्तिरूप्य लीजिए; उसका बाधक 'इयं शुक्तिः' यह ज्ञान है इस बाधकरूप ज्ञानसे अबाध्य जो बाधक='नात्र रजतम्' यह बाधक है तादृश-अबाध्यबाधकके प्रति निषेध्यत्वेन विषयत्व शुक्तिरूप्यको है तथाच साध्यकी व्यापक उपाधि है; साधनोंकी अव्यापक भी है क्योंकि दृश्यत्वादिरूपसाधनोंके अधिकरण वियदादि हैं और वियदादिका बाधक वेदान्तजन्यचरमवृत्तिरूपज्ञान है वह ज्ञान वेणुजवह्निवत् एवं तृणकूटनिक्षिप्ताङ्गारवत् अविद्या तथा अविद्याप्रयुक्तका ध्वंस करता हुआ स्वयं भी ध्वस्त हो जाता है, ध्वंसकान्तरकी अपेक्षा नहीं करता है तथाच स्वबाधकब्रह्मज्ञानको बाध्य होनेसे उपाधिमें साधनव्यापकत्व नहीं है। प्रथम उपाधि हो या द्वितीय हो दोनों विपक्षसे=निश्चितसाध्याभाववत् से व्यावृत्त=विपक्षमें रहनेवाली नहीं हैं; और समव्याप्तम्=साध्यकी व्यापक होके साध्यकी व्याप्य हैं=विमतपदाभिधेय प्रपञ्च पक्ष है; शुक्तिरूप्यादि सपक्ष हैं असत् और ब्रह्म तथा पञ्चमप्रकाररूपाविद्याकी निवृत्ति ये तीनों विपक्ष हैं इन तीनोंमें उपाधिओंके नहीं घटनेसे ये दोनों उपाधियाँ विपक्षसे व्यावृत्त हैं; और इन उपाधिओंको छोडकर साध्य नहीं रहता है और साध्यको छोडकर ये उपाधियाँ नहीं रहती हैं अतः समव्याप्त हैं जैसे सास्नादिमत्त्वको छोडकर गोत्व नहीं रहता है, और गोत्वको छोडकर सास्नादिमत्व नहीं रहता है अतः ये दोनों समव्याप्त हैं तद्वत्; यद्यपि प्रलयमें सास्नादिमत्वको छोडकर गोत्व रहता है तथापि दैशिकव्याप्ति या अधिकरणताओंकी व्याप्तिको लेके दृष्टान्त है। अतएव=समव्याप्तहोनेसे ही व्यतिरेकव्याप्तिमत् उपाधि है;=साध्याभावाविनाभावी स उपाधिर्यदत्ययः।=जिसका अत्यय=अभाव साध्याभावका अविनाभावी=व्याप्य हो स उपाधिः=वह उपाधि है, इस श्लोकवा-

र्तिकके वचनसे साध्याभावव्याप्याभावका नाम उपाधि है इति चेन्न=ऐसा यदि कहो तो नहीं कहना, क्यों ? ब्रह्मज्ञानमात्रसे बाध्य तथा मिथ्याभूत जो देहात्मैक्य है उस देहात्मैक्यमें साध्यका अव्यापक होनेसे=देहात्मैक्य केवल ब्रह्मज्ञानसे बाधित होता है, अतः स्वबाधक ब्रह्मज्ञान हुआ तदबाध्य कोई दोष नहीं है, तैसे ही स्वबाधकसे अबाध्यबाधक भी यहांपर नहीं है किन्तु स्वबाधकसे बाध्य ही बाधक है अतः दोनों उपाधियाँ साध्यकी अव्यापक हैं । पर्वतावयववृत्त्यन्यत्वादिवत् साधनवत्-पक्षमात्रका व्यावर्त्तक जो विशेषण है तादृशविशेषणवत्त्व होनेसे पक्षेतरत्वके तुल्यत्वसे भी='पर्वतो वन्हिमान्, धूमात्' यहां पर पर्वतावयववृत्त्यन्यत्व-साध्यका व्यापक है क्योंकि निश्चितसाध्यवत्-महानसादिमें पर्वतावयववृत्त्यन्यत्व है ही= पर्वतके अवयवोंमें वृत्ति=रहनेवाला पर्वत है अतः पर्वतका नाम हुआ पर्वतावयववृत्ति तदन्यत्व महानसादिमें है ही, और साधनका अव्यापक है क्योंकि साधन पर्वतमें रहता है पर्वतावयव-वृत्त्यन्यत्व पर्वतमें नहीं रहता है अतः साधनका अव्यापक है परन्तु साधनवत्-पक्षमात्रका व्यावर्त्तक जो विशेषण है तद्वत्ताके रहजानेसे यह उपाधित्वेन व्यवहृत नहीं होता है;=ऐसे स्थलमें यदि अन्यत्वमात्रको उपाधि कहें तो अन्यत्वको केवलान्वयी होनेसे साधनव्यापकत्व भी है अतः साधनवत् जो पक्ष है उसकी व्यावृत्तिके लिए पर्वतावयववृत्तित्व विशेषण दिया गया विशेषण देनेपर साध्यव्यापक तथा साधनाव्यापकके होनेपर भी साधनवत् पक्षमात्रव्यावर्त्तकविशेषणवत्ता होनेसे पर्वतावयववृत्त्यन्यत्वको उपाधि नहीं कहा जाता है; तैसे प्रकृतमें भी यदि, दोषप्रयुक्तभानत्वमात्र, तथा बाधकं प्रति निषेध्यत्वेन विषयत्व कहो तब तो पक्षमें भी दोनोंको रहजानेसे साधनव्यापकत्व भी है अतः उपाधिता नहीं, और यदि स्वबाधकाभिमताबाध्य तथा स्वबाधकाबाध्य क्रमशः दोष तथा बाधकके विशेषण दो तो इन विशेषणोंको साधनवत् पक्षमात्रका व्यावर्त्तक होनेसे पक्षेतरत्ववत् इनको उपाधिताही नहीं । बाधोन्नीतत्वात्=अनुमानको बाधदोषसे ग्रस्त होनेसे सोऽपि=साधनवत्पक्षमात्रव्यावर्त्तकविशेषणवान् भी उपाधि है; नच= नहीं है; क्यों ? बाधको आगे निराकरिष्यमाण=प्रत्यादिष्ट किया जानेवाला होनेसे । अपि च= और भी वक्तव्य है, यद्व्यतिरेकस्य=यद्धर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताक–अभावको, साध्यव्यतिरेक-साधकत्वम्=साध्याभावका व्याप्यत्व है; तस्य=तद्धर्मावच्छिन्नकोही साध्यव्यापकत्व है इतरांशमें अनुकूलतर्कका अप्रसर होनेसे । तथाच=फलितार्थ यह हुआ कि–क्षित्यादिकं न कर्तृजन्यम् शरीराजन्यत्वात् इत्यत्र=इस अनुमानमें जैसे शरीरविशेषणका वैयर्थ्य होनेसे शरीर जन्यत्वका व्यापक नहीं है, इसी रीतिसे, ' वियदादिकं, न मिथ्या, स्वबाधकाभिमताबाध्यदोषप्रयुक्तभानरहितत्वाद् ' इस रीतिसे साध्याभावके साधनमें ' स्वबाधकाभिमताबाध्य ' इतने भागका वैयर्थ्य होनेसे, स्वबाधकाभिमताबाध्यदोषप्रयुक्तभानत्व मिथ्यात्वका व्यापक नहीं है ।

दोषप्रयुक्तभानत्वं तु भवति साध्यव्यापकम्, तच्च साधनव्यापकमपीति नोपाधिः । दृश्यत्वादिनैव मिथ्यात्ववत्तस्यापि साधनात् । एवं द्वितीयोपाधावपि 'स्वबाधकाबाध्यबाधकं प्रती'ति विशेषणं व्यतिरेकसाधने व्यर्थम् । विशेष्यभागस्तु साध्यसा-

थनयोर्व्यापक इति नोपाधिः । अतएवाधिष्ठानत्वाभिमतसमसत्ताकदोषवद्धेतुजन्यज्ञानविषयत्वमुपाधिः । अत्र च ब्रह्मणोऽपि बौद्धकल्पितदोषवद्धेतुजन्यक्षणिकत्वादिज्ञानविषयत्वात् समव्याप्तिसिद्ध्यर्थमधिष्ठानसमसत्ताकेति विशेषणम्, न तु पक्षमात्रव्यावृत्त्यर्थम्, अतो न पक्षेतरतुल्यतेत्यपास्तम् । ब्रह्मणीव ब्रह्मणि कल्पिते क्षणिकत्वादावपि मिथ्याभूते धर्मे अधिष्ठानसमसत्ताकदोषवद्धेतुजन्यज्ञानाविषयत्वादुपाधेः साध्याव्याप्तेः, व्यतिरेकसाधने व्यर्थविशेषणत्वस्योक्तत्वाच्च । नापि श्रुतितात्पर्य्याविषयत्वमुपाधिः; श्रुतितात्पर्यविषयत्वस्य ब्रह्ममात्रनिष्ठतया तदभावस्य साधनव्यापकत्वात् । नापि प्रातिभासिकत्वमुपाधिः; तद्धि ब्रह्मज्ञानेतरबाध्यत्वम्, तस्य च देहात्मैक्ये मिथ्याभूतेऽप्यसत्त्वेन साध्याव्याप्तेः, व्यतिरेके व्यर्थविशेषणत्वाच्च । नापि प्रतिभासमात्रशरीरत्वमुपाधिः; दृष्टिसृष्टिपक्षे साधनव्यापकत्वात्, परेषामसिद्धेश्चेति ॥

इति दृश्यत्वादीनां सोपाधित्वभङ्गः ।

दोषप्रयुक्तभानत्व तो साध्यका व्यापक होता है परन्तु वह साधनका भी व्यापक है, अतः यह=प्रथम उपाधि उपाधि नहीं है । दृश्यत्वादि हेतुओंसे ही मिथ्यात्ववत् तस्यापि=दोषप्रयुक्तभानत्वका भी साधन होनेसे । इसी रीतिसे द्वितीय उपाधिमें भी 'स्वाबाधकाबाध्यबाधकं प्रति' इतना विशेषण पक्षमें साध्याभावके साधनेमें व्यर्थ है । और निषेध्यत्वेन विषयत्वरूप विशेष्यभाग तो साध्य तथा साधन इन दोनोंका व्यापक है इस लिए द्वितीय भी उपाधि नहीं अत एव=समव्याप्तिसंपादकत्वके होनेपर भी कथितरीतिसे पक्षमात्रका व्यावर्त्तकत्व होनेसेही "अधिष्ठानसमसत्ताकदोषवद्धेतुजन्यत्व" उपाधि है; शुक्तिरूप्यमें घटाइए अधिष्ठान हुई शुक्ति शुक्तिके समानसत्ताक जो दोष काचादि दोष, तादृश दोषवत् जो हेतु चक्षुरादिरूप हेतु तादृशहेतुजन्य जो ज्ञान 'इदं रजतम्' यह ज्ञान तादृशज्ञानविषयत्व शुक्तिरूप्यमें रह गया अतः साध्यव्यापकत्व आगया पक्षमें नहीं है क्योंकि प्रपञ्चका अधिष्ठान जो ब्रह्म है उस ब्रह्मके समानसत्ताकदोष सिद्धान्तमें अप्रसिद्ध है अतएव तद्वत् हेतुकी सुतरां अप्रसिद्धि है और तज्जन्यज्ञान तथा ज्ञानविषयत्व ये दोनों सुतमां अप्रसिद्ध हैं तथाच साधनाव्यापकत्व भी आगया, यहांपर ब्रह्मको भी बौद्धकल्पित जो अनृत व्याघातादिरूप दोष तादृश दोषवद्धेतु जो वेद तादृशवेदजन्यज्ञानविषयत्व होनेसे उपाधि और साध्यकी समव्याप्ति सिद्धिके लिए अधिष्ठानसमसत्ताक यह दोषका विशेषण दिया है, पक्षमात्रकी व्यावृत्तिके लिए नहीं अतः इस उपाधिको पक्षेतरतुल्यता नहीं है, यह कथन भी अपास्त=खण्डित हुआ; ब्रह्मणीव=जैसे यह उपाधि ब्रह्ममें नहीं है तैसेही ब्रह्ममें कल्पित जो मिथ्याभूत क्षणिकत्वादि धर्म हैं उन धर्मोंमें अधिष्ठानसमसत्ताकदोषवद्धेतुजन्यज्ञानका विषयत्व न होनेसे उपाधिनिष्ठसाध्यकी व्याप्तिका अभाव होनेसे=ब्रह्ममें कल्पित क्षणिकत्वादिका अधिष्ठान ब्रह्म है तत्समानसत्ताकदोष अप्रसिद्ध है; अग्रे पूर्ववत् । पक्षमें साध्याभावके साधनेमें व्यर्थविशेषणत्वके कह चुकनेसे भी=यह उपाधि

नहीं हो सकती है। श्रुतितात्पर्य्याविषयत्व भी उपाधि नहीं है क्यों ? श्रुतितात्पर्य्यविषयत्वको ब्रह्ममात्रनिष्ठ होनेसे तदभावस्य=श्रुतितात्पर्यविषयत्वाभावरूपउपाधिको साधनका व्यापकत्व होनेसे=द्वैती कहता है कि श्रुतितात्पर्य्याविषयत्व, दृश्यत्वादि हेतुओंमें उपाधि है शुक्तिरूप्यादिमें श्रुतितात्पर्य्यविषयत्व नहीं है प्रपञ्चमें है अतः साध्यकी व्यापक और साधनकी अव्यापक है; सिद्धान्तीका यह कथन है कि अलौकिकपारमार्थिकसत्यत्व ब्रह्ममेंही होनेसे और धर्मादिको भी ब्रह्मज्ञानार्थ होनेसे ब्रह्मही श्रुतितात्पर्य्यका विषय है, अतः श्रुतितात्पर्याविषयत्व पक्षमें भी रहता है अतः साधनका व्यापक होनेसे यह उपाधि नहीं। प्रातिभासिकत्व भी उपाधि नहीं; क्यों ? तद्धि=प्रातिभासिकत्व तो ब्रह्मज्ञानेतरबाध्यत्वरूप है तस्य च=ब्रह्मज्ञानेतरबाध्यत्वरूपप्रातिभासिकत्वको तो मिथ्याभूतदेहात्मैक्यमें भी न होनेसे साध्यका अव्यापक होनेसे व्यतिरेक साधनेमें व्यर्थविशेषणत्वके होनेसे भी इसको उपाधित्व नहीं है। प्रतिभासमात्रशरीरत्व भी उपाधि नहीं हैं "क्यों ? दृष्टिसृष्टिपक्षमें साधनका व्यापक होनेसे=दृष्टिसृष्टिपक्षमें स्वरूपतः अनादिओंको तथा संस्कारादिकों छोडकर सभी प्रतिभासमात्रशरीर हैं अतः साधनका व्यापक है।

परेषाम्= माध्वोंको असिद्धिसे भी—माध्वोंके मतमें शुक्तिरूप्यको सर्वथा अलीक होनेसे उसका अपरोक्षरूपसे प्रतिभास नहीं बन सकता है इन उपाधिओंमें लघुचन्द्रिकामें और भी दोष लिखे हैं।

प्रश्न—उपाधि शब्द नित्य-पुँल्लिङ्ग है फिर आप क्यों इसे स्त्रीलिङ्ग लिखते हैं।

उत्तर—संस्कृतमें नित्य-पुँल्लिङ्ग होनेपर भी हिन्दी भाषामें इसका प्रयोग स्त्रीलिङ्ग जैसा ही किया जाता है, जैसे कि—मुझको इस वखत उपाधि लगी हुई है, मैं अपना आरब्ध कार्य पूरा भी न कर सका कि बीचमें उपाधि आके खडी हो गई, इत्यादि। इसी रीतिसे विध्यादिमें भी समझना।

इति सरलायां दृश्यत्वादीनां सोपाधिकत्वभङ्गः।

अथ आभाससाम्यभङ्गः।

विमतं प्रतिभासिकं दृश्यत्वात्, ब्रह्म मिथ्या व्यवहारविषयत्वात् असद्विलक्षणत्वाद्वा शुक्तिरूप्यादिवदित्याभाससाम्यं—इति चेन्न जगतो व्यावहारिकसत्वबाधे व्यवहारानुपपत्तिः ब्रह्मणो मिथ्यात्वे शून्यवादापत्तिश्चेति प्रतिकूलतर्कपराघातेन तयोरसाधकत्वात्, प्रकृते च प्रतिकूलतर्कस्य निरसिष्यमाणत्वात् किं च प्रातिभासिकत्वं ब्रह्मज्ञानेतरबाध्यत्वं प्रतिभासमात्रशरीरत्वं वा। आद्ये साध्ये देहात्मैक्ये व्यभिचारः अप्रयोजकत्वं च द्वितीये दृष्टिसृष्टिमतेन सिद्धसाधनम्, एवं ब्रह्मणि मिथ्यात्वे साध्ये सोपाधिके सिद्धसाधनम् निरुपाधिके व्यवहारविषयत्वरूपो हेतुरसिद्धः वेदान्तजन्यवृत्तिविषयत्वाभ्युपगमेऽप्रयोजकः।

अथ सरलायामाभाससाम्यभङ्गः ।

आभाससाम्यकी शंका करते हैं–नन्विति । विमतं= शुद्धब्रह्मवादीको पक्षत्वेन अभिमत प्रातिभासिकम्= ब्रह्मज्ञानेतरसे बाध्य है दृश्यत्वात् दृश्यत्वहोनेसे; ब्रह्म मिथ्या= ज्ञानसे बाध्य है, व्यवहारविषयत्वात्= शब्दप्रयोगादिरूप व्यवहारका विषयत्व होनेसे, असत्से विलक्षणत्व होनेसे शुक्तिरूप्यवत् इति= ये जो अनुमानाभास हैं इन अनुमानाभासोंका आपके अनुमानमें साम्य है= जैसे उक्तानुमानाभासोंको साधकत्व नहीं हैं तैसे प्रपञ्चमें मिथ्यात्वसाधन करनेके लिए प्रवृत्त आपके अनुमानको भी साधकत्व नहीं है; इति चेन्न; अर्थ पूर्ववत्, क्यों ? जगन्निष्ठव्यावहारिकसत्त्वका बाध होनेपर व्यवहारकी अनुपपत्ति है; च= तथा ब्रह्मणः= ब्रह्मनिष्ठमिथ्यात्वके होनेपर शून्यवादकी आपत्ति है इति= ये जो प्रतिकूल तर्क हैं इन तर्कोंके पराघातसे तयोः= उपरोक्त दोनों अनुमानोंको असाधकत्व होनेसे प्रकृते च= प्रपञ्चमें मिथ्यात्वसाधक अनुमानमें तो प्रतिकूल तर्कको पराकृत किया जानेवाला होनेसे अर्थसाधकत्व है । किञ्च=और भी वक्तव्य है, प्रातिभासिकत्व क्या ब्रह्मज्ञानेतरबाध्यत्वरूप है वा=या प्रतिभासमात्रशरीरत्वरूप है।

आद्ये=आदिमपक्ष होतो देहात्मैक्यमें व्यभिचार है=देहात्मैक्यमें दृश्यत्वरूप हेतु तो है परन्तु साध्यत्वेन विवक्षित ब्रह्मज्ञानेतरबाध्यत्वरूप प्रातिभासिकत्व नहीं है। क्योंकि देहात्मैक्यका बाध केवल ब्रह्मज्ञानसेही होता है च=और अप्रयोजकत्व है=व्यभिचारशङ्कानिवर्त्तकतर्कशून्यत्व है । द्वितीये=प्रतिभासमात्रशरीरत्वरूप द्वितीय पक्ष होतो वक्ष्यमाणदृष्टिसृष्टिमतसे सिद्धसाधन है । एवं=इसी रीतिसे ब्रह्मधर्मिक मिथ्यात्व साध्य होनेपर सोपाधिके=उपहित ब्रह्ममें सिद्धसाधनहै=उपाधिमन्–ब्रह्मका मिथ्यात्व हम लोगोंको सिद्धही है, निरुपाधिके=अनुपहित ब्रह्ममें व्यवहारविषयत्वरूप हेतु असिद्ध है । वेदान्तजन्य जो चरमवृत्ति है तादृशवृत्तिविषयत्वका ब्रह्ममें अभ्युपगम होनेपर भी यह हेतु अप्रयोजक है=ब्रह्ममें मिथ्यात्वके न रहनेपर भी मिथ्याभूत वृत्तिविषयत्वका सम्भव है । ब्रह्मको सर्व बाधका साक्षित्व होनेसे भी ब्रह्ममें किसी बाधक प्रमाणकी प्रवृत्ति नहीं होती है यह भी बात ध्यानमां रखनी चाहिए ।

एवमसद्विलक्षणत्वमपि ब्रह्मण्यसिद्धमेव । क्वचिदप्युपाधौ सत्त्वेन प्रतीत्यनर्हत्वं ह्यसत्त्वम्, तद्विलक्षणत्वञ्च क्वचिदप्युपाधौ सत्त्वेन प्रतीत्यर्हत्वरूपम्, तच्च शुद्धे ब्रह्मणि नास्त्येव । न च बाध्यत्वमसत्त्वं, तद्विलक्षणत्वं चाबाध्यत्वं, तच्च ब्रह्मण्यस्त्येवेति वाच्यम्; अबाध्यत्वेन बाध्यत्वलक्षणमिथ्यात्वसाधने विरोधात्, शुक्तिरूप्यदृष्टान्तस्य साधनविकलत्वाच्च, शून्यवादस्याग्रे निराकरिष्यमाणत्वाच्च, तस्मान्न दृश्यत्वादीनामाभाससाम्यमिति सिद्धम् ॥

इति आभाससाम्यभङ्गः ।

इसी रीतिसे असत्से विलक्षणत्व भी ब्रह्ममें असिद्धही है, हि=यतः किसी भी उपाधिमें सत्त्वेन प्रतीत्यनर्हत्वका नाम असत्त्व है, तद्विलक्षणत्वं च=असत्से विलक्षणत्व तो किसी भी

उपाधिमें सत्वेन प्रतीत्यर्हत्वरूप है. तच=किसी भी उपाधिमें सत्वेन प्रतीत्यर्हत्वरूप असद्विलक्षणत्व तो शुद्ध ब्रह्ममें नहीं ही है. शङ्क्ते न चेति । बाध्यत्व जो है वही असत्त्व है और तद्विलक्षणत्वं च=बाध्यत्वरूपअसद्विलक्षणत्व तो अबाध्यत्व है तच=वह अबाध्यत्व तो ब्रह्ममें है ही; इति न च वाच्यम्, क्यों ? अबाध्यत्वरूप हेतुसे बाध्यत्वरूप मिथ्यात्वके साधनमें विरोध होनेसे= जैसे कृतकत्वेन नित्यत्व साधनमें विरोध है तैसे अबाध्यत्वेन बाध्यत्वरूप–मिथ्यात्व साधनमें विरोध है; च=तथा शुक्तिरूप्यरूप दृष्टान्तको साधनविकलता है; शून्यवादको आगे निराकरिष्यमाण होनेसे भी=असद्विलक्षणत्व ब्रह्ममें मान भी लें तो भी इसको मिथ्यात्वका प्रयोजकत्व नहीं है । क्यों कि ब्रह्मको भी मिथ्यात्व होनेसे शून्यवादकी प्रसक्ति होगी, और शून्यवादका आगे खण्डन होनेवाला है; भावार्थ यह कि–द्रष्टा तथा दृश्य इनका तादात्म्य अनुपपन्न है, क्यों कि यह जो तादात्म्य है इस तादात्म्यका स्वसंबन्धिओंके साथ संबन्ध है या नहीं–यदि प्रथम पक्ष हो तो अनवस्था है; क्यों कि जैसे तादात्म्यरूप प्रथमसबन्धको स्वानुयोगीके साथ तथा स्वप्रतियोगीके साथ संबद्ध बनानेके लिये द्वितीय संबन्ध आवश्यक है , तैसेही द्वितीय संबन्धको स्वप्रतियोगिरूप तादात्म्यके साथ तथा स्वप्रतियोगिरूपतादात्म्यानुयोगिप्रतियोगिओंके साथ संबद्ध बनानेके लिए संबन्धान्तरकी अपेक्षा है यदि वह संबन्धान्तर प्रथमरूप है, तब तो अन्योन्याश्रय है । यदि तृतीय है, तब तृतीयको भी स्वसंबन्धिओंके साथ संबद्ध होनेके लिए संबन्धातर अपेक्षित होगा, वह संबन्धान्तर यदि द्वितीयरूप है तब तो अन्योन्याश्रय है. यदि प्रथमरूप है तो चक्रिका है । यदि चतुर्थरूप है तब तो अनवस्था है तथा च प्रथम पक्ष नहीं उपपन्न हो सकता है । यदि कहो कि–तादात्म्यका स्वसंबन्धिओंके साथ संबन्ध ही नहीं तब तो तादात्म्य संबन्धही नहीं हो सकता है क्यों कि असंबद्ध है, यदि असंबद्ध भी संबन्ध होता हो तब तो घट भी पटपटत्वका संबन्ध होगा, फलितार्थ यह हुआ कि–द्रष्टा तथा दृश्यका तादात्म्य मिथ्या है । ऐसा स्वीकार करना चाहीए, जब यों हुआ तब तो स्वप्नेन्द्रजालवत् कोई अनुपपत्ति दोष नहीं, अतः असंबन्धको संबन्धत्वका व्यवहार होता है; और जब यों हुआ तब तो जैसे वह तादात्म्य मिथ्या है तैसे ही तदनुयोगित्वप्रतियोगित्वविशिष्टरूपसे द्रष्टा तथा दृश्यका भी मिथ्यात्व युक्त है । और ज्ञानरूप शुद्ध जो द्रष्टा है उसके साथ तादात्म्यका संसर्ग न होनेसे उसको मिथ्यात्व नहीं है । " मिथ्या हुए बिना द्रष्टृ-दृश्यका संबन्ध न बनेगा "–यह जो द्रष्टृदृश्यसंबन्धकी अनुपपत्तिरूप तर्क है इस तर्कसे तादृश संबन्धके अनुयोगि तथा प्रतियोगिमें ही मिथ्यात्व सिद्ध होता है न कि शुद्धमें अतः हमारे मतमें उपहित तथा प्रपञ्चमें मिथ्यात्वसाधक जो अनुपपत्ति है उससे शुद्धमें मिथ्यात्व नहीं सिद्ध होता है अतः शून्यवादकी प्रसक्ति नहीं यह भाव है अतः दृश्यत्वादिनिष्ठआभाससाम्य नहीं है यह सिद्ध हुआ ॥

इति सरलायामाभाससाम्यभङ्गः ॥

अथ प्रत्यक्षबाधोद्धारे सत्त्वनिर्वचनम् ।

ननु सन् घट इत्याध्यक्षबाधितविषया दृश्यत्वादय–इति चेन्न चक्षुराद्यध्यक्षयोग्यमिथ्यात्वविरोधिसत्त्वानिरुक्तेः । तथाहि न तावत् प्रमाविषयत्वं तद्योग्यत्वं, भ्रमाविषयत्वं वा तादृक् सत्त्वम्;

चक्षुराद्यगम्यभ्रमप्रमाघटितत्वेन चक्षुराद्ययोग्यत्वात् वक्ष्यमाणदूषणगणग्रासाच्च । तथाहि–नाद्यः असति प्रमाणाप्रवृत्तेः प्रमाविषयत्वात्प्राक् सत्वस्य वक्तव्यत्वेन तस्य तदन्यत्वात्, सत्वनिरूपणं विना सदर्थविषयत्वरूपप्रमात्वस्य निरूपणे चान्योन्याश्रयात्, मिथ्याभूतस्य शुक्तिरजतसंसर्गस्य व्यवसायद्वारा साक्षाच्च निषेध्यत्वादिना प्रमाविषयत्वाभ्युपगमाच्च । नापि द्वितीयः, योग्यताया अनिरूपणात् न तृतीयः; असिद्धेः, सर्वस्यैव क्षणिकत्वादिना भ्रमविषयत्वाभ्युपगमात् ।

अथ सरलायां प्रत्यक्षबाधोद्धारे सत्त्वनिर्वचनम् ।

प्रत्यक्षसे बाधकी शङ्का करते हैं–नन्विति । सन् घटः, इत्यादि जो अध्यक्ष=प्रत्यक्षात्मकज्ञान है उस ज्ञानसे बाधित है विषय=साध्य जिन्होंका एवम्भूतदृश्यत्वादि हेतु हैं=प्रत्यक्षप्रमाण सर्वप्रमाणोंसे प्रबल है अतः अनुमानसे भी प्रबल है और यह प्रबल प्रमाण घटादिमें सत्त्वका अवगाहन करता है और आपका अनुमान सत्त्वविरोधि जो मिथ्यात्व है उसको प्रपञ्चमें सिद्ध करता है, तथाच, वह्निरनुष्णः कृतकत्वात्, यह अनुमान जैसे प्रत्यक्षसिद्ध औष्ण्याभावावगाहि होनेसे प्रत्यक्षसे बाधितविषय होता है तैसे ही प्रत्यक्षसिद्धसत्त्वविरोधिमिथ्यात्वावगाहि होनेसे आपके अनुमान भी प्रत्यक्ष से बाधितविषय हैं यह वादीका तात्पर्य है; इति चेन्न=यदि ऐसा कहो तो नहीं कहना–;क्यों? चक्षुरादिरूप जो अध्यक्ष=प्रत्यक्षप्रमाण उस प्रत्यक्षप्रमाणके योग्य जो मिथ्यात्वका विरोधिसत्त्व तादृशसत्त्वकी निरुक्तिके न होनेसे=चक्षुरादिरूप प्रत्यक्षप्रमाणसे ग्रहणके योग्य हो और मिथ्यात्वका विरोधि हो ऐसा जो सत्त्व है उस सत्त्वकी निरुक्ति नहीं हो सकती है इसलिए; भावार्थ यह कि मिथ्यात्वाभावरूपसत्त्व मिथ्यात्वका विरोधि है चक्षुरादियोग्यही नहीं अतएव सद्रूपब्रह्मतादात्म्यरूपसत्त्व चक्षुरादिके योग्य भी है फिरभी मिथ्यात्वका विरोधि नहीं तथाहि=तादृशसत्त्वकी अनिरुक्ति को दिखाते हैं तावत्=प्रथमतः प्रमाविषयत्वरूप तादृक् सत्त्व=चक्षुरादियोग्यमिथ्यात्वविरोधिसत्त्व नहीं है तद्योग्यत्वं=प्रमाविषयत्वयोग्यत्व भी तादृक् सत्त्व नहीं है या प्रमाविषयत्वरूप भी तादृक् सत्त्व नहीं है? क्यों चक्षुरादिसे अगम्य=चक्षुरादिजन्य ज्ञानके अविषय जो भ्रम तथा प्रमा उन भ्रम तथा प्रमा से घटित=गर्भित होनेसे इन सत्त्वोंको चक्षुरादिके अयोग्य होनेसे; च तथा वक्ष्यमाण=आगे कहा जाने वाला जो दूषणोंका गण है उस दूषणगणका इन सत्त्वोंको ग्रास होनेसे=वक्ष्यमाण दूषणगणसे ये सत्त्व आक्रान्त हैं, तथाहि=दूषणगणको दिखलाते हैं । नाद्यः=प्रमाविषयत्वरूप सत्त्व ठीक

नहीं है; क्यों ! असत्पदार्थमें प्रमाणकी प्रवृत्तिके न होनेसे प्रमाविषयत्वसे प्राक्=पहिले प्रमाजनक प्रमाणकी प्रवृत्तिके लिए सत्त्वस्य=सत्त्वको वक्तव्यत्व होनेसे तस्य=प्रमाणप्रवृत्तिसे प्राक् वक्तव्यसत्त्वको तदन्यत्वात्=प्रमाविषयत्वरूप सत्त्वसें पृथक् होनेसे फलतः प्रमाविषयत्वरूप सत्त्वसे अतिरिक्त ही कोई सत्त्वपदार्थ सिद्ध हुआ। इस पक्षको लेके और भी दूषण देते हैं सत्त्वेति। सत्त्वनिरूपणं विना=प्रमाविषयत्वरूप सत्त्वसे अतिरिक्त सत्त्व निरूपणके विना सदर्थविषयत्वरूप सत्त्वसे अतिरिक्त सत्त्वनिरूपणके विना सदर्थविषयत्वरूप जो प्रमात्व है उसके निरूपण करनेंमें अन्योन्याश्रय भी है=जब सदर्थविषयत्वरूप प्रमात्वकी सिद्धि हो तब सत्त्वकी सिद्धि हो और जब सत्त्वकी सिद्धि हो तब सत्वविशिष्टरूप सदर्थविषयत्वरूपप्रमात्वकी सिद्धि हो इस रीतिसे अन्योन्याश्रय है। मिथ्याभूत जो शुक्तिरजतसंसर्ग है उस शुक्तिरजतसंसर्गको व्यवसाय द्वारा च=तथा साक्षात् निषेध्यत्वेन प्रमाविषयत्वका अभ्युपगम होनेसे भी यह आपका सत्व भ्रमविषयसाधारण होनेसे मिथ्यात्व विरोधी नहीं होसकता है; ‘इदं रजतं’ जानामि इत्याकारिका भ्रमविषयिणी प्रमा होती है इस प्रमाकी साक्षात् विषयतातो भ्रमरूप व्यवसायके ऊपर है। और व्यवसायद्वारा शुक्तिरजतसंसर्गके अपर है क्यों कि व्यवसायवित्तिवेद्य व्यवसायीय विषय होता है; तैसे ‘नेदं रजतं’ इत्याकारिका जो प्रमा है इस प्रमामें भी निषेध्यविधया शुक्तिरजतके संसर्गका भान होता है; नापि द्वितीयः=प्रमाविषयत्वयोग्यत्वरूप द्वितीय पक्ष भी सम्यक् नहीं, क्यों ! योग्यताका निरूपण न होनेसें=योग्यताका उपसंग्राहक यदि कोई अवच्छेदक होता तो योग्यताघटित–लक्षण हो सकता परन्तु ऐसा कोई निरूपण करनेको शक्य नहीं हैं अतः योग्यताघटितलक्षण नहीं बन सकता है; नतृतीयः=भ्रमाविषयत्वरूपतृतीयपक्ष भी अच्छा नहीं है; क्यों ! असिद्धेः=असिद्धि होनेसे; असिद्धत्वको ही स्पष्ट करते हैं–सर्वपदार्थोंको ही क्षणिकत्वादिरूपसे भ्रमविषयत्वका अभ्युपगम होनेसे=जो लोग क्षणिक पदार्थोंको नहीं मानते हैं उन लोगोंके मतमें सर्वपदार्थधर्मिक बौद्धवाक्यजातज्ञात क्षणिकत्वप्रकारक ज्ञान भ्रमात्मक है तादृशभ्रमविषयत्व निखिलपदार्थोंमें रहगया अतः भ्रमविषयत्वरूप सत्त्व नहीं बन सकता है; आदिपदसे शून्यत्वादिका ग्रहण है ॥

अत एव नासत्त्वाप्रकारकप्रमाविषयत्वमपि; अन्योन्याश्रयाच्च। नापि सत्त्वप्रकारकप्रमाविषयत्वम्; आत्माश्रयत्वात् नाप्यसत्त्वप्रकारकप्रमाविषयत्वं सत्वम् अन्योन्याश्रयात्। नापि प्रतिपन्नोपाधौ त्रैकालिकसत्त्वनिषेधविरहः; आत्माश्रयत्वात्। नापि सत्ताजातिरर्थक्रियाकारित्वमसद्वैलक्षण्यं वा, एतेषां मिथ्यात्वाविरोधित्वेन तत्प्रत्यक्षेण मिथ्यात्वानुमाने बाधाभावात्। नापि वेदान्ताभिमतमिथ्यात्वाभावः सत्त्वम्। तुच्छेऽतिव्याप्तेः। नाप्यसद्विलक्षणत्वे सत्यनारोपितत्त्वम्; अनारोपितत्वं हि आरोपाविषयत्वम्; तच्चासंभवि सर्वस्यैव क्षणिकत्वादिना आरोपविषयत्वात् नाप्यस्तित्वप्रकारकप्रमां प्रति कदाचित् साक्षात् विषयत्वं कालसंबन्धित्वं वा सत्त्वं अस्तित्वञ्च वर्तमानत्वम् नतु सत्त्वमतो नात्माश्रयः अतीतादिरपि कदाचिद्वर्तते एवेति नाव्याप्तिः। आरोपितश्च कालत्रया-

संवन्धित्वेन वाधेन वोधितमिति न द्वितीयलक्षणे अतिव्याप्तिः इति वाच्यम् प्रमात्वस्य सत्त्वघटितत्वेन चक्षुराद्ययोग्यत्वेन च पूर्वोक्तदोषात् वर्त्तमानत्वप्रकारकप्रमाविषयत्वेऽपि मिथ्यात्वाविरोधाच्च। द्वितीयमपि न मिथ्यात्वविरोधि; शुक्तिरूप्यस्यापि प्रतिभासकाल-संवन्धित्वात् वाधेन तात्त्विककालत्रयसंवन्धनिषेधेऽपि तात्त्विककालसंवन्धस्यानिषेधात् नापि तात्त्विककालसंवन्धित्वंतत् तात्त्विकस्याद्याप्यनिरूपणात् निरूपणे वा शेषवैयर्थ्यात्।

अतएव=सर्वत्र क्षणिकत्वादिप्रकारक भ्रम होनेसेही, असत्त्वाप्रकारक जो प्रमा है तादृशप्रमाविषयत्वरूप सत्त्व भी नहीं हो सकता है; अन्योन्याश्रयके होनेसे भी=असत्त्वाप्रकारकप्रमाविषयत्वरूप सत्त्वसिद्ध हो तो तत्प्रतियोगिक असत्व सिद्ध हो और असत्त्वसिद्ध हो तत्र तद्घटितसत्त्वसिद्ध हो अतः अन्योन्याश्रय है; खण्डनीय पुस्तककी रीतिसे इस पङ्क्तिमें अत एव, अपि अन्तिमनकार, इतने पद नहीं हैं। फलतः अन्योन्याश्रयमात्रका उद्भावन है दोषान्तरका इस पक्षमें अनुषङ्ग नहीं सो सरल है। सत्त्वप्रकारिका जो प्रमा। घटः सन्। इत्याकारिका प्रमा तादृशप्रमाविषयत्वरूप सत्त्व भी नहीं हो सकता, क्यों! आत्माश्रय दोष होनेसे सत्वके स्वरूपको सत्त्वसे घटित होनेसे आत्माश्रय है; असत्त्वाप्रकारक जो भ्रम तादृश भ्रमाविषयत्व-रूप सत्त्व भी नहीं हो सकता है, क्यों! अन्योन्याश्रय होनेसे=यहांपर असत्त्वको सत्त्वकी अपेक्षा है और सत्त्वको असत्त्वकी अपेक्षा है। अतः अन्योन्याश्रय है। प्रतिपन्नोपाधिमें त्रैका-लिक जो सत्त्वका निषेध तादृश निषेधका विरहरूप भी सत्त्व नहीं हो सकता है; क्यों आत्म-श्रय होनेसे=सत्त्वसे घटित सत्त्वका लक्षण है अतः आत्माश्रय है सत्ताजातिरूप सत्त्व, अर्थक्रिया=कार्यकारित्वरूप सत्त्व वा=या असद्वैलक्षण्यरूप सत्त्व, ये भी नहीं बन सकते हैं; एतेषां=प्रमा-विषयत्वसे लेकर असद्वैलक्षण्यपर्यन्त जो सत्त्व हैं उन सत्त्वोंको मिथ्यात्वका विरोधि न होनेसे=तद्विषयकप्रत्यक्षसे मिथ्यात्वानुमितिमें बाध न होनेसे। वेदान्तिओंको अभिमत जो मिथ्यात्व तादृशमिथ्यात्वाभावका नाम सत्त्व है; यह भी नहीं कह सकते हो; क्यों? तुच्छमें अतिव्याप्ति होनेसे; असद्विलक्षण होके अनारोपितत्व भी सत्त्व नहीं हो सकता है। क्योंकि अनारोपि-तत्व तो आरोपका अविषयत्वरूप है; तच्च=आरोपाविषयत्व तो असंभवि=इसका संभवही नहीं सर्वपदार्थोंको क्षणिकत्वेन आरोपका विषय होनेसे। अस्तित्वप्रकारक प्रमाके प्रति कदा-चित् साक्षात्विषयत्व या कालसंवन्धित्वरूप सत्त्व है; अस्तित्व तो वर्तमानत्वरूप है; सत्त्वरूप नहीं अतः आत्माश्रय नहीं है, अतीतादि भी कदाचित् वर्त्तते हैं; अतः अतीत-तथा अना-गतमें अव्याप्ति नहीं है; आरोपित तो कालत्रयसे असंवन्धित्वरूपसे बाधके द्वारा बोधितरूप है, इस लिये द्वितीय लक्षणमें अतिव्याप्ति नहीं है; इति नापि वाच्यम्;=यह भी नहीं कहना; क्यों! प्रमात्वको सत्त्वसे घटित होनेसे और चक्षुरादिके अयोग्य होनेसे पूर्वोक्त आत्माश्रयादि दोषोंके होनेसे; वर्त्तमानत्वप्रकारक जो प्रमा है तादृशप्रमाविषयत्वरूप सत्त्वके होनेपर भी मिथ्यात्वके साथ विरोध न होनेसे भी कोई क्षति नहीं। द्वितीयमपि=कालसंवन्धित्वरूप द्वितीयसत्त्व भी मिथ्यात्वका विरोधि नहीं है; शुक्तिरूप्यको भी प्रतिभासकालका सम्बन्धित्व

होनेसे=जिस कालमें शुक्तिरूप्यका ज्ञान होता है उस कालका नाम प्रतिभासकाल है उस कालके साथ शुक्तिरूप्यका संबन्ध होनेसे कालसंबन्धित्व शुक्तिरूप्यमें रह गया। और वहां मिथ्यात्व भी है अतः यह कालसंबन्धित्वरूपसत्त्व मिथ्यात्वका विरोधि नहीं है; इह कालत्रयेऽपि रजतं नास्ति। इस बाधसे तात्त्विक जो कालत्रयका संबन्ध उस संबन्धका निषेध होनेपर भी अतात्त्विक जो कालका संबन्ध उसका अनिषेध होनेसे; अर्थात् शुक्तिरजतके साथ कालका व्यावहारिक संबन्ध न होनेपर भी प्रातिभासिक संबन्ध है। तात्त्विककालसंबन्धित्वरूप तत्=सत्त्व है, यह भी नहीं हो सकता; क्यों! तात्त्विकपदार्थका आज भी निरूपण न होनेसे=अपने तात्त्विकरूप सत्त्वकाही तो विचार कर रहे हैं तद्घटित लक्षण करनेमें आत्माश्रय दोष है निरूपणे वा=तात्त्विकका निरूपण हो चुकनेपर तो शेषवैयर्थ्यात्=लक्षणका अवशिष्टांश व्यर्थ है=तात्विकं सत्त्वम् इतनाही लक्षण ठीक है। कालसंबन्धित्वके देनेकी आवश्यकता नहीं।

ननु भवन्मते यत्सत्त्वं ब्रह्मणि तदेवेह मम। उक्तं हि यादृशं ब्रह्मणः सत्त्वं तादृशं स्याज्जगत्यपि। तत्र स्यात्तदनिर्वाच्यं चेदिहापि तथाऽस्तु नः इति। न च—तत्रापरिच्छिन्नत्वं सत्त्वम्; तच्च न जगतीति वाच्यम्; तुच्छस्य अपरिच्छिन्नत्वेऽपि सत्त्वानभ्युपगमात्। नापरिच्छिन्नत्वं सत्त्वम् किन्त्वन्यदेव तच्च ब्रह्मणीव भ्रमाधिष्ठानत्वाच्छुक्तिकादेरपि भविष्यति इति चेत् नूनं विवाहसमये कन्यायाः पित्रा निजगोत्रं पृष्टस्य यदेव भवतां गोत्रं तदेव ममापि गोत्रमितिवदतो वरस्य भ्राता भवान्; यतो जामातृश्वशुरयोरेकगोत्रत्वे विवाहानुपपत्तिवज्जगद्ब्रह्मणोरेकसत्त्वे जगतोऽसत्त्वमेव स्यात् तथाहि स्वप्रकाशाद्वितीयचैतन्यरूपत्वमेव ब्रह्मणः सत्त्वम्, तदेव चेज्जडस्यापि जगतः तदा रजतत्वविरोधिशुक्तिसत्तया रजतस्येव जडत्वविरोधिस्वप्रकाशसत्तया जगतः स्वरूपतो मिथ्यात्वोपपत्तेः। चैतन्यस्यैवावच्छिन्नानवच्छिन्नाज्ञानविषयत्वेन सर्वभ्रमाधिष्ठानत्वाभ्युपगमान्न भ्रमाधिष्ठानत्वेन शुक्त्यादेः सत्त्वसिद्धिः।

शङ्कते नन्विति। भवन्मते=आपके मतमें ब्रह्ममें जो सत्त्व है तदेव=वही सत्त्व मम=मेरे मतमें इह=जगत्में है। उक्तं हि—मम मतावलम्बी किसी द्वैतीने कहा है—ब्रह्मणः=ब्रह्मनिष्ठयादृश सत्त्व है तादृश सत्त्व जगत्में भी रहो। तत्र=ब्रह्ममें तत् सत्त्वं अनिर्वाच्यं=निर्वचन करनेको अशक्य है इति चेत्=यदि ऐसा है तो नः=हम लोगोंका भी तथा=अनिर्वाच्यरूपसत्व इहापि—अस्तु=इस जगत्में भी रहो। तत्र=ब्रह्ममें अपरिच्छिन्नत्व रूप सत्त्व है; तच्च=वह अपरिच्छिन्नत्व रूप सत्त्व जगत्में नहीं है=क्यों कि जगत् देशकालवस्तुकृतपरिच्छेदवत् है; इति न च वाच्यम्;=ऐसा नहीं कहना क्यों! तुच्छको अपरिच्छिन्नत्व होनेपर भी तुच्छनिष्ठसत्त्वका अभ्युपगम न होनेसे अपरिच्छिन्नत्वरूप सत्त्व नहीं है; किन्त्वन्यदेव=किन्तु अपरिच्छिन्नत्वसे भिन्नही सत्त्व है; तच्च वह सत्त्व तो—ब्रह्मवत् भ्रमाधिष्ठान होनेसे शुक्तिकादिनिष्ठ भी होगा इति चेत्=ऐसा यदि है; तो नूनं=निश्चयही विवाहके समयमें कन्याके पितासे निजगोत्रके प्रति पूछे गये जो आपका गोत्र

है वही मेरा भी है, इति=ऐसा कहने वाले वरके भ्राता आप हैं; यतः=जिससे कि जामाता तथा श्वशुर इन दोनोंको एक गोत्रत्व होनेपर, विवाहानुपपत्तिवत्=विवाहके असं-भववत्=एक गोत्रवाले त्रिवर्णोंका जैसे विवाह नहीं बन सकता है तैसे ही जगत् तथा ब्रह्म एतदुभयनिष्ठ एक सत्त्वके होनेपर जगतोऽसत्त्वमेव स्यात्=जगन्निष्ठ असत्त्व ही सिद्ध होगा। तथा हि=उसी प्रकारको दिखलाते हैं; स्वप्रकाशाद्वितीय चैतन्यरूपत्वही ब्रह्मनिष्ठ सत्त्व है और वही यदि जडरूप जगन्निष्ठ भी सत्त्व है तब तो रजतत्वकी विरोधिनी जो शुक्तिकी सत्ता है उस सत्तासे रजतके मिथ्यात्ववत् जडविरोधिस्वप्रकाशसत्तासे जगतः=जगन्निष्ठस्वरूपतः मि-थ्यात्वकी उपपत्ति होनेसे=वस्तुगतिसे स्वप्रकाश-अद्वितीय अबाध्यत्वसे उपलक्षित जो शुद्ध चिद्रूप है वह शुद्ध चिद्रूप ही ब्रह्मनिष्ठधर्मत्वेन कल्पित हुआ सत्त्व कहा जाता है-ब्रह्मका सत्त्व कहा जाता है-वही=उपरोक्त चिद्रूप ही यदि जगत्का सत्त्व है तब तो उस चिद्रूपको जडोंसे अत्यन्त भिन्न होनेसे उसमें जडधर्मता नहीं बन सकती है; क्यों कि अत्यन्त भिन्न पदार्थोंका धर्मधर्मिभाव तो परिणामवादी प्रकृतवादीको भी इष्ट नहीं है; तथा च जडसे अत्यन्त भिन्न होनेसे जडत्वका विरोधि भी वह सत्त्व कल्पित जड तादात्म्यसे जडका धर्म कहना होगा; और तब तो ब्रह्मसे अत्यन्त भिन्न भी वह स्वरूप कल्पित ब्रह्मभेदको लेके ब्रह्मका यथा धर्म है तथा जडसें अत्यन्त भिन्न भी वह स्वरूप जड तादात्म्यसे जडका धर्म है यह कहना युक्त होगा; परंतु जो पदार्थ ब्रह्ममें आरोपित होगा उसीमें ब्रह्मका धर्मरूप जो तादृश=उक्त चिद्रूप रूप सत्त्व है उसके संसर्गका आरोप होगा; जैसे शुक्तिमें आरोपित जो रजत है उस रजतमें शुक्तिनिष्ठ सत्त्वरूप तथा इदंता रूप धर्मका आरोप होता है; फलतः रजतत्वविरोधि जो शुक्तिसत्त्वादि धर्म हैं तादृशधर्मारोपान्यथानुपपत्त्या जैसे रजतमें शुक्त्यारोपितत्व सिद्ध होता है; तैसे ही जडत्व-विरोधिब्रह्मसत्त्वारोपान्यथानुपपत्त्या जडोंमें ब्रह्मारोपितत्व सिद्ध होता है। तथा जडनिष्ठ मिथ्यात्वही आपकी उक्तिसे उपपन्न हुआ यह भाव है। शङ्का जैसे भ्रमाधिष्ठानत्वेन ब्रह्म सद्रूप है तैसे ही भ्रमाधिष्ठानत्वेन शुक्त्यादिको भी सद्रूपता रहो। ब्रह्म रूप सत्त्वके संसर्गारोपकी कल्पना व्यर्थ है तहां कहते हैं; चैतन्येति। अवच्छिन्नानवच्छिन्नाज्ञानविषयत्वेन चैतन्यको ही सर्व भ्रमोंके अधिष्ठानत्वका अभ्युपगम होनेसे भ्रमाधिष्ठानत्वेन शुक्त्यादिनिष्ठ सत्वकी सिद्धि नहीं है=अवच्छिन्नं च अनवच्छिन्नं च इति अवच्छिन्नानवच्छिन्नम्; एवंभूतं यदज्ञानविषयत्वं तेन ऐसा समास करना अवच्छिन्नाज्ञानविषयत्वावच्छिन्ना जो ब्रह्मनिष्ठअधिष्ठानता है वह प्रातिभासिक पदार्थोंसे निरूपिता है; शुक्त्यादिअवच्छेदेन जो ब्रह्ममें अज्ञानविषयत्व है, उसका नाम अवच्छिन्नाज्ञानविषयत्व है अविद्या और अविद्याप्रयुक्त एतदुभयानवच्छेदेन अज्ञानविषयत्वका नाम अनवच्छिन्नाज्ञानविषयत्व है तथाच व्यावहारिकपदार्थनिरूपिता अधिष्ठानता अनवच्छिन्नाज्ञानविषयत्वावच्छिन्ना है। और अज्ञानविषयत्व चैतन्यमें ही है क्यों कि जडमें स्वप्रकाशत्वकी प्रसक्ति ही नहीं अतः जडमें अज्ञानविषयत्व मानना व्यर्थ है।

नन्वेवमपि सर्वदेशीयत्रैकालिकनिषेधप्रतियोगित्वमसत्त्वं तुच्छानिर्वचनीयसाधा-रणम्, तदभावः सत्त्वम्। तच्च ब्रह्मणीव जगत्यपीति ब्रूमः। नच संयोगेऽव्याप्तिः

तस्याव्याप्यवृत्तित्वानभ्युपगमात्। तदभ्युपगमेचाव्याप्यवृत्तित्वेनाभावो विशेषणीयः। नापि वियत्यव्याप्तिः, तदत्यन्ताभावस्य केवलान्वयित्वानङ्गीकारेण लक्षणस्य विद्यमानत्वादेव। नहि कस्मिंश्चिद्देशे काले वा तस्याभावः, नित्यविभुत्वभङ्गप्रसङ्गात्। आकाशात्यन्ताभावस्य केवलान्वयित्वाभ्युपगमे च वृत्तिमत्प्रतियोगिकत्वेनाभावो विशेषणीयः। इति चेन्न; चक्षुराद्ययोग्यानेकपदार्थघटितत्वेनैतादृशसत्त्वस्य ग्रहणे चक्षुरादेरसामर्थ्यात्। नहि सर्वदेशीयत्रैकालिकवृत्तिमत्प्रतियोगिकव्याप्यवृत्तिनिषेधप्रतियोगित्वं कस्यापि प्रत्यक्षम् येन तदभावः प्रत्यक्षो भवेत्। वृत्तिमत्प्रतियोगिकत्वव्याप्यवृत्तित्वपरित्यागेऽपि सर्वदेशीयत्वत्रैकालिकत्वयोरयोग्यत्वात् ॥

शङ्कते नन्विति। ऐसा होनेपर भी सर्वदेशीय=सर्वदेशवृत्ति जो त्रैकालिक=कालानच्छिन्न निषेधः=अत्यन्ताभाव तादृशात्यन्ताभावका प्रतियोगित्वरूप असत्त्व है वह असत्त्व तुच्छ अनिर्वचनीयसाधारण है;=कालानवच्छिन्नसर्वदेशवृत्यत्यन्ताभावप्रतियोगित्वरूप असत्त्व तुच्छ-अनिर्वचनीयमें समानरूपसे रहनेवाला है तदभावः=तस्य उक्तासत्त्वस्याभावः तदभावः=उक्त असत्त्वका जो अभाव है वह अभाव ही सत्त्व है; तच्च=उक्तसत्त्व तो ब्रह्मणीव जैसे ब्रह्ममें है तैसे ही पक्षीभूतजगत्में भी है इति ब्रूमः=ऐसा हम कहते हैं=संयोगमें अव्याप्ति है=संयोग अव्याप्यवृत्ति है और अव्याप्यवृत्तिपदार्थका अभाव केवलान्वयि होता है तथा च सर्वदेशीय तथा सर्वकालिकसंयोगाभाव है तादृश अभावका प्रतियोगित्वरूप असत्त्व ही संयोगमें रहा तदभाव नहीं अतः अव्याप्ति है नच=नहीं है; क्यों ! तस्य=संयोगके अव्याप्यवृत्तित्वका अनङ्गीकार होनेसे, तदभ्युपगमेच=संयोगके अव्याप्यवृत्तित्वका अभ्युपगम होनेपर तो; व्याप्य-वृत्तित्वेन अभाव विशेषणीय है,=जब अभाव में व्याप्यवृत्तित्व विशेषण दिया तब संयोगको अव्याप्यवृत्तित्व माननेपर भी अव्याप्ति नहीं है; क्यों कि संयोगाभाव व्याप्यवृत्ति नहीं है; अतः व्याप्यवृत्ति उक्ताभावका प्रतियोगित्वही संयोगमें नहीं; नापि वियत्यव्याप्तिः= आकाशमें भी अव्याप्ति नहीं है;=क्यों ? आकाशात्यन्ताभावनिष्ठकेवलान्वयित्वका अङ्गीकार न होनेसे लक्षणको विद्यमान होनेसे ही; किसी भी देशमें या कालमें तस्य=आकाशका अत्यन्ताभाव नहीं है; क्यों ? नित्यविभुत्वके भङ्गका प्रसंग होनेसे=व्याप्यवृत्तित्रैकालिकसर्व-देशीयात्यन्ताभाव तो आकाशात्यन्ताभाव भी है, तत्प्रतियोगित्वरूप असत्त्व ही आकाशमें रह गया असत्त्वाभाव नहीं रहा अतः अव्याप्ति है; ऐसी आशङ्का कर समाधान किया कि आकाशात्यन्ताभावको जैसा आप केवलान्वयी समझते हैं; तैसा वह केवलान्वयी नहीं है= आकाशात्यन्ताभाव केवलान्वयी नहीं है; क्यों कि ऐसा कोई देश या काल नहीं है जहां आकाशका अत्यन्ताभाव हो; क्यों कि मूर्तोंमें संयोगसे आकाश है। विभुओंमेंभी संयोगसे आकाश है; अथवा संयुक्तमूर्तसंयोगसंबन्धसे विभुओंमें आकाश है=संयोगवत्का नाम संयुक्त है यथाच आकाशके संयोगवाले जो मूर्त है उन मूर्तोंके साथ विभुओंका संयोग होता है जिस

पक्षमें विभुद्वयका संयोग नहीं माना जाता है उस पक्षसे यह संबन्ध है; गुणादिमें संयुक्त-समवायादिसंबन्धसे आकाश है अतः आकाशात्यन्ताभाव कहीं भी नहीं है, यद्यपि उत्पत्ति-क्षणावच्छेदेन द्रव्यमें आकाशात्यन्ताभावका संभव है परन्तु वह व्याप्यवृत्ति नहीं अतः प्रकृत-में अनुपयुक्त है; और जिस द्रव्यमें आकाशका अत्यन्ताभाव होगा वहां आकाशके संयोगके न रहनेसे सर्वमूर्त्तसंयोगित्वरूप नित्यविभुत्वका भङ्ग होगा; अत्र घटे आकाशः । इत्यादि प्रतीतिओंसे आकाशसंयोगको वृत्तितानियामकत्व सिद्ध है । प्रश्न ? इस प्रसङ्गमें सर्वकालवृत्ति-सर्वदेशवृत्तिव्याप्यवृत्तिनिषेधप्रतियोगित्वका नाम असत्त्व है । और उक्त निषेधाप्रतियो-गित्वका नाम सत्त्व है । इस बातको हम समझ गये हैं । और अव्याप्यवृत्तिसंयोगपक्षमें सत्त्वके लक्षणकी अव्याप्ति न हो जाय इस लिए अभावमें व्याप्यवृत्तित्व विशेषण दिया गया है । परन्तु अभावमें सर्वदेशवृत्तित्व=सर्वदेशीयत्व और सर्वकालवृत्तित्व=त्रैकालिकत्व ये दो विशेषण किस लिए दिये गये हैं सो समझमें नहीं आया । उत्तर-जो समझमें नहीं आया है उसे अव समझ लीजिए । इस लक्षणमें यदि सर्वकालवृत्तित्व=सार्वकालिकत्व विशेषण न देंगें तो समवायिकारणके ध्वंससे जन्य जो ध्वंस तादृश ध्वंसप्रतियोगि जो पट है उसमें सत्त्वके लक्षणकी अव्याप्ति होगी । क्योंकि वह पट तन्तुओंसे अतिरिक्त कपालादिकमें तो कभी थाही नहीं । केवल तन्तुओंके आश्रित था । और जिसकालमें तन्तु भी नष्ट हो गये उस कालमें वह अनाश्रित है अतः उस कालमें उसका सर्वदेशमें अत्यन्ताभाव है । और वह अत्यन्ताभाव व्याप्यवृत्ति भी है । तथाच तादृशात्यन्ताभावप्रतियोगित्वके उस पटमें रहजानेसे उस पटमें अव्याप्ति है । और जब अभावांशमें सार्वकालिकत्वका निवेश किया तब अव्याप्ति नहीं है । क्योंकि स्वसमवायिके नाशसे पूर्वकालमें स्वसमवायिमें पटको स्थित होनेसे तदीयाभाव त्रैका-लिक नहीं है । सार्वकालिकव्याप्यवृत्तिनिषेधाप्रतियोगित्व इतनाही यदि कहें और सर्वदेशीय विशेषण न दें तो अश्वे गोत्वं कदापि नास्ति, इस प्रतीतिका विषयीभूत सार्वकालिक व्याप्य-वृत्ति निषेध है तादृश निषेधप्रतियोगित्वको गोत्वमें रह जानेसे अव्याप्ति है । अतः सर्वदेशीय कहा जब सर्वदेशीय कहा तब यह अभाव छूट गया । क्योंकि इसे गोत्वाधिकरण गोमें न रह-नेसे सर्वदेशीयत्व नहीं है । आकाशात्यन्ताभावस्य=आकाशप्रतियोगिक अत्यन्ताभावको केव-लान्वयित्वका अभ्युपगम होनेपर तो वृत्तिमत्प्रतियोगिकत्त्वेन अभावविशेषणीय है=वृत्तिमत्प्रति-योगि यस्य स वृत्तिमत्प्रतियोगिकस्तस्यभावः तत्त्वं तेन=वृत्तिमत् है प्रतियोगि जिसका एवम्भूत जो अभाव वह अभावलक्षणघटक है । संयोगादिसंबन्धसे जो पदार्थ दूसरेमें रहता हो उसे वृत्तिमत् कहते हैं जैसे घटघटत्वादि हैं आकाशका अत्यन्ताभाव जब केवलान्वयी माना जाता है । तब आकाश कहीं भी प्रथमोक्तसम्बन्धोंसे रहता है यह बात नहीं मानी जाती है तथाच आकाशात्यन्ताभावको वृत्तिमत्प्रतियोगिकत्व न होनेसे आकाशात्यन्ताभाव लक्षणका घटक नहीं हुआ अतः आकाशमें अव्याप्ति नहीं । इति चेन्न=ऐसा यदि कहो तो नहीं कहना क्यों ? चक्षुरादिके अयोग्य जो अनेक पदार्थ तादृश अनेक पदार्थोंके घटितत्वसे एतादृशसत्वके ग्रहणमें चक्षुरादिका सामर्थ्य नहोनेसे,=सर्वदेशीय सार्वकालिक वृत्तिमत्प्रतियोगिक व्याप्यवृत्ति एतत्तु-

द्वयविशेषणविशिष्ट जो निषेध तादृशनिषेधका प्रतियोगित्व किसीको प्रत्यक्ष नहीं है यतः तिसप्रतियोगित्वके अत्यन्ताभावका प्रत्यक्ष हो वृत्तिमत्प्रतियोगिकत्व व्याप्यवृत्तित्व इन दो विशेषणोंके परित्याग होनेपर भी सर्वदेशीयत्व तथा त्रैकालिकत्व इन दोनों विशेषणोंके अयोग्य होनेसे।

ननु स्वदेशकालवृत्तिनिषेधप्रतियोगित्वाभावे गृह्यमाणे कालत्रयमध्ये वर्त्तमानकालस्य सर्वदेशमध्ये प्रकृतदेशस्यापि प्रवेशेन तत्र निषेधप्रतियोगित्वाभावस्य गृहीतत्वात्तसंवलितं कालत्रयवृत्तिसर्वदेशीयनिषेधप्रतियोगित्वरूपं मिथ्यात्वं नानुमानेन ग्रहीतुं शक्यते इति चेन्न, स्वदेशकालवृत्तिसकलनिषेधप्रतियोगित्वस्य चक्षुराद्ययोग्यत्वेन तदभावस्य सुतरां तदयोग्यत्वात्। स्वदेशकालवृत्तियत्किञ्चिन्निषेधाप्रतियोगित्वस्य मिथ्यात्वाविरोधित्वात्। स्वप्रतियोगिकात्यन्ताभावासामानाधिकरणस्य च स्वप्रतियोगिकात्यन्ताभावाप्रसिध्या केवलान्वयिनि सम्बन्धभेदेन घटादौ चासिद्धेः, स्वात्यन्ताभावयावदधिकरणावृत्तित्वं वा स्वात्यन्ताभावयत्किञ्चिदधिकरणावृत्तित्वं वेति विकल्पेन पूर्वोक्तदोषाच्च, तस्मात्तत्प्रकारान्तरस्य निरूपयितुमशक्यत्वान्मिथ्यात्वाविरोधित्वाच्च, स्वसमानाधिकरणयावदत्यन्ताभावप्रतियोगित्वाभावरूपमेवसत्त्वमुपेयम् तच्च न चक्षुरादियोग्यमित्युक्तम्।

शङ्कते। नन्विति। स्वदेश तथा स्वकालमे वृत्ति=रहनेवाला जो निषेध है। तादृशनिषेधनिरूपित जो प्रतियोगित्व तादृशप्रतियोगित्वप्रतियोगिक जो अभाव उस अभावको स्वमें गृह्यमाण होनेपर कालत्रयके मध्यमें वर्तमानकालस्य=स्वाधिकरणीभूतकालका और सर्वदेशके मध्यमें प्रकृतदेशस्यापि=स्वाधिकरणीभूत देशका भी प्रवेश होनेसे। तत्र=स्वदेशमें तथा स्वकालमें स्वमें निषेधप्रतियोगित्वाभावको गृहीत होनेसे, तत्संवलितं=ताभ्यां=स्वदेशस्वकालाभ्यां संवलितं=घटितम्। स्वदेश तथा स्वकालसे घटित जो कालत्रयवृत्तिसर्वदेशीयनिषेधप्रतियोगित्वरूप मिथ्यात्व वह मिथ्यात्व अनुमानसे ग्रहणकरनेको शक्य नहीं है। इतिचेन्न=ऐसा यदि कहो तो नहीं कहना, क्यों? स्वाधिकरण जो देश तथा स्वाधिकरण जो काल तद्वृत्ति जो सकलनिषेध तादृशनिषेधनिरूपित जो प्रतियोगित्व उस प्रतियोगित्वको चक्षुरादिके अयोग्य होनेसे तदभावस्य—तिसप्रतियोगित्वाभावको सुतरां=और भी अच्छीरीतिसे तदयोग्यत्वात्—चक्षुरादिके अयोग्य होनेसे=स्वदेशकालवृत्तिसकलनिषेधोंमें अतीन्द्रियप्रतियोगिकाभावका भी संभव है और उस अतीन्द्रियप्रतियोगिकाभावनिरूपित प्रतियोगित्वको चक्षुरादिके अयोग्य होनेसे। उस अयोग्यप्रतियोगित्वसाधारण जो प्रतियोगित्वत्वावच्छिन्नप्रतियोगिता तादृशप्रतियोगितानिरूपक जो अभाव है उसका प्रत्यक्ष नहीं हो सकता है, यह भाव है। स्वदेशस्वकालवृत्ति जो यत्किञ्चित्निषेध=कोई एकनिषेध तादृशनिषेधप्रतियोगित्वाभावको मिथ्यात्वका अविरोधित्व होनेसे; स्वप्रतियोगिक जो अत्यन्ताभाव तादृश अत्यन्ताभावका असामानाधिकरण्यरूपसत्त्वको तो स्वप्रतियोगिक अत्यन्ताभावकी अप्रसिद्धिसे केवलान्वयिपदार्थोंमें असिद्धि है। और संबन्धभेदसे घटादिमें भी असिद्धि है। स्व है प्रतियोगि जिसका ऐसा जो अभाव है

तादृश अभावका जो असामानाधिकरण्य=तादृशात्यन्ताभावाधिकरणनिरूपितवृत्तित्वाभाव उसको यदि सत्त्व कहें तो प्रमेयत्ववाच्यत्वादि जो केवलान्वयी पदार्थ हैं उनमें सत्त्वका लक्षण नहीं जायगा। क्योंकि केवलान्वयीपदार्थोंका अत्यन्ताभाव अप्रसिद्ध है। और प्रकृतसत्त्व स्वप्रतियोगिक अत्यन्ताभावसे घटित है। अतः अव्याप्ति है तैसे जो पदार्थ जहांपर जिससंबन्धसे रहता है वहांपर उसपदार्थका तत्संबन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताक अभाव नहीं रहता है। परन्तु संबन्धान्तरावच्छिन्नप्रतियोगिताक अभाव रहता है। अतः स्वप्रतियोगिकात्यन्ताभावके सामानाधिकरण्यको घटादिमें रहजानेसे घटादिमें भी यह सत्त्व असिद्ध है। इस लक्षणको लेकर और भी कहा जाता है, स्वप्रतियोगिक जो अत्यन्ताभाव है तादृशात्यन्ताभावके यावत् जो अधिकरण तन्निरूपितवृत्तित्वाभावरूप असामानाधिकरण्य विवक्षित है या स्वप्रतियोगिकात्यन्ताभावका यत्किञ्चित् जो अधिकरण तन्निरूपितवृत्तित्वाभावरूप असामानाधिकरण्यविवक्षित है इसरीतिके विकल्पसे पूर्वोक्त दोष होनेसे भी यह सत्त्व नहीं बन सकता है=स्वप्रतियोगिकात्यन्ताभावके यावत् अधिकरणोंकाही प्रत्यक्ष नहीं हो सकता है, तब तन्निरूपितवृत्तित्वका कैसे प्रत्यक्ष होगा और जब तन्निरूपितवृत्तित्वका प्रत्यक्ष न हुआ तो वृत्तित्वाभावका भी प्रत्यक्ष नहीं होगा। द्वितीयपक्ष ग्रहण करो तो एतादृशसत्त्वको मिथ्यात्वका विरोधित्व नहीं है; तस्मात् तत्प्रकारान्तरस्य—सत्त्वसंबन्धिप्रकारान्तरको निरूपण करनेके लिए अशक्य होनेसे और उस प्रकारान्तरको मिथ्यात्वका अविरोधित्व होनेसे भी, स्वसमानाधिकरण=स्वाधिकरणनिरूपितवृत्तित्वविशिष्ट जो यावत् अत्यन्ताभाव तावदत्यन्ताभावप्रतियोगित्वाभावरूपही सत्त्व उपेय=अङ्गीकार्य्य है। तच्च=वह सत्त्व तो चक्षुरादिके योग्य नहीं है इत्युक्तम्=यह कहा जा चुका है।

ननु यस्मिन्कस्मिंश्चित् स्वदेशकालवृत्तिनिषेधे एतद्देशैतत्कालवृत्तिनिषेधत्वं ज्ञात्वा तेन प्रत्यासत्तिभूतेनोपस्थापितानां प्रतियोगित्वस्याभावो घटे ग्राह्यः, ततः सार्वदिकसर्वदेशीयनिषेधप्रतियोगित्वस्य ग्रहणं घटे दुर्घटमिति चेन्न, सर्वसामान्यलक्षणया सर्वनिषेधेषूपस्थितेष्वपि तत्प्रतियोगित्वाभावस्य चक्षुरादिना ग्रहीतुमशक्यत्वात्। योग्यप्रतियोगिक एवहि संसर्गाभावो योग्यः। नचाशेषनिषेधानां प्रतियोगित्वमतीन्द्रियसाधारणं चक्षुरादियोग्यम्।

शङ्कते नन्विति। स्वदेशकालवृत्ति यत्किञ्चित् निषेधमें एतद्देशएतत्कालवृत्तिनिषेधत्वको ज्ञातकर तेन= एतद्देशएतत्कालवृत्तिनिषेधरूपप्रत्यासत्ति= संबन्धसे उपस्थापित जो सकल निषेध हैं तादृशनिषेधनिरूपित जो प्रतियोगित्व उस प्रतियोगित्वाभावका ग्रहण घटमें हो सकता है ततः=तिस हेतुसे सार्वदिक=सर्वकालीन सर्वदेशीय जो निषेध तादृशनिषेधप्रतियोगित्वका ग्रहण घटमें दुर्घट है।=इन्द्रियजन्यज्ञानका नाम प्रत्यक्ष है, तहां प्रत्यक्षप्रमा फल है और इन्द्रिय करण है। व्यापारवत्कारणका नाम करण है। इन्द्रियोंका विषयके साथ जो संबन्ध है उसे व्यापार कहते हैं। और उसीका नाम—प्रत्यासत्ति भी है, इन्द्रियोंकी

विषयोंके साथ जो संबन्धरूप प्रत्यासत्ति है वह प्रत्यासत्ति दो प्रकारकी है—लौकिक तथा अलौकिक, इन दोनोंमेंसे लौकिकप्रत्यासत्ति षट्प्रकारकी है—संयोग संयुक्तसमवाय संयुक्तसमवेतसमवाय समवाय समवेतसमवाय विशेषणता। द्रव्यप्रत्यक्षमें आद्या है। द्रव्यसमवेतजातिगुणादिके प्रत्यक्षमें द्वितीया है। द्रव्यसमवेतसमवेतगुणत्वादिके प्रत्यक्षमें तृतीया है। शब्दके प्रत्यक्षमें चतुर्थी है। शब्दत्वादिके प्रत्यक्षमें पञ्चमी है। अभाव तथा समवायके प्रत्यक्षमें षष्ठी है। अलौकिकप्रत्यासत्ति तीन प्रकारकी है—सामान्यलक्षणा ज्ञानलक्षणा योगजधर्मलक्षणा। ये दोनों प्रकारकी प्रत्यासत्तियां इन्द्रियप्रतियोगिक और विषयानुयोगिक हुआ करती हैं। जहांपर लौकिक प्रत्यासत्तिसे एक घटका ज्ञान होता है वहांपर सामान्यलक्षणाप्रत्यासत्तिसे निखिलघटका ज्ञान होता है। पुरोवर्त्ति घटका संयोगरूप प्रत्यासत्तिसे ज्ञान होता है। और तद्भिन्नोंका स्वसंबद्धविशेष्यकज्ञानप्रकारीभूतरूपप्रत्यासत्तिसे ज्ञान होता है। यह प्रत्यासत्ति स्वप्रतियोगिजन्यज्ञानको विषयतासंबन्धसे स्वानुयोगिमें उत्पन्न करती है। प्रत्यासत्तिबोधकवाक्यघटक स्वशब्दसे इन्द्रियका ग्रहण करना इन्द्रियेण संबद्धम् इति इन्द्रियसंबद्धम् इन्द्रियसंबद्धं विशेष्यं यस्मिन् तत् इन्द्रियसम्बद्धविशेष्यकम् इन्द्रियसम्बद्धविशेष्यकञ्च तज्ज्ञानं च इति इन्द्रियसम्बद्धविशेष्यकज्ञानम् तस्मिन् प्रकारीभूतम्; घटः इत्याकारक ज्ञान इन्द्रियसम्बद्धविशेष्यक है। उस ज्ञानमें प्रकारीभूत धर्म घटत्व है। उस घटत्वका नाम सामान्यलक्षणा=सामान्यस्वरूपाप्रत्यासत्ति है। तथा च इन्द्रियसम्बद्धविशेष्यकज्ञानप्रकारीभूत सम्बन्धसे चक्षु निखिल घटोंपर पहुँच गया अतः निखिलविषयक ज्ञान होनेमें कोइ अनुपपत्ति नहीं। अब प्रकृतमें भी घटा लेना चाहिए-वर्त्तमानकालावच्छेदेन घटाधिकरण कपालमें पटादिका अभाव रहता है, वहांपर अभावमात्रके साथ यद्यपि चक्षुका स्वसंयुक्तविशेषणता सम्बन्ध समान है। क्यों कि चक्षुसे संयुक्त जो कपाल है उसमें विशेषणता सम्बन्धसे कपालसमवेतसे भिन्न निखिलपदार्थोंके समवायसंबन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताक अभाव रहते हैं तथापि सर्व अभावोंका चक्षुसे संयुक्तविशेषणतारूप लौकिकसन्निकर्षसे प्रत्यक्ष नहीं होता है। क्यों कि अभावविषयक लौकिक प्रत्यक्ष=लौकिकसन्निकर्षजन्यप्रत्यक्षमें प्रतियोगिसत्त्वप्रसञ्जनप्रसञ्जितप्रतियोगिकत्वरूप योग्यानुपलम्भ सहकारी है। और कपालवृत्ति निखिल अभाव इस सहकारीसे सहकृत हो नहीं सकते, परन्तु अलौकिकप्रत्यासत्ति=सन्निकर्षसे प्रत्यक्ष हो सकता है। योग्यप्रतियोगिक होनेसे एतत्कालावच्छेदेन कपालमें पटाभावका स्वसंयुक्तविशेषणतासंबन्धसे प्रत्यक्ष होता है। उस पटाभावमें एतद्देशएतत्कालवृत्तिनिषेधत्व रहता है। यहां पर स्वसंयुक्तविशेषणतासंबन्धसे इन्द्रियसंबद्ध हुआ पटाभाव तद्विशेष्यक जो ज्ञान=वर्त्तमानकाले कपाले पटो नास्ति=वर्त्तमानकालावच्छिन्नकपालवृत्तिपटनिष्ठप्रतियोगितानिरूपकोभावः, इत्याकारक अभावज्ञान उस ज्ञानमें प्रकारीभूत धर्म एतद्देशएतत्कालवृत्तिनिषेधत्व है। वह एतद्देशएतत्कालवृत्तिनिषेधत्व जैसे पटाभावपर है वैसेही पटाभावसमानाधिकरणकपालवृत्तिनिखिल निषेधोंपर भी है तथा च इस सामान्यस्वरूपाप्रत्यासत्तिसे चक्षु प्रकृत सर्व निषेधोंपर पहुँच गया और चक्षुजन्यज्ञानकी विषयता सर्वनिषेधोंपर रह गई तथा च

प्रत्यक्षज्ञानविषयीभूतअभावनिरूपितप्रतियोगित्वाभाव घटमें ग्राह्य है। अतः सर्वकालिक-सर्वदेशीयनिषेधप्रतियोगित्वरूप मिथ्यात्वका ग्रहण=ज्ञान घटमें दुर्घट है। इति चेन्न=ऐसा यदि कहो तो नहीं कहना क्यों ? एवं=उक्त प्रकारसे सामान्यलक्षणाप्रत्यासत्तिसे सर्वनिषेधोंके उपस्थित होनेपर भी तत्प्रतियोगित्वाभावस्य=उक्त निषेधोंसे निरूपित जो प्रतियोगित्व तादृशप्रतियोगित्वप्रतियोगिक जो अभाव तादृशाभावको चक्षुरादिसे ग्रहण करनेको अशक्य होनेसे, उक्तप्रतियोगित्वप्रतियोगिक अभाव चक्षुरादिसे ग्रहण करनेको अशक्य क्यों है ? तहां कहते हैं–योग्येति। योग्य है प्रतियोगी जिसका एवम्भूत जो संसर्गाभाव है वही योग्यः=इन्द्रियजन्यज्ञानविषयत्वके योग्य होता है, अतीन्द्रियसाधारणं=अतीन्द्रिओंमें भी रहनेवाला जो उक्त अशेषनिषेधोंका प्रतियोगित्व है, वह चक्षुरादियोग्य नच=नहीं है।

वस्तुतस्तु सामान्यं नेन्द्रियप्रत्यासत्तिः, मानाभावात्। नच महानसीयधूमेन्द्रियसंयोगेन तत्रैव व्याप्तिग्रहे पर्वतीयधूमादनुमितिर्न स्यात्। सामान्यस्य च धूमत्वादेः प्रत्यासत्तित्वे तस्यापि प्रत्यासन्नत्वात् तत्र व्याप्तिग्रहे ततोऽनुमितिरिति वाच्यम्. पर्वतीयधूमेन्द्रियसन्निकर्षदशायां धूमत्वेन प्रकारेण गृहीतस्मृतव्याप्तेस्तत्र वैशिष्ट्यग्रहसंभवात्। सुरभि चन्दनमितिवत् विशेष्येन्द्रियसन्निकर्षविशेषण ज्ञानासंसर्गाग्रहरूपाया विशिष्टज्ञानसामग्र्याः पूर्णत्वात् व्याप्तिस्मृतिप्रकारेण वा पक्षधर्मताज्ञानस्य हेतुता महानसीय एव धूमो धूमत्वेन व्याप्तिस्मृतिविषयो भवति धूमत्वेन पर्वतीयधूमज्ञानं चापि जातम् तच्च सामान्यलक्षणां विनैव तावतैवानुमितिसिद्धेः। नच सामान्यप्रत्यासत्तिं विना धूमो वह्निव्यभिचारी नवेति अनुभूयमानसंशयो न स्यात् प्रसिद्धधूमे वह्निसम्बन्धावगमात् अप्रसिद्धस्य चाज्ञानात् इति वाच्यम् प्रसिद्धधूम एव तत्तद्धूमत्वादिना व्याप्तिनिश्चयेऽपि धूमत्वेन तत्संशयोपपत्तेः। तथाचोक्तं मणिकृता–घटत्वेनेतरभेदनिश्चयेऽपि पृथिवीत्वादिना तत्र संशयसिषाधयिषे भवत एवेति। निश्चितेऽप्यर्थे प्रामाण्यसंशयाहितसंशयवत् धूमत्वं वन्हिव्यभिचारिवृत्ति नवेति संशयादपि तादृशसंशयोपपत्तेश्च। एतेन वायू रूपवान् नवेति संशयोऽपि व्याख्यातः।

वस्तुतः सामान्य=अनेकमें वृत्ति धर्म प्रत्यासत्ति नहीं है, क्यों ? मानाभावात्–इसके प्रत्यासत्तित्वमें मानका अभाव होनेसे=इसको प्रत्यासत्ति माननेका फल नहीं है। महानसीयधूमके साथ इन्द्रियके संयोगसे तत्रैव=महानसीय धूममें ही व्याप्तिग्रह होनेपर पर्वतीयधूमसे अनुमिति न होगी। च=और धूमत्वादिरूप सामान्यको प्रत्यासत्तित्व होनेपर। तस्यापि=पर्वतीय धूमको भी प्रत्यासन्न होनेसे तत्र=पर्वतीयधूममें व्याप्तिग्रह होनेपर ततो=पर्वतीयधूमसे अनुमिति होगी=सामान्यलक्षणाप्रत्यासत्ति यदि नहीं मानोंगे तो पर्वतीयधूमदर्शनसे जो अनुमिति होती है वह न होगी। क्योंकि व्यभिचारज्ञानाभावविशिष्टसहचारदर्शनसे अनुमिति होती है। और जिससमय महानसीय-महानसीयधूममें प्रथम वह्निनिरूपित व्याप्तिका ज्ञान होता है।

धूममें व्याप्तिग्रह होता है उस समय पर्वतीय धूमकी उपस्थिति नहीं है। अतः पर्वतीय धूममें व्याप्तिग्रह नहीं हुआ है तब पर्वतीयधूमके दर्शनसे व्याप्तिकी स्मृति न होगी। क्योंकि सम्बन्धित्वेन ज्ञात दो पदार्थोंमेंसे एकपदार्थके ज्ञानसे संस्कारोद्बोधनद्वारा अपरविषयकस्मृति उत्पन्न होती है ऐसा हस्तिपकादिमें देखा जाता है। परन्तु यहांपर वह्निनिरूपितव्याप्तिसंबन्धित्वेन पर्वतीयधूमका ज्ञान ही नहीं हुआ है। तो फिर पर्वतीयधूमको देखके व्याप्तिकी स्मृति कैसे होगी। और व्याप्तिकी स्मृतिके विना अनुमिति भी न होगी। और जब सामान्यलक्षणाप्रत्यासत्ति मानते हैं तब तो महानसीयधूमज्ञानकालमें महानसीयधूमज्ञानके द्वितीयक्षणमें धूमत्वरूप प्रत्यासत्तिसे निखिलधूमविषयक ज्ञान उत्पन्न होता है। निखिलधूमोंमें वह्निनिरूपित व्याप्तिका ग्रह होता है। अतः पर्वतीय धूमसे भी अनुमिति बन सकती है। प्राचीन लोग ज्ञायमानलिङ्गको अनुमितिका हेतु मानते हैं। और नवीन लोग लिङ्गज्ञानको अनुमितिका हेतु मानते हैं। इसीलिए सरलामें कहींपर धूमज्ञानको अनुमितिकी जनकता बतलाई है और कहींपर धूमको अनुमितिकी जनकता बतलाई है। इति न च वाच्यम्—ऐसा नहीं कहना क्यों? पर्वतीय जो धूम है उस पर्वतीय धूमके साथ जो इन्द्रियका सन्निकर्ष वह सन्निकर्ष जिस कालमें होता है उस कालमें धूमत्वेन प्रकारेण=महानसीयत्वादिव्यापकीभूतधूमत्वनिष्ठप्रकारतानिरूपितविशेष्यतासामानाधिकरण्येन पूर्वगृहीत और इदानीं स्मृत जो वह्नित्वेन वह्निनिरूपित व्याप्ति है उस व्याप्तिका तत्र=पर्वतीयधूममें वैशिष्ट्य=सम्बन्धग्रहका सम्भव होनेसे, सुरभिचन्दनम्—यहांके तुल्य विशेष्यके साथ इन्द्रियसन्निकर्ष विशेषणज्ञान और विशेषणके असंसर्गका अग्रह एतद्रूप जो विशिष्टज्ञानकी सामग्री है उसे पूर्णहोनेसे=महानसमें जो महानसीयधूममें व्याप्तिग्रह होता है वह महानसीयो धूमः, महानसीयवह्निव्याप्यः, इत्याकारक नहीं होता है=धूमत्वव्याप्यमहानसीयत्वनिष्ठप्रकारतानिरूपितविशेष्यतासामानाधिकरण्येन नहीं होता है। किन्तु धूमो वह्निव्याप्यः इत्याकारक होता है=सामानाधिकरण्येन धूमत्वावच्छिन्नविशेष्यताक होता है=सामानाधिकरण्येन धूमत्वविशिष्ट होता है। तथाच व्याप्तिका सम्बन्धी धूमत्व है। अतः पर्वतमें जब संयुक्तसमवायसम्बन्धसे धूमत्वका ग्रह होता है। उससे उत्तरक्षणमें व्याप्तिके संस्कार उद्बुद्ध होकर व्याप्तिकी स्मृति उत्पन्न करते हैं। और उस स्मृतव्याप्तिके वैशिष्ट्यका ग्रह पर्वतीय धूममें होता है। क्योंकि वैशिष्ट्यग्रहकी यहांपर पूर्ण सामग्री है। जैसे सुरभिचन्दनं यहां पर वैशिष्ट्यग्रह होता है तद्वत्;—श्वेतचन्दनके साथ नेत्रका संयोग होनेके बाद 'सुरभिचन्दनम्' ऐसा ज्ञान होता है; यह विशिष्टज्ञान है और विशिष्टज्ञानकी सामग्री यह है विशेष्यके साथ इन्द्रियसन्निकर्ष, विशेषणज्ञान और विशेषणका विशेष्यके साथ असंसर्गाग्रह ये तीनों मिलकर विशिष्टज्ञानकी असाधारणसामग्री बनते हैं. यहांपर चन्दनरूपविशेष्यके साथ चक्षुका संयोगसंबन्ध है तैसेही स्वसंयुक्तमनःसंयुक्तात्मसवेतस्मृतिविषयत्वरूपज्ञानलक्षणाप्रत्यासत्तिसे या श्वेतचन्दनत्वरूप लिङ्गसे सुरभिगन्ध=सुगन्धरूपविशेषणका ज्ञान भी है और चन्दनरूपविशेष्यके साथ सुगन्धरूपविशेषणके असंसर्गका अग्रह भी है। अतः यह विशिष्टज्ञान कहा जाता है। दार्ष्टान्तमें कहही चुके हैं तथाच सामान्यलक्षणाप्रत्यासत्तिके विनाही अनुमिति बन

सकती है । प्रकारान्तरसे सामान्यलक्षणाप्रत्यासत्तिकी अनुपयुक्तता बताते हैं । व्याप्तीति । प्रकारप्रकृतिकतृतीयाका अर्थ अवच्छिन्नत्व है। व्याप्तिविषयिका जो स्मृति तादृशस्मृतिरूपप्रकारावच्छिन्नपक्षधर्मताज्ञानको अनुमितिकी हेतुता रहो=सामानाधिकरण्यसम्बन्धेन व्याप्तिस्मृतिनिष्ठप्रकारतानिरूपितविशेष्यताशालित्वेन पक्षधर्मताज्ञानको अनुमितिके प्रति हेतुता रहो । महानसीय जो धूम है वही महानसीयत्वेन नहीं किन्तु धूमत्वेन व्याप्तिस्मृतिका विषय रहो । और धूमत्वेन पर्वतीयधूमज्ञान भी उत्पन्न हुआ है तच्च=वह पर्वतीयधूमज्ञान तो सामान्यलक्षणा के विना ही उत्पन्न हुआ है तितने से ही अनुमितिकी सिद्धि होनेसे । शङ्कते। न चेति । सामान्यप्रत्यासत्ति के विना। धूम वह्निका व्यभिचारी है या नहीं। इत्याकारक अनुभूयमान संशय न होगा क्यों ? प्रसिद्ध धूममें वह्निके संबन्धका अवगम=ज्ञान होनेसे च= और अप्रसिद्धके अज्ञानसे=सामान्यलक्षणाप्रत्यासत्ति नहीं मानोंगे तो धूम वह्न्यभाववत्में वृत्ति है या नहीं यह जो अनुभवसिद्ध व्यभिचारका संशय वह न बनेगा। क्योंकि प्रसिद्ध=ज्ञात जो धूम है उसमें तो वह्निके सम्बन्धका=वह्निनिरूपित व्याप्तिका निश्चयात्मक ज्ञान है ही इसमें व्यभिचार की शङ्काका अवकाश नहीं है, और अप्रसिद्ध धूममें भी व्यभिचार का संशय नहीं बनेगा क्योंकि अप्रसिद्ध धूमका ज्ञान ही नहीं है और सर्वथा अज्ञात धर्मीमें संशय का सम्भव नहीं=सामान्यरूपसे ज्ञात विशेषरूपसे अज्ञात धर्मीमें ही संशय का अनुभव होता है; इति न च वाच्यम्। क्यों ? प्रसिद्ध धूममें ही तत्तद्धूमत्वादिना=पर्वतीयधूमत्वावच्छिन्नमहानसीयधूमत्वावच्छिन्नचत्वरीयधूमत्वावच्छिन्नगोष्ठीयधूमत्वावच्छिन्नव्याप्तिनिश्चय होनेपर भी धूमत्वेन=पर्वतीयत्वादिविनिर्मुक्तशुद्धधूमत्वावच्छिन्नधूमधर्मिकतत्संशयोपपत्तेः=व्यभिचारके संशय की उपपत्ति=संभवसे=व्याप्तिनिष्ठधर्मतानिरूपितधर्मितावच्छेदकता महानसीयत्वादिविशिष्ट धूमत्वके ऊपर है। और व्यभिचारीयधर्मितावच्छेदकता शुद्धधूमत्वपर है तथाचोक्तम् मणिकृता=इसीरीतिसे न्यायतत्वचिन्तामणिकार गाङ्गेशोपाध्यायने कहा है=घटत्वेन घटमें पृथिवीतरत्रयोदशके भेदका निश्चय होनेपर भी घटत्वव्यापकपृथिवीत्वेन पृथिवीतरत्रयोदशके भेदका संशय तथा सिषाधयिषा ये दोनों होते हैं। निश्चित अर्थमें भी तादृशअर्थविषयकज्ञाननिष्ठप्रामाण्यधर्मिकत्वके संशयसे सम्पादित संशय जैसे होता है। तैसे धूमत्वं वह्निव्यभिचारिवृत्ति न वा। इत्याकारक धूमत्वधर्मिकसंशयसे धूमो वह्निव्याप्यो न वा । इत्याकारक धूमधर्मिक संशय हो सकता है। एतेन=इस व्यवस्थापनसे। वायू रूपवान् न वा। यह संशय भी व्याख्यात हुआ=ज्ञानवृत्तिप्रामाण्याप्रामाण्यकोटिकसंशयसे जैसे निश्चितार्थमें भी अस्तित्वअस्तित्वाभावकोटिक संशय उत्पन्न होता है तैसे ही धूमत्वमें वह्न्यभाववद्वृत्तिनिरूपितवृत्तित्ववृत्तित्वाभावके संशयसे धूममें-। धूम वह्निव्याप्य है या नहीं। ऐसा संशय बन सकता है। सामान्यलक्षणा प्रत्यासत्तिकी एतत्संशयोपपादकत्वेन माननेकी आवश्यकता नहीं। जैसे इस संशयके लिए सामान्यलक्षणा अनपेक्षित है तैसे ही—वायू रूपवान् नवा, इस संशयके लिए भी सामान्यलक्षणाकी आवश्यकता नहीं; क्योंकि वायुमें रूपाभावका निश्चय रहनेपर भी; रूपत्वं

पृथिव्यादित्रयव्यभिचारिवृत्ति न वा; इत्याकारक रूपत्वधर्मिक संशयसे वायू रूपवान् नवा। यह संशय सामान्यलक्षणा प्रत्यासत्तिके विना ही बन सकता है।

ननु सिद्धे नेच्छा किन्तु असिद्धे, साच स्वसमानविषयज्ञानजन्या, तच्च ज्ञानं न सामान्यप्रत्यासत्तिं विना। नच सिद्धगोचरसुखत्वप्रकारकज्ञानादेवाज्ञाते सुखे भवतीच्छा, समानप्रकारकत्वमात्रस्य नियामकत्वात् इति वाच्यम्, रजतत्वेन प्रकारेण रजतेऽनुभूयमाने घटादौ रजतत्वप्रकारकेच्छाप्रसङ्गात्। नच प्रकाराश्रयत्वमपि नियामकम् रजतभ्रमाच्छुक्ताविच्छानुदयप्रसङ्गात्। तथाच समानप्रकारकत्वे सति समानविषयकत्वं तन्त्रम्। अतएवाख्यातिपक्षे रजतस्मरणस्यैव शुक्तौ प्रवर्त्तकत्वमित्यपास्तमिति चेन्न, यतो रजतभ्रमाच्छुक्ताविच्छा नास्त्येव, किन्त्वनिर्वचनीये रजत इत्यनिर्वचनीयख्यातौ वक्ष्यते। प्रकाराश्रयत्वं नियामकं वदन्नख्यातिवादी परमेवं विभीषणीयः। तथाच प्रकाराश्रयत्वस्य नियामकत्वादन्यख्यातिपक्षोऽपि निरस्त एव। नच तर्हि भ्रमत्वं न स्यात् इदं रजतमितिभ्रमत्वाभिमतज्ञानस्य व्यधिकरणप्रकारत्वानभ्युपगमात् इति वाच्यम्। बाधितविषयत्वेन हि भ्रमत्वं नतु व्यधिकरणप्रकारत्वेन तस्यापि विषयबाधप्रयोज्यत्वादिति हि वक्ष्यते।

शङ्कते नन्विति। सिद्धे=प्राप्तवस्तुमें नेच्छा=प्राप्तिकी इच्छा नहीं होती है। किन्तु असिद्धे=अप्राप्तवस्तुमें प्राप्तिकी इच्छा होती है। सा च=वह प्राप्तिकी इच्छा तो स्वसमानविषयज्ञानजन्या=इच्छाविषयविषयकज्ञानसे जन्य है=जानाति इच्छति ये दोनों समानकर्तृक और समानविषयक होते हैं। तच्च=वह इच्छाजनकज्ञान सामान्यप्रत्यासत्ति विना नहीं हो सकता है=किसी पुरुषको सुखकी इच्छा हुई और वह सुखकी प्राप्तिके लिए यत्न भी करता है। तहां इच्छाजन्यप्रयत्न तभी बनेगा जब इच्छाजनकइच्छाविषयविषयक ज्ञान हो, और उस सुखको वर्त्तमानकालमें अविद्यमान होनेसे लौकिकसन्निकर्षसे तो उसका प्रत्यक्ष नहीं हो सकता है। तथाच सामान्यलक्षणाप्रत्यासत्तिसे ही भाविसुखका ज्ञान मानना पडेगा अतः सामान्यस्वरूपाप्रत्यासत्ति माननी चाहिए। सिद्ध=निष्पन्न=प्राप्त गोचर=विषयक जो सुखत्वप्रकारक=अहं सुखी या मयि सुखम्; इत्याकारक ज्ञान है, उस ज्ञानसे ही अज्ञात सुखमें इच्छा होती है; इच्छासमानप्रकारकत्वको ही इच्छानिरूपितज्ञानवृत्तिकारणत्वके प्रति नियामकत्व होनेसे= वर्त्तमानसुखविषयक सुखत्वप्रकारक ज्ञानसे ही अनुत्पन्न—अज्ञातसुखविषयिणी इच्छा होती है। यत्प्रकारिका इच्छा हो तत्प्रकारक ज्ञान उस इच्छाका जनक है, अतः भाविसुखविषयिणी इच्छाके लिए भाविसुखविषयक ज्ञानकी अपेक्षा नहीं किन्तु सुखत्वप्रकारक ज्ञानकी अपेक्षा है। वह तो है ही इति न च वाच्यम्=ऐसा नहीं कहना क्यों? रजतत्वेन प्रकारेण=रजतत्वाभिन्नप्रकारावच्छिन्नरजतके अनुभूयमान होनेपर=रजतत्वेन रजतको ज्ञायमान होनेपर घटादिमें रजतत्वप्रकारिका इच्छाका प्रसङ्ग होनेसे=यत्प्रकारिका यद्विशेष्यिका इच्छा होती है तत्प्रकारकतद्वि-

शेष्यक ज्ञानको ही तादृश इच्छाके प्रति जनकता माननी चाहिए। अन्यथा रजतधर्मिक रजतत्वप्रकारक ज्ञानसे घटमें 'इदं रजतं' मे स्यात्, इत्याकारिका इच्छा होनी चाहिए। प्रकाराश्रयत्व भी नियामक है=यत्प्रकारक ज्ञान इच्छाका जनक होता है तत्प्रकाराश्रयमें ही इच्छा होती है यही इच्छामें नियामक है। ऐसा नियामक रखनेपर उक्तस्थलमें दोष नहीं क्योंकि रजतत्वरूप जो प्रकार है। तदाश्रय घट नहीं है किन्तु रजत ही है अतः घटमें तादृश इच्छाकी प्रसक्ति नहीं नच=नहीं नियामक है। क्यों ? रजतके भ्रमसे शुक्तिमें इच्छाके अनुदयका प्रसङ्ग होनेसे=यदि यत्प्रकारक ज्ञान होता है तत्प्रकाराश्रयमें ही इच्छा होती है तो भ्रमात्मकरजतत्वप्रकारक ज्ञानसे शुक्तिमें इच्छा नहीं होनी चाहिए। और इच्छा तो होती है। अन्यथा रजतार्थीकी शुक्तिके सम्मुखीन प्रवृत्ति न होगी, तथाच=फलतः इच्छासमानप्रकारकत्व होके इच्छासमानविशेष्यत्व ही इच्छानिष्ठजन्यतानिरूपितज्ञाननिष्ठजनकतामें तन्त्रम्=नियामक है=यत्प्रकारिका यद्विशेष्यका इच्छा होती है तत्प्रकारकतद्विशेष्यक ज्ञान ही उसमें कारण है। अतः अनुत्पन्न सुखादिविषयक ज्ञानके लिए सामान्यलक्षणा माननी चाहिए। अत एव=ज्ञाननिष्ठसमानप्रकारकत्वसमानविशेष्यकत्वको ही इच्छाके वृत्ति नियामकत्व होनेसे, अख्यातिपक्षे=अख्यातिवादीके मतमें रजतविषयक स्मरणको ही शुक्तिमें प्रवर्त्तकत्व है। इति=यह कथन खण्डित हुआ=ज्ञानसमानविषयकत्व इच्छामें रहता है। और इच्छासमानविषयकत्व प्रवृत्तिमें है जब यों हुआ तब तो ये तीनों समानविशेष्यक ही होगें। अतः रजतविशेष्यक ज्ञानसे शुक्तिविशेष्यिका इच्छा नहीं हो सकती है। तब इच्छाधीना प्रवृत्ति कैसे शुक्तिविशेष्यिका होगी। अतः अख्याति वाद भी अपास्त हुआ, इति चेन्न=ऐसा यदि कहो तो नहीं कहना, क्यों ? जिससे कि रजतभ्रमसे शुक्तिमें इच्छा नहीं ही है, किन्तु=लेकिन रजतभ्रमसे अनिर्वचनीयरजतमें इच्छा होती है। इति=यह अनिर्वचनीयख्यातिनिरूपणमें कहा जायगा प्रकाराश्रयत्वको विपयतासम्बन्धसे इच्छोत्पत्तिके प्रति नियामकता बतलाता हुआ अख्यातिवादी परं=अतिशय जैसेहो वैसे एवं=पूर्वोक्तप्रकारसे बिभीषणीयः=डरवानेके लायक है=यदि अख्यातिवादी उक्तप्रकारको कहता हो तो उसे डरवाना उचित है। वस्तुतः अख्यातिवादमें तार्किककल्पित उपरोक्त दोष नहीं है। क्योंकि उस मतमें संवादिप्रवृत्ति=सकलप्रवृत्तिमेंही प्रकाराश्रयत्वनियामक है। और विसंवादिप्रवृत्तिमें दोष या दोषसमवधानके बाद होनेवाला विशेषणज्ञान है। प्रवृत्तिमात्रमें इष्टके असंसर्गका अग्रह हेतु है। तथा च प्रकाराश्रयत्वको ही इच्छाके प्रति तथा इच्छाद्वारा प्रवृत्तिके प्रति नियामकत्व होनेसे अन्यथाख्यातिवादभी निरस्त हुआ क्योंकि उपरोक्तनियामक शुक्तिमें नहीं है अतः अन्यथाख्यातिकी रीतिसे शुक्तिमें रजतार्थीकी प्रवृत्ति नहीं बन सकती है। और पुरोवर्त्तिमें प्रवृत्ति अनुभवसिद्ध है। अतः यहांपर अनिर्वचनीय रजतकी उत्पत्ति माने विना अन्यथाख्यातिवादिके मतसे भी प्रवृत्ति नहीं हो सकती है। वर्हि=यदि इदं रजतं इत्याकारक भ्रमात्मकज्ञान रजतमें भी रजतत्वको ग्रहण करता है तब तो इस ज्ञानको भ्रमत्व न होगा। क्यों ? इदं रजतम्, इस भ्रमत्वाभिमतज्ञानको व्यधिकरणप्रकारत्वका अभ्युपगम न होनेसे=भ्रमज्ञाननिरूपितविशेष्यतासमानाधिकरणप्रकारतासे भिन्न जो प्रकारता तादृश-

प्रकारताकत्व इस ज्ञानको नहीं है। किन्तु—भ्रमज्ञाननिरूपितविशेष्यतासमानाधिकरणप्रकारताकत्व ही इस ज्ञानको है अतः घटत्ववति घटमें 'घटः' इस ज्ञानको जैसे भ्रमत्व नहीं है तैसे ही भ्रमत्वेनाभिमत 'इदं रजतम्' इस ज्ञानको भ्रमत्व नहीं वन सकता है। इति न च वाच्यम्; क्यों ? वाधितविपयत्वेन ही ज्ञानको भ्रमत्व होता है। व्यधिकरणप्रकारकत्वेन नहीं, तस्यापि=व्यधिकरणप्रकारत्वको भी विपयवाधप्रयोज्यत्वात्=भ्रमविशेष्यमें विशेपणाभावज्ञानसे ज्ञाप्यहोनेसे=मिथ्याविपयकत्वेन ज्ञानको भ्रमत्व होता है। व्यधिकरणप्रकारत्वेन नहीं, क्योंकि व्यधिकरणप्रकारकत्व विपयवाधसे प्रयोज्य होता है—विशेपणाभावज्ञानसे ज्ञाप्य होता है। तथा च प्रथमोपस्थित होनेसे वाधितविपयकत्वेन ही ज्ञानको भ्रमत्व है। इति हि=यह अर्थ कहा जायगा।

ननु अभावज्ञानस्य प्रतियोगिज्ञानजन्यत्वात् प्रौढप्रकाशयावत्तेजोविरहरूपस्य तमसः प्रत्यक्षता न स्यात्, सामान्यप्रत्यासत्त्याविना प्रतियोग्यनुपस्थितेः इति चेन्न, अस्मन्मते तमसो भावान्तरत्वात्। न च तथापि तद्व्यञ्जकत्वात्तदपेक्षेति वाच्यम्; स्वरूपसतएव तादृक्तेजोविरहस्य तमोव्यञ्जकत्वम्, न तु ज्ञानस्य मानाभावादित्यभ्युपगमात्। अन्येपां मते तादृक्तेजोविरहज्ञानस्यापेक्षितत्वेऽपि प्रतियोगितावच्छेदकप्रकारकज्ञानादेव तत्संभवेन तदर्थं सकलप्रतियोगिज्ञानजनिकायाः सामान्यप्रत्यासत्तेरनुपयोगात्। न च गोत्वाभावज्ञानं गोत्वत्वप्रकारकज्ञानजन्यम्। तच्च गवेतरावृत्तित्वे सति सकलगोवृत्तित्वरूपं सामान्यप्रत्यासत्तिमन्तरेण न शक्यमवगन्तुमिति साम्प्रतम्। यत्किञ्चिद्गोव्यक्तेरेव गोत्वत्वरूपत्वात्। एतेन प्रागभावप्रतीतिरपि व्याख्याता।

शङ्कते नन्विति। अभावज्ञानको प्रतियोगिज्ञानसे जन्य होनेसे प्रौढप्रकाशरूप जो यावत्तेज तावत्तेजः-प्रतियोगिक जो अभाव तद्रूप जो तम है उसकी प्रत्यक्षता न होगी क्यो ? सामान्यप्रत्यासत्तिकेविना प्रतियोगी की उपस्थितिके न होनेसे=अभावज्ञानमें प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नयावत्प्रतियोगिओंका ज्ञान कारण है और तार्किक मतमें तेजोऽभावका नाम तम है तहां सामान्यतः तेजोऽभावको तम नहीं कह सकते हैं क्योंकि जहांपर तम होता है। तहांपर भी परमाण्वादिरूप तेज रहता है अतः तेजोऽभमें प्रौढप्रकाश विशेपण दिया। तत्तन्निष्ठविशेपधर्मप्रकारकज्ञानजननयोग्यत्व प्रौढप्रकाशत्व है, सामान्यलक्षणाप्रत्यासत्तिके विना उक्तविशेपणविशेपितयावत्तेजोंका ज्ञान नहीं होगा। और उक्तज्ञानके न होनेसे तत्प्रतियोगिताक अभावरूप तमका भी ज्ञान नहीं होगा। अतः तमोज्ञानके लिए सामान्यलक्षणा प्रत्यासत्ति माननी चाहिए, इति चेन्न=अर्थ पूर्ववत्। क्यों ? अस्मन्मते=पूर्वमीमांसा तथा उत्तर मीमांसा इन दोनोंके मतमें तमको भावान्तर होनेसे=हमारे मतमें तम भी एक भावरूप पदार्थ है; जैसा कि पूर्वाचार्य्योंने कहा है।=तमः खलु चलं नीलं परापरविभागवत्। प्रसिद्धद्रव्यवैधर्म्यान्नवभ्यो भेत्तुमर्हति। नाभावोऽभाववैधर्म्यान्नारोपो वाधहानितः। द्रव्यादिपट्कवैधर्म्यात् ज्ञेयं मेयान्तरं तमः। तमालश्यामलज्ञाने निर्वाधे जाग्रति स्फुटे। द्रव्यान्तरं तमः

कस्मादकस्मादुपलभ्यते। इत्यादि। तथाच भावरूप तमके ज्ञान के लिए किसी के ज्ञान की आवश्यकता नहीं अतः सामान्यस्वरूपा प्रत्यासत्ति अनावश्यक है। तथापि=तमको भावान्तर होनेपर भी तद्व्यञ्जकत्वात्=तत् पदसे उक्ततेजोऽभाव लेना और तत्पदका व्यञ्जक पदके साथ षष्ठीतत्पुरुष करना, तथाच=उक्ततेजोऽभावको भावान्तररूप तमका व्यञ्जकत्व होनेसे तदपेक्षा=उक्ततेजोऽभावज्ञानकी अपेक्षा है। इति न च वाच्यम्; क्यों स्वरूपसत एव= स्वरूपसे विद्यमानतादृक्तेजोविरहको ही तमका व्यञ्जकत्व है तादृक्तेजोविरहके ज्ञान को नहीं। इति=ऐसा अभ्युपगम होनेसे=तमके ज्ञानके लिए उक्ततेजोविरह अपेक्षित है उसका ज्ञान नहीं, अतः प्रतियोगिके ज्ञानकी अपेक्षा नहीं। अन्येषां=उक्त जो तेजोविरह है वही तम है ऐसा माननेवाले वैशेषिकादिकों को तादृक्तेजोविरहविषयकज्ञानको अपेक्षितहोनेपर भी प्रतियोगितावच्छेदक जो प्रौढप्रकाशत्व है तत्प्रकारक ज्ञानसे ही तत्संभवेन=उक्ततेजोविरहरूपतमोज्ञानका संभव होनेसे, तदर्थं=उक्तविरहज्ञानार्थ सकलप्रतियोगिज्ञानजनिका जो सामान्यलक्षणाप्रत्यासत्ति है उसके उपयोगका अभाव होनेसे। फलान्तरबतलाते हैं—नचेति। गोत्वाभावका ज्ञान गोत्वत्वप्रकारक ज्ञान—जन्य है तच्च=गोत्वत्व तो गवेतरमें वृत्ति न होकर सकल गोवृत्तित्वरूप है. एवंभूत गोत्वत्व सामान्यप्रत्यासत्ति के विना अवगम करनेको शक्य नहीं है. इति साम्प्रतम्=ऐसा कहना उचित है. नच=नहीं उचित है, क्यों? यत्किञ्चित् गोव्यक्तिको ही गोत्वत्वरूप होनेसे. इस कथनसे प्रागभावकी प्रतीति व्याख्यात हुई=अभावज्ञानमें प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगि—ज्ञान आवश्यक है. अश्वादि में 'गोत्वं नास्ति' इत्याकारिका अभावावगाहिनी प्रतीति होती है तहां प्रतियोगी गोत्व है और प्रतियोगितावच्छेदक गोत्वत्व है और गोत्ववृत्ति गोत्वत्व कोई जाति या अखण्डोपाधितो नहीं है किन्तु सखण्डोपाधि है अतः उसका निर्वचन आवश्यक है और वह निर्वचन यह है—गवेतरावृत्तित्वे सति निखिलगोवृत्तित्व। तथाच गोत्ववृत्तिप्रतियोगितावच्छेदक जो गोत्वत्वरूप धर्म है उसको निखिल गोव्यक्तिओंसे घटित होनेसे तद्ज्ञानार्थ निखिल गोव्यक्तिओंका ज्ञान चाहिए। और वह ज्ञान सामान्यलक्षणाप्रत्यासत्ति विना नहीं हो सकता है। अतः सामान्यलक्षणाप्रत्यासत्ति माननी चाहिए, इस शङ्काका समाधान यह किया—कि किसी एक व्यक्तिका ही नाम गोत्वत्व है अतः किसी एक गोव्यक्तिका ज्ञान होना ही मानो गोत्वत्वका ज्ञान है और यह ज्ञान तो सामान्यलक्षणाप्रत्यासत्तिके विना ही बन सकता है। कपाले घटो भविष्यति यह प्रतीति घटके प्रागभावको अवगाहन करनेवाली है। और जो घट उत्पन्न हो चुका है उसका प्रागभाव भी नष्ट हो चुका है और जो उत्पन्न हो रहा है उसका भी प्रागभाव नष्ट हो चुका है। अतः भावीघटके प्रागभावको यह प्रतीति विषयकरती है और भाविघटके प्रागभावका ज्ञान भाविघटके ज्ञान विना बन नहीं सकता है। और भाविघटका ज्ञान सामान्यलक्षणासेही होगा। अतः सामान्यलक्षणा आवश्यक है। इस शङ्काका यह समाधान किया कि अभावज्ञानमें प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्ननिखिलप्रतियोगिओंके ज्ञानकी अपेक्षा

नहीं किन्तु प्रतियोगितावच्छेदकप्रकारकज्ञानकी आवश्यकता है। और वह तो वर्त्तमान घटमें भी हो सकता है। अतः सामान्यलक्षणाकी आवश्यकता नहीं।

किञ्चानागतज्ञानस्यापेक्षितत्वे अनुमानादेव तद्भविष्यति, तथाच न्यायकुसुमाञ्जलौ, शङ्काचेदनुमास्त्येव नचेच्छङ्का ततस्तराम्. व्याघातावधिराशङ्का तर्कः शङ्कावधिर्मतः।' इत्यत्र शङ्कोपपादकमनागतज्ञानमनुमानादेवेत्युक्तम्। अनुमानं च वर्तमानपाकः पाकपूर्वकालीनः पाकत्वात् अतीतपाकवदित्यादि नच चरमपाके व्यभिचारः, साध्यसिद्ध्युपजीवकस्य व्यभिचारज्ञानस्यादोषत्त्वात्, अन्यथा साध्यसिद्धिव्याघातात्। किञ्चशब्दादपि सकलधूमपाकादिगोचरज्ञानसंभवः। नच शङ्कादिपूर्वं शब्दस्योपस्थितिनियमाभाव इति वाच्यम्; कदाचिदेव शब्दादनुभूतस्य तदानीं प्रमुष्टतत्ताकस्मृतिसम्भवात्।

किञ्च=और भी वक्तव्य है—अनागतपदार्थविषयक ज्ञानको अपेक्षितत्व होनेपर भी अनुमानसेही तत्=अनागतपदार्थविषयकज्ञान होगा। तथाच न्यायकुसुमाञ्जलिमें—शङ्का यदि है तो अनुमान है ही। यदि शङ्का नहीं है तो सुतरां अनुमान हैं आशङ्का व्याघातावधि होती है और तर्क शङ्कावधि मानागया है। इत्यत्र=यहांपर शङ्काका उपपादक अनागतज्ञान अनुमानसेही है। इत्युक्तं=यह कहा है=प्रत्यक्षमात्रको प्रमाण माननेवाला चार्वाकवादी अनुमानको प्रमाण नहीं मानता है और कहता हैं कि अनुमान वन भी नहीं सकता है। वर्तमानकालमें एवं पुरोवर्त्तिदेशमें यद्यपि वह्निको छोडकर अविछिन्नमूल धूमलेखा नहीं रहती है। फिर भी देशान्तरवृत्तिधूममें एवं कालान्तरवृत्तिधूममें व्यभिचारकी शङ्का हो सकती है=कालान्तरवृत्तिदेशान्तरवृत्तिधूम वह्निजन्य है या नहीं ऐसी व्यभिचारशङ्का हो सकती है। क्योंकि अनेकस्थलोमें सहचार देखनेपर भी व्यभिचार हो जाया करता है। जैसे अनेकस्थानोमें पृथिवीत्व और लोहलेख्यत्वका सहचार देखा गया है फिर भी हीरकादिमें व्यभिचार है तद्वत्, तैसे कालान्तरवृत्ति एवं देशान्तरवृत्तिधूममें अतीन्द्रियपिशाचादिप्रयोज्यत्वकी भी शङ्का हो सकती है=देशान्तरकालान्तरवृत्तिर्धूमो वह्निजन्यः पिशाचादिजन्यो वा ऐसी शङ्का हो सकती है अतः व्यभिचारकी शङ्काके रह जानेसे। 'धूमो वह्निव्याप्यः' ऐसा व्याप्तिग्रह नहीं हो सकता है। अतः अनुमान प्रमाण नहीं है ऐसी चार्वाकी शङ्काके होनेपर आचार्य उत्तर देते हैं, शङ्काचेदनुमास्त्येव, यदि कालान्तरवृत्ति तथा देशान्तरवृत्ति धूममें आपको व्यभिचारकी शङ्का है तब तो अनुमा=अनुमान है ही=वर्त्तमानकालीन पुरोवर्त्तिदेशवृत्ति धूममें तो आपको या मुझको किसीको भी वह्निव्यभिचारित्वकी शङ्का नहीं है, किन्तु कालान्तरवृत्ति तथा देशान्तरवृत्ति धूममें आपको व्यभिचारकी शङ्का है तथा च देशान्तरवृत्ति एवं कालान्तरवृत्ति धूमका ज्ञान आपको कैसे हुआ प्रत्यक्ष तो स्वसम्बद्धवर्तमानयोग्यविषयका ही ग्रहण करता है। और कालान्तरवृत्ति तथा देशान्तरवृत्ति पदार्थ तो ऐसा है नहीं अतः प्रत्यक्षसे उक्त धूमका ज्ञान नहीं हो सकता है किन्तु अनुमानसे ही कहना होगा। तथाच यद्धर्मिक आपको व्यभिचारकी शङ्का है तद्धर्मिकज्ञानविषया ही अनुमानकी सिद्धि हुई। नचेच्छङ्का ततस्तराम्=यदि आपको कालान्तरीण देशान्त-

रीण धूममें व्यभिचारकी शङ्का नहीं है तब तो सुतराम्=अनुमानकी सिद्धि है=क्योंकि अब अपने दोनों जनोंको किसी भी धूममें व्यभिचारकी शङ्काही नहीं है अतः व्यभिचारज्ञाना-भावसहकृतसहचारसंदर्शनसे व्याप्तिग्रह होगा और व्याप्तिग्रहगृहीतव्याप्तिमदनुमान भी होगा। जल्पवादसे प्रतिवादीका प्रतीकार कर तत्त्वजिज्ञासुके प्रति कहते हैं 'तर्कः शङ्कावधि-र्मतः' शङ्काया अवधिः इति शङ्कावधिः तर्कः मतः=शङ्काकी सामग्रीका विघटक तर्क माना जाता है। शंका—तर्क भी तो व्याप्तिमूलक होता है। व्याप्तिसे तर्ककी सिद्धि होगी और तर्कसे व्याप्तिकी सिद्धि होनेसे अन्योन्याश्रय होगा, तर्कसाधकव्याप्तिसाधक यदि व्याप्त्यन्तर मानो और व्याप्त्यन्तरको अपेक्षित तर्क यदि प्रथमस्वरूप ही मानों तो चक्रिका दोष है आगे आगे बढनेमें अनवस्था है 'समाधान' व्याघातावधिराशङ्का=उक्त अनवस्था व्याघातावधिः=व्याघा-तोद्भावनसे वारणीया है=यदि सर्वत्र शङ्का करते हो तो धूमतृप्त्यादिके लिए वह्निभोजनादिमें आपकी ही प्रवृत्ति न होगी। ऐसे ही प्रतिपक्षीको समझानेके लिए शब्दप्रयोग भी आपसे न बनेगा। क्योंकि त्वदुक्तातीतशब्दोंको अर्थबोधजनकत्व होनेपर भी वक्ष्यमाणमदीयशब्दोंमें अर्थबोधजनकत्व होगा या नहीं, ऐसी व्यभिचारशंकारूप पिशाचीको जागरूक होनेसे। इस रीतिसे शंकाका सम्पादक जो अनागतपदार्थविषयक ज्ञान है वह अनुमानसे ही होता है इस अर्थको कुसुमाञ्जलिमें कहा है। यदि आचार्यको सामान्यलक्षणाप्रत्यासत्ति इष्ट होती तब तो उसीसे ज्ञान हो सकता था फिर शङ्काचेदनुमास्त्येव यह कथन असंगत हो जाता। अतः न्यायशास्त्रके प्रधानाचार्य्यके वचनसे विरुद्ध नवीनपरिकल्पित सामान्यलक्षणाप्रत्यासत्ति नहीं माननी चाहिए। अनुमानसे अनागतपदार्थका ज्ञान दिखलाते हैं। अनुमानं च=अनागत अर्थका साधक अनुमान तो, वर्त्तमानकालीन पाक=रूपादिपरावृत्तिफलक विजातीयतेजःसंयोग, पाकपूर्व-कालीनः=पाककालीन जो ध्वंस तादृश ध्वंसका प्रतियोगी है। पाकत्व होनेसे अतीत पाकवत्। अतीतपाकमें पाकत्वरूपहेतु भी है। और पाककालीन ध्वंस प्रतियोगित्व भी है क्योंकि वर्त्तमा-नकालीनपाककालमें अतीतपाकका ध्वंस है तत्प्रतियोगित्व अतीतपाकमें रह गया। और अनागत पाकको लेके साध्यसिद्धि पक्षमें होगी। क्योंकि अतीतकालीन तथा वर्त्तमानकालीन पाककालमें तो वर्त्तमानकालीन पाकका ध्वंसही नहीं है तत्प्रतियोगित्व सुतराम् असिद्ध है। चरमपाके=अन्तिम-पाकमें व्यभिचार है=अन्तिमपाकमें पाकत्वरूपहेतु रहता है। पाककालीन ध्वंसप्रतियोगित्वरूप साध्य नहीं रहता है अतः साध्याभाववत्में हेतुके रह जानेसे व्यभिचार नामक दोष है। नच=नही है; क्यों? साध्यसिद्ध्युपजीवकस्य=साध्यसिद्धिके अधीन है सिद्धि जिसकी=साध्यसिद्ध्यधीन-सिद्धिक व्यभिचारज्ञानको अदोषत्व होनेसे=प्रकृत अनुमानसे साध्यसिद्धिके हो जानेपर चरम-पाकको ज्ञातकर उस चरमपाकमें व्यभिचार ज्ञातव्य है। फलतः पक्षमें साध्यसिद्धि=साध्यज्ञानके पश्चात् व्यभिचारज्ञान होता है। ऐसा व्यभिचारज्ञान व्यर्थ होनेसे दोष नहीं है क्योंकि यद्वि-षयकत्वेन ज्ञानको अनुमितितत्करणान्यतरप्रतिबन्धकत्व होता है उसीको दोषता होती है यह व्यभिचार एतादृश नहीं है क्योंकि यहांपर व्यभिचारज्ञानसे प्रथम ही व्याप्तिज्ञानद्वारा पक्षमें साध्यज्ञान मानना पड़ता है। अन्यथा=एतादृश व्यभिचारज्ञानको दोषत्वका अङ्गीकार हो तो

सिद्ध्यसिद्धिव्याघातात्=सिद्धि तथा असिद्धि दोनोंमें व्याघात होनेसे=अनागत=भाविपदार्थका यदि ज्ञान हुआ तब तो वह उक्तानुमानसे ही हुआ है और जब भाविपदार्थका ज्ञान होगया है तब पश्चात् होनेवाले व्यभिचारज्ञानसे क्या है=फलतः उसका होना न होना एकसाही है, यदि भाविपदार्थज्ञान नहीं हुआ है तब भाविपदार्थ सर्वथा अज्ञात है और सर्वथा अज्ञात पदार्थमें व्यभिचारज्ञानही नहीं हो सकता है । क्योंकि ज्ञातधर्म्मीमें ही किसी भी प्रकारके धर्मका विधान या निषेध बन सकता है अतः दोनों रीतिसे व्यभिचारका उद्भावन व्याघातयुक्त है । किञ्च=और भी कहते हैं शब्दसे भी सकलधूमपाकादिविषयकज्ञानका संभव है=विद्यमानमें शक्त्यादिके ज्ञानसे अविद्यमानव्यक्तिका शब्दसे ज्ञान होता है । क्योंकि यत्प्रकारक शक्त्यादिग्रह होता है तत्प्रकारक शाब्दबोध होता है; शङ्कादिसे प्रथम शब्दकी उपस्थितिके नियमका अभाव है=शंकादिसे प्रथम नियमसे शब्दकी उपस्थिति नहीं होती है। तथाच अर्थोपस्थिति कैसे होगी । इति न च वाच्यम्, क्यों ? कदाचित् शब्दसे अनुभूत अर्थकी तदानीं=शंकादिसे पूर्व प्रमुष्टतत्ताकस्मृतिका संभव होनेसे=तद्देशकालवृत्तित्वरूप जो तत्ता है उस तत्तासे विशिष्टधूमत्वादिरूपसे धूमादिविषयक संस्कारके होनेपर भी तत्तांशमें उस संस्कारको उद्बुद्ध न होनेसे उस स्मृतिको प्रमुष्टतत्ताकत्व=अविषयीकृततत्ताकत्व है ।

ननु अनुमितेर्विशेषणज्ञानजन्यत्वेन सामान्यप्रत्यासत्तिसिद्धिः । न चानुमानान्तराद्विशेषणज्ञानमनवस्थानात् इति चेन्न, विशेषणतावच्छेदकप्रकारकज्ञानादेव साध्यविशेषणकपक्षविशेष्यकानुमिति सम्भवात् । एतेन सुरभि चन्दनमित्यादिविशिष्टज्ञानाय कल्पिता ज्ञानलक्षणाप्रत्यासत्तिरपि निरस्ता चन्दनत्वेन सुरभित्वानुमानोपपत्तेः, अन्यथा साध्यविशिष्टपक्षप्रत्यक्षोपपत्तेरनुमानमात्रोच्छेदप्रसङ्गात् । न चाभावसाध्यककेवलव्यतिरेकिणि साध्यप्रसिद्धेरनङ्गत्वात्, तत्र क्लृप्ताया अनुमितिसामग्र्याः प्रत्यक्षसामग्रीतो बलवत्त्वमिति वाच्यम्; अर्थापत्तिवादिभिरस्माभिस्तदनभ्युपगमात् । पर्वतवृत्तिधूमो वह्निव्याप्य इति परामर्शात्, साध्यविशेष्यकपक्षविशेषणकानुमित्यभ्युपगमे तु नैव काप्यनुपपत्तिः । अनुमितेः पक्षविशेष्यत्वनियमे मानाभावात् ।

शङ्कते नन्विति । अनुमितिको विशेषणके ज्ञानसे जन्य होनेसे सामान्यप्रत्यासत्तिकी सिद्धि है=अनुमिति विशिष्ट ज्ञान है और विशिष्ट ज्ञान विशेषणज्ञानसे जन्य होता है तथाच साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नसाध्यप्रकारक पक्षतावच्छेदकावच्छिन्नपक्षविशेष्यकविशिष्टज्ञानरूपसे अनुमितिसे पूर्व साध्यरूपविशेषणज्ञान चाहिए और वह साध्यज्ञानरूप विशेषणज्ञान पर्वतादिरूप पक्षमें लौकिकप्रत्यासत्तिओंसे तो नहीं बन सकता है । अतः सामान्यप्रत्यासत्ति आवश्यक है । अनुमानान्तरात्=दूसरे अनुमानसे पक्षमें विशेषणज्ञान है । नच=नहीं है; क्यों ? अनवस्था होनेसे=यदि कहो कि पक्षमें विशेषणज्ञान अनुमानान्तरसे होगा । तो ऐसा कहना ठीक नहीं है क्योंकि अनुमानान्तरसे जन्य ज्ञान भी विशिष्ट ज्ञान ही होगा । अतः अनुमित्य-

न्तरात्मक विशिष्टज्ञान स्वहेतुभूतविशेषणज्ञानजन्य होनेसे=विशेषणज्ञानके लिए अनुमानान्तरकी अपेक्षा होगी, और यों ही आगे २ बढनेसे अनवस्था होगी। इति चेन्न=ऐसा यदि कहो तो नहीं कहना क्यों? विशेषणतावच्छेदकप्रकारक जो ज्ञान है। उस ज्ञानसे ही साध्यविशेषणक पक्षविशेष्यक अनुमितिका संभव होनेसे=पर्वतो वह्निमान्; इत्याकारिका अनुमिति वह्निविशेषणक तथा पर्वतविशेष्यक है, तहां इस अनुमितिमें पर्वतवृत्तिवह्निके ज्ञानकी आवश्यकता नहीं किन्तु विशेषणतावच्छेकरूप जो वह्नित्व है। तत्प्रकारक ज्ञान इस अनुमितिसे पूर्व होना चाहिए सो महानसादिमें हो चुका है किसी भी वह्निव्यक्तिको वह्नित्वेन विषय करनेवाला ज्ञान वह्नित्वप्रकारक है। अतः सामान्यप्रत्यासत्तिकी आवश्यकता नहीं, विशिष्टज्ञानत्वावच्छिन्नके प्रति विशेषणज्ञानकी हेतुताका नियम नहीं, क्योंकि विशिष्ट ज्ञान तो स्मृति ज्ञान भी है। परन्तु वह संस्कारजन्य है। विशेषणज्ञानजन्य नहीं, यदि कहो कि संस्कारको द्वार बनाकर विशेषणज्ञान स्मृतिका जनक है तब तो प्रत्यक्षमें व्यभिचार है क्योंकि प्रत्यक्षात्मकविशिष्ट ज्ञानके प्रति संस्कारद्वारा विशेषणज्ञानको जनकता नहीं है। एतेन=इस निरूपणसे 'सुरभिचन्दनम्' इत्यादिविशिष्टज्ञानके लिए तार्किकोंसे कल्पितकी गई ज्ञानलक्षणाप्रत्यासत्ति भी निरस्त हुई, चन्दनत्वेन सुरभित्वानुमानका संभव होनेसे=चन्दनके साथ चक्षुका संयोग होनेपर 'सुरभि चन्दनम्'–सुगन्धवाला चन्दन है। इत्याकारक चाक्षुषज्ञान होता है। इस ज्ञानमें चन्दनविशेष्य है। सुगन्ध तथा चन्दनत्व ये दोनों विशेषण हैं चन्दनके साथ चक्षुका संयोगसंबन्ध है। चन्दनत्वके साथ संयुक्तसमवायसंबन्ध है और यही संबन्ध चन्दनसमवेत सुगन्धके साथ भी है। तथापि सुगन्धको लौकिकप्रत्यासत्तिजन्यचाक्षुषज्ञानीयविषयताके अयोग्य होनेसे सुगन्धांशमें यह संबन्ध अनुपयुक्त है, परन्तु यह ज्ञान है–नियमसे चाक्षुष ही, क्योंकि चक्षुका चन्दनके साथ संबन्ध होते ही 'सुरभि चन्दनम्' यह ज्ञान नियमसे होता है, अतः चक्षुका सुगन्धके साथ अलौकिकसंबन्ध मानना चाहिए। क्योंकि असंबद्धका तो ज्ञान किसी भी इन्द्रियसे नहीं होता है। इस अलौकिकप्रत्यासत्तिका नाम है–ज्ञानलक्षणाप्रत्यासत्ति, इसका स्वरूप यह होगा=स्वसंयुक्तमनःसंयुक्तात्मसमवेतसंस्कारविषयत्व, इस संबन्धसे चक्षु गन्धपर पहुंचता है स्वशब्दसे चक्षुका ग्रहण है स्वसंयुक्त हुआ मन और मनःसयुक्त हुआ आत्मा उस आत्मामें समवेत गन्धके संस्कार है। तादृशसंस्कारविषयत्व गन्धपर है, इस रीतिसे चक्षु इन्द्रिय लौकिकालौकिकसन्निकर्षोंको द्वार बनाकर 'सुरभिचन्दनम्' इस विशिष्ट ज्ञानको उत्पन्न करता है अतः ज्ञानलक्षणाप्रत्यासत्ति माननी चाहिए, यहांपर सिद्धान्तीने यह उत्तर दिया कि ज्ञानलक्षणाप्रत्यासत्ति माननेकी आवश्यकता नहीं यहांपर प्रथम चन्दनत्वेन चन्दनका ज्ञान होता है पश्चात् चन्दनत्वेन सुगन्धका अनुमान होता है। इस प्रसङ्गमें चन्दनपदसे श्वेतचन्दन लेना तथाच ऐसा अनुमान होता है। 'इदं सुगन्धि श्वेतचन्दनत्वात् यन्नैवं तन्नैवं' यथा रक्तचन्दनम्। अन्यथा=ज्ञानलक्षणाप्रत्यासत्ति मानें तो साध्यविशिष्ट जो पक्ष तादृश पक्षके प्रत्यक्षका संभव होनेसे अनुमानमात्रके उच्छेदका प्रसङ्ग होगा= उक्तप्रत्यासत्तिको भी यदि ज्ञानजनकताहो तब तो अनुमान माननेकी आवश्यकता नहीं

क्योंकि अनुमितिस्थलमें भी प्रत्यक्षात्मक ही ज्ञान हो जाया करेगा। क्योंकि कहींपर इन्द्रिय लौकिकसन्निकर्षसे पहुँचेगा और कहींपर अलौकिकसे। जैसे पर्वतो वह्निमान्, यहांपर पर्वतकेसाथ चक्षुका संयोगसम्बन्ध है और वह्निके साथ स्वसंयुक्तमनःसंयुक्तात्मसमवेतस्मृति-विषयत्वरूपसन्निकर्ष है तथाच लौकिकालौकिकसन्निकर्षोसे चक्षुरिन्द्रिय विशेषणविशेष्य इन दोनोंके ऊपर पहुँच गया। अतः इस ज्ञानको प्रत्यक्षरूप ही मानना चाहिए, इसी रीतिसे सर्वत्र अनुमितिका विषय प्रत्यक्षज्ञानीयविषयतासे आक्रान्त होनेसे–अनुमान प्रमाणका मानना व्यर्थ है, और अनुप्रमाणका निरूपण सूत्रकारने भी किया है। अतः सूत्रकार–महर्षिसम्मत-अनुमाननिष्ठवैयर्थ्यसम्पादक ज्ञानलक्षणाप्रत्यासत्तिको नहीं मानना चाहिए। अभाव है साध्य जिसका एवंभूत जो केवलव्यतिरेकि अनुमान है उस केवलव्यतिरेकि अनुमानमें साध्यप्रसिद्धिको अङ्ग न होनेसे तत्र=तिसस्थलमें क्लृप्तअनुमितिसामग्रीको प्रत्यक्षकी सामग्रीसे बलवत्ता है=पृथिवी पृथिवीतरभेदवती। गन्धवत्वात्। इत्यादि केवलव्यतिरेकि अनुमानोंमें साध्यकी प्रसिद्धि अङ्ग=कारण नहीं होती है। क्योंकि ऐसे स्थलमें सपक्ष तो होता ही नहीं अतः पक्षातिरिक्तस्थलमें अनुमितिसे पूर्व साध्यका ज्ञान नहीं हो सकता है। और पक्षमें जो साध्य-ज्ञान होना है वहतो फलरूप है अङ्गरूप नही। अतः साध्यज्ञानजन्यसंस्कार या साध्यानु-भवजन्यसंस्कारद्वारिकास्मृति ये दोनों ऐसे स्थलमें नहीं है। अतः यहां प्रत्यक्षात्मकज्ञानका-संभव नहीं किन्तु अनुमित्यात्मकही ज्ञान होता है ओर जब अनुमित्यात्मकज्ञान उपपन्न हो चुका है तब जहांपर दोनोंकी सामग्री है तहांपर भी प्रत्यक्षकी सामग्रीसे अनुमितिकी साम-ग्रीको प्रबलमानेंगे अतः अनुमान प्रमाणका वैयर्थ्य नहीं है, इति न च वाच्यम्=ऐसा नहीं कहना, क्यों? अर्थापत्तिको प्रमाणमाननेवाले हम लोगोंसे तत्=केवलव्यतिरेकिका अभ्युपगम न होनेसे=पर्वतवृत्तिधूमो वह्निव्याप्यः, इत्याकारक पर्वतप्रकारकधूमविशेष्यक परामर्शसे साध्यवि-शेष्यक पक्षविशेषणक अनुमितिका अभ्युपगम हो तो कोई भी अनुपपत्ति है ही नहीं=पर्वतप्रकारक वह्निविशेष्यक=पर्वते वह्निः, इत्याकारक अनुमिति हो तब तो विशेषणीभूत पर्वतका ज्ञान लौकिक प्रत्यासत्तिसेही हो सकता है और विशिष्ट ज्ञानके प्रति विशेषणज्ञानको जैसे हेतुता है वैसे विशेष्यज्ञानको नहीं अतः ज्ञानलक्षणा प्रत्यासत्तिकी आवश्यकता नहीं अनुमितिको पक्षविशेष्यत्वके नियमका अभाव होनेसे=पक्षविशेष्यकपरामर्शसे जन्य अनुमिति पक्षविशेष्यक ही होती है। इसनियममें कोई प्रमाण नहीं है।

किं च धूमत्वादि सामान्यं न स्वरूपतः प्रत्यासत्तिः, धूलीपटले धूमभ्रमानन्तरं धूमत्वेन सकलधूमनिष्ठवह्निव्याप्तिग्रहानुदयप्रसङ्गात् तत्र स्वरूपतो धूमत्वाभावात्। न चेष्टापत्तिः तदुत्तरकालानुमित्यनुदयापत्तेः। तथाच धूमत्वज्ञानं प्रत्यासत्तिरिति वाच्यम्। तच्च धूमेन्द्रियसन्निकर्षदशायां धूमज्ञानात्प्रागस्त्येव। निर्विकल्पके मानाभावात्, विशिष्टज्ञानत्वेन विशेषणज्ञानत्वेन च कार्यकारणभावानभ्युपगमात्। अवश्यक्लृप्तकार्य-कारणभावविशेषेणैव सर्वव्यवहारोपपत्तेः। नच धूमत्वेन सन्निकृष्टधूमव्यक्तिज्ञानानन्तरं

तत्समानाकारमसन्निकृष्टधूमगोचरं ज्ञानान्तरमुत्पद्यते इत्यत्र मानमस्ति, धूमत्वेन पुरोवर्त्तिनं धूमं साक्षात्करोमि न व्यवहितमित्यनुभवाच्च । अन्यथा जगतीगतनिखिलधूमव्यक्तीरहं साक्षात्करोमीत्यनुव्यवसीयेत । न चैवमनुभवमात्रशरणैरभ्युपेयते ।

किं च=अन्य भी वक्तव्य है धूमत्वादिरूप सामान्य स्वरूपतः=इन्द्रियसन्निकृष्टनिष्ठ जो ज्ञायमान धूमत्वादि तादृशधूमत्वादिको धूमत्वादिव्यक्तित्वेन प्रत्यासत्तिः =धूमादिज्ञानकारणत्व न=नहीं है क्यों ? धूलीपटलमें धूमभ्रमके बाद धूमत्त्वेन सकलधूमनिष्ठवह्निनिरूपितव्याप्तिग्रहके अनुदयका प्रसङ्ग होनेसे तत्र=तिस धूलीपटलमें स्वरूपसे धूमत्वका अभाव होनेसे, इष्टापत्तिः=धूलीपटलमें धूमभ्रमके बाद धूमत्त्वेन सकलधूमनिष्ठ वह्निनिरूपित व्याप्तिका ग्रह नहीं होता है । यह अर्थ हमको इष्टही है न च=नहीं है क्यों ? तदुत्तरकाल=धूलीपटलमें धूमभ्रमके उत्तरकालमें अनुमितिके अनुदयकी आपत्तिसे । फलतः धूमत्वज्ञान प्रत्यासत्ति है इन्द्रियसन्निकृष्टनिष्ठ ज्ञायमान धूमत्त्व नहीं यह कहना होगा । तच्च=धूमत्वज्ञानतो धूम तथा इन्द्रियके सन्निकर्षदशामें । जिसकालमें धूमेन्द्रियका सम्बन्ध है उसकालमें धूमज्ञानात्=धूमविषयकविशिष्टज्ञानसे प्राक्=पूर्व नास्त्येव=नहीं ही है निर्विकल्पकज्ञानमें प्रमाणका अभाव होनेसे । विशिष्टज्ञानत्वेन विशेषणज्ञानत्वेन कार्यकारणभावका अनभ्युपगम होनेसे अवश्यक्लृप्त जो कार्यकारणभाव विशेष उससेही सर्व व्यवहारोंकी उपपत्तिसे=निर्विकल्पक माननेकी आवश्यकता नहीं और विशेषणज्ञानत्वेन विशिष्टज्ञानत्वेन कारणता और कार्यता नहीं परोक्षज्ञानमें परामर्शादिजन्यत्वेन विशिष्टविषयता है अपरोक्षज्ञानमें इन्द्रियसन्निकर्षादिजन्यत्वेन विशिष्ट विषयता है सो परामर्शादि अवश्यमेव क्लृप्त हैं । नवीनमतमें प्रथम निर्विकल्पक होता है उसके बाद सन्निकृष्टविप्रकृष्टादिनिखिलधूमविषयक विशिष्टज्ञान होता है, प्राचीनमतमें प्रथम पुरोवर्त्ति धूमका धूमत्वेन ज्ञान होता है पश्चात् तत्समानाकार असन्निकृष्टधूमगोचरज्ञान होता है । इन दोनोंमेसे नवीनमतका निरूपण तथा खण्डन हो चुका है । अत्र प्राचीनोंका मत बतलाते हैं ' धूमत्वेन ' धूमत्वरूपसे सन्निकृष्ट=इन्द्रियसम्बद्धधूमव्यक्तिके ज्ञानके बाद तत्समानाकार=प्रथम ज्ञानके समानाकार असन्निकृष्टधूमविषयक दूसरा ज्ञान उत्पन्न होता है इत्यत्र=इस अर्थमें मान है । न च=नहीं है । च=और धूमत्वेन पुरोवर्त्ति धूमका साक्षात्कार करताहूं व्यवहितका नहीं इस अनुभवसे । अन्यथा=उक्तसाधकाभावको तथा बाधकको न अङ्गीकार करो तो पृथिवीगत सकलधूमव्यक्तिओंका में साक्षात्कार करताहूं इति=इत्याकारक अनुव्यवसाय होना चाहिए । अनुभवमात्र है शरणजिनका ऐसे वादिओंसें ऐसा अनुभव नहीं अङ्गीकार किया जाता है=इमं धूमं साक्षात्करोमि नान्यम्, ऐसा अनुभव होता है । अत एव धूमप्रत्यक्ष जिसको हुआ है उसे कोई पूछेकि–पुरोवर्त्तिनो धूमादतिरिक्तं धूमं किं त्वं साक्षात्करोपि; तब वह कहता है कि, नहि नहि भो ममेन्द्रियसन्निकृष्टस्तु एकएव धूमः अन्येषां कथं प्रत्यक्षं स्यात् ऐसा कहता है अतः सामान्यप्रत्यासत्त्यादिका मानना अनुभवसे विरुद्ध है ।

किं च सामान्यप्रत्यासत्त्यङ्गीकारे प्रमेयं तदभिधेयं यत्प्रमेयवत्तदभिधेयवदित्यादिव्याप्तिपरिच्छेदे सार्वज्ञ्यापत्तिः। न चेष्टैव सा; परज्ञानविषयो घटो नवेत्यादिसंशयानुपपत्तेः। नच घटत्वप्रकारकघटविषयकनिश्चयो घटसंशयविरोधी। प्रमेयमितिनिश्चयस्तु घटविषयोऽपि न घटत्वप्रकारक इति वाच्यम्। भासमानवैशिष्ट्यप्रतियोगिन एव प्रकारत्वात्। घटत्वस्यापि प्रमेयमितिज्ञाने भासमानवैशिष्ट्यप्रतियोगित्वात्। घटत्वप्रकारकनिश्चयस्य घटत्वज्ञानजन्यत्वविशेषणाददोष इति चेन्न, विशेषणज्ञानत्वेनैव तस्य जनकता वाच्या। तस्याः प्रागेव निरासात्। स्वरूपसम्बन्धविशेषाभ्युपगमे चानिर्वचनीयवादापत्तेः। इत्यादिदूषणानि बहुतरमूहनीयानि। तस्मात् सामान्यप्रत्यानिषेधमात्रप्रतियोगित्वोपस्थितौ तदभावग्रहाद्बाध इत्यनुपपन्नमेव॥ इति सामान्यप्रत्यासत्तिभङ्गेन लौकिकालौकिकप्रत्यक्षबाधोद्धारः॥

किञ्च=और भी कहते हैं। सामान्यप्रत्यासत्तिका अङ्गीकार होनेपर 'यत् प्रमेयं=जो प्रमेय है' तदभिधेयं=वह अभिधेय है, जो प्रमेयवत् है वह अभिधेयवत् है इत्यादिव्याप्तिपरिच्छेदे=इत्यादिरूपव्याप्तिओंका ज्ञान होनेपर सार्वज्ञ्यकी आपत्ति हैं=जो प्रमेय है वह अभिधेय है इत्याकारक व्याप्तिज्ञान होनेपर निखिलपदार्थोंका ज्ञान हो जानेसे सार्वज्ञ्यापत्ति=सर्वसंशयविरोधि ज्ञानवत्त्वकी आपत्ति है क्योंकि प्रमेयत्व तथा अभिधेयत्वरूप सामान्यसे चक्षुरिन्द्रिय सर्वके ऊपर पहुँच गया तथाच सकलपदार्थोंका चाक्षुप प्रत्यक्ष हो जानेसे कहीं पर भी संशय नहीं होना चाहिए। इसी रीतिसे यत् प्रमेयवत् है तदभिधेयवत् है इत्याकारक व्याप्तिज्ञानके होनेपर भी कहीं पर संशय नहीं होना चाहिए। क्योंकि यहां पर भी प्रमेय तथा अभिधेयरूपसामान्यप्रत्यासत्तिसे प्रमेयाश्रय तथा अभिधेयाश्रय निखिल पदार्थोंका प्रत्यक्ष हो जायगा। सा=उक्त सार्वज्ञ्यापत्ति इष्टही है=प्रमेयत्वेन सार्वज्ञ्यापत्ति इष्टही है। ईशनिष्ठ जो सार्वज्ञ्य है वह सर्वांशमें लौकिक प्रत्यक्षरूप है और जीवोंका उक्त सार्वज्ञ्य अलौकिकरूप है। अतः दोनोंका भेद है। नच=उक्त सार्वज्ञ्यापत्ति इष्ट नहीं हो सकती है। क्यों? परस्य=उक्त सामान्यप्रत्यासत्त्यधीन जो सार्वज्ञ्य है तादृशसार्वज्ञ्यवत्पुरुपको—ज्ञानका विषयीभूत घट है या नहीं इत्याकारक संशय होता है उसकी अनुपपत्तिसे, ज्ञानविषयत्व घटत्व तथा घटत्वाभाव इन दोनोंके साथमें रहता है। अतः साधारणधर्मज्ञानको संशयकी हेतुताके सम्पादनके लिए ज्ञानविषय यह कहा है। शङ्कते नचेति। घटत्वप्रकारक जो घटविषयक निश्चय है वह निश्चय घटधर्मिक संशयका विरोधी है, और प्रमेयम् इत्याकारक निश्चयतो घटविषयोऽपि=घटत्वविशिष्टघटविशेष्यक होनेपर भी घटमें घटत्वप्रकारक नहीं है इति नच वाच्यम्; ऐसा नहीं कहना क्यों? ज्ञानमें भासमान जो वैशिष्ट्य तादृश वैशिष्ट्यके प्रतियोगीको ही प्रकारत्व होनेसे घटत्वको भी 'प्रमेयम्' इस ज्ञानमें भासमान वैशिष्ट्यका प्रतियोगित्व होनेसे प्रकारत्व है ही=ज्ञानमें प्रतीयमान जो सम्बन्ध है उस संबन्धके प्रतियोगीको प्रकार कहा जाता

है । प्रमेयम्, इत्याकारक ज्ञानके होनेपर इस ज्ञानमें घटघटत्वके समवायका भी भान होता है । उसी समवायका नाम हुआ वैशिष्ट्य तादृशवैशिष्ट्यप्रतियोगित्व घटत्वमें है । तथा च 'प्रमेयम्' इत्याकारक ज्ञानको घटत्वप्रकारक माननेमें कोई बाध नहीं है फलतः 'प्रमेयम्' इत्याकारक ज्ञानसे उत्तर कहींपर भी संशयादि नहीं होना चाहिए । घटत्वप्रकारक निश्चयको घटत्वज्ञानजन्यत्वसे विशेषित करनेसे अदोप है=घटत्वज्ञानजन्य जो घटत्वप्रकारक निश्चय है वही घटधर्मिक संशयका विरोधी है केवल घटत्वप्रकारक निश्चय नहीं (प्रमेयम्) इत्याकारक निश्चयको यथाकथञ्चित् घटत्वप्रकारक होनेपर भी घटत्वज्ञानजन्यत्व नहीं है अतः इस ज्ञानको संशयविरोधिता नहीं है । इतिचेन्न=ऐसा यदि कहो तो नहीं कहना क्यों ? विशेषणज्ञानत्वेन ही तस्य=घटत्वज्ञानको जनकता कहनी होगी । तस्याः= विशेषणज्ञानत्वेन जनकताका प्रथमही निराश होनेसे । ननु बौद्धाधिकारमें प्रकाशस्य सततदीयतामात्ररूपः स्वभावविशेषो विषयता । यह विषयताका स्वरूप कहा है । इसका रघुनाथशिरोमणि-भट्टाचार्यादिने ऐसा व्याख्यान किया है कि-प्रकाशस्य-ज्ञानस्य सतः-विद्यमानस्य तदीयतामात्ररूपः=घटादिविषयसंबन्धरूपो विषयता । सामान्यतो विषयता ज्ञानमेव, घटादिविषयतातु घटादिसंबन्धि तत्तद्धीरूपा । विषयस्याविद्यमानत्वेऽपि विद्यमानज्ञानरूपस्य विषयत्वस्य इदानीं सविषयो ज्ञातः, इदानीं तस्य ज्ञानम्, इत्यादि व्यवहारे कालविशेषावच्छिन्नत्वभानमुपपद्यते । विषयस्य विषयतात्त्वेतु तस्य अविद्यमानत्वे विषयत्वस्य तन्नोपपद्यते अतो ज्ञानमेव विषयतेति ज्ञापनाय सत इत्यनेन ज्ञानस्य विद्यमानता उक्ता सम्बन्धसम्बन्धिनोश्चाभेदो न दोषाय सर्वत्र स्वरूपसम्बन्धस्थले तथा कल्पनात् इति । फलतः (प्रमेयवत्) इस ज्ञानको घटमें घटत्वप्रकारकत्व होनेपर भी घटधर्मिक उक्त संशयका विरोधित्व नहीं है क्योंकि ज्ञानरूप जो विषयताविशेषरूप प्रकारत्व है । उस प्रकारत्वको तत्तद्ज्ञानव्यक्तित्वरूपसे ही प्रतिबन्धकतावच्छेदकमें निवेश्यता होनेसे (प्रमेयवत्) इत्याकारक ज्ञानव्यक्तिको तद्व्यक्तित्वेन निवेश नहीं बन सकता है अतः सामान्यप्रत्यासत्ति मानने पर भी संशयकी उपपत्ति हो सकती है । तहां कहते हैं-स्वरूपसम्बन्धेति । स्वरूपसम्बन्धविशेषरूप यदि विषयता मानों तो अनिर्वचनीयवादकी आपत्ति है=स्वं न स्वस्यसंबन्धः=आपही आपका सम्बन्ध नहीं होता है । स्वं न स्वीयम्=स्वयंही स्वीय नहीं कहा जाता है । इत्यादि अनुभवसे ज्ञानरूपही ज्ञानविषयका संबन्धरूप विषयता नहीं हो सकती है । यदि ऐसा कहो कि तत्तद्व्यक्तित्वेन ज्ञानको सम्बन्धत्व है और ज्ञानत्वादिना संबन्धित्व है; अतः रूपभेदसे भेदको स्वीकार कर स्वको भी स्वप्रतियोगिक संबन्धत्व है । तथापि ज्ञानत्वविशिष्टका तत्तद्व्यक्तित्वविशिष्टके साथ अभेद होनेसे तिन दोनोंके भेदका असंभव है । अतः भेदका मिथ्यात्व वाच्य होनेसे अनिर्वचनीयवादकी आपत्ति है । यदि दोनोंका अत्यन्त भेद है तब तो भाषान्तरसे विषयता पृथक्ही सिद्ध होती है । तस्मात् सामान्यप्रत्यासत्तिसे निषेधमात्रके प्रतियोगित्वकी उपस्थिति होनेपर प्रतियोगित्वाभावका ग्रह होनेसे बाध दोष है इति=यह कथन अनुपपन्न है ।

इति सरलायां सामान्यप्रत्यासत्तिभङ्गेन लौकिकालौकिकप्रत्यक्षबाधोद्धारः ।

अथ साक्षिवाधोद्धारः।

ननु प्रत्यक्षस्य वर्त्तमानमात्रग्राहित्वे शुक्तिरूप्यादेः प्रतिपन्नोपाधौ त्रैकालिकनिषेधप्रतियोगित्वरूपं मिथ्यात्वं कथं प्रत्यक्षं स्यात् । अथ तत्र रजतत्वविरोधिशुक्तित्वे साक्षात्कृते तदन्यथानुपपत्त्याच रजतत्वाभावे निश्चिते मिथ्यैव रजतमभात् इति। तादृङ्निषेधप्रत्ययः स्वसम्बन्धसर्वावभासकेन साक्षिणैवोपपन्नः । तर्हि साक्षात्स्वविषयस्य गगनादेर्भाविकालनिषेधाप्रतियोगित्वं सकलकालग्राहिणा साक्षिणा गृह्यतामिति चेन्न, साक्षिणो विद्यमानसर्वावभासकत्वेनाविद्यमानभाविवाधाभावभासकत्वानुपपत्तेः । साक्षिज्ञानस्य भ्रमसाधारणत्वेन प्रमाणावाधकत्वाच्च । ननु ज्ञानप्रमाण्यं गृह्णन् साक्षी घटादिगतमवाध्यत्वं गृह्णात्येव, नहि विषयावाधमनन्तर्भाव्यप्रामाण्यग्रहणं नाम इति चेन्न, व्यवहारकालावाध्यत्वमात्रेण प्रवृत्तावपि संवादोपपत्तेः, तद्रूपगतप्रामाण्यस्य साक्षिणाग्रहणेऽपि विरोधाभावात् । नहि घटादिज्ञानस्य संवादिप्रवृत्तिजनकतावच्छेदकं प्रामाण्यं त्रिकालावाध्यविषयकत्वम्, किन्तु शुक्तिरूप्यादिज्ञानव्यावृत्तं व्यवहारकालावाध्यविषयकसकलज्ञानवृत्तिव्यवहारकालावाध्यविषयकत्वमेव । तच्च न भाविकालवाधविरोधीत्युक्तम् । भाविकालवाधतदभावौ नच मानं विना साक्षिणा ग्रहीतुं शक्यौ तस्य विद्यमानमात्रग्राहित्वादिति चोक्तम् ।

अथ सरलायां साक्षिवाधोद्धारः।

शङ्कते नन्विति । प्रत्यक्षप्रमाणको वर्त्तमानमात्रग्राहित्व होनेपर शुक्तिरूप्यादेः=शुक्तिरूप्यादिनिष्ठ प्रतिपन्नोपाधिमें त्रैकालिकनिषेधप्रतियोगित्वरूप मिथ्यात्व प्रत्यक्ष कैसे होगा=जब कि प्रत्यक्ष प्रमाण वर्त्तमानकालीनपदार्थको ही ग्रहण करता है तब कालत्रयगर्भितशुक्तिरूप्यादिनिष्ठमिथ्यात्वका प्रत्यक्ष कैसे होगा ? अथ=यदि ऐसा कहो कि तत्र=उक्तस्थलमें रजतत्वका विरोधि जो शुक्तित्व है उस शुक्तित्वके साक्षात्कृत होनेपर च=और तदन्यथानुपपत्त्या=रजतत्वविरोधिशुक्तित्वकी अन्यथानुपपत्तिसे रजतत्वाभावके निश्चित होनेपर मिथ्या ही रजतप्रतीत हुआ इति=यह जो तादृङ्निषेधप्रत्ययः=कालत्रयघटितनिषेधघटित मिथ्यात्वप्रत्यय स्वसे है संबन्ध जिसका एवम्भूत जो सर्व है उस सर्वके अवभासक साक्षीसे ही उपपन्न होगा। तर्हि=तब अन्यानपेक्ष साक्षात् साक्षीके विषय जो गगनादि तादृशगगनादिनिष्ठ भाविकालमें प्रतीयमान जो निषेध तादृशनिषेधाप्रतियोगित्व सकलकालग्राही साक्षीसे गृहीतहो=जैसे अविद्यावृत्तिद्वारा साक्षिभास्य शुक्तिरूप्यादिनिष्ठ मिथ्यात्व कालत्रयघटित होनेपर भी साक्षीसे गृहीत होता है । तैसे साक्षात्साक्षिभास्यत्वेन अभिमतगगनादिनिष्ठ गगनादिनिष्ठप्रतियोगितानिरूपक भाविकालमें प्रतीयमान जो निषेध तादृशनिषेधका अप्रतियोगित्व भी सर्वकालग्राही साक्षीसे गृहीतहो, आद्यनिष्ठान्तका संबन्ध अप्रतियोगित्वसे

है। इतिचेन्न=ऐसा यदि कहो तो नहीं कहना। क्यों ? साक्षीको, विद्यमान जो सर्व तदवभासकत्व होनेसे। अविद्यमान जो भाविबाध तादृशबाधाभावके अवभासकत्वकी अनुपपत्तिसे, वर्तमान पदार्थका भान साक्षीसे होता है। अतः गगनादिप्रतियोगिक जो भाविकालीन बाध तादृशबाधप्रतियोगिक जो अभाव उस अभावको प्रमाणवृत्त्यनुपहित साक्षी नहीं प्रकाशित कर सकता है, भाविकालीननिषेधाप्रतियोगित्वको साक्षिग्राह्य मानकर भी समाधान करते हैं। साक्षिज्ञानस्येति। साक्षीरूप ज्ञानको भ्रमप्रमासाधारण होनेसे प्रमाणाबाधकत्वसे भी=सुखदुःखादि–अंशमें जैसे प्रमात्व गृहीत होता है तैसे शुक्तिरूप्यादि–अंशमें भ्रमत्व भी गृहीत होता है अतः भाविकालनिषेधाप्रतियोगित्वांशमें भ्रमत्वकी शङ्का बन सकती है अतः साक्षीरूप ज्ञानको प्रमाणबाधकत्व नहीं है। शङ्कते नन्विति। ज्ञाननिष्ठप्रामाण्यको ग्रहण करताहुआ साक्षी घटादिगत अबाध्यत्वको ग्रहणकरता ही है=अनधिगताबाधितार्थविषयकत्व या अबाधितार्थविषयकत्वरूप प्रामाण्य है और प्रामाण्याश्रयज्ञानग्राहक साक्षीसे ही प्रामाण्यग्रह माना जाता है। तथाच अबाधितार्थघटितप्रामाण्यको ग्रहणकरता हुआ साक्षी घटादिगत अबाधितत्व=अबाध्यत्वका ग्रहणकरेगा ही। विषयाबाधको अन्तर्भाव न करके तो प्रामाण्य ग्रहण नाम नहीं है; फलतः विषयाबाधको अन्तर्भाव करके ही प्रामाण्य ग्रहण होता है, इति चेन्न। क्यों ? व्यवहारकालमें जो अबाध्यत्व तादृशाबाध्यत्वविषयकत्वमात्रसे प्रवृत्तावपि संवादोपपत्तेः=प्रवृत्तिसामान्यके प्रति भी प्रयोजकत्वरूपसंवाद की उपपत्तिसे तद्रूपगतप्रामाण्यस्य=व्यवहारकालीनाबाध्यत्वविशिष्टविषयकत्वविशिष्टनिष्ठप्रामाण्यका साक्षीसे ग्रहण होनेपर भी विरोधका अभाव होनेसे=साक्षी घटादिमें व्यवहारकालीन अबाध्यत्वको ग्रहण करता है और अनुमान तात्त्विकअबाध्यत्वका अभाव सिद्ध करता है अतः भिन्नविषयता होनेसे विरोध नहीं है। घटादिज्ञानस्य=घटादिज्ञाननिष्ठ जो संवादि=सफलप्रवृत्तिजनकतावच्छेदक प्रामाण्य है वह त्रिकालाबाध्यविषयकत्वरूप नहि=नहीं है=घटादिज्ञानमें जो सफलप्रवृत्तिकी जनकता है उस जनकताका अवच्छेदकीभूतप्रामाण्य त्रिकालाबाध्यविषयत्वरूप नहीं है किन्तु शुक्तिरूप्यादिज्ञानसे व्यावृत्त=शुक्तिरूप्यादिरूपप्रातिभासिकपदार्थविषयक ज्ञानोंमें नहीं रहनेवाला व्यवहारकालमें अबाध्य जो विषय तादृशविषयविषयकसकलज्ञानोंमें वृत्ति=रहनेवाला व्यवहारकालाबाध्यविषयकत्वरूप ही है। स्मृतिको भी संवादिप्रवृत्तिजनकत्व होनेसे स्मृतिसाधारण–प्रामाण्य दोषके लिए नहीं है। अर्थात् संवादिप्रवृत्तिजनकत्वानुकूलप्रामाण्य यहांपर विवक्षित है। अतः स्मृतिमें अतिव्याप्ति नहीं है, तच्च=व्यवहारकालाबाध्यविषयकत्व जो है वह तो भाविकालमें होनेवाला जो ब्रह्मज्ञानसे प्रपञ्चका बाध उसबाधका विरोधी नहीं है यह कहा है। भाविकालमें होनेवाला प्रपञ्चका बाध तथा तादृश बाधका अभाव ये दोनों प्रमाणके विना केवल साक्षीसे ग्रहण करनेको शक्य नहीं है। तस्य=उस साक्षीको विद्यमानमात्रका अवगाही होनेसे ' इति चोक्तम्=यहभी कहा है।

ननु तर्हि देहात्मैक्यज्ञानमुष्णंजलमित्यादिज्ञानञ्च प्रमा स्यात् व्यवहारदशायां,

विषयाबाधात् इति चेन्न, आब्रह्मज्ञानमबाधितत्वेन तेषामपि घटादिज्ञानसमानयोगक्षेमत्वात्। ननु कालान्तरस्थमपि यत् बाधकं तदपि किं यत्कालावच्छेदेनानेन स्वार्थो गृहीतस्तत्कालावच्छेदेनैव तन्निषेधति, उतान्यकालावच्छेदेन आद्ये कथमस्य प्रामाण्यम्, अन्त्येऽनित्यत्वादिकमेव, इति चेन्न, अबाध्यत्वरूपप्रामाण्यस्य प्रपञ्चज्ञाने मयानङ्गीकारात्। यत्कालावच्छेदेनैवानेन स्वार्थो गृहीतस्तत्कालावच्छेदेनैव तन्निषेधाभ्युपगमात्। यच्च प्रामाण्यं मयाभ्युपेयते तद्व्यवहारदशायां विपरीतप्रमारूपबाधकस्यानुत्पन्नत्वादस्त्येव। नच यद्भवता घटादिबुद्धेः प्रातिभासिकबुद्धितो वैलक्षण्यं विषयस्य व्यावहारिकसत्त्वसाधकं तदेवेह मम विषयस्य पारमार्थिकसत्त्वसाधकमस्त्विति वाच्यम्। प्रातिभासिकबुद्धिवैलक्षण्यं हि घटादिबुद्धेः सप्रकारकज्ञानाबाध्यविषयत्वादिरूपम्, तन्न पारमार्थिकसत्त्वं घटादेः साधयितुं शक्तम्। देहात्मैक्यज्ञाने ब्रह्मज्ञानाव्यवहितभ्रमे च व्यभिचारात्।

शङ्कते नन्विति। जब व्यवहारकालाबाध्य विषयकत्वेन ही ज्ञानमें प्रामाण्य रहता है तर्हि=तब तो देहात्मैक्यज्ञान='श्यामोऽहम्' 'गौरोऽहम्' इत्यादि देहात्मैक्यज्ञान=च=तथा 'उष्णंजलम्' यह ज्ञान, तैसे आदिशब्दतः लब्ध 'काणोऽहम्' 'बधिरोऽहम्' इत्यादि ज्ञान भी प्रमा होंगे। क्यों? व्यवहारदशामें विषयका बाध न होनेसे=श्यामोऽहम् इत्यादि ज्ञानोंके विषयोंका बाध व्यवहारकालमें नहीं होता है। इति चेन्न, क्यों? ब्रह्मज्ञानसे पूर्व अबाधितत्व होनेसे तेषामपि=देहात्मैक्यादिज्ञानोंको भी घटादिज्ञानके समानयोगक्षेम होनेसे=जैसे घटादिज्ञानका व्यवहारकालमें बाध नहीं होता है अतः वह प्रमा माना जाता है। तैसे ही इन ज्ञानोंका भी व्यवहारकालमें बाध नहीं होता है। अतः ये ज्ञान भी प्रमा हैं, और जैसे घटादिके ज्ञानका ब्रह्मज्ञानसे बाध होता है तैसेही देहात्मैक्यादिज्ञानोंका भी बाध होता है। शङ्कते नन्विति, कालान्तरमें रहनेवाला जो बाधक है तदपि=वह बाधक भी क्या यत्कालावच्छेदेन अनेन=घटादिज्ञानेन स्वार्थग्रहण किया है तत्कालावच्छेदेनैव तन्निषेधति=जिस रूपसे पदार्थ गृहीत हुआ है तिसरूपसे निषेध करता है उत=या अन्यकालावच्छेदेन कालान्तरस्थ बाधक निषेध करता है आद्ये=प्रथम पक्षमें। अस्य=घटादिज्ञानको प्रामाण्य कैसे होगा, क्योंकि यत्कालावच्छेदेन घटादिज्ञानने स्वार्थ गृहीत किया है। तत्कालावच्छेदेनैव उसके विषयका निषेध होता है। अन्त्ये=अन्तिमपक्षअङ्गीकार हो तो अनित्यत्वादि ही सिद्ध होंगे। इति चेन्न;—अबाध्यत्वरूप प्रामाण्यका प्रपञ्चज्ञानमें मुझसे अङ्गीकार न होनेसे, जिस कालावच्छेदेन इससे स्वार्थगृहीत होता है तत्कालावच्छेदेनैव प्रपञ्चके निषेधका अभ्युपगम होनेसे, और जो प्रामाण्य मुझसे अङ्गीकृत होता है वह तो व्यवहारदशामें विपरीतप्रमारूप बाधकके नहीं उत्पन्न होनेसे हैही। शङ्का करते हैं नचेति। भवतां=आपके मतमें घटादिबुद्धेः=घटादिबुद्धिनिष्ठ प्रातिभासिकबुद्धिसे जो वैलक्षण्य विषयस्य=वैलक्षण्याश्रयीभूतज्ञानके विषयके व्यावहारिक सत्त्वका साधक है तदेवेह मम=वही वैलक्षण्य मेरे मतमें स्वाश्रयीभूतज्ञानके

विषयमें पारमार्थिक सत्त्वका साधक हो, इति नच वाच्यम् क्यों ? घटादिबुद्धेः=घटादिबुद्धिनिष्ठ प्रातिभासिकबुद्धिसे वैलक्षण्य तो सप्रकारक जो ज्ञान तादृशज्ञानाबाध्यविषयत्वादिरूप है; सप्रकारक जो ज्ञान 'इयं शुक्तिः' इत्यादि ज्ञान तद् ज्ञानसे अबाध्य जो घटादि तादृश घटादिविषयत्व 'अयं घटः' इत्यादिज्ञानोंमें रहता है यही प्रातिभासिकबुद्धितः व्यावहारिकबुद्धिनिष्ठ वैलक्षण्य है। तत्=एतद्रूप वैलक्षण्य तो घटादिनिष्ठपारमार्थिकसत्त्वसाधन करनेको शक्त नहीं है, क्यों ? देहात्मैक्यज्ञानमें तथा ब्रह्मज्ञानाव्यवहित पूर्वकालमें जायमान भ्रममें व्यभिचार होनेसे=देहात्मैक्यज्ञानमें तथा ब्रह्मज्ञानसे अव्यवहितपूर्वमें जायमान भ्रममें सप्रकाराबाध्यविषयत्वरूप निरुक्त वैलक्षण्य तो रहता है। परन्तु इन ज्ञानोंको स्वविषयोंमें पारमार्थिकसत्त्वसाधकत्व नहीं है क्योंकि इन ज्ञानोंके विषय जो देहात्मैक्य तथा शुक्तिरूप्यादि उनमें मिथ्यात्व है पारमार्थिक सत्त्व नहीं।

'ननु घटस्सन्' 'रूप्यं मिथ्येति' प्रतीत्योरविशेषे कथं घटो मिथ्या रूप्यमिथ्यात्वं न मिथ्येति विशेषः ? नच तदपि मिथ्यैव, रूप्यतात्त्विकत्वापत्तेः इति चेन्न, मिथ्यात्वमिथ्यात्वेऽपि यथा न रूप्यस्य तात्त्विकत्वं तथोपपत्तेरुक्तत्वात्। नच पारमार्थिकसत्त्वस्य प्रत्यक्षागोचरत्वे तन्निषेधश्रुतीनां अप्रसक्तप्रतिषेधकता स्यादिति वाच्यम्। तासां चक्षुरादिप्रसक्तद्वैतनिषेधपरत्वात्। पारमार्थिकत्वेन द्वैतनिषेधपरत्वेऽपि नाप्रसक्तनिषेधकत्वम् परोक्षप्रसक्तेः सम्भवात्, नान्तरिक्षे अग्निश्चेतव्य इत्यादिवदप्रसक्तप्रतिषेधस्याप्युपपत्तेश्च। नच अतात्त्विकप्रपञ्चे यदि तात्त्विकत्वमप्यध्यक्षेण न गृह्यते कथं तर्हि तस्यातत्त्वावेदकत्वम् ? नहि तदेव तत्त्वेनावेदयत् अतात्त्विकं नाम; दृश्यते च सर्वलौकिकप्रपञ्चे पारमार्थिकत्वानुभव इति वाच्यम्, न ह्यस्माकं तत्त्वावेदकत्वं तद्वति तत्प्रकारकत्वम्, तद्भिन्नत्वमतत्त्वावेदकत्वम्, किन्त्वबाधितविषयत्वम्, बाधितविषयत्वं चातत्त्वावेदकत्वम्, अबाधितविषयत्वं च श्रौते ब्रह्मज्ञाने एव, न तद्भिन्नज्ञाने तात्पर्यवद्वेदत्वेनैव तत्त्वावबोधकत्वात्। तथाच प्रपञ्चप्रत्यक्षस्य तात्त्विकत्वागोचरत्वेऽपि अतत्त्वावेदकत्वम्, सङ्गच्छते। सार्वलौकिकी पारमार्थिकत्वप्रसिद्धिस्तु जलगतपिपासोपशमनसामर्थ्यप्रसिद्धिवत् परोक्षतयाप्युपपन्ना नापरोक्षत्वपर्यवसायिनी। तस्मादध्यक्षयोग्यस्य सत्त्वस्येहानिरुक्तितः। नाध्यक्षबाधो मिथ्यात्वलिङ्गस्यात्रोपपद्यते। नलौकिकं न सामान्यजन्यं साक्ष्यात्मकं नच। प्रत्यक्षं बाधते लिङ्गं मिथ्यात्वस्यानुमापकम्।

इति प्रत्यक्षयोग्यसत्त्वानिरुक्त्या प्रत्यक्षबाधोद्धारः॥

शङ्का करते हैं नन्विति। 'घटः सन्' 'रूप्यं मिथ्या' इन दोनों प्रतीतिओंको तुल्य होनेपर भी घट मिथ्या है और रूप्य मिथ्यात्वमिथ्या नहीं है इति=यह विशेष कथं=कैसे है= जैसी प्रत्यक्षज्ञानकी विषयता घटके ऊपर है वैसीही रूप्यमिथ्यात्वपर भी है ऐसी हालतमें घट मिथ्या है और रूप्यमिथ्यात्व मिथ्या नहीं है यह विशेष किंप्रयुक्त है ? तदपि मिथ्यैव=

रूप्यमिथ्यात्व भी मिथ्याही है नच=नहीं है क्यों ? रूप्यके तात्त्विकत्वकी आपत्ति होनेसे=रूप्यमिथ्यात्व जब मिथ्या है। तब रूप्य तात्त्विक हो जायगा,–स्वाभावाधिकरणमें प्रतीयमानत्वका नाम मिथ्यात्व है तथा च रूप्यमें मिथ्यात्व मिथ्या है इसका अर्थ यह हुआ कि रूप्यमें वस्तुतः मिथ्यात्व नहीं है और जिसमें वस्तुतः मिथ्यात्व नहीं रहता है वह तात्त्विक हुआ करता है जैसे विशुद्ध ब्रह्ममें मिथ्यात्व वस्तुतः नहीं है अतः शुद्ध ब्रह्म तात्त्विक है, इति चेन्न, क्यों ? मिथ्यात्वनिष्ठमिथ्यात्वके होनेपर भी जैसे रूप्यको तात्त्विकत्व नहीं है। तत्र=तथाविध अर्थमें उपपत्ति=प्रकारविशेषको उक्त होनेसे=मिथ्यात्वमिथ्यात्वनिरुक्तिप्रकरणमें यह विषय कहा जा चुका है। शङ्कते न चेति। पारमार्थिकसत्त्वको प्रत्यक्षका अविषयत्व होनेपर तन्निषेधश्रुतीनां=प्रपञ्चनिष्ठपारमार्थिकसत्त्वनिषेधकश्रुतिओंको अप्रसक्त=किसी भी प्रमाणसे अप्राप्तकी प्रतिषेधकता होगी। इति न च वाच्यम्=ऐसा नहीं कहना। क्यों ? तासां=प्रपञ्चनिषेधक–'नेहनानास्ति किञ्चन' (बृ.४।४।१९) इत्यादि श्रुतिओंको चक्षुरादिसे प्रसक्त जो द्वैत तादृशद्वैतनिषेधपरत्व होनेसे=दृश्यत्वादिरूपसे चक्षुरादिसे ज्ञात जो ब्रह्ममें द्वैत तादृश-द्वैतनिषेधपरत्व है। पारमार्थिकत्वेन द्वैतनिषेधपरत्व यदि द्वैतनिषेधकश्रुतिओंको हो तो भी अप्रसक्त प्रतिषेधकत्व नहीं है, परोक्षरूपसे प्रसक्ति=ज्ञानका संभव होनेसे=तार्किकप्रभृतिके वाक्यजातसे प्रपञ्चमें परोक्षज्ञान पारमार्थिकत्वका हो सकता है। तादृशपारमार्थिकत्वेन श्रुतियाँ प्रपञ्चका निषेध करती हैं। अन्तरिक्षमें अग्नि चयनीय नहीं है, इत्यादिवत् अप्रसक्तके प्रतिषेधकी उपपत्ति होनेसे भी श्रुतियाँ पारमार्थिकत्वेन प्रपञ्चका निषेध कर सकती हैं=जहांपर निषेधमें तात्पर्य्य होता है तहांपर प्रतियोगिकी प्रसक्तिके विना अभावकी कल्पनाको व्यर्थ होनेसे प्रतियोगिकी कल्पनाकी आवश्यकता होती है और जहांपर मानान्तरसे सिद्ध प्रतिषेधका अनुवाद कर विधेयकी स्तुतिमात्रमें तात्पर्य होता है। वहांपर प्रतियोगीकी प्रसक्ति आवश्यक नहीं, जैसे 'नान्तरिक्षे अग्निश्चेतव्यः' इस वाक्यका निषेधमें तात्पर्य नहीं किन्तु मानान्तरसे प्राप्त निषेधका अनुवाद कर सुवर्णनिधानपूर्वक अग्निचयनरूपविधेयस्तुतिपरत्व है, अतः यहांपर प्रसक्तिकी आवश्यकता नहीं, तैसेही सत्यत्वविशिष्टद्वैतरूपप्रतियोगीकी ब्रह्ममें प्रसक्तिके विना भी मिथ्यात्वसाधक-अनुमानादिसे सिद्ध जो ब्रह्मगत सत्यत्वरूपसे द्वैताभाव उसके अनुवादद्वारा विधेयब्रह्मस्तुतिपरत्व श्रुतिओंको है यह भाव है। प्रकारान्तरेण शङ्कते नचेति। अतात्त्विकप्रपञ्चे=वस्तुतः तात्त्विकत्वसे शून्य प्रपञ्चमें यदि तात्त्विकत्व भी अध्यक्षेण=प्रत्यक्ष प्रमाणसे नहीं गृहीत होता है तर्हि=तब तस्य=प्रत्यक्षको अतत्त्वावेदकत्व कथं=कैसे है, तदेव=तद्रूपावच्छिन्नकोही तत्त्वेन=तद्रूपावच्छिन्नत्वेन आवेदन करता हुआ नहि अतात्त्विकं नाम=अतात्त्विक नहीं हो सकता है,–जो प्रमाण तद्रूपावच्छिन्नको तद्रूपावच्छिन्नत्वेन ही बोधन करता है वह प्रमाण अतात्त्विक नहीं हो सकता है=बाधित नहीं हो सकता है, देखा भी जाता है–सर्व लौकिक प्रपञ्चमें पारमार्थिकत्वका अनुभव, इति नच वाच्यम्। क्यों ? अस्माकं=अस्मदीयसिद्धान्तमें तद्वति=तद्रूपावच्छिन्नमें तत्प्रकारकत्वरूप तत्त्वावेदकत्व नहीं है; तद्भिन्नत्वं=उक्ततत्त्वावेदकत्वप्रतियोगिकभेदवत्त्वरूप अतत्त्वावेदकत्व नहीं है; किन्तु अबाधितविषयत्व ही ज्ञान-

निष्ठ तत्त्वावेदकत्व है, और बाधितविषयत्व अतत्त्वावेदकत्व है । अबाधितविषयत्व च=तो श्रौते=श्रुतिजन्य ब्रह्मज्ञानमें ही है, न तद्भिन्नज्ञाने=ब्रह्मज्ञानसे भिन्नज्ञानमें नहीं। तात्पर्यवद्वेदत्वेनैव= तदेव=ब्रह्मैव परं=प्रधानं यस्य स तत्परः तस्य भावः तात्पर्य्यं=ब्रह्मपरत्वं, तदस्ति अस्मिन् इति तात्पर्यवान् सचासौ वेदः इति तात्पर्यवद्वेदः तस्य भावः तत्त्वं तेन, तथाच ब्रह्मपरत्वावच्छेद्यवेदत्वावच्छिन्नवेदनिष्ठजनकतानिरुपितजन्यताधिकरणीभूतज्ञानमें ही तत्त्वावेदकत्व है=ब्रह्मतात्पर्य्यकवेदवाक्यजन्यज्ञानमें ही तत्त्वावेदकत्व है । यह फलितार्थ हुआ । तथाच प्रपञ्चविषयकप्रत्यक्षको तात्त्विकत्वका अविषयत्व होनेपर भी अतत्वावेदकत्व संगत होता है । सर्वलोकोंको होनेवाली प्रपञ्चमें पारमार्थिकत्वकी प्रसिद्धि तो जलगतपिपासोपशमनसामर्थ्यप्रसिद्धिवत् परोक्षत्वेन भी उपपन्न हुई अपरोक्षत्वपर्यवसायिनी नहीं है= प्रपञ्चमें सर्वलोगोंको जो पारमार्थिक सत्यत्वकी प्रतीति होती है वह परोक्षरूपा है अपरोक्षरूपा नहीं, जैसे सर्वलोगोंको ऐसी प्रतीति होती है—सर्वजलोमें पिपासाके उपशमनानुकूल शक्ति है, सो यह प्रतीति परोक्षरूप है क्यों कि सकलजलोंका किसी द्वारा पान किया जाना अनुपन्न है । अतः जलवृत्तितादृशशक्तिके प्रत्यक्षकी भी अनुपपत्ति है । ततः इह=पक्षरूप प्रपञ्चमें मिथ्यात्वविरोधि-अध्यक्ष=प्रत्यक्षयोग्य सत्त्व की अनिरुक्तिसे । अत्र=पक्षमें मिथ्यात्त्वानुमापकलिङ्गका अध्यक्ष=प्रत्यक्षसे बाध नहीं उपपन्न होता है। लौकिकप्रत्यक्ष सामान्यलक्षणाप्रत्यासत्तिजन्य प्रत्यक्ष, साक्ष्यात्मकप्रत्यक्ष, पारमार्थिकत्वसाधकलिङ्ग; ये चारो प्रपञ्चधर्मिकमिथ्यात्वसाधकहेतुका बाध नहीं करते हैं ।

इति सरलायां प्रत्यक्षयोग्यसत्त्वानिरुक्त्या प्रत्यक्षबाधोद्धारः ।

अथ सन् घट इति प्रत्यक्षेऽधिष्ठानानुवेधः ।

किञ्चेदं रूप्यमित्यत्र इदमितिवत् सन् घटः, इत्यत्रापि सदित्यधिष्ठानभूतं ब्रह्मैव भासते । नच चाक्षुषादिज्ञाने रूपादिहीनस्य ब्रह्मणः कथं स्फुरणमिति वाच्यम् । रूपादिहीनस्यापि कालादिन्यायेन स्फुरणस्य प्रागेवोपपादितत्त्वात् । नन्वेवं नीलो घटः, मिथ्या रूप्यम्, असन्नृशृङ्गम्, इत्यादावपि नील इत्यादिरधिष्ठानानुवेध इति स्यात् । नच नैल्यं घटादिष्वस्ति सत्त्वं तु नेति वाच्यम्, अस्यारोपितत्वसिद्ध्युत्तरकालीनत्वेनान्योन्याश्रयात् । अन्यथा सत्यं ज्ञानमित्यत्रापि सत्यमित्यधिष्ठानानुवेध एव स्यात्. इति चेन्न, सन्नित्यस्य घट इत्यनेन सामानाधिकरण्यस्य बाधितत्वात्. ।

अथ सरलायां ' सन् घट ' इत्यत्र प्रत्यक्षेऽधिष्ठानानुवेधः ।

किंच=और भी वक्तव्य है, इदं रूप्यम्, इत्यत्र=इसज्ञानमें (इदम्) यह जैसे अधिष्ठानका सामान्यस्वरूपही भासित होता है तैसे ' सन् घटः ' इस ज्ञानमें भी ' सन् ' इत्याकारकरूपसे अधिष्ठानभूत ब्रह्मही भासित होता है । शुक्तिमें इदं रूप्यम्, इत्याकारक जो भ्रमात्मकज्ञान होता है इसमें जैसे आरोप्यरूप्यके साथ तादात्म्यापन्न होके अधिष्ठानभूतशु-

क्तिके इदमंशका भान होता है। उसी रीतिसे आरोप्यरूपघटादिके साथ तादात्म्यापन्न होके सद्रूप ब्रह्म अपरोक्षतया प्रतीत होता है। तथाच सत्तादात्म्यांशमें लौकिकप्रत्यक्ष भी अनुमानका बाधक नहीं क्योंकि सत्प्रतियोगिकतादात्म्य तथा तादृशतादात्म्यविषयक प्रत्यक्ष इन दोनोंको मिथ्या होनेसे तद्घटित प्रपञ्चमें सुतराम् मिथ्यात्वको उपपन्न होनेसे। चाक्षुषादिज्ञाने=चक्षुरादिजन्यज्ञानमें रूपादिसे हीन ब्रह्मका स्फुरण कैसे है, इति नच वाच्यम्, क्यों ? कालादिन्यायसे रूपादिहीन ब्रह्मके स्फुरणको प्रागेव=मिथ्यात्ववादमें ही उपपादितत्व होनेसे। शङ्कते नन्विति। एवम्=उक्त प्रकारसे 'नीलो घटः, मिथ्यारूप्यम्' असन्नृशृङ्गम्, इत्यादि प्रतीतिओंमें भी 'नीलः' इत्यादि अधिष्ठानका अनुवेध=तादात्म्यापन्नहोके प्रतीति हो। 'सन् घटः' इत्यादिमें जैसे घटगतसत्त्वका भान नहीं माना जाता है किन्तु अधिष्ठानके सद्रूपका अनुवेध=तादात्म्यापन्नहोके प्रतिभान माना जाता है तैसेही नीलो घटः, इत्यादिमें भी घटादिगत नीलादिका भान नहीं मानना चाहिए किन्तु नीलादिरूप अधिष्ठानका अनुवेध घटादिमें होता है यही मानना चाहिए तथाच घटादि नीलादिमें ही अध्यस्तसिद्ध होंगे, नैल्यं घटादिष्वस्ति=नीलिमा तो आरोप्यमाण कार्यवर्गरूप घटादिके अन्तर्गत है अधिष्ठान नहीं है, सत्त्वं=सद्रूप नहीं है इति नच वाच्यम्; क्यों ? अस्य=उक्तार्थको प्रपञ्चमें आरोपितत्वसिद्धिके उत्तरकालीनत्व होनेसे अन्योन्याश्रय होनेसे=घटादिरूपप्रपञ्चमें नैल्य है सत्त्व नहीं है, अतः नैल्यको अधिष्ठानता नहीं बन सकती है सद्रूपको अधिष्ठानता बन सकती है यह अर्थ प्रपञ्चमें आरोपितत्वसिद्धिके पश्चात् बन सकता है। अतः अन्योन्याश्रय है=सत्त्वाभावसिद्ध हो तो आरोपितत्व सिद्ध हो और आरोपितत्व सिद्ध हो ते सत्त्वाभाव सिद्धहो अतः अन्योन्याश्रय है। अन्यथा= 'सन् घट;' इत्यादिमें 'सन्' यह अधिष्ठानकाही अनुवेध है ऐसा अङ्गीकार करो तो. 'सत्यं ज्ञानम्' यहांपर भी 'सत्यम्' यह अधिष्ठानकाही अनुवेध होगा. और यहांपर अधिष्ठानका अनुवेध आपको भी इष्ट नहीं है, इति चेन्न, क्यों ? सन्नित्यस्य= 'सन' इत्याकारकप्रतीतिविषयीभूत सत्पदार्थके 'घटः' इत्यनेन=घटः इत्याकारकप्रतीतिका विषयीभूत जो घट है उस घटके साथ सामानाधिकरण्यस्य=तादात्म्यको बाधित होनेसे= सत्पदार्थका तादात्म्य घटके साथ बाधित है, इसी अर्थको स्पष्ट करते हैं. तथाहि इत्यादिसे।

तथाहि सत्ताजातिस्फुरणनिबन्धनं वा स्वरूपसत्त्वनिबन्धनं वा कालत्रयाबाध्यत्वनिबन्धनं वा सामानाधिकरण्यं स्यात् । नचाभावादिसाधारणसत्प्रतीतौ सत्ताजातिस्फुरणं संभवति; अभावादिषु त्वयापि तदनङ्गीकारात्। नच क्वचित् साक्षात्सम्बन्धेन क्वचित्परम्परासम्बन्धेन सदिति प्रतीत्युपपत्तिः, विजातीयसम्बन्धेन समानाकारप्रतीत्यनुपपत्तेः। अन्यथा सम्बन्धभेद एव न सिद्ध्येत्। नच स्वरूपसत्त्वेनाभावादौ तत्प्रतीतिः, अननुगमात्। अननुगतेनापि अनुगतप्रतीतौ जातिमात्रोच्छेदप्रसङ्गात्। अत एव

न सर्वत्रापि स्वरूपसत्त्वेन सद्व्यवहारः। एकेनैव सर्वत्रानुगतेन सर्वत्र सत्प्रतीत्युपपत्तौ बहूनां तद्धेतुत्वकल्पने मानाभावात् । नापि कालत्रयाबाध्यत्वनिबन्धनं तत्, तस्य चक्षुराद्यग-म्यत्वस्योक्तत्वात्, सदिदं रजतमित्यादिभ्रमेऽभावाच्च। तस्मादेकं सर्वाधिष्ठानमेव सदिति सर्वत्रानुभूयते इति युक्तम्; नीलादेस्तु घटादिसामानाधिकरण्ये किमपि नास्ति बाधकम्; नवानीलादेरधिष्ठानत्वं सम्भवति प्रागसत्त्वात् । नीलपीतादिशतिस्त्रिकानन्ताधिष्ठान-कल्पने गौरवात्। अधिष्ठेयतुल्ययोगक्षेमत्त्वाच्च। अधिष्ठेयविषमसत्ताकमेव ह्यधिष्ठानं भवति मिथ्यारूप्यमसन्नृशृङ्गमित्यादौ मिथ्यासत्त्वयोरधिष्ठानत्वशङ्कापि नास्ति इति शून्य-वादापत्तेः। तत्र चानुपपत्तिरुक्ता, वक्ष्यते च। यत्तु सत्यं ज्ञानमनन्तमित्यत्रापि तथा स्यात् इति तन्न, यतो न तत्र सत्तासम्बन्धेन सत्त्वम् किन्तु स्वरूपेणैवेत्युक्तदोषानव-काशात् न चैवं घटादावपि स्वरूपेणैव तथात्वम्, पूर्वमेव निराकृतत्वात्।

इति सन् घट इति प्रत्यक्षेऽधिष्ठानानुवेधनिरूपणम्।

तथाहि दर्शयति। सत्ताजातिस्फुरणसे घटित सामानाधिकरण्य है। या स्वरूपसत्त्वसे घटित सामानाधिकरण्य है, या त्रिकालाबाध्यत्वसे घटित सामानाधिकरण्य है='सन् घटः' इत्या-कारक जो प्रतीति है इसमें सत्पदार्थका घटके साथ अभेद भासित होता है तहां जिस पदार्थका घटके साथ अभेद प्रतीत होता है उस सत्पदार्थमें रहनेवाला सत्त्व किंरूप है, क्या सत्ता जातिका स्फुरणरूप है, या स्वरूपरूप है, अथवा त्रिकालाबाध्यस्वरूप है, जिस पक्षमें जाति सर्वगत मानी जाती है उस पक्षमें सत्ता जाति अभावमें भी है, अतः तद्व्यावृत्त्यर्थ सत्ताजातिके स्फुरणका निवेश किया, अभावमें सत्ताजातिका स्फुरण नहीं होता है अतः स्फुर-णसे अभावकी व्यावृत्ति बोधनकी, विकल्पकर अब दोष देते हैं नचेति। अभावादिसाधारण जो सत्प्रतीति होती है उस सत्प्रतीतिमें सत्ताजातिका स्फुरण उपपन्न नहीं हो सकता है। क्यों? अभावादिमें तुमसे भी सत्ताजातिके स्फुरणका अनङ्गीकार होनेसे=जैसे 'द्रव्यं सन्' 'गुणः सन्' 'कर्म सत्' ये प्रतीतियाँ होती हैं तैसे 'घटे पटत्वाभावोऽस्ति। पटे घटत्वाभा-वोऽस्ति' सामान्यं सत् इत्यादि भी प्रतीतियाँ होती हैं, तहां इन प्रतीतिओंमें सत्ताजाति-स्फुरणनिबन्धन सामानाधिकरण्य नहीं बन सकता है क्योंकि अभावादिमें सत्ताजातिका स्फुरण आपको भी अभिप्रेत नहीं हैं; क्वचित्=द्रव्यादित्रयमें सत्ताके साक्षात् सम्बन्धसे क्वचित्=सामान्यादि-चतुष्टयमें सत्ताके परम्परा सम्बन्धसे 'सत्' इत्याकारिका प्रतीतिकी उपपत्ति=सम्भव है, नच=नहीं है, क्यों? विजातीयसंबन्धसे समानाकारप्रतीतिकी अनुप-पत्तिसे=द्रव्यादि तीन पदार्थोंमें सत्ता समवायसंबन्धसे रहती है, और सामान्यादिचतुष्टयमें स्वसमवायिवृत्तित्व संबन्धसे रहती है। स्वशब्दसे सत्ताको लेना चाहिए। तत्समवायि द्रव्यादि हैं तद्वृत्तित्व सामान्यादिमें है। तथाच 'द्रव्यं सत्' इत्यादिमें समवाय संबन्धसे सत्ताका भान होता है 'सामान्यं सत्' इत्यादिमें स्वसमवायिवृत्तित्वसम्बन्धसे सत्ताका भान होता है; इस समाधानका उत्तर यह दिया गया कि विजातीयसंबन्धोंसे समानाकार प्रत्यय नहीं हो सकता है; यदि सबन्धमें

वैलक्षण्य है तो उस वैलक्षण्यका भान होना चाहिए क्योंकि प्रत्येतव्यका वैलक्षण्य प्रत्ययोल्लेख-साक्षिक ही होता है, अन्यथा=साक्षात् सम्बन्धके प्रामाणिकत्वका सम्भव होनेपर भी परम्परासम्बन्धकल्पना करनेमें सम्बन्धभेद्=साक्षात् सम्बन्धोंका भेदही न सिद्ध होगा=घटादिका केवल संयोग संबन्ध ही रहो अथवा केवल सम्बन्धही रहो, कपालमें या भूतलमें घटका परम्परासम्बन्ध माना जा सकता है। यदि यों कहो कि घटका कपालोंमें साक्षात् संबन्ध है और भूतलमें परम्परासंबन्ध है, इस अर्थका कोई नियामक नहीं है और उभयत्र परम्परासम्बन्धका अनुभव भी नहीं होता है. अतः उभयत्र=कपालभूतल इन दोनोंमें साक्षात्सम्बन्ध है, तब तो द्रव्यादि तीनमें साक्षात्सम्बन्धसे सत्ता रहती है और सामान्यादिचारमें परम्परासम्बन्धसे रहती है या समवाय तथा अभावमें जैसे स्वरूपसंबन्धसे अखण्डोपाधिरूप समवायत्व तथा अभावत्व रहता है तैसेही सामान्यादिचारमें स्वरूपसंबन्धसे अखण्डोपाधिरूप सत्ता रहती है। और द्रव्यादितीनमें स्वरूपसम्बन्धघटितपरम्परासम्बन्धसे रहती है, इस अर्थमें किसी नियामकके न होनेसे, और उभयत्र परम्परासम्बन्धका अनुभव होनेसे उभयत्र साक्षात्सबन्ध ही मानना उचित है और घटोत्पत्तिकालमें घटका कपालके साथमें संयोग और भूतलके साथमें समवाय नहीं बन सकता है अतः वहां पर सम्बन्धका भेद है। परन्तु (द्रव्यं सत्) सामान्यं सत्, इत्यादिमें तो सम्बन्ध भेद विनाही सर्व व्यवस्था सूपपन्ना है। स्वरूप सत्त्वसे अभावादिमें तत्प्रतीतिः=सत्प्रतीति है= अभावादिमें सत्ताजातिरूप सत्त्व नहीं है; किन्तु अभावादिका स्वरूपभूत ही सत्त्व है। तद्विषयकत्त्वेन ही सत्प्रतीतिकी उपपत्ति है; नच=नहीं है; क्यों ? अननुगमात्=एक स्वरूपसत्त्वका अभाव होनेसे= असमानविषयत्व होनेसे= विभिन्नविषयकत्व होनेसे एकरूपप्रतिभासिज्ञान अनुपपन्न है। अननुगतेनापि अनुगतप्रतीतौ= विभिन्नविषयकत्त्वेन भी अविभिन्नप्रतीतिके होनेपर जातिमात्रके उच्छेदका प्रसङ्ग है=अनेक व्यक्तिओमें अनुगत जो एक वस्तु है तद्विषयकत्त्वेन सर्व सम्मत जो प्रतीति उस प्रतीतिको अननुगतानेकार्थविषयकत्वेन यदि स्वीकार करोगे तो जातिमात्रके उच्छेदकी आपत्ति है। क्यों ? अननुगतघटादिव्यक्तिविषयकत्त्वेन भी भूतलमें साक्षात्सबन्धहै और कपालमें परम्परासम्बन्ध है अतः अनुगत प्रतीति हो सकती है., और गन्धादिकारणतावच्छेदकतया भी पृथिवीत्वादिजातियाँ सिद्ध न होंगी। क्योंकि (पृथिवी गन्धकारणम्) इत्यादिप्रतीतियाँ भी तत्तद्व्यक्तित्वावच्छिन्नकारणविषयक हैं यह भी कहा जा सकता है। अत एव=उक्तदोपके सद्भावसे ही सर्वत्रापि= अभावादिसे भिन्नस्थलमें भी=द्रव्यादिमें भी स्वरूपसत्त्वेनैव=घटादिस्वरूप ही जो सत्त्व या कालसम्बन्धित्वरूप जो सत्त्व उस सत्त्वसे ही सद्व्यवहारः=सत्प्रतीति है न=नहीं है क्यों ? सर्वानुगतेन=मायातत्प्रयुक्तनिखिलके साथ तादात्म्यापन्नएकसद्रूपब्रह्मसे ही सर्वत्र सत्प्रतीति की उपपत्तिके होजानेसे घटपदादिरूप स्वरूपसम्बन्धरूप बहुत पदार्थोंको तद्धेतुत्व=सत्प्रतीतिहेतुत्त्वकल्पनामें प्रमाणका अभाव है। कालसम्बन्धरूप स्वरूपसत्त्वको मानें तो भी बहुत्व वारित नहीं होसकता है क्योंकि अविद्यारूप महाकालको एक होनेपर भी सामान्यादि-

साधारण उसका एक सम्बन्ध नहीं होसकता है=सदाकारबुद्धिमें जात्यादिके तादात्म्यभानका असम्भव है । अतः सर्वका अधिष्ठान होनेसे सर्वके साथ ब्रह्मके ही तादात्म्यका भान होता है । तैसे ही कार्य्यमात्रमें अभिन्ननिमित्तोपादानत्वेन भी ब्रह्मका ही तादात्म्य है अर्थात् जैसे ब्रह्म कार्यमात्रका निमित्तकारण है तैसे ही उपादान कारण भी है जैसाकि अनुमानसे भी सिद्ध होता है (घटादिकं चेतनाभिन्ननिमित्तोपादानकम् । कार्य्यत्वात् सुखादिवत्) और उपादानका उपादेयके साथ तादात्म्य प्रसिद्ध ही है । तैसे ही ब्रह्मको ज्ञानरूप होनेसे ज्ञेयोंके साथ विषयतारूप तादात्म्य ब्रह्मका है । अतः सत्प्रतीतिमें सद्रूप ब्रह्मका ही भान होता है सामान्यादिका नहीं । कालत्रयावाध्यत्वनिवन्धन भी तत्=सामानाधिकरण्य नहीं है क्यों ? तस्य=कालत्रयघटितावाध्यत्वके चक्षुरादिसे अगम्यत्वको उक्तहोनेसे=वर्त्तमानमात्रावगाहि चक्षुरादिसे कालत्रयका तथा कालत्रयसे घटितका ग्रहण नहीं होसकता है यह अर्थ नजदीकमें ही कहचुके हैं । 'सदिदं रजतम्' इत्यादिभ्रमात्मकज्ञानमें अभावसे भी=(सत् इदं रजतम्) इत्यादि जो भ्रमरूपज्ञान हैं इनमें विषयिता सम्बन्धसे कालत्रयाबाध्यत्वरूप सत्त्व है भी नहीं क्योंकि इस सत्त्वका व्यवहारकालमें ही वाध होजाता है यतः गत्यन्तरका अभाव है, तस्मात्=ततः सर्वका अधिष्ठान एकब्रह्मही सदिति=सत् इत्याकारकरूपसे सर्वत्रानुभूत होता है इति=यही युक्तम्=युक्त है । घटादिके साथ नीलादिके सामानाधिकरण्यमें तो कोई भी बाधक नहीं है वा=तथा नीलादिनिष्ठ अधिष्ठानत्व उपपन्न भी नहीं है । क्यों ? प्रागसत्त्वात्=घटादिकी उत्पत्तिसे पूर्व नीलादिका असत्त्व होनेसे नीलादिको अधिष्ठानत्व नहीं बन सकता है; क्योंकि अधिष्ठानमें कल्पितसे पूर्वभावित्वका नियम है । 'नीलपीतादि एक एक व्यक्ति हैं और नित्य हैं इस मतसे तो नीलादिका सत्त्व पूर्वमें हो सकता है तहां कहते हैं नीलेति । नीलपीतादि जो प्रातिस्विक=असाधारण व्यक्तियाँ तद्रूप अनन्त अधिष्ठानोंकी कल्पना करनेमें गौरव है, नीलपीतादिको अधिष्ठेय घटादिके तुल्यही योगक्षेमत्त्व है=घटादिके साथ जन्म देखनेमें आता है और घटादिकी निवृत्तिके साथ निवृत्ति देखनेमें आती है अतः अधिष्ठेयके समानसत्ताक हैं और अधिष्ठेयसे विषयसत्ताक ही अधिष्ठान होता है । 'मिथ्या रूप्यम्' 'असन्नृशृङ्गम्' इत्यादिमें मिथ्यात्व तथा असत्त्व इन दोनोंको तो अधिष्ठानत्वकी शङ्का भी नहीं है । शून्यवादकी आपत्ति होनेसे=रूप्यादिका अधिष्ठान यदि मिथ्याभूत होगा तो प्रपञ्चभ्रमका भी अधिष्ठान मिथ्या होगा तथा च शून्यापत्ति होगी; तत्र च=शून्यवादमें तो अनुपपत्ति कही है और कही भी जायगी, यत्तु=यह जो कहा कि 'सत्यं ज्ञानमनन्तम्' यहांपर भी 'सत्यं' यह अधिष्ठानका अनुवेध होगा । तन्न=सो यह कथन ठीक नहीं है क्यों ? यतः तत्र=ब्रह्ममें सत्तासम्बन्धसे सत्त्व नहीं है । किन्तु स्वरूपसेही है इति=इस हेतुसे उक्त दोषका अनवकाश होनेसे; एवम्=उक्त रीतिसे घटादिमें भी स्वरूपसेही तथात्व=सत्प्रतीतिविषयत्व रहो नच=नहीं क्यों ? पूर्व ही निराकृत होनेसे ।

इति सरलायां 'सन् घट' इति प्रत्यक्षेऽधिष्ठानानुवेधनिरूपणम् ॥

अथ जात्युपक्रमादिन्यायैः प्रत्यक्षप्राबल्यनिरासः ।

किञ्च निश्चितप्रामाण्यमेव प्रत्यक्षमितरबाधकं भवेत्, नचात्र प्रामाण्यं निश्चितम्, आगमविरोधात् अनुमानविरोधात् भाविबाधाभावानिर्णयाच्च । ननु प्रत्यक्षमेव प्रबलमनुमानागमबाधकम्, नानुमानागमौ । प्रत्यक्षाप्रामाण्ये तद्विरोधाभावेनानुमानागमयोः प्रामाण्यम्, तयोः प्रामाण्ये च तद्विरोधात् प्रत्यक्षाप्रामाण्यमित्यन्योन्याश्रयात् । नहि प्रत्यक्षस्य प्रामाण्येप्येवमन्योन्याश्रयः, तस्यानपेक्षत्वात् । इति चेन्न, चन्द्रतारकादिपरिमाणप्रत्यक्षे अनुमानागमविरोधेन तस्याप्रामाण्यदर्शनात् । तेनापि स्वप्रामाण्यसिद्ध्यर्थमितराविरोधस्यावश्यमपेक्षणीयत्वात् । तथा चान्योन्याश्रयतुल्यत्वात् परस्परविरोधेन प्रामाण्यसन्देहे सत्यनाप्तप्रणीतत्वादिना प्रमाजनकत्वव्याप्तैर्वेदप्रामाण्यनिश्चये जाते तेन स्वतःसम्भावितदोषस्य प्रत्यक्षस्य बाधात् । अस्मन्मते क्वान्योन्याश्रयः, अन्यथा देहात्म्यैक्यप्रत्यक्षबुद्ध्या बाधाद्देहभिन्नत्वमप्यात्मनो नागमानुमानाभ्यां सिद्ध्येत् ।

अथ सरलायां जात्युपक्रमादिन्यायैः प्रत्यक्षप्राबल्यनिरासः ।

किञ्च=और भी कहना है; निश्चित है प्रामाण्य जिसका एवम्भूत जो प्रत्यक्ष वह प्रत्यक्ष ही इतरका बाधक होता है–सामान्यप्रत्यक्ष नहीं । अत्र=' घटः सन् ' इत्यादिमें तो प्रामाण्यनिश्चित नहीं है; क्यों ? आगमके साथ विरोध होनेसे= 'नेहनानास्ति किञ्चन' (बृ०।८।८।१९) अतोऽन्यदार्तम्, 'तरति शोकमात्मवित्' (छा०।७।१।१३) इत्यादि प्रपञ्चमें मिथ्यात्वबोधक आगमके साथ विरोध होनेसे, अनुमानके साथ विरोध होनेसे=प्रपञ्चो मिथ्या जडत्वात् परिच्छिन्नत्वात्, दृश्यत्वात् इत्यादि अनुमानोंके साथ विरोध होनेसे, आगे होनेवाला जो अविद्योच्छेदक विशुद्ध ब्रह्मज्ञानसे अविद्यातत्प्रयुक्तका विच्छेदरूप बाध तादृशबाधप्रतियोगिक अभावके अनिर्णयसे भी=आगे अनात्मका बाध नहीं होगा, ऐसे निर्णयके न होनेसे भी प्रत्यक्षके प्रामाण्यका निश्चय नहीं है । शङ्कते नन्विति । प्रत्यक्ष ही प्रबल है अतएव अनुमान तथा आगमका बाधक है नानुमानागमौ=अनुमान तथा आगम प्रत्यक्षसे प्रबल नहीं हैं अतः ये दोनों प्रत्यक्षके बाधक नहीं है, अनुमान तथा आगमसे विरुद्धार्थावगाहि प्रत्यक्षमें यदि अप्रामाण्य मानोंगे तो अन्योन्याश्रय होगा । और अनुमान तथा आगमसे विरुद्धार्थावगाहि प्रत्यक्षमें यदि प्रामाण्य मानते हैं । तब अन्योन्याश्रय नहीं है इस अर्थको शङ्किता दिखलाता है प्रत्यक्षेति । प्रत्यक्षाप्रामाण्ये=प्रत्यक्षनिष्ठ अप्रामाण्यके होनेपर तद्विरोधाभावेन=अप्रमाणभूत प्रत्यक्षके साथ विरोधके न होनेसे अनुमान तथा आगम इन दोनोंका प्रामाण्य होता है=इन दोनोंके प्रामाण्यकी सिद्धि होती है, तयोः प्रामाण्ये च=अनुमान तथा आगन एतदुभयनिष्ठ प्रामाण्य होनेपर तद्विरोधात्=ताभ्याम् अनुमानागमाभ्याम् विरोधात् तिन प्रामाण्यवदनुमानागमके साथ विरोध होनेसे प्रत्यक्षाप्रामाण्यम्=प्रत्यक्षनिष्ठाप्रामाण्य सिद्ध होता है, अनुमानागमविरुद्धार्थावगाहिप्रत्यक्षनिष्ठप्रामाण्यमें उक्तप्रकारसे अन्योन्याश्रय नहीं हैं, क्यों ? तस्य=

प्रत्यक्षको स्वनिष्ठप्रामाण्यके लिए अनपेक्ष होनेसे=जैसे अनुमानागम स्वनिष्ठप्रामाण्यसिद्ध्यर्थं प्रत्यक्षाविरोधकी आकाङ्क्षा करते हैं तैसे प्रत्यक्ष स्वनिष्ठप्रामाण्यसिद्ध्यर्थं अनुमानागमके अविरोधकी आकाङ्क्षा नहीं करता है। इति चेन्न, ऐसा यदि कहो तो नहीं कहना, क्यों? चन्द्रतारकादिसमवेतपरिमाणप्रत्यक्षमें अनुमानागमके साथ विरोध होनेसे तस्य=तिस प्रत्यक्षके अप्रामाण्यके दर्शनसे तेनापि=प्रत्यक्षसे भी स्वनिष्ठप्रामाण्यसिद्ध्यर्थं इतराविरोधको अवश्य अपेक्षणीय होनेसे, तथा च=फलतः अन्योन्याश्रयको उभयपक्षमें तुल्य होनेसे परस्परविरोधसे अप्रामाण्यका सन्देह होनेपर अनाप्ताप्रणीतत्वादिके साथ प्रमाजनकत्वकी व्याप्तिसे वेदनिष्ठप्रामाण्यका निश्चय होजानेपर तेन=निश्चितप्रामाण्यकवेदसे स्वतः सम्भावित हैं दोष जिसमें एवम्भूत प्रत्यक्षके बाधसे हमारे मतमें कहां अन्योन्याश्रय है=अन्योन्याश्रय उभय रीतिसे तुल्य है अतः परस्परमें प्रत्यक्ष तथा आगमके विरोधसे=प्रपञ्चमें प्रत्यक्ष प्रमाण सत्यत्वका अवगाहन करता है और आगम मिथ्यात्वका अतः दोनोंका विरोध है अतः दोनोंमें प्रामाण्यका संशय हुआ पश्चात् (यत्र यत्र अनाप्ताप्रणीतत्वं तत्र तत्र प्रमाजनकत्वम्) इत्याकारक पूर्वगृहीत व्याप्तिका वेदमें अनाप्ताप्रणीतत्वरूप व्याप्यको देखकर स्मरण हुआ पश्चात्प्रमाजनकत्वरूप प्रामाण्यका वेदमें निश्चय हुआ तिसनिश्चयसे शुक्तिरूप्य नभोनैल्य रज्जुसर्प चन्द्रतारकादिगतपरिमाण इत्यादि अनेकस्थलमें बाध देखनेसे स्वतः सम्भावित है दोष जिसमें ऐसा जो प्रत्यक्ष है उस प्रत्यक्षका बाध होता है अतः हम लोगोंके मतमें अन्योन्याश्रय नहीं है, भ्रम प्रमाद विप्रलिप्सा अपाटव ये चारों दोष या यथासम्भव एक दो तीन जिस वक्तामें रहते हों उसे अनाप्त कहा जाता है, और एवम्भूत अनाप्तसे उच्चरित वाक्यका नाम है—अनाप्तप्रणीत, और अनाप्तप्रणीतवाक्यसे भिन्न जो वाक्य है उसे कहते हैं—अनाप्ताप्रणीत, अर्थात् आप्तसे प्रणीत हो या न हो किन्तु अनाप्तप्रणीतसे भिन्न हो। अन्यथा=सर्वथा प्रत्यक्षकाही प्राबल्य माना जाय और प्रत्यक्षसे विरुद्धार्थावगाहि अनुमानागमका प्रत्यक्षसे बाध ही माना जाय तब तो देहात्मैक्यप्रत्यक्षबुद्ध्या=गौरोऽहम्, श्यामोऽहम्, इत्यादि देह तथा आत्मा इन दोनोंके ऐक्य=अभेदको विषय करनेवाली जो प्रत्यक्ष बुद्धि है उस प्रत्यक्ष बुद्धिसे बाधात्=अनुमान तथा आगम इन दोनोंका बाध होनेसे। आत्माका देहसे भिन्नत्व भी आगम तथा अनुमान इन दोनोंसे सिद्ध न होगा॥

ननु प्रत्यक्षमनुमानाद्यपेक्षया जात्यैव प्रबलम्, कथमन्यथा औष्ण्यप्रत्यक्षेण वह्निशैत्यानुमितिप्रतिबन्धः। नच तत्रोपजीव्यत्वनिबन्धनं प्रत्यक्षस्य बाधकत्वम्, धर्म्यादिश्चक्षुरादिनैव सिद्धेस्त्वचोऽनुपजीव्यत्वात्। किञ्च प्रत्यक्षस्य प्राबल्यमनुमानाद्यगृहीतरेखोपरेखादिग्राहकत्वादनुमानाद्यनिवर्त्तितदिङ्मोहादिनिवर्त्तकत्वाच्च इति चेन्न, त्वाचप्रत्यक्षस्याप्युपजीव्यत्वेनैव शैत्यानुमितिप्रतिबन्धकत्वसम्भवात्, चक्षुरादिना धर्म्यादिग्रहेऽपि त्वचं विना साध्यप्रसिद्धेरभावात्, तथाच न जात्याप्राबल्ये मानमस्ति तदगृहीतग्राहित्वमपि न प्राबल्ये प्रयोजकम्, प्रत्यक्षागृहीतधर्मादिग्राहकत्वेन परोक्षप्रमाणस्यैव प्राबल्यापत्तेः। नाप्य-

नुमानाद्यनिर्वर्त्तितदिङ्मोहादिनिवर्त्तकत्वेन प्रावल्यम्, एतावता हि वैधर्म्यमात्रं सिद्धम्। नच तावतेतरप्रमाणपेक्षया प्रावल्यं भवति, अन्यथा त्वाचप्रत्यक्षानिवर्त्तितवंशोरगभ्रमनिवर्त्तकत्वाच्चक्षुपोऽपि त्वगपेक्षया प्रावल्यं स्यात्, ततश्च चित्रनिम्नोन्नतज्ञानस्य चाक्षुषस्य तद्विरोधित्वाचज्ञानाद्बाधो न स्यात्। प्रत्युतागमस्यैव सर्वतः प्रावल्यं स्मार्य्यते, प्रावल्यं आगमस्यैव जात्या तेषु त्रिषु स्मृतम्। इति। नच तद्वैदिकार्थविपयमिति वाच्यम्; अद्वैतस्यापि वैदिकार्थत्वात्। क च प्रत्यक्षतः प्राप्तमनुमानागमबाधितमिति तु परीक्षितप्रामाण्यप्रत्यक्षविपयम्॥

शङ्कते नन्विति। प्रत्यक्ष अनुमानादिकी अपेक्षासे जात्यैव=प्रत्यक्षत्वेन ही प्रवल है अनुमानविरुद्धत्वादि रूपसे नहीं, अन्यथा=यदि जात्या प्रावल्य न हो तो वह्निनिष्ठऔष्ण्यके प्रत्यक्षसे वह्निपक्षक शैत्यानुमितिका प्रतिवन्ध कैसे होगा=यदि जातिसे=प्रत्यक्षत्वसे ही प्रत्यक्ष अनुमानादिसे प्रवल न हो तो 'वह्निः शीतः कृतकत्वात् हिमखण्डवत्' इत्याद्याकारक अनुमानसे जायमान 'वह्निः शीतः' इत्याकारक अनुमितिका 'वह्निरुष्णः' इस औष्ण्यप्रत्यक्षसे प्रतिबन्ध कैसे होगा। तत्र=उक्त स्थलमें उपजीव्यत्वनिवन्धन=धर्म्यादिज्ञापकविधया अनुमानापेक्षणीयत्वप्रयुक्त प्रत्यक्षको बाधकत्व है। नच=नहीं है, क्यों? धर्मी आदिको चक्षुरादिसे ही सिद्ध होनेसे त्वचः=त्वाचौष्ण्यप्रत्यक्षको अनुपजीव्य होनेसे, प्रयोजकका नाम उपजीव्य है और प्रयोज्यका नाम उपजीवक है, प्रयोजक शब्द साक्षात्परम्परासाधारणकारणताश्रयका वाचक है। तथा च साक्षात्कारण हो या परम्परासे कारण हो दोनोंका नाम उपजीव्य है और कार्यका नाम प्रयोज्य तथा उपजीवक है, प्रस्तुतमें त्वाचप्रत्यक्ष शैत्यानुमितिका प्रतिवन्धक है वह शैत्यानुमितिका उपजीव्य नहीं क्योंकि शैत्यानुमितिमें वह्न्यादिरूपधर्म्यादिका ज्ञान अपेक्षित है। वह चाक्षुपादिरूप है त्वाच प्रत्यक्षरूप नहीं। तथा च उपजीव्यत्वेन यहांपर त्वाच प्रत्यक्षको अनुमितिके प्रति प्रतिवन्धकता नहीं किन्तु प्रत्यक्षत्वेन। किञ्च=प्रत्यक्षके प्रावल्यमें और भी कहना है, प्रत्यक्षस्यप्रावल्यम्=प्रत्यक्षका अनुमानादिकी अपेक्षासे प्रावल्य है। क्यों? अनुमानादिसे अगृहीत जो रेखोपरेखादि तद्ग्राहकत्व होनेसे। च=और अनुमानादिसे अनिवर्त्तित जो दिङ्मोहादि तन्निवर्तकत्व होनेसे=साध्यगत अनुमानादिसे अगृहीत धर्मविशेषोंका नाम रेखोपरेखादि है—यह अर्थ सर्वजनीनानुभव सिद्ध है कि धूमादि—लिङ्गसे ज्ञात वह्निमें अल्पत्व बहुत्व खादिरत्वादि विशेषोंका ज्ञान प्रत्यक्ष विना नहीं होता है। तैसे किसीको प्रतीचीमें प्राचीत्वका भ्रम होगया तहां 'नेयं प्राची किन्तु प्रतीची' इत्यादि आप्तवाक्यजन्यज्ञानके तथा नेयं प्राची सूर्योदयशून्यत्वात् इत्यादि अनुमानजन्यज्ञानके होनेपर भी सूर्य्योदयादिके प्रत्यक्ष विना दिङ्मोहकी निवृत्ति नहीं होती है, तथा च तदगृहीतग्राहित्वेन तदनिवर्त्तितनिवर्तकत्वेन प्रत्यक्षको प्रावल्य है, इति चेन्न, ऐसा यदि कहो तो नहीं कहना, क्यों? त्वाच प्रत्यक्षको भी उपजीव्यत्वेन ही शैत्यानुमितिकेप्रति प्रतिबन्धकत्वका सम्भव होनेसे चक्षुरादिसे धर्म्यादिका ग्रह=ज्ञान होनेपरभी सा-

ष्यप्रसिद्धेः=अनौष्ण्यरूपशैत्यज्ञानका त्वचंविना=त्वाचरूप औष्ण्यप्रत्यक्षके विना अभावात्= अभाव होनेसे तथाच जात्या प्राबल्यमें कोई प्रमाण नहीं है, तदगृहीतग्राहित्व भी प्राबल्यमें प्रयोजक नहीं है क्यों? प्रत्यक्षसे अगृहीतधर्मादिग्राहकत्वेन परोक्षप्रमाणको ही प्राबल्यकी आपत्तिसे–यागादिमें स्वर्गादिकी साधनता प्रत्यक्षसे गम्य नहीं है; किन्तु मीमांसकोंकी रीतिसे केवल आगमगम्य है, और न्यायकी रीतिसे आगमसे तथा यागो मदिष्टसाधनम् मत्कृतिविषयत्वेन मदाप्तेन इष्यमाणत्वात् यन्मत्कृतिविषयत्वेन मदाप्तेन इष्यमाणं भवति तन्मदिष्टसाधनं भवति, यथा मत्पित्रा मत्कृतिविषयत्वेन इष्यमाणं स्वाद्वन्नम्। इत्यादि अनुमानोंसे गम्य है, अतः प्रत्यक्षा-गृहीतग्राहित्व होनेसे परोक्ष प्रमाणको ही प्राबल्य होगा। अनुमानादिसे अनिवर्त्तितदिङ्मो-हादिनिवर्त्तकत्वेन भी प्राबल्य नहीं है। एतावता,–इतने कार्यसे प्रत्यक्षमें वैधर्म्यमात्रसिद्ध होता है तावता=वैधर्म्यमात्रसे इतरप्रमाणापेक्षया प्राबल्य नच=नहीं भवति=होता है; अन्यथा=वैधर्म्यमात्रसेही प्राबल्य होतो त्वाचप्रत्यक्षसे अनिवर्त्तित जो वंशमें उरगभ्रम तादृश-भ्रमनिवर्त्तकत्व होनेसे चक्षुको भी त्वगपेक्षासे प्राबल्य होगा ततश्च=चक्षुको प्राबल्य होनेसे तो चित्रमें निम्नोन्नतविषयकचाक्षुषज्ञानका तद्विरोधि=उक्तचाक्षुषज्ञानविरोधित्वाचज्ञानसे बाध नहीं होगा। बाँसमें जहां पर सर्पभ्रम होता है वहांपर त्वचासे सर्पभ्रमकी निवृत्ति नहीं होती है क्योंकि बाँसभी छूनेसे कुछ शीत मालूम देता है तैसेही सर्पभी मालूम देता है, चित्रस्थ पर्वतादिमें उन्नतत्वका और चित्रस्थगर्तादिमें निम्नताका चाक्षुष ज्ञान होता है, परन्तु चित्र पर हाथ फेरनेसे मालूम होता है कि पर्वतगर्तादिमें निम्नोन्नतत्वप्रयुक्त कोई भेद नहीं है यहां त्वाचज्ञानसे उपरोक्त चाक्षुष ज्ञानका बाध हो जाता है। प्रत्युत=उलटा आगमका ही सर्वतः= प्रत्यक्षादिसे प्राबल्य स्मृत कराया जाता है। तेषु त्रिषु=प्रत्यक्षादि तीन प्रमाणोंमें जात्या आगमका ही प्रामाण्य स्मृत है। यह वाक्य वैदिकअर्थविषयक है अतः आपके इष्टका साधक नहीं है इति नच वाच्यम्। क्यों? अद्वैतको भी वैदिकार्थ होनेसे। प्रत्यक्षतः=प्रत्यक्षप्रमाणसे ज्ञात अनुमानागमबाधितं क्व=अनुमान तथा आगमसे बाधित कहां होता है अर्थात् कहीं भी नहीं होता है=प्रत्यक्षसे ज्ञात अर्थका अनुमानागमसे कहीं पर भी बाध नहीं होता है यह जो प्राचीनोंका कथन है वह परीक्षित है प्रामाण्य जिसका ऐसा जो प्रत्यक्ष तादृशप्रत्यक्षविषयक है, अन्यथा देहात्मैक्यादिका अनुमानादिसे बाध नहीं होगा।

ननु प्रत्यक्षस्यासञ्जातविरोधित्वादुपक्रमन्यायेनैव प्राबल्यम्। उक्तं हि असञ्जात-विरोधित्वादर्थवादो यथाश्रुतः। आस्थेयस्तद्विरुद्धस्य विध्युद्देशस्य लक्षणा। इति चेन्न, यत एकवाक्यस्थपरस्परसापेक्षपदत्वेन उभयोः साम्ये सत्युपक्रमस्थवेदपदानुरोधेनोप-संहारस्थर्गादिपदानां मन्त्रमात्रवाचिनां कृत्स्नवेदपरत्वे निर्णीतेऽपि न प्रकृते तन्न्यायः सम्भवति, उभयोः साम्याभावात्, गृहीतप्रमाणभावश्रुत्यपेक्षया भ्रमविलक्षणत्वेना-निश्चितस्य प्रत्यक्षस्य न्यूनबलत्वात्, अन्यथा इदं रजतमिति भ्रमोऽपि इयं शुक्तिरिति आप्तोपदेशापेक्षया प्रबलं स्यात्।

प्रकारान्तरसे प्रत्यक्षप्राबल्यकी शङ्का की जाती है। नन्विति। प्रत्यक्षको असञ्जात-विरोधित्व होनेसे उपक्रमन्यायसे ही प्राबल्य है। उक्तं हि=पूर्वाचार्य्योंने कहा है, असञ्जात-विरोधी होनेसे अर्थवाद यथाश्रुत=आस्थेयः=अङ्गीकार्य है, तद्विरुद्धस्य=असञ्जातविरोधि अर्थवादसे विरुद्ध विध्युद्देश्यस्य=विधिवाक्यकी लक्षणा है=विधिवाक्यघटकऋगादिपद लाक्षणिक हैं=इस अर्थका निरूपण पूर्वमीमांसाके तृतीय अध्यायके तृतीयपादके आदिमें आया है, प्रकृतार्थवंशद्यार्थ थोडासा यहांपर लिखते हैं। ज्योतिष्टोम नामक वेदमें एक प्रसिद्ध याग है इसीका दूसरा नाम सोमयाग भी है और लतासाध्ययावत्यागोंका इसे प्रकृति भी कहते हैं, एवम्भूत ज्योतिष्टोमके प्रकरणमें वेदमें आया है, प्रजापतिरकामयत प्रजाः सृजेयेति। सतपोऽत-प्यत तस्मात्तेपानात्त्रयो देवा असृज्यन्ताग्निर्वायुरादित्यस्तेतपोऽतप्यन्त तेभ्यस्तेपानेभ्यस्त्रयोवेदा असृज्यन्ताग्नेर्ऋग्वेदो वायोर्यजुर्वेद आदित्यात्सामवेदः। अर्थ–प्रजापति=परमात्मा इच्छा करता भया कि प्रजाको उत्पन्न करूं स=वह प्रजापतिरूप परमात्मा विचाररूप तपको तपता भया तस्मात्तेपानात्=उस तपोविशिष्ट प्रजापतिसे तीन देव उत्पन्न हुए=अग्नि वायु आदित्य ते= वे तपको तपते भये, उन तपोविशिष्टोंसे तीन वेद उत्पन्न हुए अग्निसे ऋग्वेद वायुसे यजुर्वेद आदित्यसे सामवेद। इस रीतिसे प्रारम्भकर=उपक्रम कर फिर कहा कि उच्चैर्ऋचा क्रियते, उपांशु यजुषा उच्चैः साम्ना। तहां यह संशय होता है कि उच्चैस्त्वादि धर्म क्या ऋगादिमन्त्रोंके हैं या ऋग्वेदादिके हैं। तहां प्रथम पक्षमें ऐसा अर्थ होगा कि ऋङ्मन्त्रेण यत्क्रियते तत् उच्चैस्त्वगुणक-विशिष्ट ऋङ्मन्त्रसे कर्त्तव्य है; यजुर्मन्त्रसे जो कर्त्तव्य है वह उपांशुत्वविशिष्ट यजुर्मन्त्रसे कर्त्तव्य है, साममन्त्रसे जो कर्त्तव्य है वह उच्चैस्त्वगुणकविशिष्ट साममन्त्रसे कर्त्तव्य है, यदि ऋग्वेदादिके धर्म होंगे तब तो ऋग्वेदेन यत्क्रियते=विधीयते तदुच्चैस्त्वगुणकेन कर्त्तव्यम् ऐसा व्याख्यान होनेपर ऋग्वेद विहितकर्मके साथ तो साक्षात् उच्चैस्त्वका अन्वय नहीं हो सकता है, अतः ऋग्वेदविहितकर्माङ्गभूतमन्त्रोंमें उच्चैस्त्व पर्यवसित होगा इसी प्रकारसे यजुर्वेद तथा सामवेदमें भी आवापोद्वापसे समझना चाहिए। यहांपर सन्देहके होनेका कारण उपक्रममें वेदपदका श्रवण और उपसंहारमें ऋगादि पदका श्रवण है, वेदशब्द मन्त्रब्राह्मणसमुदायात्मक ग्रन्थ-विशेषका वाचक है किसी एक मन्त्रवाक्यका या किसी एक ब्राह्मणवाक्यका वाचक नहीं क्योंकि ऐसा प्रयोग देखनेमें नहीं आता है अर्थात् वेदके एक दो या तीन वाक्योंका अध्ययन कर वेदका अध्ययन हमारा समाप्त हुआ है ऐसा लोग नहीं मानते हैं अतः समुदायका नाम वेद है। आजकल कितनेही शास्त्रीयज्ञानशून्य अल्पज्ञ लोग संहिताओंका नामही वेद बताते हैं ब्राह्मणोंका नहीं ऐसे मूर्खोंके मतका निरूपण तथा खण्डन (ईश्वरवाद) नामक ग्रन्थमें किया जायगा ऐसे साधारण लोगोंके मतको यहां स्थान देना अनुचित है। ऋगादि शब्द मन्त्रमात्रके वाचक हैं। अतः उपक्रम तथा उपसंहारमें विप्रतिपत्ति होनेसे ऐसा संशय होता है। क्या उपसंहारस्थ जो विधिवाक्य है तदधीन उपक्रमस्थार्थवादवाक्यगतवेदपद वेदैकदेशमन्त्रपर है, या उपक्रमगतअर्थवादवश उपसंहारस्थ ऋगादिपद ऋगादिप्रायवेदपर है; तहां पूर्वपक्ष यह है कि मुख्य होनेपर भी गुणत्व तथा अनुवादत्वके होनेसे अर्थवादमें

लक्षणा है=अर्थात् अर्थवादस्थ वेदपद वैदेकदेशमन्त्रपरकहै, और प्रधानत्व होनेसे तथा अप्राप्तविषयत्व होनेसे विध्युद्देश जघन्य भी है तो भी उसे लाक्षणिक मानना ठीक नहीं। तथा च उच्चैस्त्वादिधर्म मन्त्रकेही हैं वेदके नहीं। ऐसा पूर्वपक्ष प्राप्त हुआ तब कहते हैं—लब्धात्मनः प्रधानस्य बलीयस्त्वं गुणाद्भवेत्। विध्युद्देशस्त्वलब्धात्मा लब्धात्मानं न बाधते। अर्थ—लब्ध है स्वरूप जिसको एवम्भूत जो प्रधान है उस प्रधानको गुण पदार्थसे बलीयस्त्व रहता है, और यहां तो अर्थवादकालमें विध्युद्देश अलब्धात्मा है। अतः अपनेसे पूर्वलब्धात्मा अर्थवादको विध्युद्देश नहीं बाध सकता है। उपक्रमगतवेदशब्द असञ्जात विरोधी होनेसे यथाश्रुतार्थपरही है। यह अवधारण प्रथम ही हो जाता है, यथाश्रुतार्थपरत्वका अवधारण होनेके बाद उपसंहारस्थ ऋगादिपद संजातविरोधिज्ञानसे यथाश्रुतार्थ होनेपर एक वाक्यताको नहीं प्राप्त होता हुआ उपक्रमस्थअर्थवादानुगुणवेदपरत्वेन ही स्वरूपका लाभ करता है अर्थात् वेदपरत्वेनही अर्थवत् होता है अन्यथा नहीं यतः अर्थवादका बाधक हो, वेदोंके उपक्रममेंही किञ्चित्का विधान करेगा ऐसा ज्ञान हुआ है; परन्तु वह विधेय क्या है यह अर्थ अनवगत है और अपेक्षित भी है, अतः विधिवाक्यगत भी ऋगादि शब्द अवगतविषयत्व होनेसे अनुवादही है। अतः लक्षणाका सहन करता है अतः उच्चैस्त्वादि वेदधर्म हैं। तथाच असंजातविरोधित्वसे जैसे उपक्रमको उपसंहारकी अपेक्षा प्राबल्य है, वैसेही प्रत्यक्षसिद्ध पदार्थोंको पक्षकर अनुमान प्रयोक्तव्य है, जब यों हुआ तब तो 'सन् घट' इत्यादि प्रत्यक्षको भी असंजातविरोधित्व होनेसे अद्वैतागमादिकी अपेक्षासे प्राबल्य है; इति चेन्न; ऐसा यदि कहो तो नहीं कहना, क्योंकि उभयोः=ऋग्वेदादि तथा ऋगादि इन दोनों पदोंको एक वाक्यस्थपरस्परसापेक्षपदत्व होनेसे साम्य होनेपर उपक्रमस्थवेदपदानुरोधसे उपसंहारस्थ मन्त्रमात्रवाचिऋगादि पदोंको मन्त्रब्राह्मणसमुदायात्मककृत्स्नवेदपरत्वनिर्णीत होनेपर भी प्रकृतमें उस न्यायका सम्भव नहीं है। क्यों? उभयके साम्यका अभाव होनेसे (उभयशब्दसे प्रत्यक्ष तथा आगम लेना) गृहीत है प्रमाणभाव=प्रामाण्य जिसका एवम्भूता जो श्रुति तादृशश्रुत्यपेक्षया भ्रमविलक्षणत्वेन अनिश्चित जो प्रत्यक्ष उस प्रत्यक्षको न्यूनबलत्व होनेसे, अन्यथा=साम्य न होनेपर भी उपक्रमस्थतामात्रसे बलवत्त्वका स्वीकार होनेपर (इदं रजतम्) यह भ्रम भी आप्तोपदेशकी अपेक्षा प्रबल हो जायगा।

एतेन लिङ्गाच्छ्रुतेरिव शीघ्रगामित्वात् प्रत्यक्षस्य प्राबल्यम्। तदुक्तम् प्रत्यक्षे चानुमाने च यथा लोके बलाबलम्। शीघ्रमन्थरगामित्वात्तथैव श्रुतिलिङ्गयोः, इत्यपास्तम्। परीक्षितस्य मन्थरगामिनोऽपि प्रबलत्वात्, नच यदाहवनीये जुहोति, इत्यस्मान्पदे जुहोतीत्यस्य विशेषविषयत्वेन प्राबल्यवत्. घटविषयसत्त्वग्राहिणः प्रत्यक्षस्य सामान्यतो द्वैतनिषेधकश्रुत्यपेक्षयाप्राबल्यमितिवाच्यम्, सामान्यविशेषन्यायस्य निश्चितप्रमाणभावोभयविषयत्वात्। अन्यथा, अयं गौरश्व इत्यादेरपि गौरश्वोन भवतीत्यादितः प्राबल्यं भवेत्।

एतेन बाधकत्वेनाभिमत प्रमाणको न्यूनबलत्व होनेसे वक्ष्यमाण प्रतिवादीका कथन भी अपास्त हुआ ऐसा सम्बन्ध है। लिङ्गसे श्रुतिकी नाईं शीघ्रगामित्व होनेसे प्रत्यक्षको प्राबल्य है, सो कहा है=लोकमें प्रत्यक्ष तथा अनुमानमें जैसा बलाबल है., तथैव=तैसा ही शीघ्रमन्थरगामित्व होनेसे श्रुति तथा लिङ्ग इन दोनोंका भी है. इत्यपास्तम्=यह खण्डित हुआ क्यों? परीक्षितमन्थरगामीके भी प्राबल्यसे=पूर्वमीमांसाशास्त्रके तृतीयअध्यायमें विनियोजक षट्प्रमाणोंका निरूपण कर षट्प्रमाणोंके परस्पर बलाबलका विचार किया है. तहां तृतीयाध्यायके तृतीयपादके सप्तमाधिकरणमें यह सूत्र है., श्रुति-लिङ्ग-वाक्य-प्रकरण-स्थान-समाख्यानां समवाये पारदौर्बल्यमर्थविप्रकर्षात्। अर्थ. श्रुतिलिङ्गका, लिङ्गवाक्यका, वाक्यप्रकरणका, प्रकरणस्थानका, स्थानसमाख्याका, समवाये=एकविषयमें सम्पात होनेपर पारदौर्बल्यम्=पूर्वपूर्वकी अपेक्षासे पारस्य=परको=उत्तर उत्तरको दौर्बल्य है. क्यों? अर्थस्य=अङ्गताबोधरूप प्रयोजनका विप्रकर्ष=व्यवधान होनेसे। यहांपर प्रकृतोपयोगिश्रुतिलिङ्गके विरोधका उदाहरण दिखलाते हैं-अग्निचयनप्रसङ्गमें ऐन्द्र्या गार्हपत्यमुपतिष्ठते यह अङ्गताविनियोजक वाक्य श्रुत है., लकारका व्यत्यय करनेसे इस विधिवाक्यका ऐसा अर्थ होता है, ऐन्द्र्या गार्हपत्योपस्थानं कुर्यात्। प्रवक्षणा अमिनत्पर्वतानां वज्रं जघन्वान् नेन्द्रसश्चित् इत्यादि इन्द्रप्रकाशिका ऋचाका नाम ऐन्द्री है इस ऐन्द्री ऋचासे इन्द्रका उपस्थान करना या गार्हपत्य नामक अग्निका., ऐसा संशय होनेपर पूर्वपक्ष है कि वस्तुशक्त्यनुसारी हि शब्दः सर्वः प्रवर्त्तते। वस्तुनिरूपित शक्तिका अनुसरणकरता हुआही सर्व शब्द प्रवृत्त होता है। इसन्यायसे., अशक्यार्थमें तो किसी भी वस्तुका विनियोग नहीं किया जासकता है. अतः (ऐन्द्र्या) यह तृतीयाश्रुति भी ऐन्द्रीका ऐन्द्रीशक्यमें ही विनियोगकरेगी, और जिसकी जिसमें शक्ति रहती है वह उसका शक्य होता है, और ऐन्द्रीकी शक्ति इन्द्रमें है अतः यह तृतीयाश्रुति ऐन्द्रीका इन्द्रोपस्थानमें ही विनियोग करेगी., गार्हपत्यपद भी लक्षणादिसे इन्द्रका ही बोध करेगा। सिद्धान्त दिखलाते हैं, जहांपर शब्दका सर्वथा असामर्थ्य हो वहींपर विनियोग नहीं बनता है, और इन्द्रशब्दका तो गार्हपत्यमें भी गौणसामर्थ्य है. जैसाकि पूर्वाचार्योंने कहा भी है-गार्हपत्येतु सामर्थ्यं गौणं मन्त्रस्य विद्यते। और मन्त्रस्थ इन्द्र शब्दका या विनियोजकवाक्यघटकब्राह्मणस्थगार्हपत्य शब्दका अमुख्यार्थत्व तो अवश्य कल्पनीय ही है=दोमेंसे एककी अमुख्यार्थता अनिवार्य्य है। तहां मन्त्रस्थ इन्द्रशब्दकी ही अमुख्यार्थता युक्त है विधिवाक्यमें लक्षणाको अन्याय्य होनेसे यहांपर ऐसी शङ्का नहीं करना कि-विधिवाक्यानुसार ऐन्द्री ऋचाका लक्षणासे गार्हपत्योपस्थानमें विनियोग होनेपर भी इन्द्रप्रकाशनशक्तिरूपलिङ्गात्मिका मुख्यवृत्तिसे इन्द्रोपस्थानमें भी विनियोगहो।' क्योंकि 'गार्हपत्यमुपतिष्ठते' इस प्रत्यक्ष श्रुतिसे शीघ्रही मन्त्रके विनियोगके हो जानेपर और तावतैव मन्त्राम्नानको चरितार्थ हो जानेसे; मन्थरगामिलैङ्गिक विनियोगकी कल्पना अयुक्त है तथा च इस ऋचासे गार्हपत्यका ही उपस्थान करना चाहिए, इसी रीतिसे प्रकृतमें व्याप्त्यादिसापेक्षानुमानादिकी अपेक्षासे शीघ्र अर्थावगाही होनेसे प्रत्यक्षको प्राबल्य है यह पूर्वपक्ष है, सिद्धान्तीका समाधान यह है कि जो प्रमाणत्वेन निश्चित हो चुका है वह आकाङ्क्षाव्याप्त्यादिनिश्चायक

मानान्तरसापेक्षत्वप्रयुक्तविलम्बफलकरूप मन्थरगामी भी हो तो अपरीक्षित मानकी अपेक्षासे प्रबल हैं, श्रुति प्रमाणत्वेन निश्चित है, और प्रत्यक्ष नहीं अतः श्रुतिको स्वप्रतिपाद्यार्थबोधनमें श्रवणादिरूप प्रत्यक्षकी अपेक्षा होनेपर भी प्राबल्य है प्रत्यक्षको नहीं। विशेषविषयत्वेन प्रत्यक्षके प्राबल्यकी शङ्काका अनुवादकर समाधान करते हैं नचेति। 'जो होमकरे वह आहवनीय नामक अग्निमें करे' इत्यस्मात्=इस सामान्यवाक्यसे, 'पदमें होमकरे' इस वाक्यको विशेषविषयत्व होनेसे जैसे प्राबल्य है तैसे घटविषयसत्त्वग्राहिणः—घटत्वादिविशेषरूपविशिष्टमें सत्त्वप्रकारक प्रत्यक्षको सामान्यतः=आत्मान्यत्वरूपद्वितीयत्वेन द्वैतनिषेधक श्रुतिकी अपेक्षा प्राबल्य है=पूर्वमीमांसाके अष्टमाध्यायके अष्टमपादके अष्टमाधिकरणमें विचार किया गया है; प्रधानकर्मके प्रकरणमें जो पढे जाते हैं उन्हें आरभ्याधीत कहते हैं, और जो वाक्य किसी कर्मविशेषके प्रकरणमें नहीं पढ़े गये हैं उनका नाम है—अनारभ्याधीत, 'यदाहवनीये जुहोति' यह वाक्य अनारभ्याधीत है, इससे निखिलहोमाधिकरणता आहवनीयनामक अग्निमें प्रतीत होती है, अर्थात् यावत् होम आहवनीयनामक=वैदिकसंस्कारविशेषोंसे संस्कारित अग्निविशेषमें करना, यह अर्थ इस वाक्यका है। पदे जुहोति, वर्त्मनि जुहोति, ये दोनों वाक्य ज्योतिष्टोमके प्रकरणमें आये हैं अतः आरभ्याधीत हैं, तैसे ही राजसूयप्रकरणमें वल्मीकवपायामुत्सृज्य जुहोति, यह वाक्य आया है तैसेही 'गार्हपत्ये पत्नी संयाजाञ्जुहोति, यह वाक्य भी है, तहां सोमयागमें सोमनामक लताका क्रयण किया जाता है वह सोमक्रयण एक गौसे किया जाता है अर्थात् सोमको वेचनेवाला ब्राह्मण एक शकटपर लाद कर सोम ले आता है और जब सोमसे लदा हुआ शकट यज्ञभूमिके नजदीकमें पहुंचता है, तब यजमान जिस गौसे सोमविनिमय करता है उस गौको लेकर आगे बढता है तहां जिसमार्गसे वह गौ जाती है उस मार्गमें गोपदसे चिह्नित स्थलमें अग्न्याधान कर होमका विधान 'पदे जुहोति' यह वाक्य करता है, तैसे ही सोमयागमें हवन करनेके योग्य जिसे हवि कहते हैं वह एक शकटपर लाद दी जाती है। और जहांपर हविष्का काम पडता है वहांपर वह हविसे लदा हुआ शकट पहुंचा दिया जाता है तहां जिस मार्गसे वह शकट चलता है उस मार्गपर अग्न्याधान कर होमका विधान 'वर्त्मनि जुहोति' यह वाक्य करता है इसी रीतिसे आगेके दो वाक्योंमें भी आहवनीय अग्निसे अतिरिक्त अग्निओंमें होमकी प्रतीति होती है; यहांपर ऐसा संशय होता है कि पदादिशब्दसे निर्दिष्टविशेषाग्निओंके साथ आहवनीयका विकल्प है या उक्तविशेषाग्निओंसे आत्मीयविषयमें आहवनीयका बाध है; यदि सामान्यविशेषको तुल्यबलत्व होगा तब तो विकल्प होगा और यदि विशेषोंको विशेषबलीयस्त्व होगा तो आहवनीयका उक्त स्थलोंमें बाध होगा, तहां पूर्वपक्ष यह है कि जैसे विशेषशास्त्र क्लृप्त तथा प्रत्यक्ष श्रुत है तैसेही सामान्य शास्त्र भी क्लृप्त तथा प्रत्यक्ष श्रुत है अतः समानबलत्व है और समानबलत्व होनेसे विकल्प युक्त है फलतः उक्त होम कभी आहवनीयमें करने चाहिए और कभी उक्त विशेषाग्निओंमें ऐसे पूर्वपक्षके प्राप्त होनेपर सिद्धान्त यह है कि—प्राप्तिः सामान्यशिष्टस्य विशेषे लक्षणावशात्। श्रुत्या विशेषे शिष्टस्य तस्मादस्तिबलाबलम्॥ अर्थ—विशेषे=उक्त होम विशेषोंमें सामान्यशिष्टस्य=होमसामान्यसम्बन्धित्वेन उपदिष्ट आहवनीयकी प्राप्ति लक्ष-

णासे होगी, विशेषे=उक्त होमविशेषोंमें शिष्टस्य=पदादिरूपसे उपदिष्ट वह्निकी श्रुत्या=श्रुतिसेही प्राप्ति है। अतः बलाबलत्व है=विशेषविधिओंको बलत्व है और सामान्यको अबलत्व है। अतः विशेषविधिओंसे स्वविषयमें सामान्यका बाध होता है अतः पदहोमादिक पदादिरूप अग्निमेंही करने चाहिए आहवनीयमें नहीं यह निष्कृष्टार्थ हुआ, तथाच यहांपर जैसे सामान्यका विशेषसे स्वविषयमें बाध होता है तैसे आत्मभिन्नमात्रमें मिथ्यात्वबोधक श्रुतिका भी अनात्मविशेषमें सत्त्वावगाहि प्रत्यक्षसे स्वविषयमें बाध होगा, और ब्रह्मातिरिक्त किसी भी वस्तुमें सत्त्वके सिद्ध होनेपर अद्वैतकी हानि है। यह प्रपञ्चाभिनिवेशीका अभिप्राय है, इति नच वाच्यम्=ऐसा नहीं कहना, क्यों? सामान्यविशेषन्यायको निश्चित है प्रमाणभाव जिसका एवम्भूत जो उभय तद्विषयत्व होनेसे=जहांपर सामान्यरूपसे तथा विशेषरूपसे अभिमतोंका प्रामाण्यनिश्चित हो तहांपर विशेष स्वविषयमें सामान्यका बाध करता है, और प्रस्तुतमें तो प्रत्यक्षके प्रामाण्यका निश्चयही नहीं है। और श्रुतिके प्रामाण्यका निश्चय है अतः प्रत्यक्षसे श्रुतिका बाध नहीं हो सकता है। अन्यथा=बलाबलका विचार न कर केवल सामान्यविशेषभावसेही यदि बाध्यबाधकभावका स्वीकार करो तो 'अयं गौरश्वः'=यह गौ अश्व है इत्यादि विशेषका भी 'गौरश्वो न भवति'=गौ अश्व नहीं होती है इत्यादिसे प्राबल्य होगा='गौरश्वोन भवति' यह सामान्य वाक्य है और 'अयं गौरश्वः' यह विशेष वाक्य है अतः यहांपर भी विशेषसे सामान्यका बाध होना चाहिए, अतः सामान्यविशेषभावमात्रको लेके इस न्यायकी प्रवृत्ति नहीं हो सकती है।

नच यत्किञ्चित् प्राचीनमग्नीषोमीयात्तेनोपांशुचरतीत्यत्रत्यस्य यत्किञ्चिच्छब्दस्य यत्किञ्चित्प्रकृतवाचित्वेन सामान्यविषयत्वेऽपि दीक्षणीयाव्यतिरिक्ते सावकाशत्वात् यावत्या वाचा कामयेत तावत्या दीक्षणीयायामनुब्रूयादित्यनेन निरवकाशेनसङ्कोचस्तथा प्रत्यक्षेण निरवकाशेन वृत्त्यन्तरेणानेकार्थत्वेन वा विषयान्तरपरत्वेन सावकाशायाः श्रुतेः सङ्कोचः किं नस्यात् इतिवाच्यम्, तात्पर्य्यलिङ्गैरुपक्रमादिभिर्द्वैतनिषेधपरत्वे अवधृते अद्वैतश्रुतेरपि निरवकाशत्वात्, विरुद्धयोश्च द्वयोरहं मनुष्य इत्यादि प्रत्यक्षाकाशवत्सर्वगतश्चनित्य इत्यादिश्रुत्योरिव तात्त्विकप्रामाण्यानुपपत्त्या कस्यचिद्व्यावहारिकं कस्य चित्तात्त्विकप्रामाण्यमभ्युपेयम्, अत्यन्ताप्रामाण्यस्यान्याय्यत्वात् अत्राद्वैतश्रुतेर्व्यावहारिकप्रामाण्यसम्भवे द्वैतग्राहिप्रत्यक्षादेस्तात्त्विकं प्रामाण्यं भवेत्। तदसम्भवे तु बलादेवाद्वैतश्रुतेस्तात्त्विकं प्रामाण्यमिति प्रत्यक्षादेर्व्यावहारिकं प्रामाण्यं पर्य्यवस्यतीति कृतबुद्धयो विदाङ्कुर्वन्तु।

प्रकारान्तरसे शङ्का करते हैं न चेति। ज्योतिष्टोममें श्रुत है अग्नीषोमीयात्=अग्नीषोमीयपश्वालम्भनसे यत्किञ्चित् प्राचीनं=जो कुछ पूर्वमें कर्म होता है वह उपांशुमन्त्रोच्चारणपूर्वक कर्त्तव्य है। इत्यत्रत्यस्य=एतद्वाक्यघटक यत् किञ्चिच्छब्दको यत्किञ्चित् प्रकृतवाचित्वसे सामान्यविषयत्व होनेपर भी दीक्षणीयाव्यतिरिक्तमें सावकाश होनेसे जितनी वाणीसे कामना

करे उतनीसे दीक्षणीयामें अनुवंचन करे इस निरवकाशसे संकोच है तथा निरवकाश प्रत्यक्षसे वृत्त्यन्तरसे अथवा अनेकार्थत्वेन अर्थान्तरपरत्वसे सावकाश श्रुतिका संकोच क्यों न हो=पूर्वमीमांसाके नवम अध्यायके प्रथमपादके पष्ठाधिकरणमें विचार किया गया है, ज्योतिष्टोम और सोमयाग ये दोनों शब्द एकही अर्थको कहते हैं यह बात पूर्व भी कह चुके हैं उस सौमयागमें अग्नीपोमीय पशुका आलम्भन होता है उस उक्त पश्वालम्भसे पहिले सोमयागमें अधिकार करानेवाली जो दीक्षा है उस दीक्षाकालसे आरम्भकर किये जानेवाले जो दीक्षणीयेष्टि यूपवटके ऊपर बर्हिओंका आस्तरण, ऋत्विग्वरण इत्यादि कर्म हैं ये सबके सब उपांशुमन्त्रोच्चारणपूर्वकही करने या नहीं ऐसा संशयकर पूर्वपक्ष किया कि ये सर्व कर्म उपांशुमन्त्रोच्चारणपूर्वकही करने क्योंकि समस्त व्यक्तिओंका कहनेवाला यावदर्थक यत्किञ्चित् शब्द है, अन्यथा यत्किंचित् शब्द व्यर्थ हो जायगा। यूपके गाड़नेके लिए जो खड्‌ खड्डा खोदा जाता है। उसे यूपावट कहते हैं, चमकदार अठ पहलू वैदिकमन्त्रोंसे पूत काष्ठविशेषका नाम यूप है, बर्हिस् शब्दसे कुशोंका ग्रहण है। जिस उच्चारणमें ओष्ठोंमें क्रियाका प्रत्यक्ष होता हो और सान्निध्याध्यासी को भी जहांपर उच्चार्य्यमाणका प्रत्यक्ष न होता हो उस उच्चारणका नाम उपांशूच्चारण है इसेही उपांशुजप भी कहते हैं, ऐसे पूर्वपक्षके प्राप्त होनेपर सिद्धान्त किया जाता है;—अग्नीपोमीयसे प्राक्तन समस्तकर्म उपांशुही करना=उपांशुमन्त्रोच्चारणपूर्वकही करना ऐसा नियम नहीं है—क्योंकि ऐसे नियममें कोई प्रमाण नहीं है, यदि कहो कि 'यत्किञ्चित्' शब्दही प्रमाण है तो यह कथन सम्यक् नहीं, क्योंकि यत्किञ्चित् शब्दको अग्नीपोमीयसे पूर्वभवदीक्षणीयादि समस्तविशेषवाचित्वसे सामान्यविपयत्व होनेपर भी दीक्षणीयासे अतिरिक्तमें सावकाश होनेसे यहां संकोच किया जाता है=यत्किञ्चिच्छब्दसे दीक्षणीयानामक इष्टिसे अतिरिक्त उक्तकर्मका ग्रहण होता है; क्यों ? यावत्यावाचा कामयीत तावत्या दीक्षणीयायामनुब्रूयात्, इस निरवकाशवाक्यके सद्भावसे, इस वाक्यका अर्थ यह है कि दीक्षणीयानामक इष्टिमें जिन मन्त्रोंका उच्चारण होता है उनमें कामचार है उपांशुत्वका नियम नहीं, तथा च यहांपर सामान्यका विशेषसे संकोच होता है। तैसेही विपयान्तरपरत्वेन सावकाश श्रुतिका भी निरवकाश प्रत्यक्षसे संकोच क्यों न हो, और श्रुतिकी अर्थान्तरपरता वृत्त्यन्तरसे तथा अनेकार्थत्वेन हो सकती है, वहां सत्त्वविपयक जो प्रत्यक्ष है उस प्रत्यक्षका जो अविपय उसमेंही मिथ्यात्व भी जिस वृत्तिसे हो उसे यहांपर वृत्यन्तर शब्दसे लेना। और (नेहनानास्तिकिञ्चन) (बृ०।४।४।१९) इस मिथ्यात्वबोधकत्वेनाभिमतवाक्यघटकनानाशब्दको, हिरुक्नानाचवर्जने, इस कोशवाक्यानुसार वर्जनरूप अत्यन्ताभावपरक मान लेंगे तथा च यह अर्थ होगा कि—इह=ब्रह्ममें किसीका अत्यन्ताभाव नहीं है। सर्वका आश्रय होनेसे, अतः अनेकार्थत्वेन भी श्रुति सावकाश है। इति नच वाच्यम्, क्यों ? तात्पर्यनिर्णायक उपक्रमादि लिङ्गोंसे अद्वैतश्रुतिके द्वैतनिपेधपरत्वके अवधृत होनेपर अद्वैतश्रुतिको भी निरवकाश होनेसे। प्रत्यक्षको भी व्यावहारिकविपयतया सावकाशत्व होनेसे। विरुद्धयोश्च=विरुद्धार्थविपयक जो सत्त्वप्रत्यक्ष तथा अद्वैतश्रुति इन दोनोंके 'अहं मनुष्यः' आकाशवत्सर्वगतश्चनित्यः ये प्रत्यक्ष तथा श्रुति हैं इन दोनोंके तुल्य तात्विक

प्रामाण्यकी अनुपपत्तिसे किसीका व्यावहारिक और किसीका तात्त्विक प्रामाण्य अभ्युपेय है, अत्यन्ताप्रामाण्यस्य=व्यावहारिकसाधारणप्रामाण्याभावको अन्याय्य होनेसे; तत्र=इन दोनों-मेंसे अद्वैतश्रुतिके व्यावहारिक प्रामाण्यका सम्भव होनेपर द्वैतग्राहि प्रत्यक्षादिका तात्त्विक प्रामाण्य होगा, तद्‌सम्भवेतु=अद्वैतश्रुतिके व्यावहारिकप्रामाण्यका असम्भव होनेपर तो बलसेही अद्वैतश्रुतिका तात्त्विक प्रामाण्य होगा। ततः प्रत्यक्षादिका व्यावहारिकप्रामाण्यपर्य्यवसित होगा=उक्तरीतिसे सावकाशत्वका अवतार न होनेपर भी 'यजमानः प्रस्तरः' इत्यादि श्रुति जैसे दुर्बल होनेसे प्रत्यक्षसे बाधित होती है, तैसेही दुर्बल होनेपर प्रत्यक्ष भी श्रुतिसे बाधि-होता है, 'यजमानः प्रस्तरः' इस श्रुतिमें दुर्बलत्व अतत्परत्वप्रयुक्त है। और प्रत्यक्षादिमें दुर्बलत्व तत्परत्वादियुक्तश्रुतिविरुद्धत्वप्रयुक्त है। मूलोक्त दृष्टान्तका अर्थ यह है कि 'अहं मनुष्यः' इसका व्यावहारिक प्रामाण्य है क्योंकि व्यवहारकालमें इसका बाध नहीं होता है और 'आकाशवत्सर्वगतश्चनित्यः' इसका तात्त्विकप्रामाण्य हैं क्योंकि इसका बाधक इससे प्रबल प्रमाण और कोई नहीं है, इनमें विरुद्धता यह है कि प्रथममें मनुष्य शरीरवृत्ति परिमाणवत्ताका अहंपदार्थ आत्मामें भान होता है और द्वितीयमें आकाशवृत्तिपरिमाणवत्ताका भान होता है, इससे अतिरिक्त प्रथममें मनुष्यरूप शरीरके साथ आत्माका अभेद भासित होता है। अतः अर्थतः अनित्यत्व सिद्ध होता है और द्वितीयमें नित्यत्व सिद्ध होता है। प्रस्तर नाम दर्भ-मुष्टिका है। इति=इस रीतिसे विद्वान् लोग इस विषयको ठीकठीक विदाङ्कुर्वन्तु=समझें।

ननु पञ्चदशरात्रे प्रथमेऽहनि, अग्निष्टुन्नामके नामातिदेशेन एकाहाग्निष्टुद्धर्मभूता सुब्रह्मण्याग्नेयीप्राप्ता, तस्या अल्पविषयत्वाच्चतुर्दशाहस्सुचोदकेन प्राप्तया ऐन्द्र्या सुब्रह्मण्या बहुविषयया यथा बाधः, बहुबाधस्यान्याय्यत्वात्, तथा द्वैतग्राहिप्रत्यक्षतदुपजीव्यनुमान-कर्मकाण्डसगुणोपासनावाक्यादिरूपबहुप्रमाणाबाधय्या द्वैतवाक्यस्य प्रतीतार्थबाधः किन्न-स्यात्, तदुक्तम्, बहुप्रमाणविरोधे चैकस्याप्रामाण्यम्, दृष्टं शुक्तिरजतादिज्ञाने इति चेन्न, दृष्टान्ते बहुविषयया बाधोऽत्र बहुभिरिति वैषम्यात्। देहात्मैक्येप्रत्यक्षानुमान-शब्दाभासादिसत्त्वेऽपि देहात्मभेदबोधकस्यानन्यपरत्वेन प्राबल्यवदत्रापि अनन्यपरत्वेना-द्वैतश्रुतेः प्राबल्यात् विद्याविद्याभेदेन विद्वदविद्वत्पुरुषभेदेन च विरोधाभावादिति॥

इति प्रत्यक्षस्य जात्युपक्रमन्यायादिभिः प्राबल्यनिराकरणम्॥

प्रकारान्तरसे प्रत्यक्षको अद्वैतश्रुतिकी बाधकता द्वैती बतलाता है। नन्विति। पञ्च-दशरात्रे=पञ्चदशयागरूपसत्रमें अग्निष्टुन्नामके='अग्निष्टुत्' इत्याकारक नामधारि 'प्रथमेऽ' हनि=प्रथमयागमें, एकाहाग्निष्टुद्धर्मभूता=एकाहात्मक जो आग्नेय तद्रूप अग्निष्टुद्यागकी धर्मभूता= अङ्गभूता आग्नेयी सुब्रह्मण्या प्राप्ता=प्रसक्त है। तस्याः=उस आग्नेयी सुब्रह्मण्याको अल्पविषय-त्वात्=अल्प=एकही अग्निष्टुन्मात्र है विषय=अङ्गी जिसका उसका नाम है अल्पविषया, तस्या भावः तत्त्वं तस्मात्। चतुर्दश अहोमें चोदकेन=अतिदेशसे प्राप्त ऐन्द्री सुब्रह्मण्यासे बाध होता

है । कथम्भूतया ऐन्द्र्या, बहुविषयया=बहवः चतुर्दशयागाः विषयाः अङ्गिनः सन्ति यस्याः सा तया=चतुर्दशयाग हैं अङ्गि जिसके एवम्भूता जो ऐन्द्री सुब्रह्मण्या है उससे । क्यों बहुबाधस्यान्याय्यत्वात्=बहुतोंकी अङ्गभूत जो ऐन्द्री सुब्रह्मण्या उसके बाधको अयुक्त होनेसे, तथा= तैसेही द्वैतग्राहि प्रत्यक्ष और तदुपजीवि अनुमान=प्रत्यक्षको आश्रण करनेवाला अनुमान तथा वेदका कर्मकाण्ड, और उपासनावाक्यादिरूप बहुत प्रमाणोंके अबाधके लिए अद्वैतवाक्यके प्रतीतार्थ=यथाश्रुतार्थका बाध क्यों न हो, तदुक्तम्, इस अर्थको कहा है बहुप्रमाणोंका विरोध होनेपर एकका अप्रामाण्य देखा गया है-शुक्तिरजतादि ज्ञानमें; उक्तार्थका स्पष्टीकरण=जैमनीय मिमांसाके वारहवें अध्यायके द्वितीयपादमें विचार किया है । पञ्चदशरात्रनामक पञ्चदशसुत्यात्मक एक याग है, उसमें प्रथम यागका नाम अग्निष्टुत् है, इसके बाद तीन यागोंके नाम क्रमशः= ज्योतिष्, गो, आयुष्, हैं इनसे अतिरिक्त और भी अग्निष्टुत्, ज्योतिष्, गो, आयुष्, एकाहमें होनेवाले अतएव ऐकाहिक नामसे प्रसिद्ध याग हैं, इनके नाम भी अग्निष्टुदादिकही हैं, और तदीय इतिकर्त्तव्यताप्राप्तिके लिए पञ्चदश रात्रके प्रथम दिवसचतुष्टयमें स्थापित किये जाते हैं इनके अनन्तर द्वादशाहप्रकृतिक एकादश याग किये जाते हैं इन पञ्चदशयागोंमें उपसद्भी हैं तहां आज्यहविष्क इष्टिओंका नाम उपसद् है इन उपसदोंमें सुब्रह्मण्यानामक यजुर्वेदीय निगदविशेष भी हैं, यदस्यकर्मणो न्यरीरिचम्, इत्यादिका नाम आग्नेयी सुब्रह्मण्या है, गौरावस्कन्दिन् मेधातिथे, इत्यादि ऐन्द्री सुब्रह्मण्या है । इस रीतिसे दो सुब्रह्मण्याओंसे अग्नि तथा इन्द्रका आह्वान उक्तयागोंमें उपसत्कालमें करना, तहां पञ्चदशरात्रका जो प्रथम अग्निष्टुत् नामक अहः=याग है उसके उपसत्कालमें एकाहाग्निष्टुन्नामधेयके साम्यसे, आग्नेयी सुब्रह्मण्या प्रसक्त है-क्योंकि एकाहाग्निष्टुत्के उपसत्कालमें आग्नेयी सुब्रह्मण्याका सत्त्व है । ज्योतिष्, गो, आयुष्, नामक जो तीन याग हैं एतत्सम्बन्धि उपसदोंके अनुष्ठानकालमें ज्योतिष्, गो, आयुष्, एतत्संज्ञक जो एकाह इनके नामधेयके साम्यसे ऐन्द्री सुब्रह्मण्या प्राप्त है, क्योंकि एकाह जो ज्योतिष् गो, आयुष्, हैं उनके उपसत्कालमें ऐन्द्री सुब्रह्मण्याका सत्त्व है, परिशिष्ट जो एकादश याग हैं तदीय उपसत्कालमें अतिदेश वाक्यसे ऐन्द्री सुब्रह्मण्या प्राप्त है, क्योंकि प्रकृतिवद्विकृतिः कर्त्तव्या, यह अतिदेश वाक्य है, और एकादशोंका प्रकृतिभूत जो द्वादशाह है तदीय उपसत्कालमें ऐन्द्री सुब्रह्मण्याका सत्त्व है । इस रीतिसे इन पञ्चदश सत्रोंमेंसे प्रथम सम्बन्धि-उपसत्में आग्नेयी सुब्रह्मण्या प्राप्त है, और परिशिष्ट चतुर्दशसत्रसम्बन्धि उपसदोंमें ऐन्द्री सुब्रह्मण्या प्राप्त है, तहां ज्योतिरादि त्रितयसम्बन्धि उपसदोंमें ऐन्द्रीसुब्रह्मण्या नामधेयसे प्राप्त है, अवशिष्ट एकादशमें अतिदेशवाक्यसे यह वस्तुस्थिति है । तहां अग्निष्टुन्नामक प्रथमयागमें उपसत्कालीन सुब्रह्मण्यामें सन्देह होता है कि, यहांपर क्या आग्नेयी सुब्रह्मण्या है या ऐन्द्री सुब्रह्मण्या । यहांपर यदि ऐसी शङ्का हो कि प्रथमयागसम्बन्धि-उपसत्कालमें ऐन्द्री सुब्रह्मण्याकी प्राप्तिही नहीं है, फिर सन्देह कैसे होगा तो इस शङ्काका यह समाधान है कि (या उपसदस्ता ऐन्द्यः) इस श्रुतिमें सामान्यतः उपसन्मात्रको इन्द्रदेवताकत्वके कह देनेसे संशय होसकता है । संशय होनेपर पूर्वपक्ष यह है कि-अग्निष्टुन्नामक प्रथम यागमें उपसत्कालमें आग्नेयी

सुब्रह्मण्याकोही अङ्गता माननी उचित है क्योंकि नामसाम्यसे प्रथमोपस्थित है अत एव मुख्य है, और असञ्जातविरोधी भी है, ऐन्द्री अङ्ग नहीं हो सकती है, क्योंकि वह चरमोपस्थित होनेसे और सञ्जातविरोधी होनेसे अमुख्य है; सिद्धान्त यह है कि–प्रथममेंभी ऐन्द्रीही अङ्ग है क्योंकि चतुर्दशोमें तो ऐन्द्री प्राप्तही है और बहुतोंके साधर्म्यके लिए यहां परभी ऐन्द्रीकोही अङ्ग मानना चाहिए बहुविषयकका बाध अन्याय्य है, 'त्यजेदेकं कुलस्यार्थे' इसन्यायसे। इति चेन्न, ऐसा यदि कहो तो नहीं कहना क्यों? । दृष्टान्तमें बहुत है विषय जिसका उससे बाध बतलया गया है और अत्र=प्रकृतमें बहुतसे बाध है इति=इस वैषम्यसे, देहात्मैक्यमें, 'अहं मनुष्यः' इत्यादि प्रत्यक्षाभास, आत्मा देहेन समं अभिन्नः; तथा प्रतीयमानत्वात्। इत्यादि अनुमानाभास, सोऽयं पुरुषः अन्नमयः' इत्यादि शब्दाभास, आदिपदलब्ध अर्थापत्याभासादिके सत्त्वहोनेपरभी देह तथा आत्मा इन दोनोंके भेदका बोधक जो आगमहै उस आगमको अनन्यपरत्वहोनेसे जैसे प्राबल्य है तैसे अत्रापि=द्वैतसत्यत्वबोधकप्रत्यक्षादि और अद्वैतबोधक श्रुति इन दोनोंके विरोधहोनेपर भी, अनन्यपरत्वेन अद्वैतश्रुतिके प्राबल्यसे=जहांपर प्रमाणोंमें समानबलत्वका सम्भव होताहै वहां ही पर बाध्यबाधकभावका ऊहापोह युक्तियुक्तहै और जहांपर एकके प्रामाण्यका निश्चय है तहांपर अन्योंका बाधही होजाताहै 'शतमपि अन्धानां न पश्यति' अन्धोंका शतक भी नहीं देखता है, इसन्यायसे निश्चितप्रामाण्यक एक प्रमाणके सामने अनिश्चितप्रामाण्यकविरुद्धार्थावगाहि अनेकप्रमाणोंका बाहुल्य अकिञ्चित्कर है, अन्यथा देहात्मैक्यावगाहि प्रत्यक्षादिका प्राबल्य हो जायगा । विद्या तथा अविद्या इनके भेदसे च=और विद्वत्पुरुष तथा अविद्वत्पुरुष इनके भेदसे विरोध नहीं है । विद्यानाम तत्त्वज्ञानका है तथाच तत्त्वज्ञानसमयमें प्रत्यक्षादिकां प्रामाण्य नहीं है अविद्याकालमें है, सोभी व्यावहारिक, क्योंकि तात्त्विक प्रामाण्य तत्त्वज्ञानमेंही है यह कहचुके हैं । तैसेही कर्मकाण्ड तथा उपासनाकाण्ड अविद्वत्=अतत्त्वज्ञानिओंके लिए हैं। तत्त्वज्ञानिओंकेलिए नहीं. भावार्थ यह है कि–प्रत्यक्षादिमें तथा कर्मकाण्डादिमें जो प्रामाण्य है वह व्यावहारिक है और अविद्यारूपदोपाधिकरण जो प्रमाता हैं उन्हें वह व्यावहारिक प्रामाण्य प्रतीत होता है और तत्त्वज्ञानीमें वह अविद्यारूपदोष नहीं है अतः तत्त्वज्ञानीको प्रत्यक्षादिमें प्रामाण्यका भान नहीं होताहै जैसे शुक्तितत्त्वज्ञको शुक्तिमें रजतका भान नहीं होता है।

इति सरलायां प्रत्यक्षस्य जात्युपक्रमन्यायादिभिः प्राबल्यनिराकरणम् ।

अथोपजीव्यत्वेन प्रत्यक्षप्राबल्यनिराकरणम्

ननु उक्तन्यायैः प्रत्यक्षस्य जात्या प्राबल्याभावेऽपि उपजीव्यत्वेन प्राबल्यम् । उपजीव्यत्वं चानुमानागमापेक्षिताशेषार्थ ग्राहकतया, साच क्वचित्साक्षात् क्वचित्परम्परया, दृष्टं चापेक्षितैकदेशग्राहिणामपि उपजीव्यत्वम्, तद्विरुद्धग्रहणे तेन बाधश्च यथा घटविभुत्वानुमाने पक्षग्राहिणा अक्ष्णा नरशिरश्शुचित्वानुमाने साध्यग्राहकेणागमेन मनोवैभवानुमाने ज्ञानासमवाय्याधारत्वहेतुग्राहकेणानुमानेन, किमुवक्तव्यमपेक्षिताशेषग्रा-

हिणा स्वविरुद्धग्राहकस्य बाधः ? चक्षुरादेश्च शब्दतज्जन्यज्ञानप्रामाण्याद्यग्राहित्वेऽपि तद्ग्राहिश्रोत्रसाक्ष्यादिसजातीयत्वादुपजीव्यत्वम् । दृष्टं च नरशिरःकपालाशुचित्वबोधकागमस्य तच्छुचित्वानुमानोपजीव्यशुचित्वागमसजातीयत्वेन तदनुमानात् प्राबल्यम्, नचेन्द्रियमपि स्वज्ञानार्थमनुमानमुपजीवतीति सम एवोपजीव्योपजीवकभावः, अज्ञात करणतया ज्ञानजननार्थमनुमानानपेक्षणात्, अनुमानागमादिना तु ज्ञानजननार्थमेव तदपेक्षणादिति विशेषात् इति चेन्न, उपजीव्याविरोधात् ॥

अथ सरलायां उपजीव्यत्वेन प्रत्यक्षप्राबल्यनिराकरणम्

प्रकारान्तरसे प्रपञ्ची वादी प्रत्यक्षके प्राबल्यकी शङ्का करता है । नन्विति । उक्त न्यायोंसे प्रत्यक्षका जात्या=उपजीव्यत्वसे भिन्न मुख्यत्वादिरूपसे प्राबल्य न होनेपर भी उपजीव्यत्वेन प्राबल्य है 'उपजीव्य शब्दकी व्याख्या नजदीकमेंही सरलामें हो चुकी है' उपजीव्यत्वञ्च=प्रत्यक्षका उपजीव्यत्व तो अनुमान तथा आगम इन दोनोंको अपेक्षित जो अशेषार्थ तद्ग्राहकत्वेन है, साच उक्त ग्राहकता तो क्वचित्=कहींपर साक्षात् है और कहींपर परम्परासे है=अनुमितिको पक्ष साध्य हेतु व्याप्ति इन चारोंकी अपेक्षा है क्योंकि ये अनुमितिके कारण=प्रयोजक हैं, और एतच्चतुष्टयग्राहकत्व प्रत्यक्ष प्रमाणको है अतः अनुमानापेक्षिताशेषार्थग्राहकत्वेन प्रत्यक्षको अनुमितिके प्रति प्रयोजकत्व है, तैसे शाब्दबोधको शब्दस्वरूप तथा शब्दस्वरूपनिष्ठ योग्यत्वादि एवं उपक्रम उपसंहारकी एकरूपतादि अपेक्षित हैं, क्योंकि ये पदार्थ शाब्दी प्रमाके प्रयोजक हैं, और इन सर्वकी ग्राहकता प्रत्यक्षप्रमाणको है, अतः आगमापेक्षिताशेषार्थग्राहकत्वेन प्रत्यक्षको आगमके प्रति उपजीव्यत्व है । इससे अतिरिक्त अनुमितिस्वरूप एवं अनुमितिनिष्ठ प्रामाण्य, शाब्दीप्रमास्वरूप शाब्दीप्रमानिष्ठ प्रामाण्यभी प्रत्यक्षसे ग्राह्य हैं, च=तथा अपेक्षितका जो एक देश उस एक देशके ग्राहिओंको भी उपजीव्यत्व दृष्ट है, तद्विरुद्धग्रहणे=तादृशोपजीव्यसे विरुद्धार्थग्राहकानुमानागम होनेपर तेन=तादृशोपजीव्यसे अनुमानागम इन दोनोंका बाध भी दृष्ट है, इसी अर्थको स्पष्ट करते हैं । यथेति । जैसे घटविभुत्वानुमाने='घटो विभुः सत्त्वात् आकाशवत्' इस घटपक्षकविभुत्वानुमानमें पक्षग्राहिणा=परिच्छिन्नत्वेन घटरूपपक्षग्राहि=अक्ष्णा=प्रत्यक्षसे बाध है । नरशिरश्शुचित्वानुमाने=नरशिरःकपालं शुचि, प्राण्यङ्गत्वात् शङ्खवत्, विसर्गान्तका कपालके साथ षष्ठीतत्पुरुष है, नरपदसे अव्यवहित पूर्वमें 'मृत' इतना और जोड देना । इस अनुमानमें साध्यग्राहकेणागमेन=शुचित्वरूप साध्यग्राहक आगमके सजातीय 'नारं स्पृष्ट्वास्थि सस्नेहं सवासाजलमाविशेत्' (मनु० ५।८७) इत्यादि आगमसे बाध है । मनोवैभवानुमाने='मनो विभु ज्ञानासमवायिकारणसंयोगाश्रयत्वात् आत्मवत्' इस मनःपक्षक विभुत्वसाध्यकानुमानमें; ज्ञानासमवाय्याधारत्वहेतुग्राहकेणानुमानेन=ज्ञानकाअसमवाय्याधारत्व=असमवायिकरणसंयोगाश्रयत्वरूप जो हेतु है । तद्ग्राहक जो अनुमान=सुखादिप्रतीतिः क्रमिकसंयोगवत्करणसाध्या; क्रियात्वात् । छिदिक्रियावत् । इससे बाध

है । अपेक्षिताशेषका ग्राहक जो प्रमाण उस प्रमाणसे स्वविरुद्धग्राहकका बाध है इसमें क्या कहना है । चक्षुरादेश्च=चक्षुरादिको शब्द और तज्जन्यज्ञान=शब्दजन्यज्ञान, और शब्दजन्यज्ञाननिष्ट प्रामाण्यादिका अग्राहित्व होनेपर भी तद्ग्राहि=शब्दतज्जन्यज्ञानादिग्राहि जो श्रोत्रसाक्ष्यादि तत्सजातीयत्वेनोपजीव्यत्व है=श्रोत्र शब्दका ग्रहण करता है, और, साक्षी तज्जन्यज्ञानादिका ग्रहण करता है, नरशिरः कपालके अशुचित्वका बोधक जो आगम है उस आगमका तच्छुचित्वानुमान=नरशिरः कपालके शुचित्वका जो अनुमान उस अनुमानका उपजीव्य जो शुचित्वागम—त्रैलोक्ये यानि तीर्थानि वासुदेवस्य चाज्ञया । शङ्खे तिष्ठन्ति विप्रेन्द्र तस्माच्छङ्खं प्रपूजयेत् । तत्सजातीयत्वेन तदनुमानात्=नरशिरःकपालशुचित्वानुमानसे प्राबल्य दृष्ट है, अर्थात् स्वोपजीव्यसजातीयसे भी विरुद्धार्थग्राहित्वका बाध होता है । अतः शब्द तथा शब्दजन्यज्ञानादिग्राहक श्रोत्रसाक्ष्यादिके सजातीय चक्षुरादिसे आगमका बाध बन सकता है । द्वैती आशङ्काकर समाधान करता है । नचेति । इन्द्रियरूप प्रत्यक्षप्रमाण भी स्वज्ञानके लिए अनुमानका आश्रयण करता है=दर्शनादिक्रिया, सकरणिका क्रियात्वात् छिदादिवत्, इत्यादि अनुमानोंसेही प्रत्यक्षकी सिद्धि होती है । इति=अतः समानही उपजीव्योपजीवकभाव है, नच=समान उपजीव्योपजीवकभाव नहीं हैं, क्यों ? अज्ञातकरणत्वेन प्रत्यक्षप्रमाणको ज्ञानजनकता होनेसे, ज्ञानके उत्पादनार्थ प्रत्यक्षको अनुमानकी अपेक्षा नहीं है और अनुमानादिसे तो ज्ञान जननार्थही प्रत्यक्षको अपेक्षित होनेसे विशेष है= अनुमानादिको स्वकीयकार्यकी सिद्धिमें प्रत्यक्षकी अपेक्षा है और प्रत्यक्षको स्वकीय कार्यमें अनुमानादिकी अपेक्षा नहीं है । किन्तु स्वस्वरूपकी सिद्धिमें है । यह विशेष है अतः सम उपजीव्यउपजीवकभाव नहीं है । इति चेन्न, क्यों ? उपजीव्याविरोधात् । उपजीव्यके साथ विरोधके न होनेसे ।

तथाहि यत्स्वरूपमुपजीव्यते तन्न बाध्यते बाध्यते च तात्त्विकत्त्वाकारः, सच नोपजीव्यते, कारणत्वे तस्याप्रवेशात् । तदुक्तम्, पूर्वसबन्धनियमे हेतुत्वे तुल्य एव नौ । हेतुतत्त्वबहिर्भूतसत्त्वासत्त्वकथा वृथा । इति । किञ्चापेक्षितग्राहित्वमात्रेण चेदुपजीव्यता तया च बाधकत्वम्, तदापेक्षितप्रतियोगिग्राहकत्वेन(इदं रजतम्) इति भ्रमस्य बाधोपजीव्यत्वात्कथं नेदं रजतमितिबाधबुद्धिस्तद्विरुद्धोदीयात्, अथ निषेध्यार्थसमर्पकतया प्रतियोगिज्ञानत्वेन तस्योपजीव्यत्वेऽपि तत्प्रामाण्यं नोपजीव्यम्, नहि प्रतियोगिप्रमात्वेनाभावज्ञानजनकता, गौरवात्, प्रतियोगिभ्रमादपि अभावज्ञानदर्शनाच्च, किन्तु तज्ज्ञानत्वेनैव लाघवात्, अतस्तद्विरुद्धविषयकं ज्ञानमुदीयादेवेति ब्रूषे तुल्यमिदं प्रकृतेऽपि, पक्षज्ञानत्वादिना कारणता, नतु तत्प्रमात्वादिनापीति । अथ यत्प्रामाण्यं स्वरूपसिद्ध्यर्थमपवादनिरासार्थञ्च यत्प्रामाण्यमुपजीवति तत्तस्योपजीव्यम्, यथा स्मृतेरनुभवः, नच रजतभ्रमस्तथा इति चेत् तर्हि व्याप्तिधियोऽपि नानुमित्युपजीव्यत्वं स्यात्, लिङ्गाभासादपि वह्निमति वह्निप्रमादर्शनात् ॥

तथाहि=दिखलाते हैं, यत्स्वरूपम् जो स्वरूप उपजीव्यते=स्वप्रयोजकत्वेन अनुमानागमको अपेक्षित होता है. तत्—वह स्वरूप नहीं वाधित होता है, अनुमानागमसे वाधित होता है-तात्त्विकत्वाकार सच=वह तात्त्विकत्त्वाकारतो प्रयोजकत्वेन अपेक्षित नहीं है, कारणताके स्वरूपमें तस्य=तात्त्विकत्त्वाकारके अप्रवेशसे=अनुमान तथा आगम उपजीवक हैं प्रत्यक्षात्मक ज्ञान या प्रत्यक्षज्ञानके विषय उपजीव्य हैं, फलतः अनुमानागमनिष्ठ उपजीवकता निरूपित उपजीव्यता उक्त ज्ञाननिष्ठा या विषयनिष्ठा है, ज्ञाननिष्ठोपजीव्यतावच्छेदक व्यवहारकालावाध्यविषयकत्व है। और विषयनिष्ठोपजीव्यतावच्छेदक व्यवहारकालावाध्यत्व है, अनुमानागमनिष्ठ वाधकतानिरूपितवाध्यतावच्छेदक तात्त्विकत्व है, तथाच उपजीव्यतावच्छेदकावच्छिन्न और वाध्यतावच्छेदकावच्छिन्न स्वरूपोंको पृथक् होनेसे यद्रूपावछिन्नत्वेन प्रयोजकताहै तद्रूपावच्छिन्नत्वेन वाध्यता नहीं, और यद्रूपावच्छिन्नत्वेन वाध्यता है तद्रूपावछिन्नत्वेन प्रयोजकता नहीं, अतः उपजीव्यविरोध नहीं है। और इस वातको ध्यानमें रखनी चाहिए कि उपजीव्यतावच्छेदक कहीं परभी तात्त्विकत्वापरपर्य्यायपारमार्थिकत्व नहीं होता है, क्योंकि शुद्धमें तो किसी भी प्रकारकी उपजीव्यता=कारणता हैही नहीं और शुद्धसे अतिरिक्त कोई पारमार्थिक=तात्त्विक नहीं, अतः उपजीव्यता व्यावहारिक तथा प्रातिभासिकपदार्थोंमें रहती है और उपजीव्यतावच्छेदकधर्मभी एतदुभयसाधारण या प्रातिस्विकरूप होगा, कुछभी हो यह धर्म व्यावहारिक या प्रातिभासिक होगा, क्योंकि शुद्धब्रह्मातिरिक्त कोई भी पदार्थ तात्त्विक तो होही नहीं सकता है, उक्तार्थमें खण्डनकारकी सम्मति दिखलाते हैं, तदुक्तमिति। पूर्व शब्दसे कार्य्याव्यवहितप्राक्क्षण लेना, सम्वन्धपदसे सम्वन्धिकी भी उपस्थिति होती है, और वह सम्वन्धि प्रकृतोपयुक्तयोग्यताविशिष्ट होके उपस्थित होता है और उस सम्बन्धिका योग्यरूपसे पूर्वपदार्थके साथ तथा सम्बन्धपदार्थके साथ सम्बन्ध होता है तथाच अन्यथासिद्धिशून्यकार्य्याव्यवहितप्राक्क्षणवृत्त्यनुयोगिकत्वविशिष्टसम्वन्ध, यह अर्थ हुआ पूर्वसम्बन्धका, इसकेवाद पूर्वसम्वन्धोऽस्ति प्रतियोगितासम्वन्धेन यस्य स पूर्वसम्वन्धः, इस अर्थमें अर्शाद्यच् करना, पश्चात् सम्वन्धान्तका नियमके साथ कर्मधारय करना, पश्चात् नियमान्तको सप्तम्यन्तवनाकर समानविभक्तिक हेतुत्वके साथ अभेदान्वयकरना. तथाच फलितार्थ यह हुआ कि, अन्यथा सिद्धिशून्यकार्य्याव्यवहितप्राक्क्षणवृत्त्यनुयोगिकत्वविशिष्टसम्वन्धप्रतियोग्यभिन्ननियमाभिन्न जो हेतुत्व, तस्मिन् नौ=आवयोः तुल्ये एव, शून्यान्तका वृत्त्यन्तके साथ कर्मधारय है भावार्थ यह कि—अन्यथासिद्धिशून्यकार्य्याव्यवहितप्राक्क्षणवृत्तिवृत्तिधर्मविशेषरूप हेतुत्व प्रपञ्चसत्यत्ववादी और प्रपञ्चमिथ्यात्ववादी तुमको तथा हमको समानही है; हेतुतत्त्व=हेतुत्वसे वहिर्भूत=अघटक सत्त्व तथा असत्त्व हैं उनकी कथा वृथा है=अयुक्त है। किञ्च=और भी कहते हैं। अपेक्षित ग्राहित्वमात्रसेही यदि उपजीव्यता है और तया=उस उपजीव्यतासे उपजीव्यताश्रयको वाधकत्व है; तवतो वाधात्मकनिषेधको अपेक्षित जो प्रतियोगी है तादृशप्रतियोगिग्राहकत्वसे 'इदं रजतम्' इत्याकारक जो भ्रम है उस भ्रमको वाधका उपजीव्य होनेसे 'नेदं रजतम्' इत्याका-

रिका बाधबुद्धि तद्विरुद्ध=उक्तभ्रमसे विरुद्ध कथं=कैसे उत्पन्न होगी=अपेक्षितग्राहकत्वेनही यदि उपजीव्यता होती है और तादृशी उपजीव्यतासेही यदि उपजीव्यको बाधकत्व होता हो तब तो, 'नेदं रजतम्' इस बाधज्ञानको प्रतियोगिसमर्पकविधया 'इदं रजतम्' इत्याकारक भ्रम अपेक्षित है, अतः अपेक्षितग्राहकत्वेन भ्रमकोही उपजीव्यताप्रयुक्त प्राबल्य रहेगा, तथाच भ्रमका बाध न होगा। अथ=प्रकारान्तरसे समाधानका आरम्भकरते हैं, निषेध्य जो अर्थ है तादृशार्थसमर्पकतया प्रतियोगिज्ञानत्वेन तस्य=उक्तभ्रमको उपजीव्यत्व होनेपर भी तत्प्रामाण्यं=भ्रमवृत्तिप्रामाण्य बाधज्ञानका उपजीव्य नहीं है। प्रतियोगिप्रमात्वेन प्रतियोगिज्ञानको अभावज्ञानकी जनकता नहीं है, गौरव होनेसे और प्रतियोगिभ्रमसे भी अभावज्ञानके देखनेसे भी, किन्तु तज्ज्ञानत्वेनैव=प्रतियोगिज्ञानत्वेनही जनकता है लाघवसे., अतः=इसलिए तद्विरुद्धविषयकं=रजतभ्रमका विषय जो रजत उससे विरुद्ध जो रजताभाव तादृशरजताभावविषयकबाधात्मकज्ञानका उदय होगाही, इतिब्रूषे=ऐसा यदि कहता है तो यह प्रकृतमें भी तुल्य है., पक्षज्ञानत्वादिरूपसेही पक्षादि प्रत्यक्षको अनुमितिके प्रति कारणता है, पक्षप्रमात्वादिरूपसे नहीं। अथ=हम ऐसा नियम करते हैं, कि यत्प्रामाण्यं=यस्य प्रामाण्यं, यत्प्रामाण्यं=षष्ठीका अर्थ निष्ठत्व है तथाच यज्ज्ञाननिष्ठप्रामाण्य स्वरूपसिद्ध्यर्थम्=स्वरूपनिश्चयार्थ च=तथा अपवादनिरासार्थम्, स्वाभाववत्ताके ज्ञानका नाम है अपवाद उसके निरासकेलिए स्वशब्दसे प्रामाण्यका ग्रहणकरना चाहिए., यत्प्रामाण्यमुपजीवति=यन्निष्ठप्रामाण्य की अपेक्षाकरता है तत्=अपेक्षितप्रामाण्याश्रय तस्य=अपेक्षाकर्तृप्रामाण्याश्रयका उपजीव्य है यथा=जैसे स्मृतेः=स्मृतिका उपजीव्य अनुभव है., रजतभ्रम वैसा नहीं है= बाधज्ञाननिष्ठप्रामाण्यस्वरूपसिद्ध्यर्थ या अपवादनिरासार्थ रजतभ्रमनिष्ठ प्रामाण्यकी अपेक्षा नहींकरता है., और रजतभ्रममें प्रामाण्य है भी नहीं, अतः भ्रमज्ञान बाधज्ञानका उपजीव्य नहीं होसकता है., इति चेन्न=ऐसा यदि नियमकरो तो व्याप्तिज्ञानको भी अनुमितिके प्रति उपजीव्यत्व न होगा., क्यों ? लिङ्गाभाससे भी वह्निमान्में वह्निप्रमाके दर्शनसे.।

ननु येन विना यस्योत्थानं नास्ति तत्तस्योपजीव्यमित्येव वक्तव्यम्। तथा च रजतभ्रमस्योपजीव्यत्वमस्त्येव, नतु प्राबल्यम्, नह्युपजीव्यत्वमात्रेण प्राबल्यम्, किन्तु परीक्षिततया, परीक्षा च सजातीयविजातीयसंवादविसंवादाभावरूपा। न च तौ रजतभ्रमे स्तः, प्रकृते चाक्षस्य परीक्षितत्वेन प्राबल्यम्। अस्ति हि सन् घट इति विशेषदर्शनजन्यज्ञानात्परं घटार्थक्रिया, प्रत्यक्षे क्लृप्तदूरादिदोषाभावाच्च। एवमेव जीवेशाभेदश्रुतौ निषेध्यार्पकभेदश्रुतिः साक्षिप्रत्यक्षं चादोषत्वात्, परीक्षितमिति तदपि न बाध्यम्। एवमेव च दोषाभावादिज्ञानरूपपरीक्षायामपि अनाश्वासे वेदे पौरुषेयत्वाभावज्ञाने त्वदुक्तानुमाने च योग्यानुपलब्ध्यादिना हेत्वाभासादिराहित्यज्ञाने ब्रह्ममीमांसायां प्रत्यधिकरणं सिद्धान्त्यभिप्रेतार्थे उपक्रमाद्यानुगुण्यज्ञाने चानाश्वासः स्यादितिप्रमाणतदाभास-

व्यवस्था न स्यात् इतिचेन्न, परीक्षा हि प्रवृत्तिसम्वादविसंवादाभावदोपाभावादिरूपा, तया च स्वसमानदेशकालीनविषयाबाध्यत्वं प्रामाण्यस्य व्यवस्थाप्यते धूमेन स्वसमानदेशकालीनवह्निरिव । तथाच व्यवहारदशामात्राबाध्यत्वं देहात्मैक्यसाधारणं परीक्षितप्रमाणे व्यवस्थितमिति कथमत्यन्ताबाध्यत्वाभावग्राहकागमानुमानयोः प्रवृत्तिर्न स्यात् ? तस्माद्विश्वासप्रमाणतदाभासव्यवस्था जीवेशभेदादिकञ्च व्यावहारिकमित्युपपन्नमेव सर्वं जगन्मिथ्येति ।

शङ्कते नन्विति । जिसके विना जिसका उत्थान नहीं है तत्=वह तृतीयान्तयच्छब्दनिर्दिष्ट तस्य=तिसपष्ठ्यन्तयच्छब्दसे निर्दिष्टका उपजीव्य है इत्येव=यही कहना चाहिए, फलतः रजतभ्रमको बाधके प्रति उपजीव्यत्व है ही बाधसे प्राबल्य नहीं है क्योंकि उपजीव्यत्वमात्रसे प्राबल्यनहीं है किन्तु परीक्षितत्वेन प्राबल्य है, परीक्षा च=परीक्षातो सजातीयविजातीयसम्वादविसम्वादाभावरूपा है=अबाधितार्थविषयकत्वेन निश्चित जो ज्ञानान्तर है उसका नाम सजातीय है अबाधितार्थविषयकत्वेन निश्चितप्रवृत्त्यादिका नाम विजातीय है इनदोनोंके समानविषयकत्वका नाम संवाद है, और विरुद्धार्थविषयकत्वका नाम विसंवाद है, उस विसंवादका अभाव चाहिए सजातीयका सम्वाद चाहिए, सजातीयके विसम्वादका अभाव चाहिए, विजातीयका सम्वाद चाहिए, विजातीयके विसम्वादका अभाव चाहिए, इन अंशचतुष्टयसे घटित परीक्षाका स्वरूप है जिस ज्ञानकी ऐसी परीक्षा हो चुकी है उसका नाम परीक्षित है तौ=सजातीयविजातीय सम्वाद तथा सजातीयविजातीय विसम्वादाभाव ये दोनों रजतभ्रममें नहीं हैं, प्रकृतेच=प्रपञ्चसत्यत्वमें तो अक्षस्य=प्रत्यक्षका परीक्षितत्त्व होनेसे प्राबल्य है, परीक्षितत्वदिखलाते हैं अस्तीति । (सन्घटः) इत्याकारक जो विशेषदर्शनजन्यज्ञान है उस ज्ञानके बाद घटार्थक्रिया=घटानयनादिमें प्रवृत्त्यादिरूप घटार्थक्रिया-अस्ति हि=है ही । प्रत्यक्षे=चन्द्रप्रादेशिकत्वादिप्रत्यक्षमें क्लृप्त=कारणत्वेन निश्चित दूरादिरूपदोपके अभावसे भी प्रपञ्चसत्यत्वप्रत्यक्ष परीक्षित है । एवमेव=इसरीतिसे जीव तथा ईश्वर इन दोनोंके अभेदकी श्रुतिमें निषेध्यकी अर्पणकरनेवाली भेदश्रुति च=और साक्षिप्रत्यक्ष ये दोनों. अदोपत्वात्=दोषरहित होनेसे परीक्षित हैं, इति=अतः तदपि=निषेध्यअर्पकश्रुति तथा साक्षिप्रत्यक्ष एतदुभय भी बाध्य नहीं है, एवमेव च=जैसे प्रपञ्चसत्यत्वप्रत्यक्षमें आपको विश्वासनहीं है तैसेही दोषाभावादिका जो ज्ञान तादृशज्ञानरूप जो परीक्षा उस परीक्षामें भी अनाश्वास होनेपर वेदमें जो पौरुषेयत्वाभावका ज्ञान होता है उस ज्ञानमें, च=और त्वदुक्तानुमाने=प्रपञ्चो मिथ्या. दृश्यत्वात्, इत्यादि भवदुक्तानुमानमें जो योग्यानुपलब्ध्यादिरूप हेतुसे हेत्वाभासके राहित्यका ज्ञान है उस हेत्वाभासराहित्यज्ञानमें, ब्रह्ममीमांसाके प्रत्येक अधिकरणमें सिद्धान्तीको अभिप्रेत जो अर्थ है उस अर्थमें उपक्रमादिके आनुगुण्यज्ञानमें., अनाश्वास होजायगा इति=अतः प्रमाण तथा प्रमाणाभास इन दोनोंकी व्यवस्था न होगी । इति चेन्न,=ऐसा यदिकहो तो नहीं कहना., क्योंकि परीक्षातो प्रवृत्तिसम्वादरूप तथा प्रवृत्तिविसंवादाभावरूप तथा दोपाभावादिरूप है,

तथा च=उस परीक्षासे तो स्वसमानदेशकालीन जो प्रामाण्यस्य=प्रामाण्यघटकविषयाबाध्यत्व वह व्यवस्थापित किया जाता है धूमसे स्वसमानदेशकालीन वह्निकी न्याई। फलतः व्यवहार-दशामात्रमें अबाध्यत्व देहात्मैक्यसाधारण परीक्षितप्रमाणमें व्यवस्थित है., अतः अत्यन्त जो अबाध्यत्व तादृशाबाध्यत्वाभावग्राहक आगम तथा अनुमानकी प्रवृत्ति क्यों न होगी तिससे विश्वास तथा प्रमाण एवं प्रमाणाभास इन सर्वकी व्यवस्था व्यावहारिक है अतः सर्वजगन्मिथ्या है इति=यह सिद्ध हुआ ॥

ननु प्रत्यक्षाप्रामाण्ये तत्सिद्धस्य व्याप्त्यादेर्बाधेनानुमेयादेरनुमित्यादिप्रामाण्यस्य च बाधः, अनुमेयादेर्व्याप्त्यादिना अनुमितिप्रामाण्यादिना च समानयोगक्षेमत्वात्, अन्यथा प्रातिभासिकव्याप्त्यादिमता बाष्पाध्यस्तधूमेन तात्त्विको व्यावहारिको वाग्नि-र्व्यावहारिकव्याप्त्यादिमता धूमेन तात्त्विकोऽग्निर्व्यावहारिकेणाबाधेन विरुद्धधर्माधि-करणत्वेन च विश्वस्य जीवेशभेदस्य च तात्त्विकं सत्त्वं सिध्येत् इति चेन्न, एतावता हि व्याप्त्यादिसमानसत्ताकमनुमेयं सिध्यत्वित्यापत्तेः फलितोऽर्थः। स चास्माकमिष्ट एव, नहि ब्रह्मभिन्नं क्वचिदत्यन्ताबाध्यमस्ति। न चायमनुमेयादेर्व्याप्त्यादिना समसत्ताक-त्वनियमोऽप्यस्ति, व्यभिचारिणापि लिङ्गेन साध्यवति पक्षेऽनुमितिप्रमादर्शनात्। ध्वनिधर्महस्वत्वदीर्घत्वादिविशिष्टेन मिथ्याभूतैरपि नित्यैर्विभुभिर्वर्णैः सत्या शाब्दप्र-मितिः क्रियते इति मीमांसकैरभ्युपगमात्, गन्धप्रागभावावच्छिन्ने घटे तात्त्विकव्या-प्त्यादिमतापि पृथिवीत्वेनातात्त्विकगन्धानुमितिदर्शनात्, प्रतिबिम्बेन च बिम्बानु-मितिदर्शनात्। नच तत्रापि बिम्बरहितावृत्तिरूपा व्याप्तिस्तात्त्विकीवेति वाच्यम्, एवं सत्यवृत्तिगगनादेरपि व्याप्यतापत्तेः, नच तत्र बिम्बपूर्वकत्वमेवानुमीयते बिम्बव्यतिरेक-प्रयुक्तव्यतिरेकप्रतियोगित्वरूपेणाप्रातिभासिकेन हेतुनेति वाच्यम्, प्रयुक्तत्वं हि न तज्ज-नकजन्यत्वादिरूपम्, व्यतिरेकयोः परस्परं तदभावात्, किन्तु व्याप्यव्यापकभावः तथा च बिम्बव्यतिरेकव्यापकव्यतिरेकप्रतियोगित्वं हेतुः, स चाकाशादौ व्यभिचार्येव। तस्मात्तत्र प्रतिबिम्बेनैव बिम्बानुमानम्। अनुमेयस्य लिङ्गव्याप्त्यादिसमानसत्ताकत्व-नियमस्यापास्तत्वात् ॥

शङ्कते नन्विति। प्रत्यक्षका अप्रामाण्य होनेपर तत्सिद्धस्य=प्रत्यक्षसे सिद्ध व्याप्त्यादिका बाध होनेसे अनुमेयादिका और अनुमितिप्रामाण्यका बाध होगा; क्यों? अनुमेयादिको व्याप्ति आदिके साथ और अनुमितिप्रामाण्यादिके साथ समानयोगक्षेम होनेसे=योगक्षेम शब्दसे यहांपर सत्ता लेनी चाहिए। तथा च उक्तपदार्थोंमें समानसत्ताकत्व है। अन्यथा=समानसत्ता-कत्वका अनङ्गीकार होनेपर प्रातिभासिक जो व्याप्त्यादि तद्वान् जो बाष्पाध्यस्त धूम उस धूमसे तात्त्विक या व्यावहारिक अग्नि सिद्ध होगा। व्यावहारिकव्याप्त्यादिमत् जो जो धूम है उस २ धूमसे तात्त्विकाग्नि सिद्ध होगा; व्यावहारिक अबाधसे व्यावहारिकविरुद्धधर्माधिकरणसे

विश्वका तथा जीवेशके भेदका तात्त्विकसत्त्व सिद्ध होगा; इति चेन्न; ऐसा यदि कहो तो नहीं कहना क्योंकि एतावताहि=इतने कथनसे व्याप्यादिसमानसत्ताक अनुमेय सिद्ध हो यह आपत्तिका फलितार्थ हुआ है। और वह तो हमको इष्टही है; ब्रह्मसे भिन्न कहींपर भी अत्यन्ताबाध्यत्व नहीं है अर्थात् ब्रह्मसे अतिरिक्त कोई भी वस्तु कहींपर भी सर्वथा अबाध्य नहीं है यह हमारा सिद्धान्त है; अतः उक्तनियम मान लेनेमें कोई हानि नहीं। अनुमेयका व्याप्यादिके समानसत्ताकत्वका नियम भी नहीं है; क्यों? व्यभिचारीलिङ्गसे भी साध्यवान् पक्षमें साध्यकी अनुमितिके देखनेसे, ध्वनिका धर्म जो ह्रस्वत्व दीर्घत्वादि तद्विशिष्टत्वेन मिथ्याभूत जो नित्यविभुवर्ण हैं, उनवर्णोंसे सत्या=व्यावहारकालाबाध्यविषयिका शाब्दप्रमिति की जाती है=प्रयुक्त होती है इति=ऐसा मीमांसकोंका अभ्युपगम होनेसे; गन्धप्रागभावावच्छिन्न जो उत्पत्तिकालीन घट है उस घटमें तात्त्विकव्याप्यादिमत् जो पृथिवीत्वरूप हेतु है उस हेतुसे अतात्त्विकगन्धकी अनुमिति देखनेसे=उत्पत्तिकालीनघटो गन्धवान् पृथिवीत्वात्। यहांपर पृथिवीत्व हेतु सद्धेतु है और साध्यका समव्याप्त है=जो दो पदार्थ परस्पर व्याप्य होके परस्पर व्यापक हों उन्हें समव्याप्त कहा जाता है जैसे जलत्वजाति तथा स्नेह ये दोनों समव्याप्त हैं क्योंकि जलत्वाभाववत्में स्नेह अवृत्ति है। इसलिए जलत्वका व्याप्य है, और व्याप्तिघटकाभावमें प्रतियोगित्र्यधिकरणताका निवेश होनेसे जलत्वाधिकरणवृत्त्यत्यन्ताभावीयप्रतियोगितानवच्छेदकधर्मवत्त्वरूपव्यापकत्व भी है, तद्वत् गन्ध और पृथिवीत्वमें भी समझना चाहिए, अथवा दोनों स्थलोंमें अधिकरणताओंकी व्याप्ति है; अतः उत्पत्तिकालावच्छेदेन स्नेहादिके न रहनेपर भी कोई क्षति नहीं क्योंकि 'वृक्षः कपिसंयोगवान्' इत्याकारकप्रतीत्यन्यथानुपपत्तिसे अव्याप्यवृत्ति पदार्थकी भी अधिकरणता व्याप्यवृत्ति माननी चाहिए, तथा च पृथिवीत्वरूपहेतु तात्त्विकव्याप्तिमान् है परन्तु गन्धप्रागभावावच्छिन्न घटमें इस हेतुसे अतात्त्विकानुमिति होती है; प्रतिविम्बेन च=और मिथ्याभूत प्रतिविम्बसे व्यावहारिक विम्बानुमिति देखनेसे भी उक्त नियम ठीक नहीं है। तत्रापि=प्रतिविम्बसे विम्बानुमितिस्थलमें भी विम्बरहितावृत्तिरूपा=विम्बप्रतियोगिकाभावाधिकरणनिरूपितवृत्तित्वाभावरूप व्याप्ति प्रतिविम्बनिष्ठ तात्त्विकीही है; अर्थात् साध्याभाववदवृत्तित्वही तो व्याप्ति है यह व्याप्ति प्रतिविम्बमें विम्बरूप साध्यनिरूपित है ही अतः तात्त्विकी है, तथा च व्याप्तिरहित हेतुसे तात्त्विकी अनुमितिका यह स्थल नहीं है जैसा कि आप समझते हैं; इति न च वाच्यम्=ऐसा नहीं कहना क्यों? एवं सति=उक्तस्वरूप व्याप्तिके होनेपर गगनादिके व्याप्यताकी आपत्तिसे=साध्याभाववदवृत्तित्व व्याप्ति नहीं हो सकता है ऐसा होनेपर 'वह्निमान् गगनात्' इत्यादि प्रयोगोंकी आपत्ति है और गगनादिरूप हेतुओंसे वह्न्यादिकी अनुमिति अनुभवसिद्ध नहीं; और गगनादिमें जगद्व्याप्यत्वका व्यवहार भी अनुभवसे विरुद्ध है। तत्र=उक्तस्थलमें प्रतिविम्बको पक्षकर विम्बपूर्वकत्वही अनुमित होता है विम्बव्यतिरेकप्रयुक्तव्यतिरेकप्रतियोगित्वरूप अप्रातिभासिक हेतुसे=यहांपर ऐसा प्रयोग होगा—प्रतिविम्बः विम्बपूर्वकः विम्बव्यतिरेकप्रयुक्तव्यतिरेकप्रतियोगित्वात्, यत् यद्व्यतिरेकप्रयुक्तव्यतिरेकप्रतियोगि तत् तत्पूर्वकम्, यथा दण्डादिव्यतिरेक-

प्रयुक्तव्यतिरेकप्रतियोगि घटादिकम्, दण्डादि पूर्वकम्। इत्यर्थ यह है कि-विम्बका जो व्यतिरेक=अभाव उस अभावसे प्रयुक्त जो व्यतिरेक=अभाव तादृशाभावप्रतियोगित्व; इति न च वाच्यम्; क्यों? प्रयुक्तत्व विम्बव्यतिरेकरूप जनकसे जन्यत्वादिरूप नहीं हो सकता है, व्यतिरेकोंके परस्पर जन्यजनकभावका अभाव होनेसे=प्रतिविम्बके व्यतिरेकमें विम्बके व्यतिरेकसे प्रयुक्तत्व बतलाया है वह प्रयुक्तत्व जनकत्वादिरूप तो नहीं माना जा सकता है क्योंकि अभावोंका परस्पर जन्यजनकभाव नहीं है; किन्तु अभावोंका परस्पर व्याप्यव्यापकभाव होता है; फलतः उक्तहेतुका अर्थ यह हुआ कि विम्बव्यतिरेकव्यापकव्यतिरेकप्रतियोगित्व; और एवम्भूतार्थक जो हेतु है वह तो आकाशादिमें व्यभिचारीही है; यतः गत्यन्तर नहीं है ततः तत्र=उक्तस्थलमें प्रतिविम्बसेही विम्बानुमान होता है; अनुमेयनिष्ठ लिङ्गव्याप्त्यादिके समानसत्ताकत्वके नियमको खण्डित हो चुकनेसे=अनुमेय और लिङ्गादि समानसत्तावालेही हों ऐसा नहीं है यह दिखला चुके हैं।

एतेन शब्देऽपि योग्यतासमसत्ताकेन शब्दार्थेन भवितव्यम्; योग्यतावाक्यार्थयोः समानसत्ताकत्वनियमादिति कथं वेदान्तवाक्यार्थो योग्यतावाधेऽप्यवाधितः स्यादिति परास्तम्; वेदान्तवाक्ये अखण्डार्थरूपवाक्यार्थावाधरूपाया योग्यताया अप्यवाधाच्च। नच तथापि वेदान्ततज्ज्ञानतात्त्विकत्वं हि न विषयतात्त्विकत्वे तन्त्रम्; इदं रजतमित्यनाप्तवाक्यस्य तज्जन्यभ्रमस्य च त्वन्मते तात्त्विकत्वेऽपि तद्विषयस्यातात्त्विकत्वात्। नच ज्ञानप्रामाण्यस्य मिथ्यात्वे विषयस्यापि मिथ्यात्वं शुक्तिरूप्यज्ञाने दृष्टमिति प्रकृतेऽपि ज्ञानप्रामाण्यमिथ्यात्वे तद्विषयस्यापि मिथ्यात्वं स्यादिति वाच्यम्; प्रामाण्यमिथ्यात्वं हि न विषयमिथ्यात्वे प्रयोजकम्; भ्रमप्रमावहिर्भूते निर्विकल्पके विषयवाधाभावात्. किन्तु तदभाववति तत्प्रकारकत्वादिरूपमप्रामाण्यमेव तथा तच्च प्रकृते नास्त्येव।

एतेन—अनुमेयके लिङ्गादिसमानसत्ताकत्वके निराससे शब्देऽपि=शब्दस्थलमें भी योग्यताकी सत्ताके समानसत्तावाला जो शब्दार्थ तादृशशब्दार्थसे होना चाहिए=शब्दप्रमाण स्थलमें भी योग्यताके समानसत्तावाला अर्थ होना चाहिए क्यों? योग्यता तथा वाक्यार्थ इन दोनोंको समानसत्ताकत्वका नियम होनेसे इति=अतः योग्यताका बाध होनेपर भी वेदान्तवाक्यार्थ कैसे अबाधित होगा इति अपास्तम्; यह भी खण्डित हुआ जैसे अनुमेयमें लिङ्गादिसमसत्ताकत्वका नियम नहीं है। तैसेही वाक्यार्थमें भी योग्यतासमसत्ताकत्वका नियम नहीं है। वेदान्तवाक्यमें अखण्डार्थरूप जो वाक्यार्थकी अबाधरूपा योग्यता उस योग्यताके अबाधसे भी कोई दोष नहीं है=वाक्यार्थके अबाधका नाम योग्यता है एवम्भूत योग्यताका वेदान्तवाक्योंमें भी बाध नहीं है क्योंकि वेदान्तोंका वाक्यार्थ अखण्डरूप है उसका बाध नहीं होता है। तथापि=तो भी वेदान्त और वेदान्तजन्यज्ञान और तादृश ज्ञाननिष्ठ प्रामाण्य इन सबका मिथ्यात्व होनेपर तात्त्विक अद्वैतकी सिद्धि कैसे होगी; इति न च वाच्यम्; क्यों?

शब्द और शब्दजन्यज्ञान इन दोनोंका तात्त्विकत्व विषयतात्त्विकमें तन्त्रम्=समव्यापक नहीं है । 'इदं रजतम्' इत्याकारक जो अनाप्तवाक्य है उस अनाप्तवाक्यको और उक्त वाक्यजन्य भ्रमको तुम्हारे मतमें तात्त्विकत्व होनेपर भी तद्विषयस्य=उक्त शब्दजन्यज्ञानविषयको अतात्त्विकत्व होनेसे । ज्ञाननिष्ठप्रामाण्यका मिथ्यात्व होनेपर विषयका भी मिथ्यात्व शुक्तिरूप्यमें दृष्ट है । इति=इसलिए प्रकृतार्थमें भी ज्ञाननिष्ठ प्रामाण्यका मिथ्यात्व होनेपर विषयका भी मिथ्यात्व होगा; इति न च वाच्यम्; क्यों ? प्रामाण्यका मिथ्यात्व विषयमिथ्यात्वमें प्रयोजक नहीं है भ्रम तथा प्रमा इन दोनोंसे वहिर्भूत=विलक्षण जो निर्विकल्प उस निर्विकल्पमें विषयबाधके अभावसे=प्रामाण्याभाव निर्विकल्प ज्ञानमें रहता है फिर भी निर्विकल्पका विषय अबाधित होता है इस रीतिसे वेदान्तवाक्यजन्यज्ञाननिष्ठ प्रामाण्यका मिथ्यात्व होनेपर भी ज्ञानविषयीभूत शुद्ध ब्रह्ममें मिथ्यात्व नहीं आ सकता है । किन्तु तदभाववत्में तत्प्रकारकत्वादिरूप जो अप्रामाण्य है वही तथा=विषयमिथ्यात्वमें प्रयोजक है; तच्च=उक्ताप्रामाण्य तो प्रकृते=वेदान्तजन्य ज्ञानमें नहीं ही है ।

नच अर्थाबाधरूपप्रामाण्यस्य मिथ्यात्वादर्थस्यापि मिथ्यात्वम्, स्यादितिवाच्यम् अबाधितार्थविषयत्वं हियत् प्रामाण्यं तस्य मिथ्यात्वम् प्रकृते नार्थबाधात्; तद्बाधकप्रमाणासम्भवात्, तस्य सर्वबाधावधित्वात्, किन्तु तद्विषयत्वरूपसम्बन्धबाधात्तथा । तथा चाबाधितार्थविषयत्वरूपप्रामाण्यमिथ्यात्वेऽपि नार्थो मिथ्या । विशिष्टस्यैकांशमिथ्यात्वेऽपि अपरांशसत्यत्वात्, यथा दण्डबाधनिबन्धनदण्डिपुरुषबाधेऽपि पुरुषो न बाधित एवेति ।

इति अद्वैतसिद्धौ प्रत्यक्षस्योजीव्यत्वभङ्गः ।

अर्थका अबाधरूप जो प्रामाण्य उस प्रामाण्यके मिथ्यात्वसे अर्थका भी मिथ्यात्व होगा=प्रामाण्यका स्वरूप अर्थसे घटित है अतः प्रामाण्यका मिथ्यात्व होनेपर तद्घटक अर्थकाभी मिथ्या होगा । इति न च वाच्यम्; क्यों ? अबाधितार्थ विषयत्वरूप जो प्रामाण्य है । तस्य=उस प्रामाण्यका प्रकृते=प्रकृतमें मिथ्यात्वम्=मिथ्यात्व है; नार्थबाधात्=अर्थबाध प्रयुक्त प्रामाण्यका मिथ्यात्व नहीं; तद्बाधक=अर्थबाधक प्रमाणका असम्भव होनेसे, तस्य=वेदान्तवाक्यजन्य ज्ञानविषयीभूत शुद्धब्रह्मरूप अर्थको सर्व बाधोंकी अवधि होनेसे; किन्तु तद्विषयत्व=उक्तार्थविषयत्वरूप जो वृत्तिनिष्ठ सम्बन्ध उसके बाधसे तथा=प्रामाण्यमिथ्यात्वका व्यवहार है तथा च=फलितार्थ यह हुआ कि अबाधितार्थविषयत्वरूप जो प्रामाण्य उस प्रामाण्यका मिथ्यात्व होनेपर भी नार्थो मिथ्या=तद्घटक अर्थ मिथ्या नहीं है, विशिष्टके एकांशको मिथ्यात्व होनेपर भी अपरांशका सत्यत्व होनेसे, जैसे दण्डबाधाधीन दण्डिपुरुषका बाध होनेपर भी स्वरूपतः पुरुष अबाधितही है=विशेषणाभावप्रयुक्तविशिष्टाभावस्थलमें स्वरूपतः विशेष्याभाव नहीं सिद्ध होता है तैसेही प्रामाण्यस्वरूपघटकविधया अर्थमें मिथ्यात्वव्यवहार होनेपरभी स्वरूपतः अर्थ अबाधितही है । क्योंकि प्रकृतमें अर्थ सर्व बाधोंका साक्षी है । तो उसका बाध किं साक्षिक होगा ।

इति सरलायां प्रत्यक्षस्योपजीव्यत्वभङ्गः ।

अथ प्रत्यक्षस्यानुमानबाध्यत्वम्।

किञ्च विपक्षबाधकसचिवमनुमानमपि प्रत्यक्षबाधकम्। ननु एवमपि औदुम्बरीं स्पृष्ट्वा उद्गायेत्। ऐन्द्र्या गार्हपत्यमुपतिष्ठते। शरमयं हि बर्हिर्भवतीतिश्रुतित्रयग्राहि प्रत्यक्षं यथाक्रममौदुम्बरी सर्वा वेष्टयितव्येतिस्मृतिरूपेण सर्ववेष्टनश्रुत्यनुमानेन कदाचनस्तरीरसि नेन्द्रसश्चसि दाशुष इति मन्त्रसामर्थ्यलक्षणेनेन्द्रशेषत्वश्रुत्यनुमानेन चोदनालिङ्गरूपेण कुशश्रुत्यनुमानेन च बाध्येतेति सर्वमीमांसोन्मृदितास्यादिति चेन्न, वैषम्यात्; तथाहि–

अथ सरलायां प्रत्यक्षस्यानुमानबाध्यत्वम्।

किञ्च=और भी वक्तव्य है, विपक्षमें जो बाधक है वह है सचिव=सहकारी जिसका एवम्भूत जो अनुमान है वह भी प्रत्यक्षका बाधक है, शङ्कते नन्विति। एवमपि=ऐसा होनेपर भी 'औदुम्बरीं स्पृष्ट्वा उद्गायेत्, ऐन्द्र्या गार्हपत्यमुपतिष्ठते' 'शरमयं बर्हिर्भवति' इति=इत्याकारक श्रुतित्रयग्राहिप्रत्यक्ष यथाक्रमसे, 'औदुम्बरी सर्वा वेष्टयितव्या। इत्याकारकस्मृतिरूप सर्ववेष्टनश्रुत्यनुमानसे, कदाचनस्तरीरसि नेन्द्र सश्चसि दाशुष' इत्याकारकमन्त्रसामर्थ्यलक्षणेन्द्रशेषत्वश्रुतिअनुमानसे। च=तथा चोदनालिङ्गरूपकुशश्रुत्यनुमानसे बाधित होगा इस रीतिसे सर्वमीमांसा उन्मूलित हो जायगी=जैमिनीय मीमांसाके प्रथमाध्यायके तृतीयपादमें विचार किया गया है=सोमयागमें एक सदोनामक मण्डप होताहै उस मण्डपमें उदुम्बरकी एकशाखा खोदकर स्थापित की जाती है उस शाखाका नाम औदुम्बरी है–उदुम्बर नाम गूलरका है, इस शाखाको उद्देशकर श्रुतिमें कहा है कि 'औदुम्बरीं स्पृष्ट्वा उद्गायेत्' औदुम्बरीको छूके उद्गाता-सामगायन करे, और स्मृतिमें लिखा है कि 'औदुम्बरी सर्वावेष्टयितव्या' सर्व औदुम्बरी वस्त्रसे लपेटनी चाहिए, तहां संशय होता है कि–यह स्मृति प्रमाण है या नहीं, पूर्व पक्ष यह है कि–प्रमाण है, क्योंकि स्मृति–अधिकरणमें कहा है कि स्मृतियाँ भी स्वमूलभूतश्रुत्यनुमापकत्वेन प्रमाण हैं, अतः यह स्मृति भी स्वमूलभूत श्रुतिकी अनुमापिका होनेसे प्रमाण है, सिद्धान्त यह है कि–स्पर्शन तथा वेष्टन ये दोनों परस्पर विरुद्ध हैं अतः इन दोनोंकी कर्त्तव्यताको बतलानेवाले प्रमाण भी औष्ण्यशैत्यवत् विरुद्धहैं अतः वह्निमें जैसे औष्ण्यप्रत्यक्षसे शैत्यानुमानका बाध होता है तैसेही प्रत्यक्षसिद्ध जो स्पर्शनश्रुति है उस श्रुतिसे सर्ववेष्टनश्रुतिके अनुमानका बाध होनेसे मूलश्रुतिका अभाव है अतः यह स्मृति अप्रमाण है, यह सर्ववेष्टनस्मृति व्यामोहमूलक या लोभमूलक हो सकती है कभी ऋत्विजोंने वस्त्रके लोभसे सर्व औदुम्बरीका वेष्टन किया होगा उसको देखकर स्मृतिकारने अपनी स्मृतिमें लिखदिया होगा क्योंकि द्रव्यादिक्रीत ऋत्विजोंमें लोभका संभव है, शङ्का जब यों है तबतो मन्वादिस्मृतिओंको भी ऐसाही मानलेना चाहिए 'समाधान' जबतक विरुद्धार्थप्रतिपादक श्रुति नहीं मिलती है. तबतक किसी भी शिष्टादिपरिगृहीत स्मृतिमें ऐसी कल्पना नहीं की जा सकती है। यहांपर जिस श्रुत्यनुमानका प्रत्यक्षसिद्धस्पर्शन श्रुतिसे बाध हुआ है उसका आकार यह है=औदुम्बरीसर्ववेष्टन-

स्मृतिः, तादृशश्रुतिमूलिका, बाधकाभावे सति शिष्टगृहीतस्मृतित्वात्। या बाधकाभावे सति यदर्थकशिष्टगृहीतस्मृतिः, सा तदर्थकश्रुतिमूलिका, यथा प्रत्यक्षश्रुतिमूलकस्मृतिः। 'ऐन्द्या गार्हपत्यमुपतिष्ठते' इसका विचार प्रथमकर चुके हैं यहांपर 'गार्हपत्यम्' इस प्रत्यक्षश्रुतिसे कदाचनस्तरीरसि नेन्द्र सश्चसि दाशुषे, यह जो ऐन्द्रीऋचा कही जाती है. एतद्दृग्धर्मिकइन्द्रप्रकाशकत्वप्रयुक्तइन्द्रशेषत्वानुमानका बाध होता है, जिस अनुमानका बाध होता है उसका आकार यह है=कदाचनस्तरीरसि नेन्द्रसश्चसि दाशुषे, इति मन्त्रः, इन्द्रशेषत्वप्रतिपादकश्रुतियुक्तः, बाधकाभावे सतीन्द्रप्रकाशनसामर्थ्योपेतत्त्वात्, यत् यत्प्रकाशनसमर्थं तत्तस्य शेषत्वप्रतिपादकश्रुतियुक्तम्, यथा सम्मतम्। उक्तमन्त्रका अर्थ यह है–हे इन्द्र तुम कदाचन=कभी भी स्तरीर्=हिंसक न असि=नहीं हो, दाशुषे=हविष् जिसने दिया है उसके हविष्का सश्चसि=सेवन करते हो, दाशुषे यह चतुर्थी पष्ठ्यर्थमें है। जैमिनीय मीमांसाके दशमाध्यायके चतुर्थपादमें विचार किया है–दर्शपौर्णमासकी विकृतिभूत, सोमारौद्रं चरुं निर्वपेत् कृष्णानां व्रीहीणाम्, इस वाक्यसे एक इष्टिका विधान है इस इष्टिको उद्देश्य कर कहा है 'शरमयं बर्हिर्भवति=इस इष्टिमें बर्हिस्=स्तरणकर्तृद्रव्य शरमय होता है, यहांपर स्तरणरूप बर्हिस्का कार्य है उसे उद्देश्य कर शरोंका विधान है, तहां ऐसा संशय होता है कि 'प्रकृतिवत् विकृतयः कर्त्तव्याः' इस अतिदेशवाक्यसे दर्शपौर्णमासीय कुश निवृत्त होते हैं या नहीं, तहां पूर्वपक्ष यह है कि साक्षात् वाक्यसे शर प्राप्त है और अतिदेशसे कुशोंकी प्राप्ति है और दोनों प्रमाण हैं अतः समुच्चय होना उचित है, सिद्धान्त यह है कि–बर्हिस् शब्दसे लक्षित बर्हिस्का कार्य्य स्तरण है उसमें शरोंका विधायक वाक्य प्रत्यक्ष है और उस वाक्यसे विहित शरोंसेही कुशोंका कार्य होजाता है अतः यहां पर कुशसाधारण अतिदेशवाक्यकी कल्पना नहीं की जा सकती है, किन्तु कुशोंसे अतिरिक्त जो अङ्गतत्प्रापकसाधारणअतिदेशकी कल्पना है अतः यहांपर चोदनालिङ्गरूप कुशश्रुत्यनुमानका प्रत्यक्षसे बाध होता है=चोदना नाम विधिवाक्यका है,. चोदनालिङ्गरूपेण=विधिवाक्यसादृश्यरूपलिङ्गसे जिस अनुमानका यहांपर बाध होता है उसका आकार यह है–सोमारौद्रचरुयागः, कुशबर्हिःप्रतिपादकश्रुतियुक्तः, कुशश्रुतियुक्तदर्शपौर्णमासचोदनासदृशनिर्वापशब्दाष्टाकपालादिसंख्याद्विदेवतादियुक्तचोदनायुक्तत्वात्, यत् यत्सदृशचोदनोपेतं तत् तदीयधर्मप्रतिपादकश्रुतियुक्तं यथा सम्मतम्। तथाच उक्तस्थलोंमें प्रत्यक्षविषयीभूतश्रुतिसे अनुमानोंका बाध होता है। यदि आप सत्त्वप्रत्यक्षका अनुमानसे बाध मानेंगे तो यहां परभी अनुमानोंसे बाध हो जायगा अत एव मीमांसा उन्मथित हो जायगी, इस रीतिसे रहस्य न समझ कर द्वैतीने यह कन्था बनाकर खडी की है, अब इस कन्थाकी खबर ली जाती है–इतिचेन्न, क्यों? वैषम्यात्=विषमता होनेसे तथाहि=दिखलाते हैं–

किमिदमापाद्यते, श्रुतित्रयग्राहिप्रत्यक्षमनुमानैर्बाध्येतेति वा प्रत्यक्षविषयीभूतश्रुतित्रयमिति वा। नाद्यः विरोधाभावेन तद्बाध्यबाधकभावस्य शास्त्रार्थत्वाभावात्, अनुक्तोपालम्भत्वे निरनुयोज्यानुयोगापत्तेः। अत एव न अस्माभिरनभ्युपगमाच्च,

द्वितीयः, प्रत्यक्षविषयीभूतश्रुतित्रयस्य लिङ्गबाधकत्वपरेऽपि शास्त्रे प्रत्यक्षस्य लिङ्गबाध्यत्वे विरोधाभावात्, नहि शब्दप्रत्यक्षयोरैक्यमस्ति; शब्दस्य च सर्वप्रमाणापेक्षया बलवत्त्वमवोचाम। तस्मान्मौढ्यमात्रमेतन्मीमांसविरोधोद्भावनम्। ननु प्रत्यक्षस्यलिङ्गबाध्यत्वे वह्न्यौष्ण्यप्रत्यक्षं शैत्यानुमानस्यात्मस्थायित्वप्रत्यभिज्ञानञ्च क्षणिकत्वानुमानस्य बाधकं न स्यात्, प्रत्युतानुमानमेव तयोर्बाधकं स्यात्, इति चेन्न; अर्थक्रियासंवादेन श्रुत्यनुग्रहेण च तत्र प्रत्यक्षयोः प्राबल्येनानुमानबाधकत्वात्। अपरीक्षितप्रत्यक्षं हि परीक्षितानुमानापेक्षया दुर्बलं, नीलं नभ इति प्रत्यक्षमिव नभोनीरूपत्वानुमानापेक्षया, अतो न सामान्यतो दृष्टमात्रेण सर्वसङ्करापत्तिः।

क्या आपादन किया जाता है—श्रुतित्रयग्राहि जो प्रत्यक्ष वह अनुमानोंसे बाधित होगा, यह आपादन करते हो; या प्रत्यक्षका विषयीभूत जो श्रुतित्रय वह अनुमानोंसे बाधित होगा, यह आपादन करतेहो, नाद्यः=आदिपक्ष समीचीन नहीं है, क्यों ? विरोधाभावेन=श्रुतित्रयग्राहि प्रत्यक्ष तथा अनुमान इन दोनोंके विरोधके न होनेसे तद्बाध्यबाधकभावस्य=उक्त। श्रुतिविषयक प्रत्यक्ष तथा उक्तस्मृतिहेतुकानुमान इन दोनोंके परस्पर बाध्यबाधकभावको शास्त्रार्थत्वका अभाव होनेसे=उक्तानुमानकी उक्तश्रुतिसेही बाध्यता शास्त्रार्थ है क्योंकि ये दोनों परस्पर विरुद्धविषयक हैं, और श्रुतिविषयकप्रत्यक्षसे अनुमानका बाध नहीं है क्योंकि ये दोनों परस्पर विरुद्धविषयक नहीं हैं, फलतः उक्त प्रत्यक्ष तथा अनुमान इन दोनोंको विरुद्धविषयकत्व होता तो बाध्यबाधकत्व शास्त्रार्थ होता. परन्तु विरुद्धविषयकत्वतो नहीं है, अतः उक्त आपत्ति नहीं दी जा सकती है, तयोर्बाध्यबाधकभावः इति तद्बाध्यबाधकभावः तस्य, ऐसा विग्रह करना। ननु उक्त बाध्यबाधकभावको शास्त्रार्थ न होनेपर भी आपने प्रत्यक्षको अनुमानसे बाध्य माना है अतः आपके मतसे क्यों न उक्तप्रत्यक्षका अनुमानसे बाध हो. तहां कहते हैं,—अस्माभिरनभ्युपगमाच्च=हमलोगोंसे अभ्युपगम न होनेसे भी=विरुद्धविषयक प्रत्यक्षकी ही हम सत्तर्कसचिवानुमानसे बाध्यता बतलाते हैं, प्रत्यक्षमात्रकी नहीं. अतः आपकी आपत्ति युक्त नहीं है, अनुक्तको उद्देश्य कर दोषोद्भावन करनेपर आपको निरनुयोज्यानुयोगनामक निग्रहस्थानकी प्राप्ति है। अत एव=विरोधाभावसे ही द्वितीय पक्षभी ठीक नहीं है, श्रावण प्रत्यक्षका विषयीभूत जो श्रुतित्रय उस श्रुतित्रयको लिङ्गबाधकत्व है एतदर्थपरक शास्त्रके होनेपरभी प्रत्यक्षके लिङ्गबाध्यत्वमें विरोध नहीं है, क्योंकि शब्द तथा प्रत्यक्ष इन दोनोंका ऐक्य=अभेद नहीं है यदि अभेद होता तो अनुमानसे प्रत्यक्षकी बाध्यता होनेपर तदभिन्न शब्दकी बाध्यता आसकती थी परन्तु ऐसा नहीं है, शब्दका तो सर्व प्रमाणापेक्षया बलवत्त्व कहा है. तस्मात् यह मीमांसाके विरोधका उद्भावन उद्भावनकर्त्ताका मौर्ख्यमात्र है, और कोई फल नहीं। प्रकारान्तरसे प्राकृतवादी शङ्का करता है नन्विति। प्रत्यक्षको लिङ्गबाध्यता होनेपर वह्निका औष्ण्यप्रत्यक्ष शैत्यानुमानका और आत्मस्थायित्वप्रत्यभिज्ञान क्षणिकत्वानुमानका बाधक न होगा=' वह्निः अनुष्णः द्रव्यत्वात्. जलादिवत्' यह शैत्यानुमान है इसका औष्ण्यप्रत्यक्षसे बाध होता है,

'आत्मा क्षणिकः सत्त्वात् दीपशिखावत्' यह क्षणिकत्वानुमान है इसका 'योऽहं बाल्ये पितरावन्वभूवं स एवाहं स्थाविरे प्रणप्तृननुभवामि, इस प्रत्यक्षात्मकप्रत्यभिज्ञानसे बाध होता है। यदि अनुमानसे प्रत्यक्षका बाध माना जायगा तब उभयत्र विपरीत हो जायगा इसी अर्थको कहते हैं–प्रत्युत=उलटा अनुमान ही उक्त दोनों प्रत्यक्षोंका बाधक होगा, इतिचेन्न, क्यों? दाहादिकार्यरूप जो अर्थक्रिया उसके संवादसे च=तथा श्रुतिके अनुग्रहसे तत्र=उक्तस्थलोंमें दोनों प्रत्यक्षोंको प्राबल्य होनेसे अनुमानबाधकत्व है, प्रथम प्रत्यक्षके प्राबल्यका प्रयोजक अर्थक्रियासंवाद है, द्वितीयके प्राबल्यकी प्रयोजिका निश्चबोधक श्रुति है=प्रथम प्रत्यक्षका सहायक अर्थक्रियाका संवाद है द्वितीयकी साहायिका श्रुति है अतः उक्तस्थलोंमें अनुमानसे प्रत्यक्षका बाध नहीं होता है किन्तु प्रत्यक्ष ही अनुमानका बाधक है, अपरीक्षित प्रत्यक्ष ही परीक्षितानुमानकी अपेक्षा दुर्बल है, जैसे (नीलं नभः) नीलरूपवाला आकाश है यह प्रत्यक्ष नभके नीरूपत्वानुमानकी अपेक्षा दुर्बल है, अतः व्याप्तिरहित सामान्यतो दृष्टमात्रसे सर्वसङ्करापत्ति नहीं है। नभोनीरूपत्वानुमान बीचमें तीनप्रकरण छोडकर चतुर्थ प्रकरणमें मूलकार स्वयं दिखलावेंगे अतः यहां नहीं दिखलाया गया।

नन्वेवं पशुत्वेन शृङ्गानुमानमपि स्यात्; लाघवात् पशुत्वमेव शृङ्गवत्त्वे तन्त्रम्; न तु तद्विशेषगोत्वादिकम्, अननुगतत्वेन गौरवादित्येतत्तर्कसध्रीचीनत्वेन प्रत्यक्षापेक्षया प्राबल्यात्; अनुकूलतर्कसाचिव्यमेव हि अनुमाने बलम्। एवञ्च येन केनचित्सामान्यधर्मेण सर्वत्र यत्किञ्चिदनुमेयम्। लाघवतर्कसाचिव्यस्य सत्त्वात् तावतैव प्रत्यक्षबाधकत्वादिति व्यावहारिक्यपि व्यवस्था न स्यात्, नह्यत्र प्रत्यक्षबाधादन्यो दोषोऽस्ति इतिचेन्न, अयोग्यशृङ्गादिसाधने प्रत्यक्षबाधस्यासम्भवेन तत्र व्याप्तिग्राहकतर्केष्वाभासत्वस्य त्वयापि वक्तव्यत्वेन व्यवस्थाया उभयसमाधेयत्वात्, नहि तर्काभाससध्रीचीनमनुमानं प्रमाणमिति केनाप्यभ्युपेयते, अतः उपपन्नं सत्तर्कसचिवमनुमानं प्रत्यक्षस्य बाधकमिति।

इति प्रत्यक्षस्यानुमानबाध्यत्वसिद्धिः।

शङ्कते नन्विति। एवं=उक्तप्रकारसे पशुत्वेन=पशुत्वरूपहेतुसे शृङ्गसाध्यकानुमान भी होगा=शशः शृङ्गवान् पशुत्वात् गवादिवत्, ऐसा अनुमान होगा वानरादि पक्षकुक्षिनिक्षिप्त हैं अतः व्यभिचार नहीं; लाघवसे पशुत्व ही शृङ्गवत्त्वमें तन्त्रम्=व्याप्य है पशुत्वविशेष गोत्वादिक नहीं, क्योंकि गोत्वमहिषीत्वअजात्वादिकको अननुगत होनेसे इनको हेतु माननेमें गौरव है। इस लाघवरूपतर्कसे सहकृत होनेसे प्रत्यक्षकी अपेक्षासे अनुमानका प्राबल्य है, क्योंकि अनुकूलतर्कका साचिव्य ही अनुमानमें बल है, इसी प्रकारसे जिस किस सामान्यधर्मसे सर्वत्र यत्किञ्चित्=कुछ न कुछ अनुमेय है, लाघवरूपतर्कके साचिव्यसे। तावतैव=लाघवरूपतर्कके साहाय्यसे ही अनुमानको प्रत्यक्षबाधकत्व होनेसे। इस रीतिसे व्यावहारिकी व्यवस्था भी आपके मतमें नहीं होगी; अत्र=इस अनुमानमें प्रत्यक्षबाधसे अतिरिक्त और तो कोई दोष नहीं है;

पशुत्व जिसमें रहता है उसे पशु कहा जाता है और लोमवल्लाङ्गूलका नाम पशुत्व है; और केशनख जैसे अवयव नहीं माने जाते हैं तैसे ही लाङ्गूल भी अवयव नहीं किन्तु केशनखादिवत् व्यक्तिके साथ संयोगसम्बन्ध है, गोत्वादिको पशुत्वका विशेष कहनेका यह तात्पर्य्य है कि पशुत्वाधिकरणताकी गोत्वाद्यधिकरणता व्याप्य है, इति चेन्न, क्यों ? अयोग्यशृङ्गादिसाधनमें प्रत्यक्षसे बाधका असंभव होनेसे तत्र=अयोग्यशृङ्गादिसाधनस्थलमें व्याप्तिग्राहकतर्कोंमें आभासत्वको तुमसे भी वक्तव्यत्व होनेसे व्यवस्थाकी उभयसमाधेयता है। शशः अयोग्यशृङ्गवान् पशुत्वात् देवगोवत्, इस अनुमानमें अस्मदादिप्रत्यक्षसे बाध नहीं कहा जा सकता है; क्योंकि अस्मदादिप्रत्यक्षके अयोग्य शृङ्ग साध्य है। अतः व्याप्तिग्राहकलाघवादिरूपतर्कोंमें ही तर्काभासता माननी चाहिए और वह तर्काभासता प्रकृतमें भी दण्डवारिता नहीं है, तर्काभाससे सधीचीन अनुमान प्रमाण है. इति=ऐसा तो किसीसे भी अङ्गीकार नहीं किया जाता है; अतः सत्तर्कसचिव अनुमान प्रत्यक्षका बाधक है यह अर्थ उपपन्न=युक्तियुक्त है यह सिद्ध हुआ।

इति सरलायां प्रत्यक्षस्यानुमानबाध्यत्वसिद्धिः।

अथ प्रत्यक्षस्यागमबाध्यत्वम् ।

किञ्च परीक्षितप्रमाणभावशब्दबाध्यमपिप्रत्यक्षम्। ननु–प्रत्यक्षं यदि शब्दबाध्यं स्यात्तदा जैमिनिना 'तस्माद्धूम एवाग्नेर्दिवा ददृशे नार्चिरित्याद्यर्थवादस्यादितिर्द्यौरित्यादिमन्त्रस्य च दृष्टविरोधेनाप्रामाण्ये प्राप्ते गुणवादस्तु गुणादविप्रतिषेधः स्यादित्यादिना गौणार्थता नोच्येत तत्सिद्धिजातिसारूप्यप्रशंसाभूमलिङ्गसमवाया इति तत्सिद्धिपेटिकायां 'यजमानः प्रस्तर' इत्यादेर्गौणार्थता च नोच्येत त्वयापि प्रत्यक्षाविरोधाय तत्त्वंपदयोर्लक्षणा नोच्येत। श्रुतिविरोधे प्रत्यक्षस्यैवाप्रामाण्यसम्भवात्, नच तात्पर्यलिङ्गानामुपक्रमादीनामत्र सत्त्वान्नाद्वैतश्रुतीनाममुख्यार्थत्वमिति वाच्यम्, यजमानः प्रस्तर इत्यादावपूर्वत्वाद्येकैकलिङ्गस्य तात्पर्य्यग्राहकस्य विद्यमानत्वात्। एकैकलिङ्गस्य तात्पर्यनिर्णायकत्वे लिङ्गान्तरमनुवादकमेव। त्वन्मते प्रत्यक्षसिद्धे भेदे श्रुतिरिव किं बाहुल्येन इति चेन्न।

अथ सरलायां प्रत्यक्षस्यागमबाध्यत्वम् ।

किञ्च=और भी कहना है; परीक्षित है प्रमाणभाव=प्रमाणत्व जिसका एवम्भूत जो शब्द उस शब्दसे बाध्य भी प्रत्यक्ष है=जैसे सत्तर्कसचिव अनुमानसे प्रत्यक्षका बाध होता है। तैसे परीक्षितप्रामाण्यक शब्दसे भी प्रत्यक्षका बाध होता है। द्वैती शङ्कते नन्विति। प्रत्यक्ष यदि शब्दसे बाध्य हो तब जैमिनिना=जैमिनिमहर्षिसे, तिससे अग्निका धूमही दिनमें दीखता है नार्चिः=ज्वाला नहीं; इत्यादि अर्थवादकी च=तथा अदिति द्यौ है; इत्यादि मन्त्रकी दृष्टविरोधसे अप्रामाण्यके प्राप्त होनेपर 'गुणवादस्तु' गुणादविप्रतिषेधः स्यात्; इत्यादिसे गौणार्थता नहीं कही जाती; तत्सिद्धिजातिसारूप्यप्रशंसाभूमलिङ्गसमवाया इस तत्सिद्धिपेटिकामें 'यजमानः

प्रस्तरः' इत्यादिकी भी गौणार्थता नहीं कही जाती, तुमसे भी प्रत्यक्षके साथ अविरोधके लिए तत् तथा त्वं इन दोनोंकी लक्षणा नहीं कही जाती; क्योंकि उक्त निखिल स्थलोंमें श्रुतिके साथ प्रत्यक्षका विरोध होनेपर प्रत्यक्षके ही अप्रामाण्यका संभव होनेसे, अब उक्तार्थका सङ्क्षेपसे विवरण किया जाता है—पूर्वमीमांसाके प्रथमाध्यायके द्वितीयपादके अर्थवादाधिकरणमें अर्थवादोंको अप्रमाण सिद्ध करनेवाले कितनेही पूर्वपक्ष सूत्र हैं उन सूत्रोंमेंसे एक सूत्र है 'शास्त्रदृष्टविरोधाच' इस सूत्रका अर्थ यह है कि शास्त्रके साथ विरोधसे दृष्ट=प्रत्यक्षके साथ विरोध होनेसे भी अर्थवाद अप्रमाण हैं। वहां प्रत्यक्षविरोधके उदाहरणमें यह वाक्य है 'धूम एवाग्नेर्दिवा ददृशे नार्चिः' इस वाक्यका प्रत्यक्षके साथ विरोध है क्योंकि इस वाक्यमें कहा है कि दिवा=दिनमें अग्नेः=अग्निका धूम ही देखा जाता है अर्चि नहीं, परन्तु प्रत्यक्षतः दिनमें दोनों देखे जाते हैं। अतः यह अर्थवादवाक्य अप्रमाण है ऐसी आशङ्का कर समाधान सूत्र पढा है 'गुणवादस्तु' गौणार्थक शब्द है अतः विरोध नहीं='धूम एवाग्नेर्दिवा ददृशे' इस वाक्यमें 'अग्नि वा आदित्यः सायं प्रविशति, तस्मादग्निर्दूरान्नक्तं ददृशे' इस पूर्वतर वाक्यसे 'दूरात्' इतनेकी अनुवृत्ति आती है और यह अनुवृत्त दूरात् पद दूरभूयस्त्वमें गौण है। अर्थात् गौणीवृत्तिसे दूरपद दूरभूयस्त्वका बोध करता है। तथाच यह अर्थ निकला कि 'अतिदूरात् धूम एवाग्नेर्दिवा ददृशे नार्चिः' अर्थवाद वाक्यका अर्थ यह हुआ कि दिनमें अतिदूरसे अग्निका धूम ही दीखता है अर्चि नहीं, और यह अर्थ प्रत्यक्षसे विरुद्ध नहीं अतः प्रत्यक्षविरोधसे इस अर्थवादमें अप्रामाण्यका उद्भावन अयुक्त है। पूर्वमीमांसाके प्रमाणाध्याय=प्रथमाध्यायके द्वितीयपादके मन्त्राधिकरणमें वेदके मन्त्रभागको अप्रमाण सिद्ध करनेके लिए पूर्वपक्षरूप नवसूत्र हैं, उनमेंसे एक सूत्र यह भी है—'अर्थविप्रतिषेधात्' इसका अर्थ यह है—अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्रः, इस मन्त्रमें एक ही अदितिपदार्थमें द्युत्व अन्तरिक्षत्वादिरूप अर्थके विरोधसे इस मन्त्रमें प्रमितिजनकत्वरूप प्रमाणत्व नहीं है—अर्थात् एक ही अदिति पदार्थमें द्युत्व अन्तरिक्षत्वादिरूप विरुद्ध धर्मोंका समावेश प्रत्यक्षसे विरुद्ध है अतः प्रत्यक्षविरुद्धार्थाभिधायित्वसे इस मन्त्रमें प्रमाणता नहीं है; ऐसा पूर्वपक्ष कर सिद्धान्तसूत्रका पठन किया है 'गुणादविप्रतिषेधः स्यात्'=द्युशब्दादिको गौण होनेसे. अविप्रतिषेधः=अविरोध है अर्थात् द्यु तथा अन्तरिक्षादिवत् सुखकर होनेसे द्युशब्दादिका अदितिमें प्रयोग है—मुख्यप्रयोग नहीं अतः प्रत्यक्षके साथ विरोध नहीं, अतएव प्रमितिजनकत्वरूप प्रमाणत्व मन्त्रोंमें है तथा च यदि शब्दसे प्रत्यक्षका बाध होता होता तो प्रत्यक्षानुरोधसे महर्षी प्रत्यक्षविरुद्धार्थक उक्तवाक्योंकी गौणार्थता न कहते और गौणार्थता कही तो है अतः प्रत्यक्षसे शब्द प्रबल नहीं हो सकता है इतना अर्थ यहां तकके पूर्वपक्षका है। पूर्वमीमांसाके प्रथम अध्यायके चतुर्थपादमें नामधेयका विचार किया है। उसी नामधेयप्रकरणमें 'तत्सिद्धिजातिसारूप्यप्रशंसाभूमलिङ्गसमवाया इस सूत्रसे=एतत्सूत्ररूप एकार्थप्रतिपादकानेकाधिकरणसंग्रहात्मक तत्सिद्धिपेटिकासे 'यजमानः प्रस्तरः' प्रस्तरः=यज्ञसाधनीभूत दर्भकी मुष्टि यजमान है; 'अग्निर्वै ब्राह्मणः'=ब्राह्मण अग्निस्वरूप है; 'आदित्यो यूपः'=यूप आदित्यस्वरूप है; 'अपशवो वा अन्ये गोअश्वेभ्यः'=गौ और अश्वसे

भिन्न जो अजादिक हैं वे अपशु हैं; इन श्रुतिओंमें जो दर्भमुष्ट्यादिको यजमानत्वादि बताया गया है वह प्रत्यक्षसे विरुद्ध है इस विरोधके परिहारके लिए, यजमानादि शब्द प्रस्तरादिमें गौण हैं इस अर्थको बतलानेके लिए यजमानादि शब्दोंकी प्रस्तरादिमें प्रवृत्तिके निमित्तभूतगुण दिखलाये हैं, तहां यजमान शब्दकी प्रस्तरमें जो प्रवृत्ति है उसका निमित्तभूतगुण 'तत्सिद्धि' तस्य यजमानकार्यस्य सिद्धि प्रस्तरादपि; यजमानकार्य्यकारित्व प्रस्तरमें भी है क्योंकि दोनों यज्ञरूप एक कार्य्यके साधन हैं तथा च एककार्यकारित्वरूप गुणनिमित्तक यजमान शब्दकी प्रस्तरमें प्रवृत्ति है, अतः 'सिंहो माणवकः' इस लौकिकवाक्यवत् कोई दोष नहीं। ब्राह्मणमें अग्निशब्दकी प्रवृत्तिमें जाति=जन्म गुण है अर्थात् एकप्रभवत्वगुण है, 'ब्राह्मणोऽस्य मुख मासीत्' (शु०य०३१।११)मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च, इन श्रुतिओंमें ब्राह्मण तथा अग्निको मुखजत्व बताया है। यूपमें आदित्यशब्दकी प्रवृत्तिका निमित्त आज्याभ्यञ्जनप्रयुक्त चाकचक्यापरपर्य्याय औज्ज्वल्यगुण है, अपशुशब्दकी अजादिमें जो प्रवृत्ति है उसका निमित्त गवादिकी प्रशंसा है अर्थात् यहांपर पशुशब्दसे गवाश्वगत उपकारातिशयप्रयुक्त प्रशस्तत्व लक्षित होता है और तादृशप्रशस्तत्वाभाव नञ्से अजादिमें बोधित होता है। तथा च ऐसा अर्थ होगा 'गवाश्ववृत्तिप्रशस्तत्वाभाववन्तः अजादयः गवाश्वेभ्यः अन्ये, इस अर्थमें किसी भी प्रकारका बाध नहीं है, प्रकृतार्थके स्पष्टीकरणार्थ ये चार उदाहरण बहुत हैं अतः 'सृष्टीरुपदधाति' इत्यादिका विवरण नहीं किया जाता है, तथा च उक्तस्थलोंमें प्रत्यक्षके साथ अविरोधके लिए महर्षिने यजमानादि शब्दोंकी गौणार्थता कही है यदि प्रत्यक्षका शब्दसे बाध होता होता तो यथाश्रुतार्थही ठीक था प्रत्यक्षका बाधही हो जाता, अतः जानते हैं कि प्रत्यक्षका शब्दसे बाध नहीं होता है। सर्वज्ञत्वादिविशिष्टका अल्पज्ञत्वादिके साथ अभेद प्रत्यक्षसे विरुद्ध है। अतः प्रत्यक्षके साथ अविरोध करनेके लिए जो आपने सर्वज्ञत्वादि भागको छोडकर निर्विशेष ब्रह्ममें 'तत्त्वम्' पदोंकी लक्षणा मानी है उसके माननेकी भी कुछ आवश्यकता न थी, क्योंकि तत्त्वमस्यादिरूप शब्दसे तो प्रत्यक्षका बाधही हो जानेवाला था फिर मृतप्राय प्रत्यक्षके साथ अविरोधके लिए लक्षणा माननेकी क्या जरूरत थी। शङ्का करके—द्वैती समाधान करता है न चेति। अत्र=प्रत्यक्षकी बाधक जो अद्वैतश्रुति है उस अद्वैतश्रुतिमें तात्पर्य्यनिर्णायक जो उपक्रमादिलिङ्ग हैं उन लिङ्गोंका सद्भाव होनेसे अद्वैतश्रुतिओंका अमुख्यार्थत्व नहीं 'यजमानः प्रस्तरः' इत्यादिमें उपक्रमादि नहीं हैं अतः वहां अमुख्यार्थता हो सकती है; इति न च वाच्यम्,=ऐसा नहीं कहना; क्यों? 'यजमानः प्रस्तरः' इत्यादिमें तात्पर्य्यग्राहक अपूर्वत्वादि रूप एकएक लिङ्गको विद्यमान होनेसे; एकएक लिङ्गको तात्पर्य्यनिर्णायकत्व होनेपर लिङ्गान्तर अनुवादक ही है, तुम्हारे मतमें प्रत्यक्षसे सिद्ध भेदमें जैसे श्रुति अनुवादिका होती है—'यजमानः प्रस्तरः' इत्यादिमें भी अपूर्वत्वादिरूप एकएक लिङ्ग है क्योंकि दर्भकी मुष्टिरूप प्रस्तरको यजमान बताना या समझना एक प्रकारकी अपूर्वता है=उक्त श्रुतिके विना और किसी भी प्रमाणसे दर्भमुष्टिकी यजमानता सिद्ध नहीं है; और यदि ऐसा कहो कि तात्पर्य्यनिर्णायक सर्व लिङ्ग तो यहां नहीं हैं तो फिर कैसे मुख्यार्थता होगी। तो ऐसा नहीं कहना क्योंकि एकएक लिङ्गको ही तात्पर्य्यनिर्णायकत्व मानलेंगे

और जहांपर इतर लिङ्गोंका सम्भव होगा वहांपर इतरोंको अनुवादकत्वमात्र ही मानलेंगे; जैसे आपके मतमें जीवेशादिका भेद प्रत्यक्षसिद्ध है उस प्रत्यक्षसिद्ध भेदको कहनेवाली श्रुतियाँ अपूर्वार्थप्रकाशिका न होनेसे अनुवादिका मानी जाती हैं, किं वाहुल्येन=कथनवाहुल्यकी आवश्यकता नहीं है। इति चेन्न=ऐसा यदि कहो तो नहीं कहना क्यों ?।

वाक्यशेषप्रमाणान्तरसंवादार्थक्रियादिपरीक्षापरीक्षितस्य प्रत्यक्षस्य प्राबल्येन व्यवहारदशायामेव एतद्विरुद्धार्थग्राहिणो 'धूम एवाग्नेर्दिवा ददृशे' 'अदिति र्द्यौ' 'यजमानः प्रस्तरः' इत्यादेस्तद्विरोधेनामुख्यार्थत्वेऽप्यद्वैतागमस्य परीक्षितप्रमाणविरोधाभावेन मुख्यार्थत्वोपपत्तेः। प्रत्यक्षादेर्हि परीक्षया व्यावहारिकप्रामाण्यमात्रं सिद्धम्, तच्च नाद्वैतागमेन बाध्यते बाध्यते तु तात्त्विकं प्रामाण्यम्, तत्तु परीक्षया नसिद्धमेव अतो न विरोधः। धूम एवाग्नेरित्यादेस्तु मुख्यार्थत्वे प्रत्यक्षादेर्व्यावहारिकं प्रामाण्यं व्याहन्येत। अतोविरोधात्तत्रामुख्यार्तत्वमिति विवेकः। यत्तु प्रत्यक्षाविरोधाय तत्त्वंपदयोर्लक्षणानाश्रीयेतेति— तन्न पड्विधलिङ्गैर्गतिसामान्येन चाखण्ड एवावधार्य्यमाणस्य तात्पर्य्यस्यानुपपत्तेः। जीवेशगतसर्वज्ञत्वकिञ्चिज्ज्ञत्वादीनामैक्यान्वयेऽनुपपत्तेश्च। तात्पर्य्यविपर्यीभूताखण्डप्रतीतिनिर्वाहाय लक्षणाङ्गीकरणस्यैवोचितत्वात्। तात्पर्यविपर्यीभूतान्वयनिर्वाहाय लक्षणाश्रयणस्य सर्वत्र दर्शनात्।

वाक्यशेष प्रमाणान्तरका संवाद अर्थक्रियादिरूप परीक्षासे परीक्षित प्रत्यक्षका प्राबल्य होनेसे व्यवहारदशामें ही इस प्रत्यक्षसे विरुद्धार्थग्राहि—धूमएवाग्नेर्दिवाददृशे, 'अदितिर्द्यौः' 'यजमानः प्रस्तरः' इत्यादिको उक्त परीक्षित प्रत्यक्षके साथ विरोध होनेसे अमुख्यार्थत्व होनेपर भी अद्वैतागमको परीक्षित प्रमाणके साथ विरोध न होनेसे मुख्यार्थत्वकी उपपत्तिसे, परीक्षाघटक 'वाक्यशेष' शब्दका अभिप्राय यह है कि—विधिवाक्यरूप जो वाक्यशेष है उस वाक्यशेषसे स्वापेक्षि, स्तुतिनिन्दारूप-अर्थ-अर्पकत्वेन अन्यपरत्वेन निश्चित जो अर्थवाद हैं वे अर्थवाद प्रत्यक्षका बाध नहीं कर सकते हैं। फलतः विधिवाक्यरूप वाक्यशेष भी प्रत्यक्षविरुद्धार्थग्राहि अर्थवादोंकी अन्यार्थपरताको बोधित करता हुआ प्रत्यक्षके प्रामाण्यका रक्षक है। अतः इसे भी परीक्षामें मिला दिया है। प्रत्यक्षादिका परीक्षासे व्यवहारिक प्रामाण्यमात्र सिद्ध है। तच्च= वह व्यावहारिक प्रामाण्य तो अद्वैतागमसे नहीं बाधित होता है। अद्वैतागमसे प्रत्यक्षादिका तात्त्विकप्रामाण्य बाधित होता है तत्तु=वह तो परीक्षासे नहीं ही सिद्ध है अतः यहांपर परीक्षित प्रत्यक्षके साथ विरोध नहीं है। धूमएवाग्नेः इत्यादिको मुख्यार्थत्व होनेपर तो प्रत्यक्षादिका व्यावहारिक प्रामाण्य व्याहत होगा अतः उक्त परीक्षापरीक्षित प्रत्यक्षके साथ विरोध होनेसे तत्र=धूम एव इत्यादिमें अमुख्यार्थत्व है। यह विवेक है—मुख्यार्थ-अमुख्यार्थका विवेक है। यत्त=यह जो कहा है प्रत्यक्षके साथ अविरोधके लिए लक्षणा नहीं आश्रित की जाती; तन्न= यह कथन सम्यक् नहीं; क्यों ? पड्विधलिङ्गैः=उपक्रमोपसंहार, अभ्यास, अपूर्वता, फल, अर्थवाद,

उपपत्ति, इन षड्भेदभिन्न लिङ्गोंसे च=तथा, गतिसामान्येन=गतीनां सामान्यम् गतिसामान्यम् तेन; गतिनाम है—यहांपर ज्ञानका वह भी प्रसङ्गतः यहांपर 'सर्ववेदान्तजन्य' लेना होगा, सामान्यका अर्थ है समानविषयकत्व तथाच समुदितार्थ यह हुआ कि सर्ववेदान्तजन्य ज्ञानोंको जो जीवब्रह्मैक्यरूपसमानविषयकत्व हैं उससे=षड्विधलिङ्गसे तथा गतिसामान्यसे अखण्डमेंहीं अवधार्य्यमाण जो तत्त्वमस्यादि वाक्योंका तात्पर्य्य है उस तात्पर्य्यकी अनुपपत्तिसे, च=और जीवेशगत जो सर्वज्ञत्व किञ्चिज्ज्ञत्वादि धर्म हैं उन धर्मोंके ऐक्यान्वये=ऐक्यबोधमें अनुपपत्तिसे तत्त्वमस्यादि वाक्योंके तात्पर्य्यका विषयीभूत जो अखण्डार्थ उस अखण्डार्थकी प्रतीतिके निर्वाहके लिए लक्षणाके अङ्गीकरणकोही उचितत्त्व होनेसे; तात्पर्यविषयीभूतार्थके अन्वय=बोधके निर्वाहके लिए लक्षणाश्रयणको सर्वत्र देखनेसे।

नच एवं सति अमुख्यार्थत्वं स्यादिति-वाच्यम्, तद्धि प्रतीयमानार्थपरित्यागेनार्थान्तरपरत्वं वा, अशक्यार्थत्वं वा। नाद्यः, सामानाधिकरण्येन प्रतीयमानस्यैक्यस्यात्यागात्। नान्त्यः, जहदजहल्लक्षणाश्रयणेन शक्यैकदेशपरित्यागेऽपि सोऽयं देवदत्तः, इत्यादिवाक्य इव शक्यैकदेशस्यान्वयाभ्युपगमात्। विशेषणबाधेन विशेष्यमात्रान्वयस्यैवात्र लक्षणाशब्देन व्यपदेशात्। तथाचोक्तम्, वाचस्पतिमिश्रैःप्रस्तरादि वाक्यमन्यशेषत्वादमुख्यार्थम्, अद्वैतवाक्यंत्वनन्यशेषत्वान्मुख्यार्थमेव। उक्तं हि शावरभाष्ये न विधौ परः शब्दार्थ इतीति॥ यथाचापूर्वत्वाद्येकैकतात्पर्यलिङ्गेन यजमानः प्रस्तर इत्याद्यर्थवादवाक्यानां न स्वार्थपरत्वं तथा वक्ष्यामः।

शङ्कते नचेति। एवं सति=उक्त रीतिसे लक्षणाके होनेपर अमुख्यार्थत्वम्=तत्त्वमस्यादि वाक्योंको अमुख्यार्थत्व होगा, इति नच वाच्यम्; तद्धि=वह अमुख्यार्थत्व क्या प्रतीयमान अर्थके परित्यागसे अर्थान्तरपरत्वरूप होगा, या अशक्यार्थत्वरूप होगा, नाद्यः=प्रथम पक्ष समीचीन नहीं है, क्यों? सामानाधिकरण्येन=कार्यकारणभावविनिर्मुक्तद्रव्यमात्रतात्पर्य्यकसमानविभक्तिकनानानामत्वरूप सामानाधिकरण्यसे प्रतीयमान ऐक्यके अत्यागसे, ऐक्यपदसे शुद्ध व्यक्तिमात्ररूप लेना चाहिए; नान्त्यः=अन्तिमपक्ष भी ठीक नहीं; क्यों? तत्त्वमस्यादि वाक्योंमें जहदजहल्लक्षणाका आश्रयण होनेसे—शक्यके एक देशका परित्याग होनेपर भी 'सोयं देवदत्तः' इत्यादि वाक्यवत् शक्यके एक देशके बोधका अभ्युपगम होनेसे, विशेषणके बाधसे विशेष्यमात्रके बोधका ही यहांपर लक्षणाशब्दसे व्यपदेश होनेसे, 'लक्षणाके सामान्यभेद' और तत्त्वमस्यादिवाक्योंमें लक्षणाका प्रकार इत्यादि विषय वेदान्तके सामान्यग्रन्थोंमें भी आते हैं अतः यहांपर इन विषयोंका विवरण नहीं किया जाता है। इस अर्थको वाचस्पतिमिश्रने कहा है—प्रस्तरादिवाक्यं=यजमानः प्रस्तरः, इत्यादि वाक्य अन्यशेषत्वात्=विध्यपेक्षितस्तुतिनिन्दाबोधकत्वेन यथाश्रुतार्थभिन्नार्थपरक होनेसे। अमुख्यार्थम्=अमुख्यार्थ हैं। अद्वैतवाक्य तो अनन्यशेषत्वात्=तात्पर्य्यका विषयीभूत जो वाक्यार्थ तादृश वाक्यार्थके प्रतिपादक होनेसे

मुख्यार्थही है। हि=यतः शावरभाष्यमें कहा है विधौ=विधायक=अज्ञातज्ञापक वाक्यमें परः=प्रतीयमानसे अन्य शब्दार्थः=तात्पर्य्यविषय न=नहीं है। और जिस रीतिसे अपूर्वत्वादिरूप एक एक तात्पर्य्यलिङ्गसे, 'यजमानः प्रस्तरः' इत्यादि अर्थवाद वाक्योंको स्वार्थपरत्व नहीं है तैसे कहेंगे=आगमवाधोद्धार नामक प्रकरणमें उपक्रमोपसंहारयोरेकार्थनिष्ठत्वं, अभ्यासार्थवादौ चेति त्रयं शब्दगतम्, इत्यादिसे कहेंगे।

ननु अन्यशेषत्वानन्यशेषत्वे नामुख्यार्थत्वमुख्यार्थत्वयोः प्रयोजके, किन्तु मानान्तरविरोधाविरोधौ, । अन्यशेषेऽपि मानान्तराविरोधे 'इयं गौः क्रय्या वहुक्षीरे' त्यादौ लोके सोऽरोदीदित्यादौ च वेदे प्रस्तरादिवाक्यवदमुख्यवृत्तेरनाश्रयणात्, अनन्यशेषेऽपि सोमेन यजेते' त्यादौ वैयधिकरण्येनान्वये विरुद्धत्रिकद्वयापत्त्या सामानाधिकरण्येनान्वये प्रत्यक्षाविरोधाय च सोमवता यागेनेति मत्वर्थलक्षणाया आश्रयणात्। एवं विचारविधायके 'अथातो ब्रह्मजिज्ञासे'ति सूत्रे 'तद्विजिज्ञासस्वे'ति श्रुतौ च, मानान्तराविरोधेन विध्यन्वयाय जिज्ञासाशब्देन विचारलक्षणायाः 'सर्वं खल्विदं ब्रह्मे' त्यादौ चामुख्यार्थतायाः स्वीकृतत्वात्, सर्वस्यापि वाक्यस्यावाच्ये ब्रह्मणि लक्षणाया एवेष्टत्वेनामुख्यार्थत्वनिषेधायोगाच्च, अन्वयानुपपत्तेस्तात्पर्य्यानुपपत्तेर्वा लक्षणावीजस्य विध्यविधिसाधारणत्वाच्च। शावरन्तु वचनमर्थवादमुख्यत्वाय विधौ न लक्षणेत्येवं परम्। तस्मान्न प्रत्यक्षं शब्दवाध्यमिति चेन्न, भावानववोधात्, तात्पर्य्यविषयीभूतार्थवोधकत्वं हि मुख्यार्थत्वम्. न शक्यार्थमात्रवोधकत्वम्, अन्यार्थतात्पर्यकत्वाच्चामुख्यार्थत्वम् न लाक्षणिकत्वमात्रम्।

शङ्कते नन्विति। अन्यशेषत्व, तथा अनन्यशेषत्व ये दोनों क्रमशः अमुख्यार्थत्व, और मुख्यार्थत्वके प्रयोजक नहीं हैं=जिसमें अन्यशेषता रहती हो उसमें अमुख्यार्थत्व रहता है और जिसमें अनन्यशेषत्व है उसमें मुख्यार्थत्व है। ऐसा नियम नहीं है किन्तु प्रमाणान्तरका विरोध अमुख्यार्थत्वमें प्रयोजक है। और प्रमाणान्तरका अविरोध मुख्यार्थत्वमें प्रयोजक है। इसी अर्थको उदाहरणोंसे फोड़ते हैं। अन्येति। अन्यका शेष होनेपर भी मानान्तरका विरोध न होनेपर 'इयं गौः क्रय्या वहुक्षीरा' इत्यादि लौकिक वाक्यमें तथा 'सोऽरोदीत्' इत्यादि वैदिकवाक्यमें प्रस्तरादिवाक्यवत् अमुख्यवृत्तिका अनाश्रयण होनेसे='इयं गौः क्रय्या' यह गौ खरीदनेके लायक है, अथवा इस गौका खरीदना इष्टका साधन है, यह विधिवाक्य है। इसका शेषभूत-वहुक्षीरा है रूपपत्न्या है अनवद्यप्रजा है=वहुत दूध देनेवाली है वच्छिओंकीही उत्पन्न करनेवाली है इसकी प्रजा निर्दोष है। यह वाक्य अर्थवाद है, इस अर्थवादरूप वाक्यको क्रयणविध्यपेक्षितप्रशंसार्थक होनेसे अन्यशेषत्व है और अन्यशेषत्व होनेपर भी मानान्तराविरोधप्रयुक्त यथाश्रुतार्थकत्व होनेसे अमुख्यार्थत्व नहीं है, अतः अन्यशेषत्वप्रयुक्तही अमुख्यार्थत्व होता है इस नियममें व्यभिचार है। वर्हिषि रजतं न देयं तस्य हिरण्यं दक्षिणा=

बर्हिष् यागमें रजत नहीं देना इसमें सुवर्ण दक्षिणा है। इस विधिवाक्यमें सुवर्णदक्षिणाका विधान है इसका अर्थवाद 'सोऽरोदीत्' इत्यादि है अर्थवादमें बतलाया है कि–वह रोता भया और रोनेसे उसका नाम रुद्र हुआ और रुद्रके अश्रुओंसे रजत पैदा हुआ है अतः अश्रुज होनेसे रजत दक्षिणा नहीं है, इस अर्थवादका यथाश्रुतार्थ रजतनिन्दा है और अर्थवादका अर्थभूत रजतनिन्दा जब तदवस्थ रहती है तभी हिरण्यदक्षिणाकी प्रशंसा सिद्ध होती है, तथा च अन्यशेष होनेपर भी इस वाक्यको अमुख्यार्थता नहीं है किन्तु प्रमाणान्तरका विरोध न होनेसे मुख्यार्थताही है, अतः यहभी भवदीयनियममें व्यभिचारका उदाहरण है, इस अर्थवाद वाक्यका जैमिनीयमीमांसाके प्रथमाध्यायके द्वितीयपादके आदिमेंही शावरभाष्यमें विचार किया गया है; अनन्यशेषेऽपि=अन्यका शेष न होनेपर भी, 'सोमेन यजेत' इत्यादिमें वैयधिकरण्येनान्वये=सोमेन यागं भावयेत् यागेनेष्टं भावयेत्, इत्याकारक वैयधिकरण्येन अन्वय होनेपर विरुद्धत्रिकद्वयकी आपत्ति है। सामानाधिकरण्येनान्वये=सोमेन यागेन इष्टं भावयेत्, एवंविध सामानाधिकरण्येन अन्वय होनेपर प्रत्यक्ष विरोध है क्योंकि सोमलताका यागके साथ अभेदान्वय प्रत्यक्षतः बाधित है। तथा च विरुद्धत्रिकद्वयकी आपत्तिसे तथा प्रत्यक्षके साथ अविरोधके लिए। सोमवता यागेन इत्याकारिका मत्वर्थलक्षणाका आश्रयण है=जैमिनीयमीमांसाके प्रमाणलक्षण 'प्रथमाध्यायके' चतुर्थपादमें विचार किया गया है–सोमेन यजेत, यहांपर वैयधिकरण्येन, अन्वय करना या सामानाधिकरण्येन; सोमेन यागं भावयेत् यागेन इष्टं भावयेत्, इत्याकारक अन्वयका नाम वैयधिकरण्येन अन्वय है। सोमेन यागेन इष्टं भावयेत्' इस अन्वयका नाम सामानाधिकरण्येन अन्वय है। तहां पूर्वपक्ष यह हुआ कि सोमशब्द लताविशेषमें निरूढ है वह किसी भी प्रकारसे यागका नाम नहीं हो सकता है। अतः सामानाधिकरण्येन अन्वयको अनुपपन्न होनेसे वैयधिकरण्येन अन्वय मानना उचित है। सिद्धान्त यह किया गया कि–वैयधिकरण्येन अन्वय करनेपर भी विरुद्धत्रिकद्वयापत्ति है अतः सोमपदकी सोमवत्‌में लक्षणाकरके 'सोमवता यागेन इष्टं भावयेत्' ऐसा सामानाधिकरण्येन ही अन्वय करना चाहिए। विरुद्धत्रिकद्वयापत्तिका विवरण यह है–प्रधानत्व, अनुवाद्यत्व, उद्देश्यत्व, इन तीनोंको मिलाकर 'एकत्रिक' कहा जाता है। गुणत्व, विधेयत्व, उपादेयत्व, इन तीनको मिलाकर भी 'एकत्रिक' कहा जाता है। इन दोनों त्रिकोंका समुदितनाम 'त्रिकद्वय' है इन दोनों त्रिकोंमें प्रत्येक त्रिकके घटक तीनतीन धर्मोंका यथासंख्य परस्पर निरूप्यनिरूपकभाव हैं=प्रधानत्वनिरूपित गुणत्व है, गुणत्वनिरूपित प्रधानत्व है। अनुवाद्यत्वनिरूपित विधेयत्व है विधेयत्वनिरूपित अनुवाद्यत्व है। उद्देश्यत्वनिरूपित उपादेयत्व है उपादेयत्वनिरूपित उद्देश्यत्व है। साधनके ऊपर गुणत्वादिरूपत्रिक रहता है और साध्यके ऊपर प्रधानत्वादिरूपत्रिक रहता है। और एककालावच्छेदेन साध्य साधन नहीं होता है, और साधन साध्य नहीं होता है क्योंकि वर्त्तमानसत्ताक साधन होता है, और भाविसत्ताक साध्य होता है। तथा च जैसे साध्यत्व तथा साधनत्व इन दोनों धर्मोंका एककालावच्छेदेन एक पदार्थमें समावेश नहीं होता है तैसे साध्यत्वसमनियतप्रधानत्वादिरूपत्रिक साधनत्वसमनियत

गुणत्वादिरूपत्रिक इन दोनों त्रिकोंकाभी एककालावच्छेदेन एकत्र समावेश नहीं होता है इस लिए इनका नाम है–' विरुद्धत्रिकद्वय ' इस विरुद्धत्रिकद्वयकी आपत्ति वैयधिकरण्येन अन्वयमें हैं ' सोमेन यागं भावयेत् ' इस रीतिसे अन्वय करनेमें सोममें साधनता बोधित होती है और यागमें साध्यता; तथा च सोमको साधन होनेसे सोममें गुणत्वादिरूपत्रिक रहगया; और यागको साध्य होनेसे यागमें प्रधानत्वादिरूपत्रिक रहगया। पश्चात् ' यागेन इष्टं भावयेत् ' ऐसा अन्वय करनेपर यागमें साधनता प्रतीत होती है और इष्टमें साध्यता; तथा च यागमें गुणत्वादिरूपत्रिक रहगया, और इष्टमें प्रधानत्वादिरूपत्रिक रहगया। फलतः यागमें सोमनिष्ठगुणत्वादिनिरूपित प्रधानत्वादिरूपत्रिक है और इष्टनिष्ठप्रधानत्वादिनिरूपित गुणत्वादिरूपत्रिक भी है=कथितप्रकारसे आपत्ति है; तथा च वैयधिकरण्येन अन्वय नहीं बन सकता है। फलतः ' सोमेन यजेत ' इस वाक्यको अन्यका शेष न होनेपर भी लाक्षणिक होनेसे अमुख्यार्थत्व है अतः यह नियम नहीं हो सकता कि जहांपर अनन्यशेषत्व रहता है वहांपर मुख्यार्थत्वही रहता है। एवं=इसी प्रकारसे विचारविधायक ' अथातो ब्रह्मजिज्ञासा ' इस सूत्रमें च= तथा ' तद्विजिज्ञासस्व ' (तै०।३।१।१) इस श्रुतिमें मानान्तराविरोधेन=मानान्तरके अविरोधसे विध्यन्वयके लिए जिज्ञासा शब्दमें विचारलक्षणाका स्वीकार है, सर्वं खल्विदं ब्रह्म इत्यादिमें भी अमुख्यार्थताका स्वीकार है=' अथातो ब्रह्मजिज्ञासा ' इस सूत्रमें कर्त्तव्यपदका अध्याहार किया जाता है, अर्थ यह प्रतीत होता है कि ब्रह्मजिज्ञासा कर्त्तव्य है, परन्तु यह अर्थ बाधित है क्योंकि जिज्ञासा शब्दका प्रकृतिभूतज्ञाधात्वर्थ ज्ञानमें जैसे प्रयत्नजन्यत्व अनुभवसे विरुद्ध है तैसे है ज्ञानकारणक इच्छामें भी जैवप्रयत्नजन्यत्व अनुभवविरुद्ध है जैसे प्रमाणप्रमेयके सम्बन्धसे इच्छा विना और प्रयत्न विना ही ज्ञान उत्पन्न हो जाता है यह अनुभव सिद्ध है तैसेही अनुकूलादि ज्ञानसे प्रयत्न विनाही इच्छा उत्पन्न होजाती है, और विधिका सम्बन्ध कृतिसाध्यत्वव्याप्य है, अर्थात् जहां कृतिसाध्यत्व रहता है वहांही विधिसम्बन्ध रहता है, इच्छामें कृतिसाध्यत्वके नहीं रहनेसे अध्याहृत कर्त्तव्यपदलभ्य प्रवर्त्तनारूप विधिका अन्वय अनुभवात्मक प्रत्यक्षप्रमाणसे बाधित है अतः प्रत्यक्षात्मकानुभवके साथ अविरोधके लिए जिज्ञासापदकी विचारमें लक्षणा है, यही प्रकार श्रुतिमें भी है। ' सर्वं खल्विदं ब्रह्म ' (छा० ३।१४।१) इस वाक्यसे घटादिकी ब्रह्मरूपता प्रतीत होती है वह अनुभवसे बाधित है, अतः इसमें अमुख्यार्थता मानी जाती है अनन्यशेष होनेसे ब्रह्माद्वैतवाक्य अमुख्यार्थ नहीं है यह जो निषेध किया है वह युक्त नहीं है इस बातको कहते हैं सर्वस्यापीति। सर्व वेदान्त वाक्योंकी अवाच्य ब्रह्ममें लक्षणाको ही आपके मतमें इष्ट होनेसे अमुख्यार्थत्वके निषेधका अयोग भी है। अन्वयानुपपत्ति या तात्पर्यानुपपत्तिरूप जो लक्षणाका बीज है। उस बीजको विधि तथा अविधिमें साधारणत्व होनेसे भी अद्वैत वाक्योंमें अमुख्यार्थत्वका निषेध नहीं बन सकता है। ' न विधौ परः शब्दार्थ ' यह शाबर वचन है सो तो अर्थवादके मुख्यत्वके लिए विधिवाक्यमें लक्षणा नहीं होती है एतदर्थपर है। ततः प्रत्यक्ष शब्दसे बाध्य नहीं है यह फलितार्थ हुआ, इति चेन्न=ऐसा यदि कहो तो नहीं कहना, क्यों ? भावानवबोधात्=हम

लोगोंके तात्पर्य्यको नहीं समझनेसे=हम लोगोंके इष्ट मुख्यार्थत्व अमुख्यार्थत्वको न समझकर ही आपने यह पूर्वपक्ष खड़ा किया है । यदि अभिप्रायको समझते तो ऐसा वेशिरपैरका पूर्वपक्ष न करते । अत्र अपने भावको प्रकट करते हैं तात्पर्य्येति । तात्पर्य्यका विषयीभूत जो अर्थ है तादृश—अर्थबोधकत्व ही मुख्यार्थत्व है=स्वकीय जो मुख्यतात्पर्य्य तादृशतात्पर्य्यका विषयीभूत जो वाक्यार्थ तादृशवाक्यार्थबोधकत्व मुख्यार्थत्व है, इस लक्षणसे अर्थवाद वाक्योंमें मुख्यार्थत्व नहीं आता है, क्योंकि प्राशस्त्यज्ञानका द्वारीभूत जो अर्थवादसे बोध्य वाक्यार्थ है वह स्वकीय परमतात्पर्य्यका विषय नहीं किन्तु अवान्तर तात्पर्य्यका विषय है और प्राशस्त्य, मुख्यतात्पर्य्यका विषय है परन्तु वह वाक्यार्थ नहीं वाक्यघटकीभूतपदजन्यपदार्थोपस्थितिके विषयीभूत पदार्थोंका जो संसर्ग है, उसे वाक्यार्थ कहते हैं, तद्रूप प्राशस्त्य नहीं है, अतः वाक्यार्थ नहीं है, मूलमें तात्पर्यपदसे पूर्व यदि मुख्यपद न दें तो अवान्तरतात्पर्यविषयवाक्यार्थबोधकत्वेन अर्थवादमें मुख्यार्थत्वकी अतिव्याप्ति है । अतः मुख्यपद दिया है, यदि अर्थ पदसे पूर्व वाक्यपद न दें तोभी मुख्यतात्पर्यविषयीभूतप्राशस्त्यार्थबोधकत्वेन अर्थवादमें अतिव्याप्ति है, यदि स्वकीय पद न दें तो भी विधिवाक्यके परमतात्पर्यविषयीभूतवाक्यार्थबोधकत्वेन पुनरपि अर्थवादमें अतिव्याप्ति है, इसी लिए लघुचन्द्रिकाकारने इसे परिष्कृत किया है, शक्यार्थमात्रबोधकत्वरूप मुख्यार्थत्व नहीं है, और अन्यार्थतात्पर्यकत्वसे अमुख्यार्थत्व होता है, स्वकीय मुख्यतात्पर्यका अविषय जो वाक्यार्थ तादृशवाक्यार्थबोधकत्वही अमुख्यार्थत्व है, प्रथम अर्थवाद वाक्य, तथा विधिवाक्य अवान्तरवाक्यार्थबोधको उत्पन्न करते हैं, पश्चात् अङ्गाङ्गीभावको प्राप्त हो विधिवाक्यानुसारिएकमहावाक्यार्थबोधको उत्पन्न करते हैं, जिस बोधके लिए वाक्यैकवाक्यता पदैकवाक्यता मानी जाती है, फलतः विध्यर्थमेंही अर्थवादोंका पर्यवसान होता है, अतः तदीयमुख्यतात्पर्यविषयवाक्यार्थबोधकत्व अर्थवादोंमें है, यही उनमें अमुख्यार्थत्व है, लाक्षणिकत्वमात्र अमुख्यार्थत्व नहीं है । सीधी सादी बात यह है कि लाक्षणिक हो जानेसेही पद या वाक्य अमुख्यार्थक नहीं कहा जाता है, किन्तु स्वकीयपरमतात्पर्यका अविषयीभूत जो वाक्यार्थ है तादृश वाक्यार्थबोधकत्वेन अमुख्यार्थक कहा जाता है ।

तथाचाद्वैतागमस्य स्वतात्पर्यविषयीभूतार्थबोधकत्वनिर्वाहाय लक्षणाश्रयणेऽपि मुख्यार्थत्वमुपपन्नमित्यवोचाम । एवञ्च सोमेन यजेत इत्यादिविशिष्टविधेर्विशेषणे तात्पर्याभावान्मत्वर्थलक्षणायामपि स्वार्थापरित्यागाच्चनामुख्यार्थत्वम् । जिज्ञासापदे तु ज्ञाधातुनेच्यमाणज्ञानलक्षणाङ्गीकारानङ्गीकारमतभेदेऽपि सन् प्रत्ययस्य विचारे जहल्लक्षणाभ्युपगमस्योभयत्र तुल्यत्वात् शक्यार्थपरित्यागेऽपि विधितात्पर्यनिर्वाहात् नामुख्यार्थत्वम् । नहि वाक्यार्थप्रतीत्यन्यथानुपपत्त्या पदमात्रे लक्षणायामपि वाक्यस्यामुख्यार्थत्वम् । प्रतीतस्यार्थस्यानन्यशेषत्वेन मुख्यत्वात् । यत्र पुनः प्रतीत एव वाक्यार्थोऽन्यशेषत्वेन कल्प्यते, तत्र वाक्यस्यामुख्यार्थत्वमेव, अन्यद्धि पदतात्पर्यमन्यच्च वाक्यतात्पर्यम्, सैन्धवमानय,

गङ्गायां वसन्तीत्यादौवाक्यतात्पर्य्यैक्येऽपि पदतात्पर्यभेदात् विषंभुङ्क्ष्वेत्यादौपदतात्पर्याभेदेऽपि वाक्यतात्पर्यभेदात्।

तथाच=फलतः स्वकीयतात्पर्यका विषयीभूत जो वाक्यार्थ है उस वाक्यार्थबोधके निर्वाहके लिए लक्षणाका आश्रयण होनेपर भी अद्वैतागमस्य=अद्वैतागमका मुख्यार्थत्व उपपन्न है इति=ऐसा हमलोगोंने कहा है=हमलोगोंको उक्तप्रकारका मुख्यार्थत्व विवक्षित है जैसा आपने समझा है वैसा नहीं एवञ्च=इसी प्रकारसे सोमेन यजेत इस विशिष्टविधिका विशेषणमें तात्पर्य नहीं है। अतः मत्वर्थ लक्षणा होनेपरभी स्वार्थके अपरित्यागसे अमुख्यार्थत्व नहीं है, जिज्ञासापदमें तो ज्ञाधातुसे इष्यमाण ज्ञान लक्षित होता है इस अर्थका अङ्गीकार-अनङ्गीकार रूप मतभेद होनेपरभी, विचारमें सन् प्रत्ययकी जहल्लक्षणाका अभ्युपगम उभयत्र=उक्त दोनों मतोंमें तुल्य है, अतः शक्यार्थका परित्याग होनेपरभी विधिके तात्पर्यका निर्वाह होनेसे अमुख्यार्थत्व नहीं है=जिज्ञासाघटक सन् प्रत्ययकी विचारमें लक्षणा कीजाती है अतः सन् प्रत्ययसे विचार उपस्थित होता है और प्रकृतिभूत ज्ञाधातुसे ज्ञान उपस्थित होता है और इन प्रकृति प्रत्ययार्थोंका परस्पर साध्यसाधनभावसे अन्वय होता है प्रकृत्यर्थ साध्य है और विचार साधन है तहाँ किसीका ऐसा मत है कि ज्ञाधातुकी इष्यमाण ज्ञानमें लक्षणा है, क्योंकि इच्छोपरक्त होके उपस्थित साध्य साधनकी आकाङ्क्षा करता है, जैसे इष्यमाणस्वर्ग यागादि साधनोंकी आकाङ्क्षा करता है, तथा च यदि इष्यमाणत्वेन ज्ञानपदसे उपस्थित न होगा तो साधनाकाङ्क्षा न होगी और आकाङ्क्षाभावसे साधनके साथ अन्वय भी न होगा, अतः इष्यमाण ज्ञान धातुसे लक्षित होता है, कोई ऐसा कहता है कि इष्यमाणत्वेन उपस्थित न होनेपर भी ज्ञानका साधनके साथ अन्वय बन सकता है ऐसा नियम नहीं कि जिसरूपसे अन्वय होता हो उसी रूपसे उपस्थित होना चाहिए, क्योंकि विचार जो है वह साधनत्वेन साध्यकी आकाङ्क्षा रखता है और साधनत्वेन साध्यके साथ अन्वयको प्राप्त होता है परन्तु सन् प्रत्ययसे साधनत्वेन उपस्थित नहीं होता है परन्तु विचारत्वेन उपस्थित होता है। इसी रीतिसे ज्ञाधात्वर्थ निर्णयमें यहाँपर दो मत हैं, परन्तु इन दोनों मतोंमें सन् प्रत्ययकी विचारमें लक्षणा है इसमें मत भेद नहीं, वाक्यार्थकी जो प्रतीति उस प्रतीतिकी अन्यथानुपपत्तिसे पदमात्रमें लक्षणा होनेपर भी वाक्यका अमुख्यार्थत्व नहीं होता है, क्योंकि प्रतीतवाक्यार्थको अनन्यशेपत्व होनेसे मुख्यत्व है, फिर जहाँपर प्रतीत वाक्यार्थ ही अनन्यशेपत्वेन कल्पित होता है तहाँ वाक्यका अमुख्यार्थत्व ही होता है। पदका तात्पर्य पृथक् है और वाक्यका तात्पर्य पृथक् है दोनोंका एक तात्पर्य नहीं क्यों? 'सैन्धवमानय' गङ्गायां वसन्तीत्यादौ=सैन्धवको लेआओ गङ्गामें रहते हैं इत्यादिमें वाक्यके तात्पर्यका ऐक्य होनेपर भी पदतात्पर्यका भेद होनेसे=लवणत्वादिसे विशिष्ट जो पदार्थ तादृशपदार्थघटित जो वाक्यार्थ वह वाक्यार्थ शाब्दबोधसे प्रथम नहीं जाना जा सकता है, अतः वाक्यतात्पर्य तादृशवाक्यार्थसे घटित नह किन्तु सैन्धवपदार्थत्वेन लवणादिघटित जो वाक्यार्थ तादृश वाक्यार्थसे घटित है। फलतः

लवणतुरगरूप पदार्थका भेद होनेपर भी तात्पर्यका ऐक्य है इस रीतिसे दूसरे वाक्यका भी तात्पर्यैक्य है और पदार्थभेद है विषं भुङ्क्ष्व इत्यादिमें पदतात्पर्यका अभेद होनेपर भी वाक्य-तात्पर्यका भेद है='विषं भुङ्क्ष्व' यहाँपर विषभक्षणं इष्ट साधनम् ऐसा वाक्यका एक तात्पर्य है, और शत्रुगृहमें भोजनप्रसक्त होनेपर आप्तद्वारा उच्चारित विषं भुङ्क्ष्व इस वाक्यका यदि शत्रुका अन्न खाता है तो विषको भक्षण कर इत्याकारकवाक्यार्थद्वारा शत्रुका अन्नभक्षण अनिष्टका साधन है यह द्वितीय तात्पर्य है इसरीतिसे प्रसङ्गवशतः वाक्यके तात्पर्य दो हैं, परन्तु पदोंका तात्पर्य एकही है अर्थात् पदोंका अर्थ दोनों पक्षोमें नहीं बदलता है।

अतएव इयं गौः क्रय्या बहुक्षीरेत्यादिवाक्यार्थस्यावश्यं क्रेतव्येतिविधिशेषत्वेन तत्प्राशस्त्यलक्षकत्वात्, सोऽरोदीदित्यादिवाक्यार्थस्य च बर्हिपिरजतं न देयं हिरण्यं दक्षिणेतिविधिशेषत्वेन रजतनिन्दाद्वारा तत्प्राशस्त्यलक्षकत्वात्। सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानीतिवाक्यार्थस्य शान्त उपासीतेतिशमविधिशेषत्वेनानायाससिद्धत्वरूपतत्प्रा-शस्त्यलक्षकत्वादमुख्यत्वमेव। अतएव मानान्तरविरोध एव लक्षणेत्यपास्तम्, इयं गौः क्रय्या बहुक्षीरेत्यादिना प्राशस्त्यलक्षणायां व्यभिचारात्। किन्तु परमतात्पर्यविषयी-भूतार्थनिर्वाहायैव सर्वार्थवादेषुलक्षणा, एतावाँस्तु विशेषः। विधिप्राशस्त्ये लक्षणातः प्रागर्थवादवाक्यार्थज्ञानम्। तस्य प्रमाणान्तरविरोधे बाध एव। यथा प्रजापतिरात्मनोवपा-मुदक्खिदत् इत्यादौ। अतएव गुणवादमात्रम्। प्रमाणान्तरप्राप्तौ त्वनुवादमात्रमात्रम् अग्निर्हिमस्य भेषजमित्यादौ। अत एव तदुभयत्राबाधिताज्ञातज्ञापकत्वरूपप्रामाण्यानिर्वा-हादप्रामाण्यम्, यत्र पुनः प्रमाणान्तरप्राप्तिविरोधौ न स्तः तत्र प्रामाण्यशरीरनिर्वाहात् भूतार्थवादत्वम्। यथा इन्द्रो वृत्राय वज्रमुदयच्छदित्यादौ अयमेवदेवताधिकरणन्यायः।

अतएव=अन्यशेषत्वको अमुख्यार्थत्वमें प्रयोजक होनेसेही, यह गौ क्रयणके योग्य बहु-क्षीरा है इत्यादि वाक्यार्थको (अवश्य लेनी चाहिए) इस विधिका शेष होनेसे तत्प्राशस्त्य-लक्षकत्वात्=गोक्रयणरूपविध्यर्थके प्राशस्त्यका लक्षकत्व है, सो रोताभया इत्यादि वाक्यार्थको बर्हिस् यागमें रजत नहीं देना हिरण्यदक्षिणा है, इस विधिका शेष होनेसे रजतकी निन्दाद्वारा तत्प्राशस्त्य=हिरण्यदानके प्राशस्त्यका लक्षकत्व है, यह सर्व ब्रह्म है, तिस ब्रह्मसे उत्पन्न होनेसे उसमें लीन होनेसे, उसमें चेष्टा करनेसे इत्यादिवाक्यार्थको शान्त होके उपासना करे इस शमविधिका शेष होनेसे, अनायाससिद्धत्व=बलवदनिष्टाजनकत्वरूप जो इस उक्तविध्यर्थमें प्राशस्त्य है तल्लक्षकत्व है, अतः उक्तवाक्योंको अमुख्यत्व है, मुख्यार्थत्वका प्रयोजक अनन्यशेषत्व है, और अमुख्यार्थत्वका प्रयोजक अन्यशेषत्व है, इस अर्थकी व्यवस्था कर अब मानान्तरका विरोध अमुख्यार्थत्वका प्रयोजक है, और मानान्तरका अविरोध मुख्यार्थत्वका प्रयोजक है, यह जो पूर्वमें वादीने कहा है उसका खण्डन करते हैं अत इति। अत एव=मुख्यार्थत्व तथा अमुख्यार्थत्वके प्रयोजकोंका उक्तरूप होनेसेही, मानान्तरके साथ विरोध होनेपर ही लक्षणा।

होती है यह मत खण्डित हुआ, क्यों ? यह गौ कन्या है बहुक्षीरा है, इत्यादिसे जहाँ प्राशस्त्य लक्षित होता है, वहाँ व्यभिचार है, क्योंकि वहाँ मानान्तरका विरोध नहीं है और अमुख्यार्थत्व है, किन्तु परमतात्पर्यका विषयीभूत जो अर्थ है, उस अर्थकी प्रतीतिके निर्वाहके लिए सर्व अर्थवादोंमें लक्षणा है, इतना विशेष है, विधिबोध्यअर्थनिष्ठ प्राशस्त्यमें लक्षणासे प्रथम अर्थवादके वाक्यार्थका ज्ञान होता है, उस वाक्यार्थज्ञानका प्रमाणान्तरके साथ विरोध होनेपर बाधही होता है, जैसे प्रजापति अपनी वपाको निकालता भया इत्यादिमें । अतएव=बाध होनेसेही वहाँपर गुणवादमात्रम्=गौणार्थघटितवाक्यार्थबोधकत्व है, मुख्यार्थकसर्वपदवत्त्व वहाँपर नहीं रहता है, प्रमाणान्तरसे भी अर्थवादप्रतिपाद्यार्थकी प्राप्ति हो तो अनुवाद मात्र है, अग्नि हिमका भेषज है इत्यादिमें, अतएव=गुणवादत्व अनुवादत्व होनेसे ही तदुभयत्र=उन दोनोंमें अबाधित तथा अज्ञात अर्थका ज्ञापकत्वरूप प्रामाण्यका अनिर्वाह होनेसे, अप्रामाण्यम्=यथा श्रुतार्थका प्रमाकत्वा भावरूप अप्रामाण्य है, फिर जहाँपर प्रमाणान्तरसे प्राप्ति और प्रमाणान्तरसे विरोध ये दोनों नहीं हैं तहाँ प्रामाण्यके शरीरका निर्वाह होनेसे भूतार्थवादत्व है=यथाश्रुत अर्थका प्रमाणकत्व है । जैसे इन्द्र वृत्रके लिए वज्र उठाता भया इत्यादि हैं यही देवताधिकरण न्याय है=अर्थवादोंका मुख्य तात्पर्य प्राशस्त्यमें और प्राशस्त्यज्ञानमें द्वारीभूत जो वाक्यार्थ है उसमें अर्थवादोंका तात्पर्य नहीं है, ऐसा वाचस्पत्यादिका मत है, प्राशस्त्यज्ञानमें द्वारीभूत जो वाक्यार्थ है उसमें भी अर्थवादोंका तात्पर्य है परन्तु वह तात्पर्य मुख्य नहीं किन्तु अवान्तर है ऐसा विवरणकारादि मानते हैं मुख्य तात्पर्यका अविषयीभूत जो अर्थ है, उसमें श्रुतिको मानान्तरकी अपेक्षा होनेसे प्राबल्य नहीं है, और मानान्तरसे बाधित जो वाक्यार्थ है, उस वाक्यार्थकी प्राशस्त्यधीद्वारभूतत्वेन अर्थवादोंसे सिद्धि नहीं होती है, अतः 'प्रजापतिरात्मनोवपाम्' इत्यादि वाक्योंमें गौणार्थघटित वाक्यार्थ ही प्राशस्त्यधीका द्वार है अग्निर्हिमस्य भेषजम् । इत्यादिमें मानान्तरसे प्राप्त वाक्यार्थ ही प्राशस्त्यधीका द्वार, है, गौणार्थघटितवाक्यार्थ नहीं 'इन्द्रोवृत्राय वज्रम्' इत्यादिमें तो यथाश्रुतवाक्यार्थही प्राशस्त्यधीद्वारविधया सिद्ध होता है, प्रमाणोंका प्रामाण्य औत्सर्गिक है अतः तात्पर्यका विषय न होनेपर भी इस वाक्यार्थकी सिद्धि होती है, अथवा विवरणकारादिकी रीतिसे अवान्तर तात्पर्यकी सिद्धि होती है, इसी लिए दुःखसे असंभिन्न सुखादिरूप स्वर्गपदार्थमें 'यन्नदुःखेन संभिन्नम्' इत्यादिवाक्यका प्रामाण्य मीमांसकोंने माना है, और उत्तर मीमांसामें भी देवताधिकरणन्यायसे सिद्ध है, अतः द्वारीभूत वाक्यार्थमें गौणताकी कल्पना ठीक नहीं है, फलतः प्राशस्त्यद्वारीभूतवाक्यार्थधिया वज्रादिविशिष्ट इत्यादि विग्रहकी भी सिद्धि हुई यही देवताधिकरणन्यायका तात्पर्य है ।

ननु–तर्हि आदित्यो यूप इत्यादौ वाक्यार्थप्रतीत्यर्थमेव लक्षणाङ्गीकारादमुख्यार्थत्वं न स्यात् । नस्याद्यद्यादित्यसदृशोयूप इति वाक्यार्थपर्यवसानं स्यात् । किन्तु गुणवृत्त्या प्रतीतस्यापि वाक्यार्थस्य यूपे पशुं बध्नातीतिविधिशेषत्वेन तत्प्राशस्त्यलक्षकत्वमस्त्येव तेनैवामुख्यत्वम् नत्वादित्यपदगौणतयेति तत्सिद्धिपेटिकायां सर्वोदाहरणेष्वप्रा-

न्तरवाक्यार्थप्रतीतये गुणवृत्तिप्रकाराः प्रदर्शिता इति द्रष्टव्यम् । कर्मप्राशस्त्यलक्षणा च सर्वार्थवादसाधारणी तत्रास्त्येवेति नामुख्यार्थत्वानुपपत्तिः, अत उपपन्नं प्रस्तरादिवाक्यवैषम्यमद्वैतवाक्यस्य। यच्चोक्तमर्थवादमुख्यत्वाय विधौ न लक्षणा इत्येवपरं शवरस्वामिवचनमिति। तन्न। अश्वप्रतिग्रहेष्टौ, प्रतिगृह्णीयादिति विधौ प्रतिग्राहयेदिति व्यवधारणकल्पनया अर्थवादानुसारेण प्रयोजकव्यापार-लक्षणाया अङ्गीकरणात्। तस्माद्विधौ तात्पर्यवति वाक्ये प्रतीयमानवाक्यातिरिक्तोऽन्यः शेषीनास्तीत्येवंपरमेव तद्वचनम्। अतः सिद्धमद्वैतागमस्य लाक्षणिकत्वेऽपि मुख्यार्थत्वात् प्रत्यक्षवाधकत्वमिति शिवम् ॥

इति प्रत्यक्षस्यागमबाध्यत्वम्।

शङ्कते नन्विति। तत्र 'आदित्यो यूपः' इत्यादिमें वाक्यार्थप्रतीतिके लिए ही लक्षणाका अङ्गीकार होनेसे अमुख्यार्थत्व न होगा, समाधान करते हैं नेति। नहीं होता यदि 'आदित्यसदृशोयूपः' इति=ऐसा वाक्यार्थका पर्यवसान होता, किन्तु गुणवृत्तिसे प्रतीत वाक्यार्थको भी 'यूपमें पशुको बाँधे' इस विधिका शेष होनेसे उक्त विध्यर्थके प्राशस्त्यका लक्षकत्व है ही। तेनैव=प्राशस्त्यलक्षकत्वेन ही अमुख्यत्व है। आदित्यपद गौण है। इसलिए इसे अमुख्यत्व है यह बात नहीं इति=इस प्रकारसे तत्सिद्धिपेटिकायाम्=एक अर्थके साधक जो अनेक अधिकरण उनके संग्रहका नाम पेटिका है, और तत्सिद्धयादिसे घटित जो पेटिका है उसका नाम है तत्सिद्धिपेटिका, उस तत्सिद्धिपेटिकामें सर्वोदाहरणेषु=यजमानः प्रस्तरः इत्यादि सर्व उदाहरणोंमें अवान्तरवाक्यार्थकी प्रतीतिके लिए गुणवृत्तिके प्रकार दिखलाये हैं ऐसा समझना चाहिए कर्मप्राशस्त्यमें लक्षणा तो सर्वअर्थवाद साधारणी तत्र=उक्त उदाहरणोंमें है ही, इस लिए अमुख्यार्थत्वकी अनुपपत्ति उक्तवाक्योंमें नहीं है। अतः प्रस्तरादिवाक्योंसे अद्वैतवाक्यका वैषम्य उपपन्न हुआ=व्यावहारिकप्रामाण्यविशिष्ट प्रत्यक्षसे वाधितार्थबोधकत्वेन गौणार्थघटित वाक्यार्थधीद्वारा कर्मप्राशस्त्यतात्पर्यक प्रस्तरादि वाक्य हैं, उक्त प्रत्यक्षसे अबाधितार्थ बोधकत्वेन यथाश्रुतार्थतात्पर्यक अद्वैत वाक्य हैं, अतः इनमें प्रस्तरादि वाक्यसे वैषम्य है और यह जो कहा है कि अर्थवादके मुख्यार्थत्वके लिए विधिवाक्यमें लक्षणा नहीं होती है एतदर्थपरही–न विधौ परः शब्दार्थः यह शबरस्वामीका वचन है। तत्=वह कथन न=ठीक नहीं है, क्यों? अश्वप्रतिग्रहेष्टिमें 'प्रतिगृह्णीयात्' इस विधिमें प्रतिग्राहयेत्, ऐसी व्यवधारणकल्पनासे अर्थवादानुसार प्रयोजकव्यापारमें लक्षणाका अङ्गीकरण होनेसे=जैमिनीयमीमांसाके तृतीयअध्यायके चतुर्थपादके पन्द्रहमें अधिकरणवें विचार किया गया है–प्रजापतिर्वरुणायाश्वमनयत् स स्वां देवतामार्च्छत् सपर्य्यदीर्यत स एतं वारुणं चतुष्कपालमपश्यत् तं निर्वपत्ततो वै स वरुणपाशादमुच्यत वरुणो वा एतं गृह्णाति योऽश्वं प्रतिगृह्णाति, यावतो अश्वान् प्रतिगृह्णीयात्तावतो वारुणान् चतुष्कपालान् निर्वपेत्। अर्थ–प्रजापति वरुणके लिए अश्व देताभया स=वह प्रजापति स्वां=

स्वकीयदेवतां=जलोदरव्याधिप्रद देवताको प्राप्त होता भया स=वह प्रजापति पर्यदीर्यत=उस व्याधिसे विदीर्ण हो गया, स=वह प्रजापति इस वारुणं=वरुणदेवताक चतुष्कपालमें संस्कृत-पुरोडाशसे सिद्ध होनेवाली इष्टिको करता भया, और उस इष्टिको करके वरुणपाशात्=जलोदरव्याधिरूप वरुणपाशसे विमुक्त होता भया, वरुण इसको जलोदरव्याधिसे ग्रस्त करता है जो अश्वका प्रतिग्रह करता है । जितने अश्वोंका प्रतिग्रह करे उतने वरुणदेवताक चतुष्क-पालोंका निर्वाप करे यहाँ संशय होता है कि यह जो अनारम्भ श्रुत इष्टि है। वह क्या अश्व-दाताको करनी चाहिए या अश्वप्रतिग्रहीताको, क्योंकि प्रतिगृह्णीयात् यह कर्तामें प्रत्यय है और कर्त्ता तो जैसे स्वतन्त्रकर्ता होता है वैसेही हेतुकर्त्ता भी होता है। तहाँ विधिवाक्यको बलवत्ता होनेपर प्रतिगृहीताको प्राप्त है, और अर्थवादको बलवत्ता होनेपर दाताको प्राप्त है, तहाँ पूर्वपक्ष यह है कि, विध्युद्देशको प्रधानता होनेसे तदनुरोधेन अर्थवादका व्याख्यान करना चाहिए तथा च जब दाताको भी प्राप्त है। तब प्रतिगृहीताको तो अवश्यही करनी चाहिए ऐसा पूर्वपक्ष होनेपर सिद्धान्त यह है कि असञ्जात–विरोधित्वात् अर्थवादो यथाश्रुतः व्याख्ये-यस्तद्विरुद्धस्य विध्युद्देशस्यलक्षणा । ‘प्रतिगृह्णीयात्’ इससे हेतुकर्त्ता कहा जाता है, अतः अर्थ-वादबलात् दाताको इष्टि करनी चाहिए, यहांपर स्वतन्त्रकर्त्तामें जो प्रत्यय है उसकी अर्थवादा-नुरोधसे हेतुकर्तामें लक्षणा की जाती है, अतः ‘अर्थवादके मुख्यार्थत्वके लिए विधायकवाक्यमें लक्षणा नहीं होती है’ यह अर्थ शबरस्वामीको विवक्षित है, यह कथन आपका–असङ्गत है, जैसा अर्थ हमने शबरस्वामीके वचनका बतलाया है, वैसाही ठीक है। लघुचन्द्रिकाकी रीतिसे लक्षणान्त सप्तम्यन्त है, और कल्पनान्त षष्ठ्यन्त है। अक्षरार्थ इस रीतिसे करना, विधौ=विधायकवाक्यमें प्रयोजकव्यापारलक्षणायाम्=प्रयोजकव्यापारनिरूपित जो लक्षणा है उस लक्षणामें व्यवधारणकल्पनायाः=प्रयोजकव्यापारघटित जो वाक्यार्थ तादृशवाक्यार्थ-विषयक तात्पर्यरूप जो व्यवधारण उस व्यवधारणकी कल्पनाका अङ्गीकार है, यतः आपका समझा हुआ अर्थ असङ्गत है ततः विधौ=तात्पर्यवाला जो वाक्य है, उस वाक्यमें प्रतीयमान-वाक्यार्थसे अतिरिक्त और शेषी नहीं है, एतदर्थपरही वह शाबर वचन है। अतः सिद्ध हुआ–अद्वैतागमको लाक्षणिकत्व होनेपर भी मुख्यार्थत्वप्रयुक्तप्रत्यक्षबाधकत्व, इति शिवम्=इस रीतिसे प्रकृतमें ब्रह्मवाद्यभिप्रेत निखिल अर्थजात निर्दोष है।

इति सरलायां प्रत्यक्षस्यागमबाध्यत्वम् ।

अथ अपच्छेदन्यायवैषम्यभङ्गः ।

किञ्च अपच्छेदन्यायेनाप्यागमस्य प्राबल्यम् यथाहि “पौर्वापर्ये पूर्वदौर्बल्यम् प्रकृतिवदित्यधिकरणे उद्गात्रपच्छेदनिमित्तकादक्षिणायागेन परेण प्रतिहर्त्रपच्छेदनिमि-त्तकसर्वस्वदक्षिणायागस्य पूर्वसिद्धनिमित्तकस्य बाध इति स्थितम् तथेहापि उदीच्या-गमेन पूर्वस्य प्रत्यक्षस्य बाधः ।

अथ सरलायामपच्छेदन्यायवैषम्यभङ्गः।

किञ्च अपच्छेदन्यायसेभी आगमका प्रत्यक्षसे प्राबल्य है. यथाहि—जैसाकि दिखलाया गया है. पौर्वापर्ये=परस्पर निरपेक्ष तथा अपच्छेदनिमित्तकविरुद्धप्रायश्चित्तकी कर्त्तव्यताके ग्राहक जो दो प्रमाण, उन दोनों प्रमाणोंको, पूर्वापरीभूतत्वेन उत्पन्न होनेपर पूर्वदौर्बल्यम्= पूर्व पूर्वमें उत्पन्न प्रमाणका, दौर्बल्य है, अर्थात् पूर्व पूर्व प्रमाणका उत्तर उत्तर प्रमाणसे बाध होता है, प्रकृतिवत्=श्येनयागादिरूप जो विकृतियाँ हैं, उन विकृतिओंके प्रकरणमें पठित 'शरमयं बर्हिर्भवति' इत्यादिवाक्य हैं वे वाक्य ज्योतिष्टोमादिरूप जो प्रकृति याग हैं उन यागोंके अङ्गकलापका अतिदेशरूप जो 'प्रकृतिवत्कुर्यात्' यह वाक्य है, इस वाक्यसे पश्चात् प्रवृत्त होते हैं, और अतिदेश वाक्यसे प्रापित जो बर्हिरादिकार्थ है, उस कार्यको उद्देश कर शरादिका विधान करते हैं और उन वाक्योंसे अतिदेशवाक्य कुशादिप्रापकत्वांशमें बाधित हो जाता है; तैसे इत्यधिकरणे=इस अधिकरणमें उद्गात्रपच्छेदनिमित्तक जो अदक्षिणयाग है जो कि पर है, उससे पूर्वसिद्धनिमित्तकप्रतिहर्त्रपच्छेदनिमित्तक सर्वस्वदक्षिणयागका बाध होता है, इति=यह स्थित है, तैसेही प्रस्तुतार्थमेंभी उद्दीच्य जो आगम है उस आगमसे पूर्वसिद्ध प्रत्यक्ष-का बाध होता है=जैमिनीय मीमांसाके छठे अध्यायके पञ्चमपादमें विचार किया है, ज्योतिष्टोम यागमें हविर्धानप्रदेशसे बहिष्पवमान स्तोत्रके लिए बहिष्पवमान देशको जाते हुए अध्वर्युप्रभृतिका अन्वारम्भ बताया गया है,=जैसाकि अध्वर्युं प्रस्तोता संतनुयात् प्रस्तोतारमुद्गाता उद्गातारं प्रति-हर्त्ता प्रतिहर्त्तारं ब्रह्मा ब्रह्माणं यजमानः यजमानं प्रशास्ता। संतनुयात्=का अर्थ यह है कि कच्छ पकडके चलना, तथा च यह अर्थ हुआ, उक्त प्रदेशसे उक्त प्रदेशमें जाते वखत सर्वसे आगे अध्वर्यु चले उसके पीछे प्रस्तोता चले और प्रस्तोताके पीछे उद्गाता चले और उद्गाताके पीछे प्रतिहर्त्ता चले और प्रतिहर्त्ताके पीछे ब्रह्मा चले और ब्रह्माके पीछे यजमान चले और यजमानके पीछे प्रशास्ता चले इन लोगोंको पिपीलिकावत् पंक्ति बनाकर चलना चाहिए और चलते वखत अपने आगेवालेका कच्छ पीछे वालेको पकड़ लेना चाहिए अर्थात् अध्वर्युका प्रस्तोता प्रस्तोताका उद्गाता उद्गाताका प्रतिहर्त्ता प्रतिहर्त्ताका ब्रह्मा, ब्रह्माका यजमान यजमा-नका प्रशास्ता, कच्छ पकडकर चले; इस गमनके समय यदि किसीके हाथसे किसीका कच्छ छूटजाय तो उस छूटजानेका नाम अपच्छेद है और जिसके हाथसे कच्छ छूट जायगा उसीका वह अपच्छेद कहा जायगा, उदाहरणके लिए यदि अध्वर्युका कच्छ छूटजाय तो यह प्रस्तोताका अपच्छेद कहा जायगा, इसी रीतिसे आगेभी समझिये, यह अपच्छेद कोई साधारण पदार्थ नहीं है इसे उद्देश्यकर प्रायश्चित्तका विधान है, जैसाकि—यदि—प्रस्तोता अपच्छिन्द्यात् ब्रह्मणे-वरं दद्यात् यदि प्रतिहर्त्ता सर्ववेदसं दद्यात् यदि उद्गाता अदक्षिणं यज्ञमिष्ट्वा तेन पुनर्यजेत तत्र तद्दद्यात् यत्पूर्वस्मिन् दास्यं स्यात्। अर्थ=यदि प्रस्तोताका अपच्छेद हो=प्रस्तोताके हाथसे अध्वर्युका कच्छ छूट जाय तो ब्रह्माको वर देना, यदि प्रतिहर्त्ताका अपच्छेद होतो सर्ववेदसम्= सर्वस्व दे देना, यदि उद्गाताका अपच्छेद होतो आरब्ध यज्ञको अदक्षिण पूराकर फिर वही यज्ञ

करना और इस द्वितीय यज्ञमें वह दक्षिणा देनी जोकि प्रथम यज्ञमें देनेको थी, इस प्रसङ्गमें यह विचार किया गया कि जहाँपर क्रमसे प्रथम प्रतिहर्त्ताका अपच्छेद हुआ है और पश्चात् उद्गाताका अपच्छेद हुआ है, तहाँपर संशय होता है कि पूर्वोत्पन्ननिमित्तक प्रायश्चित्त करना या उत्तरोत्पन्ननिमित्तक; पूर्व पक्ष यह है कि प्रथमोत्पन्ननिमित्तक ही प्रायश्चित्त करना, क्योंकि वह असञ्जात विरोधी है, उपक्रमन्यायसे सिद्धान्त यह है कि यहाँपर पूर्वनिमित्तज्ञानसे उत्तर ज्ञानकी उत्पत्तिका, निरोध नहीं हो सकता है, क्योंकि, प्रत्यक्ष वाक्यसे अवश्यही उत्तरज्ञान उत्पन्न होगा, और वह उत्तर ज्ञान उपजायमान हुआ, स्वविरोधि पूर्व ज्ञानको बाध करता हुआही उत्पन्न होता है, और उस उत्तर ज्ञानसे पूर्वजायमान प्रायश्चित्तज्ञान मिथ्या हो जाता है. क्योंकि उत्तर ज्ञानसे बाधित है, उत्तर ज्ञानका तो कोई बाधक नहीं है, पूर्वविज्ञान उत्पन्न होता हुआ तो उत्तर ज्ञानको नहीं बाध सकता है क्योंकि जिसकालमें पूर्व विज्ञान उत्पन्न हुआ है, उस कालमें उत्तर ज्ञान था ही नहीं और उत्तर ज्ञान जायमानावस्थामेंही पूर्व ज्ञानको बाध करता हुआ, उत्पन्न हुआ है, अतः उत्तर ज्ञानकी उत्पत्तिके बाद असद्रूप पूर्व ज्ञान उत्तर ज्ञानके बाध करनेमें सर्वथा असमर्थ है, अतः पूर्वका दौर्बल्य है, और उत्तरसे इसका बाध होता है, तथैव प्रकृतमें भी स्वतः सम्भावितदोषवत्त्वेन पूर्ववृत्तिप्रत्यक्षका भी अनाप्ताप्रणीतत्वेन गृहीतव्याप्तिकउत्तरवृत्ति आगमसे बाध होता है।

ननु—प्रतिहर्त्रपच्छेदनिमित्तकसर्वस्वदक्षिणयागस्य प्रतिहर्त्रमात्रापच्छेदे युगपदपच्छेदे क्रमेणापच्छेदेऽपि प्रतिहर्त्रपच्छेदस्य पाश्चात्ये चावकाश इति युक्तः उद्गात्रपच्छेदनिमित्तकादक्षिणयागेन बाधः। अन्यथा यदि प्रतिहर्त्रापच्छिद्येत सर्ववेदसं दद्यादिति शास्त्रमप्रमाणंस्यात्। अतएव विप्रतिषेधाद्विकल्पः स्यादित्यधिकरणे, द्वयोर्युगपदपच्छेदे विकल्प उक्तः, किञ्च यदि उद्गाता जघन्यः स्यात्पुनर्यज्ञे सर्ववेदसं दद्याद्यथेतरस्मिन्नित्यधिकरणे उद्गात्रपच्छेदस्य प्रतिहर्त्रपछेदात् परत्वे उद्गात्रपच्छेदनिमित्तं पूर्वं प्रयोगं दक्षिणाहीनं संपाद्य कर्तव्यज्योतिष्टोमस्य द्वितीयप्रयोगे तद्दद्याद्यत्पूर्वस्मिन् दास्यं स्यात् इतिश्रुत्या या दक्षिणा, सा पूर्वभाविप्रतिहर्त्रपच्छेदनिमित्तकपूर्वप्रयोगस्य सर्वस्वदित्साया अबाधेन, सर्वस्वरूपैव ननु या ज्योतिष्टोमे नित्या द्वादशशतरूपा तस्मान्नप्रतिहर्त्रपच्छेदस्य सर्वथा बाधः किन्तु प्रयोगान्तरे निक्षेप इत्युक्तं उक्तं हि टुपटीकायां तस्य प्रयोगान्तरे निक्षेप इति। अपि च क्रमिकनिमित्तद्वयेन क्रमेणादक्षिणसर्वस्वदक्षिणयोः प्रयोगयोः सम्भवेन विरोध एव नास्ति यथा बदरीफले क्रमिकनिमित्तवतोः श्यामरक्तरूपयोः। उक्तं हि अपच्छेदाधिकरणे नैमित्तिकशास्त्रस्य हि अयमर्थः निमित्तोपजननात् प्रागन्यथाकर्त्तव्योऽपि क्रतुः निमित्ते सत्येवं कर्त्तव्य इति। तस्मादपच्छेदन्यायः सावकाशविषयः अद्वैतागमेन प्रत्यक्षबाधे तु न प्रत्यक्षप्रामाण्यस्यावकाशोऽस्ति इतिचेन्न;

शङ्कते नन्विति। प्रतिहर्त्ताका जो अपच्छेद तादृश अपच्छेदरूपनिमित्तसे प्राप्त जो सर्वस्व-

दक्षिण याग है, उस यागको प्रतिहर्त्तामात्रका अपच्छेद जिस प्रयोगमें है उसमें युगपदपच्छेदे= जिस प्रयोगमें एक कालमेंही उद्गाता तथा प्रतिहर्त्ताका अपच्छेद हुआ है, उस प्रयोगमें क्रमसे अपच्छेद होनेपर भी प्रतिहर्त्ताका अपच्छेद जहाँ पश्चात् हुआ है वहाँपर भी अवकाश है, अर्थात तीन प्रकारसे प्रतिहर्तृ–अपच्छेदनिमित्तक यागको अवकाश है, इति=इसलिए उद्गात्रपच्छेद-निमित्तक जो अदक्षिण याग है, उससे उसका बाध युक्त है, अन्यथा=प्रतिहर्तृ–अपच्छेदनिमित्तक यागको अवकाश न दे कर यदि बाध्यत्व अङ्गीकार किया जाय तो 'यदि प्रतिहर्त्ता अपच्छिद्येत सर्ववेदसं दद्यात्' यह शास्त्र अप्रमाण हो जायगा, अतएव=किञ्चित् अवकाश न दे कर शास्त्रके बाधको अशक्य होनेसेही, 'विप्रतिषेधाद्विकल्पः स्यात्' इस अधिकरणमें दोनोंका युगपद् अपच्छेद होनेपर विकल्प कहा है, फलतः पाक्षिकानुष्ठानसेही यहाँपर शास्त्रको सावकाशता है, यह अधिकरण, जै० मी० अ० ६ पा. ५ में है, ननु जैसे क्रमिक अपच्छेद स्थलमें प्रतिहर्तृ–अपच्छेदनिमित्तक यागको प्रयोगान्तरमें अवकाश है तैसे प्रत्यक्षको भी व्यावहारिक प्रामाण्यमें अवकाश है, तहाँ कहते हैं किञ्चेति। यदि उद्गाता जघन्यः स्यात्=यदि उद्गाता, प्रतिहर्त्रपच्छेदसे पश्चात् अपच्छिन्न हुआ हो तो पुनर्यज्ञे=अदक्षिणप्रयोगसे उत्तरमें अनुष्ठीयमान जो प्रयोग है, उस प्रयोगमें सर्ववेदसं दद्यात्=सर्वस्व दक्षिणा देना, यथा इतस्मिन्=प्रतिहर्त्ता मात्रका अपच्छेद जिस प्रयोगमें होता है, उस प्रयोगमें जैसे सर्वस्व दक्षिणा दी जाती है, इत्यधिकरणे=इस अधिकरणमें 'इसका अन्वय आगे चलकर इत्युक्तके साथमें होगा।' उद्गाताके अपच्छेदको प्रतिहर्त्ताके अपच्छेदसे परत्व होनेपर उद्गात्रपच्छेदनिमित्तक पूर्वप्रयोगको दक्षिणासे हीन सम्पादन कर कर्त्तव्य जो ज्योतिष्टोम उसके द्वितीय प्रयोगमें तद्दद्यात् यत् पूर्वस्मिन् दास्यं स्यात् इस श्रुतिमें कही गई जो दक्षिणा वह दक्षिणा पूर्वमें होनेवाला जो प्रतिहर्त्ताका अवच्छेद तादृश–अपच्छेदनिमित्तक पूर्व प्रयोगस्थ जो सर्वस्वदित्सा=सर्वस्व दक्षिणा देनेकी इच्छा उस दित्साका बाध न होनेसे सर्वस्वरूपही है, और ज्योतिष्टोममें जो नित्याद्वादश शतरूपा होती है वह नहीं, ततः प्रतिहर्तृ–अपच्छेदस्य=प्रतिहर्तृ–अपच्छेदनिमित्तक पूर्वप्रयोगाङ्ग सर्वस्वदानका सर्वथा बाध नहीं है, किन्तु प्रयोगान्तरमें निक्षेप है, अर्थात् पूर्वप्रयोगकालमें अनुष्ठानका बाध है, इत्युक्तम्=यह कहा है, टुप्टीकामें कहा है,–तस्य=प्रतिहर्त्रपच्छेदनिमित्तक पूर्वप्रयोगाङ्ग सर्वस्व दानका, प्रयोगान्तरे=द्वियीय प्रयोगमें निक्षेप है इति, जैमि० मी० अ० ६ पा० ५ में यह अधिकरण है, अपि च,=और भी कहना है, क्रमिकनिमित्तद्वयेन=क्रमसे प्राप्त जो निमित्तद्वय उस निमित्तद्वयसे क्रमसे अदक्षिण तथा सर्वस्वदक्षिण, इन दोनों प्रयोगोंका संभव होनेसे विरोधही नहीं जैसे बदरीके फलमें क्रमिक निमित्तवाले जो श्यामरूप और रक्तरूप इन दोनोंका सम्भव होनेसे विरोध नहीं है, श्यामरूप और रक्तरूपमें क्रमिकनिमित्त विलक्षणतेजः संयोगरूप है, उक्तं हि अपच्छेदाधिकरणे=अपच्छेदाधिकरणमें शास्त्रदीपिकामें कहा है, निमित्त शास्त्रका यह अर्थ है कि निमित्तोत्पत्तिसे पूर्व अन्यथा कर्त्तव्य हुआ भी क्रतु निमित्ते सति= प्रतिहर्त्रादिका जो अपच्छेद तादृश अपच्छेदरूप निमित्तके प्राप्त होनेपर एवं कर्त्तव्य=सर्वस्व-दक्षिणावस्त्रादिसे कर्त्तव्य है, इति। तस्मात्=उक्ताधिकरणोंको सावकाशताका ज्ञापक होनेसे

अपच्छेदन्याय सावकाशविषय है, अद्वैतागमसे प्रत्यक्षका बाध होनेपर तो प्रत्यक्षके प्रामाण्यको अवकाश नहीं है इति चेन्न,—ऐसा यदि कहो तो नहीं कहना, क्यों ?

उद्गात्रपच्छेदाभावे युगपदुभयापच्छेदे प्रतिहर्त्रपच्छेदस्य पाश्चात्ये च ज्योतिष्टोमद्वितीयप्रयोगे प्रतिहर्त्रपच्छेदनिमित्तसर्वस्वदक्षिणयागप्रतिपादकशास्त्रस्य सावकाशत्ववद् व्यावहारिक–प्रामाण्ये प्रत्यक्षस्यापि सावकाशत्वात् तत्रैकप्रयोगे विरोधवदत्रापि तात्त्विकत्वांशे विरोधात्, अतएव सगुणसप्रपञ्चश्रुत्योर्निर्गुणनिष्प्रपञ्चश्रुतिभ्यामपच्छेदन्यायेन वाध इति सुष्ठूक्तम्। तदुक्तमानन्दबोधाचार्य्यैः। तत्परत्वापरत्वाच्च निर्दोषत्वाच्च वैदिकम्। पूर्वस्य बाधकं नायं सर्प इत्यादिवाक्यवत्॥ इति। ननु—मानान्तरविरोधे श्रुतेस्तत्परत्वमसिद्धम् परत्वन्तु प्रमानन्तरभ्रमे व्यभिचारि दृश्यते च, नक्त्वा सेडिति परं प्रति मृडमृदगुधकुषक्लिशवदवसः क्त्वेति पूर्वमपि बाधकम्। निर्दोषत्वं त्वर्थान्तरप्रामाण्येनान्यथासिद्धम्। तदुक्तम्—तत्परत्वमसिद्धत्वात्परत्वं व्यभिचारतः। निर्दोषतान्यथासिद्धेः प्राबल्यं नैव साधयेत्। इति चेन्न प्रत्यक्षादेर्व्यावहारिकं प्रामाण्यं श्रुतेस्तु तात्त्विकमिति विरोधाभावेन तत्परत्वसिद्धेः। परशब्देन च मानान्तराबाधितपरत्वं विवक्षितम्, तेन प्रमानन्तरभ्रमे न व्यभिचारः, तस्य तदुत्तरभाविमानबाधितत्वात् नक्त्वासेडित्यस्य तु पाठतः परत्वेऽपि स्वभावसिद्धकित्वस्यानेनापाकरणं विना पुनस्तत्प्रतिप्रसवार्थं मृडमृदेत्यादेरप्रवृत्तेस्तदपेक्षया अर्थतः पूर्वत्वमेव, अपवादापवादे उत्सर्गस्यैव स्थिरत्वादतो निर्दोषत्वमपि नान्यथासिद्धम् तात्पर्यविषय एव प्रामाण्यस्याभ्युपेयत्वात्। इत्यबोधमात्रविजृम्भितमपच्छेदन्यायवैषम्याभिधानमिति॥

इति अपच्छेदन्यायवैषम्यभङ्गः।

उद्गाताका अपच्छेद न होनेपर युगपद् उभयके अपच्छेद होनेपर च=तथा प्रतिहर्त्ताके अपच्छेदको उद्गाताके अपच्छेदसे पश्चात् होनेपर ज्योतिष्टोमके द्वितीय प्रयोगमें प्रतिहर्त्रपच्छेदनिमित्तक जो सर्वस्वदक्षिणक याग है। तादृशयाग–प्रतिपादक शास्त्रको जैसे सावकाशता है, तैसे व्यावहारिक प्रामाण्यमें प्रत्यक्षको भी–सावकाशता होनेसे तत्र=सर्वस्वदक्षिणत्वमें एकप्रयोगे=अदक्षिणप्रयोगकालानुष्ठानांशमें जैसे विरोध है। तैसे अत्रापि=श्रुतिबाध्यप्रत्यक्षमें भी तात्त्विकत्वांशमें विरोध है। अतएव=उक्त प्रकारसे अनधिगतावाधितार्थक श्रुतिके प्राबल्यसेही सगुण तथा सप्रपञ्चश्रुतिओंका निष्प्रपञ्चश्रुतिओंसे अपच्छेदन्यायसे बाध होता है। यह जो पूर्वतन ब्रह्मवेदिताओंने कहा है वह भी अच्छाही कहा है=सगुण तथा सप्रपञ्च ब्रह्मको बोधन करनेवाली श्रुतिओंका व्यावहारिक प्रामाण्य है। अर्थात् ये श्रुतियाँ व्यवहारकालमें प्रवृत्त होती हैं इनका इनसे उत्तरकालमें प्रवृत्त होनेवाली निर्गुण तथा निष्प्रपञ्च ब्रह्मको बोधन करनेवाली श्रुतिओंसे बाध होता है, सो कहा है आनन्दबोधाचार्यने, न्यायमकरन्दग्रन्थमें. तत्परत्वात्=तदेव

अद्वैतब्रह्मैव परं=प्रधानं=मुख्यप्रतिपाद्यमस्यतत् तत्परम् तत्परस्य भावः तत्परत्वम् तस्मात्= अद्वैतपरत्व होनेसे और परत्व होनेसे तथा निर्दोषत्व होनेसे वैदिकम्=एकमेवाद्वितीयम् इत्यादि वेदवाक्य पूर्वस्य=पूर्वप्रवृत्त प्रत्यक्षादिका बाधक है, जैसे 'नायं सर्पः' यह वाक्य पूर्वप्रवृत्त 'अयं सर्पः' इत्यादि प्रत्यक्षका बाधक होता है=सगुणत्वसप्रपञ्चत्वबोधक श्रुतियाँ उपासना-विधिकी शेष हैं अतः उनका तात्पर्य सगुणत्वादिमें नहीं है, और कभी है तौ भी अवान्तर तात्पर्य है। अतः परमतात्पर्यविषयार्थक निर्गुणत्वादिबोधक श्रुतिओंसे उनका बाध होता है–शङ्कते नन्विति। मानान्तरके साथ विरोध होनेसे अद्वैतश्रुतिका तत्परत्व असिद्ध है, और परत्व तो प्रमाके बाद जहाँ भ्रम होता है उस भ्रममें व्यभिचारी है=ऐसे स्थलमें भ्रमको परत्व है, परन्तु प्रमाबाधकत्व नहीं है, नक्त्वा सेट्। अष्टाध्यायी अ० १ पा० २ सू० १८ इस परसूत्रके प्रति मृडमृदगुधकुषक्लिशवदवसः क्त्वा अष्टाध्यायी अ० १ पा० २ सू० ७ यह पूर्वसूत्र भी बाधक देखा जाता है। और अर्थान्तरमें अद्वैतश्रुतिओंका प्रामाण्य होनेसे निर्दोषत्व अन्यथासिद्ध है, सो कहा है असिद्ध होनेसे तत्परत्व, व्यभिचार होनेसे परत्व, अन्यथा सिद्ध होनेसे निर्दो-षत्व, प्राबल्य नहीं सिद्ध करता है, इति चेन्न क्यों ? प्रत्यक्षादिनिष्ठ व्यावहारिक प्रामाण्य है, और श्रुतिका तात्त्विक प्रामाण्य है, अतः विरोध न होनेसे तत्परत्वकी सिद्धिसे परत्वशब्दसे मानान्तरसे अबाधित जो अर्थ तत्परत्व विवक्षित है। तेन=उक्त विलक्षणसे प्रमाके पश्चात् होनेवाले भ्रममें व्यभिचार नहीं है। तस्य=उक्त भ्रमको भ्रमोत्तर जायमान प्रमाज्ञानसे बाधित होनेसे। नक्त्वा सेट्। इस सूत्रको पाठतः परत्व होनेपर भी स्वभावसिद्ध कित्वका इससे अपा-करणम्=निषेध हुए विना पुनः तत्प्रतिप्रसवार्थम्=पुनः कित्त्वप्रतिप्रसवके लिए=कित्वकी प्राप्तिके लिए मृडमृद इत्यादि सूत्रकी प्रवृत्तिको अयुक्त होनेसे, तदपेक्षया=कित्त्वके प्रतिषेधकी अपेक्षासे अर्थतः 'नक्त्वा सेट्'को पूर्वत्वही है। अपवादका अपवाद होनेपर उत्सर्गकाही शेष रहता है, अतः=तत्परत्वपरत्व इन दोनोंको निर्दोषता होनेसे निर्दोषत्व भी अन्यथा सिद्ध नहीं है, मुख्य तात्पर्यके विषयमेंही प्रामाण्यको अभ्युपेय होनेसे अतः आपका अपच्छेदन्यायवैषम्यका अभिधान ब्रह्मवादिओंके सिद्धान्तके अज्ञानमात्रकाही कार्य है।

इतिसरलायां अपच्छेदन्यायवैषम्यभङ्गः।

अथ मिथ्यात्वानुमितेः शैत्यानुमितिसाम्यभङ्गः।

ननु–यदि प्रत्यक्षबाधितमप्यनुमानं साधयेत्तदा वन्ह्यनौष्ण्यमपि साधयेत्। तथाच–कालात्ययापदिष्टकथा सर्वत्रोच्छिद्येत, न चौष्ण्यप्रतियोगिकाभावे साध्ये पक्ष एव प्रति-योगिप्रसिद्धिरिति तत्र बाधः सावकाशः। प्रकृतेतु सत्त्वं व्यावहारिकं प्रत्यक्षसिद्धम्। तद्विरुद्धञ्च मिथ्यात्वम्। तस्य पारमार्थिकसत्त्वविरोधित्वादतो न व्यावहारिकसत्त्व-ग्राहकेणाध्यक्षेण बाध्यत इति वाच्यम्। वह्निविशेषे औष्ण्याभावानुमाने शैत्यानुमाने वा तदभावात्। पक्षातिरिक्तस्य प्रतियोगिप्रसिद्धिस्थलस्य तत्र सत्वात्। नच यत्र प्रत्यक्षं

प्रवलं तत्र वाधव्यवस्था, न चात्र तथेति न वाध इति वाच्यम्; प्रकृतेऽप्यौष्ण्यप्रत्यक्षसमकक्ष्यस्य प्रावल्यप्रयोजकस्य विद्यमानत्वात् अनौष्ण्यानुमितेर्मिथ्यात्वानुमितेश्च समानयोगक्षेमत्वात् । न च मिथ्यात्ववादिनां प्रतिपन्नोपाधौ औष्ण्यनिषेधग्राह्यनुमानेन मिथ्यात्वानुमितेः समत्वमिष्टमेवेति वाच्यम् औष्ण्यानौष्ण्योर्भावाभावरूपतया तदनुमितिसाम्येऽपि–शैत्यानुमितिसाम्यस्यानभ्युपगमात्, शैत्यस्यौष्ण्याभावरूपत्वाभावात् । तस्माद्वाधस्य दोषता वा त्याज्या, औष्ण्यप्रत्यक्षायजमानत्वप्रत्यक्षादेः सत्त्वप्रत्यक्षापेक्षया विशेषो वा वक्तव्यः न चौष्ण्यप्रत्यक्षं परीक्षितोभयवादिसिद्धप्रामाण्यं सत्त्वप्रत्यक्षन्तु न तथेति विशेष इति वाच्यम् । सत्त्वप्रत्यक्षेऽपि प्रामाण्यासम्मतौ हेत्वभावात् परीक्षायास्तुल्यत्वात् इति चेन्मैवम् ।

अथ सरलायां मिथ्यात्वानुमितेः शैत्यानुमितिसाम्यभङ्गः ।

द्वैताभिनिवेशी शङ्का करता है, नन्विति । यदि प्रत्यक्षसे वाधित अर्थकोभी अनुमान सिद्ध करे तो विह्नमें अनौष्ण भी सिद्ध करेगा, फलतः वाधकथा सर्वत्र उच्छिन्न हो जायगी=पक्षमें साध्याभाववत्ताके निश्चयका नाम वाध है, वह ग्राह्याभावनिश्चयत्वेन अनुमितिका प्रतिवन्धक होता है, यदि प्रत्यक्ष प्रमाणसे वाधित अर्थको भी अनुमान सिद्ध करता हो तव तो वाधस्थलमें भी अनुमान ग्राह्यकोही सिद्ध करेगा, अतः वाधको दोपता नहीं रहेगी, सिद्धान्तीके पक्षका अनुवाद कर द्वैती दोप देता है न चेति । औष्ण्यप्रति–योगिकाभावे साध्ये=औष्ण्यनिष्ठप्रतियोगितानिरूपक अभावको साध्य करनेपर पक्षे एव=वह्निरूपपक्षमेंही प्रतियोगीकी प्रसिद्धि है, इति=अतः तत्र=पक्षमें वाध सावकाश है, प्रकृते तु=पक्षत्वेनाभिमत प्रपञ्चमें तो प्रत्यक्षसे सिद्ध सत्त्व व्यावहारिक है, तदविरुद्धश्च=उक्तव्यावहारिक सत्त्वसे अविरुद्ध मिथ्यात्व है, तस्य=मिथ्यात्वको पारमार्थिक सत्त्वका विरोधि होनेसे, अतः व्यावहारिकसत्त्वक जो अध्यक्ष=प्रत्यक्ष है उस प्रत्यक्षसे वाधित नहीं होता है, इति न च वाच्यम्=ऐसा सिद्धान्तीको नहीं कहना चाहिए, क्यों वह्निविशेपे=जिस वह्निमें प्रतियोगिकी प्रसिद्धि है. उस वह्निसे भिन्न वह्निमें औष्ण्याभावानुमानमें या शैत्यानुमानमें तदभावात् पक्षमें प्रतियोगिकी प्रसिद्धिका अभाव है, यदि प्रतियोगीकी प्रसिद्धि नहीं है तो तदपेक्ष साध्यज्ञान कैसे होगा ? तहाँ कहते हैं पक्षातिरिक्तप्रतियोगिप्रसिद्धिस्थल उक्तानुमानमें है, यत्र=जहाँ प्रत्यक्ष प्रवल है तत्र=तहाँ वाधकी व्यवस्था है=जहाँ प्रत्यक्ष अनुमानसे प्रवल होता है. तहाँ अनुमानका वाध करता है, अत्र=पक्षमें न तथा=अनुमानसे प्रवल नहीं है अतः अनुमानका प्रत्यक्षसे वाध नहीं है, इति नच वाच्यम् क्यों ? प्रकृतमें औष्ण्यप्रत्यक्षके समकक्ष प्रावल्यप्रयोजकको विद्यमान होनेसे, औष्ण्यानुमिति तथा मिथ्यात्वानुमिति इन दोनोंको समान योगक्षेमता है, मिथ्यात्ववादिको औष्ण्याधिकरणमें औष्ण्याभावग्राहि अनुमानके साथ मिथ्यात्वानुमितिका साम्य इष्ट ही है, इति नच वाच्यम्; क्यों ! औष्ण्य तथा अनौष्ण्य इनको भावाभाव रूप होनेसे उक्तानु.

मानका तदनुमिति=मिथ्यात्वानुमितिके साथ साम्य होनेपर भी शैत्यको औष्ण्याभावरूपत्व नहीं है. ततः फलित यह हुआ कि, या तो बाधकी दोषता छोडनी चाहिए या सत्त्वप्रत्यक्षकी अपेक्षा औष्ण्यप्रत्यक्ष अयजमानत्वप्रत्यक्षादिका विशेष कहना चाहिए=सत्त्वप्रत्यक्षका अनुमान तथा आगमसे बाध होता है । अतः सत्त्वप्रत्यक्षसे इन प्रत्यक्षोंमें कुछ विशेषता बतलानी चाहिए जिस विशेषतासे यहाँ अनुमान तथा आगमकी शक्ति कुण्ठित हो जाती है. औष्ण्यप्रत्यक्ष परीक्षितउभयवादिसिद्धप्रामाण्यक है=परीक्षितश्च उभयवादिसिद्धश्चतत्परीक्षितोभयवादिसिद्धं एवंभूतं प्रामाण्यं यस्य तत् तथा, सत्त्वप्रत्यक्षतो न तथा=परीक्षितोभयवादिसिद्धप्रामाण्यक नहीं है यही आपका पूछा हुआ विशेष है इति नच वाच्यम् क्यों ? सत्त्वप्रत्यक्षमें भी उक्तविध प्रामाण्यकी असम्मतिमें हेतुका अभाव होनेसे परीक्षाको उभयत्र तुल्य होनेसे इति चेन्मैवम्= ऐसा यदि कहो तो मत कहना क्यों ?

विरुद्धार्थग्राहित्वेनविशेषात्, प्रत्यक्षसिद्धायजमानत्वौष्ण्यादिवच्छब्दलिङ्गग्राह्ययजमानत्वानौष्ण्याद्यपि व्यावहारिकमिति समत्वात् प्रत्यक्षेण बाध्यते । प्रकृते तु सत्वं व्यावहारिकं प्रत्यक्षसिद्धं तद्विरुद्धं च न मिथ्यात्वम् । तस्य—पारमार्थिकसत्त्वविरोधित्वात् । अतो न तद्व्यावहारिकसत्त्वग्राहकेणाध्यक्षेण बाध्यते ।

विरुद्धार्थग्राहित्वेन विशेषहै=औष्ण्यप्रत्यक्ष अयजमानत्वादिप्रत्यक्ष अनुमान तथा आगमसे विरुद्धार्थको ग्रहण करनेवाले हैं अतः अनुमान तथा आगमका उक्तस्थलोंमें प्रत्यक्षसे बाध होता है, सत्त्वग्राहि प्रत्यक्ष अनुमान तथा आगमसे विरुद्धार्थको ग्रहण नहीं करता है अतः यह प्रत्यक्ष अनुमान तथा आगमका बाधक नहीं होता है, प्रत्यक्षसिद्ध जो अयजमानत्व और औष्ण्यादि तद्वत् शब्द तथा लिङ्गसे ग्राह्य यजमानत्व अनौष्ण्यादि भी व्यावहारिक हैं इति= अतः सम होनेसे प्रत्यक्षसे बाध्य होते हैं, प्रकृते च प्रकृतमें तो व्यावहारिक सत्त्व प्रत्यक्षसे सिद्ध है, तद्विरुद्धं च न मिथ्यात्वम्, उस सत्त्वसे विरुद्ध तो मिथ्यात्व नहीं है. तस्य=मिथ्यात्वको पारमार्थिक सत्त्वका विरोधित्व होनेसे अतः तत्=मिथ्यात्व व्यावहारिकसत्त्वग्राहक प्रत्यक्षसे बाधित नहीं होता है,=प्रतियोगिसमानाधिकरण और प्रतियोगिसे अन्यूनसत्ताक जो अत्यन्ताभाव तादृश अत्यन्ताभाववत्ताका ज्ञान प्रतियोगिमत्त्वज्ञानका विरोधी होता है, अतः मिथ्यात्वसे न्यूनसत्ताक जो व्यावहारिक सत्त्व तादृश व्यावहारिक सत्त्वका ज्ञान तात्त्विकमिथ्यात्ववत्ताज्ञानका बाधक नहीं हो सकता है; और मिथ्यात्वमें तात्त्विकाधिकरणीभूतचिदात्मकाभावघटितत्वरूप है ।

ननु—एवं वदतस्तवकोवाभिप्रायः किं तात्विकविषयत्वात् बाधकतैवमिथ्यात्वानुमानादेर्नवाध्यता; उत सत्त्वमिथ्यात्वग्राहिणोर्व्यावहारिकतात्त्विकविषययोः परस्परविरुद्धविषयत्वाभावात् न बाध्यबाधकभावः । अन्त्येऽपि किमध्यक्षसिद्धव्यावहारिकसत्त्वमगृहीत्वैव तदसिद्धस्य तात्त्विकसत्वस्यैवाभावं गृह्णात्यनुमानादि, उत प्रत्यक्षविपर्या-

कृतस्यैव तात्त्विकमभावम् । नान्त्यः प्रत्यक्षविषयाभावग्राहिणि तद्बाधकत्वोक्त्ययोगात् । नद्वितीयः प्रत्यक्षागृहीतप्रतिषेधकत्वेनाप्रसक्तप्रतिषेधापत्तेः, प्रत्यक्षविषयस्य तात्त्विकत्वापत्तेश्च, न प्रथमः उपजीव्यप्रत्यक्षविरोधेनानुमित्यादिविषयस्य तात्त्विकत्वासिद्धेरिति चेन्न, प्रथमे द्वितीये च पक्षे अनुपपत्त्यभावात् । तथाहि—

शङ्कते नन्विति । उक्तरीतिसे कहनेवाले तुह्मारा अभिप्राय क्या है । क्या तात्त्विकविषयत्व होनेसे मिथ्यात्वानुमानादिको बाधकताही है बाध्यता नहीं उत=अथवा सत्त्व तथा मिथ्यात्वग्राहक प्रमाणोंको—जो कि व्यावहारिक तथा तात्त्विकविषयक हैं परस्परविरुद्धविषयत्वका अभाव होनेसे बाध्यबाधकभाव नहीं है, अन्त्येऽपि किम्=अन्त्यपक्षमें भी क्या प्रत्यक्षसे सिद्ध जो व्यावहारिक सत्त्व है, उस सत्त्वको न ग्रहण करके ही तदसिद्धस्य=प्रत्यक्षसे असिद्ध तात्त्विक सत्त्वकेही अभावको अनुमानादि ग्रहण करते हैं अथवा प्रत्यक्षसे विषयीकृत सत्त्वकेही तात्त्विक अभावको ग्रहण करते हैं, अनुमानादि; नान्त्यः द्वितीय विकल्पमें जो दो विकल्प किये हैं उन दोमेंसे अन्त्यविकल्प समीचीन नहीं है, क्यों ? प्रत्यक्षका विषयीभूत जो पदार्थ उस पदार्थके अभावको ग्रहण करनेवालेमें प्रत्यक्षके अबाधकत्वकी उक्तिको असङ्गत होनेसे; न द्वितीयः=मध्यका विकल्प भी निर्दोष नहीं है, क्यों ? प्रत्यक्षसे अगृहीत जो अर्थ तादृश—अर्थप्रतिषेधप्रयुक्तअप्रसक्तप्रतिषेधापत्तिसे, प्रत्यक्षविषयके तात्त्विकत्वकी आपत्तिसे भी; न प्रथमः, प्रथमपक्ष भी साधु नहीं है, क्यों ? उपजीव्यभूत प्रत्यक्षके साथ विरोध होनेसे अनुमित्यादिविषयनिष्ठ तात्त्विकत्वकी असिद्धिसे इति चेन्न, क्यों ? प्रथम तथा द्वितीय पक्षमें अनुपपत्तिकी अनुपपत्तिसे=प्रथम तथा द्वितीय विकल्पमें दोषके न होनेसे तथाहि=दोषाभावको दिखलाते हैं ।

प्रथमे पक्षे न तात्त्विकत्वासिद्धिः यस्मादिदं रजतमित्वनेन नेदंरजतमित्यस्य बाधादर्शनात्, परीक्षितमेवबाधकमभ्युपेयम् । परीक्षा च प्रवृत्तिसंवादिरूपा व्यवहारदशायामबाध्यत्वं विनानुपपन्ना, तद्दशाबाधग्राहिणं बाधते, नाद्वैतश्रुत्यनुमानादिकमित्युक्तमेव । द्वितीयेऽपिपक्षे नाप्रसक्तप्रतिषेधः परोक्षप्रसक्तेः संभवात् यत्तुकेचिदात्मनि तात्त्विकसत्त्वमसिद्ध्या प्रसक्तिमुपपादयन्ति, तन्न, नहि प्रतियोगिज्ञानमात्रं प्रसक्तिः किं तर्हि निषेधाधिकरणकप्रतियोगिज्ञानम्, नचात्मानिषेधाधिकरणम्, तस्मात्परोक्षप्रसक्तिरेवदर्शनीया अथवा माभूत् प्रसक्तिः, अभावप्रत्यक्षेहि संसर्गारोपत्वेनसोपयुज्यते शब्दानुमानयोस्तु तस्याः क्वोपयोगः नचाप्रसक्तौ निषेधवैयर्थ्यम्, अनर्थनिवृत्तिरूपस्य प्रयोजनस्य विद्यमानत्वात् नच प्रत्यक्षविषयतात्त्विकत्वापत्तिः तद्विषयाधिकरणस्यैव पारमार्थिकत्वव्यतिरेकस्य बोधनात् तथा च न काप्यनुपपत्तिः तदुक्तं खण्डनकृद्भिः ।—पारर्थिकमद्वैतं प्रविश्य शरणं श्रुतिः विरोधादुपजीव्येन न बिभेति कदाचन ॥ इति ।

प्रथमपक्षमें तात्त्विकत्वकी असिद्धि नहीं है, यतः 'इदं रजतम्' इत्याकारक भ्रमसे 'नेदं

रजतम्' इसका बाध न देखनेसे परीक्षितही बाधक मानना चाहिए=भ्रम ज्ञानसे, बाधक ज्ञानका बाध न देखनेसे परीक्षितही ज्ञान अपरीक्षितका बाधक होता है, ऐसा मानना चाहिए, परीक्षा तो प्रवृत्तिसंवादादिरूपा है । वह व्यवहारदशामें अबाध्यत्वके विना अनुपपन्न हुई तद्दशा=व्यवहादशामें बाधग्राहीको बाध लेती है, अद्वैतश्रुति-अनुमानादिको नहीं बाधती है। यह कइही चुके है। द्वितीयपक्षमें भी अप्रसक्तका प्रतिषेध नहीं है, क्यों ? परोक्षप्रसक्तिका संभव होनेसे, जो कोई लोग आत्मामें तात्त्विक सत्त्वकी प्रसिद्धिसे पक्षमें सत्त्वप्रसक्तिका उपपादन करते हैं वह ठीक नहीं क्योंकि प्रतियोगिज्ञानमात्रका नाम प्रसक्ति नहीं है। किन्तु निषेधाधिकरणमें प्रतियोगिज्ञानका नाम प्रसक्ति है, आत्मा तो सत्त्वके निषेधका अधिकरण नहीं है। ततः परोक्ष प्रसक्तिही दिखलानेके लायक है=न्यायादिके कुसंस्कारसे और विषयासक्तिसे तथा वास्तविकविचारभावसे मूर्खोंको प्रपञ्चमें सत्त्वका परोक्ष ज्ञान हो रहा है। इसीका नाम है सत्त्वप्रसक्ति इसी प्रसक्तिको लेके श्रुति भगवती सत्त्वका निषेध करती है तैसेही अनुमानादि भी; अथवा मत रहो प्रसक्ति हि=यतः अभावविषयक प्रत्यक्षमें वह संसर्गारोपत्वेन उपयुक्त होती है, शब्दानुमानमें तिसका कहाँ उपयोग है=यदि अत्र घटः स्यात् तर्हि उपलभ्येत इत्याकारक प्रतियोगिप्रसञ्जनरूप योग्यानुपलम्भ प्रत्यक्षमें उपयुक्त होता है, शब्द तथा अनुमान स्थलमें ऐसा संसर्गारोप अनुभवसे बाधित है अप्रसक्तौ=प्रसक्तिके न होनेपर निषेधवैयर्थ्य है। नच=निषेधका वैयर्थ्य नहीं है, क्यों ? जन्ममरणादिप्रमुख अनर्थकी निवृत्तिरूप प्रयोजनको विद्यमान होनेसे। प्रत्यक्षके विषयमें तात्त्विकत्वकी आपत्ति है, नच= नहीं है क्यों ? प्रत्यक्षका विषय जो सत्त्व उस सत्त्वका जो अधिकरण तादृश-अधिकरण-कही पारमार्थिक सत्त्वके व्यतिरेकका बोधन होनेसे=प्रत्यक्षविषयीभूत जो सत्त्व है उस सत्त्वके अधिकरणमेंही श्रुति तथा अनुमानादि तात्त्विकसत्त्वाभाव सिद्ध करते हैं. अतः प्रत्यक्षविषयमें तात्त्विकत्व नहीं आसकता है, फलतः कोई भी अनुपपत्ति नहीं है, इस अर्थको खण्डनकारने कहा है-पारमार्थिक अद्वैतरूप शरणके प्रति प्रविष्ट होकर अद्वैतश्रुति उपजीव्यके साथ विरोधसे कभीभी भीत नहीं होती है,॥ इति।

ननु-एवमप्यनौष्ण्यं तात्त्विकमिति तदनुमितिरपि न बाध्येत्, व्यावहारिकौष्ण्यग्राहिणाध्यक्षेण, एवं चादित्यो यूप इत्यादावपि "तात्त्विकादित्यतां यूपस्याश्रित्य शरणं श्रुतिः। विरोधादुपजीव्येन न विभेति कदाचन, इत्याद्यपि स्यात् इति चेन्न, अनौष्ण्यं तात्त्विकं स्यादिति कोऽर्थः? यदि तत्त्वतः औष्ण्यं नास्तीत्यर्थः। तदा अद्वैते पर्यवसानादिष्टापत्तिः, यदि व्यवहारतोऽपि नास्तीति तदा व्यवहाराविसंवादिरूपपरीक्षितत्त्वविशिष्टमौष्ण्यप्रत्यक्षं बाधकमिति नानौष्ण्यस्य तात्त्विकत्वसिद्धिः एतेन शैत्यानुमानं व्याख्यातम्। एवमादित्ययूपभेदस्य तत्वतो व्यवहारतो वा निषेधे योज्यम्। श्रुतेरन्यशेषतया आदित्ययूपाभेदपरत्वाभावेन परीक्षितप्रत्यक्षविरोधेन गौणार्थतया स्तावकत्वोपपत्तेश्च, अत एव तात्त्विकादित्यतां यूपस्येत्यादिना अद्वैतश्रुतेरादित्यो यूप इत्यादिश्रुतिसाम्यापा-

दनमपास्तम् नचानुमितिसिद्धमिथ्यात्वग्राहकत्वे, अद्वैतश्रुतिरनुवादिका स्यात्, यथाग्निर्हिमस्य भेषजम् इत्यादिश्रुतिः प्रमाणान्तरगृहीतहिमनिवारणशक्त्यनुवादिकेति वाच्यम् स्वस्वचमत्कारानुसारिणोऽनुमानस्य सकलसाधारण्याभावेन तस्य श्रुत्यनुवादकत्वाप्रयोजकत्वात् तदुक्तं तर्काप्रतिष्ठानादित्यत्र वाचस्पतिमिश्रैः। यत्नेनानुमितोप्यर्थः कुशलैरनुमातृभिः। अभियुक्ततरैरन्यैरन्यथैवोपपाद्यते॥ इति। दृष्टान्तीकृतश्रुतौ तु हिमनिवृत्तिकारणताया वह्नौ सर्वसाधारणप्रत्यक्षार्थापत्तिभ्यामवसेयात्वाद्वैषम्यम्। तस्मान्मिथ्यात्वानुमानस्य न वह्निशैत्यानुमितिसाम्यम्॥

॥ इति मिथ्यात्वानुमानस्य शैत्यानुमितिसाम्यभङ्गः॥

शङ्कते नन्विति। एवमपि=इसी प्रकारसे अनौष्ण्य भी तात्त्विक होगा, अतः अनौष्ण्यानुमिति भी व्यावहारिक औष्ण्यग्राहिप्रत्यक्षसे बाधित न होगी, इसी प्रकारसे 'आदित्योयूपः' इत्यादिमें भी यूपकी तात्त्विक आदित्यतारूप शरणकों आश्रयणकर श्रुति उपजीव्यके साथ विरोधसे कभीभी भीत नहीं होती है, इत्यादि भी होगा, इति चेन्न, अनौष्ण्य तात्त्विक होगा इसका क्या अर्थ है, यदि वस्तुतः औष्ण्य नहीं है, यह अर्थ है, तब तो अद्वैतमें परिसमाप्ति होनेसे इष्टकी आपत्ति है, यदि व्यवहारसे भी औष्ण्य नहीं है, ऐसा अर्थ है तब तो व्यवहारादिकी जो संवादादिरूप परीक्षा तादृशपरीक्षापरीक्षितत्वविशिष्ट औष्ण्यप्रत्यक्ष बाधक है, अतः अनौष्ण्यके तात्त्विकत्वकी सिद्धि नहीं है, इस व्याख्यानसे शैत्यानुमान भी व्याख्यात हुआ,=यदि तात्त्विकशैत्यसिद्धि करो तो अद्वैतमें पर्यवसान, अतात्त्विकका, औष्ण्यग्राहिप्रत्यक्षसे बाध है, इसी प्रकारसे आदित्ययूपके भेदका भी तत्त्वतः तथा व्यवहारतः निषेध करनेमें जोडना,= तत्त्वतः यदि भेदका निषेध करते हो तो अद्वैतमें पर्यवसान है, व्यवहारतः करते हो तो उक्तविधप्रत्यक्षसे बाध है। 'आदित्योयूपः' इस श्रुतिको अन्यशेषता होनेसे आदित्ययूपाभेदपरत्वाभावसे परीक्षितप्रत्यक्षविरोधप्रयुक्त जो गौणार्थता तादृशगौणार्थताप्रयुक्तस्तावकत्वकी उपपत्तिसे भी बाधकत्व नहीं है, अतएव=आदित्योयूपः इस श्रुतिको उक्तप्रकारसे स्तावकत्वकी उपपत्तिसेही यूपकी तात्त्विक आदित्यताको इत्यादि कथनसे जो अद्वैत श्रुतिका आदित्यो यूप इत्यादि श्रुतिके साथ साम्यापादन है. वह अपास्त हुआ, शङ्कते न चेति, अनुमितिसे सिद्ध जो मिथ्यात्व तादृशमिथ्यात्वग्राहकत्व श्रुतिको होनेपर अद्वैतश्रुति अनुवादिका होगी, जैसे, अग्निहिमका भेषज है इत्यादि श्रुति प्रमाणान्तर=प्रत्यक्षगृहीत हिमनिवारक शक्तिकी अनुवादिका है, इति न च वाच्यम्=ऐसा नहीं कहना, क्यों? अपने अपने चमत्कारके अनुसार अनुमान होता है, उस अनुमानको सर्वसाधारण्य= सर्वके प्रति निर्दोषत्व न होनेसे अनुमानको श्रुति अनुवादकत्वके प्रति प्रयोजकत्वाभाव होनेसे प्रातिस्विकबुद्धिवैचित्र्यका नाम चमत्कार है, इस अर्थको तर्काप्रतिष्ठानात, ब्र० सू० अ० २ पा० १ सू० ११ इत्यत्र=इस सूत्रके पासमें वाचस्पति मिश्रने कहा है, कुशल अनुमाताओं द्वारा यत्नसे अनुमित भी अर्थ, कुशलोंकी अपेक्षा तार्किकतर अनुमाताओंसे अन्यथैव उपपादन किया जाता है, ॥ इति ॥ दृष्टान्तीभूत श्रुतिमें तो हिमनिवृत्तिकी

कारणताको वह्निमें सर्वसाधारणका प्रत्यक्ष और अर्थापत्तिसे अवसेय=निश्चेय होनेसे वैषम्य है, ततः मिथ्यात्वानुमानका वह्निशैत्यानुमानके साथ साम्य नहीं है,

इति सरलायां मिथ्यात्वानुमानस्य शैत्यानुमितिसाम्यभङ्गः ।

अथ प्रत्यक्षस्य लिङ्गाद्यवाध्यत्वे वाधकम् ।

किञ्च परीक्षितत्वेनैव प्राबल्यम्, नोपजीव्यत्वादिना, अनुमानशब्दवाध्यत्वस्य प्रत्यक्षेऽपि दर्शनात् । तथाहि–इदं रजतमितिप्रत्यक्षस्यानुमानाप्तवचनाभ्याम्, नभो नैल्य प्रत्यक्षस्य नीरूपत्वग्राहकानुमानेन "गौरोऽहमित्यस्याहमिहैवास्मि सदने जानान इत्यस्य चन्द्रप्रादेशिकत्वप्रत्यक्षस्य चानुमानागमाभ्यां । पीतः शङ्खस्तिक्तो गुडइत्यादेश्चानुमानाप्तवचनाभ्यां वाधो दृश्यते ।

अथ सरलायां प्रत्यक्षस्य लिङ्गाद्यवाध्यत्वे वाधकम् ।

किञ्च=और भी वक्तव्य है,–परीक्षितत्त्वेनही प्रमाणोंका प्राबल्य होता है, उपजीव्यत्वादिसे नहीं । क्यों ? अनुमानवाध्यत्व तथा शब्दवाध्यत्वको प्रत्यक्षमें भी देखनेसे, तथा हि= संगृहीतार्थको फोडकर दिखलाते हैं–'इदं रजतम्' इत्याकारक प्रत्यक्षका अनुमान तथा आप्तवचन इन दोनोंसे वाध देखा जाता है, नभकी नीलताके प्रत्यक्षका, नभोधर्मिकनिरूपत्वग्राहक अनुमानसे वाध देखा जाता है, 'गौरोऽहम्' इत्याकारक प्रत्यक्षका, मैं इस सदनमेंही जानता हुआ हूँ । इत्याकारक प्रत्यक्षका, और चन्द्रप्रादेशिकत्वके प्रत्यक्षका अनुमान तथा आगम इन दोनोंसे वाध होता है, पीलाशङ्ख है, तिक्त गुड़ है इत्यादि प्रत्यक्षोंकाभी अनुमान तथा आप्तवचन इन दोनोंसे वाध देखा जाता है ।

ननु–साक्षात्कारिभ्रमे साक्षात्कारिविशेषदर्शनमेव विरोधीत्यभ्युपेयम्, अन्यथा परोक्षप्रमाया अपरोक्षभ्रमनिवर्त्तकत्वोपपत्तौ वेदान्तवाक्यानामपरोक्षज्ञानजनकत्वव्युत्पादनप्रयासो व्यर्थः स्यात् इति चेन्न, नायं सर्प इत्यादिवाक्यादिना सविलासज्ञाननिवृत्त्यभावेऽपि भ्रमगताप्रमायात्वज्ञापनेन भ्रमप्रमाणत्वबुद्धेः तद्विषयसत्यताबुद्धेश्च निवर्तनात् तावता च भ्रमनिवर्त्तकत्वव्यपदेशात्, भ्रमे प्रामाण्यविभ्रमस्य तद्विषये सत्यताविभ्रमस्य च परोक्षत्वेन अपरोक्षवाधानपेक्षत्वात् नहि दुष्टकरणाजन्यत्वमवाधितविषयत्वं वा प्रामाण्यं कस्य चित्प्रत्यक्षम् । न वा सर्वदेशसर्वकालसर्वपुरुषावाध्यत्वरूपं विषयसत्यत्वम् । अतस्तयोः परोक्षप्रमावाध्यत्वमुचितमेव । तयोश्च वाधितयोः रजतादिभ्रमः स्वरूपेण सन्नपि स्वकार्याक्षमत्वादसन्निवेति वाधित इत्युच्यते इत्यनवद्यम् ।

शङ्कते नन्विति । साक्षात्कारी भ्रमके होनेपर साक्षात्कारि विशेषदर्शनही भ्रमका विरोधी है, इति=ऐसा अभ्युपेयम्=माननीय है, यदि ऐसा न मानों तो परोक्ष प्रमाको अपरोक्षभ्रमनिवर्त्तकत्वका संभव होनेपर, वेदान्तवाक्योंके अपरोक्षज्ञानजनकत्वके व्युत्पादनका आपका

प्रयास व्यर्थ होगा=वेदान्तवाक्य अपरोक्षज्ञानको उत्पन्न करते हैं इस अर्थकी सिद्धिके लिए जो आप लोगोंने प्रयास किया है वह व्यर्थ हो जायगा, अपरोक्ष भ्रमका बाध अपरोक्ष ज्ञानसेही होता है, परोक्षसे नहीं, ऐसा नियम स्थिर हो तो वह प्रयास सफल हो सकता है। इति चेन्न, क्यों ? 'नायं सर्पः' इत्यादि जो वाक्यादि उस वाक्यादिसे कार्यके सहित अज्ञानकी निवृत्तिके न होनेपर भी भ्रमगत अप्रमाणत्वके ज्ञापनसे भ्रममें प्रमाणत्वबुद्धिका और भ्रमके विषयमें सत्यताबुद्धिका निवर्त्तन होनेसे= रज्जुमें 'अयं सर्पः' इत्याकारक ज्ञान होनेके बाद 'नायं सर्पः' इस वाक्यसे सर्परूपस्वविलासके सहित रज्ज्ववच्छिन्नचेतननिष्ठअज्ञानकी निवृत्ति नहीं है, किन्तु इस वाक्यसे उक्त भ्रममें अप्रमाणत्व ज्ञापित किया जाता है, उस अप्रमाणत्वज्ञापनसे भ्रममें प्रमाणत्व-बुद्धिकी और भ्रमविषयमें सत्यताबुद्धिकी निवृत्ति होती है; तावता च=और इन दोनों कार्य्योंके करने मात्रसेही उक्तवाक्यमें भ्रमनिवर्त्तकत्वका व्यपदेश होता है, आदिपदसे यथासम्भव अनुमान तथा अर्थापत्ति लेनी चाहिए, भ्रमे=भ्रमधर्मिक जो प्रामाण्यका विभ्रम है उसको; च=और तद्विषये=भ्रमके विषयमें सत्यताकी बुद्धिको परोक्ष होनेसे, अपरोक्षबाधानपेक्षत्व है,=अपरोक्षभ्रमकी अपरोक्ष बाधसेही निवृत्ति होती है, यह नियम ठीकही है, और इस नियमके अक्षुण्ण रहनेपर भी कोई अव्यवस्था नहीं है, दुष्टकरणाजन्यत्वरूप या अबाधितविषयत्वरूप प्रामाण्य किसीको प्रत्यक्ष नहीं है। तथा सर्वदेशमें सर्वकालमें सर्वपुरुषोंसे अबाध्यत्वरूप विषयगत सत्यत्व भी किसीको प्रत्यक्ष नहीं है, अतः तयोः=उक्त भ्रमगत प्रामाण्यबुद्धि तथा भ्रमविषयमें सत्यत्वबुद्धि इन दोनोंको परोक्षप्रमाबाध्यत्व उचितही है। उक्त दोनों बुद्धिओंको बाधित हो जानेपर रजतादिभ्रम स्वरूपसे होनेपर भी स्वकार्यमें अक्षम होनेसे असत्वत् है, और असत्वत् होनेसे उसे बाधित कहा जाता है इति=अतः हमारा कथन निर्दोष है।

ननु—इदं रजतमित्यत्र सयुक्तिकं प्रत्यक्षं बाधकम् न युक्तिमात्रम् गौरोऽहमित्यत्रापि मम शरीरमितिवलवत्प्रत्यक्षमेव बाधकम् अहमिहैवास्मि सदने जानानः इति तु प्रमाणमेव जीवस्य अणुत्वादिति चेन्न, रजताभेदशरीराभेदप्रत्यक्षयोर्जाग्रतोः रजते युक्त्या प्रतिबन्धाक्षमत्वे तद्विषयप्रत्यक्षोत्पत्तेरेवानवकाशात्। नच तत्र परम्परासम्बन्धेन कर्दमलिप्ते वस्त्रे नीलं वस्त्रमितिवत् गौरोऽहम् इति गौणम्। कर्दमवस्त्रयोरिव शरीरात्मनोर्भेदानध्यवसायेन दृष्टांतदार्ष्टान्तिकयोर्वैषम्यात् तथा चात्रैक्याध्यास एवोचितः। एवञ्चोष्णं जलमित्यत्रापि यदि कर्दमवस्त्रयोरिव तोयतेजसोर्भेदग्रहः तदा गौणतैव। यदि च शरीरात्मवत् भेदानध्यवसायस्तदाऽध्यास एव, तथाच युक्तिबाध्यमेवेति तदप्युदाहरणम्। यत्त्वहमिहैवेति प्रमाणमित्युक्तम्। तन्न आत्मनः आकाशवत्सर्वगतश्च इति सर्वगतत्वेन इहैवेति व्यवच्छेदस्याप्रामाणिकत्वात् नह्येकोऽणुरेकदाव्यवहितदेशद्वयावच्छिन्नो भवति नच युगपत्प्रतीतिर्भ्रमः उत्सर्गसिद्धप्रामाण्यपरित्यागे बीजाभावात्. विस्तरेण चैतदग्रे वक्ष्यामः।

शङ्कते नन्विति। 'इदं रजतम्' इस भ्रमस्थलमें सयुक्तिक प्रत्यक्ष बाधक है, युक्तिमात्र

नहीं 'गौरोऽहम्' इत्याकारक भ्रमस्थलमें भी 'ममशरीरम्' इत्याकार बलवत् प्रत्यक्षही बाधक है, 'अहमिहैवास्मि सदने जानानः' यह ज्ञान तो प्रमाणही है, जीवको अणु होनेसे, इति चेन्न, क्यों? रजतका शुक्तिके साथ अभेदग्रहण करनेवाला–प्रत्यक्ष, शरीरका आत्माके साथ अभेदग्रहण करनेवाला प्रत्यक्ष इन दोनों प्रत्यक्षोंको, जाग्रत् होते हुए युक्तिको प्रतिबन्ध करनेमें अक्षमता होनेपर भेदविषयक प्रत्यक्षकी उत्पत्तिकाही अनवकाश होनेसे=उक्तभ्रम जबतक युक्तिसे प्रतिबद्ध न होंगे तबतक भेदग्राहि प्रत्यक्षकी उत्पत्तिही नहीं हो सकती है, अतः स्वोत्तरजायमान प्रत्यक्षसे पूर्ववृत्ति युक्तिकोही बाधकत्वव्यवहारका आस्पद मानना चाहिए। तत्र= आत्मामें परम्परासम्बन्धेन=स्वाश्रयसंयोगित्वरूप परम्परासम्बन्धसे 'गौरोऽहम्' यह गौण ज्ञान है, कर्दमलिप्तवस्त्रमें 'नीलं वस्त्रम्' इस ज्ञानवत्=काले कीचड़से लिप्तवस्त्रमें 'नीलं वस्त्रम्' ऐसा ज्ञान होता है यह ज्ञान भ्रमात्मक नहीं है क्योंकि, कालेकीचडमें रहनेवाली नीलिमाका स्वाश्रयसंयोगित्वसम्बन्धसे वस्त्रमें भान होता है, अतः इस ज्ञानको गौण कहा जाता है, स्वशब्दसे नीलिमाका ग्रहण है, तदाश्रय कर्दम है, और कर्दमसंयोगित्व वस्त्रमें है ठीक इसी रीतिसे 'गौरोहं' यहाँपर भी गौरवर्णाश्रय शरीर है, तत्संयोगित्वेन आत्मामें उसका भान होता है, अतः इस ज्ञानको गौणज्ञान मानना चाहिए; न च=यह गौणज्ञान नही है क्यों? कर्दमवस्त्रकी नाई शरीर तथा आत्माके भेदका अध्यवसाय न होनेसे दृष्टान्त तथा दार्ष्टान्तिक इन दोनोंमें वैषम्य होनेसे=दृष्टान्तप्रतियोगिक सारूप्यानुयोगिका नाम दार्ष्टान्तिक है, दृष्टान्तमें गौणता प्रयोजकभेदका अध्यवसाय है, और दार्ष्टान्तिकमें नहीं अतः दोनोंका वैषम्य है। फलतः अत्र= आत्मामें ऐक्यका अध्यास=मिथ्याज्ञानही उचित है; एवञ्च=उक्त प्रकारसे उक्तार्थको सिद्ध होनेपर, उष्णं जलम्' इत्याकाक ज्ञानस्थलमें भी यदि कर्दमवस्त्रके तुल्य तोय और तेज इन दोनोंके भेदका ग्रह=ज्ञान हो तब तो गौणताही है अर्थात् उक्त ज्ञान गौणही है, यदि शरीर तथा आत्माकी तरह भेदका अध्यवसाय न हो तो अध्यासही है=उक्तज्ञान भ्रमात्मकही है, फलतः ऐसी अवस्थामें वह ज्ञानभी युक्ति बाध्यही है, अतः वह भी युक्तिबाध्यका उदाहरण है। 'मैं यहीं परहूं' इति=यह ज्ञान प्रमाण है, इति यत्=जो यह उक्तम्=कहा है, तन्न= वह ठीक नहीं है, क्यों? आत्माको 'आकाशवत् सर्वगत और नित्य है' इति=इस श्रुतिसे सर्वगतत्व होनेसे, यहीं परहूं, इस व्यवच्छेदको अप्रामाणिक होनेसे जीव अणु है न च= नहीं है क्यों? युगपदेव=एककालमेंही पादशिरोवच्छेदेन सुखदुःखका अनुभव होनेसे एक अणु एक कालावच्छेदन व्यवहित जो देशद्वय तादृशदेशद्वयावच्छिन्न नहीं हुआ करता है, एककालावच्छेदेन देशद्वयावच्छेदेन सुखदुःखी प्रतीति भ्रम है; न च=भ्रम नहीं है क्यों स्वभावसिद्ध प्रामाण्यके परित्यागमें बीजका अभाव होनेसे इस अर्थको विस्तरसे आगे=द्वितीय परिच्छेदके अन्तिमप्रकरणमें कहेंगे।

ननु—नभोनैल्यप्रत्यक्षस्य नीरूपत्वग्राहकानुमानेन न बाधः लिङ्गाभावात् नच रूपमहत्त्वद्रव्यानारम्भकत्वादेर्लिंगत्वम्; त्वन्मते असिद्धेः निःस्पर्शत्वन्तु तमसि व्यभि-

चारि पृथिव्यादित्रयेतरभूतत्वादिचाप्रयोजकम्। तथाच नीरूपत्वग्राहकसाक्षिप्रत्यक्षमेव तद्बाधकं वाच्यम्, नच रूपग्रहणासमर्थस्य साक्षिणः कथं नीरूपत्वग्राहकत्वमिति वाच्यम्, पिशाचाग्राहकस्यापि चक्षुषस्तदभावग्राहकत्ववदुपपत्तेः परेणापि साक्षिणोऽपि रूपवत्तमोग्राहकत्वाभ्युपगमाच्च, अचाक्षुषेऽपि नभसि वायाविव चक्षुषैवरूपाभावग्रहणसंभवेन चाक्षुपप्रत्यक्षवाधात् इतिचेन्न, नीलं नभ इति प्रत्यक्षे जाग्रति रूपाभावग्रहणस्य चक्षुपा साक्षिणाचासम्भवात्। तथाच वलवतीयुक्तिरेव तद्बाधिका नचलिङ्गाभावः, चक्षुरन्वयव्यतिरेकानुविधायिरूपाविशेपितप्रतीतिविपयत्वात् रूपवदितिलिङ्गसम्भवात् नचाप्रयोजकत्वम्। नभो यदि सरूपं स्यात्तदा चक्षुरन्वयव्यतिरेकानुविधायिप्रतीतौ रूपासम्वन्धितया विपयो न स्यादिति तर्कोपपत्तेः। न चेष्टापत्तिः, सविधेरूपासम्वधितया नभसः सिद्धे सर्वजनसम्मतत्वात्।

शङ्कते नन्विति। नभमें जो नीलिमाका प्रत्यक्ष होता है उस प्रत्यक्षका निरूपत्वग्राहक अनुमानसे वाध नहीं होता है। क्यों? लिङ्गके न होनेसे; परममहत्त्वद्रव्यानारम्भकत्वादिको लिङ्गत्व है,='नभो, नीरूपं, परममहत्परिमाणात् आत्मवत्' 'नभो, नीरूपं द्रव्यानारम्भकत्वात् कालवत्' इत्यादिको लिङ्गत्व है न च=नहीं है, क्यों! तुम्हारे मतमें असिद्ध होनेसे, वेदान्तसिद्धान्तमें आकाश मायाके एकदेशमें रहता है। अतः परममहत्परिमाण आकाशमें असिद्ध है। तैसे शरीरादि–आरम्भकत्व होनेसे द्रव्यानारम्भकत्वकी भी असिद्धि है। स्पर्शशून्यत्वहेतु अन्धकारमें व्यभिचारी है=अन्धकारमें स्पर्शशून्यत्वरूपहेतु है परन्तु नीरूपत्वरूप साध्य नहीं है, पृथिव्यादित्रयेतरभूतत्वादि अप्रयोजक=व्यभिचारशङ्कानिवर्त्तक तर्कसे शून्य हैं=नभो नीरूपम्–भूम्यादित्रयेतरभूतत्वात् वायुवत्, इस अनुमानमें यदि ऐसी कोई शङ्का करे कि–भूम्यादित्रयेतर भूतत्वं स्यात् नीरूपत्वं न स्यात् तो इस व्यभिचारकी शङ्काका, निवर्त्तक कोई तर्क नहीं है, फलतः नीरूपत्वग्राहक साक्षिरूपप्रत्यक्षही नभोनैल्यप्रत्यक्षका वाधक कहना चाहिए। रूपग्रहणमें असमर्थ साक्षिको कैसे नीरूपत्वग्राहकत्व है, इति न च वाच्यम् क्यों? पिशाचके अग्राहक चक्षुको भी पिशाचाभावग्राहकत्ववत् उपपत्ति होनेसे=चक्षुसे जैसे पिशाचरूपप्रतियोगिका ज्ञान नहीं होता है फिर भी पिशाचान्योन्याभावका प्रत्यक्ष होता है. तैसेही साक्षिसे रूपप्रतियोगिका ज्ञान न होनेपर भी रूपाभावका ज्ञान हो सकता है। वेदान्तीसे साक्षीको भी रूपवत्तमोग्राहकत्वका अभ्युपगम होनेसे भी। अचाक्षुषेऽपि नभसि=चक्षुर्जन्यज्ञानके अविपयीभूत नभमें भी चक्षुसेही रूपाभावके ग्रहणका संभव होनेसे चाक्षुप प्रत्यक्षसे नभोनैल्यके प्रत्यक्षका वाध होता है। इति चेन्न 'नीलं नभः' इस प्रत्यक्षके रहते हुए रूपाभावग्रहणका साक्षी तथा चक्षुसे असंभव है, तथा च वलवती युक्तिही नभोनैल्यप्रत्यक्षकी वाधिका है, लिङ्गाभाव है। न च=नहीं है, क्यों? चक्षुके अन्वय तथा व्यतिरेकका अनुविधान करनेवाली जो रूपाविशेपित प्रतीति है तादृश प्रतीतिका विपय होनेसे रूपवत् इस लिङ्गका सम्भव होनेसे. इस अनुमानमें अप्रयोजकत्व है। न च=नहीं है, क्यों? नभ यदि सरूप होगा तो चक्षु–अन्वयव्यतिरेकानु-

[illegible] प्रतीतिमें रूपारम्भनिरूपणेन विरुद्ध न होगा, इस शङ्कामें [illegible] है, न च= नहीं है, [illegible] रूपारम्भनिरूपणा नभकी [illegible] होनेसे।

नभसः सांनिध्यकत्वायामपि चक्षुरन्वयव्यतिरेकानुविधानस्याभावेन, अन्यथा अन्धस्यापि तद्ग्रहणं स्यात्। नच पञ्चीकरणप्रक्रियाश्रयणेन नभसो नीरूपत्वं बाधितमिति वाच्यम्। त्रिवृत्करणश्रुतेः रूपप्रत्यानयनाभावात्, पञ्चीकरणपक्षेऽपि अपञ्चीकृतभूतानां प्रत्येकं यो गुणः स पञ्चीकरणाद्व्यवहारयोग्यो भवतीत्येतावन्मात्राभ्युपगमात् आकाशे रूपारम्भप्रसङ्गः। नच नायं सर्पः इत्युक्तेऽपि किमेवं कथयसि मां अपि पुनः पराङ्मुख पश्यसि? इति प्रतिवचनदर्शनाच्छब्दमात्रं रज्जुसर्पादिभ्रमनिवर्तकम्। किन्तु प्रत्यक्षमेवेति वाच्यम्, प्रतिवचनस्थले भ्रमप्रमादादिशङ्काक्रान्तत्वेन नायं सर्प इत्यादेर्दुर्बलतया न भ्रमनिवर्तकत्वम्। यत्र तु तादृक् शङ्कानाक्रान्तत्वं तत्र भ्रमनिवर्तकत्वमेव। अतएव प्रामाणिकत्वानाक्रान्ताप्तवाक्यादिश्रवणेऽपि नेदृक्प्रतिवचनम् किन्तु सिद्धवत्प्रवृत्त्यादिकमेव।

आकाशको सान्निध्यता होनेपर भी चक्षुके अन्वयव्यतिरेकका अनुविधान तो उसके नहीं है, अन्यथा अन्धको भी आकाशका ग्रहण होगा, पञ्चीकरण होता है, अतः रूपवत्तादि भागोंसे आरब्ध होनेसे नभका नीरूपत्व बाधित है, इति न च=वाच्यम्=ऐसा नहीं कहना, क्योंकि त्रिवृत्करण पृथिवी जल तेज इन तीन भूतोंका ही होता है, अतः इस पक्षमें वायु तथा आकाशमें रूपवत्ताकी प्रसक्ति नहीं। पञ्चीकरण पक्षमें भी अपञ्चीकृत भूतोंमें जिस भूतके जो गुण हैं वे=वह गुण पञ्चीकरणसे व्यवहारके योग्य होता है, एतावन्मात्रका ही अभ्युपगम होनेसे आकाशमें रूपारम्भका प्रसङ्ग नहीं है, नायं सर्पः=यह सर्प नहीं है, ऐसा कहनेपर भी क्या यों ही कहता है या उलटा भी देखता है? इत्याकारक प्रतिवचन=उत्तर देखनेसे शब्दमात्र=शब्दही रज्जुसर्पादिभ्रमनिवर्तक नहीं है, किन्तु प्रत्यक्षही निवर्तक है, इति न च वाच्यम्, क्योंकि प्रतिवचनस्थलमें भ्रमप्रमादादिशङ्कासे आक्रान्त होनेसे 'नायं सर्पः' इत्यादिको दुर्बल होनेसे भ्रमनिवर्तकत्व नहीं है, और जहाँ तादृक् शङ्कासे अनाक्रान्तत्व होता है वहाँ उक्तशब्दादिको भ्रमनिवर्तकता है ही, अतएव=उक्तस्थलमें भ्रमनिवर्तकत्वके होनेसे तादृक् शङ्कासे अनाक्रान्त पित्रादिके वचनमें ऐसा प्रश्न नहीं होता है, किन्तु सिद्धवत् प्रवृत्त्यादिकही होते हैं=ज्ञात अर्थमें जैसे प्रवृत्त्यादि होते हैं वैसे।

ज्वालैक्यप्रत्यक्षमप्येवं युक्तिबाध्यम्, नच निर्वापितारोपितस्थले स्पष्टतरभेदप्रत्यक्षबाधितमित्यन्यत्रापि दीर्घेयं न ह्रस्वेति भेदप्रत्यक्षमेवतद्बाधकमिति वाच्यम् निर्वापितारोपितादिस्थले तावदयं विचारः तत्र दीर्घेयं न ह्रस्वेति भेदप्रत्यक्षं वक्तुमशक्यम्। यैव ह्रस्वा सैवेदानीं दीर्घेति ह्रस्वत्वदीर्घत्वाभ्यामुपस्थितयोरभेदस्य साक्षात्क्रियमाणत्वात् तथाच ज्वालाप्रत्यभिज्ञा युक्तिबाध्यैव सर्वदापित्तदूषितनेत्रस्य पीतः शङ्खः इतिप्रत्यक्षे चन्द्र-

प्रादेशिकत्वप्रत्यक्षे च परोक्षातिरिक्तस्य वाधकस्य शङ्कितुमप्यशक्यत्वात् युक्त्यादिवाध्यतैव वक्तव्या, ननु सर्वत्रैवात्र प्रकारान्तरेणासत्कल्पे प्रत्यक्षे मानान्तरप्रवृत्तिः तथाहि द्विविधं ज्ञानं द्विकोटिकमेककोटिकञ्च। अन्त्यमपि द्विविधं अप्रामाण्यशङ्काकलङ्कितं तदकलङ्कितञ्च। तत्राद्यौ सर्वप्रमाणावकाशदौ, अर्थापरिच्छेदकत्वादप्रामाण्यशङ्काकलङ्कितत्वाच्च, अप्रामाण्यधीकलङ्कितत्वं च द्वेधा भवति, दुष्टकरणकत्वनिश्चयादर्थाभावनिश्चयाच्च, तथाच शैलाग्रस्थितविटपिनां प्रादेशिकत्वप्रतीतिर्दूरदोपनिवन्धना दृष्टेति, दूरतरस्थस्य चन्द्रमसः प्रादेशिकत्वप्रत्ययो दोपनिवन्धन एवेति निर्णीयते। एवमाकाशे समीपे नीरूपत्वनिश्चयाद्दूरे रूपत्वधीर्दूरदोपजन्येति प्रागेव निश्चीयते।

'सोई यह ज्वाला है' इत्याकारक जो ज्वालैक्यप्रत्यक्ष यह भी पूर्वोक्त प्रकारसे युक्तिसे बाध्य है, जहाँपर एकवार ज्वाला बुझादी गई और फिर प्रकट की गई है, ऐसा जो निर्वापितारोपित स्थल है, उस स्थलमें पूर्वोत्तर ज्वालाका जो स्पष्टतर भेद है, तादृशभेदविपयक प्रत्यक्षसे ज्वालैक्यका बाध होता है, इत्यन्यत्रापि=अतः अन्यस्थलमें भी यह दीर्घ ज्वाला है, ह्स्वा नहीं इति=इत्याकारक भेदप्रत्यक्षही ज्वालैक्यका बाधक है, इति न च वाच्यम्, क्योंकि, निर्वापित तथा आरोपितसे अतिरिक्त जो स्थल है उस स्थलमें तावत्=ही यह विचार है, तत्र=उक्तस्थलमें इयं दीर्घा न ह्स्वा इत्याकारक भेदप्रत्यक्ष कहनेके लिए अशक्य है, क्यों? जो ह्स्वा थी वही इस कालमें दीर्घा है, इति=इस प्रकारसे ह्स्वत्वदीर्घत्वरूपसे उपस्थित जो दो ज्वालायें हैं उन दोनोंके अभेदको साक्षात् क्रियमाण होनेसे; फलतः ज्वालाप्रत्यभिज्ञा युक्तिसे बाध्यही है, सर्वकालमें पित्तसे दूपित है नेत्र जिसका एवम्भूत जो पुरुप है, उस पुरुपको 'पीतः शङ्खः' इत्याकारक जो प्रत्यक्ष होता है, उस प्रत्यक्षमें और चन्द्रप्रादेशिकत्वप्रत्यक्षमें परोक्षसे अतिरिक्त बाधककी शङ्का करनेके लिए भी अशक्य होनेसे युक्तिसे बाध्यताही कहनी चाहिए, शङ्कते नन्विति। यहाँ सर्वस्थलोंमेंही प्रकारान्तरतः असत्कल्प प्रत्यक्षमें प्रमाणान्तरकी प्रवृत्ति है, तथाहि; द्विविधं=दो प्रकारका ज्ञान है, द्विकोटिक और एककोटिक अन्त्यमपि=एककोटिक ज्ञान भी दो प्रकारका होता है, अप्रामाण्यकी शङ्कासे कलङ्कित और अप्रामाण्यकी शङ्कासे अकलङ्कित तत्र=इन ज्ञानोमें आद्यौ=द्विकोटिक तथा अप्रमाण्यशङ्कासे कलङ्कित ये दोनों ज्ञान सर्व प्रमाणोंको अवकाश देनेवाले हैं क्यों? अर्थके अनिश्चायक होनेसे और अप्रामाण्यकी शङ्कासे—कलंकित होनेसे, अप्रामाण्यशङ्कासे कलङ्कितत्व दो प्रकारसे होता है, दुष्टकरणजन्यत्वके निश्चयसे और अर्थाभावके निश्चयसे, तथा च शैलके अग्रांशमें स्थित वृक्षविपयक प्रादेशिकत्वकी प्रतीति दूरतारूपदोपनिवन्धना देखी गई है, अतः अधिक दूरस्थ चन्द्रधर्मिक प्रादेशिकत्वप्रतीति दोपनिवन्धनाही है, इति=ऐसा निर्णय किया जाता है, इसी रीतिसे समीपे=समीपदेशावच्छेदेन आकाशमें नीरूपत्वका निश्चय होनेसे, दूरदेशावच्छेदेन आकाशमें रूपवत्त्वकी प्रतीति दूरतारूपदोपजन्य है, यह प्रथमही निश्चय किया जाता है।

पीतः शङ्खः इत्यादि प्रत्यक्षं तु प्राथमिकपरीक्षितप्रत्यक्षेण शङ्खो न पीत इत्य-

२५-२६

र्थाभावनिश्चयादप्रामाण्यज्ञानास्कन्दितमेवोत्पद्यते । एवं सवितृसुषिरादिप्रत्यक्षमपि तथाच चन्द्रादिप्रादेशिकत्वप्रत्यक्षं दूरादिदोषनिश्चयात् पीतः शङ्खः इत्यादिप्रत्यक्षं प्राथमिकार्था-भावनिश्चयादेव बाधितमिति पश्चादनुमानागमादिप्रसरः इति न ताभ्यां तद्बाधः । येन हि यस्य भ्रमत्वं ज्ञायते तत्तस्य बाधकमित्युच्यते नच चन्द्रप्रादेशिकत्वादिप्रत्यक्षस्यागमा-दिना भ्रमत्वं ज्ञायते, भ्रमत्वज्ञानोत्तरकालमेव तत्प्रवृत्तेः अप्रामाण्यज्ञानकलङ्कितं तु स्वार्थ-परिच्छेदकं निश्शङ्कप्रवृत्तिजननयोग्यम् यथा वह्निः उष्ण एव प्रस्तरो यजमानभिन्न एव घटः सन्नेवेत्यादितन्नान्यस्यावकाशदं नान्येन बाध्यम्. नहि अत्र प्रागिव दूरादिदो-षधीर्वा अर्थाभावनिश्चयोवा, कोट्यन्तरालम्बित्वं वास्ति । किञ्च क्वचित्प्रत्यक्षं प्रत्यक्षा-न्तरगौरवाद्युक्तिबाध्यं भवतु । क्वचिच्च लिङ्गादिकं श्रुतिगौरवाच्छ्रुत्यनुसारिप्रकरणा-दिबाध्यं भवतु । राजामात्य इव राजगौरवेण राजभृत्यबाध्यः तथापि न युक्तिमात्रस्य प्रकरणमात्रस्य वा प्रत्यक्षलिङ्गादिबाधकत्वम् । प्रत्यक्षाद्यनुसारित्वस्य सर्वत्राभावात्, नहि प्रधानभूताचमनादिपदार्थविषया आचामेदुपवीती दक्षिणाचारइत्यादि स्मृत्या पदार्थ-धर्मभूतक्रमादिविषया, वेदं कृत्वा वेदिं करोतीतिश्रुतिर्वेदकरणानन्तरं क्षुतनिमित्तकाच-मनोपनिपाते बाध्यत इत्यन्यत्रापि तथा भवितव्यम् इति चेन्मैवम्।

'पीतः शङ्ख' इत्यादि प्रत्यक्ष तो प्रथम होनेवाला जो परीक्षित प्रत्यक्ष उस प्रत्यक्षसे 'शङ्ख पीला नहीं है' इत्याकारक अर्थाभावके निश्चयसे अप्रामाण्यज्ञानसे आस्कन्दितही उत्पन्न होता है, इसी रीतिसे रविछिद्रादिका प्रत्यक्ष भी अप्रामाण्यज्ञानास्कन्दितही उत्पन्न होता है। तथा च=फलतः चन्द्रादिधर्मिकप्रादेशिकत्वप्रत्यक्ष दूरादिदोषनिश्चयसेही बाधित होता है, 'पीतः शङ्खः' इत्यादि प्रत्यक्ष प्राथमिक अर्थाभावके निश्चयसेही बाधित होता है। पश्चात् अनु-मानागमादिकी प्रवृत्ति होती है, अतः अनुमान तथा आगम इन दोनोंसे उक्त ज्ञानोंका बाध नहीं होता है। जिस प्रमाणसे जिसका भ्रमत्व ज्ञात होता है, तत्=वह प्रमाण उसका बाधक होता है, ऐसा कहा जाता है, चन्द्रप्रादेशिकत्वके प्रत्यक्षका भ्रमत्व आगमादिसे ज्ञात नहीं होता है, क्यों ? भ्रमत्वज्ञानके उत्तरकालमेंही आगमादिकी प्रवृत्ति होनेसे, अप्रामाण्यज्ञानसे अकलङ्कित ज्ञान तो स्वविषयीभूत अर्थका निश्चायक होता है, और निःशङ्कप्रवृत्तिजननयोग्य होता है, जैसे अग्नि उष्णही होता है, प्रस्तर यजमानसे भिन्नही होता है, घट सद्रूपही होता है इत्यादि, यह प्रत्यक्ष अन्यप्रमाणको अवकाश नहीं देता है, और अन्यसे बाध्य भी नहीं है, अत्र=इस ज्ञानमें पूर्वज्ञानोंके सदृश दूरतादिरूपदोषज्ञान नहीं है और अर्थाभावका निश्चय भी नहीं है, और कोट्यन्तरालम्बित्व भी नहीं है। किञ्च=और भी कुछ कहना है—कहींपर प्रत्यक्ष प्रत्यक्षान्तरके गौरवसे युक्तिबाध्य रहो, च=और कहींपर लिङ्गादि श्रुतिगौरवसे श्रुत्यनुसारि-प्रकरणादिसे बाध्य हो, राजकीय गौरवसे भृत्यबाध्य अमात्यवत् तथापि युक्तिमात्रको प्रत्यक्ष-बाधकत्व नहीं हो सकता है। और प्रकरणमात्रको लिङ्गादिबाधकत्व नहीं हो सकता है, क्यों ?

सर्वत्र=सर्वयुक्त्यादिमें प्रत्यक्षाद्यनुसारित्वका अभाव होनेसे, प्रधानभूत जो आचमनादिरूप पदार्थ हैं तादृश पदार्थविषयक जो 'आचामेदुपवीती दक्षिणाचारः' यह स्मृति है. इस स्मृतिसे पदार्थोंका धर्मभूत जो क्रमादि उस क्रमादिकी बोधिका जो 'वेदं कृत्वा वेदिं करोति' यह श्रुति है वह श्रुति बाधित होती है, अतः अन्यत्र भी तैसा होना चाहिए न हि=नहीं होना चाहिए=जैमिनीय मीमांसाके प्रथमाध्यायके तृतीयपादके चतुर्थाधिकरणमें विचार किया है, आचान्तेन भवितव्यम् उपवीतिना भवितव्यम् दक्षिणाचारेण भवितव्यम् इन स्मार्तवाक्योंका अर्थ यह है कि जो वैदिक कर्म करना चाहिए वह आचमन करके और उपवीत धारण कर और दक्षिण हाथसे करना चाहिए एक स्मृति वाक्य है, क्षुत् आचामेत् छींक आ जाय तो आचमन करना और एक श्रुति वाक्य है वेदं कृत्वा वेदिं करोति संमार्जनका साधनीभूत दर्भमुष्टिविशेषका नाम वेद है, गार्हपत्य और आहवनीय इन दोनोंके मध्यमें चतुरङ्गुल परिमित खोदी हुई भूमिका नाम वेदि है, इस श्रुतिमें बतलाया है कि वेदकरणसे अव्यवहित उत्तरकालमें वेदि करना, जहाँपर वेद करनेके बाद छींक आगई तहाँपर स्मृतिसे आचमन प्राप्त होता है, और श्रुतिसे वेदिकरण प्राप्त है तहाँ संशय हुआ कि यहांपर श्रुतिसे स्मृतिका बाध होना चाहिए, या स्मृतिसे श्रुतिका, फलतः श्रौतक्रमसे स्मार्ताचमनका बाध होना चाहिए या स्मार्त्ताचमनसे श्रौतक्रमका, पूर्वपक्ष हुआ कि—श्रुति तो स्मृतिसे प्रबल होतीही है यह तो विरोधेत्वनपेक्ष्यं स्यात् असति ह्यनुमानम्—अ० १ पा० ३ सू० ३ में कहही चुके हैं अतः श्रौत क्रमसे स्मार्त्ताचमनका बाध होनाही युक्त है, सिद्धान्त किया गया कि यहाँपर स्मृतिका विधेय आचमन पदार्थ है और श्रौतविधेय क्रम पदार्थोंका धर्म है' और धर्मसे धर्मी प्रबल होता है, अतः प्रबल पदार्थका आश्रय मिलनेसे यहाँपर स्मृतिसे श्रुतिका बाध होता है, जैसे अमात्यके सामने साधारण राजभृत्य कोई पदार्थ नहीं परन्तु कार्यविशेषवशात् राजा भृत्यपर विशेष अनुरक्त हो गया हो तो वह भृत्य राजरूप विशेष पदार्थके आश्रयणसे अमात्यको दबा सकता है, तथैव। इतिचेन्नैवम्,=ऐसा यदि कहो तो नहीं कहना, क्यों!

यतोयुक्तिरेवैषा, यद्यद्दूरस्याल्पपरिमाणज्ञानं तत् तत् दूरदोषनिबन्धनमप्रमा, शैलाग्रस्थविटप्यल्पपरिमाणज्ञानवदिदमपि तथेति। तथाचैवंरूपया युक्त्यैव चन्द्रमादेशिकत्वादिप्रत्यक्षस्य बाधं वदन् युक्त्या न प्रत्यक्षस्य बाध इत्यनेनाजैपीः परं मन्दबुद्धे मन्दाक्षं ननु परम्। एवं पीतः शङ्ख इतिप्रत्यक्षेऽपि प्राचीनार्थाभावप्रत्यक्षं न बाधकम् तस्येदानीमभावात् नच तत्स्मृतिर्बाधिका, तस्या अनुभवाद्दुर्बलत्वात्। केवलं युक्त्युत्पादन एव सोपयुज्यते, तेन युक्त्यागमाभ्यामेवोदाहृतस्थलेषु बाधः, यत्तु क्वचिद्युक्त्यादेर्बाधकत्वदर्शनमात्रेण सर्वत्र न बाधकत्वं वक्तुं शक्यम्। युक्त्यादिबाधकताया अनुस्त्रियमाणप्रत्यक्षगौरवनिबन्धनत्वादित्युक्तम्। एतदनुक्तोपालम्भनम्। नहि मया क्वचिद्दर्शनमात्रेणयुक्तेर्बाधकता, सर्वत्रोच्यते। अपितु चन्द्रप्रादेशिकत्वशङ्खपीतत्वप्रत्यक्षादौ यावदागमादेर्बाधकताप्रयोजकं दृष्टं तावत्सत्त्वेन, नच तत्रानुस्त्रियमाणं प्रत्यक्षमस्ति। यद्गौरवेण बाधकतायाम-

न्यथासिद्धिं ब्रूयाः। तस्माच्चन्द्रप्रादेशिकत्वप्रत्यक्षस्य प्रपञ्चसत्वप्रत्यक्षस्य च तुल्यवदेव वाध्यता युक्त्यागमयोश्च तुल्यवदेव वाधकतेति, नहि चन्द्रप्रादेशिकत्वप्रत्यक्षेऽपि प्रागेव दुष्टकरणत्वनिश्चयः नैकट्यस्यापि क्वचिद्दोषत्वेन सर्वत्र परिमाणज्ञानाविश्वासप्रसङ्गात् किन्त्वागमादिना वाधानन्तरमेव, तद्वत्प्रकृतेऽपि मिथ्यात्वसिद्ध्यनन्तरमेवाविद्यारूपदोषनिश्चयः तथाच सर्वात्मना साम्यम्। यत्तु दृष्टस्य वस्तुनो वलवद्दृष्टिं विना अन्यद्वाधकं नास्तीत्युक्तम्। तद्दुर्वलशब्दलिङ्गादिविषयम्। यदप्युक्तम्—विवरणे यत्राविचारपुरस्सरमेव प्रत्यक्षावभासमप्यनुमानादिना वाधितमुच्छिन्नव्यवहारं भवति। तत्र तथा भवतु। यत्र पुनः विचारपदवीमुपारूढयोर्ज्ञानयोर्वलावलचिन्तया वाधनिश्चयस्तत्र नानुमानादिना प्रत्यक्षस्य मिथ्यात्वसिद्धिरिति, तदपि गृहीतप्रामाण्यकशब्दतदुपजीव्यनुमानातिरिक्तयुक्तिविषयम् एकत्र प्रामाण्यनिश्चये वलावलचिन्ताया एवानवकाशात्।

इति प्रत्यक्षस्य लिङ्गाद्यवाध्यत्वे वाधकम्।

यतः यह युक्तिही है। जो जो दूरस्थ धर्मीमें अल्पपरिमाणक ज्ञान होता है वह वह दूरदोषनिवन्धन अप्रमा होता है जैसे शैलके अग्रभागमें स्थित विटपिधर्मिक अल्पपरिमाणका ज्ञान है, यह ज्ञान भी तैसाही है, तथा दूरदोषनिवन्धन अप्रमा है, तथा च उक्तरूप युक्तिसेही चन्द्रप्रादेशिकत्वादिके प्रत्यक्षके वाधको कहता हुआ 'युक्तिसे प्रत्यक्षका वाध नहीं है' इस कथनसे हे मन्दबुद्धे तूने मन्दाक्षम्=लज्जाको अजैषीः=जीता है न तु परम्=युक्तिवादिको नहीं। इसी रीतिसे 'पीतः शङ्खः' इस प्रत्यक्षमें भी पूर्वकालीन अर्थाभावका प्रत्यक्ष वाधक नहीं है। तस्य=पूर्वकालिक प्रत्यक्षका इस कालमें अभाव होनेसे, पूर्वकालिक अर्थाभावविषयक अनुभवजन्यस्मृति 'पीतः शङ्ख' इसकी वाधिका है, न च=नहीं है। क्यों तस्याः=स्मृतिको अनुभवसे दुर्वल होनेसे='पीतः शङ्खः' यह अनुभव है इससे स्मृति दुर्वल है, अतः इसे वाध नहीं सकती है, केवल एतद्भ्रमवाधक जो युक्ति है उस युक्तिके उत्पादनमें वह स्मृति उपयुक्त होती है ततः उदाहृतस्थलोंमें युक्ति और आगम इन दोनोंसेही यथाशक्य वाध होता है। तु=और कहींपर युक्त्यादिके वाधकत्वदर्शनमात्रसे सर्वत्र वाधकत्व कहनेके लिए शक्य नहीं है क्यों ? युक्त्यादिनिष्ठवाधकताको युक्त्यादिसे अनुस्रियमाणप्रत्यक्षगौरवनिवन्धन होनेसे इति यत् उक्तम्=ऐसा जो कहा है, सो यह अनुक्तोपालम्भन है,=ऐसा अर्थ हम लोगोंने नहीं कहा है फिर भी आपने हमको दोष दिया है, अतः इस दोषसे आपही दूषित होते हैं क्योंकि मुझसे क्वचिद्दर्शनमात्रसे युक्तिको सर्वत्र वाधकता नहीं कही जाती है, किन्तु चन्द्रप्रादेशिकत्वके शङ्खपीतत्वके प्रत्यक्षादिमें आगमादेः=आगमादिनिष्ठ यावद् वाधकताप्रयोजकरूप देखा गया है, तावद्रूपकेसद्भावसे वाधकत्व हम मानते हैं तत्र=चन्द्रप्रादेशकत्वादिप्रत्यक्षस्थलमें आगमादिसे अनुस्रियमाण प्रत्यक्ष नहीं है, जिसके गौरवसे आगमादिनिष्ठ वाधकतामें अन्यथासिद्धि कहोगे ततः चन्द्रप्रादेशिकत्वविषयक प्रत्यक्षनिष्ठ वाध्यता और प्रपञ्चसत्त्वविषयक प्रत्यक्षनिष्ठ वाध्यता तुल्य-

रूपावच्छिन्नही है और युक्ति तथा आगमनिष्ठ बाधकताभी तुल्यरूपावच्छिन्नही है । चन्द्रप्रादेशिकत्वप्रत्यक्षमें भी प्रागेव=बाधोदयसे प्रथमही दुष्टकरणत्वका निश्चय नहीं होता है, क्यों निकटताको भी कहींपर दोषता होनेपर सर्वत्र परिमाणज्ञानमें अविश्वासके प्रसङ्गसे, किन्तु आगमादिसे बाध ज्ञानके बादही दुष्टकरणकत्वका निश्चय होता है, तैसेही पक्षमें भी मिथ्यात्वसिद्धिके अनन्तरही अविद्यारूप दोषका निश्चय होता है, फलतः सर्वात्मना साम्य है, तु=और दृष्टस्यवस्तुनः=प्रत्यक्षतः ज्ञातवस्तुका बलवत् प्रत्यक्षके विना, अन्यबाधक नहीं है इति यत् उक्तम्=यह जो कहा है तत्=वह कथन दुर्बल जो शब्द तथा लिङ्गादि हैं तद्विषयक है=दुर्बल शब्दसे तथा दुर्बल लिङ्गादिसे प्रत्यक्षतः ज्ञातवस्तुका बाध नहीं होता है, और प्रबलशब्दलिङ्गादितः तो प्रत्यक्षतः ज्ञातवस्तुका भी बाध होता है, 'जहाँपर अविचार पूर्वकही प्रत्यक्षावभास भी अनुमानादिसे बाधित हुआ उच्छिन्नव्यवहार होता है, वहाँ तैसा हो फिर जहांपर विचारपदवीके ऊपर उपारूढ जो दो ज्ञान उन दोनोंकी बलाबलचिन्तासे बाधका निश्चय होता है तहाँपर अनुमानादिसे प्रत्यक्षके मिथ्यात्वकी सिद्धि नहीं होती है, इति यत् विवरणे अपि उक्तम्=यह जो विवरणमें भी कहा है तदपि=वह भी गृहीत है प्रामाण्य जिसका एवम्भूत जो शब्द तदुपजीवि=तादृशशब्दानुसारि जो अनुमान इन दोनोंसे अतिरिक्त जो युक्तियाँ है तादृश युक्ति विषयक है, क्यों ? एकत्र=एक ज्ञानमें प्रामाण्यके निश्चय हो जानेपर बलाबल विचारकोही अवकाश न होनेसे ।

इति सरलायां प्रत्यक्षस्य लिङ्गाद्यबाध्यत्वे बाधकम् ॥

अथ भाविबाधोपपत्तिः ।

एवञ्च भाविबाधनिश्चयाच्चेति यदुक्तं तदप्युपपन्नमेव, प्रकारान्तरेणावधितस्य चन्द्रप्रादेशिकत्वप्रत्यक्षस्य यथा आगमेन बाधः तथा प्रकारान्तरेणाबाधितस्य सन्घटः इत्यादि प्रत्यक्षस्य मिथ्यात्वबोधकागमेन बाध इति निर्णयात् । एवञ्च भाविबाधशङ्कामादाय यत्परैर्दूषणमुक्तं तदनुक्तोपालम्भनतया अपास्तम्, वस्तुतस्तु बाधशङ्कामादायापि प्रत्यक्षस्य बाधकतोद्धारः समीचीन एव; प्रत्यक्षशब्दयोर्बलाबलविचारात्प्राक् किमयं शब्दः उपचरितार्थः आहोस्वित् प्रत्यक्षमप्रमाणमितिशङ्कायामुभयोरबाधकत्वप्राप्तौ तात्पर्यलिङ्गैः श्रूयमाणार्थपरतया निश्चितस्यागमस्योरिपचरितार्थत्वशङ्काव्युदासेन लब्धावकाशत्वसंभवात् । नच शब्दलिङ्गयोः प्रत्यक्षाबाधकतया प्रत्यक्षान्तरस्याप्रमाणतया शङ्क्यमानत्वेनाबाधकतयाच बाधकसामान्याभावेनिश्चिते बाधशङ्का न युक्तेति वाच्यम्, शब्दलिङ्गयोः प्रत्यक्षबाधकत्वस्य व्यवस्थापितत्वात् प्रत्येकं विशेषाभावनिश्चयेऽपि विशेषाणामियत्तानवधारणदशायां संशयसम्भवात् प्रत्यक्षस्याप्रमाणतया शङ्क्यमानत्वेन शङ्काविरहोपपादनस्य असम्भवदुक्तिकत्वाच्च ।

अथ सरलायां भाविबाधोपपत्तिः ।

एवञ्च=उक्तार्थके सुस्थिर होनेपर आगे होनेवाला जो बाध है उस बाधके निश्चयसे भी सत्त्वग्राहक प्रत्यक्षसे अनुमानका बाध नहीं हो सकता है यह जो कहा है तदपि=वह भी युक्तियुक्तही है, प्रकारान्तरसे अबाधित जो चन्द्रप्रादेशिकत्वका प्रत्यक्ष है उस प्रत्यक्षका जैसे आगमसे बाध होता है, तैसे प्रकारान्तरसे अबाधित जो 'सन् घटः' इत्यादि प्रत्यक्ष है उस प्रत्यक्षका मिथ्यात्वबोधक आगमसे बाध होता है, ऐसा निर्णय है। एवञ्च=उक्तविधनिर्णय होनेपर भावि जो बाध तादृश बाधकी शङ्काको लेके जो दूसरोंनें दूषण दिया है वह अनुक्तोपालम्भनत्वेन खण्डित हुआ। वस्तुतः तो भाविबाधकी शङ्काको लेके भी प्रत्यक्षकी बाधकताका उद्धार समीचीनही है, प्रत्यक्ष तथा शब्द इन दोनोंके परस्पर बलाबलविचारसे प्रथम, क्या यह शब्द उपचरितार्थ है, या प्रत्यक्ष अप्रमाण है, ऐसी शङ्काके होनेपर दोनोंके अबाधकत्वकी प्रसक्तिपर तात्पर्यनिर्णयलिङ्गोंसे श्रूयमाणार्थपरत्वेन निश्चित आगमके उपचरितार्थत्वकी शङ्काके व्युदाससे=प्रत्यक्षके बाधकताशङ्काको लब्धावकाशत्वका सम्भव है। शब्द तथा लिङ्ग इन दोनोंको प्रत्यक्षका अबाधक होनेसे च=और प्रत्यक्षान्तरको अप्रमाणत्वेन शङ्क्यमान होनेसे अबाधकत्व होनेसे बाधकसामान्याभावके निश्चित होनेपर प्रत्यक्षके बाधकी शङ्का युक्त नहीं है=शब्द तथा लिङ्ग तो प्रत्यक्षके बाधकही नहीं है और प्रत्यक्षान्तर अप्रामाण्यकी शङ्कासे आक्रान्त है अतः वह भी बाधक नहीं हो सकता है फलतः बाधकसामान्याभावका निश्चय है क्योंकि विशेषाभावकूटका सामान्याभाव व्याप्य होता है और उक्तप्रकारसे यहाँ विशेषाभावकूट है ही, तथा च तद्व्याप्यसामान्याभाव अवश्यंभावी है, अतः प्रत्यक्षके बाधकी शङ्का युक्त नहीं है, इति न च वाच्यम् क्यों ? शब्द तथा लिङ्ग एतदुभयनिष्ठ प्रत्यक्षबाधकत्वको व्यवस्थापित होनेसे= प्रत्यक्षनिष्ठबाध्यतानिरूपित बाधकता शब्द तथा लिङ्गमें रहती है, इस अर्थकी निश्चिति और इस विषयमें आपकी शङ्काओंकी प्रध्वस्ति प्रथमही कर चुके हैं प्रत्येकविशेषाभावका निश्चय होनेपर भी विशेषोंका अवधारण जिस दशामें नहीं है उस दशामें संशयका संभव है, और प्रत्यक्षको अप्रमाणतया शङ्क्यमानत्व होनेसे शङ्काविरहका उपपादन असम्भवदुक्तिक भी है।

अथैवं जाग्रदादिज्ञानस्याप्रमात्वे स्वप्नदृष्टस्य शुक्तिरूप्यादेश्च बाधासिद्धौ कथं दृष्टान्तसिद्धिः स्यादितिचेन्न, आरोप्यसत्ताधिकसत्ताकविषयत्वेनापेक्षिकप्रमाणत्वेनान्यूनसत्ताकविषयत्वेन बाधकत्वात्। अत एव यदुक्तं बौद्धं प्रति भट्टवार्त्तिके—प्रतियोगिनि दृष्टे च जाग्रद्बोधे मृषा भवेत्। स्वप्नादिदृष्टिरस्माकं तव भेदोऽपि किंकृतः॥ इति तत्संगच्छते।

प्रकारान्तरसे द्वैती पूर्वपक्षका आरम्भ करता है, अथेति। उक्तप्रकारसे जाग्रदादिज्ञानको अप्रमात्व होनेपर स्वप्नदृष्टको तथा शुक्तिरूप्यादिके बाधकी असिद्धि होनेपर दृष्टान्तकी सिद्धि कैसे होगी=जाग्रदादिज्ञानको=जाग्रत्ज्ञानको और आदिपदलब्ध शुक्त्यादिके ज्ञानको जब प्रमा मानते हैं तब तो जाग्रत्के ज्ञानसे स्वप्नको बाध्यता सिद्ध होती है, और शुक्त्यादिके ज्ञानसे रजतको बाध्यता सिद्ध होती है, और स्वप्नादिको मिथ्यात्वानुमानमें दृष्टान्तता सिद्ध होती है,

जब जाग्रद्बोधको और शुक्त्यादिज्ञानको भी अप्रमात्व है तब तो इन ज्ञानोंको स्वप्नादिके प्रति बाधकत्व नहीं बनेगा, तथा च स्वप्नादिमें मिथ्यात्व सिद्ध न होगा, फलतः स्वप्नादिको दृष्टान्तता नहीं बनेगी इति चेन्न, क्यों आरोप्यकी सत्तासे अधिक सत्ता है जिसकी एवम्भूत जो पदार्थ तादृशपदार्थविषयकत्वप्रयुक्त जो आपेक्षिक प्रमाणत्व तादृश आपेक्षिक प्रमाणत्वेन जाग्रदादि-बोधको बाधकत्व होनेसे=प्रातिभासिक व्यावहारिक, पारमार्थिक ये जो तीन सत्तायें हैं इनमें पूर्वपूर्वकी अपेक्षा उत्तर उत्तर अधिक है, तहाँ कार्याविद्यावच्छिन्नचित्का नाम प्रातिभा-सिक सत्ता है, जो कि 'सदिदं रजतम्' इत्यादि भ्रममें रजतादिनिष्ठतया प्रतीत होती है। मूलाविद्यावच्छिन्न चित्का नाम व्यावहारिक सत्ता है, जो कि 'घटः सन्' इत्यादि ज्ञानोंमें भासित होती है, शुद्ध चिद्रूपका नाम पारमार्थिक सत्ता है, जो कि 'सदहं' इत्यादि ज्ञानोंमें प्रतीत होती है, ननु—स्वप्नमें रजतादिके अभावज्ञानसे रजतादिका बाध अनुभव सिद्ध है, परन्तु उस स्वाप्निक बाधक ज्ञानमें आरोप्यसत्ताधिकसत्ताकविषयत्वप्रयुक्त आपेक्षिक प्रमाणत्व नहीं है, क्योंकि स्वाप्निकरजताभाव भी स्वाप्निकरजतज्ञानविषयीभूत रजतवत् प्रातिभासिकही है, तहाँ कहते हैं अन्यूनेति। वा=या जाग्रदादिज्ञानको आरोप्यसत्ताकसे अन्यूनसत्ताक विष-यत्वेन बाधकत्व है, अतः स्वाप्निक बाधकज्ञानका भी संग्रह होगया, क्योंकि अन्यूनसत्ताक शब्दसे समानसत्ताक और अधिकसत्ताक दोनोंका ग्रहण होता है। अतएव=अन्यूनसत्ताक-विषयत्वेन बाधकत्वको निरुक्त हो जानेसेही भट्टवार्तिकमें प्रतियोगिनि=बाधकतायोग्य जाग्र-द्बोधे=जाग्रतकालीन ज्ञानके दृष्टे=प्रमात्वेन निश्चित होनेपर अस्माकम्=ज्ञानसे अतिरिक्त त्रिवि-धसत्ताभेदभिन्न पदार्थवादी हम लोगोंके मतमें स्वप्नादिदृष्टिः=स्वप्नकी दृष्टि और आदि शब्दसे लब्ध शुक्तिरूप्यादिविषयक प्रातिभासिक दृष्टि और घटादिविषयक व्यावहारिक दृष्टि मृषा=बाध्य होती है, तब=ज्ञानसे अतिरिक्त ज्ञेय अलीक है, कल्पितभेदसे ज्ञानही ज्ञेय है, ऐसा कहनेवाले योगाचारके मतमें और उक्तविध भी सर्व ज्ञान मिथ्या है ऐसा कहनेवाले माध्य-मिकके मतमें भेदः=स्वप्नादिज्ञान बाध्य है, जाग्रदादिज्ञान बाधक है, इत्याकारक विशेष किं-कृतः=किंप्रयुक्त है, इति यत् बौद्धं प्रति उक्तम्=यह जो बौद्धके प्रति कहा है वह सङ्गत होता है।

ननु भ्रमकालीनापरोक्षबुद्ध्यविषयविशेषविषयैव धीर्बाधिका दृष्टा, नच विश्वबा-धिका धीस्तथेति चेन्न, अधिष्ठानतत्त्वज्ञानत्वेनैव भ्रम—निवर्त्तकत्वात् विश्वनिवर्त्तकब्रह्मज्ञा-नस्य तथात्वात्। नच सप्रकारिकैवधीः भ्रमनिवर्तिका। इयं तु निष्प्रकारिका कथं तथे-तिवाच्यम्। निवर्त्तकतायां सप्रकारकत्वस्य गौरवादप्रवेशात्।

शङ्कते नन्विति। भ्रमकालीन जो अपरोक्षबुद्धि तादृश अपरोक्ष बुद्धिका अविषय जो विशेषविषय तादृश विषयविषयक जो बुद्धि वही बुद्धि बाधिका देखी गई है,=भ्रमशब्दसे 'इदं रजतम्' यह भ्रम लिया तत्समानकालीन अपरोक्ष बुद्धि अधिष्ठानीयसामानान्यरूपावगाहिनी इदमाकारा बुद्धि हुई, तादृशबुद्ध्यविषय विशेषविषय शुक्तित्व नीलपृष्ठ त्रिकोणत्वादि हैं तादृश

विषयविशेषविषयक शुक्तिरियम् इत्यादि बुद्धि है, वह रजतबुद्धिकी बाधिका है, विश्वबाधिका धी तो तथा नहीं है=शुद्धब्रह्मविषयिकाधी भ्रमकी निवर्त्तिका है, और शुद्ध सद्रूप तो सर्व भ्रमोंमें प्रतीतही होता है । क्योंकि उपहितका भान होनेपर शुद्धका भान आवश्यक है, इति चेन्न; क्यों ? अधिष्ठानतत्त्वज्ञानत्वेनही भ्रमनिवर्त्तकत्व होनेसे=अधिष्ठानका सजातीय विजातीयसे व्यवच्छिन्न, जो असाधारण स्वरूप है तादृशस्वरूपविषयकत्वेन ज्ञानको भ्रमनिवर्त्तकत्व है, और विश्वनिवर्त्तक ब्रह्मज्ञानको तथात्व है । भावार्थ यह कि अधिष्ठानप्रतियोगिकभेदसमानाधिकरणविषयतानिरूपकत्वे सति अधिष्ठानविषयतानिरूपकत्वेन ज्ञानको भ्रमनिवर्त्तकत्व है, ऐसा वेदान्तविचारजन्य शुद्धब्रह्मविषयक ज्ञान है ही, सप्रकारिकैव=विषयितासम्बन्धसे प्रकारविशिष्ट धी ही भ्रमनिवर्त्तिका होती है, इयन्तु=यह वेदान्तविचारजन्य शुद्धब्रह्मविषयिका, धी तो निष्प्रकारिका है, अतः कैसे भ्रमनिवर्त्तिका होगी, इति न च वाच्यम्, क्यों ? निवर्त्तकतामें सप्रकारत्वका गौरवप्रयुक्त अप्रवेश होनेसे ।

ननु—आवश्यकः सप्रकारकत्वनियमः व्यावृत्ताकारज्ञानत्वेनैव भ्रमनिवर्त्तकत्वात् अन्यथा अनुवृत्ताकारज्ञानादपि तन्निवृत्त्यापत्तेः इति चेत् सत्यं, व्यावृत्ताकारत्वेन ज्ञानस्य भ्रमनिवर्त्तकता, नतु विशेषप्रकारकत्वनियमः । तथाहि—व्यावृत्ताकारता हि द्वेधा भवति, विशेषणादुपलक्षणाच्च । तत्राद्ये सप्रकारकत्वनियमः द्वितीयेपि धर्मान्तरस्य यदुपलक्षणं तस्माद्व्यावृत्ताकारत्वे सप्रकारकतैव । यदि तु स्वरूपोपलक्षणाद्व्यावृत्ताकारता तदा निष्प्रकारतैव, उपलक्षणस्य तत्राप्रवेशात् स्वस्य च स्वस्मिन्नप्रकारत्वात् । नच प्रमेयत्वादिवत् स्वस्यैव स्वस्मिन् प्रकारत्वमिति वाच्यम् । त्वयापि केवलान्वयिन्येवागत्या तथाङ्गीकारात् न तु सर्वत्र । अथ, आकारप्रकारयोरभेदात् ब्रह्माकारतैव ब्रह्मबुद्धेस्तत्प्रकारतेति चेत् न, विशिष्टबुद्धेर्विशेष्याकारत्वेऽपि तदप्रकारत्वात् आकारप्रकारयोरभेदात् । आकारश्च वृत्तिनिष्ठः कश्चिद्धर्मोऽसाधारणव्यवहारहेतुरिति वक्ष्यते । तस्माद्यथाऽऽकाशपदाच्छब्दाश्रयत्वोपलक्षितधर्मिस्वरूपमात्रं ज्ञायते तद्वदत्रापि द्वितीयाभावाद्युपलक्षितब्रह्मस्वरूपज्ञानं व्यावृत्ताकारम् द्वैतनिवर्त्तकमपरोक्षम् । यथा च शब्दात्तादृग्ज्ञानसम्भवस्तथा वक्ष्यते ।

शङ्कते नन्विति । भ्रमनिवर्त्तक ज्ञानमें सप्रकारत्वका नियम आवश्यक है, क्यों ? व्यावृत्ताकारज्ञानत्वेनैव=व्यावर्त्तकधर्माश्रयविषयकत्वेनही भ्रमनिवर्तकत्व होनेसे=व्यावर्त्तक जो असाधारण धर्म तादृश धर्मका जो आश्रय तादृशआश्रयविषयकत्वेनही ज्ञानको भ्रमनिवर्त्तकत्व है, तथा च सप्रकारकत्व आवश्यक है, अन्यथा=उक्त नियमको न अङ्गीकार करनेपर अनुवृत्ताकारज्ञानाद्=साधारण धर्माश्रयत्वेन आश्रयविषयकज्ञानसे भ्रमनिवृत्तिकी आपत्ति है, इति चेत्=ऐसा यदि कहते हो तो, सत्यम्=एक प्रकारसे ठीकही कहते हो । व्यावृत्ताकारत्वेन ज्ञानको भ्रमनिवर्त्तकता है, परन्तु विशेषप्रकारकत्वका नियम नहीं तथा हि=उक्तार्थको दिखलाते हैं दो प्रकारसे ज्ञानमें व्यावृत्ताकारता होती है, विशेषणसे तथा उपलक्षणसे तत्र=इन दोनोंमेंसे

आद्ये=प्रथमपक्षमें सप्रकारकत्वका नियम है, द्वितीयेऽपि=द्वितीयपक्षमें भी धर्मान्तरस्य= उत्तृणत्वादिरूप धर्मान्तरका यदुपलक्षणम्=काकादिरूप जो उपलक्षण है, तस्मात्=उस उपलक्षणको लेके व्यावृत्ताकारता होनेपर तो, सप्रकारकता होती है=उत्तृणत्वके प्रति व्याप्यत्वेन ज्ञापक जो काकवत्त्व है उसे उपलक्षण कहते हैं उपलक्ष्यते=ज्ञायते अनेन इति इस व्युत्पत्तिसे फलतः 'देवदत्तगृहाः काकवन्तः' इस ज्ञानमें काकवत्त्वसे ज्ञापित उत्तृणत्व प्रकारीभूत होकर भासित होता है, अतः इस ज्ञानमें सप्रकारकत्वका नियम है, यदि स्वरूपोपलक्षणात्= धर्मान्तरका अनुपस्थापक जो उपलक्षण उस उपलक्षणसे ज्ञानमें व्यावृत्ताकारता हो तो उस ज्ञानमें निष्प्रकारताही रहती है=प्रकृष्टप्रकाशश्चन्द्रः इत्यादि वाक्यजन्यज्ञानमें लोकमें निष्प्रकारता देखते हैं, तत्र=उक्तस्थलमें उपलक्षणका ज्ञानके स्वरूपमें प्रवेश न होनेसे और स्वको स्वमें अप्रकार होनेसे, प्रमेयत्वादिवत् स्वकोही स्वमें प्रकारत्व है=जैसे प्रमेयत्व स्वेतरनिखिलवस्तुओंमें रहता है, और स्वमें भी रहता है तैसे स्वकोही स्वमें प्रकारता रहो; इति न च वाच्यम् क्यों ? तुमसे भी केवलान्वयी धर्ममेंही गत्यन्तराभावसे तथा अङ्गीकार होनेसे, सर्वत्र=सर्वपदार्थोंमें स्ववृत्तित्व तुमसे भी अङ्गीकृत नहीं है; प्रकारान्तरसे शङ्का की जाती है, अथेति। आकार तथा प्रकार इन दोनोंका अभेद होनेसे ब्रह्मबुद्धेः=ब्रह्मबुद्धिनिष्ठ ब्रह्माकारताही ब्रह्मप्रकारता है, इति चेन्न, क्यों ? विशिष्टबुद्धिको विशेष्याकारत्व होनेपर भी विशेष्याप्रकारकत्व है, तत्प्रयुक्तआकार-प्रकारका भेद होनेसे, आकार तो वृत्तिनिष्ठ कोई धर्म, 'पर्वतो वह्निमान्' यह अनुमिति वह्निकी ही है, घटादिकी नहीं ऐसा जो असाधारण व्यवहार उस व्यवहारका हेतु है इति वक्ष्यते= यह अर्थ आगे चलकर कहा जायगा ततः जैसे आकाशपदसे शब्दाश्रयत्वसे उपलक्षित धर्मिस्वरूप-मात्र ज्ञात होता है। तद्वत् प्रकृतमें भी द्वितीयाभावादिसे उपलक्षित ब्रह्मस्वरूपज्ञान व्यावृत्ताकार तथा द्वैतनिवर्त्तक हुआ हुआ अपरोक्ष है, च=और जिस प्रकारसे शब्दसे तादृश ज्ञानका सम्भव है उस प्रकारसे कहेंगे।

नच बाधकधियां भ्रमतद्धेत्वज्ञानदोषाध्यस्तद्रष्ट्रादीनामबाधकत्वदृष्टमिति कथं ब्रह्मज्ञानस्य तद्बाधकत्वं घटतामितिवाच्यम् यत्र हि स्वप्ने द्रष्टारं दुष्टकरणवन्तं कल्पयित्वा तस्य भ्रमं कल्पयति तत्र जागरज्ञानेन सर्वेषां निवृत्तिदर्शनात्। जाग्रद्दशायामपि यदा मनुष्यप्रतिकृतौ चैतन्यं कल्पयित्वा तत्समीपवर्तिन्यनादर्शे एव आदर्शत्वं कल्पयित्वा स्वप्रतिबिम्बमयं पश्यति इतिकल्पयति, तदा नायं चेतनो नचायमादर्श इति प्रमया सर्वनिवृत्तिदर्शनाच्च, नेयमदृष्टचरीकल्पना, तथाचेयं शुक्तिरित्याद्यधिष्ठानज्ञानं रज्ज्वां सर्पभ्रममिव द्रष्ट्राद्यध्यासं मानिवर्तयतु तत्कस्यहेतोः। तदधिष्ठानसाक्षात्कारत्वाभावात्। ब्रह्मज्ञानं तु आकाशादिप्रपञ्चभ्रममिव द्रष्टृदोषादिभ्रममपि निवर्त्तयेदेव तत्कस्य हेतोः अशेषभ्रमाधिष्ठानतत्त्वसाक्षात्कारत्वात्। एवञ्च बाधबुद्धित्वं न दोषाद्यबाधकत्वे प्रयोजकम् अपि तु तद्भ्रमाधिष्ठानतत्वसाक्षात्कारभिन्नत्वमितिद्रष्टव्यम्।

बाधक बुद्धिमें भ्रम तथा भ्रमका हेतुभूत अज्ञान और भ्रमके हेतुभूत दोष और अध्यस्तका द्रष्टा इनका अबाधकत्व नहीं देखा गया है, अतः ब्रह्मज्ञानको उक्तपदार्थोंका बाधकत्व कैसे संगत होगा, इति न च वाच्यम् क्यों ? जिस स्वप्नमें दुष्टकरणवान् द्रष्टाकी कल्पना कर उसको भ्रम कल्पना करता है,=इस दुष्टकरणक पुरुषको भ्रम हुआ है, ऐसी कल्पना करता है तत्र=उक्तस्थलमें जागरज्ञानसे सर्वकी निवृत्ति देखनेसे, जाग्रदवस्थामें भी यदा=जब मनुष्यकी मूर्तिमें चैतन्यकल्कना कर उस मूर्तिके समीपवर्ति अनादर्शमेंही आदर्शत्व कल्पना कर स्वप्रतिबिम्बको यह देखता है ऐसी कल्पना करता है, तहाँ 'नायं चेतनः' 'नच अयं आदर्शः' इस प्रमासे सर्वकी निवृत्ति देखनेसे भी यह अननुभूतचरी कल्पना नहीं है, फलतः 'इयं शुक्तिः' इत्यादि अधिष्ठानज्ञान रज्जुमें सर्पभ्रमके सदृश द्रष्ट्रादिअध्यास मत निवृत्त करो क्यों ? अधिष्ठानके साक्षात्कारत्वका, अभाव होनेसे ब्रह्मज्ञान तो आकाशादि प्रपञ्चभ्रमकी नाईं दृष्टके दोषादिभ्रमको भी निवृत्त करताही है, सो क्यों ? अशेषभ्रमोंके अधिष्ठानके तत्त्वका साक्षात्कार होनेसे, एवञ्च=इस प्रकारसे बाधबुद्धित्व दोषादिके अबाधकत्वमें प्रयोजक नहीं किन्तु तद्भ्रमाधिष्ठानतत्त्वसाक्षात्कारसे भिन्नत्वही प्रयोजक है, ऐसा समझना चाहिए=जिस जिस ज्ञानमें बाधकत्व रहता है उस उस ज्ञानमें दोषादिअबाधकत्व रहता है, ऐसा नियम नहीं किन्तु जिस ज्ञानमें तद्भ्रमाधिष्ठानतत्त्वसाक्षात्कारभिन्नत्व रहता है उसमें दोषादिअबाधकत्व रहता है।

ननु—कल्पितत्वादुक्तदृष्टान्तेन तत् बाध्यताम्, इह तु कथमितिचेत् हन्त ब्रह्मव्यतिरिक्तस्य सर्वस्य कल्पितत्वमङ्गीकुर्वतामस्माकमिदमनिष्टं महदापादितं देवानांप्रियेण। ननु साक्षिप्रत्यक्षं न बाध्यम्। दोषाजन्यत्वात्। प्रत्युत श्रुतिजनिताद्वैतज्ञानमेव बाध्यम्। तात्पर्यभ्रमरूपदोषजन्यत्वादितिचेन्न, चैतन्यस्य स्वरूपतः दोषाजन्यत्वेऽपि तदवच्छेदिकाया अविद्यावृत्तेर्दोषजन्यत्वात् तत्प्रतिफलितचैतन्यस्यैव साक्षिपदार्थत्वात्। अद्वैततात्पर्यग्रहस्य च प्रत्यक्षाद्यविरोधेन प्रमारूपतया दोषत्वाभावात् न तज्जन्यमद्वैतज्ञानं बाध्यम्। भ्रमजन्यत्वस्य विषयबाधाप्रयोजनत्वाच्च, नच बाधकतुल्यमानताकद्वैतश्रुतिसंवादिद्वैतप्रत्यक्षं कथं बाध्यमितिवाच्यम्। द्वैतस्य प्रत्यक्षादिलौकिकमानसिद्धत्वेन तद्बोधकश्रुतेरनुवादकतया, फलवदज्ञातस्वार्थतात्पर्यकाद्वैतश्रुतिसाम्याभावात्।

कल्पित होनेसे उक्त दृष्टान्तसे तत्=कल्पित बाध्य हो परन्तु पक्षमें कैसे बाध्यत्वसिद्ध होगा, इति चेत्, ब्रह्मसे व्यतिरिक्त सर्वके कल्पितत्वको अङ्गीकार करनेवाले हम लोगोंके महदनिष्टको आपादित किया इस सिद्धान्तानभिज्ञवादीने हन्तसे एक प्रकारका आनन्द सूचित किया है, शङ्कते नन्विति। साक्षिरूप प्रत्यक्ष बाध्य नहीं है क्यों ? दोषसे अजन्य होनेसे, उलटा श्रुतिसे उत्पादित अद्वैतज्ञानही बाधितव्य है, क्यों ? तात्पर्यका जो भ्रम तद्रूप दोषसे जन्य होनेसे इति चेन्न, चैतन्यको स्वरूपतः अजन्यत्व होनेपर भी साक्षिचेतनकी अवच्छेदिका जो अविद्याकी वृत्ति उसको दोषजन्यत्व होनेसे उस अविद्याकी वृत्तिमें प्रतिफलित चैतन्यकोही

साक्षिपदार्थता होनेसे । तद्विषयाकार वृत्तिमें प्रतिबिम्बित चैतन्य तत् विषयके प्रति साक्षि कहा जाता है, सुखाद्याकारवृत्ति भी अङ्गीकरणीय है वृत्तिं विना संस्कार नहीं हो सकते हैं और संस्कारोंके विना अतीत सुखादिका स्मरण अनुपपन्न है, अद्वैतमें जो वेदान्तके तात्पर्यका ग्रह=ज्ञान है उसको प्रत्यक्षादिके साथ अविरोध होनेसे प्रमारूपता है, अतः भ्रमरूप दोषत्का भाव है, और उक्तरूप दोषत्का भाव होनेसे तज्जन्य=उक्ततात्पर्यज्ञानजन्य अद्वैतज्ञान बाध्य नहीं है, भ्रमजन्यत्वको विषयबाधके प्रति अप्रयोजकत्व होनेसे भी=साध्यवत् पक्षमें भ्रमात्मक हेत्वादिज्ञानसे भी यथार्थानुमिति होती है, उस अनुमितिमें भ्रमजन्यत्व है परन्तु विषयबाध्यत्व नहीं प्रपञ्चबाधक जो अद्वैत श्रुति है उस श्रुतिके तुल्य है मानता जिसकी एवम्भूत जो द्वैत-श्रुति वह श्रुति है संवादि जिसका ऐसा जो प्रत्यक्ष है वह प्रत्यक्ष बाध्य कैसे है, इति न च वाच्यम् क्यों ? द्वैतको प्रत्यक्षादिरूप लौकिक मानोंसे सिद्ध होनेसे द्वैतबोधक श्रुतिको अनुवादकता है, अतः फलवत्तया अज्ञात जो स्वार्थ तादृशस्वार्थतात्पर्यक जो अद्वैतश्रुति उस अद्वैतश्रुतिके साथ साम्य नहीं है ।

ननु—बाधकधीबोध्यं न बाध्यम् । भेदश्च बाधकधीबोध्यः । तयास्वविषयस्य भिन्नत्वेनैव ग्रहान्नेदं रजतमितिवद्भिन्नतयोदासीनतया ग्रहणे बाधकत्वायोगादितिचेन्न, बाधकधियोभेदविषयत्वानभ्युपगमात्, इयं शुक्तिरित्येव बाधबुद्ध्युदयात् । तस्यास्तु नेदं रजतमितिभेदबुद्धिः फलम् । व्यावृत्ताकारतैव बाधकधियआवश्यकी । साच स्वरूपोपलक्षणबलान्निष्प्रकारकब्रह्मज्ञानेऽपि अस्ति इति न बाधकधीबोध्यत्वं भेदस्य, । ननु-स्वप्नविलक्षणं ॥लपर्यन्तपरीक्षायामिति चेच्छङ्का स्यात्तदा अद्वैतश्रुतिप्रत्यक्षतत्प्रामाण्यशङ्कायामद्वैतश्रुतिरपि न सिद्ध्येत् । बाधेऽपि बाधशङ्कायामबाधितबाधप्रसिद्धिरपि नस्यात् । बाधितबाधशङ्कायाश्चाबाध्यत्वाविरोधित्वात्, भाविबाधेऽपि बाधशङ्क्या तेन स्वक्रियाव्याघातश्च स्यात् शङ्काप्रत्यक्षेऽपि शङ्कायां शङ्कापि न सिद्ध्येत् एवं सर्वत्र शङ्काप्रसरात् सर्वविप्लवापत्तिरितिचेन्मैवं मंस्थाः ।

शङ्कते नन्विति । बाधकधीसे बोध्य बाध्य नहीं होता है, भेद तो बाधकधीसे बोध्य है; क्यों ? तया=बाधधीसे स्वविषयका भिन्नत्वेन ग्रहण होनेसे, 'नेदं रजतम्' इस ज्ञानको जैसे बाधकत्व है, वैसे अभिन्नतया उदासीनतया ग्रहणमें बाधकत्वका अयोग है। इति चेन्न, क्यों ? बाधकधीको कहींपर भेदविषयत्वका अनभ्युपगम है,=सर्वत्र बाधकधी भेदविषयिणीही हो ऐसा नियम नहीं है 'इयं शुक्तिः' इत्याकारकही बाध बुद्धिका उदय होनेसे तिस बाधक बुद्धिका 'नेदं रजतम्' इत्याकारक भेदबुद्धि फल है। बाधधीनिष्ठव्यावृत्ताकारताही आवश्यकी है, साच= वह व्यावृत्ताकारता तो स्वरूप रूप उपलक्षणके बलसे निष्प्रकारक ब्रह्मज्ञानमें भी है, इसरीतिसे भेदको सर्वत्र बाधकधीबोध्यत्व नहीं है, शङ्कते नन्विति । स्वप्नसे विलक्षण ऐसा जो घटादिका ज्ञान है, उसकी फलपर्यन्तपरीक्षा होनेपर भी यदि बाधकी शङ्का होगी तब तो अद्वैत

श्रुतिविषयक प्रत्यक्ष और तादृश प्रत्यक्षनिष्ठप्रामाण्य इनमें भी बाधकी शङ्का होनेपर अद्वैत-श्रुति भी सिद्ध न होगी, बाधमें भी बाधकी शङ्का होनेपर अबाधित बाधकी प्रसिद्धि भी न होगी बाधित जो बाध तादृश बाधकी शङ्काको अबाध्यत्वका अविरोधित्व होनेसे, भावी बाधमें भी बाधकी शङ्काका आपात होनेसे; अपनी क्रियाका व्याघात भी होगा=स्वसे की गई बाधकी शङ्का स्वकेही सिद्धान्तकी घातिनी हुई, शङ्काविषयक प्रत्यक्षमें भी शङ्का होनेपर शङ्का भी सिद्ध न होगी इस रीतिसे प्रत्येक विषयमें शङ्काका प्रसर होनेसे सर्वविप्लवापत्ति है,=फलतः आपका सिद्धान्त भी व्यवस्थित नहीं रहेगा, इति चेत् मैवं मस्थाः=ऐसा यदि समझते हो तो ऐसा नहीं समझना।

यतः समत्वेन प्रमाणान्तरे उपस्थितएव निश्चितेऽपि सत्त्वादौ शङ्का भवतीति ब्रूमः, नतु निश्चितमात्रे शङ्का भवतीति। तथा च यदुक्तं बौद्धंप्रति भट्टवार्तिके—"दुष्टज्ञानगृहीतार्थप्रतिषेधोऽपि युज्यते। गृहीतमात्रबाधे तु स्वपक्षो न सिद्ध्यति" इति। तदपि न विरुध्यते गृहीतमात्रबाधस्य तच्छङ्कायाश्चानुक्तेः ननु-सत्त्वादिप्रत्यक्षे क्लृप्तदूरादिदोषाभाव-निश्चये कथं शङ्कोदयः न च क्लृप्तानामभावनिश्चयेऽपि अक्लृप्तस्य शङ्का स्यात्, शब्दे क्लृप्तवक्तृनिबन्धनदोषस्य नित्यत्वेन वेदेऽभावेऽपि दोषान्तरशङ्कायाः सुवचत्वात् न च स्वाप्न-प्रत्यक्षे तद्दूराद्यभावनिश्चयेऽपि अप्रामाण्यदर्शनेन तद्वदत्रापि शङ्केति वाच्यम्। शून्यमेव तत्त्वमिति स्वाप्नवेदेपि तदाभ्रान्त्यादिदोषाभावनिश्चयेऽप्यप्रामाण्यदर्शनस्य वेदेऽपि समानत्वात्, स्वप्नवैषम्यात्तुभवस्तूभयत्रापि समान इति चेन्न, सत्त्वप्रत्यक्षाद्वैतागमयोः क्लृप्तदोषाभावनिश्चयस्य समानत्वेन प्रामाण्यशङ्कायामप्रतिबन्धकत्वात्। नहि सत्प्रतिपक्षे उभयत्र दोषाभावनिश्चयः किमत्रतत्त्वमिति जिज्ञासां प्रतिबध्नाति, विरुद्धविशेषादर्शनका-लीनस्यैव विशेषदर्शनस्य शङ्काप्रतिबन्धकत्वात्। अवच्छेदकत्रत्त्यनित्यनित्यत्वेन च साक्षिप्रत्यक्षस्य दोषजन्यत्वोक्तेः। अतएव यदुक्तं तार्किकैः—तदेव ह्याशङ्क्यते यस्मिन् नाशङ्क्यमाने स्वक्रियाव्याघातादयो दोषा न भवन्ति। उक्तं च भट्टवार्तिके बौद्धंप्रति—इहजन्मनिकेषांचिन्न तावदुपपद्यते योग्यवस्थागतानां तु न विघ्नः किं भविष्यति॥ इति।

जिससे कि समत्वेन प्रमाणान्तरके उपस्थित होनेपरही निश्चित सत्त्वादिमें भी शङ्का होती है, इति ब्रूमः=ऐसा हम कहते हैं। निश्चितमात्रमें शङ्का होती है, ऐसा नहीं कहते हैं तथा च, भट्टवार्तिकमें दुष्ट ज्ञानसे गृहीत जो अर्थ है, उसका प्रतिषेध भी युक्त होता है; गृहीत मात्र बाधे तु=गृहीतमात्र जो आत्मा तथा अनात्मा है, उसका बाध स्वीकार करनेपर तो स्वपक्षः=माध्यमिकमतमें शून्यवादरूप स्वपक्ष भी सिद्ध न होगा। अर्थात् तात्त्विकविषयक प्रमाणके विना बाध नहीं सिद्ध होता है; इति यत् बौद्धं प्रति उक्तम्=ऐसा जो बौद्धके प्रति कहा है वह भी विरुद्ध नहीं होता है, क्यों गृहीतमात्रके बाधका और गृहीतमात्रमें बाधकी शङ्काका अकथन होनेसे। शङ्कते नन्विति। सत्त्वादिप्रत्यक्षमें क्लृप्त जो दूरादि दोष उनके

अभावका निश्चय होनेसे कैसे शङ्काका उदय है, क्लृप्त दोषोंके अभावका निश्चय होनेपर भी अक्लृप्त दोषकी शङ्का होगी न च=नहीं होगी, क्यों ? शब्दमें क्लृप्त वक्तृनिबन्धन दोषका नित्यत्वेन वेदमें अभाव होनेपर भी, अन्य दोषकी शङ्काको सुवच होनेसे स्वप्नमें जायमान प्रत्यक्षमें तदा=स्वप्नमें दूरादिका अभाव निश्चय होनेपर भी अप्रामाण्य देखनेसे तद्वत्=स्वप्नवत् अत्रापि=जाग्रत्कालीन सत्त्वादिप्रत्यक्षमें भी बाधकी शङ्का है; इति न च वाच्यम् क्यों ? (शून्यमेव-तत्त्वम्) इत्याकारक स्वाप्नवेदमें भी स्वप्नमे भ्रान्त्यादिदोषाभावका निश्चय होनेपर भी अप्रामाण्य दर्शनको वेदमें भी समान होनेसे=जाग्रत्कालिक प्रत्यक्षमें दूरादि दोष क्लृप्त हैं, इनका अभाव होनेपर भी जैसे स्वप्नज्ञानमें दोषान्तरप्रयुक्त अप्रामाण्य होता है, और तादृश स्वाप्न ज्ञानके दृष्टान्तसे जाग्रत्कालीन सत्त्वादिप्रत्यक्षमें अक्लृप्तदोषकी कल्पना कर आप अप्रामाण्यकीसे शङ्का करते हैं तैसेही 'शून्यही तत्त्व है' इत्याकारक स्वाप्निकवेदमें शब्दमें दोषत्वेन क्लृप्त भ्रम प्रमादादिका अभाव होनेपर भी दोषान्तरप्रयुक्त अप्रामाण्य है, अतः स्वाप्निकवेदके दृष्टान्त प्रबोधकालीन वेदमें भी अक्लृप्तदोषकी कल्पनाकी जा सकती है। और तत्प्रयुक्त अप्रामाण्यकी शङ्का हो सकती है, फलतः आपके मतमें वेदका प्रामाण्य भी न सिद्ध होगा, और स्वप्नसे वैषम्यका अनुभव तो उभयत्र=जाग्रत्कालिक वेद तथा प्रत्यक्ष इन दोनोंमें समान है, अतः प्रामाण्य होगा तो सत्त्वादिप्रत्यक्ष और वेद इन दोनोंका होगा, नहीं होगा तो किसीका भी नहीं होगा, । इति चेन्न, ऐसा यदि कहो तो नहीं कहना, क्यों ? सत्त्वप्रत्यक्ष और अद्वैता-गम इन दोनोंमें क्लृप्तदोषाभावके निश्चयको समानत्व होनेसे, सत्प्रतिपक्षे=भावव्याप्यवत्त्वेन अभावव्याप्यवत्त्वेन एकधर्मिकनिश्चयस्थलमें उभयत्र=दोनों व्याप्तिओंमें और दोनों पक्ष-धर्मताओंमें दोषाभावका निश्चय किमत्र तत्त्वम्=इन दोनों व्याप्तिओंमें और दोनों पक्षधर्मता-ओंमें क्या अबाधित है, इत्याकारक जिज्ञासाका प्रतिबन्ध नहीं करता है। विरुद्ध जो विशेष तादृशविशेषके अदर्शनकालमें जो विशेषदर्शन तादृश विशेषदर्शनकोही शङ्काके प्रति प्रतिबन्ध-कत्व होनेसे, अवच्छेदिका वृत्तिको अनित्य होनेसे साक्षि प्रत्यक्षको दोषजन्यत्वकी उक्ति है=तथा च दोषजन्यत्वकी शङ्कासे साक्षीमें अप्रमात्वका संशय बन सकता है। तार्किकोंसे तदेवहि=वही आशङ्क्यमान होता है जिसके आशङ्क्यमान होनेपर स्वक्रियाके घातादि दोष नहीं होते हैं—इति यत् उक्तम् तदपि अत एव निरस्तम्=ऐसा जो कहा गया है वह भी उक्त कथनसेही खण्डित हुआ है, भट्टवार्तिकमें इह जन्मनि=एतज्जन्मावधिकालमें तो सर्वबाध किसीको उपपन्न नहीं होता है, और योगिओंकी अवस्थाको प्राप्त होनेवालोंको हम नहीं जानते कि क्या होगा—

तथाच प्रामाण्यस्योत्पत्तौ ज्ञप्तौ च स्वतस्त्वादिह चोत्पत्तिस्वतस्त्वापवादस्य दोषस्य ज्ञप्तिस्वतस्त्वापवादस्य बाधस्य चादर्शनात् निर्मूलशङ्कायाश्च स्वक्रियादिविरोधेनानुत्था-नाभ्युपगमात् स्वस्यप्रत्यक्षस्य प्रामाण्यमिति तदपि निरस्तम्, आगमादिप्रमाणमूलकशङ्का-या एव स्वीकारात् । रूप्यादिनिषेधस्य तु । नेदं रजतमित्यादेरद्वैतश्रुतिअनुगुणत्वेन ना-प्रामाण्यशङ्कास्कन्दनम् । अतो न वृद्धिमिच्छतो मूलहान्यापत्तिः । नापि सन्घटः इत्यादे-

नेदंरजतमित्यनेन समानयोगक्षेमता । अद्वैतश्रुतिविरोधाविरोधाभ्यां विशेषात् । अतएव सौषुप्तिकानन्दानुभवस्याप्यप्रामाण्ये कथमात्मनः आनन्दरूपता तात्त्विकी । आनन्दश्रुतेरनुभूता तात्त्विकानन्दानुवादकत्वोपपत्तेरिति अपास्तम् । आनन्दस्य ब्रह्मरूपत्वेनाद्वैत श्रुतिविरोधाभावेन तदप्रामाण्यप्रयोजकाभावात् । अतएव नानन्दश्रुतेरप्रामाण्यम् । तदुक्तं खण्डने—अत्यन्तासत्यपि ज्ञानमर्थेशब्दः करोतिहि । अबाधात्तु प्रमामत्र स्वतःप्रामाण्यनिश्चयात् ॥ इति । उक्तं च सुरेश्वरवार्त्तिके, अतोऽस्त्वबोधकत्वेन दुष्टकारणवर्जनात्, अबाधाच्च प्रमाणत्वं वस्तुन्यक्षादिवच्छ्रुतेः ॥ इति अत्रचाक्षादिवदिति निदर्शनम् व्यावहारिकप्रामाण्यमात्रेणेतिद्रष्टव्यम् । एवञ्च तात्त्विकप्रामाण्याभावेऽपि प्रत्यक्षादीनां व्यावहारिकप्रामाण्याभ्युपगमात् न स्वक्रियाव्याघातः न वा प्रत्यक्षमनुमानञ्चशास्त्रंच विविधागमाः । त्रयञ्च सुविदितंकार्यं धर्मशुद्धिमभीप्सता, इत्यादि स्मृतिविरोधः । तस्मात्सिद्धं बाधनिश्चयेन तच्छङ्कया वा प्रत्यक्षादेरद्वैतागमानुमानाद्यविरोधित्वम् ॥

इति भाविबाधोपपत्त्या प्रत्यक्षबाधोद्धारः ॥

तथा च प्रामाण्यको उत्पत्तिमें तथा ज्ञप्तिमें स्वतस्त्व होनेसे, इह च=घटादिप्रत्यक्षमें उत्पत्ति स्वस्त्वापवादक दोषके और ज्ञप्तिस्वतस्त्वापवादक बाधके अदर्शनसे और स्वक्रियाविरोधसे निर्मूल शङ्काके अनुत्थानाभ्युपगमसे स्वभावसिद्ध प्रत्यक्षका प्रामाण्य स्वस्थ है, इति यत् बौद्धं प्रति उक्तम् तदपि अतएव निरस्तम्=ऐसा जो बौद्धके प्रति कहा है, वह भी उक्त कथनसेही निरस्त हुआ । आगमादिप्रमाणमूलक—शङ्काकाही स्वीकार होनेसे 'नेदं रजतम्' इत्यादिरूप रूप्यादिके निषेधको, अद्वैत सिद्धिके अनुकूल होनेसे अप्रामाण्यकी शङ्कासे आक्रान्तत्व नहीं है, अतः वृद्धिकी इच्छा करनेवालेको मूलहानिकी आपत्ति नहीं है, 'सन् घटः' इत्यादिकी 'नेदं रजतम्' इसके साथ समान योगक्षेमता भी नहीं है, क्यों ? अद्वैतश्रुतिके साथ जो विरोध तथा अविरोध उस विरोधाविरोधसे विशेष होनेसे='नेदं रजतम्' यह अद्वैतश्रुतिके अनुगुणसे है, और 'घटः सन्' यह नहीं अतः दोनोंमें विशेषता है अतएव=अद्वैतश्रुतिविरुद्धविषयकसे अन्यज्ञानको अप्रामाण्यकी शङ्कासे अनास्कन्दित होनेसेही, सुषुप्तिमें होनेवाला जो आनन्दानुभव उस आनन्दानुभवको भी अप्रामाण्य होनेपर आत्माकी आनन्दरूपता तात्त्विकी कैसे; आनन्दश्रुतिको अनुभूत जो अतात्त्विक आनन्द तादृश आनन्दानुवादकत्वकी उपपत्तिसे वह खण्डन किया गया है, आनन्दको ब्रह्मरूपता होनेसे अद्वैतश्रुतिके साथ सौषुप्तिक अनुभवका विरोध नहीं है, सौषुप्तिकआनन्दानुभवनिष्ठअप्रामाण्यके प्रयोजकका अभाव होनेसे=श्रुतिपरम—तात्पर्यविषयीभूतार्थविरुद्धअर्थावगाही ज्ञानमें अप्रामाण्य या अप्रामाण्यकी शङ्का रहती है, श्रौत मुख्यतात्पर्यकार्थविषयक अनुभवमें नहीं सौषुप्त्यानुभवतो श्रौतआनुगुण्यविशिष्ट है, अतः इसमें अप्रामाण्यकी संभावना नहीं, अतएव=अप्रामाण्यशङ्काप्रयोजकाभावसेही आनन्दश्रुतिका अप्रामाण्य नहीं है=उक्त आनन्दानुभवमें यदि अप्रामाण्य होता तो अनुवादिनी श्रुतिमें अप्रा-

माण्यका संभव है तथा जब उक्तानुभव और आनुगुण्यसे अप्रामाण्यप्रयोजकसे शून्य है तब आनन्दश्रुतिका अप्रामाण्य नहीं है, सो कहा है खण्डनमें 'अङ्गुल्यग्रेकरिशतं विहरति' 'मम कर्णकुहरं प्रविश्य कीडति सिंहः' इत्यादि स्थलमें अत्यन्तासत्यपि=तात्कालिकवाधधीके विषयमें भी शब्द ज्ञानको उत्पन्न करता है,=शाब्दज्ञानसे भिन्न विशिष्टज्ञानमेंही अनुभवानुरोधसे बाधज्ञानको प्रतिवन्धकता है, शाब्दज्ञानमें नहीं अत्र=शब्दानन्दमें सद्वितीयत्वादिधीविषयत्वेन अत्यन्त बाधितमें भी प्रमाकोही शब्द उत्पन्न करता है, भ्रमको नहीं क्यों ? अबाधात्=प्रामाण्योत्पत्ति तथा प्रामाण्यज्ञप्ति इन दोनोंमें स्वतस्त्वके अपवादक जो सदोषत्व और बाध हैं उन दोनोंका अभाव होनेसे–अद्वैतश्रुतिमें दोषकी संभावना नहीं है, और अप्रामाण्यज्ञानसे अनास्कन्दित बाध ज्ञान भी नहीं है, स्वतःप्रामाण्येति । उत्पत्ति और ज्ञप्तिमें जो स्वतस्त्व उस स्वतस्त्वका आश्रयीभूत जो प्रामाण्य उस प्रामाण्यसे निश्चलाम्=कार्यक्षमा प्रमाको प्रमाके साथ इसका अन्वय करना चाहिए। सुरेश्वराचार्यके वार्तिकमें भी कहा है–श्रुतेः=श्रुतिका वस्तुनि=स्वविषयमें अक्षादिवत् प्रमाणत्व है क्यों ? अववोधकत्वेन=अज्ञातज्ञापकत्वसे दोषवत्कारणसे अजन्य होनेसे अबाधसे यहाँ दुष्टकारणवर्जनात् इस विशेषणसे–प्रामाण्योत्पत्तिमें स्वतस्त्वापादक दोषका वारण किया है, और अबाधात्=इस विशेषणसे प्रामाण्यज्ञप्तिमें स्वतस्त्वापवादक बाधरूप दोषका वारण किया है, यहाँपर अक्षादिवत् यह जो निदर्शनम्=दृष्टान्त है वह व्यावहारिक प्रामाण्यमात्रसे जानना चाहिए। एवञ्च=फलित यह हुआ कि प्रत्यक्षादिका तात्त्विक प्रामाण्य न होनेपर भी व्यावहारिक प्रामाण्याभ्युपगमहोनेसे स्वक्रियाव्याघात नहीं, धर्मशुद्धिमभीप्सता=धर्मतत्त्वके अववोधकी इच्छावालेसे ये तीन प्रमाण सुविदित कार्य हैं, प्रत्यक्ष तथा अनुमान शास्त्र (दर्शन) स्मृत्यादिरूप आगम; 'मनुस्मृति' इत्यादि स्मृतिकेसाथ भी विरोध नहीं। ततः बाधनिश्चयसे या बाधकी शङ्कासे प्रत्यक्षादिको अद्वैतागम तथा अनुमानादि इन दोनोंका अविरोधित्व सिद्ध हुआ=प्रपञ्चसत्यत्वावगाही प्रत्यक्षादिमें बाधका निश्चय हो गया हो या बाधकी शङ्का हो दोनों हालतोंमें प्रत्यक्षादि, अद्वैतागमका या अद्वैतसाधक अनुमानादिका विरोधी नहीं है ॥

इति सरलायां भाविवाधोपपत्त्या प्रत्यक्षवाधोद्धारः

अथ मिथ्यात्वानुमानस्यानुमानवाधोद्धारः ॥

स्यादेतत्–अध्यक्षस्य भिन्नविषयत्वादिना बाधाऽक्षमत्वेऽपि अनुमानमेव बाधकं स्यात् । तथाहि–ब्रह्मप्रमान्येन वेदान्ततात्पर्यप्रमितिजन्यज्ञानान्येन वा, मोक्षहेतुज्ञानान्येन वा, अबाध्यत्वे सत्यसत्त्वानधिकरणत्वेसति ब्रह्मान्यद्विमतं वा,सत् परमार्थसद्वा। प्रातिभासिकत्वानधिकरत्वे सत्यसद्विलक्षणत्वात् ब्रह्मवत् व्यतिरेकेण शशशृङ्गवद्वेतिचेन्न, त्वन्मते प्रातिभासिकस्य अपि असत्वेन व्यर्थविशेषणतया व्याप्यत्वासिद्धेः । असन्मतमाश्रित्य हेतूकरणे च देहात्मैक्ये ब्रह्मज्ञानेतराबाध्ये व्यभिचारात् । नहि प्रातिभासिकत्वं

ब्रह्मज्ञानेतराबाध्यत्वादन्यत्। तथाहि प्रातिभासिकस्य शुक्तिरूप्यादेरपक्षत्वायसत्यन्तमाद्यम् विशेषणत्रयं विकल्पेन पक्षे प्रक्षिप्तम्।

अथ सरलायां मिथ्यात्वानुमानस्यानुमानबाधोद्धारः।

स्यादेतत्=रहो यह, अध्यक्षस्य=प्रत्यक्षको भिन्नविषयत्वादिना=श्रुतिका तथा अनुमानका विषयीभूत जो मिथ्यात्व उस मिथ्यात्वका अविरोधी जो व्यावहारिक सत्त्व तादृश सत्त्वविषयकत्वादिरूपसे बाधमें अक्षम होनेपर भी अनुमानही मिथ्यात्वसाधक अनुमानका बाधक होगा तथाहि=दिखलाते हैं—यहाँपर ब्रह्मान्यत्=ब्रह्मभेदविशिष्ट पक्ष है, तहाँ पक्षमें और कुछ विशेष न कहनेसे असत् भी पक्षकुक्षिमें प्रविष्ट हो जाता है क्योंकि असत् ब्रह्मरूप तो नहीं है यतः ब्रह्मप्रतियोगिक भेदका अधिकरण न हो, फलतः असत्में बाध होगा अतः असत्त्वानधिकरणत्वे सति यह विशेषण दिया गया असत् असत्त्वानधिकरण नहीं किन्तु असत्त्वाधिकरणही है अतः असत्का पक्षसे बहिष्कार हुआ, यह विशेषण देनेपर भी प्रातिभासिकमें पक्षता रह गई है, क्योंकि, असत्त्वानधिकरण होके ब्रह्मभेदविशिष्ट प्रातिभासिक भी है अतः प्रातिभासिककी व्यावृत्तिके लिए सप्तम्यन्तअबाध्यत्वान्त तीन विशेषण विकल्पसे दिये हैं, जैसे कि ब्रह्मप्रमान्येनाबाध्यत्वे सति इत्यादि। ब्रह्म वृत्तिव्याप्य है इस मतकी रीतिसे प्रथम विशेषण है, इस विशेषणसे प्रातिभासिककी व्यावृत्ति होती है, क्योंकि प्रातिभासिक ब्रह्मप्रमासे अन्य शुक्त्यादिप्रमासे बाध्यही है, अबाध्य नहीं जिस पक्षमें ब्रह्म वृत्तिव्याप्य नहीं है। उस पक्षमें ब्रह्मप्रमाही अप्रसिद्ध है, तो उसका भेद तो सुतराम् अप्रसिद्ध है, और भेदके अप्रसिद्ध होनेपर भेदविशिष्टरूप ब्रह्मप्रमान्य सुतराम्—अप्रसिद्ध है, अतः प्रातिभासिककी पक्षकुक्षिनिक्षिप्तता तदवस्थ है; तहाँ वेदान्ततात्पर्यप्रमितिजन्यज्ञानान्येन वा—यह विशेषण है वेदान्ततात्पर्यप्रमाजन्य जो अविद्यातत्प्रयुक्तोच्छेदक चरमवृत्तिरूप ज्ञान है, उस ज्ञानसे अन्यज्ञान शुक्त्यादिज्ञान है। तद्बाध्यत्वही प्रातिभासिकमें है, अबाध्यत्व नहीं अतः इस विशेषणसे भी प्रातिभासिककी व्यावृत्ति हुई। अन्योन्याश्रय होनेसे तात्पर्यज्ञान शाब्दबोधका हेतु नहीं है=अर्थात् वाक्यार्थावधारण होनेपर तात्पर्यका अवधारण होता है, तात्पर्यका अवधारण होनेपर वाक्यार्थबोधरूप वाक्यार्थावधारण होता है, अतः अन्योन्याश्रय है, फलतः तात्पर्यप्रमितिजन्यज्ञान अप्रसिद्ध है और प्रतियोगिके अप्रसिद्ध होनेपर उसका भेद अप्रसिद्धतर है, और अनुयोगिरूप भेदाश्रय अप्रसिद्धतम है, तद्बाध्यत्व, आकाशोद्यानीयअरविन्दसौरभवत् है, फलतः प्रातिभासिककी व्यावृत्ति नहीं हुई अतः तृतीय विशेषण दिया, मोक्षका हेतुभूत वेदान्तविचारजन्य चरमवृत्तिरूप जो ज्ञान है तदन्यशुक्त्यादिज्ञानबाध्यत्वही प्रातिभासिकमें रहता है, अबाध्यत्व नहीं, अतः प्रातिभासिककी व्यावृत्ति है। लाघवसे पक्ष निर्देश करते हैं विमतम्=विप्रतिपत्तिविषयतावच्छेदकावच्छिन्न, यह हुआ पक्षनिर्देश, अब साध्यनिर्देश करते हैं 'सत्' या परमार्थ सत् प्रपञ्चमें व्यावहारिकसत्त्व सत्त्वेन प्रतीतिमात्र है। वस्तुतः प्रपञ्चमें कोई भी जातिका सत्त्व नहीं है अतएव प्रपञ्चका स्वरूपसे निषेध होता है, इस मतका अनुसरणकर प्रपञ्चाभिनिवेशी

द्वैतीने प्रथम साध्यका निर्देश किया है प्रपञ्चमें मायिकसत्त्व है जिसे कि व्यावहारिक सत्त्व भी कहते हैं, अतएव प्रपञ्चका पारमार्थिकत्वाकारसे निषेध होता है स्वरूपसे नहीं इस मतसे द्वितीयसाध्यका निर्देश है आगे हेतुका निर्देश है प्रातिभासिकत्वाधिकरणप्रतियोगिकभेदाधिकरणत्वे सति, असत्वाधिकरणप्रतियोगिकभेदाधिकरणत्व हेतु है। ब्रह्म दृष्टान्त है, ब्रह्ममें हेतु साध्य दोनों हैं अतः हेतुको पक्षमें देखकर साध्यकी अनुमिति होती है, 'यत्र उक्तसाध्याभावः तत्र उक्तहेत्वभावः' इस रीतिसे व्यतिरेकसे व्याप्ति दिखानी हो तो, शशशृङ्गको दृष्टान्त बनाना। इति चेन्न=ऐसा यदि कहो तो नहीं कहना, क्यों ? तुम्हारे मतमें प्रातिभासिकको भी असत्त्व होनेसे व्यर्थविशेषणप्रयुक्तव्याप्यत्वासिद्धिसे, अस्मन्मतमाश्रित्य= हम विशुद्धब्रह्मवादिओंके मतको आश्रयण कर हेतु करनेपर तो ब्रह्मज्ञानेतरसे अबाध्य देहात्म्यैक्यके न अङ्गीकार होनेपर भी हमारे मतका आश्रयकर हेतुप्रयोग करनेपर हमारे मतमें सिद्ध देहात्मैक्यमें व्यभिचारवारण आवश्यक है। ब्रह्मज्ञानेतरसे बाध्यत्वसे भिन्न प्रातिभासिकत्व नहीं है, तुमसे शुक्तिरूप्यादिरूप प्रातिभासिकको पक्षता न हो इस लिए सत्यन्त आद्यविशेषणत्रय विकल्पसे पक्षमें प्रक्षिप्त किये गये हैं।

तत्र ब्रह्म वृत्तिव्याप्यमिति मतेनाद्यम्। तदनभ्युपगमे तु शाब्दप्रमां प्रति तात्पर्यप्रमाहेतुरितिमतेन द्वितीयम्, अन्योन्याश्रयात् न सा हेतुरिति मतेन तृतीयम्। तथाच-प्रातिभासिकस्यासत्त्वानधिकरणत्वमङ्गीकृतमेव। अन्यथा तुच्छवारकासत्त्वानधिकरणत्वविशेषणेनैव तद्व्यावृत्तावेतावत्प्रयासवैयर्थ्यापत्तेः। एवञ्चदेहात्मैक्यस्यापि पक्षत्वे बाध एव। बाधे च सति पक्षविशेषणस्य पक्षत्वस्यासिद्ध्याश्रयासिद्धिरपि अतएव स्वबाधकाभिमताबाध्यस्वबाधकाभिमतबाध्यबाधाविषयत्वेसतीति, वा स्वसमानाधिकरणकर्मप्रागभावसमानकालीनज्ञानबाध्यत्वे सतीति वा विशेषणप्रक्षेपेऽपि न निस्तारः देहात्मैक्ये पूर्वोक्तदोषाव्यावृत्तेरेव।

तत्र=इन तीनों विशेषणोंमेंसे 'ब्रह्म वृत्तिव्याप्य है' इस मतसे प्रथम विशेषण है, वृत्तिव्याप्यत्वका ब्रह्ममें अभ्युपगम न होनेपर शाब्दी प्रमाके प्रति तात्पर्यप्रमा हेतु है इस मतसे द्वितीय है। 'अन्योन्याश्रय होनेसे' सा=तात्पर्यप्रमा शाब्दी प्रमाके प्रति हेतु नहीं है, इस मतसे तृतीय है. फलतः प्रातिभासिकको असत्वानधिकरणत्व तुमसे अङ्गीकृतही है, अन्यथा= यदि यों न होता तो तुच्छवारक असत्वानधिकरणत्व विशेषणसेही तद्व्यावृत्तौ=प्रातिभासिककी व्यावृत्ति होनेपर एतावत्प्रयासके वैयर्थ्यकी आपत्ति है, उक्त प्रकारसे देहात्मैक्यको भी पक्षत्व होनेपर बाध भी है, बाध होनेपर तो पक्षके विशेषणरूप पक्षत्वकी असिद्धिसे आश्रयासिद्धि भी है अत एव=व्यभिचार तथा आश्रयासिद्धिके सद्भावसेही निम्नलिखित विशेषण-त्रयके प्रक्षेपसे भी निस्तार नहीं है-स्वपदसे प्रातिभासिक शुक्तिरूप्यादि लेना चाहिए स्वबाधकाभिमत हुआ (शुक्तिरियम्) इत्यादिज्ञान, उससे अबाध्य जो दोष, अविद्यादिदोष तादृशदोषजन्य

जो ज्ञान (इदं रजतम्) इत्याद्याकारकज्ञान तादृशज्ञानविषयत्व शुक्तिरूप्यादिमें रहा, अविषयत्व व्यावहारिक मात्रमें रहा, द्वितीय विशेषणमें भी स्वशब्दसे शुक्तिरूप्यादिरूप प्रातिभासिकपदार्थोंका ग्रहण है, तद्बाधकाभिमत (नेदं रजतम्) इत्यादिज्ञान है इस ज्ञानसे अबाध्य जो बाध (नेदं रजतम्) इत्यादिबाध तद्विषयकत्व शुक्तिरूप्यादिमें है अविषयत्व व्यवहारिकमात्रमें है; तृतीयविशेषणमें स्वशब्दसे प्रपञ्चके बाधकज्ञानका ग्रहण है, तत्समानाधिकरण जो कर्म तत्समानकालीनकर्म उस कर्मका जो प्रागभाव=बाधकज्ञानकी उत्पत्तिसे पूर्ववृत्ति प्रागभाव उस प्रागभावके समानकालीन जो ज्ञान 'नेदं रजतम्' इत्याद्याकारक ज्ञान तादृशज्ञानबाध्यत्व शुक्तिरूप्यादिमें रहा, अबाध्यत्व व्यवहारिकमात्रमें रहा, प्रपञ्चबाधक ब्रह्मज्ञानकी उत्पत्तिके बाद तादृशज्ञानसमानाधिकरणअदृष्टविशेषजनककर्मजनकप्रागभाव नहीं रहता है, क्षीयन्ते चास्य कर्माणि (मुं.।२।२।८) इत्यादिप्रमाणसे देहात्म्यैक्यमें पूर्वोक्तदोषोंकी अनिवृत्तिसेही यह 'अतएव' शब्दकाही विवरण है।

यत्तु प्रथमे साध्ये व्यावहारिकसत्त्वमादाय सिद्धसाधनम्। द्वितीयसाध्ये तु वादिनः परमार्थसत्त्वविशेषणं व्यर्थं, व्यावृत्त्याप्रसिद्धेरिति। तन्न, व्यावहारिकसत्वं सत्वेन व्यवहारमात्रमितिमतेन प्रथमप्रयोगात्। अनुगतं पृथक्व्यावहारिकं सत्वमिति मते तु द्वितीयः प्रयोगः। नच विशेषणं व्यर्थम् परार्थानुमाने परं प्रति सिद्धसाधनोद्धारस्य तत्प्रयोजनत्वात् ईश्वरानुमाने जन्यकृत्यजन्यमित्यत्र जन्यत्वस्येव विश्वपरमार्थत्ववादिनं प्रति परमार्थत्वस्य प्रमेयत्वादिवदुपरञ्जकत्वेन विशेषणत्वोपपत्तेश्च। तस्मात्पूर्वोक्त एव दोषः हेतौ च व्यर्थविशेषणत्वदोषः। यद्यपि मतद्वयेऽपि अप्रामाणिकस्यापि निषेधप्रतियोगित्वाभ्युपगमादारोपितत्वेनोभयसम्मतत्वरूपस्य वाप्रतिभासमात्रशरीरत्वरूपस्य वा प्रातिभासिकत्वस्य प्रसिद्धिरस्ति, अन्यथा सिद्धान्तेऽपि मिथ्यात्वानुमाने प्रातिभासिकान्यस्यैव पक्षीकर्त्तव्यत्वाद्दोषसाम्यं स्यात्, तथापि हेतोः प्रातिभासिकत्वं विशेषणं व्यर्थम्। अनधिकरणत्वे सत्यसत्त्वानधिकरणत्वमात्रस्येव परमार्थसत्त्वसाधकत्वोपपत्तेः शुद्धमेव हि ब्रह्म दृष्टान्तत्वेनाभ्युपेयम्, धर्मवतो दृष्टान्तत्वे साध्यवैकल्यापत्तेः।

प्रथम साध्यमें व्यावहारिक सत्त्वको लेके सिद्ध साधन है, द्वितीय साध्यमें तो वादीको परमार्थत्व विशेषण व्यर्थ है, व्यावर्त्यकी अप्रसिद्धिसे, इति यत्=यह जो किसीने कहा है, तन्न,=वह ठीक नहीं है, सत्त्वेन व्यवहार=प्रतीतिमात्रका नाम है–व्यावहारिक सत्त्व, कोई स्वतन्त्रपदार्थ प्रपञ्चमें सत्त्व नहीं है, इस मतसे प्रथम प्रयोग है। प्रपञ्चका धर्मभूत अनुगत व्यावहारिक सत्त्व है, इस मतमें द्वितीय प्रयोग है, विशेषण व्यर्थ है नच=व्यर्थ नहीं है, क्यों? परार्थानुमानमें दूसरेके प्रति सिद्धसाधनोद्धारको तत्प्रयोजनत्व होनेसे, मीमांसकके प्रति ईश्वरानुमाने=अदृष्टद्वारकोपादनगोचरजन्यकृत्यजन्यं समवेतं जन्यम्, अदृष्टप्रागभावव्याप्यप्रागभावाप्रतियोगि–उपादानगोचरापरोक्षज्ञानचिकीर्षाकृतिमज्जन्यम् समवेतत्वे सति प्रागभावप्रतियोगि-

त्वात् यदेवं तदेवं यथा घटः तथा चैतत् तस्मात्तथा। इस प्रकाशस्थ ईश्वरानुमानमें 'जन्य-कृत्यजन्यम्' यहाँपर कृत्यंशमें प्रकारीभूत जन्यत्वका व्यावर्त्य मीमांसकके मतमें न होनेपर भी प्रकृतानुमानोत्थापकके प्रति प्रमेयत्ववत् उपरञ्जकत्वेन जैसे विशेपणत्व होता है. तैसेही विश्व-परमार्थत्ववादीके प्रति भी प्रमेयत्ववत् उपरञ्जकत्वेन परमार्थत्वको विशेपणत्व बन सकता है= विशेपण दो प्रकारका होता है। व्यावर्त्तक तथा उपरञ्जक इनमेंसे अव्यावर्त्तक विशेपणका नाम उपरञ्जक है, जैसे ज्ञेयदण्डवान् प्रमेयवह्निमान् इत्यादिमें ज्ञेयत्व प्रमेयत्व हैं, ज्ञेयत्व प्रमेयत्वको केवलान्वयित्व होनेसे व्यावर्त्तकत्व नहीं हैं, ततः पूर्वोक्तही दोप है, हेतौ=प्रातिभासिकत्वान-धिकरणत्वे सत्यसद्विलक्षणत्वात्, इस हेतुमें व्यर्थविशेणपत्व दोप है, यद्यपि दोनों मतमें भी अप्रामाणिकस्यापि=प्रमाणके अविपयको भी निपेधका प्रतियोगित्व अभ्युपगत होनेसे प्रसि-द्धिरस्ति=सत्यन्त पक्ष और हेतुकी प्रसिद्धि है, आरोपितत्वेनोभयसम्मतत्वरूप या प्रतिभासमात्र शरीरत्वरूप प्रातिभासिकत्वकी प्रसिद्धि है, अन्यथा सिद्धान्तमें भी मिथ्यात्वानुमानमें प्राति-भासिकसे अन्यकोही पक्षीकर्त्तव्यता होनेसे दोप साम्य है। तथापि हेतुमें प्रातिभासिकत्व विशे-पण व्यर्थ है, क्यों? अनधिकरणत्वे सति असत्त्वानधिकरणत्वकोही परमार्थसत्त्वसाधकत्वकी उपपत्ति होनेसे हि=यतः शुद्धब्रह्मही दृष्टान्तत्वेन अङ्गीकार्य है, धर्मवत्को दृष्टान्तता होनेपर साध्यवैकल्यकी आपत्ति है=शुद्ध ब्रह्ममें कोई भी धर्म नहीं रहता है, यह द्वितीय परिच्छेदमें बत-लाया जायगा, अथा च अनधिकरणत्वे सति असद्विलक्षणत्वही हेतु करना चाहिए, ऐसा करने-पर भी ब्रह्मको दृष्टान्तता बन सकती है, अतः प्रातिभासिकत्वविशेपण व्यर्थ है,=सत्त्वनिरूपित व्याप्तिग्रहमें अनुपयुक्त है।

साध्यं तु बाधाभावरूपत्वादधिकरणस्वरूपमेव न धर्मः धर्म्यतिरिक्ताभावानभ्युप-गमस्योक्तत्वात्। तथाच चक्षुस्तैजसत्वानुमाने रूपादिषु मध्ये इत्यस्यासिद्धिवारकस्यापि व्याप्तिग्रहौपयिकत्वेन व्यभिचारवारकविशेपणतुल्यतया यद्यपि सार्थकत्वम् व्यभिचारवा-रकस्यापि सार्थकत्वे व्याप्तिग्रहौपयिकत्वमात्रस्य तन्त्रत्वात्। तथापि क्षित्यादिकं न कर्तृजन्यं शरीराजन्यत्वादित्यत्र शरीरस्येव व्याप्तिग्रहानुपयोगित्वेन प्रतिभासिकत्वस्य वैयर्थ्यम् एव। आकाशादावजन्यत्वकर्तृजन्यत्वाभावयोरिव निर्धर्मके ब्रह्मण्यनधिकरणत्वपरमा-र्थसत्त्वयोर्व्याप्तिग्रहोपपत्तेः तथाचैकामसिद्धिं परिहरतो द्वितीयासिद्ध्यापत्तिः। स्वरूपा-सिद्धिपरिहारार्थं विशेपणं प्रक्षिपतो व्याप्यत्वासिद्धिरित्यर्थः। व्याप्तावनुपयोगस्य दर्शि-तत्वात्। किंच व्यावहारिकसत्वमात्रेणैवोपपत्तेः उक्तहेतोरप्रयोजकत्वम् परमार्थसत्त्वे बा-धानुपपत्तिलक्षणप्रतिकूलतर्कपराघाताच्च।

बाधाभावरूपहोनेसे साध्यतो अधिकरण स्वरूपही है, न धर्मः=अधिकरणका धर्म नहीं है,=सत्त्व बाधाभावरूपहै वह ब्रह्मरूप अधिकरणस्वरूपही है, धर्मीसे अतिरिक्ताभावानभ्युप-गमको उक्त होनेसे= धर्मीसे अतिरिक्त अभाव नहीं होता है, यह मिथ्यात्वनिरुक्तिमें बतला चुके हैं। तथाच चक्षुस्तैजसत्वानुमाने=चक्षुः तैजसं, रूपादिषु मध्ये रूपस्यैव व्यञ्जकत्वात्

प्रदीपवत्, इस अनुमानमें रूपादिपुमध्ये, इत्यस्य=असिद्धिवारकस्यापि=असिद्धिवारक इस अंशकोभी व्यभिचारवारकविशेषणके तुल्य होनेसे यद्यपि सार्थकत्व है, व्यभिचारवारककेभी सार्थकत्वमें व्याप्तिग्रहोपयिकत्वको ही तन्त्रत्व होनेसे, तथापि=क्षित्यादिकं न कर्तृजन्यं, शरीराजन्यत्वात्, इत्यत्र=इस अनुमानमें शरीरवत् व्याप्तिग्रहमें अनुपयोगित्व होनेसे प्रातिभासिकत्वका वैयर्थ्यही है, आकाशादिमें अजन्यत्वकर्तृजन्यत्वाभावकी व्याप्तिका ग्रहण जैसे होता है तैसेही निर्धर्मकब्रह्ममें अनधिकरणत्वपारमार्थिकसत्त्वकी व्याप्तिग्रहकी उपपत्ति हो सकती है, फलतः एक असिद्धिका परिहार करते हुएको द्वितीयासिद्धिकी आपत्ति है, अर्थात् स्वरूपासिद्धिके परिहारके लिए विशेषणका प्रक्षेप करते हुएको व्याप्यत्वासिद्धिकी आपत्ति है=क्षित्यादिकं न कर्तृजन्यं अजन्यत्वात् इत्याकारक हेतु करनेमें दृष्टान्तमें हेतु स्वरूपासिद्ध होता है, क्योंकि पक्षमें जन्यत्व प्रत्यक्षसिद्ध है अजन्यत्व नहीं अतः हेतु स्वरूपसे असिद्ध है 'शरीर' को जोडदेनेसे स्वरूपासिद्धिका वारण होता है, परन्तु व्याप्यत्वासिद्धि आजाती है, व्याप्यत्वनाम व्याप्तिका है, वह स्वसमानाधिकरण व्याप्यतावच्छेदक धर्मान्तरसे अघटित व्याप्यतावच्छेदकावच्छेदेन गृहीत होती है, अत एव नीलधूमत्वावच्छेदेन वह्निनिरूपित व्याप्तिका ग्रहण नहीं होता है, क्योंकि वह स्वसमानाधिकरणव्याप्यतावच्छेदकधर्मान्तरसे अघटित नहीं है किन्तु घटितही है, स्वशब्दसे लिया नीलधूमत्व तत्समानाधिकरणव्याप्यतावच्छेदक धर्म हुआ शुद्धधूमत्व तद्घटित ही है नीलधूमत्व, दृष्टान्तमें भी स्वणदसे लिया शरीराजन्यत्व तत्समानाधिकरण व्यापरतावच्छेदक धर्म हुआ अजन्यत्व उस अजन्यत्वसे शरीराजन्यत्व घटितही है, अघटित नहीं अतः शरीराजन्यत्वावच्छेदेन कर्तृजन्यत्वाभावनिरूपित व्याप्तिका ग्रहण नहीं होता है, प्रकृतमें अनधिकरणत्वे सति असद्विलक्षणत्वात् इतनाही यदि हेतु करें तो स्वरूपासिद्धि है, क्योंकि पक्षीभूत प्रपञ्चमें अनधिकरणत्व नहीं है, किन्तु बहुविधधर्मनिरूपित अधिकरणत्वही है, यदि इस स्वरूपासिद्धिकी व्यावृत्त्यर्थ (प्रातिभासिकत्व) विशेषण दें तो व्याप्यत्वासिद्धि है। स्वशब्दसे लिया प्रातिभासिकत्वानधिकरणत्व तत्समानाधिकरणव्याप्यतावच्छेदक धर्मान्तर हुआ अनधिकरणत्व उससे अघटित प्रातिभासिकत्वानधिकरणत्व नहीं हुआ किन्तु घटितही हुआ, अतः प्रातिभासिकत्वानधिकरणत्वावच्छेदेन पारमार्थिकसत्त्वनिरूपित व्याप्तिका ग्रहण नहीं हो सकता है=उक्त विशेषणोंके विनाभी उक्त साध्यनिरूपित व्याप्तिओंका ग्रहण विशेषणविनिर्मुक्तव्याप्यतावच्छेदकावच्छेदेन हो सकता है, अतः उक्त विशेषणसे घटितको गौरवसे व्याप्यतावच्छेदकता नहीं मानी जा सकती है, चक्षुस्तैजसत्वानुमानमें तो 'रूपादिपु मध्ये' इस स्वरूपासिद्धिवारक विशेषणको न देनेसे व्याप्तिग्रहही नहीं होसकता है, अतः व्याप्तिग्राहकत्वरूपधर्मसे व्यभिचारवारकविशेषणप्रतियोगिकसारूप्यानुयोगिकत्वेन प्रकृतविशेषणोंसे उसमें विलक्षणता है, व्याप्तिग्रहणमें इसविशेषणका अनुपयोग दिखला चुके है। किञ्च व्यावहारिक सत्त्वसेही उक्त हेतुकी उपपत्ति होनेसे परमार्थसत्त्वके प्रति उक्त-हेतु को अप्रयोजकत्व है,='पक्षे उक्तहेतुः स्यात् परमार्थसत्त्वं न स्यात्' इत्याकारक यदि व्यभिचारशङ्का हो तो इसका वारक कोई तर्क नहीं है, प्रपञ्चमें परमार्थसत्त्वमें तो 'यस्मिन्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः' तत्र को मोहः कः शोकः

एकत्वमनु–पश्यतः (ई. ३।५।७) इसश्रुतिसे अनुवादित जो बाध उस बाधकी अनुपपत्ति-लक्षण प्रतिकूल–तर्कका पराघात है फलतः प्रपञ्चमिथ्यात्वसाधकानुमानमें व्यभिचारशङ्का-निवर्त्तक तर्क है और प्रपञ्चमें तात्त्विकसत्त्वसाधक अनुमानमें व्यभिचारशङ्कावारक तर्क नहीं है अतः समानबलताका अभाव होनेसे अस्मदीय अनुमानसे भवदीय अनुमानका बाध होता है।

ननु—ब्रह्मण्यसत्प्रातिभासिकव्यावृत्तिरूपं हेतुं प्रति व्यावर्त्तकतया प्रयोजकत्वेन परमार्थसत्त्वं क्लृप्तम्, अपृथिवीव्यावृत्तिंप्रति पृथिवीत्वस्येवासद्व्यावृत्तिंप्रति तद्विरुद्धसत्त्वस्यैव प्रयोजकत्वात् ज्ञानत्वानन्दत्वादिकं तु न तत्प्रयोजकम्। साक्षादसत्त्वाविरोधित्वात्, प्रपञ्चे तदभावाच्च, तथाच, ब्रह्मविश्वसाधारणं परमार्थसत्त्वमेवतत्प्रयोजकम्, नच विश्वमिथ्यात्वात् परमार्थसत्त्वमपि न विश्वसाधारणम्, ज्ञानत्वानन्दत्वादिवदिति वाच्यम्; अन्योन्याश्रयपत्तेः इति चेत्, अयुक्तमेतत्, नहिप्रातिभासिकासतोरेका व्यावृत्तिरुभयीवा समव्याप्ता; येनैक-प्रयोजकप्रयोज्या भवेत्। किन्तु प्रातिभासिकव्यावृत्तिप्रयोजकं ब्रह्मविश्वासत्साधारणमेव वक्तव्यम्। असत्यपि प्रातिभासिकत्वाभावात्। एवम् असद्व्यावृत्तावपि प्रयोजकं ब्रह्मवि-श्वप्रतिभासिकसाधारणमेव वक्तव्यम्, प्रातिभासिकेऽप्यसत्वाभावात् तथा च तत्प्रयोजक-द्वयसमावेशादेव ब्रह्मण्युभयव्यावृत्त्युपपत्तौ नीलत्वघटत्वरूपावच्छेदकद्वयसमावेशोपपन्ननी-लघटत्ववन्नातिरिक्तप्रयोजककल्पनायामस्ति किञ्चिन्मानमिति कृतबुद्धय एव विदाङ्कुर्वन्तु।

शङ्कते नन्विति। ब्रह्ममें असत् तथा प्रातिभासिक इन दोनोंकी व्यावृत्तिरूप जो हेतु है, उस हेतुके प्रति व्यावर्त्तकतया अनुमापकत्वेन प्रयोजकतया परमार्थसत्त्व क्लृप्त है=प्रपञ्च, सत्यत्व-साधक प्रयोगमें प्रातिभासिकत्वानधिकरणत्वे सति असत्वानधिकरणत्व हेतु किया गया है, यह हेतु असत् तथा प्रातिभासिक इन दोनोंकी व्यावृत्ति रूप है व्यावृत्ति शब्दके चार अर्थ प्रसिद्ध हैं, भेद, अत्यन्ताभाव, इतरभेदानुमिति, प्रयोजन, व्यावृत्तिर्व्यवहारोवा लक्षणस्य प्रयोजनम्। यहाँ-पर व्यावृत्तिशब्दका अर्थ इतरभेदानुमिति है, 'एतद्विशेषणदानस्य व्यावृत्तिः कथ्यताम्' यहाँपर व्यावृत्तिशब्दका अर्थ प्रयोजन है, अवशिष्ट अर्थोंमें इसका विशेष प्रयोग होता है, अतः उदाह-रण देनेकी आवश्यकता नहीं, प्रकृतमें व्यावृत्तिशब्दका अर्थ भेद है, फलतः परमार्थसत्त्वसाधक हेतुका अर्थ यह है कि प्रातिभासिकत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदवत्त्वे सति असत्त्वावच्छिन्नप्रति-योगिताकभेदवत्त्वम्, तथा च प्रकृतहेतु असत्प्रातिभासिककी व्यावृत्तिरूप है, यह हेतु ब्रह्ममें है और परमार्थसत्त्व भी ब्रह्ममें है, अतः परमार्थसत्त्वको इस हेतुके प्रति अनुमापकत्वेन प्रयोज-कत्व है, अनुमितिका आकार ऐसा होगा, ब्रह्म उक्तभेदद्वयवत् परमार्थसत्त्वात् यन्नैवं तन्नैवम् यथा असदादिकं। फलतः उक्त हेतुके प्रति परमार्थसत्त्व प्रयोजकत्वेन क्लृप्त है, क्यों ? अपृथिवीकी व्या-वृत्तिके प्रति पृथिवीत्ववत् असत्‌की व्यावृत्तिके प्रति तद्विरुद्ध=असद्विरुद्ध सत्त्वकोही प्रयोजकत्व होनेसे=पृथिवीतरकी व्यावृत्तिके प्रति जैसे पृथिवीत्व–प्रयोजक है, तैसेही असत्‌की व्यावृत्तिके प्रति असद्विरुद्धसत्त्वही प्रयोजक है, ब्रह्मवृत्तिज्ञानत्व आनन्दत्वादिक वो तत्प्रयोजक=असत्प्राति-भासिकव्यावृत्तिके प्रयोजक नहीं हो सकते हैं, क्यों ? उनको साक्षात् असत्वका अविरोधित्व

होनेसे और प्रपञ्चमें ज्ञानत्वादिकके अभावसे भी। फलतः ब्रह्म तथा विश्व एतदुभयसाधारण परमार्थसत्त्वही उक्तव्यावृत्तिका प्रयोजक है; विश्वको मिथ्यात्व होनेसे परमार्थसत्त्व भी विश्व-साधारण नहीं है। ज्ञानत्व-आनन्दत्वादिवत् इति न च वाच्यम्=ऐसा नहीं कहना; क्यों? अन्योन्याश्रयकी आपत्तिसे=विश्वमें मिथ्यात्व सिद्ध होनेपर व्यावहारिकसत्वकी सिद्धि है, और व्यावहारिकसत्त्वसिद्धिसेही हेतुकी उभयवृत्ति होनेसे परमार्थसत्त्वके प्रति हेतुके अप्रयोजकत्वकी सिद्धि है तथा च विश्वमें मिथ्यात्वसिद्धिसे हेतुमें अप्रयोजकत्व सिद्ध होता है, और हेतुमें अप्रयोजकत्वकी सिद्धिसे अनुमानमें दुष्टत्वसिद्ध होता है, और अनुमानमें दुष्टत्वसिद्धिसे उसमें बाधकत्वाभाव सिद्ध होता है, और बाधकत्वाभावसे मिथ्यात्व सिद्ध होता है, तथा च अप्र-योजकत्वाधीन मिथ्यात्वसिद्धि है, और मिथ्यात्वसिद्ध्यधीन अप्रयोजकत्वकी सिद्धि है, अतः अन्योन्याश्रय है, इति चेत्=ऐसा यदि कहो तो यह कथन अयुक्त है। क्योंकि प्रातिभासिक तथा असत् इन दोनोंकी एकही व्यावृत्ति नहीं हैं, या समव्याप्त उभयी नहीं है=परस्पर व्याप्त होके परस्पर व्यापकरूप दो व्यावृत्तियाँ भी नहीं है, यतः वह व्यावृत्ति एक प्रयोजकसे प्रयोज्य हो, किन्तु प्रातिभासिकप्रतियोगिकव्यावृत्तिका प्रयोजक ब्रह्म तथा विश्व एवं असत् एत-त्त्रितयसाधारण कहना चाहिए, असत्में भी प्रातिभासिकत्वका अभाव होनेसे=असत्में भी प्रातिभासिकत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताक भेद रहनेसे। इसी रीतिसे असत्प्रतियोगिक व्यावृत्तिमें भी ब्रह्म तथा विश्व एवं प्रातिभासिक एतत्त्रितयसाधारण प्रयोजक कहना चाहिए प्रातिभासि-कमें भी असत्त्वका अभाव होनेसे=प्रातिभासिकमें भी-असत्त्वावच्छिन्नप्रतियोगिताक भेद रहनेसे, फलतः उक्त प्रयोजकद्वयके समावेशसेही ब्रह्ममें दोनोंकी व्यावृत्तिकी उपपत्ति होनेपर नीलत्वघटत्वरूपअवच्छेदकद्वयके समावेशसे उपपन्न नीलघटत्ववत् अतिरिक्तप्रयोजककल्पनामें कुछ भी प्रमाण नहीं है, इस अर्थको सूक्ष्मदर्शी लोगही समझें=प्रयोजकद्वयसमावेशात्= उक्तप्रयोजकद्वयके साथ समावेश-सामानाधिकरण्य है जिसका, ऐसा जो ब्रह्मविश्वान्यतरत्व उससेही उभयव्यावृत्तिकी उपपत्ति है, दृष्टान्तका भावार्थ यह है कि जैसे कपालीयनीलरूपादि-घटितसामग्रीनिष्ठजनकत्वनिरूपित जन्यतावच्छेदक नीलत्व है, दण्डादिघटितसामग्रीनिष्ठ-जनकत्वनिरूपितजन्यतावच्छेदक घटत्व है। यहांपर नीलत्वावच्छिन्नघटत्वावच्छिन्नजन्यता-निरूपितजनकताश्रयीभूत उक्तद्विविधसामग्रीसे अतिरिक्त नीलघटत्वावच्छिन्नजन्यतानिरूपित-जनकताश्रयीभूत कोई स्वतन्त्रसामग्री नहीं मानी जाती है, किन्तु क्लृप्तसामग्रीद्वयसेही नीलघटकी उत्पत्ति सिद्ध है, तैसे क्लृप्त जो ब्रह्मविश्वान्यतरत्व इससे उभयव्यावृत्तिकी अनुमिति हो सकती है, उसके लिए ब्रह्म विश्व इन दोनोंमें एक जातीय सत्त्वके कल्पनकी आवश्यकता नहीं, अन्यथा तुच्छ तथा ब्रह्म इन दोनोंमें रहनेवाली जो विश्वकी व्यावृत्ति है. तत्प्रयोजकत्वेन दोनोंमें असत्वकी कल्पना करनी पडेगी, यदि कहो कि यहाँपर, असद्ब्रह्मान्यतरत्व व्यावृत्तिका प्रयोजक है। तो यह समाधान प्रकृतमें भी दण्डवारित नहीं है।

नित्यत्वश्चोपाधिः तुच्छप्रातिभासिकयोर्नित्यत्वव्यतिरेके साध्यव्यतिरेकदर्शनात्। अतएवानिषेध्यत्वेन प्रमां प्रतिसाक्षाद्विषयत्वादित्यपि न हेतुः। किञ्च प्रमात्वं तद्वति तत्प्र-

कारकत्वं तत्त्वावेदकत्वं वा, । आद्ये दृष्टान्तस्य साधनवैकल्यम् । नहि परमार्थसतः शुद्धस्य ब्रह्मणः सप्रकारकज्ञानविषयत्वम् नच धर्मवतोदृष्टान्ततेत्युक्तम् तस्य पक्षकुक्षिनिक्षिप्तत्वेन निश्चितसाध्यत्वाभावात् । द्वितीये तत्त्वावदेकस्य अबाधितविषयत्वरूपत्वेन साध्याविशेषपर्यवसानाद्धेतुग्रहे सिद्धसाधनम् । हेत्वग्रहे तु स्वरूपासिद्धिः । यत्तु प्रमाविषयत्वमात्रेणैव परमार्थत्वोपपत्तौ विशेषणे व्यर्थे इति । तन्न पुरोवर्त्तिनं रजततया जानामीत्याद्यनुव्यवसायरूपप्रमाविषये प्रतिभासिके व्यभिचारवारकत्वात् साक्षात्पदस्य तत्रैव च मिथ्यात्वप्रमितेः साक्षाद्विषये व्यभिचारवारकत्वात् अनिषेध्यत्वेनेत्यस्य । नहि अनुव्यवसायमिथ्यात्वप्रमे भ्रमे भवतः नाप्यानिषेध्यत्वेनेश्वरं प्रति साक्षादपरोक्षत्वं हेतुः सत्यत्वसिद्धि विना अनिषेध्यत्वेनत्यस्यासिद्धेः । तथाचान्योन्याश्रयः नचेश्वरज्ञानविषयस्य प्रपञ्चस्य मिथ्यात्वे तस्य भ्रान्तत्वप्रसंगः । मिथ्याभूतस्य मिथ्यात्वेनैव ग्रहणात् ऐन्द्रजालिकवद्भ्रान्तत्वायोगात् । अन्यथा स्वविषयकभ्रमज्ञातृत्वेन भ्रान्तत्वस्य दुर्वारत्वापत्तेः ।

च=और नित्यत्वम्=अविनाशित्व उपाधि है, जिसके व्यतिरेकसे प्रकृतसाध्यव्यतिरेक देखा जाय उसका नाम उपाधि है, तुच्छ तथा प्रातिभासिक इन दोनोंमें नित्यत्वव्यतिरेकके होनेपर साध्यव्यतिरेक देखनेसे साध्यव्यापकत्व दृष्टान्तमें गृहीत होता है । और साधनाव्यापकत्व पक्षमें । अतएव=उपाधि होनेसेही अनिषेध्यत्वेन प्रमाके प्रति साक्षाद्विषयत्व यह भी हेतु नहीं हो सकता है, यहाँ भी नित्यत्व उपाधि है, निश्चित साध्य ब्रह्ममें है वहाँपर नित्यत्व भी है, अतः उपाधि साध्यकी व्यापक है, हेतु पक्षमें भी है परन्तु नित्यत्व नहीं, अतः साधनाव्यापकत्व है किञ्च प्रमात्व क्या है, तद्वति तत्प्रकारकत्व या तत्त्वावेदकत्व आदिम पक्ष हो तो, दृष्टान्तनिष्ठ साधन वैकल्य है, क्योंकि परमार्थसत् शुद्धब्रह्मनिष्ठ सप्रकारज्ञानविषयत्वरूप साधन नहीं है, और धर्मवत् ब्रह्मको दृष्टान्तता नहीं है, यह कहा गया है । तस्य=धर्मवत् ब्रह्मको पक्षकुक्षिमें निक्षिप्त होनेसे उसमें निश्चितसाध्यवत्त्वका अभाव है, द्वितीयपक्ष हो तो तत्त्वावेदकत्वको अबाधितविषयत्वरूप होनेसे साध्यके साथ अविशेषमें पर्यवसान होनेसे हेतुका ज्ञान होनेपर सिद्धसाधन है ।=अबाधितत्वही परमार्थ सत्त्व है, उसका ज्ञान हेतुज्ञानके साथमेंही होगया अतः सिद्धसाधन है । यदि पक्षमें अबाधितविषयत्वरूप हेतुका ग्रहण नहीं है, तो हेतु स्वरूपासिद्ध है, प्रमाविषयत्वसेही परमार्थत्वकी उपपत्ति होनेपर विशेषण=अनिषेध्यत्वेन, तथा साक्षात् ये दोनों हेतुघटक विशेषणव्यर्थे=फलशून्य हैं इति यत्=यह जो किसीका कथन है तन्न=वह समीचीन नहीं; क्यों ? पुरोवर्तिको रजतत्वेन जानता हूँ, इत्यादिरूप अनुव्यवसायरूप जो प्रमा तादृश प्रमाविषय प्रातिभासिकमें साक्षात्पदको व्यभिचारवारकत्व होनेसे=प्रमाविषयत्व तो प्रातिभासिक पदार्थोंमें भी रहता है परन्तु व्यवसायद्वारा रहता है, व्यवसायका आकार ऊपर दिखलाया गया है । अतः साक्षात्पद दिया गया है, प्रातिभासिकमें साक्षात् प्रमाविषयत्व नहीं है अतः हेतुव्यभिचारी नहीं है । च=और मिथ्यात्वप्रमितेः=नास्त्यत्र कालत्रयेऽपि रजतम् इत्याकारक

मिथ्यात्वप्रमितिके साक्षात् विषयीभूत तत्रैव=प्रातिभासिकमेंही अनिषेध्यत्वेन इस विशेषणको व्यभिचारवारकत्व होनेसे=साक्षात्प्रमाविषयत्व तो प्रातिभासिकमें भी रहता है, परन्तु निषेध-प्रतियोगित्वेन रहता है—अनिषेध्यत्वेन नहीं अतः इस विशेषणका फल भी प्रातिभासिकमें व्यभिचारवारणही है; अनुव्यवसाय और मिथ्यात्वप्रमा ये दोनों भ्रमे=भ्रमज्ञानविषयीभूत पदार्थमें न भवतः=नहीं होते हैं न हि=ऐसा नहीं है, अर्थात् उक्तविषयमें अनुव्यवसाय और मिथ्यात्वप्रमा ये दोनों होतेही हैं अतः व्यभिचारवारकत्वेन द्वैतीके अनुमानके उक्तविशेषण व्यर्थ नहीं हैं, अनिषेध्यत्वेन ईश्वरके प्रति साक्षात् अपरोक्षत्व भी हेतु नहीं हो सकता है क्यों? प्रपञ्चमें सत्यत्वकी सिद्धिविना अनिषेध्यत्वेन इस विशेषणकी असिद्धि होनेसे फलतः अन्योन्याश्रय है।=सत्यत्वसिद्ध हो तब—अनिषेध्यत्व बने और अनिषेध्यत्व सिद्ध हो तब तद्घटित हेतुसे सत्यत्वकी सिद्धि हो अतः अन्योन्याश्रय है। ईश्वरज्ञानका विषयीभूत जो प्रपञ्च है, उस प्रपञ्चको मिथ्यात्व होनेपर तस्य=ईश्वरको भ्रान्तत्वका प्रसङ्ग है नच=नहीं है क्यों? मिथ्याभूतका मिथ्यात्वरूपसेही ग्रहण है, अतः ऐन्द्रजालिकवत् भ्रान्तत्वका अयोग है।—जैसे ऐन्द्रजालिक पुरुष स्वमायासे निर्मित मिथ्याभूत वस्तुओंको मिथ्याभूतत्वेन जानता हुआ भ्रान्त नहीं होता है तैसेही ईश्वर भी मिथ्याभूत शुद्धातिरिक्तको मिथ्याभूतत्वेन जानता हुआ भ्रान्त नहीं हो सकता है=स्वसमानाधिकरण जो विशेषदर्शन तादृशविशेषदर्शनाधिकरणीभूतकालाधिकरणक जो बाधितविषयक ज्ञान उस ज्ञानके आश्रयको भ्रान्त कहा जाता है, ईश्वरका जो बाधितविषयक ज्ञान है वह उक्तविशेषदर्शनानधिकरणीभूत कालाधिकरणक नहीं है किन्तु उक्तविशेषदर्शनाधिकरणीभूतकालाधिकरणक है, अतः तादृश ज्ञानका आश्रय ईश्वर भ्रान्त नहीं; अन्यथा=उक्तविशेषदर्शनकालिक बाधितविषयक ज्ञानको लेके भ्रान्तत्वव्यवहारकारका स्वीकार होतो सविषयकभ्रमज्ञातृत्व होनेसे ईश्वरके भ्रान्तत्वकी दुर्वारत्वापत्ति है, स्वशब्दसे बाधितविषयक ज्ञानका ग्रहण है।

अथ—निषेध्यत्वेन ज्ञाने तत्पालनार्थमीश्वरस्य प्रवृत्तिर्न स्यात्—न, ऐन्द्रजालिकप्रवृत्तिवदीश्वरप्रवृत्तेरपि तथाविधत्वात्। नापि सप्रकाराबाध्यार्थक्रियाकारित्वंहेतुः; सप्रकारकजागृद्बोधाबाध्यस्वप्नजलावगाहनप्रियासङ्गमादिविशेषिताप्रमाणीभूतज्ञानस्यार्थक्रियाकारित्वदर्शनेन तद्विषये तत्र व्यभिचारात्। अथ तत्र ज्ञानमेव सुखादिजनकं तच्चाबाध्यमेवेतिमतम् तदसत्, ज्ञानमात्रस्यहि तादृक्सुखाजनकत्वेन किञ्चिद्विशेषितस्यैव तथात्वं वाच्यम् ज्ञाने च विशेषो नार्थातिरिक्तः। तदुक्तम्, अर्थेनैव विशेषो हि निराकारतया धियाम्। इति। अर्थेन इति अर्थ एव इत्यर्थः। तथाच मिथ्याभूतविशेषितस्य जनकत्वाभ्युपगमे मिथ्याभूतस्यापि जनकत्वाद्व्यभिचार एव। तथाचोक्तं शास्त्रदीपिकायां बौद्धमते—अथ सुखज्ञानमेवार्थक्रियातच्चाव्यभिचार्येव। नहि क्वचिदप्यसति सुखे सुखज्ञानमस्तीत्याशङ्क्य सत्यमेतन्न तु तेन पूर्वज्ञानप्रामाण्याध्यवसानं युक्तम्, अप्रमाणेनापि प्रियासङ्गमविज्ञानेन स्वप्नावस्थायां सुखदर्शनात्। इति।

प्रकारान्तरसे शङ्काका आरम्भ करते हैं, अथेति—प्रपञ्चविषयक निषेध्यत्वेन ज्ञान होनेपर तत्पालनार्थं=तिसके पालनके लिए ईश्वरकी प्रवृत्ति न होगी न=ऐसी शङ्का नहीं करना क्यों? ऐन्द्रजालिकप्रवृत्तिवत् ईश्वरकी प्रवृत्तिकोभी तथाविधत्व=व्यावहारिकत्व है, सप्रकाराबाध्य-अर्थक्रियाकारित्व भी हेतु नहीं=बाध्यअर्थक्रियाकारित्व ऐन्द्रजालिकनिर्मित पदार्थोंमें भी है, परन्तु वहाँ साध्य नहीं है, अतः अर्थक्रियांशमें अबाध्यत्व विशेषण दिया है, अबाध्य अर्थक्रिया ब्रह्मवादीको अप्रसिद्ध है, अतः सप्रकार विशेषण दिया सप्रकार ज्ञानसे अबाध्य अर्थक्रिया ब्रह्मवादीको प्रपञ्चमें प्रसिद्ध है, क्योंकि ब्रह्मवादीके मतमें निष्प्रकारक-ज्ञानसे अर्थक्रियारूप प्रपञ्चका बाध होता है। क्यों? सप्रकारक जो जागृद् बोध उससे अबाध्य जो स्वप्नजलावगाहनप्रियासङ्गमादिविशेषित=विशिष्ट अप्रमाणीभूत ज्ञान उस ज्ञानको अर्थक्रियाकारित्व देखनेसे तद्विषये=स्वप्नजलावगाहनादिरूप स्वाप्निक ज्ञानके विषयमें व्यभिचार होनेसे=स्वप्न अवस्थामें जो उक्त—विषयविषयक ज्ञान होता है, उसे कार्यकारित्व है, और उसमें जो कार्यकारिता है, वह उक्तविषयमें भी है, क्योंकि उक्तविषयसे विनिर्मुक्त होके तो ज्ञान कार्यकारि 'अर्थक्रियाकारि' नहीं होता है, किन्तु उक्तविषयसे विशिष्ट होकेही अर्थक्रियाकारि होता है, फलतः स्वप्नजलावगाहनादिमें अर्थक्रियाकारित्व है। और जिसपक्षमें स्वप्नका अधिष्ठान ब्रह्म माना जाता है, उस पक्षमें स्वका बाध जाग्रद्बोधसे नहीं माना जाता है। अतःसप्रकाराज्ञानबाध्य भी अर्थक्रिया है। फलतः सप्रकारज्ञानाबाध्यअर्थक्रियाकारित्व स्वप्नजलावगाहनादिमें है और परमार्थत्वस्वरूप साध्य नहीं है, अतः यह हेतु व्यभिचारी है, प्रकारान्तरसे समाधानका प्रारम्भ—करते हैं अथेति=तत्र स्वप्नावस्थामें ज्ञानमेव=ज्ञानही सुखादिका जनक है; प्रियासङ्गमादिसे विशिष्ट नहीं, अर्थात् प्रियासङ्गमादिरूप विषयमें सुखादिजनकता नहीं केवल ज्ञानमेंही है तच्च=वह ज्ञानतो अबाध्यही है, इतिमतम्=ऐसा मानना है तदसत्=यह मानना असङ्गत है क्योंकि ज्ञानमात्रको तादृश सुखका अजनकत्व होनेसे। कोई पदार्थसे विशेषितकोही तथात्वम्=सुखादिजनकत्व वाच्य है, और ज्ञानमें विशेष अर्थातिरिक्त=स्वविषयसे पृथक् जात्यादि रूप नहीं है, तदुक्तम्=सोकहा है, उदयनाचार्यने—बुद्धियोंको, निराकार होनेसे, अर्थसेही विशेष है, अर्थसेही विशेष है इसका अर्थ यह है कि अर्थही विशेष है, फलतः मिथ्याभूत पदार्थसे विशेषित=विशिष्टको जनकत्वका अभ्युपगम होनेपर मिथ्याभूतको भी जनकत्व होनेसे व्यभिचारही है, ऐसाही शास्त्रदीपिकामें बौद्धके प्रतिकहा है। सुखज्ञानका नामही अर्थक्रिया है। जलाहरणादिरूप कार्यका नहीं तच्च=सुखज्ञानतो अर्थाव्यभिचारीही है, क्योंकि कहींपर भी सुख न होनेपर सुखज्ञान नहीं होता है। इत्याशङ्क्य=ऐसी आशङ्काकर सत्यमेतत्=सुखज्ञान सुखका अव्यभिचारी है। यह कथन आपका ठीक है, तु=परन्तु तेन=सुखज्ञानसे पूर्वज्ञानस्य=सुखजनक ज्ञानके प्रामाण्यका निश्चय नहीं हो सकता है; क्यों? अप्रमाणीभूत प्रियासङ्गम विज्ञानसे भी स्वप्नावस्थामें सुखोत्पत्तिके देखनेसे यह पङ्क्ति शास्त्रदीपिकामें तर्कपादस्थ प्रामाण्यविचारमें है।

ननु—विषयविशेषोपलक्षितस्यैव ज्ञानस्य सुखजनकत्वमस्तु तत् कुतो विषयस्य जनकत्वमिति चेन्न, स्वरूपाणामननुगततया ? ज्ञानत्वादेश्चातिप्रसक्ततया अनुगतानतिप्रसक्तोपलक्ष्यतावच्छेदकभावादुपलक्षणत्वासम्भवात् । ननु—विशेषणत्वमप्यसंभवि अनागतज्ञानजन्ये तत्कालाविद्यमानस्य विषयस्य पूर्वभावित्वरूपजनकत्वसंभवात् इति चेन्न, स्वव्यापारजन्ये व्यापारिणोऽसतो जनकत्ववत् स्वज्ञानजन्येप्यसतो जनकत्वसंभवात् । अतीतानागतावस्थस्यासत्त्वधर्माश्रयत्वेनैवाभ्युपमात् । अन्यथा ध्वंसप्रागभावप्रतियोगित्वतज्ज्ञानविषयत्वादीनामनाश्रयत्वापत्तेः प्रमाणबलात् कारणत्वाभ्युपगमस्यात्रापि तुल्यत्वात्, किञ्च स्वरूपाबाध्यस्य विषयाबाध्यत्वदर्शनेन विषयबाधे स्वरूपबाधस्य आवश्यकतया, स्वप्नादिज्ञानं सदेवेत्यस्य वक्तुमशक्यत्वात् । अनादित्वस्य विषमव्याप्तस्योपाधित्वाच्च ।

प्रियासङ्गमादिरूपविषयविशेषसे उपलक्षित जो ज्ञान है, उस ज्ञानकोही सुख–जनकत्व हो तब विषयको जनकत्व क्यों है=विषयको जनकता नहीं है इति चेन्न, क्यों ? ज्ञानके स्वरूपोंको अननुगत होनेसे च=और ज्ञानत्व आदिपदलब्ध अनुभवत्वादिको अतिप्रसक्त होनेसे अनुगत तथा अनतिप्रसक्त जो उपलक्ष्यतावच्छेदक उसका अभाव होनेसे उपलक्षणत्वका असम्भव है । शङ्कते नन्विति । विषयनिष्ठ विशेषणत्व भी–असम्भवग्रस्त है, अनागतज्ञानजन्ये=भाविपदार्थविषयक ज्ञानसे जन्य इच्छाप्रवृत्यादिमें ज्ञानकालमें अविद्यमान विषयको पूर्वभावित्वरूप जनकत्वका असम्भव होनेसे, इति चेन्न, क्यों ? स्वव्यापारसे जन्यमें असत् व्यापारीको जनकत्ववत् स्वज्ञानसे जन्यमें असत्त्वको जनकत्वका सम्भव होनेसे=प्रथम स्वशब्दसे व्यापारीका ग्रहण है और द्वितीय स्वशब्दसे विषयका ग्रहण है, 'ज्योतिष्टोमेन यजेत स्वर्गकामः' इसश्रुतिमें ज्योतिष्टोमको स्वर्गकी जनकता बतलाई है, परन्तु ज्योतिष्टोमकी समाप्तिके बहुतदिनों बाद स्वर्गकी प्राप्ति ज्योतिष्टोमके कर्त्ताको होती है, तहाँ भग्नदण्डसे या मृतकुलालसे घटकी उत्पत्ति नहीं देखी जाती है, अतः ज्योतिष्टोमीय कारणता निर्वाहार्थ ज्योतिष्टोम और स्वर्गप्राप्तिके बीचमें एक अदृष्टनामक ज्योतिष्टोमका व्यापार कल्पना किया जाता है, जिसके अपूर्व-आदि और भी कितनेहीं नाम हैं, उस कल्पित अदृष्टको द्वारिकर ज्योतिष्टोमको स्वर्गके प्रति हेतुता मानी जाती है, तथा च यहाँ जैसे विद्यमान व्यापारसे असत् व्यापारीमें जनकत्व होता है । तैसेही अविद्यमान विषय भी ज्ञानरूप स्वीय व्यापारद्वारा ज्ञानजन्यका जनक हो सकता है । अतीत तथा अनागत अवस्थामें अवस्थित पदार्थका असत्त्वधर्माश्रयत्वेनही अभ्युपगम है=पदार्थका सर्वथा अभाव नहीं होता है ब्रह्मज्ञानसे पूर्व; किन्तु तीन अवस्थाओंमें पदार्थ रहा करता है, जब वर्त्तमानावस्थामें रहता है तब वह सत्त्वरूपधर्माश्रय कहा जाता है । जब–अतीत या अनागत अवस्थामें रहता है तब वह असत्त्वधर्माश्रय कहा जाता है । अन्यथा=असत्त्वधर्माश्रयत्वेनापि अतीत तथा अनागत अवस्थामें पदार्थके न माननेसे ध्वंसप्रतियोगित्व प्रागभावप्रतियोगित्व तज्ज्ञानविषयत्व आदिकधर्मोंको अनाश्रयत्वकी आपत्ति होगी=अतीत अवस्थामें यदि घट किसी भी रूपसे नहीं है तो उसमें ध्वंसप्रतियोगित्वरूप धर्म

कैसे रहेगा, और अनागत अवस्थामें भी यदि घट किसी भी रूपसे नहीं है तो उसमें प्रागभावप्रतियोगित्व कैसे रहेगा, एवं इन दोनों अवस्थाओंमें रहनेवाले पदार्थोंमें ज्ञानविषयत्व इच्छाविषयत्वादिरूप धर्म कैसे रहेंगे, शशशृङ्गमें तो ऋजुवक्रादिरूप धर्म नहीं रहते हैं, प्रमाणवलसे कारणत्वाभ्युपगमको अत्रापि=अतीतानागतविषयमें भी तुल्य होनेसे=जैसे ज्योतिष्टोमीयकारणता श्रुतिसिद्ध है तैसेही विषयमें भी कारणता अनुभवसिद्ध है। किञ्च, स्वरूपाबाध्यको, विषयाबाध्यत्वपूर्वकत्व देखनेसे विषयबाध होनेपर स्वरूपबाधको आवश्यक होनेसे स्वप्नादिका ज्ञान सत्ही है यह कहनेको अशक्य है=जहाँ जहाँ ज्ञानका स्वरूपसे बाध नहीं होता है, वहाँ वहाँ विषयतोऽपि बाध नहीं होता है, इस नियमसे स्वरूपाबाध्यत्व विषयाबाध्यत्वका व्याप्य है। अतः जहाँपर व्यापक विषयाबाध्यत्व नहीं है वहाँपर व्याप्यरूप स्वरूपाबाध्यत्व कैसे रह सकता है तैसेही 'इदं रजतम्' यह जो ज्ञान मुझको शुक्तिमें हुआ था वह मिथ्या है इत्याकारक प्रत्ययसे विषयविशिष्टज्ञानकाही मिथ्यात्व प्रतीत होता है, अतः विषयमिथ्या है ज्ञान सत्य है यह कथन असङ्गत है विषमव्याप्त अनादित्वको उपाधित्व होनेसे भी यह हेतु हेत्वाभास है=उपाधि दोप्रकारकी होती है, समव्याप्त तथा विषमव्याप्त, साध्यका व्यापक होके साध्यकाव्याप्य हो उसे समव्याप्त कहते हैं इस बातको प्रथम भी कह चुके हैं, और साध्यका व्यापक तो हो परन्तु व्याप्य न हो उसे विषमव्याप्त कहते हैं, अनादित्व उपाधि विषमव्याप्त है, इस बातको ध्यानमें रखनी चाहिए कि निश्चितसाध्यकी व्यापक उपाधि होती है, तथा च ब्रह्मरूप दृष्टान्तमें परमार्थ सत्त्वरूप निश्चित साध्य है वहाँपर अनादित्व भी है, सप्रकाराबाध्यार्थक्रियाकारित्वरूप साधन घटादिमें है, अनादित्व नहीं अतः साधनका अव्यापक है, तैसे निश्चितसाध्याभाववत् मायामायाप्रयुक्त जीवेशादिमें भी अनादित्व है अतः परमार्थ सत्त्वका व्याप्त नहीं अतएव समव्याप्त नहीं।

नच—अर्थक्रियाकारित्वं प्रति परमार्थत्वस्य ब्रह्मणि प्रयोजकत्वेनावधारणादकारणककार्योत्पत्तिरूपविपक्षबाधकतर्केण हेतोः साध्यव्यापकतया तदव्यापकतयोपाधेः साध्याव्यापकत्वमिति वाच्यम् प्रातिभासिकरज्जुसर्पादौ भयकम्पादिकार्यकारित्वदर्शनेन प्रातिभासिकसाधारणस्य तुच्छव्यावृत्तस्य प्रतीतिकालसत्त्वस्यैवार्थक्रियाकारितां प्रति प्रयोजकत्वात्, प्रतिभासिकस्यार्थक्रियाकारित्वानभ्युपगमे सप्रकाराबाध्येतिहेतुविशेषणवैयर्थ्यापत्तेः। कस्मिन्नपि देशे, कस्मिन्नपि काले केनापि पुरुषेणाबाध्यत्वं हि परमार्थसत्त्वम् तदपेक्ष्यप्रतीतिकालसत्वस्य लघुत्वाच्च। किञ्च शुद्धस्यार्थक्रियाकरित्वाभावात्, साधनविकलत्वम्, उपहितस्य पक्षनिक्षेपात्साध्यविकलत्वम्।

ब्रह्मणि=ब्रह्ममें अर्थक्रियाकारित्वके प्रति प्रयोजकत्वेन परमार्थ सत्त्वका अवधारणहोनेसे, अकारणककार्योत्पत्तिरूप जो विपक्षमें बाधक तर्क है, उस तर्कसे हेतुको साध्यका व्यापक होनेसे उपाधेः=उपाधिको तदव्यापकतया=हेतुका अव्यापक होनेसे, साध्यका अव्यापकत्व है—अर्थक्रियाकारित्वके प्रति प्रयोजक परमार्थ सत्व है, इस अर्थका निश्चय ब्रह्ममें हो चुका है।

अर्थक्रियाकारित्व जब घटमें है, तब उसका प्रयोजक परमार्थ सत्त्व माननाही पडेगा फलतः=यहाँ-पर साध्यसाधन समव्याप्त हैं, अतः आपकी उपाधि जब साधनकी व्यापक नहीं है, तब साधन-व्याप्त साध्यकी व्यापक कैसे होगी, न कथमपि, तथा च उपाधिमें साध्यव्यापकत्व नहीं है, अतः=अनादित्वका उपाधित्वेन उपन्यास अन्याय है इति नच वाच्यम्=ऐसा नहीं कहना, क्यों ? प्रातिभासिक जो रज्जुकल्पितसर्पादि उनसर्पादिमें भयकम्पादिरूप जो कार्य तादृश कार्य-कारित्वको देखनेसे तुच्छाव्यावृत्तस्य=तुच्छमें नहीं रहनेवाले प्रातिभासिकसाधारणस्य=प्राति-भासिकमेंभी रहनेवाले प्रतीतिकालसत्त्वस्यैव प्रतीतिकालीनसत्त्वकोही अर्थक्रियाकारित्वके प्रति प्रयोजकत्व होनेसे फलतः आपने जो परमार्थ सत्वका और अर्थक्रियाकारित्वका व्याप्यव्याप-कभाव समझ रक्खा है वह आपकी मूर्खता है, और इनको समव्याप्त समझना महामूर्खता है, अतः अनादित्वकी उपाधिता अनिवार्य है, प्रातिभासिकको अर्थ क्रियाकारित्वका अभ्युपगम होनेपर सप्रकाराबाध्य, यह जो हेतुमें विशेषण दिया है, उसके वैयर्थ्यकी आपत्ति है, किसीभी देशमें किसीभी कालमें किसीभी पुरुषसे आबाध्यत्वका नाम है—परमार्थसत्त्व, तदपेक्षया= इस परमार्थ सत्वकी अपेक्षा प्रतीतिकालसत्त्वको लघुत्व होनेसे। किञ्च=औरभी वक्तव्य है, शुद्ध ब्रह्मको अर्थक्रियाकारित्वका अभाव है अतः साधनविकलत्व है ।=दृष्टान्तमें साधन नहीं है, उपहितका पक्षमें निक्षेप है, अतः साध्यविकलत्व है=उपहितमें परमार्थ सत्त्वरूप साध्य नहीं है।

आरोपितमिथ्यात्वकत्वादित्यपि न हेतुः आरोपितत्वं प्रातिभासिकत्वं चेत्—प्रपञ्चे हेतोरसिद्धिः तत्सिद्धेः पारमार्थिकसिद्ध्युत्तरकालीनत्वात्। व्यावहारिकत्वं चेत् शुक्तिरू-प्यादौ व्यभिचारः। उभयसाधारण्येऽप्ययमेवदोषः। कल्पकरहितत्वादित्यपि न हेतुः अस-त्यव्यभिचारात् यथा श्रुतस्यासिद्धेश्च ननु—नासिद्धिः शुद्धं हि चैतन्यम् न कल्पकम्, अदृष्टत्वात्, नोपहितम्, कल्पितत्वादेवान्यथानवस्थानात् तथा च यावद्विशेषाभावे कल्पकसामान्याभावसिद्धिः—इति चेन्न, शुद्धस्याप्यनाद्यविद्योपधानवशेन कल्पकत्वोप-पत्तेः। कल्पकत्वं हि कल्पनां प्रत्याश्रयत्वं, विषयत्वं, भासकत्वं वा, तच्च सर्वं कल्पना-समसत्ताकत्वेन शुद्धताव्याघातकम्। तदुक्तं संक्षेपशारीरके—

"आश्रयत्वविषयत्वभागिनी, निर्विभागचितिरेव केवला।
पूर्वसिद्धतमसो हि पश्चिमो नाश्रयो भवति नापि गोचरः॥ इति

आरोपित मिथ्याकत्व भी हेतु नहीं होसकता है=आरोपितं मिथ्यात्वं यस्मिन् तत् आरोपितमिथ्यात्वकम् तस्य भावः तत्त्वम्। क्योंकि—आरोपितत्व यदि प्रातिभासिकत्व है तबतो प्रपञ्चमें हेतु की असिद्धि है, तत्सिद्धेः=प्रातिभासिकमिथ्यात्वसिद्धिको, पारमार्थिक-सिद्धिसे उत्तरकालीनत्व होनेसे=जब प्रपञ्चमें पारमार्थिक सत्त्व सिद्ध होजाय तब मिथ्यात्वको प्रातिभासिक कह सकते हैं, जैसे जिस भूतलमें व्यावहारिक घट सिद्ध होता है, उस भूतलमें प्रातिभासिक घटाभाव माना जाता है, परन्तु अभीतक प्रपञ्चमें पारमार्थिक सत्त्व तो सिद्ध

नहीं हुआ है. अतः मिथ्यात्वको प्रातिभासिक कैसे मान सकते हैं। यदि आरोपितत्वका अर्थ व्यावहारिकत्व है, तवतोशुक्तिरूप्यादिमें व्यभिचार है=शुक्तिरूप्यादिमें व्यावहारिक मिथ्यात्व है,= क्योंकि शुक्तिरूप्यादिके मिथ्यात्वका ब्रह्मज्ञानविना बाध नहीं होता है, अतः वह व्यावहारिक है, अतः व्यावहारिकमिथ्यात्वकत्व शुक्तिरूप्यादिमें है परन्तु साध्य नहीं अतः व्यभिचार है प्रातिभासिक तथा—व्यावहारिक एतदुभयसाधारण्य हेतुमें होनेपर भी वह व्यभिचार रूप दोष है=उभयसाधारणी निरुक्तिमें भी शुक्तिरूप्यादिमें व्यभिचार है, 'कल्पकरहितत्वात्' कल्पकाभाव होनेसे यह भी हेतु नहीं होसकता है, क्यों? असत्‌में व्यभिचार होनेसे= असत्‌में कल्पकाभावरूप हेतु है, परन्तु सत्वरूप साध्य नहीं अतः व्यभिचार है, यथा श्रुतकी असिद्धिसे भी, यह हेतु दुष्ट है,=पक्षमें कल्पकराहित्य नहीं है. अतः स्वरूपासिद्धि है, शङ्कते संसारासक्त-द्वैती—नन्विति। असिद्धः= हेतुकी स्वरूपासिद्धि नहीं है, क्योंकि शुद्ध चैतन्य कल्पक नहीं है, अदृष्टत्वात्=शुद्धको कहीं भी कल्पकत्वेन दृष्ट न होनेसे, उपहित भी कल्पित नहीं होसकता है। कल्पित होनेसे ही=उपहिततो स्वयंकल्पित है वह कल्पक कैसे होगा, अन्यथा=कल्पितको भी कल्पक मानों तो अनवस्था है,=कल्पककी कल्पना करनेके लिए कल्पकान्तर चाहिए कल्पकान्तरकी कल्पना करनेके लिए अन्यकल्पककी आवश्यकता होगी इस रीतिसे अनवस्थामें पर्यवसान होगा अतः उपहितको कल्पक नहीं मान सकते हैं, फलतः यावत् कल्पकविशेषाभावके होनेपर कल्पकसामान्याभावकी सिद्धिहुई=यावद्विशेषाभावकूटका सामान्याभाव व्याप्य होता है, शुद्ध उपहितरूप कोई भी विशेष जब कल्पक न होसका तब कल्पकसामान्याभाव सिद्ध हुआ, इतिचेन्न ऐसा यदि कहोतो नहीं कहना, क्यों? शुद्धको भी अनादिअविद्यारूप उपाधिके-वशसे कल्पकत्वकी उपपत्ति होनेसे, अनादि अविद्यारूप जो ब्रह्मवृत्ति उपाधि है उस उपाधिसे शुद्ध भी कल्पक होसकता है, कल्पकत्व जो है, वह कल्पनाके प्रति आश्रयत्व या कल्पनाके प्रति विषयत्व या कल्पनाके प्रति भासकत्व रूप है तच्च सर्वं=यह उक्तरूप कल्पकत्व कल्पनासमसत्ताकत्वसे शुद्धत्वका अव्याघातक है=कल्पना और कल्पकत्व ये दोनों धर्म ब्रह्ममें व्यावहारिक हैं और दोनोंसे शुद्धकी कोई हानि नहीं, जैसे मरुदेशावच्छेदेन तरुणतरणिप्रखरकिरणनिकरमें आरोपितजलसे मरुप्रदेशमें पङ्कादिका संभव नहीं। इस अर्थको संक्षेपशारीरकमें कहा है। निर्विभाग=जीवेशभेदशून्य, केवला=शुद्धचिद्रूपब्रह्म ही अज्ञानके आश्रय और विषयत्वको भजनेवाला है=अज्ञानका आश्रय तथा विषय शुद्धचिद्रूपजीवेशभेदशून्य ब्रह्म ही है, पूर्वसिद्ध तमसोहि=पूर्वसिद्ध अज्ञानका, पश्चिमः=पश्चात् होनेवाला अहङ्काराद्यवच्छिन्न आत्मा नाश्रयो भवति=आश्रय नहीं होता नापि गोचरः=विषय भी नहीं होता है, फलतः जब शुद्ध अज्ञानका आश्रय है तब अज्ञानजन्य जो भ्रम और भ्रमका विषय इनका भी आश्रय और विषय बन सकता है।

अस्तु वोपहितस्य कल्पकत्वम्, न चानवस्था, अविद्याध्यासस्याध्यासान्तरानपेक्षत्वात्, स्वपरसाधारणसर्वनिर्वाहकत्वोपपत्तेः अकल्पितस्य कल्पकत्वादर्शनाच्च, कल्पित-

प्रतिबिम्बविशिष्टादर्शादेवादर्शान्तरे प्रतिबिम्बकल्पकत्वदर्शनाच्च, बिम्बस्य द्वितीयादर्श सम्मुखत्वाभावेन तत्र कल्पकत्वायोगात् अन्यथा अतिप्रसङ्गात् । विस्तरेण चैतदग्रेव-क्ष्यामः । तदेवं निराकृताः परमार्थसत्त्वे साध्ये षडमी हेतवः । एवमन्येऽपि–निराकार्याः ।

वा=अथवा उपहितको कल्पकत्व रहो, अनवस्था है नच=अनवस्था नहीं है, क्यों ? अविद्याध्यासको अध्यासान्तरकी अपेक्षा न होनेसे । स्वपरसाधारण जो सर्व निर्वाहकत्व उसकी उपपत्ति होनेसे=अध्यास दो प्रकारकाहै कार्याध्यास तथा कारणाध्यास, अविद्याध्यासका नाम कारणाध्यास है, इस अध्याससे भिन्न अध्यासका नाम कार्याध्यास है औरभी अध्यासके दो भेद हैं, ज्ञानाध्यास तथा अर्थाध्यास, बाधितविषयक ज्ञानका नाम ज्ञानाध्यास कहा जाता है, और भ्रमभ्रान्ति आदि भी इसीके नाम हैं और इस ज्ञानाध्यासका विषय जो पदार्थ होता है उसे अर्थाध्यास कहते हैं=मिथ्याज्ञानका नाम ज्ञानाध्यास है, और मिथ्याज्ञानके विषयका नाम अर्थाध्यास है, और जो धर्माध्यास, धर्मविशिष्टधर्म्यध्यास इतरेतराध्यासादि अध्यास हैं वे सर्व उक्त दोनों अध्यासोंके अन्तर्गत हैं ये जितने अध्यास हैं सबके सब अविद्याप्रयुक्त हैं अविद्या स्वपरकी निर्वाहिका है अविद्यासे आगे अध्यासके कारणके अन्वेषणकी आवश्यकता नहीं अविद्यातक पहुँचे कि मानों अध्यासोंका काण्ड समाप्त हुआ, अतः अनवस्था नहीं, अकल्पितको कल्पकत्वका अदर्शन होनेसे भी कल्पितकोही कल्पक मानना चाहिए=हमको और आपको ऐसा कोईभी सम्प्रतिपन्नस्थल नहीं है जहाँ अकल्पितको कल्पकत्व सिद्ध हो और कल्पितको कल्पकत्व होता है, उसका उदाहरण हम आपको नीचे बतलाते हैं, कल्पितजो प्रतिबिम्ब उस प्रतिबिम्बसे विशिष्ट आदर्शादिको दूसरे आदर्शमें प्रतिबिम्बकल्पकत्वका दर्शन होता है । बिम्बको द्वितीयादर्शके साम्मुख्याभावसे तत्र=बिम्बमें कल्पकत्वका अयोग है, अन्यथा=साम्मुख्याभाव होनेपरभी यदि बिम्बको उस प्रतिबिम्बके प्रति कल्पकत्वमानों तो अति–प्रसङ्ग है=तब घटपटादियावत् असम्मुखीन पदार्थ हैं, सभीमें कल्पकत्व माना जा सकता है, इस अर्थको विस्तरसे आगे कहेंगे । सो उक्तप्रकारसे परमार्थ सत्त्व साध्य होनेपर ये छः हेतु निराकृत हुए, ऐसेही अन्यभीहेतु पराकरणीय हैं, निराकरणीय अन्यहेतुओंको दिखलाकर निराकरण करते हैं—अथेति—

अथ विमतं न सद्विलक्षणं, असद्विलक्षणत्वादात्मवदिति अनुमानानन्तरम् भविष्यति इतिमतम् । तन्न; प्रातिभासिके शुक्तिरूप्यादौव्यभिचारात् । नच तत्रासद्विलक्षणत्वहेतुरेव नास्तीति वाच्यम्, असद्विलक्षणत्वाभावेहि अपरोक्षतया प्रतीतिरेव न स्यात् । ननु–तर्ह्यसद्विलक्षणत्वे तद्विरुद्धसद्विलक्षणत्वायोगः । तथा च साध्यस्यापि विद्यमानत्वान्न व्यभिचारः इतिचेन्न, सत्त्वे सर्वजनसिद्धबाधविरोधात्, गजादौ गोवैलक्षण्येऽपि तद्विरुद्धाश्ववैलक्षण्ययोगवत् सद्वैलक्षण्येप्यसद्वैलक्षण्ययोगोपपत्तेः प्रथम–मिथ्यात्वनिरुक्तावुक्तत्वात् । ननु–विमतं न चैतन्याज्ञानकार्यम्, न तत्कार्यधीविषयः, न तत्कार्यसत्त्ववत्, न तज्ज्ञानबाध्यसत्त्ववद्वा, तस्मिन्नपरोक्षेऽप्यनिषेध्यत्वेन साक्षाद्भासमानत्वात्, यदेवं

तदेवं यथा घटे, अपरोक्षेप्यनिषेध्यत्वेन साक्षाद्भासमानः पटो न घटाज्ञानकार्यादिः विपक्षे च तदपरोक्ष्ये तदज्ञानव्याहतिरेव बाधिका, न चासिद्धिः, अधिष्ठानतया सुखादि-साक्षीत्वेन तदानीमपि चैतन्यापरोक्ष्यात्, इति चेन्न, सामान्याकारेणापरोक्ष्येऽपि शुक्त्यादौ रजतादेरनिषेध्यत्वेन साक्षाद्भासमानतया तत्र व्यभिचारात्।

विमतं=पक्षत्वेन विवक्षित प्रपञ्च सत्से विलक्षण नहीं है,=सत्त्वाभाववत् नहीं है, असत् से विलक्षण होनेसे=असत्त्वानाधिकरण होनेसे, आत्मवत् आत्मामें हेतुसाध्य दोनों है, ऐसा अनुमानान्तर होगा ऐसा जो मत है तन्न=वह नहीं हो सकता है, क्यों? शुक्तिरूप्यादिरूप प्रातिभासिकमें व्यभिचार होनेसे=असत्त्वानधिकरणरूप असद्विलक्षणत्व प्रातिभासिक पदार्थोंमें रहता है; परन्तु वहाँपर सद्विलक्षणत्वही रहता है सद्विलक्षणत्वाभाव नहीं अतः व्यभिचार है, तत्र=प्रातिभासिक शुक्तिरूप्यादिमें असद्विलक्षणत्वरूप हेतु नहीं है, इति नचवाच्यम् असद्वि-लक्षणत्वका अभाव होनेपर अपरोक्षरूपसे प्रतीति न होगी; शंकते नन्विति। तब असत्से विलक्षण होनेपर तद्विरुद्ध=असद्विरुद्ध जो सत् उसके विलक्षणत्वका अयोग है, फलतः साध्यकोभी विद्यमान होनेसे व्यभिचार नहीं है, इति चेन्न, क्यों? प्रातिभासिकको सत्व होनेपर सर्वजन-सिद्धबाधका विरोध होनेसे; प्रातिभासिकका बाध साधारणतया सर्वानुभवसिद्ध है, उसमें प्राति-भासिकसत्व माननेपर विरोध है। गजादिमें गोवैलक्षण्य होनेपर भी गोविरुद्धअश्ववैलक्षण्य-योगवत् सद्वैलक्षण्य होनेपरभी असद्वैलक्षण्यके योगकी उपपत्तिको प्रथम मिथ्यात्वनिरुक्तिमें उक्त होनेसे=प्रथममिथ्यात्वनिरुक्तिमें दिखला चुके हैं कि जैसे परस्पर विरुद्ध गोत्व तथा अश्वत्वका अत्यन्ताभावगजादिमें साथ साथ रहता है, तैसेही परस्पर विरुद्ध सत्त्व तथा असत्त्वका अत्यन्ताभावभी साथ साथ रह सकता है। अनुमानान्तरका उपन्यास किया जाता है, नन्विति। विमतं=पक्षत्वेन विवक्षित न चैतन्याज्ञानकार्यम्=चैतन्यमें रहनेवाला जो अज्ञान उस अज्ञा-नका कार्य नहीं है न तत्कार्यधीविषयः=तत्पदसे चैतन्याज्ञान लिया जाता है, चैतन्याश्रित अज्ञानका कार्य जो धी उस धीका विषय नहीं है, न तत्कार्यसत्त्ववद्वा=चैतन्याज्ञानका कार्यभूत जो सत्त्व तादृश सत्त्ववाला नहीं है, या तज्ज्ञानबाध्य सत्त्ववाला भी नहीं है, यहाँपर तत्-पदसे चैतन्य लिया जाता है, अतः यह अर्थ हुआकि चैतन्यका जो ज्ञान उस ज्ञानसे बाध्य जो सत्त्व है, तादृश सत्त्ववालाभी पक्ष नहीं है, इस रीतिसे यहाँपर चार साध्योंका निर्देशकर अब हेतु दिखलाते हैं, तस्मिन्निति। तस्मिन्=चैतन्यविषयक अपरोक्ष होनेपर भी अनिषेध्य-त्वेन साक्षाद्भासमान होनेसे, यदेवम्=जो यद्विषयक अपरोक्ष होनेपरभी अनिषेध्यत्वेन साक्षाद्भा-समान होता है तदेवम्=वह तदज्ञानकार्यादि नहीं होता है, जैसे घटविषयक अपरोक्ष होनेपर अनिषेध्यत्वेन साक्षाद्भासमान पट घटके अज्ञानादिका कार्यादि नहीं होता है, विपक्षे च=विप-क्षमेंतो तदापरोक्ष्ये=चैतन्यका अपरोक्ष होनेपर चैतन्याज्ञानकी व्याहतिही बाधिका है=विप-क्षकी शङ्का होतो चैतन्याज्ञानकी व्याहति बाधिका है, अर्थात् यदि कोई ऐसा कहे कि उक्त हेतु रहो परन्तु साध्य नहीं है, किन्तु चैतन्याज्ञानका कार्यत्वादिही पक्षमें रहो तो इसका

निवारण इस तर्कसे होता है कि चैतन्यका आपरोक्ष्य होनेपर भी यदि अज्ञान मानोंगे तो आपकोही व्याघात होगा । क्योंकि आपके सिद्धान्तमें अधिष्ठानरूप चैतन्यके अपरोक्ष ज्ञानसे अज्ञानकी निवृत्ति मानी गई है, असिद्धिः=व्यवहारकालमें चैतन्यके आपरोक्ष्यकी असिद्धि है नच=नहीं है, क्यों ? अधिष्ठान होनेसे सुखादिसाक्षित्वेन व्यवहारकालमें भी चैतन्यका आपरोक्ष्य होनेसे, इतिचेन्न, क्यों ! इदन्तारूपसामान्याकारसे शुक्त्यादिविषयक आपरोक्ष्य होनेपर रजतादिको अनिषेध्यत्वेन साक्षाद्भासमान होनेसे तत्र=उक्त रजतादिमें व्यभिचार होनेसे, प्रातिभासिकरजतादिमें हेतु रह गया, परन्तु भवदीय चार साध्योंमेंसे कोईभी नहीं रहा अतः व्यभिचार है ।

अथ व्यावृत्ताकारेण यस्मिन् भासमाने यदनिषेध्यत्वेन साक्षात् भासते तन्न, तदज्ञानकार्यादीति व्याप्तिरिति मन्यसे । तर्ह्यसिद्धिः । नहि चैतन्यमिदानीं भ्रमनिवर्त्त-कत्वाभिमतव्यावृत्ताकारापरोक्षप्रतीतिविषयः, तथासत्यधिष्ठानमेव न स्यात् यदा तु वेदान्तवाक्यजन्मवृत्तौ व्यावृत्ताकारतया अपरोक्षं तदा अनिषेध्यत्वेन प्रपञ्चे आपरोक्ष्य-शङ्कापि नास्ति । अतः प्रमाणजन्यासाधारणाकारभानस्यैवाज्ञानविरोधित्वान्नापरोक्ष-तामात्रेणाज्ञानपराहतिप्रसङ्गः । यत्त्वज्ञानपदेन ज्ञानाभावोक्तौ सिद्धसाधनम्, अनिर्वचनी-याज्ञानोक्तौ च तस्य खपुष्पायमाणत्वेन प्रतियोग्यप्रसिद्धिरिति । तत्तुच्छम्, असत्प्रति-योगिकाभावं स्वीकुर्वतः पराभ्युपगममात्रेणैव प्रतियोगिसिद्धिसंभवात् ।

व्यावृत्ताकारसे जिसके भासमान होनेपर जो अनिषेध्यत्वेन साक्षात् भासमान होता है, वह तदज्ञान कार्यादि नहीं है, ऐसी व्याप्ति है, यदि ऐसा मानता है तब असिद्ध है=व्यावृ-त्ताकारके अपरोक्ष्यकी असिद्धि है, क्यों कि भ्रमनिवर्त्तकत्वेन अभिमत जो व्यावृत्ताकारविष-यक अपरोक्ष प्रतीति उस प्रतीतिका विषय इस कालमें—व्यवहारकालमें चैतन्य नहीं है=यदा-कारविषयकत्वेन अपरोक्ष ज्ञानको अज्ञान—निवर्त्तकत्व है तदाकारका भान व्यवहार कालमें नहीं है, तदाकारसे यदि चैतन्यका भान होता हो तो वह अधिष्ठानही नहीं होगा, क्योंकि सामान्यरूपसे ज्ञात और विशेषरूपसे अज्ञातही अधिष्ठान हुआ करता है, जिस कालमें वेदा-न्तसे जन्यवृत्तिमें व्यावृत्ताकारतया चैतन्य अपरोक्ष होता है, उस कालमें अनिषेध्यत्वेन प्रप-ञ्चमें आपरोक्ष्यकी शङ्काभी नहीं है, अतः प्रमाणजन्य जो असाधारणाकारका भान उस भान कोही अज्ञानका विरोधित्व होनेसे अपरोक्षमात्रसे अज्ञानकी निवृत्तिका प्रसङ्ग नहीं है । तु=और अज्ञानपदसे ज्ञानाभावकी उक्तिमें सिद्धसाधन है;=ज्ञानाभावके कार्य घटादिक हैं ऐसा नहीं माना जाता है, सिद्धान्तमें अतः सिद्धसाधन है, अनिर्वचनीय अज्ञानकी उक्ति होने-पर तो वादिके मतसे अनिर्वचनीय अज्ञानको खपुष्पायमाण होनेसे प्रतियोगीकी अप्रसिद्धि है इति यत्=ऐसा जो किसीने कहा है तत्तुच्छम्=वह कथन निस्सार है, क्यों ? असत्प्रति-योगिके अभावको स्वीकार करनेवाले प्रकृतवादीको अन्यके अभ्युपगममात्रसे प्रतियोगिकी प्रसिद्धिका सम्भव होनेसे ।

ननु—विमतं, नात्मन्यध्यस्तम्; आत्मसाक्षात्कारवत्प्रवृत्तिविषयत्वात्, यदेवं तदेवम्, यथा घटसाक्षात्कारवत्प्रवृत्तिविषयः पटो न तत्राध्यस्तः, न चासिद्धिः, ईश्वजीवन्मुक्तयोरात्मसाक्षात्कारवतोरपि जगद्रक्षणभिक्षाटनादौ प्रवृत्तेः, शङ्खे अध्यस्तमपि पीतत्वं न शङ्खश्वेतत्वसाक्षात्कारवत्प्रवृत्तिविषय इति न तत्र व्यभिचार—इति चेन्न; प्रतिविम्बे व्यभिचारात् । स हि मुखैक्यसाक्षात्कारवत्प्रवृत्तिविषयो मुखेऽध्यस्तः । तद्व्यतिरेकेणोपलभ्यमानत्वस्योपाधित्वाच्च । एवं च—विमतं, नेश्वरमायाकल्पितम्, तं प्रत्यपरोक्षत्वात् यदेवं तदेवम्, यथा चैत्रम् प्रत्यपरोक्षो घटो न. चैत्रमायाकल्पितः; विमतं, न जीवकल्पितम्, तस्मिन् सुषुप्तेऽप्यवस्थितत्वात्, आत्मवत्, न चासिद्धिः; प्रत्यभिज्ञानात्; अदृष्टादेरभावे पुनरुत्थानायोगाच्च—इत्यपि निरस्तम्; आद्ये ऐन्द्रजालिकं प्रत्यपरोक्षे तन्मायाकल्पिते व्यभिचारात्, मायाविद्ययोरभेदेन देहात्मैक्यभ्रमे व्यभिचाराच्च । द्वितीये त्वसिद्धेः । न च प्रत्यभिज्ञया प्रपञ्चस्य स्थायित्वसिद्धेर्नासिद्धिः; सुषुप्तिकालस्थायित्वासाधकत्वस्य प्रत्यभिज्ञाया दृष्टिसृष्टिसमर्थने वक्ष्यमाणत्वात्, अदृष्टादेः कारणात्मनाऽवस्थितत्वेन पुनरुत्थानसंभवाच्च ।

विमत, आत्मामें अध्यस्त नहीं है, आत्मविषयक जो साक्षात्कार तादृश साक्षात्कारवाला जो पुरुष उस पुरुषकी प्रवृत्तिका विषय होनेसे, यदेवम् जो यद्विषयकसाक्षात्कारवत्प्रवृत्तिका विषय होता है तदेवम्=वह उस=साक्षात्कारके विषयमें कल्पित नहीं होता है, जैसे घटविषयक साक्षात्कारवाले पुरुषकी प्रवृत्तिका विषय जो पट है वह घटमें कल्पित नहीं है, तत्र=घटमें । नच असिद्धिः=हेतुमें स्वरूपासिद्धि है नच=नहीं है, क्यों ? आत्मसाक्षात्कारवान् जो ईश्वर तथा जीवन्मुक्त है इन दोनोंकी भी क्रमशः जगत्के रक्षणादिमें और भिक्षाटनादिमें प्रवृत्ति होनेसे; शङ्खमें अध्यस्त भी पीतत्व है परन्तु शङ्खश्वेतत्वसाक्षात्कारवत्की प्रवृत्तिका विषय नहीं; अतः तत्र=शङ्खपीतिमामें व्यभिचार नहीं; इति चेन्न; क्यों ? प्रतिविम्बमें व्यभिचार होनेसे; सहि=वह प्रतिविम्ब मुखैक्यसाक्षात्कारवान् जो पुरुष है उसकी प्रवृत्तिका विषय है और मुखमें अध्यस्त है । यहांपर इसबातको ध्यानमें रखना चाहिए कि दर्पणादिरूपोपाधिओंका सान्निध्यरूप जो दोषविशेष उस दोषविशेषसे अजन्य जो ज्ञान है उसी ज्ञानका विशेषदर्शन विरोधी होता है अत एव मुखवृक्षादिका साक्षात्कार होनेपरभी तदीयप्रतिविम्वज्ञानका बाध नहीं होता है । तद्व्यतिरेकेणोपलभ्यमानत्वको उपाधित्व होनेसे भी यह अनुमान अर्थसाधक नहीं, साक्षात्कारका जो विषय हो उसे तत्पदसे लेना चाहिए तथा च दृष्टान्तमें तत्पदसे घट लिया उससे भिन्नहोके पटकी उपलब्धि होती है ततः तद्व्यतिरेकेणोपलभ्यमानत्व निश्चित साध्यका व्यापक हुआ, और साधन तो विमतमें है परन्तु साक्षात्कारविषयीभूतआत्मव्यतिरेकेण उपलभ्यमानत्व नहीं है अतः साधनाव्यापकत्वभी है । एवञ्च=उक्त अनुमानके दुष्ट होने पर, विमत, ईश्वरकी मायासे कल्पित नहीं है, ईश्वरके प्रति अपरोक्ष होनेसे, यदेवम्=जिसके-

प्रति जो अपरोक्ष होता है तदेवम्=वह उसकी मायासे कल्पित नहीं है, जैसे चैत्रके प्रति अपरोक्ष घट चैत्रकी मायासे कल्पित नहीं है; विमत जीवसे कल्पित नहीं है, जीवके सोनेपर भी अवस्थित होनेसे, आत्मवत्, असिद्धिः=जीवके सोनेपर अवस्थितत्वरूप हेतु स्वरूपासिद्ध है नच=नहीं, क्यों ? प्रत्यभिज्ञान=यदेव घटादिकं सुषुप्तेः प्राङ्मयानुभूतं तदेव सुषुप्त्यनन्तरमपि अनुभूयते, इत्याकारक सुप्तोत्थितके प्रत्यभिज्ञानसे, अदृष्टादिका अभाव होनेपर पुनरुत्थानके अयोगसेभी, यह भी खण्डित हुआ, आद्ये=आद्यानुमानमें ऐन्द्रजालिकके प्रति अपरोक्ष ऐन्द्रजालिक मायासे कल्पितमें व्यभिचार है=ऐन्द्रजालिकपुरुष स्वमायासे कल्पित आम्रवृक्षादिके छेदनमें तथा तदीय फलादिके ग्रहणमें प्रवृत्त हुआ देखा जाता है; आज कल विशेषतया न उपलब्ध होनेपरभी पूर्व कालमें मायासे सर्व प्रकारके पदार्थ रचे जातेथे और उनमें अर्थक्रियाकारित्वभी रहताथा, पुराणोंमें इस विषयकी कमी नहीं, हरिवंशादिमें आया है:—

ततो मायां परां चक्रे देवशत्रुः प्रतापवान् ।
सिंहान् व्याघ्रान् वराहांश्च तरक्षूनृक्षवानरान् ॥
मुमोच धनुरादाय प्रद्युम्नस्य रथोपरि ।
गन्धर्वास्त्रेण चिच्छेद सर्वांस्तान् खण्डशस्तदा ॥
प्रद्युम्नेन तु सा माया हता तां वीक्ष्य शम्बरः ।
अन्यां मायां मुमोचाथ दानवः क्रोधमूर्च्छितः ॥ इत्यादि

माया तथा अविद्याका अभेद होनेसे देहात्मैक्यमें व्यभिचार होनेसे भी=हेतु देहात्मैक्यमें है परन्तु आत्मामें अध्यस्तत्वाभावरूप साध्य नहीं है किन्तु अध्यस्तत्व ही है ॥ द्वितीये तु= द्वितीय अनुमानमें तो असिद्धि होनेसे दुष्ट है; प्रत्यभिज्ञासे प्रपञ्चके स्थायित्वके सिद्ध होनेसे असिद्धि नहीं है नच=असिद्धि नहीं है यह बात नहीं है; प्रत्यभिज्ञायाः=प्रत्यभिज्ञानिष्ठ सुषुप्तिमें स्थायित्वअसाधकत्वको दृष्टिसृष्टिसमर्थनमें वक्ष्यमाण होनेसे=प्रत्यभिज्ञा सुषुप्तिमें स्थायित्व नहीं सिद्धकर सकती है यह बात दृष्टिसृष्टिपक्षका जब समर्थन करेंगे तब कहेंगे । सुषुप्तिमें भी अदृष्टादिको कारणात्मना=कारणगतसंस्काररूपसे अवस्थित होनेसे पुनरुत्थानका संभव है।

मिथ्यात्वं आत्मान्यसर्ववृत्ति न, मिथ्यामात्रवृत्तित्वात्, शुक्तिरूप्यत्ववत् इत्यपि न; मिथ्यात्वन्यूनवृत्तित्वस्योपाधित्वात् मिथ्यात्वं च सदसद्विलक्षणत्वं, सद्विलक्षणत्वमात्रं वा । आद्ये सिद्धसाधनम्, तस्यात्मान्यसर्वमध्यपतितासद्वृत्तित्वाभावात् । द्वितीये तु हेतौ मिथ्यापदस्य सदसद्वैलक्षण्यपरत्वे स्वरूपासिद्धिः; सद्वैलक्षण्यरूपे पक्षे तुच्छसाधारणे सदसद्विलक्षणेतरावृत्तित्वरूपहेत्वभावात् । तस्यापि सद्वैलक्षण्यमात्रपरत्वे संदिग्धानैकान्तिकता; साध्याभाववत्यात्मभेदे हेतुसन्देहात् । अप्रयोजकत्वादिकं च पूर्वोक्तं दूषणमनुवर्तत एव । आत्मा, परमार्थसदन्यः, पदार्थत्वादनात्मवत् । न च कल्पितात्मप्रतियोगिकभेदेनार्थान्तरम्; कल्पितमिथ्यात्वेन मिथ्यात्वानुमानेऽपि सिद्धसाधनापत्तेरित्यपि न; व्यावहारिकपदार्थमादाय सिद्धसाधने अतिप्रसङ्गाभावात्, अनानन्दत्वस्योपाधित्वाच्च ।

मिथ्यात्व, आत्मासे भिन्न जो सर्व उसमें वृत्ति नहीं=आत्मासे भिन्न सर्वमें वृत्ति नहीं, मिथ्यामात्रमें वृत्ति होनेसे शुक्तिरूप्यत्ववत्, शुक्तिरूप्यत्वमें मिथ्यामात्रवृत्तित्वरूप हेतु और आत्मान्यसर्वमें अवृत्तित्वरूप साध्य रहता है। इत्यपि न=यह अनुमान भी निर्दोष नहीं, क्यों ? मिथ्यात्वसे न्यूनवृत्तित्वको उपाधित्व होनेसे=मिथ्यात्वन्यूनवृत्तित्व शुक्तिरूप्यत्वमें रह-गया, अतः निश्चित साध्यकी व्यापक उपाधि है, मिथ्यामात्रवृत्तित्वरूप हेतु मिथ्यात्व पर रहता है परन्तु मिथ्यात्वन्यूनवृत्तित्व नहीं रहता है, अतः साधनका अव्यापक है। च=और मिथ्यात्व क्या सदसद्विलक्षणत्वरूप है वा सद्विलक्षणत्व रूप है। प्रथमपक्षके अङ्गीकार करनेमें सिद्धसाधन है क्यों ? आत्मान्यसर्वके मध्यमें पतित जो असत् उसमें मिथ्यात्वके वृत्तित्वका अभाव होनेसे=असत्में तो मिथ्यात्व हमलोग नहीं मानते हैं, अतः सिद्ध साधन है। द्वितीये तु=सद्विलक्षणत्वको ही मिथ्यात्व कहो तो हेतुमें मिथ्यापदको सदसद्वैलक्षण्यपरत्व होनेपर स्वरूपासिद्धि है; तुच्छसाधारण सद्वैलक्षण्यरूप पक्षमें सदसद्विलक्षणेतरावृत्तित्वरूप हेतुका अभाव है, 'मिथ्यामात्रवृत्तित्वात्' का अर्थ सदसद्विलक्षणेतरावृत्तित्व है, मिथ्याशब्दका अर्थ सदसद्विलक्षण है मात्र शब्दका अर्थ इतरावृत्तित्वरूप है।=यहांपर सद्वैलक्षण्यरूप पक्ष असत्पदार्थमें भी है परन्तु उस पक्षके अपर यह हेतु नहीं क्योंकि सदसद्विलक्षण हुआ शुक्ति-रूप्यादि तदितर हुआ असत्पदार्थ तन्निरूपित वृत्तित्व ही सद्वैलक्षण्यके ऊपर है, अवृत्तित्व नहीं; अतः हेतुस्वरूपासिद्ध है। तस्यापि=हेतुघटक मिथ्यापदको भी सद्वैलक्षण्यमात्रपरत्व होनेपर संदिग्धानैकान्तिकता है; क्यों ? साध्याभाववत् जो आत्मप्रतियोगिक भेद उस भेदमें हेतुका संदेह होनेसे=आत्माका भेद आत्मान्य सर्व वस्तुओंमें रहता है, अतः संदिग्धानैकान्ति-कता है, अप्रयोजकत्वादि पूर्वोक्त दोष तो अनुवर्त्तमान हैं हीं, आदिपदसे, सत्यत्व, प्रातिभासि-कसे अन्य सर्वमें वृत्ति नहीं है, सत्यमात्रवृत्ति होनेसे आत्मत्ववत् इत्यादि आभाससाम्यका ग्रहण है। आत्मा, परमार्थसत्से भिन्न है, पदार्थ होनेसे, अनात्मवत्। कल्पित जो आत्मप्रति-योगिकभेद उसभेदसे अर्थान्तर है=कल्पित आत्मप्रतियोगिक भेद आत्मामें है ही और वह परमार्थसत्प्रतियोगिक भी है अतः सिद्धसाधन है, नच=सिद्धसाधनरूप अर्थान्तर नहीं है, कल्पित मिथ्यात्वसे मिथ्यात्वके अनुमानमें भी सिद्धसाधनकी आपत्तिसे= कल्पित मिथ्यात्व हमारे मतसे पक्षमें सिद्ध ही है अतः सिद्धसाधनकी आपत्ति है इत्यपि न=यह अनुमान भी ठीक नहीं, क्यों ? व्यावहारिक पदार्थको लेके सिद्धसाधनोद्भावनमें अतिप्रसङ्गका अभाव होनेसे, अनानन्दत्वको उपाधित्व होनेसे भी,=परमार्थसत्का भेद अनात्मामें है वहां अनानन्दत्व भी है, क्योंकि आत्मेतरमें आनन्दत्व नहीं माना जाता है, अतः उपाधिसाध्यकी व्यापक है, साधन आत्मामें है परन्तु अनानन्दत्वरूप उपाधि नहीं अतः साधनकी अव्यापक है।

अथ आत्मा, यावत्स्वरूपमनुवर्तमानानात्मवान्, यावत्स्वरूपमनुवर्तमानभावरूपा-नात्मवान् वा स्वज्ञानाबाध्यानात्मवान्, स्वज्ञानाबाध्यभावरूपानात्मवान्वा, पदार्थत्वात्, भावत्वाद्वा घटादिवत् इति। अत्र पञ्चमप्रकाराविद्यानिवृत्त्यभ्युपगमपक्षे सिद्धसाधनपरि-

द्वाराय साध्ययोर्भावरूपपदमनात्मविशेषणमित्यपि मन्दम्। 'यावत्स्वरूप' मित्यस्य यत्किंचित्स्वरूपपरत्वे सिद्धसाधनात् आत्मस्वरूपपरत्वे साध्याप्रसिद्धेः। नहि यावदात्मस्वरूपमनुवर्तमानोऽनात्मा प्रसिद्धोऽस्ति; तथा सत्यनुमानवैयर्थ्यात्। अथ–स्वरूपपदस्य समभिव्याहृतपरत्वाद्व्याप्तिग्रहदशायां दृष्टान्तस्वरूपं पक्षधर्मताग्रहदशायां चात्मस्वरूपमेव प्राप्यत इति न साध्याप्रसिद्धिर्न वा सिद्धसाधनमिति– चेन्न; शब्दस्वभावोपन्यासस्यानुमाने अनुपयोगात्। स्वज्ञानाबाध्येत्यत्र स्वशब्देऽपि तुल्योऽयं दोषः।

अनुमानान्तरका उपन्यास करते हैं अथेति। आत्मा, यावत्पर्य्यन्तस्वरूप है तावत्पर्य्यन्त अनुवर्त्तमान जो अनात्मा तद्वान् है, वा=या यावत्स्वरूपं अनुवर्त्तमान जो भावरूप अनात्मा तादृश अनात्मवान् है, साध्यान्तरका निर्देश करते हैं स्वेति। स्व=आत्मज्ञानसे अबाध्य जो अनात्मा तद्वान् है, वा=अथवा स्वज्ञानसे बाध्य जो भावरूप अनात्मा तद्वान् है, पदार्थ होनेसे, वा=या भावरूप होनेसे, घटादिवत्, अत्र=इन प्रयोगोंमें पञ्चमप्रकाराविद्यानिवृत्तिका अभ्युपगम जिस पक्षमें है उस पक्षमें सिद्धसाधनवारणके लिए दोनों साध्योंमें भावरूप पद अनात्माका विशेषण है=अविद्यानिवृत्ति पञ्चमप्रकाररूपा है, इस पक्षमें यावत् आत्मस्वरूप है तावत् अनुवर्तमान उक्त अविद्यानिवृत्तिरूप अनात्म ब्रह्मवादिसम्मत है ही, अतः सिद्धसाधन होगा, न्यायमकरन्दसम्मत पञ्चम प्रकारका निरूपण सरलामें हो चुका है। इत्यपिमन्दम्=यह कथन भी असङ्गत है। क्यों? 'यावत्स्वरूपम्' इस अंशको यत्किञ्चित्स्वरूपपरत्व होनेपर सिद्ध साधन होनेसे=यत्किञ्चित्स्वरूपसे घटका स्वरूप ले लिया वह जबतक रहता है तबतक अनुवर्त्तमान अनात्मा हुआ घटका परिमाणादि तद्वान् आत्मा अधिष्ठानता संबन्धसे है ही अतः सिद्धसाधन है। आत्मस्वरूपपरत्वहोनेपर साध्यकी अप्रसिद्धि है, क्योंकि जब तक आत्मा है तबतक अनुवर्त्तमान कोई अनात्मा प्रसिद्ध नहीं है, तथासति=तादृश अनात्मके प्रसिद्ध होनेपर अनुमानका वैयर्थ्य है, स्वरूप पदको ससमभिव्याहृतपरत्व होनेसे, व्याप्तिग्रहणकालमें दृष्टान्तका स्वरूप उससे प्राप्त किया जाता है, और हेतुमें पक्षधर्मताग्रहकालमें तो आत्मस्वरूप ही प्राप्त किया जाता है, इति=अतः साध्यकी अप्रसिद्धि भी नहीं है और सिद्धसाधन भी नहीं है, इति चेन्न; क्यों? शब्दके स्वभावके उपन्यासका अनुमानमें फल न होनेसे,=शब्दके स्वभावका उपन्यास शाब्दबोधस्थलमें उपयुक्त होगा अनुमानस्थलमें नहीं, 'स्वज्ञानाबाध्य' यहांपर स्वशब्दमें भी यह दोष तुल्य है।

अतएव—विमता बन्धनिवृत्तिः, स्वप्रतियोगिविषयविषयकज्ञानाबाध्यानात्मसमकालीना, उक्तज्ञानाबाध्यभावरूपानात्मसमानकालीना वा; बन्धनिवृत्तित्वात्; निगलबन्धनिवृत्तिवदित्यपि–निरस्तम्; पक्षदृष्टान्तयोर्बन्धपदार्थस्यैकस्याभावेन स्वरूपासिद्धिसाधनवैकल्यान्यतरापातात्। स्वपदे चोक्तः साध्याप्रसिद्धिदोषः। हेतौ च बन्धेतिविशेषणवैयर्थ्यात् व्याप्यत्वासिद्धिः। अप्रयोजकत्वं च कस्याश्चिन्निवृत्तेरनात्मसमानकालीनत्व-

दर्शनं निवृत्तिमात्रस्य तथात्वसाधने; संसारकालीनाया दुःखनिवृत्तेः समानाधिकरण-दुःखप्रागभावकालीनत्वदर्शनमिव दुःखनिवृत्तिमात्रस्य तथात्वसाधने ।

अतएव=उक्त दोषके सद्भावसे ही, विमता बन्धनिवृत्ति, स्वपदसे बन्धकी निवृत्तिका ग्रहण है उसका प्रतियोगी है बन्ध, उस बन्धका विषय है आत्मा, उस आत्मरूपबन्धविषय-विषयक जो ज्ञान—आत्मसाक्षात्कार इससे अबाध्य जो अनात्मा तादृश अनात्मसमानकालीनत्व साध्य है, वा=या उक्त ज्ञानसे अबाध्य जो भावरूप अनात्मा तादृश अनात्मसमानकालीनत्व साध्य है, बन्धकी निवृत्ति होनेसे निगलबन्धकी निवृत्तिवत्, निगलबन्धनिवृत्तिका प्रतियोगी है—निगलबन्ध उसका विषय हुआ बन्ध्यपुरुष तद्विषयक ज्ञान हुआ उक्त बन्ध्यपुरुषका साक्षात्कार तत्समानकालीन अनात्मा हुए घटादिक तादृश घटादिसमानकालीनत्व निगलबन्धनिवृत्तिमें है ही, इत्यपि निरस्तम्=यहभी खण्डित हुआ, अत एव शब्दका विवरण करते हैं पक्षेति । पक्ष तथा दृष्टान्त इन दोनोंमें एक बन्धपदार्थका अभाव होनेसे स्वरूपासिद्धि, साधनवैकल्य इन दोनोंमेंसे अन्यतरका आपात होनेसे । दृष्टान्तीय बन्ध लेनेसे पक्षमें स्वरूपासिद्ध है, और पक्षीय बन्धलेनेसे दृष्टान्तमें साधनवैकल्य है । च=और स्वपदमें साध्याप्रसिद्धि दोष कहा है=स्वपदको दृष्टान्तपरत्व होनेपर निगलबन्धके विषयकी अप्रसिद्धि है, पक्षपरत्व होनेपर अज्ञानका जो विषय तादृश विषयविषयकज्ञानाबाध्यानात्माकी अप्रसिद्धि है, हेतुमें ' बन्ध ' इस विशे-षणका वैयर्थ्य होनेसे व्याप्यत्वासिद्ध है । जैसे संसारकालीन दुःखनिवृत्तिको समानाधिकरण-दुःखप्रागभावकालीनत्वका दर्शन दुःखनिवृत्तिमात्रके तथात्वसाधने=समानाधिकरणदुःख प्रागभावकालीनत्वके साधनमें अप्रयोजक है तैसे किसी दुःखनिवृत्तिको अनात्मसमानका-लीनत्वका दर्शन निवृत्तिमात्रके तथात्वसाधने=अनात्मसमानकालीनत्वसाधनमें अप्रयोजक है=जैसे संसारकालीन दुःख की निवृत्ति स्वसमानाधिकरणदुःखप्रागभावकालीना देखी गई है एतावता यावत् निवृत्तियां स्वसमानाधिकरणदुःखप्रागभावसमानकालीना हीं होती हैं ऐसा नियम नहीं किया जा सकता, तैसे किसी बन्धकी निवृत्तिमें अनात्मसमानकालीनत्व देखनेसे सभी बन्धकी निवृत्तियाँ अनात्मसमानकालीनाहीं होती हैं ऐसा नियम भी नहीं किया जा सकता है, शास्त्रबाधको उभयत्र समान होनेसे ।

नन्वेवं—सामान्यानुमानेषु निराकृतेषु विशिष्यानुमानं भविष्यति । आत्मधीः, न स्वविषयविषयकधीबाध्या, धीत्वात् शुक्तिधीवत् । इत्यपि बालभाषितम् । स्वविरोध्य-विषयकप्रत्ययविषयकत्वस्योपाधिकत्वात्, अन्धोऽयं रूपज्ञानवानित्यन्धस्य रूपविषयतया कल्पितं यत् ज्ञानं तस्य रूपं नान्धगम्यमिति स्वविषयविषयकप्रत्ययबाध्यत्वदर्शनेन व्यभिचारात् कल्पितत्वाच्चत्र तद्बाधने भक्तेऽपि वृत्तेः कल्पितत्वं समम् । धीपदेन चैतन्य-मात्रविवक्षायां तु सिद्धसाधनमेव । आत्माधिष्ठानकभ्रमहेतुः, न स्वकार्यभ्रमाधिष्ठान-ज्ञानबाध्यः, भ्रमहेतुत्वात्, यदेवं तदेवम्, यथा शुक्त्यधिष्ठानकभ्रमहेतु—काचादीत्यपि न

साधु; व्यावृत्ताकाराधिष्ठानज्ञानानवधित्वस्य स्वकार्यभ्रमाधिष्ठानानारोपितत्वस्य वा उपाधित्वात्, दूरादिदोषादुपलादौ यत्र चाकचक्यकल्पना तेन चाकचक्यदोषेण शुक्ताविव रजतकल्पना तत्राधिष्ठानज्ञानेन चाकचक्यरूप्ययोरुभयोरपि बाधदर्शनेन व्यभिचाराच्च।

शङ्कते नन्विति । एवम्=उक्त प्रकारसे सामान्यानुमानोंके निराकृत होने परभी विशेषानुमान होगा, आत्मधी:=आत्मव्यवहार की प्रयोजिका धी, स्वका जो विषय तादृशविषयविषयक जो धी उस धीसे बाध्य नहीं है, स्वपदसे उक्तधीका ग्रहण है उसका विषय आत्मा है तादृश आत्मविषयक धी वेदान्तजन्यधी उस धीसे अबाध्यत्व साध्य है धीत्वात्=धी होनेसे, शुक्तिधीवत् शुक्तिधी स्वविषयविषयकधीसे बाध्य नहीं होती है और धीत्वरुप हेतु भी उसमें है, इस अनुमानसे अनात्मविशेषरूप आत्मधीमें मिथ्यात्व न सिद्ध होनेसे भी द्वैतापत्ति है, इत्यपि=यह भी बालभापितम्=आपाततः श्रवणकरनेमें रमणीय है वस्तुतः निस्सार है । क्यों ? स्वविरोध्यविषयक-प्रत्ययविषयकत्वको उपाधि होनेसे, स्वपदसे शुक्तिधीका ग्रहण है तिसका विरोधी शुक्त्यभावज्ञान है तद्विषयक जो प्रत्यय (शुक्तिविषयकज्ञानवानहम्) इत्याकारक प्रत्यय तादृशप्रत्ययविषयकत्व शुक्तिधीमें है अतः साध्यकी व्यापक है यह उपाधि, और साधनकी अव्यापक है क्योंकि आत्मधीका विरोधी वृत्त्यारुढ चेतन है तद्विषयकप्रत्ययविषयकत्व आत्मधीमें है, यहांपर स्वविरोध्यविषयत्व, जडत्वव्याप्याधिष्ठानविषयत्व, आत्मज्ञानेतरज्ञाननिवर्त्याधिष्ठानविषयत्व, अविद्यातत्प्रयुक्तान्यतरविषयत्व, सविलासाज्ञाननिवर्तकवृत्तिविषयभिन्नविषयत्व इत्यादि बहुतसी उपाधियां लग सकती हैं । यह अन्धा रूपविषयकज्ञानवाला है, इस रीतिसे अन्धेका रूपविषयत्वेन कल्पित जो ज्ञान है तस्य=उस ज्ञानका रूप अन्धसे गम्य=जाननेके लायक नहीं है, इत्याकारक स्वविषयविषयकप्रत्ययसे बाध्यत्व देखनेसे व्यभिचार है अतः ऐसा नियम नहीं करसकते हैं कि स्वका स्वविषयविषयकधीसे बाध नहीं होता है, कल्पित होनेसे तत्र=उक्तस्थलमें तद्बाधने=रूपज्ञानका बाध होता हो तो प्रकृतमें भी आत्मधीरूप वृत्तिको कल्पितत्व समान है, वृत्तिपदसे चैतन्यमात्रकी विवक्षा होतो सिद्धसाधनही है, अत्र अनुमानान्तरका उपन्यास करते हैं आत्मेति । आत्मा है अधिष्ठान जिसका ऐसा जो भ्रम उस भ्रमका हेतु, स्वकार्य=स्वपदसे लिया अज्ञानरूप हेतु उसका कार्यभूत जो भ्रम=अर्थाध्यास और ज्ञानाध्यास उस भ्रमका अधिष्ठान जो आत्मा उस आत्माके ज्ञानसे बाध्य नहीं है भ्रमका हेतु होनेसे, यदेवम्=जो भ्रमका हेतु होता है तदेवम्=वह स्वकार्यभ्रमाधिष्ठानके ज्ञानसे बाध्य नहीं होता है, जैसे शुक्ति है अधिष्ठान जिसकी एवम्भूत जो भ्रम उस भ्रमके हेतुभूतकाचादि स्वकार्यभ्रमाधिष्ठानशुक्तिज्ञानसे बाध्य नहीं होते हैं, इत्यपि न साधु=यह अनुमान भी निर्दोप नहीं है क्यों ? व्यावृत्ताकाराधिष्ठानज्ञानानवधित्वको या स्वकार्यभ्रमाधिष्ठानानारोपित्वको उपाधित्व होनेसे- व्यावृत्ताकार जो अधिष्ठानज्ञान तादृश ज्ञानका अनवधित्व काचादिमें है अज्ञानमें नहीं अज्ञानमें तो तादृश ज्ञानावधित्व ही है, तैसे स्वकार्य्यभ्रमाधिष्ठानमें अनारोपितत्व काचादिमें है अज्ञानमें तो स्वकार्य्य भ्रमके अधिष्ठानमें

आरोपितत्व ही हैं, अतः दोनों उपाधियाँ साध्यकी व्यापक तथा साधनकी अव्यापक हैं, दूरादिरूप दोषसे जहां पाषाणादिमें चाकचक्यकी कल्पना हो और उस चाक्यचक्य दोषसे शुक्तिकी तरह रजतकी कल्पना हो तहां अधिष्टानज्ञानसे चाकचक्य और रूप्य दोनोंका बाध देखनेसे व्यभिचार भी है=ऐसे स्थलमें स्वकार्य्यभ्रमाधिष्ठानके ज्ञानसे स्वका बाध देखा जाता है अतः आपका बताया हुआ नियम व्यभिचारी भी है।

ब्रह्मान्यानादि, परमार्थसत्, अनादित्वात्, ब्रह्मवदित्यपि न भद्रम्; ध्वंसाप्रतियोगित्वस्योपाधित्वात्। ब्रह्म, देशकालसंबन्धं विना नावतिष्ठते, पदार्थत्वात्, घटवदित्यपि न; कालसंबन्धं विना नावतिष्ठत इत्यस्य यदा ब्रह्म तदावश्यं कालसंबन्ध इत्येवं–रूपा व्याप्तिरित्यर्थः। तथा च सुस्थिरं सिद्धसाधनम्। न हि यस्मिन् काले ब्रह्म तस्मिन् काले ब्रह्मणः कालसंबन्धो नास्ति। एवं यत्रात्मा तत्र कालसंबन्ध इति दैशिकव्याप्तावपि सिद्धसाधनम् न हि देशकालासंबन्धः कदाप्यस्ति। परममुक्तौ तु न देशो न काल इति सुस्थिरं सिद्धसाधनम्। ब्रह्मान्यद्वेदैकगम्यं धर्मादि, परमार्थसत्, श्रुतितात्पर्यविषयत्वात्, ब्रह्मवदित्यपि न साधु; पारमार्थिकत्वेन श्रुतितात्पर्यविषयत्वस्योपाधित्वात्। साक्षिवेद्यं सुखादि, परमार्थ सत्, अनिषेध्यत्वेन दोषाजन्यज्ञानं प्रति साक्षाद्विषयत्वात्, आत्मवदित्यपि न; शुक्तिरूप्यादिषु व्यभिचारात्। तेषां दोषजन्यवृत्तिविषयत्वेऽपि दोषाजन्यसाक्षिविषयत्वात्, शुद्धस्य वृत्तिविषयत्वानभ्युपगमे दृष्टान्तस्य साधनविकलत्वाच्च। दोषजन्यज्ञानाविषयत्वविवक्षायां वाऽसिद्धो हेतुः; साक्ष्यवच्छेदिकाया अविद्यावृत्तेर्दोषजन्यत्वात्। असद्गोचरशाब्दज्ञानात्मकविकल्पस्य दोषाजन्यत्वेनासति व्यभिचाराच्च। आत्मनो वृत्तिविषयत्वाभ्युपगमे दोषजन्यदेहात्मैक्यभ्रमविषयत्वात् साधनविकलो दृष्टान्तः, तदनभ्युपगमे तु अविषयत्वमात्रस्यैव परमार्थसत्त्वसाधकत्वोपपत्तौ दोषजन्यज्ञानेतिविशेषणवैयर्थ्याद्व्याप्यत्वासिद्धिः, तावन्मात्रं च पक्षे स्वरूपासिद्धमित्यन्यत्र विस्तरः।

ब्रह्मसे भिन्न अनादि, परमार्थसत् है, अनादि होनेसे, ब्रह्मवत्। यह अनुमान भी निर्दोष नहीं है; क्यों? ध्वंसाप्रतियोगित्वको उपाधित्व होनेसे, ब्रह्ममें परमार्थसत्त्वरूप साध्य है, और ध्वंसका अप्रतियोगित्व भी है, अतः उपाधिनिश्चित साध्यकी व्यापक है, और साधन अज्ञानादिमें है वहां ध्वंसाप्रतियोगित्व नहीं किन्तु ध्वंसप्रतियोगित्व ही है, अतः साधनकी अव्यापक है। ब्रह्म, देश तथा कालके सम्बन्ध विना अवस्थित नहीं होता है; पदार्थ होनेसे, घटवत्, यह अनुमान भी ठीक नहीं है; कालके संबन्ध विना अवस्थित नहीं होता है, इसका जिस कालमें ब्रह्म है उस कालमें अवश्यही कालसम्बन्ध है, इत्याकारिका व्याप्तिरूप अर्थ है, फलतः सुस्थिर हुआ सिद्धसाधन, क्योंकि, जिस कालमें ब्रह्म है उस कालमें ब्रह्मका सम्बन्ध नहीं है यह बात नहीं है। एवम्=इसी रीतिसे जहां आत्मा है वहां देशका सम्बन्ध है, इस दैशिक व्याप्तिमें भी सिद्धसाधन है कदापि=किसीभी कालमें देशकालका असम्बन्ध नहीं है; परम-

मुक्तिमें न देश है न काल है अतः सुस्थिर हुआ सिद्धसाधन। ब्रह्मसे अतिरिक्त केवल वेदसे गम्य धर्मादि, परमार्थसत् हैं, श्रुतिके तात्पर्य्यके विषय होनेसे, ब्रह्मवत्, यह अनुमानभी निर्दोष नहीं; क्यों? पारमार्थिकत्वेन श्रुतितात्पर्य्यविषयत्वको उपाधित्व होनेसे, ब्रह्ममें परमार्थसत्त्वरूप साध्य है, और पारमार्थिकत्वेन श्रुतितात्पर्य्यविषयत्व भी है, अतः उपाधि साध्यकी व्यापक है, साधन धर्मादिमें है, परन्तु वहांपर अवान्तरत्वेन श्रुतितात्पर्य्यविषयत्व होनेसे, पारमार्थिकत्वेन श्रुतितात्पर्य्यविषयत्व नहीं है, अतः उपाधि साधनकी अव्यापक है। साक्षीसे वेद्य सुखादि, परमार्थसत् है, अनिषेध्यत्वेन दोषाजन्यज्ञानके प्रति साक्षात् विषयत्व होनेसे, आत्मवत्, इत्यपि न=यह अनुमानभी शुद्ध नहीं, क्यों? शुक्तिरूप्यादिमें व्यभिचार होनेसे, तेषाम्= शुक्तिरूप्यादिको दोषजन्यवृत्तिविषयत्व होनेपर भी दोषसे अजन्य जो साक्षी तद्विषयत्व होनेसे, शुद्धको वृत्तिविषयत्वका अनभ्युपगम होनेपर–जिस पक्षमें शुद्धमें वृत्तिविषयत्व नहीं माना जाता है उस पक्षमें, दृष्टान्तनिष्ठसाधनविकलता भी है; दोषसे जन्य जो ज्ञान तादृश ज्ञानके अविषयत्वकी विवक्षा होनेपर तो हेतु असिद्ध है, क्यों? साक्षिचेतनकी अवच्छेदिका जो अविद्यावृत्ति उस अविद्याकी वृत्तिको दोषजन्यत्व होनेसे, असत्विषयक जो शाब्दज्ञानात्मक विकल्प उस विकल्पको दोषसे अजन्य होनेसे असत्में व्यभिचारसे भी। आत्माको वृत्तिविषयत्वाभ्युपगम पक्षमें, दोषजन्य जो देहात्मैक्यभ्रम उस भ्रमका विषयत्व होनेसे दृष्टान्त साधनसे विकल है। आत्माको वृत्तिविषयत्वका अनभ्युपगम होनेपर तो अविषयत्वमात्रनिष्ठ ही परमार्थ सत्त्वके साधकत्वकी उपपत्तिसे, 'दोषजन्यज्ञान' इस विशेषणका वैयर्थ्य होनेसे व्याप्यत्वासिद्धि है, तावन्मात्रं च=अविषयत्वमात्र तो पक्षमें स्वरूपासिद्ध है, इस अर्थका अन्यत्र विस्तार है।

विमतं, परमार्थसत्, स्वविषयज्ञानात्पूर्वभावित्वात्, आत्मवदित्यपि न, दृष्टिसृष्टिपक्षे असिद्धेः। विषमव्याप्तस्यानादित्वस्योपाधित्वाच्च। अन्योन्याभावातिरिक्तैतद्घटसमानाधिकरणैतद्घटप्रतियोगिकाभाववत्त्वं, एतद्घटसमानाधिकरणावृत्ति, अन्योन्याभावातिरिक्तैतद्घटसमानाधिकरणैतद्घटप्रतियोगिकाभावमात्रवृत्तित्वात्, एतद्घटप्रागभावत्ववत्, व्यधिकरणधर्मावच्छिन्नाभावपक्षे व्यधिकरणधर्मानवच्छिन्नेत्यपि विशेषणीयम्। अत्र च स्वसमानाधिकरणः स्वसमानकालीनो योऽत्यन्ताभावस्तद्प्रतियोगित्वलक्षणसत्त्वसिद्धिरित्यपि न साधु; साधनावच्छिन्नसाध्यव्यापकस्यैतद्घटप्रतियोगिकजन्यजनकान्यतरमात्रवृत्तित्वस्योपाधित्वात्। न च–पक्षीभूतधर्मस्यात्यन्ताभाववृत्तित्वसन्देहे साधनाव्यापकत्वसन्देह इतिवाच्यम्; विपक्षसाधकतर्कानवतारदशायां सन्दिग्धोपाधेरपि दूषणत्वसम्भवात्, घटात्यन्ताभावत्वे च व्यभिचारात्, संयोगसम्बन्धेन घटवत्यपि भूतले समवायसंबन्धेन घटात्यन्ताभावसत्त्वात् साध्याभाववति हेतोर्वृत्तेरित्यलमति विस्तरेण॥

इति अद्वैतसिद्धौ विश्वसत्यत्वानुमानभङ्गः॥

विमतं=पक्षत्वेन अभिमत, परमार्थसत् है, स्वविषयक जो ज्ञान उस ज्ञानसे पूर्ववृत्ति होनेसे आत्मवत्, इत्यपि न=यह अनुमान भी ठीक नहीं है, क्यों ? दृष्टिसृष्टिपक्षमें हेतुकी असिद्धिसे, विषम व्याप्त अनादित्वको उपाधित्व होनेसे भी, आत्मामें साध्य है वहांपर अनादित्वरूपोपाधिभी है, अतः उपाधि साध्यकी व्यापक है, हेतु घटादिमें है वहांपर अनादित्व नहीं है, अतः साधनकी अव्यापक है, अनादित्व अविद्यादिमें भी है परन्तु वहांपर परमार्थ सत्त्व नहीं अतः उपाधि साध्यकी व्याप्य नहीं इसी लिए इसे विषयव्याप्त कहा है । अन्योन्याभावसे भिन्न जो एतद्घटप्रतियोगिक अभाव तादृश अभावमें रहनेवाला अभावत्व, एतद्घटके समानाधिकरण जो पदार्थ उसमें अवृत्ति है, अन्योन्याभावसे अतिरिक्त एतद्घटसमानाधिकरण एतद्घटप्रतियोगिक अभावमात्रमें वृत्ति होनेसे, एतद्घटप्रागभावत्ववत्, प्रागभावमें अन्योन्याभावसे अतिरिक्त एतद्घटसमानाधिकरण जो एतद्घटप्रतियोगिक कपालवृत्ति प्रागभावमें वृत्तित्व है, और एतद्घटसमानाधिकरणमें अवृत्तित्व भी है क्योंकि घटकालमें घटका प्रागभाव नहीं रहता है किन्तु घटादिक रहते हैं तदवृत्तित्व प्रागभावत्वमें है ही, तथा च दृष्टान्तमें गृहीतव्याप्तिक उक्त हेतुसे पक्षमें साध्यका अनुमान होता है, व्यधिकरणधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताक अभाव जिस पक्षमें माना जाता है उस पक्षमें अन्योन्याभावसे अतिरिक्त एतद्घटसमानाधिकरणएतद्घटप्रतियोगिक अभावत्व व्यधिकरणधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकअभाववृत्ति मिलेगा. उसमें उक्त हेतु रहेगा, परन्तु एतद्घटसमानाधिकरणमें अवृत्तित्वरूप साध्य नहीं मिलेगा क्योंकि व्यधिकरणधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताक अभाव केवलान्वयी होता है अतः घटाधिकरणमें भी मिलेगा, तथा च व्यभिचारवारणके लिए कहते हैं, व्यधिकरणेति । व्यधिकरणधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकअभावपक्षमें व्यधिकरणधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकभिन्नत्वेन भी विशेषणीय है, अर्थात् अभावांशमें उक्त व्यधिकरणधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताक अभावका भेद निवेशनीय है । अत्र च=इस अनुमानमें तो स्वसमानाधिकरण जो स्वसमानकालीन अत्यन्ताभाव तादृश अत्यन्ताभावका अप्रतियोगित्वलक्षण सत्त्वकी सिद्धि है, इत्यपि न साधु=यह अनुमान भी निर्दोष नहीं है; क्यों ? साधनावच्छिन्नसाध्यव्यापकएतद्घटप्रतियोगिकजन्यजनकान्यतरमात्रवृत्तित्वको उपाधित्व होनेसे;= अन्योन्यभावातिरिक्तएतद्घटसमानाधिकरणएतद्घटप्रतियोगिकअभावमात्रवृत्तित्व साधन है इस साधनसे अवच्छिन्न एतद् घटसमानाधिकरणावृत्तित्वरूप साध्य प्रागभावत्व और प्रध्वंसाभावत्वके ऊपर रहता है वहांहींपर एतद्घटप्रतियोगिकजन्यजनकान्यतरमात्रवृत्तित्व रहता है, तथा च उपाधि उक्तविध साध्यकी व्यापक है, और साधन तो उक्तविध घटात्यन्ताभावमें भी रहता है परन्तु वहां उपाधि नहीं, अतः साधनकी अव्यापक है, एतद्घटप्रतियोगिकजन्यशब्दसे प्रध्वंसाभाव लिया जाता है, और एतद्घटप्रतियोगिकजनक शब्दसे प्रागभाव लिया जाता है । पक्षीभूतधर्मनिष्ठ अत्यन्ताभाववृत्तित्वका सन्देह होनेपर उपाधिमें साधनके अव्यापकत्वका सन्देह है इति न च वाच्यम्; क्यों ? विपक्षसाधक तर्कके अनवतार दशामें संदिग्ध उपाधिको भी दूषणत्वका संभव होनेसे । च=और घटात्यन्ताभावत्वमें व्यभिचार होनेसे भी यह अनुमान दुष्ट है=व्यभिचारका स्पष्टीकरण करते हैं संयोगेति । संयोग सम्बन्धसे

घटवाले भूतलमें भी समवाय सम्बन्धसे घटात्यन्ताभावका सत्त्व होनेसे एतद्घटाधिकरणवृत्तिकमें जो अवृत्तित्व तद्रूप जो साध्य तादृश साध्याभाववत्में हेतुको वृत्ति होनेसे, अतिविस्तरसे विशेष फल नहीं=जो कुछ कहा गया है द्वैतीके प्रयोगोंको लेके उसीसे सुचतुर ब्रह्मवादित्वचुञ्चु बहुविधसुचारु कल्पतायें कर सकेंगे अतः अतिविस्तरकी इसविषयमें अत्र आवश्यकता नहीं।

इति सरलायां विश्वसत्यत्वानुमानभङ्गः।

अथ मिथ्यात्वे विशेषतोऽनुमानानि ।

मिथ्यात्वे च विशेषतोऽनुमानानि (१) ब्रह्मज्ञानेतराबाध्यब्रह्मान्यासत्त्वानधिकरणत्वं पारमार्थिकसत्त्वाधिकरणावृत्ति, ब्रह्मावृत्तित्वात्, शुक्तिरूप्यत्ववत्, परमार्थसद्भेदवच्च, (२) विमतं, मिथ्या, ब्रह्मान्यत्वात्, शुक्तिरूप्यवत्, (३) परमार्थसत्त्वं, स्वसमानाधिकरणान्योन्याभावप्रतियोग्यवृत्ति, सदितरावृत्तित्वात्, ब्रह्मत्ववत्, (४) ब्रह्मत्वमेकत्वं वा सत्त्वव्यापकम्, सत्त्वसमानाधिकरणत्वात्, असद्वैलक्षण्यवत्, (५) व्याप्यवृत्तिघटादिः, जन्याभावातिरिक्तस्वसमानाधिकरणाभावमात्रप्रतियोगी, अभावप्रतियोगित्वात्, अभिधेयत्ववत् । अभिधेयत्वं हि परमते केवलान्वयित्वादन्योन्याभावमात्रप्रतियोगी । स च समानाधिकरण एव, अस्मन्मते तु मिथ्यैवेति, नोभयथापि साध्यवैकल्यम् । (६) अत्यन्ताभावः, प्रतियोग्यवच्छिन्नवृत्तिः, नित्याभावत्वादन्योन्याभाववत् । (७) अत्यन्ताभावत्वं प्रतियोग्यशेषाधिकरणवृत्तिमात्रवृत्ति, प्रतियोग्यवच्छिन्नवृत्तिमात्रवृत्ति वा, नित्याभावमात्रवृत्तित्वात्, अन्योन्याभावत्ववत् ।

अथ सरलयां मिथ्यात्वे विशेषतोऽनुमानानि ।

मिथ्यात्वमें विशेषतः अनुमान दिखलाये जाते हैं। ब्रह्मविषयज्ञानसे इतरसे अबाध्य और ब्रह्मसे अन्य ऐसा जो असत्त्वानधिकरण तद्वृत्ति जो उक्त असत्त्वानधिकरणत्व वह पारमार्थिक सत्त्वाधिकरणमें अवृत्ति है, ब्रह्ममें अवृत्ति होनेसे, शुक्तिरूप्यत्ववत्=शुक्तिरूप्यत्व ब्रह्ममें अवृत्ति है तथा परमार्थसत्त्वाधिकरणमें भी अवृत्ति है अतः हेतुसाध्य दोनोंके रह जानेसे दृष्टान्तता है, और परमार्थसत्प्रतियोगिकभेदवत्=परमार्थसत्प्रतियोगिक भेद परमार्थसदन्य सर्व पदार्थोंमें रहता है, ब्रह्मको परमार्थसत् होनेसे उसमें उक्त भेद नहीं रह सकता है फलतः ब्रह्मावृत्तित्वरूप हेतु है, और परमार्थसत्त्वाधिकरणनिरूपितवृत्तित्वाभावरूपसाध्यभी है अतः इसे भी दृष्टान्तता है। विमत, मिथ्या है, ब्रह्मप्रतियोगिकभेदवत् होनेसे, शुक्तिरूप्यवत्। परमार्थ सत्त्व, स्वसमानाधिकरण जो अन्योन्याभाव तादृश अन्योन्याभावके प्रतियोगीमें अवृत्ति है, सत्से इतरमें अवृत्ति होनेसे, ब्रह्मत्ववत्। इस अनुमानसे एक पदार्थमें ही परमार्थ सत्त्व सिद्ध होता है इतरोंमे अर्थतः मिथ्यात्व। ब्रह्मत्व, या एकत्व, सत्त्वका व्यापक है—सत्त्व इसको छोड़कर नहीं रहता है, सत्त्वके समानाधिकरण होनेसे, असत्प्रतियोगीकवैलक्षण्यवत्, असत्वैलक्षण्यमें सत्त्वसमानाधिकरणरूप हेतु रहता है, और सत्त्वका व्यापकत्व भी है=असद्वैलक्षण्यको छोड़कर सत्त्व नहीं रहता

है, व्याप्यवृत्ति घटादि, जन्याभावसे अतिरिक्त स्वसमानाधिकरणाभावमात्रके प्रतियोगी हैं, अभावके प्रतियोगी होनेसे, अभिधेयत्ववत्, परमतमें अभिधेयत्वको केवलान्वयी होनेसे अभिधेयत्व अन्योन्याभावमात्रका प्रतियोगी है स च=वह अन्योन्याभाव अभिधेयत्वके समानाधिकरण ही है, हमारे मतमें तो मिथ्या ही है, दोनों प्रकारसे उदाहरणमें साध्यवैकल्य नहीं है। अत्यन्ताभाव, प्रतियोगीसे अवच्छिन्न देशमें वृत्ति है, नित्यअभाव होनेसे, अन्योन्याभाववत्। अत्यन्ताभावत्व, प्रतियोगीके अशेप अधिकरणमें वृत्तिमात्रमें वृत्ति है, वा=अथ वा=प्रतियोगीसे अवच्छिन्नवृत्तिमात्रमें वृत्ति है, नित्यअभावमात्रमें वृत्ति होनेसे, अन्योन्याभावत्ववत्।

(८) घटात्यन्ताभाववत्त्वं, स्वप्रतियोगिजनकाभावसमानाधिकरणवृत्ति, एतत्कपालसमानकालीनैतद्घटप्रतियोगिकाभाववृत्तित्वात्, प्रमेयत्ववत्। (९) एतत्कपालमेतद्घटात्यन्ताभावाधिकरणमाधारत्वात्पटादिवत्। (१०) ब्रह्मत्वं न परमार्थसन्निष्ठान्योन्याभावप्रतियोगितावच्छेदकम्, ब्रह्मवृत्तित्वादसद्वैलक्षण्यवत् (११) परमार्थसत्प्रतियोगिको भेदो न परमार्थसन्निष्ठः परमार्थसत्प्रतियोगिकत्वात्, परमार्थसत्त्वावच्छिन्नप्रतियोगिकाभाववत् (१२) भेदत्वावच्छिन्नं, सद्विलक्षणप्रतियोग्यधिकरणान्यतरवत्, अभावत्वाच्छुक्तिरूप्यप्रतियोगिकाभाववत्, (१३) परमार्थसन्निष्ठो भेदः, न परमार्थसत्प्रतियोगिकः, परमार्थसदधिकरणत्वात्, शुक्तिरूप्यप्रतियोगिकभेदवत्, (१४) मिथ्यात्वं ब्रह्मतुच्छोभयातिरिक्तत्वव्यापकम्, सकलमिथ्यावृत्तित्वात्, मिथ्यात्वसमानाधिकरणात्यन्ताभावाप्रतियोगित्वाद्वा, दृश्यत्ववत्, (१५) दृश्यत्वं परमार्थसद्वृत्ति, अभिधेयमात्रवृत्तित्वाच्छुक्तिरूप्यत्ववत्।

घटात्यन्ताभावत्व, स्वका जो प्रतियोगि उस प्रतियोगीका जनक जो अभाव उस अभावके समानाधिकरण जो पदार्थ उसमें वृत्ति है, स्वशब्दसे अत्यन्ताभावका ग्रहण है, जनक अभाव=प्रागभाव है; एतत् कपालसमानकालीन जो एतद्घटप्रतियोगिक अभाव उसमें वृत्ति होनेसे, प्रमेयत्ववत्–प्रमेयत्वमें हेतु साध्य दोनों हैं। यह कपाल इस घटके अत्यन्ताभावका अधिकरण है आधार होनेसे, पटादिवत्। ब्रह्मत्व, परमार्थसन्निष्ठ=परमार्थसदनुयोगिक अन्योन्याभावीयप्रतियोगितावच्छेदक नहीं है, ब्रह्मवृत्ति होनेसे, असद्वैलक्षण्यवत्। परमार्थसत्प्रतियोगिक होनेसे, परमार्थसत्त्वावच्छिन्नप्रतियोगिकअभाववत्। भेदत्वावच्छिन्न, सत्से विलक्षण जो प्रतियोगि तथा अधिकरण, एतदुभयान्यतरवत् है, अभाव होनेसे, शुक्तिरूप्यके अभाववत्। परमार्थसन्निष्ठभेद, परमार्थसत्प्रतियोगिक नहीं है, परमार्थसदधिकरणक होनेसे, शुक्तिरूप्यप्रतियोगिक भेदवत्। मिथ्यात्व, ब्रह्म तथा तुच्छ एतदुभयातिरिक्तत्वका व्यापक है=ब्रह्म तथा तुच्छ इन दोनोंका जहां भेद रहता है तहां नियमसे मिथ्यात्व रहता है, सर्वमिथ्यामें वृत्ति होनेसे, वा=या मिथ्यात्वसमानाधिकरण जो अत्यन्ताभाव तादृश अत्यन्ताभावका प्रतियोगी होनेसे, दृश्यत्वमें सर्वमिथ्यावृत्तित्व है, तैसे मिथ्यात्वसमानाधिकरण अभाव ब्रह्म तथा

तुच्छका मिलेगा तत्प्रतियोगित्व ब्रह्म तथा तुच्छमें रहेगा, अप्रतियोगित्व दृश्यत्वमें है क्योंकि मिथ्यात्वसमानाधिकरण दृश्यत्वका तो अभाव नहीं मिलसकता है, तथाच दृश्यत्वमें दोनों हेतु हैं, और दृश्यत्व ब्रह्मतुच्छोभयातिरिक्तत्वका व्यापक भी है। दृश्यत्व, परमार्थसत्में अवृत्ति है, अभिधेयमात्रमें वृत्ति होनेसे, शुक्तिरूप्यत्ववत्

(१६) दृश्यत्वं, परमार्थसद्भिन्नत्वव्याप्यम्, दृश्येतरावृत्तिधर्मत्वात्, प्रातिभासिकत्ववत्, (१७) उभयसिद्धमसद्विलक्षणं, मिथ्यात्वासमानाधिकरणधर्मानधिकरणम्, आधारत्वाच्छुक्तिरूप्यत्ववत्, (१८) प्रतियोग्यवच्छिन्नो देशः, अत्यन्ताभावाश्रयः, आधारत्वात्कालवत्, (१९) आत्मत्वावच्छिन्नं परमार्थसत्त्वानधिकरणप्रतियोगिकभेदत्वावच्छिन्नरहितं, परमार्थसत्त्वात्, परमार्थसत्त्वावच्छिन्नवत्, परमार्थसति परमार्थसद्भेदाङ्गीकारवादिमतेऽपि सद्भेदो न परमार्थसत्त्वनिष्ठः। किन्तु, घटत्वाद्यवच्छिन्ननिष्ठ एव। (२०) शुक्तिरूप्यं, मिथ्यात्वेन प्रपञ्चान्नभिद्यते, व्यवहारविषयत्वात्, ब्रह्मवत्। साध्यसत्त्वमत्र त्रेधा। स्वस्यामिथ्यात्वेनोभयोर्मिथ्यात्वेनोभयोरमिथ्यात्वेन वा। तत्रान्तिमपक्षस्यासंभवात् पक्षे साध्यसिद्धिपर्यवसानं मध्यमपक्षेण, दृष्टान्ते तु प्रथमपक्षेणेति विवेकः, (२१) विमतं, मिथ्या, मोक्षहेतुज्ञानाविषयत्वे सत्यसदन्यत्वात्, शुक्तिरूप्यत्ववत्, मोक्षहेतुज्ञानविषयत्वं, (२२) परमार्थसत्त्वव्यापकम्, परमार्थसत्त्वसमानाधिकरणत्वात्, परमार्थिकत्वेन श्रुतितात्पर्यविषयत्ववत्।

दृश्यत्व, परमार्थसत्प्रतियोगिक भेदका व्याप्य है, दृश्यसे भिन्नमें अवृत्ति धर्म होनेसे, प्रातिभासिकत्ववत्। उभयको सिद्ध असत्से विलक्षण=वादिप्रतिवादि दोनों जिसे असत्से विलक्षण मानते हैं वह, मिथ्यात्वके असमानाधिकरण जो धर्म उसका अनधिकरण है, आधार होनेसे शुक्तिरूप्यवत्। प्रतियोगीसे अवच्छिन्न देश, अत्यन्ताभावका आश्रय है, आधार होनेसे, कालवत्। आत्मत्वावच्छिन्न, परमार्थ सत्त्वका जो अधिकरण तादृश अधिकरण प्रतियोगिक भेदत्वावच्छिन्नरहित है, परमार्थसत् होनेसे, परमार्थसत्त्वावच्छिन्नवत्, परमार्थसत्में परमार्थसत्के भेदको अङ्गीकार करनेवाले वादीके मतमें भी सत्प्रतियोगिक भेद परमार्थसत्त्वावच्छिन्ननिष्ठ नहीं, किन्तु घटत्वादिसे अवच्छिन्नमें हीं निष्ठ है। शुक्तिरूप्य, मिथ्यात्वेन प्रपञ्चसे भिन्न नहीं है, व्यवहारका विषय होनेसे, ब्रह्मवत्।=शुक्तिरूप्यधर्मिकमिथ्यात्वलिङ्गकप्रपञ्चप्रतियोगिक जो भेद उस भेदका अत्यन्ताभाव साध्य है, शुक्तिरूप्यं, प्रपञ्चप्रतियोगिक भेदवत्, मिथ्यात्वात्, रज्जुसर्पवत्, इत्याकारक अनुमानका साध्यीभूत जो भेद उस भेदका अत्यन्ताभाव प्रकृत अनुमानमें साध्य है। अत्र=इस अनुमानमें साध्यका सत्त्व तीन प्रकारसे हो सकता है, स्वस्यामिथ्यात्वेन=जिसमें साध्य स्थापनीय हो उसे स्वशब्दसे लेना चाहिए तथा च साध्यधर्मित्वेन विवक्षितमें अमिथ्यात्वके रहनेसे मिथ्यात्वरूप लिङ्ग नहीं है अतएव मिथ्यात्वलिङ्गक प्रपञ्चप्रतियोगिक भेदका वहांपर अत्यन्ताभावरूप साध्य है। उभयोर्मिथ्यात्वेन=जिस पदार्थके भेदका

अत्यन्ताभाव साध्य है वह पदार्थ और जिसमें अत्यन्ताभावको सिद्ध करना है वह पदार्थ इन दोनों पदार्थोंके मिथ्या होनेपर साध्यसत्त्व आता है=जब दोनों पदार्थ मिथ्या होंगे तब मिथ्यात्वलिङ्गक एकका भेद अपरमें न रह सकेगा, जैसे एक घटका दूसरे घटमें और एक पटका दूसरे पटमें घटत्वलिङ्गक तथा पटत्वलिङ्गक भेद नहीं रहता है, तथा च उभयको मिथ्या होनेपर मिथ्यात्वलिङ्गक भेदका अत्यन्ताभाव सिद्ध होगा जोकि प्रकृतानुमानमें साध्यत्वेन विवक्षित है वा=और उभयोरमिथ्यात्वेन=यत्प्रतियोगिक भेदका अत्यन्ताभाव साध्य करना हो वह और अत्यन्ताभावधर्मित्वेन जो विवक्षित हो वह इन दोनोंके अमिथ्या होनेसे साध्यका सत्त्व आता है=क्योंकि दोनोंके अमिथ्या होनेसे किसीमें भी मिथ्यात्वरूप लिङ्ग न रहेगा अतएव मिथ्यात्वलिङ्गक भेदका अत्यन्ताभाव सिद्ध होगा । तत्र=इन तीनोंमेंसे 'यहांपर तत्र पदसे उत्तर और अन्तिमपदसे पूर्व 'आद्यपक्षस्य' इतना और लगाना और 'अन्तिमपक्षस्य' इससे उत्तरमें चकार लगाना' आदिमपक्षका च=और अन्तिमपक्षका असंभव होनेसे पक्षमें साध्यसिद्धिका पर्य्यवसान मध्यम पक्षसे होगा,=प्रथम पक्षमें साध्यधर्मित्वेन विवक्षितका अमिथ्यात्व चाहिए, और अन्तिमपक्षमें दोनोंका अमिथ्यात्व चाहिए, परन्तु पक्षीभूत शुक्तिरूप्यमें ये दोनों बातें नहीं हैं अतः दोनों पक्षोंका असंभव होनेसे मध्यम पक्षसे साध्यसिद्धिका पर्य्यवसान है । ब्रह्मरूप दृष्टान्तमें तो प्रथम पक्षसे साध्यसिद्धिका पर्य्यवसान होता है=ब्रह्मको अमिथ्या होनेसे ब्रह्ममें मिथ्यात्व नहीं है अतएव मिथ्यात्वलिङ्गक प्रपञ्चप्रतियोगिक भेदका अत्यन्ताभावरूप साध्य ब्रह्ममें है यह विवेक है । विमत, मिथ्या है, मोक्षका हेतुभूत जो ज्ञान उस ज्ञानका अविषय होके असत्से भिन्न होनेसे शुक्तिरूप्यवत् । मोक्षका हेतुभूत जो ज्ञान तादृश ज्ञानविषयत्व परमार्थ सत्त्वका व्यापक है=परमार्थ सत्त्व उक्तविषयत्वको छोड़कर नहीं रहता है, परमार्थ सत्त्वके समानाधिकरण होनेसे पारमार्थिकत्वेन श्रुतितात्पर्य्यविषयत्ववत् ।

एतत्पटात्यन्ताभावः, एतत्तन्तुनिष्ठः, एतत्पटानाद्यभाववत्वात्, एतत्पटान्योन्याभाववत्, तन्तुनाशजन्यपटनाशस्य कदापि तन्तुवृत्तिता नास्तीति तत्र व्यभिचारवारणायानादिपदम् । यस्य पटस्याश्रयविभागेन नाशस्तदत्यन्ताभावस्य पक्षत्वेनादिपदमनादेयमेव । अत्र चैतत्पटप्रतियोगिकात्यन्ताभावत्वावच्छिन्नस्य पक्षीकरणान्न संबन्धान्तरेणात्यन्ताभावमादायांशतः सिद्धसाधनम्; पक्षतावच्छेदकावच्छेदेन साध्यसिद्धेरुद्देश्यत्वात् । समवायसम्बन्धावच्छिन्नो व्यधिकरणधर्मानवच्छिन्नश्च यः एतत्पटात्यन्ताभावः स एव वा पक्षः । तन्तुशब्देन च पटोपादानकारणमुक्तम् । तत्र च प्रागभावस्य सत्त्वान्न तेन व्यभिचारः । कार्यकारणोरभेदेन सिद्धसाधनादिदूषणानि प्रागेव तत्त्वप्रदीपिकानुमानोपन्यासे निराकृतानि । (२४) यद्वा–समवायसंबन्धावच्छिन्नोऽयमेतत्पटात्यन्ताभावः, एतत्तन्तुनिष्ठः, एतत्पटप्रतियोगिकात्यन्ताभावत्वात्, संबन्धान्तरावच्छिन्नैतत्पटात्यन्ताभाववदिति विशिष्यानुमानम् । (२५)

एतत्पटप्रतियोगिकात्यन्ताभाव एतत्तन्तुनिष्ठ है, एतत् पटका अनादि अभाव होनेसे, एतत्पटप्रतियोगिक अन्योन्याभाववत्। तन्तुके नाशसे जन्य जो पटनाश उस पटनाशको कभीभी तन्तुवृत्तिता नहीं है, इति=इस लिए, तत्र=उक्तनाशमें व्यभिचार वारणके लिए, अनादिपद है=अनादिपदके न देनेपर एतत् पटाभावत्व उक्त नाशमें रहजायगा, परन्तु एतत्तन्तु-निष्ठत्व नहीं अतः व्यभिचार होगा। जिस पटका आश्रयके विभागसे नाश हो, उस पटके अत्यन्ताभावत्वको पक्षत्व होनेपर तो अनादिपद अनादेय ही है, क्योंकि ऐसे स्थलमें साध्यके भी रहजानेसे ध्वंसको लेके व्यभिचार नहीं है, यहांपर एतत्पटप्रतियोगिकअत्यन्ताभावत्वाव-च्छिन्नको पक्ष होनेसे सम्बन्धान्तरसे अत्यन्ताभावको लेके अंशतः सिद्ध साधन नहीं है, यहांपर. पक्षतावच्छेदकावच्छेदेन साध्यसिद्धि अभिप्रेत है, वा=या, समवायसम्बन्धावच्छिन्न-प्रतियोगिताक जो व्यधिकरणधर्मानवच्छिन्नप्रतियोगिताक एतत्पटात्यन्ताभाव वही पक्ष है, तन्तुशब्दसे पटका उपादान कारण कहा है तत्र च=इस उपादानकारणमें तो प्रागभावका सत्त्व होनेसे तेन=प्रागभावको लेके व्यभिचार नहीं है=जैसे अनादिभावत्व रूप हेतु प्राग-भावमें है तैसे एतत्तन्तुनिष्ठत्वरूप साध्य भी है अतः व्यभिचार नहीं है, कार्यकारणके अभेदसे आनेवाले सिद्धसाधनादि दूषण प्रथमही तत्त्वप्रदीपिकाके अनुमानके उपन्यासके पासमें खण्डित हो चुके हैं, यद्वा=अथवा समवायसंबन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताक यह इस पटका अत्यन्ताभाव, इस तन्तुमें रहनेवाला है, एतत्पटप्रतियोगिक अत्यन्ताभाव होनेसे, संबन्धान्त-रावच्छिन्न एतत्पटप्रतियोगिक अत्यन्ताभाववत् यह विशेष्यानुमान है।

२६ अव्याप्यवृत्तित्वानधिकरणत्वे सत्युक्तपक्षतावच्छेदकवत्, स्वसमानाधिकर-णात्यन्ताभावप्रतियोगि, अनात्मत्वात्, संयोगवत्। न च विश्वात्यन्ताभावे व्यभिचारः, तस्याधिकरणस्वरूपत्वे अनात्मत्वहेतोरेवाभावात्, अतिरिक्तत्वे तस्य मिथ्यात्वेनात्यन्ता-भावप्रतियोगितया साध्यस्यैव सत्त्वात्। न च–अत्यन्ताभावस्यात्यन्ताभावे तत्प्रति-योगित्वलक्षणमिथ्यात्वासिद्धिरिति–वाच्यम्; अभावे अभावप्रतियोगित्वस्य भावगता-भावप्रतियोगित्वाविरोधित्वात्, प्रागभावस्यात्यन्ताभावप्रतियोगित्वेऽपि तत्प्रतियोगित्वस्य घटादौ सर्वसिद्धत्वात्। उपपादितश्चैतन्मिथ्यात्वमिथ्यात्वे। अत्र चाव्याप्यवृत्तित्वान-धिकरणशब्देनैकदेशावच्छेदेनाविद्यमानत्वं पक्षविशेषणं विवक्षितम्। एतेन–स्वसमाना-धिकरणात्यन्ताभावप्रतियोगित्वोक्तौ बाधः। अवयववृत्तित्वानधिकरणत्वोक्तौ घटादी-नामपक्षत्वापत्तिरिति दूषणद्वयमपास्तम्। अनात्मत्वहेतुस्तु जडत्वहेतुव्याख्यानेनैव व्याख्यातः।

अव्याप्यवृत्तिका अनधिकरण होकर ब्रह्मप्रमान्याबाध्यत्वादि उक्त परकीय आद्य अनुमानी-य जो पक्षतावच्छेदक तादृशपक्षतावच्छेदकवत्, स्वसमानाधिकरण जो अत्यन्ताभाव उस अत्यन्ताभावका प्रतियोगी है, अनात्मा होनेसे, संयोगवत्। विश्वप्रतियोगिक अत्यन्ताभावमें

व्यभिचार है=अनात्मत्व उसमें रहता है अतः व्यभिचार है; नच=नहीं क्यों ? उसको अधिकरण-स्वरूप होनेसे अनात्म हेतुकेही अभावसे, अतिरिक्तत्व होनेपर उसे मिथ्यात्व होनेसे अत्यन्ताभावप्रतियोगित्व होनेसे साध्यकाही सत्त्व है। अत्यन्ताभावका अत्यन्ताभाव होनेपर अत्यन्ताभावप्रतियोगित्व लक्षण मिथ्यात्वकी असिद्धि है; इति न च वाच्यम् ; क्यों ? अभावमें अभावप्रतियोगित्वको भावगत जो अभावप्रतियोगित्व उसका अविरोधित्व होनेसे=अभावमें अभावप्रतियोगित्व रहनेपर भी भावमें अभाव प्रतियोगित्व रह सकता है प्रागभावनिष्ठ अत्यन्ताभाव प्रतियोगित्व होनेपर भी घटादिमें प्रागभावप्रतियोगित्वको सर्वसिद्ध होनेसे, मिथ्यात्वमिथ्यात्वमें यह निरूपण कर चुके हैं। च=और इस अनुमानमें अव्याप्यवृत्तित्वानधिकरण शब्दसे एकदेशावच्छेदेन अविद्यमानत्व पक्षमें विशेषण विवक्षित है। एतेन=नच इत्यादि कथनसे स्वसमानाधिकरण—अत्यन्ताभावप्रतियोगित्वकी उक्तिमें बाध है, अवयववृत्तित्वानधिकरणत्वकी उक्तिमें घटादिकोंको अपक्षत्वापत्ति है ये दोनों दूषण खण्डित हुए, और अनात्म हेतु तो जडत्व हेतुके व्याख्यानसे ही व्याख्यात हुआ।

अतएव नित्यद्रव्यान्यद्व्याप्यवृत्तित्वानधिकरणमुक्तपक्षतावच्छेदकवत्, केवलान्वय्यत्यन्ताभावप्रतियोगि, पदार्थत्वात्, नित्यद्रव्यवदित्यपि साधु। दृष्टान्तश्चायं पररीत्या। स्वमते तु शुक्तिरूप्यवदित्येव। न च—स्वरूपेणात्यन्ताभावप्रतियोगित्वे अत्यन्तासत्त्वापातः; तद्वैलक्षण्यप्रयोजकाभावादिति—वाच्यम्; उत्पत्तिनिवृत्त्योरन्यतरप्रतियोगित्वेन परिहारात्। (२७) आत्मत्वावच्छिन्नधर्मिकोभेदो न परमार्थसत्प्रतियोगिकः, आत्माप्रतियोगित्वात्, शुक्तिरूप्यप्रतियोगिकभेदवत्। न च घटपटसंयोगे व्यभिचारः; हेतुमत्तया निर्णीते अङ्कुरादाविव साध्यसन्देहस्यादोषत्वात्। एवमन्येऽपि प्रयोगा यथोचितमारचनीया विपश्चिद्भिरितिदिक्। 'हेतवोऽभीष्टसिद्ध्यर्थं सम्यञ्चो बहवश्च नः। अल्पाः परस्य दुष्टाश्चेत्यत्र स्पष्टमुदीरितम्॥ अभीष्टसिद्धावनुकूलतर्कबलाबलं चात्र परीक्ष्य यत्नात्। प्रवक्ष्यते दोषगणः परेषां न खेदनीयं तु मनोऽधुनैव॥

इत्यद्वैतसिद्धौ विश्वमिथ्यात्वे विशेषतोऽनुमानानि॥

अतएव=उक्तार्थकी निर्दोषतासे ही, नित्य द्रव्यसे अतिरिक्त अव्याप्यवृत्तित्वानधिकरण एवम्भूत जो उक्त पक्षतावच्छेदकवत् है वह, केवलान्वयिअत्यन्ताभावका प्रतियोगी है, पदार्थ होनेसे, नित्यद्रव्यवत्, यह अनुमान भी निर्दोष है। यह दृष्टान्त न्यायकी रीतिसे है वेदान्त-सिद्धान्तमें तो शुक्तिरूप्यवत् यही कहना चाहिए। स्वरूपसे अत्यन्ताभावप्रतियोगित्व होनेपर प्रपञ्चका अत्यन्तासत्त्वापात होगा तद्वैलक्षण्य=अत्यन्तासत्के वैलक्षण्यके प्रयोजकका अभाव होनेसे इति न च वाच्यम्; क्यों ? उत्पत्ति तथा निवृत्ति इन दोनोंमेंसे अन्यतरका प्रतियोगित्व विशेष लगा देनेसे प्रपञ्च अत्यन्तासत्त्वसे बच जायगा। आत्मत्वावच्छिन्नधर्मिक भेद, परमार्थ-सत्प्रतियोगिक नहीं है, आत्माप्रतियोगिक होनेसे, शुक्तिरूप्यप्रतियोगिकभेदवत्। घटपटके

संयोगमें व्यभिचार है, क्योंकि आत्माप्रतियोगित्वरूप हेतु उसमें है और साध्यका तो अभी-सन्देह ही है नच=व्यभिचार दोष यहांपर नहीं है, हेतुमत्त्वेन निर्णीत अङ्कुरादिवत् यहांपर साध्यसन्देहको दोषत्व नहीं है=अङ्कुरादिमें जैसे हेतुका अर्थात् जन्यत्वका निश्चय हो जानेपर साध्यका सन्देह होनेपर भी हेतुमें दुष्टता नहीं रहती है तैसेही प्रकृतमें भी। ऐसेही विद्वानों-द्वारा यथोचित दूसरे भी प्रयोग रचनीय हैं यह संक्षेपसे प्रकार दिखला दिया गया है।

अभीष्टसिद्धयर्थम्=पक्षीभूत प्रपञ्चमें मिथ्यात्वकी सिद्धिके लिए नः=हमारे हेतु बहुत हैं और सम्यक्=निर्दोष हैं। परस्य=संसारासक्तद्वैतीके अल्प हैं और दुष्ट हैं यह अर्थ यहां स्पष्ट कहा गया है। च=और अत्र=इसी उपस्थित विषयमें अभीष्टसिद्धिमें अनुकूल जो तर्क हैं उनके बलाबलकी परीक्षाकर यत्नसे प्रतिवादिओंको उद्देश्यकर दोषगण कहा जायगा, अभीही मनको खेदयुक्त नहीं करना अर्थात् इतना हीं कहकर रह गये अब आगे इस विषयमें कुछ न कहेंगे ऐसा समझकर मन खेदयुक्त नही करना, वस्तुतः यह समग्र परिच्छेद संसारकी असारताको दिखलाता हुआ ही समाप्त होगा, अतः अभीसे खेदका कोई कारण नहीं।

इति सरलायां विश्वमिथ्यात्वे विशेषतोऽनुमानानि ॥

अथ आगमबाधोद्धारः ।

ननु—अस्तु शब्दबाधः, तथा हि—'विश्वं सत्यं' 'यच्चिकेत सत्यमित्तन्न मोघं' 'याथातथ्यतोऽर्थान्व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः' इत्यादिश्रुतिभिः 'असत्यमप्रतिष्ठं ते जगदाहुरनीश्वर' मित्यादिस्मृतिभिः 'नाभाव उपलब्धेः' 'वैधर्म्याच्च न स्वप्नादिव' दित्यादिसूत्रैश्च विश्वस्य सत्यत्वप्रतिपादनात् इति—चेन्न; श्रुतेस्तत्परत्वाभावात्। तथा हि—'विश्वं सत्यं मघवाना युवोरिदापश्च न प्रमिणन्ति व्रतं वाम्। अच्छेन्द्रा ब्रह्मणस्पती हविर्नो अन्नं युजेव वाजिना जिगात' मिति ऋक्संहिताद्वितीयाष्टकवाक्यस्यायमर्थः। हे इन्द्र ब्रह्मणस्पती ! मघवाना मघवानौ मघमिति धननाम, धनवन्तौ मघवन्ताविति वा। विश्वं सर्वं। सत्यं कर्म, सद्भूतत्वात्, फलस्यावश्यंभावित्वाद्वा। तादृशं कर्म। युवयोरित् युवयोः। इत् इत्थमवधारणे वा। युवामेवोद्दिश्य सर्वाणि कर्माण्यनुष्ठेयानीत्यर्थः। आपो व्यापनशीला देवताः। चनेत्येतत्पदद्वयसमुदायः, एकपद्यं त्वध्यापकसंप्रदाय-सिद्धम्। वां युवयोर्व्रतं संकल्पं कर्म वा। न प्रमिणन्ति न हिंसन्ति 'मीङ् हिंसायां, क्र्यादिकः' किन्त्वनुमोदन्त इति यावत्। नोऽस्माकं हविर्दध्यादिकं अन्नं च पुरोडाशादिकं च। अच्छ अभिलक्ष्य वाजिना वेगवन्तावश्वाविव। युजा युक्तौ सन्तौ। जिगातं देवयजनमागच्छतम्। 'जिगातिर्गतिकर्मा जौहोत्यादिकः' अन्नं घासं प्रति अश्वाविवेति वा।

अथ सरलायामागमबाधोद्धारः ।

द्वैती शब्दबाधकी शङ्का करता है नन्विति। शब्दसे अनुमानका बाध रहो, तथा हि—'विश्व सत्य है' इत्यादि श्रुतिओंसे, असुर जगत्को अनीश्वर असत्य अप्रतिष्ठ कहते हैं, (गी०अ०१६)

इत्यादि स्मृतिओंसे, जगत्का अभाव नहीं है उपलब्धि होनेसे, इत्यादि (वे० अ० २ पा० २ सू० २८) सूत्रोंसे विश्वके सत्यत्वका प्रतिपादन होनेसे। इति चेन्न=ऐसा यदि कहो तो नहीं कहना, क्यों ? श्रुतिको विश्वसत्यत्वपरत्व न होनेसे। तथा हि=तत्परत्वाभाव दिखलाते हैं—'विश्वं सत्यम्' इत्यादि ऋक् संहिताके द्वितीयाष्टकके वाक्यका यह अर्थ है—हे इन्द्रब्रह्मणस्पती ! तुम दोनों मघवाना=धनवान् हो, मघ' यह धनका नाम है, या धनवान् तुम दोनों मघवान हो। विश्वं=सर्व, सत्यं=कर्मरूप 'कारणसे उत्पन्न होनेसे सत्य है, अथवा, कर्मफलको अवश्यंभावी होनेसे सत्य है, तादृश कर्म तुम दोनोंका ही है अर्थात् तुम दोनोंकोही उद्देश्यकर सर्वकर्म अनुष्ठेय हैं। आपः=व्यापनशील देवतायें, 'चन' यह पदद्वयका समुदाय है, एकपद्य तो अध्यापकोंकी संप्रदायसे सिद्ध है। वाम=तुम दोनोंके व्रतम्=संकल्प या कर्मको नाश नहीं करती हैं, मीङ् धातु हिंसामें है क्र्यादिगणमें आया है। किन्तु आप दोनोंके कर्मका अनुमोदन करतीहैं। नः=हम लोगोंके हविः=दध्यादिक, च=और अन्नम्=पुरोडाशको, अच्छ=अभिलक्ष्यकर, वाजिना=वेगवान् दो अश्वोंकी तरह युजा=युक्त हुए तुम दोनों जिगातम्=देवयजनमें आओ। जिगातिः—गतिकर्मा है, जुहोत्यादि गणमें आया है। वा=अथवा, अन्नम्=घासके प्रति दो अश्वोंकी तरह ऐसा अर्थ समझना।

यद्वा—हे इन्द्राब्रह्मणस्पती ! विश्वं सत्त्वेन परिदृश्यमानं जगत्, युवयोरित् युवयोरेव, युवाभ्यामेव सृष्टम्। अथवा—युवयोरेव विश्वं सर्वं स्तोत्रं, सत्यं यथार्थम्। यद्यत् गुणजातं स्तुत्वा प्रतिपाद्यते तत्सर्वं युवयोर्विद्यमानमेव न त्वारोपितमित्यर्थः। आपो व्यापनशीला देवताः, अनुपलक्षितानि पञ्चभूतानि वा। युवयोर्व्रतं जगदुपादानाख्यं कर्म न हिंसन्ति। इत्थं महानुभावौ युवां जिगातम्। शेषं पूर्ववेद्व्याख्येयम्। तथा च स्तुतिपरतया नास्य विश्वसत्यत्वे तात्पर्यम्॥ 'शाक्मना शाको अरुणः सुपर्ण आयो महः शूरः सनादनीलः। यच्चिकेत सत्यमित्तन्न मोघं वसु स्पार्हमुत जेतोत दाता' इत्यस्याप्यष्टमाष्टकस्थस्येन्द्रस्तुतिपरतया न विश्वसत्यत्वे तात्पर्यम्। तथा हि—शाक्मना शाकैव शाक्मा तेन शाक्मना, बलेन। शाकः शक्तः, स्वशक्त्यैव सर्वं कर्तुं शक्त इत्यर्थः। नहीन्द्रस्य सहायान्तरापेक्षास्ति इन्द्रत्वादेव। अरुणः अरुणवर्णः कश्चित् शोभनवर्णः पक्षी आगच्छतीत्यध्याहारः; उपसर्गश्रुतेः। यो महो महान् शूरः विक्रान्तः, सनात् पुराणः, अनीलः अनीडः नीडस्याकर्त्ता। नहीन्द्रो अग्निवत् कुत्रचिदपि यज्ञे पक्षे निकेतनं करोति। एवं सुपर्ण इत्यादिरूपकेणेन्द्रमाह। स इन्द्र इदमिदानीं कर्तव्यमिति यच्चिकेत जानाति, तत्सत्यमित्सत्यमेव। न मोघं न व्यर्थम्। सः स्पार्हं स्पृहणीयं, वसु निवासार्हं, धनं जेता जयति। शत्रुभ्यः सकाशात्। उत अपि, दाता ददाति च स्तोतृभ्यः। जेता दातेति तृजन्तेन 'न लोके' त्यादिना षष्ठीप्रतिषेधः। एवमेवान्यदपि सत्यत्वप्रतिपादकमुन्नेयम्।

अथवा हे इन्द्राब्रह्मणस्पती, विश्वम्=सत्त्वेन परिदृश्यमान जगत् युवयोरित्=तुम दोनोंका ही है-तुम दोनोंसे ही बनाया गया है। अथवा, तुम दोनोंका विश्व=सर्व स्तोत्र सत्यम्=यथार्थ है। जो जो गुणसमुदाय स्तुतिद्वारा प्रतिपादन किया जाता है वह सर्व तुम दोनोंमें विद्यमान ही है आरोपित नहीं। आपः-व्यापनशील देवता, वा=या जलसे उपलक्षित पञ्चभूत, तुम दोनों जनोंके व्रतम्=जगत्उपादानाख्य कर्मको नाश नहीं करते हैं। ऐसे महानुभाव तुम दोनों जने आओ। शेषमन्त्र पूर्ववत् व्याख्येय है। फलतः इस मन्त्रको स्तुतिपर होनेसे इसका विश्वके सत्यत्वमें तात्पर्य्य नहीं है। ऋग्वेदके अष्टम अष्टकमें स्थित ' शाक्मना ' इत्यादि मन्त्रको भी इन्द्रस्तुतिपरहोनेसे विश्वके सत्यत्वमें तात्पर्य्य नहीं है। इसका अर्थ दिखलाते हैं तथाहीति। शाकका नामहीं शाक्मा है तेन=उस शाक्मारूप शाकसे=बलसे शाकः=शक्त है=स्वशक्तिसे ही सर्व कार्य्य करनेको समर्थ है। इन्द्र होनेसे ही इन्द्रको दूसरे सहायकी अपेक्षा नहीं है। अरुणः=अरुणवर्ण कोई शोभनपर्ण पक्षी आयेगा, आङ्रूप उपसर्गकी श्रुतिसे गच्छतिका अध्याहार होता है। यो=जो महः=महान् शूरः=विक्रान्त, सनात्=पुराना, अनीलः=अनीड,=नीडका अकर्त्ता-पक्षिओंके घोंसलेको नीड कहा जाता है। अग्निवत् इन्द्र कहीं भी यज्ञपक्षमें निकेतन नहीं कर्त्ता है। एवम्=इसप्रकारसे सुपर्ण इत्यादि रूपसे यह मन्त्र इन्द्रको कहता है, वह इन्द्र, यह इसकालमें कर्त्तव्य है, इति यच्चिकेत=ऐसा जिसको जानता है, तत्सत्यमित्=वह सत्य ही है। न मोघं=व्यर्थ नहीं है। सः=वह इन्द्र स्पार्हे=स्पृहणीय है, वसु=वासार्ह है, धनं जेता=धनको जीतता है शत्रुओंसे उत=और दाता=देता है स्तुतिकरनेवालोंको, जेता तथा दाता ये दोनों तृजन्त नहीं है अतः ' न लोक ' अष्टाध्यायी अ० २। पा० ३। सू० ६९ इत्यादि सूत्रसे षष्ठीका प्रतिषेध है-कर्तृकर्मणोः कृति। अ० २। पा० ३। सू० ६५ से यहांपर धनरूपकर्ममें षष्ठी प्राप्त थी उसका उक्त सूत्रने निषेध किया, यदि तृजन्त होते तो निषेध न होता, क्योंकि यह तृन् प्रत्ययान्तके योगमें कर्ममें षष्ठीका निषेध करता है। ऐसे ही और भी सत्यत्वप्रतिपादकवाक्य स्तुत्यादिपरत्वेन उन्नेय है।

' याथातथ्यतोऽर्थान्व्यदधा ' दित्यपि वाक्यं न प्रपञ्चसत्यत्वे प्रमाणम्। तस्य पूर्वसृष्टप्रकारेण सर्जनमर्थः, न तु जगत्सत्यत्वं जगत्सर्जनगतसत्त्वंवा। यत्र च स्तुत्यादिपरत्वं नास्ति, तत्रापि प्रत्यक्षसिद्धानुवादकतया ' अग्निर्हिमस्य भेषज ' मित्यादि वाक्यवन्न तत्परत्वम्। नच-त्वन्मते सर्वत्र ब्रह्मसत्त्वस्यैव स्फुरणात्तदतिरिक्तस्य कालत्रयाबाध्यत्वरूपस्य घटादिसत्त्वस्य प्रत्यक्षेणाप्राप्तेः तद्बोधकत्वेन श्रुतेर्नानुवादकत्वमिति-वाच्यम्; इतरसत्त्वबाधपुरस्सरत्वात् ब्रह्मसत्त्वस्फुरणाभ्युपगमस्य तत्रैव सत्यादिपदप्रवृत्तिस्वीकारेण तदतिरिक्तविश्वसत्यत्वस्य शाब्दबोधाविषयत्वात् तदादायानुवादकत्वापरिहारात्। अथ-' पृथिवी इतरभिन्ना ' ' न हिंस्यात्सर्वा भूतानी ' त्यादौ घटादावेकदेशे प्रत्यक्षेण, ब्राह्मणादावेकदेशे वाक्यान्तरेण, विधेयसिद्धावपि सर्वत्रासिद्धत्वात् यथा नानुवादकत्वं,

तथा विश्वमात्रसत्यत्वस्य प्रत्यक्षेणाप्राप्तत्वात् नानुवादकत्वमिति—मन्यसे, मैवम्; दृष्टान्ते हि पृथिवीत्वं हिंसात्वं च एकोऽनुगतो धर्म इति तदवच्छेदेन विधेयस्याप्राप्तत्वेन तत्र नानुवादकत्वं युक्तम्, इह तु विश्वत्वं नाम नैको धर्मोऽस्ति, किंतु विश्वशब्दः सर्वनामत्वात्तेन तेन रूपेण घटपटादीनामुपस्थापकः। तेषु च प्रत्येकं सत्त्वं गृहीतमेवेति कथं नानुवादकत्वम्; प्रकारवैलक्षण्याभावात्।

'याथातथ्यतः' (यजु:० अ० ४०—मं० ८) इत्यादि वाक्य भी प्रपञ्चके सत्यत्वमें प्रमाण नहीं है। पूर्वसृष्टप्रकारसे सर्जन इस वाक्यका अर्थ है, अर्थात् जैसी प्रपञ्चकी रचना पूर्वमें थी वैसी पुनरपि होती है, ऐसा प्रवाह अनन्त वर्षोंसे चला आता है, संसारका सत्यत्व इस वाक्यका अर्थ नहीं है। या जगत्सर्जनगतसत्यत्व इस वाक्यका अर्थ नहीं है, जहांपर सत्यत्वप्रतिपादक वाक्यको स्तुत्यादिपरत्व नहीं है वहांभी प्रत्यक्षसिद्ध सत्त्वका अनुवादकत्व होनेसे, 'अग्नि हिमका भेषज है' इत्यादि वाक्यवत् सत्यत्वपरत्व नहीं है। तुम्हारे मतमें सर्वत्र=घटपटादिमें ब्रह्मसत्त्वका ही स्फुरण होनेसे तदतिरिक्तस्य=ब्रह्मसत्त्वसे भिन्न कालत्रयमें अबाध्यरूप घटादिनिष्ठ सत्त्वकी प्रत्यक्षसे अप्राप्ति होनेसे, तद्बोधकत्वेन=घटादिनिष्ठउक्तसत्त्वबोधकत्वेन श्रुतिको अनुवादकत्व नहीं है। इति न च वाच्यम्, क्यों ? ब्रह्मसत्त्वस्फुरणको इतरसत्त्वबाधपूर्वकत्व होनेसे, तत्रैव=उक्त ब्रह्मसत्त्वमें ही सत्यादिपदकी प्रवृत्तिका स्वीकार होनेसे; तदतिरिक्त=ब्रह्मसत्त्वसे भिन्न प्रपञ्चसत्त्वको शाब्दबोधका अविषय होनेसे। अतः प्रत्यक्षसिद्ध सत्त्वको लेके अनुवादकत्वका अपरिहार है। प्रकारान्तरसे अनुवादकत्वका वारण करता है अथेति। पृथिवी, पृथिवीतरसे भिन्न है, सर्वभूतोंकी हिंसा नहीं करना, इत्यादि वाक्योंमें घटादिरूपपृथिव्येकदेशमें प्रत्यक्षसे भेदरूपविधेयके सिद्ध होनेपर भी, और ब्राह्मणादिरूपभूतैकदेशमें वाक्यान्तरेण='ब्राह्मणो न हन्तव्यः' इत्यादिरूपवाक्यान्तरसे विधेयकी सिद्धि होनेपर भी विधेयको सर्वत्र असिद्ध होनेसे जैसे अनुवादकत्व नहीं है, तैसे विश्वमात्रके सत्यत्वको प्रत्यक्षसे अप्राप्त होनेसे प्रपञ्चमें सत्यत्वबोधक श्रुतिको अनुवादकत्व नहीं है ऐसा यदि मानता है तो ऐसा मानना न्याययुक्त नहीं है, क्यों ? हि=यतः दृष्टान्तमें पृथिवीत्व तथा हिंसात्व एक एक अनुगत धर्म है अतः अनुगतधर्मावच्छेदेन उक्त विधेयोंको अप्राप्त होनेसे तत्र=दृष्टान्तमें अनुवादकत्व युक्त नहीं है, प्रकृतमें तो विश्वत्वनामक कोई अनुगत धर्म नहीं है, किन्तु सर्वनाम होनेसे विश्वशब्द घटत्वपटत्वादिरूपसे घटपटादिका उपस्थापक है, और उनघटपटादिघटक प्रत्येकमें तो सत्त्वगृहीत ही है, अतः अनुवादकत्व क्यों न होगा, अनुवादस्थलीयप्रकारसे वैलक्षण्यका अभाव होनेसे।

नच—एकशाखास्थविधिवाक्यैकार्थशाखान्तरस्थविधिवाक्यस्य पुरुषान्तरं प्रतीव येन पुंसा वादिविप्रतिपत्त्यादिना घटादिसत्ता प्रत्यक्षेण न निर्णीता तं प्रत्यर्थवत्त्वेन नानुवादकत्वमिति—वाच्यम्; एवं सत्यनुवादस्थलस्यैवाभावप्रसङ्गात्। न च सर्वाविवादस्थलमेवोदाहरणम्, सर्वाविवादस्य निश्चेतुमशक्यत्वात्। पुरोवादपूर्वकत्वादनुवादस्यात्रायं पुरोवाद इत्यस्यैवाभावात् न शाखान्तरस्थवाक्यस्यानुवादकत्वप्रसङ्गः।

जैसे वेदकी एकशाखामें स्थित जो विधिवाक्य है उस विधिवाक्यके समानार्थक जो शाखान्तरस्थ विधिवाक्य है उस विधिवाक्यको पुरुषान्तरके प्रति अर्थवत्ता होनेसे अनुवादकत्व नहीं होता है, तैसे जिस पुरुषसे वादिविप्रतिपत्त्यादिसे घटादिकी सत्ता प्रत्यक्षसे नहीं निर्णीत हुई है उस पुरुषके प्रति प्रपञ्चसत्यत्वप्रतिपादकवाक्योंको अर्थवत्त्व होनेसे अनुवादकत्व नहीं है; इति न च वाच्यम्; क्यों ? ऐसा होनेपर अनुवादके स्थलके–ही अभावका प्रसङ्ग होनेसे=जहां जहां अनुवादकत्वका संभव होगा वहां वहां भी ऐसा ही कहा जा सकता है कि प्रमाणान्तरसे जिसने एतद्वाक्यप्रतिपाद्य अर्थ नहीं जाना है उसके प्रति यह वाक्य है। जिसस्थलमें किसीको भी विवाद न हो उसी स्थलमें अनुवादका उदाहरण होगा, नहीं होगा, क्यों ? सर्वके अविवादको निश्चयकरनेके लिए अशक्य होनेसे, अनुवादको पुरोवादपूर्वकत्व होनेसे अत्र=तद्वेदीय शाखान्तरके अध्येतापुरुषमें अयम्=तद्वेदीयशाखान्तरस्थवाक्यरूपवाद, पुरः=पूर्व=अज्ञातता-दशामें अग्निहोत्रादिका ज्ञापक है इत्यस्य=इस अर्थका ही अभाव होनेसे शाखान्तरस्थ-विधिवाक्यको अनुवादकत्वका प्रसङ्ग नहीं है,='स्वाध्यायोऽध्येतव्यः' इस अध्ययनविधिसे स्वाध्यायपदसे स्वशाखामात्रका ग्रहण है तथाच स्वशाखास्थविधिवाक्यप्रतिपाद्यअर्थविषयज्ञान स्वशाखाऽध्ययनसे पूर्व अन्यदीयशाखास्थ विधिवाक्यसे जन्य नहीं है, अतः यहांपर अनुवादकत्व नहीं हो सकता है।

यत्तु बृहदारण्यकभाष्ये देहभिन्नात्मबोधिकायाः 'अस्तीत्येवोपलब्धव्य' इत्यादि श्रुतेः प्रत्यक्षप्राप्तानुवादित्वमाशंक्य वादिविप्रतिपत्तिदर्शनादित्यादिना तत्परिहृतम्; तथा च प्रत्यक्षसिद्धसत्त्वग्राहकत्वेऽपि वादिविप्रतिपत्तिनिरासार्थकत्वेन नानुवादकत्वं प्रकृतेऽपीत्युक्तम्। तदयुक्तम्, भाष्यार्थानवबोधात्। तथाहि–तत्र वादिविप्रतिपत्तिदर्शनेन देहव्यतिरिक्तत्वेनात्मनः प्रत्यक्षतैव नास्ति। अन्यथा प्रत्यक्षप्रामाण्यवादिनश्चार्वाकादेस्तत्र विप्रतिपत्तिर्न स्यादित्युक्तम्, नतु वादिविप्रतिपत्तिनिरासेनास्तीत्यादेस्सार्थकत्वम्, अननुवादकत्वं वा। तथा चोक्तं तत्रैव–तस्माज्जन्मान्तरसंबन्ध्यात्मास्तित्वे जन्मान्तरेष्टानिष्टप्राप्तिपरिहारविशेषोपाये च शास्त्रं प्रवर्तत इति।

बृहदारण्यके भाष्यमें देहसे भिन्न आत्माकी बोधिका जो 'अस्ति, इस रूपसेही ज्ञातव्य है' इत्यादि कठ० ६।१३ श्रुति है उस श्रुतिके अनुवादित्वकी आशङ्काकर, वादिओंकी विप्रतिपत्ति देखनेसे, इत्यादिसे तत्=अनुवादित्व परिहृत हुआ है, तथा च प्रत्यक्षसे सिद्ध जो सत्त्व तादृश सत्त्वका ग्राहकत्व होनेपर भी वादिओंकी विप्रतिपत्तिनिरासार्थकत्वसे प्रपञ्चसत्त्वप्रतिपादक वाक्यजातमें भी अनुवादकत्व नहीं है, इति यत् उक्तम् द्वैतिना=यह जो कहा है द्वैतीने तदयुक्तम्=वह अयुक्त है। क्यों ? भाष्यार्थके न समझनेसे, । तथा हि=भाष्यका वास्तविक आशय दिखलाते हैं–तहां वादिओंकी विप्रतिपत्ति देखनेसे देहव्यतिरिक्तत्वेन आत्माकी प्रत्यक्षताही नहीं है, अन्यथा=देहसे भिन्नत्वेन आत्माकी प्रत्यक्षता होनेपर, प्रत्यक्षनिष्ठप्रामाण्यवादी चार्वाकादिकी

तत्र=उस आत्मामें विप्रतिपत्ति नहीं होगी, ऐसा कहा है, वादिओंकी विप्रतिपत्तिके निराससे 'अस्ति' इत्यादिका सार्थकत्व नहीं कहा है, वा=या वादिओंकी विप्रतिपत्ति निराससे अनतुवादकत्व नहीं कहा है। तथा च वहां हीं पर कहा है—ततः जन्मान्तर सम्बन्धी आत्माके अस्तित्वमें, च=और जन्मान्तरीय जो इष्ट तथा अनिष्ट इनके क्रमशः प्राप्ति तथा परिहारका जो विशेषोपाय उस विशेषोपायमें शास्त्र प्रवृत्त होता है।

ननु—चातुर्मास्यमध्यपर्वणोः 'द्वयोः प्रणयन्ती'ति वाक्यस्य चोदकप्राप्ताग्निप्रणयनव्यतिरिक्ताग्निप्रणयनविधायकत्ववत् प्रत्यक्षप्राप्तव्यावहारिकसत्त्वविलक्षणत्रिकालनिषेधाप्रतियोगित्वरूपसत्त्वप्रमापकत्वं प्रकृतेऽस्त्विति—चेन्न; त्रैकालिकसत्त्वनिषेधकश्रुतिविरोधेन विश्वसत्यत्वश्रुतेस्त्रैकालिकसत्त्वपरत्वाभावात्। नच—वैपरीत्यमेव किं न स्यात्? विनिगमकाभावादिति—वाच्यम्; तात्पर्यान्यथानुपपत्तिगतिसामान्यानामेव विनिगमकत्वात्। अद्वैतश्रुतिर्हि षड्विधतात्पर्यलिङ्गोपेता। तत्र त्रिविधं तात्पर्यलिङ्गम् प्रामाण्यशरीरघटकमर्थनिष्ठमज्ञातत्वमबाधितत्वं प्रयोजनवत्त्वं च। त्रिविधं तु शब्दनिष्ठमतिप्रसङ्गवारकमुपक्रमोपसंहारयोरैकरूप्यं अभ्यासः अर्थवादश्चेति। तत्र शब्दनिष्ठलिङ्गत्रये तावन्न विवादः; सर्वासामेवोपनिषदामेवं प्रवृत्तत्वात्। मानान्तरासिद्धतया मोक्षहेतुज्ञानविषयतया च अज्ञातत्वं सप्रयोजनत्वं च निर्विवादमेव। अबाधितत्वमात्रं सन्दिग्धम्। तच्चान्यथानुपपत्तिगतिसामान्याभ्यां च निर्णीयते। नहि सर्वप्रपञ्चनिषेधरूपमद्वैतं व्यावहारिकम् येन तत्र श्रुतेर्व्यावहारिकं प्रामाण्यं स्यात्; अतस्तत्र तात्त्विकमेव प्रामाण्यम्, द्वैतसत्यत्वं तु व्यावहारिकं; अतस्तत्र न श्रुतेस्तात्त्विकं प्रामाण्यम्; परस्परविरुद्धयोर्द्वयोस्तात्त्विकत्वायोगात्, वस्तुनि च विकल्पासंभवात्, तात्त्विकव्यावहारिकप्रामाण्यभेदेन च व्यवस्थोपपत्तेः, अतत्परत्वेनावधारितस्य विश्वसत्यत्ववाक्यस्यैवान्यथा व्याख्यातुमुचितत्वात्।

शङ्कते नन्विति। जैसे चातुर्मास्यकर्मके मध्यमें होनेवाले दो पर्वोंमें, 'द्वयोः प्रणयन्ति' इस वाक्यको चोदकसे प्राप्त जो अग्निप्रणयन उस अग्निप्रणयनसे अतिरिक्त अग्निप्रणयनविधायकत्व है तैसे प्रत्यक्षसे प्राप्त जो व्यावहारिक सत्त्व उस सत्त्वसे विलक्षण जो त्रिकालनिषेधाप्रतियोगित्वरूपसत्त्व तादृशसत्त्वप्रमाकत्व प्रकृतमें भी रहो=वैश्वदेव, वरुणप्रघास, साकमेध, शुनासीरीय इन चार प्रयोगोंका नाम चातुर्मास्य कर्म हैं, इन प्रयोगोंका नाम पर्व भी है, इन चारोंमेंसे मध्यके जो दो हैं वरुणप्रघास तथा शाकमेध इन दोनोंमें अग्निप्रणयनका विधान 'द्वयोःप्रणयन्ति' यह वाक्य करता है तहां संशय है कि यह अग्निप्रणयन क्या चातुर्मास्यप्रकृतिभूतदर्शपूर्णमासधर्मक है; या अपूर्व है,—दर्शपूर्णमासधर्मक अग्निप्रणयनसे विलक्षण है; पूर्वपक्ष यह है कि उक्तकर्म दर्शपूर्णमासकी विकृति है अतः दर्शपूर्णमासधर्मक अग्निका प्रणयन है, सिद्धान्त है कि दर्शपौर्णमासधर्मक अग्निप्रणयन तो चोदकसे ही प्राप्त है,

अतः इस वाक्यका वैयर्थ्य न हो इसलिए इसे चोदकसे अप्राप्त अङ्गकलापयुक्त अपूर्वअग्निविधायकत्व मानना चाहिए इस अधिकरणका विशेष अर्थ देखना हो तो जै० मी० अ० ७ पा० ३ में देखिए। इति चेन्न; क्यों? त्रैकालिकसत्त्वनिषेधक जो श्रुति है उस श्रुतिके साथ विरोध होनेसे विश्वसत्यत्वश्रुतिको त्रैकालिकसत्त्वपरत्वका अभाव होनेसे, वैपरीत्यमेव=प्रपञ्चसत्यत्वबोधक श्रुतिसे ही प्रपञ्चसत्यत्वनिषेधक श्रुतिका बाध क्यों न हो, विनिगमकका अभाव होनेसे=प्रपञ्चसत्यत्वनिषेधक श्रुतिको ही बाधकत्व हो प्रपञ्चसत्यत्वश्रुतिको नहीं इस अर्थमें कोई विनिगमक=नियामक नहीं है। इति न च वाच्यम्; क्यों? तात्पर्य्यान्यथानुपपत्ति और गतिसामान्य इनको ही विनिगमकत्व होनेसे इस अर्थको ही दिखलाते हैं—अद्वैतेति। हि=प्रसिद्ध अद्वैतश्रुति षड्विध तात्पर्य्यज्ञापक लिङ्गोंसे युक्त है, उपक्रम तथा उपसंहार इन दोनोंकी एकरूपता, अभ्यास, अपूर्वता, फल, अर्थवाद, उपपत्ति ये षट् लिङ्ग तात्पर्य्यके निर्णायक होते हैं। तत्र=उनषड्विध लिङ्गोंमेंसे त्रिविध तात्पर्य्यलिङ्ग प्रामाण्यशरीरका घटक हुआ अर्थनिष्ठ है, जैसे कि प्रमाणान्तरसे अज्ञातत्व, अबाधितत्त्व, और प्रयोजनवत्त्व। त्रिविध तात्पर्य्यलिङ्ग शब्दनिष्ठ है जैसे कि उपक्रम तथा उपसंहार इन दोनोंकी एकरूपता, अभ्यास, तथा अर्थवाद यह अतिप्रसङ्गवारक है; अनन्यपर पुनः श्रवणका नाम अभ्यास है। स्तुति और निन्दा इन दोनोंमेंसे किसी एकके बोधक वाक्यका नाम अर्थवाद है। उपक्रम तथा उपसंहार इन दोनों पदोंसे विचार्य्यमाणवाक्यके आदि तथा अन्त इन दोनों भागोंका एकार्थमें पर्य्यवसान लक्षित होता है। प्रकृतवाक्यार्थविषयक ज्ञानके विषयमें उक्तज्ञानसे पूर्व अज्ञातत्वका नाम अपूर्वता है, उक्तज्ञाननिष्ठ प्रयोजनवत्त्वका नाम फल है, उक्तज्ञानके विषयमें अबाधितत्वका नाम उपपत्ति है, मूलमें अर्थको जो प्रयोजनवत्त्व कहा है वह प्रयोजनवज्ज्ञानविषयत्वविशिष्टत्वरूपसे कहा है, अन्तिम तीन लिङ्गोंको अतिप्रसङ्गवारकत्व कहा है उसका मतलब यह है, कि अद्वैत ब्रह्मवत् सत्यकामत्वादिविशिष्ट ब्रह्ममें भी श्रुतिबोधितत्त्वेन अपूर्वत्व और अबाधितत्व तथा उपासनाविषयत्वेन प्रयोजनवत्त्वरूप लिङ्गत्रितयकी प्रसक्ति है अतः सगुणमें भी श्रुतिका तात्पर्य्य प्रसक्त हुआ, परन्तु अभ्यासादि त्रितयका अद्वितीयमें ही तात्पर्य्य है, अन्यथा अभ्यासादिके वैयर्थ्यकी आपत्ति है, इस रीतिसे अभ्यासादिको सगुणमें तात्पर्य्यातिप्रसङ्गवारकत्व है। तत्र=इन षट्लिङ्गोंमेंसे शब्दनिष्ठलिङ्गत्रयमें तावत् विवाद नहीं है; सब उपनिषदोंको इस रूपसेही प्रवृत्त होनेसे। मानान्तरसे असिद्ध होनेसे, च=और मोक्षका हेतुभूत जो ज्ञान तादृश ज्ञानका विषय होनेसे, अद्वैतका अज्ञातत्त्व और सप्रयोजनत्व निर्विवाद ही है, अद्वैतका अबाधितत्त्वमात्र संदिग्ध है। तच्च=वह अबाधितत्व तो अन्यथानुपपत्ति और गतिसामान्य इन दोनोंसे निर्णीत होता है, सर्व प्रपञ्चका निषेधरूप अद्वैत व्यावहारिक नहीं है, येन=जिससे, तत्र=अद्वैतमें श्रुतिका व्यावहारिक प्रमाण्य हो, अतः व्यावहारिक प्रामाण्यका कारण न रहनेसे तत्र=अद्वैतमें तात्त्विक ही प्रामाण्य है। द्वैतका सत्यत्व तो व्यावहारिक है अतः तत्र= द्वैतसत्यत्वमें श्रुतिका तात्त्विक प्रमाण्य नहीं है। परस्परविरुद्ध दो पदार्थोंके तात्त्विकत्वका अयोग है।

च=तथा वस्तुमें विकल्पका असंभव है। तात्त्विक तथा व्यावहारिक प्रामाण्यके भेदसे उभयविधश्रुतिओंकी व्यवस्थाकी उपपत्ति है, फलतः अतत्परत्वेन अवधारित विश्वसत्यत्व वाक्य ही अन्यथा व्याख्यान करनेको उचित है।

तथाहि—चतुर्धा हि सामानाधिकरण्यम्; अध्यासे 'इदं रजत'मित्यादौ वाधायां 'स्थाणुः पुमानि'त्येवमादौ विशेषणविशेष्यभावेन 'नीलमुत्पल'मित्यादौ अभेदेन 'तत्त्वमसी'त्येवमादौ। अत्र च वाधायामध्यासे वा सामानाधिकरण्योपपत्तेर्न सत्यत्ववोधकश्रुतेः षड्विधतात्पर्य्यलिङ्गोपेताद्वैतश्रुतिवाधकत्वम्।

समानविभक्तिकपरस्परसाकाङ्क्षपदद्वयत्वका नाम सामानाधिकरण्य है, वह सामानाधिकरण्य चार प्रकारसे होता है, अध्यासे=आधार तथा आरोप्य एतदुभयतादात्म्यवोधक जो पदद्वय तन्निष्ठ सामानाधिकरण्य 'इदं रजतं' इत्यादिमें है। वाधायाम्=वाध्यमान जो तादात्म्य तादृश तादात्म्यसे उपलक्ष्यमाण जो अधिष्ठान तादृश अधिष्ठानवोधक पदद्वयनिष्ठ सामानाधिकरण्य 'स्थाणुः पुमानेव' इत्यादिमें है यहांपर स्थाणुत्वेन पूर्वमें ज्ञात पुरुषही है यही अर्थ प्रतीत होता है, अतएव ऊपर पदद्वयको अधिष्ठानवोधकत्व लिखा है, विशेषणविशेष्यभावेन=वाध्यतादात्म्यातिरिक्त तादात्म्यवोधक पदद्वयनिष्ठ सामानाधिकरण्य 'नीलमुत्पलम्' इत्यादिमें है, अभेदेन=शुद्धव्यक्तिमात्रवोधक पदद्वयनिष्ठ सामानाधिकरण्य, तत्त्वमस्यादिमें है। अत्र च=सत्यत्ववोधक वाक्यमें तो सत्त्वविशिष्टवोधक पदके साथमें प्रपञ्चवोधक पदके सामानाधिकरण्यकी वाधमें या अध्यासमें उपपत्ति होनेसे सत्यत्ववोधक श्रुतिको षड्विधतात्पर्य्यलिङ्गोपेत जो अद्वैतश्रुति उसका वाधकत्व नहीं है। 'अध्यासे वा' यहां जो 'वा' शब्द है वह व्यवस्थित विकल्पमें है तथा च अर्थ यह हुआ कि, तत्त्वसाक्षात्कार हो जाने पर वाधप्रयुक्त सामानाधिकरण्य है, और तत्त्वसाक्षात्कारसे पूर्व अध्यासिक सामानाधिकरण्य है।

ननु—आत्मन आनन्दकत्ववोधकश्रुतिरपि 'सुखंसुप्तोस्मी'ति साक्षिप्रत्यक्षसिद्धानन्दानुवादिनीसत्त्वश्रुतिवद्भवेत्—इति चेन्न; साक्षिण उपहितानन्दविषयत्वेन श्रुतेश्च निरुपाधिकानन्दविषयत्वेन भिन्नविषयत्वादनुवादत्वायोगात्। तथा हि स्वरूपानन्दो गृह्यते। स्वरूपश्चाज्ञानोपहितमेव साक्षिविषयः। ननु—'तत्वमसी'त्यादौ नवकृत्वोऽभ्यासवत् पिपासितस्य जलगोचरप्रमाणसंप्लववदैक्ये षड्विधतात्पर्य्यलिङ्गवद्भावरूपाज्ञाने प्रत्यक्षसिद्धे 'तम आसी'दित्यादिश्रुतिवत् सत्त्वश्रुतिर्दार्ढ्यार्था—इति चेन्न; अशेषविशेषग्राहिप्रत्यक्षप्राप्ते दार्ढ्यार्थमन्यानपेक्षणात्। पिपासितस्य शब्दलिङ्गानन्तरं जले प्रत्यक्षमपेक्षितम्, नतु प्रत्यक्षानन्तरं शब्दलिङ्गे। नच—तर्हि 'तम आसी'दित्यादेः न किंचिदवेदिषमिति प्रत्यक्षसिद्धाज्ञानदार्ढ्यार्थित्वं न स्यादिति—वाच्यम्; 'तम आसी'दित्यस्य सृष्टिपूर्वकालसंवन्धित्वेनाज्ञानग्राहितया सुषुप्तिकालसंवन्धित्वेनाज्ञानग्राहकं प्रत्यक्षमपेक्ष्य भिन्नविषयत्वेनैव प्रामाण्यसंभवात्।

शङ्कते नन्विति। सत्त्वश्रुतिवत्=जैसे प्रपञ्चसत्यत्वप्रतिपादिका श्रुति प्रत्यक्षसिद्धसत्त्वकी अनुवादिका है, तैसे आत्मनिष्ठ आनन्दत्वबोधिका श्रुतिभी 'सुखं सुप्तोऽस्मि' इत्याकारक साक्षिप्रत्यक्षसे सिद्ध आनन्दकी अनुवादिका होगी इति चेन्न, क्यों? साक्षीको उपहित आनन्दविषयकत्व है, और श्रुतिको निरुपाधिक आनन्द विषयत्व है अतः विभिन्नविषयत्व होनेसे श्रुतिको अनुवादकत्वका अयोग है। श्रुतिसे स्वरूपानन्द गृहीत होता है, और स्वरूप तो अज्ञानोपहित हुआ ही साक्षीका विषय होता है। शङ्कते नन्विति। जैसे 'तत्त्वमसि' (छा.। ६। ९। ४) इत्यादिमें नववार अभ्यास अर्थदृढताके लिए है, पिपासित पुरुषको जल विषयक प्रमाणोंका संप्लव अर्थदृढताके लिए है, ऐक्यमें षड्विध तात्पर्य्यबोधकलिङ्ग अर्थदृढताके लिए है, प्रत्यक्षसिद्धभावरूप अज्ञानमें 'तम आसीत्' इत्यादि श्रुतियां अर्थकी दृढताके लिए हैं, तैसे प्रपञ्चसत्यत्वश्रुति प्रत्यक्षसिद्ध प्रपञ्चसत्त्वकी दृढताके लिए है। जहांपर एकविषयमें अनेकप्रमाणजन्यज्ञान विषयता संबन्धसे रहते हैं वहांपर प्रमाणोंका संप्लव कहा जाता है, जै वह्निमें प्रत्यक्षादिप्रमाणजन्यज्ञान विषयता संबन्धसे रहते हैं अतः वह्निमें प्रमाणोंका संप्लव होता है। इति चेन्न; क्यों? अशेषविशेषग्राहि प्रत्यक्षसे अर्थके ज्ञात होनेपर अर्थकी दृढताके लिए अन्यकी अपेक्षा न होनेसे, पिपासावत्पुरुषको शब्द तथा अनुमानके अनन्तर प्रत्यक्ष अपेक्षित है, परन्तु प्रत्यक्षके अनन्तर शब्द और लिङ्ग नहीं। तब 'तम आसीत्' इत्यादिको 'न किञ्चिदवेदिषम्' इत्याकारक प्रत्यक्षसे सिद्ध जो अज्ञान तादृशाज्ञानदृढतार्थता न होगी, इति न च वाच्यम्; क्यों? 'तम आसीत्' इत्यादिको सृष्टिसे पूर्वकालसम्बन्धित्वेन अज्ञानग्राहित्व होनेसे सुषुप्तिकालसम्बन्धित्वेन अज्ञानग्राहक जो प्रत्यक्ष उस प्रत्यक्षसे भिन्नविषयत्वप्रयुक्त प्रामाण्यका संभव होनेसे। श्रुतिका विषयीभूत अज्ञान सृष्टिपूर्वकालीनत्वेन है, और प्रत्यक्षका विषय सुषुप्तिकालीनत्वेन है, अतः भिन्नविषयत्वेन श्रुतिका प्रामाण्य है।

ननु—'षड्विंशतिरस्य वंक्रय' इति मन्त्रस्याश्वमेधे चोदकप्राप्तस्य 'चतुस्त्रिंशद्वाजिनो देवबन्धो'रिति वैशेषिकमन्त्रेणापोदितस्य षड्विंशतिरित्येव ब्रूयादिति वचनवत् प्रत्यक्षप्राप्तजगत्सत्त्वस्य मिथ्यात्वश्रुत्यापादतोऽपोदितस्य प्रतिप्रसवार्थं सत्त्वश्रुतिः—इति चेन्न; मिथ्यात्वश्रुतेः प्रत्यक्षबाधकत्वाभ्युपगमे तस्याः बलवत्त्वेन तद्विरोधात् सत्यत्वश्रुतेरन्यपरत्वाद्देवताधिकरणन्यायासंभवाच्च प्रतिप्रसवार्थत्वस्य वक्तुमशक्यत्वात्।

शङ्कते नन्विति। 'षड्विंशतिरस्य वंक्रयः' यह मंत्र अश्वमेधमें चोदकसे प्राप्त है, उस चोदकसे प्राप्त मंत्रका 'चतुस्त्रिंशत् वाजिनो देव बन्धो' इस विशेष मंत्रसे अपवाद है, उस प्राप्तापवाद मंत्रके प्रतिप्रसवार्थ जैसे 'षड्विंशतिरित्येव ब्रूयात्' यह वचन है=अग्निषोमीयपशुको उद्देश्यकर सुना जाता है, 'षड्विंशतिरस्य वंक्रयः'=अग्निषोमीयपशुमें इस मंत्रका विनियोग होता है, और अश्वमेध अग्निषोमकी विकृति है, अतः 'प्रकृतिवत् विकृतयः कर्त्तव्याः' इस चोदक वाक्यसे इस मंत्रकी प्राप्ति अश्वमेधमें है, परन्तु अश्वमेधके प्रकरणमें इससे विरुद्धार्थक एक दूसरा मंत्र है—'चतुस्त्रिंशत् वाजिनो देवबन्धोर्वंक्रीरश्वस्य' अतः यहांपर इस विशेषपठित

मंत्रसे प्रथमका अपवाद है इस अपवादका अपवाद करनेके लिए 'षड्विंशतिरित्येव ब्रूयात्' यह वाक्य जैसे है, तैसे प्रत्यक्षतः प्राप्त जो जगत्का सत्यत्व उस सत्यत्वका मिथ्यात्वश्रुतिसे आपाततः अपवाद हुआ उस अपवादका अपवाद करनेके लिए प्रपञ्चसत्यत्व श्रुति है, इति चेन्न; क्यों ? मिथ्यात्वश्रुतिको प्रत्यक्षके बाधकत्वका अभ्युपगम होनेपर तस्याः=मिथ्यात्व श्रुतिको बलवत्ता होनेसे बलवत् श्रुति विरोधसे सत्यत्व श्रुतिको अन्यपरत्व होनेसे, देवताधिकरणन्यायका असंभव होनेसे भी अपवादापवादके लिए कहनेको अशक्य होनेसे=जहांपर प्रमाणान्तरके साथ विरोध नहीं होता है वहां देवताधिकरण न्यायकी प्रवृत्ति होती है, यहांपर प्रत्यक्षप्रतिपक्षीभूतश्रुतिके साथ ही विरोध है अतः देवताधिकरण न्यायकी प्रवृत्ति नहीं हो सकती है । ननु सत्यत्वश्रुतिका प्रामाण्य तो आवश्यक है अतः यह सत्यत्वपर है, ऐसी आशङ्काकर मूलकारने कहा है–अन्यपरत्वात्=स्तुतिपरत्व होनेसे, अर्थात् मिथ्यात्वश्रुतिको अज्ञातज्ञापकत्व होनेसे इसका प्रामाण्य आवश्यक है, और सत्यत्वश्रुतिको व्यावहारिक सत्त्वका अनुवादकत्व होनेसे स्तुतिपरत्व है, प्रपञ्चका तात्त्विकत्व होनेपरतो मिथ्यात्वका व्यावहारिकत्व भी नहीं बनसकता है ।

ननु—सत्त्वप्रत्यक्षप्रामाण्ये तेनैव मिथ्यात्वश्रुत्यनुमानादिबाधः, तदप्रामाण्ये न तेन सत्त्वश्रुतेरनुवादकत्वं–इति चेन्न; प्रत्यक्षाप्रामाण्येऽपि तत्सिद्धबोधकस्यानुवादकत्वसंभवात् । नहि प्रमितप्रमापकत्वमनुवादकत्वम्, किंतु पश्चाद्बोधकत्वमात्रम् । पश्चात्त्वं च प्रमाणावधिकमप्रमाणावधिकं चेति न कश्चिद्विशेषः नच–श्रुतेः सर्वसिद्धप्रमाणभावायाः सदर्थत्वायानुवादकत्वाय च प्रत्यक्षाप्राप्ततात्त्विकसत्त्वविषयत्वमवश्यं वक्तव्यं, तथाचाप्रमाणेन प्रत्यक्षेण कथं श्रुतेरनुवादकत्वमिति–वाच्यम्; सत्त्वांशस्य प्रत्यक्षसिद्धत्वेऽपि वाक्यार्थस्य क्रियादिसमभिव्याहारसिद्धस्यापूर्वत्वेन तद्विषयतयैवाननुवादकत्वोपपत्तावद्वैतश्रुतिविरुद्धतात्त्विकसत्त्वविषयत्वकल्पनायास्तदर्थमयोगात् । परमार्थसद्विषयता तु सर्वश्रुतीनां शुद्धब्रह्मतात्पर्य्यकत्वेनैव । अवान्तरतात्पर्य्यमादाय व्यावहारिकसद्विषयतेति कर्मकाण्डप्रामाण्योपपादने वक्ष्यते । नच–प्रत्यक्षं स्वप्रामाण्यनिर्णयार्थं श्रुतिसंवादमपेक्षत इति न तेन श्रुतेरनुवादकत्वम्; अन्यथा 'सत्यं ज्ञानं' 'नेह नाने'त्यादि श्रुतिरप्यनुवादिनी स्यात् ।

शङ्कते नन्विति । सत्त्वविषयक जो प्रत्यक्ष उस प्रत्यक्षका प्रामाण्य होनेपर तेनैव=उस प्रमाणीभूत प्रत्यक्षसेही मिथ्यात्वश्रुति तथा मिथ्यात्वानुमानादिका बाध होगा, तदप्रामाण्ये=उस सत्त्वविषयक प्रत्यक्षका अप्रामाण्य होनेपर तेन=अप्रमाणीभूत प्रत्यक्षसे श्रुतिको अनुवादकत्व नहीं है, इति चेन्न; क्यों ? प्रत्यक्षका अप्रामाण्य होनेपर भी तत्सिद्ध=प्रत्यक्षसिद्धबोधकत्वेन श्रुतिको अनुवादकत्वका संभव होनेसे, प्रमितका प्रमापकत्व अनुवादकत्व नहीं है, किन्तु पश्चात् बोधकत्वही अनुवादकत्व है । और पश्चात्त्व प्रमाणावधिक तथा अप्रमाणावधिक

होता है इसमें कुछ विशेष नहीं। सर्वसे सिद्ध है प्रमाणभाव जिसका एवम्भूत जो श्रुति है उस श्रुतिको सदर्थत्वके लिए और अननुवादकत्वके लिए प्रत्यक्षसे अप्राप्त एवम्भूत जो तात्त्विकसत्त्व तादृश तात्त्विकसत्त्वविषयत्व अवश्य वाच्य है, फलतः अप्रमाणीभूत प्रत्यक्षसे श्रुतिको कैसे अनुवादकत्व होगा, इति न च वाच्यम्; क्यों? सत्त्वांशको प्रत्यक्षतः सिद्ध होनेपर भी क्रियादिसमभिव्याहारसिद्धवाक्यार्थको अपूर्वत्व होनेसे, वाक्यार्थविषयत्वेनैव श्रुतिके अननुवादकत्वकी उपपत्ति होनेसे अद्वैतश्रुतिसे विरुद्ध तात्त्विकसत्त्वकी कल्पनाको अननुवादकत्वके लिए अयोग होनेसे, सर्व श्रुतिओंको परमार्थसद्विषयता तो शुद्धब्रह्मतात्पर्य्यकत्वेन ही है=वस्तुतः सर्वश्रुतिओंका परमतात्पर्य्य शुद्धब्रह्मविषयक ही है, अतः एतद्रूपेण सर्वश्रुतिओंको तात्त्विकविषयकत्व है। अवान्तर तात्पर्य्यको लेके श्रुतिओंको व्यावहारिकसद्विषयता है, यह कर्मकाण्डके प्रामाण्योपपादनमें कहा जायगा। प्रत्यक्ष स्वप्रामाण्यके निर्णयके लिए श्रुतिके सम्वादकी अपेक्षा करता है अतः प्रत्यक्षसे श्रुतिका अनुवादकत्व नहीं है, अन्यथा 'सत्यं ज्ञानम्' (तै०२।१।१) 'नेह नाना' (बृ० ४।४।१९) इत्यादि श्रुतिभी अनुवादिनी होगी.

ब्रह्मसत्त्वस्य लोकतो भ्रमाधिष्ठानत्वेन लिङ्गेन च मिथ्यात्वस्य दृश्यत्वाद्यनुमानेना-वेदमूलप्रवाहानादिविज्ञानवादिना च प्राप्तेरिति–वाच्यम्; यदि हि दृष्टेऽप्यर्थे प्रत्यक्षं स्वप्रामाण्यनिर्णयाय श्रुतिसंवादमपेक्षते तदा श्रुतिसंवादविरहिणि दृष्टे कुत्रापि निश्शङ्कप्रवृत्तिः न स्यात्। न स्याच्चैवम् 'अग्निर्हिमस्य भेषज'मित्याद्यपि अनुवादकम्। न चेष्टापत्तिः मानान्तरगृहीतप्रमाणभावप्रत्यक्षनिर्णीते मानान्तरस्यानुवादकत्वे जगत्यनुवादकत्वकथोच्छेदप्रसङ्गात्। नच 'सत्यं ज्ञानं' 'नेह नाने' त्यादेरप्यनुवादकतापत्तिः; अनुवादकता हि न तावत् प्रत्यक्षेण ब्रह्मत्वसामानाधिकरण्येन सत्त्वादिकं ह्यनेन प्रतिपादनीयम्, तच्च न प्रत्यक्षगम्यम्। नाप्यनुमानेन; नहि तर्कः सर्वदेशकालीनपुरुषसाधारण इत्यादिना प्रागेव निराकृतत्वात्। नापि प्रवाहनादिविज्ञानवादिमतेन; तस्यापौरुषेयश्रुत्यवधिकपूर्वत्वाभावात्।

ब्रह्मसत्त्वको लोकसे और भ्रमाधिष्ठानत्वरूप लिङ्गसे; मिथ्यात्वको दृश्यत्वादि अनुमानसे, और अवेदमूलक प्रवाहसे अनादिविज्ञानवादादिसे प्राप्त होनेसे, यहांपर आदिपदसे शून्यवादका ग्रहण है, इति न च वाच्यम्; क्यों? यतः यदि देखे हुए अर्थमें भी प्रत्यक्ष स्वकीयप्रामाण्यके निर्णयके लिए श्रुतिसम्वादकी अपेक्षा करेगा तब तो श्रुतिसंवादशून्य देखे हुए अर्थमें कहीं भी निश्शङ्क प्रवृत्ति न होगी, तथा उक्तप्रकारसे 'अग्नि हिमका भेषज है' इत्यादि भी अनुवादक न होगा। इष्टापत्ति है=यहांपर भी अनुवादकत्वाभावमें इष्टापत्ति है नच=इष्टापत्ति नहीं हो सकती है, क्यों? प्रमाणान्तरसे गृहीत है प्रमाणभाव जिसका ऐसा जो प्रत्यक्ष उस प्रत्यक्षसे निर्णीत जो अर्थ तादृश अर्थमें प्रमाणान्तरको अननुवादकत्व होनेपर जगत्में अनुवादकत्वकी कथाके उच्छेदका प्रसङ्ग होनेसे। 'सत्य है,' 'ज्ञान है,' 'इसमें कुछ भी नाना नहीं है' इत्यादिको भी अनुवादकताकी आपत्ति है; नच=नहीं है, हि=यतः तावत्=प्रथम प्रत्यक्षसे तो

अनुवादकता नहीं है, यतः अज्ञातत्वसामानाधिकरण्येन सत्त्वादिक इस वाक्यसे प्रतिपादनीय हैं, तच्च=अज्ञातत्वाधिकरणनिरूपितवृत्तित्वविशिष्टसत्त्वादिक तो प्रत्यक्षसे गम्य नहीं है='घट सन्' इत्यादिप्रतीत्यनुरोधसे घटत्वादिसामानाधिकरण्येन प्रत्यक्षसे सत्त्व गृहीत है अज्ञातत्वसामानाधिकरण्येन नहीं। अनुमानसे भी अनुवादकत्व नहीं है, क्यों? तर्क, सर्वदेश सर्वकाल सर्वपुरुष साधारण नहीं है इत्यादिसे प्रथम हीं निराकृत होनेसे, प्रवाहसे अनादि एवम्भूत जो विज्ञानवादादि उन विज्ञानवादादिरूप मतोंसे भी श्रुतिको अनुवादकत्व नहीं है, क्यों? तस्य=उन विज्ञानवादादिको अपौरुषेय जो श्रुति तादृश श्रुत्यवधिक पूर्वत्वका अभाव होनेसे।

नच—सत्त्वश्रुतेः सत्त्वप्रत्यक्षानपेक्षत्वात् न सापेक्षानुवादकत्वम्, निरपेक्षानुवादकत्वं तु धारावाहनवन्नाप्रामाण्यहेतुः; उक्तं हि नयविवेके—'सापेक्षानुवादे हि न प्रमितिः, नतु दैवादनुवादे, धारावाहनवदिति' इतिवाच्यम्; यतो लाघवादनुवादकत्वमेवाप्रामाण्ये प्रयोजकम्, नतु सापेक्षानुवादकत्वम्; अनधिगतार्थबोधकत्वस्य प्रामाण्यघटकत्वस्य तावतैवगतार्थत्वात्। नच तर्हि धारावहनबुद्धावप्रामाण्यम्; तस्याः वर्तमानार्थग्राहकत्वेन तत्तत्क्षणविशिष्टग्राहतया अनुवादकत्वाभावात्, किंतु श्रुतेरतत्परत्वे प्राप्तत्वमात्रमेव प्रयोजकम्; अन्यथा वैफल्येन स्वाध्यायविधिग्रहणानुपपत्तेः। अपि चेयं सत्त्वश्रुतिरपि सत्त्वप्रत्यक्षसापेक्षत्वात् सापेक्षानुवादिन्येव। नहि सत्त्वप्रत्यक्षं विना तन्मूलशक्त्यादिग्रहमूलकशब्दप्रवृत्तिसंभवः। अत एव यत्र तु प्रमाणान्तरसंवादस्तत्र प्रमाणान्तरादिवार्थवादादपि सोऽर्थः प्रसिध्यति; द्वयोः परस्परानपेक्षयोः प्रत्यक्षानुमानयोरिवैकार्थप्रवृत्तेः, प्रमात्रपेक्षयात्वनुवादकत्वम्। प्रमाता ह्यव्युत्पन्नः प्रथमं प्रत्यक्षादिभ्यो यथार्थमवगच्छति, न तथाऽऽम्नायतः।

सत्त्वश्रुतेः=सत्त्वप्रतिपादक श्रुतिको प्रत्यक्षानपेक्ष होनेसे सापेक्षानुवादकत्व नहीं है, और निरपेक्षानुवाद धारावहनवत् अप्रामाण्यका हेतु नहीं है;=धारावाहिक स्थलमें उत्तरज्ञान स्वोत्पत्तिमें पूर्वज्ञानकी अपेक्षा नहीं करता है, इसलिए इसे सापेक्षानुवादकत्व नहीं है, पूर्वज्ञानविषयविषयकत्वेन अनुवादकत्वमात्र है, नयविवेकमें भवनाथमिश्रने कहा है, सापेक्षानुवादस्थलमें प्रामाण्य नहीं होता है, दैवादनुवादे=निरपेक्षानुवादमें यह बात नहीं है, अर्थात् निरपेक्षानुवादमें प्रामाण्य होता है, धारावाहिकज्ञानवत्= धारावाहिकस्थलमें निरपेक्षानुवादकत्व रहता है, अतः वहां प्रमाण्य रहनेमें कोई हानि नहीं। इति न च वाच्यम्; क्यो? यतः लाघवसे अनुवादकत्वही अप्रामाण्यका प्रयोजक है, गौरव होनेसे सापेक्षानुवादकत्व नहीं, प्रामाण्यघटकस्वरूप जो अनधिगतार्थबोधकत्व उसको अनुवादकत्वमात्रसेही गतार्थ होनेसे=अनधिगतार्थविषयत्वरूप जो प्रामाण्यघटकत्व वह अनुवादकत्वमात्रसेही निवृत्त हो जाता है अतः सापेक्षानुवादकत्वेन अप्रामाण्यके माननेमें गौरव है, तब धारावहन बुद्धिमें अप्रामाण्य होगा क्योंकि अनुवादकत्व तो उसे है ही, नच=नहीं है, क्यों?

तस्याः=धारावहन बुद्धिको वर्तमानार्थग्राहकत्व होनेसे तत्तत्क्षणविशिष्ट=पूर्वपूर्वबुद्धयविपय जो तत्तत्क्षण तादृश तत्तत्क्षणविशिष्ट जो घटादिरूप अर्थ तादृश अर्थग्राहकत्वेन अनुवादकत्वका अभाव होनेसे। किन्तु श्रुतिके अतत्परत्वमें प्राप्तत्वमात्रही प्रयोजक है, अन्यथा अनुवादक वाक्योंका वैफल्य होनेसे स्वाध्यायविधिसे उनके ग्रहणकी अनुपपत्ति होगी='स्वाध्यायोऽध्येतव्यः' यह अध्ययनविधि प्रयोजनवदर्थज्ञानको उद्देश्यकर वेदाध्ययनका विधान करती है और अनुवादक वाक्यसे जायमान ज्ञान तो प्रथमसे ही प्राप्त है और अन्यार्थपरत्व आपको इष्ट नहीं है अतः वैफल्यप्रयुक्त इन वाक्योंका स्वाध्यायमें ग्रहण न होगा। अपि च=और भी कहना है, यह प्रपञ्चसत्यत्वश्रुति भी सत्त्वप्रत्यक्षसापेक्ष होनेसे सापेक्षानुवादिनी ही है, क्योंकि सत्त्वप्रत्यक्षके विना सत्त्वप्रत्यक्षमूलक शक्त्यादिग्रहका संभव नहीं है और शक्तिग्रहके विना शक्तिग्रहमूलक शब्दकी प्रवृत्तिका संभव नहीं, अत एव जहांपर प्रमाणान्तरका संवाद है वहांपर प्रमाणान्तरकी तरह अर्थवादसे भी वह अर्थ प्रसिद्ध होता है=जैसे प्रमाणान्तरसे वह अर्थ प्रसिद्ध होता है वैसेही अर्थवादसे भी द्वयोः=प्रमाणान्तर और अर्थवाद इन दोनोंको–जो कि परस्पर अनपेक्ष हैं, प्रत्यक्षानुमानवत् एकार्थमें प्रवृत्त होनेसे, परन्तु प्रमाताकी अपेक्षा ऐसे स्थलमें भी अनुवादकत्व है, क्योंकि अव्युत्पन्न प्रमाता पहिले प्रत्यक्षादिसे जैसे अर्थ जानता है तैसे आम्नायसे नहीं।

तत्र व्युत्पत्त्यपेक्षत्वादिति वाचस्पतिमतमप्येतमर्थं संवादयति, तेनाम्नायस्य व्युत्पत्त्यपेक्षत्वेन प्रत्यक्षसापेक्षत्वस्यैवोक्तेः। नच–वादिविप्रतिपत्तिनिरासप्रयोजनकत्वेन न निष्प्रयोजनानुवादकत्वं सप्रयोजनानुवादकत्वं तु न स्वार्थपरत्वविरोधि विद्वद्वाक्ये समुदायद्वित्वापादनरूपप्रयोजनवत्त्वेनानुवाद्यस्वार्थपरताया दृष्टत्वात्, अत एव तत्र वाक्यैकवाक्यतोक्ता; अन्यथा अर्थवादवत् पदैकवाक्यतैव स्यादिति–वाच्यम्; प्रत्यक्षसिद्धे वादिविप्रतिपत्तिनिरासरूपप्रयोजनवत्त्वेन प्रमाणान्तरस्य सप्रयोजनतया स्वार्थपरत्वोक्तौ 'अग्निर्हिमस्य भेषज'मित्याद्यपि तेनैव प्रयोजनेन सप्रयोजनं, स्वार्थपरं च स्यात्।

तत्र=आम्नायमें व्युत्पत्तिकी अपेक्षा होनेसे इसरीतिसे वाचस्पतिका मतभी इस अर्थको सम्वादित करता है। वादीकी विप्रतिपत्तिका जो निरास तद्रूप प्रयोजनकत्वसे श्रुतिको निष्प्रयोजनानुवादकत्व नहीं है, और सप्रयोजनानुवादकत्व तो स्वार्थपरत्वका विरोधी नहीं है, विद्वत्वाक्यमें समुदायनिष्ठ जो द्वित्वापादनरूप प्रयोजन तद्वत्त्वेन अनुवाद्य जो स्वार्थ तादृश स्वार्थपरत्वको दृष्ट होनेसे=आग्नेय, ऐन्द्रं दधि, ऐन्द्रं पयः ये तीन याग अमावास्याके साथ सम्बन्ध रखते हैं–अमावास्याको किये जाते हैं, आग्नेय, आज्यभाग, उपांशुयाग, ये तीन याग पौर्णमासीसे सम्बन्ध रखते हैं–पौर्णमासीमें किये जाते हैं, इन षट् यागोंके प्रकरणमें ये दो वाक्य आये हैं 'य एवं विद्वान् पौर्णमासीं यजते,' 'य एवं विद्वान् अमावास्यां यजते' इन वाक्योंके विषयमें जैमिनीयमीमांसाके द्वितीय अध्यायके द्वितीयपादमें विचारकर यह सिद्धान्त कियाकि, ये वाक्य अपूर्व यागोंके विधायक नहीं है, किन्तु षड् यागोंका अनुवादकर

उनमें द्वित्वका ज्ञापन इनका प्रयोजन है, अर्थात् ये वाक्य एक एक त्रिकको पौर्णमासी शब्दसे और अमावास्या शब्दसे अनुवाद करते हैं परन्तु यह अनुवाद निष्प्रयोजन नहीं है, किन्तु 'दर्शपूर्णमासाभ्यां यजेत स्वर्गकामः' इस अधिकार विधिमें जो द्विवचन है उसकी उपपत्ति ही इस अनुवादका प्रयोजन है—यदि ये अनुवादक वाक्य न होते तो षड् यागोंमें द्विवचनका प्रयोग अनुपपन्न हो जाता । अत एव=स्वार्थपरत्व होनेसे ही तत्र=उक्तवाक्योंमें फलवाक्यके-साथ एकवाक्यता कही है, जहां स्वार्थबोधमें समाप्तवाक्य परस्पर सापेक्ष होके एक महावाक्यार्थ-बोध उत्पन्न करते हैं तहां वाक्यैकवाक्यता कही जाती है प्रकृतमें समुदितार्थका आकार ऐसा होगा कि, पौर्णमासामावास्यायागसमुदायस्य विद्वद्वाक्यनिष्पन्नार्थस्य दर्शाख्येन समुदायेन पौर्णमासाख्यसमुदायेन स्वर्गकाम इष्टिं कुर्य्यात् । अन्यथा=स्वार्थपरत्वाभाव होनेपर अर्थवादवत् पदैक्यवाक्यता ही होगी=जहांपर एकवाक्य यथाश्रुतार्थस्वार्थमें तात्पर्य्य न रखकर विधिवाक्य-घटकपदार्थान्वितत्वेन स्वार्थका बोधन करता है वहांपर पदैक्यवाक्यता कही जाती है, जैसे 'वायुर्वै क्षेपिष्ठा देवता' अनुवाद्य स्वार्थमें तात्पर्य्य न रखकर विधिवाक्यघटकपदबोध्य जो आलभन उस आलभनके साथ अन्वितत्वेन प्राशस्त्यरूप स्वार्थको बोधन करता है अतः यहांपर पदैकवाक्यता है, इसी रीतिसे यदि स्वार्थमें तात्पर्य्य=अर्थात् स्वार्थपरत्व न होतो विद्वद्वाक्यमें भी पदैकवाक्यता होगी । इति न च वाच्यम्; क्योंकि—प्रत्यक्षसे सिद्ध अर्थमें वादिओंकी विप्रतिपत्तिका निरासरूप जो प्रयोजन तादृश प्रयोजनवत्त्वेन प्रमाणान्तरको सप्रयोजनता होनेसे स्वार्थपरत्वकी उक्ति होनेपर 'अग्निर्हिमस्यभेषजम्' इत्यादि भी तेनैव=वादिविप्रति-पत्तिनिरासरूप प्रयोजनसे ही सप्रयोजन होंगे और स्वार्थपर होंगे ।

तथाच न प्रत्यक्षसिद्धे वादिविप्रतिपत्तिनिरासार्थमन्यापेक्षा, दृष्टान्ते तु समुदा-यानुवादेन द्वित्वसम्पादनस्योद्देश्यस्यान्यतो लब्धुमशक्यतया तेन प्रयोजनेन स्वार्थपर-त्वस्य वक्तुं शक्यत्वात् । एतदभिप्रायं च पूर्वोक्तं नयविश्वेकवाक्यम् । नच—अनुवाद-त्वेऽपि नैष्फल्यमात्रम्, नत्वप्रामाण्यम्, याथार्थ्यमेवप्रामाण्यं, नत्वनधिगतार्थत्वे सति याथार्थ्यमिति—वाच्यम्; तात्पर्यविषये शब्दः प्रमाणम् 'यत्परः शब्दः स शब्दार्थ' इत्यभियुक्ताभ्युपगमात्, अन्यथास्वाध्यायविधिग्रहणानुपपत्तेरुक्तत्वाच । नह्यन्यतः सिद्धेऽर्थे शास्त्रतात्पर्य्यम्, अतो न तत्र प्रामाण्यम् । यदाहुर्भट्टाचार्य्याः—'अप्राप्ते शास्त्र-मर्थव'दिति । ननु—अयमनुवादः न 'वायुर्वैक्षेपिष्ठा देवते'त्यादिवत् स्तुत्यर्थः; न वा 'दध्ना जुहोती'त्यादिवदन्यविधानार्थः; अनुवाद्यत्वेऽप्यन्यविधानाय प्रमाणानूदितस्य तात्त्विकत्वनियमात्, नहि 'व्रीहीन्प्रोक्षती'त्यादावारोपितव्रीह्यादेर्धीः, अनुवाद्यस्यासत्त्वे ह्याश्रयासिद्धौ धर्मधर्मिसंसर्गरूपानुमितिवेद्य इवानुवाद्यविधेयसंसर्गरूपवाक्यार्थो बाधितः स्यात्—इति चेन्न;

फलतः प्रत्यक्षसे सिद्ध अर्थमें वादिओंकी विप्रतिपत्ति निरासार्थ अन्यकी अपेक्षा नहीं है, दृष्टान्तमें तो समुदायके अनुवादसे द्वित्वसंपादनरूप उद्देश्यको अन्यतः प्राप्त होनेको अशक्य

होनेसे द्वित्वसम्पादनरूप प्रयोजनसे स्वार्थपरत्व कहनेको शक्य है, और ऐसेही अभिप्रायवाला पूर्वोक्त नयविवेकका वाक्य है। अनुवादत्व होनेपर भी निष्फलतामात्र हो सकती है, अप्रामाण्य नहीं, ज्ञाननिष्ठ याथार्थ्य ही प्रामाण्य है अनधिगतार्थत्वविशिष्ट याथार्थ्य नहीं इति न च वाच्यम्; क्योंकि तात्पर्यके विषयमें शब्दप्रमाण होता है 'यत्परक शब्द हो वही शब्दार्थ है' ऐसा अभियुक्तोंका अभ्युपगम होनेसे, अन्यथा स्वाध्यायविधिसे ग्रहणकी अनुपपत्ति है यह कहा जा चुका है; अन्यतः सिद्ध अर्थमें शब्दका प्रामाण्य नहीं, जैसा कि कुमारिलभट्टाचार्य्य कहते हैं, अप्राप्ते= प्रमाणान्तरसे अप्राप्त अर्थमें शास्त्र अर्थवत् होता है, शङ्कते नन्विति। अयमनुवादः=विश्वं सत्यम्' इदं सर्वं यदयमात्मा, इत्यादि अनुवाद, 'वायुर्वैक्षेपिष्ठा देवता' इत्यादिवत् स्तुतिके लिए नहीं है, 'दध्ना जुहोति' इत्यादिवत् अन्यविधानार्थ भी नहीं='दध्ना जुहोति' यहांपर 'अग्निहोत्रं जुहुयात्' इस वाक्यसे उक्त होमका अनुवादकर दधिका विधान किया जाता है। अनुवाद्यत्व होनेपर भी अन्यके विधानके लिए प्रमाणसे अनूदितके तात्त्विकत्वका नियम होनेसे; 'व्रीहीन् प्रोक्षति' यहांपर व्रीहिओंका अनुवादकर प्रोक्षणका विधान है, इस वाक्यसे जो व्रीहिविषयक ज्ञान होता है उस ज्ञानके विषयीभूत व्रीहि आरोपित नहीं होते हैं, क्योंकि अनुवाद्यका असत्त्व होनेपर आश्रयासिद्धि होगी और आश्रयासिद्धि होनेपर जैसे वह्न्यादिरूपधर्म और पर्वतादिरूप जो धर्मी इन दोनोंका संसर्गरूप जो अनुमितिका वेद्य वह बाधित हो जाता है तैसे अनुवाद्य तथा विधेय इन दोनोंका संसर्गरूप जो वाक्यार्थ वह बाधित हो जायगा, इति चेन्न; क्यों?

अस्यानुवादस्याप्राप्तान्यप्राप्त्यर्थत्वात्। नच प्रमाणानूदितस्य तात्त्विकत्वनियमः; स्वप्नाध्याये, शुक्तौ 'नेदं रजत' मिति वाक्ये च व्यभिचारात्। अथ तत्र ज्ञानविषयतया निषेध्यतया चानुवाद इति न तात्त्विकत्वम्, तर्हि प्रकृतेऽपि 'नेहनाने'ति निषेधार्थत्वादस्यानुवादस्य न तात्त्विकत्वमिति गृहाण। अत एव न वाक्यार्थस्यासत्त्वप्रसङ्गः; तात्पर्य्यविषयस्य सत्त्वात् अथ-किंचने त्यनेनैवानुवादस्य कृतत्वात् किमधिकेनेति-चेन्न; सामान्यतो निषेधस्य हि 'किंचने' त्यनेन निषेध्यसमर्पणेऽपि विशिष्य निषेधे विशिष्यनिषेध्यसमर्पणस्योपयोगात्। अथ-निषेधवाक्यस्य न निषेध्यसमर्पकवाक्यान्तरापेक्षा अन्यथा 'न कलञ्जं भक्षये' दित्यादावपि निषेध्यसमर्पणार्थं 'कलञ्जं भक्षये' दित्यादिवाक्यान्तरसापेक्षत्वप्रसङ्ग-इति चेन्न; सर्वत्रापेक्षानियमाभावात्, सति संभवे प्रकृतत्यागायोगात्, 'अतिरात्रे षोडशिनं गृह्णाति' 'नातिरात्रे षोडशिनं गृह्णाति' इत्यादौ वाक्यान्तरप्राप्तस्य निषेधदर्शनाच्च। नच तद्वदेव विकल्पापत्तिः; सिद्धे वस्तुनि विकल्पायोगात्, ग्रहणाग्रहणवाक्ययोरुभयोरपि मानान्तराप्राप्तविषयत्वेन तुल्यबलत्ववदिह सत्त्वश्रुतेर्मानान्तरप्राप्तविषयत्वेन निषेधश्रुतेश्चाप्राप्तविषयत्वेन तुल्यबलत्वाभावाच्च। अत एव निषेधवाक्यप्राबल्यात्तदनुरोधेनेतरन्नीयते;

अस्य='विश्वं सत्यं,' इत्यादि अनुवादको 'देवा अपि न प्रमिणन्ति' इत्याकारक अप्राप्त जो निषेधरूप अन्यार्थ तद्व्यापकत्व होनेसे=अन्यविधानके लिए ही यह अनुवाद है, क्योंकि अप्राप्त प्रापणका नाम ही तो विधान है सो इसमें है ही। प्रमाणसे अनूदित अर्थके तात्त्विकत्वका नियम नहीं है अर्थात् प्रमाणसे जिस अर्थका अनुवाद हो वह अर्थ तात्त्विकही हो ऐसा नियम नहीं क्यों ? स्वप्नाध्याये=अज्ञात जो स्वप्नका फल उस फलका ज्ञापक जो ग्रन्थ उसे स्वप्नाध्याय कहते हैं उस स्वप्नाध्यायमें और 'नेदं रजतम्' इस वाक्यमें व्यभिचार होनेसे=यहांपर प्रमाणानूदितत्व स्वप्नको तथा शुक्तिरजतको है परन्तु तात्त्विकत्व नहीं, यदि ऐसा कहो कि तत्र=दृष्टान्तमें ज्ञानविषयतया=भ्रमज्ञानविषयत्वेन तथा निषेध्यतया=मिथ्यात्वेन अनुवाद हैं अतः अनुवाद्यका तात्त्विकत्व नहीं है, तव प्रकृतमें भी 'नेह नाना' इस श्रुतिसे बोध्य जो निषेध तादृशनिषेधार्थत्व होनेसे, अस्यानुवादस्य='इदं सर्वं यदयमात्मा' इत्यादि अनुवादको तात्त्विकत्व नहीं है, इस रीतिसे ग्रहणकर। अतएव=उक्तनिषेधार्थत्व होनेसे ही, वाक्यार्थके असत्त्वका प्रसङ्ग नहीं, तात्पर्य्यविषयका सत्त्व होनेसे। प्रकारान्तरसे शङ्का की जाती है अथेति। 'किञ्चन' इससे ही अनुवादको कृत होनेसे अधिकसे, क्या प्रयोजन, इति चेन्न, क्यों ? सामान्यनिषेधको अपेक्षित निषेध्यका 'किञ्चन' इससे समर्पण होनेपर भी, विशेषनिषेधमें विशेषप्रतिषेध्यसमर्पणका उपयोग होनेसे,=सामान्यनिषेधमें सामान्यरूपसे प्रतियोगिकी उपस्थिति आवश्यक है, और विशेष निषेधमें विशेषरूपसे प्रतियोगिकी उपस्थिति आवश्यक है। पुनरपि शङ्का की जाती है अथेति। निषेधके प्रतिपादक वाक्यको प्रतियोगिसमर्पक अन्यवाक्यकी अपेक्षा नहीं है, अन्यथा=यदि आग्रहसे इस अर्थको न मानो तो; 'न कलञ्जं भक्षयेत्' इत्यादिमेंभी कलञ्जं भक्षयेत् इत्यादि रूपे वाक्यान्तरके सापेक्षत्वका प्रसङ्ग होगा, इति चेन्न; सर्वत्र अपेक्षाके नियमका अभाव होनेसे प्रकृतमें संभव होनेपर त्यागका अयोग है। और 'अतिरात्रे षोडशिनं गृह्णाति' 'नातिरात्रे षोडशिनं गृह्णाति' इत्यादिमें वाक्यान्तरसे प्राप्तका निषेध देखनेसे, उक्त वाक्यवत् प्रकृतमें भी विकल्पकी आपत्ति है नच=नहीं है, क्यों ? सिद्ध वस्तुमें विकल्पका अभाव होनेसे, ग्रहणाग्रहण दोनों वाक्योंको मानान्तरसे अप्राप्त-अर्थविषयकत्वेन जैसे तुल्यबलत्व है, तैसे सत्त्वश्रुतिको मानान्तरसे प्राप्तार्थविषयत्व होनेसे और निषेधश्रुतिको मानान्तरसे अप्राप्तार्थविषयत्व होनेसे तुल्यबलत्वका अभाव है अतएव=मानान्तरसे अप्राप्तार्थविषयत्वेन ही निषेधवाक्यका प्राबल्य होनेसे तदनुरोधेन= निषेधवाक्यानुरोधसे इतरत्= सत्त्वादिबोधकवाक्य अर्थवत् किया जाता है;

अथ—अप्राप्तान्यप्राप्त्यर्थत्वेऽप्यलौकिकस्य 'आपश्च न प्रमिणन्ती'त्यादिपदार्थसंसर्गस्य विधेयस्य सत्त्वान्न निषेध्यार्थानुवादकत्वमिति—चेन्न; तदन्यपरत्वस्य प्रागेवोक्तत्वात्। ननु 'यत्तन्ने'ति निषेधानुवादलिङ्गाभावान्नानुवादः, न यत्किंचिल्लिङ्गाभावेन लैङ्गिकाभावस्य वक्तुमशक्यत्वात्। ननु—तर्हि 'तत्सत्यमित्याद्यपि 'न सच्चन्नासदुच्यत' इति 'असद्वा इदमग्रआसी'दिति च निषेधाय 'सन् घटः' 'सद्वज्ञानं' 'सत्सुखस्फु-

रण'मित्यादिसिद्धब्रह्मसत्त्वानुवादि स्यात्—इति चेन्न; ब्रह्मत्वसामानाधिकरण्येन सत्त्वस्य प्रत्यक्षादिभ्योऽप्राप्तेः शून्यवादप्रसङ्गेन तस्य निषेधायोगाच्च। 'य इदं सर्वंयदयमात्मे' त्यत्रानुवादलिङ्गसम्भवेन कल्पनाच्च। एवमानन्दश्रुतेरपि, 'अदुःखमसुखं सम'मिति निषेधाय न प्रत्यक्षप्राप्तानन्दानुवादित्वम्; दुःखसाहचर्येण सुखस्यापि वैषयिकस्यैव ग्रहणेन तन्निषेधाय ब्रह्मरूपसुखानुवादायोगात्। एतच्च सर्वमुक्तं विवरणे—निष्प्रपञ्चास्थूलादिवाक्यानुसारेण 'इदं सर्वं यदयमात्मे'त्यादीनि निषेध्यसमर्पकत्वेनैकवाक्यतां प्रतिपद्यन्ते; सुषुप्तौ निष्प्रपञ्चतायां पुरुषार्थत्वदर्शनादिति।

अप्राप्त जो अन्य उसकी प्राप्तिके लिए होनेपर भी 'आपश्च न प्रमिणन्ति' इत्यादि अलौकिकपदार्थसंसर्गरूप विधेयका सद्भाव होनेसे निषेध्य जो अर्थ तादृश अर्थका अनुवादकत्व नहीं है; इति चेन्न; क्यों ? तदन्यपरत्वस्य=तस्य=उक्त वाक्यके स्तुतिरूप अन्यपरत्वको प्रथम ही उक्त होनेसे, शङ्कते नन्विति। (यत् तत् न) इत्याकारक जो निषेध प्रतीत होता है उस निषेधके लिए किया गया जो अनुवाद उसका नाम है 'निषेधानुवाद' उस निषेधानुवादका लिङ्ग जो 'यत्' शब्द उसका अभाव होनेसे यह अनुवाद नहीं है, न=यह कथन आपका ठीक नहीं है; क्यों ? जिसकिस लिङ्गाभावसे लैङ्गिकके अभावको कहनेको अशक्य होनेसे। शङ्कते नन्विति। 'तत्सत्यम्' इत्यादि भी 'न सत् तत् न असत्' इस वाक्यसे तथा 'असत् वै अग्रे आसीत्,' इस वाक्यसे प्रतिपाद्य जो सत्प्रतियोगिक निषेध उस निषेधके लिए 'सन् घटः' 'सद् घटज्ञानम्' सत् सुखस्फुरणम्' इत्यादि प्रत्यक्षसे सिद्ध जो ब्रह्मसत्त्व उस ब्रह्मसत्त्वका अनुवादि होगा, इति चेन्न=ऐसा यदि कहो तो नहीं कहना क्यों ? ब्रह्मत्वसामानाधिकरण्येन सत्त्वकी प्रत्यक्षादिसे अप्राप्ति होनेसे, और शून्यवादके प्रसङ्गसे ब्रह्मनिष्ठसत्त्वके निषेधका अयोग है, 'इदं सर्वं यदयमात्मा' यहांपर अनुवादके लिङ्गका संभव होनेसे विश्वसत्त्वानुवादमें यच्छब्दादिरूप लिङ्गकी कल्पना की जाती है। ऐसे ही आनन्दश्रुतिको भी 'अदुःखमसुखं समम्' इस वाक्यसे प्रतिपाद्य निषेधके लिए प्रत्यक्षतः प्राप्त आनन्दका अनुवादित्व नहीं है क्यों ? दुःखके साहचर्य्यसे विषयजन्यसुखका ही ग्रहण होनेसे, तन्निषेधाय=वैषयिकसुखके निषेधके लिए ब्रह्मरूप सुखके अनुवादका अयोग होनेसे, यह अर्थजात विवरणमें कहा है—निष्प्रपञ्च तथा अस्थूलादि वाक्यानुसारसे 'इदं सर्वं यदयमात्मा' इत्यादि निषेध्यसमर्पकत्वेन वाक्यैकवाक्यताको प्राप्त होते हैं, सुषुप्तिकालावच्छेदेन निष्प्रपञ्चतामें पुरुषार्थत्व देखनेसे।

अथ निष्प्रपञ्चता न पुरुषार्थः, मूर्च्छायां तत्त्वादर्शनात्, नच तदा तदज्ञानमात्रं नतु तदभाव इति—वाच्यम्; समं सुषुप्तावपीति चेन्न; मूर्च्छायां स्वरूपसुखस्फुरणाभावात्। तथाच सूत्रम्—"मुग्धेऽर्धसंपत्तिः परिशेषा"दिति। सुषुप्तिमुक्तिकालीननिष्प्रपञ्चतायां स्वरूपसुखानुभवेन तस्याः पुरुषार्थत्वात्। तथाच श्रुतिः—द्वितीयाद्वै भयंभवतीति। अथ 'तस्मादेकाकी न रमते' इति श्रुतेः सप्रपञ्चतापि पुरुषार्थः, न; तस्या दुःखसाधनत्वेन

पुरुपार्थत्वायोगात्, कर्मकाण्डवदस्याः श्रुतेः अविवेकिपुरुपपरत्वाच्च । ननु—पृथगात्मानं प्रेरितारं च मत्वा जुष्टस्ततस्तेनामृतत्वमेति' इति भेदज्ञानस्य मोक्षहेतुत्वश्रवणात् कथं न सप्रपञ्चतापुरुपार्थ—इति चेन्न; मतेः पूर्वं ममापि प्रेरकपृथक्त्वदृष्टेः सगुणब्रह्मज्ञानवत् प्रेरकत्वेन ब्रह्मज्ञानस्यापि परम्परयोपकारकत्वात्, 'एकधैवानुद्रष्टव्य 'मित्यादिवाक्यस्वारस्याद्भेदज्ञानस्यैव साक्षात् मोक्षहेतुत्वात् । अत एव प्रेरकत्वज्ञानस्य जोपहेतुत्वमुक्तम् ।

निष्प्रपञ्चता पुरुपार्थ नहीं है, क्यों ? मूर्च्छावस्थामें पुरुपार्थत्वके न देखनेसे=सुपुप्तिकालीन निष्प्रपञ्चता पुरुपार्थ=स्वतः प्रयोजन नहीं है, क्योंकि मूर्च्छावस्थामें उक्त पुरुपार्थका अदर्शन है । तदा=मूर्च्छावस्थामें तदज्ञानमात्रम्=प्रपञ्चका अज्ञानमात्र है, प्रपञ्चका अभाव नहीं, अतः वहां निष्प्रपञ्चता नहीं है, इति न च वाच्यम्, क्योंकि सुपुप्तिमेंभी यह कथन हो सकता है=जैसे मूर्च्छावस्थामें पदार्थोंका अज्ञानमात्र है पदार्थोंका अभाव नहीं तैसे ही सुपुप्तिमें भी अज्ञानमात्र है अभाव नहीं; इति चेन्न=ऐसा यदि कहो तो नहीं कहना, क्यों ? मूर्च्छामें स्वरूपसुखके स्फुरणका अभाव होनेसे,=मूर्च्छावस्थामें अनावृत चेतनका भान नहीं होता है, तथाच इस अर्थमें व्यासजीका सूत्र (वे० ३।२।१०) है, मुग्धे=मूर्च्छावस्थामें अवस्थित मूढ=आवृत साक्षि होनेपर अर्धसम्पत्तिः=सुपुप्तिके अर्धकी प्राप्ति होती है, क्यों ? परिशेपात्= ज्ञानेन्द्रियोंका उपरम होनेपर भी कर्मेन्द्रियोंके अनुपरमसे=मूर्च्छावस्थामें अवस्थित चेतन अर्धसुपुप्तिवाला कहा जा सकता है, क्योंकि वहां ज्ञानेंद्रियोंका विलय होता है, कर्मेंद्रियोंका नहीं, हस्तादिकी चेष्टाका परिशेप होनेसे कर्मेंद्रियोंका अनुपरम समझा जाता है । सुपुप्तिकालीन निष्प्रपञ्चता होनेपर स्वरूपभूत सुखका अनुभव होनेसे तस्याः=सुपुप्तिकालीन निष्प्रपञ्चताको पुरुपार्थत्व है जैसाकि श्रुतिमें कहा है—सुपुप्तिकाले सकले विलीने तमोऽभिभूतः सुखरूपमेति (कैवल्य० खं० १।१३)। आनन्दभुक् चेतोमुखः प्राज्ञः (माण्डू० मं० ५) । ततस्तु जातं सकलं विचित्रम् (कै० खं० १।१४) । इत्यादि श्रुतिओंमें अविद्यासंस्कारादिसे अतिरिक्त प्रपञ्चका सुपुप्तिमें लय तथा पुनः उत्पत्ति, और प्रपञ्चाभावमें सुखका अनुभव बतलाया है । निष्प्रपञ्चतामें ही पुरुपार्थत्व है इस अर्थमें श्रुति (बृह० १।४।२) दिखलाते हैं, तथा चेति, द्वितीयाद्वै=अनात्मज्ञानसे भय उत्पन्न होता है । एकाकी रमण नहीं करता है, इस (बृ० १।४।३) श्रुतिसे सप्रपञ्चता भी पुरुपार्थ है, न=नहीं है, क्यों ? तस्याः=सप्रपञ्चाताको प्रत्यक्षतः दुःखसाधनत्व होनेसे पुरुपार्थत्वका अयोग है, और कर्मकाण्डवत् यह श्रुति अविवेकिपुरुपपर है=जैसे कर्मकाण्ड अविवेकिओंके लिए है तैसे यह श्रुति भी देहाध्यासी अविवेकिओंके लिए है । शङ्कते नन्विति । पृथक्त्वेन तथा प्रेरकत्वेन आत्माको समझकर तेन=उस आत्मासे प्रीतिभाजन हुआ मुक्त होता है, (श्वेता० १।६) इस रीतिसे भेदज्ञानको मोक्ष हेतुत्वका श्रवण होनेसे सप्रपञ्चता पुरुपार्थ क्यों न होगी इति चेन्न; प्रेरकत्वेन और पृथक्त्वेन समझकर मुक्त होता है एसा श्रुत्यर्थ नहीं है किन्तु तत्त्वज्ञानसे पूर्व प्रेरकत्वेन तथा पृथक्त्वेन उपलभ्यमान अखण्ड आत्माको समझकर मुक्त होता है ऐसा श्रुत्यर्थ है इस अभिप्रायसे कहते हैं मतेरिति । तत्त्वज्ञानसे पूर्व मुझको भी प्रेरकके पृथक्त्वकी दृष्टिका अङ्गीकार

होनेसे=तत्त्वज्ञानसे पूर्व प्रेरक मुझसे पृथक् है ऐसा ज्ञान हम अङ्गीकार करते हैं, क्यों? सगुण=गुणान्तरयुक्तब्रह्मज्ञानवत् प्रेरकत्वेन ब्रह्मज्ञानको भी परम्परासे उपकारकत्व होनेसे, एकधैवानुद्रष्टव्यम्=केवल अभेदरूपसे ही द्रष्टव्य है, (बृ० ४।४।२०) इत्यादि वाक्योंके स्वारस्यसे अभेदज्ञानको ही साक्षात् मोक्ष हेतुत्व है, भेदज्ञानको नहीं, अत एव=भेदज्ञानको परम्परासे उपकारकत्व होनेसे ही प्रेरकज्ञानको जोप हेतुत्व कहा है ।=तथाच अर्थ यह हुआकि पृथत्वेन तथा प्रेरकत्वेन आत्माको समझकर तेन=उस आत्मासे जुष्टः=ब्रह्मलोककी प्राप्तिसे प्राप्त हुआ हुआ ततः=ब्रह्मलोककी समाप्ति होनेपर अमृतत्वमेति=मोक्षको प्राप्त होता है ।

तथोत्तरत्रापि—'वेदविदो विदित्वा लीना ब्रह्मणि तत्परा ये विमुक्तास्तदात्मतत्त्वं प्रसमीक्ष्य देही एकः कृतार्थो भवते वीतशोकः' इत्यभेद एव श्रूयते। अतो न भेदज्ञानस्य हेतुत्वम्। एतेन—नेहनानेतिश्रुतिरेव 'विश्वसत्य' मित्यबाध्यत्वरूपबाधनिषेधाय विज्ञानवादिप्राप्तविश्वनिषेधानुवादिनी किं न स्यादिति—निरस्तम्। भावाभावयोः परस्परविरहरूपत्वे समेऽपि भावग्रहो निरपेक्षत्वात् नाभावाग्रहमपेक्षते, अभावग्रहस्तु सप्रतियोगितया भावग्रहमपेक्षते। अतो 'नेति नेति' श्रुतेरेव सत्त्वश्रुत्यपेक्षा, न तु सत्त्वश्रुतेर्नेति श्रुत्यपेक्षा, अन्यथा अन्योन्याश्रयापत्तेः ननु उत्सर्गापवादन्यायोऽस्तु, यथाहि 'न हिंस्यात् सर्वाभूतानी' ति श्रुतिविशेषप्रवृत्तापि हिंसात्वसामान्यस्य प्रत्यक्षादिप्राप्तत्वान्निषेध्योपस्थितौ नाग्नीषोमीयवाक्यमपि निषेध्यसमर्पणायापेक्षते, तथा नेतिनेत्यादिश्रुतिरविशेषप्रवृत्तापि, प्रत्यक्षप्राप्तघटादिसत्त्वरूपनिषेध्यमादाय निराकाङ्क्षा सती न प्रत्यक्षाप्राप्तधर्माधर्मादिसत्यत्वबोधिकां 'विश्वंसत्यमित्यादिश्रुतिमपि निषेध्यसमर्पणायापेक्षितुमर्हति, यत्र तु मानान्तरेण निषेध्यस्याप्राप्तिस्तत्र निषेध्यसमर्पणाय श्रुत्यन्तरमपेक्षत एव यथा षोडशिग्रहणाग्रहणयोः मानान्तरेण निषेध्योपस्थितावपि वाक्यापेक्षणे अग्नीषोमीयहिंसाया अपि निषेध्यत्वेनाधर्मत्वं स्यात्—इति चेन्मैवम्।

तैसे उत्तरमें भी वेदविदोविदित्वा इत्यादि (श्वेत० १।७) अभेद ही श्रुत होता है, अतः भेदज्ञानको मोक्षहेतुत्व नहीं है। इस कथनसे 'नेह नाना' यह (बृ० ४।४।१९) श्रुति ही 'विश्वं सत्यम्' इत्याकारक जो अबाध्यत्वरूप बाधका निषेध, उस बाधनिषेधके लिए विज्ञानवादीसे प्राप्त जो विश्वका निषेध उस निषेधकी अनुवादिनी क्यों न हो यह खण्डित हुआ, क्योंकि भाव तथा अभाव इन दोनोंको परस्पर अभावरूप होनेपर भी निरपेक्ष होनेसे भावग्रह अभावग्रहकी अपेक्षा नहीं करता है, और सप्रतियोगि होनेसे अभावग्रह भावग्रहकी अपेक्षा करता है। अतः 'नेति नेति' (बृ० २।३।६।; ३।९।२६; ४।२।४; ४।४।२२; ४।५।१५) इस श्रुतिको ही सत्त्वश्रुतिकी अपेक्षा है, सत्त्व श्रुतिको 'नेति' इस श्रुतिकी अपेक्षा नहीं, अन्यथा अन्योन्याश्रयकी आपत्ति है='नेति' इत्यादि श्रुतिको प्रपञ्चसत्यत्वाभावांशमें सत्त्वश्रुतिकी अपेक्षा है। और सत्त्वश्रुतिको मिथ्यात्वाभावांशघटित सत्त्वांशमें 'नेति' इत्यादि श्रुतिकी अपेक्षा है अतः

अन्योन्याश्रय है; फलतः विश्वसत्यत्वको प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे प्राप्त होनेसे सत्त्वश्रुति अनुवाद है, और विश्वसत्यत्वाभावको शून्यवादइके प्रति प्राप्त होनेपर सर्वके प्रति अप्राप्त होनेसे 'नेति' इत्यादि श्रुति अनुवाद नहीं है; शङ्कते नन्विति। उत्सर्गअपवादन्याय प्रकृतमें रहो तथा हि 'नहिंस्यात् सर्वाभूतानि यह श्रुति अविशेषरूपसे प्रवृत्त हुई भी हिंसात्वसामान्यको प्रत्यक्षादितः प्राप्त होनेसे निषेध्योपस्थितौ=हिंसारूपनिषेध्यकी उपस्थितिके निमित्त अग्नीषोमीय वाक्यभी निषेध्यसमर्पणके लिए अपेक्षित नहीं होता है, तैसे नेति नेति यह श्रुति अविशेषरूपसे प्रवृत्त हुई भी प्रत्यक्षसे प्राप्त जो घटादिका सत्त्वरूप निषेध्य उस निषेध्यको लेके, निराकाङ्क्षा हुई प्रत्यक्षसे अप्राप्त जो धर्माधर्मादिका सत्त्व तादृशसत्त्वबोधिका जो (विश्वंसत्यम्) इत्यादि श्रुति उस श्रुतिकोभी निषेध्यके समर्पणके लिए अपेक्षा करनेको योग्य नहीं है, जहाँपर प्रमाणान्तरसे निषेध्यकी अप्राप्ति होती है तहाँ निषेध्यके समर्पण करनेके लिए श्रुत्यन्तरकी अपेक्षा करती है, जैसे षोडशिके ग्रहणाग्रहणमें मानान्तसे निषेध्यकी उपस्थिति होनेपर भी निषेध्यकी उपस्थितिके लिए वाक्यकी अपेक्षा होनेपर अग्नीषोमीय हिंसाको भी 'माहिंस्यात्' से निषेध्य होनेसे अधर्मत्व होगा, इति चेत्=ऐसा यदि कहो तो मैवम्=ऐसा नहीं हैं, क्योंकि—

अग्नीषोमीयवाक्यस्य, निषेधविषयन्यूनविषयत्वेनानन्यशेषतया, स्वार्थतात्पर्यवत्त्वेन च न निषेध्यसमर्पणद्वारेण निषेधवाक्यशेषता, 'विश्वंसत्यमित्यादेस्तु निषेधविषयसमविषयत्वेन स्वार्थतात्पर्यरहितत्वेन च निषेध्यसमर्पणद्वारेण निषेधवाक्यशेषता उचितैव। अतएव प्रत्यक्षाप्राप्तधर्मादिसत्त्वोपस्थापनेन वाक्यसाफल्यमपि। स्वार्थतात्पर्यरहितत्वेन च नाग्नीषोमीयवाक्यतुल्यत्वमित्युक्तम्। अतो दृश्यत्वादिहेतोर्धर्माद्यंशेऽपि श्रुत्या न बाधः। अथवा व्यावहारिकसत्त्वपरेयं विश्वसत्यत्वश्रुतिः न च व्यावहारिकसत्त्वे सर्वाविप्रतिपत्तेस्तत्प्रतिपादनवैयर्थ्यम्। दशाविशेषे स्वर्गनरकादिसत्त्वप्रतिपादनेन तत्प्राप्तिपरिहारार्थं प्रवृत्तिनिवृत्त्योरेव तत्प्रयोजनत्वात् व्यावहारिकत्वञ्च ब्रह्मज्ञानेतराबाध्यत्वम्। नत्वबाध्यत्वं मिथ्यात्वबोधकश्रुतिविरोधात्। नचैवं दृढभ्रान्तिजनकत्वात् अत्यन्ताप्रामाण्यापत्तिः स्वप्नार्थप्रतिपादनवदुपपत्तेः। एतावा नेवविशेषः-तत्प्रातिभासिकम् इदन्तु व्यावहारिकमिति।

अग्नीषोमीय वाक्यको निषेधके विषयसे न्यूनविषयक होनेसे और अनन्यशेषत्वप्रयुक्त स्वार्थतात्पर्यवत्त्व होनेसे निषेध्यके समर्पणद्वारा निषेधवाक्यकी शेषता नहीं है। और 'विश्वंसत्यम्' इत्यादिको निषेधविषयके समानविषयत्व होनेसे और स्वार्थमें तात्पर्यरहितत्व होनेसे निषेध्यके समर्पणद्वारा निषेधवाक्यकी शेषता उचितही है अतएव निषेधवाक्यशेष होनेसे ही प्रत्यक्षतः अप्राप्तधर्मादिनिष्ठसत्त्वोपस्थापनसे वाक्यसाफल्य है। 'विश्वं सत्यम्' यह श्रुति निखिलप्रपञ्चधर्मिकत्वेन सत्त्वका उपस्थान करती है. अतः यहाँपर आदिपदसे घटादिकाभी लाभ होता है. अतः ऐसा अर्थ करना चाहिए कि, प्रत्यक्षतः प्राप्त घटादि और अप्राप्त धर्मादिनिष्ठसत्त्वोपस्थानद्वारा निषेधश्रुतिशेषत्वेन इस श्रुतिका साफल्य है, और स्वार्थमें तात्प-

यके न होनेसे अग्नीषोमीय वाक्यकी तुल्यता नहीं. है यह कहा है । अतः दृश्यत्वादि हेतुओंका धर्मादि अंशमें भी श्रुतिसे बाध नहीं है, प्रकारान्तरसे समाधान करते हैं, अथवेति । यह विश्व-सत्यत्वश्रुति व्यावहारिकसत्त्वपरा है=इसका प्रतिपाद्य व्यावहारिक सत्त्व है. व्यावहारिक सत्वमें किसीकीभी विप्रतिपत्ति न होनेसे व्यावहारिकके प्रतिपादनमें वैयर्थ्य है. नच=वैयर्थ्य नहीं है, क्यों ? दशाविशेषे=परलोकको नहीं अङ्गीकार करनेवाले वादिओंकी और अङ्गीकार करनेवाले वादिओंकी विप्रतिपत्तिसे, स्वर्गादिकी सत्यताका, जिस कालमें संशय हो उसकालमें स्वर्गनरकादिके सत्त्वप्रतिपादनसे उन दोनोंकी प्राप्ति तथा परिहारके लिए प्रवृत्ति निवृत्ति-ओंको ही तत्प्रतिपादनका प्रयोजन होनेसे=प्राप्ति तथा प्रवृत्तिका स्वर्गके साथ सम्बन्ध है, और परिहार तथा निवृत्तिका, नरकके साथ सम्बन्ध है, व्यावहारिकत्वतो ब्रह्मज्ञानेतरसे अबाध्यत्वरूप है, सर्वथा अबाध्यरूप नहीं, मिथ्यात्वबोधक श्रुतिके साथ विरोध होनेसे विश्वसत्यत्वश्रुतिको दृढभ्रान्तिजनकत्व होनेसे अत्यन्ताप्रामाण्यकी आपत्ति है, नच=नहीं है क्यों ? स्वप्नार्थप्रति-पादनवत् प्रामाण्यकी उपपत्ति होनेसे दोनोमें इतनाही विशेष है. स्वाप्निक अर्थजात प्रातिभा-सिक है. और यह व्यावहारिक है ।

ननु—मिथ्यात्वश्रुतेर्लक्षणया अखण्डचिन्मात्रपरत्वेन सत्त्वबोधनादविरोधित्वमेव. न अखण्डार्थबोधस्य द्वितीयाभावबुद्धिद्वारकत्वेन जगत्सत्यत्वविरोधात् । न च प्रपञ्च-सत्यत्वश्रुतेरप्रामाण्यप्रसङ्गः। अतत्त्वावेदकत्वस्यावान्तरतात्पर्यमादायेष्टत्वात् । परमतात्पर्ये-णतु तत्त्वावेदकत्वम् सर्वश्रुतीनामपि समम्, प्रातिभासिकव्यावृत्तस्य व्यावहारिकस्य तद्वति तत्प्रकारकत्वादिरूपस्य निराकर्तुमशक्यत्वात् आसां व्यावहारिकं प्रामाण्यमव्याहतमेव 'असद्वाइदमग्रआसीत् इत्यादिश्रुत्यनुरोधेनापि तत्सत्यमित्यादिश्रुति न ब्रह्मणि व्या-वहारिकसत्वपरा ब्रह्मणो व्यवहारातीतत्वात् । तस्यापरमार्थत्वेन च निरधिष्ठानतया शून्यवादापत्तेः किंचित्तत्वमगृहीत्वा च बाधानुपपत्तेः, अतएव सत्यत्वश्रुतिविरोधेन मिथ्या-त्वश्रुतिरेवान्यपरेति अपि न, षड्विधतात्पर्यलिङ्गोपेतत्वेन मिथ्यात्वश्रुतेरनन्यपरतया प्रबलत्वात्, वैदिकतात्पर्यविषयस्य च तात्त्विकत्वनियमेन तात्पर्यज्ञापकानामपि लिङ्गा-नामर्थतथात्व एव पर्यवसानात् सत्त्वश्रुतिवाक्यस्थपदानां चान्यपरत्वान्न सत्त्वे तात्पर्यलिङ्गशङ्का ।

मिथ्यात्वश्रुतेः=' एकमेवाद्वितीयम् ' (छं० ६।२।१) इत्यादि श्रुतियोंको लक्षणासे अखण्डचिन्मात्रपरत्वप्रयुक्तसत्वबोधनसे अविरोधित्वही है;=जब सत्त्वमें ही तात्पर्य है. तब सत्त्वविरोधित्व नहीं होसकता है, न= ऐसा नहीं है, क्यों ? अखण्डार्थबोधको द्वितीयाभावबु-द्धिद्वारकत्व होनेसे, श्रुतिको जगत्सत्यत्वका विरोधित्व होनेसे=मिथ्यात्वश्रुतिके तात्पर्यका विषयीभूत पारमार्थिकसत्याभिन्न अखण्डार्थ है, व्यावहारिक सत्य नहीं । प्रपञ्चसत्यत्वप्रतिपादक श्रुतिका अप्रामाण्य हो जायगा, नच= सर्वथा अप्रामाण्य नहीं है, क्यों ? अवान्तर तात्पर्यको

लेके अतत्त्वावेदकत्वरूप अप्रामाण्य एतादृश श्रुतिओंमें इष्टही है। और परम तात्पर्यसे तो तत्त्वावेदकत्वरूप प्रामाण्य सर्वश्रुतिओंका समानही है. क्योंकि सर्व श्रुतिओंका परमतात्पर्य शुद्ध ब्रह्ममेंही है. प्रातिभासिकसे व्यावृत्त जो तद्वति तत्प्रकारकत्वादिरूप व्यावहारिक प्रामाण्य है. उस प्रामाण्यको निराकरण करनेके लिए अशक्य होनेसे, फलतः इन श्रुतिओंका व्यावहारिक प्रामाण्य अव्याहत ही है। 'असद्वा इदमग्र आसीत्' (छं० ३।१९।१) इत्यादि श्रुतिओंके अनुरोधसे भी 'तत्सत्यम्' इत्यादि श्रुति ब्रह्मवृत्तिव्यावहारिकसत्त्वपरा नहीं है. क्यों? ब्रह्मको व्यवहारसे अतीत होनेसे, तस्य=व्यावहारिक ब्रह्मको अपरमार्थत्व होनेसे निरधिष्ठानत्वेन शून्यवादकी आपत्ति होगी=जब ब्रह्म भी व्यावहारिक होगा तब तो घटादिवत् उसका भी बाध होगा, और आगे कोई अधिष्ठान है नहीं तथा च निरधिष्ठान भ्रम होनेसे शून्यवादकी आपत्ति है. और शून्यवादकी इष्टापत्ति भी नहीं की जासकती है। क्योंकि किञ्चित्तत्त्वके ग्रहण विना बाध नहीं बनता है. यह रज्जुसर्पादिमें स्पष्ट है। अतएव सत्यत्वश्रुतिके साथ विरोध होनेसे मिथ्यात्वश्रुतिही अन्यपरा है. यह कथनभी नहीं हो सकता है. षड्विधतात्पर्यलिङ्गोपेत होनेसे मिथ्यात्वश्रुति अनन्यपर है, अतएव सत्यत्वश्रुतिसे प्रबल है, वैदिक=वैदिक परमतात्पर्यके विषयको तात्त्विकत्वका नियम होनेसे तात्पर्यज्ञापक लिङ्गोंको भी तात्त्विकार्थमेंही पर्यवसान है, और सत्यत्वप्रतिपादक श्रुतिवाक्यस्थ पदोंको अन्यपर होनेसे, सत्त्वमें तात्पर्यके लिङ्गकी आशङ्का नहीं स्तुतिपरक होनेसे मानान्तरसे प्राप्त अर्थके अनुवादक होनेसे विश्वमिथ्यात्वसाधक मानान्तरोंके साथ विरोध होनेसे विश्वसत्यत्वमें तात्पर्य नहीं।

ननु—यदि सत्त्वश्रुतिः प्रत्यक्षप्राप्तार्थत्वान्न स्वार्थपरा, तर्हि मिथ्यात्वश्रुतिरपि तद्विरुद्धार्थत्वात् स्वार्थपरा न स्यात् तत्प्राप्तितद्विरोधयोस्तात्पर्याभावहेत्वोरुभयत्रापि समत्वात् इति चेन्न, प्रत्यक्षापेक्षया चन्द्राधिकपरिमाणबोधकागमस्यापि बलवत्त्वेन प्रत्यक्षप्राप्तानुवादिसत्त्वश्रुत्यपेक्षयापि बलवत्वात्, अन्यथोभयोरपि अप्रामाण्यापत्तेः तदुक्तं संक्षेपशारीरके अतत्परा तत्परवेदवाक्यैर्विरुध्यमानागुणवाद एवेति, अतएवानन्यशेषमिथ्यात्वश्रुतिविरोधात् न प्रत्यक्षगृहीतत्रिकालाबाध्यत्वरूपसत्यत्वपरा जगत्सत्यत्वश्रुतिरित्युक्तम् अद्वैतश्रुतेश्च प्राबल्ये निरवकाशत्वतात्पर्यवत्त्वादिकमेव प्रयोजकम्। न निषेधवाक्यत्वम् एतेन—निषेधवाक्यत्वेन प्राबल्ये क्ङिति तद्धिते वृद्धिविधायकात् 'किति चेति सूत्रात् सामान्यतो गुणवृद्धिनिषेधकं "क्ङिति चेति सूत्रं बलवत्स्यात्, अग्नीषोमीयवाक्यादहिंसा वाक्यं षोडशिनो ग्रहणवाक्यादग्रहणवाक्यं 'सत्यंज्ञानमित्यादिवाक्यात्' असद्वाइदमग्र आसीदित्यादिवाक्यं च बलवत्स्यादित्यपास्तम्। सामान्यविशेषभावादिना, सावकाशत्वनिरवकाशत्वादिरूपबलवैपरीत्यात् 'विश्वंसत्यमित्यादेस्तु व्यावहारिकसत्त्वविषयतया अन्यशेषतया च सावकाशत्वादेः प्रागुक्तत्वात् तस्मान्न श्रुतिविरोधः 'नापि असत्यमप्रतिष्ठं ते जगदाहुरनीश्वरम्। एतां दृष्टिमवष्टभ्य नष्टात्मानोऽल्पबुद्धयः। इत्यादि-

स्मृतिविरोधः सद्विविक्तत्ववादिनो मम जगत्यसद्वैलक्षण्याङ्गीकारेण तत्प्रतिपादक-स्मृति-विरोधाभावात्।

शङ्कते नन्विति। यदि सत्त्वप्रतिपादिका श्रुति प्रत्यक्षसे प्राप्त=ज्ञात है. अर्थ जिसका एवंभूत होनेसे=प्रत्यक्षसे प्राप्त अर्थकी अनुवादिका होनेसे, स्वार्थ=अवान्तरतात्पर्यविषयीभूत अर्थपर नहीं है, तब मिथ्यात्वप्रतिपादक श्रुति भी तद्विरुद्धार्थ प्रत्यक्ष तथा प्रत्यक्षप्राप्तार्थकी अनुवादिका सत्त्वश्रुति एतद्विरुद्धार्थक होनेसे स्वार्थपरा न होगी, क्यों? तात्पर्याभावके हेतु तत्प्राप्ति=प्रत्यक्षतः प्राप्ति तद्विरोध=प्रत्यक्षविरोध इनको उभयत्र=सत्त्वमें और मिथ्यात्वमें समान होनेसे='इस वाक्यका इस अर्थमें तात्पर्य नहीं है' इस अर्थमें दो हेतु होसकते हैं, तादृश वाक्यप्रतिपाद्य अर्थकी प्रत्यक्षतः प्राप्ति, अथवा तादृश वाक्यप्रतिपाद्य अर्थका प्रत्यक्षसे विरोध; तहाँ सत्त्वश्रुतिप्रतिपाद्यार्थ प्रत्यक्षतः प्राप्त है और मिथ्यात्वश्रुतिप्रतिपाद्य अर्थ प्रत्यक्षतः विरुद्ध, फलतः दोनों स्वार्थपरा नहीं होसकती हैं. इति चेन्न, क्यों? जैसे प्रत्यक्षसे गृहीत जो चन्द्रका परिमाण उस परिमाणसे अधिक परिमाणबोधक जो आगम है, उसे प्रत्यक्षकी अपेक्षा बलवत्ता है, तैसे प्रत्यक्ष तथा प्रत्यक्षतः प्राप्तकी अनुवादिका जो सत्त्वश्रुति इन दोनोंकी अपेक्षासे मिथ्यात्वबोधक आगमकोभी बलवान् होनेसे अन्यथा=उक्त व्यवस्था न अङ्गीकार करनेपर सत्त्वश्रुति तथा मिथ्यात्वश्रुति इन दोनोंके अप्रामाण्यकी आपत्ति होगी, यह अर्थ संक्षेप शारीरकमें कहा है, अतत्परा=स्वार्थपरत्वसे शून्य जो विश्वसत्यत्वादिप्रतिपादिका श्रुति वह तत्परवेदवाक्यैः=स्वार्थपरत्वविशिष्ट मिथ्यात्वादिबोधक वेदवाक्योंसे विरुद्धा हुई हुई गुणवाद एव=स्वार्थपरक जो श्रुति तादृशश्रुतिप्रतिपाद्य– अर्थशेषत्वेन स्वार्थबोधकाही हेतु है=स्वार्थपरकश्रुतिकी शेष है अनन्यशेष जो मिथ्यात्वश्रुति, तादृश मिथ्यात्वश्रुतिके साथ विरोध होनेसेही प्रत्यक्षसे अनुगृहीत जो त्रिकालाबाध्यत्वरूप सत्यत्व, तादृश सत्यत्वपरा जगत्सत्यत्वश्रुति नहीं है. यह कहा है। च=और अद्वैतश्रुतिके प्राबल्यमें निरवकाशत्व स्वार्थवत्त्वादिकही प्रयोजक है. निषेधवाक्यत्व नहीं=निषेधवाक्यत्वेन अद्वैतश्रुतिका प्राबल्य सिद्धान्तमें अभिप्रेत नहीं है, एतेन= निषेधवाक्यत्वेन प्राबल्यके न अङ्गीकारसे निषेधवाक्यत्वेन प्राबल्य होनेपर कित्तद्धितनिमित्तकवृद्धिविधायक 'क्िति च' (अष्टा० ७।२।११०) इस सूत्रसे सामान्यतः गुणवृद्धिनिषेधक 'क्ङिति च' (अष्टा० १।१।५) यह सूत्र बलवत् होगा, अग्नीषोमीय वाक्यसे अहिंसावाक्य बलवत् होगा, षोडशिग्रहण वाक्यसे अग्रहणवाक्य बलवत् होगा, 'सत्यं ज्ञानम्' इत्यादिसे 'असद्वाइदमग्रआसीत्' इत्यादि वाक्य बलवत् होगा, यह सर्व खण्डित हुआ; सामान्यविशेषभावादिसे सावकाशत्वादि निरवकाशत्वादिरूप बलवैपरीत्य होनेसे=सावकाशत्वादिक बलवैपरीत्य है और निरवकाशत्वादि बल है=अवकाश मिल जानेसे या अन्यका शेष हो जानेसे, बल निवृत्त हो जाता है, और निरवकाश होनेसे बल बना रहता है, इसीलिए कहा कि सावकाशत्वादि बलवैपरीत्यरूप है. और निरवकाशत्व बलरूप है और 'विश्वंसत्यम्' इत्यादिके व्यावहारिकसत्त्वविषयत्वेन और अन्यशेषत्वेन सावकाशत्वादिको पूर्वमें उक्त होनेसे ततः मिथ्यात्वानुमानकासत्त्वश्रुतिके

साथ विरोध नहीं हैं । और 'असत्यम्' (भ० गी० १६।८) इत्यादि स्मृतिके साथ भी विरोध नहीं क्यों ? जगत्में सत्त्वावच्छिन्नप्रतियोगिक भेदको कहनेवालेभी मुझ सिद्धान्तीको जगत्में असद्वैलक्षण्यके अङ्गीकारसे तत्प्रतिपादक=सत् असत् एतदुभयवैलक्षण्यप्रतिपादकस्मृतिके साथ विरोधाभाव होनेसे ।

ननु—'नाभाव उपलब्धेः' वैधर्म्याच्च न स्वप्नादिवदितिसूत्रद्वयेन जगतः पारमार्थिकसत्त्वबोधनेन विरोधः, नचानेन शून्यवादिनिरासार्थेनासद्वैलक्षण्यमात्रप्रतीपादनान्न विरोधः, अर्थक्रियाकारित्वलक्षणस्यासद्वैलक्षण्यस्य शून्यवदिमतेऽपि सत्त्वेन तन्मतनिरासार्थत्वानुपपत्तेः, निषेधाप्रतियोगित्वरूपस्यासद्वैलक्षणस्य त्वयाप्यनंगीकारात् । असद्वैलक्षण्यमात्रस्य साधने सूत्रे स्वप्नवैलक्षण्योक्त्ययोगाच्च, व्यावहारिकसत्यत्वमात्रेण स्वप्नवैलक्षण्यस्य त्वयाप्यङ्गीकारात् असद्वैलक्षण्यमात्रस्य त्वन्मतेऽपिसत्वाच्च, तदुक्तम्-बौद्धैः—द्वे सत्त्वे समुपाश्रित्य बुद्धानां धर्मदेशना, इतिचेन्न, सूत्रार्थानवबोधात् । तथाहि—सद्रूपाद्ब्रह्मणः जगत्सर्गं वदतः समन्वयस्य सर्वमसदित्यनुमानेन विरोधसन्देहे नसन्नासन्नसदसत् न चानुभयतत्त्वकम् । विमतं तर्कपीड्यत्वान्मरीचिपु यथोदकम् । इति ब्रह्मसाधारण्यान्निस्तत्वतायां प्राप्तायां सूत्रेण परिहारः सतो ब्रह्मणो नाभावः न शून्यत्वं उपलब्धेः सत्वेन प्रमाणात्प्रतीतेः तथा च किंचित्परमार्थसदवश्यं शून्यवादिनापि स्वीकार्यम् । अन्यथा बाधस्य निरवधिकत्त्वप्रसङ्गात् इतिसूत्रार्थः स च न प्रपञ्चमिथ्यात्वविरोधी ।

शङ्कते नन्विति । अभाव नहीं है, उपलब्धि होनेसे (ब्र० २।२।२८) वैधर्म्य होनेसे स्वप्नादिवत् नहीं है. (ब्र० २।२।२९) इस सूत्रद्वयसे जगत्के परमार्थ सत्त्वका बोधन होनेसे, मिथ्यात्वअनुमानके साथ विरोध है,=व्यासजीके उक्त सूत्रोंके साथ आपके मिथ्यात्वसाधक अनुमानका विरोध है. शून्यवादके निरासार्थ जो यह सूत्रद्वय है. उस सूत्रद्वयसे असद्वैलक्षण्यमात्रका, प्रतिपादन होनेसे, विरोध नहीं है,=असद्वैलक्षण्य इस सूत्रद्वयसे प्रतिपाद्य है. और वह अस्मदीय अनुमानके साध्यका एकदेश है अतः विरोध नहीं है, नच=ऐसा नहीं कहना, क्यों ? अर्थक्रिया=कार्यकारित्वरूप असद्वैलक्षण्यका शून्यवादिके मतमें भी सत्त्व होनेसे, शून्यवादीके मतके निरासार्थत्वकी अनुपपत्ति होनेसे, निषेधका अप्रतियोगित्वरूप असद्वैलक्षण्यका तुमसे भी अनङ्गीकार होनेसे, और असत्से वैलक्षण्यमात्रके साधनेपर सूत्रमें स्वप्नसे वैलक्षण्यकी उक्तिका अयोग है, क्योंकि असत्से वैलक्षण्यमात्र तो स्वप्नमें भी है । और व्यवहारिकसत्यत्वमात्रसे स्वप्नवैलक्षण्यका तुमसे भी अङ्गीकार है. असद्वैलक्षण्यमात्रको बुद्धमतमें भी सत्त्व होनेसे, इस अर्थको कहा है बौद्धोंने, दो सत्वोंका आश्रयकर बौद्धोंके धर्मकी देशना=उपदेश है=बौद्धोंके मतमें दो प्रकारका सत्त्व माना जाता है एक सांवृतिक सत्त्व और पारमार्थिकसत्त्व, तहाँ व्यवहारका विषयीभूतसत्त्व सांवृतिक सत्त्व कहा जाता है, इसेही आविद्यक सत्व भी कहते हैं, इस व्यावहारिक सांवृत्तिकके निवृत्त होनेपर पारमार्थिक सत्त्व रहता है जैसा कि बौद्धोंने कहा है । सत्वं तु द्विविधं प्रोक्तं

सांवृतं पारमार्थिकम्। सावृतं व्यावहार्यं स्यान्निवृत्तौ पारमार्थिकम्। फलतः इस सूत्रद्वयसे परमार्थ सत्त्वही प्रतिपाद्य है, इति चेन्न, क्यों ? सूत्रार्थके न समझनेसे, तथाहि=दिखलाते हैं सूत्रार्थ, सद्रूप ब्रह्मसे जगत्के सर्गको वदतः=प्रतिपादन करनेवाले समन्वयस्य=प्रथमाध्यायको सर्वं, असत् तर्कपीड्यत्वात् इस अनुमानके साथ विरोधसन्देह होनेपर विमत=सत्त्वेन प्रतीतिके योग्य न असत्=असत् नहीं है क्यों ? कालके साथ सम्बन्ध होनेसे, नसत् असत्=सत् असत् एतदुभयरूप नहीं है क्यों विरोध होनेसे सत् असत्से विलक्षण नहीं है, क्यों ? सत्त्व असत्त्वको अप्रसिद्ध होनेसे तद्घटित निर्वचनकी अयुक्तिसे, जैसे मरीचिओमें जल, इस ब्रह्मसाधारण्यवदनुमानसे ब्रह्मसाधारणनिस्तत्वताके प्राप्त होनेपर सूत्रसे इस पक्षका परिहार किया जाता है सद्रूप ब्रह्मका नाभावः=शून्यत्व नहीं है, क्यों ? उपलब्धेः=सत्त्वेन प्रमाणतः प्रतीति होनेसे, तथाच शून्यवादीकोभी किञ्चित् परमार्थसत् अवश्य मानना चाहिए अन्यथा बाधको निरवधिकत्व=बाध्यसे अधिकसत्ताकवस्तुविषयकत्वका प्रसङ्ग होगा=बाधमें बाध्यसे अधिकसत्ताकवस्तुविषयकत्व सर्वानुभवसिद्ध है. उसका परित्याग होगा यह सूत्रका अर्थ है. स च=वह सूत्रार्थ मिथ्यात्वका विरोधी नहीं है।

तथाचोक्तम्—बाधितोऽपह्नवो मानैः व्यावहारिकमानता। मानानां तात्त्विकं किञ्चित् वस्तु नाश्रित्य दुर्भणेति। नापि स्वप्नवैधर्म्योक्त्ययोगः, तस्याः विमतं निस्तत्त्वं तर्कपीड्यत्वात् मरुमरीचिकाजलवदित्यनुमाने बाध्यत्वप्रमाणगम्यत्वदोपजन्यत्वाद्युपाधिप्रदर्शनपरत्वात्, विज्ञानवादनिराकरणपरेणापि नानेन सूत्रेण विरोधः। रूपादिरहितब्रह्मजगदुपादानत्वप्रतिपादकसमन्वयस्य नीलाद्याकारं विज्ञानं साधयता अनुमानेन विरोधसन्देहे, स्वप्नधीसाम्यतो बुद्धेः बुध्यार्थस्य सहेक्षणात्। तद्भेदेनानिरूप्यत्वात् ज्ञानाकारोऽर्थं इष्यताम्॥ विमताधीः, न ज्ञानव्यतिरिक्तालम्बना, धीत्वात्, स्वप्नधीवत्। विपक्षे च ज्ञानाभानेऽप्यर्थभानप्रसङ्गो बाधकः। नहि भिन्नयोः अश्वमहिपयोः सहोपलम्भनियमोऽस्ति। तस्मान्न ज्ञानातिरिक्तं सदिति प्राप्ते परिहारसूत्रं नाभाव उपलब्धेरित्यादि।

तथा च कहा है. मानैः प्रमाणोंसे अपह्नवः=वस्तुओंका बाध बाधित होता है, प्रमाण ज्ञानसे अप्रमाज्ञान बाधित होता है। और प्रमाणोंकी व्यावहारिक प्रमाणता तात्त्विक किञ्चित् वस्तुको नाश्रित्य=विषयत्वेन न अङ्गीकारकर दुर्वच है=प्रमासे भ्रमका बाध होता है, तहाँ प्रमामें जो बाधकत्व है वह आरोप्यसत्ताधिकसत्ताकविषयत्वेन ही है आरोप्य तथा अधिष्ठान इन दोनोंको समानसत्ताकत्व होनेपर तद्विषयक ज्ञानोंका बाध्यबाधकभाव न होगा अथवा अनाश्रित्यका अर्थ करना कि साक्षित्वेन न अङ्गीकारकर साक्षीका बाध माननेपर उस बाधका अन्य साक्षी मानना पडेगा। और अन्यदीय बाधकाभी अन्य मानना पडेगा तथाच अनवस्था होगी, और दूसरा साक्षी नहीं अङ्गीकार करो तो निःसाक्षिक बाधकी अनुपपत्ति है। स्वप्नसे वैधर्म्यकी

उक्तिकाभी अयोग नहीं है क्यों ? तस्याः=स्वप्नवैधर्म्योक्तिको विमत निस्तत्व है, तर्कसे पीड्य होनेसे मरुमरीचिकाजलवत् इस अनुमानमें बाध्यत्व, प्रमाणागम्यत्व, दोषजन्यत्वादि उपाधि प्रदर्शनपर होनेसे=ये तीनों उपाधियाँ निश्चितसाध्यवत् स्वप्नादिकी व्यापक हैं साधनकी अव्यापक हैं विज्ञानवादके निराकरणपर होने भी इस सूत्रके साथ विरोध नहीं रूपादि रहित जो ब्रह्म उस ब्रह्मको जगदुपादानत्वप्रतिपादक जो प्रथमाध्याय उस प्रथमाध्यायका नीलाद्याकार विज्ञानको साधन करनेवाले अनुमानके साथ विरोधका सन्देह होनेपर बुद्धिका स्वप्नधीके साथ साम्य होनेसे अर्थका बुद्धिके साथ ईक्षण होनेसे अर्थको बुद्धिभिन्नत्वेन अनिरूप्य होनेसे अर्थ ज्ञानाकार मानना चाहिए इसीका अर्थ लिखते हैं । धीति । विमताधी=घटपटादिविषयधी, ज्ञानव्यतिरिक्तविषयिका नहीं है अर्थात् ज्ञानसे अतिरिक्त और किसी पदार्थको विषय नहीं करती है. धी होनेसे स्वप्नधीवत्, और ज्ञानका भान न होनेपर भी अर्थके भानका प्रसङ्ग विपक्षमें बाधक है, अर्थात् यह अनुमान, व्यभिचारशङ्कानिवर्त्तकतर्कसे शून्य नहीं है. परस्पर भेदविशिष्ट जो अश्व तथा महिष इन दोनोंके सहोपलम्भका नियम नहीं है. और अर्थ तथा बुद्धिका तो सहोपलम्भका नियम है तस्मात् ज्ञानसे अतिरिक्त सत् नहीं है, ऐसा प्राप्त होनेपर परिहार सूत्र है. अभाव नहीं है उपलब्धि होनेसे इत्यादि ।

वाधेन सोपाधिकतानुमाने उपायाभावेन सहोपलम्भः सारूप्यतो बुद्धितदर्थभेदस्थूलार्थभङ्गे भवतोपि तुल्यः । सूत्रार्थस्तु नाभावः—ज्ञानातिरिक्तस्यार्थस्य नासत्त्वम् किन्तु व्यवहारदशाबाध्यार्थक्रियाकारित्वरूपं सत्त्वमेव, उपलब्धेः—ज्ञानातिरेकेण प्रमाणैरुपलब्धेः । स्वप्नवैधर्म्योक्तिः बाध्यत्वाद्युपाधिप्रदर्शनाय । तेन बाधात् सोपाधिकत्वाच्च पूर्वानुमानं दुष्टमित्यर्थः । तस्मान्नैवमपि विरोधशङ्का । तस्मान्नज्ञानाकारोऽर्थः किन्तु बाह्यः सच अर्थाक्रियाकारित्वसत्त्वोपेतोऽपि अद्वैतश्रुतिवशात् ब्रह्मणि कल्पितो न परमार्थसन्निति सिद्धान्तस्य सुगतमताद्भेद इति; उक्तं च आत्मतत्त्वविवेके,—न ग्राह्यभेदमवधूय धियोऽस्ति वृत्तिस्तद्बाधने बलिनि वेदनये जयश्रीः; नोचेदचिन्त्यमिदमीदृशमेव विश्वं तथ्यं तथागतमतस्य तु कोऽवकाशः इति धर्मिग्राहकमानबाधश्च प्रागेव परिहृत इति शिवम् ॥

इति विश्वमिथ्यात्वस्यागमबाधोद्धारः ॥

अन्वयः—बाधेन अनुमाने सोपाधिकता, उपायभावेन सहोपलम्भः, सारूप्यतः भवतः स्थूलार्थभङ्गे अपि बुद्धितदर्थभेदः तुल्यः । बाधेन यह तृतीया सह अर्थमें है. तथाच बाधके साथ अनुमानमें सोपाधिकताभी है=ज्ञानसे विषयमें भेद स्पष्ट प्रतीत होता है, अतः आपका अनुमान बाधितार्थक है. और बाध्य होनेसे उपाधियुक्त भी है, ज्ञानके प्रति विषयको उपायत्व होनेसे ज्ञानके साथ विषयका उपलम्भ होता है=जैसे प्रभापदार्थ रूपग्रहमें हेतु है और रूपज्ञानका विषय हुआ भी रूप नहीं है. तैसे विषयको ज्ञानके प्रति हेतु होनेसे ज्ञानग्रहका विषय होनेपरभी ज्ञान नहीं होसकता है । विषयोपरागसेही ज्ञानका ग्रह होनेसे विषयमें ज्ञानोपायता कही जाती है भवतः=योगाचारके स्थूलार्थभङ्गेऽपि=मतमेंभी सारूप्यतः=विषयज्ञानके सारू-

प्यसिद्धिके लिए बुद्धितदर्थभेदः=बुद्धि और बुद्धिका विषयरूप अर्थ इन दोनोंका भेद तुल्यः= आपके भाई सौत्रान्तिकमतमें तुल्य है. सौत्रातिकमतमें परमाणुरूप अर्थ ज्ञानसे अतिरिक्त माना जाता है। और सूत्रार्थ ऐसा है, नाभावः=ज्ञानसे अतिरिक्त अर्थका असत्व नहीं है. किन्तु व्यवहारकालमें अबाध्य–अर्थक्रियाकारित्वरूप सत्वही है। उपलब्धेः=ज्ञानातिरिक्तत्वेन प्रमाणोंसे उपलब्ध होनेसे स्वप्नसें वैधर्म्यकी उक्ति बाध्यत्वादि उपाधियोंके दिखलानेके लिए है, ततः बाध होनेसे और सोपाधिक होनेसे पूर्वानुमान दुष्ट है यह अर्थ है। तस्मात् इस रीतिसे अर्थ करनेपर भी विरोधकी आशङ्का नहीं है। सो कहा है तस्मात् ज्ञानाकार अर्थ नहीं है किन्तु ज्ञानसे बाह्य है वह अर्थ अर्थक्रियाकारित्वरूपसत्त्वसे उपेतभी अद्वैत श्रुतिके आधीन ब्रह्ममें कल्पित हुआ, परमार्थ सत् नहीं है, यह सिद्धान्तका सुगतमतसे भेद है। आत्मतत्त्वविवेकमेंभी कहा है ग्राह्यभेदके विना, धीका आत्मलाभ नहीं है. ग्राह्यका बाध होनेपर बलवत् वेदसिद्धान्तमें जयश्री है। ग्राह्यका बाध नहीं है तो यह अचिन्त्य जगत् जैसा प्रतीत हो रहा है वैसाही ठीक है तथागतमतस्य=सुगतमतको कहां अवकाश है। अनुमानका धर्मी जो प्रपञ्च है, उसका ग्राहक जो प्रत्यक्ष प्रमाण, या और कोई भी प्रमाण हो उसके बाधका परिहार प्रथमही किया गया है। धर्मीग्राहक प्रमाणको जिस रूपसे अनुमानके प्रति उपजीव्यता है उस रूपका बाध नहीं होता है। इत्यादि प्रथमही कहचुके हैं इस रीतिसे प्रस्तुत विषयमें जो कुछ पूर्वाचार्योंने कहा है वह सर्व शिवम्=निर्दोष है।

॥ इति सरलायामागमाबाधोद्धारः ॥

॥ अथ असतः साधकत्वोपपत्तिः ॥

ननु—सत्त्वसाधकानां मिथ्यात्वसाधकानुमानेभ्यः प्राबल्यम्, मिथ्यात्वसाधक-प्रतिज्ञाद्युपनीतपक्षादीनां मिथ्यात्वाबोधने सर्वमिथ्यात्वासिद्धिः; तद्बोधने परस्परव्याहतिराश्रयासिद्ध्यादिकं चेति चेन्न; मिथ्यात्वसाधकप्रतिज्ञाद्युपनीतपक्षादीनां मिथ्यात्वबोधनेऽपि व्याहत्यभावात् प्रतिज्ञादिभिस्तेषां त्रिकालाबाध्यत्वरूपसत्त्वाप्रतिपादनात्।

अथ सरलायामसतःसाधकत्वोपपत्तिः।

शङ्कते नन्विति। सत्त्वके साधक अनुमानोंका, मिथ्यात्वसाधक अनुमानोंसे प्राबल्य है, क्योंकि मिथ्यात्वसाधकानुमानोंसे प्रतिज्ञाद्युपनीत=प्रतिज्ञाहेतुउदाहरणादिसे प्रापित पक्षहेतु व्याप्त्यादिके मिथ्यात्वका अबोध होनेपर सर्वके मिथ्यात्वकी असिद्धि है, क्योंकि भवदीय अनुमानके पक्षादिमें मिथ्यात्वकी सिद्धि नहीं हुई है. तद्बोधने=प्रतिज्ञाद्युपनीतपक्षादिके मिथ्यात्वका बोधन होनेपर परस्परव्याहतिः=विमतं मिथ्या इस प्रतिज्ञावाक्यसे आप पक्षमें मिथ्यात्वका विधान करते हैं। और अनुमान प्रयोगसे आप विश्वके मिथ्यात्वको सिद्ध करते हुए विश्वके अन्तर्गत प्रतिज्ञाविषयीभूत मिथ्यात्वके मिथ्यात्वको भी सिद्ध करते हो. अतः व्याहति है, तैसे हेतुवाक्यसे आप हेतुको साध्यसिद्ध्यर्थ दिखलाते हुए अनुमान प्रयोगसे विश्वके अन्त-

गत जो हेतु इस हेतुके भी स्वाधिकरणवृत्तिअत्यन्ताभावप्रतियोगित्वरूप मिथ्यात्वको बतला रहे हैं अतः परस्पर व्याहति है। ऐसेही व्याप्तिमेंभी व्याहति समझनी चाहिए। च=और आश्रयासिद्धि तथा आदि शब्दसे लब्ध बाध स्वरूपासिद्धिप्रभृति भी हैं.=पक्षका मिथ्यात्व होनेसे आश्रयासिद्धि है। साध्यका मिथ्यात्व होनेसे बाध है हेतुका मिथ्यात्व होनेसे स्वरूपासिद्धि है. इत्यादि; इति चेन्न, क्यों मिथ्यात्वसाधक अनुमानसे प्रतिज्ञाद्युपनीत जो पक्षादिक उन पक्षादिकके मिथ्यात्वका बोधन होनेपर भी व्याहतीका अभाव होनेसे, क्योंकि प्रतिज्ञादिसे पक्षादिके त्रिकालाबाध्यत्वरूप सत्त्वका प्रतिपादन नहीं है।

ननु—साधकत्वान्यथानुपपत्त्या परमार्थसत्त्वमायाति; परमार्थसतएवसाधकत्वात्, साधकतायाः प्राक् सत्त्वघटितत्वात्, नतु धीमात्रविषयत्वम्, अपरोक्षधीविषयत्वम्, सत्त्वेन तादृशधीविषयत्वम् वा साधकताप्रयोजकम्; तुच्छे नित्यातीन्द्रिये चातिव्याप्त्यव्याप्तिभ्याम्। तत्त्वेन ज्ञानमपि न तत्र प्रयोजकम्, वह्नित्वेनाज्ञातेऽपि वह्नौ दाहकत्वदर्शनात्, वह्नित्वेन ज्ञातेऽपि गुञ्जापुञ्जे तददर्शनाच्च; नापि त्रिचतुरकक्षास्वबाधितासत्त्वप्रतीतिस्तन्त्रम्। आत्मनो गौरत्वेनानित्यत्वस्य, नभसो नैल्येन स्पर्शवत्वस्य चापत्तेः गौरोऽहं, 'नीलं नभः' इत्यादिप्रतीतावपि त्रिचतुरकक्षास्वबाधात्। यौक्तिकबाधस्य त्वन्मते प्रकृतेऽपि भावात् इति चेन्न, यादृश्या बुद्ध्या तव नभोनैल्यादिधीव्यावृत्तया घटादौ सत्त्वसिद्धिः तादृक्बुद्धिविषयत्वस्यैव साधकत्वे तन्त्रत्वात्। अतएव लोकप्रसिद्धिस्तन्त्रमितीष्टसिद्ध्युक्तमप्युक्ताभिप्रायेण सम्यगेव। एवं त्रिचतुरकक्ष्यास्वबाधिता वादिप्रतिवादिप्राश्निकानां सत्त्वबुद्धिस्तन्त्रमित्युपपन्नमेव। गुञ्जापुंजस्य वह्नित्वे आत्मनो गौरत्वे नभसोनीलत्वे च तादृग्बुद्धिविषयत्वस्य तवाप्यसंप्रतिपत्तेः, अन्यथा तेषामपि तत्र सत्त्वसिद्धिप्रसङ्गात्।

शङ्कते नन्विति साधकत्वकी अन्यथा अनुपपत्तिसे साधकमें परमार्थ सत्त्व आता है=जैसे दिवाअभोजी पुरुषमें रात्रिभोजन विना स्थौल्य अनुपपन्न है. तैसे परमार्थ सत्त्वके विना साधकत्व अनुपपन्न है, अतः साधकत्वेन परमार्थ सत्त्व कल्पना किया जाता है, परमार्थ सत्कोही साधकत्व होनेसे, साधकताको प्राक् सत्वसे घटित होनेसे, धीमात्रविषयत्वम्=धीत्वविशिष्टधीविषयत्व या अपरोक्षधीविषयत्व अथवा सत्त्वेन अपरोक्षधीविषयत्व साधकताप्रयोजकम्=साधकता घटकसत्वरूप नहीं है; क्यों? तुच्छमें प्रथमसत्त्वकी अतिव्याप्ति होनेसे और अवशिष्ट दोकी नित्य अतीन्द्रियमें अव्याप्ति होनेसे। तत्त्वेन=साधकत्वेन ज्ञानभी तत्र=साधकतामें प्रयोजक नहीं हैं, क्यों? वह्नित्वेन अज्ञात वह्निमें भी दाहकत्व देखनेसे और वह्नित्वेन ज्ञात गुञ्जापुञ्जमेंभी दाहकत्वके न देखनेसे तीन चार कक्षाओंमें अबाधिता जो सत्वप्रतीति वह भी साधकतामें तन्त्र नहीं है क्यों? गौरत्वेन आत्माके अनित्यत्वकी और नैल्येन आकाशके स्पर्शवत्वकी आपत्ति होनेसे। 'गौरोऽहम्' 'नीलंनभः' इत्यादि प्रतीतिओंमें भी तीन चार कक्षाओंमें

अबाध होनेसे; ननु–आत्माकाशौ न रूपवन्तौ विभुत्वात्, इस युक्तिसे आत्मा तथा आकाशमें रूपका बाध होनेसे आत्माकाशमें रूपविषयिणी बुद्धि तीन चार कक्षाओंमें अबाधिता नहीं; तथाच अनित्यत्व तथा स्पर्शवत्वकी क्रमशः आपत्ति नहीं तहाँ कहते हैं, यौक्तिकेति । तुम्हारे मतमें यौक्तिक बाधका प्रकृतेऽपि=सत्त्वधीरूप प्रकृतमें भी भाव है,=प्रपञ्चसत्यत्वधी भी युक्तिसे बाधित होनेसे तीन चार कक्षातक नहीं रह सकती है, अतः सत्वकी असिद्धिसे साधकत्वकी अनुपपत्ति है, इति चेन्न; क्यों ? नभोनैल्यादिधीसे व्यावृत्त=भिन्न जैसी बुद्धिसे तव=तुमको घटादिमें सत्त्वकी सिद्धि है तादृशबुद्धिविषयत्वकोही साधकत्वमें तन्त्र होनेसे अतएव=निर्दोष होनेसेही, साधकतामें लोकप्रसिद्धि तन्त्र है, यह इष्टसिद्धिका कथन भी उक्ताभिप्रायसे सम्यक्ही है,=इष्टसिद्धिका भी उक्तार्थमेंही तात्पर्य है, इस प्रकारसे तीन चार कक्षाओंमें अबाधिता जो वादिप्रतिवादिप्राश्निकोंकी सत्वबुद्धि है, वह साधकतामें तन्त्र है, यह खण्डनका कथन उपपन्न ही है । गुञ्जापुञ्जके वह्नित्वमें आत्माके गौरत्वमें और नभके नीलत्वमें तादृशबुद्धिविषयत्वकी तुमकोभी असंप्रतिपत्ति होनेसे, अन्यथा=संप्रतिपत्ति होनेपर, तेषाम्=वह्नित्वादिकी तत्र=गुञ्जापुञ्जादिमें सत्त्वसिद्धिका प्रसङ्ग है ।

अथ–यादृश्या शब्दे क्लृप्तदोपरहितया बुद्ध्या ब्रह्मणि सत्त्वसिद्धिः, तादृश्या प्रत्यक्षे क्लृप्तदोषरहितया मम जगति सत्त्वसिद्धिरस्तु साधकतुल्यत्वादिति–चेन्न; ब्रह्मसत्त्वबुद्धिवत् जगत्सत्यत्वबुद्धेरबाधितत्वाभावात्, त्रिकालाबाध्यत्वरूपस्य सत्त्वस्य प्रत्यक्षाविषयताया उक्तत्वाच्च । न च बुद्धिविषयत्वस्य तन्त्रत्वे वह्नित्वेनाज्ञातस्य वह्नेरदाहत्वप्रसङ्गः । अमृतत्वेन ज्ञातस्य च विषस्य सञ्जीवकत्वप्रसङ्ग इति–वाच्यम्; वह्नौ तादृग्बुद्धिविषयत्वस्य ईश्वरादिसाधारणस्य सत्त्वात्; विषे सञ्जीवकत्वप्रसङ्गस्य नभोनैल्यादितुल्यत्वात् ।

शब्दे=शब्दमें क्लृप्तदोष जो अर्थबाधादि उन दोषोंसे रहित जैसी बुद्धिसे तुमको ब्रह्ममें सत्त्वकी सिद्धि है प्रत्यक्षमें क्लृप्त जो दूरत्वादि रूप दोष उन दोषोंसे रहित तैसी बुद्धिसे मुझको जगत्में सत्त्वकी सिद्धि रहो, साधकको तुल्य होनेसे इति चेन्न, क्यों ? ब्रह्मसत्व बुद्धिवत् जगत्सत्यत्वबुद्धिके अबाधितत्वका अभाव होनेसे, त्रिकालमें अबाध्यत्वरूप जो सत्यत्व तादृशसत्यत्वनिष्ठ प्रत्यक्षीयविषयताके अभावको उक्त होनेसे भी उक्त बुद्धिविषयत्वको साधकत्वके प्रति तन्त्रत्व होनेपर वह्नित्वेन अज्ञातवह्निको अदाहकत्वका प्रसङ्ग है, और अमृतत्वेन ज्ञात विषको सञ्जीवकत्वका प्रसङ्ग है,–इति नच वाच्यम् क्यों ? वह्निमें ईश्वरादिसाधारण तादृश बुद्धिविषयत्वको विद्यमान होनेसे अदाहकत्वका प्रसङ्ग नहीं और विषमें सञ्जीवकत्वप्रसङ्गको आकाशमें नीलतादिके तुल्यत्व है=‘नीलंनभः’ इस बुद्धिसे जैसे नभमें नीलरूपता नहीं सिद्ध होती है, तैसेही ‘अमृतम् विषम्’ इस बुद्धिसे विषमें अमृतत्त्व सिद्ध नहीं होता है. क्योंकि साधकबुद्धि इन्होंसे व्यावृत्त है यह अभी दिखला चुके हैं।

वस्तुतस्तु–ज्ञाताज्ञातसाधारणं व्यावहारिकं सत्त्वमेव साधकत्वे तन्त्रम्, तच्च ब्रह्मज्ञानेतराबाध्यत्वमेव; तच्च न मिथ्यात्वघटितम् । अत्यन्ताबाध्ये ब्रह्मज्ञानबाध्ये च

तुल्यत्वात्, अत एव नेदं परमार्थसत्त्वव्याप्यम्। एवञ्च परमार्थसत्वस्य साधकतायामतन्त्रत्वेन तदभावेऽपि न साधकतानुपपत्तिः। एतेन–व्यावहारिकत्वं ब्रह्मज्ञानबाध्यत्वं वा, व्यावहारिकविषयत्वे सति सत्त्वं वा, सत्त्वेन व्यवहारमात्रं वा,। नाद्यः मिथ्यात्वसिद्धेः प्राक् तदसिद्ध्या, अन्योन्याश्रयात्। नापि द्वितीयः तस्यास्माकं मिथ्यात्वविरोधित्वेनेष्टत्वात्। न तृतीयः, सत्त्वाभावे साधकत्वानुपपत्तेरिति–निरस्तम्। उक्तनिरुक्तेरदुष्टत्वात्। नच हेत्वादीनां व्यावहारिकसत्त्वे साध्यस्यापि व्यावहारिकसत्त्वमेव स्यादनुमितिविषयसाध्यस्य परामर्शविषयहेतुना समानसत्ताकत्वनियमात्, इति वाच्यम्–दृश्यत्ववन् मिथ्यात्वस्यापि व्यावहारिकत्वेन समानसत्ताकत्वस्येष्टत्वात्, समानसत्ताकत्वनियमासिद्धेश्च धूलिपटले धूमभ्रमादपि वह्न्यनुमितिप्रमादर्शनात्।

वस्तुतः तो ज्ञाताज्ञातसाधारण व्यावहारिक सत्त्वही साधकत्वमें तन्त्र है। तच्च=वह व्यावहारिक सत्त्वतो ब्रह्मज्ञानेतराबाध्यत्वरूप है, और वह मिथ्यात्वसे घटित नहीं है, क्योंकि अत्यन्ताबाधमें तथा ब्रह्मज्ञानसे बाध्यमें तुल्य है=निरुक्त व्यावहारिक सत्त्व अत्यन्ताबाध्यमें भी रहता है, और ब्रह्मज्ञानसे बाध्यमेंभी रहताहै, अतएव=व्यावहारिक सत्त्वकोही साधकतामें तन्त्र होनेसेही इदम्=साधकत्व परमार्थ सत्त्वका व्याप्य नहीं है, इस रीतिसे परमार्थसत्त्वको साधकतामें अतन्त्र होनेसे तदभावेऽपि=परमार्थसत्त्वका अभाव होनेपरभी साधकताकी अनुपपत्ति नहीं है. एतेन=उक्त व्यावहारिकत्वके व्यवस्थापनसे, व्यावहारिकत्व क्या ब्रह्मज्ञानसे बाध्यत्व है व्यावहारिकविषय होकर सत्त्वरूप है या सत्त्वेन व्यवहारमात्ररूप है. नाद्यः=प्रथम पक्ष ठीक नहीं है, मिथ्यात्वसिद्धिसे पूर्व तदसिद्ध्या=ब्रह्मज्ञानबाध्यत्वरूप व्यावहारिकत्वकी असिद्धिसे अन्योन्याश्रय है=मिथ्यात्वसिद्धि होनेपर ब्रह्मज्ञानबाध्यत्वरूप व्यावहारिकत्वकीसिद्धि हैं, और व्यावहारिकत्व सिद्ध हो तब तदधीन साधकत्व सिद्ध हो और साधकत्व सिद्ध हो तब साधकत्वविशिष्ट दृश्यत्वादि हेतुओंसे मिथ्यात्वकी सिद्धि हो. अतः अन्योन्याश्रय है. द्वितीय पक्ष भी ठीक नहीं, उसका हम लोगोंके मतमें मिथ्यात्वका अविरोधित्व होनेसे इष्टत्व है, तृतीय पक्षभी समीचीन नहीं, क्यों? सत्त्वका अभाव होनेपर साधकत्वकी अनुपपत्तिसे यह सब खण्डित हुआ, उक्त निरुक्तिको दोष रहित होनेसे=ये जो द्वैतीने दोष बतलाये हैं वे ब्रह्मज्ञानेतराबाध्यत्वरूप निरुक्त व्यावहारिकत्वमें नहीं हैं, हेत्वादिका व्यावहारिक सत्त्व होनेपर साध्यकाभी व्यावहारिक सत्त्वही होगा क्यों? अनुमितिके विषयभूत साध्यका परामर्शविषयीभूत हेतुके साथ समानसत्ताकत्वका नियम होनेसे इति न च वाच्यम्=क्यों ? दृश्यत्वरूप हेतुवत् मिथ्यात्वरूप साध्यको भी व्यावहारिकत्व होनेसे समानसत्ताकत्वको इष्ट होनेसे, समान सत्ताकत्वके नियमकी असिद्धिसेभी उक्त कथन हमारे सिद्धान्तका बाधक नहीं; व्यभिचार स्थलोंको दिखलाते हैं; धूलीति। वह्निरूपसाध्यवान् पक्षमें धूलीपटलमें धूमत्वप्रकारक ज्ञानसे भी वह्निविषयक अनुमिति प्रमारूप देखी जाती हैं।

गन्धव्याप्यपृथिवीत्वप्रमातोपि गन्धप्रागभावावच्छिन्ने घटे पक्षे बाधास्फूर्तिदशायामनुमितिभ्रमदर्शनाच्च । मिथ्यात्वस्य मिथ्यात्वेऽपि तत्त्वावेदकश्रुतिवेद्यत्वोपपत्तिः; सत्त्वेन सत इव मिथ्यात्वेन मिथ्याभूतस्यापि प्रमाणगम्यत्वाविरोधित्वात्, एकांशे तत्त्वावेदकत्वाभावेऽपि अपरांशे तत्त्वावेदकत्वोपपत्तेः। ननु—व्यावहारिकत्वं साधकतातायामतन्त्रम्; अज्ञानादिसाधके परमार्थसति साक्षिणि तदभावादिति चेन्न; ब्रह्मज्ञानेतराबाध्यत्वस्यात्यन्ताबाध्येऽपि सत्त्वस्योक्तत्वात्। त्रैविध्यविभागे पारमार्थिकव्यावृत्तव्यावहारिकत्वनिरुक्तावपि जनकतायां तत्साधारण्येऽप्यदोषात्। वस्तुतस्तु साक्ष्यप्यज्ञानोपहित एवाज्ञानादिसाधकः, स च व्यावहारिक एव, अनुपहितेन परमार्थसदाकारेण तस्यासाधकत्वात् एवञ्च व्यावहारिकसत्त्वमेव सर्वत्र साधकतायां प्रयोजकमिति स्थितम्; यथाचाज्ञानोपहितस्य साक्षित्वेऽपि नात्माश्रयादिदोषः तथोक्तं, दृश्यत्वहेतूपपादने प्राक् अग्रे च वक्ष्यते। यत्र च यत्साधकं व्यावहारिकं तत्र तद्व्यावहारिकम्। यत्र तु साधकं प्रातीतिकं, तत्र फलमपि तथैव; न तु व्यावहारिकमिति न सर्वविधिप्रतिषेधादिव्यवहार सङ्करः। अतएव लोकस्यापि व्यतिक्रमे विचारस्य यादृच्छिकबाधात्। भ्रान्तत्वापत्तिरित्युदयनोक्तमपि निरस्तम्, व्यावहारिकसत्त्वेन लोकमर्यादानतिक्रमात्, भट्टाचार्यवचनानि विरुद्धत्वेन भासमानानि सत्त्वत्रैविध्यनिरूपणायामविरोधेन व्याख्यास्यन्ते, तस्मात्पक्षादिसर्वमिथ्यात्वसाधनेऽपि न व्याहतिः।

इत्यद्वैतसिद्धौ असतः साधकत्वोपपत्तिः।

गन्धव्याप्य जो पृथिवीत्वतादृशपृथिवीत्वविषयक प्रमात्मक ज्ञानसे भी गन्ध प्रागभावावच्छिन्न घटरूपपक्षमें बाधकी स्फूर्ति जिस दशामें नहीं है उस दशामें भ्रमात्मक गन्धप्रकारक अनुमिति देखनेसे भी समानसत्ताकत्वका नियम नहीं हैं। मिथ्यात्वका मिथ्यात्व होनेपर भी तत्त्वावेदक जो श्रुति तादृशश्रुतिवेद्यत्वकी उपपत्ति है, क्यों? जैसे सत्पदार्थ सत्त्वेन प्रमाणगम्य है तैसे मिथ्याभूत पदार्थको मिथ्यात्वेन प्रमाणगम्यत्वका अविरोध होनेसे=जैसे प्रमाण सत्त्वेन सत्को विषय करता है तैसे मिथ्याको मिथ्यात्वेन विषय करसकता है, इसमें किसी प्रकारका विरोध नहीं एकांशे=मिथ्यात्वरूप अंशमें तत्त्वावेदकत्वका अभाव होनेपरभी अपरांशे=मिथ्यात्वघटक अत्यन्ताभावांशमें तत्त्वावेदकत्वकी उपपत्ति है मिथ्यात्वको वास्तविक न होनेसे तदंशमें श्रुतिको वास्तविक न होनेसे तदंशमें श्रुतिको तत्त्वावेदकत्व नहीं है, परन्तु मिथ्यात्वका घटक अत्यन्ताभाव जिस पक्षमें अधिकरण स्वरूप माना जाता है उस पक्षमें ब्रह्मात्मक अत्यन्ताभावरूपतात्त्विकअर्थबोधकत्वेन श्रुतिको तत्त्वावेदकत्व है और जिस पक्षमें उक्तात्यन्ताभाव व्यावहारिक माना जाता है, उस पक्षमें परमतात्पर्यविषयीभूतब्रह्मावेदकत्वेन तत्त्वावेदकत्व है। शङ्कते नन्विति। साधकतामें व्यावहारिकत्व अतन्त्रम्=अप्रयोजक है, क्यों? ज्ञानादिका साधक जो परमार्थसत् साक्षी उस साक्षीमें व्यावहारिकत्वका अभाव होनेसे

साक्षीमें जो अज्ञानादिसाधकत्व बतलाया गया है वह अज्ञानादिविषयकज्ञानत्वेन अज्ञानादिविषयकइच्छाद्वेषादिरूपकार्यजनकत्वरूप है. इति चेन्न; क्यों ? ब्रह्मज्ञानेतराबाध्यत्वरूप जो व्यावहारिक सत्त्व है, उस सत्त्वको अत्यन्ताबाध्यमें भी उक्त होनेसे । सत्ताके त्रैविध्यविभागमें पारमार्थिकसे व्यावृत्त व्यावहारिकत्वकी निरुक्ति होनेपर भी जनकतामें तत्साधारण्येऽपि=व्यावहारिकत्वमें पारमार्थिकसाधारण्य होनेपरभी दोषका अभाव है. वस्तुतः तो अज्ञानादिसाधक साक्षी भी अज्ञानोपहितही है. सच=अज्ञानोपहित तो व्यावहारिक ही है. अनुपहित जो परमार्थ सदाकार है उस आकारसे तस्य=साक्षीको असाधकत्व होनेसे, एवञ्च=उक्त प्रकारसे व्यावहारिक सत्त्वही सर्वत्र साधकतामें प्रयोजक है यह स्थित हुआ, अज्ञानोपहितको साक्षित्व होनेपरभी जैसे आत्माश्रयादि दोष नहीं है तैसे दृश्यत्व हेतूपपादनमें पहिले कहागया है. और आगे कहा जायगा, ननु-व्यावहारिक सत्त्वही साधकतामें प्रयोजक है, यह जो मूलमें कहा है, वह असङ्गत है क्योंकि प्रातीतिकविषयसम्बन्धसे भी सुखविशेषरूपकार्यकी उत्पत्ति देखते हैं और यदि आप ऐसा कहें कि मूलमें जो एवकार है वह असत्‌की ही व्यावृत्ति करता है, प्रातिभासिककी नहीं । अतः प्रातिभासिकमेंभी साधकत्व इष्ट है, तो स्वप्ननिष्पाद्ययागसे व्यावहारिक स्वर्गकी प्राप्ति होनी चाहिए; तहाँ कहते हैं यत्रेति । यत्र=जिसस्थलमें, यत्साधकम्=जिसका कारण व्यावहारिकम्=व्यवहारसे सिद्ध है=प्रामाणिक है तत्र=उक्तस्थलमें तद्व्यावहारिकम्=वह कार्य व्यावहारिक है=प्रमाणसिद्धोत्पत्तिक है. अर्थात् जिसकी कारणता जिस कार्यके प्रति प्रमाण सिद्ध हैं, उस कारणसे उस कार्यकी उत्पत्ति प्रामाणिक है तु=और यत्र=जिस स्थलमें साधकम्=कारण=प्रातीतिकम्=अप्राणिक है तत्र=उक्त स्थलमें फल भी तथैव=अप्रामाणिकही है=जिसकी कारणता जिसके प्रति प्रमाणसे सिद्ध नहीं है उससे उसकी उत्पत्ति भी अप्रामाणिक है. नतु व्यावहारिकम्=व्यावहारिकही कारण होता है. या व्यावहारिकही कार्य होता है. यह नियम नहीं=निष्कृष्टार्थ यह कि व्यावहारिकसत्त्वसे घटित कार्यकारणभावका नियम नहीं अब कोई दोष नहीं है. इति=इस रीतिसे सर्वविधिप्रतिषेधादि व्यवहारका सङ्कर नहीं है. क्योंकि ब्रह्मेतर पदार्थ और उनके परस्परबाध्यबाधकभावादिको हम लोग किसी न किसी रूपमें मानतेही हैं, प्रपञ्चसर्वस्व द्वैतिओं जैसा हम ब्रह्मवादी लोग, अनात्मामें मिथ्याभिनिवेश नहीं करते हैं. क्योंकि जो लोग महार्ह रत्नको नहीं पहिचान सकते हैं वेही लोग काचादिमें अभिनिवेश करते हैं। अतएव=व्यावहारिक सत्त्वसे लोकमर्यादाका अतिक्रम न होनेसेही लोकस्यापि=सत्‌को साधकत्व है, असत्‌को साधकत्व नहीं है, इत्याकारक जो लोकव्यवहार है उसकाभी अतिक्रमण होनेपर दैवसाम्पादित वनस्थकीचकशब्दवत् विचारके याहच्छिकत्वका पात होनेसे भ्रान्तत्वापत्ति=अबाधितार्थबोधकत्वाभावकी आपत्ति होगी यह औदयनका कथन भी निरस्त हुआ; विरुद्धत्वेन भासमान भट्टाचार्यके वाक्य सत्त्वत्रैविध्यके निरूपणावसरमें अविरोधित्वेन व्याख्यात होंगे, सत्यत्वं नच सामान्यं मृषार्थपरमार्थयोः, विरोधात् न हि सिंहत्वं सामान्यं सिंहवृक्षयोः इत्यादि कुमारिल भट्टाचार्यके वचन तर्कपादमें हैं, इनमें बतलाया गया है कि मृषार्थ और परमार्थमें सत्यत्वरूप

एक सामान्य नहीं रह सकता है, और आपने तो तुच्छभिन्नब्रह्म व्यावहारिकप्रातिभासिकसाधारण एकसत्त्व मानलिया है, अत इन वचनोंके साथ विरोध है ऐसी आशङ्काकर कहते हैं कि अविरोधेन व्याख्यास्यन्ते=परम सत्यत्वरूप सत्त्व उभयसाधारण नहीं हो सकता है, और तुच्छविलक्षणत्वादिरूप सत्त्व तो उभयसाधारण होसकता, है इत्यादि कहा जायगा । ततः पक्षादि सर्वके मिथ्यात्वका साधन होनेपर भी व्याघात नहीं है ।

इति सरलायामसतः साधकत्वोपपत्तिः ।

अथ असतः साधकत्वाभावे बाधकनिरूपणम् ।

ननु—सत्त्वापेक्षया तुच्छविलक्षणत्वादेर्गौरवतरत्वेन साधकत्वे कथं तन्त्रत्वम्; इति चेन्न; त्रिकालाबाधविरहरूपस्य सत्त्वस्य लघुत्वाभावात्, जात्यादिरूपस्य तस्य मिथ्यात्वाविरोधात् उभयसिद्धे सद्विविक्ते साधकत्वदर्शनेन पारमार्थिकसत्त्वस्य साधकत्वाप्रयोजकत्वाच्च । तथाहि प्रतिविम्बे विम्बसाधकत्वं तावदस्ति । तस्य विम्बात्मनासत्त्वेऽपि प्रतिविम्बाकारेणासत्त्वात्, परमार्थसत्त्वं न साधकत्वे प्रयोजकम् । एवं स्वप्नार्थस्यासतोऽपि भाविशुभाशुभसूचकत्वम् । यद्यपि तत्रत्यदर्शनस्यैव सूचकत्वम्; 'पुरुषं कृष्णं कृष्णदन्तं पश्यतीत्यादिश्रुतिबलात् तथापि दर्शनमात्रस्यातिप्रसक्तत्वेन विषयोऽप्यवश्यमपेक्षणीय एव । एवं स्फटिकलौहित्यस्य उपाधिसन्निधानसाधकत्वं च ।

अथ असतः साधकत्वाभावे बाधकनिरूपणम् ।

शङ्कते नन्विति । सत्त्वकी अपेक्षासे तुच्छविलक्षणत्वादिको गौरवतरत्वेन साधकत्वमें कैसे तन्त्रत्व है, इतिचेन्न, क्यों ? त्रिकालबाधविरहरूपसत्त्वको लघुत्वका अभाव होनेसे जात्यादिरूप सत्त्वका मिथ्यात्वके साथ अविरोधित्व है, और उभयसिद्ध सद्भिन्न प्रतिविम्बादिमें साधकत्व देखनेसे पारमार्थिक सत्त्वको साधकत्वके प्रति अप्रयोजकत्व है, तथाहि=उभयसिद्ध सद्भिन्नमें साधकत्व दिखलाते हैं, प्रतिविम्बमें विम्बसाधकत्व तो है ही=दर्पणादिमें मुखादिके प्रतिविम्बसे मुखादिरूप विम्बका ज्ञान होता है तादृश ज्ञानकेप्रति प्रतिविम्बको साधकत्व है, तस्य=उस प्रतिविम्बको विम्बस्वरूपेण सत्त्व होनेपरभी प्रतिविम्बाकारेण असत् होनेसे परमार्थसत्त्व साधकत्वमें प्रयोजक नहीं है; प्रतिविम्ब तथा विम्बका लक्षण लघुचन्द्रिकामें ऐसा बतलाया है औपाधिकपरिच्छेदशून्यत्वे सति 'उपाध्यन्तर्गतत्वरूपेणारोपितधर्मेण विशिष्टत्वं प्रतिविम्बत्वम् । तादृशधर्मशून्यत्वे सति उपाधिसन्निहितत्वं विम्बत्वम्' यहाँपर प्रतिविम्बके लक्षणमें जो सत्यन्त विशेषण है वह घटरूपोपाधिसमानपरिमाणवाले घटाकाशमें अतिव्याप्तिवारण करनेके लिए है, इस रीतिसे मिथ्याभूत स्वप्नार्थकोभी भावि जो शुभ तथा अशुभ तत्सूचकत्व है, यद्यपि 'पुरुषं कृष्णं कृष्णदन्तं पश्यति' इत्यादि श्रुतिके बलसे, तत्रत्य=स्वप्नमें होनेवाले दर्शनकोही सूचकत्व है, तथापि दर्शनमात्रको अतिप्रसक्त होनेसे विषयभी अवश्य

अपेक्षणीय है, इस रीतिसे मिथ्याभूत स्फटिकलौहित्यको भी उपाधिके सन्निधानका साधकत्व है। स्फटिकमें रक्तिमाको भी साधकत्व है।

नच–लौहित्यं स्फटिके न मिथ्या, किन्तु धर्ममात्रप्रतिविम्ब इति न पृथगुदाहरणं इति वाच्यम् धर्मीभूतमुखादिनैरपेक्ष्येण तद्धर्मभूतरूपादिप्रतिविम्बादर्शनात्। प्रतिविम्बस्याव्याप्यवृत्तित्वनियमेन लौहित्यस्य स्फटिके व्याप्यवृत्तिप्रतीत्ययोगाच्च, लौहित्ये स्फटिकस्य त्वारोपे तस्य प्रतिविम्बत्वम् स्फटिके लौहित्यारोपे तु तस्य मिथ्यात्वमिति विवेकः। स्फटिकमणेरिवोपधाननिमित्तो लोहितमेति लोहितिम्नो मिथ्यात्वं दर्शितम्, प्रतिविम्बसत्यत्ववादिभिः पञ्चपादिकाकृद्भिः। एवं रेखातादात्म्येनारोपितानां वर्णानामर्थसाधकत्वम्। न च रेखास्मारिता वर्णा एवार्थसाधका इति वाच्यम्, आशैशवमयं ककारोऽयं गकार इत्यनुभवात् अभेदेनैव स्मरणात्, विवेके सत्यपि दृढतरसंस्कारवशात् नारोपनिवृत्तिः। अतएव ककारं पठति लिखति चेति सार्वलौकिको व्यवहारः। वर्णारोपितदीर्घह्रस्वत्वादीनां च नगो नाग इत्यादावर्थविशेषप्रत्यायकत्वम्। नच वर्णेष्वनारोपितध्वनिसाहित्यं तदभिव्यक्तिरूपं वा दैर्घ्यं प्रत्यायकम्; एवं ह्रस्वत्वादिकमपीति वाच्यम्, ध्वनिनामस्फुरणेऽपि दीर्घो वर्णइत्यादिप्रत्ययात्।

लौहित्य स्फटिकमें मिथ्या नहीं है, किन्तु धर्ममात्रका प्रतिविम्ब है अतः प्रतिविम्बसे पृथक् यह उदाहरण नहीं है. इति न च वाच्यम्; क्यों? धर्मीभूत जो मुखादि उन मुखादिसे निरपेक्ष होकर=मुखादिको छोडकर केवल मुखादिधर्मभूत रूपादिके प्रतिविम्बका अदर्शन होनेसे, लौहित्यके स्फटिकमें व्याप्यवृत्ति प्रतीतिके अयोगसे भी लौहित्यमें स्फटिकका आरोप होनेपर तस्य=लौहित्यको प्रतिविम्बत्व है और स्फटिकमें लौहित्यका आरोप होनेपर तस्य=लौहित्यको मिथ्यात्व है यह भेद है। 'जैसे उपधान=उपाधिनिमित्तकस्फटिकमणिका लौहित्य होता है' इति=इस रीतिसे लोहितिम्नः=लौहित्यका मिथ्यात्व दिखला दिया है, प्रतिविम्बसत्यत्ववादिपञ्चपादिकाकृत्ने इस रीतिसे बहुविध रेखाओंके साथ अभेदरूपसे आरोपित वर्णोंको अर्थका साधकत्व है। रेखाओंसे स्मारित वर्णही अर्थके साधक हैं, इति न च वाच्यम्, क्यों शैशवको अभिव्याप्यकर=शैशवपर्यंत सर्वमें 'अयं ककारः' 'अयं गकारः' ऐसा अनुभव होनेसे, रेखाओंके साथ अभेदरूपसेही वर्णोंका स्मरण होनेसे; विवेक होनेपर भी अनादिकालीन दृढतर संस्कारके वशसे रेखामें वर्णोंके आरोपकी निवृत्ति नहीं होती है, अतएव=उक्त संस्कारसेही ककारको पढता है ककारको लिखता है. इत्याकारक सर्व लोकोंमें व्यवहार हो रहा है. च=और वर्णोंमें आरोपित जो दीर्घत्व ह्रस्वत्वादिक हैं उनको 'नगः' 'नागः' इत्यादिमें अर्थविशेषप्रत्यायकत्व है=नगपदसे पर्वतादिका बोध होता है. और नागपदसे हस्त्यादिका; वर्णोंमें अनारोपित जो ध्वनिसाहित्य तदभिव्यक्तिरूपदैर्घ्य अर्थका प्रत्यायक है या दैर्घ्याश्रय जो ध्वनितद्भिव्यक्तत्वरूप दैर्घ्य अर्थका प्रत्यायक है, ये दोनों धर्म वर्णोंमें हैं, आरोपित नहीं,

इस रीतिसे ह्रस्वत्वादिक भी अर्थके प्रत्यायक हैं, इति न च वाच्यम्; क्यों ? ध्वनिओंका स्फुरण न होनेपर भी 'दीर्घो वर्णः' इत्यादि प्रत्यय होनेसे, तथा च सर्वलोकसिद्ध अनुभवसे विरुद्ध होनेसे आपकी कल्पना असङ्गत है ।

ननु आरोपितेन वर्णदैर्घ्यादिना कथं तात्त्विकार्थसिद्धिः । नह्यारोपितेन धूमेन तात्त्विकवह्निसिद्धिरिति चेन्न; साधकतावच्छेदकरूपवत्त्वमेव साधकतायाः प्रयोजकम्, नत्वारोपितत्त्वमनारोपितत्त्वं वा, धूमाभासस्य त्वसाधकत्वम् । साधकतावच्छेदकरूपव्याप्त्यभावात्, नासत्त्वात्, अनाभासत्वग्रहश्च तत्र बहुलोर्ध्वतादिग्रहणवद्व्याप्तिग्रहणार्थमेवापेक्षितः । तदुक्तं वाचस्पतिमिश्रैः—यथा सत्यत्वाविशेषेऽपि चक्षुषा रूपमेव ज्ञाप्यते न रसः, तथैवासत्त्वाविशेषेऽपि वर्णदैर्घ्यादिना सत्यं ज्ञाप्यते न तु धूमाभासादिनेति । दृष्टं हि मायाकल्पितहस्त्यादेः रज्जुसर्पादेश्च भयादिहेतुत्वम्, सवितृसुपिरस्य च मरणसूचकत्वं शङ्काविषस्य च मरणहेतुत्वम् ।

शङ्कते नन्विति । आरोपित जो वर्णनिष्ठ दैर्घ्यादि उससे तात्त्विक अर्थकी सिद्धि कैसे है, क्योंकि आरोपित धूमसे तात्त्विक वह्निकी सिद्धि नहीं होती है; इति चेन्न; साधकताका अवच्छेदक जो रूप तादृशरूपवत्त्व ही साधककाताप्रयोजक है, आरोपित्व या आनरोपित्व नहीं, और धूमाभासनिष्ठ जो असाधकत्व है वह तो धूमाभासमें साधकतावच्छेदक रूपकी व्याप्तिके अभावसे है. असत्वात्=आरोपितत्त्व होनेसे नहीं है=धूमाभास आरोपित है, अतः उसमें साधकत्व नहीं है. यह बात नहीं है, किन्तु साधकतावच्छेदक रूपकी व्याप्ति न होनेसे साधकत्व नहीं है, च=और धूममें अनाभासत्वका ग्रह तो बहुलता=उर्ध्वत्वादिग्रहणवत् व्याप्तिग्रहणके लिए ही अपेक्षित है. उक्त अर्थ वाचस्पति मिश्रने कहा है—जैसे सत्यत्वके तुल्य होनेपरभी चक्षुसे रूपही ज्ञापित होता है रस नहीं तैसे असत्त्वके अविशेष होनेपरभी वर्णनिष्ठ दैर्घ्यादिसे सत्यार्थ ज्ञापित होता है; धूमाभासादिसे नहीं और मायासे कल्पित हस्त्यादिको तथा रज्जुसर्पादिको भयादिका हेतुत्व दृष्ट है तैसे कल्पित सवितृसुपिरको मरणका सूचकत्व दृष्ट है च=और शङ्काविषको मरणहेतुत्व दृष्ट है ।

ननु—तत्र शङ्कैव भयमुत्पाद्य धातुव्याकुलतामुत्पादयतीति सैव मरणहेतुः; न तु शङ्कितं विषमपि; एवं सवितृसुपिरमायाकल्पितगजादीनामपि ज्ञानमेव तत्तदर्थक्रियाकारि न त्वर्थोऽपि, तथा च सर्वत्रोदाहृतस्थलेषु ज्ञानमेव हेतुः । तच्च स्वरूपतः सत्यमेव, अन्वयव्यतिरेकावपि ज्ञानस्यैव कारणतां ग्राहयतः न हि सन्निहितं सर्पमजानानो विभेति । न च अर्थानवच्छिन्नस्य ज्ञानस्य हेतुत्वेऽपि प्रसङ्गादर्थावच्छिन्नमेव ज्ञानं हेतुः तथा चार्थोऽपि हेतुरेवेति वाच्यम्—अर्थावच्छिन्नस्य ज्ञानस्य हेतुत्वेऽपि अवच्छेदकस्यार्थस्य ताटस्थ्येनाहेतुत्वोपपत्तेः ।

शङ्कते नन्विति । तत्र=शङ्काविषहेतुक मरणस्थलमें शङ्का ही भयको उत्पन्नकर धातुओंमें व्याकुलताको उत्पन्न करती है अतः शङ्का ही मरणका हेतु है न कि शङ्काविषयीभूत विष भी

इस रीतिसे सवितृसुपिरमायाकल्पितगजादिकोंका ज्ञान ही तिस तिस कार्यका करनेवाला है; न कि सवितृसुपिरादि रूप अर्थ भी। फलतः सर्व उदाहृत स्थलोंमें ज्ञानही हेतु है. तच्च=वह ज्ञानतो स्वरूपसे सत्य ही है। अन्वय तथा व्यतिरेक ये दोनों भी ज्ञाननिष्ठ ही कारणताको ग्रहण कराते हैं– सन्निहित सर्पको नहीं जानता हुआ भयको नहीं प्राप्त होता है, यदि स्वरूपतः सर्प भयका हेतु हो तो अज्ञात अवस्थामें भी भय उत्पन्न हुआ चाहिए अर्थसे अनवच्छिन्न ज्ञानको हेतुता होनेपर अतिप्रसङ्ग होनेसे अर्थावच्छिन्न ही ज्ञान हेतु है, तथा च अर्थ भी हेतु ही है,–ज्ञानमात्रकोही यदि हेतु मानें तो घटपटादिके ज्ञानसेभी भयादिका उद्भव होना चाहिए, क्योंकि ज्ञान तो यह भी है, अतः विषयावच्छिन्न ज्ञानको हेतुता कहनी होगी तब तो विशिष्टमें हेतुता होनेसे विषयरूप विशेषणमें भी हेतुता आगई, इति न च वाच्यम्; क्यों? अर्थावच्छिन्न ज्ञानको हेतुत्व होनेपर भी अवच्छेदकस्य=उपाधिरूप अर्थका ताटस्थ्य होनेसे अहेतुत्वकी उपपत्तिसे।

(१) घटावच्छिन्नस्य तदत्यन्ताभावतद्ध्वंसादेर्घटदेशकालभिन्नदेशकालादित्वेऽप्यवच्छेदकस्य तदभाववत् (२) घटेच्छाब्रह्मज्ञानयोः घटज्ञानवेदान्तसाध्यत्वेऽपि घटब्रह्मणोः तदभाववत् (३) घटप्रागभावस्य घटं प्रति जनकत्वेऽपि घटस्याजनकत्ववत् (४) विशेषादर्शनस्य भ्रमं प्रति जनकत्वेऽपि विशेषदर्शनस्य तदभाववत् (५) विहिताकरणस्य प्रत्यवायजनकत्वेऽपि विहितकरणस्य तदभाववत् (६) स्वर्गकामनायाः यागजनकत्वेपि स्वर्गस्य तदजनकत्ववत् (७) अतीतादिस्मृत्यादेर्दुःखादिजनकत्वेऽप्यतीतादेस्तदजनकत्ववत् (८) असद्विषयकपरोक्षज्ञानस्य तद्व्यवहारहेतुत्वेऽप्यसतस्तदभाववत् (९) चिकीर्षितघटबुद्धेर्घटहेतुत्वेऽपि घटस्य तदहेतुत्ववत् (१०) ब्रह्मज्ञानस्य तदज्ञाननिवर्त्तकत्वेऽपि उदासीनस्वभावस्य ब्रह्मणस्तदभाववत् (११) ब्रह्मज्ञानस्य जगत्परिणामिकारणत्वेऽपि ब्रह्मणस्तदभावच्च। नच–तथापि मिथ्यार्थे ज्ञानव्यावर्त्तकताऽस्तीत्यसतोऽपि हेतुत्वमिति–वाच्यम्, न हि व्यावृत्तधीहेतुत्वं व्यावर्त्तकत्वम् किन्तु व्यावृत्तिधीहेतुधीविषयत्वमेव सत्यपि दण्डे तदज्ञाने व्यावृत्त्यज्ञानात्।

उक्तार्थको अनेक दृष्टान्तोंसे द्वैती स्पष्ट करता है, घटेति। जैसे घटावच्छिन्नस्य=घटोपहित घटात्यन्ताभाव और घटध्वंसादिको घटदेश घटकालसे भिन्न कालादिता होनेपर भी अवच्छेदक=उपाधिरूपघटको घटदेशभिन्नदेशता और घटकालभिन्नकालादिताका अभाव है तैसे अर्थावच्छिन्नको हेतुता होनेपर भी अर्थको हेतुताका अभाव है इस रीतिसे सर्वत्र समझना होगा, घटोपहित जो घटात्यन्ताभाव है वह घटदेश जो कपालादि उन कपालादिरूप देशोंसे भिन्न देशमें रहता है, परन्तु घटात्यन्ताभावका अवच्छेदकीभूत घट स्वदेशोंसे भिन्नदेशमें नहीं रहता है तैसे घटावच्छिन्न जो घटका ध्वंस वह घटकालसे भिन्न कालमें रहता है; परन्तु घटप्रध्वंसका अवच्छेदकी भूत घट घटकालसे भिन्नकालमें नहीं रहता है. आदिशब्दसे

प्रागभावादि लेने चाहिए। जैसे घटेच्छा और ब्रह्मज्ञान इन दोनोंको क्रमशः घटज्ञान और वेदान्तसाध्यत्व होनेपर भी अवच्छेदकीभूत घट तथा ब्रह्मको क्रमशः घटज्ञानसाध्यत्व और वेदान्तसाध्यत्व नहीं है तैसे, जैसे घटप्रागभावको घटके प्रति जनकत्व होनेपरभी अवच्छेदकीभूत घटको घटके प्रति जनकत्व नहीं है तैसे। जैसे विशेषके अदर्शनको भ्रमकेप्रति जनकत्व होनेपरभी—अवच्छेदकीभूत विशेषदर्शनको भ्रमके प्रति जनकत्व नहीं है, तैसे। जैसे विहितके अकरणको प्रत्यवायका जनकत्व होने परभी अवच्छेदकीभूत विहितके करणको प्रत्यवायका जनकत्व नहीं है, तैसे। जैसे स्वर्गकी इच्छाको यागका जनकत्व होनेपरभी अवच्छेदकरूपस्वर्गको यागजनकत्व नहीं है तैसे। जैसे अतीतविप्रकृष्टादिविषयक स्मृत्यादिको दुःखादिका जनकत्व होनेपरभी अवच्छेदकरूप अतीतविप्रकृष्टादिको जनकत्व नहीं है तैसे। जैसे शशशृङ्गादिरूप असद्विषयक परोक्षज्ञानको असद्विषयकव्यवहारका हेतुत्व होनेपरभी असत्‌को असद्विषयकव्यवहारका हेतुत्व नहीं है, तैसे। जैसे चिकीर्षित=कर्त्तुमिच्छाविषयीभूतघटबुद्धिको घटहेतुत्व होनेपरभी अवच्छेदकीभूत चिकीर्षितघटको घटहेतुत्व नहीं है तैसे। जैसे ब्रह्मज्ञानको ब्रह्मविषयक अज्ञानका निवर्त्तकत्व होनेपरभी अवच्छेदकरूप उदासीनस्वभाव ब्रह्मको अज्ञानका निवर्त्तकत्व नहीं है तैसे। जैसे ब्रह्माज्ञानको जगत्‌का परिणामिकारणत्व होनेपरभी अवच्छेदकीभूत ब्रह्मको जगत्परिणामिकारणत्व नहीं है तैसेभी। मिथ्याअर्थमें ज्ञाननिष्ठ व्यावृत्तिबुद्धिजनकतारूप व्यावर्त्तकता है, अतः असत्=मिथ्याकोभी जनकत्व है, इति न च वाच्यम्; क्योंकि व्यावृत्तिधीहेतुत्वका नाम व्यावर्त्तकत्व नहीं है, किन्तु—व्यावृत्तिधीकी हेतुभूत जो धी तादृशधीविषयत्वही व्यावर्त्तकत्व है=व्यावृत्तिधी हुई—रजतज्ञानं घटज्ञानाद्भिन्नम्, इत्याकारिका धी तादृशधीकी हेतुभूत धी हुई, 'इदं रजतम्' इत्याकारकधी तादृशधीविषयत्व रजतमें रहगया इसीका नाम व्यावर्त्तकत्व है; दण्डके होनेपरभी दण्डका ज्ञान न होनेपर अदण्डिप्रतियोगिकदण्डचनुयोगिक व्यावृत्तिका ज्ञान न होनेसे।

अथावच्छेदकस्य मिथ्यात्वे अवच्छिन्नस्यापि तन्नियमः न; तुच्छज्ञाने तुच्छवैलक्षण्ये च तुच्छत्वस्य प्रातिभासिकाद्वैलक्षण्ये प्रातिभासिकत्वस्य पञ्चमप्रकारायामात्मस्वरूपभूतायां वा अनिर्वचनीयाज्ञानस्य निवृत्तौ चतुर्थप्रकारानिर्वचनीयत्वस्य, पारमार्थिकात्मस्वरूपे तद्भिन्नेवा अनृतद्वैतस्याभावेऽनृतत्वस्य चादर्शनात् तत्रावच्छेदकानामसदादीनां ताटस्थ्येऽत्रापि तथास्त्विति—चेत् अत्रोच्यते—यदुक्तं ताटस्थ्यलक्षणमुपलक्षणत्वमेव सर्वत्रावच्छेदकस्येति। तन्न; विशेषणत्वे संभवति उपलक्षणत्वायोगात्। विशेषणबाधपूर्वकत्वादुपलक्षणत्वकल्पनायाः; अन्यथा 'दण्डी प्रैषानाह' लोहितोष्णीषा ऋत्विजः प्रचरन्ती' त्यादावपि वेदे दण्डलौहित्यादेरुपलक्षणत्वात् तदभावेऽपि अनुष्ठानप्रसङ्गः, 'सर्वादीनि सर्वनामानी' त्यत्र सर्वशब्दस्य सर्वनामसंज्ञा न स्यात्। 'जन्माद्यस्य यतः' इत्यत्र जन्मनो लक्षणत्वं न स्यात्; विशेषणार्थत्वेन तद्गुणसंविज्ञानबहुव्रीहिसंभवेऽप्युपलक्षणार्थत्वेनातद्गुणसंविज्ञान—बहुव्रीहि स्वीकारप्रसङ्गात्। एवं 'असिपाणयः

प्रवेश्यान्ता ' मित्यादिलौकिकप्रयोगेऽपि प्रतिविम्बादिज्ञानानां जनकत्वे च विशेषणतया प्रतिविम्बादीनामपि जनकत्वे बाधाभावात् नोपलक्षणत्वपक्षो युज्यते, उदाहृतस्थलेषु सर्वत्र बाधकमस्त्येवेति विशेषः ।

अवच्छेदक=उपाधिको मिथ्यात्व होनेपर अवच्छिन्नस्य=उपहितकेभी मिथ्यात्वका नियम है, न; ऐसा नियम नहीं है, क्यों ? तुच्छज्ञानमें और तुच्छवैलक्षण्यमें तुच्छत्वके प्रातिभासिकसे वैलक्षण्यमें प्रातिभासिकत्वके पञ्चमप्रकारस्वरूप या आत्मस्वरूपभूत जो अनिर्वचनीय अज्ञानकी निवृत्ति उस निवृत्तिमें चतुर्थप्रकाररूप अनिर्वचनीयत्वके और पारमार्थिक आत्मस्वरूप या पारमार्थिक आत्मस्वरूपसे भिन्न जो अनृतरूप द्वैतका अभाव उस अभावमें अनृतत्वके न देखनेसे;–उक्तसर्वस्थलोंमें तुच्छादिसे अवच्छिन्न तुच्छज्ञानादिक हैं । परन्तु तुच्छज्ञानादिमें स्वावच्छेदकवृत्ति तुच्छत्वादिरूपता नहीं है; तत्र उक्तस्थलोंमें अवच्छेदकरूप असदादिके ताटस्थ्य होनेपरभी प्रकृतमें भी तथा रहो । इति चेत्=ऐसा यदि कहो तो यहाँपर कहा जाता है–सर्वत्र अवच्छेदकको ताटस्थ्यस्वरूप उपलक्षणत्वही है इतियत् उक्तम् तन्न; ऐसा जो कहा है वह ठीक नहीं है, क्यों ? विशेषणत्वका संभव होनेपर उपलक्षणत्वका अयोग होनेसे, उपलक्षणकल्पनाको विशेषणबाधपूर्वकत्व होनेसे, अन्यथा दण्डी इत्यादि लोहितोष्णीषा इत्यादि वेदमें भी दण्डलौहित्यादिको उपलक्षणत्व होनेसे दण्डादिके अभाव होनेपरभी अनुष्ठानका प्रसङ्ग होगा । सर्वादीनि सर्वनामानि, यहाँपर सर्वशब्दकी सर्वनाम संज्ञा न होगी, जन्माद्यस्य यतः(ब्र०१।१।२) यहाँपर जन्मको ब्रह्मलक्षणत्व न होगा, क्यों ? विशेषणार्थत्वेन तद्गुणसंविज्ञानबहुव्रीहिका सम्भव होनेपरभी उपलक्षणार्थत्वेन अतद्गुणसंविज्ञान बहुव्रीहिके स्वीकारका प्रसङ्ग होनेसे=अतद्गुणसंविज्ञान बहुव्रीहिस्थलमें समासघटकपदोंके अर्थका त्याग हो जाता है । जैसा दृष्टसागरमानय इत्यादिमें होता है । इस रीतिसे 'असिपाणयः प्रवेश्यन्ताम्' इत्यादि लौकिक प्रयोगमेंभी उक्तदोषकी आपत्ति है=यहाँपर उक्तसमासकी प्रसक्ति है । और प्रतिविम्बादिविषयक ज्ञानोंको जनकत्व होनेपर प्रतिविम्बादिके जनकत्वमेंभी बाधका अभाव है, अतः उपलक्षणत्वपक्ष युक्त नहीं है और उदाहृत सर्वस्थलोंमें विशेषणत्वमें बाधक है, यह विशेष है ।

तथाहि—प्रथमे घटदेशकालौ गृहीत्वा तद्भिन्नदेशकालत्वं तदत्यन्ताभावादौ ग्राह्यम्; घटस्यापि तत्सम्बन्धे तद्देशकालभिन्नदेशकालत्वमेव व्याहतं स्यात् । द्वितीये-त्विष्टापत्तिः; क्वचित् घटज्ञानस्य घटेच्छाजनकत्ववत् घटं प्रत्यपि जनकत्वात् ब्रह्मणो वेदान्तसाध्यत्वे तु नित्यत्वविरोधः । तृतीये प्रागभाववत् घटस्य स्वजनकत्वे प्रतियोगिप्रागभावयोः समानकालीनत्वापत्तिः स्वावधिकपूर्वत्वघटितजनकत्वस्य स्वस्मिन् व्याहतत्वं च । चतुर्थे पञ्चमे च प्रतियोगितदभावयोः सहावृत्त्या भ्रमप्रत्यवाययोरनुत्पत्तिप्रसङ्गः । षष्ठे कामनावत् कामनाविषयस्य यागजनकत्वे तस्य प्राक्सत्तया तत्कामनैव व्याहन्येत, सिद्धे इच्छाविरहात् । सप्तमे अतीतस्य जनकत्वे कार्याव्यवहितपूर्वकाले

स्वस्वव्याप्यान्यतरसत्त्वापत्तिः । अष्टमे असतो जनकत्वे निःस्वरूपत्वव्याघातः । नवमे चिकीर्षितघटज्ञानवत् स्वस्य जनकत्वे पूर्ववद्व्याघातः । दशमे उदासीनस्य ब्रह्मणो न निवर्तकत्वम् स्वरूपतः उपहितस्यैव वृत्तिविषयत्वेन तस्याविषयत्वात् उपहितस्य च निवर्त्तकत्वमस्त्येव । एकादशे ब्रह्माज्ञानस्य परिणामिकारणत्वेऽपि न ब्रह्मणो जगत्कारणत्वम् कार्ये जडत्वोपलम्भात्, एवंविधबाधकबलेन तत्रोपलक्षणत्वस्वीकारात् न च प्रकृते बाधकमस्ति अव्यवहितदेशकालादिवृत्तित्वस्य प्रातिभासिकसाधारणत्वात् ।

तथाहि प्रथम उदाहरणमें घटका देश तथा काल इनदोनोंको ग्रहणकर तद्भिन्न=घटदेशकालभिन्नदेशकालत्व घटात्यन्ताभावादिमें ग्राह्य है, घटकाभी तत्सम्बन्धे=घटात्यन्ताभावादीयदेशकालके साथ सम्बन्ध होनेपर घटात्यन्ताभावादीय देशकालमें घटदेशकालभिन्नदेशकालत्वही व्याहत होगा=जब घटीयात्यन्ताभावादीय देशकालमें घट रह जायगा तब उसदेशकालमें घटीयदेशकालभिन्नदेशकालत्व कैसे रहेगा—नहीं रह सकता है । द्वितीय उदाहरणमें तो इष्टापत्ति है; क्यों ? घटज्ञानको घटेच्छाजनकत्ववत् कहींपर घटके प्रतिभी जनकत्व होनेसे=सहकारिओंके सामञ्जस्यसे घटज्ञानोत्पत्त्युत्तरक्षणावच्छेदेन जहाँ घटकी उत्पत्ति होती है वहाँ घटज्ञानको घटकेप्रति जनकता है । और ब्रह्मको वेदान्तसे साध्यत्वहोनेपर नित्यत्वका विरोध होगा । अतः इस अंशमें इष्टापत्ति नहीं । तृतीयमें प्रागभाववत् घटकोभी घटजनकत्व होनेपर प्रतियोगि तथा प्रागभाव इन दोनोंके समानकालीनत्वकी आपत्ति है । और स्वावधिपूर्वकत्वसे घटित जो जनकत्व है उसको स्वमें माननेसे व्याहतत्वभी है, क्योंकि पौर्वापर्य्य भेदसे घटित होता है, स्वावधिकस्वमें पूर्वत्वभी नहीं रहता है और अपरत्वभी नहीं । चतुर्थ तथा पञ्चममें प्रतियोगी तथा प्रतियोगीका अभाव ये दोनोंको साथमें न रहनेसे भ्रम तथा प्रत्यवाय इनदोनोंकी अनुत्पत्तिका प्रसङ्ग है । छठ्ठेमें कामनावत् कामनाविषयको यागजनकत्व होनेपर तस्य=कामनाविषयकी पूर्वमें सत्ता होनेसे कामना ही व्याहत होगी, क्यों ? सिद्धमें इच्छाका अभाव होनेसे । सप्तम उदाहरणमें अतीतको जनकत्व होनेपर कार्यसे अव्यवहित पूर्वकालमें अतीत या अतीतका व्यापार इन दोनोंमेंसे अन्यतरकी आपत्ति है । अष्टम उदाहरणमें असत्को जनकत्व होनेपर निःस्वरूपत्वका व्याघात है, । नवम उदाहरणमें चिकीर्षितघटज्ञानवत् स्वके स्वजनकत्व होनेपर पूर्ववत्=स्वावधिकपूर्वत्वघटित जनकत्वका स्वमें व्याघात है । दशम उदाहरणमें उदासीन ब्रह्मको निवर्त्तकत्व नहीं है क्यों ? स्वरूपसे उपहितको ही वृत्तिविषयत्व होनेसे तस्य=शुद्धको अविषयत्व होनेसे और उपहितको निवर्त्तकत्व है ही; एकादशमें ब्रह्मवृत्त्यज्ञानको जगत्का परिणामिकारणत्व होनेपरभी ब्रह्मको उक्तरूप जगत्कारणत्व नहीं है, क्यों ? कार्यमें जडत्वके उपलम्भसे । इस प्रकारके बाधकोंके बलसे तत्र=उक्त उदाहरणोंमें उपलक्षणत्वका स्वीकार है । प्रकृते=मिथ्याज्ञानके विषय रजतादिमें विशेषणत्व माननेमें बाधकत्व नहीं है, अतएव कारणत्वभी है, अव्यवहितदेशकालादिनिरूपितवृत्तित्वको प्रातिभासिकसाधारणहोनेसे

इदानीं अत्र सर्प इत्यादि प्रतीत्यविशेषात् । नहि क्वचिद्बाधकबलेन मुख्यपरित्यागः कृत इति सर्वत्र तथैव भविष्यति, उत्कर्षाद्यनुविधानाच्च । तथाहि—स्वप्ने जागरे

चोत्कृष्टकलधौतदर्शनात् उत्कृष्टं सुखं उत्कृष्टसर्पादिदर्शनाचोत्कृष्टं भयादि दृश्यते विषयस्य अकारणत्वे तदुत्कर्षानुविधानं कार्ये न स्यात्, नह्यकारणोत्कर्षः कार्यमनुविधत्ते इति न्यायात्। नच ज्ञानप्रकर्षादेव तत्प्रकर्षः, ज्ञानेऽपि विषयगतप्रकर्षं विहायान्यस्याभावात् अथ ज्ञानगता जातिरेव प्रकर्षः । न चाक्षुषत्वादिना सङ्करप्रसङ्गात्, विषयप्रकर्षेणैवोपपत्तौ चाक्षुषत्वादिव्याप्यनानाजात्यङ्गीकारे गौरवान्मानाभावाच्च।

इस कालमें यहाँ सर्प है, इत्यादि प्रतीतिओंका अविशेष होनेसे। जैसे इस कालमें यहाँ दण्ड है, घट है, इत्यादि प्रतीतियाँ देशकालसे अन्वित दण्डादिको विषय करती हैं, तैसे ही (इदानीमत्र सर्पः) इत्यादि प्रतीतियाँ भी—देशकालसे अन्वित सर्पादिकों ग्रहण करती हैं। क्वचित्=अतीतलिङ्गादिस्थलमें बाधकबलसे विषयका कारणविधया परित्याग किया है अतः सर्वत्र विषयका कारणविधया त्याग ही होगा यह बात नहीं है, भाव यह कि, प्रतिबिम्बादिरूपलिङ्गज्ञानम् अनुमितिकारणम् इत्याकारक जो प्रत्यक्षादिरूप कारणताग्राहक ज्ञान है, इस ज्ञानमें प्रतिबिम्बादिरूप लिङ्गके विशेषणत्वका सम्भव होनेसे प्रतिबिम्बादिरूप लिङ्गमें भी कारणताग्राहकत्व है, क्योंकि—विशिष्टमें प्रवृत्त प्रमाणकी विशेषणमेंभी प्रवृत्ति उत्सर्गसिद्ध है, अतः विशेषणांशमेंभी वह प्रवृत्ति मुख्य ही है,। कार्यमें उत्कर्षादिका अनुविधान होनेसेभी। इसी अर्थको स्पष्ट करते हैं, तथाहि—स्वप्नमें तथा जाग्रतमें उत्कृष्ट रजत देखनेसे उत्कृष्टसुख देखा जाता है, और उत्कृष्ट सर्पादि देखनेसे उत्कृष्टभयादि देखे जाते हैं, विषयको कारण न होनेपर विषयका अनुविधान कार्यमें न होगा, क्योंकि अकारणका उत्कर्ष कार्यका अनुविधान नहीं करता है, ज्ञानके प्रकर्षसे ही कार्यका प्रकर्ष है, नच=ऐसा नहीं होसकता है, क्यों? ज्ञानमेंभी विषयगत प्रकर्षको छोडकर अन्यप्रकर्षका अभाव होनेसे, यदि कहोकि ज्ञानगत जाति ही प्रकर्ष है, तो ऐसा नहीं कहना, क्यों? चाक्षुषत्वादिके साथ सङ्करका प्रसङ्ग होनेसे=चाक्षुषत्वको छोड़कर प्रकर्षनामक जाति घ्राणजादिमें रहेगी और प्रकर्षको छोडकर चाक्षुषत्व अप्रकृष्ट चाक्षुषज्ञानमें रहेगा और दोनोंका समावेश प्रकृष्ट चाक्षुष ज्ञानमें होगा, अतः सङ्कर है, और विषयके प्रकर्षसे ही कार्यमें प्रकर्षकी उपपत्ति होनेपर चाक्षुषत्वादिकी व्याप्य नानाजातियाँ=अङ्गीकार करनेमें गौरव है, और प्रमाणका अभाव है,।

किञ्च ज्ञानस्य भयादिजनकत्वे सर्पाद्यवच्छिन्नत्वमेव कारणतावच्छेदकमास्थेयम्। ज्ञानत्वेन जनकत्वे अतिप्रसङ्गात्। तथाच मिथ्यात्वावच्छिन्नत्वाकारेण ज्ञानस्य मिथ्यात्वात् भ्रमस्थले ज्ञानमात्रस्य जनकत्वेऽपि मिथ्याभूतस्य जनकत्वमागमेव जनकतावच्छेदकरूपेण च मिथ्यात्वे रूपान्तरेण सत्त्वमप्यसत्वात् नातिरिच्यते; अनुपयोगात्। तदुक्तं खण्डनकृद्भिः 'अन्यदा सत्त्वं तु पाटच्चरलुण्ठितवेश्मनियामिकजागरणवृत्तान्तमनुसरती'ति। स्वरूपेणापि भ्रमज्ञानस्य मिथ्यात्वमस्त्येव । स्वरूपतो बाधाभावे विषयतोऽप्यबाधप्रसङ्गात्। नच गुणजन्यत्वमुपाधिः तस्याप्यापाद्यत्वेन वह्न्यनुमाने वह्निसामग्र्या इव

साधनव्यापकत्वेनानुपाधित्वात्, विषय इव मिथ्यात्वप्रयोजकदोपादिसमवहितसामग्र्या ज्ञानेऽपि अविशेषाच्च । तुच्छज्ञानतद्वैपम्यादौ च तुच्छत्वादर्शनमबाधकम् । अवच्छेद्यावच्छेदकयोः सर्वत्रसारूप्यनियमानभ्युपगमात् प्रकृते चावच्छेदक इवावच्छेद्येऽपि मिथ्यात्वप्रयोजकरूपतुल्यत्वेन सारूप्योपपत्तेः । सर्वसाधारणं चैकं कारणत्वमभ्युपगम्यैतदवोचाम ।

किञ्च=और भी वक्तव्य है, ज्ञानको भयादिजनकत्वमें सर्पादिसे अवच्छिन्नत्वही कारणतावच्छेदक माननीय है,=भयादिनिष्ठकार्यतानिरूपित सर्पज्ञानादिनिष्ठ कारणता सर्पाद्यवच्छिन्नाही माननी चाहिए, क्यों ? ज्ञानत्वेन= ज्ञानत्वावच्छिन्न जनकता होनेपर अतिप्रसङ्ग होनेसे=घटपटादिके ज्ञानसेभी भयादिकी आपत्ति होगी क्योंकि ज्ञानत्व तो वहाँपरभी है ही, तथा च स्वावच्छिन्नविपयकत्व सम्बन्धसे मिथ्यात्वावच्छिन्न जो ज्ञान उस ज्ञानको मिथ्यात्वावच्छिन्नत्वरूपसे मिथ्यात्व होनेसे । भ्रमस्थलमें ज्ञानमात्रको जनकत्व होनेपरभी मिथ्याभूतको जनकत्व आही गया, और जनकतावच्छेकरूपसे मिथ्यात्व होनेपर रूपान्तरसे सत्त्वभी असत्त्वसे अतिरिक्त नहीं है, क्यों ? उसका कुछ उपयोग न होनेसे, इस अर्थको खण्डनकारने कहा है–अन्यकालीन सत्त्व चोरसे लूटे गये घरमें पहरेदारके जागरणवृत्तान्तका अनुसरण करता है, अर्थात् जैसे जिस घरको चोर लूट लेगया उसमें पहरेदारका जागना व्यर्थ है, क्योंकि, उसका जागरण जिस कार्यके लिए था वह कार्य उससे न हो सका, इस रीतिसे कारण कोटिसे बहिर्भूत अन्यकालीन सत्त्वभी व्यर्थ है, और स्वरूपसेभी भ्रमज्ञानको मिथ्यात्व है ही क्यों ? स्वरूपसे बाध न होनेपर विपयसेभी अबाधका प्रसङ्ग होनेसे=भ्रम यदि अबाधित होगा तो अबाधितविपयक होगा; गुणजन्यत्व उपाधि है,=विमतं भ्रमात्मकं ज्ञानम्, विपयतः बाधशून्यम्, स्वरूपतः बाधशून्यत्वात्, अयं घटः इत्यादिज्ञानवत् ऐसा अनुमान सिद्धान्तीने उपस्थित किया, इसमें द्वैती 'गुणजन्यत्व' उपाधि लगाता है, यह उपाधि साध्यकी व्यापक है, क्योंकि विपयतः बाधशून्यत्व घटादिके ज्ञानमें रहता है, और साधनकी अव्यापक है, क्योंकि स्वरूपतः बाधशून्यत्व शुक्तिरजतादि ज्ञानमें है, परन्तु वहाँपर गुणजन्यत्व नहीं है, ऐसा कथन द्वैतीको अभिप्रेत है, नच=गुणजन्यत्व उपाधि नहीं हो सकती है, क्यों ? तस्यापि= उक्त उपाधिकोभी आपाद्य होनेसे= स्वरूपतोऽबाध्यत्वान्यथानुपपत्त्या गुणजन्यत्वकोभी आपाद्य होनेसे, स्वरूपतोऽबाध्यत्वान्यथानुपपत्त्या गुणजन्यत्वकोभी आपाद्य होनेसे वह्न्यनुमानमें वह्निसामग्रीवत् साधनव्यापकत्वप्रयुक्त अनुपाधित्व होनेसे ।–वह्निअनुमानमें जैसे वह्निकी सामग्री उपाधि नहीं होती है साधनव्यापक होनेसे तैसेही उक्तानुमानमें गुणजन्यत्व उपाधि नहीं बन सकती है–साधनव्यापक होनेसे, विपयवत् मिथ्यात्वप्रयोजक जो दोपाविद्यासे सचिवसामग्री उस सामग्रीको ज्ञानमेंभी अविशेप होनेसे, यहाँ–दोपादि इस आदि पदसे अविद्याका ग्रहण होता है । तुच्छज्ञानमें और तुच्छवैपम्यादिमें जो तुच्छत्वका अदर्शन है वह प्रकृतार्थमें बाधक नहीं है, क्यों ? अवच्छेद्य तथा अवच्छेदक इन दोनोंमें सर्वत्र सारूप्यके निय-

मका अनभ्युपगम होनेसे, और प्रकृतमिथ्याज्ञानमें तो अवच्छेदक=विपयवत् अवच्छेद्येऽपि=मिथ्याज्ञानमेंभी मिथ्यात्वप्रयोजकरूपके तुल्यत्वसे सारूप्यकी आपत्ति होनेसे। सर्वमें समानरूपसे कारणत्वको अङ्गीकार कर यह कहा है।

वस्तुतस्तु—दण्डतन्त्वादिसाधारणमेकं कारणत्वं नास्त्येव; यत्र तव सत्त्वमवच्छेदकं, तत्र न मम तुच्छविलक्षणत्वादिकम् किन्तु कार्यतावच्छेदकं घटत्वादिकारणतावच्छेदकञ्च दण्डतन्त्वादि। तद्भेदाच्च कारणत्वं भिन्नम्। यथा गोगवयसादृश्यमन्यत् भ्रातृभगिन्यादिसादृश्यमन्यत्; तत्र नैकमवच्छेदकम्, किन्तु गवयत्वभगिनीत्वादिकमेव; तद्वदत्रापिदण्डत्वादिकमेव सत्त्वासत्त्वोदासीनमवच्छेदकम् वाच्यम्। तथाच जनकत्वानुसारेण न सत्त्वासत्त्वसिद्धिः। तदुक्तं खण्डनकृद्भिः—पूर्वसम्बन्धनियमे हेतुत्वे तुल्य एव नौ। हेतुतत्त्वबहिर्भूतसत्त्वासत्त्वकथा वृथा॥ इति॥ अन्तर्भावितसत्त्वं चेत् कारणं तदसत्ततः। नान्तर्भावितसत्त्वं चेत् कारणं तदसत्ततः॥ इति च॥

वस्तुतः तो दण्ड और तन्त्वादिमें रहनेवाला एक कारणत्वही नहीं है। जिसमें तुम्हे सत्त्व अवच्छेदक हो और हमे तुच्छविलक्षणत्वादि न हों। किन्तु कार्यतावच्छेदकघटत्वपटत्वादि हैं, और कारणतावच्छेदक दण्डत्व तन्तुत्वादिक हैं, तद्भेदाच्च=दण्डत्व तन्तुत्वादिरूप कारणतावच्छेदकके भेदसे कारणत्व भिन्न भिन्न है, जैसे गोप्रतियोगिकगवयानुयोगिक सादृश्य भिन्न है, और भ्रातृप्रतियोगिक भगिन्याद्यनुयोगिक सादृश्य भिन्न है, तत्र=सादृश्यस्थलमें सादृश्यीयानुयोगितावच्छेक एक नहीं है, किन्तु गवयत्वभगिनीत्वादिक भिन्न भिन्नही है, तद्वत कार्यकारणभावस्थलमेंभी सत्त्व तथा असत्त्व इन दोनोंसे उदासीन दण्डत्वादिकही अवच्छेदक कहने चाहिए, फलतः जनकत्वप्रयुक्त सत्त्व तथा असत्त्व इन दोनोंकी सिद्धि नहीं होती है। इस अर्थको खण्डनकारने कहा है, खण्डनकारके आदिम श्लोकका अर्थ प्रत्यक्षके उपजीव्यत्वनिराकरणके प्रकरणमें लिखा जा चुका है, अतः द्वितीयका लिखते हैं अन्तरिति। सत्ताविशिष्टमें कारणत्व है या सत्तोपलक्षितमें, आद्यपक्षको लेके दोप देते हैं—अन्तर्भावितसत्त्वं कारणं चेत्=सत्ताविशिष्टको कारण कहनेपर तत्=कारण असत्=असत्=है, क्यों? ततः=सत्ताविशिष्टको कारणत्वका अभ्युपगम होनेसेही=सत्ताविशिष्टको कारणता होनेपर सत्तामेंभी कारणता आगई. और सत्ताको तो सत् नहीं कहा जा सकता है—क्योंकि—सत्ताधिकरण सत् कहा जाता है, और सत्तामें सत्ता नहीं रहती है, द्वितीय पक्षको लेके दोप देते हैं नेति। नान्तर्भावितसत्त्वं चेत्कारणम्=यदि सत्त्वोपलक्षित कारण है तो तत्=कारण असत् है. क्यों? ततः सत्ताके उपलक्षणत्वका अङ्गीकार होनेसे अर्थात् सत्ताविशिष्टमें कारणत्व नहीं माननेसे असत्‌मेंही कारणत्व आया। अथवा ऐसा विकल्पका अर्थ करना कि सत्तामें कारणत्व है, या नहीं। यदि सत्तामें कारणत्व है तव तो असत्‌में भी कारणत्व आगया क्योंकि सत्ताविशिष्टसत्ताके न होनेसे सत्ता असत् है, यदि कहो कि सत्तामें कारणत्व नहीं है, तव तो सत्ता सदाकार अनुगत प्रत्ययभी नहीं उत्पन्न करेगा तब तो सदाकारप्रत्ययप्रमाणक सत्ताका विलोप होनेसे सर्वकारण

असत्‌ही है। अथवा, कारणम्=कारणत्व सत्ताका व्याप्य है, या नहीं ऐसा विकल्प करना, यदि प्रथम लो तो सत्तामें सत्ताके न रहनेसे तद्व्याप्यभूत कारणत्वकी भी निवृत्ति हो जायगी, तथाच सत्ताविषयक ज्ञानके न होनेसे सत्ताका विलोप होगा, और सत्ताके विलोपसे सर्वकारण असत् सिद्ध हुए। अन्त्यपक्ष लो तो सत्ताको छोड़करभी कारणत्व सिद्ध हुआ तथा च स्वमुखसेही असत् कारण मान लिया।

नचैवम्—अन्तर्भावितसत्त्वं चेत् अधिष्ठानमसत्ततः। नान्तर्भावितसत्त्वं चेदधिष्ठानमसत्ततः॥ इति तवापि समानमिति—वाच्यम्; ममाधिष्ठाने स्वरूपत एव सत्ताङ्गीकारः, तव तु कारणे स्वरूपातिरिक्तसत्ताङ्गीकार इतिविशेषात्। यत्तु अर्थो न ज्ञानस्य जनकतायामवच्छेदकोऽपि; मानाभावात्, न चातिप्रसङ्गः। विषयावच्छेदकमनपेक्ष्यैव सर्पज्ञानस्यासर्पज्ञानाद्व्यावृत्तिसिद्धेः। तथाहि—सर्पज्ञानस्यासर्पज्ञानाद्व्यावृत्तिर्व्यावर्त्तकाधीना। नच विषयस्तत्सम्बन्धो वा व्यावर्त्तकः; स्वरूपातिरिक्तद्विनिष्ठसम्बन्धस्याभावात्, असम्बन्धस्य चाव्यावर्तकत्वात्। अथ सम्बन्धान्तरमन्तरेण विशिष्टव्यवहारजननयोग्यं ज्ञानस्वरूपमेव वाज्ञानमात्रनिष्ठः कश्चिद्धर्मो वा सम्बन्धः; तर्हि विषयमनन्तरभाव्यैव ज्ञानात् तद्गतधर्माद्वा विशेषसिद्धिरित्यायातम्। किञ्च सर्पज्ञानमसर्पज्ञानाद्धर्म्यन्तरसम्बन्धमनपेक्ष्य विलक्षणम् तज्जनकविलक्षणजन्यत्वात्, यवाङ्कुरात् कलमाङ्कुरवत् तज्जन्यविलक्षणजनकत्वाद्वा यवबीजात्कलमबीजवत्।

एवम्=उक्तप्रकारसे आपकोभी यह विकल्प और दूषण समान है, तथाहि—आपके मतमें सत्वविशिष्ट अधिष्ठान है। यासत्त्वोपलक्षित, यदि प्रथम पक्ष लो तो तत्=अधिष्ठान असत् है, ततः=सत्त्वविशिष्टको अधिष्ठानत्व होनेसेही अर्थात् सत्वकोभी अधिष्ठानत्व आगया और सत्त्वसत्त्वसे विशिष्ट नहीं है, अतः अधिष्ठान असत् हुआ, यदि सत्त्वोपलक्षितको अधिष्ठान कहोतो तो आपके मुखसेही असत्‌में अधिष्ठानता सिद्ध होगई। इति न च वाच्यम्; क्यों? मुझको अधिष्ठानमें स्वरूपसेही सत्ताका अङ्गीकार है और तुमको तो कारणमें स्वरूपसे अतिरिक्त सत्ताका अङ्गीकार है यह विशेष होनेसे। और अर्थ ज्ञाननिष्ठजनकताका अवच्छेदकभी नहीं है, प्रमाणके न होनेसे; अतिप्रसङ्ग है,=विषयको अवच्छेदक न होनेपर कौन ज्ञान किसका है यह निर्णय न होगा और आगेबढ़कर फलांशमें भी विप्लव होगा, नच=अतिप्रसङ्ग नहीं है, क्यों? विषयरूप अवच्छेदककी अपेक्षा न करकेही सर्पज्ञानकी असर्पज्ञानसे व्यावृत्तिकी सिद्धिसे, तथाहि—उक्तार्थको स्पष्ट करते हैं सर्पविषयकज्ञानकी असर्पज्ञानसे जो व्यावृत्ति है, वह व्यावर्त्तकके अधीन है। विषय तथा विषयका सम्बन्ध व्यावर्त्तक नहीं है; क्यों? स्वरूपसे अतिरिक्त जो द्विनिष्ठसम्बन्ध उसका अभाव होनेसे, और असम्बन्धस्य=सम्बन्धसे शून्यको अव्यावर्त्तकत्व होनेसे। अन्यसम्बन्धके विना विशिष्टव्यवहारजननयोग्य ज्ञानका स्वरूपही या ज्ञानमात्रनिष्ठ कोई धर्मही विषयज्ञानका सम्बन्ध है, यदि ऐसा है तब तो, ज्ञानसे या ज्ञानगतधर्मसे विशेषकी सिद्धि

है यह आया । किञ्च सर्पज्ञान असर्पज्ञानसे विषयप्रतियोगिक सम्बन्धकी न अपेक्षाकर विलक्षण है, तज्जनक=असर्पज्ञानजनकसे विलक्षण=भिन्न कारणसे जन्य होनेसे यवाङ्कुरसे कलमाङ्कुरवत्= कलमाङ्कुरमें तज्जनकविलक्षणजन्यत्व रहता है, तत्पदसे लिया यवाङ्कुर उसका जनक हुआ यव यवसे भिन्न हुआ कलम तादृशकलमजन्यत्व कलमाङ्कुरमें रहगया, और धर्म्यन्तरके सम्बन्धकी अपेक्षा न कर विलक्षणभी है, अथवा तज्जन्यविलक्षणजनकत्व हेतु है तत्पदसे लिया असर्पज्ञान तज्जन्यहुआ असर्पका ह्वानादि उससे भिन्न हुए भयकम्पादि तज्जनकत्व सर्पज्ञानमें है, दृष्टान्तमें तत्पदसे लिया यवबीज उससे जन्य हुआ यवाङ्कुर यवाङ्कुरसे विलक्षण=भिन्न हुआ कलमाङ्कुर तज्जन्यत्व कलमबीजको है, और साध्यभी है ।

नच विलक्षणविषयसम्बन्धेनैव हेत्वोरुपपत्तावप्रयोजकत्वम्; तथात्वे हि यवबीज-तदङ्कुरविलक्षणजन्यजनके कलमाङ्कुरतद्बीजेऽपि यवाङ्कुरतद्बीजाङ्कुराभ्यां कलमाङ्कुर-तद्बीजत्वरूपस्वाभाविकवैलक्षण्यं विना कदाचिदुपलक्षणीभूतचैत्रादिसम्बन्धितामात्रेण विलक्षणे स्याताम् । साक्षात्कारोऽपि परोक्षज्ञानादन्यसम्बन्धितामात्रेण विलक्षणः स्यात् । एवञ्च यथाप्रतियोगिनमनन्तर्भाव्यैव घटस्याभावो भावान्तरात् यथाच विषयमनन्तर्भाव्यैव शिलोद्धरणकृतिर्मापोद्धरणकृतितः, यथाचातीतादिज्ञानमसद्विषयकपरोक्षज्ञानव्यवहारौ च ज्ञानान्तरादितः अन्यथा तत्कार्यसङ्करः स्यात्; एवं सर्पज्ञानमपि रज्जौ सर्पज्ञानस्य भ्रमत्वे-नाधिकजन्यत्वेऽपि सर्पज्ञानत्वेन तद्धेतुजन्यत्वात् स्वत एव वा असर्पज्ञानाद्विलक्षणमिति न कोऽपि दोषः न चाभावादावपि प्रतियोग्यादेरवच्छेदकत्वं, ध्वंसादेः कृतेरतीतादिज्ञा-नस्य च सत्तासमये प्रतियोगिविषययोरसत्त्वात् इति—तन्न;

विलक्षण जो विषय है, उसके सम्बन्धसे ही हेतुकी उपपत्ति होनेपर आपके हेतुमें अप्रयोजकत्व है, नच=नहीं क्योंकि—तथात्व होनेपर यवबीज और यवाङ्कुर इन दोनोंसे विलक्षण जन्य और विलक्षण जनक जो क्रमशः कलमाङ्कुर और कलमबीज ये दोनोंभी यवाङ्कुर और यवबीज इन दोनोंसे कलमाङ्कुरत्व और कलमबीजत्वरूप स्वाभाविक वैलक्षण्यके विना कदाचित् उपलक्षणीभूत जो चैत्रादि तादृशचैत्रादिसम्बन्धित्वमात्रसे विलक्षण होंगे । साक्षात्कारभी परोक्ष ज्ञानसे अन्यसम्बन्धिता=चैत्रादिसम्बन्धित्वमात्रेण विलक्षण होगा । फलतः जैसे प्रतियोगीको स्वस्वरूपमें न अन्तर्भाव करके ही घटका अभाव अभावान्तरसे विलक्षण है, अभावमें प्रतियोगी उपलक्षण होता है, और जैसे विषयको न अन्तर्भाव करके ही शिलोद्धरणकृति माषोद्धरणकृतिसे विलक्षण होती है, और जैसे अतीत-अनागतविषयकज्ञान वर्त्तमानविषयकज्ञानसे विलक्षण होता है, और जैसे असद्विषयक परोक्ष-ज्ञान तथा व्यवहार वर्त्तमानविषय अपरोक्षज्ञान तथा व्यवहारसे विलक्षण होता है, अन्यथा=उक्त वैलक्षण्यका न अङ्गीकार होनेपर अभावोंका तथा ज्ञानोंका परस्पर साङ्कर्य होनेसे, गुणाभाव और दोषाभावको एक हो जानेसे भ्रमप्रमारूप कार्योंका साङ्कर्य हो जायगा, तैसे ज्ञानोंका

साङ्कर्य होनेसे ज्ञानके फलमें साङ्कर्य होगा और परोक्षापरोक्षादि असङ्कीर्णव्यवहारभी न होगा, तैसे सर्पज्ञानभी रज्जुमें सर्पज्ञानको भ्रमत्वप्रयुक्तअधिकजन्यत्व होनेपरभी सर्पज्ञानत्वेन सर्पज्ञानहेतुजन्यत्वसे या स्वतः ही असर्पज्ञानसे विलक्षण है, अतः कोई दोष नहीं है, । अभावादिमेंभी प्रतियोग्यादिको अवच्छेदकत्व है, नच=नहीं है, क्यों ? ध्वंसादिकी और कृतिकी तथा अतीतादिज्ञानकी सत्ताके समयमें प्रतियोगी तथा विषय इन दोनोंका असत्त्व होनेसे इतियत् तन्न=ऐसा जो कहा है वह ठीक नहीं है, क्योंकि—

सर्पज्ञानत्वावच्छिन्नस्यासर्पज्ञानाद्व्यावृत्तौ प्रयोजकं न तत्तत्स्वरूपमेव सर्पज्ञानसाधारण्याभावात् । किन्त्वनुगतो धर्मः कश्चित् । सोऽपि सर्पज्ञानमात्रे न जातिरूपः प्रत्यक्षत्वानुमानत्वादिना सङ्करप्रसङ्गात्, किन्तूपाधिरूपः । स च स्वरूपसम्बन्धेनाध्यासिकसम्बन्धेन वा सम्बन्धिभूतविषयादन्यो न भवति मानाभावात् । अत एव धर्म्यन्तरसम्बन्धमनपेक्ष्य विलक्षणमित्युक्तानुमानं बाधितं द्रष्टव्यं व्यभिचारि च । तथाहि—घटसंयोगः पटसंयोगान्न जात्या भिद्यते तदवृत्तिजात्यनधिकरणत्वात् किन्तु घटरूपोपाधिनैवेति धर्म्यन्तरसम्बन्धमपेक्ष्यैव विलक्षणे घटसंयोगत्वावच्छिन्ने साध्याभाववति उक्तहेतुसत्त्वाद्व्यभिचारः अप्रयोजकश्च । नच उपलक्षणीभूतचैत्रसम्बन्धेनापि कलमाङ्कुरादेर्व्यावृत्ततापत्तिः विपक्षबाधायामिष्टापत्तेः नहि जातेर्व्यावर्त्तकत्वे उपाधिरव्यावर्तकोभवति ।

सर्पज्ञानत्वावच्छिन्नस्य=सर्वसर्पज्ञानोंकी असर्पज्ञानसे व्यावृत्तिमें प्रयोजक तत् तत् ज्ञानस्वरूप ही नहीं होसकता है, सर्वज्ञानोमें स्वरूपके साधारण्यका अभाव होनेसे=सर्वज्ञानोंमें एक ही स्वरूप नहीं है, किन्तु कोई अनुगत धर्म है, वहभी सर्पज्ञानमात्रमें जातिस्वरूप नहीं है, क्यों ? प्रत्यक्षत्व अनुमानत्वादिके साथ सङ्करका—प्रसङ्ग होनेसे=प्रत्यक्षत्वको छोडकर वह जाति अनुमित्यात्मक सर्पज्ञानमें रहेगी और उस जातिको छोड़कर प्रत्यक्षत्व घटादिज्ञानमें रहेगा, दोनोंका समावेश चाक्षुषादिरूप सर्पज्ञानमें होगा, ऐसे ही अनुमानत्वादिके साथभी लगाना, किन्तु उपाधिरूप वह धर्म है, वह स्वरूपसम्बन्धसे या आवियकसम्बन्धसे सम्बन्धिभूत विषयसे अन्य नहीं हैं, प्रमाणका अभाव होनेसे, अतएव (धर्म्यन्तरके सम्बन्धकी अपेक्षा न कर विलक्षण है, यह अनुमान बाधित जानना, और व्यभिचारीभी । तथाहि=दिखलाते हैं, घटसंयोग पटसंयोगसे जातिसे भिन्न नहीं होता है, पटसंयोगमें अवृत्ति जातिका अनधिकरण होनेसे, किन्तु घटरूप उपाधिसेही, इस रीतिसे धर्म्यन्तरके सम्बन्धकी अपेक्षा करके ही विलक्षण साध्याभाववत् घटसंयोगत्वावच्छिन्नमें (तज्जनक) इत्यादिके रहजानेसे व्यभिचार है. और व्यभिचार शङ्का निवर्त्तक तर्कसे शून्यभी है । उपलक्षणीभूत चैत्रादिके सम्बन्धसेभी कलमाङ्कुरादिके व्यावृत्तताकी आपत्ति है, नच=ऐसी आशङ्का नहीं करना, क्यों ? विपक्षमें बाधा होनेपर इष्टकी आपत्ति होनेसे, जातिको—व्यावर्त्तक होनेपर उपाधि अव्यावर्त्तक नहीं होता है,

एवं शिलोद्धरणमापोद्धरणकृत्योः परस्परं जात्या व्यावृत्तावपि विषयरूपोपाधिनापि व्यावृत्तिरविरुद्धा । शिलोद्धरणे च जातिविशेषविशिष्टायाः कृतेर्जनकत्वेन तद्वहि-

ताया मापोद्धरणकृतेस्तदनिष्पत्तिरविरुद्धा। व्यावृत्तेरन्यतोऽपि सिद्धिसंभवे कार्यकारणभावादिनिर्वाहाय जातिविशेषस्यापि कल्पनात्, अतीतासद्विषयकज्ञानव्यवहारादौ चातीतासतोरेव व्यावर्त्तकत्वम् नहि व्यावृत्तिधीजनकत्वं तत्; येन सत्त्वाभावे प्राक्सत्त्वशरीरतया न स्यात्, किन्तु व्यावृत्तिधीजनकधीविषयत्वमित्युक्तम्। तच्चातीतादौ सुलभमेव। अतएवाभावादिनिदर्शनमपि निरस्तम्, उक्तरूपव्यावर्त्तकत्वस्यात्यन्तासत्यपि सम्भवेन कदाचित् सतिसम्भवस्य कैमुतिकन्यायसिद्धत्वात्।

एवम्=इसरीतिसे शिलोद्धरणकृति और मापोद्धरण कृति इनदोनोंकी परस्पर जातिसे व्यावृत्ति होनेपरभी विषयरूप उपाधिसेभी व्यावृत्ति अविरुद्ध है। और शिलोद्धरणमें जातिविशेषविशिष्ट कृतिको जनकत्व होनेसे मापोद्धरण कृतिसे शिलोद्धरणकी अनुत्पत्ति अविरुद्ध है। व्यावृत्तिकी अन्यसे सिद्धि होनेपरभी कार्यकारणभावादिनिर्वाहके लिए जातिविशेषकीभी कल्पना होनेसे। और अतीत तथा असद्विषयकज्ञानव्यवहारादिमें तो अतीत तथा असत्को ही व्यावर्त्तकत्व है, क्योंकि व्यावृत्तिधीजनकत्वरूप व्यावर्त्तकत्व नहीं है, जिससे कि सत्त्वके न होनेसे और जनकत्वको प्राक्सत्वशरीरत्व होनेसे व्यावर्तकत्व न हो, किन्तु व्यावृत्तिधीजनकधीविषयत्वरूप है यह कहा है=इसका अर्थभी वहाँ ही पर होचुका है। तच्च=उक्त व्यावर्त्तकत्व तो अतीतादिमें सुलभ ही है। अत एव=व्यावर्त्तकत्वको उक्तरूप होनेसे ही अभावादिरूप दृष्टान्तभी खण्डित हुए, क्योंकि उक्तरूप व्यावर्त्तकत्वको अत्यन्त असत्‌मेंभी संभव होनेसे, कदाचित् विद्यमान प्रतियोग्यादिमें कैमुतिकन्यायसे सिद्ध होनेसे।

ननु–विषयस्य व्यावर्त्तकत्वेऽपि सर्वत्रविशेषणत्वासंभवात् उपलक्षणत्वमेव वाच्यम् उपलक्षणेन चोपलक्ष्यगतस्वसम्बन्धव्यतिरिक्तः कश्चिद्धर्म एवोपस्थाप्यते, काकेन इव गृहसम्बन्धिना तद्गतसंस्थानविशेषः; तथाच स एव व्यावर्त्तक इति विषयसम्बन्धमनपेक्ष्य स्वगतेनेव धर्मेण ज्ञानस्य व्यावृत्तिरिति–चेन्न; विषयस्य विशेषणत्ववदुपलक्षणत्वस्याप्यनभ्युपगमात्। येन हि स्वोपरागाद्विशेष्ये व्यावृत्तिबुद्धिर्जन्यते तद्विशेषणं व्यावृत्तिबुद्धिकाले विशेष्योपरञ्जकमित्यर्थः; यथा गोत्वादि। येन च स्वोपरागमुदासीनं कुर्वता विशेष्यगतव्यावर्त्तकधर्मोपस्थापनेन व्यावृत्तिबुद्धिर्जन्यते तदुपलक्षणम्, यथा काकादि। यत्तु–विशेष्येनोपरञ्जकम्। नवा धर्मान्तरोपस्थापकम् अथ च व्यावर्त्तकं तदुपाधिः यथा पङ्कजशब्दप्रयोगे पद्मत्वम् यथावोद्भिदादिशब्दप्रयोगे यागत्वावान्तरजातिविशेषः। अत्र हि पद्मत्वयागत्वावान्तरधर्मौ पङ्कजनिकर्त्तरि फलोद्भेदनकर्त्तरि च न धर्मान्तरमुपस्थापयतः; अप्रतीतेः नवा स्वोपरक्तां बुद्धिं जनयतः समुदाये शक्त्यन्तरानभ्युपगमात् अथ च कुमुदज्योतिष्टोमादिभ्यो व्यावर्त्तकावित्युपाधी एव। इदञ्च प्राभाकराणां भाट्टानां च सम्मतमुदाहरणयुगलम्। तार्किकाणान्तु आकाशशब्दप्रयोगे शब्दाश्रयत्वमुदाहरणम्।

शङ्कते नन्विति विषयको व्यावर्त्तकत्व होनेपरभी विशेषणत्वका असंभव होनेसे उपलक्षणत्व कहना होगा, और उपलक्षणसे तो उपलक्ष्यगत स्वसम्बन्धसे व्यतिरिक्त कोई धर्मही उपस्थापित किया जाता है, जैसेकि गृहसम्बन्धिकाकसे गृहसम्बन्धि संस्थानविशेष उपस्थापित किया जाता है, फलतः स एव=उपलक्षणीभूतविषयसे उपस्थापित धर्मविशेषही व्यावर्त्तक है, इसरीतिसे विषयसम्बन्धकी अपेक्षा न कर स्वगत धर्मसेही विषयकी व्यावृत्ति है, इतिचेन्न; क्यों ? विषयस्य= विषयनिष्ठविशेषणत्ववत् उपलक्षणत्वकाभी अनभ्युपगम होनेसे, जिससे स्वोपरागको लेके विशेष्यमें व्यावृत्ति बुद्धि उत्पन्न की जाती है, वह विशेषण कहा जाता है=व्यावृत्तिबुद्धिकालमें विशेष्योपरञ्जकम्=व्यावृत्तिधीविशेष्यमें विशेषणत्वेन व्यावृत्तिधीकालमें भासमान हुआहुआ व्यावृत्तिधीकालमें विद्यमान, यह अर्थ है, जैसे गोत्वादि यह लक्षण गोत्वादिमें ठीकठीक घटता है। और स्वोपरागको उदासीन करनेवाले जिससे विशेष्यगतव्यावर्त्तकधर्म उपस्थापनद्वारा व्यावृत्तिबुद्धि उत्पन्न की जाती है वह उपलक्षण है, जैसे कि काकादि, और जो व्यावृत्तिबुद्धि-कालमें विशेष्यमें उपरञ्जक नहीं है और धर्म्यन्तरका उपस्थापकभी नहीं है अथ च व्यावर्त्तक है=विशेषण तथा उपलक्षणसे भिन्न होके जो व्यावर्त्तक है वह उपाधि है, जैसे कि पङ्कज शब्दप्रयोगमें पद्मत्व या जैसे उद्भिदादिशब्दप्रयोगमें यागत्वावान्तरजातिविशेष। यहाँपर पद्मत्व तथा यागत्वावान्तरधर्म ये दोनों क्रमशः पङ्कजनिकर्त्तामें और फलोद्भेदनकर्त्तामें धर्मान्तरको नहीं उपस्थापित करते हैं, क्यों ? तादृशधर्मकी अप्रतीति होनेसे, और स्वोपरक्त बुद्धिकोभी नहीं उत्पन्न करते हैं, क्यों ? अवयवोंसे अतिरिक्त समुदायमें भिन्नशक्तिका अनङ्गीकार होनेसे, तथापि कुमुदज्योतिष्टोमादिसे व्यावर्त्तक हैं, अतः ये दोनों उपाधिही हैं यह प्राभाकर तथा भट्टोंको सम्मत उदाहरणद्वय है। और तार्किकोंको आकाशशब्दप्रयोगमें शब्दाश्रयत्व उदाहरण है।

अतएवाविद्यादिकं साक्षित्वादावुपाधिरितिसिद्धान्तो वेदान्तिनाम्। अतो यत्र विषयस्य विशेषणत्वं न संभवति तत्कालासत्वात् तत्रोपाधित्वाभ्युपगमान्नोपलक्षणत्वनि-बन्धनदोषावकाशः; सन्देहे तु विशेषणत्वमेवाभ्यर्हितत्वादुपेयते। तस्माद्विषय एव सर्वत्र ज्ञाने व्यावर्त्तकः। एकविषयकस्मृत्यनुभवयोः परोक्षापरोक्षयोश्च विषयमनपेक्ष्य जात्या परस्परव्यावृत्तिदर्शनात्। सर्वत्र विषयनिरपेक्षा जातिरेव व्यावर्तिकेति न युक्तम्। भिन्न-विषयके समानजातीये तदसंभवात्। न च—तत्रापि जातिरस्ति क्षीरादिमाधुर्यवदिति—वाच्यम् चाक्षुषत्वादिना सङ्करस्योक्तत्वात्।

अतएव=उक्त उपाधिके लक्षणके संधानसेही अविद्यादिक साक्षित्वादिमें उपाधियाँ है। यह वेदान्तियोंका सिद्धान्त है। अतः यहाँपर तत्कालमें न होनेकी वजह विषयके विशेषणत्वका संभव नहीं है, तहाँ उपाधित्वका अभ्युपगम होनेसे उपलक्षणत्वनिबन्धनदोषका अवकाश नहीं है, विशेषणत्व और उपाधित्वका सन्देह होनेपर तो अभ्यर्हित होनेसे विशेषणत्वही उपादीयमान है, ततः सर्वत्र ज्ञानमें विषयही व्यावर्तक है। एक विषयक जो स्मृति तथा अनुभव इन दोनोंकी च=और परोक्ष तथा अपरोक्ष इन दोनों विषयकी अपेक्षा न कर जातिसे परस्परव्यावृत्ति

देखनेसे सर्वत्र विषयसे निरपेक्षजातिही व्यावर्त्तिका है यह कथन युक्त नहीं है, क्यों ? भिन्न-विषयक जो समानजातीयज्ञान उसमें जातिसे परस्पर व्यावृत्तिका असंभव होनेसे=घटपट-विषयक अपरोक्षज्ञानोंकी व्यावृत्ति जातिसे नहीं हो सकती है, क्योंकि घटज्ञानमें और पटज्ञानमें अपरोक्षत्वजाति समान है, तत्रापि=भिन्नविषयक अपरोक्षज्ञानमेंभी जाति है, जैसे क्षीरादिके माधुर्यमें विलक्षणधर्मवत्ता रहती है—इति न च वाच्यम्; क्यों ? चाक्षुषत्वादिके साथ सङ्करको उक्त होनेसे।

नच—तव मते तत्तद्वृत्तेस्तत्तदाकारत्वेन चैतन्यस्य तत्प्रतिविम्बत्वेन वा मम तु तत्त-द्ज्ञानस्य तत्तदीयस्वभावत्वेन तत्तद्व्यवहारजननशक्तत्वेन वा स्वत एव वैलक्षण्यमिति वाच्यम्, विषयस्यैवाकारसमर्पकत्वेन स्वभावव्यवहारयोः परिचायकत्वेन च तन्नैरपेक्ष्येण व्यावर्तकताया वक्तुमशक्यत्वात्। अस्माभिश्च तुच्छे जनकत्वस्यानुक्तत्वात्। विशेषणत्वो-पाधित्वयोः संभवे च नोपलक्षणत्वमित्युक्तम्। न च कथमसतः सज्जायेतेति श्रुत्या 'नासतो दृष्टत्वादितिसूत्रेण शशविषाणादिभ्यः सदुत्पत्त्यदर्शनादित्यादिभाष्येण च विरोधः। तेषां तुच्छे जनकत्वनिषेधपरत्वात्। अस्माभिश्च तुच्छे जनकत्वस्यानुक्तत्वात्, तस्मात् सद्विविक्तं साधनमिति सिद्धम्।

इत्यद्वैतसिद्धौ असतः साधकत्वाभावे बाधकम्।

तुम्हारे मतमें घटपटादिवृत्तिको घटपटाद्याकारत्वेन या घटपटाद्याकार वृत्तिमें चैतन्य-प्रतिविम्बितत्वेन स्वतः वैलक्षण्य है,=घटाकारवृत्तिका घटाकारत्वरूपही—वैलक्षण्य है, पटाकार वृत्तिका पटाकारत्वरूपही वैलक्षण्य है, मेरे मतमें तो घटपटादिज्ञानको घटपटीयस्वभावस्वरूप या घटपटादिव्यवहारजननशक्तत्वेन=घटपटादिव्यवहारजननशक्तत्वरूप स्वतः ही वैलक्षण्य है, इति न च वाच्यम्; क्यों ? विषयकोही आकारसमर्पकत्व होनेसे, और स्वभाव तथा व्यवहार इन दोनोंका परिचायकत्व होनेसे; विषयनिरपेक्षत्वेन व्यावर्त्तकताको कहने लिए अशक्य होनेसे। विशेषणत्व तथा उपाधित्वका संभव होनेपर उपलक्षणत्व नहीं होता है, यह कहा गया है, 'कैसे असत्से सत् होगा' इस श्रुतिसे (असत्से कार्य नहीं होता है न देखनेसे) इस सूत्रसे और शशविषाणादिसे सत्कार्यकी उत्पत्तिके न देखनेसे, इस भाष्यसे विरोध है =आप असत्से उत्पत्ति मानते हैं अतः विरोध है, नच=विरोध नहीं है; क्यों ? उन श्रुत्यादिको तुच्छमें जन-कत्वके निषेधपर होनेपर=श्रुत्यादिक तुच्छमें जनकत्वका निषेध करते हैं, हमसेभी तुच्छमें जनकत्वके अनुक्त होनेसे=तुच्छमें जनकत्व हमभी नहीं मानते हैं। ततः परमार्थसत्प्रतियोगिक भेदवत् साधन है यह सिद्ध हुआ।

इति सरलायामसतः साधकत्वाभावे बाधकम्।

अथ दृक्दृश्यसम्बन्धभङ्गः।

ननु—मिथ्यात्वानुमानमप्रयोजकम्; सत्यत्वेऽपि दृश्यत्वोपपत्तेरितिचेन्न; दृक्दृश्य-सम्बन्धानुपपत्तेः। नहि ज्ञानं ज्ञेयासम्बद्धमेव प्रकाशकम्, अतिप्रसङ्गात्। नापि

सम्बद्धम्, आत्मस्वरूपस्य तद्गुणस्य वा ज्ञानस्य ज्ञेयेन संयोगसमवाययोरभावात्, अन्यस्य चानाध्यासिकस्य सम्बन्धस्याभावात्। नच विषयविषयिभावः सः, तस्य विषयित्व-विषयत्वरूपस्य एकैकमात्रनिष्ठत्वेन, द्विनिष्ठसम्बन्धात्मकत्वासंभवात् दुर्निरूपत्वाच।

अथ सरलायां दृकूदृश्यसम्बन्धभङ्गः।

शङ्कते नन्विति। प्रपञ्चो मिथ्या, दृश्यत्वात् शुक्तिरूप्यवत्, यह मिथ्यात्वका साधक अनुमान अप्रयोजकम्=मिथ्यात्वका साधक नहीं है, क्यों? पक्षमें सत्यत्व होनेपरभी दृश्यत्वकी उपपत्ति होनेसे=दृश्यत्व मिथ्यात्वका व्याप्य नहीं है; इति चेन्न; दृक्=ज्ञान दृश्य=विषय इन दोनोंके सम्बन्धकी अनुपपत्ति होनेसे=पक्षमें यदि सत्यत्व मानोंगे तो पक्षका ज्ञान नहीं होगा, और ज्ञानतो उभयसम्मत है अतः पक्षमें मिथ्यात्वही मानना चाहिए। ज्ञान ज्ञेयके साथ असम्बद्ध हुआही ज्ञेयका प्रकाशक नहीं है क्यों? अतिप्रसङ्ग होनेसे=यदि ज्ञान असम्बद्ध हुआही ज्ञेयका प्रकाश हो तब तो घटज्ञानसे पटकाभी प्रकाश हुआ चाहिए क्योंकि ज्ञानके सम्बन्धका अभाव उभयत्र समान है, ज्ञेयके साथ सम्बद्ध हुआभी ज्ञान ज्ञेयका प्रकाश नहीं है. क्यों? आत्मस्वरूप या आत्मगुणरूप जो ज्ञान है उस ज्ञानका ज्ञेयके साथ संयोग तथा समवायका अभाव होनेसे=आत्मस्वरूप ज्ञान जिस पक्षमें है. उस पक्षमें अतीतकालीन उत्पत्तिकालीन, अनागतकालीन ज्ञेयके साथ आत्मका संयोग न बनेगा, ज्ञान आत्माका गुण है, इस पक्षमें संयोग बनही नहीं सकता है, क्योंकि वादीलोक, संयोग परस्पर द्रव्योंकाही मानते हैं, और ज्ञान आत्माका गुण है यह बात नहीं मानी जा सकती है, क्योंकि ज्ञानका उपादान कारण मनकोही मानना उचित है, अन्यथा आत्माको उपादान माननेपर मनको निमित्त माननेमें गौरव होगा। और आत्मरूप ज्ञानका, अतीतादिमें तथा अनादिमें समवाय नहीं बन सकता है। और आध्यासिक सम्बन्धसे भिन्न अन्य सम्बन्धका अभाव है=संयोगादि बन नहीं सकते हैं और आध्यासिक सम्बन्धसे अन्यसम्बन्धकाभी अभाव है, परिशेषतः ज्ञानविषयका आध्यासिकही सम्बन्ध मानना होगा, और आध्यासिक सम्बन्धस्थलमें एक सम्बन्धिका मिथ्यात्व अनिवार्य्य है, वह भी विषयनिष्ठही संघटित होगा, फलतः पक्षमें मिथ्यात्व मानना आवश्यक है, अब आध्यासिक सम्बन्धकी परिशेषताके लिए सम्भाव्यमानसम्बन्धान्तरीय निषेध दिखलाते हैं, सः=वह सम्बन्ध विषयविषयिभाव है; नच=नहीं है, क्यों? विषयित्व और विषयत्वरूप उस सम्बन्धको विषयिविषयरूप एक एकमेंही रहनेसे द्विनिष्ठसम्बन्धात्मकत्वका असंभव होनेसे=विषयविषयिभाव, इस वाक्यका-विग्रहादिक इस रीतिसे करना चाहिए, विषयश्च विषयिच इति विषयविषयिणी तयोर्भावः विषयविषयिभावः, द्वन्द्वान्तमें श्रूयमाण होनेसे भावशब्दका दोनोंके साथमें अन्वय है, फलतः विषयभावः, विषयिभावः=ऐसे स्वरूप हुए प्रकृतिजन्य बोधमें प्रकारका नाम भाव है, तहाँ भावप्रकृतिभूत विषयशब्दसे विषयत्वप्रकारकविषयविशेष्यक बोध होता है, एवम् विषयिशब्दसे विषयित्वप्रकारक विषयिविशेष्यक बोध उत्पन्न होता है. तथाच प्रकृतिजन्य बोधमें क्रमशः विषयत्व तथा विषयित्व प्रकार हुए, और भावनामभी इन्हींका है, सो-

विषयत्वरूपभाव विषयमेंही रहता है और विषयित्वरूपभाव विषयिमेंही रहता है, उभयसाधारण कोई धर्म नहीं, अर्थात् जैसे घटत्व घटमात्रनिष्ठ हुआहुआ, घटपटका सम्बन्ध नहीं हो सकता है. तद्वत्; 'द्विनिष्ठ' इत्यादिका अर्थ यह कि सम्बन्धका जो द्विनिष्ठस्वभाव है, तदात्मकत्वका= द्विनिष्ठस्वभावात्मकत्वका उक्तसम्बन्धमें असंभव है, संयोगसम्बन्धमें द्विनिष्ठस्वभावता उभयवादि-सिद्ध है, । विषयत्वको दुर्निरूपत्व होनेसेभी यह कल्पना असङ्गत है। तथाहि विषयत्वका दुर्निरूपत्व दिखलाया जाता है—

तथाहि (१) विषयत्वं किं ज्ञानजन्यफलाधारत्वम् (२) किंवा ज्ञानजन्यहानादिबुद्धिगोचरत्वं (३) उत ज्ञानकर्मत्वम् (४) ज्ञानाकारार्पकत्वं वा (५) दृश्यमानत्वेसतितत्त्वं वा (६) ज्ञानजन्यव्यवहारयोग्यत्वं वा (७) सन्निकृष्टकरणेन यद्ज्ञानमुत्पाद्यते तत्त्वं वा (८) यस्यां संविदि योऽर्थोऽवभासते स तस्या विषयः तथाच संविदि भासमानत्वं वा (९) संबन्धान्तरमन्तराज्ञानावच्छेदकत्वं वा । आद्ये फलं न तावत् ज्ञातता, अनङ्गीकारात्; अतीतादौ अभावाच्च। नापि हानादिः गगनादौ तदभावात्, कलधौतमलादेरपि तद्-ज्ञानविषयत्वप्रसङ्गाच्च। नाप्यभिज्ञाभिलपने; तयोर्ज्ञेयाद्वृत्तित्वात्, नच विषयविषयिभावेन ते तत्र स्त इति-वाच्यम्; तस्यैव विचार्यमाणत्वात् अतएव न द्वितीयोऽपि । न तृतीयः ईश्वरज्ञानस्यातीतादिज्ञानस्य च कर्मकारकाजन्यत्वेन निर्विषयत्वप्रसङ्गात् । न चतुर्थः ज्ञान-तदाकारयोरभेदेन सर्वेषां ज्ञानहेतूनां विषयत्वापातात्, अनुमित्यादिविषये तदभावाच्च।

क्या ज्ञानजन्य जो फल तादृशफलाधारत्वरूप विषयत्व है, किं वा=या ज्ञानसे जन्य जो हानोपादानादिकी बुद्धियाँ तादृशबुद्धि–गोचरत्वरूप विषयत्व है, उत=अथवा ज्ञानके प्रति कर्मकारकत्वरूप विषयत्व है. या ज्ञानाकारका अर्पकत्वरूप है, अथवा दृश्यमान होकर ज्ञानाकारअर्पकत्व है, अथवा ज्ञानसे जन्य जो व्यवहार तादृशव्यवहारयोग्यत्वरूप विषयत्व है या जिसके सन्निकर्षसे जो ज्ञान उत्पन्न होता है वह उस ज्ञानका विषय है तन्निष्ठतादृश-ज्ञानविषयत्वरूप विषयत्व है, या जिस संवित्में जो अर्थ भासित होता है वह उस संवित्का विषय है. फलतः संवित्में भासमानत्वरूप विषयत्व है या अन्य सम्बन्धके विना ज्ञानावच्छेद-कत्वरूप विषयत्व है, आद्यपक्ष अङ्गीकार करनेपर प्राकट्यापरपर्याय ज्ञाततारूप फल नहीं लिया जा सकता है. क्यों ? तुमको भी अनङ्गीकार होनेसे और अतीतादिमें अभाव होनेसे भी। तैसे हानोपादानादिरूप भी फल नहीं हो सकता है क्यों ? गगनकालादिमें हानादिरूप फलका अभाव होनेसे, और रजतमलादिको भी रजतज्ञानके विषयत्वका प्रसङ्ग होनेसेभी=रजतज्ञानसे रजतके आदानादि होते हैं और आदानादिके साथ ही रजतवृत्ति मलादिके भीआदानादि होते हैं तथा च वे भी रजतज्ञानके विषय हो जायँगे । अभिज्ञा=प्रत्यभिज्ञा अभिलपन=शब्दप्रयोग ये भी फल नहीं हो सकते हैं क्यों? इन दोनोंको ज्ञेयमें अवृत्ति होनेसे;-ये दोनों ज्ञाताके धर्म हैं ज्ञेयके नहीं। विषयविषयिभाव सम्बन्धसे ते=अभिज्ञा और अभिलपन ये दोनों तत्र= ज्ञेयमें स्तः=हैं इति न च वाच्यम्; क्यों ? विषयविषयिभावकोही विचार्यमाण होनेसे; अत एव=

विचार्यमाण होनेसेही विषयत्वरूप गोचरत्वसे द्वितीय पक्षभी समीचीन नहीं। तृतीय पक्ष भी ठीक नहीं है, क्यों ? ईश्वरीयज्ञानको और अतीतादिविषयकज्ञानको कर्मकारजन्यत्वप्रयुक्त निर्विषयत्वका प्रसङ्ग होनेसे; चौथा पक्षभी सम्यक् नहीं, क्यों ? ज्ञान और आकार इन दोनों पदार्थोंको एक होनेसे सर्वज्ञानके हेतुओंको विषयत्वका आपात होनेसे। और अनुमित्यादि-विषयमें इस लक्षणके अभावसेभी यह लक्षण असङ्गत है।

न पञ्चमः दृश्यमानत्वस्य विषयत्वघटितत्वेनात्माश्रयात्, न षष्ठः योग्यतायां योग्यतान्तराभावात्। न च—योग्यता योग्यतां विनैव योग्या, यथा दृश्यत्वं दृश्यत्वान्तरं विनैव दृश्यमिति-वाच्यम्; अवच्छेदकरूपापरिचये योग्यताया एव ग्रहीतुमशक्यत्वात्। नच ज्ञानविषयत्वं तदवच्छेदकम्; आत्माश्रयात्। न सप्तमः; नित्येश्वरज्ञानस्य निर्विषय-त्वप्रसङ्गात्। नाष्टमः; संविदीति न तावदधिकरणसप्तमी; ज्ञानस्य ज्ञेयानधिकरणत्वात्। नापि विषयसप्तमी; तस्यैव निरूप्यमाणत्वात्; संविदो विषयत्वं संवेद्यस्य च विषयित्वमिति वैपरीत्यापाताच्च। नापि सति सप्तमी; भासमानत्वस्य विषयताघटितत्वेनात्माश्रयात्। नापि नवमः मत्समवेतं रूपज्ञानमित्यत्र रूपज्ञानसमवायस्य सम्बन्धान्तरं विनैव रूपज्ञाना-वच्छेदकस्य इदंरूपमिति ज्ञानेऽपि विषयत्वापातात्।

पञ्चमपक्षभी ठीक नहीं, दृश्यमानत्वको विषयत्वसे घटित होनेसे आत्माश्रय है। छठा पक्ष भी नहीं बन सकता है क्यों ? योग्यतामें अन्य योग्यताका अभाव होनेसे=योग्यताघटित लक्षण करनेमें योग्यतामेंही अव्याप्ति है, क्योंकि अनवस्थाके भयसे एक योग्यतामें दूसरी योग्यता नहीं मानी जाती है, योग्यता योग्यताके विनाही योग्य है=दूसरे पदार्थ तो योग्यताके अधिकरण होनेसे योग्य होते हैं, परन्तु योग्यता योग्यताका अनधिकरण होकेही योग्य है, जैसे दृश्यत्व अन्य दृश्यत्वके विनाही दृश्य होता है=दृश्यत्वको दृश्य बनानेके लिए दृश्यत्वके ऊपर दृश्यत्वान्तर नहीं माना जाता है, इति न च वाच्यम्; क्यों ? योग्यताका अवच्छेदक जो रूप है उस रूपके परिचय विना योग्यताकोही ग्रहण करनेके लिए अशक्य होनेसे। ज्ञान-विषयत्व योग्यताअवच्छेदक है; नच=नहीं है क्यों ? आत्माश्रय होनेसे। सप्तम पक्षभी ठीक नहीं है, नित्य जो ईश्वरीयज्ञान उसको निर्विषयत्वका प्रसङ्ग होनेसे=ईश्वरका ज्ञान विषयके सन्नि-कर्षसे उत्पन्न नहीं होता है। अष्टमपक्षभी निर्दोष नहीं, यहां संविद्प्रातिपदिकोत्तर सप्तमी प्रथम अधिकरण सप्तमी नहीं हो सकती है क्यों ? ज्ञानको ज्ञेयका अनधिकरण होनेसे=अधिकरण सप्तमीसे ऐसी प्रतीति होती है कि यत्संविद्रूपअधिकरणमें रहके जो भासमान होताहो वह उस संवित्का विषय है, सो ऐसा अर्थ वाधित है, और उक्तसप्तमी विषयसप्तमीभी नहीं, क्यों ? तस्यैव=विषयत्वकोही निरूप्यमाण होनेसे=विषयसप्तमी होनेसे यह अर्थ होगा कि जिस संवित्में विषयत्वेन जो अर्थ भासमान होता है वह उस संवित्का विषय होता है। और सप्तम्यर्थविषयत्वका प्रकृत्यर्थसंवित्के साथ अन्वय होनेसे संवित्में विषयत्वका आपात है,

और संवेद्यमें विषयित्वका=विषयविषयिभावको अव्यवस्थित होनेसे संवित्ही विषय हो जायगा और घटादि विषयि हो जायँगे। सति सप्तमीभी नहीं बन सकती है, क्योंकि भासमानत्वको विषयतासे घटित होनेसे आत्माश्रय है। नवम पक्षभी समीचीन नहीं क्यों? 'मत्समवेतं रूपज्ञानं'=मदनुयोगिकसमवायवत् रूप ज्ञान है, यहाँपर सम्बन्धान्तरके विना रूपज्ञानावच्छेदक जो रूपज्ञानप्रतियोगिक समवाय सम्बन्ध है उस समवायसम्बन्धको 'इदं रूपम्' इस ज्ञानमेंभी विषयत्वका आपात होनेसे=सम्बन्धान्तरके विना उक्तसमवायको ज्ञानावच्छेदकत्व है ही, क्योंकि रूपज्ञान और समवायके बीचमें तो कोई सम्बन्ध नहीं माना जाता है अनवस्थाप्रसङ्गसे।

ननु-ज्ञानविषय इत्यभियुक्त प्रयोग एव ज्ञानविषययोः सम्बन्धः; यथा अभियुक्तस्य मन्त्र इति प्रयोगविषयत्वमेव मन्त्रलक्षणम्, नचान्योन्याश्रयः। पूर्वपूर्वप्रयोगमपेक्ष्योत्तरोत्तरप्रयोगात् इति चेन्न, एतावता हि ज्ञेयत्वमात्रम् सामान्यतः स्यात् न त्वेतद्ज्ञानविषयत्वम्, न चास्मिन् सादौ पूर्वप्रयोगमपेक्ष्य उत्तरोत्तरप्रयोगो वक्तुं शक्यते, तस्यानादिमात्रविश्रान्तत्वात्। किञ्च प्रयोगोऽपि स्वविषये सम्बन्ध इत्यात्माश्रयोऽपि।

(ज्ञानविषयः) इत्याकारक जो अभियुक्तका प्रयोग है वही ज्ञान तथा विषय इन दोनोंका सम्बन्ध है, जैसे अभियुक्तका मन्त्र इत्याकारक जो प्रयोग है, तादृशप्रयोगविषयत्व ही मन्त्रका लक्षण है, अन्योन्याश्रय है-ज्ञानविषयत्व हो तो प्रयोग बने, और प्रयोग होनेपर ज्ञानविषयत्व होता है, अतः अन्योन्याश्रयहै, न च=नहीं है, क्यों? पूर्व पूर्व प्रयोगकी अपेक्षाकर उत्तर उत्तर प्रयोगको होनेसे, इति चेन्न; क्योंकि, एतावता सामान्यतः ज्ञेयत्वमात्र हो सकता है, परन्तु एतद्ज्ञानविषयत्व नहीं और आदि विषयमें पूर्व पूर्व प्रयोग की अपेक्षा उत्तरोत्तर प्रयोग कहनेके लिए शक्य नहीं है, तस्य=पूर्व प्रयोगको अनादिमात्रमें विश्रान्त होनेसे, किञ्च प्रयोगभी स्वविषयसे सम्बन्ध है, तथाच आत्माश्रय है.

ननु-यद् ज्ञानं यदभिलपनरूपव्यवहारकारणं स तस्य विषयः करणपाटवाद्यभावेन व्यवहारानुदयेऽपि सहकारिविरहप्रयुक्तकार्याभावत्वरूपं कारणत्वमस्त्येव, नच निर्विकल्पविषये अव्याप्तिः तस्यानङ्गीकारात्, नच यत्तद्भ्यामननुगमो दोषः कस्य को विषय इति अननुगतस्यैव प्रश्नविषयत्वेन तस्यादोषत्वात् नच घटज्ञानानन्तरं प्रमादाद्यत्र पट इति व्यवहारस्तत्र घटज्ञानस्य पटाभिलपनरूपव्यवहारजनकत्वेन पटविषयत्वापत्तिः; समानविषयाभिलापं प्रत्येव ज्ञानस्य जनकतया भिन्नविषयतया तत्राजनकत्वादितिचेन्न; अभिलपनरूपव्यवहारजननयोग्यत्वं न प्रातिस्विकरूपेण निर्णेयम्, अवच्छेदकत्वस्य फलनिर्णेयत्वात्, प्रतिस्वं च फलादर्शनात्, अजनितफले प्रातिस्विकयोग्यतायां मानाभावात् किन्तु तत्र तत्रानुगततत्तद्वृत्तिविषयत्वेन। तथाच आत्माश्रयः। अतएव ज्ञानकर्मत्वं विषयत्वम्, कर्मत्वञ्च न कारकविशेषः येनातीतादौ तदभावो भवेत्, किन्तु क्रियाधीन-

व्यवहारयोग्यत्वरूपातिशयवत्त्वम् ; अन्यथा घटं करोतीत्यादावसिद्धं घटादि न जनकं सिद्धं च न कृतिकर्मेतिद्वितीयाविभक्तिरनर्थिका स्यादितिनिरस्तम् ।

शङ्कते नन्विति । जो ज्ञान यन्निष्ठ अभिलपनरूप व्यवहारका कारण हो वह उस ज्ञानका विषय है, करणपाटवादिरूप जो व्यवहारके कारण हैं उन कारणोंके न होनेसे व्यवहारका अनुदय होनेपरभी सहकारिविरहप्रयुक्त जो कार्याभाव तादृशकार्याभाववत्त्वरूप कारणत्व हैं ही, निर्विकल्पक ज्ञानके विषयमें अव्याप्ति है=निर्विकल्पक ज्ञानके विषयमें अभिलपनरूप व्यवहार नहीं होता है. अतः अव्याप्ति है; न च=नहीं है, क्यों ? तस्य=उस निर्विकल्पक ज्ञानका अनङ्गीकार होनेसे, तत् यत् इनदोनोंसे घटित होनेसे लक्षणमें अननुगम दोष है,–सर्व विषयोंका समावेश एकोक्तिमें नहीं होता है, अतः अननुगम है, न च=नहीं है, क्यों किस-ज्ञानका कौन विषय है, इति=इसरीतिसे अननुगतको ही प्रश्नका विषय होनेसे तस्य=अननुगमको अदोष होनेसे; घटविषयकज्ञानके पश्चात् जहाँ प्रमादसे 'पट' इत्याकारक अभिलपनरूपव्य-वहार हुआ है, वहां घटज्ञानको पटनिष्ठअभिलपनरूपव्यवहारजनकत्व होनेसे पटविषयत्वकी आपत्ति है, नच=नहीं है, क्यों ? स्वसमानविषयक अभिलापके प्रति ही ज्ञानको जनकत्व होनेसे, पटीयव्यवहारको घटीयज्ञानसे विभिन्नविषयत्वसे तत्र=पटमें अजनकत्व होनेसे, इतिचेन्न, ऐसा यदि कहोतो नहीं कहना, क्योंकि अभिलपनरूपव्यवहारजननयोग्यत्वं प्रातिस्विकरू-पेण=तत्तद्व्यक्तिनिष्ठ असाधारणधर्मसे निर्णय नहीं है, अवच्छेदकत्वको फलसे निर्णय होनेसे तत्तद्व्यक्तिनिष्ठफलका अदर्शन है, फलके न उत्पादित होनेपर, प्रतिव्यक्तिनिष्ठ योग्यतामें प्रमाणका अभाव है, किन्तु तत्रतत्र=घटपटादिव्यवहारमें अनुगत तत्तद्वृत्तिविषयत्वेन= घटपटादिविषयकज्ञानत्वेन कारणत्व है, तथाच आत्माश्रय है, विषयसे घटित विषय है अतः आत्माश्रय है । अत एव=उक्तदोषको विद्यमान होनेसे ही, ज्ञानकर्मत्वरूप विषयत्व है, और कर्मत्वकारक विशेषरूप नहीं है, जिससे अतीतादिमें कारकत्वरूप कर्मत्वका अभाव हो, किन्तु कुलालादिकी क्रियाके अधीन जो व्यवहार तादृश व्यवहारयोग्यत्वरूप जो अतिशय तादृशअति-शयवत्त्वरूप कार्यत्व है, अन्यथा=यदि ऐसा कर्मत्व न हो तो 'घटंकरोति' इत्यादिमें असिद्ध जो घटादि हैं वे क्रियाके जनक नहीं है, और सिद्ध जो घटादि वे कृतिकर्म नहीं हैं, अतः द्वितीया विभक्ति निष्फल होगी यह निरस्त हुआ ।

व्यवहारयोग्यत्वं न व्यवहाररूपफलोपहितत्वम् । कुत्रचित् प्रतिरुद्धे व्यवहारे अव्याप्तेः । नापि तत्स्वरूपयोग्यत्वम् ; विषयत्वादन्यस्य तस्यासंभवादिति पूर्वोक्तदोषात् । नच–अवच्छेदकात् भिन्नं सहकारिविरहप्रयुक्तकार्याभाववत्वं तदिति वाच्यम्; अनु-गतावच्छेदकधर्मं विना तस्यापि ग्रहीतुमशक्यत्वात् । घटं करोतीत्यत्र सिद्धस्यैव कपा-लादेः कृतिकर्मता; व्यापार्यतया सिद्धस्यैव कृतिकर्मताङ्गीकारात् । अतएव निष्पा-दनावाचिधातुसमभिव्याहृतकर्मपदे शक्यावयवे निरूढलक्षणामाहुरसत्कार्यवादिनः ।

सत्कार्यवादिनान्तु पूर्वसतोऽप्यभिव्यञ्जनीयतया न कारकत्वकृतिकर्मत्वयोरनुपपत्तिः। एतेन–यस्यां संविदीत्यादिपूर्वोक्तेऽपि न दोषः संवदीति सतिसप्तमी भासमानत्वञ्च व्यवहारयोग्यत्वम्; तच्च सति कारणान्तरे व्यवहारावश्यंभावः इत्येतदपि निरस्तम्।

व्यवहारयोग्यत्व व्यवहाररूपफलोपहिततत्त्वरूप नहीं होसकता है, कहींपर व्यवहारके प्रतिरुद्ध होनेपर अव्याप्ति होनेसे, व्यवहारस्वरूपयोग्यत्वरूपभी कारणत्व नहीं बन सकता है, विषयत्वसे भिन्न स्वरूपयोग्यत्वका असम्भव होनेसे, इस रीतिसे पूर्वोक्तदोषसे। अवच्छेदकसे भिन्न सहकारिविरहप्रयुक्त जो कार्याभाव तादृशकार्याभाववत्त्व स्वरूपयोग्यत्व है इति न च वाच्यम्, क्यों? अनुगत अवच्छेदक धर्मकेविना उक्तस्वरूपयोग्यत्वकोभी ग्रहणकरनेके लिए अशक्य होनेसे। 'घटं करोति' यहाँपर सिद्ध रूप जो कपाल उसको ही कृतिकर्मता है, व्यापार्य=व्यापार-विषय होनेसे सिद्धको ही कृतिकर्मताका अङ्गीकार होनेसे, अत एव=क्रमादिसिद्ध पदार्थोंको व्यापार्यतया कृतिकर्मत्व अङ्गीकार्यसे ही, असत्कार्यवादितार्किक निष्पादनावाचि जो धातु उस धातुके समभिव्याहृत जो कर्मपद उस कर्मपदमें शक्यावयवनिरूपितनिरूढलक्षणा कहते हैं= निष्पादनावाचि जो धातु उस धातुके साथमें उच्चारित कर्मपदकी स्वशक्यार्थके अवयवोंमें लक्षणामानते हैं, इस लक्षणाका नाम है,– निरूढलक्षणा, जैसे 'घटं करोति' यहाँपर निष्पाद-नावाचि धातु हुआ 'डुकृञ्' करणे, उसकेसाथ उच्चारित कर्मवाचक पद घटपद है, घटपदका स्वशक्य हुआ कम्बुग्रीवादिमान् पदार्थ उसके अवयव कपाल हैं, उनकपालोंमें घटपदकी लक्षणा है; सत्कार्यवादियोंको तो पूर्वमें विद्यमान हुआभी अभिव्यञ्जनीयत्वेन कारकत्व तथा कृतिकर्मत्व इनदोनोंकी अनुपपत्ति नहीं है, एतेन=इस कथनसे, 'यस्यां संविदि' इत्यादि पूर्वोक्तमेंभी दोष नहीं है; 'संविदि' यह सति सप्तमी है और भासमानत्व व्यवहारयोग्यत्वरूप है, तच्च= वह व्यवहारयोग्यत्व तो कारणान्तरके होनेपर व्यवहारका अवश्यंभाव है, यहभी निरस्त हुआ= क्योंकि योग्यत्वका निर्वचन ठीक नहीं बना है।

ननु–यः सम्बन्धान्तरमनपेक्ष्य यज्ज्ञानावच्छेदको यज्ज्ञानानवच्छिन्नः स तस्य वि-षयः; यद्यप्यात्मा स्वविषयज्ञानसमवायवान्; तथापि न तस्य ज्ञानावच्छेदे समवायापेक्षा, ज्ञानासमवायिनोऽपि घटादेस्तदवच्छेदकत्वदर्शनात् यद्यपि च रूपज्ञानं मत्समवेतं ध्वस्त-मिष्टमित्यादौ रूपज्ञानाविषया अप्यात्मसमवायेच्छाध्वंसादयः संबन्धान्तरमनपेक्ष्य ज्ञा-नावच्छेदकाः; तथापि समवेतेष्यमाणप्रतियोग्यात्मकरूपज्ञानावच्छिन्नस्वभावा एव सम्ब-न्धेच्छादीनां सम्बन्धीष्यमाणाद्यवच्छिन्नस्वभावत्वात् इति नातिव्याप्तिः। ज्ञानविषयस्तु न ज्ञानावच्छिन्नस्वभावः; ज्ञानस्य घटाद्यवच्छिन्नस्वभावत्ववत् घटादेर्ज्ञानावच्छिन्न-स्वभावत्वादर्शनात्। यद्यपि स्वग्राहकज्ञानविषयीभूतं ज्ञानविषयिकानुमित्यनुव्यवसाया-दिकं ज्ञानं ज्ञानावच्छिन्नस्वभावम्; तथापि स्वयं यत् ज्ञानं प्रति विषयस्तदवच्छिन्नस्वभा-वम् नेति नाव्याप्तिरिति–चेन्न; मत्समवेतं रूपज्ञानमित्याकारकज्ञानस्यात्मसमवायविष-

यकत्वाभावप्रसङ्गात्; आत्मसमवायस्य सम्बन्धत्वेन सम्बन्धिभूतस्वज्ञानावच्छिन्नत्वात् घटस्य ज्ञानमितिप्रतीत्या घटावच्छिन्नस्वभावत्वं यथा ज्ञानस्य तथा ज्ञातो घट इति प्रतीत्या घटस्यापि ज्ञानावच्छिन्नस्वभावत्वेनासंभवाच्च ।

जो सम्बन्धान्तरकी अपेक्षा न कर जिस ज्ञानका अवच्छेदकहो और जिसज्ञानसे अनवच्छिन्न स्वभाववाला हो वह उस ज्ञानका विषय है, यद्यपि आत्मा स्वविषयक जो ज्ञान तादृशज्ञानप्रतियोगिकसमवायवाला है; तथापि तस्य=उस आत्माको ज्ञानके अवच्छेदमें समवायकी अपेक्षा नहीं है, क्यों ? ज्ञानके असमवायि जो घटादि हैं उनमेंभी ज्ञानावच्छेदकत्वके देखनेसे= लक्षणमें कहा है कि सम्बन्धान्तरके विना जो जिस ज्ञानका अवच्छेदक हो, यहां ऐसी आशङ्का हुई कि यह लक्षण आत्मरूपविषयमें नहीं गया है, क्योंकि आत्मामें ज्ञान समवायसम्बन्धसे रहता है, अतः आत्माको ज्ञानकेप्रति समवायसम्बन्धसे ही अवच्छेदकत्व होगा, इस आशङ्काका समाधान कियाकि आत्मामें ज्ञानको समवायसम्बन्धसे रहने परभी आत्मवृत्त्युक्त अवच्छेदकता समवायसम्बन्धावच्छिन्न नहीं है, क्योंकि ज्ञानीयावच्छेदकता घटादिमेंभी है, परन्तु वहाँ समवायसम्बन्धसे ज्ञानके न रहनेसे वह अवच्छेदकता समवाय सम्बन्धसे अवच्छिन्न नहीं होसकती है, और यद्यपि रूपज्ञान मत्समवेत है, रूपज्ञान ध्वस्त है, रूपज्ञान इष्ट है इत्यादिमें रूपज्ञानके अविषयभी आत्मसमवाय इच्छा और ध्वंसादिक सम्बन्धान्तरकी अपेक्षा न कर ज्ञानके अवच्छेदक हैं=ज्ञान और आत्मसमवायादिके मध्यमें और कोई सम्बन्धान्तर नहीं मानाजाता है अतः सम्बन्धान्तरकी अपेक्षा न कर ज्ञानके अवच्छेदक हैं, तथापि समवेत और इष्यमाण तथा प्रतियोग्यात्मक जो रूपज्ञान तदवच्छिन्नस्वभाव ही हैं, क्यों ? सम्बन्ध तथा इच्छादिको सम्बन्धि तथा इष्यमाणादिसे अवच्छिन्नस्वभाववाला होनेसे अतः अतिव्याप्ति नहीं है । और ज्ञानका विषय ज्ञानसे अवच्छिन्न स्वभाववाला नहीं है, क्यों ? जैसे ज्ञानके घटाद्यवच्छिन्नस्वभावत्वका दर्शन होता है, तैसे घटादिके ज्ञानावच्छिन्न स्वभावत्वका अदर्शन होनेसे । यद्यपि–स्वग्राहक जो ज्ञान तादृश ज्ञानके विषयीभूत जो ज्ञानविषय अनुमिति तथा अनुव्यवसायादिरूपज्ञान वह ज्ञान ज्ञानावच्छिन्नस्वभाव है=जहाँ प्रथम व्यवसायात्मकज्ञान हुआ पश्चात् व्यवसायग्राहक अनुमितिरूप या अनुव्यवसायात्मक ज्ञान हुआ तदनन्तर व्यवसायग्राहक अनुव्यवसायविषयक या व्यवसायग्राहकअनुमितिविषयक तृतीयज्ञान हुआ, तहाँ तृतीयज्ञानका विषयीभूत जो द्वितीय ज्ञान है वह व्यवसायात्मकप्रथमज्ञानावच्छिन्नस्वभाव है यद्यपि;– क्योंकि विषयसे अवच्छिन्न ज्ञानका स्वभाव बतला चुके हैं, तथापि स्वयम्=द्वितीयज्ञान जिस ज्ञानके प्रति विषय है, तदवच्छिन्नस्वभाव नहीं है अतः अव्याप्ति नहीं है; इतिचेन्न, क्यों ? 'मत्समवेतं रूपज्ञानम्' इत्याकारक ज्ञानको आत्मसमवायविषयकत्वाभावके प्रसङ्गसे–आत्मसमवायका सम्बन्धत्व होनेसे सम्बन्धिभूत स्वज्ञानसे अवच्छिन्नत्व होनेसे 'घटस्य ज्ञानम्' इत्याकारक प्रतीतिसे जैसे घटावच्छिन्न स्वभावत्व घटज्ञानको है, तैसे 'ज्ञातोघटः' इस प्रतीतिसे घटकोभी ज्ञानावच्छिन्न स्वभावत्व होनेसे असम्भवभी है ।

अथ—यज्ज्ञानं यदीयस्वभावं स तस्य विषयः; मत्समवेतं रूपज्ञानमित्यत्र तु समवाय एव रूपज्ञानावच्छिन्नस्वभावो, न तु रूपज्ञानं तदवच्छिन्नस्वभावम्; इदञ्ज्ञानस्यैव विषयत्वमुक्तम् नतु इच्छादिसाधारणम् इति नाव्याप्तिरिति चेन्न; यदीयस्वभावमितितद्धितस्य यद्विषयकत्वार्थकत्वे आत्माश्रयात्, अर्थान्तरस्य निरूपयितुमशक्यत्वात् रूपज्ञानाभावाभावस्य रूपज्ञानरूपत्वेन रूपज्ञानस्यापि अभावीयतया तद्विषयत्वापत्तेः ननु—ज्ञानजनककरणसन्निकर्षाश्रयत्वं तद्विषयत्वम् न च रूपज्ञानकरणमनःसन्निकर्षाश्रयस्यात्मनस्तद्विषयत्वापत्तिः, करणपदेनासाधारणज्ञानकरणस्यैवविवक्षितत्वात् न चासाधारणज्ञानकरणचक्षुस्सन्निकर्षाश्रयस्य मनसोऽपि रूपज्ञानविषयत्वापत्तिः सन्निकर्षपदेनापि असाधारणज्ञानजनकसन्निकर्षस्यैवोक्तत्वात् इति चेन्न, चक्षुर्मनस्संयोगस्यापि चाक्षुषज्ञानासाधारणकारणत्वेन मनसोऽपि चाक्षुषज्ञानविषयत्वापत्तेः परोक्षविषये अव्याप्तेश्च। न च तत्र लिङ्गज्ञानं करणम्। तत्र च लिङ्गिनस्तद्व्याप्यत्वं सम्बन्धोऽस्तीति—वाच्यम्, लिङ्गस्यापि स्वज्ञानसम्बन्धित्वेनानुमितिविषयत्वापत्तेः।

जो ज्ञान यदीय स्वभावहो वह उस ज्ञानका विषय है, 'मत्समवेतं रूपज्ञानं' यहाँपर तो समवाय ही रूपज्ञानावच्छिन्न स्वभाव है, रूपज्ञान समवायावच्छिन्न स्वभाव नहीं, और यह ज्ञाननिष्ठ ही विषयत्व कहा है, इच्छादि साधारण नहीं अतः अव्याप्ति नहीं=इच्छादिविषयमें अव्याप्ति नहीं। इति चेन्न, क्यों? 'यदीय इस तद्धितको विषयत्वार्थकत्व होनेपर आत्माश्रय होनेसे, अर्थान्तरको निरूपण करनेके लिए अशक्य होनेसे, रूपज्ञानका जो अभाव तादृश अभावके अभावको रूपज्ञानरूपत्व होनेसे रूपज्ञानकोभी अभावीय होनेसे तद्विषयत्वापत्तेः= रूपज्ञानाभावविषयकी आपत्तिसे=रूपज्ञानाभावविषयक जो ज्ञान है वह ज्ञान जसे रूपज्ञानाभावीय है, अतः रूपज्ञानाभाव उसका विषय है, तैसे रूपज्ञान भी रूपज्ञानाभावीय है. अतः रूपज्ञानाभाव रूपज्ञानकाभी विषय हो जाना चाहिए। शङ्कते नन्विति ज्ञानजनक जो करण तादृशकरणसन्निकर्षका आश्रयत्व तद्विषयत्व है, रूपज्ञानका करण जो मन उस मनके सन्निकर्षका आश्रय जो आत्मा उस आत्माको रूपज्ञानके विषयत्वकी आपत्ति है नच=नहीं है, क्यों? करणपदसे असाधारण ज्ञानकरणको ही विवक्षित होनेसे रूपज्ञानका असाधारणकरण चक्षु है, उस चक्षुके सन्निकर्षका आश्रय जो मन उसकोभी रूपज्ञानके विषयत्वकी आपत्ति है, नच=नहीं है, क्यों? सन्निकर्षपदसेभी ज्ञानजनक असाधारण सन्निकर्षको ही उक्त होनेसे इतिचेन्न; चक्षु तथा मनके परस्पर संयोगकोभी चाक्षुषज्ञानके प्रति असाधारण कारणत्व होनेसे मनकोभी चाक्षुषज्ञानविषयत्वकी आपत्तिसे; परोक्षविषयमें अव्याप्तिसेभी= परोक्षविषय सन्निकर्षका आश्रय नहीं बन सकता है, अतः अव्याप्ति है, तत्र=परोक्ष विषयमें लिङ्गज्ञान करण है, तत्रच लिङ्गज्ञानमें तो लिङ्गिनः=साध्यका तद्व्याप्यत्व=स्वविषयलिङ्गव्यापकत्वरूप सम्बन्ध है 'स्वपदसे लिङ्गज्ञानलेना चाहिए तद्विषय हुआ लिङ्ग तादृशलिङ्गव्यापकत्व

साथमें है ही' इतिनच वाच्यम्, क्यों ? लिङ्गकोभी स्वज्ञानसम्बन्धित्व होनेसे अनुमिति-विषयत्वकी आपत्तिसे।

न चानुमितौ तद्व्याप्ततारूपसम्बन्ध एव विषयतानियामकः व्यापकतावच्छेदकव्यापकसम्बन्धादीनामविषयत्वापत्तेः। न च ज्ञानकरणसन्निकर्षसमानाधिकरणो ज्ञानावच्छेदकसाक्षाद्व्याप्यधर्मो विषयत्वम्, इदं च नित्यपरोक्षसाधारणमिति वाच्यम्, वस्तुत्वादिकमेव विषयत्वमित्यापत्तेः ज्ञानवच्छेदकत्वस्य रूपज्ञानाविषये समवायेऽपि सत्त्वेनातिव्याप्तेश्च। न चज्ञानज्ञेययोः स्वरूपसम्बन्ध एव विषयत्वमिति—वाच्यम् असिद्धेः। तथाहि—स्वरूपसम्बन्ध इत्यर्थत्वे संयोगादावतिव्याप्तिः। न च तदुभयान्यत्वं विशेषणम्। हिमवद्विन्ध्ययोरपि स्वरूपसम्बन्धापत्तेः। सम्बन्धान्तरमन्तरेण विशिष्टप्रतीतिजननयोग्यत्वं स्वरूपसम्बन्ध इतिचेन्न, आत्मानं जानामीत्यत्राव्याप्तेः, तत्रसम्बन्धान्तरस्य समवायस्यैव सत्त्वात् अतीन्द्रियाभावादावव्याप्तेश्च, न हि तस्य विशिष्टप्रतीतिजननयोग्यत्वे मानमस्ति, अन्यथा तेन विशिष्टप्रत्ययजननापत्तेः।

अनुमितिमें तद्व्याप्ततारूप सम्बन्ध ही विषयताका नियामक है=अनुमितिमें स्वविषयलिङ्गव्यापकत्व जिसमें रहता है उसीका भान होता है, अन्यका नहीं नच=ऐसा नहीं होसकता है, क्यों ? व्यापकतावच्छेदक और व्यापक इन दोनोंके सम्बन्धके तथा व्यापकके पक्षादिके साथ सम्बन्धके अविषयत्वकी आपत्तिसे। ज्ञानका जो करण उस करणका जो सन्निकर्ष उस सन्निकर्षके समानाधिकरण=सन्निकर्षाधिकरणनिरूपितवृत्तित्वविशिष्ट ज्ञानावच्छेदकत्वका साक्षाद् व्याप्य धर्म विषयत्व है यह लक्षण नित्यपरोक्षसाधारण है, इति नच वाच्यम् क्यों ? वस्तुत्वादिक ही विषयत्व है, इस आपत्तिसे, रूपज्ञानके अविषय समवायमेंभी ज्ञानावच्छेदकत्वके रहनेसे अतिव्याप्ति होनेसेभी। ज्ञान तथा ज्ञेय इन दोनोंका स्वरूपसम्बन्ध ही विषयत्व है; इति नच वाच्यम्, क्यों ? असिद्धि होनेसे तथाहि— स्वरूपसम्बन्ध, इसका स्वरूप ही सम्बन्ध है, ऐसा अर्थ होनेपर संयोग और समवायमें अतिव्याप्ति है, क्योंकि संयोग समवायका स्वरूप ही सम्बन्ध है, संयोगसमवायएतदुभयभेदविशिष्टत्व विशेषण है,नच=ऐसा नहीं होसकता है, क्यों ? हिमवत् तथा विन्ध्य इन दोनोंकेभी परस्पर स्वरूपसम्बन्धकी आपत्तिसे=ये दोनों उक्त सम्बन्धद्वयसे भिन्नभी हैं और स्वरूपभी हैं। अन्यसम्बन्धके विना विशिष्टप्रतीति जननयोग्यत्व स्वरूपसम्बन्ध है, इतिचेन्न; क्यों ? 'आत्माको जानताहूँ' यहाँपर अव्याप्ति होनेसे, यहाँपर समवायरूप सम्बन्धान्तरका ही सत्त्व होनेसे अतीन्द्रिय अभावादिमें अव्याप्तिसेभी, तस्य=अतीन्द्रिय अभावादिको विशिष्टप्रतीतिजननयोग्यत्वमें प्रमाण नहीं है, अन्यथा तेन=अतीन्द्रिय—अभावादिसे विशिष्टप्रत्ययके जननकी आपत्ति है।

किंच विशिष्टप्रतीतिजननयोग्यत्वं धर्मो वा सम्बन्धः तादृशस्वरूपद्वयमेव वा आद्ये स्वरूपस्य सम्बन्धत्वव्याघातः, प्रतीतिघटितस्यापि अचाक्षुषादिज्ञानगोचरत्व-

प्रसङ्गश्च। न द्वितीयः अननुगमात्। किं चैवमभावभ्रमानुपपत्तिः तत्रापि विशिष्टप्रतीतिसंभवे स्वरूपसम्बन्धस्य सत्वात्। न च प्रमात्वघटितम् तल्लक्षणम् वास्तवसम्बन्धसत्त्वे प्रमात्वस्याप्यापाद्यत्वात्। अन्यथा तत्र तस्याप्रमात्वे सम्बन्धाभावः, तस्मिंश्च तस्य प्रमात्वमित्यन्योन्याश्रयात्। ननु–सम्बन्धान्तरमन्तरेण विशिष्टप्रतीतिजननयोग्यतावच्छेदकावच्छिन्नस्वरूपस्य सम्बन्धत्वं संयोगत्वावच्छिन्नस्य दण्डीत्यादौ सम्बन्धत्ववत् विशिष्टबुद्धिश्चावच्छेदिकाविषयिण्येवावच्छेद्यविषया, अतो न स्वरूपसम्बन्धगोचरविशिष्टबुद्धेश्चाक्षुषत्वविरोधः। न च तर्ह्यभावप्रमाभ्रमयोः स्वरूपद्वयमात्रविषयत्वाविशेषात् प्रमाभ्रमव्यवस्थानुपपत्तिरिति–वाच्यम्; घटाभाववति घटाभावज्ञानत्वेन तद्भिन्नज्ञानत्वेन च व्यवस्थोपपत्तेः।

किञ्च=और भी वक्तव्य है, विशिष्टप्रतीतिजननयोग्यत्व धर्म सम्बन्ध है या विशिष्टप्रतीतिजननयोग्यस्वरूप–द्वयरूपही है, आद्ये=आद्यपक्षका अङ्गीकार होनेपर स्वरूपके सम्बन्धत्वका व्याघात है, क्योंकि आपने धर्मको सम्बन्ध माना है, और प्रतीतिसे घटित इसके चाक्षुपादिज्ञानके अगोचरत्वका प्रसङ्ग है, द्वितीय पक्षभी ठीक नहीं क्यों ? अननुगम होनेसे–स्वरूपोंको पृथक् पृथक् होनेसे अननुगम है। किञ्च इस रीतिसे अभावके भ्रमकी अनुपपत्ति है,=जिसपदार्थका अधिकरणके साथ स्वरूप सम्बन्ध है उसके भ्रमकी अनुपपत्ति है, तत्रापि उक्त स्थलमें भी विशिष्टप्रतीतिका संभव होनेपर स्वरूपसम्बन्धका सत्त्व होनेसे; प्रमात्वसे घटित उक्त लक्षण है नच=नहीं हो सकता है क्यों ? वस्तुतः सम्बन्ध होनेपर प्रमात्वकोभी आपाद्य होनेसे अन्यथा तत्र=उक्त स्थलमें ज्ञानका अप्रमात्व होनेपर सम्बन्धाभाव सिद्ध होगा, तस्मिंश्च=और उस सम्बन्धाभावके होनेपर तस्य=उक्त ज्ञानका अप्रमात्व सिद्ध होगा, अतः अन्योन्याश्रय है। शङ्कते नन्विति। सम्बन्धान्तरके विना विशिष्टप्रतीतिजननकी जो योग्यता तादृशयोग्यतावच्छेदकावच्छिन्नस्वरूपको सम्बन्धत्व है, जैसे 'दण्डी' इत्यादिमें संयोगत्वावच्छिन्नको सम्बन्धत्व है, और विशिष्ट बुद्धि तो अवच्छेदकको न विषय करती हुई ही अवच्छेद्यविषया होती है. अतः स्वरूपसम्बन्धगोचर जो विशिष्ट बुद्धि है, उसके चाक्षुपत्वका विरोध नहीं=विशिष्ट प्रतीति चाक्षुप होसकती है अवच्छेदकीभूतस्वरूपसम्बन्धघटक प्रतीतिको न विषयकर अवच्छेद्यभूतस्वरूप सम्बन्धको विषय कर सकती है तर्हि=तब अभावप्रमा और अभावभ्रम इन दोनोंको स्वरूपद्वयमात्रके विषयत्वका अविशेष होनेसे, यह ज्ञान प्रमा है यह ज्ञान भ्रम है इस व्यवस्थाकी अनुपपत्ति है इति नच वाच्यम्; क्यों ? घटाभाववत्में घटाभावज्ञानत्वेन और उक्तज्ञानभिन्नघटाभावज्ञानत्वेन व्यवस्थाकी उपपत्ति होनेसे=घटाभाववत् भूतलमें घटाभावज्ञानका नाम प्रमा है=घटाभावप्रमा है और इस ज्ञानसे भिन्न जो घटाभावज्ञान है वह भ्रम है=घटाभावभ्रम है।

ननु अतिरिक्ताविषयत्वे तस्यैवानुपपत्तिः न हि भवद्रीत्या तस्योभयात्मकत्वेन तदुभयसत्वेन व्यधिकरणप्रकारत्वरूप भ्रमत्वस्यैवाभावे भ्रमतदन्यत्वाभ्यां व्यवस्था संभव-

तीति—चेन्न; घटाभावाभावस्य घटत्वेन तद्वति घटाभावज्ञानस्य व्यधिकरणप्रकारकत्वसंभवात्। किञ्च भ्रमस्य वस्तुगत्या यत् घटवत् स विषयः न तु प्रमाया इत्यतिरिक्तविषयत्वमस्त्येव; न चातीन्द्रियाभावे अव्याप्तिः अत्यन्ताभावे प्रतियोगिदेशान्यदेशत्वं, प्रागभावादौ प्रतियोगिदेशत्वे सति प्रतियोगिकालान्यकालत्वम् अन्योन्याभावे प्रतियोगितावच्छेदकदेशान्यदेशत्वम्, विशिष्टप्रत्ययजननयोग्यतावच्छेदकम् तदवच्छिन्नं च विशिष्टप्रतीत्यजनकेऽप्यतीन्द्रियाभावे सुलभम्। नह्यरण्यस्थदण्डो न घटजननयोग्यतावच्छेदकावच्छिन्न इति चेन्मैवम्।

ननु अतिरिक्त पदार्थको अविषय होनेसे तस्यैव=उक्त भेदकीही अनुपपत्ति है, आपकी रीतिसे तस्य=घटाभाववत्को उभयात्मकत्वेन=उभयात्मकस्वरूपसम्बन्धसे घटित होनेसे उभयके सत्त्वसे व्यधिकरणप्रकारत्वरूप भ्रमत्वकाही अभाव होनेपर भ्रमत्व और तदन्यत्वसे व्यवस्था संभवित नहीं है, इति चेन्न; क्यों ? घटाभावाभावको घटस्वरूप होनेसे तद्वति=घटवत्में घटाभावज्ञानको व्यधिकरणप्रकारकत्वका संभव होनेसे। किञ्च भ्रमज्ञानका वस्तुगतिसे जो घटवत् है वह विषय है, प्रमाका नहीं इस रीतिसे अतिरिक्त विषय है ही, अतीन्द्रिय अभावमें इस लक्षणकी अव्याप्ति है नच=नहीं है क्योंकि अत्यन्ताभावमें प्रतियोगिका जो देश उससे भिन्नदेशकत्व विशिष्टप्रत्ययजननयोग्यताका अवच्छेदक है, प्रागभावादौ=प्रागभावमें और प्रध्वंसाभावमें प्रतियोगीके देशमें रहकर प्रतियोगीका अधिकरणीभूत जो काल तादृश कालसे भिन्नकालकत्व विशिष्टप्रत्ययजननयोग्यताका अवच्छेदक है, और अन्योन्याभावमें प्रतियोगितावच्छेदकका अधिकरण जो देश तादृश देशसे भिन्नदेशकत्व विशिष्टप्रत्ययजननयोग्यताका अवच्छेदक है और तदवच्छिन्नत्वतो विशिष्टप्रत्ययके अजनक अतीन्द्रियाभावमें भी सुलभ है अरण्यस्थ दण्ड घटजननयोग्यतावच्छेदकावच्छिन्न नहीं है यह बात नहीं है इति चेन्मैवम्, क्यों ?

नित्यस्यातीन्द्रियस्याकाशात्यन्ताभावादेर्विशिष्टप्रतीतिजननयोग्यतावच्छेदकावच्छिन्नत्वे अवश्यं विशिष्टप्रत्ययजनकत्वप्रसङ्गात्। नित्यस्य स्वरूपयोग्यस्यसहकारिसमवधाननियमात्। किञ्च विशिष्टस्य प्रत्यय इत्यत्र स्वरूपसम्बन्धस्य षष्ठ्यर्थत्वे आत्माश्रयः, सम्बन्धमात्रस्य तदर्थत्वे, आत्मत्वादिविशिष्टात्मसम्बन्धिसमूहालम्बनविषये घटपटादावव्याप्तिः; तयोरपि विशिष्टसम्बन्ध्यविशिष्टविषयज्ञानजनकत्वात्। ज्ञानस्याभावः ज्ञातोऽभाव इतिप्रतीत्योर्वैलक्षण्यं न स्यात् ज्ञानाभावयोरुभयोरेवोभयत्र स्वरूपसम्बन्धत्वे विपर्यक्तविशेषाभावात्। अतएव विशिष्टप्रतीतिजननयोग्यत्वं ज्ञानज्ञेयादिस्थले अतिरिक्तमेव सम्बन्ध इति निरस्तम् अतीन्द्रिये नित्याभावेऽव्याप्तेः। न हि तत्र विशिष्टप्रतीतिजननयोग्यताफलोपधानापत्तेः प्रतीतिघटितस्य चाक्षुषादिप्रतीतौ अविषयत्वप्रसङ्गाच्च। तस्मात्सत्यत्वे सम्बन्धानुपपत्तेराध्यासिक एव दृग्दृश्ययोः सम्बन्ध इति।

इत्यद्वैतसिद्धौ प्रपञ्चसत्यत्वे दृग्दृश्यसम्बन्धभङ्गः॥

नित्य अतीन्द्रिय जो आकाशात्यन्ताभावादि उस आकाशात्यन्ताभावादिको विशिष्ट-प्रतीतिजननयोग्यतावच्छेदकावच्छिन्नत्व होनेपर अवश्यही विशिष्ट प्रत्ययके जनकत्वका प्रसङ्ग होनेसे नित्यस्वरूपयोग्यको सहकारिसमवधानका नियम होनेसे। किंच विशिष्टस्य प्रत्ययः। यहाँपर स्वरूपसम्वन्धको पष्ठ्यर्थत्व होनेपर आत्माश्रय है, और सम्वन्धमात्रको पष्ठ्यर्थत्व होनेपर आत्मत्वादिविशिष्ट जो आत्मा तादृशात्मसम्वन्धि जो समूहालम्बनात्मकज्ञान, उस ज्ञानके विषय घटपटादिमें अतिव्याप्ति है, क्यों ? तयोरपि=घटपटादिकोभी विशिष्टसम्वन्धि आत्मसमवेतअवशिष्टविषय=स्वविषयकसमूहालम्बनात्मकज्ञानजनकत्व होनेसे=समूहालम्बन ज्ञानके विषय घटपटादिका परस्पर वैशिष्ट्य नहीं है, अतः इनका स्वरूप सम्वन्ध नहीं बन सकता है। (ज्ञानस्याभावः) (ज्ञातोऽभावः) इन प्रतीतिओंका वैलक्षण्य नहीं होगा, क्यों ? ज्ञान तथा अभाव इन दोनोंका दोनों स्थलमें स्वरूपसम्वन्ध होनेसे विषयकृत विशेषके अभावसे, अतएव= अतीन्द्रिय नित्याभावमें अव्याप्ति होनेसेही विशिष्टप्रतीतिजननयोग्यत्व ज्ञानज्ञेयादि स्थलमें अतिरिक्तही सम्बन्ध है, यह निरस्त हुआ, तत्र=नित्यातीन्द्रिय अभावमें विशिष्टप्रतीतिजनन-योग्यता नहीं है, फलोपधानताकी आपत्तिसे, और प्रतीतिघटितके चाक्षुपादिप्रतीतिमें अविषय-त्वके प्रसङ्गसेभी ततः प्रपञ्चके सत्यत्व होनेपर ज्ञानके साथ सम्वन्धकी अनुपपत्तिसे दृक् तथा दृश्यका आध्यासिकही सम्वन्ध है।

इति सरलायां प्रपञ्चसत्यत्वे दृग्दृश्य सम्वन्धभङ्गः।

अथानुकूलतर्कनिरूपणम् ।

स्यादेतत् । सर्वस्यापि दृश्यस्य ब्रह्मात्मकदृगध्यस्तत्वेऽपि कस्यचित् कदाचित् किञ्चित् प्रति प्रकाशाय त्वयापितत्तत्सन्निकृष्टेन्द्रियजन्यतत्तदाकारवृत्तिद्वारक एवा-नावृतदृक्सम्बन्धः स्वीकृतः । तथा च सत्यत्वेऽपि तद्द्वारक एव सम्बन्धोऽस्तु । किमाध्यासिकसम्बन्धदुर्व्यसनेन । न हि भवतां विज्ञानवादिनामिव तत्तज्ज्ञाने तत्त-दर्थाध्यासस्वीकारः, शुद्धदृशः स्वतो भेदाभावात् उपाधिविशिष्टाया भेदेऽपि घटादि-वत्तस्या अपि मिथ्यात्वेनाधिष्ठानत्वायोगादिति चेन्न।

अथ सरलायामनुकूलतर्कनिरूपणम् ।

रहो यह माया मायास्थिति-अधीनस्थितिकल्पनिखिलदृश्यको ब्रह्मात्मक ज्ञानमें अध्यस्त होनेपर भी घटादिरूप किसीही पदार्थका किसीही कालमें किसीही पुरुपके प्रति प्रकाशके लिए त्वयापि=दृश्यमिथ्यावादी तुमसे भी तत्तत्सन्निकृष्ट=घटपटादिसे सम्बद्ध जो इन्द्रिय तादृश इन्द्रियजन्य जो तत्तदाकार=घटपटाद्याकार वृत्ति तादृशवृत्तिद्वारकही अना-वृत दृक्के साथ दृश्यका सम्बन्ध स्वीकृत है; तथा च=फलतः सत्यत्वेऽपि=उक्त दृश्यका सत्यत्व होनेपरभी तद्वारक एव=उक्त वृत्तिद्वारकही दृश्यका दृक्के साथ सम्बन्ध रहो, दृक्के साथ दृश्यके आध्यासिक सम्बन्धके दुराग्रहसे क्या ? आपके मतमें विज्ञानवादियोंकी तरह घटपटा-दिविपयक ज्ञानमें घटपटादिरूप अर्थके अध्यासका स्वीकार नहीं है। क्यों ? शुद्ध चित्का स्वरू-

पसे भेद न होनेसे और उपाधिविशिष्ट चित्का भेद होनेपरभी घटादिकी नाई तस्या अपि=विशिष्ट चित्केभी मिथ्यात्वसे अधिष्ठानत्वका अयोग होनेसे=जिसमें अधिष्ठानत्वका सम्भव है उसमें भेद नहीं अर्थात् वहुत्व नहीं और जिसमें वहुत्व है उसका मिथ्यात्व होनेसे अधिष्ठानत्व नहीं वन सकता है, तथाच तत्तज्ज्ञानमें तत्तदर्थका अध्यास नहीं वन सकताहै, इति चेन्न=ऐसा यदि कहो तो नहीं कहना क्यों?

प्रकाशस्य साक्षात् स्वसंसृष्टप्रकाशकत्वनियमेन चैतन्यस्य परम्परासम्बन्धेन विषयप्रकाशकत्वायोगात्। न हि प्रदीपः परम्परासम्बद्धं प्रकाशयति। अतो विषयाधिष्ठानचैतन्यमनावृतमेव प्रकाशकम् आवरणभङ्गश्च वृत्त्या; अतो वृत्तेः पूर्वमाध्यासिकसम्बन्धे विद्यमानेऽपि दृश्या प्रतीतिरुपपन्ना। अतएव वृत्तिप्रतिविम्बितचैतन्यस्य घटप्रकाशकत्वे आध्यासिकसम्बन्धस्यातन्त्रतापातः। घटाभिव्यक्तचैतन्यस्य घटप्रकाशकत्वे आवश्यकेन वृत्तिप्रतिविम्बितचैतन्येनैव घटप्रकाशोपपत्तौ तदधिष्ठानचिदभिव्यक्तिकल्पनायोग इति निरस्तम्। परोक्षविलक्षणस्फुटतरव्यवहारार्थं विषयाधिष्ठानचैतन्याभिव्यक्तिकल्पनाया युक्तत्वात्।

प्रकाशस्य=ज्ञान तथा आलोकरूप प्रकाशको साक्षात् स्वके साथ सम्वद्धके प्रकाशकत्वका नियम होनेसे चैतन्यको परम्परासम्वन्धसे विषयके प्रकाशकत्वका अयोग होनेसे=आलोक तथा ज्ञान साक्षात् स्वसम्वन्धिका प्रकाश करते हैं, और ज्ञानके साथ विषयका आध्यासिक सम्वन्धसे अतिरिक्त और सम्वन्ध नहीं वन सकता है, तथाच आध्यासिक सम्वन्ध आवश्यक है, इसी अर्थको स्पष्ट करते हैं। नहीति। प्रदीप परम्परा सम्वन्धके सम्वन्धीका प्रकाश नहीं करता है, अतः विषयाधिष्ठान चैतन्य अनावृत हुआही प्रकाशक है, च=और आवरणका भङ्ग विषयाकार वृत्तिसे होता है। अतः वृत्तेः=विषयाकार वृत्तिसे आध्यासिक सम्वन्धके विद्यमान होनेपरभी दृश्यकी अप्रतीति उपपन्न हुई=अनावृत चैतन्यकोही विषयका प्रकाशक होनेसे उक्तस्थलमें दृश्यकी अप्रतीति उपपन्न हुई। अतएव=अनावृत अधिष्ठान चैतन्यको प्रकाशकत्व होनेसेही वृत्तिप्रतिविम्बित चैतन्यको घटप्रकाशकत्व होनेपर आध्यासिक सम्वन्धकी अतन्त्रताका आपात होगा=वृत्तिमें प्रतिविम्बित चैतन्यको विषयका प्रकाशकत्व माननेपर प्रकाशमें आध्यासिक सम्वन्धकी हेतुता न रहेगी, क्योंकि विषयका आध्यासिक सम्वन्ध अधिष्ठानके साथ माना जाता है। और उक्त वृत्तिप्रतिविम्बित चैतन्य तो विषयका अधिष्ठान नहीं है। घटाभिव्यक्त चैतन्यको घटप्रकाशकत्व होनेपर आवश्यक वृत्तिप्रतिविम्बित चैतन्यसेही घटके प्रकाशकी उपपत्ति होनेसे तदधिष्ठान=घटाधिष्ठान जो चित् उसके अभिव्यक्तिकी कल्पनाका अयोग है=उक्त स्थलमें वृत्तिप्रतिविम्बित चैतन्य तो मानना पड़ेगाही तथाच उसीसे घटका प्रकाश वन सकता है फिर अधिष्ठानभूत चित्की अभिव्यक्ति माननी अनावश्यक है, इति=यह कथन निरस्त हुआ, निरसनकेही हेतुको स्पष्ट करते हैं परोक्षेति। परोक्षसे विलक्षण जो स्फुटतर व्यवहार उस व्यवहारके लिए विषयका अधिष्ठान जो चैतन्य उस चैतन्यके अभि-

व्यक्तिकी कल्पनाको युक्त होनेसे=विषयाधिष्ठान चैतन्यकी अभिव्यक्ति विना 'भाति' इत्यादि-रूप स्फुटतर व्यवहार उपपन्न नहीं होगा, क्योंकि वृत्तिप्रतिविम्बित चैतन्य तो परोक्षस्थलमेंभी होता है, अर्थात् परोक्षविषयविषयक जो शरीरके भीतर अन्तःकरणका परिणामरूप वृत्ति होती है उसमेंभी चेतन प्रतिबिम्बित होता है। परन्तु तादृशवृत्तिविषयविषयक परोक्षविलक्षण स्फुटतर व्यवहार नहीं होता है, अतः ईदृश व्यवहारकी उपपत्तिके लिए विषयचैतन्यकीभी अपरोक्ष स्थलमें अभिव्यक्ति माननी चाहिए।

न च शुद्धचैतन्यस्य चरमसाक्षात्कारात्पूर्वं नाभिव्यक्तिः। अभिव्यक्तस्य च घटाद्यवच्छिन्नचैतन्यस्य न तदधिष्ठानत्वम्। आत्माश्रयादिति वाच्यम्। चरमसाक्षात्कारात्पूर्वमपि शुद्धचैतन्यस्याविद्यावशादधिष्ठानभूतस्य मूलाज्ञाननिवृत्तिलक्षणाभिव्यक्त्यभावेऽपि तदवस्थाविशेषादिनिवृत्तिलक्षणाभिव्यक्त्या विषयप्रकाशकत्वोपपत्तेः। न च घटप्रकाशिकाया दृशो मिथ्यात्वे नाधिष्ठानत्वम् सत्यत्वे दोपाजन्यत्वेन प्रमात्वात् सत्यं स्वविषयं प्रति नाधिष्ठानत्वम् इति उभयतः पाशारज्जुरिति वाच्यम्। यतो दोपाजन्यत्वम् न प्रमात्वप्रयोजकम् चैतन्यस्य सर्वत्र दोपाजन्यत्वात् किन्तुदोपाजन्यवृत्त्यवच्छिन्नत्वम्; प्रकृते च तदभावात् न विषयस्य सत्यत्वम्। अतो मिथ्याभूतविषयप्रत्यधिष्ठानत्वं सत्याया दृशो युक्तम्।

शङ्कते नचेति। वेदान्तविचारजन्य अन्तःकरणकी वृत्तिरूप चरम साक्षात्कारसे पूर्व शुद्ध चैतन्यकी अभिव्यक्ति नहीं है—और अभिव्यक्त जो घटादिसे अवच्छिन्न चैतन्य है उसे घटादिका अधिष्ठानत्व नहीं है। आत्माश्रय होनेसे=घटाभिव्यक्त चैतन्यको घटका अधिष्ठानत्व होनेपर अधिष्ठानघटकत्वेन घटकीभी घटके प्रति अधिष्ठानता होनेसे आत्माश्रय है,

इति नच वाच्यम्=ऐसा नहीं कहना चाहिए, क्यों? चरम साक्षात्कारसे पूर्वभी अविद्यावशतः अधिष्ठानभूत शुद्धचैतन्यनिष्ठमूलाज्ञानकी निवृत्तिरूप अभिव्यक्तिके न होनेपरभी अज्ञानकी जो अवस्थाविशेषादि उस अवस्थाविशेषादिकी निवृत्तिलक्षण जो—अभिव्यक्ति उस अभिव्यक्तिसे विषयप्रकाशकत्वकी उपपत्ति होनेसे=शुद्ध ब्रह्मके आच्छादक अज्ञानका नाम मूलाज्ञान है अर्थात् निरवच्छिन्नत्वेन शुद्धके आवरक अज्ञानको मूलाज्ञान कहते हैं, और तत्तत्पदार्थावच्छिन्नत्वेन शुद्धके आच्छादकाज्ञानका नाम अवस्थाज्ञान है। इसीको तूलाज्ञान, कार्याविद्या, एवं पल्लवाविद्याभी कहते हैं। तहाँ चरम साक्षात्कारसे पूर्व मूलाज्ञानकी निवृत्तिरूप अभिव्यक्ति नहीं होसकती है, परन्तु तूलाज्ञानकी निवृत्तिरूप अभिव्यक्ति शुद्धकी होसकती है, अतः शुद्धको विषयप्रकाशकत्व है। शङ्कते नचेति। घटप्रकाशक चैतन्यको मिथ्यात्व होनेपर अधिष्ठानत्व नहीं है, और उक्त चैतन्यको सत्यत्व होनेपर दोपाजन्यत्व प्रयुक्त प्रमात्वहोगा और प्रमात्व होनेपर सत्यरूप स्वविषयके प्रति अधिष्ठानत्व न होगा, अतः उभयतः पाशारज्जु है इति न च वाच्यम् क्यों? यतः दोपाजन्यत्व प्रमात्वका प्रयोजक नहीं है। चैतन्यको सर्वत्र दोपसे अजन्य होनेसे, किन्तु दोपाजन्य जो वृत्ति तादृशवृत्त्यव-

च्छिन्नत्व प्रमात्वका प्रयोजक है और प्रकृते=घटादिप्रकाशक चित्में तदभावात्=दोपाजन्यवृत्यवच्छिन्नत्वका अभाव होनेसे विपयका सत्यत्व नहीं है=घटादिरूप विपयको वाधित होनेसे तद्विपयक वृत्तिकोभी भ्रमत्व है । और भ्रमत्व होनेसे उक्त वृत्तिमें दोपजन्यत्व है नकि दोपाजन्यत्व, अतः मिथ्याभूत विपयके प्रति सत्यस्वरूप दृक्को अधिष्ठानत्व युक्त है ।

ननु तात्त्विकसम्बन्धासम्भवे आध्यासिकसम्बन्धकल्पनं स एव तु कुतः क्लृप्तसंयोगवाधे गुणगुणिनोः समवायवत् तदुभयवाधे तृतीयस्य संभवात्, न च तत्र मानाभावः समवायवदनुमाध्यक्षयोः सत्त्वात् । तथाहि—परस्परासंयुक्तासमवेतविशेपणविशेष्यकविशिष्टधीर्विशेपणविशेष्यसम्बन्धविपया, विशिष्टधीत्वात्, दण्डीति विशिष्टधीवत्, उक्ता जन्यप्रमा विशेपणविशेष्यसम्बन्धनिमित्तका, अवाधितजन्यविशिष्टधीत्वात्, सम्मतवत् । विमताधीः, अवाधितविशेपणविशेष्यसम्बन्धविपया, अवाधितविशिष्टधीत्वात्, दण्डीति विशिष्टधीवत् । गोमांश्चैत्र इत्यादेरपि पक्षकुक्षिनिपक्षेप एवेति न तत्र व्यभिचारशङ्का । तथा च संयोगसमवायातिरिक्तसम्बन्धसिद्धिरिति चेन्न । प्रथमे द्वितीये चार्थान्तरम् । आध्यासिकसम्बन्धस्यैव विपयत्वेन निमित्तत्वेन चोपपत्तेः । द्वितीये परोक्षधीपु व्यभिचारश्च ।

शङ्कते नन्विति । तात्त्विकसम्बन्धका असम्भव होनेपर—आध्यासिक सम्बन्धकी कल्पना है स एव तु कुतः=तात्त्विकसम्बन्धका उक्त स्थलमें असम्भव ही कहाँ है, जैसे द्रव्योंका परस्पर क्लृप्त जो संयोगसम्बन्ध है उसका वाध होनेपर गुणका गुणिकेसाथ समवाय माना जाता है तैसे तदुभयवाधे=संयोग तथा समवाय इन दोनोंका वाध होनेपर तृतीयसम्बन्धका सम्भव है. अर्थात् ज्ञानके साथ विपयका इन दोनोंसे अतिरिक्त तृतीय सम्बन्ध मानना चाहिए, तत्र=तृतीयसम्बन्धमें प्रमाणका अभाव है नच=नहीं, क्यों ? समवायकी तरह अनुमान तथा प्रत्यक्ष इन दोनोंका सत्त्व होनेसे=जैसे संयोगसे अतिरिक्त समवायकी सिद्धि अनुमान तथा प्रत्यक्षसे होती है वैसे ही संयोगसमवायसे अतिरिक्त तृतीय सम्बन्धकी भी अनुमान तथा प्रत्यक्षसे सिद्धि होती है । तथाहि=स्पष्टतया दिखलाते हैं; परस्पर असंयुक्त और असमवेत जो विशेपण विशेष्य तादृशविशेपणविशेष्यविपयक जो 'ज्ञातो घटः' इत्यादिरूप विशिष्टधी वह विशेपणविशेष्यके सम्बन्धको विपयकरनेवाली है, विशिष्टधीत्वात्=सप्रकारिकाधी होनेसे, जो २ सप्रकारिकाधी होती है सो २ विशेपणविशेष्यके सम्बन्धको विपयकरनेवाली होती है, जैसे 'दण्डी' इत्याकारक विशिष्टधी है, और अनुमान दिखलाते हैं उक्तेति=उक्त जो जन्यप्रमा है वह विशेपणविशेष्यसम्बन्धनिमित्तक है, अवाधितत्वविशिष्टजन्यविशिष्ट धी होनेसे, सम्मतधीवत् । तीसरा अनुमान दिखाते हैं वीति । विवादास्पदी भूत 'ज्ञातो घटः' इत्यादिरूप धी, अवाधितविशेपणविशेष्यसम्बन्धविपया है, अवाधित विशिष्ट धी होनेसे, 'दण्डी' इत्याकारक विशिष्टधीवत्, ननु विशिष्टधीत्व तो 'गोमांश्चैत्रः' इसमें भी रहता है परन्तु विशेपणविशेष्य-

सम्वन्धविषयत्व तो इसमें नहीं है, क्योंकि गोष्ठस्थ गौओंके साथ चैत्रका संयोग तथा समवाय बाधित है, तहाँ कहते हैं गोमानिति । 'गोमांश्चैत्रः' इत्यादि बुद्धिओंकाभी पक्षकी कुक्षिमें निक्षेप है, अतः तत्र=उक्त बुद्धिओंमें व्यभिचारकी शङ्का नहीं करना, फलतः संयोग तथा समवाय इन दोनोंसे अतिरिक्त तृतीय सम्वन्धकी सिद्धि हुई, इतिचेन्न; क्योंकि प्रथम तथा द्वितीयमें अर्थान्तर है, आध्यासिकसम्वन्धकी ही विषयत्वेन तथा निमित्तत्वेन सिद्धि होनेसे, द्वितीयानुमानमें परोक्षधियोंको लेके व्यभिचारभी है=परोक्षधिओंमेंभी अबाधितजन्यविशिष्ट-धीत्व है परन्तु विशेषणविशेष्यसम्वन्धनिमित्तकत्वरूप साध्य नहीं है अतः साध्याभावाधिकरणमें हेतुके रहजानेसे व्यभिचार है ।

तृतीये ब्रह्मज्ञानपर्यन्ताबाधितत्वेन सिद्धसाधनमेव । सर्वथा अबाधितधीविषयत्वे साध्ये साध्यवैकल्यम् । न च तात्त्विकसम्वन्धबाधे आध्यासिकसम्वन्धसिद्धिः, तथा च संयोगसमवायातिरिक्ततात्त्विकसम्वन्धबाधपर्यन्तम् नाध्यासिक सम्वन्धसम्भावना, तथा च कथं अर्थान्तरसिद्धसाधनसाध्यवैकल्यानीतिवाच्यम् । तात्त्विकसम्वन्धस्यव्यापकानुप-लब्ध्या बाधात् । तथाहि–तात्त्विकसम्वन्धस्य व्यापको देशकालविप्रकर्षाभावः । स च अतीतादिविषयकज्ञानादीनां नास्त्येवेति कथं तात्त्विकस्तेषां सम्वन्धः । न च सम-वायवत् सम्वन्ध्यभावविप्रकर्षाद्यविरुद्धत्वेनैव तत्सिद्धिरितिवाच्यम् । समवायस्यापि देशकालविप्रकृष्टयोः सम्वद्धव्यवहाराप्रयोजकत्वात् । न हि सम्वन्ध्यभावेऽपि सन् समवा-योऽद्य नष्टं घटं ध्वस्तनेन रूपेण विशिनष्टि । न चाध्यासिकत्वे सम्वन्धस्य साध्ये धर्मिग्रा-हकमानबाधः, विशिष्टबुद्धित्वेन प्रथमं तात्त्विकातात्त्विकसाधारणसम्वन्धत्वस्यैवसिद्धेः ।

तृतीये=विमताधीः इत्यादि तृतीयानुमानमें ब्रह्मज्ञानपर्यन्त अबाधितत्व होनेसे सिद्ध-साधन है, सर्वथा अबाधितधीविषयकत्वरूप साध्य हो तो दृष्टान्तमें साध्याभाव है, शुद्धसे भिन्न कोईभी पदार्थ सर्वथा अबाधितत्वेन हमको सम्प्रतिपन्न नहीं है । शङ्कते न चेति । तात्त्विक सम्बन्धके बाध होनेपर आध्यासिक सम्वन्धकी सिद्धि होती है, तथाच संयोग तथा समवाय इन दोनोंसे अतिरिक्त जो तात्त्विक सम्बन्ध उस तात्त्विकसम्वन्धके बाधपर्यन्त आध्यासिक सम्वन्धकी सम्भावना नहीं है, फलतः अर्थान्तर सिद्धसाधन और साध्यवैकल्य कैसे हो सकते हैं, इति न च वाच्यम्; क्यों ? तात्त्विक सम्वन्धके व्यापककी अनुपलब्धिसे तात्त्विकसम्वन्धका बाध होनेसे; तथाहि=उक्तार्थको स्फुटतया दिखलाते हैं, देशविप्रकर्षाभाव तथा कालविप्रकर्षाभाव तात्त्विकसम्वन्धके व्यापक हैं, स च=उक्त विप्रकर्षाभाव तो अतीतादिविषयकज्ञानोंका नहीं है इति=अतः तेषाम्=अतीतादिविषयक ज्ञानोंका स्वविषयके साथ तात्त्विकसम्वन्ध कैसे होगा= जिन पदार्थोंमें देशीय तथा कालीन विप्रकर्ष नहीं होता है उन पदार्थोंका यथासम्भव तात्त्विक सम्बन्ध होता है, और अतीतानागतविषयविषयकज्ञानका तो नियमसे कालकृत विप्रकर्ष हैं, अर्थात् ज्ञान और विषय भिन्नकालिक हैं । अतः इनका तात्त्विकसम्वन्ध नहीं बन सकता है ।

शङ्कते न चेति । समवायकी तरह सम्बन्ध्यभाव तथा विप्रकर्षादिसे अविरुद्धत्वेन ही तत्सिद्धिः= अस्मदभिप्रेतसम्बन्धकी सिद्धि है=जैसे सम्बंधीके न रहनेपरभी समवायसम्बन्ध होता है, और विप्रकृष्टोंकाभी समवाय सम्बन्ध होता है, अर्थात् सम्बन्ध्यभाव तथा विप्रकर्ष समवायके विरोधी नहीं होते हैं तैसेही हम लोगोंका सिषाधयिषितसम्बन्धभी विप्रकर्षाद्यविरुद्धत्वेन सिद्ध हो, इति न च वाच्यम्, क्यों ? समवायकोभी देशतः तथा कालतः विप्रकृष्ट जो दो पदार्थ तादृशपदार्थधर्मिक सम्बद्धव्यवहारके प्रति अप्रयोजकत्व होनेसे, इसी अर्थको स्पष्ट करते हैं। नहीति । समवायके सम्बन्धीका अभाव होनेपरभी विद्यमान समवाय अद्य=आज नष्ट घटको श्वस्तनेन=कल होनेवाले रूपके साथ विशिष्ट नहीं करता है ।=विशिष्ट व्यवहारको उत्पन्न नहीं करता है । सम्बन्धस्य=प्रस्तुतसम्बन्धनिष्ठ आध्यासिकत्वके साध्य होनेपर सम्बन्धरूप जो धर्मी तद्ग्राहक जो दर्शित मान उसका बाध होगा, नच=नहीं होगा क्यों ? विशिष्टबुद्धित्वरूप मानसे प्रथम तात्त्विकातात्त्विकसाधारण सम्बन्धत्वकीही सिद्धि होनेसे ।

किंच सम्बन्धग्राहक एव तात्त्विकसम्बन्धव्यापकानुपलब्धिरूपबाधकसहकृताध्यासिकसम्बन्धे पर्यवस्यति । अतो न धर्मिग्राहकबाधशङ्कापि । न चैवं युतसिद्धयोरेव संयोगरूपसम्बन्धदर्शनात् अयुतसिद्धिरपि समवायस्य बाधिका स्यात् इति वाच्यम् । युतसिद्धयोरपि क्वचित्सम्बन्धादर्शनेन युतसिद्धत्वस्य सम्बन्धाप्रयोजकत्वात् । यस्मिन् सत्यवश्यं सम्बन्धः स एव सम्बन्धस्य प्रयोजक इति समव्याप्तत्वाभावेन युतसिद्ध्यनुपलब्धेरबाधकत्वात् । यत्र सम्बन्धस्तत्र अवश्यं युतसिद्धिरितिविषमव्याप्तिकल्पनेऽपि मानाभावात् । अनुकूलतर्कादर्शनात् । देशकालविप्रकर्षाभाववतां तु सर्वेषां सम्बन्धदर्शनेन विप्रकर्षे तददर्शनेन च समव्याप्ततया प्रयोजकस्य देशकालविप्रकर्षाभावस्यानुपलब्धेः । सम्बन्धबाधकत्वस्यावश्यमङ्गीकरणीयत्वात् । न हि प्रयोजकाभावे प्रयोज्यसम्भवः ।

किञ्च=और भी वक्तव्य है, सम्बन्धग्राहक एव=सम्बन्धस्वरूपधर्मिग्राहक मानही तात्त्विकसम्बन्धके व्यापककी जो अनुपलब्धि तद्रूप जो बाध तादृश बाधसे सहकृत हुआ आध्यासिक सम्बन्धमें पर्यवसित होगा, अतः धर्मीके ग्राहकके बाधकी शङ्काभी नहीं है । शङ्कते न चेति । एवम्=ऐसा होनेपर युतसिद्ध जो दो पदार्थ हैं उनके ही संयोगरूप सम्बन्धके देखनेसे, अयुतसिद्धि भी समवायकी बाधिका होगी, इति न च वाच्यम्; क्यों ? युतसिद्धोंके भी कहीं-पर सम्बन्धके न देखनेसे युतसिद्धत्वको सम्बन्धके प्रति अप्रयोजकत्वहोनेसे=युतसिद्ध मेरु विन्ध्यादिके सम्बन्धको न देखनेसे युतसिद्धत्व सम्बन्धका प्रयोजक नहीं हो सकता है जिसके होनेपर अवश्य सम्बन्ध हो वही सम्बन्धका प्रयोजक है अतः समव्याप्तत्वके अभावसे युतसिद्धि की अनुपलब्धिको सम्बन्धके प्रति अबाधकत्व है । जहाँ सम्बन्ध है तहाँ अवश्य युतसिद्धि है । इत्याकारक विषमव्याप्तिके कल्पनामें भी कोई प्रमाण नहीं है, अनुकूल तर्कका अदर्शन है अतः आपका कथन असंगत है । और जिन पदार्थोंमें देशकालका विप्रकर्ष नहीं है उन सर्व

पदार्थोंके सम्बन्धके देखनेसे च=और विप्रकर्षके होनेपर सम्बन्धके न देखनेसे समव्याप्तत्व-प्रयुक्तदेशकालविप्रकर्षाभावनिष्ठसम्बन्धके प्रति प्रयोजकत्व है अतः=तादृशप्रयोजकत्वाश्रयकी अनुपलब्धिको सम्बन्धके प्रति बाधकत्व अवश्य अङ्गीकरणीय है, क्योंकि प्रयोजकका अभाव होनेपर प्रयोज्यका सम्भव नहीं है ।

नन्वेवं ध्वंसादेरतीतादिना, मिथ्यात्वलक्षणान्तर्गतस्यात्यन्ताभावस्य प्रतियोगिना शक्तेः शक्येन, अज्ञानस्याज्ञेयेन, इच्छाया इष्यमाणेन, व्यवहारस्य व्यवहर्त्तव्येन, वाक्यस्यार्थेन, वृत्तिरूपज्ञानस्य ज्ञेयेन, सम्बन्धो नेतित्वद्वाक्योक्तसम्बन्धाभावस्य ज्ञानेनासम्बन्धात्, स्वन्यायस्वक्रियास्ववचनविरोधाःस्युः । न हि ज्ञाने ज्ञेयमिव प्रतियोग्यादिकमभावादावध्यस्तम् । इति चेन्न । यद्यप्युक्तन्यायसाम्येन ध्वंसादीनां स्वप्रतियोग्यादिभिस्तात्विकः सम्बन्धो नास्त्येव । अध्यासोऽपि न ज्ञानज्ञेयन्यायेन, उभयोरपि मिथ्यात्वात् तथापि प्रतीयमानं प्रतियोग्यनुयोगिभावादिकं सर्वथा न निराकुर्मः । किन्तु तात्विकाध्यासाभ्यां भिन्नमेव कुक्षिनिक्षिप्तत्वात् मिथ्याभूतमङ्गीकुर्मः । स च संयोगादिवत् अतिरिक्तो वा स्वरूपं वा पराङ्गीकृतपदार्थान्तर्गतो वा तदतिरिक्तो वा इत्यस्यां काकदन्तपरीक्षायां न नो निर्बन्धः ।

शङ्कते नन्विति । ऐसा होनेपर ध्वंसादिका अतीतादिके साथ, मिथ्यात्वलक्षणघटक अत्यन्ताभावका प्रतियोगीके साथ, शक्तिका शक्यके साथ, अज्ञानका अज्ञेयके साथ, इच्छाका इष्यमाणके साथ, व्यवहारका व्यवहर्त्तव्यके साथ, वाक्यका अर्थके साथ ज्ञानका ज्ञेयके साथ सम्बन्ध नहीं है इत्याकारक जो त्वद्वाक्य तादृश वाक्योक्त सम्बन्धाभावका ज्ञानके साथ सम्बन्ध न होनेसे, स्वन्यायके साथ और स्वक्रियाके साथ तथा स्ववचनके साथ विरोध होगा=सम्बन्ध न होनेसे इतनेका अन्वय अष्टस्थलोमें है, तहाँ (वाक्यका अर्थके साथ) यहाँ पर्यन्त स्वन्यायका विरोध है, अर्थात् यहाँपर्यन्त स्वन्यायविरोधके उदाहरण हैं, अष्टमस्थल स्वक्रिया तथा स्ववचनका उदाहरण है (ज्ञानका ज्ञेयके साथ सम्बन्ध नहीं है) इस अर्थको समझानेके लिए, ज्ञानस्य ज्ञेयेन सम्बन्धो नास्ति, इत्याकारक वाक्यप्रयोगरूप आप क्रिया करते हैं, और वाक्यसे प्रतिपाद्य जो सम्बन्धाभाव तथा वाक्यजन्यज्ञान इन दोनोंका सम्बन्ध है । यह तो आपके प्रयोग करनेसेही सिद्ध होता है, अतः स्वक्रिया विरोध है, अर्थात् सम्बन्ध न माननेवालेसे शब्दप्रयोगरूप क्रिया नहीं हो सकती है. और ज्ञानज्ञेयका सम्बन्धाभावरूप जो अर्थ है उस अर्थका (ज्ञानज्ञेययोः सम्बन्धो नास्ति) इत्याकारक वाक्यजन्यज्ञानके साथ सम्बन्ध बोधन करनेके लिए इस वाक्यका प्रयोग करते हो और फिर कहते हो कि ज्ञानज्ञेयका सम्बन्ध नहीं है, अतः (मम माता वन्ध्या) इस वचनवत् स्ववचन विरोध है । ज्ञानमें जैसे ज्ञेय आपके मतमें अध्यस्त है तैसे प्रतियोग्यादिक अभावादिमें अध्यस्त नहीं हैं अतः यहाँपर आध्यासिक सम्बन्ध कहकर पीछा छोडाना जरा कठिन है, इति चेन्न=ऐसा यदि कहो तो नहीं कहना, क्योंकि यद्यपि ज्ञानज्ञेय स्थलमें उक्त जो न्याय है उस न्यायका साम्य होनेसे ध्वंसादिका स्वप्रतियोग्यादिके साथ तात्विक सम्बन्ध

तो नहीं ही है, और ज्ञानज्ञेयन्यायसे आध्यासिकभी नहीं है दोनोंकोभी मिथ्यात्व होनेसे, तथापि प्रतीयमान प्रतियोगित्व अनुयोगित्वादिका, सर्वथा तो हम विशुद्धब्रह्मवादीलोग निराकरण नहीं करते हैं, किन्तु ज्ञेयकी कुक्षिमें निक्षिप्त होनेसे तात्त्विक आध्यासिकसे विलक्षण मिथ्याभूत अङ्गीकार करते हैं=अर्थात् हम लोग बालजनप्रतिबोधार्थ अनन्त पदार्थ मानते हैं, तब प्रतियोगित्व अनुयोगित्वादि औरभी थोडेसे पदार्थ मान लेनेमें कहाँ दोषोंका पहाड टूट पडनेवाला है, स च=वह सम्बन्ध संयोगादिवत् धर्मिओंसे अतिरिक्त रहो, या धर्म्यादिका स्वरूपही रहो, अथवा तार्किकादिद्वारा अङ्गीकृत जो पदार्थ हैं उनके अन्तर्गत रहो अथवा उनसे अतिरिक्त रहो, इस निष्फल परीक्षामें नः=हम तात्विक ब्रह्मवादिओंका आग्रह नहीं है।

न च मिथ्यात्वसिद्धेः प्राक् तदसिद्ध्या अन्योन्याश्रयः दृग्दृश्यसम्बन्धानुपपत्त्या ज्ञेयमात्राध्यासिकत्वे सिद्धे तन्मध्यपतितस्य प्रतियोग्यभावादिसम्बन्धस्यापि मिथ्यात्वं न तु प्रतियोग्यभावादिसम्बन्धमिथ्यात्वसिद्ध्यनन्तरं दृश्यमिथ्यात्वसिद्धिरिति व्यवहारोपयुक्तसम्बन्धसामान्यस्याप्रतिक्षेपात् न स्ववचनादिविरोधः। तदुक्तं खण्डनकृद्भिः बाधेऽदृढेऽन्यसाम्यात्किं? दृढे तदपि बाध्यताम्। क्व ममत्वं मुमुक्षूणां अनिर्वचनवादिनाम्॥ इति। न चादृढत्वं बाधस्य व्यापकानुपलब्धिरूपतर्कस्योक्तत्वात्। स्वक्रियादिविरोधरूपप्रतिकूलतर्कस्य परिहृतत्वाच्च। अतएव न जातिवादिसाम्यम् तेन हि नियमसापेक्षानित्यत्वसाधककृतकत्वादौ नियमानपेक्षदर्शनमात्रेण रूपवत्त्वादिकमापाद्यते न त्वस्माभिस्तथानियमनिरपेक्षेण साहचर्यमात्रेण किंचिदापाद्यते।

शङ्कते नचेति। मिथ्यात्वकी सिद्धिसे प्रथम तदसिद्ध्या=उक्त सम्बन्धके मिथ्यात्वकी असिद्धिसे अन्योन्याश्रय है, नच=अन्योन्याश्रय नहीं है, क्योंकि दृग्दृश्यके सम्बन्धकी अनुपपत्तिसे ज्ञेयमात्रनिष्ठ आध्यासिकत्वके सिद्ध होनेपर तन्मध्यपतितस्य=ज्ञेयकुक्षिमें निविष्ट प्रतियोगि-अभावादिके सम्बन्धका भी मिथ्यात्व है और प्रतियोग्यादिके साथ जो अभावादिका सम्बन्ध उस सम्बन्धके मिथ्यात्वकी सिद्धिके अनन्तर दृश्यके मिथ्यात्वकी सिद्धि नहीं है अतः अन्योन्याश्रय नहीं, और व्यवहारोपयुक्त सम्बन्धसामान्यका निषेध न होनेसे स्ववचनादिका विरोध भी नहीं। इस अर्थको खण्डनकारने कहा है बाध इति। विप्रकर्षहेतुक सम्बन्धाभावसाधक जो अनुमिति है उस अनुमितिकी सामग्रीका बाधशब्दसे ग्रहण है, वह उक्त सामग्रीरूप बाध यदि अदृढ है-अर्थात् अनुकूल तर्कके अनवतारसे अनुत्पन्न है तब अन्यसाम्यात्=ज्ञानज्ञेय, तात्विकसम्बन्धसे युक्त है, विशिष्टप्रमाविषय होनेसे, प्रतियोग्यभावादिवत् इत्याकारक जो अन्यसाम्यसे घटित सत्प्रतिपक्षरूप प्रयोग है उससे किम्=क्या फल है अर्थात् कुछ भी फल नहीं है क्योंकि अनुमान=अनुमितिकी सामग्रीको सम्पन्न होनेपर प्रत्यनुमानकी सामग्री सफला होती है अन्यथा नहीं; दृढे=अनुकूल तर्कके अवतारसे अनुमिति सामग्रीको सुसम्पन्न होनेपर तदपि=साम्यका प्रतियोगी जो प्रतियोग्यादिके साथ अभावादिका सम्बन्ध

वह भी बाध्यताम्=विप्रकर्षरूप प्रयोजकसे प्रतियोग्यादिके साथ अभावादिके सम्बन्धका अभाव उक्त सामग्रीसे ही अनुमित करो, अर्थात्-हमारी अनुमितिकी सामग्रीको अनुकूल तर्कसे घटित होनेसे प्राबल्य है और आपकी सामग्रीको तर्कशून्य होनेसे दौर्बल्य है फलतः सत्प्रतिपक्षता नहीं बनसकती है प्रबलसे दुर्बलका बाध होगा। माया तथा मायास्थिति-अधीन-स्थितिक अनात्ममात्रको अनिर्वचनीय कहनेवाले ब्रह्मविचारक्षपितकल्मषराशिमुमुक्षुओंको ममत्व कहाँ है, ? द्वैतमें सत्यत्वबुद्धि और ममत्व तभी तक रहता है-जबतककि पुरुष विषयासक्तिसे रहित नहीं होता है, और शुद्ध ब्रह्मके विचारकरने लायक अन्तःकरणकी शुद्धि नहीं होती है। कितने ही पढे लिखे लोग भी अन्तःकरणकी शुद्धि न होनेसे द्वैतमें सत्यत्वका अभिनिवेश करते हैं, परन्तु उन हतभाग्योंको उचित है कि जबतक उनका अन्तःकरण शुद्ध न हो तथा विषयासक्तिरूप पिशाचिकाका जबतक उनके अन्तःकरणमें निवास हो तबतक वे स्वयं भले ही द्वैतमें अभिनिवेश रक्खें, परन्तु विशुद्धान्तःकरणवाले तत्त्वजिज्ञासुओंको अपने साथ गर्त्तमें घसीटनेका प्रयत्न न करें; बाधस्य=उक्त बाधका अदृढत्व है न च=नहीं है, क्यों ? व्यापककी अनुपलब्धिरूप तर्कको उक्त होनेसे, और स्वक्रियादिके साथ विरोधरूप प्रतिकूल तर्कको परिहारित हो चुकनेसे। अतएव=बाधको दृढ होनेसे ही जातिवादीका साम्य नहीं है। तेनहि=जातिवादीसे नियम=व्याप्तिसापेक्ष जो अनित्यत्वसाधक कृतकत्वादि तादृश कृतकत्वादिके उपन्यस्त होनेपर नियमानपेक्षदर्शनमात्रसे रूपवत्त्वादिक आपादन किया जाता है, परन्तु हमलोगोंसे तो जातिवादीकी तरह नियमनिरपेक्ष साहचर्य-दर्शनमात्रसे कुछ नहीं आपादान किया जाता है।

न चैवं ज्ञान ज्ञेययोरपि प्रतियोग्यभावादिसमकक्ष एव सम्बन्धोऽस्तु इति-वाच्यम्। परस्पराध्यासात्मकसम्बन्धासम्भवेनैव सम्बन्धान्तरकल्पनात् तत्सम्भवे तस्यैव सम्बन्धत्वात्। नचाज्ञानविषयस्य ब्रह्मणो विषयिण्यज्ञानेऽनध्यासेन विषयस्य विषयिण्यध्यासनियमो न सिद्ध इति वाच्यम्। एवं नियमानभ्युपगमात्। किन्तु ज्ञानाज्ञानयोरध्यास एव विषयेण सम्बन्धः। स च ज्ञाने ज्ञेयस्याज्ञेये चाज्ञानस्याध्यासादुपपद्यते। अत एवाध्यासिकसम्बन्धव्यतिरेकप्रदर्शने अज्ञानस्याज्ञेयेन इत्यनुदाहरणम्।

शङ्कते नचेति। एवम्=ऐसा होनेपर ज्ञान तथा ज्ञेय इन दोनोंकाभी प्रतियोग्यादिके साथ अभावका जैसा सम्बन्ध है, उस सम्बन्धके समकक्षही सम्बन्ध रहो, इति न च वाच्यम्; क्यों ? परस्पर अध्यासिक सम्बन्धके असंभवसेही अन्य सम्बन्धकी कल्पना होनेसे, तत्सम्भवे=अध्यासात्मक सम्बन्धका सम्भव होनेपर उसकोही सम्बन्धत्व होनेसे। शङ्कते न चेति। अज्ञानका विषय जो ब्रह्म है उस ब्रह्मका स्वविषयीरूप अज्ञानमें अध्यास न होनेसे, विषयका विषयीमें अध्यास नियमसिद्ध नहीं है=अर्थात् विषयका विषयीमें अध्यासिकही सम्बन्ध होता हो ऐसा नियम नहीं है, इति नच वाच्यम्; क्यों ? ऐसे नियमका अङ्गीकार न होनेसे; फिर कैसा नियम है ? तहाँ कहते हैं किन्त्विति। ज्ञान तथा अज्ञान इन दोनोंका स्वविषयके साथ अध्यास-

रूपही सम्बन्ध है स च=वह अध्यासरूप सम्बन्ध ज्ञानमें ज्ञेयके और अज्ञेयमें अज्ञानके अध्याससे उत्पन्न होता है, अत एव=आध्यासिक सम्बन्ध होनेसेही आध्यासिक सम्बन्धके व्यतिरेक प्रदर्शनके लिए अज्ञानका अज्ञेयके साथ यह अनुदाहरण है=यहाँ आध्यासिक सम्बन्धका व्यतिरेक=अभाव नहीं है अतः यह उदाहरण नहीं हो सकता है।

ननु, श्रवणादीनां चरमसाक्षात्कारान्तानां स्वविषयेण ब्रह्मणा सम्बन्धानुपपत्तिः। न हि श्रवणादौ साक्षात्कारे वा ब्रह्माऽध्यस्तमिति चेन्न। साक्षात्कारो हि वृत्तिर्वा तदभिव्यक्तचैतन्यं वा आद्ये तस्याः ब्रह्मण्यध्यस्तत्वेनाज्ञानाज्ञेययोरिव सम्बन्धोपपत्तेः। अतएव श्रवणादीनामपि मानसक्रियारूपेण न सम्बन्धानुपपत्तिः द्वितीये तु अभेदेन सम्बन्धानुपयोगात्। तत्सम्बन्धानुपपत्तिः न दोषाय। अतएव चरमसाक्षात्कारस्य ब्रह्मण्यध्यस्तत्वात् यदि तद्विषयत्वं तदा घटसाक्षात्कारस्यापि ब्रह्मण्यध्यस्तत्वात् तद्विषयत्वापत्तिरिति निरस्तम्। घटसाक्षात्कारस्य घटाभिव्यक्तचैतन्यरूपत्वे ब्रह्मण्यनध्यासात्, वृत्तिरूपत्वे तस्याः ब्रह्मण्यध्यासेऽपि नाधिष्ठानभूतब्रह्मणो विषयत्वम्। ब्रह्मविषयताप्रयोजकस्याध्यासविशेषस्य तत्राभावात्। तस्य च फलबलकल्प्यत्वात्। न हि चरमवृत्तौ ब्रह्माकारतावदत्रापि सानुभूयते। इच्छेष्यमाणयोस्तु ज्ञानद्वारक एव सम्बन्ध इति न पृथक् सम्बन्धापेक्षा।

शङ्कते नन्विति। चरम साक्षात्कारपर्यन्त होनेवाले जो श्रवण मननादिक हैं उन श्रवणादिकोंके स्वविषयरूप ब्रह्मके साथ सम्बन्धकी अनुपपत्ति है=श्रवण मनन निदिध्यासन चरम साक्षात्कार इन चारोंका स्वविषयरूप ब्रह्मके साथ सम्बन्ध नहीं बन सकता है, क्योंकि श्रवणादिकमें अथवा साक्षात्कारमें ब्रह्म अध्यस्त नहीं है इति चेन्न; साक्षात्कार शब्दसे वृत्तिविवक्षित है ? अथवा वृत्तिसे अभिव्यक्त चैतन्य ? आद्ये=आद्यपक्ष होतो तस्याः=उस वृत्तिको ब्रह्ममें अध्यस्त होनेसे, अज्ञान और अज्ञेयकी नाईं सम्बन्धकी उपपत्ति है, अत एव=अध्यस्त होनेसेही मानस क्रियारूप श्रवणादिके साथभी अज्ञानाज्ञेयवत् सम्बन्धकी अनुपपत्ति नहीं है, द्वितीये=वृत्त्यभिव्यक्त चैतन्य पक्षमें तो अभेद होनेसे सम्बन्धका अनुपयोग है और सम्बन्धके अनुपयोगसे साक्षात्कारके साथ सम्बन्धकी अनुपपत्ति दोषके लिए नहीं है। अत एव=वस्तुतः दोषके न होनेसेही। चरम साक्षात्कारको ब्रह्ममें अध्यस्त होनेसे यदि ब्रह्मविषयत्व है, तब घटसाक्षात्कारकोभी ब्रह्ममें अध्यस्त होनेसे ब्रह्मविषयत्वकी आपत्ति है, यह कथनभी व्युदस्त हुआ दोषाभावकाही विवरण करते हैं घटेति। घटसाक्षात्कारको घटावच्छेदेन अभिव्यक्त चैतन्यरूपत्व होनेपर ब्रह्ममें अध्यास न होनेसे और वृत्तिरूपता होनेपर तस्याः=उस वृत्तिका ब्रह्ममें अध्यास होनेपरभी अधिष्ठानभूतब्रह्मविषयत्व नहीं है। ब्रह्मनिष्ठविषयताप्रयोजक जो अध्यासविशेष उस अध्यास विशेषका तत्र=वृत्तिमें अभाव होनेसे उक्त अध्यासको फलरूप बलसे कल्प्य होनेसे, चरम वृत्तिमें जैसी ब्रह्माकारता अनुभूत होती है, वैसी घटाकार वृत्तिमें

अनुभूत नहीं होती है। और इच्छा तथा इच्छाका विषयीभूत इष्यमाण इन दोनोंका तो ज्ञानद्वारकही सम्बन्ध है अतः भिन्नसम्बन्धकी अपेक्षा नहीं।

न च ज्ञाने सन्निकर्षाधीनस्येव स्मृतावनुभवाधीनस्येव इच्छायां ज्ञानाधीनस्य विषयसम्बन्धस्यानुभवात् सन्निकर्षादिभ्यो भिन्न इव ज्ञानाद्भिन्न एव सम्बन्धो वक्तव्य इतिवाच्यम्। सम्बन्धानुभवस्य ज्ञानाद्वारकसम्बन्धेनाप्युपपत्तेरतिरिक्तसम्बन्धकल्पने मानाभावात् ज्ञानाधीनसम्बन्धान्तरस्यानुभवात्। ज्ञानेत्विन्द्रियसन्निकर्षादिना न सम्बन्धानुभवोपपत्तिः। इन्द्रियसन्निकर्षादीनामतीन्द्रियत्वेन तेषामनुमित्यादिनोपस्थितिं विनैव घटज्ञानमित्यादिसम्बन्धानुभवात्। स्मृतौ तु अनुभवाधीनसम्बन्धस्य शङ्कैव नास्ति अनुभवस्य तदानीमसत्वात्। उभयोरपि ज्ञानत्वेन तुल्यवदेव सम्बन्धसम्भवाच्च न च समूहालम्बनजन्यविषयेच्छायामुभयविषयत्वापत्तिः। जनकज्ञानस्योभयविषयादितिवाच्यम्। अतिरिक्तसम्बन्धपक्षेपि तुल्यत्वात्।

शङ्कते न चेति। ज्ञाने=ज्ञानमें जैसे सनिकर्षाधीन विषयका सम्बन्ध है, और स्मृतिमें जैसे अनुभवाधीन विषयका सम्बन्ध है, तैसे इच्छामें ज्ञानाधीन विषयसम्बन्धका अनुभव होनेसे सन्निकर्षादिकोंसे भिन्न जैसे ज्ञानादिकोंका विषयके साथ सम्बन्ध है तैसे ज्ञानसे भिन्नही इच्छाका विषयके साथ सम्बन्ध कहना चाहिए=जैसे सन्निकर्षादिसे उत्पन्न होनेवाले ज्ञानादिकोंका स्वविषयोंके साथ सन्निकर्षादिकोंसे अतिरिक्त स्वतन्त्र सम्बन्ध है, वैसेही ज्ञानाधीन होनेवाली इच्छाके साथभी विषयका स्वतन्त्र सम्बन्ध कहना चाहिए, इति न च वाच्यम्; क्यों? इच्छानिष्ठ सम्बन्धानुभवकी ज्ञानद्वारक सम्बन्धसे उपपत्ति होनेसे अतिरिक्तसम्बन्धकल्पना करनेमें मानका अभाव होनेसे, और ज्ञानाधीन सम्बन्धान्तरका अननुभव है=ऐसा सम्बन्ध कोई अनुभवसे सिद्ध नहीं है और ज्ञानमें तो इन्द्रियसन्निकर्षादिसे सम्बन्धकी उपपत्ति नहीं हो सकती है क्यों? इन्द्रियसन्निकर्षादिके अतीन्द्रियत्वसे तद्विषयक जो अनुमानादिजन्य उपस्थिति उस उपस्थितिके विनाही 'घटज्ञानम्' इत्यादिरूप सम्बन्धका अनुभव होनेसे। और स्मृतिमें तो अनुभवाधीन सम्बन्धकी शङ्काही नहीं है, क्यों? अनुभवको तदानीम्=स्मृतिकालमें न होनेसे, स्मृति तथा अनुभव इन दोनोंको ज्ञानत्व होनेसे अनुभवकी तरह स्मृतिके भी सम्बन्धका विषयके साथ सम्भव होनेसे भी। शङ्कते नचेति। 'घट इष्टसाधनं पटो मेयः' इत्याकारक समूहालम्बनज्ञानजन्य इच्छामें उभयविषयत्वकी आपत्ति है। इच्छाजनक ज्ञानको उभयविषयत्व होनेसे इति न च वाच्यम्; क्यों? अतिरिक्तसम्बन्धपक्षमेंभी इस दोषको तुल्य होनेसे=इच्छाजनकज्ञानीय विषयता जिसमें रहती है उसीमें इच्छाविषयता रहती है ऐसा माननेवालेको भी दोष समान है।

अथैकविषयावच्छेदेनैव ज्ञानस्य जनकत्वात् नोभयविषयत्वं समम् ममापि जनकज्ञाने जनकतावच्छेदकविषयत्वस्यैव सम्बन्धत्वात्। न च नित्येश्वरेच्छाया विषयसम्बन्धानुपपत्तिः। तस्याः अस्माभिरनङ्गीकारात्। तार्किकाणामपि तत्साधकमानबलेन

विलक्षणसम्बन्धकल्पनेऽपि जन्यज्ञानजन्येच्छयोरुक्तप्रकारेणैव विषयताभ्युपगमात् । न च पुत्रादिधीजन्यसुखादेः पुत्रादिविषयत्वापत्तिः इच्छान्यायादिति वाच्यम्; वैषम्यात् । ज्ञानस्य समानत्वेऽपि इच्छादावेवसविषयत्वप्रतीतिः । न तु सुखादौ । वस्तुस्वाभाव्यात् त्वयापि अस्यैवार्थस्य वक्तव्यत्वात् । अन्यथा स्फटिके जपाकुसुमसन्निधानात् लौहित्यवत् लोष्टेऽप्यापद्येत ।

अथ=यदि ऐसा कहोकि एकविषयावच्छेदेनैव ज्ञानको जनकत्व है=ज्ञाननिष्ठजनकता-निरूपित जो इच्छानिष्ठ जन्यता है, वह एकविषयावच्छिन्न ही है अतः उक्तस्थलमें इच्छाको उभयविषयत्व नहीं है, तो मुझको भी यह समाधान समान ही है, क्यों ? जनकज्ञानमें जनक-तावच्छेदक विषयत्वको ही सम्बन्ध होनेसे=उक्त ज्ञान स्थलमें इच्छाका विषयके साथ जनक-त्वावच्छेदक–विषयत्वरूपही सम्बन्ध होता है। नित्य जो ईश्वरकी इच्छा उसके विषयत्व सम्बन्धकी अनुपपत्ति है, न च=नहीं है क्यों ? तस्याः=नित्य ईश्वरकी इच्छाका हमलोगोंसे, अङ्गीकार न होनेसे=ईश्वरकी नित्य इच्छा हम लोग नहीं मानते हैं; आप नहीं मानते हैं तो मत मानिए परन्तु जो लोग मानते हैं उनके मतमें व्यवस्था कैसे होगी, तहाँ कहते हैं तार्किका-णामिति । तार्किकोंके मतमें भी तत्साधक=नित्यईश्वरेच्छासाधक मानके बलसे विलक्षण सम्बन्धकी कल्पना होनेपरभी जन्यज्ञान तथा जन्य इच्छा इन दोनोंकी उक्त प्रकारसे ही विषयताका अभ्युपगम होनेसे=नित्यइच्छास्थलमें विलक्षण–इच्छीय विषयताके होनेपरभी अनित्य स्थलमें विलक्षणता नहीं। शङ्कते नचेति । पुत्रादिविषयक जो ज्ञान उस ज्ञानसे जन्य जो सुखादि उन सुखादिको पुत्रादिविषयत्वकी आपत्ति है, इच्छान्यायसे=ज्ञानसे जन्य इच्छाका जैसे आप स्वतन्त्र स्वविषयके साथ सम्बन्ध नहीं मानते हैं, वैसे ही यहाँ परभी ज्ञानसे अतिरिक्त सुखादिका स्वविषयके साथ स्वतन्त्र सम्बन्ध तो नहीं मान सकते हो, इति न च वाच्यम्; क्यों ? वैषम्य होनेसे, ज्ञानके समान होने परभी इच्छादिमें ही सविषयत्वकी प्रतीति है, सुखादिमें नहीं, वस्तुस्वाभाव्यप्रयुक्त तुमको भी इस अर्थको ही वक्तव्य होनेसे, अन्यथा जपाकुसुमके सन्निधानसे स्फटिकमें लौहित्यवत् लोष्टमेंभी लौहित्यकी आपत्ति होगी।

अथ धर्मे तात्पर्यस्यानध्यासात्तात्पर्यसम्बन्धो न स्यात्; न । तात्पर्यं हि तत्प्रतीत्यु-द्देश्यकत्वम् । प्रतीतेश्च ज्ञेयान्तरेणेव धर्मेणापि सम्बन्धोऽध्यास एव प्रतीतिद्वारा च धर्म-तात्पर्ययोः सम्बन्ध इत्यनुपपत्त्यभावात् । न च ज्ञानस्य प्रकाशत्वेन प्रदीपसाम्येऽपि आन्तरत्वेन तद्वैलक्षण्यमङ्गीकर्त्तव्यम्; अतः इच्छादिवद्विप्रकृष्टेनापि सम्बन्धः स्यात् अन्यथा प्रदीपवदेवाध्यासिकसम्बन्धोऽपि न स्यात् परोक्षवृत्तौ विप्रकृष्टसम्बन्धदर्शना-च्चेतिवाच्यम्; देशकालविप्रकर्षाभावस्य सम्बन्ध–सामान्यप्रयोजकत्वे संभवति आन्तर-प्रतियोगिकसम्बन्धभिन्नसम्बन्ध एवास्य प्रयोजकत्वमिति कल्पनायाम् बीजाभावात् । इच्छायास्तु नेष्यमाणेन साक्षात्सम्बन्धः किन्तु ज्ञानद्वारकः परम्परासम्बन्ध एवेत्युक्तम् ।

परोक्षस्थले तु यद्यपि अधिष्ठानचैतन्येन साक्षादेव सम्बन्धः। तथापि विषयाकारवृत्त्या साक्षात्सम्बन्धाभावात् वृत्यवच्छिन्नचैतन्येन विषयस्य परम्परासम्बन्ध एव।

अथ=यदि ऐसा कहो कि धर्ममें तात्पर्यका अध्यास न होनेसे धर्मके साथ तात्पर्यका सम्बन्ध न होगा, तो ऐसा नहीं कहना यतः तात्पर्यनाम है—तत्प्रतीत्युद्देश्यकत्वका और प्रतीतिका तो ज्ञेयान्तरकी तरह धर्मके साथभी अध्यासरूपही सम्बन्ध है, और प्रतीतिद्वारा धर्म तथा तात्पर्यका सम्बन्ध है, अतः अनुपपत्तिका अभाव है। शङ्कते न चेति। ज्ञानका प्रकाशत्वेन प्रदीपके साथ साम्य होने परभी आन्तरत्वेन प्रदीपसे वैलक्षण्य अङ्गीकार करना चाहिए, अतः अङ्गीकरणीय वैलक्षण्येन ही, इच्छादिवत् विप्रकृष्टके साथभी सम्बन्ध होगा अन्यथा प्रदीपका जैसे स्वविषयके साथ आध्यासिक सम्बन्ध नहीं होता है वैसेही ज्ञानकाभी स्वविषयके साथ आध्यासिक सम्बन्ध न होगा, परोक्ष वृत्तिमें विप्रकृष्टके सम्बन्धको देखनेसेभी, इति न च वाच्यम्; क्यों? देशकालकृत विप्रकर्षाभावको सम्बन्धसामान्यके प्रति प्रयोजकत्वका सम्भव होने पर आन्तरप्रतियोगिक सम्बन्धसे भिन्न सम्बन्धमेंही इसको प्रयोजकत्व है। इस कल्पनामें प्रमाणका अभाव होनेसे, इच्छाका तो इष्यमाणके साथ साक्षात् सम्बन्ध नहीं है, किन्तु ज्ञान-द्वारक परम्परा सम्बन्ध है, यह कहा है; परोक्ष स्थलमें यद्यपि अधिष्ठान चैतन्यके साथ साक्षात् सम्बन्ध है, तथापि विषयाकार वृत्तिके साथ साक्षात् सम्बन्ध न होनेसे वृत्त्यवच्छिन्न चैतन्यके साथ विषयका परम्परासम्बन्धही है।

ननु तवापि मते ज्ञेयस्य न स्वज्ञाने अध्यस्तत्वनियमः; अनध्यस्तस्य तुच्छस्य पञ्चमप्रकारत्वपक्षे अविद्यानिवृत्तेः भावाद्वैतपक्षे अभावस्याद्वयरूपत्वेऽपि स्वज्ञाने अनध्या-सात् अपरोक्षैकरसे ब्रह्मण्यध्यस्तस्य व्यावहारिकस्यातीतादेः नित्यातीन्द्रियस्य च परो-क्षानुभवरूपे स्वज्ञानेऽनध्यासात् स्मर्यमाणस्य च स्मृतिरूपे स्वज्ञाने अनध्यासात्। प्राति-भासिकस्य च प्रातिभासिके स्वज्ञाने अनध्यासात्। त्वन्मते भ्रमरूपज्ञानस्यापि कल्पि-तत्वात् इति चेन्मैवम्। तुच्छस्याज्ञेयत्वेन ज्ञानेऽध्यासाभावात् ज्ञेयस्य हि ज्ञानेऽध्यासः। तुच्छस्य तु न ज्ञेयतेत्यग्रे वक्ष्यते। पञ्चमप्रकाराविद्यानिवृत्तेः अपि प्रतियोग्यधिकरणे ध्वंसस्यापि तत्र वृत्तेरवश्यंभावात् अध्यास एव सम्बन्धः। वस्तुतस्त्वविद्यानिवृत्तेः पञ्चम-प्रकारत्वं च भावाद्वैतम् चानभ्युपगमपराहतम्। यथाचाविद्यानिवृत्तेर्ब्रह्मरूपत्वं सर्वाद्वैतं च तथोपरिष्टाद्वक्ष्यते।

शङ्कते नन्विति। तुह्मारे मतमेंभी ज्ञेयके स्वज्ञानमें अध्यस्तत्वका नियम नहीं है—ज्ञेय पदार्थ स्वज्ञानमें अध्यस्त ही होता है ऐसा नियम नहीं है, क्यों? अनध्यस्त तुच्छ पदार्थको पञ्चमप्रकारत्व पक्षमें अविद्याकी निवृत्तिको भावाद्वैत पक्षमें प्रपञ्चाभावको अद्वय रूपत्व होने परभी स्वज्ञानमें उक्त पदार्थोंके अध्यासके अभावसे, अपरोक्ष एकरस जो ब्रह्म उस ब्रह्ममें अध्यस्त जो व्यावहारिक अतीतादि और नित्य अतीन्द्रिय उसका परोक्षानुभवरूप स्वज्ञानमें

अध्यास न होनेसे, स्मर्यमाणपदार्थका स्मृतिरूप ज्ञानमें अध्यास नहीं है, प्रातिभासिक पदार्थका प्रातिभासिकरूप स्वज्ञानमें अध्यास नहीं है, आपके मतमें भ्रमरूप ज्ञानकोभी कल्पित होनेसे; इति चेन्मैवम्=ऐसा यदि कहते हो तो ऐसा नहीं है, क्योंकि तुच्छको अज्ञेयत्व होनेसे ज्ञानमें अध्यास नहीं है, ज्ञेयका ही ज्ञानमें अध्यास होता है, और तुच्छको ज्ञेयता नहीं है, यह आगे चलकर कहा जायगा । पञ्चम प्रकाररूप अविद्याकी निवृत्तिकोभी प्रतियोगीके अधिकरणमें वृत्ति होनेसे और ध्वंसकोभी तत्र=प्रतियोग्यधिकरणमें वृत्ति होनेसे अध्यास ही सम्बन्ध है । वस्तुतः तो अविद्याकी निवृत्तिका पञ्चम प्रकारत्व और भावाद्वैतपक्ष अनभ्युपगमसे पराहत है और जैसे अविद्याकी निवृत्तिको ब्रह्मरूपत्व है और सर्वाद्वैत है वैसे ऊपर कहा जायगा ।

अपरोक्षैकरसे ब्रह्मण्यध्यस्तस्यातीतादेरनुमित्यादिरूपज्ञाने अनध्यासेऽपि यस्मिंश्चैतन्ये तदध्यस्तं तदेव चैतन्यमनुमित्यादिरूपवृत्त्यवच्छिन्नमिति नाध्यासानुपपत्तिः । अतिप्रसङ्गपरिहारार्थं चैतन्यस्य विषयसम्बन्धे वृत्त्युपरागापेक्षायामपि नाधिष्ठानत्वेन तदपेक्षा । एवमेव नित्यपरोक्षस्थले स्मृतिस्थलेऽपि प्रातिभासिकस्य प्रातिभासिक्यां वृत्तावनध्यासेऽपि अधिष्ठानविषयकवृत्त्यभिव्यक्तचैतन्य एवाध्यास इति न काप्यनुपपत्तिः । न च रूप्यादिकमिदमंशावच्छिन्नचैतन्येऽध्यस्तं भासते च अविद्याप्रतिबिम्बितचैतन्येन इति विषयिणि ज्ञाने विषयस्याध्यासः कथमिति वाच्यम् । एकावच्छिन्न एवापरावच्छेदेन निरपेक्षोपाधेरिवात्र भेदकत्वाभावात् अतएवाभियुक्तैः फलैक्यादैक्यं ज्ञानस्योच्यते । न च रूप्यादेः स्वज्ञाने अध्यस्तत्वे रूप्यज्ञानस्याज्ञाने भ्रमोत्पत्तिस्तद्ज्ञाने न तन्निवृत्तिरिति च स्यात्, अधिष्ठानाज्ञानज्ञानाभ्यामध्यासस्य जन्मनिवृत्त्योर्नियतत्वात् ज्ञानं रजतमिति प्रतीति प्रसङ्गाच्चेति वाच्यम् रजताकारवृत्त्यवच्छिन्नचैतन्यस्य रजतभ्रमाधिष्ठानत्वानभ्युपगमात् ।

अपरोक्ष तथा एकरस जो ब्रह्म है उस ब्रह्ममें अध्यस्त जो अतीतादि है उस अतीतादिका अनुमित्यादिरूप ज्ञानमें अध्यास न होनेपरभी जिस चैतन्यमें वह अतीतादि अध्यस्त है वही चैतन्य अनुमित्यादिरूपवृत्त्यवच्छिन्न है, अतः अतीतादिके अध्यासकी अनुपपत्ति नहीं है, अतिप्रसङ्ग–परिहारके लिए चैतन्यको विषयसम्बन्धमें वृत्तिके उपरागकी अपेक्षा होनेपरभी अधिष्ठानत्वेन वृत्तिकी अपेक्षा नहीं है इसी रीतिसे नित्यपरोक्ष स्थलमें तथा स्मृतिस्थलमेंभी अध्यासकी अनुपपत्तिका अभाव जानना । प्रातिभासिक विषयका प्रातिभासिकी वृत्तिमें अध्यास न होनेपरभी अधिष्ठानविषयक जो वृत्ति तादृश वृत्तिसे अभिव्यक्त चैतन्यमेंही अध्यास है, अतः कोई अनुपपत्ति नहीं । शङ्कते न चेति । रूप्यादिक प्रातिभासिक पदार्थ इदमंशावच्छिन्न चैतन्यमें कल्पित हैं, और भासित होते हैं,–अविद्याकी वृत्तिमें प्रतिबिम्बित चैतन्यसे, अतः विषयिरूप ज्ञानमें विषयका अध्यास कैसे; इति न च वाच्यम् क्यों ? एकावच्छिन्ने=शुक्त्युपहित चैतन्यमेंही अपरावच्छेदेन=अविद्यावृत्तिका उपहितत्व होनेसे निरपेक्ष उपाधिवत् यहाँपर उपाधिओंको भेदकत्वका अभाव होनेसे=वे ही उपाधियाँ स्वोपहितोंका परस्पर भेद करती हैं, जो परस्पर

निरपेक्ष होके स्वोपहितकी अवच्छेदक होती हैं, जैसे भिन्नदेशस्थ दो घट स्वोपहित आकाशके भेदक होते हैं, परन्तु घट और घटाकार वृत्ति ये दोनों उपहितके भेदक नहीं होते हैं, फलतः निरपेक्षोपाधिस्थलमें जैसे एकोपहितका द्वितीयोपहितसे भेद होता है तैसे शुक्त्युपहित चेतनका वृत्त्युपहित चेतनसे नहीं; अत एव=उक्तविधोपाधिओंको स्वोपहितके प्रति भेदकत्व न होनेसेही, अभियुक्तैः=पञ्चपादिकाविवरणकारादिसे फलैक्यात्=अभिव्यक्तरूप जो फलत्व तादृश फलत्वाश्रय चैतन्यको परस्पर तादात्म्यापन्न शुक्तिरजतादिसे अवच्छिन्न होनेसे ज्ञानस्य=शुक्त्यवच्छिन्न अविद्यावृत्त्यवच्छिन्न चैतन्यका ऐक्य कहा जाता है। शङ्कते न चेति। रूप्यादिको स्वज्ञानमें अध्यस्तत्व होने पर रूप्यादिविषयक जो ज्ञान उस ज्ञानका अज्ञान होनेपर भ्रमकी उत्पत्ति होगी, और रूप्यादिविषयक जो ज्ञान उस ज्ञानका ज्ञान होनेपर रूप्यादिकी निवृत्ति होगी, क्यों? अधिष्ठानके अज्ञानसे तथा अधिष्ठानके ज्ञानसे क्रमशः अध्यासकी उत्पत्ति तथा निवृत्तिको नियत होनेसे, और 'ज्ञानं रजतम्' इत्याकारक प्रतीतिका भी प्रसङ्ग है, क्योंकि अधिष्ठानसे अनुविद्ध होके अध्यस्तकी प्रतीति होती है; इति न च वाच्यम्। क्यों? रजताकार जो वृत्ति है तादृशवृत्त्यवच्छिन्न चैतन्यको रजतभ्रमके अधिष्ठानत्वका अनङ्गीकार होनेसे—

इदमंशावच्छिन्नचैतन्यमेव तु रजतभ्रमाधिष्ठानम्। तच्च दैवाद्रजताकारवृत्त्यवच्छिन्नचैतन्यमपि, नैतावता भ्रमादिष्ठानत्वे तदपेक्षा। तस्य च भ्रमविरोधिशुक्तित्वाद्याकारेणाज्ञानं भ्रमकारणम्। तेनाकारेण ज्ञानं भ्रमनिवर्तकम् अतएव न ज्ञानं रजतम् इति भ्रमाकारापत्तिः। वृत्त्यवच्छिन्नस्यैव ज्ञानत्वात्तस्य चाधिष्ठानत्वाभावात्। अधिष्ठान–तादात्म्येन चारोप्यप्रतीतिरिति इदंरजतमित्येव भ्रमाकारः। ननु, घटादेः स्वसन्निकृष्टेन्द्रियजन्यस्वज्ञानात् पूर्वं सत्वेन तत्राध्यासो न युक्तः। नच या घटेन्द्रियसन्निकर्षजा वृत्तिस्तया घटो न प्रकाश्यः। येन च प्रकाश्यो घटाधिष्ठानचैतन्येन न तत्सन्निकर्षजमिति वाच्यम्। वृत्त्यतिरिक्तज्ञाने मानाभावात्। अज्ञाननिवृत्तेरपि तत एव भावादितिचेन्न। वृत्त्युदयात् प्रागज्ञातार्थसिद्ध्यर्थं वृत्त्यतिरिक्तज्ञानस्यावश्यमभ्युपेयत्वात्। अन्यथा तस्य साधकाभावेन शशशृङ्गतुल्यतया सन्निकर्षतज्जन्यज्ञानहेतुत्वेन प्राक् सत्त्वकल्पना निष्प्रामाणिकी स्यात्।

इदमंशावच्छिन्न चैतन्यही रजतभ्रमका अधिष्ठान है और वह अनिवार्यसंगत्या रजताकारवृत्त्यवच्छिन्न चैतन्यभी है, एतावता भ्रमाधिष्ठानत्वमें रजताकार–वृत्त्यवच्छिन्नत्वेन चैतन्यकी अपेक्षा नहीं है, तस्य च=इदमंशावच्छिन्न चैतन्यका भ्रमविरोधि जो शुक्तित्वादि तादृशशुक्तित्वाद्याकारेण अज्ञान भ्रमका कारण है, और तेनाकारेण ज्ञान भ्रमका निवर्त्तक है, अत एव=रजतविषयक मिथ्याज्ञानको भ्रमका अधिष्ठान न होनेसेही 'ज्ञानं रजतम्' इत्याकारक भ्रमके आकारकी आपत्ति नहीं, वृत्त्यवच्छिन्नकोही ज्ञानत्व होनेसे और उसको अधिष्ठानत्वका अभाव होनेसे, और अधिष्ठानके साथ तादात्म्यसे आरोप्यकी प्रतीति होती है अतः 'इदं रजतम्' ऐसाही भ्रमका आकार होता है। शङ्कते नन्विति। घटादेः=घटादिको स्वसन्निकृष्ट जो इन्द्रिय

तादृश इन्द्रियजन्य जो ज्ञान, उस ज्ञानसे पूर्व विद्यमान होनेसे तत्र=उक्त स्वज्ञानमें अध्यास युक्त नहीं है। घट और इन्द्रियके सन्निकर्षसे उत्पन्न होनेवाली जो वृत्ति है, तया=उस वृत्तिसे घट प्रकाश्य नहीं है और जिस घटाधिष्ठान चैतन्यसे घट प्रकाश्य है वह सन्निकर्षसे जन्य नहीं है, इति न च वाच्यम् क्यों ? वृत्तिरूप ज्ञानसे अतिरिक्त ज्ञानमें प्रमाणका अभाव होनेसे, अज्ञानकी निवृत्तिकोभी वृत्तिरूप ज्ञानसेही हो जानेसे, सिद्धान्तीका समाधान इति चेन्न; क्यों ? वृत्तिके उदयसे पहिले अज्ञात अर्थकी सिद्धिके लिए वृत्तिसे अतिरिक्त ज्ञानको अवश्य अङ्गीकरणीय होनेसे, अन्यथा तस्य=उस अर्थके साधक प्रमाणका अभाव होनेसे उस अर्थको शशशृङ्गकी तुल्यता होगी और ऐसा होनेपर सन्निकर्ष और सन्निकर्षजन्यज्ञान एतदुभयहेतुत्वेन विषयके प्राक्सत्त्वकी कल्पना निष्प्रामाणिकी हो जायगी।

तस्माद्यादृशस्य घटादेरिन्द्रियसन्निकर्षाश्रयत्वेन ज्ञानकारणत्वम् तादृशस्य साधकं किञ्चिन्मानमवश्यमभ्युपेयम्। अन्यथा अन्वयव्यतिरेकयोरग्रहेण कार्यकारणभावाग्रहात् सर्वमानमेयादिव्यवस्थोच्छिद्येत। तच्च मानं न वृत्तिरूपम् तदानीं वृत्तिकारणाप्रवृत्तेरिति तद्विलक्षणं नित्यं स्वप्रकाशमेकमेव लाघवात्। वृत्तिगतोत्पत्ति-विनाशजडत्वादिभिस्तद-संस्पर्शात्। तदेव च नानाविधोपाधिसम्बन्धात् नानाविधव्यवहारभाग्भवति। नभइव घटमणिमल्लिकाद्युपाधिभेदेन। तच्चाज्ञानसाधकत्वात् स्वरूपतो नाज्ञाननिवर्त्तकम् वृत्त्युपरक्तं त्वज्ञाननिवर्त्तकमिति न वृत्तेरनुपयोगः। तथा च सर्वाज्ञानसाधके साक्षिचैतन्ये तस्मिन् घटादेरध्यास इति कानुपपत्तिः। तदुक्तं सुरेश्वराचार्यैः। सर्वतीर्थदृशां सिद्धिः स्वाभि-प्रेतस्य वस्तुनः। यदभ्युपगमादेव तत्सिद्धिर्वार्यते कुतः॥ इति। सर्वतीर्थदृशां तावत् सामान्यं मानलक्षणम्। अज्ञातार्थावगमनं त्वदुक्तं तन्न युज्यते॥ स्वतःसिद्धोऽथवासिद्धो देहादिस्ते भवन् भवेत्। प्रमाणानां प्रमाणत्वं नोभयत्रापि लभ्यते। प्रमाणान्यन्तरेणापि देहादिश्चेत्प्रसिद्ध्यति। वद प्रमाणैः कोन्वर्थो न हि सिद्धस्य साधनम्। स्वतोऽसिद्धे प्रमेये तु नासतो व्यञ्जिका प्रमा। नाभिव्यनक्ति सविता शशशृङ्गं स्फुरन्नपि॥ इति।

ततः यादृश घटको इन्द्रियसन्निकर्षाश्रयत्वेन ज्ञानकारणत्व है, तादृश घटका साधक कोई मान अवश्य मानना चाहिए अन्यथा अन्वयव्यतिरेकका ग्रहण न होनेसे कार्यकारण-भावका ग्रहण न होगा, और कार्यकारणभावका ग्रहण न होनेसे सर्व मानमेय-व्यवस्था उच्छिन्न होगी। और वह मान वृत्तिरूप नहीं हो सकता है, क्यों ? उसकालमें वृत्तिके कार-णकी अप्रवृत्तिसे; वृत्तिसे विलक्षण नित्य स्वप्रकाशरूपही लाघवसे उस ज्ञानको मानना चाहिए, वृत्तिगत जो उत्पत्तिविनाशजडत्वादि धर्म हैं उन धर्मोंसे उसका संस्पर्श न होनेसे, वही चैतन्यरूपज्ञान बहुविध उपाधिओंके सम्बन्धसे बहुविध व्यवहारको भजनेवाला होता है, जैसे घटादि उपाधि विशेषसे नभ बहुविध प्रतीत होता है, और वह चेतन अज्ञानका साधक होनेसे, स्वरूपसे अज्ञानका निवर्त्तक नहीं, वृत्त्युपरक्त होके अज्ञानका निवर्त्तक है, अतः वृत्तिका

अनुपयोग नहीं है, फलतः सर्वाज्ञानका साधक जो साक्षी चैतन्य है, उसी प्रसिद्ध साक्षी चैतन्यमें घटादिका अध्यास है, अतः कोई अनुपपत्ति नहीं; इस अर्थको सुरेश्वराचार्यने कहा है–सर्वदार्शनिकोंको स्वाभिप्रेत वस्तुकी सिद्धि जिसके माननेसे ही होती है, उसकी सिद्धि क्यों वारण की जाती है; सर्वदार्शनिकोंका मानका सामान्यलक्षण है,–अज्ञातार्थावगम वह त्वदुक्त अर्थमें युक्त नहीं होता है, इसीको स्पष्ट करते हैं। स्वेति; ते=तुम्हारे मतमें स्वतः सिद्ध अथवा असिद्ध देहादि हुए प्रमाणके विषय होंगे, परन्तु इन दोनों पक्षोंमें प्रमाणोंका प्रमाणत्व नहीं बनता है, क्योंकि यदि प्रमाणोंके विनाभी देहादि प्रसिद्ध होते हैं तब कहोकि पश्चात् प्रमाणोंका क्या प्रयोजन है, सिद्धका तो साधन नहीं होता है, और प्रमेयको स्वतः असिद्ध होनेपर प्रमा असत् की व्यञ्जिका न होगी, क्योंकि प्रकाशमान हुआ भी सविता शशशृङ्गका प्रकाश नहीं करता है॥

न च–"घटोऽयमित्यसौ वृत्तिराभासस्य प्रसादतः। विज्ञातो घट इत्युक्तिर्ब्रह्मानुभवतो भवेत्"॥ इति वदता वृत्तिप्रतिविम्बितस्य घटानधिष्ठानचैतन्यस्य घटानुभवत्वोक्तिविरोध इतिवाच्यम्। वृत्तिप्रतिविम्बितचैतन्यस्य घटाधिष्ठानचैतन्येन सह भेदाभावात् चैतन्यस्यैकत्वात्। यथाचैकस्य चैतन्यस्य सर्वभासकत्वं तथा विस्तरेण उपपादितम्। नाभाव उपलब्धेरित्यस्मिन्नधिकरणे भाष्यकृद्भिः। ननु दृश्यत्वान्यथानुपपत्त्या मिथ्यात्वमित्यर्थापत्तिर्विवक्षिता, किंवा सत्यत्वे दृश्यत्वं न स्यादित्यनुकूलतर्कमात्रम्, नाद्यः–तत्सामग्र्यभावात्।

शङ्कते न चेति। 'अयं घटः' यह वृत्ति आभासके प्रसादसे होती है। और 'ज्ञातो घटः' यह उक्ति ब्रह्मरूप अनुभवसे होती है। ऐसा कहनेवाले आपके आचार्य्यके साथ घटका अनधिष्ठान जो वृत्तिप्रतिबिम्बित चैतन्य है, वही घटका अनुभव है इस उक्तिका विरोध होगा, इति न च वाच्यम्, क्यों? वृत्तिमें प्रतिबिम्बित चैतन्यका घटाधिष्ठान चैतन्यके साथ भेदके न होनेसे। चैतन्यस्य=शुद्ध चैतन्य और वृत्त्युपहित चैतन्यको, एकत्वात्=तादात्म्य होनेसे। और जैसे एकही चैतन्यको सर्वभासकत्व है तैसे विस्तरसे भाष्यकारने। नाभाव उपलब्धेः (वे० २।२।२८)। इस अधिकरणमें उपपादन किया है। शङ्कते नन्विति। दृश्यत्वकी अन्यथा अनुपपत्तिसे पक्षमें मिथ्यात्व है इत्याकारिका अर्थापत्ति आपको विवक्षिता है? किं वा सत्यत्व होनेपर दृश्यत्व न होगा इत्याकारक अनुकूलतर्कमात्र? नाद्यः=इन दोनोमें आदिम पक्ष तो नहीं कह सकते हो, क्यों? तत्सामग्र्यभावात्=अर्थापत्तिकी सामग्रीका अभाव होनेसे—

तथाहि–आक्षेप्यस्योपपादकत्वं, प्रमाणाविरुद्धत्वम्, आक्षेपकस्यानुपपाद्यमानत्वम्, प्रमितत्वञ्चेत्यर्थापत्तिसामग्री। प्रकृते चाक्षेप्यं सम्बन्धिनो मिथ्यात्वम् नाक्षेपकस्य सम्बन्धस्योपपादकम्। प्रत्युत प्रतिकूलमेव, न चाध्यस्ततत्वरूपसम्बन्धस्य न तत्प्रतिकूलत्वम्। तस्याद्याप्यसिद्धेरनाक्षेपकत्वात्। प्रत्यक्षादिविरुद्धंचेदमाक्षेप्यम्। नाप्येकस्य दृश्यत्व-

स्योपपत्तये प्रमितानेकत्यागो युक्तः । आक्षेपकश्च न दृगध्यस्तत्वं तस्यैव फलत आक्षेप्यत्वात् । नापि दृग्विषयत्वरूपो दृक्सम्बन्धः । तत्रासिद्धेः । न दृगधीनसिद्धिकत्वम् । दृग्विषयत्वातिरिक्तस्य तस्यासिद्धेः नान्त्यः । सत्त्वेऽप्युक्तरीत्या सम्बन्धान्तरेणैव दृश्यत्वस्योपपन्नतया अनुपपत्तेरत्राभावात् इति चेन्न;।

अर्थापत्तिकी सामग्री दिखलाते हैं तथाहीति । रात्रिभोजनादिरूप आक्षेप्यको उपपादकत्व होना चाहिए और प्रमाणसे अविरुद्धत्वभी चाहिए, आक्षेपकस्य=स्थौल्यादिको अनुपपद्यमानत्व होना चाहिए, और प्रमितत्वभी; यह अर्थापत्तिकी सामग्री है, प्रकृतमें आक्षेप्य है-प्रपञ्चरूप सम्बन्धिका मिथ्यात्व, वह मिथ्यात्व सम्बन्धस्य=दृक्सम्बन्धरूप जो दृश्यत्व तादृश दृश्यत्वरूप जो आक्षेपक उसका उपपादक नहीं है=जैसे रात्रिभोजनरूप आक्षेप्य दिवाऽभोजिवृत्ति स्थौल्यरूप आक्षेपकका उपपादक होता है तैसे दृक्सम्बन्धरूप सम्बन्धका सम्बन्धिरूप जो प्रपञ्च तादृशप्रपंचवृत्ति जो मिथ्यात्वरूप आक्षेप्य वह मिथ्यात्वरूप आक्षेप्य दृक्सम्बन्धरूप जो दृश्यत्व तद्रूप आक्षेपक उसका उपपादक नहीं है प्रत्युत प्रतिकूलही है=ब्रह्मवादविरोधी वादीका अभिप्राय यह है कि-मिथ्यापदार्थका सम्बन्धही नहीं होता है, अतः यदि प्रपञ्चमें मिथ्यात्व होगा तो उसका अर्थात् प्रपञ्चका दृक्के साथ सम्बन्ध नहीं बनेगा। अतः आक्षेपकका उपपादकत्व नहीं है । अध्यस्तत्वरूप सम्बन्धनिष्ठ मिथ्यात्वका प्रतिकूलत्व नहीं है=हमलोग मिथ्यापदार्थका दृक्केसाथ कोई वास्तविक सम्बन्ध नहीं मानते हैं, किन्तु अध्यस्तत्व सम्बन्ध मानते हैं, इसके प्रति तो मिथ्यात्वका प्रतिकूलत्व नहीं है, अर्थात् यह तो मिथ्यात्वके सामानाधिकरण, हो सकेगा और मिथ्यात्व इसका तो उपपादक बन सकेगा । न च=यहभी नहीं हो सकता, क्यों ? तस्य=अध्यस्तत्वको आजभी असिद्ध होनेसे अनाक्षेपकत्व है अतः यह नहीं हो सकता है । और यह आक्षेप्य प्रत्यक्षादिसे विरुद्ध भी है='सन् घटः' इत्यादिसे विरुद्ध है । और एक दृश्यत्वकी उपपत्तिके लिए प्रत्यक्षादिसे प्रमित जो प्रपञ्चनामक अनेक वस्तु उसका त्यागः=मिथ्यात्वकल्पनरूपत्याग युक्त नहीं है । और आक्षेपकभी दृगध्यस्तत्वरूप नहीं हो सकता है, क्यों ? उसको ही फलतः आक्षेप्य होनेसे, और दृग्विषयत्वरूपभी दृक्सम्बन्ध नहीं बन सकता है । क्यों ? तुह्मारे मतमें असिद्ध होनेसे, और दृगधीनसिद्धिकत्वरूपभी नहीं बन सकता है क्यों ? दृग्विषयत्वसे अतिरिक्त उसकी असिद्धि होनेसे । नान्त्यः=तर्कपक्षभी नहीं बन सकता है, क्यों ? प्रपञ्चमें सत्व होनेपरभी उक्त रीतिसे अन्य सम्बन्धसे ही दृश्यत्वकी उपपत्ति होनेसे अनुपपत्तिका अभाव है अतः । इति चेन्न; क्यों ?

अनुकूलतर्कस्यैव प्रक्रान्तत्वेनार्थापत्तिर्वेत्यादिविकल्पानवकाशात् । उभयथाप्यदोषाच्च । तथाहि-सत्यत्वे दृग्दृश्यसम्बन्धानुपपत्तिः । मिथ्यात्वं च तदुपपादकम् । न च तत्सम्बन्धप्रतिकूलम् । मिथ्यात्वेऽपि शुक्तिरूप्यस्येदमंशे अध्यस्तत्वरूपसम्बन्धदर्शनेन सम्बन्धसामान्ये प्रतिकूलत्वाभावात् । आक्षेपकोऽपि दृग्विषयत्वरूपो दृक्सम्बन्ध एव । अध्यासरूपस्य दृग्विषयत्वस्य ममापि सम्प्रतिपत्तेः तात्त्विकस्यैव तस्य निषेधात्

न चाध्यस्तत्वस्य अद्याप्यसिद्धिः; दृक्सम्बन्धसामान्यस्याक्षेपकस्य प्रसक्तविशेषनिषेधेऽप्यध्यस्तत्वरूपविशेषपर्यवसानेनासिद्ध्यभावात्। न हि अध्यस्तसम्बन्धत्वेनाक्षेपकता। किन्तु सम्बन्धत्वेन। स च अध्यस्ततत्वसम्बन्धसम्भावनयाप्यबाधित एवेति।

अनुकूल तर्ककोही उपक्रान्त होनेसे, अर्थापत्तिर्वा, इत्यादि विकल्पको अनवकाश होनेसे, और दोनों पक्षोंमेंभी दोषके न होनेसेभी=अनुकूलतर्क तथा अर्थापत्ति इन दोनोंकी विवक्षा होनेपरभी दोष नहीं है। तथाहि सत्यत्व होनेपर दृग्दृश्यके सम्बन्धकी अनुपपत्ति है। और मिथ्यात्व उक्त अध्यस्तसम्बन्धका उपपादक है। और वह मिथ्यात्व सम्बन्धके प्रतिकूल नहीं है, क्यों? मिथ्यात्व होनेपरभी शुक्तिरूप्यके इदमंशमें अध्यस्तत्वरूप सम्बन्धके देखनेसे, सम्बन्धसामान्यमें प्रतिकूलत्वका अभाव होनेसे। और आक्षेपकभी दृग्विषयत्वरूप दृक्सम्बन्ध ही है, अध्यासरूप दृग्विषयत्वकी मुझकोभी सम्प्रतिपत्ति होनेसे=अध्यासरूप दृग्विषयत्वको हम भी मानते हैं। तात्त्विक दृग्विषयत्वका ही निषेध होनेसे, अध्यस्तत्वकी आज भी असिद्धि है, न च=नहीं है, क्यों? आक्षेपक जो दृक्सम्बन्धसामान्य उसके, प्रसक्त विशेषके निषेध होनेपर, अध्यस्तत्वरूप विशेषमें पर्यवसानसे असिद्धिका अभाव होनेसे; उक्त सम्बन्धको अध्यस्तसम्बन्धत्वेन आक्षेपकत्व नहीं है, किन्तु सम्बन्धत्वेन है। स च=और उक्तविध सम्बन्ध तो अध्यस्तत्वसंभावनासे भी अबाधित ही है।

न च घटस्य ज्ञानमितिधीसिद्धसम्बन्धसामान्यस्याध्यस्तत्वं न विशेषः न हि रूप्यस्य शुक्तिरिति प्रतीतिरस्तीति वाच्यम्। रूप्यस्य शुक्तिरिति प्रतीत्यभावेऽपि रूप्यस्य शुक्तिरधिष्ठानमितिप्रतीत्या अध्यस्तत्वस्य सम्बन्धविशेषत्वसिद्धेः; चैत्रस्य मैत्र इति प्रतीत्यभावेऽपि चैत्रस्य पिता मैत्र इति प्रतीतिवत् आक्षेप्यमत्र प्रमाणाविरुद्धमेव; अध्यक्षादिविरोधस्य प्रागेव परिहृतत्वात्। आक्षेपके च प्रमितत्वमनपेक्षितमेव अप्रमितेनापि प्रतिबिम्बेन बिम्बाक्षेपदर्शनात्। तर्कपरतायामपि नाप्रयोजकता। सत्यत्वे सम्बन्धानुपपत्तेर्भवदुक्तन्यायखण्डनेन प्रथमत एवोपपादितत्वात्। दृश्यत्वाभावस्यापादकमत्र सत्त्वमनिर्वाच्यत्वाभावो वा त्रिकालाबाध्यत्वं वा, उभयथाऽपि न दोषः। न चानिर्वाच्यत्वाभावस्य तुच्छे परोक्षधीवेद्यतया दृश्येऽपि सत्त्वेन व्यभिचारः। कारणासामर्थ्येन तत्र तदाकारवृत्तिसमुल्लासेऽपि दृक्सम्बन्धरूपस्य दृश्यत्वस्य तुच्छविरोधिनः तत्राभावात्। तुच्छाकारताया वृत्तिगतत्वेपि वृत्तिसम्बन्धस्य तुच्छगतत्वाभावोपपत्तेः।

शङ्कते न चेति। 'घटस्य ज्ञानम्' इत्याकारिका जो धी तादृशधीसे सिद्ध जो सम्बन्ध सामान्य तादृशसम्बन्धसामान्यका अध्यस्तत्वरूप विशेष नहीं हो सकता है; यतः 'रूप्यस्य शुक्तिः' ऐसी प्रतीति नहीं है=जहाँ सम्बन्धसामान्यका अध्यस्तत्वमें पर्यवसान होता है, वहाँ ऐसी प्रतीति नहीं होती है, जैसे रूप्यका शुक्तिके साथ अध्यस्तत्वरूप सम्बन्ध है, वहाँपर 'रूप्यस्य शुक्तिः' ऐसी प्रतीति नहीं है, इति न च वाच्यम्; क्यों? रूप्यकी शुक्ति है ऐसी प्रतीतिके न

होनेपरभी रूप्यका अधिष्ठान शुक्ति है ऐसी प्रतीतिसे अध्यस्तत्वनिष्ठ सम्बन्धविशेषकी सिद्धि होनेसे। जैसे चैत्रका मैत्र है ऐसी प्रतीतिके न होनेपरभी चैत्रका पिता मैत्र है ऐसी प्रतीति होती है तैसे। और मिथ्यात्वरूप जो यहाँ आक्षेप्य है वह तो प्रमाणसे अविरुद्धही है, अध्यक्षादिके विरोधको प्रथमही कृतपरिहार होनेसे। और आक्षेपकमें प्रमितत्व तो अनपेक्षितही है, अप्रमित प्रतिबिम्बसेभी बिम्बाक्षेपके देखनेसे; तर्कपरता होनेपरभी अप्रयोजकत्व नहीं है, सत्यत्वमें सम्बन्धकी अनुपपत्तिको भवदुक्तन्यायखण्डनपूर्वक प्रथमही उपपादित हो चुकनेसे। और दृश्यत्वाभावका आपादक जो यहाँपर सत्त्व है वह अनिर्वाच्यत्वाभावरूप हो अथवा त्रिकालाबाध्यत्वरूप हो, उभयप्रकारसेभी दोष नहीं है। अनिर्वाच्यत्वाभावको तुच्छमें परोक्षधीसे वेद्य होनेसे दृश्येऽपि=तुच्छरूप दृश्यमेंभी सत्त्व होनेसे व्यभिचार है नच=व्यभिचार नहीं है क्यों? कारणके सामर्थ्यसे तत्र=तुच्छविषयक तुच्छाकार वृत्तिका समुल्लास होनेपरभी तुच्छविरोधि दृक्सम्बन्धरूप दृश्यत्वका तत्र=तुच्छमें अभाव होनेसे और तुच्छाकारताको वृत्तिगत होनेपरभी वृत्तिसम्बन्धको तुच्छगतत्वाभावकी उपपत्तिसे।

नाऽपि यथा सतो ब्रह्मणः स्वव्यवहृत्या सम्बन्धः; तथा घटादेरपि सत एव स्वज्ञानेन सम्बन्धोऽस्त्विति वाच्यम्। दृष्टान्ते ब्रह्मण्यध्यासस्यैव व्यवहृतिसम्बन्धत्वात्। तथाचोभयसम्बन्धिसत्त्वे विषयविषयिभावानुपपत्तिः, नाप्रयोजकत्वादिना परिभूयते। एतेनाध्यासिकः सम्बन्धोनाम अध्यस्तसम्बन्धो वा अध्यस्तत्वमेव वा आद्ये सम्बन्धस्य मिथ्यात्वेऽपि सम्बन्धिनो दृश्यस्य दृश इव मिथ्यात्वानुपपत्तिः। द्वितीये ज्ञानस्याप्यध्यस्तत्वेन तत्राध्यासानुपपत्तिः। स्वज्ञानपरम्परायामध्यासस्वीकारे अनवस्था चेति निरस्तम्। ज्ञानं हि वृत्त्यवच्छिन्नं चैतन्यम्। तत्रावच्छेदिकाया वृत्तेर्जडाया अध्यस्तत्वेऽप्यवच्छेद्यस्य चैतन्यस्य प्रकाशरूपस्य अनध्यस्तत्वेन तत्र दृश्यस्याध्यासात् दृश्यमिथ्यात्वेऽप्यनवस्थाविरहस्योपपत्तेः।

जैसे सद्रूप ब्रह्मका स्वविषयक व्यवहारके साथ सम्बन्ध है, तैसे सद्रूपघटादिकाही स्वविषयके साथ सम्बन्ध रहो, इत्यपि न वाच्यम्=ऐसाभी नहीं कहना चाहिए, क्यों? दृष्टान्तरूप ब्रह्ममें अध्यासकोही व्यवहृतिका सम्बन्ध होनेसे=ब्रह्म और व्यवहारकाभी अध्यासरूपही सम्बन्ध है; फलतः उभयसम्बन्धिके सत्त्वमें जो विषयविषयिभावकी अनुपपत्ति है, वह अप्रयोजकत्वादिसे न्यक्कृत नहीं हो सकती है। एतेन=इस कथनसे आध्यासिक सम्बन्ध नाम किसका है, अध्यस्ताभिन्नसम्बन्धका नाम आध्यासिक सम्बन्ध है अथवा अध्यस्तत्वका नाम आध्यासिक सम्बन्ध है, प्रथमपक्ष अङ्गीकार करो तो सम्बन्धको मिथ्यात्व होनेपरभी दृक्की तरह सम्बन्धिरूप दृश्यके मिथ्यात्वकी अनुपपत्ति है। और द्वितीयपक्ष अङ्गीकार करो तो ज्ञानकेभी अध्यस्त होनेसे तत्र=ज्ञानमें अध्यासकी अनुपपत्ति है, स्वविषयकज्ञानपरम्परामें अध्यास अङ्गीकार करनेपर अनवस्थाभी है। यहभी खण्डित हुआ। खण्डनके प्रकारको स्पष्ट करते हैं ज्ञानमिति। ज्ञान नाम है वृत्त्यवच्छिन्न चैतन्यका तहाँ अवच्छेदिका जो जडवृत्ति है, उसको अध्यस्त

होनेपर प्रकाशस्वरूप अवच्छेद्य चैतन्यको अनध्यस्त होनेसे तत्र=उक्त चैतन्यमें दृश्यका अध्यास होनेसे दृश्यको मिथ्यात्व होनेपरभी अनवस्थाके विरहकी उपपत्ति होनेसे=वृत्तिरूपही ज्ञान हो तब ज्ञानोंकी अनन्तता होनेपर अनवस्था हो सकती है परन्तु अधिष्ठानभूत ज्ञान्को नित्य तथा एक होनेसे अर्थात् स्वेतरज्ञानमें अध्यस्त न होनेसे अनवस्थाका सम्भव नहीं है ।

अतएव शाब्दवृत्तिविषयो ब्रह्म न वृत्तौ कल्पितमविद्याविषयो ब्रह्माविद्यायां न कल्पितं यथा, तथा दृश्यं न दृशि कल्पितम् । तथा च दृक्दृश्यादेस्तात्त्विक एव सम्बन्धः । सामान्यसम्बन्धेनैवातिप्रसङ्गे निरस्ते विशेषजिज्ञासा विशेषोक्तिश्च विशेषजिज्ञासादिवदनर्थिकैवेतिनिरस्तम् । वृत्त्यविद्ययोः ब्रह्मणोऽनध्यासेऽपि तयोरेव ब्रह्मण्यध्यासात् सम्बन्धोपपत्तेः । अतस्तत्र तात्त्विकसम्बन्धाभावात् कथं तद्दृष्टान्तेन दृग्दृश्योरपि तात्त्विकसम्बन्ध इत्युच्यते तथा च प्रसिद्धविशेषे बाधिते सामान्यस्यैव बाधशङ्कया अतिप्रसङ्गे प्राप्ते विशेषजिज्ञासायां विशेषोक्तेश्च साफल्यात् न ते निरर्थिके।

अतएव शब्दजन्य वृत्तिका विषय ब्रह्म जैसे शाब्दवृत्तिमें कल्पित नहीं है, और अविद्याका विषय ब्रह्म अविद्यामें कल्पित नहीं है, तैसे दृश्यभी दृक्में कल्पित नहीं है, फलतः दृग्दृश्यका तात्त्विकही सम्बन्ध है, इस रीतिसे सामान्यसम्बन्धेनैव=सत्यरूप सम्बन्धसामान्यसेही अतिप्रसङ्गके निरस्त होनेपर विशेषकी जिज्ञासा और विशेषकी उक्ति विशेषगतविशेषकी जिज्ञासावत् अनर्थकही है इति निरस्तम्=यहभी खण्डित हुआ, खण्डनकाही स्पष्टीकरण करते हैं, वृत्तीति । वृत्ति तथा अविद्या इन दोनोंमें ब्रह्मका अध्यास न होनेपरभी, इन दोनोंकाही ब्रह्ममें अध्यास होनसे सम्बन्धकी उपपत्ति है, अतः उक्त स्थलमें तात्त्विक सम्बन्धका अभाव होनेसे अतात्त्विक सम्बन्धके दृष्टान्तसे दृग्दृश्यका तात्त्विक सम्बन्ध है यह कैसे कहा जाता है, तथा च प्रसिद्धविशेषे=सत्यसम्बन्धके बाधित होनेपर सम्बन्ध सामान्यकेही बाधककी शङ्कासे अतिप्रसङ्ग प्राप्त होनेपर विशेषकी जिज्ञासाका तथा विशेषकी उक्तिका साफल्य होनेसे ते=विशेष जिज्ञासा और विशेषोक्ति ये दोनों निष्फल नहीं हैं=यदि सत्य सम्बन्धही विशेष है, तो विप्रकृष्ट सम्बन्धियोंमें सत्यसम्बन्धका असम्भव होनेसे सम्बन्धसामान्यही न होगा, यदि यों कहो कि विप्रकृष्टसम्बन्धिविषयक विशिष्टधी सम्बन्धको विषयही नहीं करती है, तब सन्निकृष्टसम्बन्धिविषयकविशिष्टधी सम्बन्धको विषय नहीं करेगी, यह अतिप्रसङ्ग होगा । अतः मिथ्यासम्बन्धरूप विशेषान्तर मानना चाहिए और वह मिथ्यासम्बन्धरूप विशेषान्तर कैसे उत्पन्न होता है ? इत्याकारिका जिज्ञासा और उस विशेषान्तरका उपपादन व्यर्थ नहीं है, क्योंकि सम्बन्धसामान्यस्थापनद्वारा उक्त अतिप्रसङ्गका निरासही फल है ।

एतेन सम्बन्धस्य प्रामाणिकत्वे यथा कथंचन लक्षणं भविष्यति तथाहि—संयोगसमवायान्तर्भावे तल्लक्षणमेव लक्षणं भविष्यति तदनन्तर्भावे तु तदुभयभिन्नसम्बन्धत्वमेव लक्षणमस्त्विति, निरस्तम् उक्तयुक्त्या प्रामाणिकसम्बन्धस्य संयोगसमवायान्तर्भावस्य च दूषितत्वात् । तदुभयबहिर्भूतसम्बन्धत्वं तु वयमपि न निराकुर्मः । किन्तु तस्य प्रामाणि-

कत्वम् । किञ्च दृग्दृश्ययोर्न तात्त्विकसम्बन्धः । सम्बन्धभिन्नत्वेऽनवस्थानात् । न च दृश्यत्वान्तरहीनस्य दृश्यत्वादेरिव सम्बन्धस्यापि स्वनिर्वाहकत्वं कचिद्भविष्यति इति वाच्यम् । दृश्यत्वमपि दृक्सम्बन्ध एव तस्य च स्वनिर्वाहकत्वम् न मायिकं विनेति नास्माकं प्रतिकूलमभ्यधायि देवानांप्रियेण, अभिन्नत्वे सम्बन्धत्वायोगात् । न चैवमाध्यासिकसम्बन्धत्वेऽप्येतद्दोषप्रसङ्गः तस्य मायिकत्वेन मायायाश्चाघटितघटनापटीयस्त्वेन सर्वानुपपत्तेः भूषणत्वात् न चातिप्रसङ्गनिराकरणार्थं दृग्दृश्ययोः सम्बन्धनिर्वचनं प्रकृतम् । न तु विषयत्वनिर्वचनम् अतो विषयत्वखण्डनमनुक्तोपालम्भनमिति वाच्यम् । विषयत्वखण्डनेन निरुच्यमानप्रकृतसम्बन्धस्यैव खण्डनात् ।

इस कथनसे सम्बन्धको प्रामाणिकत्व होनेपर जिस किस प्रकारसे लक्षणभी होगा; तथाहि उस सम्बन्धका, संयोग या, समवायमें अन्तर्भाव होनेपर संयोगका या समवायका लक्षण ही उसका लक्षण होगा, और उन दोनोंमें अन्तर्भाव न होनेपर संयोगसमवायभिन्नसम्बन्धत्व ही प्रकृत सम्बन्धका लक्षण हो, यह भी परास्त हुआ, परासन प्रकारकोही स्पष्ट करते हैं उक्तेति । उक्त युक्तिसे प्रामाणिक सम्बन्धको और संयोग समवायमें अन्तर्भावको दूषित हो चुकनेसे । संयोग तथा समवाय एतदुभयबहिर्भूत सम्बन्धत्वको हम भी निराकरण नहीं करते हैं, किन्तु उक्तरूपसम्बन्धके प्रामाणिकत्वका निराकरण करते हैं । किञ्च दृग्दृश्यका तात्त्विकसम्बन्ध नहीं है, उस सम्बन्धको सम्बन्धिओंसे भिन्न होनेपर अनवस्था होनेसे=सम्बन्ध और सम्बन्धिको परस्परसम्बद्ध करनेके लिए मध्यमें सम्बन्ध माननेपर अनवस्था होती है, यह कहनेका प्रयोजन नहीं कि अनवस्थास्थलमें आत्माश्रयादि भी रहते हैं । शङ्कते नचेति । जैसे दृश्यत्वरूप हेतुके ऊपर द्वितीय दृश्यत्व नहीं रहता है । फिरभी दृश्यत्वभी दृश्य ही है स्वपरका निर्वाहक होनेसे, तैसे सम्बन्धके ऊपर सम्बन्धान्तरके न रहनेपरभी सम्बन्ध सम्बद्ध रूपसे व्यवहृत हो सकेगा, स्वपरका निर्वाहक होनेसे इति नच वाच्यम् ; क्योंकि दृश्यत्वभी दृक्सम्बन्ध ही है और उसका स्वनिर्वाहकत्व तो मायिकत्वके विना नहीं बन सकता है, फलतः मन्दबुद्धि-द्वैतीने हम अद्वैतिओंके प्रतिकूल नहीं कहा है, अभिन्नत्वमें सम्बन्धत्वका अयोग है । ऐसा होनेपर आध्यासिकसम्बन्धमें भी इस दोषका प्रसङ्ग है न च=नहीं है, क्यों ? तस्य=उस आध्यासिकसम्बन्धको मायिक होनेसे और मायाको अघटितघटनामें पटीयस्त्व होनेसे सर्व-अनुपपत्तिओंको मायाका भूषणत्व है । शङ्कते न चेति । अतिप्रसङ्गके निराकरणकेलिए दृग्दृश्यके सम्बन्धका निर्वचन प्रकृत है, विषयत्वका निर्वचन नहीं । अतः विषयत्वका खण्डन अनुक्तोपालम्भ है इति नच वाच्यम्=विषयत्वके खण्डनसे निरुच्यमान प्रकृतसम्बन्धके ही खण्डनसे ।

न च विषयित्वानिरुक्तावपि विषयिणः सत्यत्ववत्, विषयत्वानिरुक्तावपि विषयः सत्यः स्यात् इति वाच्यम् । विषयित्वानिरुक्तावपि विषयाध्यासेनैव तदुपपत्त्या विषयिणः सत्यत्वं युक्तम् । विषयत्वानिरुक्तौ तु विषयस्य सत्यत्वं न युक्तम् । विषयिणो-

ऽनध्यस्तत्वे विषयाध्यासमन्तरेणान्यस्योपपादकस्याभावात् । यत्र तु विषयिण एवाध्यासः । तत्र विषयस्सत्य एव । यथा ज्ञानविषयो ब्रह्म; न चोभयाध्यासः शून्यवादप्रसङ्गात् । अन्यतराध्यासे च विनिगमकमनुवृत्तत्वव्यावृत्तत्वप्रकाशजडत्वादिकमेव तस्माद्विषयिणो नित्यदृशोऽनध्यासात् विषयस्यैवाध्यासः । न च प्रमाणजातं स्वविषयावरणेत्यादियुक्त्या दृग्विषयत्वरूपदृश्यत्वस्य हेतूकरणेन च त्वयापि विषयत्वं निर्वाच्यमेवेति वाच्यम् तत्त्वतोऽनिर्वाच्यत्वेऽप्यध्यस्तत्वेन घटादि–समकक्षनिर्वाच्यत्वस्य संभवात् ।

विषयित्वकी निरुक्तिके न होनेपरभी जैसे विषयिका सत्यत्व है तैसे विषयत्वकी निरुक्तिके न होनेपरभी विषय सत्य हो; इति न च वाच्यम्; क्योंकि विषयित्वकी निरुक्तिके न होनेपरभी विषयके अध्याससे ही विषयित्वकी उपपत्तिसे विषयिका सत्यत्व युक्त है, और विषयत्वकी अनिरुक्ति होनेपर विषयका सत्यत्व युक्त नहीं है, क्यों ? विषयीको अनध्यस्तत्व होनेपर विषयाध्यासके विना अन्यको उपपादकत्वका अभाव होनेसे । और जहाँपर विषयीका ही अध्यास होता है वहाँपर विषय सत्य ही होता है जैसे वृत्तिरूप ज्ञानका विषय ब्रह्म । दोनोंका अध्यास है न च=नहीं क्यों ? शून्यवादका प्रसङ्ग होनेसे । अन्यतराध्यासे च=विषय और विषयी इन दोनोंमेंसे अन्यतरके अध्यासको आवश्यक होनेपर विनिगमक=नियामक अनुवृत्तत्व व्यावृत्तत्व प्रकाशत्व जडत्वादिक हैं, ततः नित्यदृग्रूप जो विषयी है उसका अध्यास न होनेसे विषयका ही यहाँपर अध्यास है । शङ्कते नचेति । प्रमाणजातं स्वविषयावरण, इत्यादिविषयघटित उक्तिसे और दृग्विषयत्वरूप दृश्यत्वको हेतु करनेसे विषयत्व तुमसेभी निर्वचनके लायक है इति न च वाच्यम्; क्यों ? वस्तुतः निर्वचनके योग्य न होनेपरभी अध्यस्तत्वप्रयुक्तघटादिसमकक्ष निर्वाच्यत्वका संभवहोनेसे ।

ननु कथं प्रमाणज्ञानविषयोऽध्यस्त इति चेन्न प्रपञ्चविषयकज्ञाने तत्त्वावेदकत्वलक्षणप्रामाण्याभावादिति गृहाण । अतएव यादृशं विषयत्वं ते वृत्तिं प्रति चिदात्मनः । तादृशं विषयत्वं मे दृश्यस्यापि दृशं प्रतीति निरस्तम् । चिदात्मनोऽनध्यासेऽपि वृत्तेस्तत्राध्यस्तत्वेन दृष्टान्तेन प्रकृतेऽप्यनध्यासस्य वक्तुमशक्यत्वात् । स्यादेतत् मिथ्यात्वनिर्वचनात् तत्साधनं दृश्यत्वादिकं निर्वक्तव्यमेव नहि घटाद्यसंकीर्णाकारज्ञानं विना तद्विलक्षणव्यवहारः । अथ, निरुक्तासंकीर्णाकारज्ञानमात्रेण तदुत्पत्तिः तर्हि तुल्यं ममापि । इयांस्तु विशेषः । यत्तव स आकारः सद्विलक्षणः मम तु त्वन्मतसिद्धप्रातिभासिकवैलक्षण्यसाधक–मानसिद्धसत्ताकः, नहि लक्षणोक्त्यनुक्तिभ्यां सदसद्वैलक्षण्यरूपानिर्वचनीयत्वहानिलाभौ, ब्रह्मण्यपि श्रौतस्यापि जगत्कारणत्वलक्षणस्य खण्डनरीत्या असंभवात् ।

शङ्कते नन्विति । प्रमाणज्ञानका विषय अध्यस्त कैसे हो सकता है इति चेन्न; क्यों ? प्रपञ्चविषयक जो ज्ञान है उस ज्ञानमें तत्त्वावेदकत्वलक्षण प्रामाण्यका अभाव होनेसे तद्विषयमें अध्यस्तत्व समझिये । अतएव तुम्हारे मतमें चिदात्माको स्वविषयकवृत्तिके प्रति यादृशविषयत्व

है मेरे मतमें दृश्यकोभी दृक्के प्रति तादृशविषयत्व है, यह कथन खण्डित हुआ, अतएव शब्दके अर्थका स्पष्टीकरण करते हैं। चिदिति। चिदात्माका अध्यास न होनेपरभी वृत्तिको तत्र=चिदात्मामें अध्यस्त होनेसे चिदात्मा और वृत्तिके दृष्टान्तसे प्रकृतमें अध्यासाभावको कहनेके लिए अशक्य होनेसे। रहो यह, मिथ्यात्वके निर्वचनसे तत्साधनम्=मिथ्यात्वके साधन दृश्यत्वादिकभी निर्वचन करनेके योग्यही हैं क्योंकि घटादिका जो असङ्कीर्णाकार उस असङ्कीर्णाकारके ज्ञानविना घटादिविलक्षण व्यवहार नहीं होता है=घटादिके असाधारण धर्म जाने विना पटादिमें घटादिका भेदव्यवहार नहीं है, अथ=यदि ऐसा कहो कि निरुक्त असंकीर्णाकार ज्ञानमात्रसे व्यवहारकी उपपत्ति है तब मुझकोभी तुल्यही है;—इतना विशेष है कि तुम्हारे मतमें वह आकार सतसे विलक्षण है और मेरे मतमें तो तुम्हारे मतसे सिद्ध जो प्रातिभासिक वैलक्षण्यसाधक मान तादृश मानसे सिद्ध है सत्ता जिसकी एवम्भूत है और लक्षणकी उक्ति तथा अनुक्ति इनसे सदसत्से वैलक्षण्यरूप जो अनिर्वचनीयत्व उस अनिर्वचनीयत्वको हा.. लाभ नहीं है। ब्रह्ममेंभी श्रौत जो जगत्कारणत्वादिलक्षण उसकाभी खण्डनकी रीतिसे असम्भव होनेसे।

त्वयैव कीदृक्तत्प्रत्यगिति चेत्तादृगीदृगिति द्वयं यत्र न प्रसरत्येतत्प्रत्यगित्यवधारयेति ब्रह्मणोऽपि दुर्निरूप्यत्वोक्तेश्च प्रपञ्चेऽपि त्वदुक्तानिर्वाच्यत्वसमकक्षलक्षणसम्भवाच्च, यत्कठिनं सा पृथिवीत्यादिश्रुत्या पृथिव्यादीनामपि लक्षणोक्तेश्च। तस्मादनिर्वाच्यत्वं न सत्त्वविरोधि सत्त्वेऽप्यद्भुतत्वादेवानिर्वाच्यत्वोपपत्तेः। नच निर्वाच्यत्वमपि सत्त्वप्रयोजकम्। नहि शुक्तिरूप्यस्यापीतरभेदसाधकं रूप्यत्वं प्रातीतिकजातिरूपतया सुवचमपि सत्यम्। किञ्च ब्रह्मणः—आनन्दत्वज्ञानत्वसत्यत्वस्य प्रकाशत्वादिखण्डनोक्तरीत्या दुर्वचमिति ब्रह्म तत्त्वतोऽनानन्दाद्यात्मकं स्यात्। तस्मादिक्षुक्षीरादिमाधुर्यवदनिर्वाच्यमपि विषयत्वं सदेवेति।

और तुमसेही प्रत्यक् कैसा है? ऐसा यदि पूँछो तो ऐसा और तैसा ये दोनों जिसमें नहीं प्रसर करते हैं वह प्रत्यक् है, इस रीतिसे ब्रह्मकेभी दुर्निरुप्यत्वकी उक्तिसेभी, और प्रपञ्चमेंभी त्वदुक्त जो अनिर्वाच्यत्व उसके समकक्ष लक्षणका सम्भव होनेसेभी, और 'जो कठिन है वह पृथिवी है (गर्भ० १)' इत्यादि श्रुतिसे पृथिव्यादिकेभी लक्षणकी उक्तिसेभी, तस्मात् अनिर्वाच्यत्व सत्त्वका विरोधी नहीं है, सत्त्व होनेपरभी अद्भुतत्त्वसेभी अनिर्वाच्यत्वकी उपपत्ति होनेसे, और निर्वाच्यत्वभी सत्त्वका प्रयोजक नहीं है, शुक्तिरूप्यनिष्ठ जो इतरभेदसाधकरूप्यत्व वह प्रातिभासिक जातिरूपसे सुवच होनेपरभी सत्य नहीं है। किञ्च ब्रह्मनिष्ठ आनन्दत्व ज्ञानत्व सत्यत्व प्रकाशत्वादि खण्डनोक्त रीतिसे दुर्वच है=अतः ब्रह्म वस्तुतः अनानन्दादिरूप हो जायगा, फलतः इक्षुक्षीरादिके माधुर्यवत् अनिर्वाच्य होनेपरभी विषयत्व सत्यही है।

अत्रोच्यते। दृश्यत्वादेरनिर्वचनीयत्वं किं सत्त्वेन उत स्वरूपेण, नाद्यः सत्त्वेनानिर्वचनीयत्वेऽपि तत्तदाभासलक्षणानालिङ्गितत्वमात्रेण हेतुत्वोपपत्तेः तन्निर्वचनानपे-

क्षणात्। न द्वितीयः। तात्त्विकातात्त्विकसाधारणेन दृक्सम्बन्धित्वादिना रूपेण, दृग्विषयत्वस्य निर्वक्तुमशक्यत्वात्। लक्षणोक्त्यनुक्त्योर्न सदसद्वैलक्षण्यरूपानिर्वाच्यत्व-हानिलाभकरत्वमिति यदवोचः। तदपि न पूर्वोक्तव्यापकानुलब्धिसहिताया लक्षणा-निरुक्तेः, उक्तरूपानिर्वाच्यत्वप्रयोजकत्वात्, यत्त्वानन्दत्वादिना धर्मेण कीदृगित्यादिना स्वरूपेण च दुर्निरूपत्वात्। ब्रह्मणोऽपि अनिर्वचनीयत्वप्रसङ्ग इति तन्न आनन्दत्वादि-धर्मवत्तया दुर्निरूप्यत्वेऽपि दुःखप्रत्यनीकत्वाद्युपलक्षितस्वरूपस्य सत्वेन निर्वक्तुं शक्य-त्वात्। नचैवं प्रपञ्चे सत्त्वं शक्यनिर्वचनम्। बाधकसद्भावात्।

यहाँ समाधान कहा जाता है, दृश्यत्वादिनिष्ठ जो अनिर्वचनीयत्व है वह क्या सत्त्वेन है या स्वरूपसे। नाद्यः=आद्यपक्ष नहीं कह सकते हो, क्यों ? सत्वेन अनिर्वाच्यत्व होनेपरभी तत्तत् जो हेत्वाभासके लक्षण हैं उन लक्षणोंसे अनास्कन्दितत्वमात्रसे हेतुत्वकी उपपत्ति होनेसे, तन्निर्वचन=सत्त्वेन निर्वचनकी अपेक्षा नहीं है, न द्वितीयः=द्वितीय पक्षभी नहीं बन सकता है; क्यों ? तात्विक तथा अतात्त्विक एतदुभयसाधारणरूप जो दृक्सम्बन्धित्वादि तादृशदृक्-सम्बन्धित्वादि रूपसे दृग्विषयत्वको निरूपण करनेके लिए अशक्य होनेसे 'लक्षणकी उक्ति तथा अनुक्ति इन दोनोंको सदसत्से वैलक्षण्यरूप जो अनिर्वचनीयत्व है उसके प्रति हानि या लाभ-करत्व नहीं है, यह जो कहा है वह भी ठीक नहीं; क्यों ? पूर्वोक्त जो व्यापककी अनुपलब्धि उस अनुपलब्धिके सहित जो लक्षणकी अनिरुक्ति है उस अनिरुक्तिको सदसद्वैलक्षण्यरूप अनि-र्वचनीयत्वके प्रति प्रयोजकत्व होनेसे। और यह जो कहा है कि आनन्दत्वादि धर्मसे तथा कीदृक् इत्यादि स्वरूपसे दुर्निरूप होनेसे ब्रह्मकोभी अनिर्वचनीयत्वका प्रसङ्ग है, तन्न=सोठीक नहीं; क्यों ? आनन्दत्वादिधर्मवत्त्वेन दुर्निरूपत्व होनेपरभी दुःखविरोधित्वादिसे उपलक्षित स्वरूपको सत्त्वेन निर्वचन करनेके लिए शक्य होनेसे। परन्तु इस रीतिसे प्रपञ्चमें सत्त्वनिर्वचन करनेके लायक नहीं है बाधका सद्भाव होनेसे।

अत एव कठिनस्पर्शवत्त्वादिना पृथिवीत्वादीनां निर्वचनम् अस्त्येव। सत्वेऽपि अद्भुतत्वादिनाऽनिर्वाच्यत्वोपपत्तिरितिनिरस्तम्। नहि निरुक्ति-विरहमात्रेणानिर्वाच्यत्वं ब्रूमः, किन्तु सत्त्वादिना निरुक्तिविरहेण। स च प्रपञ्चे बाधकादस्त्येव नच ज्ञाने विष-यस्याध्यस्तत्वे तदज्ञानजन्यं तज्ज्ञाननिवर्त्यं चाध्यासं प्रति विषयत्वं तदनुविद्धतया प्रतीत्य-भावश्च न सम्भवति इति वाच्यम्। चैतन्यमात्राज्ञानजन्यत्वात्। तज्ज्ञाननिवर्त्त्यत्वाच्च घटादिप्रपञ्चस्येत्युक्तत्वात्। सदितिप्रतीयमानाधिष्ठानचैतन्यानुविद्धतया प्रतीयमानत्व-मस्त्येव तस्मात्सत्यत्वे दृग्-दृश्यसम्बन्धानुपपत्तिर्दृढैव।

इत्यद्वैतसिद्धौ प्रपञ्चमिथ्यात्वानुकूलतर्कनिरूपणम्।

अतएव=उक्त व्यवस्थासेही कठिनस्पर्शवत्त्वादिना पृथिव्यादिका निर्वचन है ही, प्रपञ्चमें सत्त्व होनेपरभी अद्भुतत्वादिसे अनिर्वाच्यत्वकी उपपत्ति है; यहभी खण्डित हुआ। क्योंकि

निरुक्तिके विरहमात्रसे हमलोग अनिर्वाच्यत्व नहीं कहते हैं, किन्तु सत्त्वेन निरुक्तिके विरहसे सत्त्व=सत्त्वादिरूपसे निरुक्तिका विरह तो प्रपञ्चमें बाधकसे है ही=प्रपञ्चका बाध होनेसे सत्त्वेन निरुक्तिका विरह है ही। शङ्कते—न चेति। ज्ञानमें विषयका अध्यस्तत्व होनेपर तद्-ज्ञानजन्यं तज्ज्ञाननिवर्त्यंच=अधिष्ठानरूप जो ज्ञान है वह तत्पदसे लेना चाहिए, तथाच अधिष्ठानरूप जो ज्ञान तादृशज्ञानविषयक जो अज्ञान तादृश जन्य और अज्ञानसे तादृशअधिष्ठानरूप ज्ञानविषयक ज्ञानसे निवर्त्य ऐसा जो अध्यास उस अध्यासके प्रति विषयत्व न होगा। क्योंकि ज्ञानविषयक अज्ञान बन नहीं सकता है। और जब ज्ञानविषयक अज्ञान न बना तब ज्ञानको अधिष्ठानत्वभी न बना क्योंकि यद्विषयकअज्ञान अध्यस्तका जनक होता है वही उसका अधिष्ठान होता है, जब अधिष्ठानत्व न बना तब ज्ञानविषयक ज्ञानसे अध्यस्तकी निवृत्तिभी न होगी क्योंकि अधिष्ठानज्ञानसेही अध्यस्तकी निवृत्ति होती है और विषयमें ज्ञानानुविद्धतया प्रतीतिका अभाव है वहभी ज्ञानको अधिष्ठान माननेपर न बनेगा, क्योंकि अधिष्ठानसे अनुविद्ध होकेही अध्यस्तकी प्रतीति होती है इति न च वाच्यम्, क्यों? घटादिरूप प्रपञ्च चैतन्यमात्रके अज्ञानसे जन्य है। और चैतन्यमात्रके ज्ञानसेही निवर्त्त्य है, यह बात कही जा चुकी है अतः। सदिति (घटः सन्) इत्याकारिका प्रतीति है इस प्रतीतिमें भासमान जो अधिष्ठानचैतन्य है तदनुविद्धतया अध्यस्तका प्रतीयमानत्व है ही। ततः प्रपञ्चको सत्यत्व होनेपर दृग्दृश्यके सम्बन्धकी अनुपपत्ति दृढ़ही है।

इति सरलायामनुकूलतर्कनिरूपणम् ॥

अथ प्रतिकर्मव्यवस्थोपपत्तिः ।

ननु विश्वस्याध्यासिकत्वे प्रातिभासिकस्थल इव विषयेन्द्रिय—सन्निकर्षाधीनायाः प्रतिकर्मव्यवस्थायाः अनुपपत्तिरिति चेन्न वृत्तेः पूर्वमेव घटादीनां चैतन्येऽध्यासेन, प्रातिभासिकस्थलापेक्षया वैलक्षण्यात्। तथाहि—अन्तःकरणं चक्षुर्वत्तेजोऽवयवि तच्चेन्द्रिय-द्वारेण तत्संयुक्तं विषयं व्याप्य तदाकारं भवति यथा नद्याद्युदकं प्रणाड्या निःसृत्य केदाराद्याकारं भवति सैव वृत्तिरित्युच्यते। तत्र जीवचैतन्यमविद्योपाधिकं सत् सर्वगतं अन्तःकरणोपाधिकं सत् परिच्छिन्नमिति मतद्वयम्। तत्र आद्ये विषयप्रकाशकं जीवचैतन्यम् द्वितीये ब्रह्मचैतन्यम्।

अथ सरलायां प्रतिकर्मव्यवस्थोपपत्तिः ।

शङ्कते नन्विति। प्रपंचको आध्यासिक होनेपर प्रातिभासिक स्थलकी नाई विषय, तथा इन्द्रियके सन्निकर्षाधीन जो प्रतिकर्मव्यवस्था है उसकी अनुपपत्ति है=किसी पुरुषको किसीही कालमें कोई ही विषय ज्ञानका कर्म होता है, सर्व पुरुषोंको सर्वकालमें सर्वविषय ज्ञानके कर्म नहीं होते हैं इसका नाम है—प्रतिकर्मव्यवस्था; सो जैसे प्रातिभासिक स्थलमें विषयको तथा ज्ञानको समानकालीन होनेसे नहीं होती है वैसे ही व्यावहारिक प्रपञ्चमें आध्यासिकत्व होनेपर न होगी इति चेन्न=ऐसा यदि कहो तो नहीं कहना, क्यों? घटाद्याकार वृत्तिसे

पूर्वकालमें ही घटादिकोंके चैतन्यमें अध्यासके प्रातिभासिक स्थलकी अपेक्षा वैलक्षण्य होनेसे=प्रातिभासिक स्थलमें प्रातिभासिक विषय तथा उसको विषय करनेवाली अविद्याकी वृत्ति दोनों एककालमें उत्पन्न होते हैं अतः उनका पूर्वापरीभाव नहीं है और व्यावहारिक प्रपञ्चमें पूर्वापरीभाव है अतः वैलक्षण्य है। इसी अर्थको स्पष्ट करते हैं तथाहीति। चक्षु इन्द्रियकी तरह अन्तःकरण तेजःपदार्थ है और अवयवी है=सावयव है तार्किकादिवत् निरवयव नहीं, तच्च=वह अन्तःकरण इन्द्रियरूपद्वारसे तत्संयुक्तम्=इन्द्रियसंयुक्तविषयको व्याप्यकर विषयाकार होता है। दृष्टान्त देते हैं। यथेति। जैसे नदी वगेराका जल प्रणालीसे निकलकर चतुरस्रादिरूप केदाराद्याकार हो जाता है=जैसा केदारादिका आकार होता है वैसा हो जाता है; सैव=विषयाकार अन्तःकरणके परिणामकोही वृत्ति कहा जाता है, और जैसे नदीसे अविभक्त हुआही जल केदारादिसे संयुक्त होता है तैसे शरीरसे अविभक्त हुआही अन्तःकरण विषयसे संयुक्त होता है। तत्र=तिस प्रसिद्धविषयमें अविद्योपाधिक हुआ जीव चैतन्य सर्वगत है। अन्तःकरणोपाधिक हुआ जीव चैतन्य परिच्छिन्न है यह मतद्वय ज्ञातव्य है। तत्राद्ये=एतदुभयघटक आदिम पक्षमें विषयका प्रकाशक जीव चैतन्य है, द्वितीयमें ब्रह्म चैतन्य है।

आद्ये पक्षेऽपि जीवचैतन्यमविद्यानावृतमावृतं च। तत्राद्ये वृत्तिर्जीवचैतन्यस्य विषयोपरागार्था द्वितीये त्वावरणाभिभवार्था। परिच्छिन्नत्वपक्षे तु जीवचैतन्यस्य विषयप्रकाशकतदधिष्ठानचैतन्याभेदाभिव्यक्त्यर्था। अनावृतत्वपक्षे ह्यनावृत्तं सर्वगतमपि जीवचैतन्यं तत्तदाकारवृत्त्यैवोपरज्यते, नतु विषयैः असङ्गत्वात् यथा गोत्वं सर्वगतमपि सास्नादिमद्व्यक्त्याभिव्यज्यते, नतु केसरादिमद्व्यक्त्या। यथावा प्रदीपप्रभा आकाशगन्धरसादिव्यापिन्यपि तान्न प्रकाशयन्ती रूपसंसर्गितया रूपमेव प्रकाशयति तद्वत्, केवलाग्न्यादाह्यस्यापि अयःपिण्डादिसमारूढाग्निदाह्यत्ववच्च केवलचैतन्याप्रकाशस्यापि घटादेस्तत्तदाकारवृत्त्युपारूढचैतन्यप्रकाश्यत्वं युक्तम्. एवञ्चानावृतत्वपक्षे तत्तदाकारवृत्तिद्वारा चैतन्यस्य तत्तदुपरागे तत्तदर्थप्रकाशः। आवृतत्वपक्षे तत्तदाकारवृत्त्या तत्तद्विषयावच्छिन्नचैतन्यरूपत्वे जीवस्यावच्छेदकान्तःकरणतत्तद्विषयाकारवृत्त्या तत्तद्विषयावच्छिन्नचैतन्याभिव्यक्तौ तत्तत्प्रकाशः। यद्यपि प्रकाशकमधिष्ठानचैतन्यं सर्वगतं जीवचैतन्यं च अन्तःकरणावच्छिन्नम्। तथापि चैतन्याभेदेनाभिव्यक्तत्वात् व्यवस्थोपपत्तिः।

आद्ये पक्षेऽपि=अविद्योपाधिक जीवचैतन्य है इस पक्षमेंभी जीवचैतन्य एकपक्षमें अविद्यासे अनावृत है और एक पक्षमें जीवचैतन्य अविद्यासे आवृत है तत्र=इन दोनोंमें जो आद्यपक्ष है उस आद्यपक्षमें जीव चैतन्यके विषयोपरागके लिए वृत्ति माननी चाहिए=स्वप्रतिबिम्बाश्रय जो वृत्ति है तादृशवृत्तिका जो विषयके साथ संश्लेष विशेष है उसका नाम है-विषयोपराग, स्वपदसे चैतन्यका ग्रहण है। द्वितीयेतु=आवृतपक्षमें तो आवरणके अभिभवके लिएही वृत्ति है=प्रथमपक्षमें विषयोपरागार्थ तथा-आवरणाभिभवार्थ वृत्ति है क्योंकि ब्रह्माकारवृत्ति विषयोप-

रागार्थ नहीं होती है, किन्तु आवरणाभिभवार्थही होती है क्योंकि ब्रह्माकारवृत्तिका विषय जो साक्षीचैतन्य है उसका वृत्ति विनाही ब्रह्मके साथ तादात्म्यरूप उपराग है। और वृत्ति-द्वाराही सर्वत्र विषयका उपराग होताहो ऐसा नियमभी नहीं है, क्योंकि अविद्या तथा अविद्याकी परिणामभूतवृत्तियाँ जो कि सुपुप्त्यादिमें होती हैं तथा अन्तःकरण और अन्तःकरणकी परिणामभूत वृत्तियाँ इन सबका वृत्तिके विनाही चैतन्यमें उपराग है;–द्वितीयपक्षमें आवरणके अभिभवके ही लिए वृत्ति है विषयोपरागार्थ नहीं। परिच्छिन्नत्वपक्षेतु=अन्तःकरणोपाधिक जीव चैतन्य है, इस पक्षमें तो, जीव चैतन्यका विषयका प्रकाशक जो विषयका अधिष्ठान चैतन्य उस चैतन्यके साथ जो अभेद उस अभेदकी अभिव्यक्ति उस अभिव्यक्तिके लिए वृत्ति है। और अनावृतत्वपक्षमें अनावृत सर्वगत जो जीवचैतन्य है वह तत्तदाकार वृत्तिसेही उपरक्त होता है असंग होनेसे विषयोंके साथ नहीं। जैसे गोत्व सर्वगत हुआभी सास्नादिमती जो व्यक्ति है उस व्यक्तिसेही अभिव्यक्त होता है केसरादिमती व्यक्तिसे नहीं; अथवा जैसे प्रदीपकी प्रभा आकाशगन्धरसादिको व्याप्त करती हुईभी आकाशादिको नहीं प्रकाश करती हुई रूपसंसर्गि होके रूपकोही प्रकाशित करती है तद्वत्। जैसे केवल अग्निसे अदाह्य पदार्थका अयःपिण्डादिके ऊपर समारूढ जो अग्नि उस अग्निसे दाह्यत्व होता है तैसे केवल चैतन्यसे अप्रकाश्य जो घटादि तादृशघटादिका तत्तदाकार जो वृत्ति तादृशवृत्तिमें उपारूढ जो चैतन्य उस चैतन्यसे प्रकाश युक्त है। एवञ्च=ऐसा होनेपर अनावृतत्वपक्षमें तत्तदाकार वृत्तिद्वारा चैतन्यका तत्तद्विषयके साथ उपराग होनेपर तत्तदर्थका प्रकाश होता है। और आवृतत्त्वपक्षमें तत्तदाकारवृत्तिसे तत्तद्विपयावच्छिन्नचैतन्यनिष्ठ आवरणके अभिभवसे तत्तदर्थका प्रकाश होता है। और जीवको अन्तःकरणावच्छिन्नचैतन्यरूपत्वपक्षमें=अन्तःकरणावच्छिन्नचैतन्यका नाम जीव है इस पक्षमें जीवका अवच्छेदक जो अन्तःकरण तादृश अन्तःकरणकी जो तत्तद्विषयाकार वृत्ति उस वृत्तिसे–तत्तद्विषयावच्छिन्न चैतन्यकी अभिव्यक्ति होनेपर तत्तदर्थका प्रकाश होता है, यद्यपि विषयका प्रकाशक जो अधिष्ठान चैतन्य है वह सर्वगत है, और जीव चैतन्य अन्तःकरणावच्छिन्न है, तथापि चैतन्यकी अभेदरूपसे अभिव्यक्ति होनेसे व्यवस्थाकी उपपत्ति है।

ननु–इयं प्रतिकर्मव्यवस्था नोपपद्यते, तथाहि–स्वसन्निकृष्टेन्द्रियजन्यस्वज्ञानात् पूर्वं घटादेः सत्वे प्रतीतिमात्रशरीरत्वव्याप्तकाल्पनिकत्वायोगः। नच काल्पनिकत्वविशेषः। प्रातिभासिकत्वादिरेवतद्व्याप्तः गौरवात्। नच प्रतीतिमात्रशरीरत्वाभावेपि ज्ञाननिवर्त्त्यत्वादिनैव कल्पितत्वं भविष्यति। प्रतीतिमात्रशरीरत्वाभावेन ज्ञाननिवर्त्त्यत्वाभावस्याप्यापाद्यत्वात्। प्रतीतेर्विश्वसत्यत्वेन वा मिथ्यात्वेऽपि स्वप्नादिवदिन्द्रियसन्निकर्षनिरपक्षतयावोपपत्तेः, व्यावहारिकत्वस्यापि भ्रान्तिदैर्घ्यमात्रेणोपपत्तेश्चेतिचेन्मैवम् प्रतीतिमात्रशरीरत्वस्य कल्पितत्वं न व्याप्तम् दृग्दृश्यसम्बन्धानुपपत्यादिसहकृतोक्तानुमानात् प्रपञ्चे कल्पितत्वे सिद्धे प्रत्यभिज्ञावलाच्च स्थायित्वे तत्रैव व्यभिचारात्। नच शुक्तिरूप्यादिप्रत्यभिज्ञासाम्यम् प्रकृतप्रत्यभिज्ञाया इति वाच्यम् प्रतीत्यविशेषेऽपि वणिग्वीथीस्थशुक्तिरूप्ययोः

परीक्षितत्वापरीक्षितत्वाभ्यां स्थायित्वास्थायित्वरूप–विशेषसम्भवात् । तथापि वापरोक्षवृत्तेरिव परोक्षवृत्तेरपि प्रकाशत्वमस्तु । किं तदुपरक्तचैतन्येनेति चेन्न, परोक्षस्थलेऽपि परोक्षवृत्त्युपरक्तचैतन्यस्यैव प्रकाशकत्वात् ।

शङ्कते नन्विति । यह जो प्रतिकर्मव्यवस्था दिखलाई गई है वह युक्तियुक्त नहीं हो सकती है, तथाहि=स्वसे सन्निकृष्ट जो इन्द्रिय तादृश इन्द्रियसे जन्य जो स्वज्ञान=स्वविषयक ज्ञान उस ज्ञानसे पूर्व घटादिका सत्त्व होनेपर प्रतीतिमात्रशरीरत्वसे व्याप्त जो काल्पनिकत्व उसका अयोग है=घटादिमें काल्पनिकत्व न बनेगा । काल्पनिकत्वका विशेष जो प्रातिभासिकत्वादि है वह प्रातिभासिकत्वादिही तद्व्याप्तः=प्रतीतिमात्रशरीरत्वसे व्याप्त है, नच=नहीं; क्यों ? गौरव होनेसे=कल्पितत्व सामान्यरूपसे कल्पितमात्रका ग्राहक होनेसे लघुभूत है और प्रातिभासिकत्व कल्पितत्वका विशेष होनेसे गुरुभूत है । प्रतीतिमात्रशरीरत्वाभाव होनेपर भी ज्ञाननिवर्त्यत्वादिरूपसेही कल्पितत्त्व होगा, नच=नहीं होगा, क्यों ? प्रतीतिमात्रशरीरत्वके अभावसे ज्ञाननिवर्त्यत्वके अभावकोभी आपाद्य होनेसे=व्यावहारिक प्रपञ्चमें जब ज्ञानमात्रशरीरत्व अर्थात् प्रतीतिसमनियतकालत्व नहीं है तब ज्ञाननिवर्त्यत्वभी नहीं हो सकता है, प्रतीतेः=प्रपञ्चविषयक प्रतीतिकी विश्वके सत्यत्वेन या मिथ्यात्व होनेपरभी स्वप्नवत् इन्द्रियसन्निकर्षनिरपेक्षत्वेन उपपत्ति है और भ्रान्तिदैर्घ्यमात्रसे व्यावहारिकत्वकीभी उपपत्ति है= विश्वविषयक जो ज्ञान होता है वह विश्वको सत्य होनेपर बन सकता है और विश्वको मिथ्या होनेपरभी स्वप्नमें जैसे इन्द्रियसन्निकर्षनिरपेक्ष गजादिविषयक ज्ञान होता है वैसेही जाग्रत्‌मेंभीज्ञान हो सकेगा, अतः ज्ञानके लिए प्रतिकर्मव्यवस्थाका मानना ठीक नहीं, तैसे प्रपञ्चमें व्यावहारिकत्वकी सिद्धिके लिए भी प्रतिकर्मव्यवस्था नहीं मानी जा सकती है । क्योंकि भ्रान्तिमें जरा दीर्घता मान लेनेसेही व्यावहारिकत्वका व्यवहार हो सकेगा । अतः विश्वमिथ्यात्ववादीके मतमें प्रतिकर्मव्यवस्था नहीं बन सकती है; इति चेन्मैवम्=ऐसा यदि समझते हो तो ऐसा नहीं समझना, क्योंकि प्रतीतिमात्रशरीरत्वका कल्पितत्व व्याप्य नहीं है, दृग्दृश्यके सम्बन्धकी जो अनुपपत्ति उस अनुपपत्तिसे सहकृत जो उक्त मिथ्यात्वसाधकानुमान उस अनुमानसे प्रपञ्चमें कल्पितत्त्वके सिद्ध होनेपर और प्रत्यभिज्ञाके बलसे स्थायित्वसिद्ध होनेपर तत्रैव=प्रपञ्चमेंही व्यभिचार होनेसे=कल्पितत्व, उक्त अनुपपत्तिसहित प्रपञ्चो मिथ्या दृश्यत्वात् इस अनुमानसे व्यावहारिक प्रपञ्चमें रह गया परन्तु प्रत्यभिज्ञाबलतः प्रतीतिमात्रशरीरत्वरूप साध्य नहीं है अतः हेतुमें व्यभिचार दोष है । प्रकृत प्रत्यभिज्ञाका शुक्तिरूप्यकी प्रत्यभिज्ञाके साथ साम्य है, इति न च वाच्यम् ; क्यों ? प्रतीतिके अविशेष होनेपरभी वणिग्वीथीस्थ तथा शुक्तिरूप्य इन दोनोंमें परीक्षित्व–अपरीक्षितत्व–प्रयुक्त स्थायित्व तथा अस्थायित्वरूप विशेषका सम्भव होनेसे आपणस्थरूप्य तथा शुक्तिरूप्य एतदुभयविषयक ज्ञानके अविशेष होनेपरभी परीक्षित होनेसे आपणस्थरूप्य स्थायी है, और अपरीक्षित होनेसे शुक्तिरूप्य अस्थायी है । तैसा होनेपरभी परोक्षविषयक वृत्तिकी तरह अपरोक्ष विषयक वृत्तिकोभी प्रकाशत्व हो, वृत्त्युपरक्तचैतन्यके

माननेका क्या प्रयोजन है, इति चेन्न, परोक्षस्थलमेंभी परोक्ष वृत्तिसे उपरक्त चैतन्यकोही प्रकाशकत्व होनेसे।

अथ तत्राप्यपरोक्षैकरसचैतन्योपरागे विषयापरोक्ष्यप्रसङ्गः, न विषयचैतन्याभिव्यक्तावेव विषयस्यापरोक्ष्यम्। न परोक्षस्थले तदस्ति, विषयेन्द्रियसन्निकर्षाभावेन विषयपर्यन्तं वृत्तेरगमनात्। अन्तरेव तत्र धीसमुल्लासात्। अपरोक्षस्थले तु प्रमातृचैतन्याभेदाभिव्यक्ताधिष्ठानचैतन्योपरागो विषयेऽस्ति, तत्र विषयस्य कर्मकारत्वात्। नच वृत्तिगतविशेषादापरोक्ष्यम्, तत्र हि विशेषो विषयकृतश्चेदोमिति ब्रूमः। जातिकृतस्तु विशेषो न संभवति। सोऽयमिति प्रत्यभिज्ञायां परोक्षत्वापरोक्षत्वयोः संकरप्रसङ्गात्। अव्याप्यवृत्तित्वात्। प्रमात्वादिना संकरप्रसङ्गाच्च। किञ्च वृत्तेर्जडत्वादेव न प्रकाशकत्वम्। नच वृत्तावन्तःकरणावृत्त्यपि स्वप्रकाशत्वं ज्ञानत्ववदिति वाच्यम्। स्वप्रकाशात्मसम्बन्धेनैव तस्याः प्रकाशत्वोपपत्तौ तत्स्वप्रकाशकत्वे मानाभावात्।

शङ्कते अथेति। तत्र=परोक्षस्थलमेंभी, अपरोक्षएकरस जो चैतन्य उस चैतन्यका उपराग होनेपर विषयके आपरोक्ष्यका प्रसङ्ग है न=नहीं है; क्योंकि विषयचैतन्यकी अभिव्यक्ति होनेपरही विषयका आपरोक्ष्य होता है, परोक्षस्थलमें वह आपरोक्ष्य नहीं है, विषयेन्द्रियके सन्निकर्षाभावसे विषयपर्यन्त वृत्तिका गमन न होनेसे=परोक्षस्थलमें उक्तसन्निकर्षाभावप्रयुक्त विषयपर्यन्त वृत्तिके गमनका अभाव है अतएव वहाँ विषयचैतन्यकी अभिव्यक्ति नहीं सुतरां विषयमें आपरोक्ष्यभी नहीं, तत्र=परोक्षविषयस्थलमें अन्तरेव=शरीरके भीतरही धीसमुल्लासात्=अन्तःकरणका विषयाकार परिणाम होनेसे। अपरोक्षस्थलमें तो प्रमातृचैतन्यके साथ अभेदेन अभिव्यक्त जो अधिष्ठान चैतन्य, उस चैतन्यका उपराग विषयमें है, वहां विषयको कर्मकारक होनेसे, वृत्तिगत जो विशेष है, उससे विषयका आपरोक्ष्य है, नच=नहीं है; तत्रहि=वृत्तिमें विशेष विषयकृत है ऐसा यदि कहो तो हम अङ्गीकार करते हैं। और जातिकृत विशेष तो नहीं बन सकता है (सोऽयम्) इस प्रत्यभिज्ञामें परोक्षत्व अपरोक्षत्वके संकरका प्रसङ्ग होनेसे=परोक्षत्व तथा अपरोक्षत्व ये दो वृत्तिनिष्ठ धर्म जातिरूप तो नहीं हो सकते हैं, क्योंकि ये दोनों अनेकस्थलोमें परस्पर अत्यन्ताभावके समानाधिकरण होकर 'सोऽयम्' इस प्रत्यभिज्ञामें साथ २ रह जाते हैं अव्याप्यवृत्ति होनेसे, प्रमात्वादिके साथ संकरभी है=प्रमात्वको छोडकर अपरोक्षत्व भ्रममें है और अपरोक्षत्वको छोडकर प्रमात्व परोक्षज्ञानमें है। दोनोंका समावेश, 'अयं घटः' इत्यादि ज्ञानोमें है. किञ्च वृत्तिको जडत्व होनेसेही प्रकाशकत्व नहीं है। अन्तःकरणमें न रहनेपरभी वृत्तिमें स्वप्रकाशत्व है ज्ञानत्ववत्=जैसे ज्ञानत्व अन्तःकरणका धर्म नहीं है। फिरभी वृत्तिमें रहता है; इति नच वाच्यम्, क्यों ? स्वप्रकाश आत्माके सम्बन्धसेही—तस्याः=वृत्तिके प्रकाशकत्वकी उपपत्ति होनेसे वृत्तिके स्वप्रकाशत्वमें मानका अभाव होनेसे।

किंच, घटं जानामि इत्यनुभूयमानसकर्मकवृत्त्यन्यासंवित् घटप्रकाशरूपा, घटःप्रकाशते इत्याकारानुभवसिद्धैव। नच करोति यतते चलति गच्छतीत्यादावेकार्थत्वेऽपि सकर्मकाकर्मकस्वभावत्वदर्शनात् अत्राप्येकार्थत्वेऽपि तथा स्यादितिवाच्यम्। तत्राप्येकार्थत्वाभावात्। अनुकूलयत्नो हि कृञ् धात्वर्थः। यत्यर्थस्तु यत्नमात्रम्। एवं गम्यर्थः उत्तरसंयोगफलकः स्पन्दः चलत्यर्थस्तु स्पन्दमात्रम्। तथा चैकार्थकत्वे कुत्रापि न सकर्मत्वाकर्मकत्वव्यवस्था, नच त्वन्मते परिणतेरकर्मत्वात्, परिणतिविशेषभूताया वृत्तेः कथं सकर्मकत्वमितिवाच्यम्। एकस्य हि सकर्मकत्वाकर्मकत्वे एकरूपेण विरुद्धे नतु रूपान्तरेणापि मानाभावात्। यथास्थितेरकर्मिकायाअगमनत्वेन रूपेण सकर्मकत्वम्। तथापरिणतित्वेन रूपेणाकर्मिकायाअपि वृत्तेः ज्ञानत्वेन सकर्मकत्वं भविष्यति इत्यदोषः।

किञ्च=औरभी वक्तव्य है। 'घटं जानामि' इस रीतिसे अनुभूयमान जो सकर्मकवृत्तिसे भिन्न संवित् घटप्रकाशरूपा, घटःप्रकाशते इत्याकारक अनुभव सिद्ध है=' घटं जानामि' इस रीतिसे एक प्रकाश सकर्मक प्रतीत होता है, और 'घटः प्रकाशते' इस रीतिसे द्वितीय प्रकाश अकर्मक प्रतीत होता है, यह द्वितीयप्रकाश वृत्तिरूप प्रकाशसे भिन्न है। शङ्कते नचेति। करोति, यतते तथा चलति गच्छति इत्यादिमें एकार्थत्व होनेपरभी सकर्मकस्वभावत्व तथा अकर्मकस्वभावत्वके देखनेसे प्रकृतमेंभी एकार्थत्व होनेपरभी सकर्मकत्व अकर्मकत्व स्वभाव रहो इति नच वाच्यम्; क्यों ? तत्रापि=करोति यतते तथा चलति गच्छति इन धातुओंमेंभी एकार्थत्वका अभाव होनेसे, इसी अर्थको स्पष्ट करते हैं, अन्विति–प्रकृतकार्यानुकूल जो यत्न वह कृञ्धातुका अर्थ है और यत्नमात्र यति धातुका अर्थ है। इसी रीतिसे उत्तरसंयोगफलक जो स्पन्द है वह गमिका अर्थ है। और स्पन्दमात्र चलत्यर्थ है, फलतः एकार्थत्व होनेपर कहींभी सकर्मकत्व अकर्मकत्वकी व्यवस्था नहीं है। तुम्हारे मतमें परिणतिको अकर्मक होनेसे, परिणतिविशेषरूप वृत्तिको सकर्मकत्व कैसे है, इति नच वाच्यम्; क्योंकि एकनिष्ठसकर्मकत्व अकर्मकत्व एकरूपसे विरुद्ध हैं। रूपान्तरसेभी नहीं मानका अभाव होनेसे,–जैसे अकर्मिका जो गतिनिवृत्तिरूपस्थिति है उस स्थितिको अगमनत्वरूपसे सकर्मकत्व है, 'ग्रामं न गच्छति' ऐसी प्रतीति होनेसे वैसे परिणतित्वेन अकर्मिका वृत्तिकोभी ज्ञानत्वेन सकर्मकत्व होगा इस रीतिसे दोष नहीं।

ननु–तर्हि अतीतः प्रकाशते इति धीर्नस्यात्, न इष्टापत्तेः तत्रापि वृत्तिप्रतिबिम्बितचैतन्यसत्वेन प्रकाशते इत्यादिप्रयोगसम्भवाच्च। ननु यथाज्ञानविरोधिवृत्तावनुभवत्वं नास्ति। किन्तु अन्यत्र तथा द्वेषविरोधिवृत्तेरन्यत्रेच्छात्वमित्यपि स्यादिति–चेन्न। बाधकसत्त्वासत्त्वाभ्यां विशेषात्। अत्रैव तत्र सकर्मकाकर्मकविलक्षणक्रियानुभवाच्च। यथाच वृत्त्यतिरिक्तभानसिद्धिस्तथास्वयंज्योतिष्ट्वप्रस्तावे विस्तरेण वक्ष्यामः। ननु अस्तु चैतन्यस्य विषयप्रकाशकत्वं तथाप्यन्तःकरणस्य देहाद्बहिर्निर्गतिर्नकल्प्या परोक्षवैलक्षण्याय

विषयस्याभिव्यक्तापरोक्षचिदुपराग एव वक्तव्यः चिदुपरागादौ च अपरोक्षवृत्तेस्तदाकारत्वमेव तन्त्रम् तस्यच तत्संश्लेषं विनापि परोक्षवृत्तेरिव तत्सन्निकृष्टकरणजन्यत्वेनैवोपपत्तिः। न तु प्रभाया इव वृत्तेस्तदावरणनिवर्तकत्वादौ तत्संश्लेषस्तन्त्रम्। नेत्रान्निर्गच्छद्ध्रुवाद्याकारवृत्त्यैव स्वसंश्लिष्टनेत्रस्थकज्जलादेर्ध्रुवनेत्रमध्यवर्तिनः परमाण्वादेश्चापरोक्षत्वापातात् इति चेन्न;

शङ्कते नन्विति; तर्हि=घटः प्रकाशते यहाँ वृत्तिरूप ज्ञानसे अतिरिक्त विषयाभिव्यक्त चैतन्यरूप ज्ञानका भान मानों तो 'अतीतः प्रकाशते' इत्याकारिका धी न होगी क्योंकि अतीत विषयके न होनेसे–वर्तमानकालमें न होनेसे तदभिव्यक्त चैतन्यका भान नहीं बन सकता है; न=ऐसी शङ्का नहीं करना, क्यों? हमको इष्ट की आपत्ति होनेसे=अनावृत चित्तादात्म्यको उक्त धीका=प्रकाशते इस धीका विषय होनेसे और अतीतस्थलमें उक्तविध चैतन्यके न होनेसे अतीतविषया ऐसी धी हम लोग नहीं मानते हैं और अतीतस्थलमें भी शरीरके भीतर विद्यमान जो वृत्ति उस वृत्तिमें प्रतिबिम्बित जो चैतन्य उस चैतन्यका सत्त्व होनेसे प्रकाशते इत्यादि प्रयोगके सम्भवसेभी आपकी शङ्का असङ्गत है। शङ्कते नन्विति। जैसे अज्ञानकी विरोधिनी जो वृत्ति है उस वृत्तिमें अनुभवत्व नहीं है किन्तु अन्यत्र है, तैसे द्वेषविरोधि वृत्तिसे अन्यत्र इच्छात्व है यहभी होगा इतिचेन्न; क्यों? बाधकके सत्त्वसे और बाधकके असत्त्वसे विशेष होनेसे, अत्रेव=ज्ञानस्थलकी तरह तत्र=इच्छास्थलमें सकर्मक तथा अकर्मकसे विलक्षण क्रियाके अनुभूत न होनेसेभी=द्वेषविरोधिवृत्तिसे अतिरिक्तमें इच्छात्व माननेमें अनुभव ही बाधक है और अज्ञानविरोधिनीवृत्तिसे अतिरिक्तमें अनुभवत्वमाननेमें अनुभवका विरोध नहीं, प्रत्युत (सत्यं ज्ञानम्) इत्यादि श्रुतिओंका सह योग है और अनुभव स्थलकी नाई इच्छास्थलमें सकर्मक अकर्मकसे विलक्षण क्रियाका अनुभव भी नहीं होता है किन्तु 'सुखमिच्छति' सुखसाधनमिच्छति, इत्यादि अनुभवसे नियमसे सकर्मकत्व ही सिद्ध होता है। और जिस रीतिसे वृत्तिसे अतिरिक्त भानकी सिद्धि है उस रीतिसे स्वयंप्रकाशत्वके निरूपणावसरमें शब्दसमुदायसे कहेंगे। शङ्कते नन्विति। चैतन्यको विषयका प्रकाशकत्व रहो तो भी अन्तःकरणकी देहसे निर्गतिः=निर्गमन कल्पनीय नहीं है, विषयनिष्ठपरोक्षवैलक्षण्यके लिए अभिव्यक्त जो अपरोक्ष चित् उसका उपराग ही वक्तव्य है। और चिदुपरागमें अपरोक्ष वृत्तिनिष्ठतदाकारत्व ही तन्त्र है। अथवा वृत्तिनिष्ठ जो परोक्षसे वैलक्षण्य उस वैलक्षण्यके लिए विषयनिष्ठ अपरोक्ष चित्का उपराग ही वक्तव्य है ऐसा कहना चाहिए। तस्य च=वृत्तिनिष्ठतदाकारत्वकीतो परोक्षवृत्तिकी तरह तत्संश्लेषं विनापि=वृत्तिविषयके सम्बन्धविनाभी विषयसन्निकृष्टकरणजन्यत्व से उपपत्ति है=परोक्षवृत्तिमेंभी तदाकारत्व तो रहता है परन्तु वहां विषयदेशमें अन्तःकरणका गमन नहीं माना जाता है। अतएव परोक्षस्थलमें अन्तःकरणका विषयके साथ संयोगादिरूप संश्लेषभी नहीं होता है, तद्वत् अपरोक्षस्थलमेंभी अन्तःकरणका निर्गमन तथा संश्लेष नहीं मानना चाहिए; और जैसे स्वविषयनिष्ठअन्धकाररूपआवरणनिवर्त्त-

कत्वमें प्रभाका विषयके साथ संयोगादिरूप संश्लेप तन्त्र है, तैसे वृत्तिको तदावरण=विषयनिष्ठ-आवरणनिवर्त्तकत्वमें विषयकेसाथ संश्लेप तन्त्र नहीं है, क्यों ? नेत्रसे निर्गमन करती हुई जो ध्रुवाद्याकार वृत्ति है उस वृत्तिसे ही स्वसन्निकृष्ट=वृत्तिसे सन्निकृष्ट जो कज्जलादि हैं उन्होंके और ध्रुव तथा नेत्र इन दोनोंके मध्यमें रहनेवाले जो परमाण्वादि हैं उन्होंके प्रत्यक्षत्वका आपात होनेसे, इति चेन्न=ऐसा यदि कहोतो नहीं कहना; क्योंकि—

विषयेष्वभिव्यक्तचिदुपरागे न तदाकारत्वमात्रं तन्त्रम्। परोक्षस्थलेऽपि प्रसङ्गात्। किन्तु तत्संश्लेपः प्रभाया विषयसन्निकृष्टतेजस्त्वेनावरणाभिभावकत्वदर्शनात्। तैजसस्य मनसोप्यज्ञानरूपावरणाभिभवाय तत्संश्लेपः आवश्यकः। ध्रुवादिदेहमध्यवर्तिपरमाण्वादावतिप्रसङ्गस्तु तदाकारत्वप्रयोजकसामग्रीविरहादेव परिहरणीयः। अन्यथेन्द्रियसन्निकर्षादेर्विद्यमानत्वात्परमाण्वाद्याकारताया दुर्निवारत्वापत्तेः। तस्मात् प्रभाविशेषान्वयव्यतिरेकाभ्यां यत् क्लृप्तम् सन्निकृष्टतेजस्त्वेनावरणाभिभावकत्वं तस्य तदाकारत्वरूपविशेषाकांक्षायामपि न त्यागः। न हि पृथिवीत्वगन्धत्वादिना कार्यकारणभावे आवश्यके अनित्यगुणत्वद्रव्यत्वादिना न त्यागः। अत एव तदितर–हेतुसाकल्ये सति घटचक्षुःसन्निकर्षस्यैव घटानुभवजनकत्वम्। ननु घटमनस्सन्निकर्षस्य तद्विलम्बेन तद्विलम्बाभावात् इतिनिरस्तम्। आवरणभङ्गे सन्निकृष्टतेजःकारणत्वावधारणेन तस्याप्यावश्यकत्वात्।

विषयेषु=विषयनिष्ठ जो अभिव्यक्त चित्का उपराग है उस चिदुपरागमें वृत्तिनिष्ठ तदाकारत्वमात्र तन्त्र=प्रयोजक नहीं है, क्यों ? परोक्षस्थलमेंभी चिदुपरागके प्रसङ्गसे किन्तु तत्संश्लेपः विषयके साथ वृत्तिका संयोगादिरूप संश्लेप प्रयोजक है, प्रभायाः=प्रभानिष्ठ विषयसन्निकृष्टतेजस्त्वेन आवरणका अभिभावकत्व देखनेसे, तैजसपदार्थ मनकाभी अज्ञानरूप आवरणाभिभवके लिए विषयके साथ संश्लेप आवश्यक है। ध्रुवादि और देह इन दोनोंके मध्यवर्ति जो परमाण्वादि उन परमाण्वादिमें जो अतिप्रसङ्ग है वह तो तदाकारत्वप्रयोजक जो सामग्री उस सामग्रीके विरहसेही परिहरणीय है, अन्यथा=सामग्रीका विरह न माननेपर इन्द्रियसन्निकर्षादिरूप सामग्रीको विद्यमान होनेसे परमाण्वाद्याकारताके दुर्निवारत्वकी आपत्ति है। ततः प्रभाविशेषके जो अन्वय तथा व्यतिरेक हैं उन अन्वय व्यतिरेकोंसे क्लृप्त=निर्णीत जो सन्निकृष्टतेजस्त्वेन आवरणाभिभावकत्व तस्य=उस आवरणाभिभावकत्वका तदाकाररूप विशेषकी अपेक्षा होनेपरभी त्याग नहीं है; पृथिवीत्वेन और जन्यत्वेन कार्यकारणभावको आवश्यक होनेपर अनित्यगुणत्वेन और द्रव्यत्वेन कार्यकारणभावका त्याग नहीं है। अतएव=संश्लेपको आवश्यक होनेसेही तदितर=घटमनःसन्निकर्षसे इतर हेतुओंका साकल्य होनेपर घटके साथ चक्षुके सन्निकर्षकोही घटविषयक–अनुभवजनकत्व है घटके साथ मनके सन्निकर्षको नहीं तद्विलम्बेन=घटमनःसन्निकर्षके विलम्बसे तद्विलम्ब=घटानुभवमें विलम्बका अभाव होनेसे

इति=यह कथन निरस्त हुआ, अतएवसे कहे अर्थको दृढ करते हैं। आवरणेति। आवरण-भङ्गमें सन्निकृष्ट तेजके कारणत्वका अवधारण होनेसे तस्यापि=घटमनःसन्निकर्षकोभी आवश्यक होनेसे।

नच स्पार्शनप्रत्यक्षे चक्षुरादिवन्नियतगोलकद्वाराऽभावेन अन्तःकरणनिर्गत्ययोगादावरणाभिभवानुपपत्तिरिति वाच्यम्। सर्वत्र तत्तदिन्द्रियाधिष्ठानस्यैव द्वारत्वसंभवात्। नचान्तःकरणवृत्तित्वाविशेषादिच्छाद्वेषादिरूपवृत्तयोऽपि देहान्निर्गत्य विषयसंसृष्टा भवन्तीति कथं न स्वीक्रियते इति वाच्यम्। आवरणाभिभावकतेजस्त्वस्य तत्प्रमापकस्य ज्ञानवत् तत्राभावात्।

त्वग्जन्य प्रत्यक्षस्थलमें चक्षुरादिके सदृश नियत गोलकरूप व्यवहारके अभावसे अन्तःकरणके निर्गमनका अयोग है। अतः आवरणके अभिभवकी अनुपपत्ति है; इति न च वाच्यम्; सर्वत्र तत्तदिन्द्रियके अधिष्ठानकोही द्वारत्वका संभव होनेसे। शङ्कते नचेति। अन्तःकरणवृत्तित्वको अविशेष होनेसे इच्छाद्वेषादिरूप वृत्तियाँभी देहसे निकलकर विषयसे संसृष्ट=संश्लिष्ट होती हैं यह क्यों नहीं स्वीकार किया जाता है; इति न च वाच्यम् क्यों ? तत्प्रमापकस्य=विषयसंसृष्टत्व प्रमापक जो आवरणाभिभावकतेजस्त्व उस तेजस्त्वका ज्ञानवत्=चाक्षुषादिरूप मनोवृत्तिवत् तत्र=इच्छादिरूप वृत्तिओंमें अभाव होनेसे;—चाक्षुषादिरूप अन्तःकरणकी वृत्तिओंमें जैसे विषय–संसृष्टत्वप्रमापक उक्त तेजस्त्वरूप हेतु है तैसे इच्छादिरूप वृत्तिओंमें नहीं।

ननु घटप्रकाशकं चैतन्यमुपदेशसहस्र्यनुसारेण घटाकारधीस्थाचिद्वा परागर्थप्रमेयेष्वित्यादिवार्तिकोक्तरीत्या धीप्रतिविम्बितचैतन्याभेदाभिव्यक्तविषयाधिष्ठानचैतन्यं वा नाद्यः, आध्यासिकसम्बन्धस्यातन्त्रतापातात्। न द्वितीयः आवश्यकेन विषयसंश्लिष्टवृत्ति–प्रतिविम्बितचैतन्येनैव तदज्ञाननिवृत्तिवत् तत्प्रकाशस्याप्युपपत्तौ किंविषयाधिष्ठानचैतन्याभिव्यक्तिकल्पनेनेति चेन्न; प्रकाशकं तावदधिष्ठानचैतन्यम्। तच्चाध्यासेन विषयैः सह साक्षात्संबद्धं प्रकाशस्य च स्वयंभासमानस्य स्वसंबद्धसर्वभासकत्वमपि क्लृप्तमेव एतदनभ्युपगमे कल्पनान्तरगौरवापत्तेः। तच्चानभिव्यक्तं निर्विकल्पकरूपमाच्छादितदीपवन्न प्रकाशकमिति तदभिव्यक्तिरपेक्षिता तच्च परोक्षस्थले वृत्त्यवच्छेदेनैवाभिव्यज्यते अपरोक्षस्थले तु वृत्तिसंपर्कादावरणाज्ञानाभि भवे विषयोऽभिव्यज्यते, वृत्तेः विषयपर्यन्तत्वात्। नच परोक्षस्थलेप्येवंप्रसङ्गः, द्वाराभावेनान्तःकरणनिर्गत्यभावात्।

शङ्कते नन्विति। घटका प्रकाशक जो चैतन्य है वह क्या उपदेशसहस्री ग्रन्थानुसार घटाकारधीमें स्थित् जो चित् है तद्रूप है, या, परागर्थप्रमेयेषु याफलत्वेन संमता इत्यादि वार्तिकोक्त रीतिसे धीप्रतिविम्बित चैतन्यके साथ अभेदरूपसे अभिव्यक्त जो विषयाधिष्ठान चैतन्य तादृश चैतन्यरूप है, नाद्यः=दोनों पक्षोंमेंसे पहिला पक्ष समीचीन नहीं है, क्यों ?

घटाकारधीस्थ चैतन्यसे घटका प्रकाश होनेपर आध्यासिकसम्बन्धको घटप्रकाशके प्रति अतन्त्रताका आपात होनेसे । न द्वितीयः=द्वितीय पक्षभी सम्यक् नहीं है, क्योंकि आवश्यक जो विपयसंश्लिष्ट वृत्तिमें प्रतिबिम्बित चैतन्य उस चैतन्यसेही विपयके अज्ञानकी विनृत्तिवत् विपयप्रकाशकीभी उपपत्ति होनेसे विपयाधिष्ठान चैतन्यकी अभिव्यक्ति कल्पनासे क्या प्रयोजन है–ऊपरकी पङ्क्तिमें विपयसंश्लिष्ट यह वृत्तिका विशेपण है । इति चेन्न । क्योंकि प्रकाशक तो अधिष्ठान चैतन्यही है, और वह अध्याससे विपयोंके साथ साक्षात्संबद्ध होता है और स्वयंभासमान प्रकाशको स्वसे सम्बद्ध सर्वका प्रकाशकत्वभी निश्चितही है । एतदनभ्युपगमे=लोगसिद्ध प्रकाशस्थलमें क्लृप्त अर्थको ज्ञानरूप प्रकाशमें न माननेपर कल्पनान्तररूप गौरवकी आपत्ति है अतः यह अर्थ मानना चाहिए । तच्च=और वह अधिष्ठान चैतन्य अनभिव्यक्तनिर्विकल्पकरूप हुआ, आच्छादित दीपवत् प्रकाशक नहीं है, इति=अतः तदभिव्यक्ति=विपयाधिष्ठान चैतन्यकी अभिव्यक्ति अपेक्षित है तच्च=वह चैतन्य परोक्ष स्थलमें शरीरमध्यवर्तिवृत्त्यवच्छेदेन अभिव्यक्त होता है, और अपरोक्ष स्थलमें तो वृत्तिके सम्पर्कसे आवरणरूपाज्ञानका अभिभव होनेपर विपयावच्छेदेन अभिव्यक्त होता है वृत्तिको विपयपर्यन्त पहुंच जानेसे । परोक्षस्थलमें भी इस रीतिसे विपयावच्छेदेन चैतन्यकी अभिव्यक्तिका प्रसङ्ग है नच=नहीं है क्यों ? द्वाराभावप्रयुक्त अन्तःकरणकी निर्गतिका अभाव होनेसे ।

ननु वृत्तेस्तदाकारत्वं न तावत्तद्विपयत्वम् । त्वयैव निरासात् । नापि तस्मिन् चैतन्योपरागयोग्यतापादकत्वम्, तदज्ञानाभिभावकत्वं वा उभयोरपि तदाकारत्वप्रयोज्यत्वेन तत्त्वायोगात् । नापि घटादिवत् पृथुबुध्नोदराद्याकारत्वम् । साकारवादापातात् संस्थानहीनजातिगुणादिवृत्तेर्निराकारत्वप्रसङ्गात् । घटपटाविति समूहालम्बने विरुद्धनानाकारत्वापत्तेश्चेति चेन्न । अस्तीत्यादितद्विपयकव्यवहारप्रतिबन्धकाज्ञान–निवर्तनयोग्यत्वस्य–तत्सन्निकृष्टकरणजन्यत्वस्य वा तदाकारत्वरूपत्वात् । तदुभयञ्च स्वकारणाधीनस्वभावविशेपात् । न च आत्माश्रयः । निवृत्तिजननस्वरूपयोग्यतया फलोपधानस्य साध्यत्वेन स्वानपेक्षणात् ।

शङ्कते नन्विति । वृत्तेः=वृत्तिनिष्ठ जो तदाकारत्व है वह तद्विपयत्वरूप नहीं हो सकता है, क्यों ? तुमसेही उसका निरास होनेसे । तस्मिन्=विपयनिष्ठ जो चैतन्योपरागकी योग्यता तादृश योग्यतापादकत्वरूप या विपयनिष्ठ जो अज्ञान तादृश–अज्ञानाभिभावकत्व रूपभी नहीं हो सकता है क्यों ? दोनोंकोभी तदाकारत्वसे प्रयोज्यत्व है अतः तदाकारत्वका अयोग होनेसे । वैसे घटादिके तुल्य पृथुबुध्नोदराद्याकारत्वरूपभी नहीं हो सकता है क्यों ? साकारवादका आपात होनेसे, पृथु नाम स्थूलका है और बुध्न नाम गोलका है, और उदर नाम पेटका है पृथु और बुध्न दोनों उदरके विशेपण हैं; और संस्थानहीन=अवयवोंकी रचनारूप संस्थानसे हीन जो जातिगुणादि हैं तदीयवृत्तिको निराकारत्वके प्रसङ्गसेभी, और 'घटपटौ' इत्याकारक समूहालम्वनमें विरुद्धनानाकारत्वकी आपत्तिसेभी यह पक्ष असङ्गत है, इति चेन्न क्यों ?

'अस्ति' इत्यादि जो तद्विषयकव्यवहार तादृशव्यवहारका प्रतिबन्धक जो अज्ञान=असत्वापादक अज्ञान तादृशअज्ञाननिवर्तनयोग्यत्वको या तत्सन्निकृष्ट जो करण तादृशकरणजन्यत्वको तदाकारत्वरूप होनेसे, तदुभयं च=उक्त आकाराख्य सम्बन्धविशेष वृत्तिज्ञानके कारणाधीन स्वभावविशेषसे होता है । आत्माश्रय है=उक्त वृत्तिज्ञानको जनकतावच्छेदकत्वेन निवृत्तिजनकत्व होनेसे आत्माश्रय है । जनकताका जनकतावच्छेदकत्वेन भान होनेसे नच=आत्माश्रय नहीं; क्यों ? निवृत्तिजननस्वरूपयोग्यत्वप्रयुक्तफलोपसाधनके साध्यसे स्वकी अपेक्षा न होनेसे । अर्थात् निवृत्तिजनकतावच्छेदकत्वेन अवच्छेदकमें निवेश नहीं है किन्तु तदाकारतात्वेन निवेश है ।

ननु दृशि विषयाध्यासस्वीकर्तुर्जीवचैतन्यं वा विषयदृक् ब्रह्मचैतन्यं वा । नाद्यः जीवे अवच्छिन्ने चित्स्वरूपे कल्पिते अध्यासायोगात् । नच विषयदृक् जीवचैतन्यमेव अध्यासस्तु ब्रह्मचैतन्ये इति वाच्यम् । दृश्ययोरेवाध्यासिकसम्बन्धापत्तेः अध्यस्ताधिष्ठानयोरुभयोरपि दृग्भिन्नत्वात् । अत एव न द्वितीयोऽपि, ब्रह्मणोऽपि कल्पितत्वेन तत्राध्यासायोगात् नच शुद्धचैतन्यमेकमेकमेव तदेवाधिष्ठानम्, तत्रावच्छेदकमविद्यानाधिष्ठानकोटौ प्रविशति तदेव च जीवशब्देन ब्रह्मशब्दकेन च व्यपदिश्यते । उपाधिविशेषात् । तथाच जीवचैतन्यस्य दृक्त्वेऽपि दृश्याध्यासोनोपपन्न इति वाच्यम् शुद्ध–चैतन्यस्याऽऽसंसारमावृतत्वेन जगदान्ध्यप्रसङ्गात् इति चेन्न मूलाविद्यानिवृत्त्यभावेन सर्वतः आवरणाभिभवाभावेऽपि घटाद्यवच्छेदेन आवरणाभिभवात् आन्ध्यविरहोपपत्तेः ।

ननु–दृशि=ज्ञानमें विषयके अध्यासको अङ्गीकार करनेवालेके मतमें विषयका द्रष्टा कौन है जीव–चैतन्य या ब्रह्म चैतन्य, नाद्यः आदिम पक्ष समीचीन नहीं होसकता है क्यों ? कल्पित उपाधिपरिच्छिन्न चित्स्वरूपतो जीव है उसमें अध्यासका अयोग होनेसे, विषयका-द्रष्टातो जीव चैतन्य ही है, और अध्यास ब्रह्म चैतन्यमें है; इति न च वाच्यम् क्यों ? दृश्य जो दो पदार्थ हैं उन दोनोंके ही आध्यासिक सम्बन्धकी आपत्तिसे=ब्रह्मभी दृश्य और विषय-भी दृश्य है अतः दृश्योंका ही अध्यासिक सम्बन्ध सिद्ध होगा, और आपतो अभीतक दृग्-दृश्यका आध्यासिक सम्बन्ध बताते चले आते हैं, अतः विरोध होगा, अतएव=उक्तदोषके सद्भावसे ही द्वितीय=ब्रह्म विषयका द्रष्टा है यह पक्षभी यथार्थ नहीं, क्यों ? उपहित ब्रह्मकोभी कल्पित होनेसे तत्र=उस ब्रह्ममें अध्यासके अयोगसे, ब्रह्म चैतन्यको द्रष्टामात्र मानकर जीवमें अध्यास मानों तो दृश्योंकाही अध्यासात्मक सम्बन्ध सिद्ध होगा दृग्दृश्यका नहीं । शुद्ध चैतन्य एकही है, और वही अधिष्ठान है, तत्र=उस ब्रह्ममें अधिष्ठानतावच्छेदक जो अविद्यादिक हैं वे अधिष्ठान कोटिमें प्रविष्ट नहीं होते हैं । तदेवच=वह शुद्ध ही जीव शब्दसे तथा ब्रह्म शब्दसे व्यपदिष्ट होता है, उपाधिविशेषसे; फलतः जीवचैतन्यको दृक्त्व होनेपरभी अध्यास अनुपपन्न नहीं है इति न च वाच्यम्; शुद्ध चैतन्यको संसारपर्यन्त आवृत होनेसे जगत्

में आन्ध्यके प्रसङ्गसे=शुद्धको यदि अधिष्ठान मानोंगे तो जवपर्यन्त संसार है तब तकतो उसका भान नहीं माना जा सकता है, क्योंकि भान होनेपरतो संसार ही निवृत्त होजायगा, अतः संसार-कालमें भान नहीं ही होसकता है और जब यों हुआ तबतो घटादिका भान न होगा और भानविना प्रवृत्त्यादिके अभावसे जगत्में घोर अन्धकार छा जायगा; इति चेन्न; क्यों ? शुद्ध ब्रह्मकी आच्छादिका जो मूलाविद्या है उसकी निवृत्तिके न होनेसे सर्वतः आवरणके अभिभवके न होनेपरभी घटाद्यवच्छेदेन आवरणके अभिभवसे आन्ध्यके विरहकी उपपत्ति होनेसे ।

ननु-तर्हीदानीमपि ब्रह्मस्फुरणे चरमवृत्तिवैयर्थ्यम् अधिकभागेऽपि तस्य स्फुरणात्, नह्यखण्डार्थवेदान्तजन्यायां वृत्तौ भावो अभावो वा विशेषणमुपलक्षणं वा प्रकारः प्रकाशते इति चेन्न; उपाध्यविषयकब्रह्मस्फुरणस्य चरमवृत्तियुक्तत्वेन तस्याः साफल्यात् प्रकारास्फुरणं तु तस्याः भूषणमेव इदानीन्तनस्फुरणस्य सप्रकारत्वेनोपाधिविषयत्वात्, एकधैवानु द्रष्टव्यमित्यादिश्रुतिवलात् स्वसमानविषयज्ञानादेव चाज्ञाननिवृत्तेरखण्डचिन्मात्रज्ञानस्यैव मोक्षहेतुत्वावधारणात् । नच-अन्तःकरणावच्छिन्नस्य चैतन्यस्य जीवत्वे सुषुप्त्यवस्थायां तदभावेनकृतहान्याद्यापत्तिरिति वाच्यम् । तदाप्यस्यकारणात्मनाऽवस्थानात् स्थूलसूक्ष्मसाधारणस्यान्तःकरणस्य उपाधित्वात् । तदपीतेस्संसारव्यपदेशादित्यस्मिन् सूत्रे चायमर्थः स्पष्टतरः ।

शङ्कते नन्विति । तब इस कालमेंभी ब्रह्मस्फुरण होनेपर चरम वृत्तिका वैयर्थ्य है, अधिक भागमेंभी ब्रह्मका स्फुरण होनेसे अखण्डार्थक जो वेदान्त तादृशवेदान्त-जन्य वृत्तिमें भावरूप या अभावरूप विशेषणरूप या उपलक्षणरूप प्रकार नहीं प्रकाशित होता है इति चेन्न, उपाध्यविषयक जो ब्रह्मका स्फुरण है उस स्फुरणको चरमवृत्तिसे प्रयुक्त होनेसे तस्याः=चरमवृत्तिके साफल्यसे और प्रकारका स्फुरण न होना तो इस वृत्तिका भूषणही है, इदानीन्तन=संसारकालीन स्फुरणको सप्रकारत्वप्रयुक्त उपाधिविषयत्व है 'एकधैवानुद्रष्टव्यम्' (वृ०४।४।२०) इत्यादि श्रुतिओंके बलसे और स्वसमानविषयक ज्ञानसेही अज्ञानकी निवृत्ति होनेसे अखण्डचिन्मात्रज्ञाननिष्ठही मोक्षहेतुत्वका अवधारण है अतः संसारकालीन ज्ञानसे मोक्ष नहीं हो सकता है अतएव चरमवृत्तिका मानना आवश्यक है; शङ्कते न चेति । अन्तःकरणावच्छिन्न चैतन्यको जीवता होनेपर सुषुप्ति-अवस्थामें तदभावेन=अन्तःकरणके अभावसे कृतहान्यादिकी आपत्ति है=कर्म करनेवाला अन्तःकरणका सुषुप्तिमें नाश होनेसे कृतकर्मका फलभोग विनाही नाश हो गया इसका नाम है-कृतनाश, वैसेही भावी अन्तःकरणने कोई कर्म नहीं किया है परन्तु सुखदुःखादिरूप भोग उसको प्राप्त होता है इसका नाम है-अकृताभ्यागम, यह आदिशब्दसे लिया गया है, इति न च वाच्यम्; क्यों ? तदापि=सुषुप्ति अवस्थामेंभी अस्य=अन्तःकरणको कारणस्वरूपसे विद्यमान होनेसे और स्थूल-सूक्ष्म-साधारण अन्तःकरणको उपाधित्व है । 'तदपीतेः संसारव्यपदेशात् (वे०४।२।८)। इस सूत्रमें यह अर्थ स्पष्टतर है' ।

नच वृत्त्युपरक्तत्वं चैतन्यस्य न तत्प्रतिविम्बितत्वम् । दर्पणे मुखस्येवानुद्भूतरूपे अन्तःकरणे शब्दान्यप्रतिविम्बिनोपाधिताया अचाक्षुपचैतन्यस्य प्रतिविम्बितायाश्चायोगादिति वाच्यम् । उद्भूतरूपवत्वं न प्रतिविम्बितोपाधिताप्रयोजकम् । अस्वच्छेऽपि लोष्टादौ प्रतिविम्बापत्तेः । किन्तु स्वच्छत्वम् । तच्च प्रकाशस्वभावत्वेन मनस्तत्परिणामभूतायावृत्तेश्चास्त्येव । त्रिगुणात्मकस्याप्यज्ञानस्य स्वच्छसत्त्वात्मकतया अपि सत्त्वेन तत्रापि प्रतिविम्बितोपाधितायास्सत्त्वात् नापि चाक्षुपत्वं प्रतिविम्बितत्वप्रयोजकम् । अचाक्षुपस्याप्याकाशादेः प्रतिविम्बितत्त्वदर्शनात् ।

शङ्कते नचेति । चैतन्यस्य=चैतन्यनिष्ठ जो–वृत्युपरक्तत्व है वह प्रतिविम्बितत्व=वृत्तिमें प्रतिविम्बितत्वरूप तो नहीं हो सकता है, दर्पणमें मुखकी तरह अनुद्भूतरूप अन्तःकरणमें शब्दसे अन्यके प्रतिविम्बनकी उपाधिताका और अचाक्षुपचैतन्यनिष्ठ प्रतिविम्बिताका अयोग होनेसे=अनुद्भूतरूपवाला जो अन्तःकरण है, उसमें किसीका प्रतिविम्ब नहीं वन सकता है । यद्यपि रूपरहित आकाशमें शब्दका प्रतिध्वनिरूप प्रतिविम्व होता है । अतः सामान्यतः यह नियम नहीं वन सकता है कि उद्भूत रूपसे शून्यमें किसी पदार्थका प्रतिविम्बन होताही नहीं तथापि शब्दसे भिन्न पदार्थका निरूपमें प्रतिविम्ब नहीं होता है, ऐसा नियम करते हैं इसीलिए कहाकि शब्दान्यके प्रतिविम्बनकी उपाधिता अन्तःकरणमें नहीं है । तैसेही अचाक्षुप चैतन्यकाभी प्रतिविम्व नहीं वन सकता है । इति नच वाच्यम्। क्यों उद्भूतरूपवत्त्व प्रतिविम्बितकी उपाधिताका प्रयोजक नहीं है. अर्थात् जो उद्भूतरूपवालाहो उसमें प्रतिविम्ब होताही हो ऐसा नियम नहीं है क्यों ? अस्वच्छ जो लोष्टादिक है उनमेंभी मुखादिके प्रतिविम्बकी आपत्तिसे, किन्तु स्वच्छत्व, प्रतिविम्बितत्वकी उपाधिताका प्रयोजक है तच्च=वह स्वच्छत्वको प्रकाशस्वभाव–होनेसे मनको तथा मनकी परिणामभूतवृत्तिकोभी है ही त्रिगुणात्मक जो अज्ञान है उस अज्ञाननिष्ठ स्वच्छसत्वात्मकताकेभी विद्यमान होनेसे तत्रापि=अज्ञानमेंभी प्रतिविम्बितकी उपाधिताका सत्त्व है, अतः अज्ञानमेंभी प्रतिविम्व वन सकता है । और चाक्षुपत्व प्रतिविम्बितत्वका प्रयोजक नहीं है=चाक्षुपकाही प्रतिविम्ब पडता है ऐसा नियम नहीं है क्यों ! अचाक्षुप आकाशादिनिष्ठ प्रतिविम्बितत्वकेभी देखनेसे=अचाक्षुप आकाशादिकाभी जलादिमें प्रतिविम्ब होता है अतः ऐसा नियम नहीं ।

ननु चाक्षुपवृत्ति–उपारूढचितः कथं रूपमात्रप्रकाशकत्वम् ? न च प्रभावन्नियमः वैषम्यात् तथाहि–प्रभायां तमोविरोधित्वं रूपं प्रतीव गन्धादीन् प्रत्यपि समम् । न हि सा गन्धदेशस्थं तमो न निवर्तयति । नचाज्ञानविरोधित्वलक्षणं प्रकाशकत्वरूपं प्रत्येव ननु रसादीन्प्रतीति वाच्यम्, अज्ञाननिवर्तकत्वस्य वृत्तिभिन्नेऽनङ्गीकारात् । प्रभायाः रूपग्राहकचक्षुःसहकारित्ववत् गन्धादिग्राहिघ्राणादिसहकारित्वाभावेऽपि चितो ग्राहकान्तरासहकारित्वेन तद्वत्सहकारिविलम्बेन विलम्बस्य वक्तुम् अशक्यत्वात् । तथाच चितः सर्वगतत्वेन

सर्वसम्बन्धात् प्रकाशापत्तिः। वृत्त्युपरक्तचित्सम्बन्धस्यैव प्रकाशकत्वात्। असङ्गोह्ययं पुरुष इति श्रुतिस्तु तद्गतलेपाभावपरा। नतु सम्बन्धनिषेधिका। स यत्तत्र यत्किंचित् पश्यति अनन्वागतस्तेन भवतीतिपूर्ववाक्यात्, यथाकाशस्थितो नित्यं वायुः सर्वत्रगो महान् इत्यादिस्मृतेश्चेतिचेन्न।

शङ्कते नन्विति। चाक्षुष वृत्तिके ऊपर उपारूढ़ जो चित् है उस चित्को रूपमात्रका प्रकाशत्व कैसे है? प्रभावत् नियम है=प्रभा जैसे रूपमात्रकीही प्रकाशिका होती है गन्धादिकी नहीं सम्बन्धके समान होनेपरभी तैसेही चाक्षुषवृत्त्युपारूढ़ चित्भी, नच=नहीं=ऐसा नहीं हो सकता है, क्यों? विषमता होनेसे=दृष्टान्त दार्ष्टान्तका वैषम्य है तथाहि=इसी विषयको दिख-लाते हैं। प्रभामें तमोविरोधित्व जैसे रूपनिरूपित है, वैसेही गन्धादिनिरूपित भी है=प्रभा जैसे रूपके तमको दूर करती है वैसे गन्धादिके तमकोभी दूर करती है सा=वह प्रभा गन्ध-देशस्थ तमको नहीं दूर करती है यह वात नहीं है; प्रभामें अज्ञाननिवर्त्तकत्व लक्षण प्रकाशकत्व रूपके प्रतिही है रसादिकोंके प्रति नहीं इति न च वाच्यम् क्यों? अज्ञाननिवर्त्तकत्वका वृत्ति-भिन्नमें अनङ्गीकार होनेसे, प्रभाको जैसे रूपग्राहक चक्षुका सहकारित्व है वैसे गन्धादिग्राहक घ्राणादिके सहकारित्वका अभाव होनेपरभी चित्को ग्राहकान्तरका असहकारित्व होनेसे तद्वत् प्रभावत् सहकारिविलम्बेन=सहकारीके अभावसे विलम्बस्य=गन्धादिके अनवभासकत्वको कह-नेके लिए अशक्य होनेसे। फलतः चित्को सर्वगतत्व होनेसे सर्वके साथ सम्बन्धसे रूपादिवत् गुरुत्वादिकेभी स्वाश्रयद्वारा या साक्षात्सम्बन्धि होनेसे प्रकाशकी आपत्ति है। वृत्त्युपरक्त जो चित् उस चित्के सम्बन्धकोही प्रकाशकत्व होनेसे, (असङ्गोऽयं पुरुषः बृ० ४।३।१५) यह श्रुति सङ्गकृत लेपाभावपर है, सम्बन्धकी निषेधिका नहीं (सयत्तत्र बृ० ४।३।१५) इत्यादि पूर्व वाक्यसे और (यथाकाश स्थितः गी० अ० ९।६) इत्यादि स्मृति वाक्यसे लेपाभाव बतलाया गया है, सङ्गाभाव नहीं, इति चेन्न क्योंकि—

प्रभाया रूपरसादिदेशगत-तमोनाशकत्वं तत्सम्बन्धाद्युज्यते चैतन्यस्य तु स्वभा-वतोऽसम्बद्धत्वात् तदाकारवृत्त्या तदेकसम्बन्धस्योपादानात् कथमन्याभावभासकत्व-प्रसङ्गः? स्वभावतो सङ्गत्वे ह्यसङ्गोऽयं पुरुषः इति श्रुतिप्रमाणम्। न चैषा लेपाभाव-परा। अकर्तृत्वप्रतिपादनाय सम्बन्धाभावपरत्वात् यथाचैतत्तथान्यत्तमाकरे। एवं स्मृतिरप्येतच्छ्रुत्यनुरोधेन नेया। अतः सर्वैः सह सम्बन्धाभावात् न सर्वावभासः। किन्तु यदाकारावृत्तिस्तस्यैव। अत एवेदं रजतमिति भ्रमे इदमाकारवृत्त्यवच्छिन्न चैतन्येन रजतभानानुपपत्तेः रजताकाराप्यविद्यावृत्तिरभ्युपेयते। स्वतश्चिद्विम्बग्राहके चैतन्यस्य तदाकारत्वायोगात्। स्वतश्चिद्विम्बग्राहके त्वन्तःकरणवृत्त्यादौ न वृत्त्यपे-क्षेति नानवस्था। नच आश्रयसम्बन्धाविशेषेपि रूपाकारावृत्तिर्न गन्धाद्याकारकेति कुत इतिवाच्यम्; यथा तव चाक्षुषज्ञाने आश्रयसम्बन्धाविशेषेऽपि न गन्धो विषयः

तथास्माकमपि चक्षुर्द्वारकवृत्तौ न गन्धाद्याकारत्वम्, इन्द्रिय–विषय–सम्बन्धानां स्वभावस्यनियामकस्य समानत्वात्।

प्रभाको रूपरसादिका जो देश है तद्देशगत जो तम उस तमका नाशकत्व तत्सम्बन्धात्=उस देशके साथ सम्बन्धसे युक्त है, और चैतन्यकोतो स्वभावतः असंबद्ध होनेसे तदाकार वृत्तिसे तद्रूप एकके साथ सम्बन्ध होनेसे अन्यके अवभासकत्वका प्रसङ्ग कैसे है ? चैतन्यके स्वभावतः असङ्गत्वमें (असङ्गोऽयं पुरुषः) यह श्रुति प्रमाण है। यह श्रुति लेपाभावपर है=सम्बन्धजन्य फलका चैतन्यमें लेप नहीं है एतदर्थ परक है नच=नहीं. क्यों ? अकर्तृत्व–प्रतिपादनके लिए सम्बन्धाभावपर होनेसे। जिस रीतिसे यह अर्थ है उस रीतिसे भाष्यभामत्यादिमें स्पष्ट है। यहाँभी निर्गुणप्रकरणमें कहा जायगा। इसीरीतिसे स्मृतिभी श्रुत्यनुरोधसे नेय है। अतः गन्धरसादिसर्वके साथ सम्बन्ध न होनेसे सर्वका अवभास नहीं होता है, किन्तु यदाकार वृत्ति होती है तिसका ही भान होता है अतएव=यदाकार वृत्ति होती है उसकाही भान होनेसे (इदं रजतम्) इत्याकारक भ्रममें इदमाकारवृत्त्यवच्छिन्न चैतन्यसे रजतके भानकी अनुपपत्तिसे रजताकारभी अविद्याकी वृत्ति मानी जाती है, स्वतः=स्वरूपसे=वृत्त्युपलेपके विना चित्के प्रतिबिम्बका अग्राहक जो पदार्थ है उस पदार्थमें चैतन्यके तदाकारत्वका अयोग है, और स्वतः चित्के प्रतिबिम्बके प्रति ग्राहक अन्तःकरण और अन्तःकरणीय वृत्त्यादिमें वृत्तिकी अपेक्षा नहीं अतः अनवस्था नहीं। शङ्कते नचेति। आश्रयके साथ सम्बन्धके अविशेष होनेपरभी रूपाकारावृत्ति गन्धाद्याकारा क्यों नहीं; इति न च वाच्यम्; क्यों ? जैसे तुह्मारे मतमें चाक्षुष ज्ञानमें आश्रयकेसाथ सम्बन्धके अविशेष होनेपरभी गन्धविषय नहीं है, तैसे हमलोगोंके मतमेंभी चक्षुर्द्वारक वृत्तिमें गन्धाद्याकारत्व नहीं है, इन्द्रिय तथा विषय और सम्बन्ध इन तीनोंका जो नियामक स्वभाव है उसको समान होनेसे।

ननु आध्यासिकसम्बन्धो वृत्तेः पूर्वमप्यस्त्येव, अन्यस्तूपरागो न दृश्यते तन्त्रमिति किं तदर्थया वृत्त्येति चेन्न, जीवचैतन्यस्याधिष्ठानचैतन्यस्य वा अभेदाभिव्यक्त्यर्थत्वाद्वृत्तेः। अन्यथा मयेदं विदितमिति सम्बन्धावभासो न स्यात्। ननु जीवचैतन्यस्यासङ्गत्वे ब्रह्मचैतन्यं सुतरामसङ्गम्, तथाच मायोपाधिकविषयोपरागत्वात् स्वतः सार्वज्ञ्यं न स्यात् नच ब्रह्म सर्वोपादानत्वादुपाधिं विनैव स्वस्वरूपवत् स्वाभिन्नं जगदवभासयति इति वाच्यम्। उपादानत्वं न तावद्विशिष्टनिष्ठं परिणामित्वम्। आध्यासिकसम्बन्धस्यातन्त्रतापत्तेः। अनाद्यविद्यादिकं प्रति तदभावाच्च। नापिशुद्धनिष्ठमधिष्ठानत्वम्, शुद्धस्य सर्वज्ञत्वसर्वशक्तित्वादेः अभावात् इतिचेन्न, ब्रह्मणोऽसङ्गत्वेऽपि सर्वेषां तत्राध्यासेन मायोपाधिं विनैव तस्य सर्वप्रकाशतया सार्वज्ञ्योपपत्तेः। नच शुद्धनिष्ठमधिष्ठानत्वं नोपादानत्वम् सार्वज्ञ्याभावादियुक्तमितिवाच्यम् अविद्याकल्पितानां सर्वज्ञत्वादीनां शुद्धेः सत्वात्। अन्यथा तेषां तटस्थलक्षणत्वमपि न स्यात्।

शङ्कते नन्विति । विषयका चैतन्यके साथ आध्यासिक सम्बन्ध तो वृत्तिसे पूर्वभी है ही, और अन्यः=वृत्तिसंश्लेषादिरूप अन्योपराग तो दृश्यत्व=भास्यत्वमें तत्र नहीं है अतः तदर्थया=उपरागार्था वृत्तिसे क्या प्रयोजन है, इति चेन्न; क्यों ? वृत्तेः=वृत्तिको जीव चैतन्यके वा अधिष्ठान चैतन्यके अभिव्यक्तिके लिए होनेसे; अन्यथा=उक्तार्थक वृत्तिके न होनेपर (मयेदं विदितम्) इत्याकारक सम्बन्धका अवभास न होगा। शङ्कते नन्विति, जीव चैतन्यको असङ्ग होनेपर ब्रह्मचैतन्य सुतरां असङ्ग है, फलतः मायोपाधिक विषयोपराग है जिसका एवंभूत ब्रह्मको होनेसे ब्रह्ममें स्वतः=निरुपाधिक सर्वज्ञता न होगी, ब्रह्मको सर्वका उपादान कारण होनेसे, उपाधिके विनाही ब्रह्म स्वस्वरूपवत् स्वसे अभिन्न जगत्कोभी प्रकाशित करता है इति न च वाच्यम्: क्योंकि विशिष्टनिष्ठ परिणामत्वरूप उपादानत्व नहीं बन सकता है=सर्वकी भासकताका प्रयोजक जो उपादानत्व वह उक्तरूप नहीं हो सकता है, आध्यासिक सम्बन्धको अतन्त्रताकी आपत्तिसे=आध्यासिक सम्बन्धको भासकताकी प्रयोजकता आप मानते चले आते हैं उसका परित्याग होगा। और अनादिभूत अविद्यादिके प्रति उक्त उपादानत्वके अभावसेभी=अनादिपदार्थोंके प्रति उक्त उपादानत्व नहीं बन सकता है, अतः उन्होंका भास न होगा, और शुद्धनिष्ठ अधिष्ठानत्वरूपभी उपादानत्व नहीं बन सकता है, शुद्धनिष्ठ सर्वज्ञत्व सर्वशक्तित्वादिका अभाव होनेसे, इति चेन्न, क्यों ? ब्रह्मको असङ्ग होनेपरभी सर्वेषाम्=मायामायास्थित्यधीन-स्थितिकनिखिल पदार्थोंका तत्र=ब्रह्ममें अध्यास होनेसे मायारूप उपाधिके विनाभी तस्य=उक्त ब्रह्मको सर्वका प्रकाशक होनेसे सार्वज्ञ्यकी उपपत्तिसे। शुद्धनिष्ठ अधिष्ठानत्वरूप उपादानत्व नहीं है इति=यह उक्तम्=कहा है इति=ऐसा न च=नहीं वाच्यम्=कहना चाहिए, क्यों ? अविद्यासे कल्पित सर्वज्ञत्वादिका शुद्धमें सत्त्व होनेसे, अन्यथा=आविद्यक सर्वज्ञत्वादिकोभी ब्रह्ममें न माननेपर तेषाम्=सर्वज्ञत्वादिको तटस्थलक्षणत्वभी न होगा। कादाचित्क हो और वर्तमान होके व्यावर्त्तक हो उसका नाम है--तटस्थ लक्षण।

ननु--आवरणाभिभवार्थत्व--पक्षो न युक्तः, विवर्ताधिष्ठानस्य चिन्मात्रस्याज्ञानादिसाक्षित्वेन सदा प्रकाशनात्, अन्यस्याज्ञानकल्पितस्यावरणस्याभावादिति चेन्न, अज्ञानादिसाक्षित्वेन स्वप्रकाशेऽप्यशनायाद्यतीतत्वादिना, प्रकाशाभावात्। आवरणस्यावश्यकत्वात् । नन्वज्ञानस्य नयनपटलवत् पुंगतत्वे चैत्रस्याज्ञाननाशेऽपि मैत्रस्य तदनाशात् अप्रकाशो युक्तः। विषयगतत्वे तु चैत्रार्जितया वृत्त्या अज्ञाने दीपेन तमसीव नाशिते मैत्रस्यापि, प्रकाशः स्यादिति चेन्न, चैत्रावरणशक्तेरेवाज्ञानगतायाश्चैत्रार्जितवृत्त्या नाशितत्वेन स पश्यति। न मैत्रः । तत्प्रतियोगिकावरणशक्तेरनाशात्, आवरणशक्तीनां द्रष्टृविषयभेदाभ्याम् भिन्नत्वात् । तमस्तु न तथेत्येकानीतप्रदीपेनाप्यन्यान्प्रतिप्रकाशो युज्यते।

शङ्कते नन्विति। आवरणके अभिभवके लिए वृत्ति है, यह पक्ष युक्त नहीं है, क्यों ? विवर्ताधिष्ठान जो चिन्मात्र है, उसको अज्ञानसाक्षित्वेन सदा प्रकाशमान होनेसे, और

अज्ञानकल्पितअन्यनिष्ठ आवरणका अभाव होनेसे=अज्ञानकल्पित अन्यपदार्थ स्वभावतः जड ही हैं, उनमें आवरण नहीं माना जा सकता है, इति चेन्न, क्यों ? अज्ञानसाक्षित्वेन स्वप्रकाश होनेपरभी अशनायादि-अतीतत्वादिसे प्रकाशका अभाव होनेसे आवरणके आवश्यकत्वसे= अज्ञानसाक्षित्वेन स्वप्रकाश होनेपरभी, क्षुदिपासादि-अतीतत्वेन भासमान न होनेसे आवरण आवश्यक है । शङ्कते नन्विति । नयनपटलवत्=नेत्रगत काचादिदोषवत् अज्ञानको पुरुषगतत्व होनेपर चैत्रके अज्ञानका नाश होनेपरभी, मैत्रके अज्ञानका नाश न होनेसे अप्रकाश युक्त है । और विषयगत होनेपर तो चैत्रसम्पादित वृत्तिसे दीपसे तमनाशवत् अज्ञानके नाशित होनेपर मैत्रकोभी प्रकाश हो=जैसे चैत्रीयदीपसे तमके नाशित होनेपर मैत्रकोभी घटका प्रकाश होता है, तैसे एककी वृत्तिसे अज्ञानके नाशित होनेपर अन्योंकोभी प्रकाश होना चाहिए इति चेन्न; क्योंकि अज्ञानगत चैत्रीय आवरण शक्तिको ही चैत्रार्जितवृत्तिसे नाशितत्व होनेसे, चैत्र देखता है मैत्र नहीं; मैत्रप्रतियोगिकआवरणशक्तिके अनाशसे । आवरण-शक्तिओंको द्रष्टा और विषयके भेदसे भिन्न होनेसे, तम तो वैसा नहीं है, अतः एकसे आनीत दीपसेभी अन्योंके प्रति प्रकाश युक्त होता है ।

एतेन—एका-ज्ञान-पक्षे शुक्तिज्ञानेन तदज्ञाननिवृत्तौ सद्य एव मोक्षापातः । अनिवृत्तौ रूप्यादेः सविलासाविद्यानिवृत्तिरूपबाधायोगः, इति निरस्तम्, आवरणशक्तिनाशेऽपि मूलाज्ञाननाशाभावेन सद्यो मोक्षाभावस्य रूप्यादौ सविलासाविद्यानिवृत्तिरूपबाधस्य चोपपत्तेः । ननु एकाज्ञानपक्षे रूप्यादेः शुक्तिज्ञानेन स्वकारणे प्रविलयमात्रं क्रियते, मुद्गरप्रहारेणेव घटस्य नत्वज्ञानं निवर्त्यते इति ते मतं न युक्तम् । यतो ज्ञानमज्ञानस्यैव निवर्त्तकमिति बलात् ज्ञानस्याज्ञाननिवृत्तिद्वारंवान्यविरोधित्वेनाज्ञानमनिवर्त्यरूप्यादिनिवर्तकत्वायोगात् । शुक्तिज्ञानेनाज्ञाननिवृत्तावभिव्यक्त-चैतन्यसम्बन्धाभावेन भ्रान्ताविव बाधेऽपि शुक्तेरप्रकाशापत्तेश्च इति-चेन्न,

एतेन=द्रष्टाके भेदसे और विषयके भेदसे आवरणशक्तियोंके भिन्न भिन्न होनेसे जिस पक्षमें एक अज्ञान माना जाता है । उस पक्षमें शुक्तिके ज्ञानसे उस अज्ञानकी निवृत्ति होनेपर तुरत मोक्षकी आपत्ति है। अनिवृत्तौ=शुक्तिज्ञानसे अज्ञानकी निवृत्ति न होनेपर कार्यके सहित अविद्याकी निवृत्तिरूप जो बाध है उसका अयोग है=अविद्यानिवृत्तिके न होनेपर कार्यसहित अविद्याकी निवृत्तिरूप जो बाध होताहै, वह न होगा । यह कथन खण्डित हुआ, एतेन शब्दके अर्थकाही विवरण करते हैं आवरणेति । आवरणशक्तिका नाश होनेपरभी मूलाज्ञानका नाश न होनेसे, सद्यो मोक्षाभावकी उपपत्ति होनेसे और रूप्यादिमें सविलास शक्तिमती जो अविद्या है तादृश अविद्याकी निवृत्तिरूप बाधकीभी उपपत्ति होनेसे=यद्यपि शुक्तिज्ञानसे स्वरूपतः अविद्याका नाश नहीं होता है तथापि सविलास जो शक्ति तादृश-शक्तिमत्वेन नाश होता है । अतः लोकव्यवहृत बाधकी उपपत्ति है । सिद्धान्तीके मतका अनुवाद कर वादी दोष देता है नन्विति । एकाज्ञानपक्षमें रूप्यादिका शुक्तिज्ञानसे स्वकारणमें प्रविलयमात्र किया जाता है,

जैसे मुद्गरके प्रहारसे घटका प्रविलय स्वकारणमें किया जाता है वैसे । यह तुम्हारा मत युक्त नहीं, जिससे कि–ज्ञान अज्ञानकाही निवर्त्तक है इत्याकारक व्याप्तिके बलसे ज्ञानको अज्ञानकी निवृत्तिद्वाराही अन्यका विरोधित्व होनेसे, अज्ञानको न निवृत्त कर रूप्यादिके निवर्त्तकत्वका अयोग होनेसे शुक्तिज्ञानसे अज्ञानके न निवृत्त होनेपर अभिव्यक्त चैतन्यके साथ सम्बन्ध न होनेसे भ्रान्तिकी तरह शुक्तिके अप्रकाशकी आपत्तिसेभी यह पक्ष अयुक्त है=भ्रान्तिकालमें जैसे शुक्तिरूप–विषयावच्छेदेन, अभिव्यक्त चैतन्यके साथ शुक्तिका सम्बन्ध न होनेसे शुक्तिका प्रकाश नहीं होता है वैसेही बाधकालमेंभी शुक्तिका प्रकाश न होगा । इति चेन्न; क्यों ?

यतो ज्ञानमज्ञाननिवर्त्तकमितिव्याप्तेरुच्छेदविषयत्वात् । स्वकारणे सूक्ष्मरूपेणावस्थाने तदनङ्गीकारात् शुक्तिज्ञानस्य चानवच्छिन्नचैतन्यावरणरूपमूलाज्ञानानिवर्तकत्वेऽपि अवच्छिन्नचैतन्यावरणरूपतूलाज्ञाननिवर्तकत्वेनाभिव्यक्त–चैतन्यसम्बन्धात् । बाधदशायां रूप्यनिवृत्तिशुक्तिप्रकाशयोरप्युपपत्तेः । नचोपादेयभूतया वृत्त्योपादानभूताविद्याभिभवो न घटते; उपादेयेनोपादानाभिभवादर्शनात् इति वाच्यम् वृश्चिकादिना गोमयादेरुपादानस्याभिभवदर्शनात् आरंभवादानभ्युपगमाच्च न गोमयावयवानामुपादानत्वशङ्का ।

यतः ज्ञान अज्ञानका निवर्त्तक है इस व्याप्तिको उच्छेदविषयत्व होनेसे=ज्ञानं अज्ञानव्याप्योच्छेदकम् ऐसा इस व्याप्तिका अर्थ है, अज्ञानव्याप्य शब्दसे अज्ञान और अज्ञानव्याप्य जीवेशादिरूप अनादिपदार्थ और अज्ञानका कार्य इन तीनोंका ग्रहण है स्वमेंभी स्वव्याप्यत्व रहताही है, स्वकारणमें सूक्ष्म रूपसे अवस्थान होनेपर तदनङ्गीकारात्=ज्ञान अज्ञानकाही निवर्त्तक है इस नियमका अङ्गीकार न होनेसे=चरमवृत्तिसे अज्ञानका उच्छेद होनेपर पश्चात् अज्ञान किसी रूपसे नहीं रहता है और कार्यका उच्छेद होनेपरभी कार्य कारणात्मना रहता है यदि ऐसा नियम होता कि ज्ञानसे अज्ञानकीही निवृत्ति होती है तो उक्त दोष आसकते थे अब नहीं । और शुक्तिज्ञानको अनवच्छिन्नका आवरणरूप जो मूलाज्ञान तादृशमूलाज्ञानका अनिवर्त्तकत्व होनेपरभी घटपटादि–पदार्थावच्छिन्न चैतन्यका आवरण जो तूलाज्ञान तादृशतुलाज्ञानका निवर्त्तकत्व होनेसे अभिव्यक्त चैतन्यके साथ सम्बन्धसे बाधदशामें रूप्यकी निवृत्ति और शुक्तिका प्रकाश इन दोनोंकी उपपत्ति है । शङ्कते न चेति । उपादेयभूतया=अविद्याकी कार्यरूप जो वृत्ति है उस वृत्तिसे स्वोपादानभूत अविद्याका अभिभव युक्त नहीं है, उपादेयसे उपादानके अभिभवके अदर्शनसे, इति नच वाच्यम्, क्यों ? वृश्चिकादिरूप उपादेयसे गोमयादिरूप उपादानके अभिभवके देखनेसे, आरम्भवादके अनङ्गीकारसे गोमयके अवयवोंको उपादानत्वकी शङ्का नहीं है=आरम्भवादका अङ्गीकार होता तो 'यद् द्रव्यं यद् द्रव्यध्वंसजन्यं तत्तदुपादानोपादेयम्' इस नियमके अनुसार गोमयके अवयवोंके उपादानत्वकी शङ्का होती सोतो नहीं है किन्तु परिणामवाद है ।

ननु चक्षुरादिजन्यशुक्त्यादिवृत्तेः सप्रकारिकायाः निष्प्रकारकशुद्धचैतन्याविषयतया तदावरणरूपमूलाज्ञानाभिभवाभावेऽप्यवच्छिन्नविषयया तया अवच्छिन्नचैतन्यावरणरूपतुलाज्ञानाभिभवो युज्यते इति ते मतमयुक्तम्। अवच्छिन्नेऽविद्याकल्पिते अप्रसक्तप्रकाशे मूलाविद्याया इव तदावरणशक्तेरयोगात् त्वयानभ्युपगतत्वाच्च। जडविशिष्टात्मानं प्रति तदभ्युपगमे च विशेषणावरकविशिष्टावारकशक्त्यभिभवस्य विशेष्यावारकशक्त्यभिभवं विनाऽयोगेन शुक्त्याकारवृत्त्यैव शुद्धात्मप्रकाशापातात् इति चेन्न, अनवबोधात् नह्यविद्याकल्पितेऽवच्छिन्ने अस्माभिरविद्या वा तच्छक्तिर्वाऽभ्युपेयते। किन्तु चैतन्यमात्रे एव तस्मिंस्तु सर्वं जडमध्यस्तमस्तीत्येकाश्रयाश्रितत्वसम्बन्धात् जडावच्छिन्नचैतन्यमावृतमितिव्यपदेशः। घटाद्याकारवृत्त्या तु तदधिष्ठानचैतन्याभिव्यक्तौ तदवच्छेदेनैव तन्निष्ठावरणाभिभवो जायते इतिशुद्धात्मप्रकाशापत्तिः।

चक्षुरादिसे जन्यजो शुक्त्यादिविषय सप्रकारिका वृत्ति है उस वृत्तिको निष्प्रकारकशुद्धचैतन्यविषयत्व न होनेसे चैतन्यावरणरूप जो मूलाज्ञान उस मूलाज्ञानके अभिभवका अभाव होनेपरभी अवच्छिन्नविषयक जो वह वृत्ति है, उस वृत्तिसे अवच्छिन्न चैतन्यका आवरणरूप जो तूलाज्ञान उस तूलाज्ञानका अभिभव युक्त है यह जो तुह्मारा मत है वह अयुक्त है, क्यों ? जिसमें प्रकाश प्रसक्त नहीं है ऐसा जो अविद्याकल्पित अवच्छिन्न चैतन्य है उस अवच्छिन्न चैतन्यमें मूलाविद्याकी तरह मूलाविद्याकी आवरण–शक्तिकाभी अभाव है। और तुमसे अङ्गीकृत न होनेसेभी और जडविशिष्ट जो आत्मा है उस आत्माके प्रति तदभ्युपगमेच=आवरणशक्तिके अङ्गीकार करनेपर विशेषणकी अनावरक और विशेष्यकी आवरक जो शक्ति उस शक्तिके अभिभवका विशेष्यावरकशक्तिके अभिभव विना अयोग होनेसे शुक्त्याकार वृत्तिसेही शुद्ध आत्माके प्रकाशकी आपत्ति होनेसे इति चेन्न; क्यों ? तात्पर्यके न समझनेसे; अभिप्राय प्रकट करते हैं, नेति। अविद्यासे कल्पित जो अवच्छिन्न चैतन्य है उस अवच्छिन्न चैतन्यमें हमलोगोंसे अविद्या या अविद्याकी शक्ति नहीं अङ्गीकार की जाती है, किन्तु चैतन्यमात्रमें, तस्मिन्=उस चैतन्यमात्रमें तो सर्व ही जड अध्यस्त है अतः एकाश्रयाश्रितत्वरूप सम्बन्धसे जडावच्छिन्न चैतन्य आवृत है, ऐसा व्यपदेश होता है। और घटाकार वृत्तिसे तो अधिष्ठान चैतन्यकी अभिव्यक्ति होनेपर घटावच्छेदेनैव घटचैतन्यनिष्ठ आवरणका अभिभव होता है, अतः शुद्ध आत्माके प्रकाशकी आपत्ति नहीं।

तदुक्तं संक्षेपशारीरके–'आश्रयत्वविषयत्वभागिनी निर्विभागचितिरेव केवला। पूर्वसिद्धितमसो हि पश्चिमो नाश्रयो भवति नापि गोचरः॥' 'बहु निगद्य किमत्र वदाम्यहं शृणुत सङ्ग्रहमद्वयशासने। सकलवाङ्मनसातिगता चितिः सकलवाङ्मनसव्यवहारभाक्॥ इति च। तस्मादविद्यायां सत्यामपि शक्त्यभिभवाद्वा तूलाज्ञाननाशाद्वा, अवस्थाविशेषप्रच्यवाद्वा एकदेशनाशाद्वा भीरुभटवदपसरणाद्वा कटवत्संवेष्टनाद्वा आवरणभङ्गानिर्मोक्षबाधानामुपपत्तिः।

संक्षेपशारीरकमें कहा है। जीवेशादिभेदशून्य शुद्ध चैतन्य ही मूलाज्ञानका आश्रय तथा विषय है। पूर्वसिद्धतमसोहि=जीवेशादिसे पूर्वसिद्ध तमरूप अज्ञानका पश्चिमः=पश्चात् सिद्ध जीव या ईश आश्रय तथा विषय नही हो सकते हैं। अत्र=वेदान्तके प्रस्तुत सिद्धान्तमें बहुत विस्तरसे मैं क्या कहूँ इस अद्वैतशासनमें संक्षेपसे संग्रह सुनलो कि चैतन्य सर्व वाणी तथा मनसे अतीत है और सकल वाणी तथा मनके व्यवहारको भजनेवालाभी है=विवेकीकी दृष्टिसे निरुपाधिक है, अतएव सर्वव्यवहारसे अतीत है और अविवेकीकी दृष्टिसे उपाधिमत् है, इसलिये व्यवहारभाक् कहा जाता है। तात्पर्य यहकि—सर्वव्यवहार अधिष्ठानता संबन्धसे चैतन्यमें ही रहता है अतः सर्व व्यवहारभाक् बतलाया है, और वस्तुतः जैसे ग्रीष्मकालीन प्रचण्डमार्तण्डीयकिरणोंमें अध्यस्त जलसे पृथिवीका कोई तात्त्विकसम्बन्ध नहीं और उस जलसे पृथिवीकी कोई हानिभी नहीं तद्वत् व्यवहारकाभी ब्रह्मकेसाथ कोई वास्तविक सम्बन्ध नहीं और व्यवहारसे ब्रह्मकी कोई हानिभी नहीं अतः सर्व व्यवहारसे अतीत कहा जाता है। तस्मात्—अविद्याके रहनेपरभी, आवरणशक्तिके अभिभवसे या तूलाज्ञानके नाशसे, या अवस्था विशेषके प्रच्यवसे या अविद्याके एकदेशके नाशसे या भीरुभटवत् अविद्याके हट जानेसे या कटवत् अविद्याके संवेष्टनसे आवरणका भङ्ग, शुक्त्यादिके ज्ञानसे अनिर्मोक्ष, रजतादिका बाध इन तीनोंकी उपपत्ति हुई।

ननु अवस्थाविशेषाणामज्ञानाऽभिन्नत्वे एकाज्ञानपक्षक्षतिः अज्ञानभिन्नत्वे च साक्षात् ज्ञानेन निवृत्तिः भ्रमाद्युपादानत्वञ्च न स्यात्। तेषामिव रूपस्यैवोपादाननाशं विना नाशप्रसङ्गश्च शुक्त्यज्ञानं नष्टमित्यनुभवविरोधश्चेति चेन्न, यतोऽवस्थातावदवस्थावतोऽभिन्नैव। अज्ञानैक्यं तु सर्वावस्थानुस्यूतैकाकारमादाय। एवञ्चाज्ञानावस्थाया अज्ञानत्वेन न ज्ञानसाक्षान्निवर्त्यत्वाद्यनुपपत्तिः। यत्त्ववस्थाविशेषाणामिव रूप्यस्यैवोपादाननिवृत्तिं विना निवृत्त्यापादनं तदयुक्तम्। अज्ञान एव ज्ञानस्य साक्षाद्विरोधावधारणेनाज्ञानावस्थायाः तदभिन्नायाः ज्ञानसाक्षान्निवर्त्यत्वात्। न तु रूप्यादीनाम् अनीदृक्त्वात्। अनेकाज्ञानपक्षे तु शङ्कापि नोदेति।

शङ्कते नन्विति। अवस्थाविशेषोंको अज्ञानके साथ अभिन्न होनेपर 'अज्ञान एक है' इस पक्षकी हानि है। अवस्था विशेषोंको अज्ञानसे भिन्न होनेपर अवस्थाविशेषोंकी साक्षात् ज्ञानसे निवृत्ति न होगी। और भ्रमका उपादानत्वभी नहीं होगा, और तेषामिव=अवस्थाविशेषोंकी तरह उपादानके नाश विनाही रजतके नाशका प्रसङ्ग होगा 'शुक्त्यज्ञानं नष्टम्' इस अनुभवके साथ विरोधभी होगा, इति चेन्न, यतः अवस्था अवस्थावालेसे अभिन्नही है, और अज्ञानका ऐक्य तो सर्व अज्ञानरूपावस्थाओंमें अनुस्यूत एकाकार=एकाज्ञानस्वरूपको लेकर है=जैसे घटादिरूप अवस्थाओंमें अनुगत हुआभी अज्ञान घटादिके नष्ट होनेपर नष्ट नहीं होता है वैसे ही अज्ञानरूप नाना अवस्थाओंमें अनुस्यूत अज्ञान उन अवस्थाओंके नष्ट होनेपरभी नष्ट

नहीं होता है, विशेषता यह है कि–घटादिरूप अवस्थाओंका उच्छेद अनादिरूप अज्ञानके उच्छेद विना नहीं होता है, और अज्ञानरूप अवस्थामें यद्यपि स्वानुस्यूत अज्ञानवत् अनादि हैं फिरभी इनका अनादि अज्ञानके उच्छेद विना उच्छेद होता है। इस रीतिसे अज्ञानकी अवस्थाको अज्ञानरूपत्व होनेसे ज्ञानसे साक्षात् निवर्त्यत्वादिकी अनुपपत्ति नहीं है। और जो अवस्थाविशेषोंकी तरह उपादानकी निवृत्ति विना रूप्यके निवृत्तिका आपादन है वह अयुक्त है। क्यों ? अज्ञानमेंही ज्ञानके साक्षात् विरोधका अवधारण होनेसे अज्ञानके साथ अभिन्न अज्ञानकी अवस्थाको ज्ञानसे साक्षात् निवर्त्यत्वके योग्य होनेसे=अवस्थाको अज्ञानरूप होनेसे साक्षात् ज्ञाननिवर्त्यत्व है। और रूप्यादिको नहीं अनीदृक्त्वात्=अज्ञानस्वरूपत्वका अभाव होनेसे। और जिस पक्षमें अनेक अज्ञान माने जाते हैं उस पक्षमें साक्षात् रूप्यके निवृत्तिकी शङ्काभी उदित नहीं होती है।

ननु—अस्मिन्पक्षे एकया वृत्त्या सर्वतदज्ञानस्य निवृत्तिः उत एकतदज्ञानस्य, आद्ये पुनः शुक्तेः कदाप्यप्रकाशो न स्यात् अन्त्ये वृत्तिकालेऽपि प्रकाशो न स्यात्, एकस्यावरणस्य निवृत्तावपि आवरणान्तरानिवृत्तेः इति चेन्न, एकया वृत्त्या एकाज्ञाननाशेऽपि तयैवावरणान्तराणां प्रसिद्धत्वात् यावत् सा तिष्ठति तावत्प्रकाशः तस्यामपगतायां पुनः अप्रकाशश्चोपपद्यते, अज्ञानस्य ज्ञानप्राग्भावस्थानीयत्वात् तथा तव एकज्ञान–मेकमेव प्राग्भावं नाशयति तन्नाशरूपेणोदयात्। प्राग्भावान्तरनिबन्धनमज्ञातत्वादिव्यवहारं च प्रतिबध्नाति। तथा ममाप्येकं ज्ञानमेकमेवाज्ञानं निवर्तयति। अज्ञानान्तरनिबन्धम् प्रयोजनं प्रतिबध्नातीति किमनुपपन्नम्। अत्र च प्रतिबन्धपदेन कार्यानुपपत्तिप्रयोजकत्वम् कारणाभावप्रतिबन्धकसाधारणमभिहितम्। एवं अवस्थाविशेषपक्षेऽभि प्रकाशाप्रकाशावुपपादनीयौ॥

शङ्कते नन्विति। अस्मिन्पक्षे=नाना अज्ञानपक्षमें एकवृत्तिसे सर्वशुक्त्यज्ञानोंकी निवृत्ति होती है अथवा एकशुक्त्यज्ञानकी, आद्यपक्षका अङ्गीकार होतो पुनः कभीभी शुक्तिका अप्रकाश न होगा क्योंकि अप्रकाशके प्रयोजक अज्ञानोंका एकही वृत्तिसे नाश हो गया है, अन्त्ये=अन्तिमपक्ष होतो वृत्तिकालमेंभी शुक्तिका प्रकाश न होगा, क्यों ? एक आवरणके निवृत्त होनेपरभी अन्य आवरणके विद्यमान होनेसे इति चेन्न; क्यों ? एक वृत्तिसे एक अज्ञानके नाश होनेपरभी तयैव=उस वृत्तिसेही आवरणान्तरोंको प्रतिरुद्ध होनेसे, जब पर्यन्त वह वृत्ति स्थित रहती है तब पर्यन्त प्रकाश उपपन्न होता है, और उस वृत्तिके अपगत होनेपर फिरभी अप्रकाश उपपन्न होता है। अज्ञानको ज्ञानके प्रागभावके स्थानपर होनेसे, जैसे तुम्हारे मतमें एक ज्ञान एकही प्रागभावका नाश करता है, एक प्रागभावके नाशरूपसे उदय होनेसे, और अन्यप्रागभावप्रयुक्त जो अज्ञातत्वादिव्यवहार उसको प्रतिबद्ध करता है, तैसे मेरे मतमेंभी एकज्ञान एकही अज्ञानको निवृत्त करता है, और अन्य–अज्ञानप्रयुक्त कार्यको प्रतिबद्ध करता है, अतः हमारे सिद्धान्तमें क्या अनुपपन्न है। और यहाँपर प्रतिबन्धपदेन=प्रतिबध्नाति इस पदसे कारणाभाव तथा प्रतिबन्धक एतदुभयसाधारण कार्यानुत्पत्तिप्रयोजकत्व कहा है। एवम् नाना अज्ञानपक्षके सदृश

अवस्थाविशेष पक्षमेंभी प्रकाश और अप्रकाश ये दोनों उपपादनीय हैं=एकवृत्तिसे एक अवस्थाविशेषका नाश होता है और अवस्थान्तर प्रतिबद्ध रहता है इत्यादि।

एवममूर्त्तस्याज्ञानस्य यद्यपि दण्डादिना गवादीनामिवापसरणं करादिना कटादीनामिव संवेष्टनं च न सम्भवति तथापि कार्याक्षमत्वसाम्येनापसरणसंवेष्टनपक्षौ योजनीयौ। यथाहि–उत्तेजकाभावसहकृतस्य मणेः प्रतिबन्धकतायामुत्तेजकसत्वे प्रतिबन्धकार्याक्षमत्वम्। तथा वृत्त्यभावसहकृतस्याज्ञानस्य प्रतिबन्धकतायां वृत्तौ सत्यां तत्कार्यानुदय इतिद्रष्टव्यम्। ननु चैतन्यस्य निरवयवत्वात् तस्यैकदेशेन प्रकाशो न युज्यते। अथाकाश इव तत्तदर्थावच्छिन्नत्वमेकदेशशब्दार्थः। तर्हि नागन्तुकपदार्थावच्छिन्नचैतन्यमनाद्यज्ञानस्य विषयः न निर्विषयस्यावरणस्यायोगात्। प्रागनवच्छिन्नावरणमेवेदानीमवच्छिन्नावरणं जातमित्यपि न। अवच्छिन्नचैतन्यमज्ञानेनैवानवच्छिन्नावरणनाशापत्तेः। एतेन व्यक्तितः पूर्वं जातिरिव विषयात्पूर्वमज्ञानमस्तीति निरस्तमितिचेन्न।

इस रीतिसे अमूर्त अज्ञानका दण्डादिसे गवादिकी नाईं अपसरण और करादिसे कटादिकी नाईं संवेष्टन यद्यपि नहीं बन सकता है तथापि आत्मीय कार्यमें असमर्थत्वके साम्यसे अपसरण पक्ष और संवेष्टनपक्ष समर्थनीय है। जैसे उत्तेजकाभावविशिष्टमणिको प्रतिबन्धकता होनेपर उत्तेजकके होनेपर प्रतिबन्धकको आत्मीय कार्यमें अक्षमत्व है तैसे वृत्त्यभावसहकृत अज्ञानको प्रतिबन्धकता होनेपर वृत्तिके होनेपर अज्ञानके कार्यका अनुदय है यह द्रष्टव्य है। शङ्कते नन्विति चैतन्यको निरवयव होनेसे चैतन्यका एकदेशसे प्रकाश युक्त नहीं है, अथ= यदि ऐसा कहो कि आकाशकी तरह तत्तत्पदार्थावच्छिन्नत्वही एकदेश शब्दका अर्थ है, तब कादाचित्कपदार्थावच्छिन्न–चैतन्य अनादि–अज्ञानका विषय न होगा, निर्विषय आवरणका अयोग होनेसे पूर्वमें अनवच्छिन्नका जो आवरण था वही इस कालमें अवच्छिन्नका आवरण हो गया है इत्यपिन=यहभी नहीं कह सकते हो, क्यों? अवच्छिन्नचैतन्यके ज्ञानसेही अनवच्छिन्नके आवरणके नाशकी आपत्तिसे। एतेन=निर्विषयक आवरणके न रहनेसेही व्यक्तिसे पूर्व जैसे जाति रहती है तैसे विषयसे पूर्व अज्ञान है यह कथनभी निरस्त हुआ, इति चेन्न; क्यों?

अनाद्यज्ञानविषये, अनादिचैतन्ये तत्तदागन्तुकपदार्थावच्छेदाभ्युपगमात्, आश्रयत्वविषयत्वभागिनी निर्विभागचितिरेव केवलेत्युक्तत्वात्। यदवच्छिन्नगोचरा च वृत्तिस्तदवच्छेदेनैवावरणापसरणात्। नानवच्छिन्नचैतन्यावरणभङ्गप्रसङ्गः। अत एव वृत्तिविषयावच्छिन्नचैतन्यात् प्रागज्ञानमस्तीत्यभिप्रायेण विषयात् प्रागज्ञानमस्तीति साधूक्तम् तस्मादधिष्ठानचैतन्यं स्वाध्यस्तं भासयतीति सिद्धम्।

अनादिअज्ञानका विषय जो अनादि चैतन्य है उस अनादि चैतन्यमें तत्तदागन्तुक पदार्थके अवच्छेदका अभ्युपगम होनेसे, शुद्धनिर्विभागचितिही आश्रय तथा विषयत्वको भजनेवाली है, यह उक्त होनेसे, और यत्पदार्थावच्छिन्नचैतन्यगोचरा वृत्ति होती है, तत्पदार्थावच्छेदेनैव

आवरणका अपसरण होनेसे अनवच्छिन्न चैतन्यनिष्ठ आवरणके भङ्गका प्रसङ्ग नहीं। अत एव वृत्तिका विषय जो अवच्छिन्नचैतन्य उस अवच्छिन्नचैतन्यसे पहले अज्ञान है इस अभिप्रायसे विषयसे पूर्व अज्ञान है यहभी अच्छाही कहा है। ततः अधिष्ठानचैतन्य स्वमें अध्यस्तको प्रकाशित करता हैं यह सिद्ध हुआ।

तदयमत्र निष्कर्षः यद्यपि विषयप्रकाशकं विषयाधिष्ठानभूतं प्रमेयचैतन्यम्, अन्तःकरणावच्छिन्नचैतन्यं तु प्रमातृ। अन्तःकरणवृत्त्यवच्छिन्नचैतन्यन्तुप्रमाणम्। तथापि यदीयान्तःकरणवृत्त्या विषयपर्यन्तं चक्षुरादिद्वारा निस्सृततया यत्प्रकाशकं चैतन्यं यत्प्रमातृचैतन्याभेदेनाभिव्यज्यते तमेव स एव जानाति नान्यं नान्यो वा। अतएव एकवृत्त्युपारूढलक्षणैकलोलीभावापन्नं प्रमातृप्रमाणप्रमेयचैतन्यं भवति। ततस्तदवच्छेदेनाज्ञाननिवृत्त्या भासमानं प्रमेयचैतन्यमपरोक्षफलमित्युच्यते। तत्स्वयं भासमानं सत् स्वाध्यस्तं घटाद्यपि भासयतीति तत्फलव्याप्यमित्युपेयते। यन्निष्ठा च यदाकारा वृत्तिर्भवति तन्निष्ठं तदाकारमज्ञानं सा नाशयतीति नियमात् प्रमातृप्रमेयोभयव्यापिन्यपरोक्षवृत्तिः स्वावच्छेदेनावरणमपसारयति। प्रकाशस्य स्वावच्छेदेनावरणापसारकत्वदर्शनात्। अतः प्रमात्रवच्छिन्नस्यासत्त्वावरणस्य प्रमेयावच्छिन्नस्य अभानावरणस्य चापसारणात्। घटोऽयं मे स्फुरतीत्याद्यपरोक्षव्यवहारः।

प्रसिद्ध यह यहाँपर निचोडा हुआ अर्थ है—यद्यपि विषयका प्रकाशक विषयका अधिष्ठान प्रमेयचैतन्य हैं। और शरीरस्थ—अन्तःकरणभागावच्छिन्न चैतन्य उसका प्रमाता है=शरीरके भीतर जितना अन्तःकरणका भाग हो उस भागसे अवच्छिन्न चैतन्य उक्त ज्ञानका प्रमातृ है। और अन्तःकरणकी वृत्तिसे अवच्छिन्न चैतन्य प्रमाण है=शरीर और विषय इन दोनोंके मध्यमें जो अन्तःकरणका भाग हो उस भागसे अवच्छिन्न चैतन्यका नाम प्रमाण है। और विषयमें जो अन्तःकरणका भाग स्थित हो उस भागसे अवच्छिन्न चैतन्यका नाम प्रमिति और प्रमा है, इतना कहनेको बाँकी है। तथापि=उक्त तीनों चैतन्योंका औपाधिक भेद होनेपरभी चक्षुरादिद्वारा विषयपर्यन्त निस्सृत यदीय=यत्प्रमातृसम्बन्धि अन्तःकरणकी वृत्तिसे जो प्रकाशक चैतन्य जिस प्रमातृचैतन्यके साथ अभेदरूपसे अभिव्यक्त होता है उसकोही वही जानता है अन्यको नहीं जानता है और अन्यभी नहीं जानता है;—जानातिका अर्थ साक्षात्कार है अतः परोक्षस्थलमें ऐसी व्यवस्था न होनेसे अव्याप्ति नहीं 'नान्यं जानाति' यहाँपर अन्यका विशेषण अस्वच्छभी है। अतः स्वच्छसुखादिको अन्तःकरणकी वृत्तिविनाभी प्रत्यक्षत्व होनेपर अव्याप्ति नहीं। और 'नान्यः' यहाँपर अन्यशब्दको जीवपर समझना चाहिए, तब ईश्वरको चक्षुरादिद्वारक वृत्तिके विनाही निखिलप्रपञ्चविषय प्रत्यक्ष होनेपरभी न्यूनता नहीं। यतः अन्यको नहीं जानता है और अन्य नहीं जानता है, अतएव एक वृत्तिपर उपारूढस्वरूप जो एक लोलीभाव उस एक लोलीभावको प्रमातृ प्रमाण प्रमेय चैतन्य प्राप्त होते हैं; ततः=

तदनन्तर तदवच्छेदेन=उक्तवृत्तिविषयावच्छेदेन अज्ञानकी निवृत्तिसे भासमान प्रमेयचैतन्य अपरोक्षरूप फल कहा जाता है वह प्रमेय चैतन्य स्वयं भासमान हुआ स्वमें आरोपित घटादिकोभी भासित करता है इसलिए तत्=घटादि, फलव्याप्यम्=फलसे भास्य हैं ऐसा अङ्गीकार किया जाता है; फलव्याप्यशब्दका अर्थ है—फलभास्य। और जिसमें संश्लिष्ट हुई वृत्ति यदाकारा होती है, तन्निष्ठ तदाकार अज्ञानको वह वृत्ति नष्ट करती है, इति नियमात्=ऐसा नियम होनेसे प्रमातृ तथा प्रमेय एतदुभयकी व्यापिका अपरोक्षवृत्ति स्वावच्छेदेन आवरणको दूर करती है, प्रकाशको स्वावच्छेदेन आवरणका अपसारकत्व देखनेसे अतः प्रमात्रवच्छेदेन रहनेवाले असत्वावरणके अपसरणसे और प्रमेयावच्छेदेन रहनेवाले अभानावरणके अपसरणसे, 'घटोऽयं मे स्फुरति' इत्यादिरूप अपरोक्ष व्यवहार होता है।

परोक्षस्थले तु इन्द्रियसन्निकर्षलक्षणद्वाराभावात् अन्तःकरणनिस्सरणाभावेन विषयपर्यन्तं वृत्तेरगमनात् विषयावच्छिन्नप्रमेयचैतन्येन सह प्रमातृचैतन्यस्यैकवृत्त्युपारूढत्वाभावेनापरोक्षतयाअभिव्यक्त्यभावेऽपि, प्रमातृप्रमाणचैतन्ययोरेकलोलीभावापत्त्यप्रमात्रवच्छिन्नमसत्वावरणमात्रं निवर्तते। तावन्मात्रस्य वृत्त्यवच्छिन्नत्वात्। इदमेव सुषुप्तिव्यावृत्तिशब्देन विवरणाचार्यैः व्याख्यातम्। विषयावच्छिन्नाभानावरणतत्कार्यसद्भावेऽपि प्रमात्रवच्छिन्नमसत्त्वारणनिवृत्त्या अनुमानादौ व्यवहारोपपत्तेः अत एव जानाम्यहं पर्वते वह्निरस्तीति स तु कीदृश इति मे न भातीत्यादिव्यवहारः। त्रयाणामेकलोलीभावे अपरोक्षत्वम् द्वयोरेकलोलीभावे तु अपरोक्षत्वमिति न सङ्करः। वृत्तेश्च विषयेण सर्वं साक्षादेवापरोक्षस्थले सम्बन्धः। परोक्षस्थले तु, अनुमितेरनुमेयेन तद्व्याप्य-ज्ञान-जन्यत्वम्। शाब्द्याः संसर्गेण सह तदाश्रयवाचकपदजन्यत्वम्। स्मृतेः स्मर्तव्येन सह तद्विषयानुभवजन्यत्वम्। एवमन्यत्रापि परम्परासम्बन्धएवेति। परोक्षापरोक्षविभागः। विस्तरेण व्युत्पादितमस्माभिरियं प्रक्रिया सिद्धान्तविन्दौ। तस्माद्विषयस्य मिथ्यात्वेऽपि प्रतिकर्मव्यवस्थोपपन्नेति दिक्॥

इत्यद्वैतसिद्धौ प्रतिकर्मव्यवस्थोपपत्तिः

और परोक्षस्थलमें तो इन्द्रियसन्निकर्षलक्षण द्वारके अभावसे अन्तःकरणका निस्सरण नहीं है और निस्सरणके न होनेसे विषयपर्यन्त वृत्तिका गमन नहीं है और गमन न होनेसे विषयावच्छिन्न प्रमेय चैतन्यके साथ प्रमातृचैतन्यका एकवृत्तिमें उपारूढत्वके अभावसे अपरोक्षरूपसे अभिव्यक्तिका अभाव होनेपरभी प्रमातृचैतन्य तथा प्रमाणचैतन्य इन दोनोंको एकवृत्तिमें उपारूढ होनेसे, प्रमात्रवच्छेदेन रहनेवाला असत्त्वावरणमात्र निवृत्त होता है, असत्वावरणमात्रको वृत्त्यवच्छिन्न होनेसे, यह असत्वावरण ही सुषुप्तिव्यावृत्ति शब्दसे विवर्णाचार्योंसे व्याख्यात हुआ है, विषयावच्छेदेन अभानावरण और तत्कार्यका सद्भाव होनेपरभी प्रमात्रवच्छिन्न जो असत्वावरणमात्र उसकी निवृत्तिसे अनुमानादिस्थलमें (अस्ति) इत्यादि व्यव-

हारकी उपपत्ति है। अतएव=विषयावच्छेदेन विद्यमान आवरणके नष्ट न होनेसे और प्रमात्रवच्छेदेन विद्यमान आवरणके नाशसे ही जानताहूँ मैं कि पर्वतमें वह्नि है परन्तु वह कैसा है यह मुझको भान नहीं होता है इत्यादि व्यवहार होता है; तीनों चैतन्योंको एकवृत्तिमें उपारूढ़ होनेपर अपरोक्षत्व होता है। और दोको एकवृत्तिमें उपारूढ़ होनेपर परोक्षत्व; इसलिए परोक्षत्वापरोक्षत्वका सङ्कर नहीं है। और वृत्तिका विषयके साथ सर्व अपरोक्षस्थलमें साक्षात् सम्बन्ध होता है। और परोक्षस्थलमें तो अनुमितिरूप वृत्तिका अनुमेयके साथ तद्व्याप्यज्ञानजन्यत्व सम्बन्ध है=तत्पदसे वह्न्यादिरूप अनुमेय पदार्थका ग्रहण तद्व्याप्यधूमादिक हैं धूमादिविषयकज्ञानजन्यत्व (पर्वतो वह्निमान्) इत्यादि अनुमितिओंमें रहता है शाब्दी प्रमाका संसर्गरूप स्वप्रमेयके साथ तदाश्रयवाचकपदजन्यत्वरूप सम्बन्ध है=तत्पदसे शाब्दी प्रमाके विषयीभूतसंसर्गका ग्रहण है, तदाश्रय हुए पदार्थ तादृशपदार्थ वाचक जो पद तादृशपदजन्यत्व शाब्दी प्रमामें है, स्मृतिका स्मर्त्तव्यके साथ तद्विषयानुभवजन्यत्वरूप सम्बन्ध है=तत्पदसे स्मर्तव्यविषय लेना चाहिए। तद्विषयक जो अनुभव तादृश अनुभवको संस्कारद्वारा स्मृतिजन्यत्व है। इसीरीतिसे उपमित्यादिस्थलमेंभी परम्परारूप ही सम्बन्ध है, यह परोक्षापरोक्षका विभाग है। शब्दबाहुल्यसे यह प्रक्रिया सिद्धान्तबिन्दुमें हमसे व्युत्पादित की गई है=निर्वाणदशकके प्रथम श्लोककी टीका देखनी चाहिए; यतः कोई अनुपपत्ति नहीं ततः विषयको मिथ्या होनेपरभी प्रतिकर्मव्यवस्था उपपन्न हुई। यह दिक् दर्शन है। अर्थात् सूक्ष्मदर्शी प्राज्ञलोग इसीमेंसे अनन्त प्रकार लिख सकते हैं।

इति सरलायां प्रतिकर्मव्यवस्थोपपत्तिः।

अथ प्रतिकूलतर्कनिराकरणम्।

ननु—मिथ्यात्वानुमानम् प्रतिकूलतर्कपराहतम्। तथाहि—विश्वं यदि कल्पितं स्यात् सत्याधिष्ठानं स्यात् न चैवम्; सामान्यतो ज्ञातत्वे सत्यज्ञातविशेषवत्त्वस्याधिष्ठानत्वप्रयोजकस्य निर्विशेषे निस्सामान्ये च ब्रह्मण्यसंभवादिति चेन्न; स्वरूपेण ज्ञातत्वे सति विशेषेणाज्ञातत्वस्याधिष्ठानत्वप्रयोजकत्वेन ज्ञातविशेषवत्त्वस्याप्रयोजकत्वात्। पुरुषो न वेति संशयधर्मिणः स्थाणोरप्यन्यत्र ज्ञातस्थाणुत्वरूपविशेषत्वात्। तत्राज्ञातविशेषवत्त्वमपि न प्रयोजकम् विशेषवत्त्वेनाज्ञातत्वस्यैव लघुत्वेन प्रयोजकत्वात्। तथाच निस्सामान्ये निर्विशेषे च ब्रह्मणि स्वप्रकाशत्वेन ज्ञानात् परिपूर्णत्वानन्दत्वादिना चाज्ञानादधिष्ठानत्वमुपपन्नम् वस्तुतस्तु कल्पित—सामान्यविशेषवत्त्वं ब्रह्मण्यपि सुलभमेव अकल्पितसामान्यविशेषवत्त्वञ्चाप्रसिद्धम्।

अथ सरलायां प्रतिकूलतर्कनिराकरणम्।

प्रपञ्चो मिथ्या दृश्यत्वात् शुक्तिरूप्यवत्, यह मिथ्यात्वसाधक अनुमान प्रतिकूलतर्कसे पराहत=स्वकीय कार्य करनेमें अक्षम है। तथाहि विश्व यदि कल्पित हो तो सत्य है अधिष्ठान जिसका

एवंभूत होगा, न चैवम्=परन्तु ऐसा है नहीं, क्यों ? अधिष्ठानत्वका प्रयोजक जो सामान्यतः ज्ञातत्व-विशिष्ट अज्ञातविशेपवत्त्व है उसका निर्विशेप तथा निःसामान्य जो ब्रह्म उस ब्रह्ममें असंभव होनेसे=सामान्यरूपसे ज्ञात और अज्ञातविशेपवत् जो पदार्थ होता है वह अधिष्ठान होता है यह रज्जुसर्पादि–अध्यासमें प्रसिद्ध है परन्तु विशेपरहित तथा निस्सामान्य ब्रह्म तो ऐसा नहीं है अतः ब्रह्ममें प्रपञ्चका अध्यास नहीं बन सकता है, और अध्यासके विपयकोही कल्पित कहा जाता है तथाच प्रपञ्चको कल्पित नहीं कह सकते हैं, इति चेन्न, क्यों ? स्वरूपेण ज्ञातत्वविशिष्ट होके विशेपेण अज्ञातत्वको अधिष्ठानत्वका प्रयोजक होनेसे ज्ञातविशेपवत्त्वके अप्रयोजकत्वसे=सामान्यरूपसे ज्ञात और विशेपरूपसे अज्ञात पदार्थ अधिष्ठान हुआ करता है, अज्ञातविशेपवत् नहीं । 'पुरुप है या नहीं' इत्याकारक संशयका धर्मी जो स्थाणु है उस स्थाणुकोभी अन्यत्र ज्ञातस्थाणुत्वरूपविशेपवत् होनेसे तहाँ अज्ञातविशेपवत्त्वभी प्रयोजक नहीं है, लाघवसे विशेपवत्वेन अज्ञातत्त्वकोही प्रयोजकत्व होनेसे, फलतः निःसामान्य तथानिर्विशेप ब्रह्ममें स्वप्रकाशत्वेन ज्ञान होनेसे और परिपूर्णत्व आनन्दत्वादिरूपसे अज्ञान होनेसे अधिष्ठानत्व उपपन्न हुआ, वस्तुतः कल्पित सामान्यवत्त्व और कल्पित विशेपवत्त्व ब्रह्ममें सुलभही है और अकल्पित विशेपवत्त्व और अकल्पित सामान्यवत्त्व तो सर्वथा अप्रसिद्धही है ।

नच तत्कल्पने अन्योन्याश्रयः । कल्पितसामान्यविशेपाणां प्रवाहानादित्वात् सत्यत्वानन्दत्वादीनामेव कल्पितव्यक्तिभेदेन सामान्यत्वात् । परिपूर्णानन्दत्वादीनां च विशेपत्वात् । अतएव सामान्याकारज्ञानं विना संस्काराद्युद्बोधात्, कथमध्यास इति न च वाच्यम् । सदात्मना स्वरूपज्ञानस्यैव सामान्यज्ञानत्वात् । नह्यध्यसनीयं सदात्मना न भाति । एतावानेव विशेपः । यदधिष्ठानं स्वत एव सदात्मना भाति अध्यसनीयं तु तत्सम्बन्धात् ।

तत्कल्पने=सामान्यविशेपभावके कल्पनमें अन्योन्याश्रय है=अध्यास सिद्ध होतो कल्पित सामान्यविशेपभाव सिद्ध हो और कल्पित सामान्य विशेपभाव हो तब ब्रह्ममें अध्यास सिद्ध हो अतः अन्योन्याध्यास है नच=नहीं है क्यों ? कल्पित सामान्य विशेपोंको प्रवाहसे अनादि होनेसे सत्यत्व आनन्दत्वादिकोही कल्पित व्यक्तिभेदसे सामान्यत्व है और परिपूर्णानन्दत्वको विशेपत्व है, अत एव सामान्याकारके ज्ञान विना संस्कारका अनुदय होनेसे कैसे अध्यास होगा, यह नहीं कहना क्यों ? सदात्मना स्वरूपज्ञानकोही सामान्यज्ञान होनेसे=भ्रान्तिकालमें और भ्रान्तिकी निवृत्तिकालमें सदात्मना भात होनेवाला ब्रह्म सामान्यत्वेन व्यवहृत होता है । और यद्विपयकत्वेन भ्रान्तिकी निवृत्ति होती है एवंभूत जो परिपूर्णाऽऽनन्दत्वादिरूप ब्रह्म वह विशेपरूपसे व्यवहृत होता है, और वस्तुतः सामान्यविशेपभाव है ही नहीं । अध्यसनीय पदार्थ सदात्मना नहीं प्रतीत होता है यह बात नहीं है, इतनाही विशेप है कि अधिष्ठान स्वयं सदात्मना भासित होता है और अध्यसनीय अधिष्ठानके सम्बन्धसे ।

ननु—अधिष्ठानतिरोधानं विना भ्रमासंभवः । प्रकाशतिरोधाने तु तदध्यस्ताविद्यादेः प्रकाशानुपपत्तिरिति चेन्न, एकस्यैवानन्दाद्यात्मनातिरोहितस्य सदात्मना प्रका-

शसंभवात्। तदुक्तं वार्तिककारपादैः। यत्प्रसादादविद्यादि सिद्ध्यतीव दिवानिशम्। तमप्यपह्नुतेऽविद्यानाज्ञानस्यास्ति दुष्करम् ॥ इति। नच बाधकालेऽप्यसद्विशेपज्ञानमस्तीति वाच्यम्। परिपूर्णानन्दत्वादेः सत एव विशेपत्वेन तदा तदज्ञानाभावात्। धर्ममात्रस्यैव कल्पितत्वात्। यद्वा भ्रमविरोधिज्ञानाभाव एव तन्त्रं, न तु विशेपज्ञानम्। विश्वोपादन-गोचराज्ञानस्य श्रवणादिजन्यमात्ममात्रविपयकं वृत्तिरूपं ज्ञानं विरोधि न तु चिद्रूपं स्वतः सिद्धज्ञानम्, भ्रमविरोधिनश्च वृत्तिरूपस्य ज्ञानस्येदानीमभावोऽस्त्येव।

शङ्कते नन्विति, अधिष्ठानके तिरोधान विना भ्रमका असंभव है और प्रकाशस्वरूपका तिरोधान होनेपर प्रकाशस्वरूप ब्रह्ममें अध्यस्त जो अविद्यादि हैं उनके प्रकाशकी अनुपपत्ति है। इति चेन्न; क्यों ? आनन्दादिरूपसे तिरोहित एक ब्रह्मके ही सदात्मना प्रकाशका संभव होनेसे। यह अर्थ वार्तिककारपादोंसे कहा गया है;—जिसके प्रसादसे अहोरात्र अविद्यादि-पदार्थ सिद्ध जैसे हो रहे हैं, तमपि=उस प्रकाशस्वरूप आत्माकोभी अविद्या तिरोहित करती है, क्योंकि अविद्याके लिए कुछदुष्कर नहीं है। बाधकालमेंभी सद्विशेप=सन्निष्ठविशेपका अज्ञान है, इति न च वाच्यम्, क्यों ? परिपूर्णानन्दत्वको सत्‌का ही विशेप होनेसे तदा=बाधकालमें परिपूर्णानन्दत्वके अज्ञानका अभाव होनेसे धर्ममात्रको ही कल्पितत्व है स्वरूपको नहीं। अथवा भ्रमका विरोधि जो ज्ञान उस ज्ञानका अभाव ही अध्यासमें तन्त्र है विशेपका अज्ञान नहीं विश्वका उपादान जो चैतन्य है तादृश चैतन्यगोचर जो अज्ञान उस अज्ञानका विरोधी श्रवणादिसे जन्य आत्ममात्रविपयक वृत्तिरूप ज्ञान है, स्वतः सिद्धज्ञानस्वरूप चिद्रूप नहीं और भ्रमविरोधि जो वृत्तिरूप ज्ञान है उस ज्ञानका इदानीं कालमें अभाव है ही।

ननु आत्मानात्मनोर्दृष्टृदृश्यत्वात्मानात्मत्वादिना भेदज्ञानात् कथमध्यस्ताधिष्ठान-भावः इति चेन्न; इदमनिदं न भवतीति पुरोवर्त्यपुरोवर्तिनोर्भेदग्रहेऽपीदं रजतमित्य-ध्यासवत् सन्घटइत्यादि—अध्यासो भविष्यति। नहि रूपान्तरेण भेदग्रहो रूपान्तरेण अध्यासविरोधी सन्घटइत्यादि प्रत्यये च सद्रूपस्यात्मनो घटाद्यनुविद्धतयाभानान्न तस्य घटाद्यध्यासधिष्ठानत्वानुपपत्तिः सद्रूपेण च सर्वज्ञानविपयतोपपत्तेः न रूपादिहीनस्या-प्यात्मनः कालस्येव चाक्षुपत्वाद्यनुपपत्तिः।

शङ्कते नन्विति, आत्मा तथा अनात्मा इन दोनोंका द्रष्टृत्वदृश्यत्व आत्मत्व अनात्मत्वादि-रूपसे भेदज्ञान होनेसे अध्यस्तअधिष्ठानभाव कैसे है। इति चेन्न; क्योंकि, 'इदं अनिदं न भवति' इस रीतिसे पुरो वर्ति तथा अपुरो वर्ति इन दोनोंका भेदग्रह होनेपरभी 'इदं रजतम्' यह अध्यास जैसे होता है तैसे 'सन् घटः' यह अध्यासभी होगा। रूपान्तरसे भेदग्रह रूपा-न्तरसे अध्यासका विरोधी नहीं है। 'सन् घटः' इत्यादि प्रत्ययमें तो सद्रूप आत्माका घटा-द्यनुविद्धतया भान होनेसे, आत्माको घटादिके अध्यासके अधिष्ठानताके अनुपपत्ति नहीं और सद्रूपसे सर्वज्ञानोंकी विपयताकी उपपत्तिसे कालकी तरह रूपादिसे हीनभी आत्माको

चाक्षुषत्वादिकी अनुपपत्ति नहीं=जैसे रूपादिहीनभी काल चाक्षुषादिज्ञानका विषय होता है तैसेही रूपादिसे हीनभी आत्मा चाक्षुषादिज्ञानका विषय हो सकता है ।

ननु–विश्वं यदि कल्पितं स्यात् तदा सप्रधानं स्यात् न चैवम्, तस्मान्न कल्पितमितिचेन्न, अत्रापि प्रधानस्य सजातीयस्य सत्वात् । पूर्वप्रपञ्चसजातीयस्यैवोत्तरप्रपञ्चस्याध्यसनात् । अध्यासो हि स्वकारणतया संस्कारमपेक्षते न तु संस्कारविषयस्य सत्यताम्, अनुपयोगात् । नच प्रमाजन्य एव संस्कारो भ्रमहेतुः । अतो विषयसत्यत्वमावश्यकमिति वाच्यम्, मानाभावात्, विपरीते लाघवाच्च । अतएव अध्यस्तसजातीयं पूर्वमध्यस्तापेक्षयाऽधिकसत्ताकमपेक्षणीयमित्यपि निरस्तम् । सत्यतावदधिकसत्तायाअप्यनुयोगात् । पूर्वं तु ज्ञानमात्रमपेक्षते । तच्चास्त्येव ।

शङ्कते नन्विति । विश्व यदि कल्पित होगा तो सप्रधान होगा, ऐसा है तो नहीं, ततः विश्व कल्पित नहीं है=अध्यस्तवस्तुके सजातीय अध्यस्तसे अधिकसत्ताक वस्तुका नाम प्रकृतमें प्रधान है । जैसे रज्जुसर्पसे अधिक सत्ताक वम्बी–आदिमें रहनेवाला सर्प होता है और शुक्तिरूप्यसे अधिकसत्ताक वीथीवगेरामें रहनेवाला रजत होता है अर्थात्. प्रधान कहा जाता है, इति चेन्न; क्यों ? अत्रापि=प्रकृतमेंभी सजातीय प्रधानको विद्यमान होनेसे=अध्यस्तके सजातीयका नामही प्रधान रखना उचित है, उसमें अधिकसत्ताकत्वरूप विशेषण कार्यकारणभावसे वहिर्भूत होनेसे अन्यथा सिद्ध है और सजातीयत्वरूप प्रधानत्व प्रकृतमेंभी बन सकता है । इसी अर्थको आगे स्पष्ट करते हैं–अध्यास इति। अध्यास स्वकारणविधया संस्कारकी अपेक्षा करता है और संस्कारके विषयके सत्यताकी अपेक्षा नहीं करता है क्यों ? उसका उपयोग=कुछ फल न होनेसे । प्रमाज्ञानसे जन्य जो संस्कार है वही भ्रमका हेतु है, अतः संस्कारके विषयका सत्यत्व आवश्यक है इति नच वाच्यम् क्यों ? प्रमाणका अभाव होनेसे=प्रमाजन्य संस्कारही भ्रमका हेतु है इसमें कोई प्रमाण नहीं, अनुभवत्वेन अनुभवजन्य संस्कारको हेतुत्व माननेमें लाघव है अतएव=प्रमाजन्यत्वेन संस्कारको हेतुता न होनेसेही, अध्याससे पूर्व अध्यस्तके सजातीय अध्यस्तसे अधिक सत्ताक अपेक्षणीय है, यहभी खण्डित हुआ–विषयकी सत्यतावत् अधिक सत्ताकाभी अनुपयोग होनेसे अध्याससे पूर्व सजातीयका ज्ञानमात्र अपेक्षित होता है और वह तो ब्रह्मधर्मिक प्रपञ्चाध्यासमेंभी है ही ।

ननु एवमधिष्ठानस्यापि ज्ञानमात्रं हेतुः; नतु तदिति न सदधिष्ठानापेक्षा स्यादिति शून्यवादापत्तिरिति चेन्न, अधिष्ठानस्य ज्ञानद्वारा भ्रमाहेतुत्वेऽप्यज्ञानद्वारा भ्रमहेतुत्वेन सत्त्वनियमात् । भ्रमोपादानाज्ञानविषयो ह्यधिष्ठानमित्युच्यते । तच्च सत्यमेव असत्यस्य सर्वस्याप्यज्ञानकल्पितत्वेनाज्ञानाविषयत्वात्, तदसत्यत्वे तदज्ञानस्य भ्रमावाधकत्वप्रसङ्गात्, जगति भ्रमवाधव्यवस्था च न स्यात् । बाधे नहि किञ्चिद्विरुद्धं तत्त्वमुपदर्शयता आरोपितमतत्वं बाधनीयम्, उभयाध्यासे च किं केन बाध्यते, अतएव भगवता भाष्यकारेण सत्यानृते मिथुनीकृत्येत्युक्तम् ।

शङ्कते नन्विति। एवम्=संस्कारद्वारा जैसे सजातीयका ज्ञानमात्र अपेक्षित है, सजातीयका सत्यत्व नहीं, तैसे अधिष्ठानकाभी ज्ञानमात्रही अध्यासका हेतु रहो, अधिष्ठान मत रहो फलतः अध्यासको सदधिष्ठानकी अपेक्षा न होगी अत एव पर्यवसानमें शून्यकी आपत्ति है, इति चेन्न; क्यों? अधिष्ठानको ज्ञानद्वारा=स्वविषयकज्ञानद्वारा अध्यासका हेतुत्व न होनेपरभी स्वविषयकअज्ञानद्वारा भ्रमके हेतुत्वसे सत्यत्वका नियम होनेसे, भ्रमका उपादान कारण जो अज्ञान उस अज्ञानका विषय अधिष्ठान है, ऐसा कहा जाता है, और वह अधिष्ठान तो सत्यही है। क्यों? सर्व असत्यको अज्ञानसे कल्पित होनेसे, अज्ञानका अविषयत्व होनेसे, तदसत्यत्वे=अधिष्ठानको असत्यत्व होनेपर, तद्ज्ञानस्य=अधिष्ठानज्ञानको भ्रमके अबाधकत्वका प्रसङ्ग होगा, और जगत्में भ्रम और बाधकी व्यवस्थाभी न होगी, क्योंकि बाधसे किञ्चित् विरुद्ध तत्त्वको उपदर्शन कराते हुए अतत्त्वरूप आरोपित बाधनीय है, और उभयका अध्यास होनेपर कौन किससे बाधित होगा, अत एव भगवान् भाष्यकारसे 'सत्यानृते मिथुनी कृत्य' 'अध्यासभाष्य' यह कहा गया है।

ननु—एतत् प्रपञ्चसाध्यार्थक्रियाकारिणः प्रपञ्चान्तरस्याभावेन; स्वोचितार्थक्रियाकारिणोऽस्य न मिथ्यात्वमितिचेन्न; स्वाप्नमायादौ व्यभिचारात्। स्वोचितार्थक्रियाकारित्वस्य पारमार्थिकसत्त्वाप्रयोजकत्वात्। नापि श्रुत्यादिसिद्धोत्पत्त्यादिमत्त्वम् सत्त्वेतन्त्रम्। स्वप्नप्रपञ्चे व्यभिचारात्, तस्यापि 'न तत्र रथा न रथयोगा न पन्थानो भवन्त्यथ रथानरथयोगान् पथः सृजते इत्यादिश्रुत्योत्पत्त्यादिप्रतिपादनात्। न च कल्पाद्यभ्रमायोगः, कल्पान्तरीय संस्कारस्य तत्र हेतुत्वात् न च जन्मान्तरीयसंस्कारस्य कार्यजनकत्वे अतिप्रसङ्गः। अदृष्टादिवशेन क्वचिदुद्बोधेऽपि अन्यत्रानुद्बोधोपपत्तेः; कार्योन्नेयधर्माणां यथाकार्यमुन्नयनात्। अन्यथा जातस्य स्तन्यपानादौ प्रवृत्तिर्न स्यात्।

शङ्कते नन्विति। इस प्रपञ्चसे साध्य जो अर्थक्रिया तादृश अर्थक्रियाकारि अन्य प्रपञ्चका अभाव होनेसे स्वोचित अर्थक्रियाके करनेके स्वभाववाला जो प्रपञ्च है उसका मिथ्यात्व नहीं है, इति चेन्न; क्यों? स्वप्नमें तथा मायामें व्यभिचार होनेसे=स्वाप्निक तथामायिक पदार्थोंमेंभी स्वोचित–अर्थक्रियाकारित्व है परन्तु सत्यत्व नहीं, अतएव स्वोचित–अर्थक्रियाकारित्वको पारमार्थिक सत्त्वके प्रति प्रयोजकत्व नहीं है। तैसे ही श्रुत्यादिसिद्धउत्पत्त्यादिमत्त्वभी सत्त्वमें प्रयोजक नहीं है, स्वप्नप्रपञ्चमें व्यभिचार होनेसे= श्रुत्यादिसिद्ध–उत्पत्त्यादिमत्त्वतो स्वप्नप्रपञ्चमेंभी है, परन्तु सत्त्व नहीं हैं। अतः व्यभिचार है। तस्यापि=स्वप्न प्रपञ्चकेभी न तत्र रथा (बृ०४।३।१०) इत्यादि श्रुतिओंसे उत्पत्त्यादिके प्रतिपादनसे। कल्पकी आदिमें होनेवाले भ्रमका अयोग है। उसकालमें संस्कारके न होनेसे न च=अयोग नहीं है, क्यों? कल्पान्तरीयसंस्कारोंको उस भ्रममें हेतु होनेसे। जन्मान्तरीय संस्कारको कार्यजनकत्व माननेमें अतिप्रसङ्ग=नारिकेरद्वीपवासीको गुञ्जापुञ्जोमें वह्न्यादिके आरोपका प्रसङ्ग है नच=नहीं है क्यों?

अदृष्टादिवशत: कहीं संस्कारका उद्बोध होनेपरभी अन्यत्र अनुद्बोधकी उपपत्तिसे, कार्यतः उन्नेयधर्मोंका यथाकार्य उन्नयन होनेसे, अन्यथा=सर्वथा जन्मान्तरीण संस्कारोंका अनुद्बोध ही मानों तो सद्यो जात बालकी स्तन्यपानमें प्रवृत्ति न होगी ।

ननु—चैत्रेण मैत्रे संस्काराध्यासेऽपि मैत्रस्य भ्रमादर्शनात् । जगद्भ्रमहेतुसंस्कारस्य सत्त्वं दुर्वारम्, न च स्वेनाध्यस्तात्संस्काराद्भ्रमः, भ्रमात्पूर्वं स्वस्य कार्यानुमेयसंस्काराध्यासनियमाभावादिति चेन्न, शुक्तिरूप्यस्य कुण्डलाजनकत्ववत् चैत्राध्यस्तसंस्कारस्य मैत्रभ्रमाजनकत्वेऽपि वणिग्वीथीस्थरूप्यस्य कुण्डलजनकत्ववत् , स्वेनाध्यस्तस्य संस्कारस्य वियदाद्यध्यासजनकत्वोपपत्तेः तत्प्रतीत्यभावेऽपि तदध्यासस्य पूर्वं सत्वात् कृत्स्नस्यापि व्यावहारिकपदार्थस्याज्ञातसत्त्वाभ्युपगमात् ।

शङ्कते नन्विति । चैत्रके द्वारा मैत्रमें संस्कारका अध्यास होनेपरभी मैत्रको भ्रमका अदर्शन होनेसे जगद्भ्रमके हेतुभूत संस्कारका सत्व दुर्वार है । स्वसे अध्यस्त जो संस्कार है उस संस्कारसे भ्रम होता है नच=नहीं होता है क्यों ? भ्रमसे पूर्व स्वको कार्यसे अनुमेय जो संस्कार उस संस्कारके अध्यासके नियमका अभाव होनेसे=भ्रान्तपुरुषको भ्रमसे पूर्व नियमसे संस्कारका अध्यास नहीं होता है, क्योंकि संस्कार कार्यसे अनुमेय है, उसका अध्यास भ्रमरूप कार्यसे पूर्वमें नहीं हो सकता है, इति चेन्न; जैसे शुक्तिरूप्यको कुण्डलका अजनकत्व है तैसे चैत्रसे अध्यस्त संस्कारको मैत्रमें भ्रमका अजनकत्व होनेपरभी जैसे वणिग्वीथीस्थरूप्यको कुण्डल-जनकत्व है तैसे स्वसे अध्यस्तसंस्कारको वियदादिके अध्यासके जनकत्वकी उपपत्तिसे, तत्प्रतीत्यभावेऽपि=भ्रमसे संस्कारकी प्रतीतिका अभाव होनेपरभी संस्काराध्यासको पूर्वमें विद्यमान होनेसे, सर्वव्यावहारिक पदार्थोंकी अज्ञात सत्ताका अभ्युपगम होनेसे ।

ननु—प्रातिभासिकरूप्ये त्रैकालिकनिषेधस्य त्वन्मते व्यावहारिकरूप्यविषयत्ववत् व्यवहारिकप्रपञ्चेऽपि नेह नानेतित्रैकालिकनिषेधस्य पारमार्थिकप्रपञ्चान्तरविषयताऽवश्यं वाच्येति चेन्न । भ्रमबाधवैयधिकरण्यापातेनास्य पक्षस्य अनङ्गीकारपराहतत्वात् । अङ्गीकारेऽपि व्यावहारिकनिषेधे पारमार्थिकनिषेधत्वं न संभवति । अप्रतीतस्य निषेधायोगात् । प्रतीत्या सहाध्यासातिरिक्तसम्बन्धाभावेन पारमार्थिके प्रतीतत्वाभावात् ।

शङ्कते नन्विति । त्वन्मते=तुम्हारे मतमें जैसे प्रातिभासिकरूप्यविषयक निषेधको व्यावहारिकरूप्यविषयत्व है तैसे व्यावहारिकप्रपञ्चविषयक 'नेहनाना' (बृ० ४।४।१९) इत्यादि निषेधकीभी पारमार्थिक प्रपञ्चान्तरनिष्ठ विषयता अवश्य कहनी चाहिए, इति चेन्न, क्यों ? भ्रम तथा बाध इन दोनोंके वैयधिकरण्यके आपातसे इस पक्षको अनङ्गीकारपराहत होनेसे, एतत्पक्षविषयक सविशेषविचार मिथ्यात्वनिरुक्तिमें देखिए । और इस पक्षका अङ्गीकार होनेपरभी व्यावहारिक निषेधमें पारमार्थिकनिषेधकत्व संभव नहीं, अप्रतीतके निषेधका अयोग होनेसे । प्रतीतिके साथ अध्याससे अतिरिक्त सम्बन्धके अभावसे पारमार्थिकमें प्रतीतत्वका अभाव होनेसे=प्रतीतिके

विना पदार्थकी सत्ता नहीं मानी जा सकती है, और प्रतीतिके साथ विषयका आध्यासिकही सम्बन्ध होता है, और प्रतीतिके साथ जिसका आध्यासिक सम्बन्ध होता है वह नियमसे मिथ्या होता है इसीलिए पारमार्थिकमें प्रतीतत्वका अभाव है।

ननु—प्रधानाधिष्ठानयोः सादृश्याभावात् कथमध्यासः ? अथनिर्गुणयोरपि गुणयोः सादृश्यवदत्रापि किञ्चित्सादृश्यम् भविष्यति इति तन्न; निर्धर्मके ब्रह्मणि तस्याप्यध्यासाधीनत्वेनान्योन्याश्रयात्। यद्यपि सादृश्यं सोपाधिकाध्यासे न कारणम्। व्यभिचारात् तथापि निरुपाधिकाध्यासेऽन्वयव्यतिरेकाभ्यां तस्यावश्यमपेक्षणीयत्वात् सोपाधिकेऽपि रक्तः स्फटिकइत्यादौ द्रव्यत्वादिना सादृश्यसत्त्वाच्चेति चेन्न; अविद्याध्यासस्यानादित्वेन कारणानपेक्षस्य सादृश्यानपेक्षत्वात्। अन्तःकरणाध्यासेऽप्यविद्यासम्बन्धित्वस्यैव सादृश्यस्य विद्यमानत्वात्।

शङ्कते नन्विति। प्रधान तथा अधिष्ठानभूत ब्रह्ममें सादृश्यका अभाव होनसे अध्यास कैसे होगा=सामान्यान्येव भूयांसि गुणावयवकर्मणा इस वाक्यके अनुसार सामान्य=सादृश्य गुणोंसे या अवयवोंसे या कर्मसे हुआ करता है ब्रह्ममें गुण अवयव या कर्म कुछभी नहीं है अतः ब्रह्ममें सादृश्य नहीं बन सकता है, और सादृश्य विना अध्यास कैसे होगा कोयलेमें तो किसीको रजताध्यास नहीं होता है। अथ=यदि ऐसा कहो कि गुण निर्गुण होते हैं फिरभी जैसे गुणोंका सादृश्य होता है तैसे प्रकृतमेंभी कुछ सादृश्य होगा=जैसे गुणोंमें गुण या क्रिया या अवयव ये तीनों नहीं होते हैं फिरभी 'केतकीगन्धसदृशः सर्पगन्धः' इत्यादि प्रतीतिओंके अनुरोधसे गुणोंका सादृश्य माना जाता है तैसे ब्रह्ममेंभी प्रपञ्चका कुछ विलक्षण सादृश्य होगा, तन्न, सो यह कथन ठीक नहीं है, क्यों ? निर्धर्मक ब्रह्ममें सादृश्यकोभी अध्यासाधीन होनेसे अन्योन्याश्रयसे=अध्यास सिद्ध हो तब सादृश्यकी सिद्धि हो और सादृश्य सिद्ध हो तब सादृश्यहेतुक अध्यास सिद्ध हो अतः अन्योन्याश्रय है। यद्यपि सादृश्य सोपाधिक अध्यासमें कारण नहीं है 'रक्तः स्फटिकः' इत्यादिमें व्यभिचार होनेसे=सादृश्यके न होनेपरभी अध्यासके होनेसे, तथापि निरुपाधिक अध्यासमें अन्वयव्यतिरेकसे तस्य=सादृश्यको अवश्य अपेक्षणीयत्व है। और 'रक्तः स्फटिकः' इत्यादि सोपाधिक भ्रममेंभी द्रव्यत्वादिरूपसे सादृश्यको विद्यमान होनेसेभी अध्यासमें सादृश्यको हेतुता है ही, इति चेन्न; क्योंकि अविद्याध्यासको अनादित्व होनेसे कारणानपेक्षत्व है, अतएव सादृश्यानपेक्षत्व है अतः अविद्याध्यासके प्रति सादृश्यकी अपेक्षा नहीं, और अन्तःकरणाध्यासमें तो अविद्यासम्बन्धित्वरूप सादृश्य ही विद्यमान है।

वस्तुतस्तु—न भ्रमे सादृश्यापेक्षानियमः निरुपाधिकेऽपि पीतः शङ्खः इत्यादौ व्यभिचारात्। रक्तः स्फटिकः इत्यादावपि द्रव्यत्वादिना सादृश्यमस्तीत्यपि न। प्रधानमात्रवृत्तितया प्रागवगतमध्याससमये चाधिष्ठानवृत्तितया गृहीतं यत् तदेव हि सादृश्यं विपर्यय-प्रयोजकमिति त्वयापि वाच्यम्। न तु प्रागेव प्रधानाधिष्ठानोभयवृत्ति-

तया गृहीतम्, द्रव्यत्वादि च लोहितालोहितवृत्तितया प्रागृहीतमिति न विपर्ययप्रयोजकम्। किञ्च सादृश्यं न स्वतो भ्रमकारणम्। मानाभावात्। किन्तु संस्कारोद्बोधेन सामग्रीसम्पादकतया। संस्कार-बोधश्च न सादृश्यैकनियतः। अदृष्टादिनापि तत्संभवात् तदुक्तं—सदृशादृष्टचिन्ताद्याः स्मृतिबीजस्य बोधकाः। इति। चिन्तादिकश्च प्रणिधानसूत्रे व्याख्यातम्। तथा चान्यतः संस्कारोद्बोधे सति सादृश्यमनुपयोगि। तदुक्तं विवरणे, निरुपाधिकभ्रमकार्यदर्शनमेव गुणावयवसामान्याभावेऽपि केतकीगन्धसदृशः सर्पगन्ध इतिवत् स दृश्यान्तरं वा, शङ्खपीतिमादाविवकारणान्तरं वा कल्पयति इति।

वस्तुतः तो भ्रमरूप कार्यमें सादृश्यकी अपेक्षाका नियम नहीं है, निरुपाधिक जो 'पीतः शङ्खः' 'नीलं नभः' सिता कटुः इत्यादि अध्यास हैं उनमेंभी व्यभिचार होनेसे पीतः शङ्खः इत्यादिमेंभी द्रव्यत्वादिसे सादृश्य है यह जो पूर्वमें कहा है वहभी ठीक नहीं क्योंकि प्रधानवृत्तित्वेन पूर्वमें ज्ञात हो और अध्याससमयमें जो अधिष्ठानवृत्तित्वेन गृहीत हो वही सादृश्य विपर्ययका प्रयोजक है, यह तुमकोभी कहना चाहिए और प्रथमही प्रधान तथा अधिष्ठान एतदुभयवृत्तित्वेन गृहीत नहीं, तस्य=एवंविधसादृश्यको संशयजनकत्व होनेसे। और द्रव्यत्वादितो अध्याससे पूर्व लोहितालोहितवृत्तित्वेन गृहीत है, अतः अध्यासका प्रयोजक नहीं। किञ्च=औरभी कहना है सादृश्य स्वतः भ्रमका कारण नहीं है=सादृश्यपदसे सादृश्यज्ञान लेना चाहिए तथाच अर्थ यह हुआ कि, सादृश्यज्ञानको भ्रममात्रमें कारणत्व नहीं है। प्रमाणका अभाव होनेसे, किन्तु संस्कारोद्बोधसे सामग्रीसम्पादकत्वेन किसी भ्रमविशेषमें कारणत्व है। और संस्कारका उद्बोध केवल संस्कारसेही नहीं नियत है, अदृष्टादिसेभी संस्कारके उद्बोधका संभव होनेसे, कहाभी है स्मृतिबीजस्य=संस्कारके उद्बोधक सदृश अदृष्ट और चिन्तादि हैं= गौतमीयन्यायके तृतीयाध्याय केद्वितीयाह्निकके ४१ एकचत्वारिंशत् सूत्रको देखिए, फलतः अन्यकारणसे संस्कारका उद्बोध होनेपर सादृश्य अनुपयोगी है, विवरणमें यह अर्थ कहा गया है, निरुपाधिकभ्रमरूपकार्यका दर्शनही गुणअवयवकृत सादृश्यके अभावको होनेपरभी जैसे, 'केतकीगन्धसदृशः सर्पगन्धः' यहाँपर सादृश्यान्तर होता है, तैसे सादृश्यान्तरकी कल्पना करता है, या जैसे 'पीत शङ्खः' यहाँपर सादृश्यसे भिन्न अध्यासका कारण माना जाता है, तैसे कारणान्तरकी कल्पना करता है।

ननु—दोषं विना भ्रमस्वीकारे तदप्रामाण्यस्य स्वतस्त्वापत्तिः, दोषजन्यस्वीकारे तु दोषस्याप्यध्यसनीयत्वेनानवस्थापत्तिरिति चेन्न; अनाद्यविद्याध्यासस्य दोषानपेक्षत्वात्। साद्यध्यासस्य चाविद्यादोषजन्यत्वात् नाप्रामाण्यस्य स्वतस्त्वम् नाप्यनवस्था। अन्यथा तार्किकाणामप्यनादिप्रमा गुणं विनापि इतिप्रामाण्यपरतस्त्वं भज्येत। जन्यप्रमामात्रस्य गुणजन्यत्वं तु जन्याध्यासमात्रस्य दोषजन्यत्वेन समम्।

शङ्कते नन्विति। दोषके विना भ्रमका स्वीकार होनेपर तदप्रामाण्यस्य=भ्रमनिष्ठ अप्रामाण्यके स्वतस्त्वकी आपत्ति है=जब भ्रम दोषजन्य माना जाता है, तब दोषजन्यत्वेन

भ्रममें अप्रामाण्य रहता है, यदि दोपजन्य न मानोंगे तो स्वजनक सामग्रीसेही अप्रामाण्यभी मानना होगा। तथाच स्वतः-अप्रामाण्यापत्ति है। भ्रममें दोपजन्यत्व स्वीकार करो तो दोपकोभी अध्यसनीय होनेसे अनवस्थाकी आपत्ति है, दोपसे अध्यास होगा और अध्याससे दोप होगा दोप और अध्यासको आगे न बढ़ानेसे अन्योन्याश्रय है। संख्या बढाने पर अनवस्थामें पर्यवसान होगा इति चेन्न=ऐसा यदि कहो तो नहीं कहना क्यों? अनादिभूत अविद्याध्यासको दोपकी अनपेक्षा होनेसे। और सादि अध्यासको अविद्यारूप दोपसे जन्य होनेसे अप्रामाण्यका स्वतस्त्व नहीं है, और अविद्यारूप दोपको अनादि होनेसे अनवस्थाभी नहीं अन्यथा न्यायमतमें अनादिप्रमा गुणके विनाभी होती है अतः प्रामाण्यके परतस्त्वका भङ्ग होगा। और जन्यप्रमामात्रका गुणजन्यत्व तो जन्याध्यासमात्रको दोपजन्यत्वके समानही है=जैसे जन्यप्रमा गुणजन्य है, तैसे जन्याध्यासभी दोपजन्य है जिस स्थलमें दोपान्तर न मिले वहाँ सर्वदोपजननी अविद्याकोही दोप समझना चाहिए।

ननु लाघवेन प्रथमोपस्थितत्वेन च प्रवृत्तिमात्रं प्रति संसर्गधिय इव धूममात्रं प्रति वह्नेरिव—चाध्यासमात्रंमति दोपादीनां जनकत्वादविद्याध्यासोऽपि कथं क्लृप्तकारणेन विना भवतु? अन्यथा संसर्गधीरपि प्रवृत्तिविशेपे वह्निरपि धूमविशेपे हेतुरितिस्यात् तथा चाख्यातिवादश्चानुमानमात्रोच्छेदश्चापद्येयाताम्। किं च अविद्यारूपविपयस्यानादित्वेऽपि तत्प्रतीतेर्दोपाजन्यत्वे प्रामाण्यापातः। अप्रामाण्यप्रयोजकस्य दोपजन्यत्वस्याभावात्। अथ भेदवदविद्याख्यदोपस्य स्वपरनिर्वाहकत्वम्। एवमपि भेदो भिन्नइतिवत्। अज्ञानमज्ञातमिति व्यवहारो भवतु, प्रतीति-मात्रशरीरस्य, स्वविपयधीहेतुकत्वं कुतः। स्वस्य स्वस्मात्पूर्ववृत्तित्वासंभवात् इति चेन्न, अध्यासत्वस्य लघुत्वेऽपि प्रथमोपस्थितत्वेऽपि न दोपजन्यतायां तन्त्रत्वम्। दोपस्यापि दृश्यत्वेनाध्यसनीयतयाऽनवस्थापत्तेः।

शङ्कते नन्विति। लाघवसे और प्रथम उपस्थित होनेसे जैसे प्रवृत्तिमात्रके प्रति संसर्गधीको=विशिष्टज्ञानको जनकत्व है, और धूममात्रके प्रति जैसे वह्निको जनकत्व है तैसेही अध्यासमात्रके प्रति दोपादिको जनकत्व होनेसे अविद्याध्यासभी निर्णीत कारणके विना कैसे होगा, अन्यथा=दोपादिको यदि अध्यासविशेपके प्रतिही कारण मानों तो संसर्गधीभी प्रवृत्तिविशेपमेंही कारण होगी, और वह्निभी धूमविशेपमेंही कारण होगा, फलतः आख्यातिवाद प्रसक्त होगा और अनुमानमात्रका उच्छेद प्रसक्त होगा=आख्यातिवादमें प्रवृत्तिमात्रमें विशिष्टज्ञानहेतु नहीं किन्तु पुरोवर्तिमें इष्टसाधनके विवेकाग्रहसे प्रवृत्ति होती है इसी विवेकाग्रहका नाम भेदाग्रह तथा भेदज्ञानाभाव है, यह विवेकाग्रह विपयतः तथा ज्ञानतः होता है, अर्थात् पुरोवर्तिविपयक और इष्टसाधनविपयक जो दो भिन्न भिन्न ज्ञान हैं उनके भेदका अग्रह और उक्त ज्ञानोंके विपयोंके भेदका अग्रह ये दोनों प्रवृत्तिके प्रति हेतु हैं। तथाच विशिष्टधीको प्रवृत्तित्वावच्छेदेन यदि हेतु मानोंगे तो आख्यातिवादकी आपत्ति होगी, और वह्निविशेपको

यदि धूमविशेषके प्रतिही हेतु मानोंगे तब महानसीय वह्निका व्याप्य महानसीयधूम होगा। और पर्वतीयादिधूमोंमें वन्हिनिरूपितव्याप्तिग्रह न होगा। और व्याप्तिग्रह न होनेसे, व्याप्तिग्रहहेतुक अनुमानमात्रका उच्छेद हो जायगा। किञ्च अविद्यारूप विषयको अनादि होनेपरभी तत्प्रतीतेः=अविद्याविषयक प्रतीतिको दोषाजन्यत्व होनेपर प्रामाण्यका आपात है, क्यों? अप्रामाण्यका प्रयोजक जो दोषजन्यत्व उसका अभाव होनेसे। अथ=यदि ऐसा कहोकि भेदवत् अविद्यानामक दोषको स्वका तथा परका निर्वाहकत्व है=अनवस्था—भयसे जैसे भेदमें भेद नहीं माना जाता है फिरभी भेद एक भिन्नही पदार्थ माना जाता है और वही भेद अनुयोगी तथा प्रतियोगीमें विवक्षाधीन भेदव्यवहार कराता है और अपनेमेंभी भेदव्यवहार कराता है, तैसेही अविद्याभी स्वेतर अध्यासोंके प्रतिभी दोष बनती और स्वकीय अध्यासमेंभी दोष बनती है, अतःअविद्याको स्वपरका निर्वाहकत्व है, एवमपि=ऐसा होनेपरभी 'भेदो भिन्नः' यह व्यवहार जैसे होता है तैसे 'अज्ञानं अज्ञातम्' यह व्यवहार हो प्रतीतिमात्रशरीरस्य=प्रतीतिमात्रशरीर जो अज्ञान है उस अज्ञानको स्वविषयधीके प्रति हेतुत्व कैसे? स्वको स्वसे पूर्वमें वृत्तित्वका अभाव होनेसे, इतिचेन्न, क्यों? अध्यासत्वको लघुत्व तथा प्रथमोपस्थितत्व होनेपरभी दोषजन्यतामें तन्त्रत्व नहीं है=दोषनिष्ठजनकतानिरूपितजन्यताका अवच्छेदकत्व नहीं है क्योंकि दोषकोभी दृश्यत्व होनेसे, अध्यसनीयता है, तत्प्रयुक्त अनवस्थाकी आपत्तिसे=जरा दूरपरही सरलामें अनवस्थाका प्रकार बतला चुके हैं।

यथा नित्य-ज्ञानवादिनां ज्ञानत्वस्य न शरीरजन्यता—वच्छेदकत्वम्, न वा गुणजन्यत्वस्य प्रामाण्यप्रयोजकत्वम् बाधकबलात्. तद्वज्जन्याध्यासंप्रत्येव दोषादीनां कारणत्वम् गुणाजन्यत्वेऽप्यबाधितविषयतया नित्यज्ञानप्रामाण्यवत् दोषाजन्यत्वेऽपि बाधितविषयतयाऽनाद्यध्यासस्याप्यप्रामाण्योपपत्तिः। बाधितविषयत्वेऽपि न दोषजन्यत्वमवच्छेदकम् दोषजन्यत्वेऽप्यवच्छेदकान्तरान्वेषणेऽनवस्थापातात्। बाधितविषयत्वस्य दोषाजन्यवृत्तित्वेऽपि दोषजन्यत्वस्य तद्व्याप्यत्वोपपत्तेः। अत एव शबरस्वामिना यस्य दुष्टं करणं यत्र च मिथ्येति प्रत्ययः स एवा समीचीनो नान्य इतिवदता दुष्टकरणजन्यत्वमन्तरेणापि अर्थान्यथात्व—मप्रामाण्यप्रयोजकमुक्तम्।

जैसे ज्ञानको नित्य माननेवाले वादिओंके मतमें ज्ञानत्वको शरीरजन्यतावच्छेदकत्व=शरीरनिष्ठजनकतानिरूपित—जन्यतावच्छेदकत्व नहीं है, और गुणजन्यत्वको प्रमात्वका प्रयोजकत्व नहीं है, बाधकबलात्=ज्ञाननित्यत्वसाधक प्रमाणरूप बाधकके बलसे, तैसे जन्य जो अध्यास उस अध्यासके प्रतिही दोषादिकोंको कारणत्व है। और जैसे गुणसे अजन्य होनेपरभी अबाधितविषयक होनेसे नित्य ज्ञानका प्रामाण्य है, वैसे दोषसे अजन्य होनेपरभी बाधितविषयतया अनादिभूत अध्यासकेभी अप्रामाण्यकी उपपत्ति है, बाधित विषयत्वमेंभी दोषजन्यत्व अवच्छेदक नहीं है क्यों? दोषजन्यत्वमेंभी अवच्छेदकान्तरके अन्वेषण करनेपर अनवस्थाका

आपात होनेसे=बाधितविषयत्वका अवच्छेदक दोषजन्यत्व होगा फिर दोष-जन्यत्वका अवच्छेदक अन्य ढूँढना पडेगा और यों करनेसे अनवस्था होगी। और बाधितविषयत्वको दोषाजन्यमें वृत्तित्व होनेपरभी दोषजन्यत्वको तद्व्याप्यत्व=बाधितविषयत्वके व्याप्यत्वकी उपपत्ति हैं=दोषजन्यत्व, बाधितविषयत्वको छोडकर नहीं रहता है। अत एव=दोषजन्यत्वको बाधितविषयत्वका व्यापक न होनेसेही, यस्य=जिस प्रत्ययका जनक करण दुष्ट हो और जिस प्रत्ययमें मिथ्या है, ऐसा प्रत्यय हो वही असमीचीन प्रत्यय है अन्य नहीं, ऐसा कहनेवाले शबरस्वामिसे दोषवत्करणसे जन्यत्वके विनाभी अर्थान्यथात्व अप्रामाण्यका प्रयोजक कहा गया है=दोषजन्यत्वही भ्रमका प्रयोजक नहीं है किन्तु दोषजन्यत्वके विना अर्थान्यथात्वभी भ्रमका प्रयोजक है वह भ्रमजन्य हो या अजन्य इसमें विशेष नहीं यह मत शबरस्वामीकोभी अभिमत है।

अविद्याध्यासरूपस्य, साक्षिचैतन्यस्याविद्याजन्यत्वानभ्युपगमात् न प्रतीतिमात्रशरीरत्वव्याघातः। अहमज्ञः इत्याद्यभिलापकारणीभूतवृत्तिरूपाध्यासं प्रति त्वविद्यायाः कारणत्वमस्त्येव, घटादीनामिव स्वप्रत्यक्षंप्रति। वह्निविशिष्टधियोस्तु बाधकाभावात् सामान्येनैव धूमप्रवृत्ती प्रति हेतुतेति न पूर्वोक्तदोषापातः। अविद्याध्यासस्यानादित्वेन दोषाद्यनपेक्षावदधिष्ठानानपेक्षापि स्यादिति चेन्न, जनकत्वेनाधिष्ठानानपेक्षायामपि आश्रयत्वेन तदपेक्षानियमात् परममहत्वादेराश्रयत्वापेक्षावत्, अध्यासस्य साधिष्ठानकत्वनियमेनात्रापि परतन्त्रत्वस्य समानत्वात्, भास्यस्याविद्याध्यासस्य भासकतयाप्यधिष्ठानापेक्षणाच्च। अविद्यावच्छिन्नचैतन्यस्याविद्यादिसकलद्वैतद्रष्टृत्वात्। तस्यैव च अन्तःकरणावच्छेदेन प्रमातृत्वात्, भ्रमप्रमयोः सामानाधिकरण्योपपत्तेः भ्रमस्य सामानाधिकरणप्रमानिवर्त्यत्वमुपपद्यते।

और अविद्याध्यासरूप साक्षिचैतन्यको अविद्याजन्यत्वका अनभ्युपगम होनेसे प्रतीतिमात्रशरीरत्वका व्याघात नहीं है। और 'अहमज्ञः' इत्यादिरूप जो अभिलाप उस अभिलापका कारणीभूत जो वृत्तिरूपाध्यास उस अध्यासके प्रति तो अविद्याको कारणत्व है ही, जैसे घटादिकोंको स्वविषयक प्रत्यक्षमें कारणत्व है। और वह्नि तथा विशिष्टधी इन दोनोंको तो बाधक न होनेसे सामान्यरूपसेही क्रमशः धूम तथा प्रवृत्तिके प्रति हेतुता है अतः पूर्वोक्त दोषोंका आपात नहीं=आख्यातिवाद और अनुमान-मात्रका उच्छेद ये दो दोष पूर्वमें बतलाये हैं।

शङ्कते नन्विति। अविद्याध्यासको अनादि होनेसे जैसे दोषादिरूप वत्प्रकारणकी अपेक्षा नहीं है, तैसे अधिष्ठानकीभी अपेक्षा न होगी इति चेन्न; क्यो? अध्यासजनकत्वेन अधिष्ठानकी अपेक्षा न होनेपरभी आश्रयत्वेन अधिष्ठानकी अपेक्षाका नियम होनेसे=इस बातको ध्यानमें रखनी चाहिए कि अध्यास दो प्रकारका होता है, अर्थाध्यास तथा ज्ञानाध्यास, मिथ्याज्ञानका नाम ज्ञानाध्यास है, जिसे अप्रमा भ्रम विपर्यय अयथार्थज्ञान कहते हैं, और इस मिथ्याज्ञानके विषयका नाम अर्थाध्यास है। जिसे आरोपित कल्पित तथा अध्यस्त कहते हैं। जैसे परममहत्त्वको आश्रयकी अपेक्षा है, तैसे अध्यासकोभी साधिष्ठानत्वका नियम होनेसे आश्रयकी अपेक्षा है,

क्योंकि महत्त्ववत् अध्यासमेंभी परतन्त्रत्वको सम होनेसे । और भास्य जो अविद्याध्यास है उसे भासकतयाभी अधिष्ठानकी अपेक्षा होनेसेभी आश्रयकी अपेक्षा है । अविद्यावच्छिन्नचैतन्यको, अविद्यादिसकलद्वैतका द्रष्टा होनेसे, और उसी चैतन्यको अन्तःकरणावच्छेदेन प्रमाता होनेसे भ्रम तथा प्रमा इन दोनोंके सामानाधिकरण्यकी उपपत्ति है, अतएव भ्रमको स्वसमानाधिकरण जो प्रमा उस प्रमासे निवर्त्यत्व उपपन्न होता है ।

ननु देहेन्द्रियादिकं विना कथमन्तःकरणाध्यासः । कात्रानुपपत्तिः ? अधिष्ठानापरोक्षत्वं हि अपरोक्षभ्रमे कारणम् तत् यत्राधिष्ठानं स्वतो नापरोक्षम्, यथा शुक्त्याद्यवच्छिन्नचैतन्यम् । तत्र तदपरोक्षतार्थं देहेन्द्रियाद्यपेक्षा, प्रकृते चाविद्यावच्छिन्नं चैतन्यमधिष्ठानम् । तत्र चैतन्यस्य स्वप्रकाशत्वेनाविद्यायाश्च तदध्यस्तत्वेन तेनैव-साक्षिणा अपरोक्षत्वात् कुत्र देहेन्द्रियाद्यपेक्षा । अथैवं प्रलये देहेन्द्रियाद्यभावेऽप्यज्ञान-सद्भावे नान्तःकरणाध्यासप्रसङ्गः, न तदा देहेन्द्रियादि-सर्जनविलम्बहेतुनैव तद्विलम्ब-सम्भवात् । अन्यथा तत्रदेहेन्द्रियादिकमपि कुतो नोत्पद्येत । न च दोपादीनामध्यस्तत्वेन तदभावस्य तात्त्विकत्वात् अतात्त्विकेन तात्त्विककार्यप्रतिबन्धस्यायुक्तत्वात् बौद्धेन दुष्टतया कल्पितस्य वेदजन्यज्ञानस्येव, कल्पितदोपजन्यस्य द्वैतविज्ञानस्यप्रामाण्यापातः । इति वाच्यम् । बौद्धकल्पितस्य प्रातिभासिकदोपस्य व्यावहारिकवेदापेक्षया न्यूनसत्ताकत्वेन तदप्रामाण्यप्रयोजकत्वेऽप्यविद्याख्यदोपद्वैतप्रपञ्चयोः समसत्ताकत्वेन कार्यकारणभावनियमेन च कारणीभूताविद्याख्यदोपाभावे कार्यभूतद्वैतप्रपञ्चतद्विज्ञानयोरभाव-नियमेन नाविद्यामिथ्यात्वेन द्वैतज्ञानसत्यतापातः । कारणमिथ्यात्वे कार्यमिथ्यात्वस्या-वश्यकत्वात् ब्रह्मज्ञानेतराबाध्यत्वरूपव्यावहारिकत्वस्य बाध्याबाध्यसाधारणस्य मिथ्या-त्वसिद्ध्यनपेक्षत्वात् न सत्त्वविभागासिद्धिः ।

शङ्कते नन्विति । देह तथा इन्द्रियादिकके विना अन्तःकरणका अध्यास कैसे है ? अत्र= अन्तःकरणाध्यासमें अनुपपत्ति क्या है ? अनुपपत्तिके अभावको ही दिखलाते हैं अधिष्ठानेति । अधिष्ठानका अपरोक्षत्व अपरोक्षभ्रममें कारण है, सो जहाँ अधिष्ठान स्वतः-अपरोक्ष नहीं है, जैसे शुक्त्यादिसे अवच्छिन्नचैतन्य, तहाँ अधिष्ठानकी अपरोक्षताके लिए देहेन्द्रियादिकी अपेक्षा होती है, और प्रकृतमें तो अविद्यावच्छिन्नचैतन्य अधिष्ठान है, तत्र=उक्तस्थलमें चैतन्यको स्वप्रकाश होनेसे और अविद्याको चैतन्यमें अध्यस्त होनेसे उस साक्षीसेही अपरोक्षत्व है अतः देहेन्द्रियादिकी अपेक्षा कहां है ? अथैवम्=यदि यों है तबतो प्रलयमें देहेन्द्रियादिका अभाव होनेपरभी अज्ञानके सद्भावसे अन्तःकरणके अध्यासका प्रसङ्ग है । न= नहीं है क्यों ? तदा=प्रलयकालमें देहेन्द्रियादिका जो सर्जन उस सर्जनमें जो विलम्ब उस विलम्बका जो हेतु है उस हेतुसे ही अन्तःकरणके अध्यासके विलम्बका सम्भव होनेसे, अन्यथा=एतत्कारणप्रयुक्त विलम्ब न मानोंतो वहाँपर देहेन्द्रियादिकभी क्यों न उत्पन्न होंगे ।

दोपादिकको अध्यस्त होनेसे दोपादिके अभावको तात्त्विकत्व है और अतात्त्विकसे=कल्पित दोपादिसे तात्त्विकके दोपादिप्रतियोगिक अभावके कार्य=प्रामाण्यरूपकार्यके प्रतिबन्धको अयुक्तत्व है, अतः जैसे बौद्धसे दुष्टरूपसे कल्पित वेदज्ञानका प्रामाण्य आपके मतमें होता है, तैसे ही कल्पित–दोपजन्य द्वैतविज्ञानकेभी प्रामाण्यका आपात होगा=अध्यासकारण दोपादिक अध्यस्त हैं और अध्यस्त पदार्थ मिथ्या है उसका अभाव तात्विक होता है, फलतः दोपादिका अभाव तात्विक है, दोपका कार्य है अध्यास और दोपाभावका कार्य है प्रमा, और अतात्विक कारणसे तात्त्विककारणके कार्यका प्रतिबन्ध नहीं हो सकता है फलतः दोपादिका अभाव घटादिविपयक ज्ञानमें प्रामाण्य ही उत्पन्नकरेगा अतः कल्पितदोपजन्यज्ञानमें प्रामाण्यका आपात वतलाया है, इस अर्थमें दृष्टान्त यह है कि–जैसे बौद्धकल्पित दोपसे जन्य जो वेदज्ञान है उस ज्ञानस्थलमें बौद्धकल्पितदोप प्रातिभासिक है और उन दोपोंका अभाव तात्विक है तथा च तात्त्विकदोपाभावप्रयुक्त वेदज्ञानमें प्रामाण्य ही आपके मतमें सिद्ध होता है, कुछ प्रातिभासिक-दोपप्रयुक्त अप्रामाण्य नहीं वैसे ही कल्पितदोपजन्य द्वैतविज्ञानमेंभी समझना चाहिए, इति नच वाच्यम्; क्यों ? बौद्धकल्पित प्रातिभासिकदोपको, व्यावहारिक वेदकी अपेक्षासे न्यूनसत्ताकत्व होनेसे व्यावहारिकवेदके अप्रामाण्यका प्रयोजकत्व न होनेपरभी, अविद्याख्यदोप तथा द्वैतप्रपञ्च इन दोनोंको समानसत्ताकत्व होनेसे कार्यकारणभावका नियम है, अतः कारणीभूत जो अविद्याख्य दोप है उस दोपका अभाव होनेपर कार्यभूत जो द्वैत प्रपञ्च तथा द्वैतप्रपञ्चविपयक विज्ञान इन दोनोंके अभावके नियमसे अविद्याके मिथ्यात्वसे द्वैतज्ञानमें सत्यत्वका आपात नहीं, कारणका मिथ्यात्व होनेपर कार्यके मिथ्यात्वको आवश्यक होनेसे; और वाध्य तथा अवाध्य एतदुभयसाधारण जो ब्रह्मज्ञानेतरावाध्यत्वरूप व्यावहारिकत्व है उस व्यावहारिकत्वको मिथ्यात्वसिद्धिकी अपेक्षा नहीं अतः सत्त्वके विभागकी असिद्धि नहीं।

ननु दोपादीनां रूप्यादिभ्रमहेतूनां पारमार्थिकसत्त्वमौत्सर्गिकप्रामाण्येन सिद्धमिति परमार्थसतामेव तेपां हेतुत्वमिति चेन्न। व्यावहारिकप्रामाण्यस्य साक्षिणाग्रहणेऽपि त्रिकालावाध्यत्वरूपतात्त्विकप्रामाण्यं न केनापि गृह्यते इति प्रत्यक्षवाधोद्धारे, प्रागेवाभिहितत्वात्। नच रूप्याद्यध्यासे दोपादीनामधिष्ठानसमसत्ताकत्वं दृष्टमिति इहापि तथेतिवाच्यम्। साधर्म्यसमजात्युत्तरत्वात्। वस्तुतस्तु सर्वत्र चैतन्यस्यैवाधिष्ठानत्वेन कुत्रापि दोपादीनामधिष्ठानसमसत्ताकत्वाभावात्। नच वाधकज्ञानं सत्यमेव वक्तव्यम्, अन्यथा वाधपरम्पराया अनवस्थापत्तेरिति वाच्यम्, वेदान्तवाक्यजन्यचरमचित्तवृत्तेः कतकरजोन्यायेन स्वपरवाधकतयाऽनवस्थाया अभावात्, दृश्यत्वमात्रेण युगपत्कृत्स्नवाधसंभवात्। नहि गुहायां न शब्द इति शब्दः स्वं न निपेधति, अन्यथा स्वस्य स्वेनानिपेधे तत्राप्यनवस्थापत्तिः, शब्दमात्रनिपेधानुभवविरोधश्च।

शङ्कते नन्विति। रूप्यादिभ्रमके हेतु दोपादिका पारमार्थिक सत्त्व औत्सर्गिक प्रामाण्यसे सिद्ध है अतः परमार्थसत् हुएही दोपादिकोंको भ्रमके प्रति हेतुता है इति चेन्न; क्यों ? दोपा-

दिविषयकज्ञाननिष्ठ व्यावहारिक प्रामाण्यका साक्षीसे ग्रहण होनेपरभी त्रिकालाबाध्यत्वरूप तात्त्विकप्रामाण्य किसीसेभी गृहीत नहीं होता है, इति=इस रीतिसे प्रत्यक्षबाधोद्धारमें प्रथमही अभिहित हो चुकनेसे, रूप्यादिअध्यासमें अधिष्ठानसमसत्ताकत्व दोषादिमें देखा है, इसलिए प्रकृताध्यासमेंभी दोषादिको अधिष्ठानसमसत्ताकत्व होना चाहिए, इति न च वाच्यम्, क्यों ? साधर्म्यसमजात्युत्तर होनेसे=जहाँ वादी तर्कसध्रीचीन हेतुका प्रयोग करता हो और प्रतिवादी तर्करहित=व्याप्तिरहित हेतुका प्रयोग करता हो वहाँपर साधर्म्यसमा जाति कही जाती है, जैसे शब्दोऽनित्यः प्रयत्नजन्यत्वात्, घटादिवत्, यहाँपर शब्दः नित्यः स्पर्शशून्यत्वात् आत्मादिवत् यह हेतु उभयविधव्याप्तिसे शून्य है अतः यहाँपर साधर्म्यसमा जाति है, इसी रीतिसे प्रकृतमेंभी व्याप्तिशून्यसाधर्म्यमात्रका उद्भावन है अतः साधर्म्यसमा जाति है। वस्तुतः तो सर्वत्र चैतन्यकोही अधिष्ठानत्व हैं, अतः कहीं परभी दोषादिको अधिष्ठानसमसत्ताकत्व नहीं है। शङ्कते नचेति, बाधकज्ञानसत्यही कहना चाहिए, अन्यथा बाधकी परम्परासे अनवस्थाकी आपत्ति होनेसे=एकबाधकके बाधके लिए दूसरा बाधक मानना पडेगा और दूसरेके लिए तीसरा यों आगे २ बढ़नेसे अनवस्था होगी, इति नच वाच्यम् क्यों ? वेदान्तवाक्यजन्य चरमवृत्तिको, कतकरजोन्यायसे स्वपरका बाधकत्व होनेसे अनवस्थाके अभावसे, दृश्यत्वसे एककालावच्छेदेन सर्वके बाधका सम्भव होनेसे, गुहामें शब्द नहीं है, यह शब्द गुहामें स्वका निषेध नहीं करता है, यह बात नहीं है, अन्यथा स्वका स्वसे निषेध न होनेपर तहाँपरभी अनवस्थाकी आपत्ति है। और उक्तस्थलमें शब्दमात्रके निषेधका जो अनुभव होता है उसके साथ विरोधभी है।

यद्यपि बाधकज्ञानं वृत्त्युपरक्तचैतन्यरूपं स्वतः सत्यमेव, तथापि तदवच्छेदिकाया वृत्तेः दृश्यत्वेन मिथ्यात्वात् बाधोपपत्तिः । ननु, बन्धस्यात्यन्ताभावप्रतियोगित्वरूपमिथ्यात्वे तदभावार्थं यत्नो न स्यात् । अत्यन्ताभावस्यासाध्यत्वात् । अतएव नतत्प्रतीत्यभावार्थमपि यत्नः । तस्या अपि मिथ्यात्वात्, अन्यथा मोक्षेऽपि बन्धप्रतीत्या तद्दशायामपि प्रातिभासिकबन्धापातात् । अथ पारमार्थिकत्वाकारेण मिथ्यात्वम्, स्वरूपेण तु निवृत्तिरेव, न तस्याः स्वरूपाबाधेनाप्युपपत्तेरिति चेन्न, सत्यस्य ब्रह्मणः निवृत्त्यदर्शनेन स्वरूपतो मिथ्यात्वाभावे निवृत्त्ययोगात्, मिथ्यात्वं निवृत्त्यनुकूलमेव ।

यद्यपि बाधकज्ञान वृत्त्युपरक्त चैतन्य है वह स्वरूपसे सत्यही है, तथापि उक्तचैतन्यकी अवच्छेदिका वृत्तिको दृश्यत्व होनेसे मिथ्यात्व है अतः बाधकी उपपत्ति है, शङ्कते। नन्विति। बन्धको अत्यन्ताभावप्रतियोगित्वरूप मिथ्यात्व होनेपर तदभावार्थ=बन्धके अत्यन्ताभावके लिए यत्न न होगा अत्यन्ताभावको असाध्य होनेसे। अत एव=उक्त दोषके विद्यमान होनेसेही तत्प्रतीति=प्रतिबन्धविषयिणी जो प्रतीति उस प्रतीतिका जो अत्यन्ताभाव उस अत्यन्ताभावके

लिएभी यत्न न होगा, क्यों ? तस्याः=उक्त प्रतीतिकोभी मिथ्यात्व होनेसे=उक्त प्रतीतिको मिथ्या होनेपर उसकेभी अत्यन्ताभावके लिए यत्न कहना होगा और वह बन नहीं सकता है, अत्यन्ताभावको असाध्य होनेसे अन्यथा=यदि बन्धकी प्रतीतिको मिथ्या न मानों तो मोक्षमेंभी बन्धकी प्रतीतिसे मोक्षदशामेंभी प्रातिभासिक बन्धका आपात होगा। अथ=यदि ऐसा कहो कि पारमार्थिकत्वाकारसे मिथ्यात्व है और स्वरूपसे तो निवृत्तिही है तो न=यह कथन असङ्गत है क्यों ? तस्याः=उक्तनिवृत्तिका स्वरूपसे बाध न होनेसेभी उपपत्ति होनेसे इति चेन्न; क्योंकि सत्यरूप ब्रह्मकी निवृत्तिके न देखनेसे स्वरूपतः मिथ्यात्वाभाव होनेपर निवृत्तिका अयोग है, अतः मिथ्यात्व निवृत्तिके अनुकूलही है।

नच तदर्थं प्रवृत्त्यनुपपत्तिः, अधिष्ठानसाक्षात्कारानन्तरं तथैव। ततः पूर्वं तु कण्ठगतविस्मृतचामीकरप्राप्तय इव भ्रमबाधकज्ञानोत्पत्तये प्रवृत्त्युपपत्तेः। अत्यन्ताभावाधिकरणे च प्रतियोगिवत्तन्निवृत्तिरप्युपपादितैव। नच त्रैकालिकनिषेधप्रतियोगिनि तुच्छे निवृत्तिर्न दृष्टा इति कथं तादृशि प्रपञ्चे सा स्यादितिवाच्यम्, यथा कथञ्चित् सजातीयेऽदर्शनस्याप्रयोजकत्वात्। अन्यथा अनुत्पन्ने निवृत्तिर्न दृष्टेतिप्रागभावोऽपि न निवर्तेत। तस्मात्स्वभावविशेष एव तुच्छनित्यविलक्षणो निवृत्तिप्रयोजक इतिवाच्यम्। सा च निवृत्तिरधिकरणस्वरूपेतिघटनाशार्थं मुद्गरपातादाविव मननादौ प्रवृत्तिरूहनीया अतिरिक्तइति पक्षे त्वनिर्वचनीया, पञ्चमप्रकारा चरमवृत्तिरूपा वा सा सर्वथा जन्यैवेति न काप्यनुपपत्तिः।

तदर्थम्=मिथ्याबन्धकी निवृत्तिके लिए प्रवृत्तिकी अनुपपत्ति है नच=सर्वथा अनुपपत्ति नहीं, अधिष्ठानविषयक साक्षात्कारके बाद अनुपपत्ति है, उस कालमें बन्धनाशके सिद्धत्वका निश्चय होनेसे। ततः=अधिष्ठानसाक्षात्कारसे पूर्व तो कण्ठगतविस्मृतचामीकरकी प्राप्तिके लिए जैसे प्रवृत्ति होती है तैसे भ्रमका बाधक जो ज्ञान उस ज्ञानकी उत्पत्तिके लिए प्रवृत्ति की उपपत्ति है। और अत्यन्ताभावके अधिकरणमें प्रतियोगिवत् निवृत्तिभी उपपादित है=जैसे अत्यन्ताभावाधिकरणमें प्रतियोगी रहता है तैसे निवृत्तिभी रहती है। त्रैकालिकनिषेधका प्रतियोगी जो तुच्छ है, उस तुच्छमें निवृत्ति दृष्ट नहीं है इति=अतः तादृशप्रपञ्चमें सा=वह निवृत्ति कैसे होगी, इति नच वाच्यम् क्यों ? यथाकथञ्चित् सजातीयमें अदर्शनको अप्रयोजकत्व होनेसे, अन्यथा अनुत्पन्नमें निवृत्ति नहीं देखी गई है, अतः प्रागभावभी निवृत्त न होगा। ततः तुच्छ तथा नित्य इन दोनोंसे विलक्षण स्वभावही निवृत्तिका प्रयोजक है, यह कहना चाहिए। और वह निवृत्ति अधिकरणका स्वरूप है, इस पक्षमें घटनाशके लिए जैसे मुद्गरपातादिमें प्रवृत्ति होती है तैसे मननादिमें प्रवृत्ति ऊहनीय है। अधिकरणसे अतिरिक्त है इस पक्षमें तो अनिर्वचनीया है या पञ्चम प्रकारा है या चरमवृत्तिरूपा है, वह निवृत्ति सर्वप्रकारसे जन्यही है अतः कोईभी अनुपपत्ति नहीं।

ननु वन्धस्य ब्रह्मण्यध्यस्तत्वे तन्निदिध्यासनसाध्यतत्साक्षात्कारनिवर्त्त्यत्वं श्रवणादिनियमादृष्टसापेक्षब्रह्मज्ञाननिवर्त्त्यत्वं च न स्यात् नहि देवतानिदिध्यासनसाध्यतत्साक्षात्कारनिवर्त्यं दुरितं तत्राध्यस्तम् न वा दूरागमनादिनियमादृष्टसापेक्षसेतुदर्शननिवर्त्यं दुरितं तत्राध्यस्तमिति चेन्न आत्माध्यस्तगौरत्वादेः शुक्त्याद्यध्यस्तरूप्यादेश्च तत्तत्साक्षात्कारनिवर्त्यत्वदर्शनेन प्रपञ्चस्यापि ब्रह्मण्यध्यस्ततया तत्साक्षात्कारनिवर्त्यत्वस्यावश्यकत्वात् । नहि शुक्त्याद्यध्यस्तं रूप्यादि शुक्त्यादिज्ञानं विना निवर्त्तते, देवतादर्शनादिना तु प्रायश्चित्तसमकक्ष्येण दुरितस्य कारणात्मनावस्थानमात्रं क्रियते । ननु शुक्तिज्ञानेन रूप्यस्यैव निवृत्तिः । अधिष्ठानाज्ञानरूपोपादानकस्यारोपितस्य तन्निवृत्तिं विना निवृत्त्ययोगात् अज्ञाननिवृत्तिश्चाधिष्ठानज्ञानादेवेत्युक्तं प्राक्, श्रवणादिनियमादृष्टं च न मुक्तिं प्रति कारणं, किन्तु ब्रह्मापरोक्षं प्रति ।

शङ्कते नन्विति । वन्धको ब्रह्ममें अध्यस्तत्व होनेपर ब्रह्मविषयक जो निदिध्यासन तादृशनिदिध्यासनसे साध्य जो ब्रह्मविषयक साक्षात्कार उस साक्षात्कारसे निवर्त्त्यत्व न होगा । और श्रवणादिविषयक जो नियम उस नियमसे जन्य जो अदृष्ट तादृश—अदृष्टसापेक्ष जो ब्रह्मज्ञान उस ब्रह्मज्ञानसे निवर्त्यत्व न होगा, हि=यतः देवताविषयकनिदिध्यासनसे साध्य जो देवताविषयक साक्षात्कार उस साक्षात्कारसे निवर्त्त्य जो दुरित है वह दुरित तत्र=देवतामें अध्यस्त नहीं हैं । और दूरसे आगमनका जो नियम उस नियमसे जन्य जो अदृष्ट तादृश अदृष्टसापेक्ष जो सेतुका दर्शन उस सेतुदर्शनसे निवर्त्य जो दुरित वह दुरित तत्र=सेतुमें अध्यस्त नहीं है इति चेन्न क्यों ? आत्मामें अध्यस्त जो गौरत्वादि हैं उन गौरत्वादिको आत्मसाक्षात्कारसे निवर्त्यत्व देखनेसे, और शुक्त्यादिमें अध्यस्तरूप्यादिको शुक्त्यादिके साक्षात्कारसे निवर्त्यत्व देखनेसे प्रपञ्चकोभी ब्रह्ममें अध्यस्त होनेसे ब्रह्मसाक्षात्कारसे निवर्त्यत्वको आवश्यक होनेसे । यतः शुक्त्यादिमें अध्यस्तरूप्यादि शुक्त्यादिके ज्ञान विना निवृत्त नहीं होते हैं । और प्रायश्चित्तसमकक्ष देवतादर्शनादिसे तो दुरितका कारणस्वरूपसे अवस्थानमात्र किया जाता है और शुक्तिज्ञानसे जैसे रजतकी निवृत्ति होती है तैसे दुरितकी निवृत्ति नहीं होती है, क्यों ? अधिष्ठानविषयक जो अज्ञान तादृश—अज्ञानोपादानक जो आरोपित तादृशआरोपितकी निवृत्तिका तन्निवृत्तिं विना=उपादानभूत अज्ञानकी निवृत्तिके विना अयोग होनेसे और अज्ञानकी निवृत्तिवो अधिष्ठानज्ञानसेही होती है यह पहले कहा गया है और श्रवणादिनियमजन्य अदृष्ट मुक्तिके प्रति कारण नहीं है किन्तु ब्रह्मनिष्ठ आपरोक्ष्यके प्रति कारण है ।

ननु—अवघातसाध्यवैतुष्यान्यापूर्वस्येव श्रवणादिसाध्यापरोक्षान्यमुक्तेरेव तत्साध्यत्वम् । अन्यथा श्रवणनियमादृष्टसाध्ये साक्षात्कारे श्रवणनिरपेक्षस्य—उपायान्तरस्याप्रसक्त्या तत्प्रसक्त्यधीननियमविध्ययोगात् । नच परोक्षज्ञानं श्रवणात् अपरोक्षं तु नियमादृष्टादिति युक्तम् । श्रवणादिविधौ परोक्षज्ञानप्रवाहरूपनिदिध्यासनसाध्यापरोक्षस्यैव

दर्शिनोद्देशात् । त्वन्मते परोक्षज्ञाने कामनया अयोगेन तस्योद्देश्यत्वायोगाच्चेति चेन्न, तत्रक्रत्वर्थस्य नियमापूर्वस्य परमापूर्वसाधकत्वेऽपि पुरुषार्थहिरण्यधारणादिनियमादृष्टस्य तदभाववत् श्रवणादिनियमापूर्वस्य श्रवणादिसाध्यसाक्षात्कारान्यफलाभावेऽपि तेनैव फलवत्त्वोपपत्तेः । सर्वापेक्षा च यज्ञादिश्रुतेरश्ववदिति न्यायात् । सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते इति स्मृतेश्च ।

शङ्कते नन्विति—जैसे अवघातसे साध्य जो वैतुष्य उस वैतुष्यसे अतिरिक्त अपूर्वको अवघात साध्यत्व है वैसे श्रवणादिसे साध्य जो आपरोक्ष्य उस आपरोक्ष्यसे भिन्न मुक्तिकोही श्रवणादि साध्यत्व हो। अन्यथा=मुक्तिको यदि श्रवणादिनियमजन्यादृष्टसाध्य न मानों तो श्रवणनियमजन्य जो अदृष्ट उस अदृष्टसे साध्य साक्षात्कारमें श्रवणनिरपेक्षोपायान्तरकी अप्रसक्तिसे अन्य प्रसक्तिके अधीन नियमविधिका अयोग है । परोक्षज्ञान श्रवणसे होता है और अपरोक्षज्ञान नियमजन्य अदृष्टसे होता है इति=यह नच=नहीं युक्तम्=युक्त है क्यों ? श्रवणमननादिकी विधिमें परोक्षज्ञानका प्रवाहरूप जो निदिध्यासन उस निदिध्यासनसे साध्य जो अपरोक्ष उस अपरोक्ष कोही 'द्रष्टव्यः' की प्रकृतिभूत दृश् धातुसे उद्देश होनेसे अपरोक्षकोही उद्देश कर श्रुतिने श्रवणादिका विधान किया है अतः श्रवणसे परोक्षज्ञान होता है यह नहीं कहा जा सकता है । और तुम्हारे मतमें मोक्षार्थीको परोक्षज्ञानमें कामनाके अयोगसे परोक्षके उद्देश्यके अयोगसेभी यह पक्ष असङ्गत है इति चेन्न, तत्र=दृष्टान्तमें क्रत्वर्थस्य=क्रतूद्दिश्य विहितनियमजन्यापूर्वको परमापूर्वका साधकत्व होनेपरभी जसे पुरुषार्थ जो हिरण्यधारणादि तदीयनियमजन्य अदृष्टको परमापूर्वका साधकत्व नहीं है तैसे श्रवणादिसे साध्य जो साक्षात्कार तादृशसाक्षात्कारसे अन्य फलके न होनेपरभी तेनैव=साक्षात्कारसेही फलवत्ताकी उपपत्ति है अतः दोष नहीं इसी अर्थको प्रमाणोंसे दृढ करते हैं सर्वेति । सर्वापेक्षा=तत्त्वसाक्षात्कारमें सर्वकर्माकी अपेक्षा है, यज्ञादिश्रुतेः=विविदिषन्ति यज्ञेन (बृ० ४।४।२२) इत्यादिश्रुतिओंसे कषाये कर्मभिः पक्वे ततो ज्ञानं प्रवर्त्तते इत्यादि स्मृतिओंसेभी अश्ववत्=जैसे अश्व रथचलनादिमें अपेक्षित होता है हलकर्षणादिमें नहीं अनुपयुक्त होनेसे तैसे तत्त्वज्ञानमात्रसाध्यमोक्षमें कर्मका उपयोग नहीं; (वे० ३।४।२६) हे पार्थ निखिल कर्म ज्ञानमें परिसमाप्त होजाते हैं (गी० ४।३३) अर्थात ज्ञानजन्यफलके अजनक होके ज्ञानके जनक हैं इस स्मृतिसेभी ।

अत्र सर्वाखिलपदाभ्याम् कर्मशब्दवाच्यापूर्वमात्रस्य ज्ञाने समाप्तिर्दर्शिता । मोक्षस्याविद्यानिवृत्तिरूपस्य ज्ञानातिरिक्तासाध्यत्वनियमाच्च । ज्ञाने त्वसम्भावनादिनिवृत्त्या प्रतिबन्धकदुरितनिवृत्त्या च दृष्टादृष्टांशोपयोगः । सामान्यपुरस्कारेण च प्रसक्तस्य साधनान्तरस्य निवृत्तिः सर्वत्र नियमविधेः फलम् । विशेषरूपेण त्वपूर्वविधित्वमेव । यथाहि व्रीहीनवहन्तीत्यादावपूर्वसाधनीभूतव्रीहिवैतुष्ये विशिष्यावघातातिरिक्तसाधनान्तराप्रसक्तावपि व्रीहिवैतुष्यमात्रे प्रसक्तस्य नरवविदलनादेर्निवृत्तिः विशिष्यकार्यकारणभाव-

बोधनात् । तथा निर्विशेषब्रह्मात्माभेदसाक्षात्कारप्रतिबन्धनिवृत्तौ साङ्ख्यादिशास्त्रस्यापि प्रसक्तेः तन्निवृत्तिर्विशिष्यवेदान्तवाक्यविचारविधानादिति परमगम्भीरोऽयं ग्रन्थार्थः ।

अत्र=उक्त सूत्र तथा स्मृति इन दोनोंमें सर्व तथा अखिल इन दोनों पदोंसे कर्मशब्दसे वाच्य अपूर्वमात्रकी ज्ञानमें समाप्ति दिखलादी, और अविद्याकी निवृत्तिरूप मोक्षको ज्ञानातिरिक्तसे असाध्यत्वके नियमसेभी कर्मोंकी समाप्तिको ज्ञानमें मानना ही उचित है । और ज्ञानमें तो असम्भावनादिकी निवृत्तिसे तथा ज्ञानप्रतिबन्धक दुरितकी निवृत्तिसे दृष्ट तथा अदृष्ट इन दोनों अंशोंका क्रमशः उपयोग है । सामान्यधर्मपुरस्कारेण=वैतुष्यत्वादिरूप सामान्यधर्मावच्छिन्नको उद्देश्यकर प्रसक्तदलनादिरूप साधनान्तरकी निवृत्ति सर्वत्र नियमविधिका फल है । और विशेषरूपेण=प्रकृतयागजन्य जो अपूर्व तादृश अपूर्व-प्रयोजक जो वैतुष्य तादृश वैतुष्योद्देश्यक जो अवघात तादृश अवघात-विषयिणी जो भावना तादृश-भावना-बोधकत्वेन तो अपूर्व विधित्व ही होता है । तथाहि-(व्रीहीनवहन्ति) इत्यादिमें अपूर्वसाधनीभूत व्रीहिवैतुष्यमें विशेषरूपसे अवघातातिरिक्त साधनान्तरकी प्रसक्ति न होनेपरभी व्रीहिवैतुष्यमात्रमें प्रसक्तनखविदलनादिकी निवृत्ति है, विशेषरूपसे कार्यकारणभावका बोध न होनेसे, तैसे निर्विशेष ब्रह्मके साथ जो आत्माके अभेदका साक्षात्कार उस साक्षात्कारके प्रति बन्धकी निवृत्तिमें श्रवणादि=श्रवणादिनियमजन्यापूर्वसे अतिरिक्त साधनान्तरकी प्रसक्ति न होनेपरभी आत्मज्ञानमात्रमें जो प्रतिबन्ध उस प्रतिबन्धकी निवृत्तिमें साङ्ख्यादि-शास्त्रकीभी प्रसक्तिसे तन्निवृत्तिः=साङ्ख्यादिशास्त्रोंकी निवृत्ति विशेषरूपसे वेदान्तवाक्य-विचारके विधानसे की गई है, यह परमगम्भीर ग्रन्थका अर्थ है

ननु—यदि विश्वं कल्पितं स्यात् तदा जन्माद्यस्य यतः इतिसूत्रे यतो वा इमानि भूतानि इत्यादिश्रुतौ च जन्माद्युक्तिः (ईक्षतेर्नाशब्दम्) इति सूत्रे तदैक्षतेत्यादिश्रुतौ च ईश्वरस्येक्षापूर्वककर्तृत्वोक्तिः लोकवत्तु लीलाकैवल्यमितिसूत्रे " आप्तकामस्य का स्पृहा " इत्यादिश्रुतौ च प्रयोजनाभावेऽपि लीलया सृष्ट्याद्युक्तिः वैषम्यनैर्घृण्ये न सापेक्षत्वादितिसूत्रे पुण्येन पुण्यं लोकं नयतीत्यादिश्रुतौ च कर्मसापेक्षत्वेनावैषम्योक्तिः । तेजोऽतस्तथाह्याहेतिसूत्रे वायोरग्निरित्यादिश्रुतौ च तेज आदेर्वाय्वादिजन्यत्वोक्तिः विपर्ययेण क्रमोऽत उपपद्यते चेतिसूत्रे पृथिव्यप्सु प्रलीयते इत्यादिस्मृतौ च पृथिव्यादीनामबादौ लयोक्तिरीत्याद्ययुक्तं स्यात्, नहि कल्पिते तत्तद्विरोधशङ्का तन्निराकरणञ्च युक्तमितिचेन्न, प्रपञ्चस्य कल्पितस्यापि व्यावहारिकसत्त्वाभ्युपगमेन तद्दशायां विरोधशङ्कातत्परिहारयोरुचितत्वात् । इन्द्रजालादावप्यस्तेऽप्यैन्द्रजालिकादेरीक्षापूर्वकस्रष्टृत्वादेर्दर्शनाच्च ।

शङ्कते नन्विति । विश्व यदि कल्पित होगा तो "जन्माद्यस्य यतः" (वे० १।१।२) इस सूत्रमें और "यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते" (तै० ३।२) इत्यादिश्रुतिमें विश्वके जन्मादिकी उक्ति 'ईक्षतेर्नाशब्दम्' (वे० १।१।५) इस सूत्रमें और तदैक्षत (छां० ६।२।३)

इत्यादिश्रुतिओंमें ईश्वरके ईक्षणपूर्वक कर्तृत्वकी उक्ति 'लोकवत्तु लीलाकैवल्यम्' (वे० २।१।३३) इस सूत्रमें और आत्मकामस्य का स्पृहा (गरु० उप० १।९) इत्यादिश्रुतिओंमें प्रयोजनका अभाव होनेपरभी लीलासे सृष्टयादिकी उक्ति, "वैषम्यनैर्घृण्ये न सापेक्षत्वात्" (वे० २।१।३४) इस सूत्रमें और पुण्येन पुण्यं लोकं नयति (प्रश्न० ३।७) इत्यादिश्रुतिओंसे कर्मसापेक्षत्वेन अवैषम्यकी उक्ति, तेजोऽतस्तथाह्याह (वे० २।३।१०)। इस सूत्रमें और 'वायोरग्निः' (तै०३।१।१) इत्यादिश्रुतिओंमें तेज आदिको वाय्वादिसे जन्यत्वकी उक्ति, "विपर्ययेण क्रमोऽत उपपद्यते च" (वे० २।३।१४) इस सूत्रमें और पृथिव्यप्सु प्रलीयते (विष्णुपु०) इत्यादिस्मृतिओंमें पृथिव्यादिकोंके जलादिकोमें लयकी उक्ति, इत्यादिकथन अयुक्त हो जायगा, क्योंकि कल्पितमें तिस तिस विरोधकी शङ्का और उन शङ्काओंका निराकरण युक्त नहीं है इति चेन्न, क्यों ? कल्पित प्रपञ्चकेभी व्यावहारिकसत्त्वका अभ्युपगम होनेसे, व्यावहारिकदशामें विरोधकी शङ्का तथा शङ्काका परिहार इन दोनोंको उचित होनेसे, और अध्यस्त इन्द्रजालादिमेंभी ऐन्द्रजालिकनिष्ठ ईक्षणापूर्वक–स्रष्टृत्वादिके देखनेसेभी।

यथाच कल्पितस्यापि जन्माद्युपपत्तिस्तथाऽनिर्वचनीयवादे वक्ष्यते। स्वप्नेऽपि सृष्ट्यादेः श्रुत्याप्रतिपादनाच्च। अध्यस्तस्यापि सर्पस्य भयकम्पादिजनकत्ववत् वाय्वादीनां तेजआदिजनकत्वमप्युपपन्नम् "तदभिध्यानादेव तु तल्लिङ्गात् सः" इति सूत्रे च तत्तद्भावापन्नस्य ब्रह्मण एव कारणत्वाभिधानात्। अवादौ पृथिव्यादिलयोक्तिरपि तत्तद्भावापन्नचैतन्ये व्याख्येयेति नाधिष्ठानातिरिक्ते लयोक्तिः। वैषम्यनैर्घृण्यप्रयोजनादिशङ्कापरिहारादिकं तूपासनावस्थायाम् "भोक्त्रापत्तेरविभागश्चेत्स्याल्लोकवत्" इति आपाततः परिणामवादाभ्युपगमेन 'तदनन्यत्वमारम्भणशब्दादिभ्य इति तु विवर्तवादे परमसिद्धान्तदशायां न शङ्का न चोत्तरम्। मायाविन इवेश्वरस्य स्वप्रतिबिम्बभूतजीवभ्रमयितृत्वेन सर्वविरोधनिरासोपपत्तेः।

और जिस प्रकारसे कल्पितकेभी जन्मस्थित्यादिकी उपपत्ति है उस प्रकारसे अनिर्वचनीयवादमें कहा जायगा। और स्वप्नमेंभी सृष्टयादिका श्रुतिसे प्रतिपादन है, अतोऽपि कल्पितके जन्मादि बन सकते हैं और जैसे कल्पित सर्पकोभी भयकम्पादिजनकत्व है तैसे पवनादिकोभी वह्न्यादिके प्रति जनकत्व उपपन्न है तदभिधानात् (वे० २।३।१३ इत्यादिसूत्रमें पवनाद्यवच्छिन्न ब्रह्मकेही कारणत्वका अभिधान होनेसे और जलादिमें पृथिव्यादिके लयकी उक्तिभी जलाद्यवच्छिन्नचैतन्यमें व्याख्येय है अतः अधिष्ठानसे अतिरिक्तमें लयकी उक्ति नहीं है, और वैषम्यादिविषयक शङ्कादिक तो उपासनावस्थामें हैं। भोक्त्रापत्तेः (वे० २।१।१३) इत्यादिशङ्कासमाधान आपाततः परिणामवादके अभ्युपगमसे है "तदनन्यत्वम्" (वे० २।१।१४) इत्यादि विवर्तवादमें तो परमसिद्धान्तदशामें न शङ्का है न उत्तर है। मायावीकी तरह ईश्वरको स्वप्रतिबिम्बभूत जीवोंके प्रति भ्रमयितृत्व होनेसे सर्वविरोधोंके निरासकी उपपत्ति होनेसे।

ननु—ईश्वरस्यापि सपरिकरस्य जीवेनाध्यस्तत्वात् कथं भ्रमयितृत्वम्। न, अविद्योपहितचित एवानादेरीश्वरत्वेनान्तःकरणोपहितजीवकल्पितत्वायोगात्, जीवकल्पितत्वपक्षेऽपि तादृग्धर्मविशिष्टतयैव कल्पनेन तस्य भ्रमयितृत्वाद्युपपत्तेः "परिकल्पितोऽपि मरणाय भवेदुरगो यथा न तु नभो मलिनमिति न्यायात्।

शङ्कते नन्विति। सपरिकरस्य=सर्वज्ञत्वादिसहित ईश्वरकोभी जीवसे अध्यस्त होनेसे जीवके प्रति ईश्वरको भ्रमयितृत्व कैसे है न=यह कथन आपका ठीक नहीं है, क्यों? अविद्योपहित अनादिचित्कोही ईश्वरत्व होनेसे अन्तःकरणोपहित जीवसे कल्पितत्त्वका अयोग है, जीवकल्पितत्त्वपक्षमेंभी भ्रमयितृत्वादिधर्मविशिष्टत्वेनैव कल्पन होनेसे ईश्वरको भ्रमयितृत्वादिकी उपपत्तिसे, वक्ष्यमाण दृष्टिसृष्टिवादमें जीव अविद्यामात्रोपाधिक है और वही जगत्का उपादानभी है और भ्रमयितृत्वादिविशिष्ट ईश्वरभी जीवोपादानकही है। परिकल्पितभी सर्प महाभयोत्पादनद्वारा मरणका हेतु होता है परन्तु कल्पितपदार्थसे गगन मलिन नहीं होता है इस न्यायसे।

ननु—न जीवानां वाय्वादिभ्योऽग्न्याद्युत्पत्तिरिति भ्रमोऽस्ति। यतः स्वाप्नभ्रम इव श्रुतेरालम्बनं स्यात्। नच भ्रान्तिं विना कल्पितमस्ति। न चैतद्वाक्यजभ्रान्तिकल्पितमेव एतद्वाक्यालम्बनम्। वेदस्यभ्रमजनकत्वप्रसङ्गात्। [अनुवादेतु न दोषः]। नचेश्वर एव तत्कल्पकः। तस्य भ्रान्तत्वप्रसङ्गात्। तदभ्युपगमेऽपि न निस्तारःभ्रान्तेर्देहेन्द्रियादिकार्यत्वात् तेषाञ्च पृथिव्यादिकार्यत्वात् पृथिव्याद्युत्पत्तेः प्राक् भ्रान्त्ययोगात् इति चेन्न, भ्रान्तिमात्रे देहेन्द्रियाद्यपेक्षायाः प्रागेवनिरासात्। ईश्वराध्यस्तवाय्वादिहेतुकाग्न्याद्युत्पत्त्यालम्बनत्वेन वेदस्य भ्रमाजनकत्वात्। अध्यस्तस्य चाध्यस्तत्वेन स्फुरणाच्च मायाविन इव ईश्वरस्य भ्रान्तत्वप्रसङ्गः। न चाध्यस्तत्वे उत्पत्त्याद्यनुपपत्तिः। अनध्यस्तस्य क्वाप्युत्पत्त्याद्यदर्शनेनाध्यस्तत्वस्यैव तदुपपादकत्वात्। सत्कार्यवादासत्कार्यवादनिषेधेनानिर्वचनीयकार्यवादमात्रे कार्यकारणभावपर्यवसानात्। तदेवं कृत्स्नस्य प्रपञ्चस्याद्वये ब्रह्मणि कल्पनोपपत्तेर्न प्रतिकूलतर्कपराहतिः।

इत्यद्वैतसिद्धौ प्रतिकूलतर्कनिरूपणम्।

शङ्कते नन्विति। पवनादिसे अग्न्यादिकी उत्पत्ति है, यह भ्रम जीवोंका नहीं है जो कि स्वाप्नभ्रमवत् 'वायोरग्निः' इत्यादिश्रुतिओंका आलम्बन हो और भ्रान्तिके विना कल्पित नहीं होता है? एतद्वाक्यज='वायोरग्निः' इत्यादिवाक्यजन्य जो भ्रान्ति उस भ्रान्तिसे कल्पितही इस वाक्यका आलम्बन है नच=नहीं है, क्यों? वेदको भ्रमजनकत्वका प्रसङ्ग होनेसे, इसके बाद मूलमें 'अनुवादेतु न दोषः' यह पङ्क्ति है परन्तु इस पङ्क्तिका पूर्वपक्षके प्रवाहमें कोई सम्बन्ध नहीं, और न्यायामृत तथा उसकी टीकामें इसका नामभी नहीं, हाँ समाधान ग्रन्थकी टीका करतेहुए लघुचन्द्रिकाकारने एतत्पङ्क्तिप्रतिपाद्य अर्थका उल्लेख अनुवादपदघटित-

वाक्यसे किया है, इसलिए ऐसा माल्रूम होता है कि किसी महापुरुषने लघुचन्द्रिकाकारकी लम्ब- मानपङ्क्तिको, अष्टाक्षरोंमें संक्षिप्तकर अपने ग्रन्थमें टिप्पणीके रूपमें स्थान दिया, इसके बाद दूसरे सज्जन पुरुषने या प्रेसके भूतोंने मूलमेंही रख दिया, और रक्खाभी अयोग्यस्थानमें, कुम्भघोणीय तथा निर्णयसागरीय दोनों पुस्तकोंमें यह पङ्क्ति एकही स्थानमें आई है सो ठीकही है, प्रायः प्रेसवाले आँखें मूँदकरही अनुकरण किया करते हैं इसीलिए कुम्भघोणीय पुस्तकमें ननु-शब्दसे उत्तरमें नकारके रह जानेसे निर्णयसागरीय पुस्तकमेंभी उसके रखनेकी आवश्य- कता नहीं समझी गई । ईश्वरही तत्कल्पकः=पवनादिसे अग्न्यादिकी उत्पत्तिका कल्पक है नच=नहीं क्यों ? उसको भ्रान्तत्वका प्रसङ्ग होनेसे तदभ्युपगमेऽपि=ईश्वरमें भ्रान्तिके अङ्गीकार करनेपरभी निस्तार नहीं है, क्यों ? भ्रान्तिको देहेन्द्रियादिका कार्य होनेसे और तेषाम्=देहेन्द्रियादिको पृथिव्यादिका कार्यत्व होनेसे पृथिव्यादिकी उत्पत्तिसे पूर्व भ्रान्तिका अयोग होनेसे इतिचेन्न, क्योंकि भ्रान्तिमात्रमें देहेन्द्रियादिकी अपेक्षाका प्रथमही निरास होनेसे और ईश्वरसे अध्यस्त जो पवनादिहेतुक वह्न्यादिकी उत्पत्ति उस उत्पत्तिके आलम्बनसे वेदको भ्रमका जनकत्व नहीं है, वैसेही पूर्वपूर्वकल्पसिद्धजीवके भ्रमको अनुवादकरभी श्रुति अद्वैतका प्रतिपादन कर सकती है। और अध्यस्तका अध्यस्तत्वेनही स्फुरण होनेसे मायावीकी तरह ईश्वरको भ्रान्तत्वका प्रसङ्ग नहीं। अध्यस्त होनेपर उत्पत्त्यादिकी अनुपपत्ति है नच= नहीं है क्यों ! अनध्यस्तके कहींभी उत्पत्त्यादिके न देखनेसे, अध्यस्तत्वकोही उत्पत्त्यादिका उपपादकत्व होनेसे, सत्कार्यवाद तथा असत्कार्यवादके निषेधसे अनिर्वचनीयकार्यवादमात्रमें कार्यकारणभावके पर्यवसानसे। सो इस रीतिसे सर्व प्रपञ्चकी अद्वैतब्रह्ममें कल्पनाकी उपपत्तिसे प्रतिकूलतर्कसे अनुमानकी पराहति=कार्याक्षमता नहीं है।

इति सरलायां प्रतिकूलतर्कनिराकरणम्।

अथ मिथ्यात्वश्रुत्युपपत्तिः

एतदनुमानमेकमेवाद्वितीयमित्यादिश्रुतिरपि—अनुगृह्णाति। ननु, श्रुत्या स्वस्वरूप- स्वप्रामाण्यस्वयोग्यतादेर्मिथ्यात्वाबोधनेन प्रत्यक्षादिसिद्धतत्सत्त्वोपजीवनेन च ब्रह्मेतरस- कलमिथ्यात्वासिद्धिः। सन्निपातलक्षणो विधिरनिमित्तं तद्विघातस्येतिन्यायेन प्रत्यक्षादि- सिद्धघटादिमिथ्यात्वासिद्धिश्च। योग्यतादिमिथ्यात्वबोधने च श्रुत्यर्थस्याताात्त्विकत्वा- पत्तिः, शाब्दबोधस्य शब्दतत्प्रामाण्ययोग्यतादिना समसत्ताकत्वनियमात्, नच सदर्थ- स्वाप्नदेवतावाक्ये व्यभिचारः। आप्तत्वापौरुषेयत्वायोगेन तस्य शब्दत्वेन प्रामाण्यायो- गात्। किन्तूपश्रुतिवत्तादृशशब्दज्ञानं लिङ्गत्वेन प्रमाणम्। इति चेन्न, निर्दोषशब्दत्वेन तस्य शब्दविधयैव प्रामाण्यसंभवात्। आप्तत्वापौरुषेयत्वयोर्दोषाभावे एवोपक्षयात् व्याप्त्याद्युपस्थितिकल्पने गौरवात्। वक्तुः कल्पितत्वेऽपि तद्गतदोषस्यार्थसंवादेन कल्प- यितुम् अशक्यत्वाच्च।

अथ सरलायां मिथ्यात्वश्रुत्युपपत्तिः।

एतदनुमानम्=प्रपञ्चो मिथ्या दृश्यत्वात् शुक्तिरूप्यवत्। इस अनुमानको (एकमेवाद्वितीयम्) (छां०६।२।१) यह श्रुतिभी अनुगृहीत करती है। शङ्कते नन्विति। श्रुतिसे स्वस्वरूप, स्वप्रामाण्य, स्वयोग्यतादिके मिथ्यात्वका बोध न होनेसे=प्रत्यक्षसे सिद्ध जो स्वस्वरूपादि उन्होंके मिथ्यात्वका बोध न करनेसे और प्रत्यक्षसे सिद्ध जो तत्सत्त्व=श्रुतिके स्वस्वरूपादिका सत्त्व उसके उपजीवन=आश्रयण करनेसे ब्रह्मेतरनिखिलके मिथ्यात्वकी असिद्धि है=स्वस्वरूपादिका सत्त्व होनेसे ब्रह्मेतर निखिलके मिथ्यात्वकी असिद्धि है, सन्निपातलक्षणोविधिः=सन्निपातनाम सम्बन्धका है और लक्षण नाम है निमित्तका तथा च सम्बन्ध है निमित्त जिसका एवंभूत जो विधि वह विधि तद्विघातस्य=स्वनिमित्तभूत सन्निपातके विघातका, अनिमित्तम्=कारण नहीं है, फलतः जैसे शतानि सहस्राणि, इत्यादिमें शिके सन्निपातको निमित्तकर प्रवर्त्तमान नुम्-विधि नान्तत्वद्वारकपट्संज्ञाप्रयुक्तशिलोपसे, स्वनिमित्तभूत शिके सन्निपातके विघातका निमित्त नहीं होता है, तैसे मिथ्यात्वका धर्मी जो प्रपञ्च उसका ग्राहक जो प्रत्यक्ष उस प्रत्यक्षनिष्ठ प्रामाण्यके सम्बन्धको निमित्तकर प्रवर्तमान श्रुति प्रत्यक्षनिष्ठ-प्रामाण्यके सन्निपातके विघातका निमित्त नहीं हो सकती है=जिस पदार्थको आश्रयण कर जो पदार्थ प्रवृत्त होता है वह उसीके विघातमें निमित्त नहीं बनता है। प्रकृतमें स्वस्वरूपकी सिद्धिकेलिए तथा स्वप्रामाण्यके सिद्धिके लिए एवं स्वको अपेक्षित जो धर्मी तादृश धर्मिग्राहकत्वेन श्रुतिको प्रत्यक्षकी अपेक्षा है। अतः श्रुतिसे प्रत्यक्षका साक्षात् या विषयबाधद्वारा बाध नहीं होसकता है इसी अभिप्रायसे कहते हैं कि इति=इस न्यायसे प्रत्यक्षादिसे सिद्ध जो घटादि उनके मिथ्यात्वकी असिद्धि है। और श्रुतिको स्वकीय योग्यतादिके मिथ्यात्वका बोध करनेपर श्रुत्यर्थको अतात्त्विकत्वकी आपत्ति है। शाब्दबोधको शब्द और शब्दप्रामाण्य तथा शब्दयोग्यता इत्यादिके साथ समसत्ताकत्वका नियम होनेसे। सदर्थक जो स्वप्नकी देवताका वाक्य है उस वाक्यमें व्यभिचार है=नच=नहीं है क्यों? प्रामाण्यकारणी-भूत आप्तोक्तत्व तथा अपौरुषेयत्वका अभाव होनेसे तस्य=स्वप्नदेवतावाक्यके शब्दत्वेन प्रामाण्यका अयोग है, किन्तु उपश्रुतिवत् तादृशशाब्दज्ञान लिङ्गत्वेन प्रमाण है=शकुनके लिए किसीके घरमें तण्डुलोंको स्थापित कर छिपकर बैठा हुआ पुरुष उस गृहमें रहनेवाले पुरुषोंके गृहकृत्यादिमें प्रयुक्त शब्दोंको सुनता है और उन शब्दोंको सुनकर अपने अभिप्रेतार्थका अनुमान करलेता है सो यहाँपर उन गृहस्थ पुरुषोंद्वारा प्रयुक्त जो वाक्य हैं उनका नाम है-उपश्रुति, वह उपश्रुति शब्दत्वेन शकुनार्थी पुरुषके अभिप्रेतार्थमें प्रमाण नहीं है क्योंकि उसमें आप्तोच्चरितत्व नहीं है तत्परत्वभी नहीं है किन्तु अनुमापकत्वेन प्रामाण्य है तद्वत् स्वप्नदेवतावाक्यमेंभी समझना चाहिए, यह ब्रह्मवादविद्वेषीका तात्पर्य है इति चेन्न क्यों? निर्दोषशब्दत्वेन तस्य=उक्तस्वप्नदेवतावाक्यका शब्दत्वेन ही प्रामाण्यका संभव होनेसे=निर्दोष शब्द है अतः शब्दत्वेन ही प्रामाण्य मानना चाहिए लिङ्गत्वेन नहीं, आप्तोक्तत्व तथा अपौरुषेयत्व इन दोनोंका दोषाभावमें ही उपक्षय होनेसे। और व्याप्तिप्रभृतिकी उपस्थिति कल्पना

करनेमें गौरव है, और स्वाप्नवक्ताको कल्पित होनेपरभी तद्गतदोषस्य=वक्तृगतदोषको अर्थके सत्वादसे कल्पना करनेके लिए अशक्य होनेसेभी शब्दविधया ही स्वप्नदेवतावाक्यका प्रामाण्य मानना चाहिए

तथा च शब्दसमसत्ताकत्वस्य व्यभिचारात् योग्यतादिसमसत्ताकत्वनियमसिद्धेरप्रयोजकत्वाच्च, परोक्षत्वानित्यत्वाद्युपाधिसम्भवाच्च श्रुत्या योग्यतादिसकलमिथ्यात्वबोधनेऽपि तदर्थस्य न मिथ्यात्वम् मिथ्यात्वप्रयोजकरूपाभावात्। महाभाष्योक्तन्यायोदाहरणमपि न युक्तम्। विषयवैषम्यात्। तथाहि—शतानि सहस्राणीत्यत्र सर्वनामस्थानसंज्ञकशिसन्निपातेन विहितो नुम् ष्णान्तापडिति षट्संज्ञाद्वारा षड्भ्यो लुगिति शिस्वरूपसर्वनामस्थानस्य पञ्चेत्यादाविवलुङ्निमित्तं न भवति। तत्सन्निपातेनैव विहितत्वात्। तत्सद्भावनियमेनैव विहितत्वात् इत्यर्थः। अलुप्तस्यैव सर्वनामस्थानस्य नुम्निमित्तत्वात् न लुमताङ्गस्येति लुमतालुप्तेऽङ्गकार्यनिषेधात्। तथाच अलुप्तप्रत्ययत्वेन यत्र निमित्तता तत्र सन्निपातलक्षणन्यायावतारः। यत्र च प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणमिति न्यायेन लुप्तेऽपि प्रत्यये कार्यं भवति तत्रालुप्तत्वविशेषणनैरपेक्ष्येण प्रत्ययत्वमात्रेणैव निमित्तत्वात् न सन्निपातलक्षणन्यायावतारः। प्रत्ययसद्भावस्य तत्रानुपजीव्यत्वात्।

तथाच शब्दसमसत्ताकत्वके व्यभिचारसे=शब्दसमानसत्ताकही शब्दप्रतिपाद्य अर्थ होता है, इस नियमके व्यभिचारसे, और योग्यत्वसमसत्ताकत्वके नियमकी सिद्धिके अप्रयोजकत्वसे और परोक्षत्व अनित्यत्व=विनाशित्वादिरूप उपाधियोंके सम्भवसे=जो अर्थ परोक्ष तथा अनित्य हुआ करता है वही शब्दके समानसत्ताक होता है, अपरोक्ष और नित्य नहीं, श्रुत्या—श्रुतिसे योग्यतादिसकलके मिथ्यात्वका बोध होनेपरभी तदर्थस्य=श्रुतिके तात्त्विकतात्पर्यके विषयीभूत अर्थका बाध नहीं होता है मिथ्यात्वप्रयोजक जो रूप उस रूपका अभाव होनेसे, महाभाष्योक्तन्यायका उदाहरणभी प्रकृतमें युक्त नहीं है, विषयका वैषम्य होनेसे, तथाहि शतानि सहस्राणि यहाँपर सर्वनाम संज्ञक जो शि उस शिके सन्निपातसे विहितनुम्, ष्णान्तापद् इससे षट्संज्ञाद्वारा 'षड्भ्योलुक्' इससे होनेवाला जो शिस्वरूप सर्वस्थानका लुक् उसका निमित्त नहीं होता है, जैसे पञ्च इत्यादिमें लुक्का निमित्त होता है, नुम्को शिके सन्निपातसेही विहित होनेसे, शिके सद्भावका जो नियम है उस नियमसेही नुम्को विहित होनेसे। अलुप्त सर्वनामस्थानकोही नुम्निमित्तत्व है यतः 'नलुमताङ्गस्य' इस सूत्रसे लुमता शब्दसे लुप्त होनेपर अङ्गके कार्यका निषेध होनेसे। फलतः अलुप्तप्रत्ययत्वेन जहाँ निमित्तता होती है वहाँ सन्निपातलक्षण न्यायका अवतार होता है और जहाँपर प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम् इस न्यायसे प्रत्ययके लुप्त होनेपरभी कार्य होता है वहाँपर अलुप्तत्वविशेषणनिरपेक्षप्रत्ययत्वमात्रसेही निमित्तत्व होनेसे सन्निपातलक्षण न्यायका अवतार नहीं होता है, प्रत्ययके सद्भावको वहाँपर अनुपजीव्य होनेसे

एवं स्थिते यद्यमिथ्याभूतत्वेन प्रत्यक्षादेर्निमित्तता स्यात्, तदा प्रत्ययस्यालुप्तत्वेन निमित्ततायामिव भवेदेतन्न्यायावतारः। प्रत्यक्षादेस्तु स्वरूपेणैव निमित्तता, स्वप्नाद्यर्थस्याप्यर्थक्रियाकारित्वदर्शनेन प्रागेवोपपादिता। अतो यद् बाध्यते तात्त्विकत्वम् तन्नोपजीव्यम्। यच्चोपजीव्यमर्थक्रियासामर्थ्यलक्षणव्यावहारिकप्रामाण्यं तच्च न बाध्यत इति किं केन संगतम्, तदुक्तं टीकाकृद्भिः—उत्पादकाप्रतिद्वन्द्वित्वादिति, अत एव ज्योतिष्टोमादिविधेरुपजीव्याग्निविद्यावद्विषयत्वेनेव द्वैतनिषेधस्यापि स्वोपजीव्ययोग्यतादीतरविषयत्वेन सङ्कोचस्य वा सृष्ट्यादिश्रुतेरिव कल्पितविषयत्वस्य चोपपत्तौ न तात्त्विकसर्वमिथ्यात्वकल्पनं युक्तमिति अपास्तम्। दृष्टान्ते, अग्निविद्यादेरिवदार्ष्टान्तिके योग्यतादेस्तात्त्विकस्यानुपजीव्यत्वात् नहि योग्यता तात्त्विकयोग्यतात्वेन निमित्तम्। किन्तु योग्यतात्वेनैव।

ऐसी स्थिति होनेपर भी यदि अमिथ्याभूतत्वेन प्रत्यक्षादिको निमित्तता हो तब जैसे अलुप्तत्वेन प्रत्ययको निमित्तता होनेपर उक्तन्यायका अवतार होता है तैसे यहाँभी इस न्यायका अवतार हो परन्तु प्रत्यक्षादिको तो स्वकार्यके प्रति स्वरूपसेही निमित्तता स्वप्नादिके अर्थकोभी अर्थक्रियाकारित्वके दर्शनसे प्रथमही उपपादिता है, अतः श्रुतिसे प्रत्यक्षका जो तात्त्विकत्व बाधित होता है वह श्रुत्यादिका उपजीव्य नहीं, और जो अर्थक्रियामें सामर्थ्यलक्षणव्यावहारिक प्रामाण्य उपजीव्य है वह श्रुतिसे बाधित नहीं होता है=विचारकालमें इस रूपकेभी बाध होनेपरभी विचारसे पूर्व अबाध्यविषयकत्वरूप व्यावहारिक प्रामाण्यका बाध नहीं होता है। इति=इस रीतिसे, कौनरूप किसरूपके साथ सङ्गत है दोनों रूपोंको भिन्न भिन्नकालमें बाधित होनेसे या एकको स्वरूपसे विद्यमान होनेसे और एकको अन्यथाख्यातिसे या अनिर्वचनीय सम्बन्धसे भासमान होते हुए बाधित होनेसे किसी प्रकारकी अव्यवस्था या सङ्कर नहीं है। यह अर्थटीकाकारोंसे कहा गया है=भामतीमें प्रथम सूत्रकी प्रस्तावनमें वाचस्पतिमिश्रने कहा है उत्पादक=उपजीव्यका अविरोधित्व होनेसे जिस रूपसे उपजीव्यता है उस रूपसे बाध नहीं है अतएव=तात्त्विकत्वेन उपजीव्यत्वके न होनेसेही, ज्योतिष्टोमादिविधिका जैसे स्वोपजीव्य–अग्निविद्यावद्विषयत्वेन सङ्कोच है तैसे द्वैतनिषेधकोभी स्वोपजीव्य–योग्यतादिसे इतरविषयत्वेन सङ्कोचकी उपपत्ति होनेपर या सृष्टिश्रुतिवत् कल्पितविषयत्वकी उपपत्ति होनेपर तात्त्विक सर्वमिथ्यात्व कल्पन युक्त नहीं है=जैसे ज्योतिष्टोमेन यजेत स्वर्गकामः। इत्यादिविधियाँ सामान्यतः निरूप्यमाण हुईभी स्वोपजीव्य जो अग्नि और विद्या इन दोनोंवाला जो पुरुष है तद्विषयत्वेन सङ्कुचित होती हैं अर्थात् जिसने विधिवत् अग्न्याधान नहीं किया है और यागकी विधिको नहीं जानता है वह पुरुष कभीभी इन विधियोंका विषय नहीं है, किन्तु आहिताग्निविद्यावत् पुरुषही इन्होंका विषय होता है, तैसे द्वैतनिषेधकश्रुतियाँभी स्वोपजीव्य जो योग्यतादि तादृशयोग्यतादीतरविषयत्वेन सङ्कुचित क्यों न हों–स्वोपजीव्य योग्यतादिसे इतर मिथ्या है ऐसा बोध क्यों न करें। और जैसे आपके मतमें सृष्ट्यादिप्रतिपादक श्रुतियाँ कल्पित सृष्ट्यादिप्रतिपादकत्वेन

चरितार्था होती हैं, तैसे निषेधक श्रुतियाँभी कल्पितके निषेधसेही उपचरितार्था हों, ऐसा होनेसेही सर्व व्यवस्था उपपन्न हो सकती है, फिर तात्त्विक जो सर्वसमानाधिकरणात्यन्ताभाव, तादृश–अत्यन्ताभावप्रतियोगित्वरूप जो मिथ्यात्व तादृशमिथ्यात्वपरत्वका कल्पन युक्त नहीं है इति=यह अपास्तम्=खण्डित हुआ, अतएव शब्दके अर्थकोही दृढ़ करते हैं दृष्टान्त इति। दृष्टान्तमें अग्निविद्याकी तरह तार्ष्टान्तिकमें तात्त्विकत्वविशिष्टयोग्यतादिनिष्ठ उपजीव्यत्वका अभाव होनेसे=योग्यतादिनिष्ठ उपजीव्यतावच्छेदक तात्त्विकत्व नहीं है। योग्यता तात्त्विकयोग्यतात्वेन निमित्त नहीं है, किन्तु योग्यतात्वेनही है।

सकलद्वैताभावस्याधिकरणस्वरूपत्वेन तदधिकरणस्य च ब्रह्मणः "सत्यंज्ञानमनन्तं ब्रह्म" "तत् सत्यं स आत्मा" (छां०६।८।७) इत्यादिश्रुत्या सत्यत्वप्रतिपादनात् न सृष्ट्यादिश्रुतेरिव कल्पितविषयत्वोपपत्तिः। तस्माद् योग्यतादेर्मिथ्यात्वेऽपि वेदान्तबोध्यं सत्यमेवेति स्थितम्। यथाचाविद्यातत्कार्यस्य स्वरूपतो निषेधेऽपि तुच्छवैलक्षण्यम् पारमार्थिकत्वाकारेण निषेधेऽपि परमार्थिकधर्मशून्यस्यापि ब्रह्मणःस्वरूपेण सत्त्वम् तथोपपादितमधस्तात्।

सकलद्वैतके अभावको अधिकरणका स्वरूप होनेसे, और तदधिकरणीभूत ब्रह्मके (सत्यंज्ञानमनन्तंब्रह्म) (तै०२।१।१) इत्यादि श्रुतिओंसे सत्यत्वके प्रतिपादनसे सृष्ट्यादिश्रुतिवत् कल्पितविषयत्वकी उपपत्ति नहीं है,यतः किसीभी प्रकारकी अव्यवस्था नहीं है, ततः योग्यतादिको मिथ्यात्व होनेपरभी वेदान्तवाक्योंसे बोध्य सत्यही है यह निश्चित हुआ। और जैसे अविद्या तथा अविद्याके कार्यका स्वरूपसे निषेध होनेपरभी तुच्छसे वैलक्षण्य है और पारमार्थिकत्वाकारसे निषेधहोनेपर पारमार्थिकत्व धर्मसे शून्यभी ब्रह्मका स्वरूपसे सत्त्व है, तैसे उपपादित हो चुका है अधस्तात्=प्रथममिथ्यात्वविचारमें।

ननु—तत्त्वमस्यादिवाक्येन प्रत्यक्षाद्यविरोधाय तत्त्वंपदलक्षितयोरैक्यमिव मिथ्यात्वश्रुत्यापि तदविरोधाय प्रत्यक्षादिसिद्धादन्यस्यैव मिथ्यात्वम् बोध्यम्। अन्यथा प्रत्यक्षाद्यनुग्रहाय व्यावहारिकमपि सत्त्वं न कल्प्येत। नेहनानेत्यादिनिषेधेनात्यन्तासत्त्वबोधनात्। इति चेन्न। विशिष्टयोरैक्ये विशेषणयोरप्यैक्यापातेन सर्वत्र विशिष्टाभेदपरवाक्यस्य लक्षितविशेष्यैक्यपरत्वनियमेन तत्त्वमसीत्यत्रापि तथाभ्युपगमात्। तदुक्तम्—अविरुद्धविशेषणद्वयप्रभवत्वेऽपि विशिष्टयोर्द्वयोः। घटते न यदैकता तदा नतरां तद्विपरीतयोः। इति।

शङ्कते नन्विति। जैसे प्रत्यक्षादि प्रमाणोंकेसाथ अविरोधके लिए तत्त्वं पदसे लक्षित जो दो अर्थ हैं उन दो अर्थोंका ऐक्य तत्त्वमस्यादिवाक्योंसे बोध्य है, तैसे मिथ्यात्वश्रुतिसेभी तदविरोधाय=प्रत्यक्षादिके साथ अविरोधकेलिए प्रत्यक्षादिसे सिद्ध जो द्वैत है उस द्वैतसे अन्यका ही मिथ्यात्व बोध्य है, अन्यथा प्रत्यक्षादिके साथ अनुग्रहके लिए व्यावहारिकसत्त्वभी आपसे नहीं कल्पित होगा, (नेहनाना) (बृ०४।४।१९) इत्यादिनिषेधसे अत्यन्त असत्त्वके बोधनसे, इति

चेन्न, क्यों? दो विशिष्टोंका ऐक्य होनेपर विशेषणोंकेभी ऐक्यके आपातसे सर्वत्र विशिष्टाभेदपर वाक्यको लक्षित जो विशेष्य तादृशविशेष्यैक्यपरत्वके नियमसे तत्त्वमस्यादिवाक्योंमेंभी तथा अभ्युपगम है। कहाभी है–विरुद्धविशेषणद्वय होनेपरभी जब विशिष्टोंकी एकता संघटित नहीं होती है। तब विपरीतरूपवाले विशिष्टोंकी एकता तो अच्छी रीतिसे नहीं बन सकती है

मिथ्यात्वबोधकश्रुतौ च नास्ति प्रत्यक्षादिविरोधः, तात्त्विकत्वांशस्यानुपजीव्यत्वात्। व्यावहारिकसत्त्वस्य चोपजीव्यत्वान्नात्यन्तासत्त्वकल्पनमित्यस्याप्युक्तप्रायत्वात्। ननु–श्रुतेस्तात्पर्यं चैतन्यमात्रे वा द्वितीयाभावविशिष्टे वा तदुपलक्षिते वा। नाद्यः। विश्वमिथ्यात्वासिद्धेरिष्टापत्तेः। तस्य स्वप्रकाशतया नित्यसिद्धत्वेन श्रुतिवैयर्थ्याच्च। नद्वितीयः। अखण्डार्थत्वहानात्। अत एव न तृतीयः। काकवदितिवत् द्वितीयाभाववदित्यनेनापि, सप्रकारकज्ञानजननेनाखण्डार्थत्वायोगात् चिन्मात्रस्य नित्यसिद्धत्वेन तदन्यस्य च मुमुक्ष्वज्ञेयत्वेन काकेन संस्थानविशेषस्येव द्वितीयाभावेनोपलक्ष्यस्यान्यस्याभावात् तस्योपलक्षणत्वायोगाच्च इति चेन्न, काकस्य संस्थानविशेषइव द्वितीयाभावस्य स्वरूपमेवोपलक्ष्यम्। इत्युपलक्ष्याभावनिबन्धनोपलक्षणत्वानुपपत्तेरभावात्। उपलक्षणत्वे हि उपलक्ष्यसत्त्वमात्रं तन्त्रम्। न तु तस्य स्वरूपातिरिक्तत्वमपि गौरवात् उपलक्ष्यतावच्छेदकरूपाभावे अपि स्वतो व्यावृत्तजातिवदुपलक्ष्यत्वसम्भवात्।

मिथ्यात्वबोधक श्रुतिमें तो प्रत्यक्षादिका विरोध नहीं है तात्त्विक अंशसे अनुपजीव्यत्व होनेसे, और व्यावहारिकसत्त्वको उपजीव्यत्व होनेसे अत्यन्त असत्त्वका कल्पन नहीं है इसको उक्तप्राय होनेसे। शङ्कते नन्विति। श्रुतिका तात्पर्य चैतन्यमात्रमें है या द्वितीयाभावविशिष्टमें, अथवा द्वितीयाभावसे उपलक्षितमें, नाद्यः=प्रथमपक्ष निर्दोष नहीं होसकता है, क्यों? विश्वके मिथ्यात्वकी असिद्धिसे अतएव हमको इष्टापत्ति है। तस्य=चैतन्यको स्वप्रकाशत्व होनेसे नित्यसिद्धत्व है अतः श्रुतिका वैयर्थ्य है और श्रुतिके वैयर्थ्यका प्रयोजक होनेसे प्रथमपक्ष नहीं बन सकता है, नद्वितीयः=द्वितीयपक्षभी समीचीन नहीं, क्यों? अखण्डार्थत्वकी हानिसे=विशिष्टबोधकत्व होनेसे अखण्डार्थबोधकत्व न बनेगा। अतएव=अखण्डार्थत्वकी हानि होनेसे ही तृतीयपक्षभी समीचीन नहीं, काकवत् इति=यह जैसे सप्रकारकज्ञानको उत्पन्न करता है तैसे 'द्वितीयाभाववत्' इससेभी सप्रकारक ज्ञानके उत्पादनसे अखण्डार्थत्वका अयोग होनेसे और चिन्मात्रको नित्यसिद्ध होनेसे तदन्यस्यच=चिन्मात्रसे अन्यको मुमुक्षुसे अज्ञेय होनेसे जैसे काकसे संस्थान विशेष उपलक्ष्य होता है तैसे द्वितीयाभावसे अन्य उपलक्ष्यका अभाव होनेसे तस्य=द्वितीयाभावको उपलक्षणत्वके अयोगसेभी यह पक्ष समीचीन नहीं, इति चेन्न=क्यों? काकके उपलक्ष्यसंस्थानविशेषकी नाई द्वितीयाभावका स्वरूपही उपलक्ष्य है, इस रीतिसे उपलक्ष्याभावप्रयुक्त उपलक्षणत्वानुपपत्तिका अभाव है, अतः कोई अनुपपत्ति नहीं। उपलक्षणत्वमें उपलक्ष्यका सत्त्वमात्र तन्त्र है, गौरव होनेसे,–स्वरूपका अतिरिक्तत्वभी नहीं। और उपल-

क्ष्यतावच्छेदक धर्मका अभाव होनेपरभी स्वरूपतः व्यावृत्तजातिवत् उपलक्ष्यत्वका सम्भव है।

अतएव न सप्रकारकत्वापत्तिः। काकवदित्यत्राप्युपलक्षणस्याप्रकारत्वात्। किन्तु स्वरूपातिरिक्तधर्मस्य तत्रोपलक्षणत्वेन सप्रकारत्वम्। इह तु तन्नेतिवैपम्यम्। न चोपलक्षणवैयर्थ्यम्, अनर्थनिवृत्तिहेतुत्वेन द्वितीयाभावद्वारकस्वरूपज्ञानस्योद्देश्यत्वात् तस्य प्रागसिद्धत्वात् नच मिथ्यात्वसिद्धेरिष्टापत्तिः। अवान्तरतात्पर्यस्य तत्रापि सत्त्वात् तद्द्वारैव स्वरूपचैतन्ये महातात्पर्यात्। अत एव—श्रुतिवोध्यस्य विशेषणस्योपलक्षणस्य वा द्वितीयाभावस्य सत्त्वे अद्वैतहानिः। असत्त्वे चादण्डे दण्डीतिवाक्यवत् काकहीने काकवदितिवाक्यवच्चाद्वैतवाक्यस्यातत्त्वावेदकत्त्वापत्तिरितिनिरस्तम्। आद्ये द्वितीयाभावसत्त्वेन द्वितीयाभावासिद्ध्यापादानस्यानुचितत्वात् अभावस्य अधिकरणातिरेकानभ्युपगमाच्च। द्वितीये तु सृष्ट्यादिवाक्यवत् उपलक्ष्यस्वरूपसत्यत्वमादाय तत्त्वावेदकत्वात्, मुख्यतात्पर्ये विषयस्यासत्यतायामेवातत्त्वावेदकत्वाभ्युपगमात्। अत एव महातात्पर्याभिप्रायेण चैतन्यमात्रे तात्पर्यमित्याद्यपक्षेऽपि न दोषः, अवान्तरतात्पर्येण मिथ्यात्वसिद्धेरपि स्वीकारेणेष्टापत्तेरप्यसंभवात्।

अतएव=स्वरूपतः व्यावृत्त उपलक्ष्यत्वका सम्भव होनेसेही सप्रकारकत्वकी आपत्ति नहीं=द्वितीयाभावबोधकश्रुतिजन्यज्ञानमें सप्रकारकत्वकी आपत्ति नहीं, 'काकवत्' इत्याकारक प्रयोग—स्थलमेंभी उक्तवाक्यजन्यबोधमें उपलक्षणका अप्रकारत्व होनेसे, किन्तु स्वरूपसे अतिरिक्त उत्तृणत्वादि धर्मको उक्तस्थलमें उपलक्षणत्व होनेसे सप्रकारत्व है और इह=द्वितीयाभावबोधस्थलमें तो स्वरूपातिरिक्त धर्म नहीं है यह वैपम्य है; उपलक्षणका वैयर्थ्य है नच=वैयर्थ्य नहीं है, क्यों? अनर्थनिवृत्तिहेतुत्वेन द्वितीयाभावद्वारक स्वरूपज्ञानकोही उद्देश्यत्व होनेसे एवम्भूत स्वरूपज्ञानको उपलक्षणसे पूर्वमें असिद्ध होनेसे, तब तो मिथ्यात्वकी सिद्धि न होनेसे इष्टापत्ति है नच=इष्टापत्ति नहीं हो सकती है क्यों? अवान्तरतात्पर्यको तत्रापि=मिथ्यात्वमेंभी विद्यमान होनेसे=परमतात्पर्यका विषय स्वरूपज्ञान है और अवान्तर तात्पर्यका विषय मिथ्यात्वभी है अतः आपके इष्टकी सिद्धि नहीं। तद्द्वारैव=मिथ्यात्वद्वाराही स्वरूपभूतचैतन्यमें महातात्पर्य होनेसे अतएव वक्ष्यमाण हेतुसे श्रुतिसे बोध्य जो विशेषणरूप या उपलक्षणरूप द्वितीयाभाव उस द्वितीयाभावका सत्त्व होनेपर अद्वैतकी हानि है, और असत्त्व होनेपर दण्डसे रहितमें दण्डी इस वाक्यकी नाई और काकसेहीनमें 'काकवत्' इस वाक्यकी नाई अद्वैतवाक्यको अतत्त्वावेदकत्वकी आपत्ति है, यह कथन निरस्त हुआ, अतएव शब्दके अर्थको स्पष्ट करते हैं। आद्य इति। आद्ये=विशेषणपक्षमें द्वितीयाभावको विद्यमान होनेसे द्वितीयाभावकी असिद्धिके आपादनको अनुचित होनेसे अभावका अधिकरणसे अनतिरेक अभ्युपगत होनेसे। द्वितीये=उपलक्षण पक्षमें सृष्ट्यादिवाक्यवत् उपलक्ष्यस्वरूपके सत्यत्वको लेके तत्त्वावेदकत्व होनेसे=जैसे सृष्ट्यादिप्रतिपादक वाक्योंको शुद्धचैतन्यतात्पर्यकत्वेन तत्त्वावेदकत्व है तद्वत्। मुख्यतात्पर्यके विषयकी

असत्यता होनेपरही अतत्त्वावेदकत्वका अभ्युपगम होनेसे, अतएव=तत्त्वावेदकत्वके सिद्ध होने सेही महातात्पर्याभिप्रायसे चैतन्यमात्रमें तात्पर्य है इस आद्यपक्षमेंभी दोष नहीं है, अवान्तर तात्पर्यसे मिथ्यात्वकी सिद्धिकेभी स्वीकारसे इष्टापत्तिकाभी असम्भव होनेसे।

ननु—द्वितीयाभावे महातात्पर्याभावः किं प्रमाणान्तरप्राप्त्या यथा वायुक्षेपिष्ठत्वादौ, उत तद्विरोधित्वेन, यथात्मवपोत्खननादौ। उतोद्देश्यविशेषणत्वादिना यथाग्रहैकत्वादौ नाद्यः त्वयैव द्वितीयाभावस्य प्रमाणान्तरप्राप्त्यनभ्युपगमात्। द्वितीयेऽपिविरोधिमानं न तावत् प्रत्यक्षादि द्वैतग्राहि त्वन्मते तस्यैव श्रुतिबाध्यत्वात्। नाद्वैतवाक्यान्तरम्। तस्यात्ममात्रपरत्वे द्वितीयाभावाविरोधित्वात्। नहि विशेष्यविषयं "अग्निहोत्रं जुहो" तीतिवाक्यम् विशिष्टविषयेण "दध्नाजुहोति" इति वाक्येन विरुध्यते द्वैताभावपरत्वेत्वेकविषयत्वेन सुतरामविरोधात्।

शङ्कते नन्विति। द्वितीयाभावमें महातात्पर्यका अभाव है सो क्या प्रमाणन्तरकी प्राप्तिसे अर्थात् द्वितीयाभाव श्रुतिभिन्न प्रमाणान्तरसे प्राप्त है इसलिए श्रुतिका उसमें परमतात्पर्य नहीं है, जैसे वायुनिष्ठक्षेपिष्ठत्वादिको प्रमाणान्तरसे प्राप्त होनेसे वायुके क्षेपिष्ठत्वादिको कहनेवाली श्रुतिका उसमें महातात्पर्य नहीं है। उत=अथवा तद्विरोधित्वेन=प्रमाणान्तरविरोधित्वेन द्वितीयाभावमें महातात्पर्य नही है, जैसे "सप्रजापतिरात्मनोवपामुदखिदत्" इस वाक्यका प्रमाणान्तरके साथ विरोध होनेसे यथाश्रुतार्थमें महातात्पर्य नहीं है, उत=या विशेष्यमें विशेषणत्वेन द्वितीयाभावमें महातात्पर्यका अभाव है, जैसे ग्रहनिष्ठ एकत्वादिमें श्रुतिका परमतात्पर्य नहीं होता है='दशापवित्रेण ग्रहं सम्मार्ष्टि' यहाँपर यज्ञपात्ररूपग्रहोंको उद्देश्यकर सम्मार्जन विधेय है और एकवचनप्राप्त एकत्वसंख्या उद्देश्यविशेषणत्वेन अविवक्षित है यह पूर्वमीमांसाके तृतीय अध्यायके प्रथमपादमें निर्णय किया है वैसेही 'नेहनानास्तिकिञ्चन' इत्यादि द्वैतनिषेधक श्रुतिओंका द्वैताभावको ब्रह्ममें विशेषण होनेसे द्वैताभावमें परमतात्पर्य नहीं है, नाद्यः=प्रथमपक्ष नहीं माना जा सकता है क्यों? तुमसेही द्वितीयाभावकी प्रमाणान्तरसे प्राप्तिका अनभ्युपगम होनेसे=द्वितीयाभावकी प्राप्ति श्रुतिसे अतिरिक्त प्रमाणान्तरसे आप नहीं मानते हैं अतः प्रमाणान्तरसे प्राप्ति नहीं कही जा सकती है, द्वितीयपक्षमें भी द्वैतग्राहि प्रत्यक्षादिप्रमाण विरोधिप्रमाण नहीं हो सकते हैं तुम्हारे मतमें प्रत्यक्षादिकोही श्रुतिसे बाध्य होनेसे अद्वैतप्रतिपादक वाक्यान्तरभी विरोधी प्रमाण नहीं कहा जा सकता है, उसको आत्ममात्रपरत्व होनेपर द्वितीयाभावके प्रति अविरोधित्व है क्योंकि विशेष्यविषयक 'अग्निहोत्रं जुहोति' यह वाक्य विशिष्टविषयक 'दध्ना जुहोति' इस वाक्यके साथ विरुद्ध नहीं होता, द्वैताभावपरत्वेतु=अद्वैतवाक्यान्तरको द्वैताभावपरत्वहोनेपर तो एकविषयत्व होनेसे सुतराम् अविरोध है अतः द्वितीयपक्ष ठीक नहीं।

नापि तृतीयः ग्रहं सम्मार्ष्टीत्यत्र सम्मार्जनस्येवाखण्डार्थपरे वाक्ये विधेयान्तरस्य

अभावेन वेशेष्यस्य शास्त्रगम्यस्य चिन्मात्रस्याप्राप्तत्वेनोद्देश्यत्वायोगाच्च, द्वितीयाभावस्य उद्देश्यविशेषणत्वानुपपत्तेः । अविवक्षाहेतोरनुवाद्यत्वस्याप्यभावाच्चेति चेन्न, स्वयमेव स्वबोधितमपि द्वितीयाभावं द्वितीयत्वादेव निषेधतीति स्वविरोधादेव श्रुतेस्तत्रातात्पर्यात् मानविरोधित्वमात्रस्य तात्पर्याभावे प्रयोजकत्वात् स्वविरोधेऽपि न क्षतिः ।

तृतीयपक्षभी समीचीन नहीं क्यों ? 'ग्रहं सम्मार्ष्टि' यहाँपर जैसे एकत्वसे अतिरिक्त सम्मार्जन विधेय है तैसे अखण्डार्थपर वाक्यमें द्वितीयाभावसे अतिरिक्त और कोई विधेय नहीं है अतः, और शास्त्रगम्य चिन्मात्ररूप विशेष्यको प्रमाणान्तरसे अप्राप्त होनेसे उद्देश्यके अयोगसेभी द्वितीयाभावको उद्देश्यविशेषणत्वकी अनुपपत्तिसे और अविवक्षाका हेतुभूत जो अनुवाद्यत्व उसकाभी अभाव होनेसे इति चेन्न; क्यों ? स्वयमेव श्रुति स्वसे बोधितभी द्वितीयाभावको द्वितीयत्व होनेसेही निषेध करती है । स्वके साथ विरोध होनेसेही तत्र=द्वितीयाभावमें श्रुतिका तात्पर्य न होनेसे मानविरोधित्वमात्रकोही तात्पर्याभावमें प्रयोजकत्व होनेसे स्वका विरोध होनेपरभी हानि नहीं—मान विरोधकी हानि नहीं ।

ननु—एकेनैव प्रमाणेनैकस्य प्राप्तिनिषेधावनुपपन्नौ । न रूपभेदेनाविरोधात् द्वितीयाभावस्वरूपं हि शास्त्रेण प्राप्यते । तस्य च प्राप्यतावच्छेदकरूपं द्वितीयाभावत्वम् तच्च न निषेध्यतावच्छेदकम् । किन्तु द्वितीयत्वमेव निषेध्यमात्रानुगतम् । तत्र तदनभ्युपगमे तु न तस्य निषेध्यत्वम् । न वा तेन आत्मनः सद्वितीयत्वापत्तिरिति न कोऽपि दोषः । यत्र तु प्राप्यतावच्छेदकमेव निषेध्यतावच्छेदकं तत्र प्राप्तिनिषेधशास्त्रयोरतुल्यविषयत्वेऽपि विशेषशास्त्रविषयपरित्यागेन सामान्यशास्त्रप्रवृत्तिः । तुल्यविषयत्वे तु अगत्या विकल्प इति न निषेधस्यासङ्कोचेन प्रवृत्तिः । यथा न हिंस्यात्सर्वाभूतानीति निषेधशास्त्रस्याग्नीषोमीयं पशुमालभेतेत्यादिप्राप्तिशास्त्रविषयेतरविषयत्वम् 'अतिरात्रे षोडशिनं गृह्णाति' नातिरात्रे षोडशिनं गृह्णातीत्यादिप्राप्तिनिषेधशास्त्रयोस्तु विकल्पेन एक विषयत्वम् एकस्यैव हिंसात्वस्य षोडशिग्रहत्वस्य च प्राप्तिनिषेधयोरवच्छेदकत्वात् । तत्र निषेधशास्त्रस्यासंकुचद्वृत्तित्वे प्राप्तिशास्त्रस्य सर्वात्मना वैयर्थ्यापत्तिः ।

एकस्य=एक पदार्थके एकही प्रमाणसे प्राप्ति तथा निषेध अनुपपन्न है, न=अनुपपन्न नहीं हैं क्यों ? रूपभेदसे दोनोंका अविरोध होनेसे, इसी अर्थको स्पष्ट करते हैं द्वितीयेति । द्वितीयाभावका स्वरूप शास्त्रसे प्राप्त होता है और उसकी प्राप्यताका अवच्छेदकरूप द्वितीयाभावत्व है, तच्च=यह द्वितीयाभावत्व निषेध्यताका अवच्छेदक नहीं है, किन्तु निषेध्यमात्रमें अनुगत द्वितीयत्वही निषेध्यतावच्छेदक है, तत्र=द्वितीयाभावमें तदनभ्युपगमे=द्वितीयत्वका अनभ्युपगम होनेपर तस्य=द्वितीयाभावत्वको निषेध्यत्व नहीं है, और उस द्वितीयाभावसे आत्मनिष्ठ सद्वितीयत्वकी आपत्तिभी नहीं अतः कोई दोष नहीं । और जिस स्थलमें प्राप्यतावच्छेदक

ही निपेध्यतावच्छेदक है, तहाँ प्राप्तिनिपेधशास्त्रोंको, अतुल्यविषयत्व होनेपर विशेषशास्त्रके विषयका परित्यागकर सामान्यशास्त्रकी प्रवृत्ति होती है, तुल्यविषयत्व होनेपर अगत्या विकल्प होता है अतः निपेधकी ऐसे स्थलोंमें असङ्कोचसे प्रवृत्ति नहीं होती है किन्तु सङ्कोचसे प्रवृत्ति होती है। जैसे (न हिंस्यात् सर्वाभूतानि) इस निपेधशास्त्रको "अग्नीपोमीयं पशुमालभेत" इस प्राप्तिशास्त्रके विषयसे इतरविषयविषयत्व है, अतिरात्रे पोडशिनं गृह्णाति, नातिरात्रे पोडशिनं गृह्णाति, इत्यादि जो प्राप्तिशास्त्र तथा निपेधशास्त्र हैं इन दोनोंका विकल्पसे एकविषयत्व है, एक जो हिंसात्व और एक जो पोडशिग्रहत्व उसकोही प्राप्ति तथा निपेध इन दोनोंका अवच्छेदकत्व होनेसे तहाँपर निपेधशास्त्रको असङ्कुचित्–वृत्तित्व होनेपर प्राप्तिशास्त्रके सर्वात्मना वैयर्थ्यकी आपत्ति है।

प्रकृते च द्वितीयत्वेन रूपेण निषेधस्यैव शास्त्रार्थत्वात् न कस्यापि वैयर्थ्यशङ्का अत एव द्वितीयाभावनिषेधे पुनर्द्वितीयोन्मज्जनापत्तिः इति निरस्तम् । उपपादितमेतत् मिथ्यात्वमिथ्यात्वसाधने। यथा प्रतियोग्यभावयोर्निषेध्यतावच्छेदकैक्ये नैकनिषेधेऽपरसत्त्वापत्तिरिति। नच स्वेनैव निषिद्धस्य द्वितीयाभावस्य द्वितीयस्येव विशेषणत्वेनोपलक्षणत्वेन वा पुनरुपादानं न युक्तमितिवाच्यम् । अभावबुद्धौ निषिद्धस्यापि प्रतियोगिनः सा शुक्तिरित्यत्र प्रसिद्धस्यापि, पूर्वप्रतीतरजतस्योपलक्षणतयोपादानदर्शनात्। असङ्कीर्णज्ञानप्रयोजकत्वस्य प्रकृतेऽपि तुल्यत्वात् । तस्मादेकमेवाद्वितीयमित्यादिश्रुतिर्विश्वमिथ्यात्वे प्रमाणमितिसिद्धम्।

इत्यद्वैतसिद्धौ सामान्येन मिथ्यात्वश्रुत्युपपत्तिः।

प्रकृतमें तो द्वितीयरूपसे निपेधकोही शास्त्रार्थत्व होनेसे किसीकेभी वैयर्थ्यकी शङ्का नहीं है, अतएव=एकमेवाद्वितीयम् इस वाक्यको सर्वद्वैतनिपेधमात्रतात्पर्यक होनेसेही द्वितीयाभावका निपेध होनेपर पुनः द्वितीयके उन्मज्जनकी आपत्ति है यह कथन निरस्त हुआ। प्रतियोगि तथा अभाव इन दोनोंमें निपेध्यतावच्छेदकका ऐक्य होनेपर एकका निपेध होनेपर अपरके सत्त्वकी यथा=जैसे आपत्ति नहीं है तथा=वैसे एतत्=यह अर्थ मिथ्यात्वके मिथ्यात्वसाधनमें उपपादित है=द्वितीयाभावो ब्रह्मणि नास्ति, इत्याकारक निपेधका पर्यवसान होनेपर द्वितीयके उन्मज्जनकी आपत्ति होसकती है, परन्तु द्वितीयाभाव और द्वितीय कुछभी ब्रह्ममें नहीं है इत्याकारक पर्यवसान होनेपर सुन्दोपसुन्दन्यायसे दोनोंके निपेधसे दोमेंसे किसीभी एकके उन्मज्जनकी आपत्ति नहीं है यह तात्पर्य है। शङ्कते नचेति। स्वसेही निपिद्ध द्वितीयाभावका द्वितीयकी तरह विशेषणरूपसे या उपलक्षणरूपसे पुनः उपादान अयुक्त है निपेधकी वैयर्थ्यापत्तिसे तैसे निपिद्ध द्वितीयाभावकाभी उपलक्षणत्वेन पुनः उपादान व्यर्थ होनेसे अयुक्त है इति नच वाच्यम् क्यों ? अभावबुद्धौ='नात्ररजतम्' इत्याकारिका जो अभाव बुद्धि है उस अभाव बुद्धिमें प्रतिपिद्ध जो रजतरूप प्रतियोगी है, उस प्रतियोगीका 'सा शुक्तिः' यहाँपर

उपलक्षणविधया उपादान देखनेसे प्रसिद्ध=भ्रमसिद्ध और पूर्वप्रतीत ये दोनोंभी प्रतियोगीके विशेषण हैं, अर्थात् प्रसिद्ध=भ्रमसिद्ध पूर्वप्रतीत तथा निषिद्ध जो रजतरूप प्रतियोगी है उस प्रतियोगीकाभी 'सा शुक्तिः' इत्याकारक ज्ञानमें उपलक्षणविधया उपादान देखा जाता है, और असङ्कीर्णज्ञान=व्यावृत्ताकारज्ञानका प्रयोजकत्व तो प्रकृतमेंभी समान है तस्मात् 'एकमेवाद्वितीयम्' (छां० ६।२।१) इत्यादिश्रुतियाँ विश्वके मिथ्यात्वमें प्रमाण हैं यह सिद्ध हुआ।

इति सरलायां सामान्येन मिथ्यात्वश्रुत्युपपत्तिः।

अथ अद्वैतश्रुतेर्बाधोद्धारः

ननु—आपातप्रतिपन्न एव न तावच्छ्रुत्यर्थः, कश्छन्दसां योगमावेद धीर इति श्रुत्या " बिभेत्यल्पश्रुताद्वेद " इति स्मृत्या च वेदार्थस्यातिगहनतोक्तेः मीमांसावैयर्थ्यप्रसङ्गाच्च। किन्तु मानान्तरेण पूर्वोत्तरेण चाविरुद्ध एवार्थः अविरोधग्रहणार्थं च मीमांसासाफल्यम्। अत एव आज्यैः स्तुवते आकाशादेव समुत्पद्यन्ते इत्यादावापातप्रतीतघृतगगनादिपरित्यागेन आज्याकाशादिपदानां सामपरमात्माद्यर्थत्वं स्थापितं पूर्वोत्तरमीमांसयोश्चित्राकाशाद्यधिकरणेषु। अन्यथा तत्तत्पूर्वपक्षाभ्युपगमापत्तेः तथाचोक्तं वार्तिककारैः शाब्दं शब्दविज्ञानादसन्निकृष्टेऽर्थे विज्ञानमित्यत्र—असन्निकृष्टवाचा च द्वयमत्र जिहासितम् ताद्रूप्येण परिच्छेदस्तद्विपर्ययतोऽपि च॥ विषयाविषयौ ज्ञात्वा तेनोत्सर्गापवादयोः व बाधाबाधौ विवेक्तव्यौ न तु सामान्यदर्शनात्। अन्यएवैकदेशेन शास्त्रस्यार्थः प्रतीयते अन्यस्तु परिपूर्णेन समस्ताङ्गोपसंहृतौ॥ इति।

अथ सरलायामद्वैतश्रुतेर्बाधोद्धारः।

शङ्कते नन्विति। आपातप्रतिपन्न=पूर्वापरपरामर्शशून्यशब्दश्रवणमात्रतः उपस्थित ही श्रुतिका अर्थ नहीं होसकता है, कः=कौन धीर छन्दसाम्=वेदवाक्योंके योगम्=तात्पर्यको आवेद=जानता है इस श्रुतिसे, और वेदः=वेद अल्पश्रुतात्=अल्पविद्याकपुरुषसे बिभेति=भयकरता है इस स्मृतिसेभी वेदार्थकी अतिगहनताकी उक्तिसे मीमांसाओंके वैयर्थ्यके प्रसङ्गसेभी आपातप्रतिपन्नार्थ नहीं हो सकता है, किन्तु मानान्तरसे अविरुद्ध तथा पूर्वोत्तरसे अविरुद्ध ही वेदार्थ हो सकता है, और अविरोध ग्रहणके लिए मीमांसाओंका साफल्य है, अतएव=मीमांसाओंको अविरोधके लिए होनेसे ही, आज्यैःस्तुवते, आकाशादेव समुत्पद्यन्ते, (छां०१।९।१) इत्यादिमें आपाततः प्रतीत घृतगगनादिके परित्यागसे, आज्याकाशादिपदोंको सामपरमात्माद्यर्थत्व स्थापित किया है, पूर्वोत्तरमीमांसाओंके चित्राकाशाद्यधिकरणोंमें=आज्यपद सामपरक है यह पूर्वमीमांसाके चित्राधिकरणमें बतलाया है और आकाशपद परमात्मपरक है यह उत्तरमीमांसाके आकाशाधिकरणमें बतलाया है, साम पद यहां स्तोत्रपर है, और सामगानविशिष्टमन्त्रकरणक गुणाभिधानका नाम स्तोत्र है। अन्यथा=आपातप्रतिपन्नार्थ ही अङ्गीकार करनेपर तत्तत्पूर्वपक्षके

अभ्युपगमकी प्रसक्ति है, शब्दज्ञानात्=शब्दविषयक श्रावणप्रत्यक्षके बाद जो असन्निकृष्ट अर्थविषयक विज्ञान उत्पन्न होता है उसका नाम है शास्त्रम्=शब्दप्रमाण; इत्यत्र=इस शावर भाष्यकी पङ्क्तिको उद्देश्यकर उक्तप्रकारका अर्थ वार्तिककारभट्टाचार्योंसे कहागया है—अत्र= शब्दप्रमाणके लक्षणमें (असन्निकृष्ट) इस वचनसे दो जिज्ञासित हैं=शब्दप्रमाणमें वक्ष्यमाण दो का अभाव विवक्षित है, ताद्रूप्येण परिच्छेदः=जिस रूपसे पदार्थको वाक्यसे बोध्यता हो उसरूपसे प्रमितत्व, तद्विपर्ययतोऽपि वा=तथा जिसरूपसे वाक्यबोध्यता है उस रूपसे विपरीत जो रूप उस रूपसे परिच्छेद ये दोनों जिज्ञासित हैं (पृ० सू० ५। श्लो०५५।५६)। अर्थात्, प्रमाणान्तरसे अनधिगत तथा अबाधित जो अर्थ तादृश—अर्थविषयक वाक्यका नाम—शब्द प्रमाण है—वाक्यजन्यज्ञानमें शब्दका प्रयोग गौण है, वस्तुतः भाष्यवार्तिककारादिकोंको अभि-हितान्वयवाद इष्ट है, अतः असन्निकृष्टेऽर्थे विज्ञानम् यहाँपर विज्ञान पद विज्ञानहेतुपर है, और असन्निकृष्टेऽर्थे इन दोनों सप्तम्यन्तोंका सामानाधिकरण्येन अन्वय नहीं है किन्तु व्यधिकरणेन अन्वय है, तथा च अर्थशब्दसे पदार्थोंको लेना चाहिए और असन्निकृष्ट शब्दसे वाक्यार्थको लेना चाहिए तब सम्मिलित अर्थ यह हुआकि शब्दविषयकश्रावणप्रत्यक्षानन्तर जायमान जो असन्निकृष्टपदबोध्यवाक्यार्थविषयकबोधजनक पदार्थविषयकज्ञान उसका नाम है—शब्द प्रमाण। तेन=यतः सामान्यदर्शनमात्रसे व्यवस्था करनेको शक्य नहीं है तिससे उत्सर्ग तथा अपवादके विषय तथा अविषय इन दोनोंको समझकर बाध तथा अबाध ये दोनों विवेचनीय हैं सामा-न्यदर्शनमात्रसे नहीं, शास्त्रके एकदेशसे आपाततः अन्यही अर्थ प्रतीत होता है और परिपूर्ण-शास्त्रसे समस्ताङ्गोपसंहारनिमित्तक अन्यही अर्थ प्रतीत होता है=शास्त्रके एकदेशके देखनेसे अन्यही अर्थ प्रतीत होता है और उपक्रमोपसंहारानुन्धानपूर्वक समस्तशास्त्रके देखनेसे अन्यही अर्थ प्रतीत होता है।

अन्यत्राप्युक्तम्—विरुद्धवत्प्रतीयन्ते आगमा यत्र ये मिथः। तत्र दृष्टानुसारेण तेषामर्था विवक्षिताः॥ इति तथाच प्रत्यक्षादिविरोधात् पूर्वोत्तराविरोधाच्च नाद्वैतपर-त्वमेकमेवेत्यादिवाक्यानामिति चेन्न, द्वैतप्रत्यक्षस्य चन्द्रप्रादेशिकत्वप्रत्यक्षवत् सम्भा-विताप्रामाण्यतया अद्वैतश्रुतिविरोधित्वाभावात्। यथाच श्रुत्या प्रत्यक्षं बाधते तथा प्रपञ्चितमधस्तात्, किञ्च प्रत्यक्षं नियतविषयम् श्रुतिः सर्वविषया तथाच यत्र प्रत्यक्षेण भेदो न गृहीतः तत्रैवाभेदश्रुतेरवकाशः।

अन्यत्रापि=स्मृतिपादीय वार्तिकमेंभी कहा गया है, यत्र=जहाँपर जो आगम मिथः= परस्पर विरुद्ध प्रतीत होते हैं तहाँपर प्रत्यक्षानुसार उन आगमोंके अर्थ विवक्षित हैं। तथाच प्रत्यक्षादिके साथ विरोध होनेसे और पूर्वोत्तरके साथ विरोध होनेसे 'एकमेव' इत्यादि वाक्योंको अद्वैतपरत्व नहीं है इति चेन्न, क्यों? द्वैतविषयक प्रत्यक्षको चन्द्रप्रादेशिकत्व—प्रत्यक्षकी तरह सम्भाविताप्रामाण्यत्वेन अद्वैतश्रुतिके साथ विरोधित्वका अभाव होनेसे=चन्द्रधर्मिक प्रादेशिक-

त्वप्रकारक प्रत्यक्षमें भ्रमत्व उभयवादि-सम्प्रतिपन्न है अतः भ्रमत्वसमानाधिकरण प्रत्यक्षत्वके ज्ञानसे सत्त्वप्रकारक या भेदप्रकारक प्रत्यक्षमें अप्रामाण्यका संशय उत्पन्न होता है, और अनाप्तप्रणीतत्वेन प्रमात्वेन कार्यकारणभावके ज्ञानसे श्रुतिजन्य जो प्रपञ्चधर्मिक या प्रपञ्चैकदेशधर्मिक मिथ्यात्वप्रकारक ज्ञान उस ज्ञानमें अप्रामाण्यका संशय नहीं होता है। अतः अनाहार्य अप्रामाण्यसंशयानास्कन्दित श्रुतिजन्यज्ञानसे अप्रामाण्यसंशयाऽऽस्कन्दित प्रत्यक्षका बाधही मानना उचित है इसी अभिप्रायसे कहते हैं यथा चेति। जिस रीतिसे श्रुतिसे प्रत्यक्ष बाधित होता है तैसे सविस्तर दिखला दिया है,-प्रत्यक्षके श्रुतिबाध्यत्वके प्रकरणमें; किञ्च=औरभी वक्तव्य है-प्रत्यक्षम्=भेदग्राहिप्रत्यक्ष नियतविषय=किसी एकपदार्थका किसी एकपदार्थके साथ भेदग्रहण करनेवाला है, और श्रुतिः=अभेदबोधिका श्रुति सर्वविषया=सर्व पदार्थोंका अभेद है विषय जिसका ऐसी है, फलतः जहाँ प्रत्यक्षसे भेद नहीं गृहीत हुआ है तहाँ ही पर अभेदश्रुतिको अवकाश है='घटः पटो न' इत्याकारकप्रत्यक्ष घटानुयोगिक पटप्रतियोगिक भेदको विषय करता है, परन्तु 'घटः पटो न' इत्याकारकप्रत्यक्षप्रतियोगिक घटानुयोगिक, या घटप्रतियोगिक उक्तप्रत्यक्षानुयोगिक, या उक्तप्रत्यक्षप्रतियोगिक पटानुयोगिक, या पटप्रतियोगिक उक्तप्रत्यक्षानुयोगिक भेदको विषय नहीं करता है फलतः श्रुति उक्तप्रत्यक्षका और घटका अभेद बोधन करेगी, तथा उक्तप्रत्यक्षका और पटका अभेद बोध न करेगी, फलतः घटपटको घटधर्मिकपटप्रतियोगिकभेदविषयकत्वविशिष्टप्रत्यक्षात्मक होनेसे, स्वाभिन्नाभिन्नस्य स्वाभिन्नत्वन्यायसे श्रुति घटपटकेभी अभेदको सिद्ध करेगी, स्वपदसे घटलिया उससे अभिन्न हुआ उक्तभेदग्राहि प्रत्यक्ष उस प्रत्यक्षके साथ अभिन्न हुआ पट उस पटके साथ घटका अभेद सिद्ध होगा।

ननु—ययोरैक्यं श्रुत्या बोध्यते तयोर्भेदः प्रसक्तो न वा। नान्त्यः। अप्रसक्तप्रतिषेधापात्। नाद्यः। प्रसञ्जकप्रमाणविरोधेनैक्यस्य बोधयितुमशक्यत्वात् इति चेन्न, अन्त्यपक्षाभ्युपगमे दोषाभावात्, अप्रसक्तप्रतिषेध इति च किमप्रसिद्धप्रतियोगित्वं किंवा निष्प्रयोजनत्वमिति विवेचनीयम्। नाद्यः। अन्यत्र प्रसिद्धस्यैवभेदस्य भेदत्वेनोपस्थितस्य परस्परप्रतियोग्यनुयोगिभावेनान्यत्रनिषेधसम्भवात्। नच तत्रैव प्रसिद्धिस्तन्त्रम्। निषेधप्रमामात्रोच्छेदप्रसङ्गात्। न द्वितीयः अर्थनिवृत्तेरेव प्रयोजनत्वात् "नान्तरिक्षेऽग्निश्चेतव्य" इत्यादौ स्तुतिमात्रप्रयोजनेनाप्यप्रसक्तनिषेधदर्शनाच्च।

द्वैती शङ्कते नन्विति। ययो=जिन दो पदार्थोंका ऐक्य श्रुतिसे बोधित होता है तिन दो पदार्थोंका अभेद प्रसक्त=ज्ञात है या नहीं, नान्त्यः=अन्तिम पक्ष समीचीन नहीं, अप्रसक्तके प्रतिषेधका आपात होनेसे, नाद्यः=आदिमपक्षभी नहीं बन सकता है क्यों? प्रसञ्जक प्रमाणके साथ विरोध होनेसे ऐक्यको बोध करनेके लिए अशक्य होनेसे इतिचेन्न, क्यों? अन्तिम पक्षके अभ्युपगममें दोषका अभाव होनेसे, और अप्रसक्तप्रतिषेधसे आपको क्या विवक्षित है, अप्रसिद्धप्रतियोगित्व या निष्प्रयोजनत्व यह विवेचनीय है, नाद्यः=आद्यपक्ष नहीं कह सकते हो, क्यों?

भेदत्वेनोपस्थित अन्यत्र प्रसिद्ध भेदकाही अनुयोगि–प्रतियोगिभावेन अन्यत्र निषेधका सम्भव होनेसे तत्रैव=निषेधाधिकरणमेंही प्रसिद्धिः=प्रतियोगिकी प्रमा तन्त्र है नच=नहीं है क्यों? निषेधमात्रकी प्रमामात्रके उच्छेदके प्रसङ्गसे=जब निषेधाधिकरणमेंही प्रतियोगिकी प्रमा अभावज्ञानमें प्रयोजिका होगी तब तो अभावज्ञानमात्रमें नियमसे अप्रमात्व रहेगा । न द्वितीयः=द्वितीय पक्षभी ठीक नहीं क्यों? अनर्थ–निवृत्तिकोही प्रयोजनत्व होनेसे, नान्तरिक्षे अग्निश्चेतव्यः=इत्यादिमें स्तुतिमात्र प्रयोजनसेभी अप्रसक्तके निषेधके देखनेसेभी अप्रसक्तका निषेध वन सकता है। अर्थात् निष्प्रयोजन अप्रसक्तका प्रतिषेध नहीं होता है और प्रयोजन होनेपर तो अप्रसक्तकाभी प्रतिषेध वन सकता है।

अथ श्रुत्या ययोरभेदो वोध्यते तयोरुपस्थितिरस्ति, न वा नान्त्यः, अनुपस्थितयोरभेदवोधनायोगात्। आद्ये सा किं श्रुतिजन्या, प्रत्यक्षादिजन्या वा, नाद्यः श्रुतेर्मानान्तरागोचराभेदमात्रपरत्वेन घटाद्युपस्थितेस्तज्जन्यत्वाभावेन सर्वाद्वैतसिद्धेः, श्रुतिस्थकिञ्चनेत्यादिपदानामनुवादकत्वाभ्युपगमात्। द्वितीये तु तयोर्भेदोऽपि प्रत्यक्षादिसिद्ध इति क्वाद्वैतश्रुत्यवकाशः? मैवम् यत्प्रत्यक्षादिना गृह्यते, तद्भेदोऽपि तेन गृह्यते एवेति नियमाभावात्।

शङ्कते अथेति। श्रुतिसे जिन दो पदार्थोंका अभेद वोधित होता है, उन दोनोंकी उपस्थिति है या नहीं, नान्त्यः=अन्त्यपक्ष तो नहीं वन सकता है, अनुपस्थितोंके अभेदवोधनका अयोग होनेसे। आद्ये=आद्यपक्षको अङ्गीकृत होनेपर सा=वह उपस्थिति श्रुतिसे जन्या है या प्रत्यक्षादिसे जन्या है, नाद्यः=श्रुतिसे जन्या है इस पक्षको नहीं मान सकते हो, क्यों? श्रुतिको मानान्तरका अविषयीभूत जो अभेदमात्र तादृश–अभेदमात्रपरत्व होनेसे घटादिकी उपस्थितिको श्रुतिजन्यत्वके अभावसे सर्वाद्वैतकी असिद्धिसे श्रुतिस्थ 'किञ्चन' इत्यादिपदोंके अनुवादकत्वके अभ्युपगमसे; द्वितीयेतु=उपस्थिति प्रत्यक्षादिसे जन्या है इस द्वितीय पक्षमें तो, जिनकी उपस्थिति प्रत्यक्षादिसे जन्या है उनका भेदभी प्रत्यक्षादिसे सिद्ध है, अतः अद्वैतश्रुतिको कहाँ अवकाश है, मैवम्=ऐसा मत कहो क्यों? जो प्रत्यक्षादिसे गृहीत होता है, उसका भेदभी प्रत्यक्षादिसे गृहीत होता है, इत्याकारक नियमका अभाव होनेसे।

तथाहि न तावत्पदार्थस्वरूपज्ञानमेव भेदज्ञानम्। अभेदभ्रमोच्छेदप्रसङ्गात्। स्वरूपभेदवादिनामपि स्वरूपज्ञानात् घटत्वादिप्रकारकात्, भेदत्वप्रकारकं भेदज्ञानं विलक्षणमेव अन्यथा भेदाग्रहनिबन्धनव्यवहारानुदयप्रसङ्गात्। अत एव स्वरूपज्ञानोतरकालमवश्यं, भेदज्ञानमित्यपि न अनवस्थाप्रसङ्गाच्च।

तथाहि–पदार्थके स्वरूपका ज्ञानही तो भेदज्ञान नहीं हो सकता है, अभेदभ्रमके उच्छेदके प्रसङ्गसे='इदं रजतम्' यहाँपर शुक्तिके साथ तादात्म्यापन्न होके रजतका भान होता है सो न होगा क्योंकि भ्रमसे पूर्व अधिष्ठानके सामान्यस्वरूपका तो ज्ञान होताही है, और उस ज्ञानका

नामही तो भेदज्ञान होगा अतः भ्रमसे पूर्वही भेदग्रह हो जानेसे आगे अभेदभ्रम अनुपपन्न है। स्वरूपही भेद है ऐसा माननेवाले वादिओंके मतमेंभी घटत्वादिप्रकारक स्वरूपज्ञान है, उस स्वरूपज्ञानसे भेदत्वप्रकारक भेदज्ञान विलक्षणही है, अन्यथा भेदाग्रहाधीन व्यवहारके अनुदयका प्रसङ्ग है। अतएव=भेदाग्रहनिवन्धन व्यवहारके अनुदयके प्रसङ्गसेही स्वरूपज्ञानसे उत्तरकालमें अवश्यही भेदज्ञान होता है यहभी नियम नहीं है, अनवस्थाके प्रसङ्गसेभी यह पक्ष ठीक नहीं।

तथाहि घटपटौ भिन्नौ जानामीति घटपटभेदधीः स्वप्रकाशा वा, अनुव्यवसायसिद्धा वा साक्षिसिद्धा वा न स्वप्रतियोगिकभेदविषया, भेदधियः प्रतियोगिधीजन्यत्वनियमेन प्रतियोगिधीव्यक्तिभिन्नव्यक्तित्वावश्यकत्वात्, स्वस्या एव स्वजन्यत्वानुपपत्तेः ज्ञानान्तरेण तद्भेदग्रहे क्वचित् भेदधीधाराविश्रान्तिर वश्यं वाच्या अन्यथा सुषुप्तिविषयान्तरसञ्चारादिकं न स्यात्। अतः तत्रापि चरमभेदधीरेवोदाहरणम्। तथाच बाधकत्वाभिमता घटपटभेदधीः स्वभेदाविषया भासते, तया सह बाध्यत्वाभिमताया ऐक्यधिय ऐक्यं बोधयित्वा निर्बाधा सती श्रुतिः सर्वाभेदे पर्यवस्यति। नह्यभेदेऽपि बाध्यबाधकभावः। स्वस्यापि स्वबाधकतापत्तेः। तदुक्तम् खण्डनकृद्भिः सुदूरधावनश्रान्ता बाधबुद्धिपरम्परा। निवृत्तावद्वयाम्नायैः पार्ष्णिग्राहैर्विजीयते॥ इति।

तथाहि=अनवस्था दिखलाते हैं। घटपटौ भिन्नौ जानामि इत्याकारिका जो घटपटभेदविषयिका धी है वह स्वप्रकाश हो या अनुव्यवसायसिद्ध हो अथवा साक्षिसिद्ध हो, स्वप्रतियोगिकभेदविषया नहीं है=स्वके विषय जो घटपट और इन दोनोंका भेद, तथा ज्ञानान्तर इन सर्वमें, स्वके भेदको यह बुद्धि अवगाहन नहीं करती है भेदधीको प्रतियोगिधीसे जन्यत्वका नियम होनेसे प्रतियोगिभूतधीव्यक्तिसे भिन्न व्यक्तित्वको आवश्यकत्व होनेसे, स्वकोही स्वजन्यत्वकी अनुपपत्तिसे। ज्ञानान्तरसे तद्भेदग्रहे=उक्तबुद्धिका घटपटादिके साथ भेदग्रह होनेपर कहीं पर भेदविषयिणी जो धी उसधीकी जो धारा=एकके बाद दूसरी दूसरीके बाद तीसरी इत्यादिरूप धारा उस धाराकी विश्रान्तिः=धाराकी समाप्ति आवश्यक होनी चाहिए, अन्यथा=विश्रान्तिके न मानने पर सुषुप्ति न होगी और विषयान्तरमें सञ्चार न होगा=विषयान्तरका ज्ञान न होनेसे विषयान्तरमें इच्छा तथा प्रवृत्ति न होगी, सर्वलोग भेदकी बुद्धिकी धारामें ही अहोरात्र विप्लावित रहेंगे, आदिपदसे अननुभवलेना चाहिए, अर्थात् ऐसी अनन्तज्ञान—गर्भितधारा किसीके अनुभवमेंभी नहीं आती है, अतः तत्रापि=ज्ञानान्तरसे भेदग्रहणस्थलमेंभी चरम जो भेदधी वही उदाहरण है अर्थात् श्रुतिभगवती वहींसे अभेदकरना प्रारम्भ करदेगी, तथा च बाधकत्वेन अभिमत जो घटपटभेदविषयिणी धी वह स्वभेदको न विषयकरती हुई भासित होती है, उसके साथ बाध्यत्वेन अभिमत अभेदधीके ऐक्यको बोधनकर निर्बाध हुई श्रुति सर्वके अभेदमें पर्यवसित होगी। अभेद होनेपरभी तो बाध्यबाधकभाव नहीं बनसकता है, स्वकोभी स्वबाधक-

त्वकी आपत्तिसे, यह अर्थ खण्डनकारसे कहागया है—बाधबुद्धिकी परम्परा=श्रेणी सुषुप्त्यादिके अभावापत्तिके भयसे चरमधीको त्यागकर उपान्त्यधीपर्यन्त धावनसे श्रान्त होजाती है पश्चात् उसको निवृत्तौ=अद्वैतश्रुतिबाधकत्वकी अयोग्यताको प्राप्त होनेपर तद्विरुद्धार्थग्राहक जो अद्वयाम्नाय हैं उन अद्वयाम्नायोंसे जीतली जाती है ।

न च सिद्धान्ते घटतद्धीभेदग्राहिणा स्वप्रकाशेन साक्षिणा, स्वस्मिन्नितरभेदस्यापि ग्रहणान्नानवस्था, अन्यथा स्वस्य घटादिभ्योऽभेदसंशयः स्यादिति वाच्यम् साक्षिणः स्वप्रकाशत्वेऽपि स्वनिष्ठेतरप्रतियोगिकभेदग्रहे इतरप्रतियोग्युपस्थितिसापेक्षत्वात् । अन्यथा स्वस्यान्तःकरणाद्यभेदभ्रमो न स्यात् । स्वप्रकाशेन भेदाग्रहेऽपि मानान्तरेण भेदग्रहात् न घटाद्यभेदे संशय इति न किञ्चिदेतत् । स्यादेतत् घटपटौ भिन्नाविति प्रत्यक्षं स्वस्याद्वैतज्ञानादिना भेदं विनानुपपत्तेस्तमप्याक्षिपतीति सर्वत्र भेदस्याप्रत्यक्षत्वेऽपि नाद्वैतश्रुतेरवकाशः ।

शङ्कते नन्विति । घट और घटविषयकज्ञान इन दोनोंका जो भेद है उस भेदका ग्राहक आपके सिद्धान्तमें स्वप्रकाश साक्षी है, तादृश स्वप्रकाश साक्षीसे स्वमें इतरप्रतियोगिक भेदकेभी ग्रहणसे अनवस्था नहीं है=घट और घटविषयक ज्ञानका और साक्षीका जो भेद है उस भेदका और घटका तथा साक्षीका जो भेद है उस भेदका यदि कोई ग्राहक न हो तो अद्वैतश्रुति घटविषयक ज्ञानका और साक्षीका तथा घटका और साक्षीका अभेद बोधन कर सकती है, परन्तु ऐसा है नहीं क्योंकि साक्षी स्वयंही घटविषयकज्ञानप्रतियोगिक स्वानुयोगिक भेदको तथा घटप्रतियोगिकस्वानुयोगिक भेदको ग्रहण करेगा फलतः साक्षीसे आगे ज्ञानके अन्वेषणकी अपेक्षा नहीं अतः अनवस्था नहीं और अद्वैतश्रुति सर्वके अभेदकोभी बोधन नहीं कर सकती है, अन्यथा=स्वानुयोगिक भेदको यदि साक्षीसे न न मानों तो साक्षीका घटके साथ अभेदसंशय होना चाहिए इति नच वाच्यम् क्यों? साक्षीको स्वप्रकाश होनेपरभी स्वनिष्ठ इतरप्रतियोगिक भेदग्रहमें इतरात्मक जो प्रतियोगी तादृश प्रतियोगिकी उपस्थितिका सापेक्षत्व होनेसे, अन्यथा=साक्षिको स्वेतरनिरपेक्ष-स्वनिष्ठभेदग्राहकत्व होनेपर अपना अन्तःकरणादिके साथ अभेद भ्रम न होगा, स्वप्रकाशसे भेदका ग्रह न होनेपरभी मानान्तरसे भेदका ग्रह होनेसे घटादिके साथ साक्षीके अभेदका संशय नहीं है । रहो यह 'घटपटौ भिन्नौ' इत्याकारक प्रत्यक्ष स्वकी अद्वैतज्ञानादिसे भेदके विना अनुपपत्तिसे तमपि=उक्तभेदकाभी आक्षेप करता है, 'घटपटौ भिन्नौ' यह प्रत्यक्ष अद्वैतज्ञानसे और स्वविषयसे स्वके भेदविना अनुपपन्न हुआ उक्तभेदकाभी आक्षेप करता है । इति=अतः सर्वत्र भेदको अप्रत्यक्षत्व होनेपरभी अद्वैतश्रुतिको अवकाश नहीं है ।

अत्रोच्यते—आक्षेपो हि अनुमानमर्थापत्तिर्वा । तत्र विवादाध्यासिताबुद्धिः सर्वतो भिन्नेति नानुमानं संभवति, स्वतोऽपि भेदसाधने बाधात् दृष्टान्तस्य च साध्यविकलत्वात् । यतः कुतश्चित् भेदसाधने त्वनुमानाविषये लब्धावकाशा श्रुतिः अभेदं बोधयि-

ष्यति । नच स्वव्यतिरिक्तात् सर्वतो भिन्नेति साध्यम् । अद्वैतवादिनम् प्रत्यप्रसिद्धविशेपणत्वात् । एतेन सर्वं सर्वस्माद्भिन्नमितिवाक्यमपि निरस्तम् । तदुक्तम् हेत्वाद्यभावसार्वज्ञ्ये सर्वं पक्षयतास्थिते । किञ्चित्तुत्यजता दत्ता सैवद्वारद्वयश्रुतेः । इति ।

यहाँपर कहा जाता है–आक्षेप क्या अनुमानरूप है या अर्थापत्तिरूप है, तत्र=अनुमान अर्थापत्ति इन दोनोंमेंसे, बुद्धि सर्वसे भिन्न है, बुद्धि होनेसे बुद्ध्यन्तरवत् इत्याकारक अनुमान असम्भवित है क्यों ? स्वतोऽपि=स्वसेभी भेदसाधनमें बाध होनेसे=बुद्धिको पक्षकर सबसे भेद साध्य किया है और सर्वमें तो बुद्धिभी आगई अतः स्वसेभी स्वके भेदकी प्रसक्ति हुई और स्वसे स्वका भेद बाधित है, फलतः ऐसा अनुमान नहीं बन सकता है और अद्वैतवादिके प्रति अप्रसिद्धविशेपणत्वभी है क्योंकि अद्वैतवादीके मतमें सर्वसे भेद अप्रसिद्ध है । एतेन=स्वसे स्वके भेदकी आपत्तिसे और अद्वैतवादीके प्रति अप्रसिद्धविशेपणत्वसे, सर्व सर्वसे भिन्न है यह वाक्यभी निरस्त हुआ । यह अर्थ कहा गया है खण्डनकारसे, सर्वको पक्ष करनेपर हेतुका-अभाव है=स्वमें स्वके न रहनेसे स्वरूपासिद्ध है और अद्वैतमतमें हेतुसाध्यको एक होनेपर साध्याविशेप है । साध्य और पक्षको एक होनेसे बाधभी है और दृष्टान्तकी भी असिद्धि है क्योंकि आपने सर्व पक्षमेंही ले लिया है । एवं तत्तद्रूपत्वेन सर्वका ज्ञान होनेपर सार्वज्ञ्यकी आपत्ति है, इसरीतिसे अद्वैतवादिसे हेत्वादिका अभाव और सार्वज्ञ्य इन दोनोंके आपादित होनेपर 'सर्वं पक्षयता' सर्वको पक्ष करनेके लिए प्रवर्त्तमान तुमसे किञ्चित् त्याग करनाही पडेगा और जिस पदार्थको छोडोगे वही मानो तुमसे अद्वैतश्रुतिको द्वार दिया गया है

नाप्यर्थापत्तिः सर्वभेदविपया स्वाविपयात्, ययोर्हि भेदं विना यत्रानुपपत्तिर्गृहीता तयोस्तत्र भेदग्रहेऽप्यनुपपत्तावनुपपत्त्यन्तराग्रहात् । सर्वत्र तद्ग्रहणे तु धाराविश्रान्तौ चरमधी उदाहरणम् । तदुक्तम्–आद्यधीवेद्यभेदीयाप्यन्यथानुपपन्नता । स्वज्ञानापेक्षणादन्ते बाधते नाद्वयश्रुतिम् । इति ।

अर्थापत्तिभी सर्वके भेदको विपय करनेवाली नहीं है, क्यों ? स्वविपयक न होनेसे, इसी अर्थका विवरण करते हैं । ययोरिति । जिन दो पदार्थोंके भेद बिना जहाँ अनुपपत्ति गृहीत है उन दोनोंका तहाँ भेदग्रह होनेपरभी, अनुपपत्तिमें अनुपपत्त्यन्तरके अग्रहणसे=' घटपटौ भिन्नौ ' इत्याकारक प्रत्यक्ष और अभेदज्ञान इन दोनोंका अभेद होनेपर प्रथमज्ञानको घटपटविपयकत्व न होगा, तथाच घटपटविपयकत्वकी उपपत्तिके लिए इन ज्ञानोंका भेद माना जा सकता है । परन्तु अनुपपत्तौ=घटपटविपयकत्वान्यथानुपपत्त्या, घटपटविपयकत्वाश्रयस्य–अद्वैतज्ञानात् भेदं कल्पयामि इत्याकारिका जो अर्थापत्तिप्रमा है उस अर्थापत्तिप्रमामें अनुपपत्त्यन्तराग्रहणात्=अद्वैतज्ञानाद्भेदमन्तरा इदमनुपपन्नम्, इसरीतिसे अनुपपत्त्यन्तरका अग्रहण होनेसे, फलतः उक्तार्थापत्तिप्रमा और अद्वैतबुद्धिका अभेद होगा पश्चात् विपयतक अभेदकी राधा चलेगी, सर्वत्र भेदका ग्रहण होनेपर तो सुपुप्त्यादिके लोपकी आपत्ति है इतना शेप समझना चाहिए । धाराविश्रान्तौ=कहींपर अनुपपत्तिओंकी धाराकी विश्रान्ति होनेपर चरमधी=

अन्तिमार्थापत्ति उदाहरण है तदुक्तम्=इसी अभिप्रायको लेकर खण्डनकारसे कहा गया है, आद्येति । आद्यधीः=' घटः पटो न ' इत्याकारिका धी उस धीसे वेद्य जो भेद-घटानुयोगिक पटप्रतियोगिकभेद तादृशभेदसम्बन्धिनी जो अन्यथानुपपन्नता-उक्तभेदान्यथानुपपत्ति वहभी अन्ते=अन्तमें पहुँचकर अद्वयश्रुतिको नहीं वाधित करती है । क्यों ? स्वज्ञानापेक्षणात्= अर्थसिद्ध करनेमें स्वविषयकज्ञानकी अपेक्षा करनेसे=अन्यथानुपपत्ति ज्ञात हुईही भेदको सिद्ध करती है यह तो कहनाही होगा क्योंकि अर्थानुपपत्तिके दर्शनसे उपपादकविषयिणी जो बुद्धि होती है उसका नाम अर्थापत्तिप्रमा है तथाच उक्तानुपपत्तिको स्वविषयकज्ञानप्रतियोगिक स्वानुयोगिकभेदका साधकत्व होनेसे, इन दोनोंका अभेद करती हुई श्रुति सर्वका अभेद सिद्ध करेगी यह सरलार्थ शङ्करमिश्रका किया हुआ है ।

ननु—यावदुपपादकं तत्सर्वमर्थापत्तेर्विषयः । नतु यत्किञ्चिदुपपादकम् तथा चार्थापत्तेरितरस्मात् भेदाभावे तत्रैवाभेदश्रुतेर्लब्धावकाशत्वात् घटपटभेदासिद्ध्यापत्ते-रर्थापत्तिभेदस्यापि घटपटभेदोपपादकत्वेनार्थापत्तिविषयत्वम् वाच्यम् अन्यथा दृग्दृश्य-सम्बन्धानुपपत्तिर्ज्ञाननिवर्त्यत्वानुपपत्तिश्च स्वमिथ्यात्वविषया न स्यात्, सर्वं खल्विदं ब्रह्मेतिश्रुतिः नेह नानेति ब्रह्मणि भेदमात्रनिषेधानुपपत्तिश्च, स्वाभेदविषया न स्यात्, तथाच तत्रापि श्रुत्यन्तरमर्थापत्यन्तरं वा वाच्यमिति तत्राप्यनवस्थापत्तिः इति मैवं वोचः । वस्तुतः उपपादकत्वं नार्थापत्तिविषयत्वे तन्त्रम् । किन्तूपपादकत्वेन ज्ञातत्वम् । अन्यथा अर्थापत्तिभ्रमानुपपत्तेः । तथाच येन रूपेणोपपादकत्वं गृहीतं तद्रूपावच्छिन्नमुपपादकम-र्थापत्तेर्विषयः । तत्र यदि अर्थापत्तिगतभेदे साधारणमुपपादकतावच्छेदकमेकं भवेत् तदा-सोऽपि भायादेव । नचैवमस्ति, तदनिरूपणात् ।

शङ्कते नन्विति । यावत् उपपादक हैं वे सर्व अर्थापत्तिके विषय हैं, जिसके बिना अन्य पदार्थमें अनुपपन्नत्व जाना जाता हो उसे उपपादक कहते हैं । दिवाभोजी पुरुषमिष्ठ स्थौल्यमें रात्रि-भोजनके बिना अनुपपन्नत्व जाना जाता है इसलिए रात्रिभोजनको उपपादक कहते हैं, यत्किञ्चि-त्ही उपपादक अर्थापत्तिका विषय नहीं है, फलतः अर्थापत्तेः=अर्थापत्तिनिष्ठ इतरस्मात्=अद्वैत-ज्ञानादिप्रतियोगिक भेदका अभाव होनेपर तत्रैव=अर्थापत्तिमेंही अभेदश्रुतिको लब्धावकाशत्व होनेसे घटपटके भेदकी असिद्धिकी आपत्तिसे अर्थापत्तिनिष्ठ भेदकोभी घटपटभेदोपपादकत्व होनेसे अर्थापत्तिविषयत्व है, अन्यथा=यदि अर्थापत्तिको यावत्-उपपादकविषयकत्व न मानों तो दृग्दृश्यसम्बन्धानुपपत्ति और ज्ञाननिवर्त्यत्वानुपपत्ति स्वनिष्ठ-मिथ्यात्वविषया न होगी=जैसे उक्त दोनों अनुपपत्तियाँ प्रपञ्चमें तथा स्वमेंभी मिथ्यात्व सिद्ध करती हैं, वैसेही प्रकृतअर्थापत्तिभी स्वधर्मिक भेदकोभी ग्रहण करती है अन्यथा उक्त अनुपपत्तिद्वयमें मिथ्यात्वके न सिद्ध होनेसे आपके मतमें द्वैतापत्ति होगी 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' (छां० ३।१४।१) यह श्रुति और 'नेहनाना' (बृ० ४।४।१९) यह ब्रह्ममें भेदमात्रके निषेधकी अनुपपत्ति स्वाभेदविषया न होगी, फलतः तत्रापि=

उक्तस्थलोंमेंभी श्रुत्यन्तर तथा अर्थापत्त्यन्तर कहना होगा इसरीतिसे तुमकोभी अनवस्थाकी आपत्ति है=श्रुतिका अभेद सिद्ध करनेके लिए दूसरी श्रुति चाहिए और दूसरीका अभेद सिद्ध करनेके लिए तीसरी यों करनेसे अनवस्थाकी प्रसक्ति है, तैसे एक अर्थापत्तिके अभेदके लिए दूसरी अर्थापत्ति चाहिए और दूसरीके लिए तीसरी यों करनेसे अनवस्थाका प्रसङ्ग होगा। मैवं वोचः। ऐसा मत कहो क्योंकि वस्तुतः उपपादकत्व अर्थापत्तिविषयत्वमें तन्त्र नहीं है=जहाँ जहाँ उपपादकत्व है वहाँ वहाँ अर्थापत्तिविषयत्व है ऐसा नियम नहीं है। किन्तु उपपादकत्वेन ज्ञातत्व अर्थापत्तिविषयत्वमें तन्त्र है अर्थात् जहाँ जहाँ उपपादकत्वेन ज्ञातत्व रहता है तहाँ तहाँ अर्थापत्तिविषयत्व रहता है, अन्यथा=वस्तुतः उपपादकत्वकोही अर्थापत्तिविषयत्वमें तन्त्र मानें तो अर्थापत्तिभ्रमकी अनुपपत्ति है=भ्रमस्थलमें वस्तुतः उपपादकत्व नहीं रहता है, अतः वस्तुतः उपपादकत्वेन अर्थापत्तिविषयत्वमें तन्त्रता नहीं है, फलतः जिस रूपसे उपपादकत्व गृहीत हो तद्रूपावच्छिन्नोपपादक अर्थापत्तिका विषय है, तत्र=तैसा होनेपर यदि अर्थापत्तिगतभेदे= अर्थापत्तिधर्मिकभेदसाधारण उपपादकतावच्छेदक एक हो तदा=तत्तो सोऽपि=अर्थापत्तिगत-भेदभी भासितही होगा, परन्तु ऐसा तो नहीं है, क्यों ? तदनिरूपणात् तादृशभेदका निरूपण न होनेसे।

तथाहि—घटपटभिन्नत्वमुपपाद्यम्, तदुपपादकञ्च न सर्वभिन्नत्वम्। स्वतोऽपि भेदापत्त्या तदसम्भवात्। नापि स्वातिरिक्तसर्वभिन्नत्वम्। अद्वैतवादिनं प्रति स्वातिरेक-विशेषणासिद्धेः स्वत्वाननुगमाच्च। तथाच तेन तेन रूपेण तत्तद्भिन्नत्वमेव उपपादकमुपे-यम्। अत उपपादकतावच्छेदकनानात्वान्न सर्वमुपपादकमर्थापत्तेर्विषय इति पृथक्पृथग-नुपपत्तिज्ञानापेक्षायां सर्वत्रानुपपत्तिज्ञाने अनवस्थानात्। क्वचिद्धारविश्रान्तौ तत्रैव लब्धा-वकाशा श्रुतिः सर्वाद्वैते पर्यवस्यति इति किमनुपपन्नम्। दृष्टान्ते च सर्वत्र स्वसाधारणमु-पपादकतावच्छेदकमेव इति तदवच्छिन्नतया स्वस्यापि भानमिति वैषम्यम्।

तथाहि=अनिरूपणको दिखलाते हैं–घटपटभिन्नत्व=घटपटका भेद उपपाद्य है, तदु-पपादकञ्च=उक्त उपपाद्यका उपपादक सर्वभिन्नत्व नहीं होसकता है, स्वसेभी स्वमें भेदकी आपत्तिसे तिसका असम्भव होनेसे। स्वसे अतिरिक्त सर्वभिन्नत्वभी उपपादक नहीं होसकता है, अद्वैतवादीके प्रति स्वातिरेक रूप विशेषणकी असिद्धिसे और स्वत्वके अननुगमसेभी। तथाच तद्रूपावच्छिन्न तत्तद्भिन्नत्व ही उपपादकत्वेन उपेय है, अतः उपपादकतावच्छेदकको नानात्व होनेसे सर्व उपपादक अर्थापत्तिके विषय नहीं हैं अतः पृथक् अनुपपत्तिके ज्ञानकी अपेक्षा होनेपर सर्वत्र अनुपपत्तिज्ञानमें अनवस्था होनेसे, कहींपर धाराकी विश्रान्ति होनेपर वहीं पर लब्धपद हुई श्रुति सर्वाद्वैतमें पर्यवसित होगी, अतः क्या अनुपपन्न है, और दृष्टान्तमें तो सर्वत्र स्वसाधारण उपपादकतावच्छेदक एकही है, अतः तदवच्छिन्नतया=उक्त–उपपादकतावच्छेदका-वच्छिन्नतया स्वकाभी भान है=दृग्दृश्यसम्बन्धानुपपत्त्यादिका भान है इति=यह वैषम्य है। इसी अर्थको आगे स्पष्ट करते हैं—

तथाहि—दृश्यत्वावच्छिन्नमिथ्यात्वं विना दृक्सम्बन्धानुपपत्तिग्रहात् तदवच्छिन्नमिथ्यात्वमर्थापत्तेर्विषय इति स्वमिथ्यात्वमपि स्वविषयः। एवमेव ज्ञाननिवर्त्यत्वानुपपत्तेरपि स्वविषयत्वम्। तत्रापि दृश्यत्वादेरेकस्यैवाच्छेदकत्वात्। एवञ्च ब्रह्मणि सर्वाभेदबोधिकायाः श्रुतेः भेदमात्रनिषेधानुपपत्तेश्च स्वाभेदविषयत्वमविरुद्धम् । नहि सर्वभेदे स्वभेदापत्तिरिव सर्वाभेदे स्वाभेदो दोषाय, तस्माददैतश्रुतिर्बाध्यबाधकयोरैक्यबोधनेन निराबाधा सर्वाद्वैतम् प्रतिपादयति।

दृश्यत्वावच्छिन्नमिथ्यात्वके विना, दृक्सम्बन्धके अनुपपत्तिके ग्रहसे=दृश्यत्वावच्छिन्न मिथ्यात्वं विना दृक्सम्बन्धोऽनुपपन्नः इत्याकारक ग्रहसे दृश्यत्वावच्छिन्न मिथ्यात्व अर्थापत्तिका विषय है, इति=उक्तरूपसे स्वकोभी आक्रान्त होनेसे स्वका मिथ्यात्वभी स्वविषय है, एवमेव=इसी प्रकारसे ज्ञाननिवर्त्यत्वानुपपत्तिकोभी स्वविषयत्व है तत्रापि=उक्त अनुपपत्तिस्थलमेंभी दृश्यत्वादिरूप एककोही अवच्छेदकत्व होनेसे । इसरीतिसे ब्रह्ममें सर्वके अभेदको बोधन करनेवाली जो श्रुति है उस श्रुतिको और भेदमात्रनिषेधानुपपत्तिको स्वाभेदविषयत्व अविरुद्ध है, और सर्वभेदमें जैसे स्वभेदकी आपत्ति दोषके लिए है तैसे सर्वाभेदमें स्वाभेद दोषके लिए नहीं है, तिससे अद्वैतश्रुति बाध्य तथा बाधक इन दोनोंके अभेदबोधनसे निराबाध हुई सर्वके अभेदको प्रतिपादन करती है।

ननु—शब्द-बुद्धिकर्मणां विरम्य व्यापाराभावात् कथमादावल्पविषया बुद्धिः पश्चाद्बहुविषयापि भवतीत्युच्यते इति चेन्न । श्रुतितो द्रागेव जातायाः सर्वविषयायाः अद्वैतश्रुतेः प्रामाण्यं व्यवस्थापयन्तीनामस्मद्बुद्धीनामेव क्रमेण जायमानत्वात्, अयोग्यताज्ञानञ्च न शाब्दबोधे प्रतिबन्धकम्। न वा योग्यताज्ञानं हेतुः, येन प्रथमं सर्वाद्वैतबुद्धिर्न स्यात् । तदुक्तम्—अत्यन्तासत्यपि ज्ञानमर्थे शब्दः करोति हि। अबाधात्तु प्रमामत्र स्वतः प्रामाण्यनिश्चलाम् इति। वेदान्तकल्पलतिकायामस्यार्थस्य प्रपञ्चो द्रष्टव्यः। एतेन चरमज्ञानमिथ्यात्वेऽपि न तद्विषयस्य मिथ्यात्वम्। ज्ञानमिथ्यात्वस्य विषयमिथ्यात्वसाधकत्वात् अद्वैतज्ञाने व्यभिचारात्। इतिनिरस्तम्। श्रुत्यैवद्वैतमात्रनिषेध्यत्वबोधनात्। अद्वैतज्ञानविषयेच मिथ्यात्त्वबोधकाभावादेव सत्यत्वम् । ननु ज्ञानमिथ्यात्वादिति न किञ्चिदेतत्।

शङ्कते नन्विति। शब्द तथा बुद्धि एवं कर्म इन तीनोंका विरम्य व्यापार न होनेसे, आदिमें अल्पविषया भी अभेदबुद्धि पश्चात् बहुविषया होती है, यह कैसे कहा जाता है=शब्द एकहीवार स्वबोध्य—अर्थविषयक ज्ञातसङ्गतिकपुरुषमें ज्ञान उत्पन्न करता है, एकज्ञानसे वस्तु एकहीवार प्रकाशित हो जाती है, द्वितीयवार नहीं, और एक कर्मभी एकहीवार संयोग तथा विभागको उत्पन्न करता है, फलतः प्रथम अल्पविषयक जो ज्ञान है वही कालान्तरमें अधिक विषयक हो जाय यह अनुपपन्न है, इति चेन्न क्यों ? श्रुतिसे एकहीवार जायमान सर्वविषयक

अद्वैतबुद्धिके प्रामाण्यको व्यवस्थापित करनेवाली हमलोगोंकी बुद्धिओंकोही क्रमसे जायमान होनेसे। और अयोग्यताज्ञान शाब्दबोधमें प्रतिबन्धक नहीं है, और योग्यताज्ञान शाब्दबोधका हेतु नहीं यतः प्रथम सर्वाद्वैतविषयक बुद्धि न हो, यह खण्डनमें कहा गया है—कलहादिस्थलमें अत्यन्त असत् अर्थमेंभी शब्द ज्ञानको उत्पन्न करता है=कभी कभी असभ्य पुरुषोंका तथा कर्कश एवं मुँहफटी स्त्रियोंका बडाही रहस्यभेदी वाक्—कलह उत्थित होता है, उस कलहमें वे कलहप्रियलोग इस बातको जानते हैं, हम जिन शब्दोंका दूसरेके लिए प्रयोग कर रहे हैं उनके अर्थका इस व्यक्तिके साथ कोई सम्बन्ध नहीं और मेरे विषयमें जो यह शब्दप्रयोग कर रहा है वहभी अधिकांशमें बाधितही है, फिरभी दोनोंको शाब्दबोध बराबर होता जाता है, और उक्त कलह आगे आगे गगनस्पर्शि प्रचण्डरूपको धारण करते चला जाता है, अतः यह सिद्ध हुआकि अत्यन्त—असदर्थविषयक शाब्दबोधकोभी शब्द उत्पन्न करता है। परन्तु उक्त कलहस्थलमें अनाप्तप्रणीतत्त्व होनेसे उस शाब्दबोधमें प्रमात्व नहीं रहता है, और अत्र=श्रौतार्थ स्थलमें तो अबाधात्=प्रमाणान्तरसे अर्थका बाध न होनेसे स्वतः प्रामाण्यनिश्चलाम्=स्वतः सिद्ध प्रामाण्यके होनेसे अप्रामाण्यज्ञानसे अनास्कन्दित प्रमाको उत्पन्न करता है। वेदान्तकल्पलतिकामें इस अर्थका विस्तार द्रष्टव्य है। एतेन=इस कथनसे चरमज्ञानको मिथ्यात्व होनेपरभी उसके विषयका मिथ्यात्व नहीं है, अतः अद्वैतज्ञानमें व्यभिचार होनेसे ज्ञानका मिथ्यात्व विषयके मिथ्यात्वका साधक नहीं है यह कथन निरस्त हुआ। 'एतेन' शब्दके अर्थको स्पष्ट करते हैं, श्रुत्येति। श्रुतिसेही द्वैतमात्रके निषेध्यत्वका बोधन होनेसे। और अद्वैतज्ञानके विषयमें तो मिथ्यात्वबोधक प्रमाणके न होनेसेही सत्यत्व है। तद्विषयकज्ञानके मिथ्यात्वसे नहीं। इति= अतः द्वैतीका यह कथनभी कुछ गणनाके लायक नहीं है।

ननु—द्वैतज्ञानाद्वैतज्ञानयोरभेदे कथं बाध्यबाधकभावः न च व्यावहारिकभेदमात्रेण सः। द्वैतज्ञानस्यापि बाधकत्वापत्तेरिति चेन्न, व्यावहारिकभेदमात्रस्य बाधकत्वाप्रयोजकत्वात्। यद्धि परीक्षितप्रमाणभावत्वेन बलवत् तत् बाधकम् यत्तु सन्दिग्धप्रमाणभावत्वेन दुर्बलम् तत् बाध्यमिति व्यवस्थायां द्वैतज्ञानस्य दुर्बलत्वेन अबाधकत्वस्याद्वैतज्ञानस्य च बलवत्त्वेन बाधकत्वस्य शब्दप्रत्यक्षबलाबलविचारे दर्शितत्वात्।

शङ्कते नन्विति। द्वैतज्ञान तथा अद्वैतज्ञान इन दोनोंका अभेद होनेपर बाध्यबाधकभाव कैसे है? व्यावहारिक भेदमात्रसे सः=बाध्यबाधकभाव है, नच=नहीं हो सकता है, क्यों? द्वैतज्ञानकोभी बाधकत्वकी आपत्तिसे=व्यावहारिक तो द्वैतज्ञानभी है, अतः वहभी बाधक हो जायगा इति चेन्न, क्यों? व्यावहारिक भेदमात्रको बाधकत्वके प्रति अप्रयोजकत्व होनेसे=व्यावहारिक भेद होनेसेही वह बाधक हो जाता है, ऐसा नहीं है, यत्=जो परीक्षित है प्रमाणभाव जिसका एवंभूत होनेसे बलवत् है=परीक्षितप्रामाण्याधिकरण होनेसे जो बलवत् है तत्=वह बाधक है और जो सन्दिग्ध है प्रमाणभाव जिसका एवम्भूत होनेसे दुर्बल है=संशयितप्रामा-

ण्याधिकरण होनेसे जो दुर्वल है तत्=वह बाध्य है, ऐसी व्यवस्थाके होनेपर दुर्वलत्व होनेसे द्वैतज्ञाननिष्ठअबाधकत्वको और बलवत्ता होनेसे अद्वैतज्ञाननिष्ठ बाधकत्वको शब्द तथा प्रत्यक्ष इन दोनोंके बलाबलविचारमें तथा प्रकृतविचारमेंभी दर्शित होनेसे, यहाँपर 'प्रकृतविचारेच' इतना शेष समझना अर्थात् इतना और भी मूलकारको विवक्षित है।

यत्तु "आपो वा इदं सर्वं भूतमित्यादिश्रुतिः" विमतं जलाभिन्नम् प्रतीतत्वात् जलवदित्यनुमानं वा स्वबाधकस्य जलाभेदं गृहीत्वा निर्बाधं सत् त्वदुक्तन्यायेन सर्वस्य जलाभेदं बोधयेत्–इति तन्न, जलाभेदबोधनेऽपि बाध्यबाधकयोरैक्याबोधनात् बाधकस्य बाधकत्वोपपत्तेः, ऐक्यज्ञानभेदज्ञानयोः बाध्यबाधकभावस्य जलाभेदज्ञानेनानपत्यात्। बाधकाभेदो हि बाधकत्वाभावे प्रयोजकः बाधकस्य स्वबाधकत्वादर्शनात्। अतो न बाध्यबाधकैक्यज्ञानस्य जलाभेदज्ञानसाम्यम्।

'आपो वा इदं सर्वम्' (महा०नारा०उप० १४।१) इत्यादिश्रुति या विमत जलसे अभिन्न है प्रतीत होनेसे जलवत् यह अनुमान स्वबाधकका जलके साथ अभेदग्रहणकर निर्बाध हुआ त्वदुक्तन्यायसे सर्वका जलके साथ अभेद सिद्ध करेगा, इति यत्=इत्याकारक जो कथन है तन्न=वह सम्यक् नहीं, क्यों? जलके साथ अभेद होनेपरभी बाध्य तथा बाधक इन दोनोंके ऐक्यके अबोधनसे बाधकके बाधकत्वकी उपपत्तिसे, ऐक्यज्ञान तथा भेदज्ञान इन दोनोंके बाध्यबाधक-भावको जलाभेदज्ञानसे अपाय न होनेसे। बाधकके साथ अभेद बाधकत्वाभावमें प्रयोजक है, बाधकको स्वबाधकत्वके अदर्शनसे। अतः बाध्यबाधकके ऐक्यज्ञानका जलाभेदज्ञानके साथ साम्य नहीं है।

एतेन—सर्वं सर्वस्माद्भिन्नमिति मद्वाक्यमद्वैतवाक्यतज्ज्ञानतद्विषयाणां तेभ्यो भेदमादौ गृहीत्वा निर्बाधं सत् सर्वभेदे पर्यवस्यतीतिनिरस्तम्। बाध्यबाधकयोरभेदे बाधकत्वाभाववत् भेदेऽपि बाधकत्वं न स्यादित्यत्र हेत्वभावात् पूर्वोक्तदोषाच्चेतिदिक्। सर्वासत्त्वम् सर्वमिथ्यात्वान्नातिरिच्यते। अतः–सर्वमसदिति प्रत्यवस्थानमनवकाशम्।

एतेन=इस कथनसे, सर्वं सर्वस्माद्भिन्नम्, यह मेरा वाक्य अद्वैतवाक्य और अद्वैतवाक्यका भान, और भानका विषय इन सबोंका इन सबोंसे प्रथम भेदग्रहण कर निर्बाध हुआ सर्वके भेदमें पर्यवसित होगा, यह निरस्त हुआ। 'एतेन' पदका स्पष्टीकरण करते हैं बाध्येति। बाध्य तथा बाधक इन दोनोंका अभेद होनेपर जैसे बाधकत्वाभाव है तैसे भेद होनेपरभी बाधकत्व न होगा इस अर्थमें हेतुका अभाव होनेसे और पूर्वोक्तसेभी=भेदज्ञानको स्वसेभी भेदसिद्धिकी आपत्तिसे बाधकत्वाभावकी आपत्ति है, स्वसे अतिरिक्त सर्वभेदविषयकत्व कहनेपर अद्वैतवादिके प्रति असिद्धि है। और 'सर्वासत्त्व' सर्व मिथ्यात्वसे अतिरिक्त नहीं है अतः 'सर्वमसत्' इत्याकारक प्रत्यवस्थान अनवकाश है।

ननु—श्रुत्या सर्वस्य मिथ्यात्वं वा बोध्यते ब्रह्माभिन्नत्वम् वा। आद्ये सर्वं खल्विदं

ब्रह्मेतिसामानाधिकरण्यं न स्यात् । सत्यानृतयोरैक्यायोगात् । द्वितीये (इदंरजतम्) गौरोहमित्यादिभ्रमाणां प्रमात्वं स्यात् । आत्मनि देहादिभेदस्यानृताद्व्यावृत्तेश्च बोधकानां वेदान्तानां नेदरजतमित्यादिबाधकस्यचाप्रमाण्यं स्यात् । घटज्ञानेनैव तदभिन्नब्रह्मतद्भेदादेः सर्वस्यापि वस्तुतो ज्ञातत्वेन सार्वज्ञ्यं, वेदान्तानां वैयर्थ्यम् सद्यो मोक्षश्च स्यात् सुखदुःखबन्धमोक्षभेदाभेददूषणभूषणजयपराजयभ्रान्तिप्रमादादेरपि वस्तुतो भेदाभावेन सर्वसङ्करापत्त्या स्वक्रियास्वन्यायस्ववचनविरोधाश्च स्युरिति चेन्न, आद्ये 'मृद्घटः', इदं रजतमित्यादाविवोपादानोपादेयभावेनापि सामानाधिकरण्योपपत्तेः, द्वितीये वस्तुतो भेदाभावेऽपि आविद्यकभेदमादाय सर्वव्यवस्थोपपत्तेः । नच भेदस्यापि अनाविद्यकब्रह्माभिन्नत्वेनाविद्यकत्वायोग इति वाच्यम्' आविद्यकत्वस्याप्याविद्यकस्यैवाङ्गीकारात् । अथाविद्यकत्वस्यापि ब्रह्माभिन्नत्वात् कथमाविद्यकत्वमितिचेत् । तस्मिन्नपि तस्य कल्पितत्वादिति गृहाण ।

शङ्कते नन्विति । श्रुत्या=एकमेवाद्वितीयम्, (छां०६।२।१) इत्यादिश्रुतिओंसे सर्वका मिथ्यात्व बोधन किया जाता है या सर्वका ब्रह्मभिन्नत्व । आदिम पक्ष कहो तो 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' यहाँपर सर्वं तथा इदंका ब्रह्मके साथ सामानाधिकरण्य न होगा, क्योंकि सामानाधिकरण्य 'नीलमुत्पलम्' इत्यादि अभिन्नस्थलोमेंही देखा जाता है और सत्य तथा अनृत इन दोनोंके अभेदके अयोगसे, द्वितीय पक्ष अङ्गीकार करो तो 'इदं रजतम्' 'गौरोऽहम्' इत्यादि भ्रमोंको प्रमात्व होगा=सर्वाभिन्न ब्रह्मके साथ सर्व वस्तुओंको अभिन्न होनेसे सर्ववस्तुओंको सर्वात्मकत्व है इसलिए प्रमात्व होगा, और आत्मामें देहादिप्रतियोगिक भेदके तथा अनृतसे व्यावृत्तिके बोधक वेदान्तोंका और नेदं रजतम् इत्यादि बाधकका अप्रामाण्य होगा=जब सर्वके साथ अभेदही सिद्ध है तब भेदग्राहक ज्ञानका अप्रामाण्य होना अनिवार्य है, और घटके ज्ञानसेही तदभिन्न=घटाभिन्न ब्रह्म और ब्रह्माभेदादि सर्वकोही वस्तुतः ज्ञातत्व होनेसे सार्वज्ञ्य होगा,और वेदान्तका वैयर्थ्य होगा और तुरतही मोक्षभी होगा । सुखदुःख बन्धमोक्ष भेदाभेद दूषणभूषण जयपराजय भ्रान्तिप्रमादिका भी वस्तुतः भेद न होनेसे सर्वसङ्करकी आपत्तिसे स्वन्याय स्वक्रिया तथा स्ववचन इन तीनोंके साथ विरोध होगा, इति चेन्न, क्यों ? आद्यपक्षमें 'मृद् घटः' 'इदं रजतम्' इत्यादिकी नाईं उपादानोपादेयभावसेभी सामानाधिकरण्यकी उपपत्तिसे । द्वितीयपक्षमें वस्तुतः भेद न होनेपरभी आविद्यक भेदको लेके सर्वव्यवस्थाकी उपपत्तिसे । भेदकोभी अनाविद्यक ब्रह्मके साथ अभिन्न होनेसे आविद्यकत्वका अयोग है इति न च वाच्यम्, क्यों ? आविद्यकही आविद्यकत्वकाभी अङ्गीकार होनेसे=आविद्यकत्वभी आविद्यकही अङ्गीकार किया जाता है । अथ=यदि ऐसा कहो कि आविद्यकत्वकोभी ब्रह्माभिन्नत्व होनेसे कैसे आविद्यकत्व है तो उस ब्रह्ममें आविद्यकत्वको कल्पित होनेसे आविद्यकत्व है इस रीतिसे ग्रहण कर ।

ननु—मुक्तावाविद्यकस्यापि भेदस्याभावेन आनन्दस्य दुःखाभिन्नत्वेनापुरुषार्थ-

त्वापातः तत्तदसाधारणस्वभावस्य तत्र तत्राभावेऽपि तत्तदभेदे पारिभाषिकोऽयमभेदो, भेदे पर्यवस्येत् असाधारणरूपेण भेदमभ्युपेत्य सद्रूपेण भेदनिषेधेऽपि इष्टापत्तिरप्रसक्तनिषेधश्चेति चेन्न, एकस्यामेव ब्रह्मव्यक्तौ तत्तदसाधारणस्वभावानां कल्पितत्वेन असत्वात् सर्वकल्पनानिषेधकाले कल्पितधर्मावच्छिन्नभेदाभेदादिप्रसक्तेरयोगात् अतएव नाप्रसक्तनिषेध इष्टापत्तिर्वा, सद्द्रव्यं सन् गुण इत्यादिप्रतीत्या प्रसक्तानां तत्तद्धर्माणां ब्रह्मणि प्रतिषेधात् । अतः सर्वधर्मशून्यायाः एकस्या एव सद्व्यक्तेः चिदानन्दरूपायाः प्रतिपादनान्न पारिभाषिकोऽयमभेद इतिसिद्धम् । तदेवम् सर्वं ब्रह्माभिन्नमिति मते मिथ्याभूतस्य ब्रह्मभेदेऽपि सन्मात्रमेव ब्रह्माभिन्नम् इति मते वा न प्रत्यक्षादिविरोधः नापि पूर्वोत्तरविरोधः ।

इत्यद्वैतश्रुतेर्बाधोद्धारः

शङ्कते नन्विति । मुक्तिमें आविद्यक भेदकाभी अभाव होनेसे आनन्दको दुःखाभिन्नत्व होनेसे अपुरुषार्थत्वका आपात है और तत्तद्रूपक्तिवृत्ति असाधारणस्वभावका तिस तिस पदार्थमें अभाव होनेपरभी तत्तदभेदे=तिस तिस वस्तुका तिस तिस वस्तुके साथ अभेद होनेपर यह पारिभाषिक अभेद भेदमें पर्यवसित होगा । असाधारणरूपसे भेदको अङ्गीकार कर सद्रूपसे भेदका निषेध होने परभी इष्टापत्ति है और अप्रसक्तका निषेध है इतिचेन्न क्यों ? एकही ब्रह्म व्यक्तिमें तत्तदसाधारण स्वभावोंको कल्पित होनेसे निषेध—योग्यत्व है, अतः । सर्वकल्पनानिषेधकाले= सर्वकल्पनानिषेधकालोपलक्षित मुक्तिमें कल्पितधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदाभेदादिकी प्रसक्तिका अयोग होनेसे । अतएव=द्वितीयमात्रको सद्रूपब्रह्ममें कल्पित होनेसे ही अप्रसक्तका प्रतिषेध तथा इष्टापत्ति नहीं होसकती है, सद् द्रव्यम् सन् गुणः इत्यादि प्रतीतिओंसे प्रसक्त जो तत्तद्धर्म उन धर्मोंका ब्रह्ममें प्रतिषेध होनेसे । अतः सर्व धर्मसे शून्य एकही चिदानन्दरूप सद्व्यक्तिका प्रतिपादन होनेसे यह अभेद पारिभाषिक नहीं है=यादृशभेदका ज्ञान यद्विषयकप्रमासे उच्छेद्य हो तादृशभेदका विरोधी अभेद वही होता है, और भेदमात्रका ज्ञान अखण्डचिद्रूप उक्त व्यक्तिविषयक प्रमासे उच्छेद्य है उक्त चिद्रूपव्यक्तिको सर्वका अधिष्ठान होनेसे अतः उक्त चिद्रूपव्यक्तिही सर्वभेदका विरोधी जो अभेद तद्रूप है यह भाव है, सो इसरीतिसे ' सर्व ब्रह्मसे अभिन्न है ' इस मतमें या मिथ्याभूतका ब्रह्मके साथ भेद होनेपरभी सन्मात्रही ब्रह्माभिन्न है इस मतमें प्रत्याक्षादिके साथ विरोध नहीं है और पूर्वोत्तरका विरोधभी नहीं है ।

इति सरलायामद्वैतश्रुतेर्बाधोद्धारः ।

अथ एकमेवेत्यादिश्रुत्यर्थविचारः ।

ननु—यद्यपि सलिल एको द्रष्टा अद्वैत इत्यत्र सलिलशब्दस्य तत्सादृश्यात् स्वच्छत्वमात्रपरत्वात् तस्य च सर्वमलासंसर्गित्वस्वरूपस्याद्वैतेऽप्युपपत्तेः । सदेव सोम्येदमग्र आसीदित्यत्र चाग्रपदस्य तदैक्षत नामरूपे व्याकरोदित्यादेश्च कालेक्षणनामरूपा-

त्मकप्रपञ्चप्रापकस्याविद्यकद्वैतविषयकत्वेन वास्तवाद्वैतविरोधित्वाभावः । तथापि सदेव सौम्येदमग्र आसीदित्यनेन इदंशब्दबोधितस्य विश्वस्य सदभेदेन सत्त्वमुक्त्वा पुनरद्विती-यपदेन तन्निषेधे व्याघातः नहि सदासीदित्यस्यासदासीदित्यर्थ इति चेन्न, सद्व्यतिरे-केण नासीदित्यर्थस्यैव निषेधार्थत्वात् विवृतंचैतत् भाष्यकारादिभिरारम्भणाधिकरणे ।

अथ सरलायामेकमेवेत्यादिश्रुत्यर्थविचारः ।

शङ्कते नन्विति । यद्यपि (सलिल एको द्रष्टाअद्वैत) (बृ०४।३।३२) इत्यत्र= एतद्वाक्यघटक सलिलशब्दको=सलिलवाचक शब्दको तत्सादृश्यात्=सलिलके सादृश्यसे स्वच्छ-त्वमात्र परत्व होनेसे सर्वमलासंसर्गिरूप तस्य=स्वच्छत्वको अद्वैतमेंभी उपपन्न होनेसे वास्तव जो अद्वैत तादृश अद्वैतके साथ विरोधित्वका अभाव है और कालईक्षणनामरूपादिरूपप्रपञ्चप्रापक जो 'सदेवसौम्येदमग्र आसीत्' (छां० ६।८।२) इत्याकारक वाक्यघटक अग्रपद तथा 'तदै-क्षतनामरूपे व्याकरोत्' (छां० ६।३।३) एतद्वाक्यघटक ऐक्षतादिपद हैं उन पदोंको आविद्यक-द्वैतविषयकत्व होनेसे तात्त्विकअद्वैतविरोधित्वका अभाव है, तथापि 'सदेवसोम्येदमग्र आसीत्' इस वाक्यसे इदंशब्दसे उक्त विश्वका सदभेदप्रयुक्त सत्त्वको कहकर फिर अद्वितीयपदसे तन्निषेधे=विश्वका निषेध होनेपर प्रपञ्चमें प्रतीत सत्त्वका व्याघात है क्योंकि सदासीत्का अर्थ असदासीत् नहीं होसकता है, इतिचेन्न क्यों ? सद्रूपसे भिन्नहोकर नहीं था इसकोही निषे-धार्थत्व होनेसे, भाष्यकारादिकोंसे यह आरम्भणाधिकरणमें (वे० २।२।६) विवृत हुआ है ।

नच सद्व्यतिरेकेणासत्वोक्तौ सदात्मना सत्यत्वमागच्छतीति वाच्यम् । आग-च्छतु नाम कोहि ब्रह्माभिन्नस्यासत्वसाधनाय प्रवृत्तो यो बिभीयात् । अद्वैतवाक्यस्य च षड्विधतात्पर्यलिङ्गवत्तया बलवत्त्वेनाविद्यकद्वैतप्रतिपादकत्वं सृष्ट्यादिवाक्यानामिति श्रवणस्वरूपनिरूपणे वेदान्तकल्पलतिकायामभिहितमस्माभिः । इहाप्यभिधास्यते षड्वि-धतात्पर्यलिङ्गानि प्रदर्शयद्भिः । अत एकविज्ञानेन सर्वविज्ञानप्रतिज्ञयोपक्रमात्, एतदा-त्म्यमिदं सर्वं तत्सत्यं स आत्मा तत्त्वमसीत्युपसंहाराच्च, अद्वैतस्यैव महाप्राकरणिकतया, तदनुसारेण तद्वाक्यस्थपदानां व्याख्येयत्वावधारणात् । नानार्थपदानामर्थान्तरोपस्था-पकत्वसम्भवेऽपि प्रकृतवाक्यार्थानन्वयितया तत्परित्यागेन प्रकृतवाक्यार्थानुकूलपदार्थो-पस्थितिपरत्वमेवास्थेयम् ।

सद्रूपसे भिन्न होके असत्त्वकी उक्ति होनेपर सदात्मना सत्यत्व आता है, इति न च वाच्यम्, क्यों ? आओ, सदात्मना सत्त्व; कौन ब्रह्माभिन्नके असत्त्वसाधनके लिए प्रवृत्त है जो आपकी उक्तिसे बिभीत हो, और अद्वैत वाक्योंको षड्विधतात्पर्यलिङ्गोपेतत्वप्रयुक्त बलवत्ता होनेसे आविद्यकद्वैतकाही प्रतिपादकत्व सृष्ट्यादि वाक्योंको है यह हमसे वेदान्तकल्पलतिकामें अभिहित हुआ है । षड्विधतात्पर्यलिङ्गोंको दिखलाते हुए हमसे यहाँभी यह अर्थ कहाजायगा । अतः

एकविज्ञानसे सर्वविज्ञानविषयिणी जो प्रतिज्ञा उस प्रतिज्ञासे उपक्रम होनेसे और 'एतदात्म्यमिदं सर्वं तत्सत्यं स आत्मा तत्त्वमसि (छां० ६।१६।३) इत्याकारक उपसंहारसे अद्वैतकोही महाप्रकरणप्रतिपाद्य होनेसे तदनुसारेण=महाप्राकरणिकाद्वैतानुसारसे प्रकरणवाक्यस्थपदोंके व्याख्येयत्वका अवधारण होनेसे नानार्थ पदोंको अर्थान्तरके उपस्थापकत्वका सम्भव होनेपरभी, प्रकृतवाक्य जो 'एकमेवाद्वितीयम्' उसका अर्थ जो अद्वितीयत्वादिसे उपलक्षित अखण्डचिद्रूप उसमें अनन्वयि होनेसे तत्परित्यागेन=प्रकृतवाक्यार्थमें अनन्वित अर्थान्तरके परित्यागसे प्रकृतवाक्यार्थानुकूल जो पदार्थोपस्थिति तादृशपदार्थोपस्थितिपरत्वही अङ्गीकार्य है।

तत्र न द्वितीयमद्वितीयमिति तत्पुरुषाभ्युपगमे न द्वितीयम्। किन्तु प्रथमं तृतीयं चेत्यर्थः स्यात्, स च न सम्भवति, तयोरपि किञ्चिदपेक्ष्य द्वितीयत्वात् अतो न विद्यते द्वितीयं यत्रेतिबहुव्रीहिरेवादरणीयः। नच एकेनैवाद्वितीयपदेन भेदत्रयनिषेधसम्भवे एकावधारणपदयोर्वैयर्थ्यमितिवाच्यं विजातीयं किञ्चिदपेक्ष्य द्वितीयत्वावच्छिन्ननिषेधस्याद्वितीयशब्दार्थत्वात्। अयञ्चात्रसङ्कोचो वलीवर्दपदसन्निधानात् गोपद इव सजातीयस्वगतभेदनिषेधकैकावधारणपदसन्निधिप्रयुक्त एव, तदुक्तम्—वृक्षस्य स्वगतो भेदः पत्रपुष्पफलादिभिः। वृक्षान्तरात्सजातीयो विजातीयः शिलादितः। तथा सद्वस्तुनो भेदत्रयं प्राप्तं निवार्यते। एकावधारणाद्वैतप्रतिषेधैस्त्रिभिः क्रमात्। इति स्वगतभेदः नानात्वरूपजीवेश्वरभेदः। सजातीयभेदोऽत्र द्रव्यात्वादिना सजातीयपृथिव्यादिभेदः। विजातीयभेदो गुणादिभेदः।

तत्र=उक्तविध व्यवस्थाके होनेपर द्वितीय न हो उसका नाम है अद्वितीय इत्याकारक तत्पुरुषका अभ्युगम होनेपर द्वितीय नहीं है किन्तु प्रथम और तृतीय है यह अर्थ होगा, सो तो सम्भवित नहीं है, तयोरपि=प्रथम तृतीय इन दोनोंकोभी किसीकी अपेक्षासे द्वितीयत्व होनेसे, अतः नहीं विद्यमान है द्वितीय जिसमें इत्याकारक बहुव्रीहि ही आदरणीय है। एक अद्वितीय पदसेही भेदत्रयके निषेधका सम्भव होनेपर एक तथा अवधारणार्थक एव इन दोनों पदोंका वैयर्थ्य है इति नच वाच्यम्, क्यों? किञ्चिद्विजातीयकी अपेक्षाकर=किञ्चिद्विजातीयत्वविशिष्ट द्वितीयत्वावच्छिन्नके निषेधको अद्वितीयशब्दार्थत्व होनेसे; और यहाँपर यह जो द्वितीयपदको विजातीय—द्वितीयपरत्वरूप सङ्कोच किया गया है वह बलीवर्द पदके सन्निधानसे गोपदकी नाईं सजातीय तथा स्वगतभेदके निषेधक जो एक तथा अवधारणार्थक एव ये दोपद हैं इन दोनों पदोंकी जो सन्निधि तादृशसन्निधिसे प्रयुक्त है=गोपद अनेकार्थकप्रसिद्ध है परन्तु वलीवर्दपदकी जहाँ सन्निधि होती है वहाँ वलीवर्द पदार्थकोही कहता है तद्वत्। तदुक्तम्=यह अर्थ कहा गया है। पत्रपुष्पफलादिकके साथ वृक्षका स्वगत भेद है, अन्यवृक्षसे सजातीयभेद है और शिलादिसे विजातीयभेद है। तैसे एक तथा एव एवं अद्वितीय इन तीनों पदोंसे क्रमशः वस्तुत्व सामान्यसे अनात्माकी तरह आत्मवस्तुनिष्ठत्वेन प्राप्त भेदत्रय निवारण किया

जाता है। नानात्वरूप जीवेश्वरके भेदका नाम है स्वगतभेद, और यहाँपर द्रव्यत्वेन सजातीय जो पृथिव्यादि तादृश पृथिव्यादिके भेदका नाम है सजातीयभेद, गुणादिके भेदका नाम है विजातीयभेद।

अथवा जडभेदो विजातीयभेदः। चैतन्यभेदः सजातीयभेदः। ज्ञानानन्दादिधर्मभेदः स्वगतभेदः। यदि च अस्य गोर्द्वितीयोऽन्वेष्टव्य इत्युक्ते गौरेव द्वितीयोऽन्विष्यते। नाश्वो न गर्दभः इति महाभाष्यानुसारात् समानजातीयद्वितीयपरत्वम् द्वितीयशब्दस्य तदा अद्वितीयशब्दस्य सजातीयभेदनिषेधपरत्वम्, विजातीयस्वगतभेदनिषेधपरत्वन्तु एकावधारणपदयोर्यथेष्टं व्याख्येयम्। अथवा अद्वितीयपदेनैव भेदत्रयनिषेधः एकावधारणपदे तु सङ्कोचशङ्कापरिहाराय। यत्तु केनचित् प्रलपितं द्वितीयशब्दः सहायवाची। असिद्वितीयोऽनुससार पाण्डवमिति प्रयोगात्। असिद्वितीयः असिसहायः इतिमहाभाष्योक्तेश्च। तथाचाद्वितीयमसहायमित्यर्थोऽस्तु एवमेकशब्दस्यापि नानार्थत्वेनाविरुद्धार्थमादायोपपत्तौ न मिथ्यात्वपर्यवसायितास्थेया।

अथवा जडके भेदका नाम विजातीय भेद है, चैतन्यके भेदकानाम सजातीय भेद है, और ज्ञानानन्दादि धर्मके भेदका नाम स्वगतभेद है। और यदि इस गौका द्वितीय अन्वेष्य है। इत्याकारक कथन होनेपर द्वितीय गौ ही अन्वेषित होता है न अश्व और न गर्दभ, इस महाभाष्यानुसार समानजातीय जो द्वितीय तादृशद्वितीयपरत्व द्वितीय शब्दको है, तब अद्वितीय पदको सजातीय भेदनिषेधपरत्व है और विजातीयस्वगतभेदनिषेधपरत्व एकावधारण पदोंको यथेष्ट व्याख्येय हैं। अथवा अद्वितीयपदसेही भेदत्रयका निषेध है और एक तथा अवधारण ये दोनों पद सङ्कोचकी शङ्काके परिहारके लिए हैं। द्वितीयशब्द सहायका वाची है 'असिद्वितीयोऽनुससारपाण्डवम्' इत्याकारक प्रयोग होनेसे, असिद्वितीयः=असिसहायः इत्याकारक महाभाष्यकी उक्तिसेभी फलतः अद्वितीयम्का अर्थ असहाय रहो, ऐसेही एकशब्दकोभी नानार्थक होनेसे अविरुद्धार्थको लेकर उपपत्ति होनेपर मिथ्यात्वमें पर्यवसायिता अङ्गीकार्य नहीं है।

तथात्र 'एके मुख्यान्यकेवला' इत्यमरः। एकशब्दोऽयमन्यप्रधानासहायसंख्याप्रथमसमानवाचीति "एकोगोत्र इतिसूत्रे कैयटः। ष्णान्तापडिति सूत्रे महाभाष्यकारोऽपि एकशब्दोऽयं बह्वर्थः। अस्ति संख्यार्थः। अस्त्यसहायवाची। अस्त्यन्यार्थ इत्यादि व्याख्यातवान् तथाच जीवादिभ्योऽन्यत्वं प्राधान्यं वा एकशब्दार्थोऽस्तु। एवमन्यान्यपि श्रुतिपदानि व्याख्येयानीति। तत्पूर्वोक्तयुक्तिभिरपास्तम्। विस्तरेण च वक्ष्यते तात्पर्यनिरूपणे। तदेवं सद्रूपे ब्रह्मणि पदत्रयेण भेदत्रयनिषेधात् तद्भिन्नमिथ्यात्वे पर्यवसितम् एकमेवाद्वितीयमिति वाक्यम्। एवमन्या अपि श्रुतयः स्मृतयश्च ग्रन्थविस्तरभयान्नोदाहृताः। स्वयमेव सूरिभिराकरे द्रष्टव्याः।

इत्यद्वैतसिद्धौ सर्वाद्वैतश्रुतेः अद्वैततात्पर्यकत्वनिर्णयः।

तथाच एकशब्द मुख्य अन्य केवल इन तीन अर्थोंको कहनेवाला है यह अमरसिंहका कथन है, तथा यह एकशब्द अन्य प्रधान असहाय सङ्ख्या, प्रथम, समान, इतने अर्थोंका वाची है, यह 'एकोगोत्रे' (अष्टा० ४।१।९३) इस सूत्रके पासमें कैय्यटने कहा है, 'ण्णान्तापट्' (अष्टा० १।१।२४) इस सूत्रके पासमें महाभाष्यकारनेभी–यह एक शब्द बहुत अर्थवाला है–सङ्ख्यार्थक है, असहायवाची है, अन्यार्थक है इत्यादि व्याख्यान किया है। फलतः जीवादिकोंसे अन्यत्व वा प्राधान्य एक शब्दका अर्थ रहो, ऐसेही अन्यभी श्रुतिपद व्याख्येय हैं, इति=ऐसा यत्=जो केनचित्=किसीसे प्रलपितम्=कहा गया है तत्=वह पूर्वोक्त युक्तिओंसेही अपास्त है। और विस्तरसे कहा जायगा तात्पर्य निरूपणमें, सो इस रीतिसे सद्रूप ब्रह्ममें पदत्रयसे भेदत्रयके निषेधसे तद्भिन्नमिथ्यात्व=ब्रह्मभिन्नके मिथ्यात्वमें पर्यवसित हुआ 'एकमेवाद्वितीयम्' यह वाक्य। इसी रीतिसे अन्यभी श्रुतियाँ तथा स्मृतियाँ ग्रन्थके विस्तरभयसे उदाहरणत्वेन उपन्यस्त नहीं कीं। विद्वानोंसे स्वयं ही भाष्यादिमें द्रष्टव्य हैं।

इति सरलायामेकमेवेत्यादिश्रुत्यर्थनिर्णयः।

अथ ज्ञाननिवर्त्यत्वान्यथानुपपत्तिः।

तरति शोकमात्मवित्, तथा विद्वान् नामरूपाद्विमुक्तः, भिद्यन्ते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः। क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे, इत्यादिश्रुतिस्मृतिबोधितज्ञाननिवर्त्यत्वान्यथानुपपत्तिरपि बन्धमिथ्यात्वे प्रमाणम्। सत्यत्वे ब्रह्मवदनिवर्त्यत्वापत्तेः तथाहि–शुक्तिरूप्यरज्जुसर्पादौ ज्ञाननिवर्त्यत्वे न तावत्तद्रूपवत्वम् ज्ञाननिवर्त्यतावच्छेदकम् अननुगमात्। किन्तु सर्वानुगतं मिथ्यात्वमेवाज्ञानकल्पितत्वापरपर्यायमवच्छेदकम्। एवं ज्ञानस्यापि तन्निवर्त्तकत्वे न शुक्त्यादिविषयत्वमवच्छेदकम् अननुगमात्। किन्तु सर्वानुगतमधिष्ठानप्रमात्वमेव। तथाच यत्र ज्ञानस्याधिष्ठानप्रमात्वेन निवर्त्तकता तत्र मिथ्यात्वेन निवर्त्यता इति नियमः सिद्ध्यति एतादृशनियमानभ्युपगमे चानन्तनियमकल्पनागौरवरूपो बाधकस्तर्कः।

अथ सरलायां ज्ञाननिवर्त्यत्वान्यथानुपपत्तिः।

आत्मवित् शोकको तरता है (छां० ७।१।३) विद्वान् नामरूपसे विमुक्त हुआ (मुं० ३।२।८) प्रसिद्ध परावरके अपरोक्ष होनेपर हृदयग्रन्थि भिन्न होती है, सर्व संशयछिन्न होते हैं, और इस द्रष्टाके कर्मक्षीण होते हैं, (मुं० २।२।८) इत्यादि श्रुति स्मृतिसे बोधित जो ज्ञाननिवर्त्यत्व उस ज्ञाननिवर्त्यत्वकी अन्यथा अनुपपत्तिभी बन्धके मिथ्यात्वमें प्रमाण है; सत्यत्व होनेपर ब्रह्मवत् अनिवर्त्यत्वकी आपत्तिसे। तथाहि=इसी अर्थको स्पष्ट करते हैं शुक्तिरूप्य तथा रज्जुसर्प इत्यादिमें जो ज्ञाननिवर्त्यत्व है उस ज्ञाननिवर्त्यत्वमें तत्तद्रूपवत्त्व ज्ञाननिवर्त्यतामें अवच्छेदक नहीं है=ज्ञाननिष्ठनिवर्त्तकतानिरूपित जो शुक्तिरूप्यादिनिष्ठ निवर्त्यता है, वह

निवर्त्यता शुक्तिरूप्यत्वादिरूप—तत्तद्रूपावच्छिन्न नहीं है अननुगम होनेसे=तत्तद्रूपोंको निवर्त्यताके समनियत न होनेसे । किन्तु सर्वमें अनुगत मिथ्यात्व ही अवच्छेदक है, जिसका कि, अज्ञानकल्पितत्व दूसरा पर्य्याय है, ऐसे ही, ज्ञाननिष्ठ जो शुक्तिरूप्यादिका निवर्त्तकत्व है उस निवर्त्तकत्वमेंभी शुक्त्यादिविषयत्व अवच्छेदक नहीं है, अननुगम होनेसे=सकलनिवर्त्तकनिष्ठ न होनेसे किन्तु सर्व निवर्त्तकोमें अनुगत अधिष्ठानप्रमात्वही निवर्त्तक है, फलतः यह नियम बना कि जहाँ ज्ञानको अधिष्ठानप्रमात्वेन निवर्त्तकता है तहाँ मिथ्यात्वेन निवर्त्यता है । एतादृश नियमका न अभ्युपगम होनेपर अनन्तनियमोंकी कल्पनारूप जो गौरव तद्रूपही बाधक तर्क है ।

तथाहि—यन्निष्ठा यदाकारा प्रमारूपान्तःकरणवृत्तिरुदेति तन्निष्ठं तदाकारमज्ञानं नाशयतीतिनियमस्य सिद्धत्वात् । उपादाननाशस्य चोपादेयनिवर्त्तकत्वात्, शुक्त्यादिज्ञानेन तत्तदाकाराज्ञाननाशे तदुपादेयानां रजतादीनां निवृत्तिरौचित्यवर्जितैवेतिनियमान्तराकल्पनेन लाघवमनुकूलतर्कोऽस्मत्पक्षे अज्ञानोपादेयत्वञ्च शुक्तिरजतादीनामन्वयव्यतिरेकसिद्धमग्रे स्थास्यति । एवंस्थिते कृत्स्नस्यापि प्रपञ्चस्यात्मप्रमानिवर्त्यत्वे तदज्ञानकल्पितमेव तत्रावच्छेदकं कल्प्यते । नत्वनुगतमाकाशत्वादि, न वा ब्रह्मभिन्नत्वं सद्भिन्नत्वं वा सर्वानुगतमपि, तुच्छेऽतिप्रसक्तेः तद्वारकविशेषणप्रक्षेपे तु सदसद्विलक्षणत्वरूपमिथ्यात्वमेव निवर्त्यताप्रयोजकं पर्यवसितम् । अन्यथा नियमान्तरकल्पनागौरवापत्तेः तथाच शुक्त्यादिज्ञानस्य येन रूपेण निवर्त्तकत्वम् तेन रूपेणात्मज्ञानस्य निवर्त्तकत्वम्, रूप्यादौ येन रूपेण निवर्त्यत्वं प्रपञ्चे तद्रूपं विना अनुपपाद्यमानं स्वोपपादकतया तत्र तद्रूपं कल्पयतीति सिद्धं मिथ्यात्वम् ।

तथाहि—यन्निष्ठा=विषयतासम्बन्धसे यन्निष्ठ यदाकारप्रमारूपान्तःकरणकी वृत्ति उदय होती है, तन्निष्ठतदाकार अज्ञानको नष्टकरती है, इस नियमको सिद्ध होनेसे, और उपादानके नाशको उपादेयके निवर्त्तकत्वसे, शुक्त्यादिके ज्ञानसे तत्तदाकार अज्ञानका नाश होनेपर तदुपादेयानाम्=तत्तदाकार जो अज्ञान उस अज्ञानके उपादेय रजतादिकी निवृत्ति औचित्यसे विशिष्ट ही है, इस रीतिसे नियमान्तरके न कल्पनेसे लाघवरूपानुकूलतर्क हमारे पक्षमें है, और शुक्तिरूप्यादिका अन्वयव्यतिरेकसिद्ध अज्ञानोपादेयत्व तो आगे स्थित होगा । ऐसी स्थितिके होनेपर सर्व प्रपञ्चको आत्मप्रमासे निवर्त्यत्व होनेपर तदज्ञानकल्पितमेव=आत्माज्ञानकल्पितत्वही तत्र=निवर्त्यत्वमें अवच्छेदक कल्पना कियाजाता है, अनुगत आकाशत्वादि नहीं, और सर्वमें अनुगतभी ब्रह्मभिन्नत्व, या सद्भिन्नत्व नहीं, तुच्छमें अतिप्रसक्ति होनेसे, असद्रूपतुच्छवारक विशेषणका प्रक्षेप होनेपर तो असद्विलक्षणत्वरूप मिथ्यात्वही निवर्त्यताका प्रयोजक पर्यवसित होगा, अन्यथा नियमान्तरकी कल्पनारूप गौरवकी आपत्ति है । फलतः शुक्त्यादिज्ञानको जिसरूपसे रजतादिका निवर्त्तकत्व है तिस रूपसे आत्मज्ञानको प्रपञ्चके प्रति निवर्तकत्व है और रूप्यादिमें जिस रूपसे निवर्त्यत्व है प्रपञ्चमें तद्रूपके विना अनुपपाद्यमान हुआ वह निवर्त्यत्व स्वोपादकत्वेन तत्र=प्रपञ्चमें तद्रूपकी कल्पना करता है, इस रीतिसे सिद्ध हुआ प्रपञ्चमें मिथ्यात्व ।

ननु—भवेदेतदेवम्; यदि आत्मज्ञानस्य प्रपञ्चे निवर्त्ये, शुक्त्यादिज्ञानसाधारणमधिष्ठानप्रमात्वमेवावच्छेदकमित्यत्र किञ्चिन्मानं भवेत् रूपान्तरेणापि निवर्तकत्वसंभवात्। श्रुतिस्तु द्वैतप्रपञ्चस्याद्वितीयात्मज्ञानं निवर्त्तकमित्येतावन्मात्रे मानम्। नत्ववच्छेदकविशेषेऽपि। नच ज्ञाननिवर्त्यतामात्रान्मिथ्यात्वसिद्धिः। सेतुदर्शनादिनिवर्त्यदुरितादिषु व्यभिचारात्। तत्र विहितक्रियात्वादिना निवर्तकत्वान्न व्यभिचार इति चेत्, प्रकृतेऽपि रूपान्तरं नावच्छेदकमिति कुतो निरणायि? ज्ञानस्य हि स्वप्रागभावं प्रति प्रतियोगित्वेन निवर्त्तकता, पूर्वज्ञानादिकं प्रति तु उत्तरविरोधिगुणत्वेन संस्कारं प्रति फलत्वेन रागादिकं प्रति विषयदोषदर्शनत्वेन विषं प्रति गरुडध्यानत्वेन सेत्वादिदर्शनस्य दुरितं प्रति विहितक्रियात्वेन एवञ्च मिथ्यात्वं विनापि ज्ञाननिवर्त्यत्वदर्शनात्, न तन्मिथ्यात्वस्य साधकम्, उदाहृतेष्वपि सत्यत्वासंप्रतिपत्त्या मिथ्यात्वमेवास्तीति चेत् अस्तु वा मास्तु ज्ञाननिवर्त्यत्वमात्रं तु न तस्य साधकमिति ब्रूमः, हेत्वन्तरेण सिद्धौ चैतदुपन्यासो व्यर्थः। शुक्तिरूप्यादौ कथमिति चेच्छृणु; अधिष्ठानज्ञानत्वेन तत्र ज्ञानस्य निवर्त्तकत्वात्। अधिष्ठानज्ञानत्वं हि अज्ञाननाशकज्ञानत्वं वा, अज्ञानसमानविषयकप्रमात्वं वा, इति तेन रूपेण निवर्त्तकत्वे तन्निवर्त्यस्य तज्ज्ञानसमानविषयकाज्ञानोपादानकत्वरूपमिथ्यात्वं सिध्यतीति युक्तं शुक्त्यादिज्ञानसमानविषयकाज्ञानोपादानकत्वेन रजतादेर्मिथ्यात्वम् सेत्वादिदर्शनादिनिवर्त्यदुरितादेस्तु न निवर्त्तकज्ञानसमानविषयकाज्ञानोपादानकत्वमिति न मिथ्यात्वम्। एवञ्चात्मज्ञानस्यापि विहितक्रियात्वेन निवर्त्तकत्वसंभवात् अधिष्ठानज्ञानत्वेनच निवर्त्तकत्वे मानाभावात्, नात्माज्ञानोपादानकत्वरूपमिथ्यात्वसिद्धिः प्रपञ्चस्येति-प्राप्तम्।

शङ्कते नन्विति यह ऐसा हो सकताथा यदि प्रपञ्चनिष्ठनिवर्त्यतानिरूपितआत्मज्ञाननिष्ठनिवर्तकताका शुक्त्यादिज्ञानसाधारणअधिष्ठानप्रमात्वही अवच्छेदक है, इत्यत्र=इस अर्थमें कुछभी प्रमाण होता, रूपान्तरसेभी निवर्त्तकत्वका संभव होनेसे। और श्रुतितो द्वैत प्रपञ्चका अद्वितीयआत्मज्ञाननिवर्त्तक है, एतावन्मात्रमें प्रमाण है, अवच्छेदक विशेषमें नहीं, और ज्ञाननिवर्त्यतामात्रसे मिथ्यात्वकी सिद्धि है, ऐसाभी नहीं कह सकते हो, क्यों? सेतुदर्शनादि–निवर्त्य जो दुरितादि उन दुरितादिमें व्यभिचार होनेसे, तत्र=उक्त दुरितादिमें विहितक्रियात्वादिसे सेतुदर्शनादिको निवर्त्तकत्व होनेसे व्यभिचार नहीं है, ऐसा यदि कहो तो प्रकृतेऽपि=निवर्त्तकशुक्त्यादिज्ञानोंमेंभी अवच्छेदक रूपान्तर नहीं है, किन्तु भवदुक्तही है, यह किससे निर्णय किया। यतः ज्ञानको स्वकीय प्रागभावके प्रति प्रतियोगित्वेन निवर्त्तकता है, और पूर्वज्ञानादिके प्रतितो उत्तरविरोधिगुणत्वेन निवर्तकता है, संस्कारके प्रति स्मृतिरूपज्ञानको फलत्वेन निवर्त्तकता है, रागादिके प्रतिज्ञानको विषयदोषदर्शनत्वेन निवर्त्तकता है, विषके प्रति ज्ञानको गरुड़ध्यानत्वेन निवर्त्तकता है, सेत्वादिदर्शनको दुरितादिके प्रति विहितक्रियात्वेन निवर्त्तकता है, इस रीतिसे मिथ्यात्वके विनाभी ज्ञाननिवर्त्यत्व देखनेसे, तत्=ज्ञाननिवर्त्यत्व मिथ्यात्वका साधक नहीं, उदाहृतस्थलोंमेंभी

सत्यत्वकी असंप्रतिपत्तिसे मिथ्यात्वही है, इतिचेत्=ऐसा यदि कहो तो, मिथ्यात्व हो या न हो ज्ञाननिवर्त्यत्वमात्र मिथ्यात्वका साधक नहीं है यह हम कहते हैं। और हेत्वन्तरसे मिथ्यात्वकी सिद्धि होनेपर ज्ञाननिवर्त्यत्वका उपन्यास व्यर्थ है, शुक्तिरूप्यादिमें मिथ्यात्व कैसे है, ऐसा यदि पूँछो तो सुनो, अधिष्ठानज्ञानत्वेन तहाँ ज्ञानको निवर्त्तकत्व है और अधिष्ठानज्ञानत्व तो अज्ञाननाशकज्ञानत्वरूप है, या अज्ञानसमानविषयकप्रमात्वरूप है इस रीतिसे तेन रूपेण=अज्ञाननाशकज्ञानत्वरूपसे या अज्ञानसमानविषयकप्रमात्वरूपसे निवर्त्तकत्व होनेपर तन्निवर्त्यस्य=उक्तज्ञाननिवर्त्यका तज्ज्ञानसमानविषयक जो अज्ञान तादृशाज्ञानोपादानकत्वरूपमिथ्यात्वसिद्ध होगा। अतः युक्त है, शुक्त्यादिविषयक जो ज्ञान तादृशज्ञानसमानविषयक जो अज्ञान तादृशाज्ञानोपादानकत्वेन रजतादिका मिथ्यात्व; सेत्वादिविषयक जो दर्शनादि तादृशदर्शनादिनिवर्त्य जो दुरितादि तादृशदुरितादिको स्वनिवर्त्तक जो ज्ञान तादृशज्ञानसमानविषयक जो अज्ञान तादृशाज्ञानोपादानकत्व नहीं है, अतः मिथ्यात्व नहीं है, इस रीतिसे आत्मज्ञानकोभी विहित क्रियात्वेन निवर्तकत्वका सम्भव होनेसे और अधिष्ठानज्ञानत्वेन निवर्त्तकत्वमें मानका अभाव होनेसे आत्माज्ञानोपादानकत्वरूप मिथ्यात्वकी सिद्धि प्रपञ्चनिष्ठ नहीं है, यह प्राप्त हुआ।

अत्रोच्यते, आत्मज्ञानस्याप्यधिष्ठानज्ञानत्वेनैव प्रपञ्चं प्रति निवर्त्तकत्वम्, प्रकारान्तरासंभवात् तथाहि प्रतियोगित्वं तावन्नावच्छेदकम्; प्रपञ्चस्य भावरूपत्वात् ज्ञानस्य प्रागभावनिवृत्तिरूपत्वेन प्रतियोगित्वेन प्रागभावनिवर्त्तकत्वासिद्धेश्च। नाप्युत्तरगुणत्वम्, आकाशादेरात्मगुणत्वाभावात्, इच्छादेरपि प्रपञ्चनिवर्त्तकत्वापाताच्च। नापि फलत्वम्, संस्कारस्य स्मरणजनकत्ववदाकाशादेरात्मज्ञानत्वाभावात् संस्कारस्य स्मृत्यनाश्यत्वेनोदाहरणासिद्धेश्च। विषयदोषदर्शनस्य तु रागादिनिवर्त्तकत्वम् रागादिकारणीभूतबलवदनिष्टाननुबन्धीष्टसाधनत्वभ्रमरूपतत्कारणनिवर्त्तकत्वेनेति न प्रकृतोदाहरणादतिरिच्यते; शुक्तिरूप्यतुल्यत्वात् गरुडध्यानन्तु न प्रत्युदाहरणम् ध्यानस्य रागादेरिव ज्ञानत्वानभ्युपगमात्, ज्ञानस्येच्छाधीनत्वेन तदधीनज्ञानापेक्षया वैलक्षण्यात्, स्पष्टं चैतदाकरे। ज्ञानत्वेऽपि तस्य सेतुदर्शनपक्षान्नातिरेकः, शास्त्रविहितत्वविशेषात्। केवलं सेत्वादिदर्शनवद्विहितक्रियात्वमवशिष्यते। तच्च न संभवति, ज्ञानस्य कर्तुमकर्तुमशक्यत्वेन विधेयत्वायोगात्। विस्तरेण च ज्ञाने विधिराकरेषु निराकृतः। निराकरिष्यते चेहापि।

यहाँ कहा जाता है–शुक्तिज्ञानकी नाईं आत्मज्ञानकोभी अधिष्ठानज्ञानत्वेन ही प्रपञ्चके प्रति निवर्त्तकता है, प्रकारान्तरका असम्भव होनेसे, तथाहि–प्रकारान्तरके असम्भवको दिखलाते हैं, प्रतियोगित्व अवच्छेदक नहीं हो सकता है, प्रपञ्चको भावरूप होनेसे,=आपने प्रतियोगित्वेन ज्ञानको अभावके प्रति निवर्तकता बतलाई है, न कि भावके प्रति। और ज्ञानको प्रागभावका निवृत्तिरूपहोनेसेही प्रतियोगित्वेन प्रागभावकी निवृत्तिकी असिद्धिसेभी। उत्तरगुणत्वभी निवर्त्तकताका अवच्छेदक नहीं हो सकता है, आकाशादिको आत्मविशेषगुणत्वका अभाव होनेसे=

आत्मज्ञानसे निवर्त्य जो आकाशादि हैं वे यदि आत्माके गुण होते तो उक्त ज्ञानको उत्तर-विशेषगुणत्वेन निवर्त्तकता कही जा सकती थी परन्तु ऐसा नहीं है, अतः उत्तरगुणत्व अवच्छेदक नहीं हो सकता है, और इच्छादिकोभी प्रपञ्चके निवर्त्तकत्वके आपातसेभी यह पक्ष असङ्गतही है, फलत्वभी अवच्छेदक नहीं है, क्यों? जैसे संस्कारको स्मृतिजनकत्व है, तैसे आकाशादिको ज्ञानजनकत्वका अभाव होनेसे। और संस्कारको स्मृतिसे अनाश्य होनेसे, उदाहरणकी असिद्धिसेभी। और विषयदोषदर्शनको रागादिका निवर्त्तकत्व तो बलवदनिष्टका अननुबन्धि=अजनकत्वविशिष्ट जो इष्टसाधनत्व तादृशइष्टसाधनत्वका जो भ्रम तादृशभ्रमरूप जो रागादिका कारण तादृशकारणनिवर्त्तकत्वेन है, अतः शुक्तिरूप्यके तुल्य होनेसे प्रकृतोदाहरणसे अतिरिक्त नहीं होता है, और गरुड़का ध्यान तो प्रत्युदाहरण नहीं हो सकता है, क्यों? ध्यानको रागादिकी तरह ज्ञानत्वका अभाव होनेसे=जैसे राग ज्ञान नहीं है, तैसे ध्यानभी ज्ञान नहीं है। ज्ञानको इच्छाके अनधीन होनेसे तदधीनध्यानापेक्षया=इच्छाधीन ध्यानकी अपेक्षासे वैलक्षण्य होनेसे=प्रमाण प्रमेयका सम्बन्ध होनेपर इच्छाके विनाभी ज्ञान होता है, और ध्यान इच्छाके विना नहीं होता है, अतः दोनोंका वैलक्षण्य है, शारीरक भाष्यादिमें यह अर्थ स्पष्ट है। ध्यानको ज्ञानत्व होनेपरभी सेतुदर्शनपक्षसे इसका भेद नहीं है, शास्त्रसे विहितत्वको तुल्य होनेसे। केवल सेत्वादिदर्शनवत् विहितक्रियात्वपक्ष अवशिष्ट रहा है, और वहभी सम्भवित नहीं ज्ञानको करनेके लिए या न करनेके लिए अशक्य होनेसे विधेयत्वका अयोग है, और शब्दसमुदायसे ज्ञानमें विधि शारीरक भाष्यादिमें निराकृत है, यहाँभी निराकृत की जायगी।

सेतुदर्शने कथमितिचेत्? विशिष्टाकारेण विधेयत्वोपपत्तिः। नहि सेतुदर्शनमात्रस्यदुरितनाशकत्वम्, तत्रत्यम्लेच्छानामपि दुरितनाशप्रसङ्गात्, किन्तु परराष्ट्रादुपस्थानादिपूर्वकव्रतकलापविशिष्टस्य, तथाच छत्रपादुकादिवर्जनदोषोद्घोषणदूरदेशगामित्वभिक्षाभोजित्वादिनियमानां कृतिसाध्यत्वात् तद्विशिष्टं सेतुदर्शनमपि कृतिसाध्यमिति विशिष्टरूपेण विधानोपपत्तिः। आत्मज्ञाने तु नास्ति किञ्चिद्विशेषणमपि कृतिसाध्यम्, येन तद्विशिष्टत्वेनापि विधेयत्वं स्यात्; कर्मसमुच्चयस्य निराकरिष्यमाणत्वात्, बन्धस्याज्ञानमात्रहेतुकत्वेन ज्ञानातिरिक्तनिवर्तकानपेक्षणाच्च। बन्धस्याज्ञानहेतुकत्वञ्च 'मायां तु प्रकृतिं विद्यात्' अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः (गी० ५।१५) इत्यादिश्रुतिस्मृतिन्यायसिद्धम्। वक्ष्यते चाग्रे। अज्ञान-निवर्त्तकज्ञानस्य चोत्पत्तिमन्तरेणान्यापेक्षा नास्तीति शुक्त्यादिज्ञाने दृष्टम्। तथाचोक्तम्-वार्तिककृद्भिः-तत्त्वमस्यादिवाक्योत्थसम्यग्धीजन्ममात्रतः। अविद्या सह कार्येण नासीदस्ति भविष्यति। इति। प्रत्यग्याथात्म्यधीरेव प्रत्यगज्ञानहानिकृत्। सा चात्मोत्पत्तितो नान्यद् ध्वान्तध्वस्तौ अपेक्षते। इति च।

सेतुदर्शनमें विधि कैसे है, ऐसा यदि कहो तो विशिष्टाकारसे सेतुदर्शनको विधेयत्वकी उपपत्ति है, सेतुके दर्शनमात्रको दुरितका नाशकत्व नहीं है, तहाँ होनेवाले म्लेच्छोंकेभी दुरि-

तके नाशके प्रसङ्गसे । किन्तु परदेशसे उपस्थानपूर्वक व्रतकलापसे विशिष्ट सेतुदर्शनको दुरितनाशकत्व है, फलतः छत्रपादुकाप्रभृतिका वर्जन, और अपने दोषकी उद्घोषणा, तथा दूरदेशसे गामित्व और भिक्षाभोजित्वादि जो नियम हैं उन नियमोंको कृतिसाध्यत्व होनेसे तद्विशिष्टम्=उक्तनियमविशिष्ट सेतुदर्शनभी कृतिसाध्य है, इसरीतिसे विशिष्टके विधेयत्वकी उपपत्ति है । और आत्मज्ञानमें तो कोई विशेषणभी कृतिसाध्य नहीं है, जिससे कि तादृशविशेषणविशिष्टत्वेनापि आत्मज्ञानको विधेयत्व हो । कर्मसमुच्चयको पराकरिष्यमाण होनेसे, और बन्धको अज्ञानहेतुक होनेसे, ज्ञानातिरिक्त निवर्त्तककी अपेक्षा न होनेसेभी समुच्चयवाद असङ्गतही है । और बन्धको अज्ञानहेतुत्व तो 'मायां तु' (श्वेत० ४।१०) इत्यादि श्रुतिस्मृतिन्यायसे सिद्ध है, कहा जायगा यह अर्थ आगे । और अज्ञाननिवर्त्तक ज्ञानको स्वोत्पत्तिके विना अन्यकी अपेक्षा नहीं है, यह शुक्त्यादिज्ञानमें दृष्ट है । यह अर्थ वार्तिककारोंसे कहा गया है—वार्तिककारके इस वाक्यका अर्थ मिथ्यात्वनिरुक्तिमें हो चुका है । प्रत्यग्याथात्म्यधीरेव=जीवसाक्षिविषयक यथार्थ ज्ञानही प्रत्यक्के अज्ञानकी निवृत्ति करनेवाला है, साच=उक्त धी ध्वान्तध्वस्तौ=अन्धकाररूपाज्ञानकी निवृत्तिमें आत्मोत्पत्तितः=अपनी उत्पत्तिसे अन्यकी अपेक्षा नहीं करती है।

अत एव यत्र हि द्वैतमिव भवति तदितर इतरं पश्यति । यत्र त्वस्य सर्वमात्मैवाभूत् तत् केनकं पश्येत् इत्यादि श्रुतिः । यानिशासर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी । यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः ॥ इत्यादिस्मृतिश्चाविद्यावस्थायां संसारोपलम्भं विद्यावस्थायां च तदनुपलम्भं दर्शयति । तस्मादधिष्ठानप्रमात्वेनात्मज्ञानविवर्त्यत्वाच्छुक्तिरूप्यादिष्विव बन्धेऽपि मिथ्यात्वं सिद्धम् । यत्त्वीश्वरज्ञानेन सत्यं घटादि निवर्तत इति प्रत्युदाहरणम् तन्न ईश्वरज्ञानस्य तार्किकमतेऽपि उपादानगोचरापरोक्षज्ञानत्वेनैव कारणत्वात्, अभावस्य च निरुपादानत्वात्, अभावं प्रतिकारणत्वे मानाभावात्, सोपादानत्वे तु समवेतत्वेन तस्यापि भावत्वापत्तेः अत्यन्ताभावादिवच्च तदजन्यत्वेऽपि ध्वंसस्य तद्विषयत्वोपपत्तेः न च तादृगीश्वरज्ञाने संप्रतिपत्तिरप्यन्येषामिति न काप्यनुपपत्तिः ।

अतएव=ज्ञानोत्पत्तिमात्रसे संसारके उच्छेदसेही, यत्रहि द्वितमिव भवति (बृ० ४।५।१५) इत्यादिश्रुति और यानिशा सर्वभूतानाम् (गी० २।६९) इत्यादि स्मृति अविद्यावस्थामें संसारके उपलम्भको दिखलाती है, और ज्ञानावस्थामें संसारके अनुपलम्भको दिखलाती है । तस्मात् जैसे अधिष्ठानज्ञानत्वेन निवर्त्य होनेसे शुक्तिरूप्यादिमें मिथ्यात्व है, तैसे अधिष्ठानज्ञानत्वेन आत्मज्ञानसे निवर्त्यबन्धमेंभी मिथ्यात्व सिद्ध होता है । और जो ईश्वरज्ञानसे सत्यघटादि निवृत्त होते हैं यह प्रत्युदाहरण है=ज्ञानसे सत्यकी निवृत्ति देखनेमें आती है अतः ज्ञाननिवर्त्यत्वेन मिथ्यात्वसिद्ध नहीं हो सकता है इस अभिप्रायसे जो उक्त प्रत्युदाहरण है वह ठीक नहीं है, क्यों ईश्वरज्ञानको न्यायमतमेंभी उपादानगोचरापरोक्षज्ञानत्वेनैव कारणत्व होनेसे, और अभावको निरुपादानत्व होनेसे, अभावके प्रति कारणत्वमें मानका अभाव होनेसे । सोपादानत्वे=

अभावको सोपादानत्व होनेपर समवेतत्वेन उसकोभी भावत्वकी आपत्ति है, और अत्यन्ताभाववत् ध्वंसको ईश्वरके ज्ञानसे अजन्यत्व होनेपरभी ईश्वरज्ञानके विषयत्वकी उपपत्ति है। और तादृशेश्वरज्ञाने=ध्वंसकारणीभूतेश्वरज्ञानमें अन्योंकी सम्प्रतिपत्तिभी नहीं है, अतः कोई अनुपपत्ति नहीं।

यथा च शुक्त्यादिज्ञानस्य रूप्यादिनिवर्त्तकत्वमप्रामाण्यज्ञानविरहमपेक्ष्यैव, एवमात्मज्ञानस्यापि श्रवणादिनिवृत्तावसंभावनादिनिवृत्तिरूपाप्रामाण्यज्ञानविरहापेक्षत्वमिति, न किंचिदधिकं कल्पितम्। आत्मज्ञानस्य सर्वसुकृतसाध्यत्वं शुक्त्यादिज्ञानपेक्षया विलक्षणमितितु दृष्टान्तदार्ष्टान्तिकयोर्वैधर्म्यमात्रोद्भावनात् वैधर्म्यसमाजातिः। अज्ञानस्य च समानाधिकरणसमानाकारज्ञाननिवर्त्यत्वम्। जीवन्मुक्तौ च प्रारब्धकर्मप्रतिबन्धेन बन्धनाशाविलम्बइत्यादिसर्वमुपरिष्टादुपपादयिष्यते। सत्यस्य ज्ञाननिवर्त्यत्वे तु आश्रयविषयोभयसम्बन्धित्वादिना अतिप्रसङ्गो विवरणकारैर्वर्णितः। तस्मादधिष्ठानज्ञानत्वेन ज्ञाननिवर्त्यत्वं मिथ्यात्वे प्रमाणमिति सिद्धम्॥

इत्यद्वैतसिद्धौ ज्ञाननिवर्त्यत्वान्यथानुपपत्तिः।

और जैसे शुक्त्यादिज्ञानको रूप्यादिका निवर्त्तकत्व अप्रामाण्यज्ञानके विरहकी अपेक्षा करकेही है, ऐसेही आत्मज्ञानकोभी श्रवणादिकी निवृत्तिमें असम्भावनादिकी निवृत्तिरूप जो अप्रामाण्यका विरह तादृशविरहसापेक्षत्व है। इस रीतिसे कुछभी अधिक कल्पित नहीं है, आत्मज्ञानको सर्वसुकृतसाध्यत्व शुक्त्यादिके ज्ञानकी अपेक्षासे विलक्षण है, यह तो दृष्टान्त तथा दार्ष्टान्तिक इन दोनोंके वैधर्म्यमात्रका उद्भावन है, अतः वैधर्म्यसमा जाति है, और अज्ञानको समानाधिकरण तथा समानाकार ज्ञानसे निवर्त्यत्व है, जीवन्मुक्तिमें प्रारब्धकर्मरूप-प्रतिबन्धसे बन्धके नाशमें विलम्ब होता है, इत्यादि ऊपर उपपादन किया जायगा। सत्य पदार्थको ज्ञानसे निवर्त्यत्वमें आश्रयसम्बन्धसे विषयसम्बन्धसे और उभयसम्बन्धसे नाश माननेपर अतिप्रसङ्ग विवरणकारसे वर्णित है,=ज्ञानसे सत्यकी निवृत्ति होती है, तो यह बताना चाहिए कि ज्ञानका जो आश्रय उस आश्रयसे सम्बद्ध जो सत्य उस सत्यकी निवृति होती है, या ज्ञानका जो विषय उस विषयसे सम्बद्ध जो सत्य उस सत्यकी निवृत्ति होती है, या ज्ञानके विषय तथा आश्रय इन दोनोंके साथ सम्बद्ध जो सत्य उस सत्यकी ज्ञानसे निवृत्ति होती है, प्रथमपक्ष नहीं कह सकते हो क्योंकि 'अहम्' इत्याकारक जो ज्ञान होता है, उस ज्ञानसे स्वाश्रयमें सम्बद्ध धर्मादिका नाश नहीं होता है, द्वितीय पक्षभी नहीं कह सकते हो क्योंकि, नीलपीत अवयवीका जो नीलत्वेन ज्ञान होता है उस ज्ञानसे पीतिमादिकी अनिवृत्तिसे। तृतीय पक्षभी ठीक नहीं, क्योंकि देहविषयक ज्ञानसे देह तथा आत्माके तादात्म्यकी निवृत्ति नहीं होती है। तस्मात् अधिष्ठानज्ञात्वेन ज्ञाननिवर्त्यत्व मिथ्यात्वमें प्रमाण है, यह सिद्ध हुआ।

इति सरलायां ज्ञाननिवर्त्यत्वान्यथानुपपत्तिः।

अथ दृष्टिसृष्ट्युपपत्तिः।

शुक्तिरूप्यस्वप्नादिवत् दृष्टिसृष्ट्यन्यथानुपपत्त्यापि जगतो मिथ्यात्वसिद्धिः। अथ केयं दृष्टिसृष्टिः? (१) दृष्टिरेवसृष्टिरिति वा (२) दृष्टिव्यतिरिक्तसृष्ट्यभावोवा वा (३) दृष्टिव्यतिरेकेण सृज्याभावोवा वा (४) दृष्टिसामग्रीजन्यत्वं वा (५) दृष्टिसमानकालीनसृष्टिर्वा (६) दृष्टिसमानसत्ताकसृष्टिर्वा (७) सदसद्विलक्षणत्वं वा (८) त्रिविधसत्त्वबहिर्भूतत्वे सत्यसद्विलक्षणत्वं वा (९) अज्ञातसत्त्वाभावो वा (१०) ज्ञातैकसत्त्वं वा। आद्ये वृत्तिरूपा, चैतन्यरूपा वा, दृष्टिरभिमता, प्रथमे चरमवृत्तिविषयब्रह्मणोऽपि दृष्टिसृष्ट्यापत्तिः। द्वितीये सर्वदापि सृष्ट्यापत्तिः। न द्वितीयः; चैत्रेण सृष्टो मया दृष्ट इतिवैलक्षण्येन व्यवहारानुपपत्तेः। न तृतीयः ज्ञातो घटो न ज्ञानमिति अनुभवविरोधात्। न चतुर्थः एकसामग्रीप्रसूतत्वेन घटादेर्दृष्ट्यभिन्नत्वेनान्तरोक्तदोषात्। न पञ्चमः शाब्दादिज्ञानसमकालोत्पन्नघटादौ सिद्धसाधनात्, तद्वदन्यत्रार्थान्तरतापत्तेश्च। न षष्ठः; उभयसत्वेऽप्यनुपपत्तेः सिद्धसाधनात्। न सप्तमः अस्यैव मिथ्यात्वरूपत्वेन तत्साधनायैव तदुपन्यासानुपपत्तेः। नाष्टमः; त्रिविधसत्त्वमध्ये प्रातिभासिकसत्त्वस्याप्यन्तर्भावेन दृष्टिसृष्टिपक्षे तद्वति जगति तद्बहिर्भावानुपपत्तेः। न नवमः तुच्छसाधारण्यात्। न दशमः सुखादौ सिद्धसाधनात्, तद्वदन्यत्रार्थान्तराच्चेति—चेन्न;

अथ सरलायां दृष्टिसृष्ट्युपपत्तिः।

शुक्तिरूप्यस्वप्नादिवत् दृष्टिसृष्टिकी अन्यथानुपपत्तिसेभी जगत्के मिथ्यात्वकी सिद्धि है;= जैसे दृष्टिसृष्टिकी अन्यथानुपपत्तिसे शुक्तिरुप्य तथा स्वप्नादिका मिथ्यात्व है तैसे दृष्टिसृष्ट्यन्यथानुपपत्त्या जगतका मिथ्यात्व है। प्रश्न करते हैं अथेति। यह दृष्टिसृष्टि वक्ष्यमाणविकल्पोंमेंसे किं रूप है? क्या दृष्टि ही सृष्टि है, यह पक्ष है, या दृष्टिसे व्यतिरिक्त सृष्टिका अभाव दृष्टिसृष्टिशब्दका अर्थ है। अथवा दृष्टिसे व्यतिरिक्त सृज्यका अभाव है। या दृष्टिसामग्रीजन्यत्व दृष्टिसृष्टिशब्दका अर्थ है, या दृष्टिसमानकालीन सृष्टि। अथवा दृष्टिकी सत्ताके समानसत्ताक सृष्टि, अथवा सदसद्विलक्षणत्वका नाम दृष्टिसृष्टि है, या त्रिविध सत्त्वसे शून्य होकर असद्विलक्षणत्वरूप दृष्टिसृष्टि है, अथवा अज्ञातसत्वके अभावको दृष्टिसृष्टिकहते हैं, या ज्ञातैकसत्त्वका नाम दृष्टिसृष्टि। आद्ये=प्रथमपक्षमें दृष्टि क्या वृत्तिरूपा अभिमत है, या चैतन्यरूपा, प्रथमे=वृत्तिरूप दृष्टिपक्षमें चरमवृत्तिका विषयीभूत जो ब्रह्म उस ब्रह्मकोभी दृष्टिसृष्टिकी आपत्ति है। द्वितीये= चैतन्यरूपदृष्टिपक्षमें सर्वदा ही सृष्टिकी आपत्ति है=चैतन्यरूपदृष्टिको सार्वदिक होनेसे तद्रूपसृष्टिकोभी सार्वदिकत्व होगा। नद्वितीयः=द्वितीयपक्षभी नहीं बनसकता है, क्यों? चैत्रसे बनाया गया और मुझसे देखा गया इत्याकारक वैलक्षण्यसे व्यवहारकी अनुपपत्तिसे, नतृतीयः= तृतीय पक्षभी नहीं बनसकता है क्यों? घट ज्ञात हुआ है, ज्ञान नहीं इत्याकारक अनुभवके साथ

विरोध होनेसे । चतुर्थ पक्षभी ठीक नहीं, क्यों ? एक सामग्रीसे प्रसूत होनेसे घटादिको दृष्टिके साथ अभिन्नत्व होनेसे तृतीय पक्षमें उक्त दोषका सद्भाव होनेसे ।=(ज्ञातो घटो न ज्ञानम्) यह अनुभव दोनोंके अभिन्न होनेपर अनुपपन्न है। पञ्चमभी नहीं बनसकता है, क्यों ? शाब्दादि ज्ञानके समकालमें उत्पन्न जो घटादि उन घटादिमें सिद्धसाधन होनेसे, तैसे अन्यत्र= स्थायिघटादिमें अर्थान्तरकी आपत्तिसेभी । छठा पक्षभी ठीक नहीं, क्यों ? दोनोंका सत्व होनेपरभी छट्ठे पक्षको उपपन्न होनेसे सिद्ध साधनसे । सप्तमभी नहीं बनसकता है, क्यों ? इसको ही मिथ्यात्वका रूप होनेसे मिथ्यात्वके साधनके लिए ही मिथ्यात्वके उपन्यासकी अनुपपत्तिसे । अष्टमपक्षभी ठीक नहीं क्यों ? त्रिविध सत्त्वके मध्यमें प्रातिभासिक सत्वकेभी अन्तर्भावसे दृष्टिसृष्टि-पक्षमें तद्वृत्ति=प्रातिभासिकसत्त्ववत्जगत्में प्रातिभासिकसत्वसे बहिर्भा-की अनुपपत्तिसे=प्रातिभासिक सत्वका अनधिकरण होना ही प्रातिभासिकसत्त्वसे बहिर्भाव है उसकी दृष्टिसृष्टिपक्षमें अनुपपत्ति है । नवमभी नहीं बनसकता है, क्यों ? तुच्छसाधारण्य होनेसे । दशमभी ठीक नहीं, क्यों ? सुखादिमें सिद्धसाधन होनेसे तद्वत् स्थायित्वेन अभिमत जीवेशादिमें अर्थान्तर है,=जीवेशादिरूपस्थायि पदार्थोंमें ज्ञातैकसत्त्वरूप दृष्टिसृष्टि नहीं है, अतः उनमें मिथ्यात्व सिद्ध न होगा किन्तु सत्यत्व सिद्ध होगा परन्तु शुद्धसे अतिरिक्तमें पारमार्थिक सत्त्व आपको अभिप्रेत नहीं है, अतः आपको अर्थान्तर है । इतिचेन्न, क्यों ?

दोषप्रयुक्तत्वनिबन्धनस्य ज्ञातैकसत्त्वस्याज्ञातसत्त्वाभावस्य वा, प्रतिपन्नोपाधि-दृष्टिजन्यज्ञातैकसत्त्वस्य वा द्रष्ट्रन्तरावेद्यत्वे सति ज्ञातैकसत्त्वस्य वा विवक्षितत्वात् । तथाच न सुखाद्यंशे सिद्धसाधनम् तद्वदन्यत्रार्थान्तरं वा, । ननु जीव ईशो विशुद्धाचित् तथा जीवेशयोर्भिदा, अविद्या तच्चितोर्योगः षडस्माकमनादयः ॥ इति प्राचां वचनेन बौद्धं प्रति प्रत्यभिज्ञानादिना विश्वस्य स्थायित्वप्रतिपादकेन च सूत्रभाष्यविवरणादिग्रन्थेन विरोध इति चेन्न, अनाद्यतिरिक्तसृष्टिविषय एव दृष्टिसृष्टिस्वीकारात् । कारणात्मना च स्थायित्व-स्वीकाराच्च तावतैव बौद्धाभिमतक्षणिकत्वनिराकरणोपपत्तेर्नाकरविरोधः, प्रत्युताकरेषु बहुशो दृष्टिसृष्टिरुपपादितैव ।

दोषप्रयुक्तत्वनिबन्धनस्य=दोषवद्धेतुजन्यज्ञानविषयत्वविशिष्ट जो ज्ञातैकसत्त्व= स्वज्ञानव्याप्यत्व तादृशस्वज्ञानव्याप्यत्वको विवक्षित होनेसे=भ्रमत्वजातिमद्विषयत्वे सति ज्ञातैक-सत्त्व दृष्टिसृष्टिपदसे विवक्षित है, ऊपर ज्ञानव्याप्यत्व जो कहा है वह कालिक लेना चाहिए, अर्थात् स्वविषयकज्ञानानधिकरणकालावृत्तित्व विशेष्यदलका अर्थ है । इस दलको यदि न दें तो भ्रमत्वजातिमद्विषयत्वरूप विशेषण तो द्वैतीके मतमें असत्‌मेंभी है, अतः असत्‌में अतिव्याप्ति हो जायगी, फलतः उक्तस्थलमें अतिव्याप्ति निरासार्थ विशेष दल दिया गया है । या अज्ञात-सत्वाभावको विवक्षित होनेसे=अज्ञातश्च तत्सत्वञ्च इति अज्ञातसत्त्वं तस्याभावः, प्रथमलक्षणमें जो विशेषणांश है । उसका सम्बन्ध विशेषणविधया यहाँभी करना और अर्थभी पूर्ववत्‌ही समझना । विशेष्यदलका फलितार्थ स्वीयाज्ञानाभावव्याप्यत्व है, सुखदुःखादिके होते हुए उनका अज्ञान

कभी नहीं रहता है अतः स्वीयाज्ञानाभावव्याप्यत्व है। प्रतिपन्नोपाधि=अधिष्ठानसामान्यरूप-विषयक जो दृष्टि=वृत्तिरूपज्ञान तादृशज्ञानजन्यत्वविशिष्ट-ज्ञातैकसत्त्वको विवक्षित होनेसे=अधिष्ठानीयसामान्यांशविषयक दृष्टिको आरोप्यमात्रमें हेतुत्व होनेसे जन्यमात्रमें उक्तदृष्टि-जन्यत्व अक्षतही है, या दृष्ट्यन्तरसे अवेद्य होकर ज्ञातैकसत्त्वको विवक्षित होनेसे। फलतः सुखाद्यंशमें सिद्धसाधन नहीं है और अन्यत्र अर्थान्तरभी नहीं; शङ्कते नन्विति। जीव, ईश, विशुद्धाचित्, जीवेशका भेद, अविद्या, अविद्याका चित्के साथ सम्बन्ध, ये षट्पदार्थ हमलोगोंके सिद्धान्तमें स्वरूपसे अनादि हैं। इस प्राचीनोंके वचनके साथ और बौद्धके प्रति प्रत्यभिज्ञादिसे विश्वके स्थायित्वको प्रतिपादन करनेवाले सूत्रभाष्यविवरणादिग्रन्थके साथ विरोध है, इति चेन्न; क्यों? अनादिसे अतिरिक्तमेंही दृष्टिसृष्टिका स्वीकार होनेसे और कारणात्मना स्थायि-त्वके स्वीकारसेभी=सृष्टिविषयेका अर्थ है, सृज्यमाने अर्थात् सृज्यमानमेंही दृष्टिसृष्टिवाद माना जाता है, अनादिमें नहीं और अनादिमें मिथ्यात्वकी सिद्धि दृश्यत्वादि हेतुओंसे होती है, दृष्टिसृष्टिसे नहीं और तितनेमात्रसेही बौद्धाभिमत क्षणिकत्वके निराकरणकी उपपत्तिसे आकर ग्रन्थोंके साथ विरोध नहीं। उलटा आकर ग्रन्थोमें, बहुत प्रकारसे दृष्टिसृष्टि उपपादितही है।

नन्वेवं प्रतीतिमात्रशरीरत्वेन नियतकारणाजन्यत्वे श्रुतिषु स्वर्गाद्यर्थं ज्योतिष्टो-मादिविधेः ब्रह्मसाक्षात्कारार्थं श्रवणादिविधेराकाशादेर्वाय्यादि-हेतुत्वस्य चोक्तिरयुक्ता इति चेन्न, स्वाप्नकार्यकारणभावबोधकवाक्यवदुपपत्तेः। न चैवम्—वेदान्तवाक्यस्य तन्मीमांसायाश्च स्वप्नवाक्यतन्मीमांसातुल्यतापत्तिः। विषयबाधाबाधाभ्यांविशेषो-पपत्तेः। अत एव तृप्त्यर्थं भोजने परप्रत्ययार्थं शब्दादौ च प्रवृत्तेरयोगेन स्वक्रियाव्याघात इति—निरस्तम् स्वाप्नव्यवहारवदुपपत्तेः।

शङ्कते नन्विति। उक्त प्रकारसे नियतकारणसे कार्यको अजन्यत्व होनेपर श्रुतिओंमें स्वर्गादिके लिए ज्योतिष्टोमादिविधिकी उक्ति, तथा ब्रह्मविषयक साक्षात्कारके लिए श्रवणादि-विधिकी उक्ति और आकाशादिको पवनादिके हेतुत्वकी उक्ति अयुक्त हो जायगी इति चेन्न; क्यों? स्वप्नमें होने वाला जो कार्यकारणभाव तादृशकार्यकारणभावबोधकवाक्यवत् उपपत्ति होनेसे=स्वाप्निक कार्यकारणभाव मिथ्या है, उसका बोधक वाक्यभी वस्तुतः मिथ्या है, परन्तु स्वविषयमें ज्ञान उत्पन्न कर देता है, ऐसे ही स्वर्गादिरूप फल और ज्योतिष्टोमादिरूप साधन ये दोनों मि-थ्याही हैं, और इनके कार्यकारणभावका बोधक वेदभी वास्तविक नहीं है, फिरभी स्वप्नवाक्यवत् कार्यकारणभावका बोध वेदसे हो सकता है, वेदान्तवाक्य और वेदान्तवाक्यकी मीमांसा इन दोनोंके स्वप्नवाक्य और स्वप्नवाक्यकी मीमांसाके साथ तुल्यताकी आपत्ति है, नच=नहीं है, क्यों? विषयका जो बाध और अबाध इन दोनोंसे विशेषकी उपपत्ति होनेसे=स्वाप्नवाक्या-दिके विषयका बाध होता है और वेदान्तवाक्योंके मुख्यतात्पर्यके विषयका बाध नहीं होता है, यह विशेषता है, अतएव=विषयकृत वैलक्षण्य होनेसेही, तृप्तिके लिए भोजनमें और अन्यके

प्रबोधके लिए शब्दादिमें प्रवृत्तिके अयोगसे अपनी वचनरूप क्रियाका व्याघात है, यह कथन खण्डित हुआ। स्वप्नव्यवहारवत् उपपत्ति होनेसे।

अथैवं—घटादेः स्वज्ञानात्पूर्वमसत्त्वेन प्रतिकर्मव्यवस्थानुपपत्तिः, अधिष्ठानस्यापि शुक्तीदमंशस्य रूप्यादिवत् 'इदंरजतमिति' ज्ञानात्प्रागसत्त्वेन संप्रयोगादिहेतुत्रयजन्यत्वरूपाध्यासतटस्थलक्षणस्य सत्यस्य वस्तुनो मिथ्यावस्तुसंभेदावभास इति अस्य स्वरूपलक्षणस्य चायोग–इति चेन्न; प्रतिकर्मव्यवस्थायाः संप्रयोगादिहेतुत्रयजन्यत्वरूपाध्यासतटस्थलक्षणस्य च मन्दाधिकारिविषयत्वात् सत्यस्य वस्तुनो मिथ्यावस्तुसंभेदावभास इति स्वरूपलक्षणन्तु दृष्टिसृष्टिपक्षेप्यविरुद्धम्। नहीदमंशावच्छिन्नं चैतन्यं न वस्तु, नवा मिथ्यारूप्यस्य तेन सह न सम्भेदावभासः न च–'इदं रूप्यमितिज्ञानकाले शुक्तित्वादेरभावेनाध्यासस्य तदज्ञानकार्यत्वादिप्रक्रियाविरोध इतिवाच्यम् 'इदं रूप्यमितिज्ञानकाले शुक्तित्वस्याभावेऽपि तदज्ञानस्थित्यविरोधात्। नहि सत्ताकाल इव सत्ताविरहकालेऽपि अज्ञानं विरुध्यते।

शङ्कते अथेति। उक्तविधदृष्टिसृष्टिके अङ्गीकृत होनेपर घटादिको स्वज्ञानसे पूर्वमें न होनेसे प्रतिकर्मव्यवस्थाकी अनुपपत्ति है, और अधिष्ठानीय शुक्तीदमंशकाभी शुक्तिरूप्यवत् 'इदं रजतम्' इत्याकारक भ्रमज्ञानसे पूर्वमें असत्त्व होनेसे संप्रयोगादिहेतुत्रयजन्यत्वरूपाध्यासके तटस्थलक्षणका और सत्यवस्तुका मिथ्यावस्तुके साथ जो संभेद=अभेदावभासरूप अध्यासका स्वरूपलक्षण है, उसका अयोग है, इति चेन्न, क्यों? प्रतिकर्मव्यवस्थाको तथा संप्रयोगादिरूपहेतुत्रयजन्यत्वरूप अध्यासके तटस्थलक्षणको मन्दाधिकारिविषयत्व होनेसे। और सत्यवस्तुका मिथ्यावस्तुके साथ अभेदका अवभासरूप जो अध्यासका स्वरूप लक्षण है, वह तो दृष्टिसृष्टिपक्षमेंभी अविरुद्ध है, क्योंकि इदमंशावच्छिन्न चैतन्य वस्तु नहीं है, यह बात नहीं है, और मिथ्यारूप्यका इदमंशावच्छिन्न चैतन्यके साथ अभेदका अवभास नहीं है, यह बातभी नहीं है। शङ्कते नचेति। 'इदं रजतम्' इत्याकारक जो भ्रमज्ञान है, वह ज्ञान जिस कालमें होता है, उस कालमें शुक्तित्वादिका अभाव होनेसे अध्यासको शुक्तित्वादिके अज्ञानकार्यत्वादिकी प्रक्रियाका विरोध होगा=अधिष्ठानके शुक्तित्वादि विशेषरूपके आच्छादकाज्ञानसे अध्यास होता है, इत्यादि प्रक्रियाका विरोध होगा, क्योंकि जब शुक्तित्वादि नहीं तब उनका अज्ञान कैसे कहा जायगा इति नच वाच्यम् क्यों? 'इदं रजतम्' इत्याकारक ज्ञानकालमें शुक्तित्वका अभाव होनेपर भी शुक्तित्वके अज्ञानकी स्थितिका अविरोध होनेसे, दृष्टिसृष्टिपक्षमें सत्ताकालकी नाईं सत्ताविरहकालमें अज्ञानविरुद्ध नहीं होता है।

नच—इदं रजतं नेदं रजतमिति ज्ञानयोर्भिन्नविषयत्वेन बाध्यबाधकभावानुपपत्तिरिति वाच्यम्, भिन्नविषयत्वेऽपि विषययोः सारूप्यात् स्वप्नबाध्यबाधकयोरिव बाध्यबाधकभावोपपत्तेः। नच रूप्यादिबाधस्यापि दृष्टिसृष्टित्वे तेन रूप्यादेर्मिथ्यात्वा-

सिद्धिरिति वाच्यम् बाधान्यूनकसत्ताकत्वमेव बाधकत्वे प्रयोजकम्, नत्वधिकसत्ताकत्वमित्यस्योपपादितत्वेन व्यावहारिकेण व्यावहारिकबाधवत् प्रातिभासिकेन प्रातिभासिकबाधाविरोधात् । नच सुषुप्तिप्रलयादौ जीवब्रह्मविभागस्याप्रतीतत्वेनाविद्यमानतया प्रतिसुषुप्ति प्रतिप्रलयं च मुक्तस्य पुनरावृत्त्यापत्तिरिति-वाच्यम् जीवब्रह्मविभागादेरनादित्वेन दृष्टिसृष्टित्वानभ्युपगमस्योक्तत्वात् । नच सुषुप्तं प्रति संस्कारादेरप्यभावेन तस्य पुनः प्रबोधायोगः कारणात्मना संस्कारादेः सत्वात् नच मोक्षस्य दृगन्यत्वेन स्वाप्नमोक्षवत् दृष्टिसृष्ट्यापत्तिः मोक्षस्य ब्रह्मस्वरूपत्वेन दृग्भिन्नत्वासिद्धेः ।

शङ्कते नचेति। दृष्टिसृष्टिपक्षमें 'इदं रूप्यम्' 'नेदं रूप्यम्' इन ज्ञानोंको भिन्नविषयत्व होनेसे बाध्यबाधकभावकी अनुपपत्ति है इति न च वाच्यम्; क्यों ? भिन्नविषयत्व होनेपरभी विषयोंके समान स्वरूपसे स्वाप्न बाध्यबाधकोंकी नाई बाध्यबाधकभावकी उपपत्तिसे। रूप्यादिके बाधको भी दृष्टिसृष्टित्व होनेपर तेन=दृष्टिसृष्टित्वेन रूप्यादिके मिथ्यात्वकी असिद्धि है इति नच वाच्यम् क्यों ? बाध्यसे अन्यूनसत्ताकत्वही बाधकत्वमें प्रयोजक है, अधिकसत्ताकत्व नहीं इस अर्थको हेतुनिरूपणावसरमें उपपादित होनेसे व्यावहारिकसे जैसे व्यावहारिकका बाध होता है तैसे प्रातिभासिकसे प्रातिभासिकके बाधमें अविरोध होनेसे । शङ्कते नचेति । सुषुप्ति तथा प्रलयादिमें जीवब्रह्मके विभागको अप्रतीत होनेसे अविद्यमानता है अतः प्रति सुषुप्तिमें तथा प्रतिप्रलयमें मुक्तको पुनरावृत्तिकी आपत्ति है । इति नच वाच्यम् । क्यों ? जीवब्रह्मके विभागको अनादित्व होनेसे उसके दृष्टिसृष्टित्वके अनभ्युपगमको उक्त होनेसे । सुषुप्तके प्रति संस्कारादिकेभी अभावसे तस्य=सुषुप्तके पुनः प्रबोधका अयोग है, नच=अयोग नहीं है, क्यों ? कारणरूपसे संस्कारादिका सत्त्व होनेसे । मोक्षको दृग्रूप चैतन्यसे पृथक् होनेसे स्वाप्नमोक्षवत् दृष्टिसृष्टिकी आपत्ति है, नच=आपत्ति नहीं है क्यों ? मोक्षको ब्रह्मस्वरूपता होनेसे दृग्भिन्नत्वकी असिद्धिसे ।

नच—चैतन्यमात्ररूपा दृष्टिर्न सृष्टिः, किन्तुवृत्तिविशिष्टचैतन्यरूपा वा, वृत्तिरूपा वा, दृष्टिः सृष्टिरितिवाच्यम् चैतन्यमात्रस्य दृष्टित्वे यद्यपि तत्समानसत्ताकतया घटादेः सदातनत्वापत्तिः, तथापि वृत्त्युपहितचैतन्यमेव दृष्टिशब्दार्थः, वृत्तावपि वृत्तिरेव स्वस्वरूपा चैतन्योपाधिरिति नानवस्था । अत एव–दोषज्ञानादृष्टदेहेन्द्रियादीनामभावे न भ्रम इति तेषामपि दृष्टिसृष्टित्वे अनवस्थेति–निरस्तम्–स्वाप्नभ्रमवद्देहेन्द्रियादिनैरपेक्ष्येणाप्युपपत्तेः । अन्वयव्यतिरेकानुविधानं च तद्वदेव । नच दृष्टिसृष्टेरपि दृष्टिसृष्टित्वे घटादेरदृष्टिसृष्टित्वापत्तिरिति–वाच्यम्, ज्ञानस्य ज्ञेयत्वेऽपि विषयस्याज्ञेयत्वाभाववत् दृष्टिसृष्टेर्दृष्टिसृष्टित्वेऽपि घटादेर्दृष्टिसृष्टित्वोपपत्तेः ।

शङ्कते नचेति । चैतन्यमात्ररूप जो दृष्टि है वह तो सृष्टि नहीं है किन्तु वृत्तिविशिष्ट

चैतन्यरूपा या वृत्तिरूपा जो दृष्टि है वह सृष्टि है ऐसा कहना चाहिए तथाच तस्या अपि=उक्तरूपदृष्टिकीभी दृष्टयन्तररूप सृष्टि कहनी चाहिए और दृष्ट्यन्तररूप सृष्टिके लिए दृष्ट्यन्तरान्तररूप सृष्टि कहनी चाहिए और यों ही आगे बढनेसे अनवस्था हो जायगी इति न च वाच्यम्; क्योंकि चैतन्यमात्रको दृष्टित्व होनेपर यद्यपि चैतन्यसमानसत्ताकतया घटादिके सदातनत्वकी आपत्ति है, तथापि वृत्त्युपहित चैतन्य ही दृष्टिशब्दका अर्थ है, वृत्तिमें भी वृत्तिही स्वस्वरूपभूत हुई चैतन्यकी उपाधि है। अतः अनवस्था नहीं। अतएव दोष अज्ञान अदृष्ट तथा देहेन्द्रियादि इनका अभाव होनेपर भ्रम नहीं होता है अतः दोषादिकोंकोभी दृष्टिसृष्टित्व होनेपर अनवस्था है।—एक दोषको दृष्टिसृष्टित्व बनानेके लिए दूसरा दोष चाहिए ऐसेही—अज्ञानादिमें भी; फलतः अनवस्था है। इति=यह कथन निरस्त हुआ, अतएव शब्दके अर्थका विवरण करते हैं। स्वाप्नेति। स्वाप्निकभ्रमवत्=जैसे स्वाप्निकभ्रममें देहेन्द्रियादिकी अपेक्षा नहीं होती है, तैसे जाग्रत्कालीनभ्रम भी देहेन्द्रियादिके नैरपेक्ष्यसेभी उपपन्न हो सकता है, दोषादिके अन्वयव्यतिरेकका अनुविधान तो तद्वदेव=स्वप्नवत्ही है=स्वप्नमेंभी देहादिका अन्वयव्यतिरेक देखनेमें आता है। परन्तु समानकालीन होनेसे जैसे वह वस्तुतः अनुपपन्न है तैसेही जाग्रत्मेंभी समझना चाहिए। दृष्टिसृष्टिकोभी दृष्टिसृष्टित्व होनेसे घटादिके अदृष्टिसृष्टित्वकी आपत्ति है इति न च वाच्यम् क्यों? ज्ञानको अज्ञेयत्व होनेपरभी विषयको जैसे अज्ञेयत्वका अभाव है तैसे दृष्टिसृष्टिको दृष्टिसृष्टित्व होनेपरभी घटादिके दृष्टिसृष्टित्वकी उपपत्तिसे।

ननु—ऐक्यप्रत्यभिज्ञाविरोधः पूर्वकालप्रतीतस्य इदानीमभावात् न चैषा भ्रान्तिः; दीपादौ परिणामभेदस्येवेह बाधकस्याभावात्, तदभावेऽपि भ्रान्तित्वे घटादेरप्येकस्मिन् क्षणे भेदस्यात्मनोऽपि प्रतिक्षणं भेदस्य प्रसङ्ग इति चेन्न; नेहनानेत्यादिश्रुतिभिः प्रपञ्चस्य मिथ्यात्वेऽवधृते रज्जुसर्पादिवत् प्रतिभासमात्रशरीरत्वमेव प्रतिभासकालातिरिक्तकालसत्त्वे बाधकम्, अतो भिन्नकालानामात्मभिन्नानां प्रत्यभिज्ञाभ्रान्तिः। आत्मन्येकप्रतीतिरेककालावच्छेदेन घटादौ चैक्यप्रत्यभिज्ञा न भ्रान्तिः, एककालावच्छिन्नघटादावात्मनि चाभेदे बाधकाभावात्। पुरुषान्तरप्रतीतेन सहैककालावच्छेदेनापि घटादौ प्रत्यभिज्ञानं भ्रम एव प्रतिभासस्य भेदात्। यथा एकस्यामेव रज्ज्वां मन्दान्धकारवर्तिन्यां दशानां युगपत् सर्पभ्रमेण पलायमानानां परस्परसंवादेनैक एव सर्पः सर्वैरनुभूयते अन्यभ्रमसिद्धस्यान्येन ज्ञातुमशक्यत्वात्।

ऐक्यविषयिणी प्रत्यभिज्ञाके साथ विरोध है पूर्वकालमें प्रतीतका इस कालमें अभाव होनेसे; एषा=ऐक्यविषयिणी प्रत्यभिज्ञा भ्रान्ति है नच=भ्रान्ति नहीं है, क्यों दीपादिमें परिणामभेदकी तरह यहाँ बाधकका अभाव होनेसे, तदभावेऽपि=बाधकका अभाव होनेपरभी उक्त प्रत्यभिज्ञाको भ्रान्तित्व होनेपर घटादिकेभी एकक्षणमें भेदका प्रसङ्ग है=एकक्षणमेंही अनेक घट सिद्ध हो जायँगे और आत्माकेभी भेदका प्रसङ्ग प्रतिक्षणमें होगा, इति चेन्न; क्योंकि

नेहनाना ' (बृ०४।४।१९) इत्यादि श्रुतिओंसे प्रपञ्चनिष्ठ मिथ्यात्वके अवधृत होनेपर रज्जु-सर्पादिवत् घटादिनिष्ठ प्रतिभासमात्रशरीरत्वही प्रतिभासकालसे अतिरिक्तकालमें जो सत्त्व उस सत्त्वमें बाधक है, अतः आत्मासे अतिरिक्त भिन्नकालीनविषयक ऐक्यप्रत्यभिज्ञा भ्रान्ति है, और आत्मामें जो एकत्वकी प्रतीति है और घटादिमें एककालावच्छेदेन जो ऐक्यप्रत्यभिज्ञा है वह भ्रान्ति नहीं; क्यों ? एककालावच्छिन्न घटादिमें तथा आत्मामें जो अभेद उस अभेदमें बाधकका अभाव होनेसे, और पुरुषान्तरको प्रतीत जो घट उस घटके साथ एककालावच्छेदेनापि घटादिविषयक प्रत्यभिज्ञान भ्रमही है; प्रतिभासस्य=ज्ञानका भेद होनेसे, जैसे मन्दान्धकारमें पडी हुई एकही रज्जुमें एककालावच्छेदेन सर्पभ्रमसे पलायमान दशपुरुषोंके परस्पर सम्वादसे (एकही सर्प सबसे अनुभूत हुआ है) इत्याकारक प्रत्यभिज्ञान भ्रम है, अन्यके भ्रमसे सिद्ध अन्यसे जाननेके लिए अशक्य होनेसे।

ननु—अत्र कथमभेदभ्रमः ? तत्कारणस्य सादृश्यादेः कस्याप्यभावादिति-चेन्न, स्वप्नाभेदभ्रमवत् दृष्टिसृष्टिसिद्धसादृश्यादिसंभवात् न चैवं-अभेद एवोत्पद्यतामिति वाच्यम्; इष्टापत्तेः, रज्जुसर्पादिवदुत्पन्नस्यैव ग्रहणनियमात् नच क्वचिदुत्पत्ते क्वचिन्नेति अत्र नियामकाभावः मायाया विचित्रशक्तिकत्वाभ्युपगमात्। नच-सोऽयं देवदत्त इति दृष्टान्तेन तत्त्वमस्यादिवाक्ये जहदजहल्लक्षणयैक्यपरत्वोक्त्ययोग इति-वाच्यम् यद्यपि धर्मवद्धर्म्यभेदोऽपि बाधित एवेति जहदजहल्लक्षणापि न युज्यते तथापि यदा धर्माभेदो बाधान्न गृहीतः किन्तु धर्म्यभेद एव तदा सोयमित्यादौ जहदजहल्लक्षणासम्भवेन दृष्टान्तत्वोपपत्तिः। नचाभेदस्यापि दृष्टिसृष्टित्वेन तज्ज्ञानस्य बाधकत्वायोगः आत्माभेदस्यात्मरूपत्वेन दृष्टिसृष्टित्वाभावात्। अन्यूनसत्ताकत्वमात्रेण बाधकत्वोपपत्तेश्च।

शङ्कते-नन्विति। अत्र=दृष्टिसृष्टिवादमें अभेदभ्रम कैसे होगा तत्कारणस्य=अभेदभ्रमके कारण सादृश्यादिरूप किसीकोभी न होनेसे इतिचेन्न, क्यों ? स्वप्नाभेदभ्रमवत्=स्वप्नमें दृष्टिसृष्टिसे सिद्ध सादृश्यादिसे जैसे अभेदभ्रम होता है तैसे जाग्रत्‌मेंभी दृष्टिसृष्टिसिद्ध सादृश्यादिसे अभेदभ्रम बन सकता है, ऐसा होनेपर अभेद ही उत्पन्न हो, इति नच वाच्यम्= ऐसे अनिष्टका उद्भावन नहीं करना चाहिए, क्यों ? इष्टापत्तिसे=भ्रमस्थलमें अधिष्ठान तथा कल्पितका जो तादात्म्य प्रतीत होता है उसका हम निषेध नहीं करते हैं रज्जुसर्पादिवत् उत्पन्नके ही ग्रहणका नियम होनेसे अर्थात् जैसे अनिर्वचनीय उत्पन्न हुए ही रज्जुसर्पादि गृहीत होते हैं तैसे ही उत्पन्न हुए बिना अभेदका भान अनुपपन्न है। कहीं अभेद उत्पन्न होता है, और कहीं नहीं उत्पन्न होता है इसमें नियामकका अभाव है, नच=नियामकका अभाव नहीं है मायानिष्ठ विचित्रशक्तिकत्वका अभ्युपगम होनेसे (सोऽयं देवदत्तः) इस दृष्टान्तसे तत्त्वमस्यादि वाक्योंमें भागत्यागलक्षणासे ऐक्यपरत्वकी उक्तिका अयोग है=अभेदको बाधित होनेसे उक्तिका अयोग है, इतिनच वाच्यम्; यद्यपि धर्मवत्=जैसे परोक्षत्व अपरोक्षत्वादिधर्मोंका अभेद बाधित

है वैसे धर्मिका अभेदभी बाधितही है, अतः भागत्यागलक्षणा भी युक्त नहीं है, तथापि जिस कालमें धर्मोंका अभेद बाधसे गृहीत नहीं हुआ है किन्तु धर्मिका ही अभेद गृहीत हुआ है, तदा=उस कालमें 'सोऽयम्' इत्यादिमें भागत्यागलक्षणाके सम्भवसे दृष्टान्तत्वकी उपपत्ति है। अभेदको भी दृष्टिसृष्टित्व होनेसे अभेदज्ञानको प्रपञ्चके प्रति बाधकत्वका अयोग है, नच=नहीं है, क्यों ? आत्माके अभेदको आत्मरूपता होनेसे दृष्टिसृष्टित्वके अभावसे, अन्यून-सत्ताकत्वमात्रसे बाधकत्वकी उपपत्तिसेभी=अन्यूनसत्ताकविषयत्वेन बाधकत्वको बतला चुके हैं।

नच—साक्षात्कारस्यापि दृष्टिसृष्टित्वेन प्रमाणजन्यत्वाभावात् तत्त्वज्ञानत्वाभावेन ततो मुक्तिर्न स्यात् इति वाच्यम् अबाधितविषयत्वेनैव तत्त्वज्ञानत्वोपपत्तेः तस्य च दृष्टि-सृष्टित्वेऽप्यक्षतेः। नच ध्रुवा द्यौर्ध्रुवा पृथिवी ध्रुवासः पर्वता इमे ध्रुवं विश्वमिदं जगदि-त्यादिश्रुतिविरोधः। अनित्यतावादिभिरपि ध्रुवेत्यस्यान्यथानयने आवश्यके दृष्टिसृष्टिप्र-तिपादकश्रुत्यनुरोधेन आकल्पं सन्तानाविच्छेदपरत्वस्यैव युक्तत्वात्। अन्यथा 'ध्रुवो राजे-त्यादावगतेः। दृष्टिसृष्टौ च एवमेवास्मादात्मनः सर्वे प्राणाः सर्वे लोकाः सर्वे वेदाः सर्वाणि भूतानि सर्व एत आत्मानो व्युच्चरन्तीति श्रुतिःसुप्तोत्थितजीवात् प्राणादिसृष्टिं प्रतिपादयन्ती प्रमाणम्। नच सुषुप्तौ प्राणादिपञ्चकस्य सत्त्वात्किमर्थं पुनः सृष्टिरिति वाच्यम्, 'नतु तद्द्वितीयमस्ति ततोऽन्यद्विभक्तं यत्पश्येदित्यादिना सुषुप्तौ सकलकार्यप्रप-ञ्चलयश्रवणात्। नच सुषुप्तौ हिता नाम नाड्य इति नाडीसत्वप्रतिपादकवाक्यविरोधः केन क्रमेण सुषुप्तौ भवतीत्यपेक्षायां हिता नाम नाड्यो हृदयात्पुरीततमभिप्रतिष्ठन्ते ताभिः प्रत्य-वसृप्य पुरीतति शेते' इत्यादिना सुषुप्त्यव्यवहितकाले क्रमोक्तये नाडी सत्त्वं प्रतिपा-द्यते नतु सुषुप्तिकालेऽपि वाक्यान्तरविरोधात् प्राक् सत्वमात्रेण च क्रमाभिधानपर्याप्तेः।

शङ्कते नचेति। आत्मसाक्षात्कारको भी दृष्टिसृष्टित्वहोनेसे प्रमाणजन्यत्वका अभाव है. और प्रमाणजन्यत्व न होनेसे तत्त्वज्ञानत्वका अभाव है. और उसमें तत्त्वज्ञानत्वके अभावसे उससे मुक्ति न होगी इति न च वाच्यम् क्यों ? अबाधितविषयत्वसेही तत्त्वज्ञानत्वकी उप-पत्ति होनेसे=आत्मसाक्षात्कारको प्रमाणजन्यत्वेन तत्त्वज्ञान नहीं कहते हैं किन्तु अबाधित-विषयत्वेन। तस्यच=और अबाधितविषयत्वकी तो दृष्टिसृष्टित्वपक्षमें भी अक्षति है। (ध्रुवा द्यौः) इत्यादि श्रुतिके साथ दृष्टिसृष्टिका विरोध है नच=नहीं है, क्यों ? जगन्नित्यतावादिओंसेभी (ध्रुवा) इसके अन्यथा नयनके आवश्यक होनेपर दृष्टिसृष्टिप्रतिपादक श्रुतिके अनुरोधसे कल्पपर्यन्त सन्तानाविच्छेदपरत्वकोही युक्त होनेसे='ध्रुवा द्यौः' इत्यादिका तात्पर्य यह है कि कल्पपर्यंत इनका प्रवाह नहीं टूटता है। अन्यथा=(ध्रुव) शब्दको नित्यार्थकही मानों तो (ध्रुवो राजा) यहाँपर अर्थकी सङ्गति न होगी और दृष्टिसृष्टिमें तो (एवमेव) (बृ०२।१।२०) इत्यादि श्रुति सुप्तोत्थित जीवसे प्राणादिकी सृष्टिको प्रतिपादन करती हुई प्रमाण है, सुषुप्ति

अवस्थामें प्राणपञ्चकका सत्त्व होनेसे प्राणपञ्चककी पुनः सृष्टि किस लिए है इति न च वाच्यम् क्यों ? नतु तद्द्वितीयमस्ति (बृ०४।३।२३) इत्यादि श्रुतिसे सुषुप्ति अवस्थामें सकलकार्यरूप प्रपञ्चके लयका श्रवण होनेसे। सुषुप्ति अवस्थामें हितानामक नाडियाँ है, (बृ०२।१।१९) इस नाडीसत्त्वप्रतिपादक वाक्यके साथ विरोध होगा, नच=न होगा (किस क्रमसे सुषुप्तिमें जीव प्राप्त होता है ऐसी अपेक्षा होनेपर हितानामक नाडियाँ हृदयसे पुरीतति तक प्रतिष्ठित हैं ताभिः=उन नाडियोंसे गमन कर पुरीतत्में सोता है इत्यादिसे सुषुप्तिसे अव्यवहित पूर्वकालमें क्रमके कथनके लिए नाडियोंका सत्त्व प्रतिपादन किया जाता है; सुषुप्तिकालमें भी नाडियोंका सत्त्व है इस अभिप्रायसे नहीं, अन्यवाक्यके साथ विरोध होनेसे और क्रमका अभिधानतो सुषुप्तिसे प्राक्कालमें सत्त्व होनेसे बन सकता है।

ननु—यत्रैष एतत्सुप्तोऽभूदितियच्छब्देन सुप्ताधारत्वेनोक्तस्य ब्रह्मण एवास्मादात्मन इत्यनेन परामर्शात्तत्कर्तृकैव प्राणादिसृष्टिर्न तु सुप्तोत्थितजीवकर्तृका:, अन्यथाऽग्न्यूर्णनाभ्यादेस्तन्तुविस्फुलिङ्गादिजननोक्तिरत्रापि वाक्ये सर्वलोकसृष्ट्युक्तिश्चालीकार्था स्यात्, नहि दृष्टिसृष्टिपक्षे अग्न्यूर्णनाभ्यादेस्तन्त्वादिजनकत्वं सर्वलोकसृष्टिर्वास्तीति—चेत् न यत्रेत्यस्य कालपरत्वेन यच्छब्देन ब्रह्मणो निर्देशाभावात्। नच यत्रेत्यस्य ब्रह्मरूपाधिकरणपरत्वं कालपरत्वं वा इत्यत्र विनिगमनाविरहः अनन्तरवाक्ये क्वैष तदाभूदित्यत्र क्व तदेतिपदद्वयोपादनस्यैव विनिगमकत्वात् यत्रेत्यनेन देशनिर्देशे क्वेति देशप्रश्नानुपपत्तेः, कालनिर्देशे च तदेतिप्रतिनिर्देशानुपपत्तेः; भाष्यकारादिभिश्च स्थूलाधिकारिणं प्रति तथा व्याख्यानात्।

शङ्कते नन्विति। 'यत्र एष एतत्सुप्तोऽभूत्' (बृ०२।१।१७) इस श्रुतिमें यच्छब्दसे सुप्तका आधारत्वेन श्रुत जो ब्रह्म है उस ब्रह्मकाही 'अस्मादात्मनः' इससे परामर्श होनेसे तत्कर्तृकैव=सुप्ताधार—ब्रह्मकर्तृक ही प्राणादिकी सृष्टि है, सुप्तोत्थित—जीवकर्तृका नहीं, अन्यथा अग्नि तथा ऊर्णनाभि आदिको तन्तुविस्फुलिङ्गादिके जननकी उक्ति और इस वाक्यमेंभी सर्व लोकोंकी सृष्टिकी उक्ति अलीकार्थक हो जायगी क्योंकि दृष्टिसृष्टिपक्षमें अग्नि तथा ऊर्णनाभ्यादिको तन्त्वादिका जनकत्व तथा सर्वलोकोंकी सृष्टि नहीं है, इति चेन्न; क्यों ? यत्र इस पदको कालपरत्व होनेसे, यत् शब्दसे ब्रह्मके निर्देशके अभावसे; 'यत्र' इस शब्दको ब्रह्मरूपाधिकरणपरत्व है या कालपरत्व है इस विषयमें विनिगमना का विरह है=,एकतरपक्ष-निर्णायक कोई प्रमाण नहीं है नच=ऐसा नहीं है इससे अनन्तर वाक्यमें 'क्वैष तदाभूत्' इस वाक्यमें 'क्व, तदा' इस पदद्वयके उपादानकोही विनिगमक होनेसे। 'यत्र' इससे देशका निर्देश होनेपर 'क्व' इत्याकारक देशके प्रश्नकी अनुपपत्ति है, और यत्र शब्दसे कालका अनिर्देश होनेपर 'तदा' इत्याकारक प्रतिनिर्देशकी अनुपपत्ति है, और भाष्यकारादिकोंसे स्थूलाधिकारीके प्रति तथा व्याख्यान हुआ है,=भाष्यकारादिने जो यत्र शब्दसे ब्रह्मका

ग्रहणकर व्यावहारिकसृष्टिविषयतया व्याख्यान किया है वह स्थूलबुद्धिवाले अधिकारिओंके लिए किया है।

ऊर्णनाभ्यादेस्तन्त्वादिजन्मोक्तिस्तु लौकिकभ्रमसिद्धकार्यकारणभावप्रसिद्धिमनुरुध्य। सर्वलोकादिसृष्टिश्च तत्तद्दृष्टिव्यक्तिमभिप्रेत्य; यदा यत् पश्यति तत्समकालं तत् सृजतीत्यत्र तात्पर्यात्। न चाविद्यासहकृतजीवकारणकत्वे जगद्वैचित्र्यानुपपत्तिः जगदुपादानस्याज्ञानस्य विचित्रशक्तिकत्वात्। उपपत्त्यन्तरश्चात्र सिद्धान्तबिन्दुकल्पलतिकादावस्माभिरभिहितम्। वसिष्ठवार्त्तिकामृतादावाकरे च स्पष्टमेवोक्तम् यथा—'अविद्यायोनयो भावाः सर्वेऽमी बुद्बुदा इव। क्षणमुद्भूय गच्छन्ति ज्ञानैकजलधौ लयम्॥ इत्यादि। तस्मात् ब्रह्मातिरिक्तं कृत्स्नं द्वैतजातं ज्ञानज्ञेयरूपमाविद्यकमेवेतिप्रातीतिकसत्त्वं सर्वस्येति सिद्धम्। रज्जुसर्पादिवद्विश्वं नाज्ञातं सदिति स्थितम्। प्रबुद्धदृष्टिसृष्टित्वात्सुषुप्तौ च लयश्रुतेः॥

इति अद्वैतसिद्धौ दृष्टिसृष्ट्युपपत्तिः।

ऊर्णनाभ्यादिसे जो तन्त्वादिके जन्मकी उक्ति है वह तो लोकभ्रमसिद्ध जो कार्यकारणभाव उसको अनुरोधकर है और सर्वलोकादिकी सृष्टि तो तत्तदृष्टि व्यक्तिके अभिप्रायसे है अर्थात् जिसकालमें जिसको देखता है तत्समकालही उसको उत्पन्नकरता है इस अर्थमें तात्पर्य है, अविद्यासे सहकृत जो जीव उस जीवको कारणकत्व होनेपर जगत्में वैचित्र्यकी अनुपपत्ति है, नच=वैचित्र्यकी अनुपपत्ति नहीं है, क्यों ? जगत्के उपादानको विचित्रशक्तिक होनेसे। अत्र=इस–प्रकृतार्थमें उपपत्त्यन्तर हमसे सिद्धान्तबिन्दुकल्पलतिकादिमें कहा गया है।=जब अज्ञातावस्थामेंभी घट माना जाता है तब घटादिमें अनन्त संयोगादि मानने पडते हैं और इन्द्रियोंमें क्रिया तथा इन्द्रियोंका विषयके साथ संयोगभी मानना पडता है, और इन्द्रिय तथा इन्द्रियोंका सम्बन्ध इनको ज्ञानके प्रति हेतुता भी माननी पडती है, और प्रातिभासिक तथा व्यावहारिक इन दोनोंको परस्पर व्यावृत्त होनेसे भिन्न हेतुत्वभी मानना पडता है और दृष्टिसृष्टिवादमें इनके माननेकी आवश्यकता नहीं अतः लाघव है, और ज्ञानको जहाँपर हेतु मानना पडता है वहाँपर विषयकोही हेतुत्व है, और जन्यज्ञानकी कल्पनाकी भी वस्तुतः आवश्यकता नहीं होती है। और (घटं पश्यामि) इत्यादिमें तो घटादिमें जो चाक्षुषादिका अभेद है वही विषय होता है, घटादिमें ही चाक्षुषत्वादि धर्मका स्वीकार होनेसे इत्यादि कहा है। और वासिष्ठ तथा वार्तिकामृतादि आकर ग्रन्थोमें स्पष्टही कहा है–ये सम्पूर्ण भाव पदार्थ अविद्याकारणक हैं बुद्बुदोंकी तरह क्षणमात्रमें उत्पन्न हो ज्ञान समुद्रमें लीन होजाते हैं। तस्मात् ब्रह्मसे अतिरिक्त सर्वजातद्वैत ज्ञानज्ञेयरूप आविद्यकही है अतः उक्त सर्व पदार्थोंका प्रातीतिक सत्त्व है यह सिद्ध हुआ। रज्जुसर्पादिवत्=जैसे रज्जुसर्पादि अज्ञात हुए सत् नहीं होते हैं तैसे विश्व अज्ञात सत् नहीं है यह सिद्ध हुआ। प्रबुद्ध होनेपर दृष्टिसृष्टित्व होनेसे और सुषुप्तिमें लयकी श्रुतिसे।

इति सरलायां दृष्टिसृष्ट्युपपत्तिः।

अथ एकजीववादः।

स च द्रष्टैक एव, तन्नानात्वे मानाभावात्। ननु–कथं एक एव जीवः प्रतिशरीरं अहं सुखी अहं दुःखी अहं संसारी अहमस्वाप्समित्याद्यनुभवविरोधात् इति चेन्न, अविद्यावशाद्ब्रह्मैवैकं संसरति। स एव जीवः। तस्यैव प्रतिशरीरमहमित्यादिबुद्धिः। स्वाप्नशरीरे अयं सुखी अयं दुःखीत्येव यत्रबुद्धिर्नेत्वहं सुखीत्यादि तत्तु निर्जीवम्। यत्रतु अहमित्यादि तत्सजीवम्। जाग्रच्छरीरान्तरे अहमिति प्रतीत्यवच्छेदके सजीवतोक्तिर्न द्वितीयेन जीवेन सजीवत्वमित्यभिप्रेत्य तत्र मानाभावात्। बन्धमोक्षव्यवस्थानुपपत्तिस्तत्र मानमिति चेन्न; बन्धमोक्षगुरुशिष्यादिव्यवस्थायाः स्वप्नवद्यावदविद्यमुपपत्तेः। नचैवं तस्मिन्नेव जीवे सुप्ते समस्तजगदप्रतीत्यापातः समष्टयभिमानिनो मुख्यजीवस्यासुप्तत्वात्। तस्मिन् लयकाले प्रसुप्ते जगदप्रतीतेः।

अथ सरलायामेकजीववादः।

वह द्वैतका द्रष्टा एक ही है द्रष्टाके नानात्वमें मानका अभाव होनेसे; शङ्कते नन्विति। एक ही जीव कैसे है, शरीर शरीरके प्रति मैं सुखवाला हूं, मैं दुःखवाला हूं, मैं जन्ममरणादिरूप संसारवाला हूं, मैं सोया था इत्यादि जो अनुभव उस अनुभवके साथ विरोध होनेसे इतिचेन्न;= ऐसा यदि कहो तो नहीं कहना, क्योंकि अविद्यावशतः एक ब्रह्म ही संसारको प्राप्त हो रहा है। वह अद्वितीय ब्रह्म ही जीव है उसीको शरीर शरीरमें (अहम्) इत्यादि बुद्धि होती है। स्वाप्न शरीरे=स्वप्न शरीरमें (अयं सुखी) (अयं दुःखी) ऐसी ही बुद्धि यत्र=जिसमें होती हो और (अहं सुखी) इत्यादि बुद्धि न होती हो वह निर्जीव है और जिस शरीरमें (अहम्) इत्यादि बुद्धि होती है वह शरीर सजीव है। और (अहम्) इत्याकारकप्रतीत्यवच्छेदक जो जाग्रत्कालीन शरीरान्तर है उस शरीरान्तरमें जो सजीवताकी उक्ति है वह द्वितीय जीवसे सजीवत्व है, इस अभिप्रायसे नहीं है, तत्र=द्वितीय जीवमें मानका अभाव होनेसे। बन्धमोक्षादिकी जो व्यवस्था=एकके बन्धसे सर्वको बन्ध न होना एकके मोक्षसे सर्वका मोक्ष न होना एकके सुखी या दुःखी होनेसे सर्वको सुखी या दुःखी न होना इत्यादि व्यवस्थाकी अनुपपत्ति तत्र=जीवके भेदमें मान है इति चेन्न, क्यों ? बन्धमोक्षगुरुशिष्यादिकी व्यवस्थाको स्वप्नवत् जब तक अविद्या है तब पर्यंत उपपन्न होनेसे=स्वप्नमें जैसे बन्धमोक्ष तथा गुरुशिष्यादिकी व्यवस्था होती है तैसेही जाग्रतमें भी समझनी चाहिए। एवम्=ऐसा होनेपर उस एकही जीवको सुषुप्तिगत होनेपर जगत्की 'अप्रतीतिकी आपत्ति है नच=नहीं; क्यों ? समष्ट्यभिमानी मुख्य जीवको असुप्त होनेसे। लयकाले=प्रलयकालमें उस जीवके प्रसुप्त होनेपर जगत्की अप्रतीतिसे।

अन्तःकरणावच्छिन्ने जीवाभासे तु सुप्ते तमेव प्रति जगदप्रतीतिः; न त्वन्यानपि प्रति, तदुपाधीनामप्रलीनत्वात्। संस्कारस्य कारणात्मनास्थितेर्न सुप्तस्य पुनरुत्थानानुप-

पत्तिरित्युक्तम्। एतेन–मम कल्पकत्वे तव मोक्षार्थं प्रवृत्त्ययोगः, तव कल्पकत्वे त्वत्कल्पितास्मदादिबोधार्थं तव शब्दप्रयोगाद्यनुपपत्तिः। नच-स्वप्नवत् पर्यनुयोगायोगः एवमपर्यनुयोज्यत्वे निर्मर्यादतया कथानधिकारप्रसङ्गादिति–निरस्तम्, चैत्रमैत्रादिसर्वाभिमानिनो जीवस्य कल्पकत्वे तव ममेत्यादिविकल्पानुपपत्तेः। नापि स्वक्रियादिविरोधः स्वक्रियायाः कल्पितत्वादिनिश्चयविरहकालीनत्वेन पर्यनुयोगायोगात्।

और अन्तःकरणावच्छिन्न जो जीवाभास है, उसके सुप्त होनेपर वो उसके प्रति ही जगत्‌की अप्रतीति होती है, अन्योंके प्रतिभी नहीं। अन्योंकी उपाधिभूत अन्तःकरणोंको लीन न होनेसे, और संस्कारको कारण स्वरूपसे स्थित होनेसे सुप्तपुरुपके पुनः उत्थानकी अनुपपत्ति नहीं है, एतेन=वक्ष्यमाण हेतुसे, मुझको कल्पकत्व होनेपर मोक्षके लिए तुम्हारी प्रवृत्तिका अयोग है, तुमको कल्पकत्व होनेपर तुमसे कल्पित जो अस्मदादि उन अस्मदादिके बोधके लिए तुम्हारे शब्दप्रयोगादिकी अनुपपत्ति है; स्वप्नवत्,–पर्य्यनुयोगका अयोग है, नच=अयोग नहीं है, क्यों ? इस रीतिसे पर्यनुयोज्यत्वके न होनेपर मर्यादाऽभानप्रयुक्त कथानधिकारके प्रसङ्गसे, यह कथन निरस्त हुआ, एतेन शब्दके अर्थका विवरण करते हैं चैत्रेति। चैत्रमैत्रादिसर्वाभिमानी जीवको कल्पकत्व होनेसे 'तव मम' इत्यादि विकल्पकी अनुपपत्तिसे। स्वक्रियाके साथभी विरोध नहीं क्यों ? स्वक्रियाको कल्पितत्वादिका जो निश्चय उस निश्चयके विरहकालमें होनेसे पर्यनुयोगका अयोग होनेसे।

अथ ब्रह्मण एव जीवत्वेन तस्यैव बन्धमोक्षाविति तस्य नित्यमुक्तत्वादिश्रुतिविरोधः; न मुक्तेः स्वस्वरूपत्वेन बन्धस्य चाविद्यकत्वेन तदविरोधः। नहि मृगतृष्णिकाकल्पितोदकेन स्वभावशुष्का मरुभूमिरार्द्रा भवति। एतेन–कल्पितस्य जीवस्य कल्पकं प्रति प्रत्यक्त्वायोगः; तेन कल्पकेन प्रत्यक्त्वेनाज्ञानात्, अन्यस्यानुभवितुरभावात्, तथानुभवालापे एकजीवाद्वैतश्रुत्यादेरप्यसिद्धिरिति–निरस्तम्, अनेकशरीरे एकजीववादस्याङ्गीकारात्। नच तर्हि तमेव प्रति प्रत्यक्त्वपराक्त्वयोरयोगः, मैत्रं प्रति त्वमितिधीविपयस्य चैत्रस्य तमेव प्रति अहमितिधीविपयत्वायोगश्चेति–वाच्यम्, भिन्नभिन्नान्तःकरणाभेदाध्यासेन तत्तदन्तःकरणमादाय प्रत्यक्त्वपराक्त्वाहमित्यादिबुद्धिविपयत्वव्यवस्थोपपत्तेः। नच चैत्रसुखदुःखादीनां मैत्रेणानुसन्धानापत्तिः। अन्तःकरणावच्छिन्नेनाविद्यावच्छिन्नेन वा। नाद्यः तत्र परस्परंभेदात् न द्वितीयः; इष्टापत्तेः।

शङ्कते अथेति। ब्रह्मको जीवत्व होनेसे तस्यैव=ब्रह्मकोही बन्ध तथा मोक्ष प्राप्त होते हैं अतः तस्य=उस ब्रह्मको नित्यमुक्तत्वादि कहनेवाली श्रुतिओंके साथ विरोध है, न=विरोध नहीं है, मुक्तिको ब्रह्मका स्वरूप होनेसे और बन्धको अविद्याजन्य होनेसे नित्यमुक्तत्वबोधक श्रुतिके साथ अविरोध है। क्योंकि मृगतृष्णिकासे कल्पित जो उदक है उस उदकसे स्वभावतः

शुष्क मरुभूमि पङ्किला नहीं होती है, एतेन=ब्रह्मरूप एक चैतन्यकोही कल्पकत्व होनेसे, कल्पित जो जीव है उस जीवको कल्पकके प्रति प्रत्यक्त्वका अयोग है, उस कल्पकसे प्रत्यक्त्वेन कल्पित जीवको न जाननेसे अन्य अनुभविताका अभाव होनेसे, तथानुभवापलापे=नानाशरीरोमें जीवका जो प्रत्यक्त्वेन अनुभव होता है उस अनुभवका अपलाप होनेपर एक जीव और अद्वैत–श्रुत्यादिकीभी असिद्धि होगी यह निरस्त हुआ, एतेन=शब्दके अर्थका स्पष्टीकरण करते हैं। अनेकेति। अनेक शरीरमें एक जीववादके अङ्गीकारसे। शङ्कते नचेति। तत्र तिसके ही प्रति प्रत्यक्त्व तथा पराक्त्व इन दोनोंका अयोग है, मैत्रके प्रति 'त्वम्' इत्याकारक धीका विषय जो चैत्र है उस चैत्रको तमेव प्रति=मैत्रकेही प्रति 'अहम्' इत्याकारकधीविषयत्वकाभी अयोग है, इति नच वाच्यम्, क्यों? भिन्नभिन्नान्तःकरणोंके अभेदाध्याससे तिस तिस अन्तःकरणको लेकर प्रत्यक्त्व, पराक्त्व, त्वम्, अहम्, इत्यादि जो बुद्धियाँ है उन बुद्धियोंके विषयत्वके व्यवस्थाकी उपपत्तिसे=अन्तःकरणोंको भिन्न भिन्न होनेसे उक्त व्यवस्थायें उपपन्न हो सकती हैं, केवल चैतन्यमें तो किसीभी प्रकारका व्यवहार ही नहीं है, और व्यवहारास्पद तो उपाधिविशिष्टही है, अतः कोई अनुपपत्ति नहीं। चैत्रके सुखदुःखादिकोंके मैत्रसे अनुसन्धानकी आपत्ति है, नच—नहीं है, विकल्पकर दूषित करते हैं अन्तरिति। अन्तःकरणावच्छिन्नसे अनुसन्धानकी आपत्ति है, या अविद्यावच्छिन्नसे। नाद्यः=प्रथमपक्ष नहीं कह सकते हो क्यों? तत्र=अन्तःकरणावच्छिन्नोंमें परस्पर भेद होनेसे, न द्वितीयः=द्वितीय पक्षभी हम लोगोंका हानिकारक नहीं है, क्यों? इष्टकी आपत्तिसे=अविद्यावच्छिन्नसमष्ट्यभिमानीसे अनुसन्धान मानतेही हैं।

अत एव—चैत्रस्य शुक्तिसाक्षात्कारेण रजतभ्रमनिवृत्तावन्येषामपि तन्निवृत्तिः स्यादिति—निरस्तम् अन्तःकरणभेदेन व्यवस्थोपपत्तेः। ननु—एवं मुक्तावपि चैत्राद्यन्यतमान्तःकरणावच्छेदेन साक्षात्कारे उत्पन्ने तदवच्छेदेनैव संसारनिवृत्तिः स्यात्, न तु तदितरान्तःकरणावच्छेदेनेति—चेन्न; तत्साक्षात्कारस्य सविलासमूलाज्ञाननिवृत्तिरूपतया तत्कालेऽन्तःकरणस्याभावेन वैषम्यात्।

अतएव=अन्तःकरणोंको भिन्न होनेसेही चैत्रको शुक्तिसाक्षात्कारसे रजतभ्रमकी निवृत्ति होनेपर अन्योंकोभी रजतभ्रमकी निवृत्ति होगी यह कथन निरस्त हुआ, क्यों? अन्तःकरणके भेदसे व्यवस्थाकी उपपत्तिसे। शङ्कते नन्विति। ऐसा होनेपर मुक्तिमेंभी चैत्रादिसम्बन्धि-अन्यतम–अन्तःकरणावच्छेदेन साक्षात्कारके उत्पन्न होनेपर तदवच्छेदेनैव=अन्यतम–अन्तःकरणावच्छेदेनैव संसारकी निवृत्ति होगी, उससे इतर जो अन्तःकरण तादृशान्तःकरणावच्छेदेन न होगी इति चेन्न; क्यों? तत्साक्षात्कारस्य=उक्तमुक्तिदसाक्षात्कारको सविलास=कार्यके-सहित जो मूलाज्ञान तादृशमूलाज्ञानकी निवृत्तिरूप होनेसे मुक्तिकालमें अन्तःकरणके अभावसे वैषम्य होनेसे।

ननु—श्रुतिषु—अविद्यायामन्तरे वर्तमाना इत्यादावविद्या, रमणीयचरणा इत्यादौ कर्मबन्धः, सति सम्पद्य न विदुरित्यादौ सति सुषुप्तिः वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्था इत्यादौ तत्त्वज्ञानं परामृतात्परिमुच्यन्ति सर्वे इत्यादौ मुक्तिश्च चेतनधर्मः कथमनेकेषूच्यते इति चेन्न; अनादिमायया सुप्तो यदा जीवः प्रबुध्यते इत्यादिश्रुतिष्वेकवचनप्राप्तैकत्वविरोधेनोदाहृतश्रुतिनामनेकत्वपरत्वाभावात् सार्वजनीनभ्रमसिद्धतदनुवादेनाविरोधात्। नच—उदाहृतश्रुतिविरोधेन 'इति सृष्टौ विनिश्चिता' इतिपूर्वेण सपूज्यः सर्वभूतानामित्युत्तरेण च विरोधेनेदमेकवचनं 'यदा नीतिपरो राजा'। स्वर्गकामो यजेतेत्यादिवन्नैकत्वपरमित्येव किं न स्यादिति—वाच्यम् प्रत्यक्त्वपराक्त्वमहमित्यादिव्यवहारप्रयोजकान्तःकरणाभेदाध्यासबलात् बहुत्वस्य प्राप्तत्वेन पूर्वोत्तरवाक्योदाहृतश्रुत्यादीनामतत्परत्वात्।

शङ्कते नन्विति। श्रुतिओंमें अविद्यामें वर्तमान (कठ० १।२।४) इत्यादिमें अविद्या (रमणीयचरणाः छां० ५।१०।७) इत्यादिमें कर्मबन्ध; सत्से प्राप्त होकर नहीं जानते हैं, (बृ० ६।९।२) इत्यादिमें सत्में सुषुप्ति, वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः (मुं० ३।२।६) इत्यादिमें तत्त्वज्ञान, परामृतात्परिमुच्यन्ति सर्वे मुं० ३।२।६ इत्यादिमें मुक्ति, ये सर्व चेतनधर्म अनेकोंमें कैसे कहे जाते हैं=इन वाक्योंमें चेतनवाचकसे परे बहुवचनका प्रयोग है, अतः चैतन्योंमें बहुत्वसिद्ध होता है, इति चेन्न; क्यों? अनादिभूतमायासे सोया हुआ जीव जब उठता है (गौ० पा० १।१६) इत्यादि श्रुतिओंमें जो एक वचन है उस एकवचनसे प्राप्त जो एकत्व उस एकत्वके साथ विरोध होनेसे तुमसे उदाहृत श्रुतिओंको अनेकपरत्वका अभाव होनेसे। और सर्व जनोंमें विदित जो भ्रम है उस भ्रमसे सिद्ध जो बहुत्व उस बहुत्वके अनुवादसे समानबलत्व न होनेसे विरोध भी नहीं है। शङ्कते नचेति। उदाहृत श्रुतिओंके साथ विरोध होनेसे=बहुवचनघटित श्रुतिओंके साथ विरोध होनेसे, और (इति सृष्टौ विनिश्चिताः) (गौ० पा० १।७) इस पूर्वके साथ और स पूज्यः सर्वभूतानाम् (गौ० पा० का० १।२२) इस उत्तर वचनके साथ विरोध होनेसे उक्त एकवचन एकत्वपर नहीं है जैसे यदा नीतिपरो राजा यहाँ राजन्पदोत्तर एकवचन एकतत्वपर नहीं है और स्वर्गकामो यजेत यहाँपर स्वर्गकामपदोत्तर एकवचन एकत्वपर नहीं है=इन स्थलोंमें जैसे एक वचन अविवक्षित है वैसेही (जीवः) यहाँपरभी एकवचन अविवक्षित है इति न च वाच्यम् क्यों? प्रत्यक्त्व पराक्त्व अहम् इत्यादिरूप जो व्यवहार तादृश व्यवहारका प्रयोजक जो अन्तःकरणका अभेदाध्यास उस अभेदाध्यासके बलसे बहुत्वको प्राप्त होनेसे पूर्वोत्तर वाक्यमें उदाहृत श्रुत्यादिको अतत्परत्व होनेसे और एकत्वबोधक श्रुत्यादिक तो तत्परही हैं क्योंकि एकत्व अप्राप्त है और एकत्व माननेमें लाघव भी है।

नच—मुक्तबहुत्वं नान्यतः प्राप्तमिति वाच्यम् जीवबहुत्वस्य प्राप्तत्वेन मुक्त्यंश एवाप्राप्तत्वपर्यवसानात्। न चैकस्यैव जीवस्य सर्वकल्पकत्वे जीवस्य कारणत्वं निषिध्य ईश्वरकारणत्वविधायकैः श्रुत्यादिभिर्विरोधः; अविद्याचिन्मात्राश्रयत्वोपपादने निरसिष्यमाणत्वात्। नच—एवं सर्वज्ञत्वसर्वकर्तृत्वादिबोधकश्रुतीनां निर्विषयत्वम्; शुद्-

चैतन्ये सत्वस्यैवाभावात्, ईश्वरस्य च जीवभिन्नस्याभावात् जीवे सार्वज्ञ्यस्यानुभवबाधितत्वादिति-वाच्यम्; समष्टयभिमानिनो जीवस्य सर्वज्ञत्वसर्वकर्तृत्वादिस्वीकारात्। न चानुभवविरोधः अन्तःकरणाभेदाध्यासबलात् तदननुभवतद्विपरीतानुभवयोरुपपत्तेः। सर्वाभिमानिनस्तु सार्वज्ञ्यानुभवोऽस्त्येव। अतएव तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परंतपेत्याद्युपपद्यते। नचाचार्यवान् पुरुषोवेदेति श्रुतेरुपदेशं विना जीवस्य तत्त्वज्ञानमनुपपन्नम्, उपदेष्टृव्यादन्यस्य चैतन्यस्याभावाच्च नोपदेशो युज्यत-इति वाच्यम् स्वप्नइवोपदेष्टुः कल्पितस्य संभवात्।

मुक्तका बहुत्व अन्यसे नहीं प्राप्त है, इति न च वाच्यम् क्यों ? जीवके बहुत्वको प्राप्त होनेसे मुक्तयंशमें भी अप्राप्तत्वके पर्य्यवसानसे=विशिष्टमें बहुत्वको प्राप्त होनेसे विशेष्यांशमें ही अप्राप्तता पर्यवसित होगी और एतादृश सर्वतो भावतः अप्राप्तता हमकोभी इष्ट ही है; एक जीवकोही सर्वका कल्पकत्व होनेपर जीवनिष्ठ कारणत्वका निषेध कर ईश्वरनिष्ठकारणत्वविधायक जो श्रुत्यादिक हैं, उनके साथ विरोध होगा नच=विरोध नहीं होगा, क्यों ? अविद्यानिष्ठचिन्मात्राश्रयत्वके उपपादनावसरमें आपके इस कथनको खण्डन किया जाने वाला होनेसे; शङ्कते नचैवमिति। ऐसा होनेपर सर्वज्ञत्व और सर्वकर्तृत्वादिबोधक जो श्रुतियां है उन श्रुतिओंको निर्विषयत्व होगा, शुद्ध चैतन्यमें ज्ञत्वस्यैव=सामान्यतः ज्ञत्वकाही अभाव होनेसे और जीवसे भिन्न ईश्वरका अभाव होनेसे जीवमें सर्वज्ञत्वको अनुभवसे बाधित होनेसे, इति नच वाच्यम्= क्यों ? समष्ट्यभिमानिजीवनिष्ठ सर्वज्ञत्व सवकर्तृत्वका स्वीकार होनेसे; अनुभवके साथ इस कथनका विरोध है नच=विरोध नहीं, क्यों ? अन्तःकरणका जो जीवके साथ तादात्म्याध्यास है उस तादात्म्याध्यासके बलसे तदननुभव=सर्वज्ञत्वादिका अननुभव तद्विपरीतानुभव=अल्पज्ञत्वादिका अनुभव इन दोनोंकी उपपत्तिसे और सर्वाभिमानी जीवको तो सार्वज्ञ्यका अनुभव है ही; अतएव=सार्वज्ञ्यका अनुभव होनेसे ही 'तान्यहं वेद सर्वाणि' (गी० ४।५) इत्यादि कथन उपपन्न होता है। शङ्कते नचेति। (आचार्यवान्पुरुषो वेद) (छां० ६।१४।२) इस श्रुतिसे उपदेशके विना जीवको तत्त्वज्ञान अनुपपन्न है, और उपदेश करने लायक जो चैतन्य है, उस चैतन्यसे अतिरिक्त चैतन्यका अभाव होनेसे उपदेश युक्त नहीं होता है इति नचवाच्यम् क्यों ? स्वप्न इव=जैसे स्वप्नमें कल्पित उपदेष्टा होता है तैसे जागृत्‌मेंभी कल्पितउपदेष्टाका सम्भव होनेसे।

ननु—उपदेष्टृत्वं न कल्पितमात्रस्य किन्तु तत्त्ववित्त्वेन कल्पितस्य तथाचोपदेशात् प्राक् तत्त्वज्ञाने तदैव मोक्षापत्तिः, उपदेशवैयर्थ्यं च नचैवं स्वप्नेऽपि तुल्यम् तदा हि शब्दविशेषवक्तृत्वेनैव गुरुकल्पना, नतूपदेशसाध्यज्ञानविषयविशेषवित्त्वेनेति-विशेषादितिचेन्न, अत्रापि तद्वदेव वाक्यविशेषवक्तृत्वेनैव तत् कल्पनसंभवात्। ननु तर्हि यदेव भगवान्वेद तदेव मे ब्रूहीत्यादि श्रुतिः उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिन इत्यादिस्मृतिश्चायुक्ता स्यादिति चेन्न, सामान्यतो मोक्षोपयोगिज्ञानविषयवित्त्वेनाज्ञाततत्त्ववित्त्वेन

तत्त्वमस्यादिवाक्यवक्तृत्वेन वा कल्पितस्य उपदेष्टृत्वसंभवेन उदाहृतवाक्याविरोधात् अन्यथा तत्रापि मते तत्त्ववित्त्वेन प्रमित एवाचार्यत्वेनानुसरणीय इति प्रथमत एव तत्त्वज्ञानतत्कालमोक्षापत्त्युपदेशवैयर्थ्यादिकञ्च स्यात्।

शङ्कते नन्विति। उपदेशकत्व कल्पितमात्रको नहीं हो सकता है=उपदेशकत्वका अवच्छेदक केवल कल्पितत्व नहीं होसकता है रथ्यापुरुषकोभी उपदेशकत्वकी आपत्तिसे किन्तु तत्त्ववित्त्वेन=ज्ञायमानतत्त्ववित्त्वविशिष्टाभिन्न कल्पितको बनसकता है; तथाच=जब यों हुआ तब तो उपदेशसे पूर्व ही उपदेशकमें प्रकाशभूत तत्त्वज्ञानके हो जानेसे=उपदेशकमें प्रकारविधया जिज्ञासित जो तत्त्वज्ञान उस तत्त्वज्ञानके हो जानेपर तदैव=उपदेशसे पूर्व ही मोक्षकी आपत्ति है और उपदेशका नैष्फल्य है। इसरीतिसे तो स्वप्नमेंभी तुल्य है=स्वप्नमेंभी उपदेशकमें अवच्छेदकीभूततत्त्वज्ञानको उपदेशसे पूर्वमें ही हो जानेसे वहाँभी उपदेशसे प्रथम ही मोक्ष हो जायगा, और उपदेशका वैयर्थ्य होगा, नच=स्वप्नमें ऐसा नहीं हो सकता है; क्यों? तदा हि=स्वप्नमें तो शब्दविशेषवक्तृत्वेन ही गुरुकी कल्पना की जाती है, और उपदेशसे साध्य जो ज्ञान तादृशज्ञानका जो विषयविशेष तादृशविषयविशेषज्ञातृत्वेन गुरुकी कल्पना नहीं की जाती है, इस विशेषके होनेसे=यह पुरुष हमको इष्ट जो ज्ञान है तादृशज्ञानजनक शब्दोंका वक्ता है, अतः यह हमारा गुरु होनेके लायक है, इसरीतिसे शब्दविशेषवक्तृत्वप्रकारक ज्ञान स्वप्नमें गुरुत्वेन अभिमतव्यक्तिमें इष्ट है, किन्तु उपदेशसाध्यज्ञानविषयविशेषविज्ञत्वेन नहीं यह स्वप्नमें जाग्रत्से विशेष है; इतिचेन्न; क्यों? अत्रापि=जाग्रत्कालावच्छेदेन अस्मदीयसिद्धान्तमेंभी स्वप्नवत् ही शब्दविशेषवक्तृत्वेन ही तत्कल्पन=गुरुकल्पनका सम्भव होनेसे; शङ्कते नन्विति। तब तो जो आप जानते हैं वही मुझको कहो, (बृ० २।४।३) इत्यादि श्रुति और तत्त्वदर्शी ज्ञानीलोग तुझको ज्ञानजनक उपदेश देंगे, (गी० ४।३४) इत्यादि स्मृति अयुक्त हो जायगी=इन श्रुति स्मृतिओंमें गुरुधर्मिकतत्वज्ञानप्रकारकज्ञान आवश्यक मालूम होता है इति चेन्न, क्यों? सामान्यरूपसे मोक्षका उपयोगि जो ज्ञान तादृशज्ञानका जो विषय तादृशविषयवित्त्वेन या अज्ञात जो तत्त्व तादृशतत्त्ववित्त्वेन या तत्त्वमस्यादिवाक्यवक्तृत्वेन उपदेशकत्वका संभव होनेसे उदाहृतवाक्योंके साथ अविरोध होनेसे=शिष्यको गुरुत्वेन अभिमतव्यक्तिधर्मिक सामान्यतः उक्तप्रकारप्रकारक ज्ञान चाहिए विशेषतः नहीं; अन्यथा तुह्मारे मतमेंभी तत्त्ववित्त्वेन प्रमित ही आचार्यत्वेन अनुसरणीय होगा, फलतः उपदेशसे पूर्व ही तत्वज्ञानके हो जानेपर उपदेशसे पूर्व ही मोक्षकी आपत्ति होगी और उपदेशके वैयर्थ्यादि होंगे।

एतेन स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यमित्यादिविधिरपि भावितत्त्वज्ञानिकल्पकचेतनं प्रत्येव; नच तस्य शिष्यः स्वाज्ञानकल्पित इति ज्ञानतस्तन्मोक्षार्थं प्रवचने प्रवृत्तिर्युक्ता, नच स्वप्नवत् कल्पितत्वाज्ञानात्प्रवृत्तिः तत्त्वविदस्तदज्ञानुपपत्तेरिति—निरस्तम्, स्वप्नगुरुवत् कल्पितत्वेन गुरोरपर्यनुयोज्यत्वात्। नच—तत्त्वज्ञानहेतुत्वेन वेदस्य मीमां-

स्यत्ववत् गुरोरपि पर्यनुयोज्यत्वमिति-वाच्यम्, तर्केण वेद इव तत्तद्रूपकल्पनया गुरावपि तत्परिहारात्। नच—कथास्वपि सदुत्तरापरिस्फूर्त्तावहं त्वत्कल्पितो न पर्यनुयोज्य इत्युत्तरं स्यादिति—वाच्यम् कथायाः कल्पितत्वानिश्चयकालीनत्वेन समयवन्धविशेपनिवन्धनत्वेन च तादृगुत्तरानवकाशात्। तस्माच्छिष्यवत् गुरोरपि कल्पितत्वात् स्वप्नवत् सर्वव्यवस्थोपपत्तिः।

एतेन=स्वप्नवत् व्यवस्थोपपादनसे। स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम्, 'वेदाध्ययन तथा अध्यापनसे प्रमाद नहीं करना'(तै० १।११।१) यह विधिभी आगे होनेवाला जो सर्वके मोक्षका कारणीभूत तत्त्वज्ञान उस तत्त्वज्ञानका कल्पक जो चेतन है, उसके प्रति ही होगी=सर्वका मोक्ष जिस तत्त्वज्ञानसे होता है, एतादृक् जो तत्त्वज्ञान है तादृश तत्त्वज्ञानसे आगे मुक्त होनेवाला है ऐसा समझ कर शिष्य शास्त्रादिकी कल्पना करनेवाला जो चेतन है उस चेतनके प्रति ही यह विधि कहनी होगी परन्तु 'शिष्यः स्वाज्ञानकल्पितः' शिष्य मेरे अज्ञानसे कल्पित है, इस रीतिसे जाननेवाले तस्य=उक्त सर्वकल्पक चेतनकी तन्मोक्षार्थं=स्वाज्ञानकल्पित शिष्यके मोक्षके लिए प्रवचने=वेदाध्यापनमें प्रवृत्ति युक्त नहीं है, स्वप्नवत्=स्वप्नमें जैसे गुरु, यह शिष्य हमारे अज्ञानसे कल्पित है, ऐसा न जाननेसे शिष्यके अध्यापनमें प्रवृत्त होता है तैसेही प्रकृतमेंभी होगा, नच=नहीं होगा क्यों? तत्त्ववेत्ता पुरुषको उक्त अज्ञानकी अनुपपत्तिसे, इति निरस्तम्=यह खण्डित हुआ, स्वप्नकी तरह कल्पित होनेसे गुरुको पर्यनुयोज्यत्वके अभावसे= अनुभवानुरोधसे जैसे स्वप्नका गुरुशिष्यभाव वारित नहीं किया जा सकता है, वैसेही प्रकृतमेंभी अनुभवानुरोधसे गुरुशिष्यभाव वारित नहीं हो सकता है। जैसे तत्त्वज्ञानका हेतु होनेसे वेद मीमांस्य है तैसे गुरुभी पर्यनुयोज्य है, इति नच वाच्यम् क्यों? तर्कसे जैसे वेदमें आरोपित दोषोंका वारण होता है तैसे मोक्षोपयोगिज्ञानविषयवित्त्वादिरूपरूपोंकी कल्पनासे गुरुमेंभी आरोपित दोषोंके परिहारसे। कथाओंमें भी निर्दोष उत्तरकी स्फुर्ति न होनेपर, मैं तुमसे कल्पित हूँ इस लिए दोष देनेके लायक नहीं हूँ=तुम मुझको दोष नहीं दे सकते हो, इत्याकारकभी उत्तर होगा, इति नच वाच्यम् क्यों? कथाको कल्पितत्वका निश्चय जिस कालमें नहीं होता है उस कालमें होनेवाली होनेसे, और समयवन्ध=नियमवन्ध विशेषके आधीन होनेसे तादृश उत्तरके अनवकाशसे; ततः शिष्य जैसे कल्पित है, तैसे गुरुकोभी कल्पित होनेसे स्वप्नवत् सर्व व्यवस्थाकी उपपत्ति है।

अथ कल्पको न निश्चिताद्वैतः, शास्त्रप्रणयनवैयर्थ्यात् नापि अनिश्चिताद्वैतः, शास्त्रस्य प्रमामूलकत्वाभावप्रसङ्गात् इति चेन्न, प्रमामूलकत्वाभावेऽपि अवाधितविषयत्वेन शास्त्रप्रामाण्योपपत्तेरन्त्यपक्षाभ्युपगमात्। नच अमुकः स इत्यनिश्चये बहायाससाध्यमोक्षार्थप्रवृत्त्ययोगः प्रतिशरीरमहमहमिकया बद्धोऽहमिति निश्चयस्य स्वानुभवसाक्षिकत्वेन प्रवृत्तिसंभवात्, एकेनैव जीवेन चैत्रमैत्रादिशरीराणां सजीवत्वसंभवस्य प्रागेवोक्तत्वात्।

किंच चैत्रमैत्रादिषु कोऽसावितिप्रश्नस्य किं केनचित् क्रोडीकृतं चैतन्यं विषयः किंवा निरस्तसमस्तभेदम्। नाद्यः तस्य कल्पितत्वेनाकल्पकत्वात्। न द्वितीयः तस्यैकत्वेन तदनिश्चयासिद्धेः। शुद्धचित एकत्वेन वस्तुतोऽसंसारित्वेऽपि आवरणविक्षेपशक्तिद्वयशालिस्वाश्रिताविद्यावशात् संसारित्वकल्पकत्वमोक्षार्थयतमानत्वाद्युपपत्तिः।

शङ्कते अथेति। कल्पक जो है वह निश्चित है अद्वैत जिसको एवम्भूत तो नहीं हो सकता है, क्यों? शास्त्रके प्रणयनका वैयर्थ्य होनेसे=जब कि शास्त्रकल्पनासे पूर्वही अद्वैतका निश्चय है तब शास्त्र किस लिए बनायेगा। और अनिश्चित है अद्वैत जिसको एवम्भूत जो है वह भी कल्पक नहीं हो सकता है, क्यों? शास्त्रको प्रमामूलकत्वके अभावके प्रसङ्गसे=जिस विषयका निश्चय नहीं है, उस विषयका शास्त्र गढ डालनेसे उस शास्त्रमें प्रमाणमूलकत्व न सिद्ध होगा इति चेन्न, क्यों? प्रमामूलकत्वके अभावको होनेपरभी अबाधितविषयत्वेन शास्त्रके प्रामाण्यकी उपपत्तिसे अन्त्यपक्षका अभ्युपगम होनेसे। अमुकः सः=अमुक जीव कल्पक है ऐसा निश्चय न होनेपर बहुश्रमसाध्य जो मोक्ष उस मोक्षके लिए प्रवृत्तिका अयोग है, नच=अयोग नहीं है क्यो? शरीर शरीरके प्रति जो अहमहमिका बुद्धि होती है तादृशबुद्धिप्रयोज्य अहंबद्ध इत्यकारक निश्चयको स्वानुभवसाक्षिक होनेसे प्रवृत्तिके संभवसे, एकही जीवसे चैत्रमैत्रादिके शरीरोंके सजीवत्वको पूर्वमें उक्त होनेसे, किञ्च=अन्यभी वक्तव्य है (कोऽसौ)=कल्पक कौन है? इत्याकारक जो आपका प्रश्न है, उस प्रश्नका विषय क्या केनचित्=अन्तःकरणादिसे क्रोडीकृतम्=अवच्छिन्न=अन्तःकरणादिसे विशिष्ट प्रमातृचैतन्य है, या सर्वभेदविनिर्मुक्त शुद्ध चैतन्य विषय है, नाद्यः=आद्य पक्ष नहीं बन सकता है क्यों? तस्य=उक्त विशिष्ट चैतन्यको कल्पित होनेसे कल्पकत्वके अभावसे। न द्वितीयः=द्वितीयपक्षभी समीचीन नहीं, क्यों? तस्य=निरस्तसमस्तभेदका एकत्व होनेसे उसके अनिश्चयकी असिद्धिसे=जिसमें कोईभी भेद नहीं ऐसा शुद्ध चैतन्य एक है इस अर्थमें किसीकोभी संशय नहीं है। फलितार्थ बतलाते हैं शुद्धचित इति। एकत्व होनेसे शुद्ध चैतन्यको वस्तुतः असंसारित्व होनेपर भी आवरण तथा विक्षेप एतत्-शक्तिद्वयशालिनी जो स्वाश्रित अविद्या है तादृशअविद्याप्रयोज्य संसारित्व कल्पकत्व मोक्षार्थयतमानत्वादिकी उपपत्ति है=विशुद्ध चैतन्यमेंही उक्तविध अविद्यासे संसारित्वादिधर्म कल्पित हैं इन धर्मोंसे शुद्ध चैतन्यकी किसीभी प्रकारकी हानि नहीं इस अर्थमें मरुभूमिका दृष्टान्त दिखलाचुके हैं।

ननु—अनादौ संसारे कस्यचित्तत्त्वज्ञानं मुक्तिश्चाभून्न वा, आद्ये इदानीं संसारोपलब्धिर्न स्यात् जीवस्यैकत्वात् अन्त्ये संप्रदायासंभवेन तत्त्वज्ञानासंभव इति—चेन्न, न ह्यसांप्रदायिकत्वमुत्पत्तिविरोधिः अपूर्वजातीयानुत्पत्तिप्रसङ्गात्, किन्तु कारणासत्त्वम् तन्न; इदानीमुपदेष्ट्रात्वादिकारणस्य कल्पनामुद्रढस्य सत्त्वात्। जीवैक्यस्य प्रमाणसिद्धत्वे संसारोपलम्भ एवातः पूर्वं तत्त्वज्ञानानुत्पत्तौ प्रमाणम्। नच तत्त्ववित्त्वेन श्रुत्यादिसिद्धानां

शुकवामदेवादीनां मुक्तिर्माभूत्, मम तु भविष्यति इति कथम् श्रद्दध्यादिति-वाच्यम्; शास्त्रप्रामाण्यदार्ढ्यादिति गृहाण। अन्यथा तेषां महानुभावानां मुक्तत्वेऽपि मम भविष्यति न वा। इति शङ्कापिशाच्या प्रवृत्तिप्रतिबन्धापत्तेः।

शङ्कते नन्विति। अनादिभूत संसारमें किसीको तत्त्वज्ञान या मुक्ति हुई है या नहीं, आद्ये=प्रथमपक्ष हो तो इस कालमें संसारकी उपलब्धि न बनेगी जीवको एक होनेसे=जीव एक है-उसको तो पूर्वमें तत्त्वज्ञान तथा मुक्ति हो ही चुकी है फिर इसकालमें संसारकी उपलब्धि किसको होगी। अन्त्यपक्ष हो तो परम्परासे ज्ञानके सम्प्रदायका असंभव होनेसे इसकालमें तत्त्वज्ञानका होनाही असंभव है इति चेन्न, अन्तिमपक्षकाही एक जीववादमें संभव है। अतः कहते हैं असंप्रदायकत्व ज्ञानकी उत्पत्तिका विरोधी नहीं है=यद्विषयकज्ञान परम्परासे चला आता है तद्विषयकही ज्ञान होता है ऐसा नियम नहीं है, ऐसा नियम यदि होगा तो चैत्रत्वादि-अपूर्वजातिविषयक अपूर्वज्ञान न होगा परन्तु ऐसा ज्ञानतो अनुभव सिद्ध है अतः अनादि तत्त्वज्ञानका प्रवाहरूप जो सम्प्रदाय है उसका न होना ज्ञानोत्पत्तिका विरोधी नहीं किन्तु कारणका असत्त्व ज्ञानोत्पत्तिका विरोधी है, तन्न, वह तो नहीं है, क्यों ? कल्पनासे सुदृढ़ उपदेष्टृत्वादिरूपकारणके सद्भावसे और जीवके ऐक्यको प्रमाणसे सिद्ध होनेपर संसारकी उपलब्धिही अबसे पहिले तत्त्वज्ञानकी उत्पत्ति नहीं हुई है इसमें प्रमाण है। तत्त्ववित्त्वेन श्रुत्यादिसे सिद्ध जो शुकवामदेवादि उन शुकवामादिकी मुक्ति नहीं हुई और मेरी मुक्ति होगी इत्याकारक श्रद्धा कैसे करेगा, इति न च वाच्यम्, क्यों ? शास्त्रनिष्ठप्रामाण्यकी दृढ़तासे ऐसी श्रद्धा करेगा यदि ऐसा न माना जाय तो उन पूर्वयुगवृत्ति महानुभावोंको मुक्तत्व होनेपरभी मेरी मुक्ति होगी या नहीं' इत्याकारक शङ्का पिशाचीसे मोक्षके साधनोंमें प्रवृत्तिके प्रतिबन्धकी आपत्ति है, अतः शास्त्रप्रामाण्य-दार्ढ्यसेही श्रद्धापूर्वक प्रवृत्त्यादिकी उपपत्ति है।

ननु—तर्हि श्रुतिप्रामाण्यबलादेव तत्सिद्धौ जीवभेदः। पूर्वमपि केषांचिन्मोक्षश्चाभ्युपेयताम्। श्रूयते हि-तद्योयो देवानाँ प्रत्यबुध्यत सएव तदभवत्तर्षीणां तथा मनुष्याणां अजोह्येकोजुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः ' नित्योनित्यानाँ चेतनश्चेतनानाम् इत्यादि। स्मर्यते च-बहवो ज्ञानतपसा पूता मद्भावमाश्रिताः इदं ज्ञानमुपाश्रित्य मम साधर्म्यमागताः॥ इत्यादीति चेन्न, उक्तवाक्यानां सार्वलौकिकभ्रमसिद्धभेदानुवादकत्वेन तत्परत्वाभावात् जीवैक्यबोधकवाक्यानां च मानान्तराप्राप्तस्वार्थपरत्वात् स्वप्नन्यायेन भेदस्य कल्पितत्वोपपत्तेश्च। ज्ञानस्तुतिपराणि वाक्यानि नात्मभेदं प्रमातुं शक्नुवन्ति। तात्पर्यवद्वाक्याविरोधेनातात्पर्यवद्वाक्यानां गुणवादत्वोपपत्तेः। अतीतानागताश्चैव यावन्तः सहिताः क्षणाः ततोऽप्यनन्तगुणिता जीवानां राशयः पृथक् ॥ इत्यादिस्मृतिरपि जीवोपाधिभेदानुवादकतया व्याख्येया। तस्मादधिकोपाधिको जीव एक एवेतिसिद्धम्॥

इत्यद्वैतसिद्धौ एकजीवाज्ञानकल्पितत्वोपपत्तिः।

शङ्कते नन्विति। तर्हि=जबकि शास्त्रमें दृढ श्रद्धा है तब तो श्रुतिनिष्ठप्रामाण्यके बलसेही जीवोंका भेद सिद्ध हुआ, और शास्त्रके बलसेही पूर्वमें भी कितनेही लोगोंका मोक्षभी आपसे अङ्गीकरणीय है। सुना जाता है–देवानाम्=देवताओंमें जिस जिसने तत्=उस ब्रह्मको जाना वहवह ब्रह्मरूप हुआ। तैसेही ऋषियोंमें और तैसेही मनुष्योंमें (वृ०१।४।१०)। तैसेही 'अजो ह्येको' (श्वेत०४।५) इत्यादिश्रुतिमें और 'नित्यो नित्यानाम्' (कठ०५।१३) इत्यादि श्रुतिमें जीवोंका भेद स्पष्ट है। और भेद स्मृतभी होता है, बहवो ज्ञान तपसा (गी०४।१०) इत्यादि स्मृतिमें तथा 'इदं ज्ञानमुपाश्रित्य' (गी०१४।२) इत्यादि स्मृतिमें जीवोंका भेद स्पष्ट है, इति चेन्न; क्यों ? उक्त वाक्योंको सर्व लोकोंमें विदित जो भ्रम तादृश भ्रमसे सिद्ध जो भेद तादृशभेदका अनुवादकत्व होनेसे भेदपरत्वके अभावसे, और जीवैक्यबोधक वाक्योंको प्रमाणान्तरसे अप्राप्त जो ऐक्यरूपस्वार्थ तादृशस्वार्थपरत्व होनेसे। और स्वप्नके दृष्टान्तसे भेदके कल्पितत्वकी उपपत्तिसेभी। और ज्ञानके माहात्म्यको बतलानेवाले उक्त श्रुति-स्मृतिवाक्य आत्मभेदको नहीं सिद्ध करते हैं, स्वार्थमें तात्पर्य रखनेवाले जो वाक्य हैं उन वाक्योंके साथ अविरोधपूर्वक स्वार्थमें तात्पर्यको नहीं रखनेवाले वाक्योंको गुणवादत्वकी उपपत्तिसे। अतीत तथा अनागत यावत् वर्त्तमानके सहित क्षण हैं उनसे भी अनन्त गुणित जीवोंकी राशियाँ पृथक् हैं इत्यादि स्मृतिभी जीवकी उपाधिभूत जो अन्तःकरण हैं उन उपाधिभूतान्तःकरणोंका जो भेद तादृशभेदानुवादकत्वेन व्याख्येय है। तस्मात् अविद्यारूप उपाधिवाला जीव एकही है यह एकजीववादकी रीतिसे सिद्ध हुआ।

॥ इति सरलायामेकजीववादः ॥

अथ अज्ञानवादेऽज्ञानलक्षणनिरुक्तिः।

अथ—केयमविद्या ? न तावदनादिभावरूपत्वे सति ज्ञाननिवर्त्या सेति, सादिशुक्त्याद्यवच्छिन्नचैतन्यावरकाज्ञानेऽव्याप्तेः तस्यानादित्वाभावात्। अभावोपादानाज्ञाने च भावत्वाभावात्तत्राव्याप्तिः। अभावस्य भावोपादानकत्वे असत्यस्यापि सत्योपादानकत्वं स्यात्। अज्ञानानुपादानकत्वे तस्य ज्ञानान्निवृत्तिर्न स्यात् इति अत्र ब्रूमः, रूप्योपादानाज्ञानमप्यनादिचैतन्याश्रितत्वात् अनाद्येव, उदीच्यं शुक्त्यादिकं तु तदवच्छेदकमिति न तत्राव्याप्तिः, भावत्वं चात्राभावविलक्षणत्वमात्रं विवक्षितम्, अतः आरोपिताभावोपादानाज्ञानेऽप्यभावविलक्षणत्वस्वीकारान्नाव्याप्तिः नच—सजातीयोपादानकत्वनियमःअन्यथा असत्यस्यापि सत्यमुपादानं स्यादिति—वाच्यम्, सर्वथा साजात्ये सर्वथा वैजात्ये चोपादानोपादेयभावादर्शनेन तथा साजात्यस्य वैजात्यस्य वा आपादयितुम् अशक्यत्वात्।

अथ सरलायामज्ञानवादेऽज्ञानलक्षणोपपत्तिः।

प्रश्न करते हैं अथेति। इयम्=यह अविद्या क्या है=जिस अविद्याके ऊपर प्रपञ्चवृत्ति-मिथ्यात्वरूप साध्य अवलम्बित है वह अविद्या लक्षणतः और प्रमाणतः क्या है ? अनादिभावरूपत्वे

सति ज्ञाननिवर्त्यत्वरूप लक्षणकी लक्ष्य तो अविद्या नहीं वन सकती है=यहाँपर यदि 'अनादिभावरूपत्व' इतनाही लक्षण करें तो आत्मामें अतिव्याप्ति है, अतः ज्ञाननिवर्त्यत्वभी कहा है यदि केवल ज्ञाननिवर्त्यत्वही कहें तो ज्ञानसे निवर्त्य पूर्वज्ञानेच्छादिमें अतिव्याप्ति है अतः अनादित्वे सति कहा है। 'अनादित्वे सति ज्ञाननिवर्त्यत्वमात्र कहें तो ज्ञानके प्रागभावमें अतिव्याप्ति है। अतः भावत्वे कहा, द्वैती कहता है कि यह प्राचीन चित्सुखाचार्यादिका किया हुआ अविद्याका लक्षण नहीं वन सकता है क्यों ? सादि जो शुक्त्यादि तादृशशुक्त्यादिसे अवच्छिन्न जो चैतन्य तादृशचैतन्यका आवरक जो अज्ञान उस अज्ञानमें अव्याप्ति होनेसे किस अंशके न रहनेसे अव्याप्ति है तहाँ कहते हैं तस्येति। उक्ताज्ञानको अनादित्वका अभाव होनेसे। च=और अभावका उपादानभूत जो अज्ञान उस अज्ञानमें भावत्वका अभाव होनेसे तत्र=उस अज्ञानमें अव्याप्ति है, अभावको भावोपादानक होनेपर असत्यकोभी सत्योपादनकत्व होगा तस्य=अभावको अज्ञानानुपादानकत्व होनेपर=अज्ञानको अभावका उपादान न माननेपर तस्य=अभावकी ज्ञानसे निवृत्ति न होगी। क्योंकि अज्ञान या अज्ञानस्थित्यधीनस्थितिक पदार्थकीही ज्ञानसे निवृत्ति होती है। अत्र ब्रूमः=यहाँ समाधान कहते हैं-रूप्यका उपादानभूत जो अज्ञान है वहभी अनादि चैतन्यके आश्रित होनेसे अनादिही है, उदीच्यम्=सादिशुक्त्यादिकतो अवच्छेदकम् उक्ताज्ञानीय-अधिष्ठानतावच्छेदक हैं इति=अतः तत्र=शुक्त्याद्यवच्छिन्नचैतन्यावरकाज्ञानमें अव्याप्ति नहीं है। अत्र=इस अज्ञानलक्षणमें भावत्व तो अभावसे विलक्षणत्वमात्र विवक्षित है अतः आरोपित जो अभाव तादृश अभावका उपादान जो अज्ञान उस अज्ञानमेंभी अभावविलक्षणत्वके स्वीकारसे अव्याप्ति नहीं है। शङ्कते नचेति। कार्यमें सजातीयोपादानकत्वका नियम है=कार्य स्वसमानजातीय जो उपादान है उस उपादानसे उत्पन्न होता है, ऐसा नियम है, ऐसा नियम न माननेपर असत्यकाभी सत्य उपादान हो जायगा इति नच वाच्यम् क्यों ? सर्वथा साजात्य होनेपर या सर्वथा वैजात्य होनेपर उपादानोपादेयभावके न देखनेसे, तथा=सर्वथा साजात्यको या वैजात्यको आपादन करनेके लिए अशक्य होनेसे=तन्तुओंका परस्पर उपादानोपादेयभाव नहीं देखा जाता है, तैसेही तन्तु तथा घटकाभी उपादानोपादेयभाव नहीं देखा जाता है। अतः उपादानमें सर्वथा कार्यनिरूपित साजात्य या वैजात्य आपादन करनेके लिए शक्य नहीं है।

नहि कार्याकारकारणाकारतोऽप्यभेदे कार्यकारणभावः सत्यस्य त्वसत्योपादानत्वे सत्यस्य निवृत्त्यसम्भवेन तदुपादेयस्यासत्यस्यापि निवृत्तिर्न स्यात्। उपादाननिवृत्तिमन्तरेणोपादेयानिवृत्तेः अतो न सत्यमसत्यस्योपादानम् सत्यस्यापरिणामित्वाच्च। विवर्त्ताधिष्ठानत्वन्त्वभ्युपेयत एव। नच-ब्रह्माज्ञाने ब्रह्मणो वृत्त्यव्याप्यत्वपक्षेऽव्याप्तिः, तस्य ज्ञानानिवर्त्यत्वात् इति वाच्यम्, स्वरूसदुपाधिमत्तद्विषयकज्ञाननिवर्त्यत्वस्य तन्मतेऽपि भावात् उपपादितंचैतत् दृश्यत्वहेतूपपादने। अथ-औपाधिकभ्रमोपादानाज्ञाने

ब्रह्मसाक्षात्कारानन्तरविद्यमानजीवन्मुक्ताज्ञाने च ज्ञाननिवर्त्यत्वाभावादव्याप्तिः तयोर्ज्ञाननिवर्त्यत्वे उपाधिकालजीवन्मुक्तिकालयोरेव ज्ञानप्रागभाववत्तन्निवृत्त्यापत्तिरिति चेन्न; उपाधिप्रारब्धकर्मणोः प्रतिवन्धकयोरभावविलम्बेन निवृत्तिविलम्बेऽपि तयोर्ज्ञाननिवर्त्यत्वानपायात् । नहि क्वचिदविलम्बेन जनकस्य क्वचित्प्रतिवन्धेन विलम्बे जनकताऽपैति।

उक्तार्थकोही स्पष्ट करते हैं नहीति । कार्याकारतः और कारणाकारतःसेभीः अभेद होनेपर कार्यकारणभाव नहीं होता है=कार्यतावच्छेदकधर्मका नाम है कार्याकार, और कारणतावच्छेदकधर्मका नाम है कारणाकार फलितार्थ यह निकला कि कार्यतावच्छेदकधर्मसे कार्यकारणका साजात्य होनेपर भी कार्यकारणभाव होता है ऐसा भी नहीं है, असम्भव होनेसे, तैसे कारणतावच्छेदकधर्मसे कार्यकारणका साजात्य होनेपर भी कार्यकारणभाव होता है ऐसा भी नहीं है, असम्भव होनेसे; अर्थात् साजात्य चाहिए यह ठीक है परन्तु वह साजात्य सर्वकार्यकारणभावापन्नपदार्थोंमें अनुगत रूपसे नहीं बन सकता है और सत्यको असत्योपादानत्व होनेपर सत्यकी निवृत्तिके असम्भवसे सत्यके उपादेयभूत असत्यकी भी निवृत्ति न होगी उपादानकी निवृत्तिके विना उपादेयकी अनिवृत्तिसे । अतः सत्य असत्यका उपादान नहीं है, और सत्यको अपरिणामित्व होनेसेभी उपादानत्व नहीं है, और सत्यका भी विवर्त्तोपादनत्व तो अङ्गिकार कियाही जाता है, ब्रह्मणः=ब्रह्मको वृत्तिव्याप्यत्व नहीं है इसपक्षमें ब्रह्माज्ञानमें अव्याप्ति है, किस अंशके न रहनेसे अव्याप्ति है वहाँ कहते हैं तस्येति । तस्य=ब्रह्माज्ञानको उक्त पक्षमें ज्ञानसे अनिवर्त्य होनेसे, इति न च वाच्यम्; क्यों ? स्वरूपसत्=अज्ञायमान जो उपाधि तादृशउपाधिमद्विषयक जो ज्ञान तादृशज्ञानसे निवर्त्यत्वको तन्मतेऽपि= ब्रह्मके वृत्त्यव्याप्यत्वमतमेंभी अस्तित्व होनेसे । यह अर्थ दृश्यत्वहेतूपपादनावसरमें उपपादित हो चुका है । शङ्कते अथेति । (लोहितः स्फटिकः) (दर्पणे मुखम्) इत्यादि जो सोपाधिक भ्रम हैं उन भ्रमोंका उपादान जो अज्ञान तादृशाज्ञानमें और ब्रह्मसाक्षात्कारके बाद विद्यमान जो जीवन्मुक्तका अज्ञान है, उस अज्ञानमें ज्ञाननिवर्त्यत्वके अभावसे अव्याप्ति है तयोः=उक्त दोनों अज्ञानोंको ज्ञाननिवर्त्यत्व होनेपर उपाधिकालमें तथा जीवन्मुक्तकालमें ही ज्ञानके प्रागभावकी नाई तत्=उन्होंके निवृत्तिकी आपत्ति है. इति चेन्न, क्यों ? उपाधि तथा प्रारब्धरूप प्रतिवन्धक हैं, उन प्रतिवन्धकोंके अभावके विलम्बसे उक्त ज्ञानोंकी निवृत्तिमें जरा विलम्ब होनेपर भी उन दोनोंके ज्ञाननिवर्त्यत्वके अनपायसे कहींपर अविलम्बसे जो जनक है उस जनककी जनकता कहींपर प्रतिवन्धसे कार्यमें जरा विलम्ब होनेपर दूर नहीं होती है ।

नच—तर्हि ज्ञातेऽपि तत्राज्ञात इति व्यवहारापत्तिः तादृग्व्यवहारे आवरणशक्तिमदज्ञानस्य कारणत्वेन तदावरणशक्त्यभावादेव ईदृग्व्यवहारानापत्तेः । यथा चैतत्तथोपपादयिष्यते । न चाविद्याचैतन्यसम्बन्धेऽतिव्याप्तिः साक्षाज्ज्ञाननिवर्त्यत्वस्य विवक्षितत्वात् । तस्याप्यविद्यात्मकत्वाद्वा । नच विशेषणान्तरवैयर्थ्यम्, अनादिपदस्योत्तरज्ञान-

निवर्त्त्ये पूर्वज्ञाने भावपदस्य ज्ञानप्रागभावे ज्ञानजन्यकार्यप्रागभावे चातिव्याप्तिवारकत्वेन सार्थकत्वात् । ज्ञानत्वेन साक्षात्तन्निवर्त्यत्वं तु भवति लक्षणान्तरम् ।

तर्हि=ज्ञानके होनेपरभी यदि प्रतिबन्धसे अज्ञानकी निवृत्तिमें विलम्ब होता है तब तो वस्तुके ज्ञात होनेपरभी 'मयाऽज्ञातम्' इत्याकारक व्यवहारकी आपत्ति है नच=नहीं है, क्यों ? उक्तविध व्यवहारमें आवरणशक्तिमदज्ञानको कारणत्व होनेसे ज्ञानकालमें आवरणशक्तिके अभावसेही ईदृक् व्यवहारकी अनापत्तिसे, जैसे यह अर्थ है तैसे उपपादन किया जायगा। अविद्या तथा चैतन्य इन दोनोंका जो सम्बन्ध है उस सम्बन्धमें अतिव्याप्ति है=उक्त सम्बन्ध अनादिभी है, भावरूपभी है, ज्ञानसे निवर्त्त्यभी है अतः अतिव्याप्ति है. न च अतिव्याप्ति नहीं है, क्यों ? साक्षाद्ज्ञाननिवर्त्यत्वको लक्षणघटकत्वेन विवक्षित होनेसे=उक्त सम्बन्धको साक्षात् ज्ञाननिवर्त्यत्व नहीं है किन्तु अविद्यानिवृत्तिप्रयोज्यनिवृत्तिप्रतियोगित्वरूप परम्परासे ज्ञाननिवर्त्यत्व है, अथवा उसको अविद्यात्मक होनेसे अतिव्याप्ति नहीं है, विशेषणान्तर=अनादित्व और भावरूपत्व ये विशेषणान्तर हैं इन विशेपणान्तरोंका वैयर्थ्य है, नच=वैयर्थ्य नहीं है क्यों ? अनादिपदका उत्तर ज्ञानसे निवर्त्त्य जो पूर्वज्ञान उस पूर्वज्ञानमें अतिव्याप्तिवारकत्वेन सार्थक्य होनेसे और भावपदको ज्ञानके प्रागभावमें तथा ज्ञानसे जन्य जो इच्छादिरूपकार्य उस इच्छादिरूपकार्यके प्रागभावमें अतिव्याप्तिवारकत्वेन साफल्य होनेसे, जैसे ज्ञानके प्रागभावकी निवृत्ति ज्ञानसे होती है तैसे ज्ञानजन्यकार्यके प्रागभावकी निवृत्तिभी ज्ञानसे होती है. और 'ज्ञानत्वेन साक्षाज्ज्ञाननिवर्त्त्यत्वम्' यह तो लक्षणान्तर है, और लक्षणान्तरसे निर्दोष लक्षणान्तरका त्याग नहीं हो सकता है, अर्थात् 'अनादित्वे सति भावत्वे सति ज्ञाननिवर्त्त्यत्वम्' यह भी एक स्वतन्त्र लक्षण है और लक्ष्यधर्मिक इतरव्यावृत्त्यनुमिति या 'इयं अविद्यापदबोध्या' इत्याकारक व्यवहार करानेको समर्थ है, तैसेही ज्ञानत्वेन साक्षाज्ज्ञाननिवर्त्त्यत्वम् । यह लक्षण भी स्वतन्त्रहुआ उक्त द्विविध फल सिद्ध कर सकता है।

ननु—असंभवः कल्पितत्वेन दोषजन्यधीमात्रशरीरस्याज्ञानस्य ज्ञाननिवर्त्त्यस्याभावविलक्षणस्य च रूप्यवदनादित्वायोगादिति—चेन्न; कल्पितत्वमात्रं हि न दोषजन्यधीमात्रशरीरत्वे सादित्वे वा तन्त्रम्, किन्तु प्रतिभासकल्पकसमानकालीनकल्पकवत्त्वम् सादिकल्पकवत्वम्, विद्यानिवृत्त्यप्रयुक्तनिवृत्तिप्रतियोगित्वम् प्रागभावप्रतियोगित्वं वा तन्त्रम्। नच तत्प्रकृतेऽस्ति । ज्ञाननिवर्त्यत्वसमानाधिकरणाभावविलक्षणत्वेनाविद्यायाः सादित्वसाधने 'अजामेकाम्' अनादिमाययेत्यादिशास्त्रविरोधः । अनादित्वसाधकेन ज्ञाननिवर्त्यत्वे सति भावविलक्षणत्वेन सत्प्रतिपक्षश्च, भावत्वस्योपाधित्वञ्च नच—अभावविलक्षणाविद्यादौ भावविलक्षणत्वमसंभवि परस्पर—विरोधादिति—वाच्यम्, भावत्वाभावत्वयोर्बाधकसत्त्वेन तृतीयप्रकारत्वसिद्धौ परस्परविरहव्यापकत्वरूपविरोधासि-

द्धेः,परस्परविरहव्याप्यत्वरूपस्तु विरोधो नैकविरहेणापरमाक्षिपति । नहि गोत्वविरहोऽश्वत्वमाक्षिपतीत्युक्तम् ।

शङ्कते नन्विति । इस लक्षणमें असंभवदोष है, क्यों ? कल्पित होनेसे दोषजन्यधीमात्रशरीर तथा ज्ञानसे निवर्त्त्य और अभावसे विलक्षण ऐसा जो अज्ञान है उस अज्ञानको शुक्तिरूप्यवत् अनादित्वका अयोग होनेसे=जैसे दोषसे जन्य जो धी तादृशधीमात्रशरीरवाला और ज्ञानसे निवर्त्त्य तथा–अभावसे विलक्षण शुक्तिरूप्य अनादि नहीं हो सकता है, तैसे ही उक्तविशेषणत्रयप्रयुक्त अज्ञानभी अनादि नहीं बन सकता है.=इतिचेन्न,=ऐसा यदि कहोतो नहीं कहना क्योंकि कल्पितत्त्वमात्र दोषजन्यधीमात्रशरीरत्वमें या सादित्वमें प्रयोजक नहीं है, किन्तु प्रतिभासकल्पकसमानकालीनकल्पकवत्त्व तत्र है=प्रतिभास=स्वविषयकजन्यज्ञानका जो कल्पक तादृशकल्पकसमानकालीन जो कल्पक तादृशकल्पकवत्त्व=स्वविषयकजन्यधीकालत्वव्याप्यस्वदृष्टृकत्व–स्वपदसे शुक्तिरजतको लिया तद्विषयक जो जन्यधी 'इदं रजतम्' इत्याकारक धी तादृशधीका अधिकरणीभूत जो काल–उक्त धी जिस कालमें है वहकाल तादृशकालत्वव्याप्य जो स्वविषयक अविद्यावृत्त्यवच्छिन्न साक्षीरूपद्रष्टा तादृशद्रष्टृकत्व शुक्तिरजतमें है, तादृशअविद्यावृत्तिघटितद्रष्टृकत्व प्रलयादिमें अविद्यामें नहीं है । अतः अविद्यामें दोषजन्यधीमात्रशरीरत्व या सादित्व नहीं है, दूसरा प्रयोजक बतलाते हैं–सादिकल्पकवत्त्वम्=अविद्याका कल्पक अविद्योपहित चिद्रूप अनादि है और शुक्तिरूप्यादिका कल्पक जो अधिष्ठानविषयक ज्ञानवान् है वह सादि है–उपाधिप्रयुक्त सादित्वव्यवहार है । अथवा (सादिकल्पकवत्त्वम्) इसका अर्थ करना ' सादिकल्पनाविषयत्वम् ' ऐसा अर्थ करनेसेभी अविद्यामें प्रयोज्यकी सिद्धि नहीं है । उक्त प्रयोज्यका अर्थात् दोषजन्यधीमात्रशरीरत्वका और सादित्वका तृतीय प्रयोजक बतलाते हैं ' विद्यानिवृत्त्यप्रयुक्तनिवृत्तिप्रतियोगित्वम् ' विद्याशब्दसे चरमवृत्तिरूप विद्याका ग्रहण है अनिवृत्ति नाम सम्बन्धका है, तथाच विद्याऽनिवृत्ति इतनेका अर्थ हुआ–वेदान्तविचार–जन्य–चरमवृत्तिका सम्बन्ध आगे अप्रयुक्तके साथ इसका अविद्याऽनिवृत्त्या अप्रयुक्ता इति अविद्याऽनिवृत्त्यप्रयुक्ता इत्याकारक तृतीयातत्पुरुषसमास करना आगे क्तान्तका विवृत्तिके साथ कर्मधारय करना तथाच यह अर्थ हुआ,–चरमवृत्तिसम्बन्धसे अप्रयुक्त जो निवृत्ति तादृशनिवृत्तिप्रतियोगित्व तत्र है, यह प्रयोजक शुक्तिरूप्यमें है, क्योंकि चरमवृत्तिसे अप्रयुक्त जो निवृत्ति= ' नेदं रजतम् ' इत्यादिज्ञानजन्य रजतकी निवृत्ति तादृश–निवृत्ति–प्रतियोगित्व शुक्तिरूप्यमें रह गया, अविद्यामें यह प्रयोजक नहीं है, क्योंकि, अविद्यामें चरमवृत्तिप्रयुक्तनिवृत्तिप्रतियोगित्व है, अप्रयुक्तनिवृत्तिप्रतियोगित्व नहीं । तैसेही जीव, ईश, और इनका भेद अविद्याचित्का सम्बन्ध इन सबकी निवृत्तिभी चरमवृत्तिप्रयुक्त ही है अप्रयुक्त नहीं । अतः इनमेंभी प्रतिभासमात्रशरीरत्व या सादित्व नहीं है । चतुर्थ प्रयोजक बतलाते हैं–या प्रागभावका प्रतियोगित्व तत्र है, तत्=प्रागभाव प्रतियोगित्व प्रकृते=अविद्यारूप प्रकृतपदार्थमें नहीं है; ज्ञाननिवर्त्यत्वसमानाधिकरण जो अभावविलक्षणत्व तादृशअभावविलक्षणत्वसे अविद्याके सादित्वसा-

धनमें=अविद्या सादिः ज्ञाननिवर्त्यत्वे सति अभावविलक्षणत्वात् शुक्तिरूप्यवत् इस अनुमानसे अविद्याके सादित्वसाधनमें 'अजामेकाम्' (श्वेत०४।५) अनादिमायया (गौ०का०१।१६) इत्यादिशास्त्रका विरोध है। और अनादित्वसाधक जो ज्ञाननिवर्त्यत्वे सति भावविलक्षणत्व है उससे आपका अनुमान सत्प्रतिपक्षितभी है=अज्ञानम्, अनादि, ज्ञाननिवर्त्यत्वे सति भावविलक्षणत्वात्, यन्नैवं तन्नैवं यथा शुक्तिरजतादिकम्, इस सत्प्रतिपक्षसे आपका अनुमान ग्रस्त है और आपके अनुमानमें भावत्व उपाधिभी है,=रजतादिमें साध्यकी व्यापक है और अविद्यान्तर्भावेन साधनकी अव्यापक है, शङ्कते नचेति। अभावसे विलक्षण जो अविद्यादिक हैं उन्होंमें भावविलक्षणत्व असंभवित है, परस्पर विरोध होनेसे=भावत्व तथा अभावत्वका परस्पर विरोध होनेसे, इति नच वाच्यम् क्यों? भावत्व तथा अभावत्व इन दोनोंके बाधकके सत्त्वसे तृतीय प्रकारत्वकी सिद्धि होनेपर परस्पर विरहका व्यापकत्वरूप जो विरोध उस विरोधकी असिद्धिसे=विनाशी जो भाव होता है, वह नियमसे सादि होता है, और अज्ञान तो अनादि होनेपरभी विनाशि हैं, अतः अज्ञानमें भावत्व नहीं है, और अभावत्व जिसमें रहता है, वह उपादान नहीं होता है, और अज्ञान तो उपादान है, अतः इसमें अभावत्व भी नहीं किन्तुभावाभावसे विलक्षण अज्ञान है, अतः परस्परविरहव्यापकत्वरूप विरोध नहीं, और परस्परविरहव्याप्यत्वरूप जो विरोध है वह तो एकके अभावसे दूसरेका आक्षेप नहीं करता है गोत्वका विरह अश्वत्वका आक्षेप नहीं करता है, यह प्रथम मिथ्यात्वनिरुक्तिके अवसरमें कहा गया है।

नचात्मवदनादेरभावविलक्षणस्यानिवर्त्यत्वम्; आत्मत्वस्यैवोपाधित्वात्। नचात्यन्ताभावान्योन्याभावयोः साध्याव्याप्तिः अधिकरणातिरिक्तस्यानिवर्त्यस्यात्यन्ताभावादेरनभ्युपगमात्। नच तुच्छे साध्याव्याप्तिः, अभावविलक्षणत्वरूपसाधनावच्छिन्नसाध्यव्यापकत्वोपपत्तेः। किंच सादित्वमनादित्वं वा न निवर्त्यत्वानिवर्त्यत्वयोः प्रयोजकम् ध्वंसप्रागभावयोस्तदभावात्। नापि भावत्वविशेषितं तत् तथा अभावे तदसत्त्वेन भिन्नभिन्न–प्रयोजककल्पनापत्तेः। भावनिवृत्त्यनिवृत्त्योरेव तयोः प्रयोजकत्वे च भावविलक्षणाविद्यादौ ताभ्यां तयोरनापादनात्। तस्मान्नाशसामग्रीसन्निपातासन्निपातावेव निवर्त्यत्वानिर्वत्यत्वयो प्रयोजकावितिमन्तव्यम् तौ च फलबलकल्प्याविति न कोऽपि दोषः।

आत्माकी तरह अनादि तथा अभावसे विलक्षणका अनिवर्त्यत्व है=अज्ञानं, न निवर्त्यम्, अनादित्वे सति अभावविलक्षणत्वात् आत्मवत्; इस अनुमानसे अज्ञानको अनिवर्त्यत्व है नच=नहीं है क्यों? आपके अनुमानमें आत्मत्वकोही उपाधित्व होनेसे=आत्मत्वमें अनिवर्त्यत्वरूपनिश्चितसाध्यव्यापकत्व आत्मान्तर्भावेण स्पष्ट है और अज्ञानरूपपक्षान्तर्भावेण साधनाव्यापकत्वभी स्पष्टही है, अत्यन्ताभाव और अन्योन्याभाव इन दोनोंमें साध्यकी अव्यापक उपाधि है=इन दोनोंमें अनिवर्त्यत्वरूप साध्यतो है परन्तु आत्मत्वरूप उपाधि नहीं अतः साध्यकी अव्यापक है नच=नहीं, साध्यकी अव्यापक नहीं क्यों? अधिकरणसे अतिरिक्त और अनिवर्त्य

एवम्भूत अत्यन्ताभावादिके अनभ्युपगमसे=अधिकरणसे अतिरिक्त हैं और अनिवर्त्य हैं एवम्भूत अत्यन्ताभाव या अन्योन्याभावको हमलोग नहीं मानते हैं, तुच्छे=तुच्छपदार्थमें अनिवर्त्यत्वरूप साध्य रहता है परन्तु आत्मत्व नहीं है अतः उपाधि साध्यकी अव्यापक है नच=साध्यकी अव्यापक नहीं, क्यों ? अभावविलक्षणत्वरूप जो साधन तादृश साधनसे अवच्छिन्न जो साध्य तादृश साध्यके व्यापकत्वकी उपपत्तिसे=साधनावच्छिन्नसाध्यव्यापकत्व हमको उपाधिमें विवक्षित है और तुच्छमें अनिवर्त्यत्वरूप साध्यके रहनेपरभी अभावविलक्षणत्वरूप साधनके न रहनेसे साधनावच्छिन्न साध्य नहीं, अतः उपाधि साध्यकी व्यापक है। किंच औरभी वक्तव्य है सादित्व या अनादित्व निवर्त्यत्व तथा अनिवर्त्यत्व इन दोनोंके प्रयोजक नहीं अर्थात् सादित्व होनेसेही निवर्त्यत्व होता है, और अनादित्व होनेसेही अनिवर्त्यत्व होता है, ऐसा नियम नहीं है, क्यों ? ध्वंस तथा प्रागभाव इन दोनोंमें उक्त नियमका अभाव होनेसे=सादित्व ध्वंसमें है परन्तु उसमें निवर्त्यत्व नहीं माना जाता है और अनादित्व प्रागभावमें है परन्तु वहाँ अनिवर्त्यत्व नहीं है। और भावत्वसे विशेपित जो तत्=सादित्व अनादित्व तथा=निवर्त्यत्व अनिवर्त्यत्वमें प्रयोजक है=भावत्वे सति सादित्व निवर्त्यत्वमें प्रयोजक है और भावत्वे सति अनादित्व अनिवर्त्यत्वमें प्रयोजक है यहभी नहीं कहा जा सकता है क्यों ? अभावमें तदसत्त्वेन=भावत्वके असत्त्वसे भिन्न भिन्न प्रयोजककी कल्पनाकी आपत्तिसे=भावस्थलमें दूसरा प्रयोजक मानना पडेगा और अभावस्थलमें दूसरा यों करनेसे वडा गौरव होगा, और भावपदार्थकी निवृत्ति तथा भावपदार्थकी अनिवृत्ति इन दोनोंमें ही तयोः=भावत्वसे विशेपित सादित्व तथा भावत्वसे विशेपित अनादित्व इन दोनोंको प्रयोजकत्व होनेपर भावसे विलक्षण जो अविद्यादि उन अविद्यादिमें ताभ्याम्=भावत्वविशेपित सादित्वअनादित्वसे तयोः=निवर्त्यत्व अनिवर्त्यत्व इन दोनोंके अनापादनसे=अविद्यादिमें जब भावत्व नहीं है तब भावत्वप्रयुक्त किसीभी पदार्थका विद्यादिमें कैसे आपादन हो सकता है यदि यों ही आपादन होगा तबतो धूमसे जलह्रदमें वह्निका आपादन होने लगेगा। तस्मात् नाशकी सामग्रीका सन्निपात निवर्त्यत्वमें प्रयोजक है और नाशकी सामग्रीका असन्निपात अनिवर्त्यत्वमें प्रयोजक है यही मानना चाहिए; सन्निपात नाम कार्यानुकूलसाम्मुख्यविशिष्ट सान्निध्यका है, तौच=सन्निपात असन्निपात ये दोनों तो फल बलसे कल्पनीय हैं जहाँ फलका अनुभव होता हो वहाँ उक्त सामग्रीका सन्निपात समझना चाहिए, अन्यत्र असन्निपात; अतः कोई दोप नहीं।

अपि च अविद्यादेरभावविलक्षणत्वसमानाधिकरणानादित्वेनात्मवदनिवर्त्यत्वं साध्यते, तर्हि भावविलक्षणत्वेन प्रागभाववन्निवर्त्यत्वमेव किं न साध्यते ? न च ध्वंसात्यन्तान्योन्याभावेपु व्यभिचारः अधिकरणातिरेके तेपामपि निवर्त्यत्वाभ्युपगमात् । नच अज्ञानस्य यावत्स्वविषयधीरूपसाक्षिसत्त्वमनुवृत्तिनियमेन निवृत्त्ययोग इति—वाच्यम्; दुःखशुक्तिरूप्यादेः स्वभासके साक्षिणि सत्येव निवृत्त्यभ्युपगमेन साक्षिभास्यानां यावत्साक्षिसत्त्वमवस्थाननियमानभ्युपगमात् । किंच केवलचिन्मात्रं न साक्षि किन्त्वविद्या-

त्त्युपहितम्। तथा चास्थिराविद्यावृत्त्युपहितस्य साक्षिणोऽप्यस्थिरत्वेन तत्सत्त्वपर्यन्तमवस्थानेऽप्यविद्यादेर्निवृत्तिरुपपद्यते। नच वृत्त्यनुपधानदशायामविद्यादेः शुक्तिरूप्यवदसत्त्वापत्तिः सादिपदार्थ एवैतादृङ्नियमात् धारावाहिकाविद्यावृत्तिपरम्पराया अतिसूक्ष्माया अभ्युपगमाच्चेतिशिवम्।

और भी कहते हैं अपिचेति। अभावविलक्षणत्वसमानाधिकरण जो अनादित्व तादृश अनादित्वरूपहेतुसे आत्मवत् अविद्याका अनिवर्त्यत्व यदि आपसे सिद्ध किया जाता है तो भावविलक्षणत्वरूप हेतुसे प्रागभाववत् निवर्त्यत्व ही क्यों नहीं सिद्ध किया जाता है, ध्वंसमें तथा अन्योन्याभावमें एवं अत्यन्ताभावमें व्यभिचार है=भावविलक्षणत्वरूपहेतु तो इन तीनोंमें भी है परन्तु निवर्त्यत्वरूप साध्य नहीं है अतः व्यभिचार है नच=व्यभिचार नहीं है, क्यों? अधिकरणसे अतिरेक=भेद होनेपर तेषामपि=ध्वंसादिकेभी निवर्त्यत्वका अभ्युगम होनेसे। शङ्कते नचेति। जबपर्यन्त स्व=अज्ञानविषयक धीरूप साक्षीका सत्त्व है तबपर्यन्त अज्ञानकी अनुवृत्तिके नियमसे साक्षीके रहते अज्ञानकी निवृत्तिका अयोग है, इति नच वाच्यम्, क्यों? स्वभासक साक्षीके रहते ही दुःखकी तथा शुक्तिरूप्यादिकी निवृत्तिके अभ्युपगमसे जबपर्यन्त साक्षीका सत्त्व है तबपर्यन्त साक्षीसे भास्य पदार्थोंके अवस्थानके नियमका अनभ्युपगम होनेसे=जबतक साक्षी है तबतक साक्षीभास्य पदार्थोंको रहना चाहिए ऐसा नियम नहीं किया जा सकता है सुखदुःखादिमें व्यभिचार होनेसे। किञ्च केवल चिन्मात्र साक्षी नहीं है किन्तु अविद्याका परिणामभूत जो वृत्ति तादृशवृत्तिसे उपहित चैतन्यका नाम साक्षी है, फलतः अस्थिर जो अविद्याकी वृत्ति तादृश–अविद्यावृत्ति–उपहित साक्षीकोभी अस्थिरत्व होनेसे, तत्सत्त्वपर्यन्तमवस्थानेऽपि=साक्षिसत्त्वके अवस्थानपर्यन्त अवस्थान होनेपरभी अविद्यादिकी निवृत्ति बन सकती है। वृत्तिकी अनुपाधानदशामें=जिसकालमें वृत्ति नहीं है उसकालमें शुक्तिरूप्यकी तरह साक्षीके असत्त्वकी आपत्ति है नच=असत्त्वकी आपत्ति नहीं है क्यों? सादि पदार्थमेंही एतादृश नियम होनेसे=भासकके असत्त्वसे जो भास्यके असत्त्वका नियम है वह शुक्तिरूप्यादिरूप सादिपदार्थोंमेंही है अनादि पदार्थोंमें नहीं। और अतिसूक्ष्मायाः=ब्रह्मदर्शिरूपोंसे ही ज्ञेय धारावाहिक अविद्यावृत्तिके परम्पराके अभ्युपगमसेभी उक्त दोष नहीं है इस रीतिसे प्रकृतविषयमें पूर्वाचार्योंने जो कहा है वह निर्दोष है।

यद्वा भ्रमोपादानत्वमज्ञानलक्षणम्। इदञ्च लक्षणं विश्वभ्रमोपादानमायाधिष्ठानं ब्रह्मेति पक्षे, नतु ब्रह्ममात्रोपादानत्वपक्षे, ब्रह्मसहिताविद्योपादानत्वपक्षेवा, अतो ब्रह्मणि नातिव्याप्तिः इतरत्र तु पक्षे परिणामित्वेनाचेतनत्वेन वा भ्रमोपादानं विशेषणीयमिति न दोषः। नवा भावारोपनिवर्तकभ्रमानिवर्त्येऽव्याप्तिः तस्यापि भ्रमोपादानत्वात्। ननु–भ्रमे भावविलक्षणाज्ञानोपादानकत्वं न घटते भ्रमस्य भावविलक्षणत्वे उपादेयत्वायोगात् भावत्वे च भावोपादानत्वनियमादिति–चेन्न, अज्ञानस्य भ्रमस्य च भावविलक्षणत्वेऽप्यु-

पादानोपादेयभावोपपत्तेः। नहि भावत्वमुपादानत्वे उपादेयत्वे वा प्रयोजकम् आत्मनि तददर्शनात्। किन्तु अन्वयिकारणत्वमुपादानत्वे तन्त्रम्। सादित्वमुपादेयत्वे, तदुभयं च न भावत्वनियतम्। अतः उपादानोपादेयभावोऽपि न भावत्वनियतः। नचैवं ध्वंसस्याप्युपादेयत्वापत्तिः, इष्टापत्तेः। न चैवं ज्ञानप्रागभावस्यैव भ्रमोपादानत्वमस्तु किमभावविलक्षणाज्ञानोपादनकल्पनेनेति—वाच्यम्; प्रागभावस्य प्रतियोगिमात्रजनकत्वनियमेन भ्रमं प्रति जनकत्वस्याप्यसिद्धेः। तद्विशेषरूपोपादानत्वस्यैव दूरनिरस्तत्वात्। अतः सद्विलक्षणयोरज्ञानभ्रमयोर्युक्त उपादानोपादेयभावः। भ्रमस्य च सद्विलक्षणत्वमुक्तम्। वक्ष्यते च।

अव अज्ञानका दूसरा लक्षण दिखलाते हैं यद्वेति। भ्रमका उपादानत्व अज्ञानका लक्षण रहो। और यह जो भ्रमोपादानत्वरूप लक्षण है वह विश्वभ्रमका उपादान माया है, और तादृश मायाका अधिष्ठान ब्रह्म है, इस पक्षमें है, ब्रह्ममात्रोपादानत्वपक्षमें या ब्रह्मसहित अविद्योपादानत्व पक्षमें नहीं इसलिए ब्रह्ममें अतिव्याप्ति नहीं इतरत्र=द्वितीय तथा तृतीय लक्षणमें परिणामित्वेन तथा अचेतनत्वेन भ्रमोपादानत्व विशेषणीय है=परिणामित्वे सति भ्रमोपादानत्वम् अचेतनत्वे सति भ्रमोपादानत्वम् इस रीतिसे लक्षणका स्वरूप बना देनेपर ब्रह्ममें अतिव्याप्तिरूप दोष नहीं है, अर्थात् अविद्याका लक्षण ब्रह्ममें नहीं जाता है, और अभावका जो आरोप उस आरोपकी निवर्तिका जो प्रमा उस प्रमासे निवर्त्य जो अज्ञान उस अज्ञानमें अव्याप्ति नहीं है, तस्यापि=उक्ताज्ञानकोभी भ्रमका उपादानत्व होनेसे। शङ्कते नन्विति। भ्रममें भावसे विलक्षण जो अज्ञान तादृशाज्ञानोपादानकत्व नहीं बन सकता है, क्यों? भ्रमको भावसे विलक्षणत्व होनेपर उपादेयत्वका अयोग होनेसे, भावत्वेच=भावत्व होनेपर तो भावोपादानकत्वका नियम है, इति चेन्न, क्यों? अज्ञानको और भ्रमको भावसे विलक्षणत्व होनेपरभी उपादानोपादेयभावकी उपपत्तिसे, इसी अर्थको स्पष्ट करते हैं। नहीति। भावत्व उपादानत्वमें या उपादेयत्वमें प्रयोजक नहीं है आत्मामें भावत्वके रहते हुएभी उपादानत्व और उपादेयत्वके अदर्शनसे=आत्मशब्दसे यहाँ शुद्ध आत्माका ग्रहण करना, क्योंकि विशिष्टमें उपादानता कोई कोई मानता है, यह अभी दिखला चुके हैं। किन्तु अन्वयिकारणत्वम्=कार्यात्मककारणत्व उपादानत्व में तन्त्र है, और सादित्व उपादेयत्वमें तंत्र है तदुभयञ्च=अन्वयिकारणत्व तथा सादित्व ये दोनों तो भावत्वके व्याप्य नहीं है। अतः उपादानोपादेयभावभी भावत्वका व्याप्य नहीं। तैसा होनेपर तो ध्वंसकोभी उपादेयत्वकी आपत्ति है=ध्वंसकोभी उपादानकारणजन्यत्वकी आपत्ति है, न्यायादि मतोंमें ध्वंस केवल निमित्तसे जन्यमाना जाता है, इसलिए उपादानजन्यत्वकी वेदान्तीको आपत्ति दी जाती है, सिद्धान्तीसे इष्टापत्ति मानकर निषेध किया जाता है नच=ऐसी शङ्का नहीं करना क्यों? इष्टापत्तेः=हमलोग ध्वंसकोभी उपादानसे जन्य मानते हैं और स्वोपादानके साथ ध्वंसका तादात्म्य सम्बन्धभी मानते हैं, जैसे तार्किकलोग ध्वंसका किसीकेभी साथ समवाय सम्बन्ध माननेमें घबडाते हैं तैसे हमलोग किसी अनात्मपदार्थके माननेमें या खण्डन करनेमें घबडाते नहीं हैं, शङ्कते नचेति। ऐसा होनेपर ज्ञानके

प्रागभावकोही भ्रमका उपादानत्व रहो, अभावसे विलक्षण अज्ञानरूपोपादानकी कल्पनासे क्या प्रयोजन है, इति नच वाच्यम् क्यों ? प्रागभावको प्रतियोगिमात्रके जनकत्वके नियमसे भ्रमके प्रति जनकत्वकीभी असिद्धिसे तद्विशेष=जनकत्वविशेषरूप उपादानत्वको तो दूरसेही निरस्त होनेसे। यतः गत्यन्तरका सम्भव नहीं है, अतः सत्‌से विलक्षण जो अज्ञान और भ्रम इन दोनोंका उपादानोपादेयभाव युक्तही है; और भ्रमका सत्‌से विलक्षणत्व कहा है। और कहाभी जायगा।

नच—एवमज्ञानानुविद्धतया भ्रमस्य प्रतीत्यापत्तिः, मृदनुविद्धतया घटस्येवेति—वाच्यम् यत् यदुपादानकं तत्तदनुविद्धतयैव प्रतीयत इति व्याप्त्यसिद्धेः। नहि घटोपादानकं रूपं घट इति प्रतीयते, प्रकृतिद्व्यणुकाद्यनुविद्धतया प्रतीतेः परैरप्यनभ्युपगमात्, केनचिद्धर्मेण तदनुवेधस्तु प्रकृतेऽपीष्टएव। नच यावन्ति ज्ञानानि तावन्त्यज्ञानानीति पक्षे भ्रमापूर्वकप्रमानिवर्त्येऽज्ञानेऽव्याप्तिः। भ्रमोपादानतायोग्यत्वस्य विवक्षितत्वात् सहकारिवैकल्यात् कार्यानुदयेऽपि योग्यतानपायात्, अथ योग्यतावच्छेदकरूपापरिचये कथम् तद्ग्रहणम्? प्रथमलक्षणस्यैव योग्यतावच्छेदकत्वात् एकमेवाज्ञानमिति पक्षे तु तत्र भ्रमोपादानत्वमक्षतमेव। न चैवं शुक्तिज्ञानेनैवाज्ञाननाशे मोक्षापत्तिः तस्यावस्थाविशेषनाशकत्वाङ्गीकारात् व्युत्पादितं चैतदस्माभिः सिद्धान्तविन्दौ, ज्ञानत्वेन रूपेण साक्षाज्ज्ञाननिवर्त्यत्वं वा तल्लक्षणमिति च प्रागुक्तमेव; तस्मान्नाविद्यालक्षणासंभव इतिसर्वमवदातम्।

इत्यद्वैतसिद्धावविद्यालक्षणोपपत्तिः।

शङ्कते नचेति। एवम् भ्रमको अज्ञानोपादानकत्व होनेपर अज्ञानसे अनुविद्धतया भ्रमकी प्रतीतिकी आपत्ति है जैसे मृदनुविद्धतया घटकी प्रतीति होती है, इति न च वाच्यम् क्यों ? यत्=जो वस्तु यदुपादानक होती है तत्=वह वस्तु तदनुविद्ध=स्वोपादानानुविद्धतयैव प्रतीत होती है, इत्याकारक व्याप्तिकी असिद्धिसे; घट है उपादान जिसका ऐसा जो रूप वह रूप (घटः रूपम्) इस रीतिसे घटसे अनुविद्ध होके प्रतीत नहीं होता है। प्रकृतिसे तथा द्व्यणुकादिसे अनुविद्धतया प्रतीतका अन्योंसेभी अनभ्युपगम होनेसे। ननु—(शुक्लो घटः) (मृद्घटः) इत्यादिमें शुक्लत्वेन और मृत्त्वेन रूपप्रकृत्यादिका तादात्म्यरूप अनुवेध प्रतीत होताही है, तहाँ कहते हैं केनेति। किसी धर्मसे तो उपादानका अनुवेध प्रकृतमेंभी इष्टही है=जैसे शुक्लत्वादि रूपसे रूपप्रकृत्यादिका अनुवेध है तैसे जडत्वादिरूपसे अज्ञानकाभी अनुवेध सर्वत्र है ही। और भ्रमका भ्रमत्वेन ज्ञान न होनेसे अज्ञानका अज्ञानत्वेन अनुवेध नहीं है। इसीलिए बाधकालमें 'नेदं रूप्यम्' रूप्यमित्याकारकं यद् ज्ञानं जातं तत्त्वज्ञानम्, ऐसी प्रतीति होती है। 'जितने ज्ञान हैं उतने अज्ञान हैं' इस पक्षमें भ्रम जिसके पूर्वमें नहीं ऐसी जो प्रमा तादृशप्रमासे निवर्त्य जो अज्ञान उस अज्ञानमें भ्रमोपादानत्वरूप लक्षणकी अव्याप्ति है, क्योंकि वह अज्ञान भ्रमका

उपादान नहीं है, नच=अव्याप्ति नहीं है, क्यों ? भ्रमोपादानताकी योग्यताको विवक्षित होनेसे सहकारिके अभावसे कार्यका उदय न होनेपरभी योग्यताके अनपायसे। अथ=यदि ऐसा कहो कि—योग्यतावच्छेकरूपका परिचय न होनेपर कैसे तद्ग्रहणम्=योग्यताका ग्रहण होगा तो ऐसा नहीं कहना, क्यों ? प्रथमलक्षणकोही योग्यताका अवच्छेदक होनेसे; और एकही अज्ञान है इस पक्षमें तो तत्र=भ्रमापूर्वप्रमानिवर्त्याज्ञानमें भ्रमका उपादानत्व अखण्डितही है। ऐसा होनेपर शुक्तिज्ञानसेही अज्ञानका नाश होनेपर मोक्षकी आपत्ति है नच=नहीं है, क्यों ? तस्य=शुक्तिज्ञानको अज्ञानकी अवस्था विशेषके नाशकत्वका अङ्गीकार होनेसे=शुक्त्यादिज्ञानसे अज्ञानकी अवस्था विशेषका नाश होता है, अवस्थावदज्ञानका नहीं; सिद्धान्तबिन्दुमें यह अर्थ हमसे व्युत्पादित हुआ है, या ज्ञानत्वेन साक्षात् ज्ञाननिवर्त्यत्व अज्ञानका लक्षण है यह तो प्रथम कहाही गया है। तस्मात् अविद्याके लक्षणका असम्भव नहीं, इति=इस रीतिसे इस विषयमें विवरणाचार्य चित्सुखाचार्य प्रभृतिने जो कुछ कहा है वह सर्व अवदातम्=निर्दोष है, द्वैतीने दोषोंका उद्भावन भ्रान्तिसेही किया है।

इति सरलायामज्ञानवादेऽज्ञानलक्षणोपपत्तिः।

अथ अज्ञानवादेऽज्ञाने प्रत्यक्षप्रमाणोपपत्तिः।

तत्र—चाज्ञाने अहमज्ञो मामन्यं च न जानामीतिप्रत्यक्षं त्वदुक्तमर्थं न जानामीति विशेषतः प्रत्यक्षं, एतावन्तं कालं सुखमहमस्वाप्सं न किञ्चिदवेदिषमिति परामर्शसिद्धं सौषुप्तप्रत्यक्षं च प्रमाणम्। नच—अहमर्थस्याज्ञानानाश्रयत्वेन कथमयं प्रत्ययो भावरूपाज्ञानपक्षे उपपद्यते इति—वाच्यम्। अज्ञानाश्रयीभूतचैतन्ये अन्तःकरणतादात्म्याध्यासेन एकाश्रयत्वसम्बधेनोपपत्तेः। अत—एव—जडे आवरणकृत्याभावात् घटं न जानामीत्यादिप्रतीतेर्ज्ञानाभावविषयत्वे प्रकृतेऽपि तथास्त्विति—निरस्तम्। तत्तदवच्छिन्नचैतन्यस्यैवाज्ञानाश्रयत्वेन तत्रापि तद्व्यवहारोपपत्तेः। नच—साक्षिवेद्ये सुखदुःखाज्ञानादौ प्रातिभासिके च भावरूपाज्ञानाभावेन तत्र न जानामीतिप्रतीतिः कथमुपपद्यत इति—वाच्यम्, स्वस्मिन्विद्यमाने साक्षिवेद्ये सुखादौ स्वभ्रमसिद्धे रूप्यादौ च न जानामीतिव्यवहारासंभवात्, परसुखादौ 'न जानामीति व्यवहारस्य परोक्षज्ञाननिवर्त्येन प्रमातृगताज्ञानेनैवोपपत्तेः।

अथ सरलायामज्ञानवादेऽज्ञाने प्रत्यक्षप्रमाणोपपत्तिः।

च=और तत्राज्ञाने=उक्तलक्षणोंसे लक्षिताज्ञानमें 'अहमज्ञः'='मैं अज्ञानवाला हूं' मुझको और अन्यको नहीं जानता हूँ यह प्रत्यक्ष, और तुमसे कहेगये अर्थको नहीं जानता हूँ इत्याकारक विशेष प्रत्यक्ष, और इतने कालपर्यन्त सुखसे मैं सोया और कुछभी न जाना, इत्याकारक जो जाग्रत्कालीन परामर्श=स्मरण तादृशपरामर्शसे सिद्ध जो सौषुप्त=

सुषुप्तिमें होनेवाला प्रत्यक्ष वह प्रत्यक्षभी प्रमाण है, ये सर्व प्रत्यक्ष अहंपदार्थविशेष्यक और अज्ञानप्रकारक होते हैं, अतः अहं पदार्थमें प्रकारविधया भासित होनेवाले अज्ञानमें ये सर्व प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। शङ्कते नचेति । अहमर्थको अज्ञानका आश्रय न होनेसे यह प्रत्यक्षात्मक प्रत्यय भावरूपाज्ञानपक्षमें कैसे उपपन्न होगा=अज्ञानका आश्रय शुद्ध चेतन माना जाता है, अहंपदार्थ नहीं, अतः अहंपदार्थमें अज्ञान प्रकार नहीं है तादृश अज्ञानको अहम् पदार्थमें प्रकारविधया ग्रहण करनेवाला प्रत्यक्ष प्रमाण कैसे हो सकता है, इति न च वाच्यम् क्यों ? अज्ञानका आश्रयीभूत जो चैतन्य है, उस चैतन्यमें अन्तःकरणका अभेदाध्यास होनेसे एकाश्रयत्वरूप सम्बन्धसे उपपत्ति होनेसे=जिस चेतनमें अज्ञान अधिष्ठानता सम्बधसे रहता है, उस चैतन्यमें अधिष्ठानता सम्बन्धसे अन्तःकरण भी रहता है, फलतः दोनोंमें एकाधिकरणनिरूपित वृत्तिता है, अतः दोनों समानाधिकरण हैं । और समानाधिकरण होनेसे स्वाधिकरणनिरूपितवृत्तित्व सम्बन्धसे अज्ञानका अहम्पदार्थैकदेश अन्तःकरणमें प्रकारविधया भान बन सकता है, स्वपदसे अज्ञान लिया तदधिकरण हुआ शुद्ध चैतन्य तन्निरूपितवृत्तित्व अन्तःकरणमें है ही । अतएव=उक्त सम्बन्धसे अज्ञानका जडके रूपरभी सद्भाव होनेसेही जड पदार्थमें आवरणके कृत्यका अभाव होनेसे=असत्त्वका आपादन और अभानका आपादनरूप आवरणके कृत्यका अभाव होनेसे 'घटं न जानामि' इत्यादि प्रतीतिओंको ज्ञानाभावविषयत्व होनेपर प्रकृतेऽपि=' अहमज्ञः' इत्यादि स्थलोंमेंभी तथास्तु=ज्ञानाभावविषयकत्व रहो, यह निरस्त हुआ, अतएव शब्दके अर्थको स्पष्ट करते हैं । तदिति । घटपटादि—पदार्थोंसे अवच्छिन्न चैतन्यकोही अज्ञानका आश्रय होनेसे तत्रापि=अज्ञानाश्रयतावच्छेदक घटपटादिमेंभी तद्व्यवहारोपपत्तेः=अज्ञानाश्रयत्वव्यवहारकी और तत्प्रयुक्त आवृतत्वव्यवहारकी उपपत्तिसे । शङ्कते नचेति । साक्षीसे वेद्य जो सुखदुःख अज्ञानादि हैं उन अज्ञानादिमें और प्रातिभासिक पदार्थोंमें भावरूप जो अज्ञान उस अज्ञानके अभावसे तत्र=उक्त पदार्थोंमें 'मैं नहीं जानता हूँ' इत्याकारिका प्रतीति कैसे उपपन्न होगी, इति न च वाच्यम् क्यों ? अपनेमें विद्यमान जो जो साक्षीसे वेद्य सुखादि हैं, उन सुखादिमें और स्वके भ्रमसे सिद्ध जो शुक्तिरूप्यादि उन शुक्तिरूप्यादिमें 'नहीं जानता हूँ' इत्याकारक व्यवहारके असंभवसे, और परकीय सुखादिमें 'नहीं जानता हूँ' इत्याकार व्यवहारको परोक्ष ज्ञानसे निवर्त्य जो प्रमातृगताज्ञान उस अज्ञानसेहीं उपपन्न होनेसे ।

अत एव—परोक्षज्ञानेन प्रमातृगताज्ञाने नाशितेऽपि विषयगताज्ञानसत्त्वेन 'न जानामीति' व्यवहारापत्तिरिति—निरस्तम् ; प्रमातृगताज्ञानकार्यस्य 'न जानामीति' व्यवहारस्य विषयगताज्ञानेनापादयितुमशक्यत्वात् । ननु—भावरूपाज्ञानविषयत्वेनाभिमतस्य 'अहमज्ञ' इति प्रत्ययस्य मयि ज्ञानं नास्तीति ज्ञानाभावविषयात् प्रत्ययात् 'अघटं भूतलमितिप्रत्ययस्य घटो नास्तीतिप्रत्ययादिव विशेषणविशेष्यभावव्यत्यासं विना इच्छाद्वेषाभावज्ञानयोरिव विषयभेदाप्रतीतिरिति—चेत् सत्यम् धर्मिप्रतियोगिज्ञानाज्ञानाभ्यां ज्ञानसामान्याभावज्ञानस्य व्याहतत्वेन मयि ज्ञानं नास्तीत्यस्यापि भावरूपाज्ञान-

विषयत्वेन विषयभेदाप्रतीतेर्युक्तत्वात्। तथाहि—मयि ज्ञानं नास्तीतिप्रतीतिः 'वायौ रूपं नास्तीतिप्रतीतिवद्यावद्विशेषाभावान्यसामान्याभावविषया, सामान्यावच्छिन्नप्रतियोगिताकयावद्विशेषाभावविषया वा अभ्युपेया। तथाच तत्कारणीभूतधर्मिप्रतियोगिज्ञानाज्ञानाभ्यां कथं न व्याघातः?

अतएव—परोक्षज्ञानसे प्रमातृगत अज्ञानके नाशित होनेपरभी विषयगत अज्ञानके सत्त्वसे 'नहीं जानता हूँ' इत्याकारक व्यवहारकी आपत्ति है, यह कथन निरस्त हुआ। अतएव शब्दका व्याख्यान करते हैं प्रेति। प्रमातृगत अज्ञानका कार्य जो (न जानामि) इत्याकारक व्यवहार उस व्यवहारको विषयगत अज्ञानसे आपादन करनेकेलिए अशक्य होनेसे। शङ्कते नन्विति। जैसे (अघटं भूतलम्) इत्याकारक प्रत्ययके 'घटो नास्ति' इस प्रत्ययसे विशेषणविशेष्यभावके व्यत्यासके विना इच्छाज्ञान और द्वेषाभावज्ञान इन दोनोंकी नाईं विषयभेदकी अप्रतीति है—तैसे भावरूप जो अज्ञान तादृशअज्ञानविषयत्वेन अभिमत जो (अहमज्ञः) यह प्रत्यय है उस प्रत्ययके (मयि ज्ञानं नास्ति) इत्याकारक जो ज्ञानाभावविषयक प्रत्यय है, उस प्रत्ययसे इच्छा और द्वेषाभावज्ञान इन दोनोंकी नाईं विषयभेदकी अप्रतीति है= जैसे घटाभावको विषय करनेवाली दो प्रकारकी प्रतीतियां होती हैं, एकतो, (अघटं भूतलम्) इत्याकारिका प्रतीति होती है इसका विषय घटाभाववद्भूतल है, दूसरी प्रतीति 'भूतले घटो नास्ति' इत्याकारिका होती है, इसका अर्थ है, भूतलाधिकरणक घटनिष्ठप्रतियोगितानिरूपक अभाव, फलतः घटाभाव और भूतल ये दोनों पदार्थ दोनों प्रतीतिओमें विषय हैं, प्रथम प्रतीति घटाभावप्रकारक और भूतलविशेष्यक है, और दूसरी प्रतीति घटाभावविशेष्यक और भूतलप्रकारक है, क्योंकि इसमें आधेयतासम्बन्धसे भूतल घटाभावमें प्रकार हो जाता है, फलतः इन दोनों प्रतीतिओमें विशेषण—विशेष्यभावका व्यत्यास=वैपरीत्य होता है, प्रथम प्रतीतिमें जो भूतलरूप विशेष्य है, वह द्वितीयमें विशेषण बनता है, और प्रथम प्रतीतिमें विशेषणरूप जो घटाभाव है, वह द्वितीयमें विशेष्य बनता है, और द्वितीय प्रतीतिमें विशेष्यरूप घटाभाव प्रथममें विशेषण बनता है और द्वितीयमें विशेषणरूप भूतल प्रथममें विशेष्य बनता है, यह विशेषणविशेष्यभावका व्यत्यास है, इस व्यत्यासके विना इन दोनों प्रतीतिओंमें विषयकृत भेद नहीं है, जैसा कि इच्छाज्ञानका और द्वेषाभावज्ञानका होता है—अर्थात् इच्छा अन्य पदार्थ है और द्वेषाभाव अन्यपदार्थ है, इसलिए 'इच्छामि' 'न द्वेष्मि' इन दोनों ज्ञानोंका भिन्न भिन्न विषय है, यह व्यतिरेक दृष्टान्त है, तैसे प्रकृतमें भी दो प्रकारकी प्रतीति होती है, 'अहमज्ञः' एक यह है और दूसरी 'मयि ज्ञानं नास्ति' प्रथम प्रतीति अज्ञानपदार्थप्रकारक और अहम्पदार्थविशेष्यक है, दूसरी प्रतीति अहम्पदार्थप्रकारक और अज्ञानविशेष्यक है, तहाँ द्वितीय प्रतीतिमें जैसे अज्ञानपदार्थ ज्ञानाभावरूप पडता है, तैसे ही प्रथम प्रतीतिमें भी अज्ञानपदार्थ ज्ञानाभावरूपही लेना चाहिए, जैसे इच्छाज्ञानका और द्वेषाभावज्ञानका विषय भिन्न भिन्न होता है, तैसे प्रकृतमें विषयभेद माननेकी आवश्यकता नहीं केवल विशेषणविशेष्यभावका व्यत्यास होता है। यह अनात्मप्रेमि—द्वैतीका तात्पर्य है इति चेत्=ऐसा यदि कहते हो तो

सत्यम्=एक प्रकारसे ठीकही कहते हो, जिस प्रकारसे वादी ठीक कहता है उस प्रकारसे दिखलाते हैं धर्मीति । धर्मि=अभावाधिकरण, प्रतियोगि=यन्निष्ठप्रतियोगितानिरूपक अभाव हो वह इन दोनोंका जो ज्ञान तथा अज्ञान इन दोनों ज्ञानाज्ञानोंसे ज्ञानसामान्याभावविषयक ज्ञानको व्याहत होनेसे (मयि ज्ञानं नास्ति) इत्याकारक प्रत्ययकोभी भावरूपाज्ञानविषयकत्व होनेसे विषयभेदकी अप्रतीतिको युक्त होनेसे, तथाहि=इसी अर्थको स्पष्टकर दिखलाते हैं; (मयि ज्ञानं नास्ति) इत्याकारिका जो प्रतीति है वह प्रतीति (वायौ रूपं नास्ति) इस प्रतीतिकी तरह यावद्विशेष्याभावसे अन्य जो सामान्याभाव तादृशसामान्याभावविषया अङ्गीकार्य है, या सामान्यधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिक जो यावद्विशेषाभाव तादृशयावद्विशेषाभाव विषया अङ्गीकार्य है, तथा च तत्कारणीभूत=यावद्विशेषाभावकूटव्याप्यसामान्याभावविषयक—सामान्यधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिकयावद्विशेषाभावविषयक जो (मयि ज्ञानं नास्ति) इत्याकारिका प्रतीति तादृश प्रतीतिका कारणीभूत जो धर्मि तथा प्रतियोगिका ज्ञान उस ज्ञानके होने या न होनेसे कैसे व्याघात नहीं है=अभावज्ञानसे प्रथम प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिज्ञान तथा धर्मिज्ञानकी आवश्यकता होती है, जैसे (घटाभाववद्भूतलम्) इस ज्ञानसे पूर्वमें घटत्वावच्छिन्न घटका और भूतलका ज्ञान आवश्यक होता है तथाच—(मयि ज्ञानं नास्ति) इत्याकारक ज्ञानके प्रति ज्ञानत्वावच्छिन्नज्ञानविषयक ज्ञानको और अस्मत्पदार्थके ज्ञानको कारणता होनेसे ज्ञानत्वावच्छिन्नज्ञानप्रतियोगिक—अभावविषयक ज्ञान अनुपपन्न है, अर्थात् यत्किञ्चित् प्रतियोगीके रह जानेपर सामान्याभावविषयकज्ञान या सामन्यधर्मावच्छिन्न प्रतियोगिताकयावद्विशेषाभावविषयकज्ञान नहीं बन सकता है, फलतः ज्ञानसामान्याभावविषयक ज्ञानस्थलमें यदि प्रतियोगिरूपज्ञानविषयक ज्ञान मानों तो यत्किंचित् प्रतियोगिके रह जानेसे ज्ञानसामान्याभावविषयक ज्ञान नहीं बन सकता है, यदि प्रतियोगिरूपज्ञानविषयक ज्ञान न मानों तो कारणाभावसे ज्ञानाभावका ज्ञान अनुपपन्न है, तथाच 'मयि ज्ञानं नास्ति' यह प्रतीति ज्ञानाभावविषया नहीं है, किन्तु हमलोगोंका श्रुतिसिद्ध जो अज्ञान पदार्थ है तद्विषया है ।

यत्किंचिद्विशेषाभावस्य सामान्यावच्छिन्नप्रतियोगिकत्वाभावात् । अभावज्ञाने प्रतियोग्यंशे प्रकारीभूतधर्मस्यैव प्रतियोगितावच्छेदकत्वात् । अन्यथा सामान्याभावसिद्धिर्न स्यात् । यावद्विशेषाभावान्यसामान्याभावानभ्युपगमेऽप्ययं दोषः। यत्किचिद्विशेषाभावस्य सामान्यावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वे घटवत्यपि भूतले 'निर्घटं भूतलमिति प्रतीतिः स्यात् वायौ रूपं नास्ति' पुरोदेशे रजतं नास्तीत्याद्याप्तवाक्यजन्यप्रतीत्यन्तरमपि तत्तत्संशयनिवृत्तिर्न स्यात् एकविशेषाभावबोधनेऽपि विशेषान्तरमादाय संशयोपपत्तेः ।

और यत्किञ्चित् विशेषाभावको सामान्यधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वका अभाव है=मयि ज्ञानं नास्ति, यहाँपर ज्ञानत्वेन ज्ञानप्रतियोगिकअभाव प्रतीत होता है और यत्किञ्चिद्विशेष=यत्किञ्चिज्ज्ञानप्रतियोगिकअभाव ज्ञानत्वावच्छिन्नसे निरूपित नहीं होसकता है, क्यों ?

अभावज्ञाने=अभावविषयकज्ञानमें प्रतियोग्यंशमें प्रकारीभूत जो धर्म है उस धर्मकोही अभाव-प्रतियोगिताका अवच्छेदकत्व होनेसे=घटो नास्ति यहाँपर प्रतियोग्यंशमें प्रकारीभूत घटत्वही घटाभावीयप्रतियोगिताका अवच्छेदक होता है और 'नीलघटो नास्ति' यहाँपर नीलत्वविशिष्ट घटत्व प्रतियोगितावच्छेदक होता है अतः 'मयि ज्ञानं नास्ति' एतत्प्रतीतिविषयीभूत अभाव यदि यत्किञ्चित्ज्ञानप्रतियोगिक मानोंगे तो सामान्यधर्मसे प्रतियोगिका उल्लेख न होगा, अन्यथा=सामान्यधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वेन विशेषाभावकाभी भान मान लेनेपर सामान्याभावकी कहीं परभी सिद्धि न होगी=विशेषाभावही सामान्यधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वेन अभावधीमात्रमें भासित हुआ करेगा, फिर सामान्याभावको अवकाशही न मिलेगा। यावद्विशेषाभावसे अन्य सामान्याभावके अनभ्युपगमपक्षमेंभी अयम्=प्रतियोगीमें अप्रकारको अवच्छेदकत्वका असम्भवरूप दोष है=सामान्याभाव यावद्विशेषाभावकूटसे अतिरिक्त नहीं है, इस पक्षमें 'पटज्ञानं नास्ति' 'घटज्ञानं नास्ति' इत्यादिरूपसे विशेषाभावोंकी प्रतीति होगी, उस प्रतीतिमें प्रतियोग्यंशमें घटज्ञानत्व पटज्ञानत्वका प्रकारविधया भान होगा, और प्रतियोगितावच्छेदकत्वभी इन्हीं धर्मोंको होगा शुद्धज्ञानत्वको नहीं क्योंकि अभावावगाहिनी प्रतीतिमें प्रतियोग्यंशमें शुद्धज्ञानत्वका उल्लेख ही नहीं है। और यत्किञ्चिद्विशेषाभावको सामान्यावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वके होनेपर घटवाले भूतलमेंभी 'घटाभाववद्भूतलम्' इत्याकारिका प्रतीति होगी क्योंकि घटवत् भूतलमेंभी यत्किञ्चिद्घटका अभाव है ही और उसको आप सामान्यधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताक बतलाते हैं तथाच उक्तविध प्रतीति उक्तस्थलमें होनी चाहिए। और 'वायुमें रूप नहीं है' 'पुरो देशमें रजत नहीं है' इत्यादिरूप जो आप्तवाक्य उस वाक्यसे जन्य अभावविषयक प्रतीतिके बादभी रूपविषयक तथा रजतादिविषयक संशयकी निवृत्ति न होगी, क्योंकि एक विशेषके अभावके बोधन होनेपर विशेषान्तरको लेके संशयकी उपपत्तिसे='वायौ रूपं नास्ति' इसका अर्थ यह हुआ कि वायुमें किसी एक रूपका अभाव है, तब यह संशय सुतरां बन सकता है, कि दूसरा कोई रूप वायुमें है या नहीं, इसी रीतिसे सर्वत्र।

अथ—अभावबोधे प्रकारीभूतधर्मस्यावच्छेदकत्वं पूर्वानुपस्थितमपि संसर्गमर्यादया शाब्दबोधे अन्यत्र च भासते नह्यवच्छेदकत्वस्य स्वरूपसम्बन्धविशेषस्य ग्रहे अन्या सामग्री क्लृप्ता, तथात्र तत्तद्विशेषाभावानां तत्तद्विशेषावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वात् सामान्यावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वं यावद्विशेषाभावकूटे वा व्यासज्यवृत्ति तदतिरिक्तसामान्याभावे वा प्रत्येकविश्रान्तमितितादृगभावप्रतीतेर्यावद्विशेषप्रतीतिविरोधित्वात् कुतोविशेषसंशयादिरिति—चेत् सत्यम्, प्रकृतेऽपि ज्ञानत्वसामान्यावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावप्रतीतिर्यावज्ज्ञानविशेषविरोधिनीति कथं तत्तत्कारणत्वाभिमतज्ञानविशेषे सति सा न व्याहन्यते। तथाच क्लृप्ताभावप्रतीतिवैलक्षण्येऽवश्यकल्प्ये लाघवाद्विषयस्यैवाभाववैलक्षण्यं कल्पयितुमुचितम् विषयावैलक्षण्ये प्रतीतिवैलक्षण्यायोगात्।

अथ—यदि ऐसा कहो कि—अभावविषयक बोधमें प्रकारीभूत जो धर्म तादृशधर्मनिष्ठ अवच्छेदकत्व पूर्वमें अनुपस्थित हुआ भी संसर्गमर्यादया=आकांक्षासे भासित होता है शाब्द-बोधमें तथा दूसरे ज्ञानमें स्वरूपसम्बन्ध विशेषरूप जो अवच्छेदकत्व है उस अवच्छेदकत्वके ग्रहमें अन्य सामग्री क्लृप्त नहीं है, फलतः तत्तद्विशेषाभावोंका तत्तद्विशेषावच्छिन्नप्रतियोगिता-कत्व होनेसे सामान्यावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्व यावद्विशेषाभावकूटमें व्यासज्यवृत्ति है, या वदतिरिक्त सामान्याभावके होनेपर प्रत्येकविशेषाभावमें विश्रान्त है, अतः तादृगभावप्रतीतेः 'वायौ रूपं नास्ति' इत्यादिरूप प्रतीतिको यावद्विशेषकी प्रतीतिका विरोधित्व होनेसे विशेष-संशयादि किस हेतुसे होंगे, इति चेत् सत्यम्, प्रकृतमेंभी ज्ञानत्वसामान्यावच्छिन्नप्रतियोगिताक अभावकी प्रतीति यावज्ज्ञानविशेषकी विरोधिनी है, अतः ज्ञानप्रतियोगिकअभावज्ञानमें कार-णत्वेन अभिमत जो तत्तद्विशेषज्ञान=प्रतियोगिज्ञान धर्मिज्ञान उस ज्ञानविशेषके होते हुए सा=ज्ञानत्वसामान्यावच्छिन्नप्रतियोगिताक अभावकी प्रतीति कैसे व्याहत न होगी, तथाच क्लृप्त जो अभावप्रतीति उस प्रतीतिसे वैलक्षण्यके अवश्य कल्प्य होनेपर लाघवसे एतत्प्रतीतिविषय-निष्ठही अभावसे वैलक्षण्य कल्पना करनेके लिए उचित है, विषयनिष्ठ वैलक्षण्यके न होनेपर प्रतीतिनिष्ठ वैलक्षण्यके अयोगसे='मयि ज्ञानं नास्ति' अहं न जानामि, इन प्रतीतिओंका विषय यदि भावरूपाज्ञान न माना जायगा तो यत्किञ्चिद्विशेषाधिकरणमें सामान्याभावको अवगाहन करनेवाली इन प्रतीतिओंमें भ्रमत्व और दोषजन्यत्वकी कल्पना करनी पडेगी तथाच तादृशकल्पनाप्रयुक्त गौरव होगा।

विषयाज्ञानमनुभूय च पुरुषस्तन्निवृत्त्यर्थं विचारे प्रवर्त्तते इति सर्वानुभवसिद्धम् । तद्यदि ज्ञानविशेषाभावो न जानामीति प्रतीतेर्विषयः । तदाज्ञातेऽपि तथाप्रतीत्या-पातः । तद्विचारार्थं च प्रवृत्तिः स्यात् । सामान्याभावे च बाधकमुक्तमेव । तस्मादभाव-विलक्षणमेवाज्ञानं 'मयि ज्ञानं नास्त्यहमज्ञ इत्यादिधीविषय इतिसिद्धम् ।

और विषयमें अज्ञानका अनुभव कर पुरुष उस अज्ञानकी निवृत्तिके लिए विचारमें प्रवृत्त होता है—यह सर्वानुभवसिद्ध है, सो यदि ज्ञानविशेषका अभाव 'न जानामि' इस प्रती-तिका विषय है, तब तो विषयके ज्ञात होनेपर 'न जानामि' इत्याकारिका प्रतीति होनी चाहिए और उस विषयके विचारार्थ प्रवृत्तिभी होनी चाहिए, क्योंकि ज्ञानविशेषका अभाव तो है ही और सामान्याभाव तो इस प्रतीतिका विषय नहीं हो सकता है; इसमें बाधक कहाही जा चुका है, इसलिए अभावसे विलक्षण जो अज्ञान है, वह अज्ञानही 'मयि ज्ञानं नास्ति' 'अहमज्ञः' इत्यादि धिओंका विषय है यह सिद्ध हुआ।

ननु—अभावविलक्षणमप्यज्ञानं न जानामीतिज्ञानविरोधित्वेनैव भासते, मोहा-दिपदेऽपि प्रलयादिपदवन्नञनुल्लेखमात्रम्; उक्तं च विवरणे—अज्ञानमितिद्वयसापेक्षज्ञान-पर्युदासेनाभिधानादिति । अन्यथाऽज्ञानस्यज्ञानविरोधित्वमप्रामाणिकं स्यात् । तथाच विरोधनिरूपकज्ञानस्य ज्ञानाज्ञानाभ्यां तवापि कथं न व्याघातः ? एवं निर्विषयाज्ञाना-

प्रतीतेर्विषयज्ञानाज्ञानयोरपि व्याघात आपादनीयः तथाच 'यत्रोभयोः समो दोषः परिहारोपि वा समः । नैकः पर्यनुयोक्तव्यस्तादृगर्थविचारणे ॥ इति न्यायेनोभयपरिहरणीयस्य व्याघातस्य ज्ञानाभावपक्षे एवापादनमनुचितमिति चेन्न;

शङ्कते नन्विति। आपको अभावविलक्षणत्वेन अभिमत जो अज्ञान है, वह अज्ञानभी 'न जानामि' इस रीतिसे ज्ञानविरोधित्वेन ही भासित होता है,='न जानामि' घटकज्ञात्वर्थ ज्ञान है और नञ्का अर्थ विरोधी है, तथाच ज्ञानविरोधिपदार्थाधिकरणमहम् ऐसा इसका अर्थ है, और नञ्का विरोधिरूप अर्थ 'अधर्मः' 'असुरः' इत्यादिमें प्रसिद्ध है, अधर्म शब्दका अर्थ है, 'धर्मविरोधि' और असुर शब्दका अर्थ है, सुरविरोधि। ननु—मुग्धोऽस्मि इस प्रतीतिका विषयभी अज्ञान है, और यहाँपर नञ्का उल्लेख नहीं है, 'मुग्धोऽस्मि' का अर्थ है कि 'मैं अज्ञानवाला हूँ' तथाच यहाँपर ज्ञानविरोधित्वेन अज्ञानका भान नहीं है, तहाँ कहते हैं कि, मोहादिपदेऽपि=मोहादिपदमेंभी प्रलयादिवत् नञ्का अनुल्लेखमात्र है, परन्तु मोहका अर्थ अज्ञानही है,=जैसे प्रलयपदमें नञ्का उल्लेख नहीं है, फिरभी प्रलयपदसे ध्वंसकी प्रतीति होती है,— नञुल्लिखितधीविषयोऽभावः , नञ् है, उल्लिखित जिसमें ऐसी जो धी उस धीका विषय अभाव है, यह जो अभावका लक्षण है तदनुसार व्यवस्थाकी जा रही है। विवरणमेंभी कहा है, द्वयसापेक्ष=आश्रयविषय एतद्द्वयसापेक्ष जो ज्ञान उस ज्ञानके पर्य्युदासेन=विरोधसे 'अज्ञानम्' इत्याकारक अभिधानसे अर्थात् उक्तद्वयसापेक्ष जो ज्ञान उस ज्ञानके विरोधीको अज्ञान कहा जाता है। अन्यथा=अज्ञानकी ज्ञानविरोधित्वेन ही प्रतीति न अङ्गीकार करनेपर अज्ञानका ज्ञानविरोधित्व अप्रामाणिक होगा=अज्ञानके ज्ञानविरोधित्वमें उक्त प्रतीतिही प्रमाण है, यदि उस प्रतीतिमें अज्ञानका ज्ञानविरोधित्वेन भान न मानों तो अज्ञानका ज्ञानविरोधित्व अप्रामाणिक होगा। तथाच=उक्तप्रकारसे अज्ञानके ज्ञानविरोधित्वेन प्रतीयमानत्वके सिद्ध होनेपर विरोध निरूपक जो ज्ञान उस ज्ञानके ज्ञानसे और उस ज्ञानके अज्ञानसे तुमकोभी क्यों व्याघात नहीं है=विरोधनिरूपक ज्ञानका यदि ज्ञान मानों तो अज्ञानकी प्रतीति न होगी क्योंकि ज्ञानाज्ञानका विरोध है, अतः साथमें इन दोनोंका अवस्थान या ज्ञान नहीं हो सकता है, और यदि विरोधनिरूपक ज्ञानका ज्ञान नहीं मानों तो भी अज्ञानका ज्ञान न होगा क्योंकि अज्ञानका भान ज्ञानविरोधित्वेन ही होता है। अर्थात् अज्ञानका ज्ञान ज्ञाननिरूपितविरोधप्रकारकाज्ञानविशेष्यक होता है, और अज्ञानमें प्रकारीभूत जो विरोध है उस विरोधका जो ज्ञान है, वह विरोधमें निरूपितत्व सम्बन्धसे अवच्छेदकविधया प्रविष्ट जो विरोधनिरूपक ज्ञान उस ज्ञानके ज्ञानविना नहीं बन सकता है, अतः विरोधनिरूपक ज्ञानके ज्ञानविना अज्ञानप्रतीति अनुपपन्न है, फलतः आपका कथन ज्ञानाज्ञान दोनों पक्षोंमें हमारे पक्षकी तरह दोषग्रस्त है, एवम्= इसी रीतिसे निर्विषय अज्ञानकी प्रतीति न होनेसे अज्ञानके विषयका जो ज्ञान तथा अज्ञान इन दोनोंमेंभी व्याघात आपादनीय है,=विषयका यदि ज्ञान होगा तो अज्ञानकी प्रतीति न होगी, क्योंकि ज्ञान तथा अज्ञानका परस्पर विरोध है. और यदि विषयकी प्रतीति न होगी तो

अज्ञानका ज्ञान न होगा, क्योंकि अज्ञानके ज्ञानमें विषयका ज्ञान आवश्यक होता है। फलतः जिस अर्थमें वादी तथा प्रतिवादी इन दोनोंको दोष समान हो और समाधानभी समान हो तादृशार्थविचारमें एक दूसरेसे उपालम्भव्य नहीं होता है, इस न्यायसे उभयसे परिहरणीय जो व्याघात उस व्याघातका ज्ञानाभाव पक्षमेंही आपादन अनुचित है, ननुसे लेकर यहाँतक द्वैतीकी शङ्काका अनुवाद हुआ अब सिद्धान्तीसे समाधान किया जाता है–इति चेन्न; क्यों ?

प्रमाणवृत्तिनिवर्त्यस्यापि भावरूपाज्ञानस्य साक्षिवेद्यस्य विरोधनिरूपकज्ञानतद्व्यावर्त्तकविषयग्राहकेन साक्षिणा तत्साधकेन तदनाशाद्व्याहत्यानुपपत्तेः। अज्ञानग्रहे विषयगोचरप्रमापेक्षायां व्याहतिः स्यादेव। साच नास्ति तदुक्तं विवरणे–सर्वं वस्तु ज्ञाततया अज्ञाततया वा साक्षिचैतन्यस्य विषय एवेति। न चैवं ज्ञानाभावपक्षेऽपि विषयादिज्ञानं साक्षिरूपम् 'न जानामीति धीस्तु प्रमाणवृत्त्यभावविषयेति न व्याहतिरिति वाच्यम्; भावरूपाज्ञानस्य साक्षात्साक्षिवेद्यत्वेन तदवच्छेदकविषयादेः तद्द्वारा साक्षिवेद्यत्वसंभवेऽपि अभावस्यानुपलब्धिगम्यत्वेन साक्षात्साक्षिवेद्यत्वाभावात् न तद्द्वारा तदवच्छेदकविषयादेः साक्षिवेद्यत्वमितिवैषम्यात्। यद्यपि ज्ञानं साक्षिवेद्यम् तद्द्वारा तदवच्छेदको विषयश्च साक्षिवेद्यः। तथापि ज्ञानाभावो न साक्षिवेद्यः तस्यानुपलब्धत्वात् उत्पन्नं च ज्ञानं साक्षात् साक्षिवेद्यम्। तस्मिंश्चोत्पन्ने तद्विषयोऽपि स्फुरतीति कुतो ज्ञानाभावोऽपि। अज्ञानविशेषणतया तु अनुत्पन्नमपि ज्ञानं साक्षिवेद्यमिति न दोषसाम्यम्।

भावरूप और साक्षिसे वेद्य तथा प्रमाणवृत्तिसे निवर्त्य ऐसा जो अज्ञान है, उस अज्ञानका, विरोधका निरूपक जो ज्ञान तथा तद्व्यावर्त्तक=अज्ञानव्यावर्त्तक=अज्ञानमें विशेषण ऐसा जो विषय इन दोनोंको ग्रहण करनेवाला जो अज्ञानका साधक साक्षी है उस साक्षीसे नाश न होनेसे=विरोध न होनेसे व्याहतिकी अनुपपत्तिसे। आपने विरोधनिरूपकज्ञानविषयक ज्ञानको लेके तथा अज्ञानविषयविषयक ज्ञानको लेके जो आपत्ति दी थी वह नहीं बन सकती है, क्योंकि उक्त दोनों ज्ञान साक्षीरूप हैं और साक्षीका अज्ञानसे विरोध नहीं है, प्रत्युत साक्षी अज्ञानका साधक है अतः कोई अनुपपत्ति नहीं। अज्ञानग्रहे=अज्ञानको विषय करनेके लिए विषयगोचर=अज्ञानविषयगोचर प्रमाकी अपेक्षा होनेपर अवश्य व्याहति होती साच=अज्ञानविषयगोचर प्रमाकी अपेक्षा तो नहीं है। सो कहा है विवरणमें–सर्ववस्तु ज्ञाततया या अज्ञाततया साक्षी चैतन्यका विषयही है, एवम्=ऐसा होनेपर ज्ञानाभावपक्षमेंभी विषयादिका ज्ञान साक्षी रूप है, और 'न जानामि' यह धी तो प्रमाणवृत्तिके अभावको विषयकरती है; अतः व्याघात नहीं है, इति न च वाच्यम्, क्यों भावरूपाज्ञानको साक्षात्साक्षिवेद्यत्व होनेसे तदवच्छेदक=अज्ञानावच्छेक विषयादिको तद्द्वारा=अज्ञानद्वारा साक्षिवेद्यत्वका सम्भव होनेपरभी अभावको अनुपलब्धिगम्यत्व होनेसे साक्षात्साक्षिवेद्यत्वके अभावसे, तद्द्वारा=अभावद्वारा तदवच्छेदक=अभावावच्छेदक विषयादिको साक्षिवेद्यत्व नहीं है, इस वैषम्यसे। यद्यपि ज्ञान साक्षिवेद्य है, तद्द्वारा=

ज्ञानद्वारा ज्ञानावच्छेदक विषयभी साक्षिवेद्य है, । तथापि ज्ञानाभाव साक्षिवेद्य नहीं है, क्यों? तस्य=ज्ञानाभावको घटादिमें अनुपलब्धिसेही गम्य होनेसे । अर्थात् घटादिमें ज्ञानाभावको जैसे अनुपलब्धिगम्यत्वरूप अनुपलब्धत्व रहता है, वैसेही आत्मवृत्तिज्ञानाभावमेंभी अनुपलब्धिगम्यत्वरूप अनुपलब्धत्वही मानना चाहिए। और उत्पन्न हुआ ज्ञान साक्षात् साक्षिसे वेद्य होता है, और ज्ञानके उत्पन्न होनेपर तो तद्विषयोऽपि=ज्ञानका विषयभी स्फुरित ही होता है अतः ज्ञानका अभावभी कहाँसे साक्षात् साक्षिवेद्य होगा, और अज्ञानविशेषणतया तो अनुत्पन्न ज्ञानभी साक्षिवेद्य है, अतः दोषका साम्य नहीं=अज्ञानविशेषणतया जैसे अनुत्पन्न=अविद्यमानभी ज्ञान साक्षिवेद्य होता है तैसे अभावविशेषणतया विषयादि साक्षिवेद्य नहीं हो सकते हैं अभावको साक्षीसे अवेद्य होनेसे फलतः अभावज्ञानस्थलमें अभावविषयक ज्ञानसे अतिरिक्त विषयादिविषय स्वतन्त्र वृत्तिरूप ज्ञान मानना पडेगा और जब यों हुआ तब 'मयि ज्ञानं नास्ति' इत्यादिरूप प्रतीतियाँ ज्ञानसामान्याभावको विषयकरती हुई उपपन्न हो सकती हैं, अतः आपके मतमें और हमारे मतमें दोषका साम्य नहीं है, फलतः आप पर्यनुयोक्तव्य हैं ।

नच—अवच्छेदकस्य विषयादेः प्रागज्ञाने कथं तद्विशिष्टाज्ञानज्ञानम्? विशेषणज्ञानाधीनत्वाद्विशिष्टज्ञानस्येति—वाच्यम्; विशेषणज्ञानस्य विशिष्टज्ञानजनकत्वे मानाभावात्, प्रतियोगित्वाभावत्वयोः पूर्वानुपस्थितयोरपि तार्किकैरभावबोधे प्रकारीभूय भानाभ्युपगमात् तथापि—विशेषणतावच्छेदकप्रकारकज्ञानं विना कथं विशिष्टवैशिष्ट्यबुद्धिरिति—चेन्न; विशिष्टवैशिष्ट्यबुद्धित्वेन विशेषणतावच्छेदकप्रकारकज्ञानत्वेन च कार्यकारणभावे मानाभावात् प्रत्यक्षत्वादिरूपेण पृथक्पृथक्क्लृप्तकार्यकारणभावेनैवोपपत्तेः विशिष्टवैशिष्ट्यबुद्धित्वस्यार्थसमाजसिद्धत्वात्, इह च सामग्रीतुल्यत्वेन विशेष्य विशेषणं तत्र च विशेषणान्तरमिति न्यायेन विशिष्टवैशिष्ट्यज्ञानसंभवात्। अन्यथा तार्किकाणामपीश्वरस्य भ्रान्तिज्ञत्वं न स्यात्। भ्रमविषयस्य स्वातन्त्र्येण ग्रहे भ्रान्तत्वापत्त्या भ्रमावच्छेदकतयैव तद्ग्रहणं वाच्यम् तथाच क प्राक्तदवच्छेदकग्रहनियमः? ग्रहणसामग्रीतुल्यत्वञ्च प्रकृतेऽपि समम्।

शङ्कते नचेति । अज्ञानके अवच्छेदक जो विषयादि हैं तादृशविषयादिविषयक पूर्वमें ज्ञान न होनेपर विषयादिसे विशिष्ट जो अज्ञान उस अज्ञानका ज्ञान कैसे होगा—विशिष्टज्ञानको विशेषणज्ञानके अधीन होनेसे=विशिष्टज्ञानके प्रति विशेषणज्ञान हेतु होता है जब यों है तब हेतुरूप विषयविषयक ज्ञानके न होनेपर विशिष्टज्ञानरूप कार्य्य कैसे होगा—इति नच वाच्यम् क्यों? विशेषणज्ञानको विशिष्टज्ञानके जनकत्वमें प्रमाणका अभाव होनेसे=विशेषणज्ञानत्वेन और विशिष्टज्ञानत्वेन हेतुहेतुमद्भाव नहीं मानते हैं, फलतः अवच्छेदकरूपविषयविषयक ज्ञानकी अज्ञानज्ञानसे पूर्वमें अपेक्षा नहीं, तार्किकोंसे अभावज्ञानसे पूर्वमें अनुपस्थित जो प्रतियोगित्व और अभावत्व इन दोनोंके अभावविषयकज्ञानमें प्रकारविधया भानका अभ्युपगम होनेसे=अभावज्ञानसे पूर्वमें अज्ञात=अस्मृत प्रतियोगित्व अनुयोगित्वका अभावबोधमें प्रकारविधया भान होता

है, ऐसा तार्किक लोग मानते हैं, तथापि=तो भी विशेषणतावच्छेदक है प्रकार जिसमें एवम्भूत जो ज्ञान उस ज्ञानके विना विशिष्टके वैशिष्ट्य=सम्बन्धको अवगाहन करनेवाली बुद्धि कैसे होगी='दण्डी पुरुषः' यह बुद्धि विशिष्टवैशिष्ट्यावगाहिनी है, क्योंकि दण्डत्वसे विशिष्ट जो दण्ड तादृश दण्डरूपविशिष्टके वैशिष्ट्यका पुरुषमें अवगाहन करती है, यहाँपर पुरुषमें विशेषण दण्ड है विशेषणता दण्डपर है विशेषणतावच्छेदक दण्डत्व है, विशेषणतावच्छेदकप्रकारकज्ञान 'दण्डः' यह ज्ञान है इस ज्ञानके विना 'दण्डी पुरुषः' यह ज्ञान नहीं हो सकता है, तैसेही प्रकृतमेंभी अज्ञानमें विशेषणीभूत जो विषयादि हैं तादृशविषयादिविशेष्यकस्ववृत्तिधर्मप्रकारक ज्ञानके विना विषयादिरूप विशिष्टके वैशिष्ट्यको अवगाहन करनेवाला ज्ञान नहीं हो सकता है, इति चेन्न, क्यों ? विशिष्टवैशिष्ट्यबुद्धित्वेन और विशेषणतावच्छेदकप्रकारकज्ञानत्वेन कार्य-कारणभावमें मानका अभाव होनेसे, प्रत्यक्षत्वादिरूपसे पृथक् पृथक् क्लृप्त जो कार्यकारणभाव है उससेही विशिष्टवैशिष्ट्यबुद्धित्वेन अभिमत प्रतीतिओंकी उपपत्ति होनेसे विशिष्टवैशिष्ट्यबुद्धि-त्वको अर्थतः सिद्ध होनेसे='दण्डी पुरुषः' इत्याकारक प्रत्यक्षके प्रति 'दण्डः' इत्याकारक प्रत्यक्ष हेतु है, नीलघटवद्भूतलम् इत्याकारक प्रत्यक्षके प्रति 'नीलो घटः' इत्याकारक प्रत्यक्ष हेतु है। 'गोनिष्ठकर्मतानिरूपकाऽऽनयनानुकूलकृतिमान् प्रेरणाविषयस्त्वम्पदार्थः' इत्याकारक शाब्दबोधके प्रति 'गामानयत्वम्' इत्याकारकवाक्यघटकपदजन्यपदार्थोपस्थिति कारण है, इस रीतिसे प्रत्यक्षत्वादिरूपसे जो जगत्प्रसिद्ध कार्यकारणभाव है, उससेही व्यवहारकी उपपत्ति है, फिर स्वतन्त्र पृथक् कार्यकारणभावके कल्पनाकी क्या आवश्यकता है। और यह कार्यकारणभाव जगत्में अननुगतरूपसेही प्रतीत होता है अतः इसके अनुगमकी आवश्यकता नहीं। 'दण्ड रक्त है या नहीं' इत्याकारक संशयके बाद विशेष्यमें विशेषणका भान होता है और विशेषणमें विशेषणान्तरका भान होता है । इस विशृङ्खलितभानन्यायसे जहाँपर 'रक्तदण्डवान्' इत्या-कारक ज्ञान हुआ है, उस ज्ञानमें विशिष्टवैशिष्ट्यकी विषयताभी कही जा सकती है। तैसे विशेष्यमें जो अन्वयि है, उस अन्वयिसे जो अन्वित है तादृश अन्वितविषयका धीकाही तद्विशिष्टवैशिष्ट्यधीत्वेन व्यवहार हो सकता है, विशेषणतावच्छेदकप्रकारकज्ञानत्वसेही उसे क्यों नियम्य मानेंगे यह समाजसिद्धत्वका अर्थ है, विशेषणतावच्छेदकप्रकारक बुद्धिको विशिष्टवैशिष्ट्यबुद्धिके प्रति हेतुत्व मानकर कहते हैं—इहचेति। इहच=विशेषणतावच्छेदकप्रका-रक निश्चयके असम्भवस्थलमें तो सामग्रीतुल्यत्वेन, विशिष्टके वैशिष्ट्यबुद्धिमें जो सामग्री है, उस सामग्रीके तौल्यसे विशेषणका भान होता है, तत्र च=उस विशेषणमें विशेषणान्तरका भान होता है, इसन्यायसे विरोधित्वादिविशिष्टके वैशिष्ट्यके ज्ञानके सम्भवसे। अन्यथा= अभावका प्रत्यक्ष विशिष्टवैशिष्ट्यविषयक प्रत्यक्षकी रीतिसे ही होता है, ऐसा नियम करो तो न्यायमतमें ईश्वरको भ्रान्तिज्ञत्व न होगा, क्योंकि भ्रमविषयस्य=भ्रमके विषय जो विशेषण तथा विशेष्य इन दोनोंका स्वातन्त्र्येण=विशिष्टके वैशिष्ट्यका भान होता है, इसरीतिसे ग्रहे= 'रजतेदंज्ञानवान्' ऐसा ग्रह होनेपर भ्रान्तत्वकी आपत्तिसे भ्रमावच्छेदकतयाही तद्ग्रहण= विशेषणविशेष्यका ग्रहण कहना चाहिए, तथाच=ससम्बन्धिकके प्रत्यक्षमें विशिष्टवैशिष्ट्यके

नियमका व्यभिचार होनेपर प्राक्=अज्ञानविषयक प्रत्यक्षकी उपपत्तिसे पूर्व अज्ञानविशेषणतया ज्ञानादिके ग्रहका नियम कहाँ है, और ग्रहणसामग्रीतुल्यत्व तो प्रकृतमेंभी सम है, इस प्रसङ्गमें विशेषता लघुचन्द्रिकामें देखनी चाहिए।

ननु—श्रवणादिसाध्यमोक्षहेतुब्रह्मज्ञानप्रागभावस्य सत्वेन तज्ज्ञानं त्वयापि वाच्यम्; तथाच तत्रापि व्याहतिस्तुल्येति—चेन्न, श्रवणादिसाध्यमोक्षहेतुब्रह्मज्ञानरूपस्य प्रतियोगिनो ज्ञानाज्ञानाभ्यां व्याहत्यभावात् नहि श्रवणादिसाध्यत्वमोक्षहेतुत्वादिप्रकारकब्रह्मज्ञानज्ञानं ब्रह्मज्ञानमपि सत् श्रवणादिसाध्यं मोक्षहेतुर्वा; येन तस्मिन् सति तादृग्ज्ञानप्रागभावो व्याहन्येत। नन्वेवं—न जानामीतिधियो ज्ञानाभावविषयत्वेऽपि न प्रतियोगिज्ञानादिना व्याहतिः; सामान्यतो विषयप्रतियोगिज्ञानेऽपि विशेषतस्तदभावसंभवात्, अन्यथा प्रागभावधीर्न स्यात् तत्प्रतियोगिविशेषस्य सामान्यधर्मं विना विशेषतो ज्ञातुमशक्यत्वादितिचेन्न विशेषज्ञानाभावे हि विशेषज्ञानत्वावच्छिन्नं प्रतियोगीति तस्य ज्ञाने सविशेषोऽपि ज्ञात एवेति विशेषज्ञानाभावव्याघातात्। यत्किञ्चिद्विशेषाभावश्च न सामान्यावच्छिन्नप्रतियोगिताक इत्युक्तम् प्रतियोगितावच्छेदकप्रकारकज्ञानाभावेन प्रागभावप्रतीतिरसिद्धैव।

शङ्कते नन्विति। श्रवण मननादिसे साध्य जो मोक्षका हेतुभूत ब्रह्मज्ञान उस ब्रह्मज्ञानके प्रागभावका सत्त्व होनेसे तज्ज्ञानम्=उक्तविध ब्रह्मज्ञानके हेतुभूत प्रागभावका ज्ञान तुमसेभी कहना होगा फलतः उक्तप्रागभावके ज्ञानमेंभी व्याहति तुल्य है=प्रागभावका अर्थात् उक्तब्रह्मज्ञानके प्रागभावको माननाही पडेगा, और वह मानना प्रागभावके ज्ञानविना बन नहीं सकता है, और प्रागभावत्वेन प्रागभावका ज्ञान किसी कामका नहीं है, किन्तु श्रवणादिसाध्य मोक्षहेतुभूत ब्रह्मज्ञानसे विशेषित प्रागभावका ज्ञान चाहिए अर्थात् प्रागभावविषयक जो ज्ञान होगा वह श्रवणादिसाध्यमोक्षहेतुभूतब्रह्मज्ञानप्रकारक प्रागभावविशेष्यक होगा जब यों हुआ तब व्याघात है क्योंकि प्रागभाव और प्रागभावका प्रतियोगी ये दोनों एककालमें रहभी नहीं सकते हैं और एकही ज्ञानमें साथही साथ प्रकारविधया तथा विशेष्यविधया इनका भानभी नहीं हो सकता है। फलतः यदि आप उक्तप्रागभावके प्रतियोगिका ज्ञान कहो तोभी प्रागभावकी प्रतीति नहीं बन सकती है और यदि आप उक्तप्रागभावके प्रतियोगिरूप उक्तविध ब्रह्मज्ञानका ज्ञान न मानों तो भी प्रकाराज्ञानसे उक्तप्रागभावका ज्ञान नहीं बन सकता है दोनों पक्षोमें व्याघात है इति चेन्न; क्यों? श्रवणादिसे साध्य जो मोक्षका हेतु ब्रह्मज्ञान है तद्रूप प्रतियोगीके ज्ञानसे तथा अज्ञानसे व्याहतिके अभावसे; इसी अर्थको स्पष्ट करते हैं नहीति। श्रवणादिसाध्यत्व और मोक्षहेतुत्वादि प्रकारक जो ब्रह्मज्ञान है, तादृशब्रह्मज्ञानका ज्ञान ब्रह्मज्ञान हुआभी श्रवणादिसे साध्य नहीं और मोक्षका हेतु नहीं है, जिससे कि तस्मिन् सति=उक्त ब्रह्मज्ञान ज्ञान होनेपर तादृग्ज्ञानप्रागभावः=श्रवणादिसाध्यत्वमोक्षहेतुत्वादिप्रकारक ब्रह्मज्ञा-

नका प्रागभाव व्याहत हो। शङ्कते नन्विति। एवम्=ऐसा होनेपर 'न जानामि' इत्याकारिका जो धी है उस धीको ज्ञानाभावविषयत्व होनेपरभी प्रतियोगिज्ञानसे या अनुयोगिज्ञानसे व्याहति नहीं है, क्यों ? सामान्यतः विषय=अनुयोगिज्ञान और प्रतियोगिज्ञानके होनेपरभी विशेषरूपसे=तद्व्यक्तित्वरूपसे तद्भावः=अनुयोगिज्ञानाभाव और प्रतियोगिज्ञानाभावके सम्भवसे, अन्यथा=सामान्यरूपसे ज्ञान और विशेषरूपसे ज्ञानाभावके न माननेपर प्रागभावकी धी न होगी क्योंकि उस प्रागभावके प्रतियोगी विशेषको सामान्यधर्मके विना विशेषरूपसे जाननेके लिए अशक्य होनेसे, इति चेन्न; क्यों ? विशेषज्ञानाभावमें विशेषज्ञानत्वावच्छिन्न प्रतियोगि है, अतः तस्य ज्ञाने=विशेषज्ञानाभावका ज्ञान होनेपर स=वह प्रतियोगिरूप विशेषभी ज्ञातही है, अतः विशेषज्ञानाभाववत्वेन अभिमतस्थलमें विशेषज्ञानके रह जानेसे विशेषज्ञानाभाव व्याहत है, और यत्किञ्चिद्विशेषाभाव तो सामान्यावच्छिन्नप्रतियोगिताक नहीं है, यह कहा जा चुका है। और प्रतियोगितावच्छेदक=तत्तद्व्यक्तित्वरूप जो प्रतियोगितावच्छेदक तादृशप्रतियोगितावच्छेदकप्रकारक ज्ञानके अभावसे प्रागभावकी प्रतीति असिद्ध ही है।

नतु—प्रतियोगितावच्छेदकप्रकारकज्ञानं नाभावज्ञाने कारणम् किन्त्वभावज्ञाने भासमानप्रतियोगिवृत्तिधर्मप्रकारकं ज्ञानम्। सामान्यलक्षणाप्रत्यासत्त्यभ्युपगमे तु प्रतियोगिविषयत्वमपि तस्याधिकम् इतरथा तु तदेव इष्टवृत्तिसामान्यधर्मप्रकारकज्ञानमिवासिद्धव्यक्तिविषयेच्छाकृत्योः। नचप्रतियोगितानवच्छेदकधर्मेण कथं प्रतियोगिता गृह्यतामिति—वाच्यम्, विशेषावच्छिन्नाया व्याप्तेरिव सामान्येन ग्रहणसंभवात्। तथाहि—इदमभिधेयवत् प्रमेयादित्यनुमाने 'यत्र प्रमेयं तत्राभिधेयमितिव्याप्तिग्रहणसमये वृत्तिमत्प्रमेयत्वावच्छेदेनैव सामानाधिकरण्यरूपव्याप्तिसत्वेऽपि तस्याः प्रमेयत्वरूपेणैव ग्रहणम् नतु वृत्तिमत्प्रमेयत्वेन गौरवात् वृत्तिमत्वविशेषणस्य व्यभिचारावारकत्वेन वैयर्थ्याच्च अवृत्तिषु साध्यसामानाधिकरण्यरूपव्याप्त्यभावात् साध्याभावसामानाधिकरण्यरूपव्यभिचारस्याप्यभावात् व्यर्थविशेषणत्वरहितत्वे सति व्यभिचारिव्यावृत्तत्वमात्रेणैव व्याप्यतावच्छेदकसम्भवाच्च।

शङ्कते नन्विति। प्रतियोगितावच्छेदक है प्रकार जिसमें ऐसा जो ज्ञान वह ज्ञान अभावविषयकज्ञानमें कारण नहीं है, किन्तु अभाव ज्ञानमें भासमान जो प्रतियोगिवृत्तिधर्म तादृशधर्मप्रकारक ज्ञान अभाव ज्ञानमें कारण है, सामान्यलक्षणाप्रत्यासत्तिका अभ्युपगम हो तो तस्य=उक्तधर्मप्रकारक ज्ञानमें प्रतियोगिविषयत्वभी अधिकम्=अधिक रहता है, इसमें अधिकता यह है कि यह कारणकोटिमें प्रविष्ट नहीं अर्थात् प्रतियोगिविषयत्वेन उसको कारणता नहीं किन्तु प्रतियोगिवृत्ति धर्मप्रकारकत्वेन कारणता है, सामान्यलक्षणाप्रत्यासत्तिसे अनिर्वाच्यसङ्गत्या धर्माश्रयरूप प्रतियोगिका भान हो जाता है, इतरथा=सामान्यलक्षणाप्रत्यासत्तिके न माननेपर तदेव=अभावज्ञानमें भासमानप्रतियोगिवृत्तिधर्मप्रकारक ज्ञानही अभावज्ञानमें कारण

है, (अभावज्ञाने कारणम्) इतना अंश (तदेव) के अव्यवहित उत्तरमें अनुपक्त होता है उसीको मिलाकर नीचे अर्थ कियागया है, उक्तार्थमें दृष्टान्त दिखलाते हैं-इष्टेति । इव=जैसे अनुत्पन्न व्यक्तिविषयक जो इच्छा और कृति होते हैं इन दोनोंका इष्टवृत्ति जो सामान्यधर्म तादृशसामान्यधर्मप्रकारक जो ज्ञान वह ज्ञान कारण होता है, शङ्कते नचेति । प्रतियोगिताका अनवच्छेदक जो सामान्यधर्म है, तादृशधर्मावच्छिन्नत्वेन प्रतियोगिता कैसे गृहीत होगी=प्रागभावीय प्रतियोगितावच्छेदक घटत्व नहीं है किन्तु तत्तद्व्यक्तित्व है ऐसी हालतमें घटत्वरूपसामान्यधर्मावच्छिन्नत्वेन प्रतियोगिताज्ञान कैसे हो सकता है, इति न च वाच्यम्, क्यों ? जैसे विशेषरूपावच्छिन्न व्याप्तिका सामान्यरूपसे ग्रहण होता है वैसे विशेषरूपावच्छिन्न प्रतियोगिताके सामान्यरूपसे ग्रहणका सम्भव होनेसे, इसी अर्थको उदाहरणसे स्पष्ट करते हैं-तथाहीति । इदम्पक्षक अभिधेयसाध्यक प्रमेयहेतुक जो इदम् अभिधेयवत् प्रमेयात् इत्याकारक अनुमान है उस अनुमानमें कारणीभूत जो (यत्र प्रमेयं तत्राभिधेयम्) इत्याकारक व्याप्तिग्रहण है, उस व्याप्तिग्रहणसमयमें हेतुतावच्छेदक जो प्रमेयत्व उस प्रमेयत्वका विशेष जो वृत्तिमत्प्रमेयत्व तादृशवृत्तिमत्प्रमेयत्वावच्छेदेनेन ही सामान्याधिकरण्यरूप व्याप्तिका सत्त्व होनेपरभी—वृत्तिमत्प्रमेयत्वावच्छिन्नाधिकरणवृत्त्यत्यन्ताभावाप्रतियोगि अभिधेयं इत्याकारकसामानाधिकरण्यरूपव्याप्तिका सत्त्व होनेपरभी तस्याः=उक्तसामानाधिकरण्यरूप व्याप्तिका वृत्तिमत्प्रमेयत्वका व्यापक जो प्रमेयत्व तादृश प्रमेयत्वरूपसेही ग्रहण होता है वृत्तिमत्प्रमेयत्वेन नहीं=व्याप्यतावच्छेदक प्रमेयत्वही होता है, वृत्तिमत्प्रमेयत्व नहीं सामान्य धर्मको व्याप्यतावच्छेदकत्वका सम्भव होनेपर सामान्यधर्मसे घटित विशेषधर्मको व्याप्यतावच्छेदकत्वमाननेमें गौरव होनेसे और 'वृत्तिमत्त्व' विशेषणके व्यभिचारका अवारकत्व होनेसे वैयर्थ्यसेभी और जैसे अवृत्ति गगनादिरूप प्रमेयोंमें अभिधेयरूप साध्यकी सामानाधिकरण्यरूप व्याप्ति नहीं है, वैसे साध्याभावके सामानाधिकरण्यरूप व्यभिचारकाभी अभाव है,=हेतुकुक्षिमें प्रविष्ट गगनादिरूप अवृत्तिप्रमेयोमें अवृत्तित्व होनेसे जैसे साध्यसामानाधिकरण्यरूप व्याप्ति नहीं है, वैसे अवृत्तित्व होनेसेही साध्याभावाधिकरणवृत्तित्वरूप व्यभिचारभी नहीं है, अतः दोष नहीं । और व्यर्थविशेषणत्वरहितत्वे सति=व्यर्थविशेषणत्वासमानाधिकरण होके व्यभिचारिमें अवृत्तित्वमात्रसेही प्रमेयत्वको व्याप्यतावच्छेदकत्वका सम्भव होनेसेभी प्रमेयत्वावच्छेदेन व्याप्तिग्रहण बन सकता है ।

तथाच यथा वृत्तिमत्प्रमेयगतापि व्याप्तिः प्रमेयत्वेनैव गृह्यते, तथा तत्तन्नीलादिव्यक्तिगता प्रतियोगिता नीलत्वादिरूपेण गृह्यत इति न काचिदनुपपत्तिः । एवं च इहेदानीं घटो नास्तीतिप्रतीतिरिव घटोपादानगततत्प्रागभावविषया 'मयि ज्ञानंनास्ति' इति प्रतीतिरपि प्रमातृगततत्प्रागभावविषयेति न काप्यनुपपत्तिरिति-चेन्न, अभावज्ञाने प्रतियोग्यंशे भासमानस्य धर्मस्यैव प्रतियोगितावच्छेदकतया यत्किंचिद्विशेषाभावस्य सामान्यावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वे घटवत्यपि भूतले 'निर्घटं भूतलमिति घटज्ञानवत्यपि

स्वस्मिन्मयि घटज्ञानं नास्ति इति च प्रतीतेरापत्तेः पूर्वोक्तदोषात् यत्किञ्चिद् घटज्ञानं घटाभावज्ञाने प्रतिबन्धकमिति तु ज्ञानज्ञानेऽपि तुल्यम् उदाहृतव्याप्तिग्रहणे तु बाधकाभावात् सामान्यावच्छेदेऽपि न दोषः ।

तथाच=फलतः जैसे वृत्तिमत्प्रमेयगताभी व्याप्ति प्रमेयत्वसेही गृहीत होती=प्रमेयत्वावच्छिन्न होकेही गृहीत होती है तैसे तत्तन्नीलादिगत प्रतियोगिता नीलत्वादिरूपसेही गृहीत होती है, इसलिए कोई अनुपपत्ति नहीं, एवञ्च=ऐसा होनेपर जैसे । इह=इस कपालमें एतत्कालावच्छेदेन घट नहीं है, यह प्रतीति जैसे घटोपादानकपालगत जो घटका प्रागभाव है, उस प्रागभावको विषय करनेवाली है, तैसे 'मयि ज्ञानं नास्ति यह प्रतीति भी प्रमातृगत जो तत्प्रागभाव= प्रमाका प्रागभाव उस प्रागभावको विषय करती है, अतः कोई अनुपपत्ति नहीं; ननुसे लेकर यहाँतक शङ्का है, अब समाधान किया जाता है इति चेन्न, क्यों ? अभावज्ञानमें प्रतियोग्यंशमें भासमान जो धर्म है उस धर्मकोही प्रतियोगितावच्छेदकता होनेसे यत्किञ्चिद्विशेषाभावको सामान्यावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्व होनेपर घटवद्भूतलमेंभी 'घटाभाववद्भूतलम्' इत्याकारक प्रतीतिकी आपत्तिरूप और घटज्ञानवाला जो स्व उस स्वमेंभी 'मयि ज्ञानं नास्ति' इत्याकारक प्रतीतिकी आपत्तिरूप पूर्वोक्तदोषसे, और जिस किस घटका ज्ञान घटाभावज्ञानमें प्रतिबन्धक है, यह तो ज्ञानके ज्ञानमेंभी समान है, अर्थात्=यत्किञ्चिद् ज्ञानका ज्ञानभी ज्ञानसामान्याभावज्ञानमें प्रतिबन्धक है, और उदाहृतव्याप्तिस्थलमें तो बाधकका अभाव होनेसे सामान्यधर्मावच्छेदेनभी व्याप्तिग्रहमें दोष नहीं ।

अथैवं प्रागभावप्रतीतिरेव न स्यात्, न स्यादेव, घटो भविष्यतीतिप्रतीतेः धात्वर्थभविष्यत्ताविषयत्वेन प्रागभावाविषयत्वात् अन्यथा दिनान्तरोत्पत्स्यमानघटे एतद्दिनवृत्तिप्रागभावप्रतियोगित्वेन अद्य घटो भविष्यतीतिधीप्रसङ्गः । भविष्यत्त्वं च प्रतियोगितद्ध्वंसानाधारकालसम्बन्धित्वम् । ध्वंसत्वं च प्रागभावानङ्गीकर्तृमते कदाचित्काभावत्वमेव तदङ्गीकर्तृमतेऽपि प्रतियोग्यजनक-कादाचित्काभावत्वम् । जनकत्वं च स्वरूपसम्बन्धविशेषः । न प्रागभावघटितः प्रागभावस्याजनकत्वापत्तेः अन्यथात्माश्रयात् । अतः प्रागभावमङ्गीकुर्वतोऽपि तत्प्रत्यक्षत्वं दुर्लभम्, तमनङ्गीकुर्वतस्तु न कापि हानिः । इहेदानीं घटो नास्तीतिप्रतीतिस्तु सामान्यधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकतत्कालावच्छिन्नयावद्विशेषाभावविषया समयविशेषस्यापि अभावावच्छेदकत्वात् । अन्यथा आद्यक्षणे घटो नीरूप इत्यादिप्रतीतिर्न स्यात् ।

शङ्कते अथेति । उक्त प्रकारके होनेपर प्रागभावकी प्रतीति न होगी, समाधान—न स्यात् एव=ठीकही कहते हो नहीं ही होगी, प्रागभावप्रतीतित्वेन अभिमत जो 'घटो भविष्यति' इत्याकारिका प्रतीति है, उस प्रतीतिको धात्वर्थ जो भवन तादृशभवननिष्ठभविष्यत्ताविषयकत्व होनेसे प्रागभावका अविषयत्व है, अर्थात् यह प्रतीति धात्वर्थमें भविष्यत्कालसम्बन्धित्व विषय

करती है, न कि प्रागभाव। और यदि उक्तप्रतीतिको प्रागभावविषयत्वही मानों तो अन्य-दिनमें उत्पन्न होनेवाला जो घट है उसघटमें इसदिनमें विद्यमान जो प्रागभाव तादृश प्राग-भावका प्रतियोगित्व होनेसे, आज घट होगा ऐसी प्रतीति होनी चाहिए। प्रतियोगि और प्रतियोगिका ध्वंस इन दोनोंका अनाधार जो काल तादृशकालका जो सम्बन्धित्व उसका नाम है भविष्यत्त्व। और प्रागभावको नहीं अङ्गीकार करनेवालेके मतमें कादाचित्काभावत्वका नाम है ध्वंसत्व। और प्रागभावको अङ्गीकार करनेवालेके मतमेंभी प्रतियोगिका अजनक जो कादा-चित्काभाव उसका नाम है ध्वंस। और जनकत्वतो स्वरूपसम्बन्ध विशेष है, वह स्वरूपसम्बन्ध-विशेष प्रागभावसे घटित नहीं है, क्यों? प्रागभावको अजनकत्वकी आपत्तिसे=प्रागभावसे घटित प्रागभाव नहीं है, अतः प्रागभावमें जनकत्व सिद्ध न होगा, अन्यथा=जनकत्वको प्रागभावसे घटितही माननेपर आत्माश्रयात्=प्रतियोगिजनकत्वेन प्रागभावकी कल्पना होती है और जनकत्व प्रागभावकी कल्पनासे पूर्व जाननेको अशक्य है जनकत्वको प्रागभावसे घटित होनेसे, अतः प्रागभावका ज्ञान प्रागभावके अधीन होनेसे ज्ञप्तिमें आत्माश्रय है। अतः प्राग-भावको अङ्गीकार करनेवालेकोभी प्रागभावका प्रत्यक्ष दुर्लभ है, और प्रागभावको नहीं अङ्गी-कार करनेवालेकी तो कोई हानि नहीं। और 'इह इदानीं घटो नास्ति' इत्याकारिका जो प्रतीति होती है, वह तो सामान्यधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकतत्कालावच्छिन्नयावद्विशेषा-भावविषया है, समयविशेषकोभी अभावका अवच्छेदक होनेसे, अन्यथा=प्रतियोग्यधिकरणमें अत्यन्ताभावके न अङ्गीकार करनेपर आद्यक्षणमें 'घटो नीरूपः' ऐसी प्रतीति न होगी क्योंकि घटमें प्रतियोगिकी अधिकरणता रहती है, 'घटो नीरूपः' इस धीकी विषयताप्रागभावमेंही माननेपर रूपवाले घटमेंभी भाविरूपके प्रागभावको लेकर 'घटो नीरूपः' ऐसी प्रतीति होनी चाहिए, इतना शेष समझना।

अथ—अस्मिन्पक्षे सामान्याभावो न सिद्ध्येदिति चेत् प्रागभावाभ्युपगमेऽपि तुल्यमेतत्, सामान्याभाव-प्रागभावयोः सुन्दोपसुन्दयोरिव परस्परपराहतत्वात्। तथाहि—प्रागभावसिद्धौ विशेषाभावस्यापि सामान्यावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वात् न तावन्मात्रप्रमा-णकसामान्याभावसिद्धिः, सामान्याभावसिद्धौ च विशेषाभावस्य सामान्यावच्छिन्नप्रति-प्रतियोगिताकत्वाभावात् कादाचित्काभावस्य च सामान्याभावत्वायोगात् न सामान्यधर्मा-वच्छिन्नप्रतियोगिताकविशेषप्रतीतिमात्रशरणप्रागभावसिद्धिः इति न तदुभयमपि विप-श्चितां चेतसि चमत्कारमावहति। ननु—यावद्विशेषाभावनिश्चयेऽपि रूपं वायुवृत्ति न वा वायू रूपवान्नवेति रूपाभावसन्देहात् निश्चिते च संशयायोगात् यावद्विशेषाभावान्यसामा-न्याभावसिद्धिः अत एतावन्त्येव रूपाणि इति निश्चयदशायामेतादृशसंशयस्यानन्नु-भूयमानत्वेन तदनिश्चयदशायामेवैतादृशः संशयो वाच्यः तथाच रूपत्वं पार्थिवाप्यतैज-सरूपत्रितयातिरिक्तवृत्ति भविष्यतीति अधिकसंभावनया निश्चितेष्वेव संशयः उक्तसंभा-

वनाविरहसहकृतनिश्चयस्यैव प्रतिबन्धकत्वात् इति चेन्न; एवं प्रतिबन्धककल्पने मानाभावात् उक्तसम्भावनाविरहदशायामपि तादृशसंशयदर्शनाच्च ।

शङ्कते अथेति । इस पक्षमें सामान्याभाव नहीं सिद्ध होगा, इति चेत्=ऐसा यदि कहो तो प्रागभावके अभ्युपगमपक्षमेंभी यह कथन हो सकता है,—प्रागभावाभ्युपगमपक्षमेंभी सामान्याभाव सिद्ध न होगा, प्रागभावाभ्युपगमपक्षमें सामान्याभाव तथा प्रागभाव इन दोनोंको तो सुन्दोपसुन्दन्यायसे परस्पर पराहत होनेसे—प्रागभावसे सामान्याभावका पराभव होता है, और सामान्याभावसे प्रागभावका । इसीको दिखलाते हैं तथाहीति । प्रागभावकी सिद्धि होनेपर विशेपाभावकोभी सामान्यावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्व होनेसे तावन्मात्रप्रमाणक=सामान्यधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वधीमात्रप्रमाणक सामान्याभावकी सिद्धि न होगी—सामान्याभावको सिद्धि करनेवाली जो उक्त धी है वह तो विशेपाभावमेंही सामान्यावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वको ग्रहणकर उपचरितार्थ हो जायगी फिर सामान्याभाव कैसे सिद्ध होगा, सामान्याभावकी सिद्धि होनेपर विशेपाभावकोभी सामान्यधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वके अभावसे, और कादाचित्काभावको—कालावच्छिन्नतया भासमान अभावको सामान्यधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वके अयोगसे सामान्यधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वेन जो विशेप=विशेपाभावकी प्रतीति तादृश प्रतीतिमात्र है शरण जिसकी ऐसा जो प्रागभाव उस प्रागभावकी असिद्धि है, इसरीतिसे ये दोनों विद्वानोंके चित्तमें कुछ विशेपताका आधान नहीं करते हैं—ब्रह्मवादी विद्वान् लोग इन प्रागभाव तथा सामान्याभाव वगेराको तुच्छ समझते हैं अतः इनकी सिद्धि हुई तो क्या और न हुई तो क्या इनकी सिद्ध्यसिद्धिसे ब्रह्मवादियोंके चित्तमें किसीभी प्रकारका चमत्कार विस्मय=आश्चर्य नहीं होता है, इनकी सिद्ध्यसिद्धिसे चमत्कार तो केवल आत्मसंस्कारशून्य अनात्माभिनिवेशी आधुनिक तार्किकम्मन्योंको होता है, तथा उन्होंकी पूछपकड कर चलनेवाले द्वैतिओंको होता हैं। शङ्कते नन्विति । यावद्विशेपाभावोंका निश्चय होनेपरभी 'रूप वायुमें है या नहीं' 'वायुरूपवाला है या नहीं' इत्यादिरूप रूपाभावके संशयसे और निश्चितमें संशयके अयोगसे यावद्विशेपाभावसे भिन्न सामान्याभावकी सिद्धि है, अतः इतनेही रूप हैं इत्याकारक निश्चयदशामें एतादृशसंशयको अननुभूयमानत्व होनेसे तदनिश्चयदशायां=रूपोंकी इयत्ताका जो अनिश्चय तादृश अनिश्चयाधिकरणीभूतकालमेंही विशेपाभावकूटका निश्चय होनेपरभी एतादृश संशय कहना उचित है, फलतः रूपत्व पार्थिव जलीय तैजस जो रूपत्रितय उससे अतिरिक्त जो रूप उसमें वृत्ति होगा इत्याकारिका जो पार्थिवादिरूपत्रितयसे अतिरिक्त रूपकी सम्भावना है उस सम्भावनासे निश्चितरूपोंमेंही रूपं वायुवृत्ति न वा इत्यादि संशय होता है। उक्ताधिकसम्भावनाका जो विरह=अभाव तादृशविरहसे सहकृत—तादृशविरहविशिष्टनिश्चयकोही संशयका प्रतिबन्धक होनेसे, नतुसे लेके यहाँतक शङ्का है। अब समाधान किया जाता है। इति चेन्न; क्यों ? इसरीतिसे प्रतिबन्धककल्पनामें मानका अभाव होनेसे और उक्त सम्भावनाके विरह दशामेंभी एतादृश संशयके देखनेसेभी उक्त कथन युक्त नहीं है ।

ननु—यथा यावद्विशेषाभावेभ्योतिरिक्तः सामान्याभावो रूपस्य संशयकोटिः तथा रूपसामान्यमपि यावद्विशेषेभ्योऽतिरिक्तं संशयकोटिर्नाभ्युपगन्तुं शक्यते। तथाच कथं रूपस्य संशयकोटित्वम्? सर्वरूपाभावनिश्चयात्। यदि तु नीलपीताद्यभावत्वेन निश्चयेऽपि रूपभावत्वेनाऽनिश्चयात् रूपसंशय इति ब्रूषे, तदा किं सामान्याभावेन रूपत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावत्वेन संशयसम्भवात् धर्मिकल्पनातो धर्मकल्पनाया लघुत्वेन यावद्विशेषाभावानामेव रूपत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वकल्पनात् यतो न यत्किञ्चिदभावमादाय घटो नीरूप इतिप्रतीतिप्रसङ्ग इति चेन्न, यावद्विशेषाभावेषु यद्रूपत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वं तत् प्रत्येकं विश्रान्तं व्यासज्यवृत्ति वा। आद्ये यत्किञ्चिद्भावमादाय घटो नीरूप इति प्रतीतिप्रसङ्गः द्वितीये तत्तद्रूपावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वस्याव्यासज्यवृत्तिस्वभावत्वेन तद्व्यतिरिक्तं रूपत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वं व्यासज्यवृत्ति कल्पनीयं तद्वरं रूपत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकएक एवाभावः कल्प्यते, ममैकोऽभावः रुपत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वं चेति वस्तुद्वयं कल्प्यम्, तव तु रूपत्वावच्छिन्न–प्रतियोगिताकत्वं तस्य च व्यासज्यवृत्तित्वेन वहुष्वभावेषु प्रत्येकं सम्वन्धाः इति वहु कल्प्यम्।

शङ्कते नन्विति। जैसे यावद्विशेषाभावोंसे अतिरिक्त जो सामान्याभाव है वह सामान्याभाव रूपकी संशय कोटि है=' वायू रूपवान्नवा ' इत्याकारक रूपका संशय होता है, इस संशयमें एक कोटि रूप स्वयं है और द्वितीय कोटि रूपाभाव रूप है परन्तु वह रूपाभाव विशेष रूपाभावरूप नहीं है, क्योंकि विशेषरूपाभावका वायुमें निश्चय है और जिस धर्मीमें जिस कोटिका निश्चय होता है, उस कोटिका संशय नहीं होता है, रूपसामान्याभाव एक कोटि है, ' एक धर्मीमें भासमान विरुद्ध धर्मोंका नाम कोटि है, जैसेकि प्रकृतमें रूप तथा रूपसामान्याभाव ये दोनों विरुद्ध धर्म एक वायुरूप धर्मीमें भासमान हैं, तैसे यावद्विशेषरूपोंसे अतिरिक्त रूप सामान्यभी संशयकी कोटि अङ्गीकार करनेके लिए शक्य नहीं है, तथाच रूपको संशयकोटित्व कैसे होगा सर्वरूपोंके अभावका निश्चय होनेसे विशेषरूपोंसे अतिरिक्त और कोई सामान्य रूप तो है ही नहीं और सर्व विशेष रूपोंके अभावका निश्चय है, फिर रूपको संशयकोटित्व कैसे होगा। नीलाभावत्वेन पीताभावत्वेन रूपाभावका अनिश्चय होनेसे रूपका संशय होता है, यदि ऐसा कहते हो तव सामान्याभावसे क्या=सामान्याभावको रूपसंशयकी कोटि वनानेकी क्या जरूरत है, रूपत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताक अभावत्वेन संशयका सम्भव होनेसे, इसी अर्थको स्पष्ट करते हैं–धर्मीकी कल्पनासे धर्मकी कल्पनाको लघुत्व होनेसे यावद्विशेषाभावनिष्ठही रूपत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वके कल्पनसे अतः=क्लृप्तयावद्विशेषाभावनिष्ठ रूपत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वके कल्पनसे जिस किस रूपके अभावको लेके ' घटो नीरूपः ' इत्याकारक प्रतीतिकी आपत्ति नहीं, ननुसे यहाँतक पूर्वपक्ष हुआ, अव निषेध करते हैं–इति चेन्न; यावद्विशेषाभावोंमें जो यद्रूपावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्व है, तत्=वह प्रत्येक विशेषाभावमें

विश्रान्त है, या व्यासज्यवृत्ति है, आद्ये=प्रथम पक्ष होनेपर यत्किञ्चिदभावको लेके 'घटो नीरूपः' इत्याकारक प्रतीतिका प्रसङ्ग है, क्योंकि आपके कथनानुसार रूपत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वविशिष्ट वह अभाव भी है ही। द्वितीये=द्वितीय पक्ष होनेपर यावद्विशेषाभावकूटघटकतत्तदभावनिष्ठतत्तद्रूपावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वको अव्यासज्यवृत्ति स्वभावत्व होनेसे तद्व्यतिरिक्तम्=तत्तद्रूपावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वसे भिन्नरूपत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वव्यासज्यवृत्ति कल्पनीय है, तिससे रूपत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताक एकही अभाव कल्पना किया जाता है सो ठीक है, मुझको एक अभाव और रूपत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्व ये दो वस्तु कल्पनीय हैं, और तुमको तो रूपत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्व कल्पना करना पडता है, और तस्य=रूपत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वको व्यासज्यवृत्ति होनेसे बहुष्वाभावेषु प्रत्येकम्=बहुत अभावोंका घटक जो प्रत्येक उस प्रत्येकके साथ भिन्न भिन्न सम्बन्ध कल्पना करने पडते हैं; यहाँपर सम्बन्धोंमें जो बहुत्व बतलाया है उसका अर्थ यह हैकि जो पदार्थ प्रत्येकमें नहीं रहता है उसका समुदायमें रहना असम्भव है, और समवायवत् बहुत पदार्थोंमें एकके सम्बन्धका असम्भव है, अतः पर्याप्तिओंको नाना मानना चाहिए; सम्बन्धिभेदसे समवायका भेद नवीन नैयायिक लोग मानते हैं सो ठीक है, इस रीतिसे बहुत कल्पनीय है।

धर्मिकल्पनातो धर्मकल्पनाया लघुत्वमिति न्यायस्तु कल्पनीयाधिक्यापेक्षः। किञ्च घटद्वये यावद्विशेषाभावसत्त्वेऽपि रूपसामान्याभावबुद्ध्यनुदयात् ऐकाधिकरण्यावच्छेदेनाप्यभावा विशेषणीयाः, तथाचातिगौरवम्। अपि च व्यासज्यवृत्तिधर्मग्रहे यावदाश्रयग्रहस्तद्भेदग्रहश्च हेतुः; अगृहीतेषु भिन्नतया वाऽगृहीतेषु वस्त्रादिषु द्वित्वादिबुद्ध्यनुदयात्, तथाच यावदभावतद्भेदाग्रहे प्रथमत एव नीरूप इति धीर्न स्यात्, व्यासज्यवृत्तिरसामान्यप्रतियोगिताकत्वस्याग्रहणात्। अतः सामान्याभावस्य प्रामाणिकत्वात् कथं तत्पराहतिरिति चेत्

धर्मीकी कल्पनासे धर्मकी कल्पनाका लघुत्व है यह न्याय तो जहाँ कल्पनीयमें आधिक्य हो वहाँ प्रवृत्त होता है, यहाँ तो कल्पनीयमें आधिक्य हमारे पक्षमें नहीं है, इसलिए यहा इसकी प्रवृत्ति नहीं, औरभी कहते हैं किञ्चेति। घटद्वयमें यावद्विशेषाभावोंका सत्त्व होनेपरभी रूपसामान्याभावकी बुद्धिके अनुदयसे एकाधिकरणनिरूपितवृत्तित्वविशिष्टत्वेनही अभाव विशेषणीय हैं=एकाधिकरणवृत्तियावद्विशेषाभावोमें सामान्यधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्व रहता है ऐसा कहना पडेगा, और ऐसा कहनेपर अति गौरव है, अपि च=औरभी कहना है। व्यासज्यवृत्तिधर्मग्रहमें व्यासज्यवृत्तिधर्म जिन आश्रयोमें रहता है उन सम्पूर्ण आश्रयोंका ग्रह=ज्ञान और आश्रयोंके भेदका ज्ञान हेतु है, क्यों? अगृहीत और भिन्नरूपसे अगृहीत जो वस्त्रादिक हैं उन वस्त्रादिकोंमें द्वित्वादिबुद्धिके अनुदयसे फलतः यावदभाव और यावदभावोंका भेद इन दोनोंका ग्रह न होनेपर प्रथमसेही 'नीरूपः' ऐसी धी न होगी व्यासज्यवृत्ति जो सामान्यधर्मावच्छिन्न प्रतियोगिताकत्व उसके अग्रहणसे। अतः सामान्याभावको प्रामाणिकत्व

होनेसे तत्पराहतिः=सामान्याभावका पराकरण कैसे हो सकता है इति=चेत्-ऐसा यदि कहते हो तो।

अत्र ब्रूमः—एवं तर्हि सामान्यप्रकारेण विशेषाभावप्रतीतेर्ज्ञानविशेषप्रागभावो न जानामीतिधियो ज्ञानत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताको न विषय इति सिद्धं नः समीहितम्। नहि प्रागभावोऽपि क्वचित्सामान्याभावोऽस्ति येन तत्प्रतियोगिता सामान्यधर्मेणावच्छिद्येत, विशेषाभावप्रतियोगिता तु तत्तद्घटत्वादिना विशेषेणावच्छिद्यते। नच तेन तेन रूपेण भविष्यद्घटादि ज्ञातुं शक्यम्, तज्जन्मानन्तरं तु तत्तद्रूपेण तज्ज्ञानसंभवेऽपि प्रागभावधीः प्रत्यक्षा न स्यात्; तदानीं प्रागभावासत्त्वात्, प्रत्यक्षस्य विषयजन्यत्वात्। सामान्यप्रकारकज्ञानं च न विशेषाभावज्ञाने हेतुरित्युक्तम्, प्रतियोगितावच्छेदकप्रकारकप्रतियोगिज्ञानस्याभावत्वप्रकारकाभावज्ञाने हेतुत्वात्, तस्यानुमानगम्यत्वेऽपि नजानामीति धियः अपरोक्षायास्तद्विषयत्वायोगात् अव्यभिचारिलिङ्गाद्यभावात्तदनुमानमपि दूरनिरस्तमेव।

यहाँ कहते हैं, ऐसा होनेपर सामान्यधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वेन विशेषाभावकी प्रतीतिके न होनेसे=भवदुक्तप्रकारसे विशेषाभाव सामान्याधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वेन प्रतीत नहीं हो सकता है, अतः 'न जानामि' इत्याकारिका जो धी है उस धीका विषय ज्ञानत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताक ज्ञानविशेषका प्रागभाव नहीं हो सकता है इस रीतिसे सिद्ध हुआ हम लोगोंका अभीष्ट='न जानामि' इत्याकारिका प्रतीति जहाँपर होतीहै वहांपर ज्ञानसामान्याभाव तो है ही नहीं और विशेषाभाव सामान्यधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वेन प्रतीत नहीं हो सकता है यह आपने सिद्धकर दिखलाया है, अतः इस प्रतीतिका विषय अस्मत्सिद्धान्ताभिप्रेत अज्ञानही है यह हम लोगोंका इष्ट सिद्ध हुआ। उक्तार्थका स्पष्टीकरण करते हैं-प्रागभावभी कोई सामान्याभाव नहीं है, जिससे कि प्रागभावकी प्रतियोगिता सामान्यधर्मसे अवच्छिन्न हो और विशेषाभावकी प्रतियोगिता तो तत्तद्घटत्वादिरूप विशेष धर्मसे ही अवच्छिन्न होती है, और तत्तद्घटत्वादिरूपसे आगे होनेवाले जो घटादि हैं वे जाननेके लिए शक्य नहीं; तज्जन्मानन्तरम्=घटादिके जन्मके बाद तत्तद्रूपसे घटादिके ज्ञानका संभव होनेपरभी प्रागभावकी धी प्रत्यक्षात्मक न होगी, क्यों? तदानीम्=घटजन्मके बाद प्रागभावका असत्त्व होनेसे, और प्रत्यक्षको विषयसे जन्य होनेसे। और सामान्यप्रकारकज्ञान विशेषाभावज्ञानमें हेतु नहीं है, यह कहा जा चुका है। प्रतियोगितावच्छेदकप्रकारक जो प्रतियोगिज्ञान उस ज्ञानको अभावत्वप्रकारक अभावज्ञानमें—अभावविषयक प्रत्यक्षज्ञानमें हेतुत्व होनेसे, तस्य=प्रागभावको अनुमानगम्यत्व होनेपरभी 'न जानामि' इत्याकारिका जो अपरोक्ष धी है उस धीके विषयत्वके अयोगसे। और अव्यभिचारी जो लिङ्गादि उन लिङ्गादिके अभावसे तदनुमानम्=प्रागभावका अनुमानभी दूरनिरस्तही है।

ननु—इदं मा भूदितीच्छाविषयतया तत्सिद्धिः; न प्रागभावस्य स्वरूपतोऽसाध्यत्वेन प्रतियोगिजनकविघटनेन तत्सम्बन्धस्येवात्यन्ताभावसम्बन्धस्यापि साध्यत्वात्तेः-

नैवान्यथासिद्धेः । अथ–उत्पन्नस्य द्वितीयक्षणे पुनरुत्पत्त्यभावात्तत्पूर्वक्षणे सामग्र्यभावो वाच्यः; स च प्रागभावाभावादेव, अन्यहेतूनां सत्वादिति–चेन्न; सामयिकात्यन्ताभावेनैवान्यथासिद्धेः उत्पन्नस्यैव स्वोत्पत्तिविरोधित्वाच्च । अपि च सामग्री कार्यसत्त्वे प्रयोजिका, नतु तस्याद्यकालसम्बन्धरूपोत्पत्तावपि । आद्यकालसम्बन्धो हि स्वसमानकालीनपदार्थध्वंसानाधारकालाधारत्वम् । तत्र सामग्री कार्यस्य कालाधारत्वांशमात्रे प्रयोजिका, न तु विशेषणांशेऽपि तस्य तादृग्पदार्थध्वंससामग्रीविरहादेव सिद्धेः । पाकजरूपादिभेदोऽप्यग्निसंयोगभेदात् पूर्वरूपादिध्वंसभेदाद्वा नतु प्रागभावभेदात् प्रतियोगिभेदं विना प्रागभावभेदायोगाच्च । नाप्युपादानत्वव्यवस्था तत्र मानम्, तन्तुत्वादिनैव तत्सिद्धेः ।

शङ्कते नन्विति । 'यह मत हो' इत्याकारिका जो इच्छा है तादृशेच्छाविषयत्वेन तत्सिद्धिः=प्रागभावकी सिद्धि है; न=नहीं है क्यों ? प्रागभावको स्वरूपतः साध्य न होनेसे–प्रागभाव अनादि माना जाता है, अतः स्वरूपतः साध्य न होनेसे, प्रतियोगिजनकका जो विघटन उस विघटनके साथ तत्सम्बन्धस्यैव=प्रागभावके सम्बन्धकी नाईं अत्यन्ताभावके सम्बन्धकोभी साध्य होनेसे तेनैव=अत्यन्ताभावसेही उक्त प्रतीतिकी अन्यथा सिद्धि होनेसे । प्रकारान्तरसे प्रागभावकी सिद्धि बतलाते हैं अथेति । उत्पन्न जो घट है उस घटकी पुनः द्वितीयक्षणमें उत्पत्ति न होनेसे द्वितीयक्षणसे पूर्व जो क्षण है उस क्षणमें सामग्रीका अभाव कहना चाहिए, सच=वह सामग्र्यभाव प्रागभावके अभावसेही है=कारणकूटका नाम सामग्री है कोईभी कारण न हो तो सामग्र्यभाव कहा जाता है, सो यहाँपर पूर्वक्षणमें प्रागभावके अभावसे सामग्र्यभाव मानना चाहिए, क्यों ? अन्य हेतुओंका सत्त्व होनेसे=घटके जनक अन्यकारण तो पूर्वक्षणमें रहतेही हैं इति चेन्न, क्यों ? समयविशेषावच्छिन्न जो अत्यन्ताभाव उस अत्यन्ताभावसेही अन्यथासिद्धि होनेसे=समयविशेषावच्छिन्न अत्यन्ताभावके न होनेसेही द्वितीयक्षणमें उत्पत्तिकी आपत्ति नहीं है फिर स्वतन्त्र प्रागभाव क्यों मानना । और उत्पन्न पदार्थकोही स्वोत्पत्तिका विरोधी होनेसेभी । अपि च=औरभी कहते हैं–सामग्री कार्यके सत्त्वमें प्रयोजिका है, कार्यका आद्यकालके साथ सम्बन्धरूप जो उत्पत्ति है उस उत्पत्तिमेंभी प्रयोजिका नहीं । स्वसमानकालीन जो पदार्थ तादृश पदार्थके ध्वंसका अनाधार जो काल तादृशकालाधारत्वका नाम है आद्यसम्बन्ध, जिसकी उत्पत्ति विवक्षित है, उसे स्वपदसे लेना चाहिए, वहाँ सामग्री कार्यके कालाधारत्व अंशमें प्रयोजिका है, स्वसमानकालीनपदार्थध्वंसानाधारत्वरूप विशेषणांशमेंभी नहीं तस्य=उक्त विशेषणको तादृक्पदार्थ=स्वसमानकालीन पदार्थके ध्वंसकी जो सामग्री उस सामग्रीके विरहसेही सिद्ध होनेसे । पृथिवीमें जो पाकज रूपरसादि हैं उनका परस्पर भेद प्रागभावके विना नहीं हो सकता है पाकादिरूपकारणोंको समान होनेसे वहाँ कहते हैं पाकजेति । पाकसे जायमान जो रूपादि उन रूपादिका भेदभी अग्निसंयोगके भेदसे अथवा पूर्व-

रूपादिका जो ध्वंस है, उस ध्वंसके भेदसे है, प्रागभावके भेदसे नहीं, क्यों ? प्रतियोगीके भेदविना प्रागभावके भेदका अयोग होनेसे। जिसमें जिसका प्रागभाव होता है उससे वह उत्पन्न होता है यह जो उपादानकी व्यवस्था है वह तत्र=प्रागभावमें प्रमाण है न=नहीं है क्यों ? तन्तुत्वादिरूपसेही कारणव्यवस्थाकी सिद्धिसे=तन्तुत्वादिविशेषरूपोंसे उपादानत्वकी व्यवस्था हो सकती है प्रागभाव माननेकी आवश्यकता नहीं।

अन्यथा प्रागभावस्य सम्बन्धविशेषोऽपि कुतः सिध्येत ? नच तदत्यन्ताभाववतः कथं तदुपादानत्वम् ? सम्बन्धान्तरेण त्वयाप्यभ्युपगमात्समयावच्छेदतदनवच्छेदाभ्यां वैलक्षण्याभ्युपगमाच्चेत्यलमतिविस्तरेण। एवं सामान्याभावोऽपि गौरवपराहत एव। तथाहि—सामान्यावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वं अभावः तस्य च तदधिकरणसम्बन्धा इति त्रयं वा कल्प्यताम् ? क्लृप्ततत्तदधिकरणसम्बन्धानामेकाधिकरणवृत्तित्वावच्छेदेन सिद्धानामभावानां सामान्यावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वम्,—तस्य च व्यासज्यवृत्तित्वमिति द्वयं वा कल्प्यताम्। तत्रोत्तरः पक्ष एव प्रेक्षावद्भ्यो रोचते; आद्यक्षणे 'घटो नीरूप' इति प्रतीतेः सर्वसिद्धत्वात्, यावदाश्रयतद्भेदग्रहस्य द्वित्वादिग्रहे हेतुत्वेऽपि उक्तप्रतियोगिताग्रहे हेतुत्वानभ्युपगमात्, कार्योन्नेयधर्माणां यथाकार्यमुन्नयनात्।

अन्यथा प्रागभावका सम्बन्धी विशेषभी किससे सिद्ध होगा, घटात्यन्ताभाववाला जो पदार्थ है. उसको घटका उपादानत्व कैसे है ? नच=ऐसी शङ्का नहीं करना, सम्बन्धभेदसे—जिस सम्बन्धसे जिस अधिकरणमें जो प्रतियोगी रहता है उसी प्रतियोगीके उसी अधिकरणमें अन्य सम्बन्धसे अत्यन्ताभावका तुमसेभी अभ्युपगम होनेसे, समयावच्छेदसे और समयानवच्छेदसे वैलक्षण्यके अभ्युपगमसेभी, प्रागभावस्थानापन्न अत्यन्ताभाव समयविशेषावच्छिन्न है, और दूसरा घटात्यन्ताभाव समय विशेषसे अनवच्छिन्न है, इस रीतिसे अब प्रागभाव जैसे साधारण पदार्थके खण्डनमें अतिविस्तारकी जरूरत नहीं है। इसी रीतिसे सामान्यभावभी गौरवसे पराहतही है, तथाहि—सामान्यावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्व और अभाव तस्य च=और उस अभावका तिस तिस अधिकरणके साथ सम्बन्ध ये तीन कल्पनीय हैं, यहाँपर तत्तदधिकरणसम्बन्धसमुदायत्वेन सम्बन्धोंका एकत्व है, ऐसा मान तीनकी कल्पना बतलाई गई है, या क्लृप्त है तिस तिस अधिकरणके साथ सम्बन्ध जिन्होंका और एकाधिकरणवृत्तित्वावच्छेदेन सिद्ध एवम्भूत जो अभाव हैं उन अभावोंका सामान्यधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्व और तस्य=सामान्यधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वको व्यासज्यवृत्तित्व ये दो कल्पनीय हैं तत्र=इन दोनोंमें उत्तरपक्ष प्रेक्षावान लोगोंको रुचिकर मालूम देता है=समवाय प्रत्यधिकरणमें विशिष्ट प्रमाका जनक है अतः प्रत्यधिकरण भिन्न है—अधिकरणभेदसे भिन्न है और पर्याप्ति प्रत्यधिकरणमें विशिष्टबुद्धिकी जनिका नहीं है अतः प्रत्यधिकरण भिन्न नहीं हैं फलतः प्रत्येकसे अतिरिक्त जो समुदाय तादृश समुदायानुयोगिक पर्याप्तिको प्रत्येकानुयोगित्व होने-

परभी समुदितत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वकी सर्वविशेषाभावोंमें एकही पर्याप्ति है और सामान्याभावकी तो तिस तिस अधिकरणमें विशेषणतायें भिन्न भिन्न कल्पनी पडेंगी इस लिए उत्तर पक्षही प्रेक्षावत्पुरुषोंको रुचिकर प्रतीत होता है। और प्रथम क्षणमें 'घटो नीरूपः' इस प्रतीतिको सर्वसिद्ध होनेसे यावदाश्रय और यावदाश्रयोंका भेद इन दोनोंके ग्रहको द्वित्वादिके ग्रहमें हेतुता होनेपरभी सामान्यावच्छिन्न प्रतियोगिताके ग्रहमें अनभ्युपगम होनेसे; कार्यसे उन्नेय धर्मोंका यथाकार्य उन्नयन होनेसे।

न चैवं—अतिलाघवात् क्लृप्तानामधिकरणानामेवाभावधीहेतुत्वमस्तु किं विशेषाभावैरपीति–वाच्यम्, अस्माकमिष्टापत्तेः घटाभावो नेत्यादावतिरिक्ताभावस्य त्वयाप्यनभ्युपगमेन भावस्याप्यभावत्वप्रकारकप्रमाहेतुत्वस्योभयवादिसिद्धत्वात्। यदपि कश्चिदाह प्रतियोगितावच्छेदकभेदस्याभावभेदनियामकत्वाद्विशेषाभावान्यसामान्याभावसिद्धिः। अन्यथा अभावभेदासिद्धेः प्रतियोगिभेदस्याभावभेदकत्वे एकघटप्रतियोगिकस्य प्रागभावादिचतुष्टयस्याभेदप्रसङ्गात् अवच्छेदकभेदात्तु तद्भेदे न कोऽपिदोषः क्वचित्तादात्म्यस्य क्वचित्संसर्गस्य क्वचित्पूर्वापरकालीनतद्घटत्वादेश्च भेदात्–इति तन्न, संसर्गप्रतियोगिविशेषणसाधारणस्यैकस्यावच्छेदकत्वस्य दुर्वचत्वात्, तादात्म्यादेश्च प्रतियोगितावच्छेदकत्वे मानाभावात् भेदसिद्धिस्तु भाववदभावस्यापि विरुद्धधर्माध्यासादेव, अवच्छेदकभेदस्याभावभेदनियामकत्वं लिङ्गविधया तज्ज्ञापकत्वमेव वाच्यम्; नतु तज्जनकत्वम् तच्च न विपक्षबाधकतर्काभावेन सामान्याधिकरणतर्काभावेन च व्याप्तेरेवासिद्धेः।

एवम्=ऐसा है तो अतिलाघवसे क्लृप्त जो अभावके अधिकरण हैं उन अधिकरणोंकोही अभावधीका हेतुत्व रहो विशेषाभावोंसेभी क्या प्रयोजन है=आप लाघवके बलसे विशेषाभावकूटसे अतिरिक्त सामान्याभाव नहीं मानते हैं तब विशेषाभावोंकोभी अधिकरणरूपही मान लेना चाहिए तो औरभी बडा लाघव है इति न च वाच्यम्=ऐसी शङ्का नहीं करना क्यों? हम लोगोंको इष्टकी आपत्ति होनेसे=अभावोंका यदि अधिकरणात्मकत्व सिद्ध होता हो तो हमको इष्ट ही है घटाभावो न='घटाभावो नास्ति' इत्यादिप्रतीतिस्थलमें प्रथमाभावके प्रतियोगीसे अतिरिक्त अभावाभावका तुमसेभी अनभ्युपगम होनेसे, भावस्यापि=प्रथमाभावके प्रतियोगिस्वरूप भावकोभी अभावत्वप्रकारक प्रमाका हेतुत्व उभयवादिसिद्ध होनेसे='घटाभावाभावः' इत्याकारिका प्रतीति घटको विषय करती हुई अभावत्वप्रकारक है तथा च अभावत्वप्रकारप्रमाके प्रति भावरूप घट हेतु है इसी रीतिसे सर्वत्र अधिकरणोंकोभी अभावत्वप्रकारकधीविषयत्व रह सकता है अतः अधिकरणसे अतिरिक्त यदि अभावको न मानों तो कोई अनुपपत्ति नहीं। प्रतियोगितावच्छेदकका जो भेद है उस भेदको अभावके भेदका नियामकत्व होनेसे विशेषाभावसे भिन्न सामान्याभावकी सिद्धि है=विशेषाभावीयप्रतियोगितावच्छेदक तद्घटत्वादि हैं और सामान्याभावप्रतियोगितावच्छेदक घटत्वादि हैं. अतः इन अभावोंका भेद मानना चाहिए, अन्यथा=प्रतियोगितावच्छेदकके

भेदसे अभावका भेद न माननेपर अभावके भेदकी सिद्धि न होगी—अभावोंका परस्पर भेद सिद्ध न होगा। प्रतियोगिभेदको अभावका भेदकत्व होनेपर एकघटप्रतियोगिक जो प्रागभावादिरूपाभाव चतुष्टय है उसके अभेदका प्रसङ्ग है अतः प्रतियोगीका भेद अभावका भेदक नहीं बन सकता है और अवच्छेदकके भेदसे तद्भेदे=तेषां भेदः तद्भेदः तस्मिन् तद्भेदे—अभावोंका भेद होनेपर कोई दोष नहीं है क्यों ? क्वचित्=अन्योन्याभावस्थलमें तादात्म्यका क्वचित्=अत्यन्ताभावस्थलमें संयोगादिरूप संसर्गका क्वचित्=प्रागभाव तथा प्रध्वंसस्थलमें पूर्वकालीन तद्व्यक्तित्व=तद्व्यक्तित्व, अपरकालीन तद्व्यक्तित्वका भेद होनेसे, इति यदपि कश्चिदाह—ऐसा जो कोई कहता है तन्न=वह ठीक नहीं क्यों ? संयोगादिरूपसंसर्ग, घटादिरूप प्रतियोगिमें घटत्वादिरूप विशेषण इन दोनोंमें साधारण एक अवच्छेदकत्वको दुर्वच होनेसे, न्यूनवृत्ति या अधिकवृत्ति विशेषणको अवच्छेदकत्व नहीं होता है और संसर्गको तो न्यूनाधिकवृत्ति होनेपरभी अवच्छेदकत्व होता है इस वैलक्षण्यसे उभयनिष्ठ अवच्छेदकत्वोंका भेद है यह भाव है। और तादात्म्यादिके प्रतियोगितावच्छेदकत्वमें मानके अभावसे, और जैसे भावपदार्थोंके परस्पर भेदकी सिद्धि विरुद्ध धर्मके संसर्गसे है तैसे अभावोंके भी भेदकी सिद्धि परस्पर विरुद्ध धर्मके संसर्गसे है। और अवच्छेदकभेदको जो अभावभेदका नियामकत्व है वह लिङ्गविधया अभावके भेदका ज्ञापकत्वरूपही होगा अवच्छेदकभेद अभावके भेदको लिङ्गविधया सिद्ध करेगा अभावभेदका जनकत्व रूप नियामकत्वतो अवच्छेदक भेदमें नहीं रह सकता है अन्योन्याभावरूप भेदको उत्पत्ति वाला न होनेसे। तच्च न=वह ज्ञापकत्वरूप नियामकत्वभी तो नहीं बन सकता है क्यों ? विपक्षमें बाधक जो तर्क उस तर्कके अभावसे और सामानाधिकरण्यके अभावसे व्याप्तिकीही असिद्धिसे=विपक्षमें बाधक तर्क और सामानाधिकरण्य इन दोनोंके न होनेसे अवच्छेदक भेदमें अभावभेदनिरूपित व्याप्तिही नहीं है फिर ज्ञापकत्व कैसे हो सकता है।

अतएव तदितरधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वं तदवच्छिन्नप्रतियोगिताकान्यत्वव्याप्यमित्यपि—निरस्तम्। एवञ्चावृत्तीनां गगनादीनां समनियतानां वाऽन्येषां धर्माणामेक एवात्यन्ताभावः युगपद्विनष्टानामुत्पन्नानां वा समानदेशानामसति बाधके एक एव ध्वंसः प्रागभावो वा व्यधिकरणधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकोऽपि चेदभावः प्रामाणिकः तदा तस्यैकस्यैव प्रतियोगिता, सर्वैरेव व्यधिकरणैः सर्वैश्च समानाधिकरणैः सम्बन्धैरेवावच्छिद्यन्ताम् आकाशाभाव एव वा तथास्ताम्; एकेनैवोपपत्तावभावभेदकल्पने मानाभावात्। नच एवमेक एव जगतीतले भवत्वभावः स एव तत्तदवच्छेदकदेशकालादिभेदेन तत्तद्व्यवहारभेदं जनयिष्यतीति किमधिककल्पनयेति—वाच्यम् उपपद्यते चेदस्तु प्रकृते तुन बाधकं किञ्चित् अतएव वैशेषिकाणां स्वाभ्युपगतकालपदार्थस्यैव सर्वव्यवहारहेतुत्वोपपत्तौ न पदार्थान्तरसिद्धिरित्यद्वैतवादिनो वदन्ति। तदेवं अहमज्ञ इति ज्ञानस्य अभावज्ञानसामग्रीविलक्षणसामग्रीजन्यत्वादभावविलक्षणविषयत्वं सिद्धम्।

अतएव=व्याप्ति न होनेसेही तदितरधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्व=घटत्वसे इतर जो तद्व्यक्तित्वादिरूपधर्म तादृशधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्व तदवच्छिन्न=घटत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकान्यत्वका व्याप्य है यह भी निरस्त हुआ=तदितरधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्व विशेषाभावोंमें रहेगा और तदवच्छिन्नप्रतियोगिताकत्व सामान्याभावमें रहेगा अतः व्याप्ति नहीं बन सकती है, इस रीतिसे यहाँपर यह भी समझलेना चाहिए—अवृत्ति जो गगनादिक हैं उनका एकही अत्यन्ताभाव है और समनियत जो अन्य धर्म हैं उन्होंका एकही अत्यन्ताभाव है, परस्पर व्याप्य होके जो परस्पर व्यापक हों उन्हें समनियत कहा जाता है, जैसे गन्ध और पृथिवीत्व ये दोनों समनियत हैं, जलत्व और स्नेह ये दोनों भी समनियत हैं ज्ञेयत्व अभिधेयत्वादिभी समनियत हैं, इनके अभावको भिन्न भिन्न माननेकी आवश्यकता नहीं। असति बाधके=बाधकके न होनेपर समान देशमें और एककालमें साथ साथ उत्पन्न होनेवाले पदार्थोंका एकही प्रागभाव है, और उक्तविध विनष्ट पदार्थोंका ध्वंसभी एकही है—समानदेशमें एककालमें साथ साथ विनष्ट होनेवाले पदार्थोंका ध्वंसभी एकही है, 'असति बाधके' कहनेका मतलब यह है कि एकही कालमें और एकही वृक्षादिरूप देशमें अग्रावच्छेदेन तथा मूलावच्छेदेन होनेवाले नाश=ध्वंस तथा प्रागभाव भिन्न भिन्न हैं क्योंकि इन्होंका ज्ञान भिन्नावच्छेदेनही होता है। और व्यधिकरणधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताक अभावभी यदि प्रामाणिक हो तो तिस एक अभावकीही प्रतियोगितामें सर्व व्यधिकरण और सर्व समानाधिकरण जो सम्बन्ध हैं उन सम्बन्धोंसेही अवच्छिन्न हो अथवा एक आकाशात्यन्ताभावही उक्तप्रतियोगिताक रहो, एक आकाशात्यन्ताभावसेही सर्व अभावव्यवहारकी उपपत्ति होनेपर अभावके भेद कल्पनमें मानका अभाव है=एक आकाशात्यन्ताभावमेंही तत्तद्धर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वके और तत्तत्सम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वके कल्पनसे सर्व अभावीय व्यवहार बन सकता है अतः बहुत अभावोंका मानना निरुपयोगी है अर्थात् एकही अधिकरणमें व्यधिकरणधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताक बहुत अभाव नहीं मानने चाहिए एवम्=ऐसा हो तो भूतलमें एकही अभाव रहो वही एक तिस तिस अभावके अवच्छेदक जो देशकालादि उन देशकालादिके भेदसे तिस तिस अभावसे युक्त व्यवहारविशेषको उत्पन्न करेगा अतः अधिकके कल्पनाका क्या प्रयोजन है इति न च वाच्यम्=ऐसी शङ्का नहीं करना क्योंकि यदि एक अभावही युक्तियुक्त हो तो एकही रहो हम इस विषयमें विरोध नहीं करते हैं प्रस्तुत विषयमें कोई बाधक नहीं है। अतएव=एक पदार्थसे व्यवहारके उपपन्न होनेपर अधिकके माननेकी आवश्यकता न होनेसेही वैशेषिकोंसे अभ्युपगत जो कालपदार्थ है उस काल पदार्थकोही सर्वव्यवहारकी हेतुताकी उपपत्ति होनेपर वैशेषिकोंके मतमें अन्य पदार्थोंकी सिद्धि नहीं है—तात्विकत्व नहीं है=कालही चिद्रूप रहो उससे अन्य सर्व पदार्थोंको चिद्रूपकालसे भास्यत्व होनेसे मिथ्यात्व है शुक्तिरूप्यकी नाईं ऐसा वेदान्ती लोग कहते हैं; सो इस रीतिसे 'अहमज्ञः' इत्याकारक जो ज्ञान है उस ज्ञानको अभावज्ञानकी जो सामग्री उस सामग्रीसे विलक्षण जो सामग्री तादृश सामग्रीसे जन्य होनेसे अभावविलक्षणविषयत्व सिद्ध हुआ।

'एवम्' त्वदुक्तमर्थं न जानामीति प्रत्यक्षस्यापि । ननु—साक्षात् त्वदुक्तार्थविषयं प्रमाणज्ञानं मयि नास्तीत्येतद्विषयकमुदाहृतज्ञानम्, तच्च न साक्षादर्थविषयं, प्रमाणज्ञानावच्छेदकतयार्थस्य भानात्, अतो न व्याघात इति—चेन्न; साक्षात्त्वदुक्तार्थमवेत्य हि तदभावो ग्राह्यः । तज्ज्ञानं च न साक्षिणा स्वस्मिंस्तादृक्प्रमाणज्ञानाभावात्, अन्यनिष्ठं तु शब्दादिना ग्राह्यम् । शब्दादिश्च त्वदुक्तार्थं बोधयन्नेव तद्विषयत्वं ज्ञाने बोधयेत् । तथाच प्रथमतस्त्वदुक्तार्थविषयकं साक्षादेव ज्ञानमागतमिति तन्निषेधे न कुतो व्याघातः? अत एव विशेषस्य स्वरूपतो ज्ञानेऽपि विशेषप्रकारकज्ञानाभावो न व्याहत—इत्यपास्तम्, करतलामलकज्ञाने स्वविषयकव्यावर्त्तकधर्मविषयत्वम् प्रसिद्धमिह निषिध्यते इत्यपि न त्वदुक्तत्वस्यापि मदुक्ताद्यावर्तकत्वेन सामान्यतो व्यावर्त्तकधर्मविषयत्वस्य निषेद्धुमशक्यत्वात् ।

एवम्=इसरीतिसे 'त्वदुक्तमर्थं न जानामि' इस प्रत्यक्षकोभी अभावविलक्षणविषयत्व है । शङ्कते नन्विति 'त्वदुक्तमर्थं न जानामि' सिद्धान्तमें इसका अर्थ ऐसा होता है त्वद्वाक्यजन्यज्ञानविषयविषयक—अज्ञानवाला मैं हूं । और जो लोग अज्ञान नामक स्वतन्त्रपदार्थ नहीं मानते हैं उनकी रीतिसे यह अर्थ होता है कि त्वद्वाक्यजन्यज्ञानविषयविषयकज्ञानाभाववाला मैं हूं इस अर्थमें व्याघात है क्योंकि जब त्वद्वाक्यजन्यज्ञानविषयत्व है तब तादृशविषयत्वविशिष्टविषयविषयक ज्ञानका अभाव कैसे रहसकता है, ऐसी स्थिति होनेपर द्वैती कहता है, साक्षात् त्वदुक्तार्थविषयक प्रमाणज्ञान मुझमें नहीं है एतादृश अर्थको विषयकरनेवाला उदाहृतज्ञान होता है और वह ज्ञान साक्षात् अर्थविषयक नहीं है क्यों ? प्रमाणज्ञानमें अवच्छेदकविधया अर्थका भान होनेसे अतः व्याघात नहीं=यदि यह ज्ञान अर्थविषयक होता तो अवश्यही व्याघात होता क्योंकि प्रमाणज्ञानप्रतियोगिक अभावको विषय करनेवाला यह ज्ञानभी प्रमाणत्वेन ही अभिमत है यदि साक्षात् सम्बन्धसे इस प्रमात्मक ज्ञानकी विषयता अर्थमें होगी तो अर्थमें प्रमाणज्ञानका अभाव रह न सकेगा अतः व्याघात होगा परन्तु ऐसा है ही नहीं अतः व्याघात नहीं इतिचेन्न; क्योंकि साक्षात् त्वदुक्तार्थको ज्ञात करकेही—साक्षात् त्वदुक्तार्थविषयक प्रमाण ज्ञानके बादही तदभावः= प्रमाणज्ञानाभाव ग्राह्य है, और वह ज्ञान साक्षीसे नहीं होता है, स्वमें तादृश प्रमाणज्ञानका अभाव होनेसे और अन्यनिष्ठ शब्दादिसे ग्राह्य है और शब्दादिक तो त्वदुक्तका बोधकरते हुएही ज्ञानमें त्वदुक्तविषयत्वको बोधन करेंगे, फलतः निषेधसे पूर्वही त्वदुक्तार्थविषयक साक्षात्ही ज्ञान आगया अतः उसके निषेधमें व्याघात क्यों न होगा=त्वदुक्तार्थं न जानामि यह अभावज्ञान साक्षात् त्वदुक्तार्थविषयक प्रमाण ज्ञानके अभावको विषय करता है अतः इसका प्रतियोगी है साक्षात् त्वदुक्तार्थविषयक प्रमाणज्ञान, और प्रतियोगीके ज्ञानकी अभावज्ञानमें हेतुता होती है अतः उक्त निषेधज्ञानसे पूर्व साक्षात्त्वदुक्तार्थविषयक प्रमाणज्ञानका ज्ञान चाहिए और स्वमें उक्तविध प्रतियोगी रूप ज्ञानके न रहनेसे विद्यमानावभासक

साक्षीरूप तो प्रतियोगीका ज्ञान हो नहीं सकता और अन्यनिष्ठ तादृश प्रतियोगीका ज्ञान शब्दसे स्वमें उत्पन्न होगा और शब्द अवान्तर-वाक्यार्थबोधको उत्पन्न करता हुआही महा-वाक्यार्थ बोधको उत्पन्न करता है, तथा च 'साक्षादुक्तार्थविषयं प्रमाणज्ञानं मयि नास्ति' इस अभावज्ञानको अपेक्षित जो साक्षात्त्वदुक्तार्थविषयक प्रमाण ज्ञान उसको उत्पन्न करने-वाला शब्द 'अर्थः त्वदुक्तः' इत्याकारक अवान्तर वाक्यार्थको उत्पन्न करकेही उक्तज्ञान उत्पन्न करेगा फलतः निषेधज्ञानसे पूर्व त्वदुक्तार्थविषयक साक्षात् ज्ञान है ही फिर व्याघात क्यों न होगा। अत एव=जिस रूपसे पदार्थका निषेध करना है उस रूपसे पदार्थज्ञानको आवश्यक होनेसे विशेषका स्वरूपसे ज्ञान होनेपरभी विशेषप्रकारकज्ञानका अभाव व्याहत नहीं है यह भी खण्डित हुआ करतलमें रक्खा जो आमलक तादृश-आमलकविषयज्ञानमें स्वाविषयसे स्वविषयके व्यावर्त्तक जो पदार्थधर्म तादृशधर्मविषयकत्व प्रसिद्ध है वह यहाँपर निषिद्ध होता है इत्यपि न=यह भी कथन ठीक नहीं क्यों ? त्वदुक्तत्वकोभी मदुक्तसे व्याव-र्त्तकत्व होनेसे सामान्यतः व्यावर्त्तक धर्मविषयत्वको निषेध करनेके लिए अशक्य होनेसे।

ननु—अवच्छेदकतया विशेषज्ञाने जातेऽपि न व्याहतिः तथाहि—विशेषज्ञाना-भावस्त्वदुक्तार्थविषयकज्ञानाभावो वात्रन प्रतीयते, किन्तु त्वदुक्तार्थविशेष्यकविशेषप्रका-रकज्ञानाभावः,—तत्र च त्वदुक्तार्थविशेष्यकविशेषप्रकारकज्ञानत्वेन प्रतियोगिज्ञानेऽपि तादृक्प्रकारकतद्विशेष्यकज्ञानाभावसंभवः अस्य ज्ञानस्य ज्ञाने विशेष्ये विशेषप्रकारकत्व-प्रकारकत्वात्, यत्रापि त्वदुक्तविशेषं न जानामीत्यभिलापः तत्राप्येवमेव व्याहत्यभावः कथंचिदुन्नेयः । नच—यत्रोक्तप्रतियोग्यप्रसिद्धिः तत्र कथमभावप्रतीतिरिति—वाच्यम्; समवेतवाच्यत्वं नास्तीत्यत्रेव विशेष्ये विशेषणाभावविषयत्वेन व्यधिकरणधर्मावच्छिन्न-प्रतियोगिताकाभावविषयत्वेन वोपपत्तिरिति—चेन्न अनुभवविरोधात्, विशेषज्ञानाभावस्य त्वदुक्तार्थज्ञानाभावस्य वाऽनभ्युपगमे तद्विषयज्ञानसत्त्वेन तद्व्यवहारापत्तेश्च न चैवं दृश्यते। स्वतः प्रामाण्यमते तु प्रकारकत्वे तद्विशेष्यकत्वे च गृह्यमाणे तद्वत्त्वग्रहणस्यावश्यावश्यकतया तदंशे तत्प्रकारतद्विशेष्यकत्वस्य तादृशप्रतियोगिज्ञाने संभवात् स्पष्ट एव व्याघातः भावरूपाज्ञानपक्षे तु सर्वस्यापि साक्षिवेद्यतया न व्याघात इत्युक्तम्। तदेवं त्वदुक्तमर्थं न जानामीति प्रत्यक्षं भावरूपाज्ञानविषयमिति सिद्धम् ।

शङ्कते नन्विति । अवच्छेदकतया विशेषज्ञान होनेपरभी व्याहति नहीं है तथाहि—विशेष-ज्ञानाभाव या त्वदुक्तार्थविषयक विशेषज्ञानाभाव यहाँपर नहीं प्रतीत होता है; किन्तु त्वदुक्तार्थ-विशेष्यकविशेषप्रकारक जो ज्ञान है उस ज्ञानका अभाव प्रतीत होता है, तत्र च= उक्त ज्ञाना-भावस्थलमें त्वदुक्तार्थविशेष्यकविशेषप्रकारकज्ञानत्वेन प्रतियोगीका ज्ञान होनेपरभी तादृशप्रका-रकतद्विशेष्यक=विशेषप्रकारक त्वदुक्तार्थविशेष्यक जो ज्ञान उस ज्ञानके अभावका सम्भव है, इसी अर्थको स्पष्टकरते हैं अस्य ज्ञानस्य=उक्त प्रतियोगिज्ञानको, ज्ञाने विशेष्ये=ज्ञानविशेष्यक

होनेपर विशेषप्रकारत्वको अप्रकारत्व होनेसे, भावार्थ यह है कि त्वदुक्तार्थं न जानामि इत्याकारिका जो प्रतीति होती है, उस प्रतीतिका विषय त्वदुक्तार्थविशेष्यकविशेषप्रकारकज्ञानका अभाव है, और इस प्रतीतिको अपेक्षित जो प्रतियोगिज्ञान है वह त्वदुक्तार्थविशेष्यकविशेषप्रकारक ज्ञानका ज्ञान रूप है फलतः प्रतियोगिज्ञान त्वदुक्तार्थविशेष्यक–विशेषप्रकारकज्ञान-विशेष्यकत्वदुक्तार्थविशेष्यकविशेषप्रकारकज्ञानत्वप्रकारक ज्ञान है–तथाच इस ज्ञानको त्वदुक्तार्थ-विशेष्यकविशेषप्रकारकज्ञानत्वप्रकारक ज्ञान होनेसे विशेषप्रकारकत्वाप्रकारकत्व है अर्थात् प्रतियोगिज्ञानमें विशेषप्रकारकत्व नहीं है तथा च जहाँपर उक्तविध प्रतियोगिका ज्ञान है वहाँपरभी त्वदुक्तार्थविशेष्यकविशेषप्रकारक ज्ञानका अभाव रह सकता है और उस अभावको विषय करती हुई 'त्वदुक्तमर्थं न जानामि' इत्याकारिका प्रतीति भावरूप अज्ञानके माने विनाभी उपपन्न हो सकती है। और जहाँपर त्वदुक्त विशेषको नहीं जानता हूँ। ऐसा अभिलाप होता है वहाँभी उक्त प्रकारसेही व्याहतिका अभाव उन्नेय है=वहाँपरभी जिस ज्ञानका अभाव उक्त प्रतीतिमें विषय होता है उस ज्ञानमें और अभावावगाहि ज्ञानको अपेक्षित जो ज्ञानरूप प्रतियोगिका ज्ञान जिसे कि ज्ञानज्ञान कह सकते हैं उस ज्ञानमें भिन्न प्रकारकत्व है। यत्र=जहाँपर उक्त प्रतियोगीकी अप्रसिद्धि है वहाँपर कैसे अभावकी प्रतीति होगी इति न च वाच्यम्, क्यों? समवेतवाच्यत्वम् नास्ति यहाँकी तरह विशेष्यमें विशेषणाभाव-विषयत्वेन उपपत्ति होनेसे, दृष्टान्तमें जैसे 'वाच्यत्वस्य समवायो नास्ति' इसरीतिसे विशेष्यमें विशेषणाभाव प्रतीत होता है वैसे प्रकृतमें भी त्वदुक्तार्थज्ञानमें विशेषप्रकारकत्वका अभाव विशेषप्रकारक ज्ञानमें त्वदुक्तार्थविषयकत्वका अभाव प्रतीत होता है तादृशभावविषयत्वेन या व्यधिकरण–धर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताक जो अभाव है तादृश–अभावविषयत्वेन उपपत्ति होनेसे इति चेन्न; क्यों अनुभवविरोधात्=त्वदुक्त जो अर्थविशेष तादृश अर्थविशेषसे विशेषित जो ज्ञान तादृश ज्ञानविरोधित्वका जो अनुभव होता है उसके अपलापकी आपत्तिसे। और विशेषज्ञानाभावका या त्वदुक्तार्थ-ज्ञानाभावका 'त्वदुक्तार्थं न जानामि' इत्याकारकज्ञानकालमें अभ्युपगम न होनेपर तद्विषयकज्ञानके सत्त्वसे उसके व्यवहारकी आपत्तिसेभी तुम्हारा कथन असङ्गत है। इसरीतिसे देखा तो नहीं जाता है अर्थात् उक्त ज्ञानाभावको उक्तस्थलमें न माननेसे प्रतियोगिका ज्ञान होनेसेही आपके मतमें उक्त अनुभव अनुपपन्न है और हमारे मतमें तो अज्ञानविषयकत्वेन सूपपन्न है। और स्वतः प्रामाण्य मतमें तो तत्प्रकारक और तद्विशेष्यकत्वके गृह्यमाण होनेपर तदंशे=त्वदुक्तार्थांशमें तद्वत्वग्रहणस्य=विशेषप्रकारकत्व ग्रहको आवश्यक होनेसे तत्प्रकारक=विशेषप्रकारकत्वत्वदुक्तार्थ-विशेष्यकत्वका तादृश= अभावज्ञानकारणीभूत प्रतियोगिज्ञानमें संभव होनेसे स्पष्टही व्याघात है, और भावरूपाज्ञानपक्षमें तो सर्वको साक्षिवेद्य होनेसे व्याघात नहीं है यह कहा है। सो इसरीतिसे 'त्वदुक्तमर्थं न जानामि' यह प्रत्यक्ष भावरूपाज्ञानविषयक है यह सिद्ध हुआ।

एवमेतावन्तं कालं न किञ्चिदवेदिषम् इति परामर्शसिद्धं सौषुप्तं प्रत्यक्षमपि भावरूपाज्ञानविषयमेव। ननु–परामर्शः किमनुमानं किंवा स्मरणम्। आद्ये ज्ञानाभाव

एवानुमीयात् किंभावरूपाज्ञानेन? तथाहि संप्रतिपन्नोदयास्तमयकालवद्विवादपदयोरप्युदयास्तमयोरन्तरालकालमनुमाय तत्कालमहं ज्ञानाभाववान् अवस्थाविशेषवत्त्वात् ज्ञानसामग्रीविरहकत्वात् तुल्ययोगक्षेम आत्मादौ स्मर्यमाणेऽपि तद्वत्तया नियमेनास्मर्यमाणत्वाद्वेति प्रयोगसम्भवात् । द्वितीये तु नास्त्युपपत्तिः संस्कारासंभवात् विनश्यदेव हि ज्ञानं संस्कारं जनयति विना व्यापारं व्यवहितकार्यजननाक्षमत्वात्, अविनश्यता तु तेन स्वयमेव तत्कार्यस्य जनयितुं शक्यत्वात् किमिति संस्कारो जन्येत? नहि संस्कारोऽपि प्रत्यक्षः येन कार्यान्यथानुपपत्तिमन्तरेणापि अभ्युपेयते । सौपुप्तं चानाद्यज्ञानोपरक्तं साक्षिचैतन्यरूपं ज्ञानं स्वतो वा उपाधितो वा न विनश्यतीति संस्कारं कथं जनयेत् अस्मर्यमाणं वा कथं प्रमाणत्वेनोदाह्रियेतेति—चेन्न;

एवं=इसी प्रकारसे 'इतने कालपर्यन्त मैने कुछ नहीं जाना' इत्याकारक जो सुप्तोत्थित पुरुषका परामर्श है उस परामर्शसे सिद्ध जो सौपुप्त=सुपुप्त्यवस्थामें होनेवाला प्रत्यक्ष वह प्रत्यक्षभी भावरूपाज्ञानविषयक ही है। शङ्कते नन्विति । आप जिसको परामर्श कहते हैं वह क्या अनुमानरूप है या स्मरणरूप है, आद्ये=परामर्श अनुमानरूप है इस पक्षमें ज्ञानाभावकीही अनुमिति रहो भावरूपाज्ञानसे क्या प्रयोजन है? तथाहि ज्ञानाभावके अनुमानका प्रकार दिखलाया जाता है, सम्प्रपतिपन्न जो उदयास्तमयकाल उन उदयास्तमयकालोंकी तरह विवादपद उदयास्तमयकालोंमें भी अन्तरालकालका अनुमानकर=तार्किकलोग सुपुप्तिमें ज्ञानाभाव मानते हैं और उसकी सिद्धि अनुमानसे बतलाते हैं इसमें दूसरे लोगोंकी ऐसी शङ्का है कि प्रथम तो सुपुप्तिकालकाही ज्ञान नहीं है और तत्कालावच्छेदेन आत्माकाभी ज्ञान नहीं है और यत्कालावच्छेदेन धर्मीमें किसी अर्थकी अनुमिति की जाती हो तत्कालावच्छेदेन उस धर्मीका ज्ञान अवश्य चाहिए क्योंकि जिस पुरुपको प्रातःकालावच्छेदेन गजशून्यचत्वरका ज्ञान होता है वही पुरुप सायङ्कालमें गजवत् चत्वरको देखकर प्रातःकालावच्छेदेन चत्वरमें गजाभावका अनुमान करता है और जिसको प्रातःकालावच्छेदेन गजशून्य चत्वरका ज्ञान नहीं होता है वह सायंकालमें गजवच्चत्वरको देखकर प्रात.कालावच्छेदेन गजाभावका अनुमान नहीं कर सकता है यह अनुभव सिद्ध है अतः जब सुपुप्तिकाल और तदवच्छिन्न आत्माका ज्ञान नहीं है तब सुपुप्तिकालावच्छेदेन आत्मरूपधर्मीमें ज्ञानाभावका ज्ञान कैसे होसकता है यहाँ तार्किकलोग सुपुप्तिकालकी और तत्कालावच्छेदेन आत्माकी और तादृश आत्मामें ज्ञानाभावकी सिद्धि अनुमानोंसे करते हैं सो अनुमानोंका प्रकार दिखलाया जाता है—जागरूक पुरुपको सम्प्रतिपन्न जो उदयकाल तथा अस्तमयकाल इन दोनों कालोंमें अन्तराल=मध्यवर्तिकालका अनुभव होनेसे विवादास्पदीभूत जो निद्राकालसे पूर्व तथा उत्तर अस्तमयकाल तथा उदयकाल है इन दोनोंमें अन्तराल कालका अनुमान होता है; अनुमानका आकार यों बनाना—निद्राकालात्पूर्वोत्तरवर्त्तिनौ अस्तमयोदयकालौ अन्तरालकालवन्तौ अस्तमयोदयकालत्वात् सम्पतिपन्नवत् इस अनुमानसे सुपुप्तिसे उत्तर और जाग्रत्से पूर्ववृत्ति अर्थात् अन्तरालकालकी सिद्धि हुई, उसके बाद, अयमन्तरालकालः आत्मयुक्तः

कालत्वात् उदयास्तमयकालवत् इस रीतिसे सुषुप्तिकालावच्छेदेन धर्मीका अनुमानकर तत्काल-महम्=सुषुप्तिकालीन मैं ज्ञानाभाववाला था, अवस्थाविशेषवाला होनेसे, ज्ञानकी सामग्रीसे शून्य होनेसे तुल्ययोगक्षेमे=समानवित्तिवेद्य आत्मादिके स्मर्यमाण होनेपरभी वद्वत्तया=ज्ञानवत्तया नियमेन=सर्वदा स्मर्यमाण न होनेसे इति=इस रीतिसे प्रयोगका सम्भव होनेसे। द्वितीय=परामर्श स्मरणरूप है इस पक्षमें तो उपपत्ति नहीं है—साधक नहीं है क्यों ? स्मरणजनक संस्कारका असम्भव होनेसे विनष्ट होता हुआही ज्ञान संस्कारको उत्पन्न करता है, व्यापारकेविना व्यवहित कार्यके जननमें असमर्थ होनेसे, और अविनश्यदवस्थ जो ज्ञान है उससे तो स्वयंही अपना कार्य करनेको शक्य होनेसे संस्कार क्यों उत्पन्न होगा संस्कारभी प्रत्यक्ष तो नहीं है जिससे कार्यान्यथानुपपत्तिके विनाभी अङ्गीकृत हो। और सुषुप्तिमें होनेवाला जो अनादि-अज्ञानोपरक्त साक्षि चैतन्यरूप ज्ञान है वह तो स्वतः अथवा उपाधितः विनष्ट नहीं होता है अतः संस्कारको कैसे उत्पन्न करेगा और तदभावात्=संस्कारके अभावसे अज्ञान कैसे स्मृत होगा, और स्मृत न होनेपर सौषुप्त प्रत्यक्षरूप प्रमाणवत्त्वेन कैसे उदाहृत होगा, ननुसे लेकर यहाँतक शङ्का है, अब समाधान करते हैं इतिचेन्न।

न तावदनुमानं तत्र संभवति। हेतोः पक्षविशेषणस्य चाज्ञानात्। नहि ज्ञानाभावमन्तरेणावस्थायां विशेषो वक्तुं शक्यः। ज्ञानसामग्री—विरहश्च ज्ञानाभावानुमेयत्वेनान्योन्याश्रयग्रस्तः। न चेदानीन्तनेनेन्द्रियप्रसादेन पूर्वकालीनं तदुपरममनुमाय सामग्री-विरहानुमानम् इन्द्रियप्रसादस्य सुखानुभवहेतुकस्य तदुपरमहेतुकत्वासिद्धेः। नियमेनास्मर्यमाणत्वं च यथाश्रुतं वा सुषुप्तिकालावच्छेदेन वा। आद्ये असिद्धिः, द्वितीये तूपेक्षणीयज्ञानाभावो न सिध्येत्। तत्रैव व्यभिचारश्च नच तर्हि प्रातरनुभूतचत्वरे गजज्ञा-नाभावज्ञानं कथमिति—वाच्यम्; ज्ञानानुपलब्ध्यैवेत्यवेहि।

क्योंकि तत्र=उक्तज्ञानाभावमें अनुमान तो सम्भवित नहीं है हेतुके अज्ञानसे, और पक्षका विशेषण जो तत्काल उस पक्षके विशेषणके अज्ञानसे। और ज्ञानाभावसे अतिरिक्त और कुछ अवस्थामें विशेष कहनेको शक्य नहीं है। ज्ञानाभावानुमेयत्व होनेसे ज्ञानसामग्रीका विरह अन्योन्याश्रयसे ग्रस्त है=ज्ञानसामग्रीका विरह सिद्ध हो तब ज्ञानाभावका ज्ञान हो और ज्ञानाभावसिद्ध हो तब ज्ञानकी सामग्रीका विरह सिद्ध हो अतः अन्योन्याश्रय है। इदानीन्तन=जाग्रत्कालीन जो इन्द्रियोंका प्रसाद है उस प्रसादसे पूर्वकालीन इन्द्रियोंके उपरमका अनुमान कर सामग्रीके विरहका अनुमान होता है, नच=नहीं—ऐसा अनुमान नहीं हो सकता है क्यों ? इन्द्रियोंके प्रसादको सुखानुभवहेतुक होनेसे इन्द्रियोंके उपरमकी असिद्धिसे, सुषुप्तिकालीनसुखानुभवहेतुक इन्द्रियप्रसादको इन्द्रियोपरमहेतुकत्व असिद्ध है। और नियमेनास्मर्यमाणत्व यथाश्रुत है या सुषुप्तिकालावच्छेदेन, आद्ये=आदिम पक्षमें असिद्ध है=सुषुप्तिकालीन अहम्पदार्थको पक्ष होनेपरभी उसको भ्रान्तिसे स्मर्यमाणत्व है ही, अतः

नियमेन अस्मर्यमाणत्वकी असिद्धि है। द्वितीय पक्षमें उपेक्षणीयविषयक जो ज्ञान उस ज्ञानका अभाव सिद्ध न होगा उपेक्षणीयज्ञानको संस्कारजनकत्व न होनेसे तद्वत्त्वेन स्मर्यमाणत्व नहीं है अतः नियमेनास्मर्यमाणत्वभी अनुपपन्न है=सुषुप्तिकालमें उपेक्षणीयज्ञानाभाव सिद्ध न होगा क्योंकि जहाँपर उपेक्षणीय ज्ञान होता है वहाँपरभी तद्वत्त्वेन आत्माका स्मरण नहीं होता है। तत्रैव=उपेक्षणीयज्ञानसे घटित उपेक्षणीयज्ञानवत्में ही व्यभिचारभी है=उपेक्षणीयज्ञानवत्त्वेन अस्मर्त्तामें उपेक्षणीयज्ञानका सत्त्व होनेसे व्यभिचार है; तब प्रातःकालमें अनुभूत चत्वरमें गजज्ञानाभावका ज्ञान कैसे होगा, इति न च वाच्यम्=ऐसी शङ्का नहीं करना, क्यों? ज्ञानकी अनुपलब्धिसेही होगा ऐसा समझ।

अनुपलब्धिज्ञानं च भावरूपाज्ञानेन लिङ्गेन। तथाहि—पूर्वकालेऽहम् गजज्ञानाभाववान् गजज्ञानवत्त्वात् यन्नैवं तन्नैवं यथा गजज्ञानवानहमिति, एवं सर्वत्राज्ञानस्य ज्ञानाभावव्याप्यत्वेन तदनुमापकत्वम्। नच=सुषुप्तिकाले ज्ञानाभावानुमानार्थं भावरूपाज्ञानमिव—रागाभावानुमानार्थं द्वेषोऽपि स्वीकरणीयः, तद्विरोधिपदार्थानुभवं विना तदभावानुमानायोगात् इति—वाच्यम्। भावरूपाज्ञानेन ज्ञानाभावेन वा रागाभावानुमानसम्भवात्, तस्यापि तद्विरोधित्वात्। अथापरोक्षतो ज्ञातेऽज्ञानाभावात् कथं परोक्षज्ञानाभावानुमानम्। सामग्रीविरहादिनेति गृहाण नचात्राप्यन्योन्याश्रयः शब्दादीनां योग्यानां योग्यानुपलब्ध्या—अभावनिश्चयेन परोक्षज्ञानविरहज्ञानं विनैव सामग्रीविरहनिश्चयात्, सुषुप्तिकाले चेन्द्रियादिघटितसामग्रीविहरस्य फलाभावं विना ज्ञातुमशक्यत्वेनान्योन्याश्रयोक्तेः।

और अनुपलब्धिका ज्ञान तो भावरूप जो अज्ञान तादृशाज्ञानरूप लिङ्गसे होता है, तथाहि—पूर्वकालमें मैं गजविषयक ज्ञानके अभाववाला था, गजविषयक अज्ञानवाला होनेसे यन्नैवं=जो गजविषयकज्ञानके अभाववाला नहीं होता है तन्नैवम्=वह गजविषयक अज्ञानवालाभी नहीं होता है, जैसे गजविषयकज्ञानवाला मैं। इस रीतिसे सर्वत्र अज्ञानको ज्ञानाभावका व्याप्यत्व होनेसे तदनुमापकत्वम्=ज्ञानाभावका अनुमापकत्व है। शङ्कते नचेति। सुषुप्तिकालमें ज्ञानाभावानुमानके लिए जैसे भावरूपाज्ञान माना जाता है, तैसे सुषुप्तिमें रागाभावानुमानके लिए द्वेषभी स्वीकरणीय है क्यों? तद्विरोधिपदार्थानुभवं विना=रागविरोधिद्वेषपदार्थके अनुभवविना तदभावानुमानका=रागाभावानुमानका अयोग होनेसे इति न च वाच्यम् क्यों? भावरूपाज्ञानसे या ज्ञानाभावसे रागाभावके अनुमानका संभव होनेसे तस्यापि=भावरूपाज्ञानको या ज्ञानाभावकोभी रागका विरोधित्व होनेसे। वादी प्रश्न करता है अथेति। अपरोक्षरूपसे ज्ञात अर्थमें अज्ञानका अभाव होनेसे परोक्षज्ञानके अभावका अनुमान अपरोक्षज्ञानस्थलमें कैसे होगा? सामग्रीविरहादिसे ऐसा समझ। अत्रापि=सामग्रीविरहसे परोक्षज्ञानाभावज्ञानस्थलमेंभी अन्योन्याश्रय है=परोक्षज्ञानके विरहसे सामग्रीविरहका ज्ञान और सामग्रीविरहसे परोक्ष—ज्ञानाभावका ज्ञान अतः अन्योन्याश्रय है नच=नहीं है क्यों? योग्य जो परोक्ष

ज्ञानके जनक शब्दादिक हैं उन शब्दादिकोंकी योग्यानुपलब्धिसे अभावका निश्चय होनेसे परोक्षज्ञानका जो विरह उस विरहके ज्ञान विनाही सामग्रीविरहके निश्चयसे=परोक्षज्ञानके विरहज्ञानमें सामग्रीविरहके ज्ञानकी आवश्यकता है परंतु सामग्रीविरहनिश्चयको उक्त प्रकारसे अन्यथासिद्ध होनेसे उसको परोक्षज्ञानके विरहके निश्चयकी आवश्यकता नहीं अतः अन्योन्याश्रय नहीं, और सुषुप्तिकालमें तो इन्द्रियादिसे घटित जो ज्ञानकी सामग्री है उस सामग्रीके विरहको फलाभावके विना जाननेके लिए अशक्य होनेसे अन्योन्याश्रयकी उक्ति है।

नच—स्मरणपक्षे संस्कारानुपपत्तिः, अज्ञानस्याज्ञानवृत्तिप्रतिविम्बितसाक्षिभास्यत्वेन वृत्तिनाशादेव, संस्कारोपपत्तेः, अज्ञानवृत्तिप्रतिविम्बितचैतन्यस्येव साक्षिपदार्थत्वात्। नच जागरेऽप्यज्ञानस्य वृत्तिवेद्यत्वे वृत्त्यभावदशायां संशयाद्यापत्तिरिति—वाच्यम् अज्ञानविषयज्ञानाभावेन तदयोगात्, संशयादेस्तत्कारणीभूताज्ञानसमान—विषयत्वनियमात्। भावत्वादिना संशये त्विष्टापत्तिरेव; भावत्वादेः साक्षिवेद्यत्वाभावेनाज्ञानविषयत्वात्, अज्ञानस्य स्वरूपेणैव साक्षिवेद्यत्वात्।

स्मरणरूप परामर्श है इस पक्षमें स्मरणकारणीभूत संस्कारकी अनुपपत्ति है नच=अनुपपत्ति नहीं है, क्यों? अज्ञानको अज्ञानका परिणामरूप जो वृत्ति तादृशवृत्तिमें प्रतिबिम्बित जो साक्षी तादृश साक्षीसे भास्य होनेसे वृत्तिके नाशसेही संस्कारकी उपपत्तिसे, अज्ञानपरिणामभूतवृत्तिमें प्रतिबिम्बित चैतन्यकोही साक्षीपदार्थ होनेसे। जाग्रत् अवस्थामेंभी अज्ञानको वृत्तिसे वेद्यत्व होनेपर वृत्तिकी अभावदशामें=जिसकालमें वृत्ति नहीं है उस कालमें संशयादिकी आपत्ति है इति न च वाच्यम्, क्यों? अज्ञानविषयक अज्ञानके अभावसे संशयादिके अयोगसे। संशयादिको संशयादिकारणीभूत जो अज्ञान उस अज्ञानके समानविषयत्वका नियम होनेसे; और भावत्वादिरूपसे संशयमें तो इष्टापत्तिही है, भावत्वादिको साक्षिवेद्यत्वके अभावसे अज्ञानविषयत्व होनेसे, अज्ञानको स्वरूपसेही साक्षीवेद्यत्व होनेसे।

ननु—तदाज्ञानाभावोऽपि स्वरूपेणैव भासताम्। सप्रतियोगिकत्वेनाभावज्ञान एव प्रतियोगिज्ञानस्य हेतुत्वात्, अन्यथा प्रमेयमिति ज्ञानेऽप्यभावो न भासतेति—चेन्न, साक्षिणा तावन्न स्वरूपेणाभावावगाहनम्, तस्य साक्षात्साक्ष्यवेद्यत्वात्, नापि शब्दादिना, तदानीं तेषामभावात्। नाप्यनुपलब्ध्या, तस्याः प्रतियोगिज्ञाननिरपेक्षाया अजनकत्वात्। नच—दृष्टाभावान्तरविलक्षणस्वभाव एवायमभाव इति स्वरूपेण साक्षिवेद्योऽस्त्विति—वाच्यम्। निर्विकल्पकबुद्धिवेद्यत्वे भावत्वस्यैवौचित्यात् अन्यथा परिभाषामात्रापत्तेः। ननु ज्ञानविरोधित्वादेस्तदाननुभवेन नावेदिषमिति तेनाकारणेन कथं परामर्शः? न; द्रष्टुर्ह्यन्तःकरणतादात्म्येनाहमुल्लेखस्येव ज्ञानविरोधित्वादेरपि तदैवानुभूयमानत्वेन तदंशे परमर्शत्वानभ्युपगमात् सुषुप्तिकालीनस्य द्रष्टुरेव—परामृष्टत्वात्।

शङ्कते नन्विति । तदा=सुषुप्त्यवस्थामें ज्ञानाभावभी स्वरूपसेही भासित हो सप्रतियोगिकत्वेन जो अभावका ज्ञान होता है उस अभावज्ञानमेंही प्रतियोगिज्ञानको हेतुत्व होनेसे, अन्यथा=यदि सर्व प्रकारसे अभावज्ञानमें प्रतियोगीके ज्ञानकी अपेक्षाही हो तो 'प्रमेयम्' इत्याकारक ज्ञानमेंभी अभाव भासित न होगा इति चेन्न; क्योंकि-स्वरूपेण=अन्य निरपेक्ष साक्षीसे अभावका अवगाहन नहीं होता है तस्य=अभावको साक्षात् साक्षीसे अवेद्य होनेसे, और शब्दादिसेभी अभावका अवगाहन नहीं होता है, क्यों ? तदानीम्=सुषुप्तिकालमें शब्दादिका अभाव होनेसे। और अनुपलब्धिसेभी सुषुप्तिमें अभावका ज्ञान नहीं होता है, क्यों ? प्रतियोगिज्ञाननिरपेक्ष तस्याः=अनुपलब्धिको अजनकत्व होनेसे। दृष्ट जो अभावान्तर हैं उन्होंसे विलक्षणही यह अभाव है अतः स्वरूपसेही साक्षिवेद्य रहो इति न च वाच्यम्; क्यों ? निर्विकल्पक बुद्धिसे वेद्यत्व होनेपर भावत्वकोही औचित्य होनेसे । अन्यथा परिभाषामात्रकी आपत्ति है। शङ्कते नन्विति। ज्ञानविरोधित्वादिका तदा=सुषुप्तिकालमें अनुभव न होनेसे 'नावेदिषम्' इस रीतिसे ज्ञानविरोधित्वाकारसे कैसे परामर्श होता है न=ऐसी शङ्का नहीं करना, क्यों ? द्रष्टाका अन्तःकरणके साथ जो तादात्म्येन उल्लेख होता है उस उल्लेखको जैसे अनुभूय तादात्म्य विषयकत्व है तैसे ज्ञानविरोधिकालमेंही अनुभूयमानत्व होनेसे तदंशमें परामर्शके अनभ्युपगमसे सुषुप्तिकालीन द्रष्टाकोही परामृष्टत्व होनेसे ।

नन्वाज्ञानवृत्तिप्रतिबिम्बितचैतन्यरूतस्याज्ञानानुभवस्य जाग्रत्यपि विद्यमानत्वात् कथमज्ञानस्य स्मरणं ? नहि धारावाहिकेष्वनुभवेषु तुल्यसामग्रीकेषु स्मरणव्यवहारः, तथाच धारावाहिकोऽज्ञानानुभवइति वक्तव्यम् न तुपरामर्शः इति सत्यम्; सुषुप्त्यास्तामस्या अज्ञानवृत्तेर्नाशे जाग्रति तद्विशिष्टाज्ञानस्य साक्षिणा अनुभूयमानत्वाभावेन-संस्कार-जन्याविद्यावृत्त्यैव सुषुप्तिविशिष्टाज्ञानभानात् परामर्शत्वोपपत्तेः केवलाज्ञानांशे तु तुल्यसामग्रीकत्वात् धारावाहिकत्वमेव । अत एव कार्योपाधिविनाशसंस्कृतमज्ञानमात्रमेव प्रलयोपमम् सुषुप्तिरित्यभिमेत्य वार्तिककारपादैः सौषुप्ताज्ञानस्मरणमपाकृतम् । तथाचोक्तं-न सुषुप्तिगविज्ञानं नाज्ञासिषमिति स्मृतिः । कालाद्यव्यवधानत्वान्नह्यात्मस्थमतीतभाक् । न भूतकालस्पृक्प्रत्यक् नचागामिस्पृगीक्षते स्वार्थदेशः परार्थोऽर्थो विकल्पस्तेन स स्मृतः इत्याद्यव्याकृतप्रक्रियाम् ।

शङ्कते नन्विति । अज्ञानकी वृत्तिमें प्रतिबिम्बित जो चैतन्य है तादृश चैतन्यरूप जो अज्ञानका अनुभव है उस अज्ञानानुभवको जाग्रतमेंभी विद्यमान होनेसे अज्ञानका स्मरण कैसे है ? क्योंकि समानसामग्रीक जो धारावाहिक अनुभव हैं उन अनुभवोंमें स्मरण व्यवहार नहीं होता है । फलतः धारावाहिक अज्ञानका अनुभव कहना चाहिए स्मरण नहीं, समाधान करते हैं-सत्यम्=आपका कथन किसी अंशमें सत्य है, सुषुप्तिनामक जो अज्ञानकी तामसी वृत्ति है उस

वृत्तिके नाशसे जाग्रत्‌में उस तामसी वृत्तिसे विशिष्ट अज्ञानका साक्षीसे अनुभूयमानत्व न होनेसे, संस्कारजन्य जो अविद्याकी वृत्ति है उस वृत्तिसेही सुषुप्तिनामक तामसी वृत्तिसे विशिष्ट अज्ञानका भान होनेसे परामर्शत्वकी उपपत्ति है। और केवल अज्ञानांशमें तुल्यसामग्रीक होनेसे धारावाहिकत्वही है। अतएव=केवलाज्ञानांशमें धारावाहिकत्व होनेसेही अन्तःकरणादिरूप जो कार्योपाधियां उन्होंका जो विनाश उस विनाशसे संस्कृत प्रलापोपम अज्ञानमात्रही सुषुप्ति है। ऐसा अभिप्राय रख वार्तिककारपादोंसे सुषुप्तिमें होनेवाला जो अज्ञान उस अज्ञानका स्मरण जाग्रत्‌में खण्डित किया गया है। अर्थात् जाग्रत्‌में जो सुषुप्तिमें अनुभूत अज्ञानविषयक ज्ञान होता है उसे वार्तिककार सुरेश्वराचार्यने स्मरणात्मक नहीं माना है उन्होंका लेख उद्धृत करते हैं तथाचेति। 'नाज्ञासिषम्' कुछनहीं जाना। इत्याकारक जो सुषुप्तिगत अज्ञानका विज्ञान होता है वह स्मृति नहीं है—सुषुप्त्यादिमें रहनेवाली एकही अविद्याकी स्थायी वृत्ति है केवलसुषुप्तिमें होनेवाली कोई असाधारणवृत्ति नहीं है जिसके नाशसे स्मरण हो इस अर्थमें हेतु दिखलाते हैं कालाद्यव्यवधानत्वात्=जाग्रत्काल और सुषुप्तिकाल इन दोनों कालोंको संस्कारकालसे व्यवधानशून्य होनेसे—उक्त दोनों कालोंके मध्यमें कारणाभावसे संस्कारावच्छिन्नकालके न होनेसे। ननु—सौषुप्तवृत्तिका नाश न होनेपर भी विषयके नाशसेही स्मृति होगी, तहाँ कहतेहैं—नहि आत्मस्थमतीतभाक्=आत्मस्थम्=अज्ञान अतीतभाक्=अतीत नहीं कहा जा सकता है—विषयका नाश अनुपपन्न है अतःविषयके नाशको लेके जो स्मरणकी उपपत्ति बतलाई है वह ठीक नहीं। उक्तार्थकोही हेतुसे दृढ़ करते हैं न भूतेति। प्रत्यक्=अज्ञानोपहित चैतन्य भूतकालीन वस्तुको विषय नहीं करता है तेन=उक्तहेतुसे स= 'नावेदिषम्' इत्याकारक प्रत्यय विकल्पः=विकल्प है नकि निर्विकल्पक स्मृतिरूप। यतः उक्तप्रत्ययका स्वार्थ देशरूप जो परार्थ वह परार्थ अर्थः=विषय है, (स्वार्थदेश) इसका अर्थ यह है कि स्वस्य अर्थः स्वार्थः स्वार्थः देशो यस्य सः स्वार्थदेशः=स्वशब्दसे (नावेदिषम्) यह प्रत्यय लेना चाहिए उसका अर्थ—अज्ञान है वह अज्ञानरूप है देश है जिसका ऐसा जो ज्ञानविरोधित्वादि उसका नाम है 'स्वार्थदेशः' परार्थः का वह विशेषण है 'पर' शब्दका अर्थ है अज्ञानभिन्न, अर्थ शब्दका अर्थ है ज्ञानविरोधित्वादि तथा च यह निष्कृष्टार्थ हुआकि— 'नावेदिषम्' यह प्रत्यय अज्ञाननिष्ठ ज्ञानविरोधित्वादिको विषय करता है और स्मृतिरूप नहीं। इत्यादि अव्याकृतप्रक्रियामें कहा गया है।

विवरणकारैस्तु—अभावप्रत्ययालम्बना वृत्तिर्निद्रेति योगसूत्रानुसारेण तमोगुणात्मकावरणमात्रालम्बनाकाचिद्वृत्तिः सुषुप्तिरित्यभिप्रेत्य तदुपरक्तचैतन्यस्य तन्नाशेनैव नाशात्तत्कालीनाज्ञानानुभवजनितसंस्कारवशेन न किंचिदवेदिषमिति स्मरणमभ्युपेतमितिवार्तिकविवरणयोरप्यविरोधः। अत एवोक्तं वार्तिककारैरुपस्तिब्राह्मणे—'नचेदनुभवव्याप्तिः सुषुप्तस्याभ्युपेयते। नावेदिषं सुषुप्तोऽहमितिधीः किं बलाद्भवेत्॥ इत्यादि। अभिप्रायस्तु वर्णितः। एवञ्च साक्ष्यज्ञानसुखाकारास्तिस्रोऽविद्यावृत्तयः सुषुप्त्यारब्धैकैव

वा वृत्तिरित्यन्यदेतत् । निर्विकल्पकस्यापि स्मरणजनकत्वम् । अहंकारोपरागकालीनत्वाभावेन तत्रानुल्लेख इत्यादि सर्वमुपपादितमस्माभिः सिद्धान्तविन्दौ । तस्मात् सौषुप्तानुभवोऽपि भावरूपाज्ञानविषय इति सिद्धम् ॥

इत्यद्वैतसिद्धौ अज्ञानप्रत्यक्षत्वोपपत्तिः ।

और विवरणकारोंसे तो अभाव=प्रमाणविपर्ययविकल्पादि वृत्तिओंका जो अभाव उस अभावका प्रत्यय=कारणीभूत जो विकसित–अवस्थाविशिष्ट तमोगुण वह तमोगुण है आलम्बन=विषय जिसका ऐसी जो सात्त्विकवृत्ति उस वृत्तिका नाम है निद्रा (यो०१।१०) इस योगसूत्रानुसारसे तमोगुणात्मक ज्ञानविरोध्यावरणको आलम्बन करनेवाली कोई वृत्ति सुषुप्ति है ऐसा अभिप्राय रख, तदुपरक्तचैतन्यस्य=उक्त विशिष्ट चैतन्यका तन्नाशेनैव=उक्त निद्रारूपवृत्तिके नाशसेही नाश होनेसे तत्कालीन=सुषुप्तिकालीन जो अज्ञानका अनुभव उस अनुभवसे जन्य जो संस्कार उस संस्कारके अधीन 'न किञ्चिदवेदिषम्' यह स्मरण अङ्गीकार किया गया है । वार्तिकविवरणयोरप्यविरोधः=' सत्यम् ' इत्यादिसे जो हमने अर्थ कहा है उसका जैसे विवरण तथा वार्तिकके साथ विरोध नहीं है तैसे विवरण और वार्त्तिकका भी विरोध नहीं है, क्योंकि जो अर्थ विवरणमें अभिप्रेत है वह भी वार्तिकमें अभिप्रेत है । अतएव=विवरणोक्त अर्थकोभी विवक्षित होनेसेही वार्त्तिककारोंसे उपस्तिब्राह्मणमें, सुषुप्तिके साथ यदि अनुभवव्याप्तिः=अनुभवका सम्बन्ध नहीं माना जायगा तो 'मैं सोया था कुछ भी न जानता था' इत्याकारिका जो स्मृत्यात्मक धी होती है वह किम्प्रयुक्त होगी इत्यादि कहा गया है । अभिप्रायस्तुवर्णितः=जो अभिप्राय विवरणका है वही अभिप्राय इस वार्तिककाभी है यह तात्पर्य है । इस रीतिसे साक्ष्याकार अज्ञानाकार सुखाकार ये तीन अविद्याकी वृत्तियाँ सुषुप्तिमें हैं अथवा सुषुप्त्याख्य एकही वृत्ति है इति अन्यत् एतत्=प्रकृतमें यह निरूपण बहुत उपयुक्त नहीं । निर्विकल्पककोभी स्मरणजनकत्व है । अहङ्कारका जो उपराग वह उपराग होता है जिस कालमें उस कालमें अज्ञानका अनुभव न होनेसे स्मृतिमभी तत्ताका अनुल्लेख है=सप्रकारक ज्ञानमें अहंकारको हेतुता है और सुषुप्तिमें अहंकार नहीं रहता है इस लिए सुषुप्तिभव ज्ञानमें तद्देशकालका सम्बन्धरूप जो तत्ता है तादृश तत्ताप्रकारकत्वाभाव है अतएव तज्जन्यस्मृतिमें भी तत्ताप्रकारकत्वका अभाव है यह भावहै। इत्यादि सर्व उपपादित किया गया है हमसे सिद्धान्तविन्दुमें । यतः प्रकारान्तरका अभाव दिखला दिया है ततःसौषुप्तानुभवभी भावरूपाज्ञानविषयक है यह सिद्ध हुआ ।

इति सरलायामज्ञानप्रत्यक्षत्वोपपत्तिः ।

अथ अज्ञानवादे अनुमानोपपत्तिः ।

अनुमानमपि तत्र विवरणोक्तं प्रमाणम् । विवादपदं प्रमाणज्ञानं स्वप्रागभावव्यतिरिक्तस्वविषयावरणस्वनिवर्त्यस्वदेशगतवस्त्वन्तरपूर्वकम्, अप्रकाशितार्थप्रकाशकत्वात्, अन्धकारे प्रथमोत्पन्नप्रदीपप्रभावत् इति । अत्र प्रमाणपदं प्रमाणवृत्तेरेव पक्षत्वेन सुखा-

दिप्रमायां साक्षिचैतन्यरूपायामज्ञानानिवर्तकायां बाधवारणाय। धर्म्यंशप्रमाणवृत्तेरिदमित्याकाराया अज्ञाननिवर्तिकायाः पक्षबहिर्भावाय विवादपदमिति विशेषणम्। विशेषाकारप्रमाणवृत्तिरिति फलितोऽर्थः। परोक्षप्रमाया अप्यसत्त्वावरणरूपप्रमातृगताज्ञाननिवर्त्तकत्वात् न तदंशेऽपि बाधः।

अथ सरलायामज्ञानवादे अनुमानोपपत्तिः।

तत्र=उक्त लक्षणकअज्ञानमें विवरणोक्त अनुमान भी प्रमाण है। इस अनुमानमें 'विवादपदं प्रमाणज्ञानं' यह पक्षका निर्देश है, स्वप्रागभावव्यतिरिक्तस्वविषयावरणस्वनिवर्त्यस्वदेशगतवस्त्वन्तरपूर्वम्। यहाँ तक साध्यका निर्देश है। अप्रकाशितार्थप्रकाशकत्वात्, यह हेतुका निर्देश है, अन्धकारे प्रथमोत्पन्नप्रदीपप्रभावत्। यह दृष्टान्तका निर्देश है। यहाँपर पक्षका अर्थ है विशेषाकार प्रमावृति। साध्यवाक्यघटक स्वशब्दसे इसी विशेषाकार प्रमाणवृत्तिरूप पक्षका ग्रहण है। साध्यघटक विशेषणोंकी सामान्यतः व्यावृत्ति यों है–यहाँ यदि स्वविषयावरण इत्यादिही कहें और प्रागभावव्यतिरिक्त न कहें तो स्वदेशगत वस्त्वन्तररूप प्रागभावको लेकर अर्थान्तर हो जायगा, क्योंकि प्रागभावमें स्वसत्तादशामें कार्यानुत्पादकत्वरूप विषयावरणत्व रहता है, और स्वनिवर्त्यभी है क्योंकि प्रतियोगीसे प्रागभावकी निवृत्ति प्रसिद्ध है और स्वदेशगतभी है क्योकि जहां उक्त विशेषाकारवृत्ति उत्पन्न होती है वहाँ ही उसका प्रागभावभी रहता है, यहाँपर कोई शङ्का करता है कि–प्रागभावमें स्वनिवर्त्यत्व कैसे होगा क्योंकि 'स्वजन्यध्वंसप्रतियोगित्वका नाम है–स्वनिवर्त्यत्व, और 'अभावका अभाव भावरूप होता है, इस मतसे प्रागभावका ध्वंस ही तो उक्त वृत्तिरूप पडेगा और वृत्तिसे तो वृत्ति जन्य नहीं होसकती है, अतः स्वजन्यध्वंसप्रतियोगित्वरूप, स्वनिवर्त्यत्व प्रागमें कहाँ है। इस शङ्काका समाधान यह हैकि 'अभावका अभाव भावसे अतिरिक्त होता है' इस मतसे यह विशेषण दिया गया है। 'यदि स्वविषयावरण' यह विशेषण न दें तो उक्त विशेषाकार वृत्तिका उत्पादक जो अदृष्ट है उसको लेके अर्थान्तर है–क्योंकि उक्तवृत्तिका जनक अदृष्ट प्रागभावसे अतिरिक्तभी है और स्वनिवर्त्यभी–अदृष्टका फलसे नाश होता है इसलिए उक्तवृत्तिका कारण जो अदृष्ट है उसका नाश उक्तवृत्तिसे होता है और जहाँ ज्ञान रहताहै वहाँ ही अदृष्टभी रहताहै इसलिए स्वदेशगतभी है फलतः एवम्भूत अदृष्टके व्युदासके लिए 'स्वविषयावरण' कहागया है। क्यों कि अदृष्ट कार्यानुकूल है इसलिए उसमें स्वसत्तादशामें कार्यानुत्पादप्रयोजकत्वरूप स्वविषयावरणत्व नहीं रहता है। यदि 'स्वनिवर्त्य' न कहें तो उक्त वृत्तिरूप ज्ञानकी उत्पत्तिमें प्रतिबन्धक जो अदृष्ट है उसको लेके अर्थान्तर हो जायगा, क्योंकि उक्त अदृष्ट प्रागभावसे व्यतिरिक्तभी है और कार्यानुत्पादप्रयोजकत्वरूप स्वविषयावरणत्वभी उसमें है और स्वदेशगत वस्त्वन्तर भी है फलतः एवम्भूत अदृष्टको लेके अर्थान्तर–वारणके लिए स्वनिवर्त्य कहा है–कार्य जो उत्पन्न होता है वह प्रतिबन्धककी निवृत्तिके बाद होताहै यह लोकमें प्रसिद्ध है, इसलिए विशेषाकार प्रमाणवृत्तिका प्रतिबन्धक जो अदृष्ट है वह–विशेषाकार प्रमाणवृत्तिसे निवर्त्य नहीं अर्थात् विशेषाकार प्रमाणवृत्ति पश्चात् होनेवाली है और प्रतिबन्धककी निवृत्ति पूर्वमें होने-

वाली है इस लिए इनका निवर्त्यनिवर्त्तकभाव नहीं, यदि ' स्वदेशगत ' न दें तो विषयमें जैसे ज्ञातता रहती है तैसे अज्ञातताभी रहती है उस विषयनिष्ठ अज्ञातताको लेके अर्थान्तर हो जायगा क्योंकि यह अज्ञातता प्रागभावसे अतिरिक्त भी है और विषयावरणभी है और स्वनिवर्त्यभी है, और जब स्वदेशगत कहा तब इसको लेके अर्थान्तर नहीं क्योंकि यह विषयदेशमें रहती है–विषयमें रहती है; जहाँ ज्ञान रहताहै,–समवायसे या तादात्म्यसे वहाँ नहीं । यदि ' वस्त्वन्तर ' न दें तो मिथ्याज्ञानको लेके अर्थान्तर है,–मिथ्याज्ञानमें उक्तचारों विशेषण हैं, वस्त्वन्तर कह देनेसे मिथ्या ज्ञानकी व्यावृत्ति हो गई क्योंकि वह ज्ञान वस्तु नहीं । हेतुमें यदि 'अर्थप्रकाशकत्वात्' इतनाही कहें और अर्थांशमें अप्रकाशित विशेषण न दें तो धारावाहिकद्वितीयादिज्ञानमें व्यभिचार है–क्योंकि अर्थप्रकाशकत्वतो उसमें रह गया है परन्तु स्वनिवर्त्यवस्त्वन्तरपूर्वकत्वरूप साध्य वहाँ नहीं है, क्योंकि वहाँपर प्रथमज्ञानसेही अज्ञानका नाश हो चुका है, अप्रकाशित विशेषणको अर्थांशमें लगा देनेसे द्वितीयादि ज्ञानोंकी व्यावृत्ति है । दृष्टान्तमें यदि ' अन्धकारे ' यह न दें तो सौरादिविमलालोकाऽऽलोकित प्रदेशमें प्रथमोत्पन्नप्रदीपप्रभाभी ली जासकती है और उसमें साध्य साधन इन दोनोंका अभावहै, अतः इस प्रभाकी व्यावृत्तिके लिए अन्धकारे कहा । यदि प्रथम न दें तो अन्धकारमें उत्पन्न होनेवाली द्वितीयादिप्रभायेंभी ली जा सकती हैं और उनमें साध्य तथा साधन इन दोनोंका–अभाव है । अतः 'प्रथम' कहा । यहाँपर दृष्टान्तमें अन्धकारको लेके साध्यका पर्यवसान है । और पक्षमें अज्ञानको लेके । आगेका विषय समझनेके लिए यह सङ्क्षेपसे विचार किया । अब इसका सविस्तर विवेचन मूलकार स्वयं करते हैं अत्रेति । अत्र=इस विवरणीय प्रयोगमें प्रमाणवृत्तिकोही प्रत्यक्षत्व होनेसे अज्ञानकी अनिवर्तिका ऐसी जो साक्षीचैतन्यरूपा सुखादिप्रमा है उस प्रमामें बाधवारणकेलिए प्रमाणपद विशेषण है और धर्म्यंशको विषयकरनेवाली अज्ञानकी अनिवर्त्तिका जो 'इदम्' इत्याकारिका प्रमाणवृत्ति है उस वृत्तिको पक्षसे निकालनेके लिए विवादपद यह विशेषण है । विशेषाकार प्रमाण वृत्ति पक्षत्वेन अभिमत है यह फलितार्थ है; और परोक्षप्रमाकोभी असत्वावरणरूप जो प्रमातृगताज्ञान उस अज्ञानका निवर्तकत्व होनेसे तदंशे=परोक्षप्रमारूप अंशमेंभी बाध नहीं है=साध्यके रहजानेसे साध्याभावरूप बाध नहीं है ।

नन्विदमिति प्रमाणवृत्तेरज्ञाननिवर्त्तकत्वे अज्ञातज्ञापकत्वरूपप्रमात्वेन व्यवहारो न स्यात् न; इदमाकारभ्रमसंशयादर्शनेन तद्गोचराज्ञानकल्पने मानाभावेन तत्र सुखादिज्ञानवद् यथार्थत्वमात्रेण प्रमात्वव्यवहारोपपत्तेः । यदाहुः धर्म्यंशे सर्वमभ्रान्तं प्रकारे तु विपर्ययः । इति । यदि तु भ्रमसंशयाजनकमपि तदाकारमज्ञानमनुभवबलादास्थीयेत तर्हि सापि पक्षेऽन्तर्भवतु; प्रमाणवृत्तित्वावच्छेदेनैवाज्ञाननिवर्त्तकत्वानपायात्, तदा च विवादपदमितिविशेषणमनादेयम् ।–एतस्मिन्पक्षे भ्रमोपादानत्वयोग्यत्वाविद्यालक्षणं द्रष्टव्यम्; भ्रमोपादानत्वस्य धर्म्यंशज्ञाननिवर्त्याज्ञानेऽव्याप्तेरित्यवधेयम् । धारावाहिकबुद्धीनां च तत्तत्कालावच्छिन्नार्थविषयत्वेनाज्ञातज्ञापकत्वमस्त्येव । कालस्य सर्वप्रमाणवेद्यत्वाभ्युपगमात् ।

शङ्कते नन्विति। 'इदम्' इत्याकारिका जो प्रमाणवृत्ति है उस प्रमाणवृत्तिको अज्ञानका अनिवर्त्तकत्व होनेपर अज्ञातज्ञापकत्वरूप जो प्रमात्व है उस प्रमात्वसे व्यवहार न होगा, न=ऐसी शङ्का नहीं करना, क्यों ? इदमाकारमें भ्रम तथा संशय इन दोनोंके न देखनेसे तद्गोचराज्ञानकल्पने=इदमाकारगोचर अज्ञानके कल्पनमें प्रमाणके अभावसे, तत्र=इदमाकारवृत्तिमें सुखादिज्ञानकी तरह यथार्थत्वमात्रसे प्रमात्वव्यवहारकी उपपत्तिसे। इन्द्रियादिसे जन्य जो वृत्ति तादृशवृत्तिनिष्ठ जातिविशेषका नाम है प्रमात्व और व्यवहारकालाबाध्यविषयकत्वका नाम यथार्थत्व है, सुखादिका ज्ञान साक्षिस्वरूप है, और सुखादिका व्यवहारकालमें बाध नहीं होता है इस लिए सुखादिविषयक साक्षीमें व्यवहारकालाबाध्यविषयत्वरूप यथार्थत्व है इसी लिए उसे प्रमाभी कहते हैं परन्तु प्रमाशब्दका साक्षी शक्यार्थ नहीं। यदाहुः=जैसा कि कहते हैं-धर्म्यंशे=इदंत्वांशमें सर्वज्ञान अभ्रान्त हैं और प्रकारे=इदंत्वांशसे अन्यांशमें भ्रम हैं,=भ्रमत्वेन जो ज्ञान अभिमत हैं वे ज्ञान भी धर्म्यंशमें भ्रम नहीं हैं किन्तु प्रकारांशमात्रमें। और यदि भ्रम तथा संशयका अजनक भी तदाकार=इदमाकार अज्ञान अनुभवके बलसे अङ्गीकार किया जाता है तर्हि=तब सापि=इदमाकारवृत्तिभी पक्षमें अन्तर्भूत हो, प्रमाणवृत्तित्वावच्छेदेनैव अज्ञाननिवर्त्तकत्वका अनपाय होनेसे, और तब 'विवादपदम्' यह विशेषण पक्षमें अदेय है, और इस पक्षमें 'भ्रमोपादानत्वयोग्यत्व अविद्याका लक्षण समझना, भ्रमोपादानत्वरूप लक्षणकी धर्म्यंशका जो ज्ञान उस ज्ञानसे निवर्त्य जो अज्ञान उस अज्ञानमें अव्याप्ति होनेसे। और धारावाहिक बुद्धियोंका तत्तत्कालावच्छिन्न जो अर्थ तादृश-अर्थविषयत्व होनेसे अज्ञातज्ञापकत्व है ही=पूर्वपूर्वबुद्ध्यविषय जो तत्तत्क्षण तादृशक्षणविशिष्टविषयकत्वेन धारावाहिकबुद्धिओंको अज्ञातज्ञापकत्व है ही कालके सर्वप्रमाणवेद्यत्वका अभ्युपगम होनेसे।

अनात्माकारप्रमाणवृत्तीनां च तत्तदवच्छिन्नचैतन्यविषयत्वेन स्वविषयावरणनिवर्तकत्वमस्त्येव चित्त्वेनैव प्रकाशप्रसक्तेः नतु अवच्छिन्नचित्त्वेन गौरवात्, एतावन्तं कालं मया न ज्ञातोऽयमिदानीं ज्ञात इत्यनुभवाच्च। रूपादिहीनस्यापि तत्तदवच्छिन्नचैतन्यस्य प्रत्यक्षादिविषयत्वमुक्तं प्राक्। प्रतिकर्म-व्यवस्थां चाभ्युपगम्येदमनुमानम् न तु दृष्टिसृष्टिपक्ष इतिध्येयम्

और घटपटादिरूप जो अनात्मा तादृशानात्माकार जो प्रमाणवृत्तियाँ उन प्रमाणवृत्तियोंका तत्तदवच्छिन्न=घटपटाद्यवच्छिन्न जो चैतन्य तादृशचैतन्यविषयत्व होनेसे स्वविषयावरण-निवर्त्तकत्व है ही चित्त्वेन ही घटादिके प्रकाशकी प्रसक्ति है निरवच्छिन्नचित्त्वेन नहीं गौरव होनेसे; इतने कालपर्यन्त मुझसे ज्ञात न था अब यह ज्ञात हुआ है इत्याकारक अनुभवसे भी। और रूपादिसे हीन जो तत्तदवच्छिन्न चैतन्य है उस चैतन्यकोभी प्रत्यक्षादिविषयत्व पूर्वमें कहा है=परिच्छिन्नत्वहेतुनिरुक्तिस्थलोंमें कहा है। और प्रतिकर्मव्यवस्थाको मानकर यह अनुमान है दृष्टिसृष्टिपक्षमें नहीं यह ध्यानमें रखना।

साध्ये चाद्यं विशेषणं प्रतियोग्यतिरिक्ता प्रागभावनिवृत्तिरितिमते प्रागभावेनार्थान्तरवारणाय। तदुदीच्यध्वंसादिकमादाय नार्थान्तरप्रसक्तिः किन्तु पूर्ववृत्त्यभावमादायेति वस्तुगतिमनुरुध्य प्राक्पदम्। अवैयर्थ्यं च, प्रतियोगिविशेषणत्वेनाखण्डाभावसंपादकतया। एतेन यतो ज्ञानमज्ञानस्यैव निवर्त्तकमिति नियमस्तस्मात्—स्वनिवर्त्यपदेनैव प्रागभावव्युदासे किमाद्यविशेषणेनेति निरस्तम् प्रमात्वेन ज्ञाननिवर्त्यत्वमन्येषां नेत्यत्र तात्पर्यात्। न च स्वविषयावरणपदेनैव तद्व्युदासः; 'अस्ति प्रकाशते' इति व्यवहारविरोधित्वरूपस्यावरणत्वस्य भावाभावसाधारणत्वात् वृत्तिजनकादृष्टेनार्थान्तरवारणाय तु विशेषणमिदम्। न चावरणपदेनैव तद्व्युदासे स्वविषयेति व्यर्थम्; यददृष्टं स्वाविषयज्ञानजनकं विषयान्तरज्ञानप्रतिबन्धकतया तदावारकं तादृशादृष्टपूर्वकत्वेनार्थान्तरवारकत्वात्।

और साध्यमें 'स्वप्रागभावातिरिक्त रूप जो आद्य विशेषण है वह प्रागभावकी निवृत्ति प्रतियोगीसे अतिरिक्त है इस मतमें प्रागभावसे होनेवाला जो अर्थान्तर उस अर्थान्तरके वारणके लिए है। ज्ञानसे उत्तरमें होनेवाले ध्वंसादिको लेके अर्थान्तरकी प्रसक्ति नहीं है, किन्तु पूर्ववृत्ति अभावको लेके अर्थान्तर है इस वस्तुगतिका अनुरोधकर प्राक् पद है। और प्रतियोगिविशेषणतया अखण्डाभावसम्पादकत्वेन अवैयर्थ्य है=प्रतियोगीमें विशेषणरूप प्रागभावत्व नामक एक अखण्डोपाधि है जैसे घटमें घटत्वरूप अखण्डधर्म रहता है; तैसे अभावत्वरूप नहीं। एतेन=वक्ष्यमाण हेतुसे यतः ज्ञान अज्ञानकाही निवर्त्तक है इत्याकारक नियम है ततः स्वनिवर्त्यपदसेही प्रागभावकी व्यावृत्ति हो जानेपर आद्यविशेषणसे क्या प्रयोजन है= प्रागभाव यदि ज्ञानसे निवर्त्य होता तो स्वनिवर्त्य विशेषणसे उसकी व्यावृत्ति न होती और तद्वारकत्वेन आद्यविशेषणका चारितार्थ्य भी होता परन्तु ज्ञान अज्ञानकाही निवर्त्तक है ऐसा नियम होनेसे प्रागभाव तो ज्ञानसे निवर्त्य हो ही नहीं सकता, अतः स्वनिवर्त्य विशेषणसेही प्रागभावकी निवृत्ति=व्यावृत्ति है इसलिए आद्य विशेषण व्यर्थ है यह कथन खण्डित हुआ; एतेन शब्दका अर्थ करते हैं, प्रमात्वेति। प्रमात्वेन ज्ञानसे निवर्त्यत्व अज्ञानसे अतिरिक्त पदार्थोंको नहीं है, इत्यत्र=इस अर्थमें उक्त नियमका तात्पर्य होनेसे=ज्ञाननिवर्त्यत्व केवल अज्ञानमें ही है ऐसा नियम है और प्रागभावमेंभी ज्ञाननिवर्त्यत्व है परन्तु प्रतियोगित्वेन, तैसे स्वपूर्ववृत्ति गुणोंके प्रतिभी निवर्त्तकत्व है परन्तु उदीच्ययोग्यविभुविशेषगुणत्वेन है। अतः वैयर्थ्य नहीं, स्वविषयावरणपदसेही तद्व्युदासः=प्रागभावका व्युदास है नच=नहीं है, क्यों? अस्ति प्रकाशते। इत्याकारक जो व्यवहार इस व्यवहारका विरोधित्वरूप जो आवरणत्व उस आवरणत्वको भावाभावसाधारण होनेसे। उक्तवृत्तिजनक जो अदृष्ट है उस अदृष्टसे होनेवाले अर्थान्तरके वारणके लिए यह विशेषण है। आवरण पदसेही तद्व्युदासे=उक्त अदृष्टका निरास होनेपर 'स्वविषयक' इतना अंश व्यर्थ है न च=व्यर्थ नहीं है, क्यों? जो अदृष्ट स्वविषयक ज्ञानका जनक है वह विषयान्तरका जो ज्ञान उस ज्ञानका प्रतिबन्धक होनेसे तदावारकम्=

विषयान्तरका आवरण है तादृश-अदृष्टपूर्वकत्वेन होनेवाला जो अर्थान्तर तादृश-अर्थान्तरवारकत्व होनेसे ।

नच—जडे अज्ञानस्यानङ्गीकारात् चितश्चाज्ञानादिसाक्षितया भासमानत्वात् क्वावरणमिति–वाच्यम्; अज्ञानादिसाक्षितया चितः प्रकाशमानत्वेऽपि अस्ति प्रकाशते इतिव्यवहाराभावेन तदंशेऽज्ञानावरणस्यावश्यकत्वात् । वक्ष्यते चैतत् । स्वनिवर्त्येति च विशेषणं वृत्तिप्रतिवन्धकादृष्टेनार्थान्तरवारणाय । नच–चरमसाक्षात्कारोत्पत्तिप्रतिवन्धकादृष्टस्य तदनिवर्त्यत्वे मिथ्यात्वासिद्धि=तन्निवर्त्यत्वे तद्व्युदसनमशक्यमिति–वाच्यम्; प्रतिवन्धकादृष्टे विद्यमाने न ज्ञानोत्पत्तिरिति प्रथमं तन्निवृत्तेः कारणात्मना स्थितस्य, ज्ञाननिवर्त्यत्वाच्च मिथ्यात्वम् । न चैवमपि स्वनिवर्त्यत्वमव्याहतम् । स्वनिवर्त्यत्वस्वरूपत्वे तात्पर्यात् । अन्धकारेणार्थान्तरवारणार्थमिदमिति–केचित्, तन्न; स्वदेशगतेत्यनेनैव तद्व्युदासात् तथाच वृत्तिप्रतिविम्बितचैतन्यस्य विषयावच्छिन्नचैतन्येन सहैकलोलीभावादज्ञाननिवर्तकत्वं तथोक्तं प्राक् ।

शङ्कते नन्विति । जडमें अज्ञानका अङ्गीकार न होनेसे और चित्को अज्ञानादिसाक्षितया भासमान होनेसे आवरण कहाँ है इति नच वाच्यम्, क्यों ? अज्ञानादिसाक्षित्वेन चित्को प्रकाशमानता होनेपरभी अस्ति प्रकाशते इत्याकारक व्यवहारके न होनेसे तदंशे=जडांशमें अज्ञानावरणको आवश्यक होनेसे=जडांशमें उक्त व्यवहारके न होनेसे जडावच्छेदेन चैतन्यमें आवरणका आवश्यकत्व है । च=और यह अर्थ कहा जायगा । और 'स्वनिवर्त्य' यह विशेषण उक्तवृत्तिका प्रतिवन्धक जो अदृष्ट उस अदृष्टसे होनेवाला जो अर्थान्तर उस अर्थान्तरके वारणके लिए है । शङ्कते नचेति । चरमसाक्षात्कारकी जो उत्पत्ति उस उत्पत्तिका प्रतिवन्धक जो अदृष्ट उस अदृष्टको तदनिवर्त्यत्वे=चरमसाक्षात्कारसे अनिवर्त्यत्व होनेपर उसके मिथ्यात्वकी असिद्धि है, तन्निवर्त्यत्वे=उक्त साक्षात्कारसे निवर्त्यत्व होनेपर उसका परासन अशक्य है इति न च वाच्यम्, क्यों ? प्रतिवन्धक अदृष्टके विद्यमान होनेपर ज्ञानकी उत्पत्ति नहीं होती है अतः प्रथम प्रतिवन्धककी निवृत्ति होनेसे, और कारणात्मना स्थितको ज्ञाननिवर्त्यत्व होनेसे; मिथ्यात्व है एवमपि=ऐसा होनेपरभी स्वनिवर्त्यत्व=उक्तवृत्तिनिवर्त्यत्व अव्याहत है नच अव्याहत नहीं है, क्यों ? स्वनिवर्त्यस्वरूपत्वमें तात्पर्य होनेसे=स्वरूपेण स्वनिवर्त्यत्व हमको विशेषण विधया अपेक्षित है, और उक्त वृत्तिसे जो उक्त अदृष्टकी निवृत्ति हुई है वह स्वरूपेण नहीं किन्तु कारणात्मना है । अन्धकारसे होनेवाला जो अर्थान्तर है उस अर्थान्तरके वारणके लिए यह विशेषण है ऐसा कोई लोग कहते हैं तन्न=वह कथन ठीक नहीं क्यों ? स्वदेशगत इस विशेषणसेही अन्धकारका व्युदास होनेसे । और जैसे वृत्तिप्रतिविम्बित चैतन्यको विषयावच्छिन्न चैतन्यके साथ एकलोलीभावसे अज्ञानका निवर्त्तकत्व है तैसे पहिले कहा जा चुका है ।

स्वदेशगतेति च विशेषणं विषयगतज्ञातत्वेनार्थान्तरवारणाय । यद्यप्यविद्याविषयत्वरूपमज्ञातत्वमसिद्धम्, ज्ञातत्वाभावरूपं तु प्रथमविशेषणेनैव परास्तं तथापि प्रथमेन प्रागभावव्युदासादत्यन्ताभावव्युदासाय चतुर्थमिति द्रष्टव्यम् ।

स्वदेशगत यह विशेषण विषयगत जो अज्ञातता उस अज्ञातताको लेके होनेवाला जो अर्थान्तर इस अर्थान्तरके वारणके लिए है । यद्यपि अविद्याविषयत्वरूप अज्ञातत्व विषयमें असिद्ध है, और ज्ञातत्वाभावरूप अज्ञातत्व प्रथम विशेषणसेही निरस्त है तथापि प्रथमसे प्रागभावका व्युदास होनेसे अत्यन्ताभावके व्युदासके लिए चतुर्थ है, ऐसा समझना चाहिए।

ननु—कथं ज्ञानाश्रयगतत्वमज्ञानस्य ? वृत्त्यादिरूपस्य ज्ञानास्याज्ञानाश्रयचिदनाश्रितत्वादिति—चेन्न; अन्तःकरणस्य चिदाश्रितत्वेन तद्वृत्तेस्तत्प्रतिफलितचैतन्यस्य वाज्ञानस्य चिदाश्रितत्वसंभवात् । किंचिदवच्छिन्नतदाश्रितस्यापि तदाश्रितत्वानपायात् कर्णशष्कुल्यवच्छिन्नाकाशाश्रितस्य शब्दस्याकाशाश्रितत्ववत् । एवञ्च भावाभावसाधारणमावरणमितिमतेन साध्यमुपपादितम् । अभावो नावरक इति सिद्धान्ते तु साध्यद्वये तात्पर्यम् । स्वप्रागभावातिरिक्तस्वनिवर्त्यस्वदेशगतवस्त्वन्तरपूर्वकमित्येकम् स्वविषयावरण 'स्वनिवर्त्यस्वदेशगतवस्त्वन्तर' पूर्वकमित्यपरमिति न किंचिदसमञ्जसम् ।

शङ्कते नन्विति । अज्ञानस्य=अज्ञानको ज्ञानाश्रयगतत्व कैसे है=जिस अधिकरणमें ज्ञान रहता है उस अधिकरणमें अज्ञान कैसे है, इसी अर्थको स्पष्ट करते हैं वृत्त्येति । वृत्त्यादिरूप जो ज्ञान है उस ज्ञानको अज्ञानका आश्रय जो चित् उसके अनाश्रित होनेसे इति चेन्न, क्यों ? अन्तःकरणको चित्के आश्रित होनेसे तद्वृत्तेः=अन्तःकरणकी वृत्तिरूप ज्ञानको या तत्फलित=अन्तःकरणकी वृत्तिमें प्रतिफलित चैतन्यरूप ज्ञानको चिदाश्रितत्वका सम्भव होनेसे जैसे कर्णशष्कुल्यवच्छिन्न जो आकाश तादृशाकाशाश्रित शब्दको आकाशाश्रितत्ववहै, तैसे अन्तःकरणावच्छिन्न जो चैतन्य तादृशचैतन्याश्रितकोभी चैतन्याश्रितत्व है । इस रीतिसे भावाभावसाधारण आवरण है इस मतसे साध्यव्युत्पादित हुआ । और अभाव आवरक नहीं है । इस अस्मदीय सिद्धान्तमें तो साध्यद्वयमें तात्पर्य है 'स्वप्रागभावातिरिक्तस्वनिवर्त्यस्वदेशगतवस्त्वन्तरपूर्वकत्व' यह एक साध्य है 'स्वविषयावरणस्वनिवर्त्यस्वदेशगतवस्त्वन्तरपूर्वकत्व यह दूसरा साध्य है' इस रीतिसे कुछभी अनुपपन्न नहीं है ।

हेतौ च प्रकाशकत्वं प्रकाशकपदवाच्यत्वम् अप्रकाशविरोधित्वं वा ज्ञानालोकयोः साधारणम् । यद्यपि प्रकाशकपदवाच्यत्वम् नामकरणवशात् कस्मिंश्चित् पुरुषेऽप्यस्ति तथापि प्रकाशशब्देन शास्त्रे सर्वदेशकालयोर्वा व्यवह्रियमाणत्वं तद्विवक्षितम् । अथवा अस्तु साधारणम् । अप्रकाशितार्थगोचरेति विशेषणात् व्यभिचारव्युदासः । अप्रकाशितत्वं च न प्रकाशत इतिव्यवहारगोचरत्वम् तच्च—स्वप्रकाशचैतन्येप्यस्तीत्युपपादितम्। एवं निरुक्ताप्रकाशविरोधित्वमपि ज्ञानालोकयोः प्रत्यक्षसिद्धम् । उक्तं च विवरणे—

'ज्ञानप्रकाश्यत्वादज्ञानविरोधित्वादन्यदेव' आलोकप्रकाश्यत्वं तमोविरोधित्वं नामेति। अत उभयोरेव साक्षादप्रकाशविरोधित्वसम्भवान्नेन्द्रियसन्निकर्षादौ व्यभिचारः। एवञ्चाप्रकाशितार्थगोचरत्वे सति प्रकाशशब्दवाच्यत्वात्, अप्रकाशविरोधित्वाद्वा हेतुः पर्यवसितः।

और हेतुमें प्रकाशकत्व=प्रकाशपदवाच्यत्वरूप है या अप्रकाशविरोधित्वरूप है ये दोनों ज्ञान तथा आलोक इन दोनोंमें साधारण हैं। यद्यपि नामप्रकरणप्रयुक्त प्रकाशपदवाच्यत्व किसी पुरुषमेंभी है तथापि प्रकाशक शब्दसे शास्त्रमें या सर्वदेश सर्वकालमें व्यवह्रियमाणत्व, विवक्षित है। अथवा प्रकाशशब्दवाच्यत्व रहो पुरुषसाधारण, अप्रकाशितार्थगोचर इस विशेषणसे व्यभिचारका व्युदास है। और 'न प्रकाशते' इत्याकारक जो व्यवहार तादृश व्यवहारगोचरत्वका नाम है अप्रकाशितत्व, तच्च=उक्त स्वरूप अप्रकाशितत्व स्वप्रकाश चैतन्यमें भी है यह उपपादित होचुका है इस प्रकारसे निरुक्त जो अप्रकाश तादृश अप्रकाशका विरोधित्व भी ज्ञान तथा आलोक इन दोनोंमें प्रत्यक्षसे सिद्ध है। कहा भी है विवरणमें, ज्ञानप्रकाश्यत्वसे और अज्ञानविरोधित्वसे अन्यही तमोविरोधित्व नाम आलोकप्रकाश्यत्व है। अतः ज्ञान तथा आलोक इन दोनोंकोही साक्षात् अप्रकाशके विरोधित्वका संभव होनेसे इन्द्रियसन्निकर्षादिमें व्यभिचार नहीं है क्योंकि इन्द्रियसन्निकर्षादि परम्परासे अप्रकाशके विरोधी हैं। ऐसा होनेपर अप्रकाशितार्थगोचरत्वे सति प्रकाशशब्दवाच्यत्व या अप्रकाशविरोधिप्रकाशत्वरूप हेतु पर्यवसित हुआ।

विपर्ययविषयस्तु नाज्ञातः, विपर्ययान्यकालासत्त्वेन तस्यानिर्वचनीयस्य मानगोचरत्वाभावेन प्रकाशप्राक्कालसत्त्वघटिताप्रकाशितत्वासंभवात्, अतएव स नाप्रकाशविरोधी, स्वविषये अप्रकाशाभावात्, अधिष्ठानाप्रकाशस्तु तस्य जनक एव। स्मरणे च व्यभिचाराभावः स्पष्टः। अनुकूलतर्कश्च त्वदुक्तमर्थं न जानामीति प्रतीत्यन्यथानुपपत्त्यादिरूपः प्रागुक्त एव। एतेन गोशब्दवाच्यत्वेन पृथिव्या अपि शृङ्गित्वानुमानापातोऽपास्तः। तत्रानुकूलतर्काभावात्, अज्ञानस्य स्वरूपेणाज्ञानाविषयत्वेऽपि तद्भावत्वादिकमज्ञानविषयो भवत्येव तस्याज्ञानग्राहकसाक्ष्यग्राह्यत्वात्। अन्यथा तत्र विवादो न स्यात्।

अप्रकाशितार्थगोचरत्वेसति, इस विशेषणका व्यावर्त्य—बतलाते हैं विपर्ययेति। विपर्यय=मिथ्याज्ञानका विषयतो अज्ञात नहीं है, विपर्ययका अधिकरणजो काल उस कालसे अन्य कालमें न होनेसे, उस अनिर्वचनीयको मानगोचरत्वका अभाव है और मानगोचरत्वके अभावसे प्रकाशसे जो प्राक्काल उस प्राक्कालमें जो सत्त्व तादृश सत्त्वसे घटित जो अप्रकाशितत्व उस अप्रकाशितत्त्वके असम्भवसे, अत एव=अप्रकाशितत्वके अभावसेही स=विपर्यय अप्रकाशका विरोधी नहीं है, स्वविषयमें अप्रकाशका अभाव होनेसे। और अधिष्ठानका अप्रकाशतो तस्य=विपर्ययका जनकही है विपर्ययका नाश्य नहीं, और अप्रकाशविरोधिप्रकाशत्वात् इस द्वितीय हेतुका स्मरणमें तो व्यभिचाराभाव स्पष्टही है, तथा इस अनुमानमें 'त्वदुक्तमर्थं न जानामि' इत्या-

कारिका जो प्रतीति तादृश प्रतीत्यन्यथानुपपत्यादिरूप अनुकूलतर्क पहिलेही कहागया है, एतेन=वक्ष्यमाण हेतुसे गोशब्दवाच्यत्वेन पृथिवीकेभी शृङ्गित्वानुमानका आपात अपास्त हुआ एतेन शब्दका अर्थ करते हैं-तत्रेति । तत्र=उक्तानुमानमें अनुकूलतर्कका अभाव होनेसे । और अज्ञानको स्वरूपसे अज्ञानका अविषयत्व होनेपरभी अज्ञानका धर्म भाववत्वादिकतो अज्ञानका विषय होताही है, अन्यथा=यदि भावत्वादिकभी अज्ञानका विषय न होतो तत्र=भावत्वादिमें विवाद न होगा ।

एवं प्रमायाः=स्वविषयावरणभावपूर्वकत्वमपि न प्रमास्वरूपग्राहकसाक्षिग्राह्यम् । तथा च तद्ग्राहिकाया एतस्या अनुमितेः साध्यसाधनोभयाधिकरणत्वात् न कोऽपि दोषः दृष्टान्ते चान्धकाराव्यवहितोत्पत्तिकत्वं विशेषणम् तेन न प्रथमपदवैयर्थ्यं नवा द्वितीयादिप्रमायां साध्यसाधनवैकल्यम् । विस्तरेण चान्यत्र व्युत्पादितमस्माभिः ।

एवं प्रमानिष्ठ जो स्वविषयावरणपूर्वकत्व है वहभी प्रमाके स्वरूपका ग्राहक जो साक्षि है उस साक्षीसे ग्राह्य नहीं है । फलतः तद्ग्राहिकायाः=प्रमानिष्ठ स्वविषयावरणपूर्वकत्वकी ग्राहिका जो अनुमिति है उस अनुमितिको साध्यसाधन-उभयाधिकरणत्व होनेसे असिद्धि या बाध कोई दोषनहीं । और दृष्टान्तमें अन्धकाराव्यवहितोत्पत्तिकत्व विशेषण है, इसलिए प्रथम पदका वैयर्थ्य नहीं और द्वितीयादिप्रमामें साध्यका तथा साधनका वैकल्य नहीं । विस्तरसे अन्यत्र व्युत्पादित है यह अर्थ हमसे ।

ननु—अनादित्वे सति भावत्वमभावविलक्षणत्वं वा, न निवर्त्यनिष्ठम् अनादिभावमात्रवृत्तिधर्मत्वात्, अनाद्यभावमात्रवृत्तित्वाद्वा, आत्मवत् । निवर्त्यत्वं वा नानादिभावनिष्ठम् अनाद्यभावविलक्षणनिष्ठं नेति वा, निवर्त्यमात्रवृतित्वात् प्रागभाववत्, प्रमाणज्ञानं वा अनाद्यभावान्यावाद्यनिवर्त्तकम् ज्ञानत्वात् भ्रमवदित्यादिना सत्प्रतिपक्षता; कृत्यभावमात्रेणाकृतस्य कृतिवत् पूर्वप्रकाशाभावमात्रेणाप्रकाशितस्य प्रकाशोपपत्तेरप्रयोजकत्वं चेति चेन्न, अनुकूलतर्काभावेनाप्रयोजत्वात् सिद्धान्तिहेतोश्चानुकूलतर्कसद्भावेन साध्यव्याप्यत्वे निश्चिते सत्प्रतिपक्षाप्रयोजकत्वादीनामनवकाशात् । अनादिभावत्वस्य निवर्त्यावृत्तित्वेऽप्यविद्याया भावविलक्षणाया निवर्त्यत्वोपपत्तेराद्यानुमानेनाविरोधश्च ।

अब द्वैती सत्प्रतिपक्षका उद्भावन करता है न चेति । अनादित्वसे विशिष्ट भावत्व पक्ष है, या अनादित्वसे विशिष्ट अभावविलक्षणत्व पक्ष है, वैशिष्ट्य सामानाधिकरण्यरूप है, निवर्त्यनिष्ठत्वाभावसाध्य है, अनादिभावमात्रवृत्तिधर्मत्व या अनादि-अभावविलक्षणमात्रवृत्तित्व हेतु है, आत्मत्व दृष्टान्त है आत्मत्वमें साध्य तथा हेतु दोनों हैं। या निवर्त्यत्व यह पक्ष है, और अनादिभावनिष्ठत्वाभाव या अनादित्वविशिष्ट जो अभावविलक्षण तन्निष्ठत्वाभाव साध्य है निवर्त्यमात्रमें वृत्ति होनेसे प्रागभावत्ववत्, प्रागभावत्वमें अनादिभावनिष्ठत्वाभाव भी है और अनाद्यभावविलक्षणनिष्ठत्वाभाव भी है, और निवर्त्यमात्र वृत्तित्व भी है, या अनादित्व आवरणनिष्ठ नहीं है अनादिभा-

त्रमें वृत्ति होनेसे, प्रागभावत्ववत्। प्रागभावमें साध्य हेतु दोनों हैं। या प्रमाणज्ञान पक्ष है, और अनादि जो अभाव उससे अन्य जो अनादि तादृश अनादिका निवर्त्तकत्वाभाव साध्य है, ज्ञानत्व हेतु है और भ्रमवत् यह दृष्टान्तका निर्देश है=भ्रममें अनादिभूत स्वप्रागभावका निवर्तकत्व है उससे अतिरिक्त अनादिका निवर्त्तकत्व नहीं है और ज्ञानत्व हेतु भी है इत्यादिसे आपके अनुमानमें सत्प्रतिपक्षता है। और जैसे कृतिके अभावमात्रसे अकृत जो घट हैं उस घटकी कृति पूर्वमें घटाविषयककृत्यभावसेही उपपन्न होती है कृतिके उपपन्न करनेके लिए कृतिविषयमें कृतिसे पूर्व भावरूपा कृति नहीं मानी जाती है, तैसेही, पूर्वमें प्रकाशाभावमात्रसे अप्रकाशित जो वस्तु है उसके प्रकाशकी उपपत्ति हो सकती है भावरूपाप्रकाशके माननेकी आवश्यकता नहीं, अतः भवदीय अज्ञानसाधकानुमानमें अप्रयोजकत्व है। इति चेन्न; क्यों? आपके अनुमानोंमें अनुकूल तर्कके न होनेसे अप्रयोजकत्व है। और अनुकूलतर्कके सद्भावसे सिद्धान्तिहेतुनिष्ठसाध्यव्याप्यत्वके निश्चित होनेपर सत्प्रतिपक्ष तथा अप्रयोजकत्वादिकोंको अवकाश न होनेसे। और अनादि भावत्वको निवर्त्यमें वृत्ति न होनेपरभी भावसे विलक्षण जो अविद्या है उस अविद्याके निवर्त्यकी उपपत्तिसे प्रथम अनुमानके साथ अविरोधभी है।

द्वितीये त्वनाश्रितमात्रवृत्तित्वमुपाधिः। तृतीयचतुर्थयोः सकलनिवर्त्यावृत्तित्वमुपाधिः। पञ्चमे सकलानादिवृत्तित्वमुपाधिः। षष्ठे प्रतियोग्यप्रसिद्ध्यासाध्याप्रसिद्धिरिति च दूषणानि। तत्त्वप्रदीपिकोक्तं च—चैत्रप्रमा, चैत्रगतप्रमाप्रागभावातिरिक्तानादिनिवर्त्तिका, प्रमात्वात् मैत्रप्रमावत्; विगीतो विभ्रमः एतज्जनकाबाध्यातिरिक्तोपादानकः विभ्रमत्वात् सम्मतवदिति। अत्राद्ये—सुखादिज्ञानेषु न बाधः अन्तःकरणवृत्तेरेव प्रमापदेनोक्तेः। चैत्रगतत्वं च नानादेर्विशेषणम्, मैत्रप्रमायाश्चैत्रनिष्ठानादिनिवर्त्तकत्वाभावेन दृष्टान्ते साध्यवैकल्यापातात्, किन्तु प्रमातदभावयोरन्यतरस्य, प्रमायाश्चात्मगतत्वं प्राग्व्याख्यातं साध्ये तु प्रमापदमुपरञ्जकमेव। यदि त्वभावे प्रागितिविशेषणं नास्ति तदाभावरूपाज्ञानस्यापि स्वाभावाभावत्वेन तदतिरिक्तानादिनिवर्त्तकत्वे बाधवारणाय।

द्वितीयेतु=अनादित्वे सति अभावविलक्षणत्वम् न निवर्त्यनिष्ठम्, अनाद्यभावविलक्षणमात्रवृत्तित्वात्, आत्मत्ववत् इस द्वितीयानुमानमें अनाश्रितमात्रवृत्तित्व उपाधि है। आत्मत्वमें निवर्त्यनिष्ठत्वाभावरूपसाध्य है, और अनाश्रितमात्रवृत्तित्वभी है अतः उपाधि साध्यकी व्यापक है और साधन अनादित्वे सति अभावविलक्षणत्वमें है परन्तु वहाँ अनाश्रितमात्रवृतित्व नहीं अतः साधनकी अव्यापक है तृतीयचतुर्थयोः=निवर्त्यत्वं वा नानादिभावनिष्ठं अनाद्यभावविलक्षणनिष्ठं नेति वा निवर्त्यमात्रवृत्तित्वात् प्रागभावत्ववत्, ये जो दो अनुमान हैं 'यद्यपि निवर्त्यमात्रवृत्तित्वरूप हेतुके एक होनेसे यहाँपर अनुमानमें द्वित्व अनुपपन्न सा है फिर भी हेतुकी आवृत्तिसे द्वित्व सम्पादनीय है इन दोनोंमें सकलनिवर्त्यावृत्तित्व उपाधि है=प्रागभावत्वको प्रागभावमात्रमें वृत्ति होनेसे उसमें सकलनिवृत्त्यऽवृत्तित्व है अतः उपाधि साध्यकी व्यापक है

और निवर्त्यमात्रवृत्तित्वरूप हेतु निवर्त्यत्वके ऊपर रह गया है और वहाँ सकलनिवर्त्यावृत्तित्वरूप उपाधि नहीं क्योंकि निवर्त्यत्वमें सकलनिवर्त्यवृत्तित्वही है अतः साधनकी अव्यापक है। पञ्चमे=अनादित्वं वा नावरणनिष्ठं, अनादिमात्रवृत्तित्वात् प्रागभावत्ववत्, इस पञ्चमानुमानमें सकलानाद्यवृत्तित्व उपाधि है=प्रागभावत्वमें सकलानादिमें अवृत्तित्व है अतः साध्यकी व्यापक है, और अनादिमात्रवृत्तित्व तो अनादित्वके ऊपरभी रहता है, परन्तु वहाँ सकलानादिमें अवृत्तिरूप उपाधि नहीं है, क्योंकि अनादित्व तो सकलानादिमें वृत्ति है, अतः उपाधि-साधनकी अव्यापक है। षष्ठे=प्रमाणज्ञानं वा, अनाद्यभावान्यानाद्यनिवर्त्तकम् ज्ञानत्वात् भ्रमवत् इस छठे अनुमानमें अनादिरूप जो अभाव तादृश अभावसे भिन्न जो अनादि तादृश अनादिका निवर्त्तकरूप जो प्रतियोगी उस प्रतियोगीकी अप्रसिद्धिसे फलतः अनुकूलतर्काभावके साथ आपके अनुमानोंमें ये उपाधिरूप दूषण हैं। तत्त्वप्रदीपिकामें उक्तानुमानभी अज्ञानके सद्भावमें प्रमाण है चैत्र=चैत्रीयप्रमा, चैत्रगत जो प्रमाका प्रागभाव उस प्रागभावसे अतिरिक्त जो अनादि तादृश अनादिकी निवर्त्तिका है, प्रमा होनेसे मैत्रप्रमावत्=मैत्रप्रमामें प्रमात्वरूप हेतु है, और चैत्रप्रमाके प्रागभावसे अतिरिक्त जो अनादि मैत्रप्रमाका प्रागभाव उसकी निवर्त्तिका है फलतः मैत्रीयप्रमाके प्रागभावको लेके दृष्टान्तमें साध्यप्रसिद्धि है और अज्ञानको लेके पक्षमें साध्यका पर्यवसान है। विगीतो विभ्रमः=' इदं रजतम् ' इत्यादिरूप विभ्रम, एतज्ज्ञानजनक=एतद्भ्रमजनक जो अबाध्य उस अबाध्यसे अतिरिक्तोपादानक है=उक्तरूप भ्रमजनक जो अबाध्य हो उस अबाध्यसे भिन्न जो कोई भी पदार्थ विशेष है तदुपानकत्व इसमें है, विभ्रम होनेसे सम्मतवत्=अन्यदीय भ्रमवत्, दृष्टान्तमें एतज्ज्ञानजनकाबाध्यातिरिक्तरूप पुरुषान्तररूप पदार्थ और तदुपादानकत्व वादीकोभी इष्ट है यद्यपि पुरुषान्तर अबाध्यातिरिक्त नहीं है, तथापि एतद्भ्रमजनक जो अबाध्य उस अबाध्यसे अतिरिक्त तो है ही। अत्र=इन दोनों अनुमानोंमें आद्यनिमित्तक सुखदुःखादिके ज्ञानोंमें व्यभिचार नहीं है क्यों? अन्तःकरणकी वृत्तिकीही प्रमापदसे उक्ति होनेसे—साक्षिसाधारण उक्ति होती तो व्यभिचार होता। और चैत्रगतत्व अनादिका विशेषण नहीं है, क्यों? मैत्रप्रमाको चैत्रनिष्ठ जो अनादि तादृश अनादिके निवर्त्तकत्वके अभावसे दृष्टान्तमें साध्याभावका आपात होनेसे। किन्तु प्रमा तथा प्रमाका प्रागभाव इन दोनोंमें अन्यतरका विशेषण है। और प्रमाका आत्मगतत्व पूर्वमें व्याख्यात है—इसी प्रकरणमें स्वदेशगतविशेषणनिरूपणावसरमें व्याख्यात है। और साध्यमें प्रमापद उपरञ्जक=स्वरूपमात्रबोधक अव्यावर्त्तक विशेषणही है। और यदि अभावमें ' प्राक् ' यह विशेषण नहीं है तब तो भावरूप अज्ञानकोभी स्वाभावाभावत्व होनेसे तदतिरिक्त=अभावरूप—अज्ञानातिरिक्तका निवर्त्तकत्व होनेपर बाधवारणके लिए प्रमा पद है।

चैत्रासमवेतत्वं चैत्रान्यसमवेतत्त्वं च नोपाधिः; चैत्रसुखादौव्यभिचारेण साध्याव्यापकत्वात्। नच चैत्रगतस्याभावातिरिक्तस्यानादेर्निवर्त्तिका न प्रमात्वात् मैत्रप्रमादिवत् इति सत्प्रतिपक्षः प्रतियोगिप्रसिद्ध्यप्रसिद्धिभ्यां व्याहतेः। चैत्रगतप्र-

माभावातिरिक्ताभावनिवर्त्तकत्वं तु नोपाधिः, चैत्रगतप्रमाभावातिरिक्तस्य स्वजन्यव्यवहारप्रागभावस्य निवर्तकतया पक्षे साधनव्यापकत्वात्। विपक्षसाधकसत्वाच्च नाभाससाम्यम्। अत एव द्वितीयानुमानमपि सम्यक्। नच विगीतो विभ्रमः, एतज्ज्ञानजनकबाध्यातिरिक्तोपादानकः विभ्रमत्वात् सम्मतवदिति सत्प्रतिपक्ष इति–वाच्यम्; बाध्यस्य त्वन्मते अजनकत्वात्, साध्याप्रसिद्धेः ब्रह्माविद्योभयोपादानकत्वेनाविरोधाच्च।

उक्त चित्सुखाचार्यीय अनुमानमें, चैत्रासमवेतत्व तथा चैत्रान्यसमवेतत्व उपाधियाँ नहीं हैं क्यों? चैत्रसुखादिमें व्यभिचारसे साध्यका अव्यापकत्व होनेसे=चैत्रीयसुखादिमें चैत्रप्रमाप्रागभावातिरिक्त–अनादिभूतस्वप्रागभावनिवर्तकत्वरूप साध्य है परन्तु चैत्रासमवेतत्व तथा चैत्रान्यसमवेतत्वरूप उपाधियाँ नहीं हैं अतः उपाधियोंको साध्याव्यापकत्व है। सत्प्रतिपक्षकी शङ्का करते हैं नचेति। चैत्रीय प्रमा, अभावसे अतिरिक्त जो चैत्रगत अनादि तादृश अनादिकी निवर्त्तिका नहीं है, प्रमा होनेसे मैत्रसमवेत प्रमाकी नांई यह सत्प्रतिपक्ष है नच=नहीं है, क्यों? प्रतियोगीकी प्रसिद्धि तथा अप्रसिद्धि इन दोनोंसे व्याघात होनेसे=अभावातिरिक्तानादिनिवर्त्तकत्व यदि प्रसिद्ध है तो हमारे इष्टकी सिद्धि है यदि अप्रसिद्ध है तो उसका निषेध अनुपपन्न है। चैत्रगत जो प्रमाभाव उस प्रमाभावसे अतिरिक्त जो अभाव तादृशअभावनिवर्त्तकत्व उपाधि नहीं है, क्यों? चैत्रप्रमारूप पक्षमें चैत्रप्रमाभावसे अतिरिक्त जो स्वजन्य व्यवहारका प्रागभाव है तादृश प्रागभावका निवर्त्तकत्व होनेसे पक्षमें साधनका व्यापकत्व होनेसे–स्वशब्दसे चैत्रप्रमाका ग्रहण है। और प्रमापक्षक उक्तानुमानमें विपक्षमें बाधकका सत्त्व होनेसे आभाससाम्यभी नहीं है=‘न जानामि’ इत्यादिरूप अनुभव ज्ञानाभावविषयक नहीं है, यह कह चुके हैं, और शुक्त्यादिमें प्रतीयमान जो रूप्यादि हैं उन्होंका परिणामि उपादान लाघवसे शुक्त्यादिनिष्ठ है। और अभावसे अतिरिक्त अनादिका ज्ञानसे नाश्यत्व–‘ज्ञानेन अज्ञानं नष्टम्’ इस अनुभवसे सिद्ध है, इत्यादिरूप–अनुकूल तर्कोंसे हमारा अनुमान युक्त है और तुम्हारे अनुमानमें कोईभी अनुकूल तर्क नहीं है यह भाव है। अतएव=किसी भी प्रकारकी अनुपपत्ति न होनेसेही द्वितीयानुमान=चित्सुखाचार्यीय द्वितीयानुमान भी सम्यक् है। सत्प्रतिपक्षं शङ्कते नचेति। विगीतविभ्रम, एतद्भ्रमजनक जो बाध्य उस बाध्यसे अतिरिक्तोपादानक है, विभ्रम होनेसे, पुरुषान्तरीयविभ्रमवत् यह सत्प्रतिपक्ष है इति नच वाच्यम् क्यों? बाध्यको तुम्हारे मतमें अजनकत्व होनेसे साध्यकी अप्रसिद्धिसे, और ब्रह्म तथा अविद्या एतदुभयोपादानकत्व होनेसे अविरोध भी है–बाध्यरूपाविद्यातिरिक्तब्रह्मोपादानकत्व होनेसे अविरोधभी है।

नव्यास्तु विमता–प्रमा, प्रमाभावातिरिक्तस्यानादेर्निवर्त्तिका कार्यत्वात् घटवत्; भ्रमाद्युत्तरप्रमा, स्वाभावातिरिक्तस्वविरोधिनिवर्त्तिका प्रमात्वात्, भ्रमोत्तरप्रमावत्, ज्ञानत्वं, स्वविषयावरणनिवर्त्तकनिष्ठम्, अप्रकाशितार्थप्रकाशवृत्तित्वात् आलोकत्वात्, अनित्यज्ञानं, अभात्वानधिकरणस्वविरोधिसमानाधिकरणम्, प्रयत्नान्यत्वे सति सविषयत्वे

सत्यनित्यत्वात् अनित्येच्छावत्; सा हि तादृग्द्वेषसमानाधिकरणा । न चैतेषु—अप्रयोजकत्वशङ्का विपक्षबाधकतर्कस्योक्तत्वात् । एवमन्यदप्यूहनीयम् । ज्ञानविरोधित्वं, अनादिभावसमानाधिकरणम्, सकलज्ञानविरोधिवृत्तित्वात्, दृश्यत्ववत् । यद्वा—अनाद्यभावविलक्षणत्वं ज्ञानविरोधिवृत्ति—अनाद्यभावविलक्षणमात्रवृत्तित्वात् अभिधेयत्ववत्—इति एवमभावविलक्षणाज्ञाने अनुमानान्यूहनीयानि ॥

इत्यद्वैतसिद्धौ अविद्यानुमानोपपत्तिः ॥

नवीनलोग तो इस रीतिसे अज्ञानसाधक प्रयोग दिखलाते हैं,—विमता प्रमा, प्रागभावसे अतिरिक्त जो अनादि उस अनादिकी निवर्त्तिका है, कार्य होनेसे घटवत् । दृष्टान्तमें घटके प्रागभावको लेके लक्षण समन्वय है, और पक्षमें अज्ञानको लेके । भ्रमसे अनुत्तर जो प्रमा है वह प्रमा, स्वाभावसे अतिरिक्त जो स्वविरोधि उस स्वविरोधिकी निवर्त्तिका है, प्रमा होनेसे भ्रमसे उत्तरमें जायमान प्रमावत्; भ्रमोत्तर प्रमारूप दृष्टान्तमें साध्यसमन्वय भ्रमको लेकर है और पक्षमें अज्ञानको लेकर, ज्ञानत्व स्वविषयका जो आवरण तादृश आवरणका जो निवर्त्तक तादृश निवर्त्तकनिष्ठ है, अप्रकाशित जो अर्थ उस अर्थका जो प्रकाश उस प्रकाशमें वृत्ति होनेसे आलोकत्वकी तरह, अन्धकारको लेके दृष्टान्तमें साध्यसिद्धि है और अज्ञानको लेकर पक्षमें । अनित्यज्ञान, अभावत्वानधिकरण जो स्वविरोधि उस स्वविरोधिके समानाधिकरण है, प्रयत्नसे भिन्न होके सविषयत्वविशिष्ट अनित्यत्व होनेसे, अनित्य इच्छावत्; साहि=वह अनित्येच्छा तादृशद्वेषसमानाधिकरणा है अर्थात् दृष्टान्तमें साध्य-प्रसिद्धि द्वेषको लेके है और पक्षमें अज्ञानको लेके इन अनुमानोंमें अप्रयोजकत्वकी शङ्का नहीं है क्यों ? विपक्षमें बाधक तर्कको उक्त होनेसे । इस रीतिसे अन्यभी कल्पनीय है ज्ञानविरोधित्व, अनादि जो भाव तद्वृत्तिजो अनादिभावत्व उस अनादिभावत्वके समानाधिकरण है सकल जो ज्ञानके विरोधि उनमें वृत्ति होनेसे दृश्यत्ववत् । यद्वा—अनाद्यभावविलक्षणत्व ज्ञानके विरोधिमें वृत्ति है, अनादि होके जो अभाव विलक्षणमात्र उसमें वृत्ति होनेसे अभिधेयत्ववत् । इस रीतिसे अभावसे विलक्षण जो अज्ञान उस अज्ञानमें अनुमान कल्पनीय हैं ।

इति सरलायामविद्यानुमानोपपत्तिः ।

अथाज्ञानवादे श्रुत्युपपत्तिः ।

एवं श्रुतयश्च । तत्र छान्दोग्ये अष्टमाध्याये—तद्यथापि हिरण्यंनिधिनिहतमक्षेत्रज्ञा उपर्युपरि संचरन्तो न विन्देयुरेवमेवेमाः सर्वाः प्रजा अहरहर्गच्छन्त्य एतं ब्रह्मलोकं न विन्दन्त्यनृतेन प्रत्यूढा इति श्रुतिर्ब्रह्मज्ञानप्रतिबन्धकत्वेनानृतं ब्रुवाणा तादृगज्ञाने प्रमाणम् । नच—ऋतशब्दस्य, "ऋतंपिबन्ता" वित्यत्र सत्कर्मणि प्रयोगदर्शनात्—"ऋतं सत्यं तथाधर्म" इति स्मृतेश्च ऋतशब्दस्य सत्कर्मपरत्वात् अनृतशब्दस्य दुष्कर्मपरत्वमिति—वाच्यम्, उत्तरत्र 'य आत्मापहतपाप्मेत्यादिना आत्मनोऽपहतपाप्मत्वप्रतिपाद-

नेन दुष्कर्मप्रत्यूढत्वविरोधात्' सुषुप्तौ कर्ममात्रनाशे दुष्कर्मणोऽप्यभावात् कारणात्मनावस्थाने चाज्ञानस्यावश्यकत्वात् कर्मण आवरणत्वानुपपत्तेश्च । ब्रह्मवेदनप्रतिबन्धकतया ह्यनादिब्रह्मावारकं ज्ञाननिवर्त्यं वाच्यम् । तथा कर्मैव प्रधानमपि नानृतपदाभिधेयम् तयोर्ज्ञानानिवर्त्यत्वात् ।

अथ सरलायामज्ञानवादे श्रुत्युपपत्तिः ।

एवं श्रुतियाँभी अज्ञानके सद्भावमें प्रमाण हैं, तत्र=उन प्रमाणीभूत श्रुतियोंमें छान्दोग्यके अष्टमाध्यायमें यह श्रुति है,—जैसे क्षेत्रके मर्मको न समझनेवाले लोग निधिनिहित हिरण्यके ऊपर चलते हुए भी हिरण्यको प्राप्त नहीं होते हैं तैसे अनृतेन=अज्ञानसे प्रत्यूढाः=अन्धीभूत=अस्फुरद्ब्रह्मस्वरूपक यह सम्पूर्ण प्रजा रोज रोज ब्रह्मस्वरूपको प्राप्त होती हुई भी ब्रह्मको नहीं प्राप्त होती है—ब्रह्मको नहीं जानती है (छां० ८।३।२) यह श्रुति ब्रह्मज्ञानप्रतिबन्धकत्वेन अनृतपदार्थको कहती हुई तादृगज्ञाने=अनादिभावरूपाज्ञानमें प्रमाण है । द्वैती शङ्कते नचेति । ऋतशब्दका 'ऋतंपिबन्तौ सुकृतस्यलोके' (कठ० ३।१) इस श्रुतिमें सत्कर्ममें प्रयोगके देखनेसे और 'ऋतं सत्यं तथा धर्मः' (म० भा० शां०) इस स्मृतिसेभी ऋतशब्दको सत्कर्मपरत्व होनेसे अनृतशब्दको दुष्कर्मपरत्व है । इति न च वाच्यम्; क्यों ? उत्तरत्र=इस वाक्यसे उत्तरमें जो आत्मा है वह अपहत पाप्मा है (छां० ८।७।१) इत्यादिसे आत्माके अपहतपाप्मत्व=पापशून्यस्वभावत्वके प्रतिपादनसे दुष्कर्मप्रयुक्त प्रत्यूढत्वके विरोधसे; और सुषुप्तिमें सर्वकर्मका नाश होनेपर दुष्कर्मकेभी अभावसे और कारणात्मना कार्योंका अवस्थान होनेपर तो अज्ञानका आवश्यकत्व है, और कर्मोंसे आवरणकी अनुपपत्तिसे भी आपका समझा हुआ अर्थ असङ्गतही है, ब्रह्मविषयक जो वेदन=ज्ञान तादृशज्ञानप्रतिबन्धकतया ही अनादि ब्रह्मावारक ज्ञाननिवर्त्य पदार्थ वाच्य है फलतः कर्मकी नाईं प्रधानभी अनृतपदका अभिधेय नहीं है तयोः=प्रधान तथा कर्म इन दोनोंको ज्ञानसे अनिवर्त्य होनेसे ।

ज्ञाननिवर्त्यत्वे च 'भूयश्चान्ते विश्वमायानिवृत्तिरित्यादिश्रुतिर्मानम्, न चात्र निवृत्तिस्तरणमात्रम्, 'मायामेतां तरन्ति ते' इति स्मृतेरिति—वाच्यम्' ज्ञानहेतुकतरणस्य निवृत्त्यतिरिक्तस्यासम्भवेन उभयोर्नाशमात्रार्थत्वात् । नच—तम आसीदित्यस्य सत्वप्रतिपादकस्य बाधकं विना पारमार्थिकसत्वपरत्वेन कथमावरणस्यानृतत्वमिति—वाच्यम् 'नासदासीन्नोसदासीदित्यनेन पारमार्थिकत्वतुच्छत्वयोर्निषेधेन व्यावहारिकसत्त्वपरत्वात् । नचानेन माया प्रतिपाद्यते, मायाशब्दार्थश्च नाज्ञानम्, मायिनो ब्रह्मणोऽज्ञानित्वे सर्वज्ञत्वनिरवद्यत्वादिश्रुतिविरोधादिति—वाच्यम्—उपाधेः प्रतिबिम्बपक्षपातित्वेनेश्वरासार्वज्ञ्याद्यापादनायोगात्, सार्वज्ञ्यैश्वर्यस्य मायानिबन्धनत्वाच्च । नच—'मय ज्ञान' इति धात्वर्थानुसारात् मायाकथमज्ञानमिति—वाच्यम् एवमेवैषा माया स्वाव्य-

तिरिक्तानि परिपूर्णानि क्षेत्राणि दर्शयित्वा जीवेशावाभासीकरोति माया चाविद्या च स्वयमेवभवतीतिश्रुत्या माया विद्ययोरैक्यप्रतिपादानान्मायाअज्ञानमेव घटचेष्टायामिति धातुजस्यापि घटशब्दस्य चेष्टावाचकत्वाभावादत्रापि ज्ञानवाचकत्वाभावात्।

और मायाके ज्ञानसे निवर्त्यत्वमें तो 'पुन अन्तमें सर्वमायाकी निवृत्ति होती है' (श्वेत० १।१०) यह श्रुति प्रमाण है। यहां निवृत्तिनाम तरणमात्रका है 'वे इस मायाको तरते हैं' (गी० ७।१४) इस स्मृतिसे इति न च वाच्यम् क्यों ? निवृतिसे अतिरिक्त ज्ञानहेतुक तरणके असम्भवसे उभयोः=श्रुतिस्मृति इन दोनोंको नाशमात्रार्थत्व होनेसे। 'तम था' (ऋ०सं०मण्ढत१० सूक्त १२९। मं०३) इस सत्त्वप्रतिपादक वाक्यको बाधकके विना पारमार्थिकसत्त्वपरत्त्व होनेसे आवरणका अनृतत्व कैसे है इति न च वाच्यम् क्यों ? 'असत् न था और सत् न था' (ऋ० मं० १० सू० १२९ मन्त्र १) इस श्रुति वाक्यसे पारमार्थिकत्व और तुच्छत्व इन दोनोंके निषेधसे 'तम था' इसवाक्यको व्यावहारिकसत्त्वपरत्त्व होनेसे। इस वाक्यसे माया प्रतिपादन की जाती है और माया शब्दका अर्थ अज्ञान नहीं है मायिक ब्रह्मकोभी अज्ञानित्व होनेपर सर्वज्ञत्व निर्दोषत्वादि श्रुतिओंके साथमें विरोध होनेसे इति न च वाच्यम् क्यों ? उपाधिको प्रतिबिम्बपक्षपातित्व होनेसे ईश्वरमें असार्वज्ञ्यादिके आपादनके अयोगसे; सर्वज्ञत्वादिरूप ऐश्वर्यको मायानिबन्धनत्व होनेसेभी=मायाशब्दका अर्थ अज्ञान नहीं होसकता है क्यों कि 'मायिनं तु महेश्वरम्' (श्वेत० ४।१०) इत्यादि श्रुतिमें ईश्वरको मायी कहा है जिसमें माया रहती है उसे मायी कहा जाता है यदि माया शब्दका अर्थ अज्ञान होगा तबतो मायी शब्दका अर्थ 'अज्ञानी' मानना पडेगा और इस विषयमें आप इष्टापत्ति कर नहीं सकते हैं क्योंकि अज्ञानित्व होनेपर सर्वज्ञत्वादिका अभाव ईश्वरमें सिद्ध होगा और श्रुतिसे ईश्वरमें सर्वज्ञत्वादि सिद्ध होते हैं फलतः इष्टापत्तिकरनेमें श्रुतिके साथ विरोध है यह शङ्का है; इसका उत्तर दिया गया कि ईश्वरको मायी या मायीकी जगहपर अज्ञानी कहनेमें कोई हर्ज नहीं परन्तु उपाधिको प्रतिबिम्बका पक्षपातित्व होनेसे 'जोकि वक्ष्यमाण है' अज्ञानप्रयुक्त अल्पज्ञत्त्वकी ईश्वरमें प्रसक्ति नहीं और ईश्वरमें जो सर्वज्ञत्वादि धर्म हैं वे सबके सब अज्ञानरूप मायासेही प्रतीत होते हैं, अर्थात् अज्ञानस्थित्यधीनस्थितिक हैं अतः ईश्वरमें अज्ञान तो माननाही पडेगा, विशेषता इतनी ही हैकि शुद्धसत्त्वप्रधानका ज्ञानकार्यसर्वज्ञत्वादिकाही ईश्वरमें भान होता है मलिनसत्त्वप्रधानका ज्ञानकार्यका नहीं। 'मय ज्ञाने' (भ्वा० आ० से०) इस धात्त्वर्थानुसारसे माया अज्ञान कैसे है इति न च वाच्यम् क्यों ? इसी प्रकारसे यह माया स्वसे अव्यतिरिक्त परिपूर्ण क्षेत्रोंको दिखलाकर 'जीव तथा ईश इन दोनोंको आभाससे करती हैं। और माया तथा अविद्या स्वयं ही होती है, (नृ० उ० ता० ९) इस श्रुतिसे माया तथा अविद्या इनदोनोंके अभेदके प्रतिपादनसे माया अज्ञानही है–'घट चेष्टायाम्' (भ्वा० आ० से०) इस धातुसे उत्पन्न होनेवालेभी घटशब्दको जैसे चेष्टावाचकत्वका अभाव है तैसे मायाशब्दको ज्ञानवाचकत्वके अभावसे।

मायाप्रज्ञावयुनमिति ज्ञानपर्याये निघण्टुकारवचनं च ज्ञानाकारपरिणामित्वाद्-ज्ञानस्योपपन्नम् । वृत्तिज्ञानस्याज्ञानाभिन्नत्वात्, अज्ञानस्यैवानिर्वचनीयविचित्रशक्तियोगात् न विचित्रशक्तिमति मायाशब्दप्रयोगानुपपत्तिः क्वचिन्मणिमन्त्रादौ तत्प्रयोगस्तूपचारात्, नच–शुक्तिरूप्यादौ मायाशब्दप्रयोगात् न मृषार्थोऽयमिति–वाच्यम्, वज्रादौ पृथिवीत्वादिव्यवहाराभावेऽपि पृथिवीत्ववत् व्यवहाराभावेऽपि मायात्वानपायात् ऐन्द्रजालिकादौ वहुशो मायाशब्दप्रयोगदर्शनाच्च, मायाया अज्ञानान्यत्वे ज्ञाननिवर्त्यत्वविरोधाच्च । नीहारतमःशब्दावप्यस्मिन्मते अज्ञानस्यावरकत्वाद्युज्यते नान्यमते । अनृतनीहारादि शब्दानां दुष्कर्मपरत्वेश्रुत्यन्तरोक्तजीवेशभेदकत्वोपादानत्वादिविरोधश्च । तस्मादनृतेनप्रत्यूढानीहारेणप्रावृत्ताः तम आसीत् 'मायां तु प्रकृतिंविद्यात्' 'अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णाम्' 'अविद्यायामन्तरे वर्त्तमानाः' भूयश्चान्तेविश्वमायानिवृत्तिरित्यादिश्रुतयो वर्णिता अज्ञाने प्रमाणमितिस्थितम् ॥

इत्यद्वैतसिद्धावविद्याप्रतिपादकश्रुत्युपपत्तिः ।

माया, प्रज्ञा, वयुन (नि० ३।९) यह जो ज्ञानपर्यायमें निघण्टुकारका वचन है वह अज्ञानको ज्ञानाकार परिणामित्व होनेसे उपपन्न है वृत्तिज्ञानको अज्ञानके साथ अभिन्न होनेसे अज्ञानकोही अनिर्वचनीयविचित्रोपादानकत्वकी शक्तिके योगसे विचित्रशक्तिमत्में मायाशब्दके प्रयोगकी अनुपपत्ति नहीं; और कहींपर मणिमन्त्रादिमें मायाशब्दका प्रयोग तो गौणी वृत्तिसे है। शुक्तिरूप्यमें मिथ्याशब्दका प्रयोग न होनेसे यह शब्द मृषार्थक नहीं है इति नच वाच्यम् क्यों? जैसे वज्रादिमें पृथिवीत्वादिका व्यवहार न होनेपरभी पृथिवीत्व है तैसे शुक्तिरूप्यादिमें मायात्वका व्यवहार न होनेपरभी मायात्वका अपाय न होनेंसे, और ऐन्द्रजालिकादि पदार्थोंमें बहुशः मायाशब्दके प्रयोगके देखनेसेभी । और मायाको अज्ञानसे भिन्न होनेपर ज्ञाननिवर्त्यत्वकी भी मायामें अनुपत्ति होगी । अस्मिन्मते=अनादिभावरूपाज्ञानपक्षमें अज्ञानको आवरक होनेसे नीहार तथा तम ये दोनों शब्दभी युक्त होते हैं। अन्यमतमें नहीं । अनृत तथा नीहारादि शब्दोंको दुष्कर्मपरत्व होनेपर अन्य श्रुतिओंमें उक्त जो अज्ञानमें जीवेशभेदकत्व और उपादानत्वादि उसके साथ विरोध होगा । फलतः अनृतेन प्रत्यूढा इत्यादि जो वर्णित श्रुतियाँ हैं वे अज्ञानमें प्रमाण हैं यह सिद्ध हुआ ।

इति सरलायामज्ञानवादे श्रुत्युपपत्तिः ।

अथ अज्ञानवादे अर्थापत्त्युपपत्तिः ।

(१) जीवस्यानवच्छिन्नब्रह्मानन्दाप्रकाशान्यथानुपपत्तिश्च तत्र मानम् नच जीवस्य ब्रह्मभेदेनैव तादृगप्रकाशोपपत्तिः; जीवब्रह्मभेदस्याग्रे निरसिष्यमाणत्वात् । नचानवच्छिन्नानन्दस्यापि प्रकाशमानप्रत्यङ्मात्रत्वेनाप्रकाशमानत्वानुपपत्तिः; शरीरप्रतियो-

गिकस्यात्मनि—स्वरूपभेदस्यात्माकारेण प्रकाशमानत्वेऽपि भेदाकारेणाप्रकाशमानत्ववद्रूपान्तरेण ब्रह्मणः प्रकाशमानत्वेऽपि उक्ताकारेणाविद्यावशादप्रकाशमानत्वोपपत्तेरुक्तत्वात्। (२) भ्रमस्य सोपादानत्वान्यथानुपपत्तिरपि अविद्यायां प्रमाणम्। न चान्तःकरणमुपादानम्; अन्तःकरणस्यज्ञानजनने प्रमाणव्यापारसापेक्षत्वेन प्रमाणाविषये शुक्तिरूप्यादौ ज्ञानाजनकत्वात्, सादित्वेनानादिभ्रमपरम्परानुपादानत्वाच्च।

अथ सरलायामज्ञानवादे अर्थापत्त्युपपत्तिः।

जीवको अनवच्छिन्नब्रह्मानन्दका अप्रकाश है उस अप्रकाशकी अन्यथानुपपत्तिभी तत्र=अज्ञानमें प्रमाण है=यदि अज्ञानरूप आवरण न होता तो अवश्यही जीवको निरवच्छिन्नब्रह्मानन्दकाभान होता फलतः उक्तानन्दाभानान्यथानुपपत्त्या अज्ञान कल्पनीय है। जीवका ब्रह्मसे भेद होनेसेही उक्त आनन्दके अप्रकाशकी उपपत्ति है तथा च अन्यथोपपत्ति होनेसे अज्ञानकी कल्पना नहीं की जा सकती है नच=ऐसा नहीं है क्यों ? जीवब्रह्मके भेदको अग्रे=द्वितीय परिच्छेदमें खण्डित किया जानेवाला होनेसे। अनवच्छिन्न जो आनन्द है उस आनन्दकोभी प्रकाशमान जो प्रत्यक्=जीवसाक्षि तन्मात्रत्व होनेसे अप्रकाशमानत्वकी अनुपपत्ति है =निरवच्छिन्न आनन्द तथा प्रत्यक्को एक होनेसे प्रत्यक्का प्रकाशही निरवच्छिन्न आनन्दका प्रकाश है फलतः अप्रकाशकी अनुपपत्ति है नच=अप्रकाशमानत्वकी अनुपपत्ति नहीं है क्यों ? जैसे शरीरप्रतियोगिक जो आत्मामें स्वरूपभेद है उस स्वरूपभेदको आत्माकारेण=आत्मत्वेन प्रकाशमानत्व होनेपरभी भेदाकारेण=भेदत्वेन अप्रकाशमानत्व है तैसे प्रत्यक्त्वेन ब्रह्मको प्रकाशमानत्व होनेपरभी उक्ताकारेण=अनवच्छिन्नानन्दत्वेन अविद्यावशतः अप्रकाशमानत्वकी उपपत्तिको उक्त होनेसे=एकरूपसे पदार्थका प्रकाश होनेपरभी रूपान्तरसे उसीका अप्रकाश अनुभव सिद्ध है, तद्वत् प्रकृतमेंभी समझना चाहिए और इन प्रकाशमान अप्रकाशमानरूपोंका भेद तो आविद्यक है ही अतः कोई अनुपपत्ति नहीं। और भ्रमका जो सोपादानत्व उस सोपादानत्वकी अन्यथानुपपत्तिभी अज्ञानमें प्रमाण है। अन्तःकरण भ्रमका उपादान है नच=नहीं है क्यों ? अन्तःकरणको ज्ञानोत्पादनमें प्रमाणव्यापारसापेक्षत्व होनेसे=प्रत्यक्षादि प्रमाणोंका जो स्वस्वविषयोंके साथ यथायोग्य सम्बन्धरूपव्यापार तादृशव्यापारकी अपेक्षासे युक्त होनेसे प्रमाणके अविषय जो शुक्तिरूप्यादिरूप विषय तादृशविषयविषयकज्ञानका अजनकत्व होनेसे। और अन्तःकरणके सादिता होनेसे अनादि जो भ्रमकी परम्परा उसका अनुपादानत्व होनेसे भी अन्तःकरण भ्रमका उपादान नहीं होसकता है।

नच ब्रह्मैवोपादानम्; तस्यापरिणामित्वात्। नच विवर्ताधिष्ठानत्वेन शुक्त्यादेरिवोपादानत्वम्; अविद्यामन्तरेणातात्त्विकान्यथाभावलक्षणस्य विवर्तस्यैवासम्भवात्, शुक्त्यादेरधिष्ठानावच्छेदकतया विवर्त्ताधिष्ठानत्वाभावात्। नच—उपादानापेक्षस्य विवर्तस्य तात्त्विकातिरिक्तोपादानकल्पनवदविद्यादेराश्रयसापेक्षस्य ब्रह्मातिरिक्तमतात्त्वि-

कमधिकरणं कल्प्यं स्यादितिवाच्यम्, ब्रह्मण एव विकारित्वे अनित्यत्वादिप्रसक्तिवत् ब्रह्मण एवाधिष्ठानत्वे बाधकाभावेन द्वितीयस्याधिकरणस्याकल्पनात् । नच—असत्यस्य सत्यरूपान्तरापत्तिलक्षणपरिणाम्यनपेक्षत्वेन परिणामित्वेनापि नाविद्याकल्पनमिति—वाच्यम्; परिणामिसत्तासमानसत्ताकत्वनियमेनासत्यत्वस्यैवाभावात् ।

ब्रह्म ही भ्रमका उपादान है, नच=नहीं है, क्यों ? ब्रह्मको परिणामिता न होनेसे । शुक्त्यादिको जैसे विवर्त्ताधिष्ठानत्वेन उपादानता है तैसे ब्रह्मको भी विवर्त्ताधिष्ठानत्वेन उपादानता रहो नच=ऐसा नहीं होसकता है, क्यों ? अविद्याके विना अतात्विक अन्यथाभावरूप जो विवर्त्त उसका ही असम्भव होनेसे । और शुक्त्यादिको अधिष्ठानताका अवच्छेदक होनेसे अधिष्ठानत्वका अभाव है । शङ्कते नचेति । उपादानकी अपेक्षा रखनेवाला जो विवर्त्त है उस विवर्त्तका जैसे तात्त्विकसे अतिरिक्त उपादान कल्पन किया जाता है तैसे आश्रयकी अपेक्षा रखनेवाले जो अविद्यादि हैं उन अविद्यादिकोंका ब्रह्मसे अतिरिक्त अतात्त्विक अधिकरण कल्पना करना चाहिए इति नच वाच्यम् क्यों ? जैसे ब्रह्मकोही विकारित्व होनेपर अनित्यत्वकी प्रसक्ति है तैसे ब्रह्मकोही अधिष्ठानत्व होनेमें बाधकके अभावसे द्वितीय=ब्रह्मातिरिक्त अधिकरणके अकल्पनसे । असत्यको सत्यरूपान्तरापत्तिलक्षणपरिणामिकी अपेक्षा न होनेसे परिणामित्वेन भी अविद्याका कल्पन नहीं बन सकता है=सत्यरूपेत्यादिका विग्रह ऐसा करना—सत्यस्य रूपान्तरापत्तिः इति सत्यरूपान्तरापत्तिः सैव लक्षणं कोऽर्थः स्वरूपं यस्य सः सत्यरूपान्तरापत्तिलक्षणः स चासौ परिणामः इति सत्यरूपान्तरापत्तिलक्षणपरिणामः सोऽस्ति अस्य इति सत्यरूपान्तरापत्तिलक्षणपरिणामि तदनपेक्षत्वेन इति । इति न च वाच्यम् क्यों ? भ्रमको परिणामिकी जो सत्ता उस सत्ताके समानसत्ताकत्वका नियम होनेसे असत्यत्वकेही अभावसे ।

नच—घटादौ स्वसमानसत्ताकोपादानकत्वदर्शनेन प्रपञ्चेऽपि तादृशोपादानकल्पने घटादेः स्वाधिकसत्ताकोपादानानपेक्षत्ववत् वियदादेरपि ब्रह्मानुपादानकत्वं स्यादिति—वाच्यम्; 'तदभिध्यानादेव तु तल्लिङ्गात्स' इत्यनेन न्यायेन घटादेरपि मृदवस्थचैतन्योपादानकतया तादृशोपादानानपेक्षत्वासिद्धेः । अत एव—रूप्येपि स्वसमानसत्ताकस्य निमित्तस्यापि कल्पनापत्तिरिति—निरस्तम्; निमित्त मात्रे वा इयं कल्पना विशेषे वा । नाद्यः; अधिष्ठानरूपनिमित्तस्य सर्वत्राधिकसत्ताकत्वात् । द्वितीये तूत्तरोत्तरभ्रमे पूर्वपूर्वभ्रमस्य निमित्तत्वेनेष्टापत्तेः । नच—त्रिगुणात्मकं प्रधानमुपादानमिति—वाच्यम्; तस्यासत्यत्वे अविद्यानतिरेकात् । सत्यत्वेऽपि सावयवं निरवयवं वा । आद्ये अनादित्वभङ्गः । द्वितीये परिणामित्वायोगो ब्रह्मवत् । न चाविद्यापक्षेऽपि समः पर्यनुयोगः; तस्याः काल्पनिकत्वेन पर्यनुयोगायोगात् । तस्मादर्थापत्तिरविद्यायां प्रमाणम् ।

इत्यद्वैतसिद्धावविद्यायामर्थापत्तिः ।

शङ्कते नन्विति। घटादिमें स्वसमानसत्ताक जो उपादान तादृश उपादानत्वके देखनेसे प्रपञ्चमेंभी तादृश उपादानके कल्पनसे जैसे घटादिको स्वसे अधिकसत्ताक उपादानकी अपेक्षा नहीं है तैसे वियदादिकोभी स्वसे अधिकसत्ताक जो ब्रह्म तादृशब्रह्मोपादानकत्व न होगा इति न च वाच्यम् क्यों ? तदभिध्यानादेवतु तल्लिङ्गात्सः (ब्र० सू० अ० २ पा० ३ सू० १३) इस न्यायसे घटादिकोभी मृदवच्छिन्नचैतन्योपादानक होनेसे स्वाधिकसत्ताक जो उपादान तादृक् उपादानानपेक्षत्वकी असिद्धिसे। अतएव=उक्तस्थलमें उक्तविध उपादानानपेक्षत्वकी असिद्धिसेही रूप्यमेंभी स्वसमानसत्ताक निमित्तकेभी कल्पनाकी आपत्ति है यह कथन भी खण्डित हुआ= शुक्तिरूप्य भी स्वसे अधिकसत्ताक शुक्त्यवच्छिन्नचैतन्यकी उपादानविधया अपेक्षा करता है और समानसत्ताक नियम तो उक्त न्यायसे खण्डितही हो चुका है। और निमित्तमात्रमें स्वसमानसत्ताकके कल्पनाकी आपत्ति है या निमित्तविशेषमें आद्यपक्ष ठीक नहीं क्यों ? अधिष्ठानरूपनिमित्तको सर्वत्र अधिकसत्ताकत्व होनेसे, और द्वितीयपक्षमें तो उत्तर उत्तर भ्रममें पूर्वपूर्वभ्रमको निमित्त होनेसे समानसत्ताकत्वकी इष्टापत्तिसे; त्रिगुणात्मक जो प्रधान है वह भ्रमका उपादान है इति न च वाच्यम् क्यों ? तस्य=प्रधानका असत्यत्व होनेपर अविद्यासे अनतिरेक=अभेद होनेसे। और सत्यत्व होनेपरभी प्रधान सावयव है या निरवयव है। यदि प्रथम पक्ष हो तो अनादित्वका भङ्ग होगा। द्वितीय पक्ष हो तो परिणामित्वका अयोग है ब्रह्मवत्। अविद्यापक्षमें भी यह प्रधानसम्बन्धी पर्यनुयोग तुल्य है नच=तुल्य नहीं है, क्यों ? तस्याः=अविद्याको काल्पनिकत्व होनेसे पर्यनुयोगके अयोगसे। फलतः अन्यथोपपत्ति न होनेसे अर्थापत्तिभी अविद्यामें प्रमाण है।

इति सरलायामविद्यायामर्थापत्तिः।

अथाज्ञानवादे तत्प्रतीत्युपपत्तिः।

सा चाविद्या साक्षि-वेद्या नतु शुद्धचित्प्रकाश्या। साक्षीचाविद्यावृत्तिप्रतिबिम्बितचैतन्यम्। तेन-निर्दोषचित्प्रकाशत्वेनाज्ञानस्य पारमार्थिकत्वापत्तिः, मोक्षेऽपि तत्प्रकाशापत्तिः। नच तदानीमविद्याया निवृत्तत्वात् प्रकाशाभावः प्रतीतिमात्रशरीरस्य प्रतीत्यनुवृत्तौ निवृत्त्ययोगादित्यादिदोषानवकाशः॥ अत एवोच्यते राहुवत् स्वावृतचैतन्यप्रकाश्याऽविद्येति नचैवं कदाचिदविद्याया अप्रतीत्यापत्तिः इष्टापत्तेः समाधौ तथाभ्युपगमात्। नचाविद्यावृत्तेर्दोषजन्यत्वादत्र कथमविद्यावृत्तिः ? अविद्याया एव दोषत्वाद्। नच वृत्तेरपि वृत्त्यन्तरप्रतिबिम्बितचिद्भास्यत्वे अनवस्था; स्वस्या एव स्वभानोपाधित्वात्। ननु-प्रमाणागम्यायामविद्यायां प्रमाणोपन्यासवैयर्थ्यम्, नच-प्रमाणैरसद्व्यावृत्तिमात्रं बोध्यत इति-वाच्यम्; अज्ञानमगृह्णतां तत्रासद्व्यावृत्तिबोधेऽप्यसामर्थ्यादिति-चेन्न, प्रमाणोपनीतासद्व्यावृत्तिविशिष्टाज्ञानं हि साक्षिणा-गृह्यते। तथाचासद्व्यावृत्त्युपनयने प्रमाणानां चरितार्थत्वात् न काप्यनुपपत्तिः॥

इत्यद्वैतसिद्धावविद्याप्रतीत्युपपत्तिः।

अथ सरलायामज्ञानवादे अज्ञानप्रतीत्युपपत्तिः ॥

वह अविद्या साक्षीसे वेद्य है, शुद्धचित्से प्रकाश्य नहीं और साक्षी तो अविद्याकी वृत्तिमें प्रतिविम्बितचैतन्यरूप है। तेन–तैसा होनेसे=निर्दोष चित्से प्रकाश्य होनेसे अज्ञानके पारमार्थिकत्वकी आपत्ति है, और मोक्षमेंभी अज्ञानके प्रकाशकी आपत्ति है, यदि यों कहो कि तदानीम्=मोक्षकालमें अविद्याको निवृत्त होनेसे प्रकाशका अभाव है तो ऐसा नहीं कहना क्योंकि प्रतीतिमात्रशरीररूप अज्ञानकी प्रतीतिकी अनुवृत्ति होनेपर निवृत्तिके अयोगसे इत्यादि दोषोंका अनवकाश है=निर्दोषचित्से प्रकाश्य न होनेसे पारमार्थिकत्वकी आपत्ति नहीं, और मोक्षमेंभी प्रकाशकी आपत्ति नहीं। और अविद्यावृत्तिमें प्रतिविम्बितचैतन्यकोही साक्षित्व होनेसे प्रतीतिकी अनुवृत्तिसेभी अज्ञानके अनुवर्तनका सम्भव नहीं। अतएव=दोषाभावसेही जैसे राहु स्वसे आच्छादित जो चन्द्रादि हैं उन्होंसे प्रकाश्य होता है, तैसे अविद्यासे आवृत जो चैतन्य उस चैतन्यसे अविद्या प्रकाश्य है ऐसा कहा जाता है एवम्=अविद्या वृत्तिप्रतिविम्बितचैतन्यसे प्रकाश्य होनेसे कभी अविद्याकी अप्रतीतिकी आपत्ति है, नच=ऐसी शङ्का नहीं करना क्यों? इष्टापत्ति होनेसे समाधिमें अविद्याकी अप्रतीतिका अभ्युपगम होनेसे। अविद्यावृत्तेः=शुक्तिरूप्यादिविषयक अविद्यावृत्तिको दोषजन्यत्व होनेसे अत्र=अविद्याविषयक अविद्याकी वृत्ति कैसे है नच=ऐसी शङ्का नहीं करना क्यों? अविद्याविषयकवृत्तिमें अविद्याकोही दोष होनेसे वृत्तिकोभी वृत्यन्तरमें प्रतिविम्बित जो चैतन्य उस चैतन्यसे भास्यत्व होनेपर अनवस्था है नच=अनवस्था नहीं है क्यों? स्वकोही स्वभानमें उपाधिता होनेसे। शङ्कते नन्विति। प्रमाणसे अगम्य जो अविद्या है उस अविद्यामें प्रमाणके उपन्यासका वैयर्थ्य है, प्रमाणोंसे अविद्यामें असत्की व्यावृतिमात्र बोधन की जाती है, इति नच वाच्यम्, क्यों? अज्ञानको नहीं ग्रहणकरते हुए जो प्रमाणहैं उन प्रमाणोंका तत्र तत्र=अज्ञानमें असत्की व्यावृत्तिबोधमेंभी असामर्थ्य होनेसे इतिचेन्न; क्योकि प्रमाणोंसे प्रापित जो असत्की व्यावृत्ति तादृशव्यावृत्तिविशिष्ट अज्ञान साक्षीसे गृहीत होताहै। फलतः असत्की व्यावृत्तिप्रापणमें प्रमाणोंको चरितार्थ होनेसे कोई अनुपपत्ति नहीं।

इति सरलायामविद्याप्रतीत्युपपत्तिः।

अथाज्ञानवादेऽविद्यायाश्चिन्मात्राश्रयत्वोपपत्तिः।

अविद्याया आश्रयस्तु शुद्धं ब्रह्मैव। तदुक्तं-आश्रयत्वविषयत्वभागिनी निर्विभागचितिरेव केवला। पूर्वसिद्धतमसो हि पश्चिमो नाश्रयो भवति नापि गोचर इति। दर्पणस्य मुखमात्रसम्बन्धेऽपि प्रतिमुखे मालिन्यवत् प्रतिविम्बे जीवे संसारः न विम्बे ब्रह्मणि, उपाधेः प्रतिविम्बपक्षपातित्वात् ननु–कथं चैतन्यमज्ञानाश्रयः। तस्य प्रकाशस्वरूपत्वात् तयोश्चतमःप्रकाशवद्विरुद्धस्वभावत्वादिति–चेन्न, अज्ञानविरोधिज्ञानं हि न चैतन्यमात्रम् किन्तु वृत्तिप्रतिविम्बितम् तच नाविद्याश्रयः यत्त्वविद्याश्रयः तच नाज्ञा-

नविरोधि। न च तर्हि शुद्धचितः अज्ञानविरोधित्वाभावे घटादिवदप्रकाशत्वापत्तिः वृत्त्यवच्छेदेन तस्या एवाज्ञानविरोधित्वात् स्वतस्तृणतूलादिभासस्य सौरालोकस्य सूर्यकान्तावच्छेदेन स्वभास्यतृणतुलादिदाहकत्ववत् स्वतोऽविद्यातत्कार्यभासकस्य चैतन्यस्य वृत्त्यवच्छेदेन तद्दाहकत्वात् ।

अथ सरलायामज्ञानवादेऽविद्यायाश्चिन्मात्राश्रयत्वोपपत्तिः ।

अविद्याका आश्रयतो शुद्ध ब्रह्मही है। सो कहाभी है-आश्रयत्वेत्यादि इसका अर्थ होचुका है। दर्पणका मुखमात्रके साथ सम्बन्ध होनेपरभी प्रतिमुखे=दर्पणस्थत्वेन ज्ञातमुखमें जैसे मालिन्य होताहै तैसे प्रतिबिम्बरूप जीवमें संसार है। बिम्बभूत ब्रह्ममें नहीं उपाधिको प्रतिबिम्बका पक्षपाती होनेसे। शङ्कते नन्विति। चैतन्य अज्ञानका आश्रय कैसे है तस्य=चैतन्यको प्रकाशसारूप्य होनेसे, और तयोः=ज्ञान तथा अज्ञान इन दोनोंको तमः प्रकाशकी तरह परस्परविरुद्धस्वभावत्व होनेसे इतिचेन्न, क्योंकि अज्ञानका विरोधि जो ज्ञान है वह ज्ञान चैतन्यमात्रस्वरूप नहीं है, किन्तु वेदान्तविचारजन्यब्रह्मात्मैक्यविषयक वृत्तिमें प्रतिबिम्बित चैतन्य है तच्च=उक्तवृत्तिमें प्रतिबिम्बित चित्तो अविद्याका आश्रय नहीं है और जो चैतन्यमात्र अविद्याका आश्रय है वह तो अज्ञानका विरोधि नहीं है । तर्हि=तब शुद्धचितको अज्ञानका विरोधित्व न होनेसे घटादिवत् अप्रकाशत्वकी आपत्ति है=जैसे घटादि अज्ञानके विरोधि नहीं हैं अतः इनमें अप्रकाशत्व है तैसे अज्ञानका विरोधित्व न होनेसे ब्रह्ममें अप्रकाशत्वकी आपत्ति है, नच=अप्रकाशत्वकी आपत्ति नहीं है क्यों ? वृत्त्यवच्छेदेन=उक्तवृत्त्यवच्छिन्न होके तस्याः=उक्तचित्कोही अज्ञानका विरोधित्व होनेसे, जैसे स्वतः=स्वरूपसे तृणतूलादिकाभासक जो सौरालोक=सूर्यप्रकाश है उस सौरालोकको सूर्यकान्तमण्यवच्छिन्न होके स्वसे भास्य जो तृणतूलादि उनका दाहकत्व है तैसे स्वरूपसे अविद्यातत्कार्यका प्रकाशक जो चैतन्य है उस चैतन्यको वृत्त्यवच्छेदेन अविद्यातत्कार्यका दाहकत्व होनेसे।

ननु—अहमज्ञ' इति धर्मिग्राहकेण साक्षिणा अहङ्काराश्रितत्वेनाज्ञानस्य ग्रहणाद् बाधः, नच–स्थौल्याश्रयदेहैक्याध्यासादहं स्थूल इतिवदज्ञानाश्रयचिदैक्याध्यासात् दग्धृत्वायसोरेकाग्निसम्बन्धादयो दहतीति वदज्ञानाहङ्कारयोरेकचिदैक्याध्यासाद्वा अहमज्ञ इतिधीभ्रान्तेतिवाच्यम् चितोऽज्ञानाश्रयत्वासिद्धया अन्योन्याश्रयादिति चेन्न अहङ्कारस्याविद्याधीनत्वेन तदनाश्रयतया चितएवाज्ञानाश्रयत्वे सिद्धे, अहमज्ञ इति प्रतीतेरैक्याध्यासनिबन्धनत्वेनाबाधकत्वात् नच–अविद्याश्रयत्वादेवाहङ्कारोऽकल्पितोऽस्तु, कल्पित एव वा तदाश्रयत्वमस्तु । अविद्यायामनुपपत्तेरलङ्कारत्वादिति–वाच्यम् अहमर्थस्य ज्ञाननिवर्त्यत्वेन दृश्यत्वेनाकल्पितत्वायोगात् । चिन्मात्राश्रितत्वं विना तद्गोचरचरमवृत्त्यनिवर्त्यत्वापातात्, स्वकल्पितस्य स्वाश्रितत्वेन स्वाश्रयत्वायोगात् । नचावि-

द्यायामनुपपत्तिरलङ्कारः किन्तु सत्त्वादिप्रापकयुक्तावनुपपत्तिः अन्यथा वादिवचसोऽनवकाशापत्तेः ।

शङ्कते नन्विति । 'अहमज्ञः' इस रीतिसे धर्मिग्राहक जो साक्षी है उस साक्षीसे अहङ्काराश्रितत्वेन अज्ञानका ग्रहण होनेसे शुद्धाश्रितत्वका बाध है, द्वैती सिद्धान्तीकी तरफसे उक्त शङ्काके समाधानका अनुवाद कर प्रतिसमाधान करता है न चेति । स्थौल्यका आश्रय जो देह है उस देहके साथ जो अभेदाध्यास उस अभेदाध्याससे जैसे 'अहं स्थूलः' इत्याकारिका भ्रान्तिरूप धी होती है या जैसे दग्धृत्व और लोहपिण्ड इन दोनोंका जो अग्निके साथ सम्बन्ध है उस सम्बन्धसे 'अयो दहति' इत्याकारिका भ्रान्तिरूप धी होती है तैसे अज्ञान और अहङ्कार इन दोनोंका जो चित्के साथ अभेदाध्यास है उस अभेदाध्याससे 'अहमज्ञः' यह भ्रान्त्यात्मक धी होती है इति न च वाच्यम् क्यों ? चित्को अज्ञानाश्रयत्वकी असिद्धिसे अन्योन्याश्रय होनेसे=उक्तधीसे अज्ञानको चिदाश्रितत्व सिद्ध होता है और चिदाश्रिताज्ञानसेही उक्त धी सिद्ध होती है अतः अन्योन्याश्रय है अब सिद्धान्तीसे उक्त शङ्काका समाधान किया जाता है इति चेन्न, क्यों ? अहङ्कारको अविद्याके अधीन होनेसे तदनाश्रयतया=अविद्यानाश्रयत्वसे चित्कोही अज्ञानाश्रयत्व सिद्ध होनेपर 'अहमज्ञः' इस प्रतीतिको ऐक्याध्यासनिबन्धनत्व होनेसे बाधकत्वके अभावसे=अहङ्कार अविद्याका कार्य तथा अविद्याके आश्रित है । अतः अविद्याका आश्रय नहीं बन सकता है और जबकि अहङ्कार अविद्याका आश्रय नहीं है तब दूसरे अविद्याके कार्यभी अविद्याके आश्रय नहीं बन सकते हैं और अविद्यास्थित्यधीनस्थितिक जीवादिभी अविद्याके आश्रय नहीं बन सकते हैं तब शुद्ध चित्कोही अविद्याका आश्रय मानना चाहिए, और जब इस अर्थका निश्चय हो गया तब (अहमज्ञः) यह प्रतीति अहङ्कारचिदैक्याध्याससे उपपन्न करनी चाहिये और ऐसा होनेपर अन्योन्याश्रयकोभी अवकाश नहीं । और 'अहमज्ञः' इस भ्रान्त्यात्मकप्रतीतिको बाधकत्वभी नहीं अहङ्कारको अविद्याका आश्रयत्व होनेसेही अहङ्कार अकल्पित रहो अथवा कल्पितमेंही अज्ञानाश्रयत्व रहो, अविद्यामें अनुपपत्तिको अलङ्कारत्व होनेसे इति नच वाच्यम् क्यों ? अहमर्थको ज्ञानसे निवर्त्यत्व होनेसे दृश्यत्व है और दृश्यत्व होनेसे अकल्पितत्वके अयोगसे । और अज्ञानको चिन्मात्राश्रितत्वके विना चिन्मात्रगोचर जो चरमवृत्ति उस चरमवृत्तिसे अनिवर्त्यत्वके आपातसे और स्वकल्पितको स्वाश्रितत्व होनेसे स्वाश्रयत्वके अयोगसे=अज्ञानकल्पित अहङ्कार अज्ञानके आश्रित है अतः अज्ञानका आश्रय नहीं हो सकता है । अविद्यामें अनुपपत्ति अलङ्कार है नच=नहीं है अर्थात् अनुपपत्तिमात्र अलङ्कार नहीं है किन्तु सत्त्वादिकी प्रापक जो युक्तियाँ हैं उनमें अनुपपत्ति अलङ्कार हैं । अन्यथा=सर्वथा अनुपपत्तिको अलङ्कार होनेपर वादीके वचनकोभी अनवकाशकी आपत्तिसे=जबकि सम्पूर्ण अनुपपत्तियाँ अविद्यामें अलङ्कारही हैं तब वादी जिस जिस दोषका उद्भावन करेगा वही अविद्यामें अलङ्कार समझा जायगा और ऐसा होनेपर हरएक हालतमें अविद्यावाद सुस्थिरही रहेगा ।

ननु—निरनिष्टो निरवद्यः शोकंमोहमत्येति नित्यमुक्त इति श्रुति-विरोधात् न शुद्धचितोऽविद्याश्रयत्वम् नहि मौढ्यं न दोषः नापि बन्धकाज्ञानाश्रयो मुक्तः न च तात्त्विकाविद्यादेरेव निषेधः त्वन्मते तस्याप्रसक्तेः जीवेऽपि तदभावेन जीवब्रह्मणोः सावद्यत्वनिरवद्यत्वव्यवस्थाश्रुतिविरोध इति चेन्न; अवद्यस्य चिति कार्यकारित्वाभावेन कार्यकरत्वाकार्यकरत्वाभ्यामेव सावद्यात्वनिरवद्यत्वव्यवस्थोपपत्तेः उपाधेः प्रतिविम्बपक्षपातित्वात् । नच—चिन्मात्रस्याविद्ययाश्रत्वे प्रमाणाभावः जीवाश्रितत्वे च प्रमाणमस्तीति—वाच्यं, मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरमिति श्रुतेरेव प्रमाणत्वात् । नच ' ज्ञाज्ञावीशानीशाविति जीवाज्ञानप्रतिपादकश्रुतिविरोधः । तदाश्रयत्वाभावेऽपि तत्कार्ययोगितया अज्ञत्वव्यपदेशोपपत्तेः नच ब्रह्मणोऽपि जीवाश्रिताज्ञानविषयत्वेन मायित्वोपपत्तिरिति—वाच्यम् जीवत्वस्याश्रयतावच्छेदकत्वे परस्पराश्रयप्रसङ्गात् ।

शङ्कते नन्विति । निरनिष्ट है, निरवद्य है शोक मोहसे रहित नित्य मुक्त है इस श्रुतिके साथ विरोध होनेसे । शुद्धचित्को अविद्याका आश्रयत्व नहीं है, मौढ्यम्=मूढता दोष नहीं है यह बात नहीं है और बन्धक जो अज्ञान उस अज्ञानका आश्रय मुक्त नहीं है; यदि कहोकि श्रुतिमें तात्त्विक अविद्यादिकाही निषेध है तो ऐसा नहीं कहना तुम्हारे मतमें तात्त्विक अविद्यादिकी प्रसक्ति न होनेसे और जीवमेंभी तात्त्विक अविद्यादिके अभावसे जीव तथा ब्रह्म इन्होंके क्रमशः सावद्यत्व और निरवद्यत्वके व्यवस्थाकी जो श्रुति उस श्रुतिके साथ विरोध है, इति चेन्न, अवद्यस्य=दोषको चिति=जीवसे भिन्न चित्में कार्यकारित्वाभावेन=अहङ्कार और अहङ्कारका कार्य रागादिरूप जो कार्य तादृशकार्यकारित्वके अभावसे कार्यकरत्व और कार्यकरत्वाभाव इन दोनोंसेही क्रमशः सावद्यत्व निरवद्यत्वकी व्यवस्थाकी भी उपपत्तिसे; जिसमें दोष अपना कार्य करे उसमें सावयवत्व मानना चाहिए और जिसमें दोष अपना कार्य न करे उसमें निरवद्यत्व मानना चाहिए दोषका कार्य अहंकार तथा रागादिरूप है, उपाधिको प्रतिबिम्बका पक्षपातित्व होनेसे । चिन्मात्रको अविद्याश्रयत्व है इसमें प्रमाणका अभाव है और अज्ञानमें जीवाश्रितत्व है इसमें प्रमाण है इति न च वाच्यम् क्यों ? मायाको प्रकृति समझे और मायावालेको महेश्वर (श्वे० ४।१०) इस श्रुतिकोही प्रमाणत्व होनेसे । ज्ञ तथा अज्ञ ये दोनों क्रमशः ईश=ईश्वर और अनीश=जीव हैं, (श्वेत० १।९) यह जो जीवमें अज्ञानको प्रतिपादन करनेवाले श्रुति है उसके साथ विरोध है, नच=नहीं है, क्यों ? जीवको अज्ञानाश्रयत्वका अभाव होनेपरभी तत्कार्ययोगितया=अज्ञानकार्याहंकारादिके योगसे अज्ञत्वके व्यपदेशकी उपपत्तिसे । जीवाश्रित जो अज्ञान तादृश अज्ञानविषयत्वेन भी ब्रह्मको मायित्वकी उपपत्ति है इति न च वाच्यम् क्यों ? जीवत्वको अज्ञानकी आश्रयतावच्छेदकत्व होनेपर अन्योन्याश्रयके प्रसङ्गसे=जीवत्व अज्ञानकी स्थितिके अधीन है और अज्ञान जीवत्वकी स्थितिके अधीन है अतः अन्योन्याश्रय है ।

ननु—शुक्त्याद्यज्ञानवत् ज्ञातुरर्थाप्रकाशरूपमिदमप्यज्ञानं स्वकार्येण भ्रान्त्यादिना स्वनिवर्त्तकत्वेन तत्त्वज्ञानादिना स्वसमानयोगक्षेमेण ज्ञानप्रागभावेन च सामानाधिकरण्याय—ज्ञात्रात्मनिष्ठम्, नतु चैतन्यरूपज्ञानाश्रितमिति—चेन्न; चैतन्यस्यैव ज्ञातृत्वेन ज्ञातुरर्थाप्रकाशरूपत्वस्य सम्यग्—ज्ञानाश्रयत्वस्य भ्रान्त्यादिसामानाधिकरण्यस्य चोपपत्तेः। न चैवं ज्ञातृत्वेन सत्यविद्याश्रयत्वम्, अविद्यायां ज्ञातत्वमित्यन्योन्याश्रय इति—वाच्यम्। अविद्याया ज्ञातृत्वानपेक्षत्वेनान्योन्याश्रयाभावात् नहि सामानाधिकरण्यमस्तीत्येतावतैव तदपेक्षया अनया—भवितव्यम्। नच शरीरेऽपि ज्ञातृत्वाध्याससंभवेन तत्राप्यज्ञानाश्रयत्वापत्तिरिति—वाच्यम्, नहि ज्ञातृत्वाध्यासोऽज्ञानाश्रयत्वे प्रयोजकः येन तन्मात्रेण तद्यपद्येत किन्तु प्रसक्तप्रकाशत्वं अज्ञानानाश्रितत्वं च। नचैवमविद्याश्रयस्यज्ञातृत्वभोक्तृत्वादिमत्त्वे जीवाश्रिताज्ञानपक्षप्रवेश इति—वाच्यम्, अविद्यावच्छिन्नस्य हि ज्ञातृत्वम् अविद्याच नाविद्यावच्छेदेन, सामानाधिकरण्यं चावच्छेद्यांशैक्यमादाय। यथोपाधिसम्बन्धो मुखमात्र एव औपाधिकमालिन्यसम्बन्धस्तु—उपाध्यवच्छिन्ने विम्बप्रतिविम्बयो रैक्यात्, तथा सामानाधिकरण्यमपि। यथा प्रतिविम्बो न वस्त्वन्तरं तथा वक्ष्यते।

शङ्कते नन्विति। शुक्त्यादिके अज्ञानकी नांई ज्ञाताके अर्थका अप्रकाशरूप जो यह प्रकृत अज्ञान है वह भी स्वकार्य जो भ्रान्त्यादि हैं, उनके साथ और स्वनिवर्त्तक जो तत्त्वज्ञान है उसके साथ और स्वसमानयोगक्षेम जो ज्ञानका प्रागभाव है उसके साथ सामानाधिकरण्य के लिए ज्ञाता जो आत्मा है उसके आश्रित है और चैतन्यरूप जो ज्ञान है उसके आश्रित नहीं इति चेन्न, क्यों ? चैतन्यकोही ज्ञातृत्व होनेसे ज्ञाताके अर्थके अप्रकाशत्वरूपकी सम्यङ्ज्ञानाश्रयत्वकी और भ्रान्त्यादिके साथ सामानाधिकरण्यकी उपपत्ति होनेसे=ज्ञातृत्व चैतन्यमें है और अज्ञानभी चैतन्यमें हैं इसलिए ज्ञाताके अर्थका अप्रकाशत्व अज्ञानमें बन सकता है, और सम्यक् ज्ञानाश्रयत्वकी चैतन्यमें उपपत्ति होनेसे तादृशज्ञानका सामानाधिकरण्यभी अज्ञानमें उपपन्न है, और भ्रान्त्यादिभी चैतन्यमेंही हैं इसलिए उनके साथभी सामानाधिकरण्य बन गया, वस्तुतः चैतन्यातिरिक्त निखिल अनात्माको चैतन्यमें कल्पित होनेसे किसी भी अनात्मपदार्थका किसीभी अनात्मपदार्थके साथ सामानाधिकरण्य होनेमें किसी भी प्रकारकी आपत्ति नहीं एवम्=यदि ऐसा है तब तो ज्ञातृत्व होनेपर अविद्याश्रयत्व है अविद्याके होनेपर ज्ञातृत्व है अतः अन्योन्याश्रय है, इति न च वाच्यम्, क्यों ? अविद्याको ज्ञातृत्वकी अपेक्षा न होनेसे अन्योन्याश्रयके अभावसे। इसी अर्थको स्पष्ट करते हैं नहीति। अविद्या तथा ज्ञातृत्वका सामानाधिकरण्य है इतनेसे ही तदपेक्षया=ज्ञातृत्वापेक्ष अविद्यासे होना चाहिए ऐसा नहीं है। शरीरमेंभी ज्ञातृत्वके अध्यासका सम्भव होनेसे तत्रापि=शरीरमेंभी अज्ञानाश्रयत्वकी आपत्ति है इति न च वाच्यम् क्योंकि ज्ञातृत्वका अध्यास अज्ञानाश्रयत्वमें प्रयोजक नहीं है जिससे कि तन्मात्रेण=ज्ञातृत्वाध्यासमात्रसे तदापद्येत=अज्ञानाश्रयत्व आपन्न हो, किन्तु प्रसक्तप्रकाशत्व और अज्ञाना-

श्रितत्व अविद्याश्रयत्वमें प्रयोजक है शरीरमें अज्ञानाश्रितत्वहै अज्ञानानाश्रितत्व नहीं और प्रसक्त-प्रकाशत्वभी नहीं, अनावृत चैतन्यके साथ तादात्म्यसे प्रसक्तप्रकाशत्व अहङ्कारमें है इस लिए अज्ञानाश्रितत्व कहा है अहङ्कार अज्ञानके आश्रित होनेसे उसमें अज्ञानाश्रयत्व नहीं है एवम्=उक्त प्रकारसे अविद्याश्रयको ज्ञातृत्वभोक्तृत्वादिमत्त्व होनेपर 'जीवके आश्रित अज्ञान है' इस पक्षमें प्रवेश है=विवरणकारके मतका वाचस्पतिके मतमें पर्यवसान है इति न च वाच्यम् क्योंकि अविद्यावच्छिन्नको ज्ञातृत्व है और अविद्या तो अविद्यावच्छेदेन नहीं है और सामानाधिरण्यञ्च=अज्ञ हूँ, ज्ञाता हूँ इत्याकारक अमेदोक्तिरूप सामानाधिकरण्य तो अवच्छेद्यांशैक्यमादाय=अविद्यावच्छिन्न शुद्धके साथ तादात्म्यको लेके है। जैसे उपाधिका सम्बन्ध मुखमात्रमेंभी है और उपाधिसम्बन्धि जो मालिन्य उस मालिन्यका सम्बन्ध तो उपाध्यवच्छिन्नमें होता है बिम्बप्रतिबिम्बका तादात्म्य होनेसे,तथा=तैसे सामानाधिकरण्यमपि=बिम्बीभूतग्रीवास्थमुख मलीन है, इत्याकारिका अमेदोक्तिभी–बिम्बप्रतिबिम्बके तादात्म्यसे है और जिस प्रकारसे प्रतिबिम्ब बिम्बसे वस्त्वन्तर नहीं है, उस प्रकारसे कहा जायगा।

ननु—शुक्त्यज्ञानमपि शुक्त्यवच्छिन्नचैतन्यगतं वाच्यम् तथा चाहं जानामीच्छामीतिवत् 'अहं न जानामीति ज्ञातृस्थत्वानुभवविरोध इति–चेन्न, अज्ञानद्वैविध्यात्। एकं हि शुक्त्यवच्छिन्नचैतन्याश्रितं तद्गतापरोक्षभ्रमजनकं तद्विषया–परोक्षप्रमानाश्यं, अपरं च परोक्षभ्रमजनकं तद्विषयकप्रमामात्रनाश्यम्, प्रमातृप्रयोजकोपाध्यवच्छिन्नचैतन्याश्रितमित्युक्तं च प्राक् तत्र प्रमातृत्वप्रयोजकोपाध्यवच्छिन्नचैतन्यगताज्ञानविषयकोऽयमनुभवः। तेन प्रमातृनिष्ठत्वविषयतास्य न विरुध्यते। अतएव विषयगताऽज्ञाने विद्यमानेऽपि प्रमातृगताज्ञान–नाशेन न जानामीतिव्यवहाराभावः।

शङ्कते नन्विति। शुक्त्यज्ञानभी शुक्त्यवच्छिन्न चैतन्यमें कहना चाहिए तथा च (अहं जानामि (अहं इच्छामि) इन स्थलोंमें जैसे ज्ञान तथा इच्छाका भान ज्ञातृस्थत्वेन होता है तैसे (अहं न जानामि) यह जो अज्ञानका ज्ञातृस्थत्वेन अनुभव होता है उसके साथ विरोध होगा इति चेन्न, क्यों ? अज्ञानका द्वैविध्य होनेसे, द्वैविध्यको दिखलाते हैं एकमिति। एकअज्ञान शुक्त्यवच्छिन्न चैतन्यके आश्रित है, यह अज्ञान शुक्तिगत अपरोक्ष भ्रमका जनक है और शुक्तिविषयक जो अपरोक्ष प्रमा उस प्रमासे नाश्यहै और दूसरा अज्ञान परोक्ष भ्रमका जनक है और शुक्तिविषयकप्रमामात्रसे नाश्य है और वह प्रमातृत्वप्रयोजक जो उपाधि तादृश उपाधिसे अवच्छिन्न जो चैतन्य तादृश चैतन्यके आश्रित है यह कहा है पहिले। तत्र=उक्त दोनों अज्ञानोंमें प्रमातृप्रयोजक जो उपाधि तादृश उपाधिसे अवच्छिन्न जो चैतन्य तादृश चैतन्य गत जो अज्ञान है तादृश अज्ञानविषयक (अहं न जानामि) यह अनुभव है, तेन=उक्ताज्ञानको उक्त अनुभवका विषयत्व होनेसे अस्य=उक्ताज्ञाननिष्ठ प्रमातृनिष्ठत्वावच्छिन्न विषयता विरुद्ध नहीं होतीहै=प्रमातृनिष्ठत्वेन अज्ञानका भान सूपपन्न है। अतएव=अज्ञानका

द्वैविध्य होनेसेही विषयगत अज्ञानके विद्यमान होनेपरभी प्रमातृगत अज्ञानके नाशसे (न जानामि) इत्याकारक व्यवहारका अभाव होता है।

ननु—उपाधेः प्रतिविम्वपक्षपातित्वात् न ब्रह्मणः संसारित्वमित्युक्तं तदयुक्तम् विम्वप्रतिविम्वभावस्यैवासम्भवात् तथाहि—अचाक्षुषस्य चैतन्यस्य गन्धरसादिवत् प्रति-विम्वानर्हत्वात्, प्रतिविम्वत्वे जीवस्य सादित्वापाताच्च। सूर्यस्य सरिज्जलइव मरीचिकाजलेष्वप्रतिफलनेन चिदसमानसत्ताकस्याज्ञानस्य चितं प्रत्युपाधित्वायोगात्—अ-स्वच्छस्याज्ञानस्य प्रतिविम्वितोपाधित्वायोगाच्च। अविद्यायाश्चिन्मात्राभिमुख्यासंभवाच्च। अज्ञानस्याकाशाद्यात्मना परिणामे प्रतिविम्वापायापाताच्चेति—चेन्न, रूपवत एव प्रतिविम्व इत्यस्याव्याप्तेः रूपादौ व्यभिचारात् यथाभङ्गः एवमाकाशादौ व्यभिचाराच्चक्षुषस्यैव प्रतिविम्व इत्यस्या अपि व्याप्तेर्भङ्गः।

शङ्कते नन्विति। उपाधिको प्रतिविम्वका पक्षपातित्व होनेसे ब्रह्मको संसारित्व नहीं है, ऐसा जो कहा गया है वह अयुक्त है क्यों? विम्वभाव प्रतिविम्वभावका ही असंभव होनेसे तथाहि=असम्भवको दिखलातें है—जैसे गन्धरसादिको प्रतिविम्वता नहीं है तैसे अचाक्षुष चैत-न्यको प्रतिविम्वताके अनर्ह होनेसे=जैसे गन्धादि गुणोंका प्रतिविम्व नहीं होता है तैसे अचाक्षुष चैतन्यका प्रतिविम्व नहीं बन सकता है, और जीवको प्रतिविम्वत्व होनेपर सादि-त्वकाभी आपात है, और सूर्यका नदीजलकी तरह रविकिरणकल्पितजलमें प्रतिफलन= प्रतिविम्व न होनेसे चित्‌के असमानसत्ताक जो अज्ञान तादृशाज्ञानको चैतन्यके प्रति उपा-धित्वके अयोगसे=सूर्यीयप्रतिविम्वस्थलमें जैसे उपाधिमें सूर्यसमानसत्ताकत्व है, तैसे प्रकृतमें भी चैतन्यके प्रतिविम्वके लिए चैतन्यके समान—सत्ताक उपाधि चाहिए और अज्ञान तो समानस-त्ताक नहीं है अतः प्रतिविम्वके प्रति इसे उपाधिता नहीं बन सकती है और अस्वच्छ जो अज्ञान है उस अज्ञानको प्रतिविम्वताके उपाधित्वके अयोगसेभी यह पक्ष ठीक नहीं, और अविद्याके चिन्मात्रके प्रति आभिमुख्यके असम्भवसेभी यह पक्ष ठीक नहीं; और अज्ञानका आकाशादि-रूपसे परिणाम होनेपर प्रतिविम्वताके नाशके आपातसेभी यह पक्ष ठीक नहीं। ननुसे लेकर यहाँतक द्वैतीकी शङ्का है, अब समाधान किया जाता है इति चेन्न, क्योंकि रूपवालेकाही प्रतिविम्व होता है। इस नियमका रूपादिमें व्यभिचार होनेसे जैसे भङ्ग है, तैसे आकाशा-दिमें व्यभिचार होनेसे चाक्षुषकाही प्रतिविम्व होता है इस नियमकाभी भङ्ग है।

वस्तुतस्तु श्रुतिवलात् चितः प्रतिविम्वे सिद्धे तत्रैव व्यभिचारान्नेयं व्याप्तिः तथा च रसादिव्यावृत्तं फलैकोन्नेयं प्रतिविम्वप्रयोजकम् नापि जीवस्य सादित्वापत्तिः। उपाधिविम्वसंवन्धानादित्वेनानादित्वोपपत्तेः विस्तरस्तु सिद्धान्त—विन्दौ। यदुक्तं मरीचिकाजले सूर्यप्रतिविम्वादर्शनात् विम्वसमानसत्ताकत्वं प्रतिविम्वोद्ग्राहित्वे प्रयोज-कमिति, तन्न, अध्यस्तस्य स्फटिकलौहित्यस्य दर्पणे—प्रतिविम्वदर्शनात्। तस्मान्म-

रीचिकाजलव्यावृत्तं स्वच्छत्वं फलैकोन्नेयं अननुगतमेव प्रतिविम्बोद्ग्राहित्वे प्रयोजकम्—तच्च प्रकृतेऽप्यस्ति। अतएवाज्ञानस्याच्छत्वान्न प्रतिविम्बोपाधित्वमिति निरस्तम्। यच्चोक्तं—चिन्मात्राभिमुख्याभावादिति तत्किं सर्वात्मना चिदाभिमुख्याभावाद्वा, आभिमुख्यमात्राभावाद्वा नाद्यः;—चैतन्यवद्विभुत्वपक्षे सर्वात्मनापि संभवात्। न्यूनपरिणामत्वेऽपि न दोषः न्यूनपरिमाणस्यापि अधिकपरिणामाकाशादिप्रतिविम्बोद्ग्राहित्वदर्शनात्।

वस्तुतः तो मायाभासेन जीवेशौ करोति, इस श्रुतिके वलसे चित्का प्रतिविम्ब सिद्ध होनेपर तत्र=चित्के प्रतिविम्बमेंही व्यभिचार होनेसे यह व्याप्ति नहीं है फलतः=गन्धरसादिसे व्यावृत्त फलसे ज्ञेय प्रतिविम्बका प्रयोजक है और प्रतिविम्बवादमें वादिगदित जीवके सादित्वकी भी आपत्ति नहीं, क्यों? उपाधि और विम्ब तथा इन दोनोंका सम्बन्ध इन तीनोंको अनादित्व होनेसे अनादित्वकी उपपत्तिसे। विस्तर सिद्धान्तविन्दूमें द्रष्टव्य है। मरीचिका जलमें सूर्यके प्रतिविम्बके न देखनेसे विम्बके समानसत्ताकत्व प्रतिविम्बके उद्ग्राहित्वमें प्रयोजक है इति यत् उक्तम्=ऐसा जो कहा है तन्न=वह ठीक नहीं क्यों? अध्यस्त जो स्फटिकमें लौहित्य है उस लौहित्यका दर्पणमें प्रतिविम्ब देखनेसे। ततः मरीचिका जलसे व्यावृत्त फलैकोन्नेय और अननुगतस्वच्छत्वही प्रतिविम्बके उद्ग्राहित्वमें प्रयोजक है और वह प्रयोजक तो प्रकृतमेंभी है। अतएव अननुगतप्रतिविम्बोपाधितायोग्यत्वकोही स्वच्छत्वरूपता होनेसे अज्ञानको अस्वच्छत्व होनेसे प्रतिविम्बोपाधित्व नहीं है यह कथनभी निरस्त हुआ। और चिन्मात्रके प्रति आभिमुख्यके अभावसे प्रतिविम्ब नहीं बन सकता है इति यत् उक्तम्=ऐसा जो कहा है तत्किम्=सो क्या सर्वात्मना चित्के प्रति अभिमुख्यके अभावसे नही बन सकता है या आभिमुख्यमात्रके अभावसेही नहीं बन सकता है। नाद्यः=प्रथम पक्ष नहीं कह सकते हो क्यों? चैतन्यवत् अज्ञानके विभुत्वपक्षमें सर्वात्मना भी साम्मुख्यका सम्भव होनेसे। और अज्ञानको चैतन्यमात्रकी अपेक्षासे न्यूनपरिमाणत्व होनेपरभी दोष नहीं, क्यों? न्यूनपरिमाणस्यापि=न्यूनपरिमाणवाले जलादिकोंमेंभी अधिकपरिमाणवाले जो आकाशादि तादृश आकाशादिका जो प्रतिविम्ब तादृश प्रतिविम्बके उद्ग्राहित्वको देखनेसे।

न द्वितीयः; चैतन्यस्य सर्वतोऽपि प्रसृतत्वेन व्यवधानाभावेन च आभिमुख्यस्य सद्भावात्। नचाकाशाद्यात्मना परिणामे प्रतिविम्बापायापत्तिः; प्रतिविम्बप्रयोजकरूपाविरोधिपरिणामस्य प्रतिविम्बाविरोधित्वेन प्रतिविम्बानपायात्। नच—मुखप्रतिमुखानुगतमुखत्वातिरिक्तमुखमात्ररूपव्यक्त्यन्तरस्येव जीवब्रह्मानुगतचित्त्वातिरिक्तचिन्मात्ररूपस्याज्ञानाश्रयत्वयोग्यव्यक्त्यन्तरस्याभावान्मुखमात्रसम्बन्ध्यादर्शवच्चिन्मात्रसम्बन्धज्ञानमिति कथमिति—वाच्यम्, अपरामृष्टभेदस्य मुखादेर्मात्रार्थत्वेनानुगतधर्म्यतिरेकसंभवात्।

न द्वितीयः=द्वितीय पक्षभी ठीक नहीं क्यों? चैतन्यको सर्वके प्रति व्यापक होनेसे और

व्यवधानके अभावसे आभिमुख्यके सद्भावसे। अज्ञानका आकाशादिरूपसे परिणाम होनेपर प्रतिविम्बके ध्वंसकी आपत्ति है नच=नहीं है क्यों ? प्रतिबिम्बका प्रयोजक जो रूप उस रूपका अविरोधि जो परिणाम उस परिणामको प्रतिविम्बका विरोधी न होनेसे प्रतिविम्बके अध्वंससे शङ्क्ते। नचेति। मुख तथा प्रतिमुख इन दोनोंमें अनुगत जो मुखत्व उस मुखत्वसे भिन्न मुखमात्ररूप जो व्यक्त्यन्तर है उस व्यक्त्यन्तरकी तरह जीव तथा ब्रह्म इन दोनोंमें अनुगत जो चित्त्व उस चित्त्वसे भिन्न चिन्मात्ररूप अज्ञानाश्रयत्वके योग्य जो व्यक्त्यन्तर उस व्यक्त्यन्तरके अभावसे। मुखमात्रसम्बन्धि जैसे आदर्श है तैसे चिन्मात्रसम्बन्धि अज्ञान है, इति=यह कैसे ? इति न च वाच्यम्, क्यों अपरामृष्टभेदस्य=प्रतिबिम्बत्वोपहितमुखप्रतियोगिक भेद है परामृष्ट=ज्ञात जिसमें ऐसा जो विम्बत्वोपहित मुख उस मुखका नाम है परामृष्टभेद उससे भिन्नका नाम है अपरामृष्टभेद उस अपरामृष्टभेद मुखादिको मात्रार्थत्व होनेसे धर्मीके अतिरेकका सम्भव होनेसे=उपाधिभेदसे जैसे विम्बप्रतिविम्बका भेद है तैसे केवल और उपहितकाभी भेद है अतः विम्बप्रतिविम्बसे केवल मुखको अवश्यही पृथक् कहना चाहिए और वह केवल मुख विम्ब तथा प्रतिबिम्ब इन दोनोंमें अवश्यही अनुगत है क्योंकि उपहित तथा केवल इन दोनोंका तादात्म्य होता है, इसी रीतिसे प्रकृतमेंभी विम्बप्रतिविम्बभावापन्नोंसे अतिरिक्त चैतन्यमात्र सिद्ध है तत्सम्बन्धि अज्ञान है।

ननु–उपाधिः प्रतिविम्बपक्षपातीति सामान्यव्याप्तेरज्ञानं स्वाश्रय एव भ्रान्त्यादिहेतुरिति विशेषव्याप्त्या बाध इति–चेन्न विशेषव्याप्तिग्राहकसहचारदर्शनस्य विवादविषयातिरिक्तेऽसंभवेन विशेषव्याप्त्यसंभवात्। नच बन्धस्य चिन्मात्राश्रितमोक्षसामानाधिकरण्यानुपपत्तिः; अवच्छेद्यांशमादाय सामानाधिकरण्यस्योक्तत्वात्।

उपाधि प्रतिविम्बकी पक्षपाती है इत्याकारिका जो सामान्यव्याप्ति है उस सामान्यव्याप्तिका अज्ञान स्वाश्रयमेंही भ्रान्त्यादिको उत्पन्न करता है इस विशेष व्याप्तिसे बाध है इति–चेन्न, क्यों ? विशेषव्याप्तिका ग्राहक जो सहचारदर्शन है उस सहचारदर्शनका विवादविषयसे अतिरिक्तमें असंभव होनेसे विशेषव्याप्तिके असंभवसे। बन्धको चिन्मात्राश्रित जो मोक्ष है उस मोक्षके साथ सामानाधिकरण्यकी अनुपपत्ति है नच=अनुपपत्ति नहीं है, क्यों ? अवच्छेद्यांशमादाय=अविद्याजन्यबन्धावच्छिन्नका शुद्धके साथ जो तादात्म्य है उस तादात्म्यको लेके सामानाधिकरण्यको उक्त होनेसे।

ननु–उपाधेः प्रतिविम्बपक्षपातित्वं तत्र स्वधर्मप्रतिभासकत्वं वा स्वकार्यप्रतिभासकत्वं वा, स्वकार्यनिष्ठधर्मप्रतिभासकत्वं वा, प्रतिविम्बंप्रति स्वविषयाच्छादकत्वं वा। नाद्यः; सुषुप्त्यादि–अनुवृत्तस्याविद्यारूपस्याविद्यावच्छिन्नत्वरूपस्य वा तत्प्रतिबिम्बितत्वस्य वा सुषुप्तादावननुवृत्तस्य कर्तृत्वप्रमातृत्वादिरूपस्य वा संसारस्याज्ञाननिष्ठत्वाभावात्, ज्ञानक्रियासंस्कारादीनां त्वन्मते अज्ञाननिष्ठत्वेऽपि नित्यातीन्द्रियाणां तेषामात्मभि-

कदाप्यप्रतीतेः। अविद्यास्तमयो मोक्षः साच बन्ध उदाहृतः। इति त्वन्मतेऽपि अविद्या बन्धिका बन्धो वा, नतु बद्धा येन स्वनिष्ठबन्धरूपधर्मसंक्रामकत्वं स्यात्। न द्वितीयः; विच्छेदादेरुपाधिकार्यस्य विम्बे महाकाशे च दर्शनात्, मुखस्य विम्बत्वादेर्ब्रह्मस्थसार्वज्ञ्यादेश्चानौपाधिकत्वापाताच्च। नापि तृतीयचतुर्थौ, दर्पणघटादावदृष्टेः। एवं बुद्धिरूपोपाधिरपि न प्रतिविम्बपक्षपातीति—चेन्न; अतिशयेन कार्यकरत्वमेव तत्पक्षपातित्वम्।

शङ्कते नन्विति। उपाधेः=उपाधिनिष्ठ जो प्रतिविम्बपक्षपातित्व है वह क्या तत्र=प्रतिविम्बमें स्वधर्मप्रतिभासकत्वरूप है, या स्वकार्यप्रतिभासकत्वरूप है, अथवा स्वकार्यनिष्ठ जो धर्म तादृशधर्मका प्रतिभासकत्वरूप है या प्रतिविम्बके प्रति स्वविषयका आच्छादकत्वरूप है, स्वशब्दसे चारों स्थलोंमें उपाधिका ग्रहण है। नाद्यः=स्वधर्मप्रतिभासकत्वरूप प्रथम पक्ष नहीं हो सकता है, क्यों ? सुषुप्त्यादिमें अनुवृत्त जो अविद्यारूप संसार है उस संसारमें अज्ञाननिष्ठत्वके अभावसे एवं सुषुप्त्यादिमें अनुवृत्त जो अविद्यावच्छिन्नत्वरूप संसार है उस संसारमें अज्ञाननिष्ठत्वके अभावसे, एवं सुषुप्त्यादिमें अनुवृत्त अविद्याप्रतिविम्बितत्वरूप जो संसार है उस संसारमें अज्ञाननिष्ठत्वके अभावसे तैसे सुषुप्त्यादिमें अननुवृत्त जो कर्तृत्वप्रमातृत्वादिरूप संसार है, उस संसारमें अज्ञाननिष्ठत्वके अभावसे फलतः उपाधि प्रतिविम्बकी पक्षपाती है, यहाँपर प्रतिविम्बपक्षपातित्वका यदि प्रथम अर्थ मानों तो संसार औपाधिक सिद्ध न होगा 'ऐसे २ स्थलोंमें हिन्दी भाषामें षष्ठीके स्थानमें सप्तमी बहुत सरलार्थक मालूम देती है अतः संसारोत्तर षष्ठीके स्थानपर सरलामें सप्तमी लिखी गई है इसी रीतिसे अतीत तथा अनागत ग्रन्थमेंभी ज्ञातव्य है 'ज्ञानक्रियासंस्काराणाम्' ज्ञानञ्च क्रिया च इति ज्ञानक्रिये तयोः संस्काराः तेषाम्=ज्ञान और क्रिया इन दोनोंके संस्कारोंको तुम्हारे मतमें अज्ञाननिष्ठत्व होनेपरभी नित्य अतीन्द्रिय जो वे संस्कार हैं उन्होंकी कभी भी आत्मामें प्रतीति न होनेसे अविद्याका अस्तमय मोक्ष है, और वह अविद्या बन्ध है इस तुम्हारे मतमेंभी अविद्या बन्धिका=बन्धकरनेवाली है या बन्ध है, किन्तु बद्धा=बन्धवती नहीं है जिससे कि स्ववृत्ति जो बन्धरूप उस बन्धरूपधर्मका प्रतिबिम्बमें संक्रामकत्व हो। न द्वितीयः=स्वकार्यप्रतिभासकत्वरूप द्वितीयपक्षभी नहीं बन सकता है, क्यों ? उपाधिकार्यस्य घटादिरूपोपाधिका कार्य जो विच्छेदादि=विभागादि उस विच्छेदादिरूप कार्यको विम्बरूप महाकाशमें भी देखनेसे=महाकाशसे घटाकाशको विभक्तकर दिखलानेवाली उपाधि घट है उस घटरूप उपाधिका कार्य है महाकाश और घटाकाशका विभाग वह उपाधिकार्यरूप विभाग जैसे प्रतिविम्बस्थानीय घटाकाशमें रहता है तैसे विम्बस्थानीय महाकाशमेंभी रहता है विभागको नियमतः द्विष्ठ होनेसे फलतः विम्बभूत ईश्वर चेतनमेंभी औपाधिककार्यकी प्रसक्ति है। और मुखनिष्ठविम्बत्वादिके और ब्रह्मस्थ सर्वज्ञताके अनौपाधित्वके आपातसेभी द्वितीयपक्ष नहीं मान सकते हो=उपाधि स्वकार्यको प्रतिविम्बमेंही अवभासित करती है ऐसा माना जाय तो मुखनिष्ठ प्रतिविम्बत्वको औपाधिकत्व न सिद्ध होगा क्योंकि मुख प्रतिविम्ब नहीं है तैसे ब्रह्मस्थ सर्वज्ञत्वभी औपाधिक न सिद्ध होगा क्योंकि ब्रह्मभी प्रतिविम्ब नहीं है। नापि तृतीयचतुर्थौ=स्वकार्यनिष्ठ

धर्मप्रतिभासकत्व प्रतिविम्बके प्रति स्वविषयाच्छादकत्वरूप तृतीय तथा चतुर्थ पक्षभी ठीक नहीं; क्यों ? दर्पण घटादिरूप उपाधिरूप उपाधिओंमें इन्होंको न देखनेसे इसी रीतिसे बुद्धिरूपोपाधिभी प्रतिविम्वपक्षपाती नहीं है ननुसे लेकर यहांतक शङ्कापक्ष है अब समाधान किया जाता है इति चेन्न, क्योंकि अतिशयसे कार्यकरत्वही प्रतिविम्वपक्षपातित्व है=जैसे सर्वके अभिमतको देनेवालीभी श्रीत्रिपुरसुन्दरी भक्तोंको अतिशयेन अनुगृहीत करती है अतः भक्तपक्षपातिनी कही जाती है, तैसे विम्व तथा प्रतिविम्व इन दोनोंके कार्य करनेवालीभी उपाधि अतिशय कर प्रतिविम्वमेंही कार्यकर होनेसे प्रतिविम्वकी पक्षपाती कही जाती है।

तथाच विच्छेदादिरूपकार्यकरत्वसाम्येऽपि स्थौल्याद्यवभासरूपकार्यकरत्वेन दर्पणादेः प्रतिविम्वपक्षपातित्ववत्—कर्तृत्वभोक्तृत्वादिसंसाररूपकार्यकरत्वेनाविद्यायामपि प्रतिविम्वपक्षपातित्वोपपत्तेः यच्चूक्तं मुखादिगतं विम्वत्वं ब्रह्मगतं सार्वज्ञ्यादिकं चानौपाधिकं स्यादिति। तन्न, उपाधौ विम्वकार्यकरत्वमेव नेति न ब्रूमः किन्तु प्रतिविम्वेऽतिशयेनेति। यदपि बुद्धिरूपोपाधेरपि न प्रतिविम्वपक्षपातित्वं, तस्य प्रतिविम्वापक्षपातिजपाकुसुम—स्थानीयत्वेन तत्पक्षपात्यादर्शस्थानीयत्वाभावादिति तन्न स्वनिष्ठस्थौल्यावभासकत्वेनादर्शस्येवास्यापि स्वनिष्ठधर्मविभासकत्वेन तद्वत् पक्षपातित्वसंभवात्। तस्मादविद्याकृतविच्छेदेन ब्रह्मण्येव नित्यमुक्तत्वसंसारित्वकिंचिज्ज्ञत्वादिव्यवस्थोपपत्तिः।

फलतः जैसे विच्छेदादिरूप कार्यकरत्वका साम्य होनेपरभी स्थौल्यादिका अवभासरूप जो कार्य तादृशकार्यकरत्व होनेसे दर्पणादिको प्रतिविम्वपक्षपातित्व है तैसे कर्तृत्वभोक्तृत्वादिरूप जो संसार तादृश संसाररूप जो कार्य तादृशकार्यकरत्व होनेसे अविद्यामेंभी प्रतिविम्वके पक्षपातित्वकी उपपत्ति=सम्भव है। मुखादिगतविम्वत्व तथा ब्रह्मगत सर्वज्ञत्वादि अनौपाधिक होंगे इति यत् उक्तम् तन्न=ऐसा जो कहा है वह ठीक नहीं, क्योंकि उपाधिमें बिम्वकार्यकरत्वही नहीं है ऐसा हम लोग नहीं कहते हैं। बुद्धिरूप उपाधिकोभी प्रतिविम्वपक्षपातित्व नहीं है तस्य=उक्त बुद्धिरूप उपाधिको प्रतिविम्वका अपक्षपाति जो जपाकुसुम उस जपाकुसुमके स्थानीय होनेसे प्रतिविम्वपक्षपाति जो आदर्श उस आदर्शके स्थानीयत्वके अभावसे इति यदपि तदपि न=ऐसा जो कहा है वह भी ठीक नहीं है क्यों ? स्वनिष्ठ जो स्थौल्य तादृश स्थौल्यावभासकत्वेन जैसे आदर्शको प्रतिविम्वपक्षपातित्व है तैसे स्वनिष्ठधर्मावभासकत्वेन बुद्धिरूपोपाधिकोभी प्रतिविम्वपक्षपातित्वका संभव होनेसे। ततः अविद्याकृत जो विच्छेद=भेद है उस भेदसे ब्रह्ममेंही नित्यमुक्तत्व=बद्धान्यत्व, संसारित्व सर्वज्ञत्व किञ्चिज्ज्ञत्वादिकी व्यवस्थाकी उपपत्ति है=सत्यत्वेन ज्ञायमान जो दृश्यका सम्बन्ध है उसका नाम है बन्ध और वह सत्यत्वेन ज्ञायमान दृश्यका सम्बन्ध जिसमें रहता हो उसका नाम है बद्ध उससे अन्यका नाम है मुक्त।

एतेन—असर्वज्ञत्वादिनानुभवसिद्धाज्जीवादन्यस्य चेतनस्याभावेन सार्वज्ञ्यादिश्रुतिर्निर्विषया स्यात्, एकजीववादे संसार्यसंसारिव्यवस्थाऽयोगात् 'द्वासुपर्णा' (ऋ०

सं० मण्ड० १ । सू० १६४ । मं० ८; श्वेत० ४।६; मु० ३० १।११), 'यआत्मनितिष्ठन्' (शतपथ कां० १४ प्रपाठक ५ ब्राह्मण ५ कण्डिका ३०) इत्यादिश्रुतिभिः 'अन्यश्च परमो राजन् तथान्यः पञ्चविंशकः' (म० भा० शां० पर्व) । तान्यहं वेदसर्वाणि न त्वं वेत्थ परंतप (गी० ४।५) इत्यादिस्मृतिभिः शारीरश्चोभयेऽपि हि–भेदेनैनमधीयते, (ब्र० १।२।२०) भेदव्यपदेशाच्च (ब्र० १।१।१७) इत्यादिसूत्रैः तस्माच्छारीरादन्य एवेश्वरः । आत्मानौ तावेतौ चेतनौ एककर्ता भोक्ता अन्यस्तद्विपरीतोऽपहतपाप्मत्वादिगुण इत्यादिभाष्यैः 'तत्वज्ञानसंसरणे चावदातत्वश्यामत्वादिवत् नेतरेत्रावतिष्ठेते इत्यादिविवरणग्रन्थैश्च विरोध इतिनिरस्तम् । ननु–चिन्मात्रस्याज्ञानं स्वाभाविकमौपाधिकं वा नाद्यः आत्मवदनिवृत्तिप्रसङ्गात् । नान्त्यः स्वस्यैवोपाधित्वे आत्माश्रयात् एतदपेक्षान्यापेक्षत्वे अन्योन्याश्रयात् तदन्यान्यापेक्षत्वे चानवस्थानादिति–चेन्न; स्वस्यैवाश्रयत्वोपाधित्वात् । न चात्माश्रयः भेदस्य स्वभेदकत्ववदुपपत्तेः स्वाभाविकस्यापि घटरूपस्य तत्प्रागभावस्य च निवृत्तिदर्शनात् ।

इत्यद्वैतसिद्धौ अज्ञानस्य चिन्मात्राश्रयत्वोपपत्तिः ॥

एतेन=उक्त व्यवस्थापनसे असर्वज्ञत्वादिप्रकारक अनुभवसे सिद्ध जो जीव है उस जीवसे अन्य चेतनके अभावसे सार्वज्ञादिबोधकश्रुति निर्विषया होगी, एक जीववादमें संसारिअसंसारिकी व्यवस्थाके अयोगसे निम्नलिखित श्रुतिस्मृतिसूत्रभाष्यविवरणके साथ विरोध होगा, यह कथन खण्डित हुआ=आविद्यकभेदसे सर्वव्यवस्थाओंको उपपन्न होनेसे किसीके साथ विरोध नहीं । विवरणवाक्यका अर्थ यह है कि जैसे बिम्बप्रतिबिम्बका अभेद होनेपर भी अवदातत्व प्रतिमुखमें है और श्यामत्वमुखमें है इस रीतिसे परस्पर अवस्थान नहीं करते हैं=अवदातत्व और श्यामत्व परस्पर व्यत्ययरूपसे अवस्थान नहीं करते हैं किन्तु अवदातत्व बिम्बमेंही रहता है और श्यामत्व प्रतिबिम्बमेंही रहता है इसी रीतिसे नियत हैं तैसे तत्त्वज्ञान=अनावरण और संसरण=आवरण ये दोनों भी नियत हैं अर्थात् बिम्बभूतेश्वरमें अनावरण है और प्रतिबिम्बभूत जीवमें आवरण है । शङ्कते नन्विति । चिन्मात्रनिष्ठ अज्ञान क्या स्वाभाविक है या औपाधिक है, नाद्यः प्रथम पक्ष नहीं बन सकता है क्यों आत्माकी तरह अनिवृत्तिके प्रसङ्गसे–स्वाभाविक आत्माकी जैसे निवृत्ति नहीं होती है, तैसेही स्वाभाविक अज्ञानकीभी निवृत्ति न होगी, नान्त्यः=अन्तिम पक्षभी नहीं बन सकता है क्यों ? अपनी स्थितिमें अपनेकोही उपाधिता होनेपर आत्माश्रय होनेसे, और एतदज्ञानकी अपेक्षा रखनेवाला जो दूसरा अज्ञान उस अज्ञानकी इसको अपेक्षा होनेपर अन्योन्याश्रय है तदन्योन्यापेक्षत्वे=प्रथमको अपेक्षित जो द्वितीय उस द्वितीयको तृतीयादिकी अपेक्षा होनेपर अनवस्था है, इति चेन्न, क्यों ? स्वकोही आश्रयत्वकी उपाधि होनेसे=स्वोपहितमेंही स्वके वृत्तित्वसे, ऐसा होनेपर आत्माश्रय है नच=आत्माश्रय नहीं है क्यों ? भेदको स्वभेदकत्वकी नाईं उपपत्ति होनेसे=जैसे भेद स्वोपहितमें रहता है तैसे ।

अन्यथा भेदस्थलमें भी अनवस्थापर्यन्त दोषोंकी प्रसक्ति है और स्वाभाविक घटरूपकी और घटप्रागभावकी निवृत्ति देखनेसे स्वाभाविककी भी निवृत्ति अनुपपन्न नहीं है।

इति सरलायामज्ञानस्य चिन्मात्राश्रयत्वोपपत्तिः।

अथाज्ञानवादेऽविद्यायाः सर्वज्ञाश्रयत्वोपपत्तिः।

ननु—शुद्धब्रह्मणः चिन्मात्रस्याज्ञानाश्रयत्वे सार्वज्ञ्यविरोधः। नच विशिष्ट एव सार्वज्ञ्यम्, 'तुरीयं सर्वदृक्सदा' इति शुद्धस्यैव सर्वज्ञत्वोक्तिरिति-चेन्न, सर्वदृक्पदेन सर्वेषां दृग्भूतं चैतन्यमित्युच्यते। नतु सर्वज्ञं तुरीयम्, तस्माद्विशिष्ट एव सार्वज्ञ्यम्। तच्चाविद्यां विना न संभवतीत्यविद्यासिद्धिः। तथाहि—सर्वज्ञो हि प्रमाणतः स्वरूपज्ञप्त्या वा। तत्र प्रमाणस्य भ्रान्तेश्चाविद्यामूलत्वात्, असङ्गस्वरूपज्ञप्तेश्चाविद्यां विना विषयासङ्गतेः। तदुक्तम्,—स्वरूपतः प्रमाणैर्वा सर्वज्ञत्वं द्विधास्थितम्। तच्चोभयं विनाऽविद्यासम्बन्धं नैव सिध्यति। इति॥

अथ सरलायामज्ञानवादेऽविद्यायाः सर्वज्ञाश्रयत्वोपपत्तिः।

ननु—चिन्मात्रशुद्धब्रह्मको अज्ञानका आश्रयत्व होनेपर ब्रह्ममें रहनेवाले सार्वज्ञ्यके साथ-विरोध होगा विशिष्टमेंही सर्वज्ञता है शुद्धमें नहीं नच=ऐसा नहीं कहना, क्यों ? तुरीयम्=प्रपञ्चशून्य शुद्धब्रह्म सर्वकालमें सर्वदृक् है, (गौ० का०१।१२) इस रीतिसे शुद्धकोही सर्वज्ञत्वकी उक्ति होनेसे, इतिचेन्न, क्योंकि सर्वदृक्पदसे सर्वका प्रकाशभूत चैतन्य है यह अर्थ कहा जाता है न कि 'तुरीय सर्वज्ञ' है यह अर्थ तस्मात् विशिष्टमेंही सार्वज्ञ्य है तच्च=वह विशिष्टवृत्ति सार्वज्ञ्य अविद्याके सम्बन्ध विना नहीं सिद्ध होता है अतः अविद्याकी सिद्धि है। तथाहि सर्वज्ञ क्या प्रमाणसे है या स्वरूपरूपज्ञप्तिसे। तत्र=उक्त दोनों पक्षोंमें प्रमाणको तथा भ्रान्तिको अविद्यामूलकत्व होनेसे अविद्याकी सिद्धि है, और असङ्गस्वरूपज्ञप्तिका अविद्याके विना विषयके साथ सङ्ग न होनेसेभी अविद्याकी सिद्धि है दोनों पक्षमें अविद्याकी सिद्धि है तदुक्तम्=सो कहा है सर्वज्ञत्व दोप्रकारसे स्थित है स्वरूपसे या प्रमाणोंसे तच्चोभयम्=वह दोनों प्रकारका सार्वज्ञ्य अविद्याके सम्बन्धविना नहीं सिद्ध होता है (तत्त्वप्रदीपिका ४।४)।

नच—स्वरूपज्ञप्तेः स्वतः-कालाद्यसम्बन्धेऽसत्त्वापातेन स्वतः सम्बन्धाभावेऽसर्वगतत्वापातेन चाविद्ययेव स्वत एवान्येन सम्बन्धो वक्तव्य—इति वाच्यम्, अविद्यासम्बन्धस्याप्याविद्यकत्वेनाविद्ययेवेतिदृष्टान्तानुपपत्तेः। स्वतः परतो वा कालादिसम्बन्धेन सर्वसम्बन्धेन चासद्वैलक्षण्यसर्वगतत्वयोरुपपत्तेर्न तयोरर्थे स्वतः कालसम्बन्धसर्वसम्बन्धापेक्षा। असङ्गत्वश्रुतिरपि स्वतः सङ्गाभावविषयत्वेनोपपद्यते अतएव—अज्ञताखिलसंवेत्तुर्घटते न कुतश्चनेति—निरस्तम् तस्माच्चिन्मात्राश्रितैवाविद्या॥

इत्यज्ञानवादे सर्वज्ञस्याविद्याश्रयत्वोपपत्तिः।

शङ्कते नचेति। स्वरूपभूतज्ञप्तिका स्वतः कालादिके साथ सम्बन्ध न होनेपर असत्त्वापातसे और स्वतः सर्वके साथ सम्बन्ध न होनेपर असर्वगतत्वापातसे अविद्याकी नांई स्वतः ही अन्यके साथ सम्बन्ध कहना चाहिए=चैतन्यके सम्बन्धके लिए बीचमें अविद्याके माननेकी आवश्यकता नहीं जैसे चेतन तथा अविद्याको परस्पर सम्बद्ध बनानेके लिए और कोई बीचमें तीसरा पदार्थ नहीं माना जाता है, इति नच वाच्यम् क्यों? अविद्याके सम्बन्धकोभी आविद्यक होनेसे 'अविद्याकी नाईं' इस दृष्टान्तकी अनुपपत्तिसे। और परतः कालादिके साथ सम्बन्धसे और सर्वके साथ सम्बन्धसे असद्वैलक्षण्य और सर्वगतत्व इन दोनोंकी उपपत्तिसे तयोरर्थे=असद्वैलक्षण्य और सर्वगतत्व इन दोनोंके लिए स्वतः कालसम्बन्धकी तथा स्वतःसर्वसम्बन्धकी अपेक्षा नहीं। और असङ्गत्वश्रुतिभी स्वतः सङ्गाभावविषयत्वेन उपपन्न होती है अतएव=कोईभी प्रकारकी अनुपपत्ति न होनेसे ही अखिलके संवेदिताको किसीभी रीतिसे अज्ञता संघटित नहीं है, (न्यायामृत) यह कथन भी खण्डित हुआ, क्योंकि उक्तविध अज्ञानाश्रयतारूप अज्ञताके माननेमें कोई अनुपपत्ति नहीं है प्रत्युत अविद्याश्रयतारूप अज्ञता विना अखिलका संवेदितृत्वही अनुपपन्न है। तस्मात् अविद्या चिन्मात्रकेही आश्रित है।

इति सरलायामज्ञानवादेऽविद्यायाः सर्वज्ञाश्रयत्वोपपत्तिः।

अथाज्ञानवादेऽविद्यायाः वाचस्पतिसम्मतजीवाश्रयत्वोपपत्तिः।

वाचस्पतिमिश्रैस्तु जीवाश्रितैवाऽविद्या निगद्यते। ननु—जीवाश्रिताविद्या तत्प्रतिबिम्बितचैतन्यं वा तदवच्छिन्नचैतन्यं वा, तत् कल्पितभेदं वा जीवः; तथाचान्योन्याश्रय इति—चेन्न, किमयमन्योन्याश्रय उत्पत्तौ ज्ञप्तौ स्थितौ वा। नाद्यः अनादित्वादुभयोः न द्वितीयः, अज्ञानस्य चिद्भास्यत्वेऽपि चितेः स्वप्रकाशत्वेन तद्भास्यत्वात्। न तृतीयः स किं परस्पराश्रितत्वेन वा परस्परसापेक्षस्थितिकत्वेन वा स्यात् तन्न उभयस्याप्यसिद्धेः अज्ञानस्य चिदाश्रयत्वे चिदधीनस्थितिकत्वेऽपि चिति अविद्याश्रितत्वतदधीनस्थितिकत्वयोरभावात्। न चैवमन्योन्याधीनताक्षतिः। समानकालीनयोरपि अवच्छेद्यावच्छेदकभावमात्रेण तदुपपत्तेः, घटतदवच्छिन्नाकाशयोरिव प्रमाणप्रमेययोरिव च। तदुक्तम्—स्वेनैव कल्पिते देशे व्योम्नि यद्वत् घटादिकम्। तथा जीवाश्रयाविद्यां मन्यन्ते ज्ञानकोविदाः। इति।

अथ सरलायामज्ञानवादेऽविद्याया वाचस्पतिसम्मतजीवाश्रयत्वोपपत्तिः।

और टीकाकार वाचस्पतिमिश्रसे तो जीवके आश्रितही अविद्या कही जाती है=भामतीकार वाचस्पतिमिश्र अविद्याको जीवाश्रित मानते हैं। शङ्कते नन्विति। जीवके आश्रित अविद्या है और जीव तो अविद्यामें प्रतिबिम्बित चैतन्यरूप या अविद्यावच्छिन्न चैतन्यरूप या तत्कल्पितभेदं=तिस अविद्यासे कल्पित है ईश्वरका भेद जिसमें एवम्भूत जो चैतन्य तादृश चैतन्यरूप मानना होगा, तथा च=फलतः अन्योन्याश्रय है=अविद्याको जीवकी

अपेक्षा है और जीवको अविद्याकी अपेक्षा है ऐसा समझकर द्वैतीकी शङ्का है इति चेन्न, विकल्पकर निराकरण करते हैं, किमिति। क्या यह अन्योन्याश्रय उत्पत्तिमें है=अविद्याकी उत्पत्ति जीवसे होती है और जीवकी उत्पत्ति अविद्यासे होती है, अतः उत्पत्तिमें अन्योन्याश्रय है, या ज्ञप्तिमें है=जीवका ज्ञान अविद्याज्ञानके अधीन है और अविद्याका ज्ञान जीवज्ञानके अधीन है अतः अन्योन्याश्रय है। या स्थितौ=स्थितिमें अन्योन्याश्रय है=अविद्याकी स्थिति जीवके अधीन है और जीवकी स्थिति अविद्याके अधीन है अतः अन्योन्याश्रय है। नाद्यः=आदिम पक्ष नहीं बन सकता है क्यों? उभयोः=जीव तथा अविद्या इन दोनोंको अनादि होनेसे। न द्वितीयः=द्वितीय पक्षभी ठीक नहीं क्यों? अज्ञानको चित्से भास्यत्व होनेपरभी चित्को स्वप्रकाशत्व होनेसे अज्ञानसे अभास्यत्व होनेसे, अज्ञानचित्से प्रकाश्य है परन्तु स्वप्रकाश होनेसे चित् अज्ञानसे प्रकाश्य नहीं अतः ज्ञप्तिमें अन्योन्याश्रय नहीं। न तृतीयः=स्थितिमें अन्योन्याश्रयरूप तृतीयपक्षभी नहीं कह सकते हो; स किम्=स्थितिमें अन्योन्याश्रय क्या परस्पराश्रितत्वेन है=जीव अज्ञानके आश्रित है और अज्ञान जीवके आश्रित है इस लिए अन्योन्याश्रय है या परस्परसापेक्षस्थितिकत्वेन है, जीवको अपनी स्थितिमें अज्ञानकी अपेक्षा है और अज्ञानको अपनी स्थितिमें जीवकी अपेक्षा है अतः स्थितिमें अन्योन्याश्रय है तन्न=उक्त कथन नहीं बन सकता है, क्यों? उभयस्यापि=उक्त दोनों प्रकारोंकी असिद्धि होनेसे, इसी अर्थको स्पष्ट करते हैं अज्ञानस्येति। अज्ञानको चिदाश्रयत्व और चिदधीनस्थितिकत्व होनेपरभी चिति=चैतन्यमें अविद्याश्रितत्व और अविद्याधीनस्थितिकत्व इन दोनोंके अभावसे। एवम्=ऐसा होनेपर परस्पर अधीनताकी हानि है नच=हानि नहीं है क्यों? समानकालीन दो पदार्थोंकोभी अवच्छेद्य—अवच्छेदकभावमात्रसे तदुपपत्तेः=परस्पर अधीनताकी उपपत्तिसे, जैसे घट तथा घटावच्छिन्नाकाशमें परस्पर आश्रयता है और प्रमाणप्रमेयकी जैसे परस्पराश्रयता है, तैसे। तदुक्तम्=सो कहा है–यद्वत्=जिस रीतिसे व्योम्नि=आकाशमें स्वेनैव कल्पिते देशे=घटादिसेही कल्पित जो प्रदेश है उस प्रदेशमें घटादि रहते हैं। तैसे जीवाश्रयाविद्याको उत्कृष्टज्ञानी लोग मानते हैं।

एतेन—यद्युत्पत्तिज्ञप्तिमात्रप्रतिबन्धकत्वेनान्योन्यापेक्षताया अदोषत्वं, तदा चैत्रमैत्रादेरन्योन्यारोहणाद्यापत्तिरिति–निरस्तम् परस्परमाश्रयाश्रयिभावस्यानङ्गीकारात्। नचेश्वरजीवयोरीश्वरजीवकल्पितत्वे आत्माश्रयः; जीवेशकल्पितत्वे चान्योन्याश्रयः, नच शुद्धा चित् कल्पिका तस्य अज्ञानाभावादिति–वाच्यम्; जीवाश्रिताया अविद्याया एव जीवेशकल्पकत्वेनैतद्विकल्पानवकाशात् तस्माज्जीवाश्रयत्वेऽप्यदोषः॥

इत्यद्वैतसिद्धौ अज्ञानस्य जीवाश्रयत्वोपपत्तिः।

एतेन=इस हेतुसे–यदि उत्पत्तिमात्र और ज्ञप्तिमात्रमें प्रतिबन्धकत्वेन अन्योन्यापेक्षताको अदोषत्व है तब–चैत्रमैत्रादिकेभी परस्पर आरोहणादिकी आपत्ति है यह कथन निरस्त हुआ,

एतेनका अर्थ करते हैं परस्परमिति। परस्पर आश्रयाश्रयिभावके अनङ्गीकारसे। शङ्कते नचेति। ईश्वर तथा जीव इन दोनोंको ईश्वरजीवकल्पितत्व होनेपर आत्माश्रय है और जीवेशकल्पितत्व होनेपर अन्योन्याश्रय है और शुद्धचित् तो अज्ञानकी कल्पिका नहीं है उसको अज्ञानका अभाव होनेसे, इति नच वाच्यम्, क्यों? जीवाश्रित अविद्याकोही जीवेशका कल्पकत्व होनेसे विकल्पके अनवकाशसे। तस्मात् अविद्याके जीवाश्रितत्वमेंभी दोष नहीं है।

इति सरलायामज्ञानवादेऽज्ञानस्य जीवाश्रयत्वोपपत्तिः।

अथाज्ञानवादेऽज्ञानविषयनिरूपणम्।

अविद्याया विषयोऽपि सुवचः। तथाहि—चिन्मात्रमेवाविद्याविषयः तस्याकल्पितत्वेनान्योन्याश्रयादिदोषाप्रसक्तेः; स्वप्रकाशत्वेन प्रसक्तप्रकाशे तस्मिन् आवरणकृत्यसंभवाच्च। नान्यत्, तस्याज्ञानकल्पितत्वात् अप्रसक्तप्रकाशत्वेनावरणकृत्याभावाच्च। ननु—किमावरणकृत्यम्। (१) सिद्धप्रकाशलोपो वा (२) असिद्धप्रकाशानुत्पत्तिर्वा (३) सतः प्रकाशस्य विषयासम्बन्धो वा (४) प्राकट्याख्यकार्यप्रतिबन्धो वा, (५) नास्ति न प्रकाशते इति व्यवहारो वा (६) अस्ति प्रकाशते इति व्यवहाराभावो वा (७) नास्तीत्यादिव्यवहारयोग्यत्वंवा (अस्तीत्यादिव्यवहार योग्यत्वंवा। नाद्यद्वितीयौ स्वरूपप्रकाशस्य नित्यसिद्धत्वेन तल्लोपानुत्पत्त्योरसंभवात्, तदन्यस्य च स्वप्रकाशे तस्मिन्ननपेक्षितत्वात्। न तृतीयः ज्ञानस्य विषयसम्बन्धैकस्वभावत्वात्, स्वयंज्ञानरूपत्वेन त्वन्मते सम्बन्धानपेक्षत्वाच्च। नापि चतुर्थः त्वन्मते चैतन्यातिरिक्तस्य तस्याभावात्। नापि पञ्चमः सुषुप्तौ व्यवहाराभावेनानावरणापातात्। नापिषष्ठः व्यवहारस्य—अभिज्ञात्वे स्वरूपाभिज्ञाया इदानीमपि सत्त्वात् वृत्तेश्च मोक्षेऽप्यसत्त्वात्, अभिलपनरूपत्वे मोक्षेऽप्यावरणप्रसङ्गात्। नापिसप्तमाष्टमौ तयोरप्यारोपितत्त्वेनावरणं विनायोगादिति चेन्न;

अथ सरलायामज्ञानवादेऽज्ञानविषयनिरूपणम्।

अविद्याका विषयभी सुवच है। तथाहि—चिन्मात्रही अविद्याका विषय है, तस्य=चिन्मात्रको कल्पित न होनेसे अन्योन्याश्रयादिरूप दोषोंकी अप्रसक्तिसे, और स्वप्रकाशत्व होनेसे प्रसक्त है प्रकाश जिसमें एवम्भूत उक्तचिन्मात्रमें आवरणके कृत्यके सम्भवसेभी चिन्मात्रही अविद्याका विषय है, नान्यत्=चिन्मात्रसे अतिरिक्त कोइभी पदार्थ अविद्याका विषय नहीं क्यों? तस्य—चिन्मात्रसे अतिरिक्तको अविद्यासे कल्पित होनेसे और उसमें अप्रसक्तप्रकाशत्वेन आवरणके कृत्यके अभावसेभी। शङ्कते नन्विति। आवरणका कृत्य क्या सिद्ध प्रकाशका लोपरूप है या असिद्ध जो प्रकाश तादृश प्रकाशकी अनुत्पत्तिरूप है अथवा स्वतःप्रकाशका जो विषयके साथ असम्बन्ध है तद्रूप है, अथवा प्राकट्य नामक जो कार्य उसका प्रतिबन्धरूप है। या नास्ति न प्रकाशते, इत्याकारक व्यवहार रूप है, वा अस्ति प्रकाशते इत्याकारक व्यवहारका जो अभाव तद्रूप है अथवा, नास्ति—इत्यादिव्यवहारका योग्यत्व रूप है या अस्ति इत्यादि व्यवहारायोग्य-

स्वरूप है। नाद्यद्वितीयौ=प्रथमपक्ष और द्वितीयपक्ष नहीं कह सकते हो क्यों ? स्वरूपभूतप्रकाशको नित्यसिद्ध होनेसे उसका लोप तथा उसकी उत्पत्ति इन दोनोंका असम्भव होनेसे, तदन्यस्य च=स्वरूपभूत प्रकाशसे अतिरिक्त प्रकाशको उस स्वप्रकाशमें अनपेक्षित होनेसे। न तृतीयः=तृतीय पक्षभी नहीं कह सकते हो क्यों ? ज्ञानको विषयसम्बन्धैकस्यस्वभावत्व होनेसे=ज्ञान, विषयके साथ सम्बन्ध छोडकर रहताही नहीं है, अतः उसका विषयके साथ असम्बन्ध नहीं हो सकता है, और स्वयं ज्ञानरूप होनेसे त्वन्मते=त्वदङ्गीकृत शुद्ध चैतन्यमें सम्बन्धका अपेक्षण न होनेसेभी तृतीयपक्ष ठीक नहीं। नापि चतुर्थः=चतुर्थपक्षभी अच्छा नहीं क्यों ? तुम्हारे मतमें चैतन्यसे अतिरिक्त प्राकट्यका अभाव होनेसे। नापि पञ्चमः=पञ्चम पक्षभी युक्त नहीं क्यों ? सुषुप्तिमें व्यवहारके अभावसे अनावरणके आपातसे=नास्ति न प्रकाशते, यह व्यवहार आवरणका कृत्य है सो उक्त व्यवहाररूप कृत्य सुषुप्तिमें नहीं है अतः अनावरणका आपात है। नापि षष्ठः=छठा पक्षभी भव्य नहीं क्यों ? व्यवहारको अभिज्ञात्व होनेपर स्वरूपभूताभिज्ञाको इस कालमें=आवरणकालमेंभी सत्त्व होनेसे, और वृत्तिरूप अभिज्ञाका तो मोक्षमेंभी असत्त्व होनेसे अर्थात् वृत्तिरूप अभिज्ञाके विवक्षित होनेपर मोक्षमेंभी आवरणकी सिद्धि होगी और व्यवहारको अभिलपनरूपत्व होनेपर मोक्षमेंभी आवरणके प्रसङ्गसे। सप्तम तथा अष्टम ये दोनों पक्षभी रमणीय नहीं क्यों ? इन दोनोंको आरोपितत्व होनेसे आवरणके विना अयोगसे इति चेन्न क्योंकि—

नास्ति न प्रकाशत इति व्यवहार एवाभिज्ञादिसाधारणः अस्ति प्रकाशत इत्येतद्व्यवहाराभावो वा आवरणकृत्यम्। आवरणञ्च तद्योग्यता अज्ञानसम्बन्धरूपा सुषुप्त्यादिसाधारणी आब्रह्मज्ञानमवतिष्ठते तेन सुषुप्तिकाले नानावरणम् मोक्षकाले च नावरणम्। यदुक्तमस्याप्यारोपितत्वेनावरणसापेक्षत्वमिति। तन्न। अज्ञानसम्बन्धरूपस्यावरणस्यानादित्वेन चित्प्रकाश्यत्वेन च उत्पत्तौ ज्ञप्तौ स्थितौ वा स्वानपेक्षणात्।

नास्ति न प्रकाशते। इत्याकारक जो अभिज्ञादिसाधारण व्यवहार है वही आवरणका कृत्य है, या (अस्ति प्रकाशते) इत्याकारक जो व्यवहार उस व्यवहारका अभाव आवरणका कृत्य है। और आवरण तो अज्ञानसम्बन्धरूप उक्तकृत्यकी योग्यता है जोकि सुषुप्त्यादिसाधारणी है और ब्रह्मज्ञानके अव्यवहित पूर्वकालतक रहती है। तिससे सुषुप्तिकालमें अनावरण नहीं है और मोक्षमें आवरण नहीं है। अस्यापि=उक्तरूप आवरणकोभी आरोपितत्व होनेसे आवरणसापेक्षत्व है इति यत् उक्तम् तन्न=ऐसा जो कहा है वह ठीक नहीं क्यों ? अज्ञानसम्बन्धरूप जो आवरण है उस आवरणको अनादित्व होनेसे और चित्प्रकाश्यत्व तथा चिन्निष्ठत्व होनेसे उत्पत्तिमें ज्ञप्तिमें स्थितिमें स्वकी अपेक्षा न होनेसे।

ननु—अद्वितीयत्वादिविशिष्टे तथा व्यवहारेऽपि अवस्थात्रयेप्यसन्दिग्धाविपर्यस्तत्वेन प्रकाशमानात्मरूपे अध्यासाधिष्ठाने—सुखादिज्ञानरूपे चिन्मात्रे तदभावेन तत्कल्प्ययोर्योग्यत्वायोग्यत्वयोरभाव इति—चेन्न; शुद्धरूपायाश्चितेः प्रकाशमानत्वेपि तस्या एव

परिपूर्णाद्याकारेणाप्रकाशमानत्वात्, तदर्थं तस्या एवावरणकल्पनात्, परिपूर्णाद्याकारस्य मोक्षदशानुवृत्तत्वेन शुद्धचिन्मात्रत्वात्। नच निर्विभागचितः कथमेवं घटत इति–वाच्यम्; आवरणमहिम्नैव परिपूर्णं ब्रह्म नास्ति न प्रकाशत इति व्यवहारः अस्ति प्रकाशत इति व्यवहारप्रतिबन्धश्च अध्यासाधिष्ठानत्वादिना प्रकाशमानता चाविरुद्धा–इति।

शङ्कते नन्विति। अद्वितीयत्वादिविशिष्ट जो चैतन्य है उस चैतन्यमें तथा व्यवहारेऽपि=अद्वितीयं नास्ति न प्रकाशते इत्यादिरूप व्यवहारके होनेपरभी अवस्थात्रयेऽपि=जाग्रदादिरूप अवस्थात्रयमेंभी असंदिग्धत्वेन अविपर्यस्तत्वेन भासमान जो अध्यासका अधिष्ठानरूप और सुखादिका ज्ञानरूपचिन्मात्र आत्मा है उस आत्मामें तदभावेन=नास्ति न प्रकाशते इत्याकारक जो व्यवहार उसके अभावसे और अस्ति प्रकाशते इत्याकारक व्यवहारका जो अभाव उस अभावके अभावसे तत्कल्प्ययोः=नास्ति न प्रकाशते इस व्यवहारसे कल्पनीय स्वयोग्यत्व, (अस्ति प्रकाशते) इत्याकारक जो व्यवहार उस व्यवहारके अभावसे कल्प्य स्वयोग्यत्व इन दोनोंका अभाव है इति चेन्न, क्यों ? शुद्धरूप जो चित् है उसको प्रकाशमानत्व होनेपरभी तस्या एव=उस चित्कोही परिपूर्णाद्याकारसे अप्रकाशमानत्व होनेसे तदर्थम्=परिपूर्णाद्याकारसे अप्रकाशमानत्वके लिए तस्या एव=उक्तचिन्निष्ठ आवरणके कल्पनसे, परिपूर्णाद्याकारको मोक्षदशामें अनुवृत्तत्व होनेसे शुद्धचिन्मात्रत्व है निर्विभागचितः=पूर्णापूर्णभेदसे शून्य जो चित् है उसको किसी रूपसे प्रकाशमान होना और किसी रूपसे प्रकाशमान न होना यह कैसे घटता है इति नच वाच्यम् क्योंकि, आवरण–विषयक जो अनुभव उस अनुभवके बलसेही परिपूर्ण ब्रह्म नहीं है और प्रकाशमान नहीं है, यह व्यवहार और अस्ति प्रकाशते इत्याकारक व्यवहारका प्रतिबन्ध और अधिष्ठानत्वादि रूपसे प्रकाशमानता उपपन्न होती है।

अत—एव अवेद्यत्वे सत्यपरोक्षव्यवहारयोग्यत्वरूपस्वप्रकाशत्वविरुद्धे योग्यत्वायोग्यत्वे कथमिदानीमपि ब्रह्मणि स्याताम् ? नच–अज्ञानादिमत्त्वेनापरोक्षव्यवहारयोग्यत्वं स्वरूपेण च तदयोग्यत्वमित्यविरोध इति–वाच्यम्; स्वरूपस्याप्रकाशत्वादिति निरस्तम् परिपूर्णाद्याकारेण इदानीं व्यवहाराभावेऽपि अपरोक्षव्यवहारयोग्यत्वानपायात्। नचैवं–सुखादेरज्ञानावच्छिन्नचित्प्रकाश्यत्वे सुखादिकं न प्रकाशते इत्यनुभवापातेन सुखादिकं प्रकाशत इत्यनुभवार्थं चितोऽज्ञानानवच्छेदेन प्रकाशोऽङ्गीकरणीय इति वाच्यम्, इष्टापत्तेः अनुक्तोपालम्भनत्वात् नह्यज्ञानावच्छेदेन चित्प्रकाशत इति ब्रूमः।

अत एव अवेद्यत्वेसति अपरोक्षव्यवहारयोग्यत्वरूप जो स्वप्रकात्व है उससे विरुद्ध जो योग्यत्व तथा अयोग्यत्व वे दोनों इस कालमेंभी ब्रह्ममें कैसे होंगे ? यदि यों कहोकि अज्ञानादिमत्वेन अपरोक्षव्यवहारयोग्यत्व है और स्वरूपसे तदयोग्यत्व है तो नहीं कहना चाहिए क्यों ? स्वरूपको अप्रकाशत्व होनेसे, यह कथन निरस्त हुआ, अतएव शब्दके अर्थको दिखलाते हैं, परीति। परिपूर्णाद्याकारसे इस कालमें व्यवहारका अभाव होनेपरभी अप-

रोक्षव्यवहारके योग्यत्वके अनपायसे। एवम्=ऐसा होनेपर सुखादिको अज्ञानावच्छिन्न जो चित् उस चित्से प्रकाश्यत्व होनेपर; सुखादिक नहीं प्रकाशित हैं इत्याकारक अनुभवके आपातसे सुखादिक प्रकाशित होते हैं इस अनुभवके लिए चित्का अज्ञानावच्छेदेन प्रकाश अङ्गीकरणीय, इति नच—वाच्यम् क्यों ? इष्टापत्ति होनेसे और अनुक्तोपालम्भन होनेसे, अनुक्तोपालम्भनको दिखलाते हैं नहीति। अज्ञानावच्छेदेन चित् प्रकाशित होता है ऐसा हम नहीं कहते हैं।

अतएव च—नित्यातीन्द्रियेऽप्यज्ञानावच्छेदकतया अपरोक्षव्यवहारेण तत्रापि स्वप्रकाशापत्तिरिति निरस्तम्, अज्ञानावच्छेदेन तादृशस्य व्यवहारस्योक्तेः। ननु—प्रदीपावारकघटादिवचैतन्यावारकाविद्या चैतन्यस्य अन्यसम्बन्धं प्रतिबध्नातु—अन्यं प्रति चैतन्यमाच्छादयतु नतु चैतन्यं प्रत्येव चैतन्ये उक्तयोग्यत्वरूपप्रकाशविरोधिनी सा नहि दीपो घटावृतोऽपि स्वयं न प्रकाशते तमःसम्बन्धापातात् नच—कल्पितभेदजीवचैतन्यं प्रति शुद्धचैतन्यमाच्छादयतीति—वाच्यम्, आवरणं विना भेदकल्पनस्यैवायोगात्। यो मोक्षे भावी चिन्मात्रस्यैव चिन्मात्रं प्रति प्रकाशः तदभावस्येदानीमज्ञानेन साधनीयत्वात् चेति चेन्न; कल्पितभेदजीवं प्रति शुद्धचैतन्यस्यावृतत्वात्। नच भेदकल्पनस्यावरणोत्तरकालीनत्वादिदमयुक्तमिति वाच्यम्, भेदावरणयोरुभयोरप्यनादित्वेन परस्परमानन्तर्याभावात्।

अत एव च, नित्य अतीन्द्रिय जो पदार्थ है उसमेंभी अज्ञानावच्छेदकतया अपरोक्षव्यवहारके होनेसे तत्रापि=नित्य अतीन्द्रियमेंभी स्वप्रकाशकी आपत्ति है यह कथन परास्त हुआ, अतएव का अर्थ दिखलाते हैं—अज्ञानेति। अज्ञानानवच्छेदेन अपरोक्षव्यवहारकी उक्ति होनेसे। शङ्कते नन्विति। जैसे प्रदीपके आवारक जो घटादि है वे अन्यके प्रति प्रदीपके सम्बन्धका प्रतिबन्ध करते हैं, अर्थात् अन्यके प्रति प्रदीपका आच्छादन करते हैं, तैसे चैतन्यकी आवारिका अविद्याभी अन्यके प्रति चैतन्यका आच्छादन करो, नकि चैतन्यके प्रति ही चैतन्यमें उक्तयोग्यतारूप प्रकाशकी विरोधी वह है। घटसे आवृत हुआभी दीप स्वयं नहीं प्रकाशित होता है यह बात नहीं है क्यों ? दीपमें तमके सम्बन्धके आपातसे=यदि किसीभी अवस्थामें दीप स्वयंप्रकाश न होगा तो तमका दीपके साथ सम्बन्ध हो जायगा, घटादिवत् कल्पित है शुद्ध चैतन्यका भेद जिसमें ऐसा जो जीव चैतन्य है उस जीव चैतन्यके प्रति अविद्या शुद्ध चैतन्यको आच्छादित करती है इति नच वाच्यम् क्यों ? आवरणके विना भेदकल्पनकेही अयोगसे=आवरणके विना भेदकी कल्पना ही नहीं बनती है। और जो मोक्षमें होनेवाला चिन्मात्रका ही चिन्मात्रके प्रति प्रकाश है उसके अभावकोही इस कालमें अज्ञानसे साधनीयत्व होनेसे इति चेन्न, क्यों ? कल्पित है भेद जिसमें ऐसा जो जीवचैतन्य उस जीव चैतन्यके प्रति शुद्धचैतन्यको आवृत होनेसे। भेदकी कल्पनाको आवरणसे उत्तरकालीनत्व होनेसे

यह कथन अयुक्त है इति न च वाच्यम् क्यों ? भेद तथा आवरण इन दोनोंकोभी अनादिता होनेसे परस्पर आनन्तर्य्यके अभावसे ।

यच्चोक्तं—यो मोक्षे भावी चैतन्यं प्रति प्रकाशः तदभाव इदानीमज्ञानसाध्य इति । तन्न; मोक्षे जन्यस्य चैतन्य-प्रकाशस्याभावात्, कल्पितभेदापगमे शुद्धचैतन्यं प्रत्येव प्रकाशस्य जीवं प्रत्यपि संभवात् । यच्चोक्तं—प्रकाशस्वरूपे चैतन्ये कथमज्ञानम् ? नह्यालोके तम=इति । तन्न; अज्ञानतमसोर्विरोधितायामनुभवसिद्धविशेषात् ! त्वदुक्तमर्थं न जानामि इति प्रकाशमाने वस्तुनि अज्ञानस्यानुभवात् स्वरूपचैतन्यं साक्षि वा नाज्ञानाविरोधि, तमसस्तु आलोके सत्यननुभवात् आलोकमात्रं तद्विरोधि । नच त्वदुक्तार्थो न प्रकाशत इत्यनुभवादस्तु तत्र भासमानेऽज्ञानम् सुखादिस्फुरणे भासमाने न प्रकाशत इत्यननुभवात् कथं तत्राज्ञानमिति—वाच्यम् सुखादिस्फुरणं न प्रकाशत इत्यनुभवाभावेऽपि अनवच्छिन्नाकारेण न प्रकाशत इत्यनुभवात् आवारकाज्ञानस्य तत्राप्यावश्यकत्वात् ।

और जो कहा है कि जो मोक्षमें भावी=होनेवाला चैतन्यके प्रति प्रकाश है उसका अभाव इस कालमें अज्ञानसे साध्य है सो ठीक नहीं क्यों ? मोक्षमें जन्य चैतन्यके अभावसे । और कल्पित भेदका अपगम=निवृत्ति होनेपर शुद्ध चैतन्यके प्रति जो प्रकाश है उस प्रकाशको जीवके प्रतिभी सम्भव होनेसे । और जो कहा कि—प्रकाशस्वरूपचैतन्यमें अज्ञान कैसे है, आलोकमें तो तम नहीं देखा जाता है वह ठीक नहीं क्यों ? अज्ञानकी और तमकी जो विरोधिता है उस विरोधितामें अनुभवसिद्ध विशेष होनेसे । तथाहि=अनुभवसिद्ध विशेषको दिखलाते है तुमने कहा जो अर्थ उस अर्थको मैं नहीं जानताहूँ इस रीतिसे प्रकाशमान वस्तुमें अज्ञानका अनुभव होनेसे स्वरूपचैतन्य या साक्षिस्वरूप चैतन्य अज्ञानका विरोधी नहीं है और आलोकके होनेपर तमका अनुभव न होनेसे आलोकमात्र तद्विरोधि=तमका विरोधी है । और वस्तुतः तो अवतमसे=क्षीणान्धकारमें विषयका प्रकाश तथा आलोक इन दोनोंका सहभाव देखनेसे=अन्धकार विषयप्रकाश आलोक इन तीनोंको साथ २ देखनेसे, तममेंभी आलोकमात्रविरोधित्व नहीं है । शङ्कते नचेति । त्वदुक्तार्थो न प्रकाशते ऐसा अनुभव होनेसे तत्र=उक्तस्थलमें भासमान अर्थमें अज्ञान रहो परन्तु सुखादिके स्फुरणके भासमान होते हुए सुखादिस्फुरणं न प्रकाशते ऐसा अनुभव न होनेसे तत्र=सुखादिस्फुरणमें अज्ञान कैसे है इति न च वाच्यम्, क्यों ? (सुखादिस्फुरणं न प्रकाशते) इत्याकारक अनुभवके न होनेपरभी अनवच्छिन्नाकारेण=सुखादिसे अनवच्छिन्न जो आकार उस आकारसे सुखादिका स्फुरण प्रकाशित नहीं होता है, आवारक=आवरणकर्त्ता अज्ञानको तत्र=प्रकाशमान सुखादिस्फुरणमेंभी आवश्यक होनेसे ।

यदपि—त्वदुक्तमर्थं न जानामीत्यत्र भासमाने नाज्ञानम्, किन्तु गुहास्थं तमश्छन्नमितिवत् त्वदुक्तं न जानामीत्यानावृतसामान्यावच्छेदेनैव विशेषाज्ञानमनुभूयते नहि

परचित्तस्थमज्ञानं प्रातिस्विकरूपेणानूद्यते एवञ्च तद्विशेषसंशयं प्रति तत्सामान्यनिश्चय इव तद्विशेषावच्छिन्नाज्ञानज्ञानं प्रति तत्सामान्याज्ञानमेव हेतुः तथादर्शनात्, नहि विशेषे ज्ञाते तदज्ञानधीर्दृष्टा अवच्छेदकज्ञानस्य ह्यवच्छिन्नज्ञानहेतुतापि दर्शनादेव कल्प्या न चातिप्रसङ्गः सामान्यविशेषभावस्यैव नियामकत्वात् इति।

(त्वदुक्त अर्थको मैं नहीं जानता हूँ, यहाँपर भासमानमें अज्ञान नहीं है, किन्तु जैसे (गुहास्थं तमश्छन्नं) यहाँपर अनावृत जो गुहास्थरूपसामान्य है तदवच्छेदेन विशेषमें तमश्छन्नत्व प्रतीत होता है तैसे (त्वदुक्तमर्थं न जानामि, यहाँपर अनावृत जो अर्थत्वरूप सामान्य है तदवच्छेदेन ही विशेषमें अज्ञान अनुभूत होता है। और परचित्तस्थ जो अज्ञानम्=अज्ञानावच्छेदकीभूत वस्तु है वह प्रातिस्विकरूपेण=विशेषरूपसे अनुवादित नहीं होती है और ऐसा होनेपर जैसे तद्विशेषसंशयके प्रति तत्सामान्यनिश्चयको हेतुता है तैसे तद्विशेषावच्छिन्नाज्ञानका जो ज्ञान है उस ज्ञानके प्रति तत्सामान्यज्ञानको हेतुता है तैसा देखनेसे विशेषके ज्ञान होनेपर सामान्यके अज्ञानकी धी दृष्ट नहीं है। ननु विशेषज्ञानका अवच्छेदक विशेष है उस अवच्छेदकरूप विशेषके ज्ञान विना अवच्छिन्नरूप विशेषाज्ञानका ज्ञान कैसे होगा दण्डज्ञानके विना तो (दण्डी) इत्याकारक अवच्छिन्न ज्ञान नहीं होता है ऐसी आशङ्का कर द्वैती समाधान करता है कि—अवच्छेदक ज्ञानको अवच्छिन्न ज्ञानमें हेतुताभी दर्शनबलसेही कल्प्य है, फलतः सामान्य ज्ञानसे विशेषविषयक संशयादिके देखनेसे सामान्यज्ञानकोभी विशेषावच्छिन्नाज्ञानज्ञानमें हेतुता दर्शनसेही कल्पना करते हैं। नचातिप्रसङ्गः=कोईभी सामान्यज्ञान किसीभी विशेषावच्छिन्नाज्ञानाज्ञानमें हेतु हो जायगा नच=यह अतिप्रसङ्ग नहीं है; क्यों? सामान्यविशेषाभावकोही नियामकत्व होनेसे, इति—यदपि=ऐसाभी जो कहा है—

तन्न। अज्ञानं हि विशेषावच्छिन्नतया भासते सामान्यावच्छिन्नतया वा,। आद्ये विशेषे भासमानत्वमागतमेव नहि—विशेषमभासयन् विशेषाज्ञानमित्यवभासयति तथा च सामान्यनिश्चयजनितोऽपि संशयो विशेषमवगाहते यथा तथा सामान्यज्ञानजनितोऽप्यज्ञानप्रत्ययो विशेषं विषयीकरिष्यतीति कुतो भासमाने नाज्ञानमिति। न द्वितीयः सामान्यज्ञानेन तदवच्छिन्नतयैव गृहीतस्याज्ञानस्य विशेषसम्बन्धित्वे मानाभावेन भासमाने सामान्य एवाज्ञानमवगतम्। वस्तुनः प्रतीतिप्रमाणकत्वात्। तथाच परचित्तस्थं यथा अनूद्यते, तथा ज्ञानं तथैवाज्ञानं चेति सिद्धम्।

वह ठीक नहीं, विकल्पकर दोष देते हैं—अज्ञान विशेषावच्छिन्नतया भासित होता है या सामान्यावच्छिन्नतया, आदिम पक्ष हो तब तो विशेषमें भासमानत्व आही गया, क्योंकि विशेषाज्ञानज्ञान विशेषको न प्रकाशित करता हुआ तो विशेषाज्ञानको प्रकाशित नहीं करता है, फलतः जैसे सामान्यनिश्चयसे जनितभी संशय विशेषका अवगाहन करता है तैसे सामान्यज्ञानसे जनितभी अज्ञानप्रत्यय विशेषको विषय करता है इस रीतिसे भासमानमें अज्ञान क्यों

नहीं है। न द्वितीयः=सामान्यावच्छिन्नतया अज्ञानका भान होता है यह द्वितीयपक्षभी आपके इष्टकी सिद्धि नहीं करता है, क्योंकि सामान्यज्ञानसे सामान्यावच्छिन्नत्वागृहीत जो अज्ञान है उस अज्ञानके विशेषसम्बन्धित्वमें मानके अभावसे भासमान जो सामान्य उसमेंही अज्ञान अवगत हुआ है। वस्तुको प्रतीतिप्रमाणक होनेसे। तथाच परचित्तस्थ जैसे अनूदित होता है तैसे ज्ञान और अज्ञानभी परचित्तस्थ होके अनूदित हो सकते हैं, यह सिद्ध हुआ।

ननु—यथा द्वेषस्येष्टत्वेऽपि द्विष्टस्य नेष्टत्वम्। ईश्वरस्य भ्रान्तिज्ञत्वेऽपि न भ्रमविषयज्ञत्वम्; अस्मदादीनामीश्वरसार्वज्ञ्यज्ञानेऽपि न सर्वज्ञत्वम्, एवमज्ञातज्ञानाभावेऽपि अज्ञानज्ञानमिति चेन्न; दृष्टान्तासंप्रतिपत्तेः। तथाहि—इच्छा तावद् ज्ञानसमानविषया, ज्ञानञ्चावच्छेदकतया द्विष्टमपि विषयीकरोतीति इच्छाया अपि अवच्छेदकतया तद्विषयत्वात्। नहीच्छा इष्टतावच्छेदकाविषया भवतीति। एतावानेव विशेषः। किञ्चित्साध्यतया विषयीकरोति किञ्चितदवच्छेदकतया ईश्वरोऽपि भ्रमविषयमगृहीत्वा भ्रमं न गृह्णाति भ्रमो हि भ्रमत्वेन ग्राह्यः। भ्रमत्वञ्च रजताभाववति रजतख्यातित्वं वा, असत् ख्यातित्वं वा अनिर्वचनीयख्यातित्वं वा तस्मिन् गृह्यमाणे सर्वथा विषयग्रहः।

शङ्कते नन्विति। जैसे द्वेषको इष्टता होनेपरभी द्वेषविषयीभूत द्विष्टको इष्टता नहीं है, और जैसे हमलोगोंको ईश्वरीय सार्वज्ञ्यका ज्ञान होनेपरभी सर्वज्ञत्व नहीं है तैसे अज्ञानावच्छेदक जो अज्ञातपदार्थ है उसके ज्ञान विनाभी अज्ञानका ज्ञान रहो, इति चेन्न; क्यों? दृष्टान्तोंकी सम्प्रतिपत्ति न होनेसे=दृष्टान्तकी वस्तुस्थितिको द्वैती ठीक नहीं समझ सका है इस लिए सिद्धान्तीने कहा है, दृष्टान्तकी असम्प्रतिपत्तिसे, इसी अर्थको विवृत करते हैं तथाहि इच्छा जो होती है वह ज्ञानसमानविषया होती है=जिस ज्ञानसे जो इच्छा होती है वह उस ज्ञानके विषयको विषयकरती हुई होती है। और ज्ञानको अवच्छेदकतया द्वेषके विषय द्विष्टकोभी विषय करता है अतः इच्छाकोभी अवच्छेदकतया तद्विषयत्व=द्विष्टविषयत्व है, इच्छा इष्टतावच्छेदकको विषय न करती हुई नहीं होती है, इतनाही विशेष है—किसीको साध्यतया विषय करती है, और किसीको अवच्छेदकतया और ईश्वरभी भ्रमके विषयको न ग्रहणकर भ्रमको ग्रहण नहीं करता है, क्योंकि भ्रम भ्रमत्वेन ग्राह्य है। और भ्रमत्वतो रजताभाववत्‌में रजतकी प्रतीतिरूप है अथवा असत्‌की प्रतीतिरूप है, या अनिर्वचनीयकी ख्याति रूप है। तस्मिन्=उक्त भ्रमत्वके गृह्यमाण होनेपर सर्वथा विषयका ग्रह है।

इयांस्तु विशेषः। यद्भ्रान्तः स्वातन्त्र्येण गृह्णाति; ईश्वरस्तु तज्ज्ञानावच्छेकतयेति ईश्वरसार्वज्ञ्यज्ञानमस्माकन्तु सर्वज्ञपदेन। तत्र सर्वपदप्रतिपाद्यं जानन्नेवास्मदादिस्तत्र ज्ञानसम्बन्धं गृह्णाति इति ईदृशं सार्वज्ञ्यमिष्टमेव। विशेषस्त्वीश्वरस्य न कुत्राप्यज्ञानं अस्मादृशां तु विशेष्याज्ञानमिति कृत्वा। एवञ्च ज्ञात एव विशेषे, अज्ञानज्ञानम्। नच घटादेरज्ञानावच्छेकतया भानेऽपि घटाद्यज्ञाननिवृत्तिं विना तदवच्छिन्नसंयोगादिज्ञाना-

दर्शनेन प्रकृतेऽपि विषयावच्छिन्नाज्ञानज्ञानार्थं तदवच्छेदकविषयाज्ञाननिवृत्तेरपि वक्तव्यत्वेनाज्ञानाविरोधिज्ञानवत् अज्ञानाविरोधिनी अज्ञाननिवृत्तिरपि स्वीकार्या स्यादिति-वाच्यम्, संयोगादिसत्त्वस्यावच्छेदकघटादिसत्त्वसापेक्षत्वेऽपि यथा अभावे न स्वाधिकरणीयप्रतियोगिरूपावच्छेदकसत्त्वापेक्षा विरोधात् । तथा अज्ञानज्ञानस्यापि न विषयाज्ञाननिवृत्त्यपेक्षा विरोधात् ।

परन्तु इतना विशेष है—भ्रान्त स्वातन्त्र्यसे विषयको ग्रहण करता है और ईश्वर भ्रमज्ञानावच्छेदकतया ग्रहण करता है फलतः साक्षात् ग्राहक जो ज्ञान है उसका नाम भ्रम है, और तादृश भ्रमके अधिकरणको भ्रान्त कहा जाता है और भ्रमज्ञानावच्छेदकतया विषयको ग्रहण करनेवाला ज्ञान भ्रम नहीं कहा जाता है, अतः ईश्वरका ज्ञान तथा भ्रमस्थलीय अनुव्यवसाय भ्रम नहीं है और उक्तज्ञानाधिकरण भ्रान्त नहीं है और ईश्वरीय सार्वज्ञ्यका ज्ञान तो हमलोगोंको सर्वज्ञपदसे है तत्र=उक्त स्थलमें सर्वपदसे प्रतिपाद्य जो अर्थ उस अर्थको जानते हुए ही हमलोग तत्र=सर्वपदप्रतिपाद्यमें ज्ञानके सम्बन्धको ग्रहण करते हैं और ऐसा सार्वज्ञ्य तो इष्टही है। और विशेषतो ईश्वरको कहींभी अज्ञान नहीं है और अपने जैसोंको विशेषोंमें अज्ञान है इस निमित्तको लेके है। इस रीतिसे ज्ञातविशेषमेंही अज्ञानका ज्ञान है। शङ्कते नचेति । घटादिका अज्ञानावच्छेदकतया भान होनेपरभी घटादिके अज्ञानकी निवृत्तिके विना—तदवच्छिन्न=घटाद्यवच्छिन्न जो संयोगादि उन संयोगादिके ज्ञानके न देखनेसे प्रकृतमेंभी विषयावच्छिन्न जो अज्ञान उस अज्ञानके ज्ञानके लिए तदवच्छेदक=अज्ञानावच्छेदक जो विषय उस विषयके अज्ञानकी निवृत्तिकोभी वक्तव्यत्व होनेसे अज्ञानका अविरोधी जैसे ज्ञान है तैसे अज्ञानकी अविरोधिनी अज्ञानकी निवृत्तिभी स्वीकार्य होगी, इति न च वाच्यम्? क्यों? संयोगादिके सत्त्वके अवच्छेदक जो घटादि उन घटादिका जो सत्त्व उस सत्त्वका सापेक्षत्व होनेपरभी जैसे अभावमें स्वाधिकरणनिरूपित—वृत्तित्वविशिष्ट जो प्रतियोगिरूप अवच्छेदक तादृश अवच्छेदकनिष्ठ जो सत्त्व उस सत्त्वकी अपेक्षा नहीं है विरोध होनेसे तैसे अज्ञानज्ञानकोभी स्वविषयके अज्ञानके निवृत्तिकी अपेक्षा नहीं है, विरोध होनेसे ।

नचैवं—तद्विषयकज्ञानापेक्षापि मास्तु; विरोधस्य समानत्वात् अविरोधकल्पनाबीजस्य ज्ञान. इवाज्ञाननिवृत्तावपि समानत्वात् । तथाच विषये अज्ञात एवाज्ञानं ज्ञायते, विषयविशेषावच्छिन्नबुद्धिस्तु तमसीव विशेषज्ञानानन्तरं एतावत्कालममुमर्थं नाज्ञासिषमित्येवरूपा जायत इति—वाच्यम्, हन्तैवमभावस्वभावविरोधिप्रतियोगिज्ञाननिरपेक्षज्ञानविषयत्वमभाववैलक्षण्यसाधकमज्ञाने उपपादितमायुष्मता । किंच यद्यज्ञानं स्वकाले विषयावच्छिन्नतया न भासयेत्, तदा तु त्वदुक्तमर्थं न जानामीति विषयावच्छिन्नाज्ञानस्य वर्तमानार्थप्रत्ययो विरुध्यते । तस्मात् विषयाज्ञानसाधकत्वात् साक्षिरूपविषयप्रकाशोऽपि नाज्ञानविरोधि किन्तु प्रमाणवृत्तिः । एकविषयत्वेऽपि प्रमाणवृत्तितदतिरि-

क्तवृत्त्योरज्ञानविरोधित्वाविरोधित्वे घटविषयकयोः सौरालोकाज्ञानयोः सौरचाक्षुषप्रकाशयोर्वा तमोविरोधित्वाविरोधित्ववदुपपद्येते ।

एवम्=ऐसा होनेपर तद्विषयकज्ञानापेक्षा=अज्ञानज्ञानको अज्ञानके विषयके ज्ञानकी अपेक्षाभी मत रहो, विरोधको समान होनेसे, अविरोधकल्पनाके वीजको ज्ञानकी नांई अज्ञानकी निवृत्तिमेंभी समान होनेसे । फलतः अज्ञातविषयमें ही अज्ञान जाना जाता है, और अज्ञानमें विषयविशेषावच्छिन्न जो बुद्धि होती है, वह तो तमसीव=तमके नष्ट होनेपर जैसे एतावत् कालपर्यन्त घटका तम स्थित था यह बुद्धि होती है तैसे विशेष ज्ञानके पश्चात् इतनेकालतक अमुक अर्थको मैंने नहीं जाना है इत्याकारिका उत्पन्न होती है, इति नच वाच्यम्; एवम् इस कथनसे अभावस्वभावका विरोधि जो प्रतियोगिज्ञान उस प्रतियोगिज्ञानसे निरपेक्ष जो ज्ञान तादृशज्ञानविषयत्व अज्ञानमें उपपादित किया है आयुष्मानने, जोकि अज्ञानमें अभावसे वैलक्षण्यका साधक है । किञ्च यदि ज्ञान स्वकालमें अज्ञानम्=अज्ञानको विषयावच्छिन्नतया न भासित करे तब तो ‘ त्वदुक्तमर्थं न जानामि ’ इस रीतिसे विषयावच्छिन्न अज्ञाननिष्ठ वर्त्तमानार्थक प्रत्यय विरुद्ध होगा । तस्मात् विषयनिष्ठ अज्ञानका साधकत्व होनेसे साक्षिरूप विषयका प्रकाश अज्ञानका विरोधि नहीं है=विषयका प्रकाश होते हुएभी अज्ञानका विरोधी नहीं है, किन्तु प्रमाणजन्यवृत्ति=प्रमारूप वृत्ति अज्ञानकी विरोधिनी है । और जैसे घटरूपविषयविषयक सौरालोक और घटज्ञान ये दोनों हैं परन्तु सौरालोकको घटावच्छेदेन तमका विरोधित्व है घटज्ञानको नहीं, अथवा—जैसे एकघटरूपविषयविषयक सौरप्रकाश और चाक्षुषप्रकाश ये दोनों हैं परन्तु सौरप्रकाशको विरोधित्व है चाक्षुषप्रकाशको नहीं तैसे वृत्तिरूप ज्ञानको और साक्षिरूपज्ञानको एकविषयत्व होनेपरभी वृत्तिरूप ज्ञान अज्ञानका विरोधी है साक्षिरूप ज्ञान नहीं ।

नच—वृत्तिश्चैतन्यस्य विषयोपरागार्थेति मते अस्या अज्ञाननिवर्त्तकत्वाभावात् इदमयुक्तमिति—वाच्यम्; अज्ञाननिवर्त्तकत्वेन निवृत्तिप्रयोजकत्वस्यैव उक्तत्वात् तच्च सम्बन्धसम्पादनद्वाराअस्मिपक्षेऽपि अस्त्येव । नच—अज्ञानस्य स्वविरोधिज्ञानाभावव्यापकत्वेन मोक्षेऽप्यज्ञानापात इति—वाच्यम्; मोक्षदशायामज्ञाननिवृत्तिश्रवणेन स्वविरोधिज्ञानप्रागभावमात्रव्यापकत्वात् । नच—कथं प्रमाणवृत्तिमात्रविरोधित्वे अज्ञानस्य ज्ञानमात्रविरोधित्वेनैव न जानामीत्याकारेण प्रत्ययः? इति—वाच्यम्; घटादिमात्रविरोधिनो घटाभावादेः भावसामान्यविरोधित्वेनाभावत्वेन प्रतीतिवत् ज्ञानविशेषविरोधिनोऽप्यज्ञानस्य ज्ञानसामान्यविरोधित्वेन प्रतीतिसंभवात् नह्यभावपदादिनाभावप्रतीतौ घटाभावो न भासते ।

शङ्कते नचेति । वृत्ति जो है वह चैतन्यका जो विषयके साथ उपराग उस उपरागके लिए है, इस मतमें अस्याः=इस वृत्तिको अज्ञाननिवर्तकत्वाभाव होनेसे, वृत्तिमें अज्ञानविरोधि-

वका कथन अयुक्त है इति नच वाच्यम् । क्यों ? अज्ञाननिवर्त्तकत्वेन अज्ञाननिवृत्तिप्रयोजकत्वकोही उक्त होनेसे । तच्च=उक्त प्रयोजकत्वतो सम्बन्धसम्पादनद्वारा इस पक्षमेंभी हैही । अज्ञानको स्वविरोधी जो ज्ञान उस ज्ञानका जो अभाव उस अभावका व्यापकत्व होनेसे मोक्षमेंभी अज्ञानकी आपत्ति है=मोक्षमें ज्ञान नहीं, अतः अज्ञानकी आपत्ति है, इति न च वाच्यम्; क्यों ? मोक्षदशामें अज्ञानकी निवृत्तिके श्रवणसे स्वविरोधि जो ज्ञान उस ज्ञानके प्रागभावमात्रका व्यापकत्व होनेसे=ज्ञानप्रागभावका व्यापक अज्ञान है ज्ञानाभावका सामान्यतः नहीं । प्रमाणवृत्तिमात्रका विरोधित्व होनेपर अज्ञानका 'न जानामि' इत्याकारक ज्ञानमात्रविरोधित्वेन ही कैसे प्रत्यय होता है इति नच वाच्यम्, क्यों ? जैसे घटादिमात्रके विरोधि जो घटाभावादि हैं उन घटाभावादिकी भावसामान्यविरोधितावच्छेदक जो अभावत्व तादृश अभावत्वेन प्रतीति होती है, तैसे ज्ञानविशेषविरोधि जो अज्ञान उस अज्ञानकी भी ज्ञानसामान्यविरोधित्वेन प्रतीतिका सम्भव होनेसे । अभावपदादिसे अभावकी प्रतीति होनेपर घटाभाव नहीं भासित होता है यह बात नहीं है ।

अथ सा विरोधिता तत्र विशेषमात्रपर्यवसन्ना समं प्रकृतेऽपि अन्यत्राभिनिवेशात् । नच—न जानामीतिज्ञप्तिविरोधित्वस्यैवानुभवात् कथं वृत्तिविरोधित्वम् । त्वन्मते चैतन्यस्यैव ज्ञप्तित्वात् चैतन्याज्ञानयोरविरोधे ज्ञानत्वाज्ञानत्वायोगात्—इतिवाच्यम्—मन्मते वृत्तिप्रतिविम्बितचैतन्यं जानामीतिव्यवहारविषयः । तथाच न जानामीति—अनेन वृत्तिचितोरुभयोरप्यज्ञानविरोधित्वं विषयीक्रियते । एवञ्च न चैतन्येऽज्ञानविरोधित्वम्, नापि वृत्तौ वृत्त्युपारूढचित एवार्थप्रकाशकत्वेन तथात्वात् ।

यदि ऐसा कहोकि सा विरोधिता=अभावस्थलीय उक्त विरोधिता उक्तस्थलमें विशेषमात्रमें पर्यवसाना है तो प्रकृतमेंभी समान है, अभिनिवेशको छोड़कर । 'नहीं जानताहूँ' इस रीतिसे ज्ञप्तिविरोधित्वकेही अनुभवसे वृत्तिविरोधित्व कैसे है ? और तुम्हारे मतमें चैतन्यको ही ज्ञप्तित्व होनेसे चेतना और अज्ञानका अविरोधित्व होनेपर चैतन्य तथा अज्ञानको ज्ञानत्व तथा अज्ञानत्वका क्रमसे अयोग है इति नच वाच्यम् क्यों कि मन्मतमें 'न जानामि' इत्याकारक व्यवहारका विषय वृत्तिप्रतिविम्बित चैतन्य है, फलतः 'न जानामि' इस अनुभवसे वृत्ति तथा चित् इन दोनोंका अज्ञानविरोधित्व किया जाता है । एवञ्च=दोनोंको मिलकर अज्ञानका विरोधित्व होनेपर केवलचैतन्यमें अज्ञानविरोधित्व नहीं है, और केवलवृत्तिमेंभी नहीं; वृत्त्युपारूढ चैतन्यकोही अर्थप्रकाशकत्व होनेसे तथात्वात्=अज्ञानविरोधित्व होनेसे ।

ननु—वृत्तेरप्यर्थप्रकाशकत्वं विना जातिविशेषेणैवाज्ञानतत्कार्यनिवर्त्तकत्वे इच्छादिनिवर्त्यद्वेषादिवत् सत्त्वापत्त्या शुक्त्यादिज्ञानवत् अर्थप्रकाशकत्वेन तन्निवर्त्तकत्वे वक्तव्ये चैतन्यस्यापि तत्सत्त्वेन तन्निवर्तकत्वावश्यम्भावेन तन्निवृत्त्यापातः, नित्यातीन्द्रिये परोक्षवृत्तौ सत्यामपि अज्ञानानिवृत्त्या सुखादावपरोक्षवृत्त्यभावेऽपि स्फुरणमात्रेणाज्ञानादर्शनेन चान्वयव्यतिरेकाभ्यां स्फुरणस्यैवाज्ञानविरोधित्वात्—इतिचेन्न; प्रमाण-

वृत्त्युपारूढप्रकाशत्वेन निवर्त्तकत्वं ब्रूमः नतु जातिविशेषेण प्रकाशत्वमात्रेण वा। अतो नेच्छादिनिवर्त्यद्वेषादिवदेतन्निवर्त्यानां सत्त्वापत्तिः, नवा चैतन्यमात्रस्य निवर्तकत्वापत्तिः। अत एव शाब्दादि वृत्तौ सत्यामपि अज्ञाननिवृत्त्या सुखादौ प्रमाणवृत्त्याभावे स्फुरणमात्रेणाज्ञानादर्शनेनान्वयव्यतिरेकाभ्यां स्फुरणस्यैवाज्ञानादौ विरोधित्वमिति—निरस्तम् परोक्षवृत्तेर्विषयपर्यन्ताभावेन न विषयगताज्ञाननिवर्त्तकत्वम्, सुखादौ च ज्ञातैकसत्त्वादज्ञाननिवृत्तिं विनैवाज्ञानादर्शनम् अतोऽन्वयव्यतिरेकयोरन्यथासिद्धया स्फुरणमात्रं नाज्ञानविरोधि।

शङ्कते नन्विति। वृत्तिकोभी अर्थप्रकाशकत्वके विना जातिविशेषसेही अज्ञान तथा अज्ञानकार्य इन दोनोंका विवर्त्तकत्व होनेपर जैसे इच्छादिसे निवर्त्य जो द्वेषादि हैं उनका सत्त्व है तैसे वृत्तिनिवृत्याज्ञान तत्कार्यके सत्त्वकी आपत्तिसे; जैसे शुक्तयादिके ज्ञानको अर्थप्रकाशकत्वेन रजतादिनिवर्त्तकत्व है तैसे वृत्तिकोभी अर्थप्रकाशकत्वेन अज्ञानतत्कार्यके निवर्त्तकत्त्वको वक्तव्य होनेपर=जातिविशेषवत्त्वेन यदि वृत्तिको अज्ञानादिका निवर्त्तकत्व होगा तो इच्छादिसे निवर्त्य द्वेपादिवत् वृत्तिनिवर्त्यके सत्यत्त्वकी आपत्ति है, इस लिए वृत्तिको अर्थप्रकाशकत्वेन निवर्त्तकत्व कहना चाहिए और अर्थप्रकाशकत्वेन निवर्त्तकत्व शुक्तयादिज्ञानोमें देखा भी गया है फलतः अर्थप्रकाशकत्वेन निवर्त्तकत्त्वके सिद्ध होनेपर चैतन्यास्यापि=चैतन्यकोभी अर्थप्रकाशकत्व होनेसे अज्ञान तत्कार्यके निवर्त्तकत्वके अवश्यम्भावसे अज्ञान तत्कार्यकी निवृत्तिका आपात है; और नित्य अतीन्द्रियविषयक परोक्षवृत्तिके होनेपरभी अज्ञानकी अनिवृत्तिसे और सुखादिविषयक अपरोक्षवृत्तिका अभाव होनेपरभी स्फुरणमात्रसे अज्ञानके न देखनेसे फलतः अन्वयव्यतिरेकसे स्फुरणको ही अज्ञानका विरोधित्व होनेसे, इति चेन्न, क्योंकि प्रमाणवृत्त्युपारूढप्रकाशत्वेन निवर्त्तकत्व हमलोग कहते हैं, नकि जातिविशेषेण या प्रकाशत्वमात्रसे अतः इच्छानिवर्त्य द्वेपादिकी नाईं उक्तविध प्रकाशनिवर्त्योंके सत्यत्वकी आपत्ति नहीं और चैतन्यमात्रको निवर्तकत्वकी आपत्ति नहीं। अत एव शाब्दादि वृत्तिओंके होनेपरभी अज्ञानकी निवृत्तिसे सुखादिमें अपरोक्षवृत्तिका अभाव होनेपरभी स्फुरणमात्रसे अज्ञानके न देखनेसे अन्वयव्यतिरेकसे स्फुरणकोही अज्ञानादिमें विरोधित्व है, यह निरस्त हुआ, अत एवका अर्थ दिखलाते हैं परोक्षवृत्तिको विषयपर्य्यन्तत्वके अभावसे विषयगताज्ञाननिवर्त्तकत्व नहीं है, और सुखादिमें तो ज्ञातैकसत्त्वहोनेसे, अज्ञानकी निवृत्ति विना ही अज्ञानका अदर्शन है, अतः अन्वयव्यतिरेकको अन्यथासिद्ध होनेसे स्फुरणमात्र अज्ञानका विरोधी नहीं है।

न चात्मनोऽज्ञानाश्रयविषयत्वे स्वसत्तायामप्रकाशविधुरत्वेनस्वप्रकाशत्वसाधनायोगः; परिपूर्णत्वादिना अप्रकाशविधुरत्वाभावेऽप्यध्यासाधिष्ठानत्वादिना प्रकाशमानतयाऽप्रकाशविधुरत्वसंभवात्। नच वृत्तिचितोर्वैषम्योक्तिरयुक्ता, वृत्तिवत्साक्षिणोऽपि समानविषयतया अज्ञानविरोधित्वानुभवात्, अन्यथा साक्षिवेद्ये चैत्रेच्छासुखादौ मैत्रस्येव चैत्रस्याप्यज्ञानं स्यात् नो चेत् मैत्रस्याप्यज्ञानं न स्यादिति—वाच्यम् साक्षिणि यदज्ञा-

नविरोधित्वमनुभूयते तन्नाज्ञाननिवर्त्तकत्वनिबन्धनम् , किन्तु स्वविषय इच्छादौ यावत्सत्त्वं प्रकाशादज्ञानाप्रसक्तिनिबन्धनम् , । वृत्तेश्च स्वविषये-प्रसक्ताज्ञाननिवृत्तिनिबन्धनमेवेत्यु-भययो-वैंषम्योक्तिर्युक्तैव। अज्ञानाप्रसक्तेरेव चैत्रेच्छादौ चैत्रस्य नाज्ञानव्यवहारः मैत्रस्य तु प्रमात्रज्ञानादेव तद्व्यवहारः । नच तर्ह्यात्मन्यपि तत एव तदप्रसक्तिरिति वाच्यम्-दत्तो त्तरत्वात् ।

आत्माको अज्ञानका आश्रयत्व और विषयत्व होनेपर स्वसत्तायामप्रकाशविधुरत्वरूप हेतुसे स्वप्रकाशत्वके साधनका अयोग है=आत्मरूप प्रकाशको अज्ञानके अविरोधित्वका अङ्गी-कार होनेसे स्वसत्तामेंभी अप्रकाशका सम्भव होनेसे, अप्रकाशविधुरत्वरूप हेतुकी असिद्धिसे स्वप्रकाशत्वके साधनका अयोग है नच=अयोग नहीं है क्यों ? परिपूर्णत्वादिना=परिपूर्ण-त्वादि स्वरूपसे अप्रकाशविधुरत्वका अभाव होनेपरभी अध्यासाधिष्ठानत्वादिरूपसे प्रकाश-मानत्व होनेसे अप्रकाशविधुरत्वके सम्भवसे। शङ्कते नचेति । वृत्ति और चित् इन दोनोंमें वैषम्यकी उक्ति अयुक्त है, वृत्तिवत् साक्षीकोभी समानविषयत्वेन अज्ञानविरोधित्वका अनुभव होनेसे=वृत्ति जैसे स्वविषयमें अज्ञानकी विरोधिनी है तैसे साक्षीभी स्ववि-षयमें अज्ञानका विरोधी है, अन्यथा=साक्षीको स्वविषयमें अज्ञानका विरोधित्व न होनेपर साक्षीसे वेद्य जो चैत्रके इच्छासुखादिक हैं उन इच्छा सुखादिकोंमें मैत्रकी नाईं चैत्रकोभी अज्ञान होगा, अन्यथा मैत्रकोभी अज्ञान न होगा=जबकि सर्वथा साक्षीके विषयमें अज्ञान है ही नहीं तब मैत्रकोभी अज्ञान क्यों होगा, इति नच वाच्यम् क्योंकि-साक्षीमें जो अज्ञानका विरोधित्व अनुभूत होता है वह अज्ञाननिवर्त्तकत्वके अधीन नहीं है=साक्षी अज्ञानका निवर्त्तक है इस लिए साक्षीमें अज्ञानविरोधित्वका भान होता है यह बात नहीं है किन्तु स्व=साक्षि-विषय जो इच्छादि हैं उन इच्छादिमें यावत्सत्त्वप्रकाश होनेसे= जब पर्य्यन्त इच्छादि रहते हैं तब पर्य्यन्त उन्होंका प्रकाश रहता है अतः अज्ञानाप्रसक्तिनिबन्धन है और वृत्तिनिष्ठ जो अज्ञानविरोधित्व है वह तो स्वविषयमें प्रसक्त जो अज्ञान तादृश अज्ञानकी जो निवृत्ति तादृशनिवृत्तिनिबन्धन है, अतः चित् और वृत्तिके वैषम्यकी उक्ति युक्तही है । और अज्ञानकी प्रसक्ति न होनेसेही चैत्रकी इच्छादिमें चैत्रका अज्ञानव्यवहार नहीं होता है और मैत्रका तो प्रमाताके अज्ञानसेही चैत्रीयइच्छादिविषयक अज्ञानव्यवहार होता है, तब आत्मामेंभी तत एव=सदा प्रकाश होनेसेही तदप्रसक्तिः=अज्ञानकी अप्रसक्ति है इति नच वाच्यम् क्यों ? दत्तोत्तरत्वात्=परिपूर्णत्वादिरूपसे अप्रकाशमानत्व होनेसे, इत्यादिरूप दत्तोत्तरत्व होनेसे।

किञ्च साक्षिवेद्यत्वं तदप्रसक्तौ तन्त्रम् आत्मा तु न तद्वेद्यः चिद्रूपत्वात् प्रकाश एवेति । नच—तर्हि सुतरामज्ञानानुपपत्तिः तेजसीव तमसः अन्यथा घटादिरालोक-मिवात्मापि स्वव्यवहारे ज्ञानान्तरमपेक्षेतेति—वाच्यम् अज्ञानावृतत्वात्-घटवदज्ञाननि-वर्त्तकान्तरापेक्षा चेत्तर्हि इष्टापत्तिः वृत्तेरेवापेक्षणात् , प्रकाशान्तरापेक्षायां जडत्वस्योपा-

धित्वात् । प्रकाशत्वेऽप्यज्ञानाविरोधित्वस्योपपादितत्वात् । अत एव सर्वं वस्तु ज्ञाततया अज्ञाततया च साक्षिचैतन्यस्य विषयः ज्ञानाज्ञानयोः स्वविषयावच्छिन्नयोरेव भानात् । एतेन—अन्धकारावृतवत् ज्ञानाभावावच्छेदकविषयवच्चाज्ञानावृतस्याप्यप्रकाशेन साक्षिवेद्यत्वायोग इति—निरस्तम् विषयावच्छेदेनानुभवविरोधात् ।

किञ्चेति । साक्षिवेद्यत्व तदप्रसक्तौ=अज्ञानकी अप्रसक्तिमें तन्त्र है और आत्मा तो साक्षिवेद्य नहीं है किन्तु चिद्रूप होनेसे प्रकाशस्वरूपही है । शङ्कते नचेति । तब तो सुतराम् आत्मामें अज्ञानकी अनुपपत्ति है, जैसेकि तेजमें अन्धकारकी अनुपपत्ति होती है, अन्यथा घटादिक जैसे स्वव्यवहारमें आलोककी अपेक्षा करते हैं तैसेही आत्माभी स्वव्यवहारमें ज्ञानान्तरकी अपेक्षा करेगा, इति न च वाच्यम्—क्योंकि अज्ञानसे आवृत्त होनेसे घटकी तरह आत्माको स्वसे अतिरिक्त जो अज्ञानका निवर्त्तक तादृशनिवर्त्तककी अपेक्षा होगी ऐसा यदि कहो तब तो इष्टापत्ति है, अज्ञाननिवृत्तिके लिए वृत्तिकी ही अपेक्षा होनेसे, और यदि प्रकाशान्तरकी अपेक्षा कहो तो जडत्व उपाधि है,=घटमें प्रकाशान्तरकी अपेक्षा है और वहाँ जडत्वभी है, और अज्ञानावृतत्वरूपसाधन आत्मामें है, परन्तु वहाँ जडत्व नहीं । और आत्मामें प्रकाशत्व होनेपरभी अज्ञानके अविरोधित्वका प्रतिपादन हो चुका है, अतः विरोध नहीं । अत एव=आत्मप्रकाश और अज्ञानका विरोध न होनेसेही सर्व वस्तु ज्ञाततया तथा अज्ञाततया साक्षिचैतन्यका विषय है, स्वविषयसे अवच्छिन्न होकेही ज्ञान तथा अज्ञानका भान होनेसे । एतेन=इस कथनसे—अन्धकारसे आवृतका जैसे प्रकाश नहीं होताहै, और 'घटज्ञानं नास्ति' यहाँपर जैसे ज्ञानाभावका अवच्छेदक जो विषय उसका प्रकाश नहीं होता है तैसे अज्ञानसे आवृतकाभी प्रकाश न होनेसे प्रकाशित=ज्ञातविषयमें अज्ञानके साक्षिवेद्यत्वका अयोग है, यह कथन निरस्त हुआ, एतेन शब्दका अर्थ लिखते हैं—विषयावच्छेदेन अज्ञानके अनुभवका विरोध होनेसे=जबकि ज्ञातविषयमें अज्ञान अनुभवसिद्ध है तब इसका अपलाप नहीं हो सकता है ।

ननु—वृत्तेरज्ञानविरोधित्वेऽप्यात्मविषया वृत्तिरिदानीमप्यस्त्येवेति कथं तत्राज्ञानम् ? किञ्च त्वन्मते घटाद्यपरोक्षवृत्तेरपि घटाद्यवच्छिन्नचिद्विषयत्वेन सुतरां चित्यज्ञानासंभवः, नच विशिष्टचैतन्यरूपजीवविषया वा घटावच्छिन्नचैतन्यविषया वा वृत्तिरज्ञानविषयीभूतकेवलचिद्विषयत्वात् अज्ञानविरोधिनी न स्यात् इति—वाच्यम्—दण्डी चैत्र इति वृत्त्या चैत्राज्ञानानभिभवापातात् । घटाकाशाज्ञाने महाकाशाज्ञानस्य महत्वाज्ञाने पर्यवसानम् अत एवाकाशो ज्ञात इति प्रतीतिः । नच श्रवणादिजन्यैव वृत्तिरज्ञानविरोधिनी; भ्रमकालीनापरोक्षज्ञानानधिकविषयज्ञानेन कारणान्तरजन्येनापि अज्ञाननिवृत्तावतिप्रसङ्गात्; अनधिकविषयत्वे श्रवणादिवैयर्थ्यात्सत्यत्वापाताच्चेति चेन्न;

शङ्कते नन्विति । वृत्तिको अज्ञानविरोधित्व होनेपरभी 'अहम्' इत्याकारिका आत्मविषया वृत्ति इसकालमेंभी है ही, अतः तत्र=आत्मामें अज्ञान कैसे है ? किञ्च तुम्हारे मतमें घटा-

दिविषयक अपरोक्षवृत्तिकोभी घटाद्यवच्छिन्नचैतन्यविषयत्व होनेसे सुतराम् चैतन्यमें अज्ञानका असम्भव है, यदि यों कहोकि—विशिष्टचैतन्यरूप जो जीव तादृशजीवविषया जो 'अहम्' इत्याकारिका वृत्ति है वह या घटाद्यवच्छिन्नचैतन्यविषया जो 'घटः' इत्यादिरूपा वृत्ति है वह अज्ञानका विषयीभूत जो केवल चैतन्य तादृशचैतन्यविषयक न होनेसे अज्ञानकी विरोधिनी नहीं है तो ऐसा नहीं कहना, क्यों? 'दण्डी चैत्रः' इत्याकारकवृत्तिसे चैत्रके अज्ञानके अनभिभवकी आपत्तिसे=' दण्डी चैत्रः' यह वृत्ति केवलचैत्रविषयक नहीं है किन्तु विशिष्टचैत्रविषयक है अतः चैत्राज्ञानका इससे अभिभव न होगा यदि यों कहोकि घटाकाशका ज्ञान होनेपरभी महाकाशका अज्ञान है तैसे विशिष्ट आत्माका ज्ञान होनेपरभी केवल आत्मामें अज्ञान है तो ऐसा नहीं कहना क्योंकि घटाकाशका ज्ञान होनेपर जो महाकाशमें अज्ञान प्रतीत होता है उस अज्ञानका पर्यवसान आकाशीयमहत्वाज्ञानमें है, अत एव=घटाकाशका ज्ञान होनेपर महाकाशमें अज्ञानके न होनेसेही 'आकाशो ज्ञातः' इत्याकारिका प्रतीति होती है श्रवणमननादिसे जन्य वृत्तिही अज्ञानकी विरोधिनी होती है नच=ऐसा नहीं होसकता है, क्यों? भ्रमकालीन जो अपरोक्षज्ञान उस अपरोक्ष ज्ञानके विषयसे अधिकविषय नहीं है जिसका ऐसा जो कारणान्तरसे जन्यज्ञान उस ज्ञानसे अज्ञानकी निवृत्ति न होनेपर अतिप्रसङ्ग होनेसे=शुक्तिमें रजत नहीं है इत्याकारक बाधकालमेंभी भ्रम अनुवृत्त होगा, क्योंकि श्रवणादिरूपकारणविशेपसे जन्य जो उक्त बाध उससेही भ्रमकी निवृत्ति होगी और अनधिकविषयत्व होनेपर श्रवणादिके वैयर्थ्यसेभी, और अधिष्ठानसामान्यसे न निवर्त्य होनेसे सत्यत्वके आपातसेभी इतिचेन्न, क्योंकि—

यावन्ति ज्ञानानि तावन्त्यज्ञानानीति मते अज्ञानविशेषः, एकाज्ञानपक्षे अवस्थाविशेषः शक्तिविशेषो वा अविद्यागतो विशिष्टगोचरवृत्त्या निवर्त्तत एव। प्रपञ्चनिदानभूतं तत्त्वमस्यादिवाक्यजन्याखण्डार्थगोचरवृत्तिनिवर्त्यमज्ञानं परमवशिष्यते, 'भेदभ्रमस्यानुभूयमानत्वात् यथा अयमिति ज्ञानात्तत्राज्ञाने निवृत्तेपि सोऽहमित्यभेदगोचरवृत्तिनिवर्त्याज्ञानमवशिष्यते। तथाच विषयकृतविशेषाभावेऽपि कारणविशेषजन्यत्वेन विशेषेण निवर्त्तकत्वे श्रवणवैयर्थ्यं सत्यतापत्तिश्च निरस्ता अन्यथा सोऽयमित्यत्राप्यगतेः। किञ्च जीवविषया वृत्तिरविद्यावृत्तिः नतु प्रमाणवृत्तिः तस्या एवाज्ञानविरोधित्वात्। तदुक्तं विवरणे—जीवाकाराऽहंवृत्तिपरिणतान्तःकरणेन जीवोऽभिव्यज्यत इति। अस्यार्थः जीवाकाराहंत्वप्रकारिकाविद्यावृत्तिः तया परिणतान्तःकरणेनान्तःकरणपरिणामभूतज्ञानरूपवृत्तिसंसर्गेण जीवोऽभिव्यज्यत इति।

जितने ज्ञान हैं उतने अज्ञान हैं इस मतमें अज्ञानविशेष, एकाज्ञानपक्षमें अविद्यागत अवस्थाविशेष या अविद्यागतशक्तिविशेष, विशिष्टगोचरवृत्तिसे निवृत्त होता ही है। और प्रपञ्चका उपादानभूत, तत्त्वमस्यादिवाक्यजन्य जो अखण्डार्थगोचरवृत्ति उस वृत्तिसे निवर्त्य एवम्भूत जो अज्ञान है वह बाँकी रहता है भेदभ्रमको अनुभूयमान होनेसे। जैसे 'अयम्' इस ज्ञानसे

तत्र=पुरोऽवस्थित व्यक्तिमें अज्ञानके निवृत्त होनेपरभी 'सोऽयम्' इत्याकारिका जो अभेद-गोचर वृत्तिहै, उस वृत्तिसे निवर्त्यअज्ञान वांकी=अवशिष्ट रहता है। फलतः विषयकृत विशेषका अभाव होनेपरभी कारणविशेषजन्यत्वरूप जो विशेष है उसविशेषसे अनिवर्त्तकत्व होनेपर श्रवणका वैयर्थ्य और सत्यतापत्ति निरस्त हुई। और उक्तव्यवस्थाके न माननेपर 'सोऽयम्' यहाँपरभी व्यवस्था न बनेगी। किञ्च जीवविषया जो वृत्ति है वह अविद्यावृत्ति है. प्रमाणवृत्ति नहीं, तस्या एव=प्रमाणवृत्तिकोही अज्ञानविरोधित्व होनेसे; सो विवरणमें कहा है—जीवाकार जो अहंवृत्ति तादृश अहंवृत्तिसे परिणत जो अन्तःकरण उस अन्तःकरणसे भी अभिव्यक्त होता है अस्यार्थः=विवरणवाक्यका अर्थ—जीवाकाराऽहंत्वप्रकारिका अविद्यावृत्ति है उससे परिणत जो अन्तःकरण उस अन्तःकरणसे अर्थात् अन्तःकरणका परिणामभूत जो वृत्तिरूप ज्ञान उसके संसर्गसे जीव अभिव्यक्त होता है।

नच घटोयमितिज्ञानेन चरमवृत्तिनिवर्त्त्याज्ञानमपि निवर्त्ततामिति—वाच्यम् तदवच्छिन्नाज्ञातत्वप्रयोजकाज्ञानविशेषादेव तदवच्छिन्नाज्ञाननिवर्त्यत्वस्य फलबलेन स्वीकारात्। अवतमस इव विषयप्रकाशकालोकस्य सर्वतमोऽनिवर्त्तकत्वेऽपि किञ्चित्तमोनिवर्त्तकत्वम्। तस्मात्सिद्धमाश्रयत्वविषयत्वभागिनी शुद्धचिदिति।

शङ्कते नचेति। 'घटोऽयम्, इत्याकारक जो ज्ञान है, उस ज्ञानसे चरमवृत्तिसे निवर्त्य अज्ञानभी निवृत्त हो इति नच वाच्यम् क्यों? तदवच्छिन्न=घटावच्छिन्न जो अज्ञातत्व तादृश—अज्ञातत्वका प्रयोजक जो अज्ञानविशेषादि तादृश अज्ञान—विशेषादिनिष्ठ ही घटाद्यवच्छिन्नज्ञाननिवर्त्यत्वका फलबलसे स्वीकार होनेसे। जैसेकि मन्दान्धकारमें विषयका प्रकाशक जो आलोक उस आलोकको सर्वतमका अनिवर्तकत्व होनेपरभी किञ्चित्तमका नवर्त्तकत्व है तस्मात् यह सिद्ध हुआकि आश्रयत्वविषयत्वभागिनी शुद्धचित् है।

एतेन—देहादिभेदो वा अभोक्तृत्वाद्यभेदो वा ब्रह्माभेदो वा, अद्वितीयमात्राभेदो वा तद्विशिष्टात्मा वा न तद्विषयः तेषामात्ममात्रत्वे उक्तदोषात् भिन्नत्वे अद्वैतक्षतेः आविद्यकत्वे अन्योन्याश्रयात् इति अनुक्तोपालम्भनम्—अपास्तम्। ब्रह्माभेदादेरात्ममात्रत्वपक्षे तस्याज्ञानविषयत्वमेव, दोषस्य परिहृतत्वात्। यत्तु प्रसङ्गादुक्तम् द्वितीयाभावोपलक्षितात्मनोऽज्ञानविषयत्वे तादृशस्यैव चरमवृत्तिविषयत्वं वाच्यम्। तथाच वेदान्तानामपि उपलक्षणरूपप्रकारयुक्तोक्तात्मपरत्वे अखण्डार्थताहानिः, अकाके काकवदिति अस्याप्रामाण्यापत्तिः उपलक्षणस्य मिथ्यात्वात् इति। तत्राखण्डार्थवादे वक्ष्यामः। नच—न्यूनाप्यङ्गुलिरधिकमाच्छादयति, अविषयसम्बन्धित्वात् इयं हि विषयसम्बन्धिनी कथमधिकमाच्छादयेदिति—वाच्यम् दत्तोत्तरत्वात् तस्मादविद्यास्वरूपत आश्रयतो विषयतश्च सुनिरूपा।

इत्यद्वैतसिद्धावविद्याया विषयोपपत्तिः।

एतेन=उक्तव्यवस्थापनसे तद्विषयः=मूलाज्ञानका विषय देहादिका भेद या अभोक्तृत्वादिका अभेद अथवा ब्रह्माभेद या अद्वितीयमात्राभेद या तद्विशिष्ट=देहादिभेदविशिष्ट आत्मा नहीं हो सकता है, क्योंकि उक्त पदार्थोंको आत्ममात्रता होनेपर उक्तदोष=घटाद्यवच्छिन्न चित्‌के ज्ञानसेभी अज्ञानकी नाशापत्त्यादिरूपदोषसे,–यदि उक्तार्थोंका आत्मासे भिन्नत्व होगा तो अद्वैतकी क्षति है और आविद्यकत्व होनेसे अन्योन्याश्रय है । यह अनुक्तोपालम्भन भी अपास्त हुआ । और ब्रह्माभेदादिको आत्ममात्रतापक्षमें ब्रह्माभेदादिका अज्ञानविषयत्व है ही । दोषको परिहृत हो चुकनेसे । और जो प्रसङ्गसे कहा कि द्वितीयाभावसे उपलक्षित जो आत्मा है उस आत्माको अज्ञानविषयत्व होनेपर तादृशस्यैव=द्वितीयाभावोपलक्षितआत्माको ही चरमवृत्तिविषयत्व वाच्य है, फलतः वेदान्तोंकोभी उपलक्षणरूप जो प्रकार तादृश प्रकारसे युक्त जो उक्त आत्मा तादृशात्मपरत्व होनेपर अखण्डार्थताकी हानि है, और अकाके=काकशून्यमें 'काकवत्' यह वाक्य जैसे अप्रमाण होता है तैसे वेदान्तोंकेभी अप्रामाण्यकी आपत्ति है उपलक्षणको मिथ्यात्व होनेसे । तत्र=उक्तविषयको लेकर अखण्डार्थवादमें कहेंगे । न्यून होनेपरभी अङ्गुलि अधिकको आच्छादित करती है विषयके साथ सम्बधि न होनेसे परन्तु यह अविद्या विषयके साथ सम्बन्धको रखती हुई कैसे अधिकको आच्छादित करेगी इति नच वाच्यम्, क्यों ? दत्तोत्तरत्वात्=इस कथनको दत्तोत्तरत्व होनेसे=' जैसे आत्मा विभु है तैसे अविद्याभी विभु है, इस पक्षमें अविद्यामें न्यूनत्वही नहीं है। और अविद्या अविभु है इस पक्षमेंभी अनुभवबलसे आच्छादकत्व उपपन्न होता है, और जैसा वस्त्रादिमें आच्छादकत्व रहता है वैसा तो अविद्यामें नहीं है जिससे कि ब्रह्मके आच्छादनमें अविद्या छोटी पडे किन्तु ' नास्ति ' इत्यादिव्यवहारहेतुत्वही तो आच्छादकत्व है, उसमें परिमितिके विचारकी आवश्यकता नहीं, इत्यादिरूप उत्तर अविद्याके विभुत्वादिके कथनसे दिया है । यतः द्वैत-दन्ति-दन्तभङ्गानुकूल युक्तियाँ दिखला दी हैं ततः अविद्या स्वरूपसे और आश्रयसे तथा विषयसे सुनिरूपा=शोभननिरूपणा है

इति सरलायामज्ञानवादेऽज्ञानविषयनिरूपणम् ।

अथाहमर्थस्यानात्मत्वोपपत्तिः ।

ततश्चाहङ्कारादिसृष्टिः । ननु–अहमर्थआत्मैव, तस्य कथमविद्यातः सृष्टिः ; नच–सुषुप्तौ स्वयंप्रकाशमानस्यात्मनः–सम्भवेऽप्यनेवंविधस्याहमर्थस्याभावः यदि च सुषुप्तावहमर्थः प्रकाशेत तर्हि स्मर्येत ह्यस्तन इवाहङ्कारः अनुभूते स्मरणनियमाभावेऽपि स्मर्यमाणात्ममात्रत्वादिति–वाच्यम्, हेतोरसिद्धेः तर्के इष्टापत्तेः न ह्यद्यापि स्वप्रकाशात्मान्यत्वमहमर्थे सिद्धमस्ति । आत्मान्यत्वेनाप्रकाशत्वसाधने तेन च तदन्यत्वसाधने अन्योन्याश्रयः । न चाहमर्थस्यापरामर्शः, सुखमहमस्वाप्सं न किञ्चिदवेदिषमिति तस्यैव परामर्शादिति–चेन्न; अहङ्कारस्तावदिच्छादिगुणविशिष्ट एव गृह्यत इत्यावयोः समम् । सुषुप्तौ च नेच्छाद्य इति कथं तदाऽहमर्थानुभवः ?

अथ सरलायामहमर्थस्यानात्मत्वम्।

और ततः=उक्तविध अविद्यासे अहङ्कारादिकी सृष्टि=उत्पत्ति होती है। शङ्कते नन्विति। अहम्का अर्थ आत्माही है तस्य=उस आत्माकी कैसे सृष्टि होगी; यदि यों कहो कि–सुषुप्तिमें स्वयं प्रकाशमान आत्माका सम्भव होनेपरभी अनेवंविध=स्वयंप्रकाशमान नहीं जो अहमर्थ उसका अभाव है, यदि सुषुप्तिमें अहमर्थ प्रकाशित हो तो सुषुप्तिके बाद स्मृत होना चाहिए जैसे कि कल होनेवाला अहङ्कार आज स्मृत होता है, अनुभूतमें स्मरणके नियमका अभाव होनेपरभी स्मर्यमाण जो आत्मा तादृश आत्ममात्र होनेसे अहमर्थका तो स्मरण होना ही चाहिए तो ऐसा नहीं कहना क्यों ? हेतोरसिद्धेः=अहङ्कारोऽनात्मा आत्मप्रकाशेऽपि अप्रकाशात्, ऐसा अनुमान यदि आपको अभिप्रेत है तो हेतुकी असिद्धि होनेसे=अहमर्थको आत्मा माननेवालेके मतमें आत्माका प्रकाशही अहमर्थका प्रकाश है अतः हेतुकी असिद्धि है। और हमारे मतमें सुषुप्तिमें अहमर्थका प्रकाशभी होता है और सुषुप्तिके बाद उसका स्मरणभी होता है अतः तर्कमें इष्टापत्ति है, उक्तार्थकोही स्पष्टकरते हैं=आज भी स्वप्रकाश जो आत्मा उस आत्माका भेद अहमर्थमें सिद्ध नहीं है। आत्मान्यत्वेन=आत्मभेदविशिष्टत्वेन अप्रकाशत्वसाधनमें तेन= अप्रकाशत्वेन तदन्यत्वसाधने=आत्मभेदविशिष्टत्वसाधनमें अन्योन्याश्रय है। सुषुप्तिके बाद अहमर्थका अपरामर्श है नच=नहीं है क्यों ? सुखपूर्वक मैं सोया कुछभी न जाना इस रीतिसे तस्यैव=अहमर्थकाही परामर्श होनेसे; ननुसे लेकर यहाँतक द्वैतीकी शङ्का है। अब समाधान करते हैं इति चेन्न; क्योंकि अहङ्कार इच्छादिसे विशिष्टही गृहीत होता है, यह हम तुम दोनों जनोंको समान है, और सुषुप्तिमें तो इच्छादिक नहीं हैं इसलिए तदा=सुषुप्तिमें अहमर्थका अनुभव कैसे है ?

नच—इच्छादिगुणविशिष्ट एवाहमर्थो गृह्यत इत्यत्र न नः संप्रतिपत्तिरिति-वाच्यम् गुणिग्रहणस्य गुणग्रहणव्याप्तत्वात् अन्यथा रूपादिहीनोऽपि घटः प्रथेत। नचरूपादिरहितानां तेषामसत्त्वं तत्र वीजमिति–वाच्यम्। पूर्वरूपनाशाग्रिमरूपानुत्पत्तिक्षणाद्यक्षणादौ तद्विनापि सत्वात्। एवञ्च गुणाग्रहणे कथं गुणिग्रहणम् ? तथाच निर्गुण एवात्मा गृह्यत इति स्वीकर्त्तव्यम्। अनुभवाभावे च न तस्य जागरे परामर्शः। तथाचाज्ञानाश्रयत्वेन सुषुप्तावनुभूयमानादात्मनोऽहङ्कारो भिन्नः। एवमेवात्मान्यत्वे सिद्धे अस्वप्रकाशत्वसाधने नान्योन्याश्रयः नच तर्हि अहमस्वाप्समित्यहमर्थस्य परामर्शानुभवेशानुपपत्तिः तदंशे परामर्शत्वासिद्धेः एवं सत्यपि यथाऽज्ञानांशे तस्य परामर्शत्वं तथोपपादितमधस्तात्।

इच्छादिरूप जो गुण तादृशगुणविशिष्टही अहमर्थ गृहीत होता है, इत्यत्र=इस अर्थमें नः=हम लोगोंकी सम्मति नहीं है इति नच वाच्यम्, क्यों ? गुणिके ग्रहणको गुणग्रहणसे

व्याप्त होनेसे=गुणग्रहणविना गुणिग्रहण नहीं होता है ऐसा नियम होनेसे=अन्यथा=यदि ऐसा नियम न मानों तो रूपादिसे रहितभी घट कभी ज्ञात होगा, रूपादिसे रहित घटादिका असत्त्व है वह घटादिका असत्त्व तत्र=गुणग्रहणके विना गुणिके अग्रहणमें बीज है इति नच वाच्यम्, क्यों ? पूर्वरूपका नाश और अग्रिमरूपकी अनुत्पत्ति है जिस क्षणमें उस क्षणमें और आद्यक्षणमें तद्विनापि=गुणके विनाभी घटादिका सत्त्व होनेसे, शङ्का, उक्त रीतिसे आद्यक्षणादिमें गुणका अभाव रहो परन्तु यह जो कहा कि रूपादिसे हीनभी घट ज्ञात होगा सो कैसे हो सकता है, क्योंकि आद्यक्षणमें तो निर्गुण होनेसे घटके साथ चक्षुका संयोगभी न होगा, क्योंकि संयोग हो जानेसे ही निर्गुणताका भङ्ग हो जायगा, और द्वितीय क्षणमें तो घटमें रूपादि माने ही जाते हैं अतः रूपविशिष्टकाही प्रत्यक्ष होगा इस शङ्काका समाधान यह है, रूपादिसे हीनभी घट ज्ञात होगा, इसका अर्थ यह है कि रूपादिको न विषय करता हुआभी ज्ञान घटको विषय करेगा, सो यह आपत्ति बन सकती है क्योंकि आद्यक्षणमें घटके साथ चक्षुका संयोगसम्बन्ध न होनेपरभी स्वसंयुक्तसमवायसम्बन्ध है इस सम्बन्धसे उत्पन्न होनेवाला जो द्वितीयक्षणमें ज्ञान है उस ज्ञानमें रूपादिविषयकत्व न होके घटमात्रविषयकत्वका सम्भव है, यद्यपि द्वितीय क्षणमें रूपादि हैं परन्तु ज्ञानजनक जो आद्यक्षणमें होनेवाला सम्बन्ध है वह रूपादिके साथ नहीं है, अतः रूपाद्यविषयकत्वविशिष्ट घटविषयकत्वका ज्ञानमें सम्भव है। एवञ्च=जब गुणग्रहणसे व्याप्त गुणिग्रहण है तब गुणके अग्रहण होनेपर गुणिग्रहण कैसे होगा, फलतः निर्गुण जो आत्मा है वही सुषुप्तिमें गृहीत होता है यह स्वीकर्तव्य है। अनुभवाभावेच=सुषुप्तिमें अहङ्कारका अनुभव न होनेपर तस्य=अहङ्कारका जागरमें परामर्श नहीं है फलतः अज्ञानाश्रयत्वेन सुषुप्तिमें अनुभूयमान जो आत्मा है उस आत्मासे अहङ्कार भिन्न है। एवमेव=इस रीतिसे अहङ्कारमें आत्मान्यत्व=आत्मभेदके सिद्ध होनेपर अहङ्कारमें अस्वप्रकाशत्व साधनमें अन्योन्याश्रय नहीं है। तब 'मैं सोया' इस रीतिसे अहमर्थके परामर्शमें प्रवेशकी अनुपपत्ति है नच=नहीं है, क्यों ? तदंशे=अहमंशमें परामर्शत्वकी असिद्धिसे। एवं सत्यपि=अहमंशमें उक्त ज्ञानको परामर्शत्व न होनेपरभी जैसे अज्ञानांशमें उक्तानुभवको परामर्शत्व है तैसे प्रथम उपपादित हो चुका है।

यद्यप्यहमस्वाप्समित्यादिज्ञानानान्य आत्मपरामर्शः=तथाप्यहमर्थस्य सुषुप्तिकालाननुभूतत्वेन तत्काले अज्ञानाश्रयत्वेन चानुभूतात्मन्येव परामर्शत्वपर्यवसानम्। अतएव चिदस्वपीत् स्वयमस्वपीदि तिपरामर्शाकारतापत्तिर्निरस्ता, तत्कालानुभूतान्तःकरणसंसर्गे अहमित्याकारोपपत्तेः यत्तूक्तं विवरणे—अन्तःकरणविशिष्ट एवात्मनि प्रत्यभिज्ञानं ब्रूमः न निष्कलङ्कचैतन्ये, तस्य मोक्षावस्थायिनः शास्त्रैकसमधिगम्यत्वात् इति। तदत्र न विरोधाय मोक्षावस्थायिनः समधिगम्यत्वादिति हेतूक्त्या न निष्कलङ्क इति उपाधिमात्रविरहिणि प्रत्यभिज्ञाननिषेधेन चान्तःकरणपदस्य उपाधिमात्रपरत्वात् तथाच सुषुप्तावप्यज्ञानोपहित एवात्मा गृह्यते।

यद्यपि 'अहमस्वाप्सम्' इत्यादिरूप जो ज्ञान है उस ज्ञानसे अन्य आत्माका परामर्श नहीं है तथापि अहमर्थको सुषुप्तिकालमें अनुभूत न होनेसे तत्काले=सुषुप्तिकालमें अज्ञानाश्रयत्वेन अनुभूत जो आत्मा है उस आत्मामें ही परामर्शत्वका पर्यवसान है । अतएव चिदस्वपीत्=चित् सोई स्वयं सोया, एवम्भूतपरामर्शाकारताकी आपत्ति निरस्त हुई अत एव शब्दका अर्थ करते हैं तत्काल=जाग्रत्कालमें अनुभूत जो अन्तःकरण उस अन्तःकरणके साथ संसर्ग होनेपर (अहम्) इस आकारकी उपपत्तिसे अतः अन्तःकरणविशिष्टआत्मामें ही हम प्रत्यभिज्ञान कहते हैं निष्कलङ्क चैतन्यमें नहीं मोक्षावस्थामें अवस्थान करनेवाले उस निष्कलङ्क चैतन्यको एक शास्त्रसे ही समधिगम्य होनेसे=शास्त्रमात्रप्रमाणक होनेसे इस रीतिसे यत्=जो विवरणमें कहा है वह यहाँपर विरोधके लिए नहीं है, क्यों? मोक्षावस्थामें रहनेवालेको शास्त्रैकसमधिगम्यत्व होनेसे इस हेतुकी उक्तिसे; और निष्कलङ्कमें नहीं इस रीतिसे उपाधिमात्रसे रहितमें प्रत्यभिज्ञानके निषेधसे अन्तःकरणपदको उपाधिमात्रपरत्व होनेसे, तथाच सुषुप्तिमेंभी अज्ञानोपहित ही आत्मा गृहीत होता है ।

किञ्चान्तःकरणविशिष्टे प्रत्यभिज्ञाननिषेधो नाभिज्ञानिषेधोऽपीति न विरोधः; सुषुप्तावभिज्ञाया एवोक्तत्वात् । नच यद्यहमर्थो न परामृश्येत तर्हि एतावन्तं कालं सुप्तोऽहमन्यो वेति संशयःस्यात्, नन्वहमेवेतिनिश्चय इति—वाच्यम् । सुषुप्तिकालानुभूतात्मैक्याध्यासादिति गृहाण यथा पूर्वदिनानुभूतदेवदत्तादभिन्नतयानुभूते चैत्रे सोऽयं नवेति न संशयः किन्तु स एवेति निश्चयः, किञ्च निश्चये सति संशयाभावनियमः नतु—निश्चयाभावे संशयनियमः, तदुक्तं आरोपे सति निमित्तानुसरणं नतु निमित्तमस्तीत्यारोप इति।

किञ्चेति । विवरणमें अन्तःकरणविशिष्टमें प्रत्यभिज्ञानका निषेध है अभिज्ञाकाभी निषेध नहीं अतः विरोध नहीं सुषुप्तिमें अभिज्ञाकोही उक्त होनेसे । यदि अहमर्थ परामृष्ट=स्मृत न हो तब इतने कालतक मैं सोया या अन्य सोया, इत्याकारक संशय होना चाहिए । मैं ही सोया ऐसा निश्चय नहीं होना चाहिए इति नच वाच्यम् क्यों? सुषुप्तिकालमें अनुभूत जो आत्मा उस आत्माके साथ अहङ्कारके ऐक्याध्याससे ऐसा संशय नहीं होता है ऐसा समझ; जैसे पूर्वदिनमें अनुभूत जो देवदत्त उस देवदत्तसे अभिन्नतया अनुभूत जो चैत्र उस चैत्रमें (सोऽयं नवा) ऐसा संशय नहीं होता है, किन्तु (स एव) ऐसा निश्चय ही होता है । किञ्च, निश्चयके होनेपर संशयाभावका नियम है, निश्चयका अभाव होनेपर संशयका नियम नहीं है सो कहाभी है, आरोप होनेपर निमित्तका अनुसरण किया जाता है और निमित्त है अतः आरोप होना ही चाहिए ऐसा नियम नहीं है ।

नच—एतावन्तं कालमहं स्वप्नं पश्यन्नासं जाग्रदासमित्यत्रेवाहमस्वाप्समित्यत्रापि अहमंशे परामर्शत्वानुभवात् कथं तत्रापरामर्शत्वमिति—वाच्यम्, परामृश्यमानात्म्यैक्यारोपात्तज्ज्ञानांशे परामर्शत्वाभिमानात् । नच—अपरामर्शे परामर्शत्वारोपो न दृष्ट इति—

वाच्यम्, तद्भिन्ने तत्त्वेनानुभूयमाने परामर्शत्वारोपदर्शनात् अतएव अहमर्थस्यात्मान्यत्वे यः पूर्वं दुःखी सोऽधुना सुखी जात इतिवत् यः पूर्वं मदन्यः सुपुप्तः सोऽधुनाऽहं जात इति धीः स्यादिति–निरस्तम्, यथादुःखित्वेन प्राक् तथा मदन्यत्वेन प्राक् ज्ञानाभावात् सुपुप्तावहमर्थाप्रकाशवत् तदन्यत्वस्याप्यप्रकाश एव। एवञ्च प्रागसत्वाग्रहणात् पूर्वकालगृहीतेनाभिन्नतया गृह्यमाणत्वाच्च नाहङ्कारे जन्मप्रत्ययः। विवेकिनां चेतादृग्बुद्धाविष्टापत्तेः।

शङ्कते न चेति। इतने कालतक मैं स्वप्नको देखता हुआ स्थित था इतने कालतक मैं जाग्रत हुआ स्थित था इत्यत्रेव=इन स्थलोमें जैसे अहमंशमें परामर्शत्वका अनुभव होता है तैसे मैं सोया था यहाँपरभी अहमंशमें परामर्शत्वका अनुभव होनेसे तत्र=अहमर्थमें इस ज्ञानको अपरामर्शत्व कैसे है इति न च वाच्यम् क्यों ? परामृश्यमान=स्मर्यमाण जो आत्मा उस आत्माके साथ अहमर्थके ऐक्यके आरोपसे तज्ज्ञानांशे=अहमर्थके भानांशमें परामर्शत्वके अभिमानसे। अपरामर्शमें परामर्शत्वका आरोप दृष्ट नहीं है, इति न च वाच्यम् क्यों ? तद्भिन्ने=स्मर्यमाणसे भिन्नको तत्वेन=स्मर्यमाणके साथ अभिन्नत्वेन अनुभूयमान होनेपर अनुभवमें परामर्शत्वके आरोपके देखनेसे=स्मर्यमाणसे भिन्नका स्मर्यमाणाभिन्नत्वेन जिस अनुभवमें भान होता है, उस अनुभवमें परामर्शत्वका अनुभव होता है, अतएव=अहमर्थको पूर्वमें अज्ञात होनेसेही अहमर्थको आत्मासे अन्यत्व होनेपर जो पूर्वमें दुःखी था वह इसकालमें सुखी हुआ है, इसकी नाईं जो पूर्वमें मुझसे अन्य सोयाथा सो इस कालमें मैं हुआ हूं, इत्याकारिका धी होनी चाहिए यह निरस्त हुआ, जैसे दुःखित्वेन पूर्वमें ज्ञान है, तैसे मदन्यत्वेन पूर्वमें ज्ञानके अभावसे। सुपुप्तिमें जैसे अहमर्थका प्रकाश नहीं होता है तैसे मदन्यत्वकाभी प्रकाश नहीं ही होता है, एवञ्च= इस रीतिसे प्रागसत्त्वाग्रहणात्=पूर्वमें उत्पत्तिका ग्रहण न होनेसे और पूर्वकालमें गृहीतके साथ अभिन्नतया गृह्यमाण होनेसे अहङ्कारमें जन्मका ज्ञान नहीं होता है, और विवेकियोंको तो एतादृग्बुद्धौ=यः पूर्वं मदन्यः=इत्यादिरूप उक्तबुद्धिमें इष्टापत्ति है अर्थात् विवेकीको यदि ऐसी बुद्धि होती हो तो बन सकती है अतः कोई अनुपपत्ति नहीं।

नच—सिद्धे अहमर्थस्यात्मान्यत्वे परामृश्यमानात्मैक्यारोपः सिद्धे च तस्मिन् सुप्तावप्रकाशेनाहमर्थस्यात्मान्यत्वसिद्धिरित्यन्योन्याश्रय इति–वाच्यम् आत्मान्यत्वसिद्धेः प्रागेवाहमर्थापरामर्शस्य साधनात्–अहमस्वाप्समित्यस्यैवात्मपरामर्शत्वाङ्गीकारेण न दृष्टहानादृष्टकल्पनापत्तिः अतएव च सुपुप्तावहमर्थप्रकाशे ह्यस्तन इव स्मर्येतेत्यत्र नेष्टापत्त्यवकाशः किञ्च एतावन्तं कालमहमित्यभिमन्यमान आसमिति परामर्शः स्यात्। नच–अहमर्थप्रकाशे तदभिमानापादनं कर्णस्पर्शे कटिचालनमितिवाच्यम् तवैव हि तत्। अहमर्थमात्रसापेक्षतया तदभिमानप्रकाशयोरुभयोः समव्याप्ततया परस्परप्रकाशेन परस्परपरामर्शापादनस्याव्यधिकरणत्वात्।

शङ्कते न चेति। अहमर्थस्य=अहमर्थनिष्ठ आत्मान्यत्व=आत्मभेदके सिद्ध होनेपर

परामृश्यमान आत्माके साथ अहमर्थके ऐक्यका आरोप बनता है; और उक्त आरोपके सिद्ध होनेपर सुषुप्तिमें प्रकाश न होनेसे अहमर्थनिष्ठ आत्मान्यत्वकी सिद्धि है इस रीतिसे अन्योन्याश्रय है इति नच वाच्यम्, क्यों ? अहमर्थनिष्ठ आत्मभेदकी सिद्धिसे पूर्वही अहमर्थके अपरामर्शके साधनसे, अहमस्वाप्सम् इसकोही आत्मपरामर्शत्वके अङ्गीकारसे दृष्टहान और अदृष्टकी कल्पनाकी आपत्ति नहीं है=अहमस्वाप्सम् इस परामर्शसे अतिरिक्त यदि आत्मविषयक परामर्श मान लें तो दृष्टहान और अदृष्टकी कल्पनाकी आपत्ति हो सकती है परन्तु वैसा तो विवक्षित नहीं है। और अतएव=उक्त दोषोंके अभावसेही सुषुप्तिमें अहमर्थका प्रकाश होनेपर ह्यस्तन अहङ्कारकी तरह स्मृत होना चाहिए यहाँपर इष्टापत्तिका अवकाश नहीं है। किञ्च यदि सुषुप्तिमें अहमर्थका भान हो तो, इतने कालतक 'अहम्' इत्याकारक अभिमानवाला था, इत्याकारक परामर्श होना चाहिए। अहमर्थका सुषुप्तिमें प्रकाश होनेपर अहङ्कारके अभिमानके परामर्शका आपादान कर्णस्पर्श होनेपर कटिचालनकी नाईं उपहासास्पद है। इति न च वाच्यम् क्योंकि यह न्याय तुमकोही आश्रय करता है, क्यों ? अहमर्थमात्रसाक्षेप जो अहमर्थाभिमान तथा अहमर्थप्रकाश है उन दोनोंका समव्याप्तत्वेन परस्पर प्रकाश होनेसे, परस्पर परामर्शके आपादनको अव्यधिकरण होनेसे फलतः अव्यधिकरण आपादनको व्यधिकरण समझकर आपने जो न्याय कहा है वह आपमेंही घटता है।

नच तवापि आत्मेत्यभिमन्यमान आसमिति परामर्शापत्तिः अहङ्कारस्य तत्र तन्त्रतया तदभावे तत्रापादयितुमशक्यत्वात्। यत्तु सुषुप्तावहमर्थो भासत एव। न किञ्चिदहमवेदिषमिति अज्ञानपरामर्शस्यात्माद्यज्ञानादन्यदिवाहमर्थाज्ञानादन्यदेवाज्ञानविषयः; अन्यथा विरोधात् इति तदज्ञानविजृम्भितम् नहि साक्षिवेदनमज्ञानविरोधि। सुषुप्तौ च यथाहमर्थानवभासः तथोक्तम्। न विजानात्यहमस्मीति सुषुप्तिविषया श्रुतिरपि तदानींतनाहमर्थाज्ञाने प्रमाणम्। नचेयं श्रुतिर्नात्मानं न परांश्चेतिसुषुप्तात्वात्माज्ञानश्रुतिवद्विशेषाज्ञानपरा, अहरहर्ब्रह्म गच्छन्ति सति संपद्य न विदुरित्यात्मवेदनबोधकश्रुतिविरोधेन विशेषाज्ञानपरत्वं युक्तम्। नच प्रकृते तथा विरोधाभावात्,

तवापि=तुम्हारे मतमेंभी 'आत्मा' इस रीतिसे मानता हुआ मैं था इत्याकारक परामर्शकी आपत्ति है, नच नहीं है क्यों ? अहङ्कारको तत्र=उक्तविधपरामर्शमें कारणत्व होनेसे अहङ्कारका अभाव होनेपर उक्तपरामर्शके आपादनको हमारे मतमें आपादन करनेके लिए अशक्य होनेसे। सुषुप्तिमें अहमर्थ भासताही है। मैंने कुछभी न जाना इत्याकारक जो अज्ञानका परामर्श है उस परामर्शका विषयीभूत अज्ञान जैसे आत्माद्यज्ञानसे भिन्न है तैसे अहमर्थका जो अज्ञान उस अज्ञानसेभी वह अज्ञानभिन्न है=जैसे तुम्हारे मतमें चिन्मात्रांशमें अज्ञान नहीं है किन्तु पूर्णानन्दांशमें है तैसे मेरे मतमेंभी अहमर्थांशमें अज्ञान नहीं है यह तात्पर्य्य है, ननु=इस परामर्शका विषय आत्माज्ञानही है हम लोग प्रकाशमान आत्मामेंही अज्ञान मानते हैं वहाँ द्वैती कहता है अन्यथेति। उक्तपरामर्शके विषयीभूताज्ञानको उक्तविध न

माननेपर अज्ञान और आत्मरूप प्रकाशका विरोध होनेसे इति यत्=इत्याकारक जो कथन है वह अज्ञानका विस्तार है=अद्वैतवादिके सिद्धान्तके ज्ञानाभावसे द्वैतीने ऐसा कहा है क्योंकि साक्षिरूपवेदन=ज्ञान अज्ञानका विरोधी नहीं है। और सुषुप्तिमें जैसे अहमर्थका अवभास नहीं है तैसे कहा है। सुषुप्तिमें 'यह मैं हूँ' इस रीतिसे नहीं जानता है, (छां० ८।११।१) इत्यर्थक जो सुषुप्तिविषया श्रुति है वहभी सुषुप्तिकालमें अहमर्थके अज्ञानमें प्रमाण है, इयं श्रुति=उक्तार्थक श्रुति 'नात्मानं न परांश्च' (गौ० का० १।१२) इस श्रुतिकी नाईं विशेपाज्ञानपरा है=नात्मानमित्यादि श्रुति जैसे आत्मनिष्ठविशेपाज्ञानपरा है, तैसे उक्तार्थक श्रुतिभी अहमर्थनिष्ठविशेपाज्ञानपर है नच=नहीं है, क्योंकि अहरहर्ब्रह्मेत्यादि (छां० ८।३।२) जो आत्मवेदनबोधक श्रुति है उस श्रुतिके साथ विरोध होनेसे नात्मानमित्यादिश्रुतिको विशेपाज्ञानपरत्वयुक्त है। परन्तु प्रकृतमें विशेपाज्ञानपरत्व युक्त नहीं है, विरोधका अभाव होनेसे।

यत्तु अहमर्थस्तावत् स्मर्ता। स चाविद्यावच्छिन्नचैतन्यं वा, अन्तःकरणावच्छिन्नचैतन्यं वा। आद्ये योऽहमकार्पं सोऽहं सौपुप्तिकाज्ञानादि स्मरामीत्यनुभवविरोधः। अन्त्ये त्वहमर्थस्यैव तदनुभवितृत्वं वाच्यम् स्मृतिसंस्कारानुभवानामेकाश्रयाणामेव कार्यकारणभावात्। योऽहमन्वभूवं सोऽहं स्मरामीतिप्रत्यभिज्ञानाच्च—इति। तन्न दत्तोत्तरत्वात् उक्तं ह्यविद्यावच्छिन्नचैतन्यमनुभवितृ। तदेव चान्तःकरणावच्छेदनानुभूयमानं स्मर्त्रिति न तयो वैरूप्यम्। नचाविद्यावच्छिन्नचितोपि नैक्यमस्ति, अन्तःकरणरूपोधिभेदेन भेदादिति—वाच्यम्, अविद्यावच्छिन्न एवान्तःकरणावच्छेदात्।

अहमर्थ स्मर्त्ता=स्मरण करनेवाला तो हैही। स=वह अहमर्थरूप स्मर्त्ता अविद्यावच्छिन्न चैतन्य है, या अन्तःकरणावच्छिन्नचैतन्य, आदिम पक्ष यदि हो तो जो मैं करनेवाला था सो मैं अज्ञानादिका स्मरण करता हूँ, इस अनुभवका विरोध है=अज्ञानका अनुभव करनेवाला अविद्यावच्छिन्नचैतन्य है और स्मरण करनेवाला जो अहमर्थ है वह अन्तःकरणावच्छिन्नचैतन्य है, और उक्तानुभवसे अनुभविता तथा स्मर्त्ता एक प्रतीत होता है अतः इस पक्षमें अनुभवविरोध है, अन्त्ये=अन्तिमपक्ष यदि कहो=अन्तःकरणावच्छिन्नचैतन्यको यदि स्मर्त्ता कहो, जोकि अहमर्थत्वेन अनुभवसिद्ध है तो अहमर्थकोही अज्ञानका अनुभवितृत्व वाच्य है, क्योंकि एकाधिकरणवृत्ति स्मृतिसंस्कारअनुभवोंकाही कार्यकारणभाव होनेसे। और जिस मैंने अनुभव किया है वह मैं स्मरण करता हूँ, इत्याकारक प्रत्यभिज्ञानसेभी अनुभविता और स्मर्त्ता एक मालूम देता है, इति यत्=ऐसा जो कथन है तन्न=वह ठीक नहीं क्यों? दत्तोत्तर होनेसे, दत्तोत्तरका अनुवाद करते हैं, कहा है कि अविद्यावच्छिन्नचैतन्य अनुभव करनेवाला है और वही अन्तःकरणावच्छेदेन अनुभूयमान हुआ स्मरण करनेवाला है अतः तयोः=अनुभविता और स्मर्त्ता इन दोनोंका वैरूप्य नहीं है। अविद्यावच्छिन्न चैतन्यकाभी ऐक्य नहीं है अन्तःकरणरूपोपाधिके भेदसे भेद होनेसे इति नच वाच्यम्, क्यों? अविद्यावच्छिन्नमेंही अन्तःकरणका अवच्छेद होनेसे=अविद्यावच्छिन्नकोही अन्तःकरणावच्छिन्न होनेसे।

नच—तथाप्यविद्यान्तःकरणरूपोपाधिभेदेन महाकाशतदन्तस्थघटाकाशयोरिव उपहितभेदः स्यादिति वाच्यम्; दृष्टान्तासंप्रतिपत्तेः तयोरेवोपाध्योः परस्परमुपहितभेदकत्वम् यौ परस्परानुपहितमुपधत्तः कम्ब्यच्छिन्नग्रीवावच्छिन्नाकाशादन्य एव घटाकाशः स्यात्। न चैवं सुषुप्तावहमर्थाभावे अहं निर्दुःखः स्यामिति इच्छया सुषुप्त्यर्थं प्रवृत्त्ययोगः; कृशोऽहं स्थूलो भवामीतिवत् प्रवृत्त्युपपत्तेः। नच तत्र कार्श्यादिनिष्कृष्टस्य शरीरस्यैव स्थौल्याधिकरणतया विवेकिनामुद्देश्यत्वमिति—वाच्यम्। प्रकृतेप्यन्तःकरणादिनिष्कृष्टस्यैव तदुद्देशविषयत्वात्।

शङ्कते नचेति तथापि अविद्या और अन्तःकरणरूप जो उपाधियाँ उन उपाधियोंके भेदसे महाकाश और महाकाशान्तर्गतघटाकाश इन दोनोंका जैसे भेद है तैसे प्रकृतमेंभी उपहितोंका भेद होगा इति न च वाच्यम्? क्यों? दृष्टान्तमें सम्मति न होनेसे उक्तार्थको विशद करते हैं—तिन दो उपाधियोंको ही परस्पर उपहितका भेदकत्व होता है, जो परस्पर अनुपहितका उपधान करती हैं=वे ही दो पदार्थ उपहितका भेद करते हैं जो कि परस्पर अनुपहितके उपाधि बनते हैं। अन्यथा कम्ब्वच्छिन्न और ग्रीवावच्छिन्नसे अतिरिक्त ही घटाकाश सिद्ध होगा। सुषुप्तिमें अहमर्थका अभाव होनेपर 'मैं दुःख रहित होऊं' इस इच्छासे सुषुप्तिके लिए प्रवृत्तिका अयोग है, न च=प्रवृत्तिका अयोग नहीं है क्यों कि? मैं कृश=दुबला हूँ स्थूल बनूँ इस इच्छासे जैसे प्रवृत्ति होती है तैसे उक्त प्रवृत्तिकी उपपत्तिसे=कृशोऽहं स्थूलो भवानि यहाँ जैसे स्थौल्यकालावच्छेदेन कार्श्य नहीं रहता है अथच तादृश इच्छासे प्रवृत्ति होती है तैसे उक्तस्थलमेंभी सुषुप्तिमें अहमर्थके न रहनेपरभी, अहमर्थोद्देश्यक इच्छासे प्रवृत्ति बन सकती है, तत्र=कृशोऽहं स्थूलं भवानि। यहाँपर कृशतादिसे निष्कृष्ट=अवधीरित जो शरीर तादृश शरीरको ही स्थौल्याधिकरणत्व होनेसे विवेकिओंको उद्देश्यत्व है इति न च वाच्यम्=ऐसा यदि कहो तो कोई अनुपपत्ति नहीं है क्यों? प्रकृतमेंभी अन्तःकरणादिसे निष्कृष्टको ही निर्दुःखोद्देशविषयत्व होनेसे।

ननु—योऽहं सुप्तः सोऽहं जागर्मि, योऽहं पूर्वेद्युरकार्षं सोहमद्य करोमीति प्रत्यभिज्ञानुपपत्तिः अहमर्थस्य भेदात्, कृतहानाकृताभ्यागमप्रसङ्गश्च; कर्तृभोक्तुश्चाहमर्थस्य भिन्नत्वात् अभिन्ने चैतन्ये कर्तृत्वाद्यभावात्, तदारोपस्याप्यभावात्। देहादावतिप्रसङ्गाचेति—चेन्न, सुषुप्तौ कारणात्मना स्थितस्यैव उत्पत्त्यङ्गीकारेण सर्वोपपत्तेः। नच—अथ हैतत्पुरुषः स्वपितीत्यारभ्यगृहीतं चक्षुर्गृहीतं श्रोत्रं गृहीतं मन इत्यादिश्रुतौ मनआदीनामेवोपरमोक्तेर्नाहंकारोपरम इति—वाच्यम्, मनस उपरमे तेनैवाहङ्कारोपरमस्यापि प्राप्तेः। अहङ्कारो हि अनुभवामीत्यात्मानुबन्ध्यनुभवस्याहं कर्तेत्यचिदनुबन्धिकर्तृत्वादेश्चाश्रयः चिदचित्संवलनात्मकत्वादध्यस्तः। तस्य चाचितोऽन्तःकरणस्योपरमे उपरतिः अथतोऽहङ्कारादेशः अथात आत्मादेश इति श्रुतिरपि पृथगुपदेशेन पार्थक्ये प्रमाणम्।

जो मैं सोया था सो मैं जागता हूँ। इस प्रत्यभिज्ञाकी अनुपपत्ति है, अहमर्थका भेद होनेसे। तैसे कृतनाश और अकृताभ्यागम इन दोनोंका प्रसङ्गभी है क्योंकि कर्त्ता तथा भोक्ता जो अहमर्थ उसको भिन्न होनेसे अभिन्न चैतन्यमें कर्तृत्वादिके अभावसे, और कर्तृत्वादिके आरोपकेभी अभावसे, और कर्तृत्वादिके आरोपका देहादिमेंभी सम्भव होनेसे अतिप्रसङ्गसेभी इति चेन्न, क्यों? सुषुप्तिमें कारणरूपसे स्थित जो अहमर्थ है उसकी ही उत्पत्तिके अङ्गीकारसे सर्वका सम्भव होनेसे; शङ्कते नचेति। अथ है तत्पुरुषः स्वपिति (छां० २।३।१७) यहाँसे आरम्भकर गृहीतं चक्षुः इत्यादि (छां० २।३।१७) श्रुतिमें मन आदिकोंके ही उपरमकी उक्तिसे–सुषुप्तिमें अहङ्कारका उपरम नहीं है इति न च वाच्यम्, क्यों? मनका उपरम होनेपर तेनैव=मनके उपरमसेही अहङ्कारकेभी उपरमकी प्राप्तिसे। अहङ्कार, अनुभवामि इत्याकारक जो आत्मसम्बन्धि अनुभव है उस अनुभवका और अहङ्कर्ता–यह जो अचित्सम्बन्धिकर्तृत्वादि है उस कर्तृत्वादिका आश्रय है। चित् तथा अचित् एतदुभयसंवलनात्मक होनेसे अध्यस्त है। और उसकी अचिद्रूप अन्तःकरणके उपरम होनेपर उपरति है। अथातोऽहङ्कारादेशः (छां० ७।२५।१) अथात आत्मादेशः (छां० ७।२५।२)। यह श्रुतिभी पृथक् उपदेशसे आत्मा और अहङ्कारके पार्थक्यमें प्रमाण है।

ननु—आत्मनस्त्वन्मते स एवाधस्तादिति उपदिष्टेन भूम्नेवाहंकारेणैक्येस्येऽपि पृथगुपदेशो युक्तः। नच भूमात्मनोर्भिन्नत्वेन प्रत्यक्षसिद्धयोः पृथगुपदेश ऐक्यार्थः, द्वयोः सार्वात्म्यायोगात्, अहंकारस्य तु–आत्मैकत्वेन प्रत्यक्षसिद्धस्य पृथगुपदेशो भेदार्थ इति–वाच्यम्, अहमर्थादन्यस्यात्मनो भूमाख्यब्रह्मभिन्नत्वेन प्रत्यक्षासिद्धत्वात्तयोरप्युपदेशो भेदार्थः, अहमर्थस्य तु ब्रह्मभिन्नत्वेन प्रत्यक्षसिद्धत्वात् तयोरुपदेश ऐक्यार्थ एव किं न स्यात्–इति चेन्न; अहङ्कारात् भिन्नात्मनो भूमरूपब्रह्मभिन्नत्वस्य प्रत्यक्षासिद्धत्वेऽपि तदभिन्नत्वस्यापि तदसिद्धतया उभयोः सार्वात्म्योपदेशानुपपत्तिसहकारेणास्याः श्रुतेस्तयोरभेदपरत्वमुचितम्, प्रकृते चाभेदपरत्वे विरोधः; जडाजडयोरैक्यायोगात्।

शङ्कते नन्विति। आत्माका तुम्हारे मतमें, स एव अधस्तात् (छां० ७।२५।१) इस श्रुतिसे उपदिष्ट भूमाके साथ जैसे ऐक्य है तैसे अहङ्कारके साथ ऐक्य होनेपरभी पृथक् उपदेश युक्त है=आत्मासे पृथगुपदिष्ट होनेपर जैसे भूमा आत्मासे भिन्न नहीं है तैसे अहमर्थका आत्मासे अभेद होनेपरभी पृथक् उपदेश बन सकता है, यदि यों कहो कि भिन्नत्वेन प्रत्यक्षसिद्ध जो भूमा तथा आत्मा इन दोनोंका पृथक् उपदेश ऐक्यके लिए है दो पदार्थोंका सार्वात्म्यका अयोग होनेसे। और आत्माके साथ एकत्वेन प्रत्यक्षसिद्ध जो अहङ्कार है उस अहङ्कारका उपदेश अहङ्कार आत्मासे भिन्न है एतदर्थ है तो ऐसा नहीं कहना क्योंकि अहमर्थसे भिन्न जो आत्मा उस आत्माको भूमाख्य जो ब्रह्म तादृग् ब्रह्मभिन्नत्वेन प्रत्यक्षतः असिद्ध होनेसे आत्मा और ब्रह्मका उपदेशभी भेदार्थ है, और अहमर्थको ब्रह्मभिन्नत्वेन प्रत्यक्ष होनेसे तयोः=अहङ्कार तथा ब्रह्मका उपदेश इनके ऐक्यार्थ क्यों न हो। ननुसेलेकर यहाँतक शङ्का है अब सिद्धान्त दिखलाया जाता है

इति चेन्न, क्योंकि अहङ्कारसे भिन्न जो आत्मा तादृशात्मनिष्ठ भूमरूपब्रह्माभिन्नत्वको प्रत्यक्षसे असिद्ध होनेपरभी भूमरूपब्रह्माभिन्नत्वकोभी प्रत्यक्षसे असिद्ध होनेसे उभयोः=अहङ्कारसे भिन्न आत्मा और भूमरूपब्रह्म इन दोनोंमें जो सार्वात्म्यका उपदेश उस उपदेशकी अनुपपत्तिरूप जो सहकार उस सहकारसे इस श्रुतिको उभयअभेदपरत्वही उचित है। प्रकृते च अहमर्थ तथा आत्मा इन दोनोंके अभेदपरत्व होनेमें विरोध है, क्यों ? जड तथा अजड इन दोनोंमें ऐक्यका अयोग होनेसे।

नच—त्वन्मते भूमाहङ्कारात्मनां विम्बप्रतिविम्बमुखस्थानीयाविद्योपाधिकब्रह्मजीवचिन्मात्रत्वसंभवेनाहंकारस्य जीवात् पार्थक्यासिद्धिरिति—वाच्यम्; यत्रनान्यत् पश्यति स एवाधस्तादित्यादिना भूमस्वरूपोक्त्यनन्तरं यत्रेत्यधिकरणाधिकर्तव्यनिर्देशात् स इति पारोक्ष्यनिर्देशाच्च द्रष्टुर्जीवादन्यत्वप्रसक्तौ तद्वारणार्थं अथातोऽहङ्कारादेश इत्यहङ्कारेण भूम्निनिर्दिष्टे अहङ्कारस्य देहादिसंघाते अविवेकिप्रयोगदर्शनात् तदभेदप्रसक्तौ निष्कृष्टाहङ्कारकेवलात्मस्वरूपमादाय अथात आत्मादेश इति द्रष्टुभेद उच्यत इत्येतावदर्थपरत्वेन विम्बप्रतिविम्बकल्पनाया अत्रासंभवात् सम्भवे वा अविद्योपाधिकजीवस्याहङ्कारत्वोक्तिः स्थूलारुन्धतीन्यायेन। अतएव—स एवेदं सर्वम् आत्मैवेदं सर्वमित्याद्युपसंहाराणां स एवाधस्तादहमेवाधस्तादात्मैवाधस्तादित्युपक्रमैः 'सर्वं समाप्नोपि ततोऽसि सर्वं' इत्यादिस्मृतिभिश्च सर्वगतत्वपरत्वेन न सार्वात्म्यपरत्वम्, येनाहंपदस्य निष्कृष्टाहङ्कारचैतन्यपरत्वं स्यात्। सर्वगतत्वं चानेकेष्वपि संभवत्येव। भूमात्मोपदेशाभ्यामेव ब्रह्मात्म्यैक्यसिद्ध्या मध्ये अहङ्कारोपदेशवैयर्थ्यंचेति—निरस्तम्।

शङ्कते नचेति। तुम्हारे मतमें श्रुत्युक्त जो भूमा अहङ्कार और आत्मा इन तीनोंको विम्बप्रतिविम्बमुखस्थानीय, अविद्योपाधिकब्रह्मजीवचिन्मात्रत्वका सम्भव होनेसे, जीवसे अहङ्कारके पार्थक्यकी असिद्धि है=प्रकृतमें श्रुतिमें तीन पदार्थोंका निरूपण है, भूमाका और अहङ्कारका तथा आत्माका और विवरणकारके मतसे ये तीनों पदार्थ क्रमशः विम्बस्थानीय प्रतिविम्बस्थानीय और मुखस्थानीय हो सकते हैं—यहाँ मूलग्रन्थमें अविद्याशब्दसे मायाकाभी ग्रहण है—फलतः मायोपाधिक ब्रह्म विम्बस्थानीय है और अविद्योपाधिकजीव प्रतिविम्बस्थानीय है और चिन्मात्रोभयानुस्यूत आत्मा मुखस्थानीय है फलतः श्रुतिमें अहङ्कारसे अविद्योपाधिक प्रतिविम्बभूत जीवका प्रतिपादन माननेसेही आपकीभी व्यवस्था होती है अतः जीवसे अहङ्कारके पार्थक्यकी असिद्धि है, इति नच वाच्यम्, क्यों ? यत्र=ब्रह्ममें अन्यत्=दृश्यको अन्य=द्रष्टा पश्यति=देखता है न=नहीं अर्थात् जिस ब्रह्ममें दृश्य द्रष्टा, दर्शन इन तीनोंका अभाव है वही अधस्तात् है, (छां० ७।२३।१) इत्यादिसे भ्रमस्वरूपकी उक्तिके बाद (यत्र) इससे अधिकरण तथा अधिकर्त्तव्यके निर्देशसे और (स) इस रीतिसे परोक्षरूपतः निर्देशसे ब्रह्ममें द्रष्टा और जीव उससे अन्यत्वकी प्रसक्ति होनेपर तद्वारणाय=अन्यत्वके वारणके लिए

अथातोऽहङ्कारादेश (छां० ७।२५।१) इस रीतिसे अहङ्काररूपसे भूमाको निर्दिष्ट होनेपर अहङ्कारका देहादि संघातमें अविवेकियोंका प्रयोग देखनेसे तद्भेदप्रसक्तौ=देहादि संघातके साथ भूमाके अभेदकी प्रसक्ति होनेपर निकाल दिया है अहङ्कार जिसमेंसे ऐसा जो केवल आत्मस्वरूप उस आत्मस्वरूपको लेके, अर्थात आत्मादेशः (छां० ७।२५।२) यह अहङ्कारसे द्रष्टाका भेद कहा जाता है तथाच एतादृशार्थपरत्व होनेसे विम्बप्रतिविम्ब कल्पनाका यहाँपर असंभव होनेसे–इसका व्यवहित वचनोंके साथ सम्वन्ध है । सम्भवे वा=विम्बप्रतिविम्बकी कल्पनाका सम्भव होनेपर तो अविद्योपाधिक जो जीव है उसको अहङ्कारत्वकी उक्ति स्थूलारुन्धतीन्यायसे है=जैसे अरुन्धतीके पासमें रहनेवाली स्थूलताराको यह अरुन्धती है ऐसा कह दिखलाते हैं सूक्ष्म होनेकी वजह प्रथमतः अरुन्धतीका दिखलाना सहज नहीं है, इसलिए। पश्चात् यह अरुन्धती नहीं है किन्तु इसके निकटमें स्थित सूक्ष्मतारा अरुन्धती है इस रीतिसे दिखलाते हैं। पूर्व वाक्यका अरुन्धतीके ज्ञानमें तात्पर्य है ऐसा निश्चयकर दिखलाई हुई दोनों ताराओंके भेदमें वाक्यका पर्यवसान है ऐसा जान लेता है तैसे अहङ्कार शब्दसे अविद्यामें प्रतिविम्ब और अहङ्कारका आश्रय चैतन्य कहा जा सकता है पश्चात् आत्मादेश वाक्यसे अहङ्कार वाक्यका शुद्ध सार्वात्म्यमें तात्पर्य्यका निश्चय हो सकता है और अहङ्कारपदसे लक्षित जो अविद्यामें प्रतिविम्ब है उसका शुद्धात्मामें भेद है इस अर्थमें पर्य्यवसानभी हो सकता है । अतएव=स एवाधस्तात् इत्यादिवाक्यको भूमात्मैक्यपरत्व होनेसेही वही यह सर्व है, (छां० ७।२५।१) मैं ही यह सर्व हूँ, (छां० ७।२५।१) आत्माही यह सर्व है, (छां०७।२५।२) इत्यादिरूप जो उपसंहार है उन उपसंहारोंको स एवाधस्तात् (छां० ७।२५।१) इत्यादि उपक्रमोंसे और सर्व समाप्नोपि ततोऽसि सर्व (गी० अ० ११) इत्यादि स्मृतिओंसे सर्वगतत्वपरत्व होनेसे सार्वात्म्यपरत्व नहीं है जिससे कि अहम्पदको निष्कृष्टाहङ्कारचैतन्यपरत्व हो । और सर्वगतत्व तो अनेकमेंभी सम्भवित होता है और भूमोपदेश तथा आत्मोपदेश इन दोनों उपदेशोंसेही ब्रह्मात्मैक्यकी सिद्धिसे मध्यमें अहङ्कारोपदेशका वैयर्थ्यभी है यह निरस्त हुआ ।

स भगवः कस्मिन् प्रतिष्ठित इति प्रश्नानन्तरं किं क्वचिदधिष्ठानत्वमात्रं पृष्टं, परमार्थतः क्वचिदधिष्ठितत्वं वा।आद्ये स्वे महिम्नीत्युक्त्वा द्वितीये भूमातिरिक्तमेव नास्तीत्येतदर्थपर–' अन्योह्यन्यस्मिन् प्रतिष्ठित इति पूर्ववाक्यानुसारेण सएवाधस्तादित्यादेरपि सार्वात्म्यपरत्वे निश्चिते एकत्रैव वाक्ये उपक्रमादिकल्पनेनार्थान्तराकल्पनात्, कल्प्यमानस्य च प्रकृतार्थानुपपादकत्वात् । सर्वगता जातिरितिपक्षे व्यापकजातेरिव भूम्नोऽपि अन्याधिष्ठितत्वसंभवात् सर्वं समाप्नोपीत्यादिस्मृतेः सार्वात्म्यपरत्वस्य उपपादितत्वात् । नापि मध्ये अहङ्कारोपदेशवैयर्थ्यम्; ब्रह्मणः आपरोक्ष्याय अहंकारैक्योक्तेः नच–त्वन्मते प्रत्यगर्थरूपस्यात्मन एवापरोक्षैकरसत्वेन तदैक्योक्त्यैवापरोक्ष्यसिद्ध्या अहङ्कारे अविद्यमानसार्वात्म्योक्त्ययोग इति–वाच्यम्; आत्मसम्बन्धेनैवाहङ्कारोऽप्यपरोक्ष इत्यात्मैक्यादेवापरोक्ष्यं यद्यपि सिद्धं तथाप्यहङ्कारे आपरोक्ष्यस्य सुप्रसिद्धत्वादहंकारोक्तिर्नायुक्ता ।

भगवः=भगवन् वह किसमें प्रतिष्ठित है, (छां० ७।२४।१) इस प्रश्नके बाद क्या कहींपर अधिष्ठानत्वमात्र पूछा है या वस्तुतः कहींपर अधिष्ठितत्व। आद्यविकल्पमें अपनी महिमामें (छां० ७।२४।१) यह कहकर द्वितीयविकल्पमें भूमासे अतिरिक्त पदार्थ ही नहीं है, एतदर्थपर अन्य अन्यमें प्रतिष्ठित होता है (छां० ७।२४।२) यह कहा है इति=फलतः इस पूर्व वाक्यानुसारसे स एवाधस्तात् इत्यादिकाभी सार्वात्म्यपरत्व निश्चित होनेपर एकही वाक्यमें उपक्रमादि कल्पनसे अर्थान्तरकी कल्पना न होनेसे=सर्वगतत्वमात्ररूप अर्थकी कल्पनाका असम्भव होनेसे और कल्पमानको प्रकृत-अर्थका अनुपपादकत्व होनेसे. जाति सर्वगत है इस पक्षमें व्यापक जातिकी नाई भूमाकोभी अन्याधिष्ठितत्वका सम्भव होनेसे=उक्त पक्षमें जैसे व्यापक जाति अन्यमें रहती है वैसे ब्रह्मभी अन्यमें रह सकता है, सर्वं समाप्नोपि, इत्यादि स्मृतिके सार्वात्म्यपरत्वको उपपादित हो चुकनेसे=सर्वम्=सर्वकेप्रति सम्=सम्यक्-तादात्म्येन=आप्नोपि=सम्बन्धसे ततः सर्वोऽसि-सर्वका आपमें कल्पिततादात्म्य होनेसे आप सर्व कहे जाते हैं यह अर्थ कहा जा चुका है। और मध्यमें अहङ्कारके उपदेशका वैयर्थ्यभी नहीं है क्यों? ब्रह्मके आपरोक्ष्यके लिए-अहङ्कारके साथ ऐक्यकी उक्तिसे। शङ्कते नचेति। तुम्हारे मतमें प्रत्यगर्थरूप जो आत्मा है उस आत्माको ही आपरोक्ष्यैकरसत्व होनेसे तदैक्योक्त्यैव=उक्तविधआत्माके साथ भूमाके ऐक्यकी उक्तिसे ही आपरोक्ष्यसिद्ध्या=भूमाके आपरोक्ष्यकी सिद्धिसे तदर्थ अहङ्कारमें अविद्यमान सर्वात्मताकी उक्तिका अयोग है इति न च वाच्यम्=क्योंकि आत्मसम्बन्धसेही अहङ्कारभी अपरोक्ष है अतः आत्मैक्यकथनसेही यद्यपि भूमाका आपरोक्ष्यसिद्ध होता है तथापि अहङ्कारमें आपरोक्ष्यको सुप्रसिद्ध होनेसे अहङ्कारकी उक्ति अयुक्त नहीं है।

यत्तु—' भूमानारायणाख्यः स्यात् स एवाहंकृतिः स्मृतः। जीवस्थस्त्वनिरुद्धो यः सोऽहङ्कार इतीरितः॥ अणुरूपोपि भगवान् वासुदेवः परो विभुः। आत्मेत्युक्तः स च व्यापीत्यादिस्मृत्या श्रुतेः सार्वात्म्यं नार्थः किन्तु सर्वगतत्वम्—इति। श्रुतिविरोधेन स्मृतेरेव सार्वात्म्यपरत्वम्, नतु स्मृत्या श्रुतेरन्यथानयनम्। नच—मोक्षधर्मे—अनिरुद्धो हि लोकेषु महानात्मा परात्परः। योऽसौ व्यक्तत्वमापन्नो निर्ममे च पितामहम्॥ सोऽहंकार इति प्रोक्तः सर्वतेजोमयो हिसः। इत्यनेन सैवहिसत्यादय इतिसूत्रेण चाहङ्कारस्यात्मत्वं, अन्यथा व्याप्त्युक्तिरयुक्ता स्यादिति—वाच्यम्, अहङ्काराश्चाहङ्कर्तव्यश्चेतिश्रुतेः महाभूता-न्यहङ्कार इति स्मृतेः अहङ्कारस्य व्यापकत्वासंभवात् अहंमनुरभवमित्यादाविवाहम्पदस्य निष्कृष्टाहंकारचैतन्यपरत्वात्।

भूमा नारायण है उसीको अहङ्कृतिभी कहते हैं। अविद्यामें प्रतिबिम्बरूप जो जीव है उसमें रहनेवाला अनिरुद्ध है वह अहङ्कार है ऐसा कहा गया है। अणुरूप=दहराकाशादिसे परिच्छिन्न सर्वभूतोंमें रहनेवाला विभु वासुदेव है वही आत्मा है और व्यापी है, इत्यादि

स्मृतियोंसे श्रुतिका सार्वात्म्य अर्थ नहीं है किन्तु सर्वगतत्व है इति यत् ऐसा जो कहा है तन्न=वह ठीक नहीं क्यों? श्रुतिविरोधेन=भूमात्मैक्यश्रुतिके साथ विरोध होनेसे स्मृतिकोही सार्वात्म्यपरत्व है स्मृतिसे श्रुतिका अन्यथा नयन नहीं हो सकता है। शङ्कते नचेति। मोक्षधर्ममें लोकमें अनिरुद्ध परात्पर महानात्मा है जो कि व्यक्तत्वको प्राप्त हुआ और जिसने ब्रह्माको वनाया। वह अहङ्कार कहा गया है और वह सर्व तेजोमय है इससे और सैवहि सत्यादयः (वे० अ०३ पा० ३ सू० ३८) इस सूत्रसे अहङ्कारका सात्मत्व है अन्यथा व्याप्तिकी=अपरिच्छिन्नत्वकी उक्ति अयुक्त हो जायगी इति नच वाच्यम्, क्यों? अहङ्कारश्च (प्रश्न ४।८) इत्यादि श्रुतिसे और महाभूतान्यहङ्कारः (गी० १३।५) इस स्मृतिसे अहङ्कारके व्यापकत्वका असम्भव होनेसे अहंमनुरभवम् (बृ० १।४।८) यहाँपर जैसे अहम्पदको निष्कृष्टाहङ्कारचैतन्यपरत्व है तैसे प्रकृत वाक्योंकोभी अहङ्कारनिष्कृष्टचैतन्यमात्रपरत्व होनेसे।

ननु—अनयोः श्रुतिस्मृत्योर्महत्तत्त्वकार्यं मनआदीनां कारणम् वैकारिकादिभेदेन त्रिविधमहङ्कारादिपदवाच्यं विषयः नत्वहमर्थः तथाच स्मृतिः—महत्तत्वाद्विकुर्वाणाद्भगवद्वीर्यचोदितात्। क्रियाशक्तिरहंकारस्त्रिविधः समपद्यत ॥ इत्यादेरविरुद्धार्थमादायोपपत्तेः। विरुद्धार्थत्वकल्पनायां बुद्धिरव्यक्तमेव चेत्यत्र क्षेत्रे बुद्धिशब्देन संविदुक्तौ संविदोऽपि क्षेत्रत्वापत्तिः। नच बुद्धिशब्दस्य नानार्थत्वम् नत्वहङ्कारस्यात्मातिरिक्तार्थकत्वमिति—वाच्यम्; दम्भाहंकारसंयुक्ता इत्यादौ देहे अहंबुद्धौ गर्वेच प्रयोगेण 'गर्वोभिमानोऽहंकार इत्यभिधानेन चाहमर्थवाचित्वनियमाभावात्, तथा चात्मवाच्यहंशब्दोऽसच्छब्दसिद्धः। अहंकारशब्दोऽनात्मवाची। तत्पर्यायस्त्वहंशब्दो मान्तान्ययमिति—चेन्न; मान्तदान्तत्वभेदेनार्थभेदकल्पनमयुक्तम् सर्वेषामेव तेषां अहमिति प्रतीयमानाहंकारविषयत्वमेव पर्यायतयैव प्रयोगदर्शनात्।

शङ्कते नन्विति। अनयोः=अहङ्कारश्चाहङ्कार कर्त्तव्यश्च (प्र० ४।८) यह श्रुति महाभूतान्यहङ्कारः (गी० १३।५) यह स्मृति इन दोनोंका महत्तत्वका कार्य और मन आदिका कारण और वैकारिकादिभेदसे त्रिविध ऐसा जो अहङ्कारपदका वाच्य है वह विषय है, अहमर्थ इन दोनोंका विषय नहीं है इस अर्थमें स्मृति प्रमाण है—भागवतसंकल्पविशिष्ट अत एव विकुर्वाण जो महत्तत्त्व उस महत्तत्त्वसे क्रियाशक्तियुक्त अहङ्कार उत्पन्न होता है और वह अहङ्कार सात्विक राजस तामस भेदसे तीन प्रकारका होता है—इत्यादिसे अविरुद्धार्थको लेके उदाहृत श्रुतिस्मृतिओंके व्यवस्थाकी उपपत्ति है। विरुद्धार्थत्वकी कल्पना होनेपर बुद्धिरव्यक्तमेव (गी० १३।५) यहाँपर क्षेत्रमें प्रयुक्त बुद्धिशब्दसे कल्पितकी उक्ति होनेपर सम्वित् कोभी क्षेत्रत्वकी आपत्ति है यदि यों कहो कि—बुद्धिशब्दको नानार्थत्व है, और अहङ्कारको आत्मातिरिक्तार्थकत्व नहीं है तो ऐसा नहीं कहना क्योंकि? दम्भाहङ्कारसंयुक्ताः (गी० १७।५) इत्यादिस्थलमें देहमें होनेवालीभी जो अहम्बुद्धि है उस अहम्बुद्धिमें तथा गर्वमें प्रयोगसे और गर्वोभिमानोऽहङ्कारः (अ० कां० १। ना० व० २२) इस कोशसे अहमर्थवाचित्वके नियमके अभा-

वसे । तथाच ऐसा मानना चाहिए कि—आत्मवाचि अहंशब्द अस्मत् शब्दसे सिद्ध है । और अहङ्कार शब्द अनात्मवाचि है । और अहङ्कारका पर्य्याय अहंशब्द मान्त अव्यय है इति चेन्न; क्योंकि मान्त और दान्तके भेदसे अर्थभेदकल्पन अयुक्त है । उन सर्वशब्दोंको (अहम्) इस रीतिसे प्रतीयमान जो चिदचिद्ग्रन्थिरूप अहङ्कार तादृशअहङ्कारविषयत्वही है । पर्यायरूपसे ही सर्वका प्रयोग देखनेसे ।

अहङ्कारातिरिक्तात्मनि प्रयोगस्तु लक्षणया मान्तदान्तत्वेनानिर्धारिताहंशब्दस्याहङ्कारे प्रयोगदर्शनस्य नियामकत्वात् । यथा ' अनिरुद्धो हि लोकेषु महानात्मा परात्परः योऽसौ व्यक्तत्वमापन्नो निर्ममे च पितामहम् ॥ इति । सोऽहङ्कार इति प्रोक्तः सर्वतेजोमयो हि सः । इत्यत्र लक्षणयाहङ्कारशब्दःआत्मनीति । यत्तु अहमर्थे आत्मानात्मधर्मदर्शनमसिद्धम्; कर्तृत्वादेरात्मधर्मत्वात्—इति तत्र कर्तृत्वादेरनात्मधर्मत्वं यथा तथा वक्ष्यामः । ननु—अनात्मधर्मत्वेऽपि कर्तृत्वादेस्तदाश्रयस्याभानेऽपि कर्तृत्वादिकमात्मनि भासताम्, गौरोऽहमित्यत्रशरीरगतगौरत्वमिवेतिचेन्न; दृष्टान्तासम्प्रतिपत्तेः तत्रापि देहत्वेनाभानेऽपि गौरत्वमनुष्यत्वादिना तत्प्रतीतेः ।

अहङ्कारसे अतिरिक्त जो आत्मा उस आत्मामें अहंशब्दका प्रयोग लक्षणासे होता है क्यों ? मान्तत्वेन एवं दान्तत्वेन अनिर्धारित जो अहंशब्द है उस अहंशब्दके अहङ्कारमें प्रयोगदर्शनका नियामकत्व होनेसे; उदाहरण दिखलाते हैं यथेति । जैसे अनिरुद्धोहि लोकेषु इत्यादिस्थलोंमें लक्षणासे अहङ्कार शब्दका प्रयोग आत्मामें है । अहमर्थमें आत्मा तथा अनात्मा इन दोनोंके धर्मोंका दर्शन असिद्ध है, कर्तृत्वादिको आत्माका धर्म होनेसे इति यत्=ऐसा जो कथन है तत्र—उसको निमित्तकर कर्तृत्वादिनिष्ठ जैसे अनात्मधर्मत्व है तैसे कहेंगे । शङ्कते नन्विति । कर्तृत्वादिको अनात्मधर्मत्व होनेपरभी कर्तृत्वादिका जो आश्रय उस आश्रयके भान विनाभी—आश्रयका भान न होनेपरभी कर्तृत्वादिक आत्मामें प्रतीत हो जायँ, जैसे ' गौरोऽहम् ' यहांपर गौरत्वका आश्रय जो शरीर उस शरीरका भान न होनेपरभी गौरत्वका भान होता है इति चेन्न; क्यों ? दृष्टान्तमें सम्प्रति न होनेसे, तत्रापि=दृष्टान्तमेंभी देहत्वेन गौरत्वाश्रयका भान न होनेपरभी गौरत्वेन मनुष्यत्वादिना आश्रयकी प्रतीति होनेसे ।

अनुमानञ्च—अहमर्थः अनात्मा, अहंप्रत्ययविषयत्वात् शरीरवत् । न चाहमर्थान्तर्गताधिष्ठानभूतचितोऽपि तत्प्रत्ययविषयत्वात् तत्र व्यभिचारः; येन रूपेणाहम्प्रत्ययविषयता तेन रूपेण तस्याप्यनात्मत्वात् स्वरूपेणाहम्प्रत्ययविषयत्वाभावान्न व्यभिचारः । अहमर्थः आत्मान्यः अहंशब्दाभिधेयत्वात् अहंकारशब्दाभिधेयेवत्, नचात्रासिद्धिः पर्यायताया दर्शितत्वात् । नच—तवाप्यात्मनो गौरोहमित्यनात्मारोपाधिष्ठानत्वं मानभुवं भूयासमित्यादिना परमप्रेमास्पदत्वमहमर्थस्य स्वसत्तायां प्रकाशाव्यभिचारेणात्मनः स्वप्रकाशत्वं चोक्तम् तत्सर्वमहमर्थस्यानात्मत्वे न युक्तं स्यादिति वाच्यम्;

इदम् इवाधिष्ठानावच्छेदकत्वेनाधिष्ठानत्वोक्तेः। परप्रेमास्पदत्वमहमर्थे आत्मैक्यारोपात्। नचैवमन्योन्याश्रयः; सुषुप्तिकालीनप्रकाशाप्रकाशाभ्यां वैधर्म्येण भेदसाधनात्। नचाहमर्थप्रेम्णोऽन्यस्य प्रेम्णोऽननुभवः परामर्शसिद्धसुषुप्तिकालीनतादृशप्रेमानुभवस्य सत्त्वात्।

अनुमानं च=अहमर्थ अनात्मा है, इस अर्थमें अनुमानभी प्रमाण है, अहमर्थ, अनात्मा है, 'अहम्' इत्याकारक जो प्रत्यय उस प्रत्ययका विषयत्व होनेसे जहाँ २ 'अहम्' इत्याकारक प्रत्ययका विषयत्व रहता है तहाँ २ अनात्मत्व रहता है, शरीरवत्=अहं मनुष्यः अहं ब्राह्मणः इस रीतिसे अहंप्रत्ययविषयत्व शरीरमें है और अनात्मत्व भी है। अहमर्थ=चिद्-चित्संवलनात्मक जो अहमर्थ उस अहमर्थके अन्तर्गत जो अधिष्ठानभूत चित् है उसकोभी अहम्प्रत्ययविषयत्व होनेसे तत्र=उक्त चित्में व्यभिचार है=अनात्मत्वरूपसाध्य नहीं है और अहम्प्रत्ययविषयत्वरूप हेतु है अतः व्यभिचार है नच=व्यभिचार नहीं है क्यों? जिस रूपसे अहम्प्रत्ययकी विषयता चितमें है तिस रूपसे तस्या अपि=उक्त चित्कोभी अनात्मत्व होनेसे और स्वरूपसे चित्में अहम्प्रत्ययके विषयत्वके अभावसे व्यभिचार नहीं है; विशिष्टबुद्धिको शुद्धविशेष्यकत्वके नियमका स्वीकार होनेपरभी विषयत्व यत्किञ्चिद्धर्मावच्छिन्न होकेही निर्विश्य है और वह धर्म तो शुद्ध चित्में नहीं है यह भाव है। अहमर्थ आत्मासे भिन्न है, अहं शब्दका अभिधेय होनेसे अहङ्कार शब्दके अभिधेयकी नाईं; अत्रासिद्धिः=इस अनुमानमें स्वरूपासिद्धि दोष है=अहमर्थमें अहङ्कारशब्दाभिधेयत्वरूप हेतु नहीं है अतः स्वरूपासिद्धि है, नच=स्वरूपासिद्धि नहीं है क्यों? अहम् और अहङ्कार इन दोनोंकी पर्यायताको दिखला दिया होनेसे। शङ्कते नचेति। त्वयापि=तुमनेभी आत्मनः=आत्माको 'गौरोऽहम्' इत्यादि प्रतीतिसे अनात्माके आरोपका अधिष्ठानत्व, मैं न होऊँ ऐसा नहीं किन्तु मैं सर्वदा होऊँ, इत्यादि प्रतीतिसे परप्रेमास्पदत्व कहा है और अहमर्थके स्वसत्तामें प्रकाशके अव्यभिचारसे आत्माका स्वप्रकाशत्व कहा है तत्सर्वम्=वह सर्व तुम्हारा कथन अहमर्थको अनात्मत्व होनेपर युक्त न होगा, इति नच वाच्यम् क्यों? इदम्की नाईं अधिष्ठानतावच्छेदकत्वेन अधिष्ठानत्वकी उक्ति होनेसे='इदं रजतम्' इत्याकारक भ्रमस्थलमें शुक्त्यवच्छिन्नचैतन्यनिष्ठाविद्याका परिणामभूत जो रजत है उसका अधिष्ठान शुक्त्यवच्छिन्नचैतन्य है और अधिष्ठानतावच्छेदक शुक्ति है, और अधिष्ठानतावच्छेदकत्वेन शुक्तिमेंभी अधिष्ठानत्वका व्यवहार होता है, और रजताकार वृत्ति=भ्रमज्ञान शुक्तिसामान्यस्वरूपावगाहि—अन्तःकरणपरिणामभूतेदमाकारवृत्त्यवच्छिन्नचैतन्य-निष्ठसत्त्वगुणप्रधानाविद्याका परिणाम है, उसका अधिष्ठान उक्त इदमाकारवृत्त्यवच्छिन्नचैतन्य है और अधिष्ठानतावच्छेदक उक्त इदमाकारवृत्ति है अधिष्ठानतावच्छेदक होनेसे इदमाकार वृत्तिको अधिष्ठानत्वेनभी व्यवहृत कर लेते हैं, तैसे प्रकृतमेंभी गौरत्वादिप्रकारक अध्यासका मुख्य अधिष्ठान चैतन्य है परन्तु अधिष्ठानता=उक्त विध अध्यासकी अधिष्ठानता अहमर्थाव-च्छेदेन चैतन्यमें है अतः अधिष्ठानतावच्छेदक अहमर्थ है, और अधिष्ठानतावच्छेदक होनेसे अधिष्ठानत्वेनभी व्यवहृत होता है। और अहमर्थमें जो परमप्रेमाऽऽस्पदत्व है वह तो आत्माके

साथ ऐक्यके आरोपसे है । एवम्=ऐसा होनेपर अन्योन्याश्रय है=आत्माका परमप्रेमाऽऽस्पदत्व सिद्ध होनेपर आत्माके साथ ऐक्यारोपसे अहमर्थमें परमप्रेमाऽऽस्पदत्वकी सिद्धि है और अहमर्थमें परमप्रेमास्पदत्वके आरोपकी सिद्धिसे आत्मामें परमप्रेमाऽऽस्पदत्वकी सिद्धि है इस रीतिसे अन्योन्याश्रय है, नच=अन्योन्याश्रय नहीं है क्यों ? सुषुप्तिकालीन जो प्रकाश तथा अप्रकाश=आत्माका प्रकाश अहङ्कारका अप्रकाश एतदुभयकृत जो वैधर्म्य उस वैधर्म्यसे आत्मा तथा अहङ्कार इन दोनोंके भेदके साधनसे । अहमर्थविषयक जो प्रेम है उस प्रेमसे भिन्न अन्य किसी प्रेमका तो अनुभव नहीं है नच=ऐसा नहीं कहना क्यों ? परामर्शसिद्ध सुषुप्तिकालीन तादृश-प्रेमानुभवका सत्त्व होनेसे-सुषुप्तिमें निर्विकल्प सुखज्ञानही प्रेमका उत्पादक है और प्रेम नाम इच्छाका नहीं है जिससे सिद्ध सुखमें इच्छा न हो किन्तु स्नेहरूपवृत्तिविशेषका नाम प्रेम है ।

नच—अहिते हितबुद्ध्या प्रेमोत्पत्तिदर्शनेऽपि अप्रेमाऽऽस्पदे प्रेमास्पदतारोपो न दृष्ट इति-वाच्यम्, अहमर्थे आत्मैक्यारोपनिबन्धनं प्रेमास्पदत्वं नतु स्वाभाविकमिति ब्रूमः नतु प्रेमास्पदत्वारोपम् । अहमर्थात्मनोर्भेदेऽपि अहमर्थस्य प्रकाशाव्यभिचारः स्वप्रकाशात्मसम्बन्धं विना न घटत इति सोऽपि तत्र प्रमाणमिति नायुक्तिलेशोऽपि नच "समारोप्यस्य रूपेण विषयो रूपवान् भवेत् । विषयस्य तु रूपेण समारोप्यं न रूपवत् ॥" इति वाचस्पत्युक्तेरन्तःकरणगताप्रेमास्पदत्वस्यैवात्मनि प्रतीत्यापत्तिरिति-वाच्यम्; किमधिष्ठानगतधर्मस्यारोप्येऽभानमापाद्यते आरोप्यगतधर्मस्याधिष्ठाने भानं वा । नाद्यः यद्धर्मवत्तया ज्ञायमाने अधिष्ठाने आरोप्यनिवृत्तिस्तस्यैवारोप्येऽभाननियमेन प्रकृते तदभावात् । न द्वितीयः; अधिष्ठानगतधर्मप्रतीत्यविरोधिनः आरोप्यगतस्याधिष्ठानेभानेऽपि प्रकृतेऽविरोधात् ।

शङ्कते नचेति । अहितमें हितबुद्धिसे प्रेमकी उत्पत्ति देखने परभी अप्रेमास्पदमें प्रेमास्पदताका आरोप दृष्ट नहीं है इति न च वाच्यम् क्योंकि-अहमर्थमें आत्मैक्यारोपप्रयुक्त प्रेमास्पदत्व है-स्वाभाविक नहीं यह हम कहते हैं, अहमर्थमें प्रेमास्पदत्वका आरोप नहीं कहते हैं । अहमर्थ तथा आत्मा इन दोनोंका भेद होनेपरभी अहमर्थके प्रकाशका अव्यभिचार स्वप्रकाश जो आत्मा तादृश आत्माके सम्बन्धविना नहीं बन सकता है अतः सोऽपि=प्रकाशाव्यभिचारभी तत्र=अहमर्थ और आत्मा इन दोनोंके भेदमें प्रमाण है अतः कुछभी अनुपपन्न नहीं । शङ्कते नचेति समारोप्यस्य=रज्जुसर्पादिरूप आरोप्यके रूपेण=भीषणत्वादि-धर्मसे विषयः=अधिष्ठान रूपवान्=भीषणत्वादिधर्मवाला होता है । परन्तु अधिष्ठानके धर्मसे आरोप्य धर्मवान् नहीं होता है, इस वाचस्पतिकी उक्तिसे अन्तःकरणमें रहनेवाला जो अप्रेमास्पदत्व उसकेही प्रतीति की आत्मामें आपत्ति है इति नचवाच्यम्, विकल्पकर दोष देते है-क्या-अधिष्ठानगतधर्मका आरोप्यमें अभान तुमसे आपादन किया जाता है, या आरोप्यगत धर्मका अधिष्ठानमें भान आपादन किया जाता है, नाद्यः प्रथमपक्ष नहीं बन सकता है, क्यों ?

यद्धर्मावच्छिन्नत्वेन अधिष्ठानके ज्ञायमान होनेपर आरोप्यकी निवृत्ति होती है उसी धर्मके आरोप्यमें अभानका नियम होनेसे प्रकृतमें तिसका अभाव होनेसे, अन्तःकरणमें उक्तविधधर्मका भान तो हम नहीं मानते हैं। न द्वितीयः=द्वितीय पक्षभी सम्यक् नहीं क्यों ? अधिष्ठानगतधर्मकी जो प्रतीति तादृश प्रतीतिका अविरोधि एवम्भूत जो आरोप्यगतधर्म उस धर्मका अधिष्ठानमें भान होनेपरभी प्रकृतमें विरोध न होनेसे।

आत्मैक्याध्यासकाल एव प्रेमास्पदत्वसंभवेनारोप्येऽपि अप्रेमाऽऽस्पदत्वाप्रतीतेः कुतो विपये तत्प्रतीतिः ? यथा इदमितिरजताध्यासकाल एव रजते अनिदन्त्वाप्रतीतिः। यत्तु—कैश्चित् परिह्रियते—सुखानुभवरूपस्यात्मनो अहमर्थात् भेदेनैव सुखमनुभवामीत्यादौ प्रतीतिः—इति तन्न; वैपयिकसुखानुभवस्यात्मान्यत्वात्। नच—मोक्षे अहमर्थाभावेनात्मनाशो मोक्ष इति बाह्यमतापत्तिः; प्रेमास्पदस्याहमर्थस्य त्वन्मतेऽपि नाशात्, तदन्यस्य शून्यस्य तन्मतेऽप्यनाशादिति=वाच्यम् औपाधिकप्रेमास्पदनाशेन बाह्यमतप्रवेशापत्तौ शरीरनाशेऽपि तदापत्तेः एतावताहमर्थस्य मुक्त्यनन्वयेऽपि मामसृतं कृधि ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासमिति श्रुतिरपि चैतन्यगतमेवामृतत्वं विपयीकरोति अहं पुष्टः स्यामिति इच्छेव स्वसमयविद्यमानशरीरवृत्तिपुष्टिम्।

आत्मैक्याध्यासकालमें ही प्रेमास्पदत्वके सम्भवसे आरोप्यमेंभी अप्रेमास्पदत्वकी अप्रतीतिसे विपयमें अप्रेमास्पदत्वकी प्रतीति कैसे होगी ? जैसे 'इदम्' इत्याकारक रजताध्यासकालमें ही रजतमें अनिदन्ताकी अप्रतीति है। सुखका जो अनुभव तादृश अनुभवरूप जो आत्मा तादृश आत्माकी अहमर्थसे भेदपूर्व ही 'सुखमनुभवामि' इत्यादिमें प्रतीति होती है= फलतः अहङ्कारका आत्मामें ऐक्यारोप नहीं है इसलिए अहङ्कारको परप्रेमास्पदत्वका असम्भव है, इति यत्=ऐसा जो परमतानुयायि कीन्ही लोगोंसे परिहार किया जाता है तन्न=वह ठीक नहीं है, क्यों ? विपयजन्य जो सुख उस सुखका जो अनुभव उस अनुभवको आत्मासे अन्य होनेसे। शङ्कते नचेति। मोक्षमें अहमर्थका अभाव होनेसे आत्माका नाश मोक्ष है इस बाह्य मतकी आपत्ति है, प्रेमास्पद जो अहमर्थ उसका तुह्मारे मतमेंभी नाश होनेसे और आत्मासे अन्य शून्यका बाह्यमतमें भी नाश न होनेसे, इति न च वाच्यम् क्यों ? औपाधिक प्रेमास्पदके नाशसे बाह्यमतमें प्रवेशकी आपत्ति होनेपर शरीरका नाश होनेपरभी बाह्यमतमें प्रवेशकी आपत्ति होनेसे। एतावता अहमर्थका मुक्तिमें अन्वय न होनेपरभी मामृतं कृधि, (नारा० उ०) इत्यादि श्रुतिभी चैतन्यगतही अमृतत्वको विपयकरती है जैसे 'अहं पुष्टः स्याम्' यह इच्छा स्वसमयमें विद्यमान जो शरीर तादृश शरीरवृत्ति पुष्टिको विपयकरती है।

नच—शरीरं पुष्टं स्यादिति शरीरमात्रे पुष्टीच्छावत् आत्ममात्रं मुक्तं स्यादितीच्छाया अदर्शनेन मुक्तेरनिष्टत्वापत्तिरिति—वाच्यम् इच्छासमये अन्तःकरणाध्याससंभवेन यद्यपि नात्ममात्रगतमुक्तीच्छा तथापि विशिष्टगतमुक्तीच्छाया एव विवक्षितविवेकेन विशेष्यमात्रगतमुक्तिविपयत्वपर्यवसानात् तस्यामिष्टत्वोपपत्तेः। नचाहमर्थस्यान्तःकर-

ग्रन्थित्वे मम मन इति धीर्न स्यात् चिदचिद्ग्रन्थिरहंकारः, अचिन्मात्रमन्तःकरणम् इति भेदेन षष्ठ्युपपत्तेः। नचैवं मनः स्फुरति मनोऽस्तीत्यादिज्ञानादहमिति ज्ञानस्य वैषम्यानुभवो न स्यात्, चिदचित्संवलनविषयत्वाविशेषादिति—वाच्यम् । संवलनं हि न सम्बन्धमात्रं किन्तु तादात्म्येन प्रतिभासः स च तत्र नास्तीति विशेषात् ।

शङ्कते नचेति । शरीर पुष्ट हो, इस रीतिसे शरीरमात्रमें जैसे पुष्टिकी इच्छा होती है तैसे आत्ममात्र मुक्त हो ऐसी इच्छाके न देखनेसे मुक्तिको अनिष्टत्वकी आपत्ति है, इति नच वाच्यम् क्योंकि इच्छाके समयमें अन्तःकरणके अध्यासका सम्भव होनेसे, यद्यपि आत्ममात्र गत मुक्तिकी इच्छा नहीं है तथापि विशिष्टगत जो मुक्तिकी इच्छा उस मुक्तीच्छाकाही विवक्षितविवेकसे विशेष्यमात्रगत जो मुक्ति तादृश मुक्तिविषयत्वमें पर्यवसान होनेसे, तस्याम्=मुक्तिमें इष्टत्वकी उपपत्तिसे । अहमर्थको अन्तःकरणकी ग्रन्थित्व होनेपर 'मेरा मन है, ऐसी भेदधी न होगी' नच=ऐसी शङ्का नहीं करना, क्यों ? चित् तथा अचित् इन दोनोंकी ग्रन्थिका नाम है अहङ्कार, और अन्तःकरण अचिन्मात्र है इस भेदसे षष्ठीकी उपपत्तिसे । शङ्कते नचेति । ऐसा होनेपर मनः स्फुरति । मनोऽस्ति इत्यादिज्ञानसे 'अहम्' इत्याकारक ज्ञाननिष्ठ वैषम्यका अनुभव न होगा, उक्त ज्ञानोंको चिदचित्संवलनविषयत्वका अविशेष होनेसे=मनः स्फुरति यहांपर स्फुरणरूप चित्के साथ मनका सम्वलन विषय होता है, 'मनोऽस्ति' यहाँपर सद्रूपचित्के साथ मनका सम्वलन विषय होता है और 'अहम्' सम्वलनविषय होताही है फलतः संवलनविषयत्वाविशेष है, इति नच वाच्यम् क्योंकि संवलन नाम सम्बन्धमात्रका नहीं है किन्तु अभेदरूपसे प्रतिभासका नाम संवलन है । स च=तादात्म्येन प्रतिभास तो 'मनः स्फुरति' इत्यादिमें नहीं है यह विशेष होनेसे ।

ननु—सर्वापि भ्रान्तिर्द्व्यंशविषया, अन्यथा निरधिष्ठानकभ्रमापत्तेः नच अहमिति बुद्धेः द्व्यंशत्वमनुभूयते कल्प्यते चेत्, आत्मेतिबुद्धेरपि द्व्यंशत्वं कल्प्यतामिति चेन्न; किमिदं द्व्यंशविषयत्वम्? अधिष्ठानारोप्यविषयत्वं चेत्तर्हीष्टापत्तिः अहमर्थमिथ्यात्वस्यैव द्वितीयांशविषयत्वे प्रमाणत्वात् । आत्मेत्यत्र तु द्व्यंशविषयत्वे नैवं प्रमाणमस्ति येन तथा कल्प्यते । नचद्व्यंशविषयत्वं भिन्नभिन्नप्रकारावच्छिन्नाधिष्ठानारोप्यविषयत्वम् रजतत्वसंसर्गारोपनिबन्धनेदं रजतमिति प्रतीतौ व्यभिचारात् नहि रजतत्वेऽपि तत्र कश्चन प्रकारो भासते रजतादेस्तत्र प्रकारत्वकल्पने मानाभावात् तत्कल्पनां विनैवोपपत्तेः। तथा कल्पनायामतिप्रसङ्गादप्रयोजकत्वाच्च ।

शङ्कते नन्विति । कोईभी भ्रान्ति हो वह द्व्यंशविषया होती है यदि किसीभी भ्रान्तिको द्व्यंशविषयत्व न माना जाय तो निरधिष्ठानक भ्रमकी आपत्ति है, अतः भ्रान्तिमें द्व्यंशविषयत्व मानना ही चाहिए 'अहम्' इस बुद्धिनिष्ठद्व्यंशत्व तो अनुभूत नहीं होता है, यदि कहोकि 'अहम्' इत्याकारक—बुद्धिनिष्ठद्व्यंशत्वविषयत्व कल्पना किया जाता है तो 'आत्मा' इत्या-

कारिका जो बुद्धि है उस बुद्धिमेंभी त्र्यंशविषयत्व कल्पन करना चाहिए इति चेन्न, यह त्र्यंश-विषयत्व क्या है ? अधिष्ठान आरोप्य एतदुभयविषयत्वरूप यदि है तब तो 'अहम्' इस बुद्धिके त्र्यंशविषयत्वमें इष्टापत्ति है 'अहम्' इस बुद्धिमें अधिष्ठान आरोप्य एतदुभयविषयकत्व है ही अतः इष्टकी आपत्ति है, अहमर्थके मिथ्यात्वकोही द्वितीयांशविषयत्वमें प्रमाणत्व होनेसे, 'अहम्' इत्याकारिका धीः अधिष्ठानारोप्यैतदुभयविषया, मिथ्यार्थविषयत्वात् भ्रमस्थलीयदं रजतमिति धीवत् इसको प्रमाणत्व होनेसे 'आत्मा' इत्याकारिका धीके तो त्र्यंशविषयत्वमें उक्तरीतिसे कोई प्रमाण नहीं है जिससे तिस प्रकारसे त्र्यंशविषयत्व कल्पन किया जाय। भिन्नभिन्नप्रकारावच्छिन्न जो अधिष्ठान तथा आरोप्य तादृश अधिष्ठानारोप्यविषयत्वका नाम है-त्र्यंशविषयत्व, नच ऐसा त्र्यंशविषयत्व नहीं हो सकता है, क्यों ? रजतत्वसंसर्गारोपघटित जो 'इदं रजतम्' इत्याकारिका प्रतीति है उस प्रतीतिमें व्यभिचार होनेसे=यहाँपर आरोप्य जो रजतत्व है वह किसीभी प्रकारसे अवच्छिन्न नहीं है फलतः इस बुद्धिमें भ्रान्तित्वरूप हेतु तो है परन्तु त्वदुक्तत्र्यंशविषयत्व नहीं है अतः व्यभिचार है, इसी अर्थको स्पष्ट करते हैं नहीति=इदं रजतम् इस भ्रममें रजतत्वांशमेंभी कोई प्रकार भासित नहीं होता है, तत्र=रजतत्वमें रजतादिके प्रकारत्व कल्पनामें मानका अभाव होनेसे तत्कल्पनां विनैव=रजतत्वमें प्रकारविधया रजतादिकी कल्पनाके विनाही प्रतीतिकी उपपत्ति होनेसे, और आधेयत्वादि सम्बन्धसे रजता-दिकी रजतत्वादिमें कल्पना करनेमें अतिप्रसङ्ग है=हरएक पदार्थ हरएक जगहमें किसी न किसी सम्बन्धसे कल्पित किया जा सकता है ऐसी हालतमें कौन कहाँ प्रकार है इसका जाननाही कठिन हो पडेगा। और अप्रयोजकत्वसेभी तथा कल्पना नहीं की जा सकती है, आधेयत्वादि सम्बन्धसे रजतादिको रजतत्वके ऊपर पहुँचनेपरभी उसके प्रकारत्वमें कोई प्रयोजक नहीं है।

यद्वा—अत्राप्यहं स्फुरामि अहमस्मीति द्व्यंशता भात्येव रूप्यं स्फुरति रूप्यमस्ती-त्यत्रेव। इयांस्तु विशेषः—यत्तत्र इदन्त्वावच्छिन्नस्फुरणमधिष्ठानमिति इदं रूप्यमितिधीः; इह तु स्फुरणमात्रमधिष्ठानमिति स्फुरामीत्येव बुद्धिः। नच—भ्रमस्याप्यध्यस्ततत्वेनाधिष्ठा-नत्वायोगः भ्रान्तोऽसि । स्फुरणं चैतन्यं ब्रूमः नत्वविद्यावृत्त्यादिकम् एवञ्च न प्रत्यक्ष-महमर्थस्यात्मत्वे प्रमाणम्। नाप्यनुमानम् तथाहि—अहमर्थो मोक्षान्वयी तत्साधनकृत्याश्र-यत्वात् सम्मतवत् इत्यत्र विशेषव्याप्तौ दृष्टान्ताभावः । नहि कृत्याश्रये मोक्षान्वयित्वं क्वचित् संप्रतिपन्नमस्ति, सामान्यव्याप्तेः स्वर्गसाधनकृत्याश्रये ऋत्विजि स्वर्गानन्वयेन व्यभिचारात्। अहमर्थः अनर्थनिवृत्त्याश्रयः अनर्थाश्रयत्वात् सम्मतवदित्यत्र शरीरे व्यभिचारः। नच तत्रानर्थाश्रयत्वमसिद्धम्, अहमज्ञ इतिप्रतीत्या अहमीव स्थूलोऽहमज्ञ इति प्रतीत्या शरीरेऽपि तत्सत्त्वात् अन्यथा असिद्धिप्रसङ्गात्।

अथवा अनुमानरूप कल्पना करनेकी आवश्यकता नहीं अत्रापि=(अहम्) इस प्रत्ययमेंभी (अहं स्फुरामि) (अहमस्मि) इस रीतिसे द्व्यंशता प्रत्यक्षही है जैसे (रूप्यं

स्फुरति) (रूप्यमस्ति यहाँपर द्व्यंशता प्रत्यक्ष है)। इतना विशेष है कि तत्र=(इदं रूप्यम्) (रूप्यं स्फुरति) यहाँपर इदन्त्वावच्छिन्न जो स्फुरण वह स्फुरण अधिष्ठान है, (अतः इदं रूप्यं) ऐसी धी होती है और (अहं स्फुरामि) यहाँपरतो स्फुरणमात्र अधिष्ठान है, इसलिए स्फुरामि ऐसीही धी होती है। भ्रमस्य=स्फुरणरूप भ्रमको अध्यस्तत्व होनेसे अधिष्ठानत्वका अयोग है, नच=अयोग नहीं है, क्योंकि तुम भ्रान्त हो। चैतन्यको हम स्फुरण कहते हैं नकि अविद्यावृत्त्यादिकको। इस रीतिसे यहसिद्ध हुआकि; प्रत्यक्ष अहमर्थके आत्मत्वमें प्रमाण नहीं है। अनुमानभी अहमर्थके आत्मत्वमें प्रमाण नहीं है तथाहि—अहमर्थ मोक्षान्वयी है मोक्षका साधन जो कृति उस कृतिका आश्रयत्व होनेसे सम्मतवत् इत्यत्र=यह जो द्वैतीका अनुमान है इसमें विशेषव्याप्तिमें दृष्टान्तका अभाव है क्योंकि कृत्याश्रयमें कहींपरभी मोक्षान्वयित्व द्वैती तथा अद्वैती इन दोनोंको सम्मत नहीं है, सामान्यव्याप्तेः=यत्र यत्साधनकृत्याश्रयत्वं तत्र तदाश्रयत्वम्, इत्याकारिका जो सामान्यव्याप्ति है उसव्याप्तिका तो स्वर्गसाधन जो कृति तादृशकृत्याश्रय जो ऋत्विज् उस ऋत्विज्में स्वर्गका अन्वय न होनेसे व्यभिचार है। अहमर्थ अनर्थनिवृत्तिका आश्रय है, अनर्थका आश्रय होनेसे सम्मतवत्। ऐसा अनुमान होनेपर शरीरमें व्यभिचार है तत्र=शरीरमें अनर्थका आश्रयत्व असिद्ध है नच=असिद्ध नहीं है, क्यों ? (अहमज्ञः) इस प्रतीतिसे जैसे अहमर्थ मैं अनर्थ है तैसे स्थूल मैं अज्ञ हूँ इस प्रतीतिसे शरीरमेंभी अनर्थका सत्त्व होनेसे=अज्ञानके सम्बन्धका नाम अनर्थ है वह सम्बन्ध जैसे अहमर्थके साथ है तैसे शरीरके साथ भी है। अन्यथा=उक्त प्रतीतिके होतेहुएभी यदि शरीरमें अज्ञानसम्बन्धरूप अनर्थ न मानों तो अहमर्थरूप पक्षमेंभी हेतुकी असिद्धिका प्रसङ्ग है। अतः इस हेतुसे अहमर्थमें आत्मत्व नहीं सिद्ध हो सकता है।

अनात्मत्वं नाहमर्थवृत्ति, अनात्ममात्रवृत्तित्वात् घटत्ववदित्यत्र कृत्याश्रयावृत्तित्वमुपाधिः। नापि कस्मिन्नहमुत्क्रान्ते उत्क्रान्तो भविष्यामि कस्मिन्वा प्रतिष्ठिते प्रतिष्ठास्यामि। (प्रश्न० ६।३) स प्राणमसृजत (प्रश्न० ६।४) हन्ताहमिमास्तिस्रो देवता (छां० ६।३।२) इत्यादौ जगत्कारणे सति प्राणमनःसृष्टेः पूर्वमहन्त्वोक्तेः। तदात्मानमेवावेत् अहंब्रह्मास्मीति अवधारणेन शुद्धात्मनो अहन्त्वोक्तेः अनवद्यस्य ब्रह्मणोऽहमुल्लेखोक्तेः ‘ अहमित्येव यो वेद्यः स जीवः इति कीर्तितः। स दुःखी स सुखी चैव स पात्रं बन्धमोक्षयोः।। इत्यादौ मोक्षान्वयोक्तेश्चैताः श्रुतयः प्रमाणम्। विशिष्टवाचकस्यैवाहंपदस्य लक्षणया निष्कृष्टाहंकारचैतन्ये प्रयोगात्। लक्षणाबीजभूतानुपपत्तिरुक्ता। एतेन मामेव ये प्रपद्यन्ते’ इत्यादिस्मृतयोऽपि व्याख्याताः। अतएव ‘ तद्योऽहं सोऽसावित्यादावपि लक्षणाऽऽश्रयणीया; विशिष्टवाचकत्वेन क्लृप्तस्य विशेष्ये लक्षणाया आवश्यकत्वात्।

इत्यद्वैतसिद्धावहमर्थस्यानात्मत्वोपपत्तिः।

अनात्मत्व, अहमर्थमें वृत्ति नहीं है, अनात्ममात्रवृत्ति होनेसे घटत्ववत्। इत्यत्र=इस द्वैतीके अनुमानमें कृत्याश्रयमें अवृत्तित्व उपाधि है=घटत्वमें साध्य उपाधि दोनोंके रहनेसे उपाधिमें साध्यव्यापकत्व है और अनात्मवृत्तिरूप हेतु अनात्मत्वमें है परन्तु वहाँ कृत्याश्रयावृत्तित्व नहीं है किन्तु कृत्याश्रयवृत्तित्वही है, अतः उपाधिमें साधनाव्यापकत्वभी है। कस्मिन्नहमुत्क्रान्ते, इत्यादिमें जगत्का कारण जो सत् उस सत्में प्राण और मनकी सृष्टिसे पहिले अहन्त्वकी उक्ति होनेसे; तदात्मानमेवावेत् अहं ब्रह्मास्मि (बृ०१।४।१०) इस अवधारणसे शुद्ध ब्रह्मको अहन्त्वकी उक्तिसे अनवद्य ब्रह्मको अहमुल्लेखकी उक्तिसे और 'अहम्' इस रीतिसे जो वेद्य है वह जीव कहा गया है, वह दुःखी तथा सुखी है और बन्धमोक्षका पात्र है इत्यादिमें मोक्षान्वयकी उक्तिसे ये श्रुतियाँ अहमर्थके आत्मत्वमें प्रमाण हैं नापि=ये श्रुतियाँभी उक्तार्थमें प्रमाण नहीं हैं क्यों? विशिष्ट वाचक जो अहम्पद है उसकाही लक्षणासे निष्कृष्टाहङ्कार चैतन्यमें प्रयोग होनेसे। लक्षणामें बीजभूतसुपुस्यभानान्यथानुपपत्ति कही है, एतेन=वाच्यार्थके अन्वयके असम्भवसे लक्षणाके आवश्यकत्वसे मामेव=मुझ चिन्मात्रकोही ये प्रपद्यन्ते=तत्त्वमस्यादि श्रुतिओंसे साक्षात्कार करते हैं, (गी० ७।१४) इत्याद्यर्थकत्वेन इत्यादि स्मृतियांभी व्याख्यात हुई अतएव तद्योऽहम् सोऽसौ इत्यादिमेंभी लक्षणा आश्रयणीय है, अतएव शब्दका अर्थ करते हैं-विशिष्टवाचकत्वेन क्लृप्तपदकी विशेष्यमें लक्षणाका आवश्यकत्व होनेसे।

इति सरलायामहमर्थस्यानात्मत्वोपपत्तिः।

अथ कर्तृत्वाध्यासोपपत्तिः।

ननु—कर्तृत्वं यद्यनात्मधर्मः स्यात्, कथमात्मनि भासते? नच—जपाकुसुमस्थं लौहित्यं स्फटिक इवान्तःकरणगतं कर्तृत्वमात्मन्यध्यस्यते नतु तात्त्विकम्, निर्विकारत्वश्रुतिविरोधात्, सुषुप्तौ बुद्ध्यभावेऽकर्तृत्वदर्शनाच्चेति—वाच्यम्; एवं हि रक्तं कुसुममितिवत् कदाचित् मनः कर्त्रिति प्रत्यक्षप्रमा "लोहितः स्फटिक" इतिवत् चैतन्यं कर्त्रितिभ्रमश्च स्यादिति-चेन्न; कर्तृत्वविशिष्टान्तःकरणस्य चैतन्यात्मनाध्यासेन न तथा प्रतीतिः कुसुमस्य तु स्फटिकात्मना नाध्यास इतिवैषम्यात्।

अथ सरलायां कर्तृत्वाध्यासोपपत्तिः।

नन्विति=कर्तृत्व यदि अनात्माका धर्म होगा तो आत्मामें कैसे भासित होगा,=कर्तृत्व यदि अनात्माका धर्म है तो आत्मामें कैसे प्रतीत होता है? यदि यों कहो कि जैसे जपापुष्पमें रहनेवाला लौहित्य स्फटिकमें कल्पित प्रतीत होता है तैसे अन्तःकरणमें रहनेवाला कर्तृत्व आत्मामें अध्यस्त होता है तात्त्विक कर्तृत्व आत्मामें नहीं है आत्मामें तात्त्विक कर्तृत्व माननेमें निर्विकार श्रुतिका विरोध होनेसे और सुषुप्तिमें बुद्धिका अभाव होनेपर कर्तृत्वके न देखनेसे तो ऐसा नहीं कहना, क्योंकि ऐसा होनेपर जैसे कदाचित् 'रक्तम् कुसुमम्' ऐसी प्रत्यक्ष प्रमा होती है तैसे कदाचित् 'मनः कर्तृ' इत्याकारक प्रत्यक्ष प्रमाभी होनी चाहिए,

और जैसे 'लोहितः स्फटिकः' इत्याकारक भ्रम होता है तैसे कदाचित् 'चैतन्यं कर्तृ' इत्याकारक भ्रमभी होना चाहिए। ननुसे लेकर यहाँतक द्वैतीकी शङ्का है अब समाधान करते हैं इति चेन्न; क्योंकि कर्तृत्वविशिष्ट जो अन्तःकरण है उस अन्तःकरणका चैतन्यात्मरूपसे अध्यास होनेसे तथा=उक्तविध प्रतीति नहीं होती है और कुसुमका तो स्फटिकरूपसे अध्यास नहीं है इस वैषम्यसे उक्तविध प्रतीतिका होना न होना उपपन्न होता है।

नच—अधिष्ठानात्मनाऽनध्यस्तजपाकुसुमस्थानीयमुपाधिं विना भीषणत्वादियुक्तसर्पस्य रज्ज्वात्मने कर्तृत्वादियुक्तबुद्धेश्चिदात्मनाध्यासे रज्जौ भीषणत्वान्तरस्येवात्मनि कर्तृत्वान्तरस्यानध्यासेन सोपाधिकत्वं न स्यादिति—वाच्यम् आत्मनि कर्तृत्वान्तरस्यैवाध्यासात्। नच तर्हि कर्तृत्वद्वयस्य विविच्यप्रतीतिः स्यात्, आत्मान्तःकरणयोरैक्याध्यासात्। रज्जुसर्पादौ अध्यस्यमानक्रूरत्वादिविशिष्टसर्पापेक्षया अधिकसत्ताकस्य सर्पान्तरस्य संभवेन नायमुपाधिः अतो निरुपाधिकत्वम्। अत्र त्वध्यस्यमानान्तःकरणापेक्षया कर्तृत्वादिधर्मविशिष्टमन्यदधिकसत्ताकं नास्त्येवेति अन्तःकरणमात्रोपाधिरिति न सोपाधिकत्वानुपपत्तिः।

शङ्कते नचेति। अधिष्ठानात्मना अनध्यस्त जो जपाकुसुम तादृश जपाकुसुमस्थानीय उपाधिके विना भीषणत्वादिसे युक्त सर्पका जैसे रज्ज्वात्मना अध्यास होता है तैसे कर्तृत्वादिसे युक्त बुद्धिका चिदात्मना अध्यास होनेपर रज्जुमें भीषणत्वान्तरकी नाई आत्मामें कर्तृत्वान्तरका अध्यास न होनेसे, कर्तृत्वभ्रमको सोपाधिकत्व न होगा जैसे कि रज्जुसर्पभ्रमको सोपाधिकत्व नहीं होता है, इति नच वाच्यम् क्यों? आत्मामें कर्तृत्वान्तरकाही अध्यास होनेसे, तब कर्तृत्वद्वयकी भिन्नरूपसे प्रतीति होगी—नच=नहीं होगी, क्यों? आत्मा तथा अन्तःकरण इन दोनोंके ऐक्याध्याससे। रज्जुसर्पादिमें अध्यस्यमान जो क्रूरत्वादिविशिष्ट सर्प, उस सर्पकी अपेक्षासे अधिकसत्ताक सर्पान्तरका सम्भव होनेसे यह सर्प उपाधि नहीं है अतः रज्जुमें सर्पभ्रमको निरुपाधिकत्व है। और यहाँ प्रकृतमें तो अध्यस्यमान जो अन्तःकरण उस अन्तःकरणकी अपेक्षासे कर्तृत्वादिधर्मविशिष्ट अधिकसत्ताक भिन्न अन्तःकरण नहीं ही है, अतः अन्तःकरण प्रकृतमें उपाधि है, इस रीतिसे कर्तृत्वाध्यासको सोपाधिकत्वकी अनुपपत्ति नहीं है।

नच—एवमपि मनो न स्फुरणम्; स्फुरतीति तयोर्भेदधीदशायां प्रत्येकं रक्तं कुसुमं स्फटिको रक्तः इतिवत् 'मनः कर्तृ चैतन्यं कर्त्रि' ति प्रतीत्यापत्तिरिति—वाच्यम्; तादात्म्यारोपविरोधिभेदग्रहस्यैव तत्प्रयोजकत्वात्; प्रकृते च तदभावात्। यत्त्वभेदग्रहदशायामपि 'अयं भीषणः सर्पो भीषणः अहं गौरः शरीरं गौरमितिवत् 'मनः कर्तृ' चैतन्यं कर्त्रि' तिप्रतीतिः स्यादिति तन्न तादात्म्यग्रहस्यैव प्रतिबन्धकस्य सत्त्वेन दृष्टान्तस्यैवासंप्रतिपत्तेः। यदपि सोपाधिकत्वेन तन्त्रत्वेनाधिष्ठानसमसत्ताकत्वमुपाधेः तद्धर्मस्य वा अध्यस्यमानापेक्षयाधिकसत्ताकत्वं वा तयोरिति पक्षद्वयमुद्भाव्य प्रकृते तद्द्वयं न सम्भ-

वति इतिदूपणाभिधानम् तदनुक्तोपालम्भनम्; यदन्वयव्यतिरेकानुविधायितया यत्प्रतीयते तदपेक्षया अधिकसत्ताकतद्धर्माश्रयान्तराभावस्यैव सोपाधिकत्वे तन्त्रत्वात्। नचैवं क्षीरसंपृक्तनीरैक्याध्यासनिवन्धनक्षीरधर्मप्रतीतिः सोपाधिकी स्यात् तस्याः सोपाधिकत्वे इष्टापत्तेः ।

शङ्कते नचेति । ऐसा होनेपरभी मन स्फुरण नहीं है, किन्तु मन स्फुरित होता है इस रीतिसे तयोः=मन तथा स्फुरण इन, दोनोंका भेद जिस दशामें होता है उस दशामें ' रक्तं कुसुमम् ' स्फटिको रक्तः इस रीतिसे प्रत्येककी भिन्न प्रतीति जैसे होती है वैसे मन कर्ता है चैतन्य कर्त्ता है, इस रीतिसे प्रत्येकके प्रतीतिकी आपत्ति है इति नच वाच्यम् क्यों ? तादात्म्यारोपका विरोधि जो भेदग्रह है उस भेदग्रहको ही उक्तविध प्रतीतिमें प्रयोजकत्व होनेसे प्रकृतमें तो भेदग्रहका अभाव है, अतः उक्तविध प्रतीतिकी आपत्ति अनुपपन्न है, और जो कहा है कि अभेदग्रहदशामें भी यह भीषण है सर्प भीषण है मैं गौरहूँ शरीर गौर है ये प्रतीतियाँ जैसे होती हैं तैसे मन कर्ता है चैतन्य कर्ता है ऐसी प्रतीति होनी चाहिए, तन्न, वह ठीक नहीं क्यों ? भेदग्रहमें प्रतिवन्धक जो तादात्म्यग्रह है उस तादात्म्यग्रहके ही सत्त्वसे दृष्टान्तमें ही सम्भवित न होनेसे=जिसरूपसे जिसकालमें तादात्म्यग्रह जिसका जिसके साथ होता है उसकालमें उसी रूपसे उसका उसके साथ भेदग्रह नहीं होता है अतः दृष्टान्तकी असम्प्रतिपत्ति है । यदपि=और भी जो उपाधिका या उपाधिधर्मका अधिष्ठानसमसत्ताकत्व, या तयोः=उपाधिका या उपाधिधर्मका अध्यस्यमानकी अपेक्षा अधिक-सत्ताकत्व इस पक्षद्वयका सोपाधिकत्वमें तन्त्रत्वेन उद्भावनकर प्रकृतमें उक्तदोनोंका सम्भव नहीं है यह जो दूषणका अभिधान है वह अनुक्तोपालम्भन है । यदन्वयव्यतिरेकानुविधायितया=जिस उपाधिरूप धर्मिके सन्निधिमें ही यत्प्रतीयते=जो धर्म प्रतीत होता है तदपेक्षया=तद्धर्मापेक्षया अधिकसत्ताक जो तद्धर्मका आश्रयान्तर उस आश्रयान्तरके अभावकोही सोपाधिकत्व है ऐसा होनेपर क्षीरसे संपृक्त जो नीर उस नीरमें क्षीरैक्याध्यासनिवन्धन क्षीरधर्मकी प्रतीति सोपाधिकी होगी, नच=ऐसी शङ्का मत करो क्यों तस्याः=उक्त प्रतीतिके सोपाधिकत्वमें इष्टापत्ति होनेसे ।

ननु—बुद्धिगतं कर्तृत्वं किमहमर्थे, अहमर्थगतं वात्मनि अध्यस्यते आद्ये आरोपितस्याप्यनर्थस्यात्मान्यभावे तस्य वन्धमोक्षानधिकरणत्वापत्तिः द्वितीये अनध्यासेनैव अहं कर्तेति प्रतीत्युपपत्तौ किमध्यासेनेति चेन्न; अहंकारस्तु चिदचिद्ग्रन्थिरूपतया द्व्यंशः। तत्राचिदंशे बुद्धौ कर्तृत्वसत्वेऽपि तद्विशिष्टाया बुद्धेश्चित्यैक्याध्यासं विना ' अहंकर्तेति ' प्रतीतेरयोगेनाध्यासस्यावश्यकत्वात् । एतेन—आरोपितकर्तृत्वस्याप्यभावे आत्मनो वन्धमोक्षानधिकरणत्वं स्यादिति निरस्तम् । नच कर्त्ता शास्त्रार्थवत्त्वादित्यधिकरणे त्वयापि सांख्यरीत्या बुद्धेः कर्तृत्वे प्राप्ते जीवस्यैवेति सिद्धान्तितत्वेन विरोधः ? नचाविवेकनिवन्धनं जीवनिष्ठत्वम्; अविवेकस्य सांख्यमतेऽपि सत्त्वादिति—वाच्यम्, बुद्धेरेव कर्तृ-

त्वम् भोक्तृत्वं चैतन्यस्येति पूर्वपक्षं कृत्वा कर्तृत्वभोक्तृत्वयोरैकाधिकरण्यनियमेन भोक्तृत्ववत् कर्तृत्वमप्यङ्गीकर्त्तव्यमित्युक्तम्, नतु बुद्धेः अकर्तृत्वं आत्मनो वा स्वाभाविकं कर्तृत्वमिति ।

शङ्कते नन्विति बुद्धिगत जो कर्तृत्व है वह अहमर्थमें अध्यस्त किया जाता है या अहमर्थगतकर्तृत्व आत्मामें अध्यस्त किया जाता है यदि आद्य पक्ष होतो आरोपित अनर्थकाभी आत्मामें अभाव होनेपर तस्य=आत्माको–बन्धमोक्षके अनधिकरणत्वकी आपत्ति है, द्वितीय पक्ष हो तो अध्यासके विनाही 'अहङ्कर्ता' इत्याकारक प्रतीतिके उपपन्न होनेपर अध्याससे क्या प्रयोजन है, इति चेन्न, क्योंकि–अहङ्कार चिदचिद्ग्रन्थिरूप द्व्यंश है तत्र=उन दो अंशोमें अचिदंश जो बुद्धि उस बुद्धिमें कर्तृत्वका सत्त्व होनेपरभी तद्विशिष्टायाः=कर्तृत्वविशिष्ट जो बुद्धि उस बुद्धिका चित्‌के साथ जो ऐक्याध्यास उस ऐक्याध्यासके विना 'अहं कर्ता' इस प्रतीतिके अयोगसे अध्यासका आवश्यकत्व होनेसे। एतेन=उक्तरीतिसे आत्मामें आध्यासिक कर्तृत्वक मान लेनेसे, आरोपित कर्तृत्वकाभी अभाव होनेपर आत्माको बन्धमोक्षका अनधिकरणत्व होगा, यह कथन निरस्त हुआ । शङ्कते नचेति । जीव कर्त्ता है शास्त्रको अर्थवत्ता होनेसे (वे० २।३।३३)। इस अधिकरणमें तुमनेभी साङ्ख्यकी रीतिसे बुद्धिको कर्तृत्वप्राप्त होनेपर जीवको ही कर्तृत्व है ऐसा सिद्धान्त किया है, अतः अब जीवको कर्त्ता न मानोंगे तो उसके साथ विरोध है, यदि यों कहोकि अविवेकाधीन कर्तृत्वमें जीवनिष्ठत्व है तो ऐसा नहीं कहना, अविवेकका साङ्ख्य मतमेंभी सत्त्व होनेसे इति नच वाच्यम्, क्योंकि बुद्धिको ही कर्तृत्व है और भोक्तृत्व चैतन्यको है, ऐसा पूर्वपक्षकरके कर्तृत्व और भोक्तृत्व इन दोनोंको ऐक्याधिकरण्यका नियम होनेसे भोक्तृत्ववत कर्तृत्वभी आत्मामें अङ्गीकार करना चाहिए यह कहा है परन्तु यह नहीं कहा है कि बुद्धिको अकर्तृत्व है और आत्माको स्वाभाविक कर्तृत्व है ।

'यथाच तक्षोभयथा' इत्युत्तराधिकरणे पूर्वाधिकरणोक्तस्यात्मकर्तृत्वस्य स्वाभाविकत्वपूर्वपक्षे औपाधिकत्वस्य स्थापितत्वात् अतो न तदधिकरणविरोधः । यदपि बुद्धेः कर्तृत्वे करणत्वं कथमिति? तदप्ययुक्तम्; अन्यत्र कर्त्र्या एव बुद्धेरुपलब्धिं प्रति करणत्वोपपत्तेः । नच–कर्तृत्वाद्यनर्थरूपबन्धस्य बुद्धिगतत्वेन मोक्षस्यापि तदन्वयापत्तिः, अनर्थतन्निवृत्त्योरैकाधिकरण्यनियमादिति–वाच्यम्; कर्तृत्वादेश्चेतनगततयैवानर्थतया बुद्धेरनर्थानाश्रयत्वात् । नच–चैतन्यगतस्यानर्थत्वे चैतन्यस्याप्यनर्थकोटौ निवेशापत्तिः, आत्मसम्बन्धित्वेनैवानर्थस्य हेयत्वेनात्मनोऽपि हेयत्वं सर्वमतेऽपि स्यात् आरोपितत्वपुरस्कारेणानर्थत्वाभावात् नान्योन्याश्रयः । नच शुद्धात्मनः कदापि नानर्थाश्रयत्वेन प्रतीतिः; भ्रमकाले अहं भोक्ता प्रमाकाले बुद्धिर्भोक्त्रीति प्रतीतेरिति–वाच्यम्; शुद्धस्य भोक्तृत्वाद्यनर्थानाश्रयत्वेऽपि उपहितस्य शुद्धात् स्वाभाविकभेदाभावेन बन्धमोक्षसामानाधिकरण्योपपत्तेः ।

जैसे तक्षा उभयथा व्यवहृत होता है(वे०२।३।४०)इस उत्तराधिकरणमें पूर्वाधिकरणमें उक्त जो आत्माका कर्तृत्व उसके स्वाभाविकत्वका पूर्वपक्ष होनेपर औपाधिकत्वको स्थापितत्व होनेसे। अतः प्रथम उपन्यस्त अधिकरणके साथ विरोध नहीं। और जो कथन है कि बुद्धिको कर्तृत्व होनेपर करणत्व कैसे है वहभी अयुक्त है, क्यों? अन्यत्र कर्त्ता बुद्धिको प्रमाके प्रति करणत्वकी उपपत्ति होनेसे; कर्तृत्वाद्यनर्थरूप जो बन्ध है उस बन्धको बुद्धिगतत्व होनेपर मोक्षकेभी बुद्धिके साथ अन्वयकी आपत्ति है अनर्थ और अनर्थकी निवृत्ति इन दोनोंको ऐकाधिकरण्यका नियम होनेसे, इति नच वाच्यम् क्यों? कर्तृत्वादिको चेतनगतत्वेनही अनर्थता होनेसे बुद्धिको अनर्थका आश्रयत्व न होनेसे; चैतन्यगतका अनर्थत्व होनेपर चैतन्यकेभी अनर्थकोटीमें निवेशकी आपत्ति है, नच=ऐसी आपत्ति नहीं है क्योंकि ऐसा—होनेपर आत्मसम्बन्धित्वेनही अनर्थको हेयता होनेसे आत्माकाभी हेयत्व सर्वमतोंमें होगा। ननु—कर्तृत्वादिक रूप बन्ध आत्मामें आरोपित है यह कल्पना मिथ्यात्वसिद्धिके अधीन और मिथ्यात्वसिद्धि उक्त कल्पनाके अधीन है अतः अन्योन्याश्रय है तहां कहते हैं आरोपितेति। आरोपितत्वपुरस्कारसे अनर्थत्वका अभाव होनेसे अन्योन्याश्रय नहीं है। शुद्धात्माकी कभीभी अनर्थाश्रयत्वेन प्रतीति नहीं है भ्रमकालमें मैं भोक्ता हूँ और प्रमाकालमें बुद्धिभोक्त्री है ऐसी प्रतीति होनेसे इति नच—वाच्यम् क्यों? शुद्धको भोक्तृत्वादिरूप अनर्थका आश्रयत्व न होनेपरभी उपहितका शुद्धसे स्वाभाविक भेद न होनेसे बन्धमोक्षके सामानाधिकरण्यकी उपपत्ति होनेसे।

एतेन बुद्धिः श्रवणादिकर्त्रीति तस्या एव फलं मोक्षोऽपि स्यादिति—वाच्यम्; शास्त्रफलं प्रयोक्तरीति न्यायात् अन्यथा अतिप्रसङ्गादिति—निरस्तम्; जातेष्टिपितृयज्ञयोर्व्यभिचारात्। नच पूतपुत्रकत्वं स्वर्गभागिपितृकत्वं वा कर्तृगतमेवफलं तस्य फलत्वेनाश्रवणात्। नच तादृक्पुत्रकत्वं फलेन सम्बन्धः नतु फलमिति—वाच्यम् एवं हि संयुक्तसमवायादिना पित्रन्यस्यापि तत्फलं स्यात् अशास्त्रीयत्वाविशेषात्। न च पित्रर्थपुत्रगतं पूतत्वादिकं तदनुष्ठातुः पितुरेव फलम्, तेन तदुद्देशात्, नचेहात्मा अन्तःकरणार्थः येन आत्मगतो मोक्षः तस्योद्देश्यः स्यादिति—वाच्यम् आत्मा यद्यपि नान्तःकरणार्थः अहमर्थगततया तथापि फलस्योद्देश्यत्वानुभवात् अहमर्थस्य चात्मानात्मरूपत्वेनात्मन्यपि फले उद्देश्यगतत्वानपायात्। यद्वारोपितानारोपितसाधारणम्—कर्तृत्वमेव फलभाक्त्वे प्रयोजकम्, तच्चात्मन्यस्त्येव। नच—शरीरेऽप्यारोपितकर्तृत्वेन फलभाक्त्वापत्तिः, फलपर्यन्तमसत्त्वेन फलभाक्त्वासंभवात्। नहि कर्त्तुः फलभाक्त्वनियमं ब्रूमः किन्तु फलभाजः कर्तृत्वनियमम्, अजनितफलकर्मकर्तरि व्यभिचारात् अप्रयोजकत्वाच्च।

एतेन बुद्धि श्रवणादिकी कर्त्री है अतः मोक्षरूप फलभी उसको ही कहना चाहिए। शास्त्रप्रतिपाद्यफल प्रयोक्तामें होता है, (पूर्वमीमांसा) इस न्यायसे ऐसा न माननेमें अतिप्रसङ्ग होगा, यह कथन खण्डित हुआ, एतेन शब्दके अर्थको दिखलाते हैं, जातेष्टि और पितृयज्ञमें व्यभिचार होनेसे=जातेष्टि करनेवाला पिता है और फल पुत्रमें उत्पन्न होता है, और पितृयज्ञ करनेवाला

पुत्र है और फल पितामें उत्पन्न होता है. अतः कर्मसे कर्त्तामेंही फल होता है यह नियम नहीं। पूतपुत्रकत्व और स्वर्गभागिपितृकत्वरूप फल कर्तृगतही है नच=नहीं है क्यों ? उसका फलत्वेन श्रवण न होनेसे। तादृक्पुत्रकत्व=पूतपुत्रकत्व फलके साथ सम्बन्ध है यह फल नहीं है इति नच वाच्यम् क्योंकि ऐसा होनेपर तो संयुक्तसमवायादि सम्बन्धोंसे पितासे भिन्नकोभी वह फल प्राप्त होगा, अशास्त्रीयत्वको तुल्य होनेसे । पित्रर्थपुत्रगतं=पिताके लिए जो पुत्र उस पुत्रमें होनेवाला जो पूतत्वादिरूप फल वह फल तदनुष्ठातुः= पुत्रेष्ट्यादिका अनुष्ठानकरनेवाले पिताकोही है तेन=पितासे तदुद्देशात्=पुत्रगतत्वेन फलको काम्य होनेसे, परन्तु प्रकृतमें तो आत्मा अन्तःकरणके लिए नहीं है जिससेकि आत्मागत मोक्ष अतःकरणका उद्देश हो इति नच वाच्यम् क्यों ? आत्मा यद्यपि अन्तःकरणके लिए नहीं है तथापि अहमर्थ-गतत्वेन फलनिष्ठ उद्देश्यत्वके अनुभवसे और अहमर्थको आत्मानात्मएतदुभयरूप होनेसे आत्मामें फलके रहनेपरभी फलनिष्ठ उद्देश्यत्वके अनपायसे। अथवा आरोपित तथा अनारोपित एतदु-भयसाधारण जो कर्तृत्व है वही कर्तृत्व फलभागित्वमें प्रयोजक है और तादृश कर्तृत्व तो आत्मामें है ही। आरोपित कर्तृत्व होनेसे शरीरमेंभी फलभागित्वकी आपत्ति है नच=नहीं है, क्यों ? फलपर्यन्त शरीरके न रहनेसे फलभागित्वके असम्भवसे। कर्त्ताको फलभागित्व है ऐसा नियम हम नहीं कहते हैं किन्तु फलभाक्को कर्तृत्वका नियम है ऐसा हम कहते हैं, कर्मकर्ताको अवश्य फल होता है ऐसा नियम नहीं होसकता है, नहीं उत्पन्न किया है फल जिसने ऐसा जो कर्म तादृश कर्मके कर्त्तामें उक्तनियमका व्यभिचार होनेसे। और अप्रयो-जकत्वसेभी यह नियम नहीं बन सकता है।

ननु—मनसः कर्तृत्वं न घटते कृतिकर्मत्वस्य करणत्वस्य च तद्विरोधिनः श्रुत्या-दिसिद्धत्वात्, बुद्ध्यभावेऽपि कर्तृत्वस्य श्रूयमाणत्वाच्च तथाहि तन्मनोऽकुरुतेत्यादौ मनसः कृतिकर्मत्वम्, शृण्वन्तः श्रोत्रेण विद्वांसो मनसेत्यादिश्रुतौ शरीरवाङ्मनोभिर्यत् कर्म प्रारभतेनर इत्यादि स्मृतौ च करणत्वम्, मन उत्क्रामन्मीलित इवाश्नन् पिबन्नास्ते-वेत्यादिश्रुतौ मन उत्क्रमणेऽप्यात्मनः कर्तृत्वम्, तथा परं ज्योतिरुपसंपद्य स्वेन रूपेणा-भिनिष्पद्यते, स तत्र पर्येति जक्षन् क्रीडन् रममाण (छां० ८।१२।३) इत्यादौ स्वरूपा-विर्भावरूपपरममुक्तावपि कर्तृत्वं कर्त्ता विज्ञानात्मा, यो वेदेदं जिघ्राणीति स आत्मा, आनन्दभुक्तथा प्राज्ञ (गौ० १।३) इत्यादिश्रुतितश्च कर्तृत्वम्, तथाच बुद्धिर्न कर्त्रीति—चेन्न; विज्ञानं यज्ञं तनुते इत्यादिश्रुत्या मनसः कर्तृत्वेन स्वकृतिकर्मत्वविरोधेऽपि तत्रे-श्वरकृतिकर्मत्वस्य उपलब्धिप्रतिकरणत्वस्य चाविरोधात् ईश्वरे अविद्यावृत्तिरूपज्ञानेच्छा-वत् तद्रूपकृतिसम्भवात्।

शङ्कते नन्विति। मनको कर्तृत्व नहीं बन सकता है, क्यों ? तद्विरोधिनः=कर्तृत्व-विरोधि कृतिकर्मत्वको और करणत्वको श्रुत्यादितः सिद्ध होनेसे, और बुद्धिरूप मनका अभाव

होनेपरभी कर्तृत्वको श्रूयमाणत्व होनेसे। तथाहि=इसी अर्थको स्पष्ट कर दिखलाते हैं-तत्= उस ब्रह्मने मनको बनाया, (बृ०१।२।१) इत्यादिमें मनका कृतिकर्मत्वसिद्ध है, और श्रवण करते हुए विद्वान् श्रोत्रसे तथा मनसे सुनते हैं (बृ०६।१।८) इत्यादि श्रुतिमें और शरीरसे वाणिसे मनसे जिस कर्मका आरम्भ करता है मनुष्य (गी०१८।१५) इत्यादि स्मृतिओंमें मनका करणत्व सिद्ध है। वैसा 'मन उदक्रामत्' इत्यादि श्रुतिमें मनका उत्क्रमण होनेपरभी आत्माका कर्तृत्व बतलाया है, तैसे 'परंज्योतिरुपसम्पद्य' (छां०८।३।४) इत्यादि श्रुतिमें स्वरूपाविर्भावरूप जो परममुक्ति उस परममुक्तिमेंभी कर्तृत्व बतलाया है वैसे कर्त्ता विज्ञानात्मा, स आत्मा (छ०८।१२।४) इत्यादि श्रुतिओंसेभी आत्माको कर्तृत्वसिद्ध है, फलतः बुद्धि-कर्त्ता नहीं है, इति चेन्न; क्यों ? विज्ञानम्=बुद्धि यज्ञको करती है (तै०२।५।१) इत्यादि श्रुतिसे मनका कर्तृत्व होनेसे, स्वकृतिकर्मत्वविरोधेऽपि=मनोजन्य जो कृति] तादृशकृति-कर्मत्वका मनमें विरोध होनेपरभी तत्र=मनमें ईश्वरीयकृतिकर्मत्वका और उपलब्धिके प्रति करणत्वका अविरोध होनेसे; और ईश्वरमें जैसे अविद्याकी वृत्तिरूप ज्ञान तथा इच्छा है वैसे अविद्याकी वृत्तिरूप कृतिकाभी सम्भव है अतः कोई दोष नहीं।

नच—विज्ञानपदं ब्रह्मपरम्। विज्ञानं ब्रह्मचेद्वेद। तस्माच्चेन्न प्रमाद्यति शरीरे पाप्मनो हित्वा। सर्वान् कामान् समश्नुते, (तै० २।५।१) इत्यादि वाक्यशेषादिति—वाच्यम्; वाक्यशेषोक्तमुमुक्षुज्ञेयशुद्धब्रह्मणो यज्ञकर्तृत्वासम्भवेन कर्तृत्वेन प्रतिपाद्यमाने विज्ञाने ततोऽर्थान्तरत्वनिश्चयात्, अन्नं ब्रह्मेत्युपास्त (तै०२।२।८) इत्येतद्वाक्यसमानयो-गक्षेमत्वाच्च। तत्रैवं सति कर्त्तारमात्मानं केवलं तु यः। पश्यत्यकृतबुद्धित्वात् न स पश्यती-त्यादिस्मृतेः प्रकृते क्रियमाणानीत्यादिस्मृतेश्च। न चात्मनि स्वातन्त्र्येण कर्तृत्वनिषेध-बोधकत्वमनयोः सामान्यतो निषेधे बाधकाभावात् अतएव ध्यायतीव लेलायतीवेत्यादा-विवशब्दः। नचेवशब्दः परतन्त्रप्रभौ प्रभुरिवेतिवत् जीवकर्तृत्वे परतन्त्रतामात्रपरः, तद्व-दत्र बाधकाभावात्। नच बुद्ध्यभावेऽपि आत्मनः कर्तृत्वश्रवणात् बुद्धेः कर्तृत्वासम्भव इति—वाच्यम्, बुद्धेः कर्तृत्वे जनकत्वमात्रे वा सर्वथा तस्या जीवनिष्ठत्वेनाभिमतायां कृताव-पेक्षणीयत्वेन तदभावे कर्तृत्वबोधकस्य तवापि मते उपचरितार्थत्वात्, निर्धर्मकत्वनिर्वि-कारत्वनिष्क्रियत्वादिबोधकश्रुतिविरोधाच्च।

शङ्कते नचेति। विज्ञानपद ब्रह्मपर है विज्ञानं ब्रह्म चेद्वेद इत्यादि वाक्यशेषसे, इति नच वाच्यम्, क्यों ? वाक्यशेषोक्त जो मुमुक्षुओंसे ज्ञेय शुद्ध ब्रह्म है उस शुद्ध ब्रह्मको यज्ञकर्तृ-त्वका असम्भव होनेसे कर्तृत्वेन प्रतिपाद्यमान जो विज्ञान उस विज्ञानमें ततः=उक्त ब्रह्मसे भिन्नत्वका निश्चय होनेसे अन्नं ब्रह्म, इस वाक्यके समान योगक्षेमत्व होनेसेभी=अन्नं ब्रह्म यहाँपर जैसे अन्नपद ब्रह्मपरक नहीं है किन्तु तद्रूपसे ब्रह्मकी उपासना बतलाई है वैसेही 'विज्ञानं ब्रह्म' यहाँपर विज्ञानकी ब्रह्मरूपसे उपासना बतलानेके लिए तथाविध निर्देश है। तैसे तत्रैवं

सति कर्त्तारम् (गी०१८।१६) इत्यादि स्मृतिसे और प्रकृतेः क्रियमाणानि (गी०३।२७) इत्यादि स्मृतिसेभी आत्मामें कर्तृत्वका निषेध किया है । अनयोः=उक्त दोनों स्मृतिओंको आत्मामें स्वातन्त्र्यसे कर्तृत्वनिषेधबोधनपरत्व है=इन स्मृतिओंका यह अर्थ है कि आत्मा स्वतन्त्र–केवल आत्मा कर्त्ता नहीं है, किन्तु इतरोंके साथ मिलकर कर्त्ता है, नच=ऐसा अर्थ नहीं हो सकता है, क्यों ? आत्मामें सामान्यतः कर्तृत्व निषेधमें बाधकका अभाव होनेसे । अतएव=वस्तुतः कर्तृत्व न होनेसेही आत्माको उद्देश्यकर ध्यायतीव लेलायतीव, (वृ०४।३।७) इत्यादिमें इव शब्दका प्रयोग है । 'इव' शब्द यहाँपर परतन्त्रप्रभुमें जैसे 'प्रभुरिव' घटक इव शब्द परतन्त्रतामात्रपर होता है जैसे जीवके कर्तृत्वमें परतन्त्रतामात्रपर है, नच=परतन्त्रतामात्रपर नहीं है, क्यों ? तद्वदत्र=उक्त स्थलकी नाई यहाँ बाधकका अभाव होनेसे=(प्रभुरिव) यहाँ जैसा प्रकृतमें कोई बाधक नहीं है । बुद्धिका अभाव होनेपरभी कर्तृत्वका श्रवण होनेसे बुद्धेः=बुद्धिमें कर्तृत्वका असम्भव है, इति नच वाच्यम् क्यों ? बुद्धिको कर्तृत्व हो अथवा जनकत्वमात्रत्व हो सर्वथा जीवनिष्ठत्वेन अभिमत जो कृति उसकृतिमें अपेक्षणीयत्व होनेसे तदभावे=बुद्धिका अभाव होनेपर कर्तृत्वबोधकवाक्यको तुह्मारे मतमेंभी उपचरितार्थत्व होनेसे । और आत्मामें निर्धर्मकत्व निर्विकारत्व निष्क्रियत्वादिबोधक जो श्रुतियाँ उन श्रुतिओंके साथ विरोधसेभी आत्मामें कर्तृत्व नहीं बन सकता है ।

नच—निर्धर्मकत्वरूपधर्मभावाभावाभ्यां व्याघातात् ज्ञानत्वसाक्षित्वादिवत् सत्यस्यासत्यस्य वा ज्ञातृत्वादेरप्यात्मन्येव संभवाच्च निर्धर्मकत्वश्रुतिर्न श्रूयमाणार्थपरेति–वाच्यम्; निर्धर्मकत्वस्य धर्माभावरूपस्य ब्रह्मस्वरूपानतिरेकेण धर्मत्वाभावेन व्याहत्यभावात् । यच्चसत्यस्य सत्यस्य वा ज्ञातृत्वस्यात्मन्यपि संभव इत्युक्तम् । तदिष्टमेव, नह्यारोपितमपि कर्तृत्वमात्मनि प्रतिषेधामः । नच–निर्विकारत्वं द्रव्यान्तररूपतया परिणामाभावपरम्, नतु विशेषाकाराभावपरम्, तच्चात्मनः कर्तृत्वादिसत्त्वेऽप्यविरुद्धमिति–वाच्यम्, द्रव्यान्तररूपतया परिणामनिषेधकमपीदं वाक्यं निर्धर्मकश्रुत्यनुसारेण विशेषाकारमात्रस्यैव निषेधपरम् सामान्यनिषेधेनैव विशेषनिषेधप्राप्तेः ।

शङ्कते नचेति । निर्धर्मकत्वरूप जो धर्म है उसके भावसे तथा अभावसे व्याघात होनेसे=निर्धर्मकत्वरूप धर्म ब्रह्ममें यदि है तो निर्धर्मकत्वका बाध है यदि नहीं है तो भी निर्धर्मकत्वका बाध है फलतः उभयतः व्याघात होनेसे, ज्ञानत्व तथा साक्षित्वकी नाई सत्य या असत्य ज्ञातृत्वादिकाभी आत्मामें ही सम्भव होनेसेभी निर्धर्मकत्वश्रुति–श्रूयमाणार्थपरा नहीं है, इति नच वाच्यम् , क्यों ? धर्माभावरूप जो निर्धर्मकत्व है उस निर्धर्मकत्वका ब्रह्मस्वरूपसे अतिरेक न होनेसे धर्मत्वाभावसे व्याहतिका अभाव होनेसे । और जो कहा है कि सत्य या असत्य ज्ञातृत्वादिका आत्मामेंभी सम्भव है, सो तो इष्ट ही है क्योंकि आरोपित कर्तृत्वकाभी हम आत्मामें निषेध नहीं करते हैं । शङ्कते नचेति । निर्विकारत्व द्रव्यान्तररूपसे परिणामा-

भावपर है विशेषाकार जो अभाव तादृश अभावपर नहीं और वह तो आत्मामें कर्तृत्वादिका सत्त्व होनेपरभी अविरुद्ध है इति नच वाच्यम् क्योंकि द्रव्यान्तररूपसे परिणामका निषेधक जो वाक्य है वह वाक्यभी निर्धर्मक श्रुतिके अनुसार विशेषाकारमात्रके ही निषेधपर हैं सामान्यनिषेधसे ही विशेषनिषेधकी प्राप्तिसे।

नापि निष्क्रियत्वे क्रिया परिस्पन्दो वा धात्वर्थो वा आद्ये इष्टापत्तिः द्वितीये आत्मन्यपि अस्त्यादिधात्वर्थरूपसत्तादेः सत्त्वेनासिद्धिरिति–वाच्यम्; ब्रह्मण एव सद्रूपत्वेन तत्र सत्तादेरप्यभावात् क्रियापदस्य कृतिपरत्वाच्च। अतएव मनसोऽभावे सुषुप्तौ कर्तृत्वाद्यदर्शनम्। नच तदापि श्वासादिकर्तृत्वं दृश्यत एव सुषुप्तौ भूर्भूरित्येव प्रश्वसितीति श्रुतेरिति–वाच्यम्; नतु तद्द्वितीयमस्तीत्यादिश्रुत्या तं प्रति श्वासस्यैवाभावेन तत्कर्तृत्वस्य सुतरामसम्भवात्। यद्वा–क्रियाशक्तिप्राधान्येन प्राणात्मकस्यान्तःकरणस्य तदापि सत्त्वेन तदुपाधिककर्तृत्वस्य तदापि सत्त्वात्। तथाच श्रुतिरन्यपरा। दर्शनं च द्रष्टृविद्याकल्पितश्वासादिविषयम्। इदञ्च दृष्टिसृष्टिवाद एव समर्थितम् कामः संकल्पः इत्यारभ्य ह्रीर्धीर्भीरित्येतत्सर्वं मन एवेत्यन्ता श्रुतिरपि मनसः कर्तृत्वपरा नतु मनसो निमित्तत्वपरा। नच–मनसा वा अग्रे संकल्पयतीत्यादिश्रुत्या 'आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिण' इत्यादिश्रुत्या च मनसः करणत्वमिति–वाच्यम्; मनोव्यतिरिक्तस्य संकल्पानाश्रयत्वेन मनसा वा इति श्रुतेरुपचरितार्थत्वात्।

शङ्कते नापीति। आत्मामें निष्क्रियत्व माननेपर यह बताना चाहिएकि निष्क्रियत्वकी घटक क्रिया क्या पदार्थ है, क्या परिस्पन्दका नाम क्रिया है या धात्वर्थका। आदिम पक्ष हो तो हमको इष्टकी आपत्ति है क्योंकि विभुब्रह्मस्वरूप आत्मामें स्पन्दरूप क्रिया हमभी नहीं मानते हैं द्वितीयपक्ष हो तो आत्मामें भी अस्त्यादिधात्वर्थरूप जो सत्तादि तादृश सत्तादिका सत्त्व होनेसे असिद्धि है–निष्क्रियत्वकी असिद्धि है आत्मामें। इति नापि वाच्यम् ऐसाभी नहीं कहना, क्यों ? ब्रह्मको ही सद्रूपता होनेसे तत्र=ब्रह्ममें सत्तादिकेभी अभावसे, क्रियापदको कृतिपरत्व होनेपरभी यह दोष नहीं आ सकता है=क्रियापदसे कृतिका ग्रहण होनेपर कृतिशून्यत्व निष्क्रियत्वका अर्थ होगा तब अस्त्यादि धात्वर्थका समन्वय सुतरां हो सकेगा। अतएव आत्मामें कृति न होनेसे ही–सुषुप्तिमें मनका अभाव होनेपर कर्तृत्वादिका अदर्शन है। तदापि= सुषुप्तिमेंभी श्वासादिके प्रति कर्तृत्व देखा ही जाता है, सुषुप्तिको उद्देश्यकर भूर्भूरित्येव प्रश्वसिति इस श्रुतिके होनेसे इति नच वाच्यम् (नतु द्वितीयमस्ति) (बृ०४।३।२३) इत्यादि श्रुतिसे सुषुप्तिमें सोतेहुए पुरुषके प्रति श्वासके ही अभावसे श्वासकर्तृत्वके सुतराम् असम्भवसे=जबकि सुप्तकेप्रति श्वासही नहीं है तब श्वासकर्तृत्वका सुतराम् सुप्तमें असम्भव है। अथवा क्रियांशक्तिका प्राधान्य होनेसे प्राणात्मक अन्तःकरणका सुषुप्तिमेंभी सत्त्व होनेसे–उक्तविधान्तःकरणोपाधिक कर्तृत्वका तदापि=सुषुप्तिमेंभी सत्त्व होनेसे। फलतः श्रुति अन्यपरा है=देवाः परमात्मानं भूरिति उपा-

साध्वक्षुः तस्माद्धैवैतर्हि सुप्तपुरुषो भूर्भूरित्येव प्रश्वसिति इस श्रुतिमें उक्त जो उपासना तादृश उपासनारूप अन्यार्थ परा है। और दर्शन जो होता है वह तो द्रष्टाकी अविद्यासे कल्पित जो श्वासादि तादृश श्वासादिविषयक है। यह तो दृष्टिसृष्टिवादमें ही समर्थित हो चुका है। और कामः संकल्पः यहाँसे आरम्भकर ह्रीर्धीर्भीरित्येतत्सर्वं मन एव (बृ० १।५।३) यहाँ पर्यन्त जो श्रुति है वह श्रुतिभी मनको कर्तृत्व है एतदर्थपरा है, कर्तृत्वमें मन निमित्त है एतदर्थपरा नहीं=क्रियाके प्रति मनको निमित्ततामात्र है मुख्यकर्त्ता आत्मा है एतदर्थपरा नहीं है। मनसा वा अग्रे संकल्पयति (गर्भ० १) इत्यादि श्रुतिसे तथा आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः (कठ० ३।४) इत्यादि श्रुतिसे मनका करणत्व है नकि कर्तृत्व इति नच वाच्यम् क्यों ? मनसे व्यतिरिक्तको संकल्पका आश्रय न होनेसे मनसा वा इत्यादि श्रुतिको उपचरितार्थत्व होनेसे=मनपद यहाँपर मनोगत जो संकल्पादिकी सामग्री है तत्पर है, तथाच फलितार्थ यह हुआकि, मन मनोगत संकल्पादिकी सामग्रीसे संकल्पादिको उत्पन्न करता है अर्थात् मनमें संकल्पादिके प्रति कर्तृत्व है नकि करणत्व।

नापि—(१) आत्मा, मोक्षसाधनविषयकृतिमान्, तत्फलान्वयित्वात्, सम्मतवत्, (२) अज्ञानं, ज्ञानसमानाधिकरणम्, ज्ञाननिवर्त्यत्वात्, ज्ञानप्रागभाववत्, (३) दुःखादिभोगः मोक्षसमानाधिकरणः, बन्धत्वात् सम्मतवदित्याद्यनुमानैरात्मनः कर्तृत्वसिद्धिरिति–वाच्यम्, आद्यानुमाने आरोपितानारोपितसाधारणकृतिमत्त्वं वा साध्यं अनारोपितकृतिमत्त्वं वा। आद्ये इष्टापत्तिः द्वितीये जातेष्टिपितृयज्ञजन्यफलान्वयिनि व्यभिचारः। द्वितीयानुमानेऽपि आरोपितानारोपितसाधारणज्ञानाधिकरणवृत्तित्वं वा अनारोपितज्ञानाधिकरणवृत्तित्वं वा। अत्राप्याद्ये इष्टापत्तिः, द्वितीये अनादिभावभिन्नत्वस्योपाधित्वम्। तृतीयानुमाने आरोपितानारोपितसाधारणसम्बन्धेन मोक्षसामानाधिकरण्ये इष्टापत्तिः अनारोमितसम्बन्धेनसामानाधिकरण्ये साध्याप्रसिद्धिः। तस्मात्सिद्धं मनसः कर्तृत्वमात्मन्यारोप्यत इति॥

॥ इत्यद्वैतसिद्धौ कर्तृत्वाध्यासोपपत्तिः।

शङ्कते नापीति। आत्मा मोक्षके साधन जो श्रवणादि तादृश श्रवणादिविषयक जो कृति तादृश कृतिमान् है, साधनजन्यफलान्वयी होनेसे जो साधनजन्यफलान्वयी होता है वह फलजनकसाधनविषयक कृतिमान् होता है, सम्मतवत्=साधारणार्थवाले कर्ताकी तरह। अज्ञान, ज्ञानाधिकरणनिरूपितवृत्तित्वविशिष्ट है, ज्ञानसे निवर्त्य होनेसे ज्ञानप्रागभाववत्। दुःखादिका भोग, मोक्षके समानाधिकरण है–जहाँ मोक्ष रहता है तहाँ रहनेवाला है, बन्ध होनेसे जो जो बन्ध होता है वह वह मोक्षके सामानाधिकरण होता है सम्मतवत्=जैसे छः वर्षके लिए जेलमें ठेल दिया गया कोई स्वदेशाभिमानी भारतीय। इत्यादि अनुमानोंसे आत्मामें कर्तृत्वकी सिद्धि है, इत्यपि न वाच्यम्; क्योंकि आद्यानुमानमें आरोपितानारोपित-

साधारणकृतिमत्त्व साध्य है वा अनारोपित कृतिमत्त्व। आद्यपक्षमें इष्टापत्ति है—उक्तविधकर्तृत्व आत्मामें हम मान चुके हैं अतः इष्टापत्ति है। द्वितीयमें जातेष्टिजन्य जो फल तादृश फलान्वयीमें और पितृयज्ञजन्य जो फल तादृश फलान्वयीमें व्यभिचार है=जहाँपर फलान्वयित्व है, वहाँपर साधनविषयककृतिमत्त्वरूपसाध्य नहीं है अतः व्यभिचार है। द्वितीयानुमानमेंभी आरोपितानारोपितसाधारणज्ञानाधिकरणवृत्तित्व साध्य है या अनारोपितज्ञानाधिकरणवृत्तित्व। यहाँभी आदिममें इष्टापत्ति है, और द्वितीयमें अनादिभावभिन्नत्वको उपाधित्व है=ज्ञानप्रागभावमें ज्ञानसामानाधिकरणत्व है और वहाँपर अनादिभावभिन्नत्वभी है अतः उपाधिमें निश्चितसाध्यव्यापकत्व है और ज्ञाननिवर्त्यत्वरूप साधन अज्ञानमें है परन्तु अनादिभावभिन्नत्व अज्ञानमें नहीं है, अतः उपाधिमें साधनाव्यापकत्व है। तृतीयानुमानमें आरोपितानारोपित साधारण सम्बन्धसे मोक्षसामानाधिकरण्य होनेपर इष्टापत्ति है, और अनारोपित सम्बन्धसे सामानाधिकरण्य होनेपर साध्यकी अप्रसिद्धि है। ततः यह सिद्ध हुआ कि मनका धर्म कर्तृत्व आत्मामें आरोपित किया जाता है।

इति सरलायां कर्तृत्वाध्यासोपपत्तिः।

अथ देहात्मैक्याध्यासोपपत्तिः।

ननु—अहमर्थस्यानात्मत्वे ब्राह्मणोऽहं काण इत्यादि प्रत्यक्षं देहेन्द्रियादौ आत्मैक्याध्यासे प्रमाणं न स्यात्। ऐक्यबुद्धावात्मनोऽविषयत्वादिति—चेन्न; अहमित्यस्य द्व्यंशत्वेन चिदंशे कर्तृत्वादिविशिष्टान्तःकरणैक्याध्यासवत् ब्राह्मणत्वकाणत्वादिविशिष्टदेहेन्द्रियाद्यैक्याध्यासेनात्मैक्यविषयत्वसम्भवात्। तथा चात्मनि देहेन्द्रियाद्यैक्याध्यासो युज्यत एव, नचैवं देहात्म्यैक्यस्य प्रत्यक्षत्वे तद्विरोध्यनुमानागमयोरप्रामाण्यप्रसङ्गः वह्निशैत्यानुमानवत्, श्रूयमाणार्थे यजमानः प्रस्तरः इत्यागमवच्च। तथाच न देहात्मनोर्भेदसिद्धिः स्यादिति=वाच्यम् चन्द्रपरिमाणप्रत्यक्षविरोध्यनुमानागमादिदृष्टान्तेन प्रत्यक्षविरोधिनः परीक्षितागमानुमानादेः प्रामाण्यस्य व्यवस्थापितत्वेन तथापि तयोर्भेदसिद्धिसंभवात्।

अथ सरलायां देहात्मैक्याध्यासोपपत्तिः।

शङ्कते नन्विति। अहमर्थका अनात्मत्व होनेपर मैं ब्राह्मण हूँ मैं काणा हूँ इत्यादि प्रत्यक्ष देहेन्द्रियादिमें जो ऐक्याध्यास उस ऐक्याध्यासमें प्रमाण न होगा, क्यों? ऐक्यबुद्धिमें आत्माको विषयत्व न होनेसे, इति चेन्न, क्यों? (अहम्) इसको द्व्यंशत्व होनेसे चिदंश=अज्ञानोपहित चित्में जैसे कर्तृत्वादिविशिष्ट अन्तःकरणका ऐक्याध्यास होता है तैसे ब्राह्मणत्वकाणत्वादिविशिष्ट जो देहेन्द्रियादि उनके ऐक्याध्याससे आत्मैक्यविषयत्वका सम्भव होनेसे=ब्राह्मणत्वकाणत्वादिविशिष्ट जो देहेन्द्रियादि उन देहेन्द्रियादिका आत्माके साथ ऐक्याध्यास है, उस अध्याससे उक्त प्रत्यक्षको आत्मैक्यमें प्रमाणता बन सकती है।

फलतः देहेन्द्रियादिका ऐक्याध्यास युक्त ही है। एवम् देहात्मैक्यका प्रत्यक्षत्व होनेपर तद्विरोधि=देहात्म्यैक्यावगाहिप्रत्यक्षविरोधि जो अनुमानागम हैं, उन दोनोंके अप्रामाण्यका प्रसङ्ग होगा, जैसे वन्हिशैत्यानुमानका प्रत्यक्षसे बाध होता है, और श्रूयमाणार्थमें जैसे (यजमानः प्रस्तरः) । इस आगमका प्रत्यक्षसे बाध होता है, तथा च देह और आत्माके भेदकी सिद्धि न होगी इति न च वाच्यम्, क्यों ? चन्द्रपरिमाणका जो प्रत्यक्ष इस प्रत्यक्षसे विरोधि जो अनुमान तथा आगम उन अनुमानागमादिके दृष्टान्तसे प्रत्यक्षसे विरोधि जो अनुमान तथा आगमादि उन अनुमानागमादिके प्रामाण्यको व्यवस्थापितत्व होनेसे ऐक्याध्यास होनेपरभी उन दोनोंके भेदसिद्धिका सम्भव होनेसे ।

नच—परस्परभिन्नत्वेन निश्चितानां देहेन्द्रियादीनां युगपदैक्याध्यासायोगः। नहि भिन्नत्वेन निश्चितयो रजतरङ्गयोरेकदैकशुक्तिकायामैक्याध्यास इति—वाच्यम्—देहादिन्द्रियमन्यत्, इन्द्रियाद्देहोऽन्य इति भेदबुद्ध्या देहोऽहमिन्द्रियमित्यैक्याध्यासासंभवेऽपि ब्राह्मणादन्यः काणः काणादन्यः ब्राह्मणः इति भेदबुद्ध्यभावेन ब्राह्मणोऽहं काण इत्येकदा ऐक्याध्याससंभवात् समानप्रकारकभेदधिय एव विरोधित्वात्।

शङ्कते नचेति। परस्पर भिन्नत्वेन निश्चित जो देहेन्द्रियादिक हैं उन देहेन्द्रियादिकोंका एककालावच्छेदेन आत्मामें ऐक्याध्यासका अयोग है, क्योंकि भिन्नत्वेन निश्चित जो रजत तथा रङ्ग है उन दोनोंका एककालावच्छेदेन एक शुक्तिकामें ऐक्याध्यास नहीं होता है इति नच वाच्यम्, क्योंकि देहसे इन्द्रिय भिन्न है और इन्द्रियसे देह भिन्न है इत्याकारक भेदबुद्धिसे (देहोऽहमिन्द्रियम्) इत्याकारक बुद्धिके असम्भव होनेपरभी ब्राह्मणसे भिन्न काणा है काणेसे भिन्न ब्राह्मण है इत्याकारक भेदबुद्धिके न होनेसे (ब्राह्मणोऽहं काणः) इस रीतिसे एककालमें ऐक्याध्यासका सम्भव होनेसे समानप्रकारक धीकोही अध्यासविरोधित्वहोनेसे ।

ननु—भेदमात्रस्याप्यध्यस्तत्ववादिनस्तव देहात्मनोर्भेदस्याप्यध्यस्तत्वेन जीवब्रह्मणोरिव तदभेदस्तात्त्विकः स्यात् मिथ्यात्वं हि अधिष्ठानज्ञानाबाध्यात्यन्ताभावप्रतियोगित्वम्। तद्बाध्यात्यन्ताभावप्रतियोगित्वस्य सत्त्वेऽपि असम्भवात्। अभेदश्च भेदात्यन्ताभाव इति कथं भेदमिथ्यात्वे अभेदः सत्यो न स्यात्? नच—देहस्याप्यध्यस्तत्वेन तेन सहात्मनो न भेदो नाप्यभेद इति—वाच्यम्; अध्यस्तादपि रूप्याच्छुक्तेः स्वज्ञानाबाध्यभेददर्शनादिति—चेन्न; भेदस्य मिथ्यात्वेऽपि अभेदो न तात्त्विकः, भावाभावयोरुभयोरपि मिथ्यात्वस्य प्रागेवोपपादितत्वात्।

शङ्कते नन्विति। भेदमात्रकोभी अध्यस्तत्व बतलानेवाले तुम्हारे मतमें देह और आत्माके भेदकोभी अध्यस्तत्व होनेसे जीवब्रह्मका अभेद जैसे तात्त्विक है तैसे देह और आत्माकाभी अभेद तात्विक होगा, क्योंकि भेदका अध्यस्तत्व उभयत्र तुल्य है । और अधिष्ठानज्ञानसे अबाध्य जो अत्यन्ताभाव तादृश अत्यन्ताभावप्रतियोगित्वका नाम है मिथ्यात्व=शुक्तिरूप

अधिष्ठानके ज्ञानसे रजतका बाध होता है रजतके अत्यन्ताभावका नहीं तथाच–अधिष्ठान-ज्ञानाबाध्यात्यन्ताभावप्रतियोगित्व रजतमें है। मिथ्यात्वलक्षणघटक अत्यन्ताभावमें अधिष्ठान-ज्ञानाबाध्यत्वरूप विशेषण आवश्यक है यह बतलाते हैं तदिति। तद्बाध्य=अधिष्ठानज्ञानसे बाध्य अत्यन्ताभावनिरूपित प्रतियोगित्वका अत्यन्ताभावप्रतियोगीमें सत्त्व होनेपरभी मिथ्यात्वके असम्भवसे=रूपवत् घटमें अधिष्ठानज्ञानसे बाध्य रूपात्यन्ताभावके होनेपरभी तत्प्रतियोगिरूपका सत्यत्व देखनेसे प्रपञ्चमें अधिष्ठानज्ञानसे अबाध्य जो अत्यन्ताभाव तादृश अत्यन्ताभावप्रतियोगित्वरूपही मिथ्यात्व कहना चाहिए। और अभेद तो भेदके अत्यन्ता-भावका नाम है अतः भेदके मिथ्या होनेपर अभेद सत्य क्यों न होगा यदि यों कहोकि देहकोभी अध्यस्तत्व होनेसे देहके साथ आत्माका न भेद है और न अभेद है तो ऐसा नहीं कहना, क्यों? अध्यस्त जो शुक्तिरूप्य उस शुक्तिरूप्यसेभी शुक्तिनिष्ठ स्वज्ञानाबाध्यभेदके देखनेसे–स्वशब्दसे रूप्यका ग्रहण है, इति चेन्न, क्यों? भेदको मिथ्यात्व होनेपरभी अभेद तात्त्विक नहीं है भाव तथा अभाव इन दोनोंकेभी मिथ्यात्वको प्रथम ही उपपादित हो चुकनेसे।

इयांस्तु विशेषः—यदत्राभेदो व्यवहारकालीनेन परीक्षितप्रमाणभावेनानुमाना-दिना बाध्यते, भेदस्तु देहात्मनोर्न तेन, किन्तु चरमवृत्त्येति। नचैवं गेहीतिवत् देहीति-प्रतीतिर्न स्यात् किन्तु देहोऽहमिति–वाच्यम्, देहत्वेन भेदग्रहात्, ब्राह्मणत्वादिना भेदा-ग्रहाच्च ब्राह्मणोऽहं देह्यहमित्युभयथा प्रतीत्युपपत्तेः। देवदत्ताद्यज्ञदत्तोऽन्य इति भेदबुद्धावपि तत्त्वेनोपस्थिताद्देवदत्ताद्यज्ञदत्ते सोयमित्यभेदभ्रमदर्शनात्। ननु–ब्राह्मणोऽहं मनुष्योऽह-मिति कथमध्यासरूपम्? मनुष्यत्वब्राह्मणत्वादेः शरीरविशिष्टात्मवृत्तित्वेन प्रमात्वस्यैव सम्भवात् तदुक्तम्–ब्राह्मणोऽहं मनुष्योऽहमित्यादिस्तु प्रमैव नः। देहभेदयुतो यस्मात् ब्राह्मणादिपदोदितः॥ इति–चेन्न; मनुष्यत्वादेर्देहविशिष्टात्मवृत्तित्वे चक्षुरादिगम्यत्वं न स्यात्, देहविशिष्टात्मनश्चक्षुरगम्यत्वात्। न चैकदेशस्य चक्षुर्गम्यत्वात् विशिष्टगत-जातिः चक्षुपा गृह्यत इति–वाच्यम्; व्यासज्यवृत्तेरुभययोग्यतायामेव योग्यत्वनियमात्।

इतना विशेष है कि प्रकृत स्थलमें अभेद, परीक्षित है प्रमाणभाव=प्रमाणत्व जिसका एवम्भूत जो व्यवहारकालीन अनुमानादि उस अनुमानादिसे बाधित होता है=आत्मदेहादिका परस्पर अभेद उक्तविध प्रमाणसे बाधित होता है। और देह तथा आत्माका जो परस्पर भेद है वह तो उक्तविध–व्यावहारिक प्रमाणसे बाधित नहीं होता है, किन्तु वेदान्तविचारजन्य चरमवृत्तिसे बाधित होता है। एवम्=यदि देहादिके साथ आत्माका ऐक्याध्यास हो तो 'गेही' यह प्रतीति जैसे भेदघटित होती है तैसे 'देही' इत्याकारक भेदघटित प्रतीति न होगी किन्तु 'देहोऽहम्' ऐसी प्रतीति होगी, इति नच वाच्यम क्यों? देहत्वेन देहके साथ आत्माका भेदग्रह होनेसे और ब्राह्मणत्वादिसे भेदका ग्रह न होनेसे मैं ब्राह्मण हूँ मैं देही हूँ इस रीतिसे उभयविध प्रतीतिकी उपपत्तिसे। देवदत्तसे यज्ञदत्त अन्य है इत्याकारक भेदबुद्धिके

होनेपरभी तत्वेनोपस्थितात्=यज्ञदत्तत्वेन उपस्थित देवदत्तसे यज्ञदत्तमें 'सोऽयम्' इत्याकारक भेदभ्रमके देखनेसे। शङ्कते नन्विति। मैं ब्राह्मण हूँ मैं मनुष्य हूँ ये ज्ञान कैसे अध्यासरूप हैं? मनुष्यत्व ब्राह्मणत्वादिको शरीरविशिष्टआत्मवृत्तित्व होनेसे उक्तज्ञानोंमें प्रमात्वकाही सम्भव होनेसे सो कहा है-मैं ब्राह्मण हूँ मैं मनुष्य हूँ इत्यादि प्रतीतियां तो हमारे मतमें प्रमाही हैं यतः देहभेद=देहविशेषविशिष्टात्मा ब्राह्मणादिपदोंसे कथित है, इति चेन्न; क्यों? मनुष्यत्वादिको देहविशिष्टात्मवृत्तित्व होनेपर चक्षुरादिगम्यत्व न होगा, देहविशिष्ट आत्माको चक्षुसे अगम्यत्व होनेसे। एकदेशको चक्षुसे गम्यत्व होनेसे विशिष्टगत=शरीरविशिष्टात्मगत जाति चक्षुसे गृहीत होती है इति नच वाच्यम् क्यों? उभयमें योग्यता होनेपर ही व्यासज्यनिष्ठ योग्यत्वके नियमसे व्यासज्यवृत्तियावदाश्रयोंमें योग्यता होनेपर ही व्यासज्यवृत्तिमें योग्यता होती है।

अन्यथा ऐन्द्रियकानैन्द्रियकवृत्तिसंयोगद्वित्वादेः प्रत्यक्षता स्यात्। व्यासज्यवृत्तित्वस्य जातावदृष्टचरत्वात् पृथिवीत्वादिना संकरापत्तेः, तव मते आत्मनोऽणुत्वेन तद्वृत्तित्वेऽतीन्द्रियत्वप्रसङ्गात्। नचैवं देहो ब्राह्मणो मनुष्य इत्यादि प्रतीत्यापत्तिः, अहन्त्वसामानाधिकरण्यभ्रमजनकदोषस्यैव तादृक्प्रतीतिप्रतिबन्धकत्वात् उक्तबाधकैर्देहवृत्तित्वे अनन्यगतिकत्वेन तथा कल्पनात्, कृशोऽहं स्थूलोऽहमित्यादौ कार्श्यादिविशिष्टैक्याध्यासस्यावश्यकत्वाच्च। नच—अयमौपचारिकप्रयोगः पुत्रे कृशे अहंकृश इतिवत् तदुक्तम्—कृशोऽहं कृष्ण इत्यादौ कार्श्यादिदेहसंस्थितः। पुत्रादिस्थितकार्श्यादिवदात्मन्युपचर्य्यते इति वाच्यम्, एवं सति देहादिभिन्नात्मास्तित्वप्रतिपादिकाया अस्तीत्येवोपलब्धव्य इति श्रुतेरनुवादकतापत्तेः मम देह इत्यनौपचारिकः अहं गौर इत्याद्यौपचारिक इत्यत्र विनिगमकाभावाच्च।

अन्यथा ऐन्द्रियक=इन्द्रियजन्यज्ञानविषय और इन्द्रियजन्यज्ञानाविषय, एवम्भूतपदार्थवृत्ति संयोगकी तथा द्वित्वादि संख्याकी प्रत्यक्षता हो जायगी। और व्यासज्यवृत्तित्व जातिमें अनुभूत न होनेसे पृथिवीत्वादिको लेकर संकरकी आपत्ति है=मनुष्यत्वको छोडकर पृथिवीत्व घटमें है और पृथिवीत्वको छोडकर मनुष्यत्व आत्मामें है दोनोंका समावेश मनुष्यशरीरमें है अतः सङ्कर है इसरीतिसे ब्राह्मणत्वादिको लेकेभी समझना चाहिए। और तुम्हारे मतमें आत्माका अणुत्व होनेसे अणुभूत आत्मामें मनुष्यत्वादिकी वृत्तिता होनेपर मनुष्यत्वादिके अतीन्द्रियत्वका प्रसङ्ग है तथाच मनुष्यत्वादिको उभयवृत्ति नहीं माना जा सकता है। एवम्=यदि देहमात्रमेंही ब्राह्मणत्व मनुष्यत्वादि धर्म रहते हैं तो देह ब्राह्मण है देह मनुष्य है इत्याकारिका प्रतीतिकी आपत्ति है नच=इत्याकारिका प्रतीतिकी आपत्ति नहीं है क्यों? ब्राह्मणत्वादिका अहन्त्वसमानाधिकरण जो भ्रम तादृशभ्रमजनक जो दोष उस दोषकोही उक्तविध प्रतीतिमें प्रतिबन्धकत्व होनेसे उक्त बाधकोंसे ब्राह्मणत्वादिके देहमात्रवृत्तित्वका निश्चय होनेपर

गत्यन्तरके अभावसे तथाविध दोषकी कल्पना की जाती है। कृशोऽहम् 'स्थूलोऽहम्' इत्यादि प्रतीतिस्थलमें कृशतादिविशिष्टके साथमें आत्माके ऐक्याध्यासको आवश्यक होनेसेभी। 'अहं कृशः' इत्यादिक औपचारिक प्रयोग हैं, पुत्रके कृश होनेपर 'मैं कृश हूँ' इस प्रयोगकी तरह, तदुक्तम्=सो कहा है-मैं कृश हूँ मैं कृष्ण हूँ इत्यादि स्थलोंमें देहमें स्थित कार्श्यादि गौणतया आत्मामें व्यवहृत होते हैं, इति नच वाच्यम् क्यों? ऐसा होनेपर देहादिसे भिन्न आत्माके अस्तित्वको प्रतिपादन करनेवाली जो अस्तीत्येवोपलब्धव्यः (कठ० ६।१३) इत्याकारिका श्रुति है उसको अनुवादकत्वकी आपत्तिसे क्योंकि आपकी रीतिसे उक्तविध आत्मा प्रत्यक्षसेही सिद्ध है=प्रत्यक्षसिद्धअर्थबोधकत्वेन उक्त श्रुतिको अनुवादकत्वकी आपत्ति है 'मम देहः' इत्यादि अनौपचारिक है और 'अहं गौरः' यह औपचारिक=आत्मामें गौरादिदेहस्वामित्वविषयक है इस अर्थमें विनिगमकके अभावसेभी 'अहं कृशः' इत्यादिमें औपचारिकत्व नहीं है किन्तु ये प्रतीतियाँ आध्यासिक हैं।

ननु—इदं विनिगमकम्, जातमात्रस्य पश्वादेः प्रवृत्त्यादिहेतोरिष्टसाधनताद्यनुमितेर्हेतुर्यत्स्तन्यपानं, तदिष्टसाधनम्, यथा पूर्वदेहीयं स्तन्यपानमित्यादिव्याप्तिस्मृतिस्तावन्न देहान्तरस्मृतौ युक्ता नच मम प्राक् देहान्तरमभूदिति स्मरतस्तस्यैक्यधीः सम्भवति किन्त्वनेकमण्यनुस्यूतसूत्रमिवानेकदेहेष्वनुस्यूतमात्मानं पश्यतः स्वतो भेदधीरत्रेति—चेन्न; पूर्वदेहस्मृतिं विनापि अनुमितिहेतुव्याप्तिस्मृतेः संभवात्। नहि व्याप्त्यनुभव इव व्याप्तिस्मरणसमयेऽपि दृष्टान्तज्ञानापेक्षा। येन तदर्थं तद्देहस्मृतिरपेक्ष्येत। नच—तथापि 'योऽहं बाल्ये' पितरावन्वभूवं सोऽयं स्थाविरे प्रणप्तॄननुभवामि योऽहं स्वप्ने व्याघ्रदेहः सोहमिदानीं मनुष्यदेह इति देहभेदधीपूर्वकं स्वस्यैक्यमनुसन्दधानः कथं ततो भेदं न जानीयादिति—वाच्यम्; विरुद्धधर्मरूपलिङ्गधीजन्यभेदधीसंभवेऽपि अपरोक्षाभेदभ्रमे अविरोधात्।

शङ्कते नन्विति। यह विनिगमक है-सद्योजात पश्वादिकी प्रवृत्त्यादिकी हेतुभूत जो इष्टसाधनतादिकी अनुमिति है उस अनुमितिका हेतुभूत जो स्तन्यपान है वह इष्टका साधन है। जैसे पूर्वदेहमें होनेवाला स्तन्यपान-इत्यादि रूप व्याप्तिस्मृति है, वह व्याप्तिस्मृति देहान्तरकी स्मृति न होनेपर तो युक्त नहीं है, इसविषयका हिन्दी-भाषामें स्पष्टीकरण 'आत्मनिरूपण' नामक ग्रन्थमें कर चुके हैं उसे वहीं देखना चाहिए। मेरा प्रथम देहान्तरथा इस रीतिसे स्मरण करनेवाले पश्वादिकको स्वकीय देहादिकके साथ ऐक्यधी नहीं हो सकती है, किन्तु अनेक मणिओंमें अनुस्यूत सूत्रकी नाई अनुस्यूत आत्माको देखनेवालेको ततः=देहसे भेदधी यहाँपर है इति चेन्न; क्यों? पूर्वदेहकी स्मृतिके विनाभी अनुमितिहेतुभूत व्याप्तिकी स्मृतिके सम्भवसे। क्योंकि व्याप्तिके अनुभव कालमें जैसे दृष्टान्तके ज्ञानकी अपेक्षा है वैसे व्याप्तिके स्मरण कालमें नहीं जिससे कि तदर्थम्=व्याप्तिस्मरणके लिए पूर्वदेहकी स्मृति अपेक्षित हो। शङ्कते नचेति। तथापि जिस मैंने बाल्यकालमें मातापिताका अनुभव किया है वह मैं वार्धक्यकालमें प्रणप्तृओंका अनुभव करता हूँ, जो मैं स्वप्नमें व्याघ्रदेहवालाथा वह

मैं इस कालमें मनुष्य देहवाला हूँ इस रीतिसे देहभेदज्ञानपूर्वक स्वके ऐक्यका अनुसन्धान करता हुआ पुरुष कैसे ततः=देहसे भेदको न जानेगा इति नच—वाच्यम्; क्यों ? विरुद्धधर्म रूप जो लिङ्ग उस लिङ्गका जो ज्ञान उस ज्ञानसे जन्य भेदज्ञानका सम्भव होनेपरभी अपरोक्षभेदभ्रममें विरोध होनेसे=लिङ्गजन्य परोक्षभेदज्ञानका सम्भव होनेपरभी अपरोक्षा-भेदभ्रम बन सकता है।

नच—प्रत्यक्षे धर्मिणि भेदकसाक्षात्कारो भेदसाक्षात्कारव्याप्तः इह च व्यावृत्त-त्वेन बुद्धिस्थदेहादितो भेदकस्यानुवृत्तत्वस्यात्मनि प्रत्यभिज्ञाप्रत्यक्षसिद्धत्वात्, व्यावर्त्त-कसाक्षात्कारस्यैवैक्यापरोक्षभ्रमविरोधित्वात्, निरूपाधिकत्वेन विशेषदर्शनाप्रतिवध्यत्वस्य वक्तुमशक्यत्वात् कथमैक्यभ्रम इति—वाच्यम् भेदकसाक्षात्कारस्य भेदसाक्षात्कारेण व्याप्तेरैक्यारोपेण सह विरोधस्य चासिद्धेः। नीला बलाकेत्यत्र नीलाद् भेदकस्य-बलाकात्वस्य ग्रहेऽपि नीलभेदसाक्षात्काराभावस्य तदभेदसाक्षात्कारस्य च दर्शनात्। नच तत्र दोषप्राबल्यात् तथा; प्रकृतेऽपि दोषप्राबल्यान्नेति केन तुभ्यमभिधायि ? एवं ब्राह्मणो यजेतेत्यादिश्रुतिरपि ब्राह्मणत्वाश्रयशरीरस्य जडत्वेनानियोज्यतया तदैक्या-ध्यासापन्नमात्मानं नियुञ्जाना तत्र प्रमाणम्।

प्रत्यक्ष धर्मीमें व्यावर्त्तकका साक्षात्कार भेदसाक्षात्कारसे व्याप्त है, और प्रकृतमें व्यावृ-त्तत्वेन बुद्धिमें स्थित जो देहादि उन देहादिसे आत्माका भेदक जो अनुवृत्तत्व उस अनुवृत्त-त्वको आत्मामें प्रत्यभिज्ञाप्रत्यक्षसिद्ध होनेसे व्यावर्त्तकसाक्षात्कारको ही ऐक्यअपरोक्षभ्रमका विरोधित्व होनेसे, और इस भ्रमको निरूपाधिक होनेसे इसमें विशेषदर्शनसे अप्रतिबध्यत्वको कहनेके लिए अशक्यत्व होनेसे=सोपाधिक भ्रम विशेषज्ञानसे अप्रतिबध्य होता है जैसे 'लोहितः स्फटिकः' इत्यादि निरुपाधिक नहीं ऐक्यभ्रम कैसे होगा ?, इति नच—वाच्यम्, क्यों ? भेदकसाक्षात्कारनिष्ठ भेदसाक्षात्कारनिरूपित व्याप्तिकी और ऐक्यारोपके साथ विरो-धकी असिद्धिसे। इसी अर्थको स्पष्ट करते हैं—'नीला बलाका' यहाँपर नीलसे भेदक जो बलाकात्व उसका ग्रह होनेपरभी नीलभेदसाक्षात्काराभावको और नील—अभेदसाक्षात्कारको देखनेसे। यदि यों कहोकि, नीलाबलाकास्थलपरतो दोषके प्राबल्यसे तथाभूत प्रतीति नहीं होती है तो प्रकृतमेंभी दोषके प्राबल्यसे तथाभूत प्रतीति नहीं होती है ऐसा किसने तुमको कहा है ?। इसी रीतिसे ब्राह्मणो यजेत यह श्रुतिभी ब्राह्मणत्वाश्रयशरीरको जडत्वप्रयुक्त अनियो-ज्यत्व होनेसे तदैक्याध्यासापन्न=ब्राह्मणत्वाश्रयशरीरके साथ अभेदाध्यासापन्न आत्माको नियुक्त करती हुइ तत्र=उक्त ऐक्याध्यासमें प्रमाण है।

नच ब्राह्मणत्वाश्रयदेहेन सम्बन्धान्तरमादायैव नियोज्यत्वोपपत्तिः। तस्यानति-प्रसक्तस्य वक्तुमशक्यत्वात्। तथाहि—न तावत् संयोगः, आत्मनो विभुत्वेन सर्वदेह-साधारण्यात्। नापि स्वस्वामिभावः सम्बन्धः, पश्वादिसाधारणत्वात्। नापि साक्षाद्

स्वस्वामिभावसम्बन्धः; पश्वादिव्यावृत्तस्य देहादिगतस्वस्वामिभावे साक्षात्त्वस्य वक्तुमशक्यत्वात् । नापीच्छानुविधायित्वम्, आमवातजडीकृते तदभावात् । नापि तदिन्द्रियाश्रयत्वम् । तद्धि तत्सम्बद्धेन्द्रियाश्रयत्वं वा तज्ज्ञानजनकेन्द्रियाश्रयत्वं वा । नाद्यः अतिप्रसङ्गात् । न द्वितीयः ज्ञानपदेन स्वरूपचैतन्योक्तावसंभवः, अन्तःकरणवृत्त्युक्तौ तेनापि सम्बन्धार्थमध्यासस्यावश्यकत्वात् । तद्वरं देहस्यैवाध्यासिकः सम्बन्धः इत्युच्यताम् । अतएव साक्षात् प्रयत्नजन्यक्रियाश्रयत्वं वा तद्भोगायतनत्वं वा तत्कर्मार्जितत्वं वा सम्बन्ध इति—निरस्तम्, तत्कर्मार्जितत्वस्य पुत्रादिसाधारणत्वाच्च ।

ब्राह्मणत्वका आश्रय जो शरीर उसके साथ आध्यासिक सम्बन्धसे अतिरिक्त सम्बन्धको लेकेही नियोज्यत्वकी उपपत्ति है नच=उपपत्ति नहीं है, क्यों ? अनतिप्रसक्त तादृश सम्बन्धको कहनेके लिए अशक्यत्व होनेसे । तथाहि—नियोज्यत्वका नियामक संयोग सम्बन्ध तो नहीं बन सकता है, क्यों ? आत्माको विभु होनेसे सर्व देहोंके साथ साधारण्यसे । स्वस्वामिभाव सम्बन्धभी तादृश नहीं हो सकता है, क्यों ? पश्वादिसाधारण्य होनेसे । साक्षात् स्वस्वामिभाव सम्बन्धभी उक्तविध नहीं हो सकता है, क्यों ? पश्वादिसे व्यावृत्त देहादिगत स्वस्वामिभावमें साक्षात्त्वको कहनेके लिए अशक्यत्व होनेसे । इच्छानुविधायित्वरूप सम्बन्धभी नहीं बन सकता है क्यों ? आमवातसे जडीकृतमें इच्छानुविधायित्वरूप सम्बन्धके अभावसे । तदिन्द्रियाश्रयत्वरूप सम्बन्धभी नहीं बन सकता है, विकल्पकर दोष देते हैं—तद्धि=वह उक्तविध इन्द्रियाश्रयत्व क्या है ? तत्सम्बद्ध जो इन्द्रिय तादृश—इन्द्रियाश्रयत्वरूप है या तज्ज्ञानजनक जो इन्द्रिय तादृश इन्द्रियाश्रयत्वरूप है, नाद्यः=आद्यपक्ष नहीं बन सकता है, क्यों ? अतिप्रसङ्ग होनेसे=आत्मासे सम्बन्ध सर्वेन्द्रियोंका है अतः सर्वेन्द्रिय आत्मसम्बद्ध है तादृश इन्द्रियाश्रयत्व सर्वशरीरमें है अतः—अतिप्रसङ्ग है; न द्वितीयः=द्वितीयपक्षभी नहीं बन सकता है ज्ञानपदसे स्वरूपभूतचैतन्यकी उक्ति होनेपर असम्भव है=स्वरूपभूत चैतन्य नित्य है अतः इन्द्रियोंमें तज्जनकत्वका असम्भव है, और ज्ञानपदसे अन्तःकरणकी वृत्तिकी उक्ति होनेपर तो उस अन्तःकरणकी वृत्तिरूप ज्ञानके साथ आत्माके सम्बन्धके लिए आध्यासिक सम्बन्धको आवश्यकत्व होनेसे । तस्मात् देहकाही आत्माके साथ आध्यासिक सम्बन्ध है यह कहनाही ठीक है । अतएव=आध्यासिक सम्बन्धसेही सर्व व्यवस्थाओंको उपपन्न होनेसेही साक्षात्प्रयत्नजन्य जो तादृश क्रियाश्रयत्व या तद्भोगायतनत्व अथवा तत्कर्मार्जितत्वरूप सम्बन्ध है यह कथन खण्डित हुआ । और तत्कर्मार्जितत्वको पुत्रादिमेंभी विद्यमान होनेसे ।

नच तत्रादृष्टेन स्वत्वमेवोत्पाद्यते नतु पुत्रादिरिति—वाच्यम्, ग्रामादिवत् पुत्रस्य सिद्धत्वाभावेन स्वत्वोत्पादनार्थमपि तदुत्पादनस्यावश्यकत्वात् । अन्यथा स्वदेहसुखादिष्वप्यस्यादृष्टेन स्वत्वमेवोत्पाद्यते । नतु स्वदेहादिरित्यपि स्यात् । तथाच पूर्वानुत्पन्नमदृष्टेन स्वत्वसहितमेवोत्पाद्यते पूर्वोत्पन्ने तु स्वत्वमात्रमिति विभागः । एतेन—श्रुतिस्थं

ब्राह्मणपदं किंलक्षणया देहविशेपैक्याध्यासवत्परम्, देहविशेपसम्वन्धपरं वा, सम्वन्धस्तु अन्यस्याभावादैक्याध्यास एव। यद्वा—देहविशेपपरम् आत्मा तदैक्याध्यासात्प्रवर्तत इति। नाद्यः विधौ लक्षणया अयोगात्, पुत्रमित्रादिपु विकलेपु सकलेपु वा अहमेव विकलः सकलो वेति अध्यासस्वीकारेण ब्राह्मणमित्रस्य शूद्रस्याधिकारप्रसङ्गात्—शूद्रमित्रस्य ब्राह्मणस्यानधिकारप्रसङ्गाच्च। न—द्वितीयः, तदिन्द्रियाश्रयत्वादेः सम्वन्धान्तरस्य संभवात्। न—तृतीयः तस्य जडत्वेन नियोज्यत्वासंभवादिति—निरस्तम्; चरमपक्षे दूपणमनुक्तोपालम्भनम्, प्रथमद्वितीयपक्षयोरेव क्षोदसहत्वेनाङ्गीकारविपयत्वात् विधौ लक्षणायाः गोभिःश्रीणीत मत्सरमित्यादौ दर्शनात् स्वीयत्वाद्यप्रतिसन्धाननिबन्धनस्य पुत्रमित्रादिव्यावृत्तस्यैव सर्वानुभवसाक्षिकस्याध्यासस्य प्रयोजकतया नोक्तस्थले अतिप्रसङ्गाप्रसङ्गौ।

शङ्कते नचेति। तत्र=पुत्रादिस्थलमें अदृष्टसे स्वत्वही उत्पन्नकिया जाता है पुत्रादि नहीं इति नच वाच्यम्, स्वत्वोत्पादनसे पूर्व जैसे ग्रामादिमें सत्त्व रहता है तैसे स्वत्वोत्पादनसे पूर्व पुत्रके सिद्धत्वके अभावसे स्वत्वोत्पादनके लिए भी पुत्रोत्पादनको आवश्यकत्व होनेसे। अन्यथा स्वदेहमें और स्वसुखादिमेंभी इसके अदृष्टसे स्वत्वही उत्पन्न किया जाता है स्वदेहादिक नहीं ऐसाभी होगा। फलतः पूर्वमें अनुत्पन्न जो पदार्थ है वह तो अदृष्टसे स्वत्वके सहितही उत्पन्न होता है, और पूर्वमें उत्पन्न जो पदार्थ है उसमें अदृष्टसे स्वत्वमात्र उत्पन्न होता है यह विभाग है। एतेन श्रुतिस्थ ब्राह्मणपद क्या देहविशेपका जो ऐक्याध्यास तादृश ऐक्याध्यासवाला जो पदार्थ है तत्पर है या देहविशेपका जो सम्वन्ध तादृश सम्वन्धपर है और सम्वन्ध तो अन्यसम्वन्धके अभावसे ऐक्याध्यास ही है। अथवा देहविशेपपर है, आत्मा उस देहविशेपके साथ एक्याध्याससे प्रवृत्त होता है। नाद्यः=प्रथम पक्ष नहीं वन सकता है क्यों? विधिमें लक्षणाके अयोगसे, दूपणान्तर देते हैं—पुत्रमित्रादिकोंके असम्पूर्ण या सम्पूर्ण होनेपर मैं ही असम्पूर्ण या सम्पूर्ण हूँ इत्याकारक अध्यासके स्वीकारसे ब्राह्मणका मित्र जो शूद्र उसके अधिकारके प्रसङ्गसे और शूद्रके मित्र ब्राह्मणके अनधिकारके प्रसङ्गसे। न द्वितीयः=द्वितीय पक्षभी नहीं कहा जा सकता है, क्यों? तदीयेन्द्रियाश्रयत्वरूप सम्वन्धान्तरके ही सम्भवसे= द्वितीयपक्षमें आध्यासिक सम्वन्धके माननेकी आवश्यकता नहीं। न तृतीयः=तृतीय पक्षभी ठीक नहीं क्यों? देहविशेपके जडत्वसे नियोज्यत्वके असम्भवसे यह कथन निरस्त हुआ, एतेन शब्दका विवरण करते हैं—चरमपक्ष इति। चरमपक्षमें जो दूपणका कथन है वह तो अनुक्तोपालम्भन ही है; प्रथम द्वितीयपक्षोंकोही विचारसहत्व होनेसे अङ्गीकारविपयत्व होनेसे, विधिवाक्यमें लक्षणाको गोभिः=गोविकार दुग्धोंसे मत्सरम्=सोमको श्रयण करे इत्यादिमें देखनेसे—आदिपदसे उच्चै ऋचा क्रियते इत्यादिका ग्रहण है यहाँपर ऋगादिपदोंमें ऋग्वेदादि निरूपित लक्षणा है और आत्मीयत्वादिका जो अप्रतिसन्धान तादृशाप्रतिसन्धानाधीन जो

पुत्रमित्रादिसे व्यावृत्त सर्वानुभवसाक्षिक अध्यास उस अध्यासकोही प्रयोजकतया=उक्त श्रुतिविषयत्वेन नियोज्यका प्रयोजकत्व होनेसे उक्तस्थलमें अतिप्रसङ्गाप्रसङ्गौ=ब्राह्मणमित्र शूद्रके अधिकारका और शूद्रमित्र ब्राह्मणके अनधिकारका प्रसङ्ग नहीं है।

कादाचित्कस्य तादृशाध्यासस्यैव ब्राह्मणपदप्रयोगनिमित्तत्वेन ब्राह्मणो न हन्तव्य इत्यादेः सुषुप्तविषयत्वादिकमपि संगच्छते तथा जीवन्मुक्तविषयत्वमपि; तस्यावरणशक्तिनिबन्धनाध्यासाभावेऽपि विक्षेपशक्तिनिबन्धनाध्याससंभवात्। नचैवं कदाचिदध्यासस्य प्रयोजकत्वे महापातकेन नष्टब्राह्मण्यस्याप्यधिकारप्रसङ्गः, तत्र महापातकस्यैवानधिकारप्रयोजकत्वम्, नतु ब्राह्मण्याभावस्य, पतितो ब्राह्मण इतिव्यवहारेण तदभावस्यैवाभावात्। तथा चोक्तं भाष्ये—सर्वाणि विधिनिषेधशास्त्राणि अध्यासमूलानीति। प्रमातृत्वाद्यन्यथानुपपत्तिरप्यध्यासे मानम्। एतेन कादाचिदध्यासस्यैव प्रयोजकत्वेन सुषुप्तौ तदभावेऽपि ज्ञातृत्वस्य घटादिप्रमाकाले तदभावेऽपि प्रमातृत्वस्य दर्शनात् कथमैक्याध्यासः तत्र प्रयोजकः इति—निरस्तम् तदुक्तम् भाष्ये—प्रमातृत्वादिकमध्यासमूलमिति।

किसी कालमें होनेवाला जो तादृशाध्यास है उस अध्यासकोही ब्राह्मणपदप्रयोगमें निमित्तत्व होनेसे ब्राह्मण हन्तव्य नहीं है इत्यादिको सुषुप्तिविषयत्वादिकभी सङ्गत होता है, तैसेही जीवन्मुक्तपुरुषविषयत्वभी बन सकता है तस्य=जीवन्मुक्तको आवरणशक्तिनिबन्धन अध्यासके न होनेपरभी विक्षेपशक्तिनिबन्धन अध्यासका सम्भव होनेसे। किसी कालमें होनेवाला जो अध्यास उस अध्यासकोही अधिकारके प्रति प्रयोजकत्व होनेपर महापातकसे नष्ट है ब्राह्मण्य जिसका ऐसेकेभी अधिकारका प्रसङ्ग है नच=प्रसङ्ग नहीं है, क्योंकि वहाँपर महापातककोही अनधिकारका प्रयोजकत्व है, ब्राह्मण्याभावको नहीं 'पतित ब्राह्मण है' इत्याकारक व्यवहारसे ब्राह्मण्याभावकेही अभावसे=महापातकसे युक्त ब्राह्मणमें ब्राह्मण्याभाव नहीं रहता है किन्तु ब्राह्मण्याभावाभाव—ब्राह्मण्यही रहता है अन्यथा तादृश ब्राह्मणमें पतित ब्राह्मण ऐसा व्यवहार नहीं होना चाहिए। उक्तार्थमें भाष्यकारकी सम्मति दिखलाते हैं सर्व विधिनिषेधशास्त्र अध्यास मूलक है। और प्रमातृत्वादिकी अन्यथानुपपत्तिभी अध्यासमें प्रमाण है। एतेन=इस कथनसे कदाचित् अध्यासकोही प्रयोजकत्व होनेसे, सुषुप्तिमें अध्यासका अभाव होनेपरभी ज्ञातृत्वके देखनेसे और घटादिप्रमाकालमें तदभावेऽपि=अध्यासका अभाव होनेपरभी प्रमातृत्वके देखनेसे ऐक्याध्यास तत्र=ज्ञातृत्व और प्रमातृत्व इन दोनोंमें कैसे प्रयोजक है यह निरस्त हुआ, सो कहाभी है भाष्यमें। प्रमातृत्वादिक अध्यासमूलक हैं।

अतएव चार्वाकादीनामनभिसंहितप्रबलागमानुमानादीनां देह एवात्मेतिप्रवादः। अन्यथा प्रत्यक्षप्रामाण्यवादिनस्तस्य तादृशव्यवहारानुपपत्तेः; नच—चार्वाकादेरनुमानाभासाज्जाते देहात्म्यैक्यभ्रमे प्रत्यक्षत्वाभिमान इति—वाच्यम्, प्रत्यक्षेण भेदे गृहीते अनुमानाभासादिनाऽभेदस्य बोधयितुमशक्यत्वात्। तथाच प्रत्यक्ष एवायमैक्यभ्रमः।

अत एवाङ्गुल्या देहं प्रदर्श्य वदत्ययमहमिति । अतएव देहात्म्यैक्यनिषेधकश्रुतिरप्युपपद्य अन्यथा तस्याप्रसक्तप्रतिषेधकतापत्तेः । नच कुसमयप्राप्तनिषेधिका सा, प्रत्यक्षविरुद्ध-कुसमयस्याप्यनवकाशात् । तस्मादाभीरसाधारणात् 'अहंगौर' इत्यादिप्रत्ययादात्मन्यन्तःकरणैक्याध्यासाद्देहतद्धर्माध्यासोऽपीति सिद्धम् ।

इत्यद्वैतसिद्धौ देहात्म्यैक्याध्यासोपपत्तिः।

अतएव=देहात्म्यैक्याध्यासके होनेसेही प्रत्यक्षसे प्रबल जो अनुमानागमादिक तादृशानुमानागमादिक सम्यक्तया विचारित नहीं हैं जिन्होंके ऐसे जो चार्वाकादिक हैं उन चार्वाकादिकोंका देहही आत्मा है ऐसा प्रवाद है । अन्यथा=यदि उक्त तादात्म्याध्यास न हो-किन्तु देह और आत्माके भेदका प्रत्यक्षही हो तब तो प्रत्यक्षप्रामाण्यवादी चार्वाकादिके तादृश व्यवहारकी अनुपपत्ति है; चार्वाकादिको अनुमानाभाससे उत्पन्न जो देहात्मैक्यभ्रम उस भ्रममें प्रत्यक्षत्वका अभिमान है=अनुमानाऽऽभाससे जायमान देहात्म्यैक्यभ्रममें प्रत्यक्षत्वका अभिमान है । किन्तु देहात्मैक्यका प्रत्यक्ष नहीं है, इति नच वाच्यम्, क्यों ? प्रत्यक्षप्रमाणसे देह और आत्माके परस्पर भेदके गृहीत होनेपर अनुमानाऽऽभासादिसे अभेदको बोध करनेके लिए अशक्यत्व होनेसे । यह ऐक्यभ्रमप्रत्यक्षात्मकही है । अतएव=उक्त भ्रमको प्रत्यक्षात्मक होनेसेही अङ्गुलीसे देहको दिखलाकर कहता है कि-यह मैं हूँ । अतएव=ऐक्याध्यासको सुप्रसिद्ध होनेसेही देहात्म्यैक्यका निषेध करनेवाली श्रुतिभी उपपन्न होती है । अन्यथा=उक्ताध्यासके न होनेपर तस्याः=ऐक्यनिषेधक श्रुतिको अप्रसक्तनिषेधकताकी आपत्ति है । कुसमय= देहात्म्यैक्यको बोधन करनेवाला जो कुत्सितशास्त्र उससे प्राप्त जो ऐक्य उस ऐक्यकी निषेधिका वह श्रुति है, नच=ऐसा नहीं हो सकता है, प्रत्यक्षसे विरुद्धार्थमें कुसमयकेभी अनवकाशसे=श्रुतिस्मृतिके विना प्रत्यक्षसे विरुद्धार्थमें आस्तिकोंको अविश्वास होनेसे तत्प्राप्तार्थका निषेधकत्व श्रुतिको युक्त नहीं है यहभाव है । तस्मात् गोपालसाधारण जो 'अहं गौरः' इत्याकारक प्रत्यय है उस प्रत्ययसे आत्मामें अन्तःकरणके ऐक्याध्याससे देह और देहके धर्म इन दोनोंका अध्यासभी आत्मामें है यह सिद्ध हुआ ।

इति सरलायां देहात्म्यैक्याध्यासोपपत्तिः।

अथ—अनिर्वाच्यत्वलक्षणोपपत्तिः।

ननु—एवमविद्यायां तन्निबन्धनाध्यासे च सिद्धेऽपि न तस्यामनिर्वचनीयत्व-सिद्धिः; लक्षणप्रमाणयोरभावात् । तथाहि—किमिदमनिर्वाच्यत्वम्, न तावन्निरुक्तिविरहः (१), तन्निमित्तज्ञानविरहो वा (२), तन्निमित्तार्थविरहो वा (३), तन्निमित्तसामान्य-विरहो वा (४) । आद्ये अनिर्वाच्य इत्यनेनैव निरुक्त्या 'इदं रूप्यमिति' निरुक्त्या च व्याघातः, द्वितीये निरुक्तिरूपफलसत्त्वेन तन्निमित्तविरहस्य वक्तुमशक्यत्वम्, अतएव न तृतीयः, अर्थस्य निरुक्तावनिमित्तत्त्वाच्च । फलसत्त्वादेव न चतुर्थः ।

अथ सरलायामनिर्वाच्यत्वलक्षणोपपत्तिः।

शङ्कते नन्विति। एवम्=उक्तप्रकारसे अविद्या और अविद्याधीन अध्यास इन दोनोंके सिद्ध होनेपरभी तस्याम्=अविद्यामें अनिर्वचनीयत्वकी सिद्धि नहीं है लक्षण तथा प्रमाण इन दोनोंका अभाव होनेसे। तथाहि=लक्षणाभाव और प्रमाणाभाव दिखलाया जाता है, इदम्=यह आपके मतमें पदे पदे उद्घोष्यमाण अनिर्वचनीयत्व क्या है, निरुक्तिका विरह, या निरुक्तिका निमित्त जो ज्ञान उस ज्ञानका विरह, अथवा निरुक्तिका निमित्त जो अर्थ उस अर्थका विरह, या निरुक्तिके निमित्तसामान्यका विरह तो अनिर्वाच्यत्व नहीं हो सकता है। आदिमपक्षमें 'अनिर्वाच्य है' इस वाक्यसेही निरुक्ति होनेसे और 'इदं रूप्यम्' इस निरुक्तिसे व्याघात है, द्वितीयपक्षमें निरुक्तिरूप फलका सत्त्व होनेसे निरुक्तिका निमित्त जो ज्ञान उसके विरहको कहनेके लिए अशक्यत्व है, अतएव=निरुक्तिरूप फलके सत्त्वसे निरुक्तिनिमित्तके विरहको कहनेके लिए अशक्यत्व होनेसेही तृतीय पक्षभी नहीं माना जा सकता है और अर्थको निरुक्तिमें अनिमित्तत्व होनेसेभी तृतीय पक्ष नहीं वन सकता है। और निरुक्तिरूप फलका सत्त्व होनेसेही निरुक्तिनिमित्तसामान्यका विरहरूप चतुर्थ पक्षभी नहीं वन सकता है।

नापि सद्विलक्षणत्वे सति असद्विलक्षणत्वम्; सदसद्रूपत्वेऽप्युपपत्तेः। अतएव न सत्वराहित्ये सत्यसत्त्वविरहः तथाच लक्षणासंभव इति—चेन्न; सद्विलक्षणत्वे सत्यसद्विलक्षणत्वे सति सदसद्विलक्षणत्वम्, सत्त्वासत्त्वाभ्यां विचारासहत्वे सति सदसत्त्वेन विचारासहत्वं वा, प्रतिपन्नोपाधौ वाध्यत्वं वा, इत्यादिलक्षणे निरवद्यत्वसंभवात्। नच—आद्ये सतोऽपि सदन्तरविलक्षणत्वात् सिद्धसाधनमिति—वाच्यम्; सत्वावच्छिन्नभेदस्य सन्नेति प्रतीतिप्रयोजकस्य सद्वैलक्षण्यपदार्थत्वात्। नहि सति सदन्तरभेदेऽपि सन्नेति प्रतीतिः। अतो न सिद्धसाधनम्। एवञ्च सत्वरहितत्वे सति असत्त्वरहितत्वे सति सदसत्त्वरहितत्वमपि साधु।

सद्विलक्षणत्वसमानाधिकरण जो असद्विलक्षणत्व तद्रूपभी अनिर्वाच्यत्व नहीं वन सकता है, क्यों? सद्रूपत्वमें और असद्रूपत्वमें भी उपपत्तिसे=सद्रूपत्व तथा असद्रूपत्वको परस्पर विरहरूपत्व होनेसे सद्विलक्षणत्वके कहनेपर असत्वकी प्रसक्ति है और असद्विलक्षणत्व कहनेपर सत्त्वकी प्रसक्ति है, फलतः प्रपञ्चमें सद्रूपता या असद्रूपता सिद्ध होगी, इसीको यदि आप अनिर्वाच्यत्व कहते हो तो सिद्धसाधन है। अतएव=उक्तरीतिसे सिद्धसाधनके विद्यमान होनेसेही सत्त्वराहित्यविशिष्ट जो असत्वविरह तद्रूपभी अनिर्वाच्यत्व नहीं कह सकते हो। फलतः अनिर्वाच्यत्वके लक्षणका असम्भव है; इति चेन्न; क्यों? सद्विलक्षणत्वविशिष्ट जो असद्विलक्षणत्व तादृश—असद्विलक्षणत्वसे विशिष्ट जो सदसद्विलक्षणत्व तादृश सदसद्विलक्षणत्व, या सत्त्व असत्त्व इन दोनों रूपोंसे विचारासहत्वविशिष्ट जो सदसत्त्वेन विचारासहत्व तादृशविचारासहत्वरूप या प्रतिपन्नोपाधिमें वाध्यत्वरूप इत्यादि लक्षणोंमें निर्दोषत्वके सम्भवसे।

आद्ये=उक्त तीन लक्षणोंमें जो प्रथम लक्षण है उस प्रथम लक्षणमें सत्‌कोभी अन्यसत्‌से विलक्षण होनेसे सिद्धसाधन है इति नच वाच्यम् क्यों? 'सन्न' इत्याकारिका जो प्रतीति तादृशप्रतीतिप्रयोजक जो सत्त्वावच्छिन्नप्रतियोगिताक भेद तादृश भेदको असद्वैलक्षण्यपदार्थत्व होनेसे। सत्‌में सदन्तरका भेद रहनेपरभी 'सन्न' इत्याकारिका प्रतीति सत्‌में नहीं होती है। अतः सिद्धसाधन नहीं। एवञ्च=सद्वैलक्षण्य पदार्थको उक्तविध होनेसेही सत्वरहितत्वे सति इत्यादिभी निर्दोष है।

स्यादेतत्—सत्त्वं तावत् सत्ताजातिर्वा (१), अर्थक्रियाकारित्वं वा (२), अबाध्यत्वं वा (३), प्रामाणिकत्वं वा (४), अशून्यत्वं वा (५), ब्रह्मत्वं वा (६), पराङ्गीकृतं वा (७) नाद्यद्वितीयौ शुद्धात्मनि सद्वैलक्षण्यस्य प्रपञ्चे सद्वैलक्षण्याभावस्य चापातात् न तृतीयः; त्वन्मते तुच्छस्याप्यबाध्यत्वेन तत्र सद्वैलक्षण्यस्यानिर्वाच्यस्य बाध्यत्वेनासद्वैलक्षण्यास्य चायोगात्। न चतुर्थः प्रमाह्यन्तःकरणवृत्तिः तद्विषयत्वस्य प्रपञ्चेऽपि सत्त्वेन सद्वैलक्षण्यस्य तत्रा सत्वप्रसङ्गात्। न पञ्चमः तस्य प्रपञ्चेऽपि विद्यमानत्वेन सद्वैलक्षण्याऽभावप्रसङ्गात्। न षष्ठः तद्वैलक्षण्यस्य जगति सत्त्वेनेष्टापत्तेः न सप्तमः पराभ्युपगतसत्वस्यासत्वविरहरूपत्त्वेन उभयवैलक्षण्योक्त्ययोगात्।

रहो यह जिस सत्त्वका अभाव प्रपञ्चमें बतलाते हो वह सत्त्व किंरूप है, क्या सत्ताजातिरूप है या अर्थक्रिया=कार्यकारित्वरूप है, या अबाध्यत्वरूप है अथवा प्रामाणिकत्वरूप है या अशून्यत्वरूप है किम्वा ब्रह्मत्वरूप है या पराङ्गीकृतरूप है। नाद्यद्वितीयौ=सत्ताजातिरूप और अर्थक्रियाकारित्वरूप प्रथम तथा द्वितीय ये दोनों पक्ष नहीं कहे जा सकते हैं क्यों? शुद्धात्मामें सद्वैलक्षण्यके आपातसे और प्रपञ्चमें क्रियाकारित्व रहता है अतः प्रपञ्चमें सद्वैलक्षण्याभावके आपातसे=शुद्धात्मामें सत्ता जाति या अर्थक्रियाकारित्व नहीं रहता है अतः आत्मामें सद्वैलक्षण्यका आपात है और प्रपञ्चमें सत्ताजाति तथा अर्थक्रियाकारित्व रहता है अतः प्रपञ्चमें सद्वैलक्षण्याभावका आपात है; न तृतीयः=अबाध्यत्वरूप तृतीय पक्षभी नहीं बन सकता है क्यों? त्वन्मते=तुम्हारे मतमें तुच्छकोभी अबाध्यत्व होनेसे तत्र=तुच्छमें सद्वैलक्षण्यके अयोगसे, एवं बाध्यत्वही असत्व है ऐसा अङ्गीकार करो तो अनिर्वाच्यस्य=शुक्तिरूप्यादिरूपानिर्वचनीयपदार्थोंको भी बाध्यत्व होनेसे शुक्तिरूप्यादिमें असत्वकीही प्राप्तिसे—भवदभिमतासद्वैलक्षण्यके अयोगसे। न चतुर्थः=प्रामाणिकत्वरूप चतुर्थपक्षभी नहीं बन सकता है क्यों? प्रमानाम अन्तःकरणकी वृत्तिका है उसवृत्तिके विषयत्वका नाम है—प्रामाणिकत्व, और उस प्रमाणवृत्तिविषयत्वरूप प्रामाणिकत्वका प्रपञ्चमें भी सत्त्व होनेसे सद्वैलक्षण्यस्य=प्रामाणिकत्वरूप सद्वैलक्षण्यके तत्र=प्रपञ्चमें असत्वके प्रसङ्गसे। न पञ्चमः=अशून्यत्वरूपपञ्चमें पक्षभी नहीं बनसकता है क्यों? तस्य=अशून्यत्वको प्रपञ्चमेंभी विद्यमानत्व होनेसे प्रपञ्चमें सद्वैलक्षण्याभावके प्रसङ्गसे; न षष्ठः=छठा पक्षभी अच्छा नहीं क्यों? तद्वैलक्षण्यका जगतमें सत्त्व होनेसे इष्टापत्तिसे; सप्तमपक्षभी नहीं बन सकता, क्यों? पराभ्युपगत सत्त्वको असद्विरहरूपत्व होनेसे प्रपञ्चमें उभयवैलक्षण्यकी उक्तिके अयोगसे।

अतएव—एतेषां विरहस्यासत्त्वरूपत्वं—निरस्तम्; अथासत्त्वं निरुपाख्यत्वं निः-स्वरूपत्वं वा, । नाद्यः असदादिपदेनैव ख्यायमानत्वात्, न द्वितीयः; स्वरूपेण निषेध-पक्षे शुक्तिरूप्यादेरपि निःस्वरूपत्वेनासद्वैलक्षण्योक्ताविष्टापत्तिरिति चेन्न, पराभिमतस-त्त्वासत्त्वे एव विवक्षते, नतु पारिभाषिके, अतो न तादृक्सदसद्वैलक्षण्योक्ताविष्टापत्तिः । नापि तयोः परस्परविरुद्धत्वेन एकनिषेधस्यापरविधिपर्यवसन्नतया एकत्रोभयवैलक्षण्यं व्याहतमिति—वाच्यम्; निषेधसमुच्चयस्यातात्त्विकत्वाङ्गीकारात् न व्याहतिः । नह्यता-त्त्विकरजतेन शुक्तेर्विरोधः । नच तर्हि सदादिवैलक्षण्योक्तिः कथम्? तत्तत्प्रतियोगि-दुर्निरूपतामात्रप्रकटनाय । नहि स्वरूपतो दुर्निरूपस्य किञ्चिदपि रूपं वास्तवं संभवति ।

अतएव=उक्तविध सत्त्वोंको भवदभिमतानिर्वचनीयत्वके अनुकूल न होनेसेही उक्तविध-सत्त्वोंके विरहका असत्त्वरूपत्वभी निरस्त हुआ; असत्त्व किंरूप है? क्या निरुपाख्यत्वका नाम असत्त्व है या निःस्वरूपत्वका, नाद्यः=प्रथम पक्ष नहीं वन सकता है क्यों? असदादि पदोंसेही ख्यायमान—कथ्यमान होनेसे, न द्वितीयः=द्वितीय पक्षभी ठीक नहीं क्यों? स्वरूपसे निषेध-पक्षमें शुक्तिरूप्यादिकोभी निःस्वरूपता होनेसे, शुक्तिरूप्यादिमें असद्वैलक्षण्यकी अनुपपत्तिसे, स्यादेतत् यहाँसे लेकर यहाँतक शङ्कापक्ष है अब समाधान किया जाता है—इति चेन्न; क्योंकि प्रकृतमें पराभिमत सत्त्व तथा असत्त्व ही विवक्षित हैं, पारिभाषिक सत्त्वासत्त्व विवक्षित नहीं, अतः तादृश=उक्तविध सत्त्वासत्त्वसे विशिष्ट जो सदसत् तादृशसदसद्वैलक्षण्योक्तिमें इष्टापत्ति नहीं हो सकती है। शङ्कते नापीति । तयोः=पराभिमत सत्त्व तथा असत्त्व इन दोनोंको परस्पर विरुद्धता होनेसे एकके निषेधको अपरकी विधिमें पर्य्यवसन्नता होनेसे एकाधिकरणमें उभयका वैलक्षण्य व्याहत है, इत्यपि न वाच्यम्, क्योंकि निषेधसमुच्चयके अतात्त्विकत्वका अङ्गीकार होनेसे व्याघात नहीं है=परस्परविरुद्ध सत्त्वासत्त्वके निषेधोंका समुच्चय तात्त्विक नहीं वन सकता है परन्तु अतात्त्विक वन सकता है, अतः व्याघात नहीं, क्योंकि अतात्त्विक रजतके साथ शुक्तिका विरोध नहीं—जहाँ शुक्तितादात्म्यसे प्रतीत होती है वहाँही रजतभी प्रतीत होता है शुक्ति व्यावहारिक है रजत प्रातिभासिक है, इन्होंका समुच्चय अतात्त्विक है । तर्हि=जव कि निषेधके समुच्चयका अतात्त्विकत्व है तव सदादिसे वैलक्षण्यकी उक्ति कैसे है=सदादि-वैलक्षण्यकी उक्ति निष्फल है, नच=निष्फल नहीं है; क्योंकि वह उक्ति तिस तिस निषेधके प्रतियोगिओंकी दुर्निरूपतामात्र प्रकट करनेके लिए है=प्रपञ्चमें सत्त्वाभावका प्रतियोगि जो सत्त्व वह दुर्निरूप है और असत्त्वाभावका प्रतियोगि असत्त्व दुर्निरूप है इस अर्थके प्रकट करनेके लिए सदादिवैलक्षण्यकी उक्ति है । ननु—तुम्हारे मतमें प्रपञ्चमें सत्त्वादिके तात्त्विक अभावको तात्त्विकत्वही युक्त है अन्यथा प्रपञ्चमें सत्त्वादिके तात्त्विकत्व कीही आपत्ति है तहाँ कहते हैं—स्वरूपतः दुर्निरूपस्य=स्वरूपसे मिथ्याभूतका किञ्चिदपि= अधिष्ठानसे अन्य सत्त्वादिरूप वास्तविक नहीं हो सकता है ।

ननु—सत्वादिराहित्यस्यातात्विकत्वेऽपि सत्वादेर्दुनिरूपत्वमात्रेण अनिर्वाच्यत्वे पञ्चमप्रकाराविद्यानिवृत्तौ 'नानिर्वाच्योऽपि तत्क्षय' इति अनिर्वाच्यत्वनिषेधायोगः सत्त्वादिवत्तद्राहित्यस्याप्यतात्त्विकत्वे सत्त्वादौ प्रमाणनिरासेन तद्राहित्ये तदुक्त्ययोगः; अविरोधाय विधिसमुच्चयस्यैवातात्विकत्वस्वीकारश्चेति—चेन्न, पञ्चमप्रकाराविद्यानिवृत्तिपक्षे नैतत्त्रितयविलक्षणत्वमात्रमनिर्वाच्यत्वम्, किन्तु मुक्तिकालानवस्थायित्वसहितम्। तथाच मुक्तिकालावस्थायिन्यामविद्यानिवृत्तौ अनिर्वाच्यत्वनिषेधो युज्यते । सत्त्वादिराहित्ये तु अबाधितार्थविषयकप्रमाणोक्तिर्नास्त्येव । ज्ञापकमात्रोक्तिस्तदंशेऽसाधारणी अतो वादिविप्रतिपत्तिनिरासार्था । अतात्त्विकविधिसमुच्चयापत्तिस्त्विष्टैव । नह्यतात्त्विकसत्त्वासत्त्वे निषेधसमुच्चयेऽपि विरुध्येते ।

शङ्कते नन्विति । सत्त्वादिके राहित्यका अतात्विकत्व होनेपरभी सत्वादिकोंको दुर्निरूपत्वमात्र होनेसे अनिर्वाच्यत्व होनेपर पञ्चमप्रकाराअविद्याकी निवृत्तिमें तत्क्षयः=अविद्याकी निवृत्तिभी अनिर्वाच्य नहीं है इस रीतिसे अनिर्वाच्यत्वके निषेधका अयोग है=रूप्यादिकी नाईं अविद्याकी निवृत्तिमेंभी सत्त्वादिके दुर्निरूपत्वमात्रसे सदसद्वैलक्षण्यरूप अनिर्वाच्यत्वकोही कहनेकेलिए शक्य होनेसे अनिर्वाच्यत्वके निषेधका अयोग है, और प्रपञ्चसत्त्वादिवत् सत्वादिके राहित्यकोभी अतात्विकत्व होनेपर सत्वादिमें प्रमाणके निराससे सत्वादिके राहित्यमें प्रमाणकी उक्तिका अयोग है, और अविरोधके लिए, विधिसमुच्चयकेही अतात्विकत्वके स्वीकारकी आपत्ति है= अतात्विक विधिसमुच्चयकीभी आपके मतमें आपत्ति है इति चेन्न, क्योंकि पञ्चमप्रकाराविद्यानिवृत्तिपक्षमें सत्—असत्—सदसत् एतत्रितयविलक्षणमात्र अनिर्वाच्यत्व नहीं है, किन्तु मुक्तिकालानवस्थायित्वसहित एतत्त्रितयविलक्षणत्वका नाम अनिर्वाच्यत्व है जब यों है तब तो मुक्तिकालमें अवस्थान करनेवाली जो अविद्याकी निवृत्ति उस अविद्याकी निवृत्तिमें अनिर्वाच्यत्वका निषेध युक्त है । सत्वादिके राहित्यमें तो अबाधितार्थविषयक जो प्रमाण तादृश प्रमाणकी उक्ति नहीं है । ज्ञापकमात्रोक्तिः=व्यावहारिक सत्त्वादिके अभावका साधक जो अनुमानादि उस अनुमानादिकी उक्ति तदंशे=व्यावहारिक सत्त्वाद्यंशमें असाधारणी है, अतः वादियोंकी विप्रतिपत्ति—सत् ही है असत् ही है इत्यादिरूप विप्रतिपत्तिओंके निरासार्थ उक्तार्थविषयक प्रमाणकी उक्ति है । और अतात्विक विधियोंके समुच्चयकी या अतात्त्विकाभिन्न विधिसमुच्चयकी आपत्ति तो हमको इष्टही है । निषेधोंका समुच्चय होनेपरभी अतात्विक सत्वासत्त्व विरुद्ध नहीं है ।

यत्तु विधिसमुच्चयतात्त्विकत्वपक्षे भ्रान्तिबाधव्यवस्था न स्यात् इत्युक्तम्, तन्न; अतात्विकत्वादेव भ्रान्तेर्बाधस्य सत्त्वप्रतिषेधस्याप्रतिक्षेपात् सत्त्वस्यातात्त्विकत्वाच्च तदुपपत्तेः ।

विधिसमुच्चयके अतात्त्विकत्वपक्षमें भ्रान्तिबाधकी व्यवस्था न होगी=सत्वादिको और सत्वादिके अभावको अतात्त्विकत्व होनेपर सत्त्वादिकी धी भ्रान्ति है, और सत्त्वादिके अभा-

वकी धी वाध है, यह व्यवस्था न होगी क्योंकि अतात्त्विकका वाध तात्त्विकाभावभीरूप होता है ऐसा द्वैतीका तात्पर्य्य है, इति यत् उक्तम् तत् न=ऐसा जो कहा है वह ठीक नहीं, क्यों? अतात्त्विकत्वादेव=सत्त्वादिका अतात्त्विकत्व होनेसेही तादृशसत्त्वादिविषयकत्वेन सत्त्वादिविषयक ज्ञानको भ्रान्तित्व वन सकता है, और तादृश भ्रान्तित्वविशिष्ट भ्रान्तिसे सत्त्वादिप्रतिषेधरूप वाधके अप्रतिक्षेपसे और सत्त्वादिके अतात्त्विकत्वसेही तदुपपत्तेः=सत्त्वादिके वाधकी उपपत्तिसे।

ननु—निषेधसमुच्चयस्यातात्त्विकत्वं किमुभयातात्त्विकत्वाद्वा, एकैकातात्त्विकत्वाद्वा, । नाद्यः उभयतात्त्विकत्ववदुभयातात्त्विकस्यापि विरुद्धत्वात् विधिसमुच्चयस्य तात्त्विकत्वापाताच्च, एकैकप्रतियोगितात्त्विकत्त्वापत्तेरेव न द्वितीयोऽपि; तात्त्विकात्यन्ताभावप्रतियोगिन एव अतात्त्विकत्वादिति—चेन्न; उभयातात्त्विकत्वादेव निषेधसमुच्चयस्यातात्त्विकत्वम् । नचोभयतात्त्विकत्ववत् उभयातात्त्विकत्वमप्यत्र विरुद्धम्; वल्मीकादावेकत्र, स्थाणुत्वपुरुषत्वयोरतात्त्विकत्वदर्शनात् । नच परस्परविरहरूपयोरेकत्रोभयोरतात्त्विकत्वं विरुद्धम्, एकत्र तन्त्वादौ घटतत्प्रागभावयोरुभयोरपि अतात्त्विकत्वदर्शनात् । नच प्रतियोगितदत्यन्ताभावयोरेवायं नियमः, नियामकाभावादस्माकमसम्प्रतिपत्तेः ।

शङ्कते नन्विति । निषेधोंके समुच्चयका जो अतात्त्विकत्व है वह क्या उभय=निषेधद्वयके अतात्त्विकत्वसे है=दोनों निषेध अतात्त्विक हैं इसलिए उन्होंके समुच्चयमें अतात्त्विकत्व है, या एक एक निषेधके अतात्त्विकत्वसे समुच्चयमें अतात्त्विकत्व है। नाद्यः=प्रथमपक्ष नहीं वन सकता है, क्यों? उभयतात्त्विकत्ववत्=निषेधद्वयका जैसे एकधर्मीमें तात्त्विकत्व विरुद्ध है तैसे निषेधद्वयके अतात्त्विकत्वकोभी एकधर्मीमें विरुद्धत्व होनेसे और विधिसमुच्चयके तात्त्विकत्वके आपातसेभी=निषेधसमुच्चय जब अतात्त्विक है तब तत्प्रतियोगिविधिसमुच्चय अतात्त्विक हो जायगा। और एक एक प्रतियोगीके तात्त्विकत्वकी आपत्तिसेही द्वितीय पक्षभी नहीं कहा जा सकता है, तात्त्विक अत्यन्ताभावके प्रतियोगिकोही अतात्त्विकत्व होनेसे इति चेन्न; क्योंकि निषेधद्वयके अतात्त्विकत्वसेही निषेधसमुच्चयको अतात्त्विकत्व है। उभयतात्त्विकत्ववत् उभयातात्त्विकत्वभी एकाधिकरणमें विरुद्ध है, नच=विरुद्ध नहीं है, क्यों? वल्मीकादिरूप एकाधिकरणमें स्थाणुत्व पुरुषत्व इन दोनोंके अतात्त्विकत्वके देखनेसे। परस्पर विरहरूप जो दो पदार्थ उन दो पदार्थोंका एकाधिकरणमें अतात्त्विकत्व विरुद्ध है नच=ऐसा नहीं है, क्यों? तन्त्वादिरूपएकाधिकरणमें घट और घटका प्रागभाव इनदोनोंके अतात्त्विकत्वके देखनेसे। प्रतियोगी और प्रतियोगिका अत्यन्ताभाव इन दोनोंमेंही ऐसा नियम है। नच=यहभी नहीं हो सकता है, क्यों? नियामकाभावात्=उक्तनियमग्राहक तर्कके अभावसे हमलोगोंको ऐसे नियमकी सम्प्रतिपत्ति न होनेसे।

वस्तुतस्तु—सत्त्वासत्त्वयोर्न परस्परविरहरूपत्वं किन्तु परस्परविरहव्याप्यतामात्रम् । नच तादृशपारिभाषिकसदसद्वैलक्षण्योक्तौ नास्माकमनिष्टमिति—वाच्यम्,

सत्त्वमबाध्यत्वम्, असत्त्वं सत्त्वेन प्रतीत्यनर्हत्वम्, तदुभयवैलक्षण्यं च तव जगत्यसंप्रतिपन्नमिति कथमिष्टापत्त्यवकाशः? इष्टापत्तौ च कथं न मतक्षतिः? अतएव ध्वंसानुपलक्षिततदुपलक्षितसत्तायोगित्वरूपनित्यत्वानित्यत्वयोः सत्ताहीने सामान्यादावभाववदुत्तरावधिराहित्यं नित्यत्वम्, भावान्यनिवृत्तिमत्त्वं चानित्यत्वम्, तदुभयाभावः प्रागभाव इव शुक्तिरूप्यादौ मिथ्याभूते सत्त्वासत्त्वयोरभावः स्यादित्याहुः; उक्तसत्त्वासत्त्वयोः परस्परविरहव्याप्यत्वेऽपि परस्परविरहानात्मकत्वात्। उक्तनित्यत्वानित्यत्ववत्।

वस्तुतः तो सत्त्व तथा असत्त्व इन दोनोंको परस्पर विरह रूपता नहीं है, किन्तु गोत्व अश्वत्वकी तरह परस्परविरहव्याप्यत्वमात्र है। तादृश पारिभाषिक जो सदसत् तादृश सदसत्–वैलक्षण्यकी उक्ति होनेपर हम लोगोंको अनिष्ट नहीं है; इति नच वाच्यम्, क्योंकि सत्त्वनाम है अबाध्यत्वका और असत्त्व नाम है सत्त्वेन प्रतीत्यनर्हत्वका तदुभयवैलक्षण्य तो जगत्में तुमको सम्प्रतिपन्न नहीं है, अतः इष्टापत्तिका अवकाश तुमको कैसे है? और इष्टापत्ति होनेपर तुम्हारे मतकी हानि क्यों नहीं। अतएव=किसीभी प्रकारकी अनुपपत्ति न होनेसेही ध्वंसानुपलक्षित=ध्वंसाप्रतियोगिवृत्तित्वविशिष्ट जो सत्ता तादृश सत्तायोगित्वरूप नित्यत्व और तदुपलक्षित=ध्वंसोपलक्षित=ध्वंसप्रतियोगिवृत्तित्वविशिष्ट जो सत्ता तादृशसत्तायोगित्व अनित्यत्व इन दोनोंका जैसे सत्तासे हीन सामान्यादिमें अभाव है, और उत्तरावधिराहित्य=ध्वंसाप्रतियोगित्वरूप नित्यत्व भावान्यनिवृत्तिमत्त्व=भावसे भिन्न जो निवृत्ति तादृशनिवृत्तिमत्त्व=उभयविधानिवृत्तिप्रतियोगित्वरूप अनित्यत्व इन दोनोंका जैसे प्रागभावमें अभाव है वैसे मिथ्याभूत शुक्तिरूप्यमें सत्त्व तथा असत्त्व इन दोनोंका अभाव होगा इत्याहुः=ऐसा कहते हैं हमारे आचार्य्य; उक्तविध सत्त्वासत्त्वको परस्परविरहव्याप्यत्व होनेपरभी परस्परविरह–अनात्मक होनेसे अनुपदनिर्दिष्ट नित्यत्व अनित्यत्वकी नाईं।

ननु—इदं नित्यत्वानित्यत्वयोर्मिलितयोर्व्यतिरेकः सामान्ये प्रागभावे चास्तीत्युक्तमयुक्तम्; नित्यत्वस्य सामान्यानुगतध्वंसाप्रतियोगित्वरूपत्वात्, अनित्यत्वस्य च 'प्रागभावानुगतध्वंसप्रतियोगित्वरूपत्वात्' प्रागभावस्यापि प्रतियोग्येव ध्वंसः भावस्यैवाभावो निवृत्तिः, अभावस्य तु भाव एवेति स्वीकारात्। ध्वंसोपलक्षितानुपलक्षितसत्ताराहित्यरूपपारिभाषिकनित्यत्वानित्यत्वयोरेकत्र सामान्यादौ भाववदेकत्र सत्त्वासत्त्वे स्यातामित्यपि स्यादिति—चेन्न; नहि वयं दृष्टान्तमात्रेण सत्वासत्त्वव्यतिरेकयोरेकत्र स्थितिं ब्रूमः, येन ध्वंसोपलक्षितानुपलक्षितसत्ताराहित्यरूपपारिभषिकनित्यत्वानित्यत्वयोरेकत्र सामान्यादौ सद्भावनिदर्शनेन सत्त्वासत्त्वयोरेकत्र सत्त्वमुच्येत। किन्तु प्रमाणैः सिद्धे निषेधसमुच्चये सामान्यादिव्यावृत्तनित्यत्वानित्यत्वयोर्निषेधसमुच्चयं दृष्टान्तयामः।

शङ्कते नन्विति। मिलित जो नित्यत्व तथा अनित्यत्व इन दोनोंका व्यतिरेक सामान्यमें तथा प्रागभावमें है, यह कथन अयुक्त है, नित्यत्वको सामान्यानुगत ध्वंसाप्र-

तियोगित्वरूपत्व होनेसे=ध्वंसाप्रतियोगित्वरूपनित्यत्व है यह नित्यत्व सामान्यमेंभी है अतः सामान्यमें उभयका व्यतिरेक नहीं है। और अनित्यत्वको प्रागभावानुगत ध्वंसप्रतियोगित्व-रूपत्व होनेसे प्रागभावमें उभयाभाव नहीं प्रागभावकाभी ध्वंस प्रतियोगी रूप ही है, क्योंकि भावकाही अभाव निवृत्ति है और अभावका अभाव तो भावही है ऐसा स्वीकार होनेसे। ध्वंसोपलक्षितसत्ताराहित्यरूप जो नित्यत्व और ध्वंसानुपलक्षितसत्ताराहित्यरूप जो अनित्यत्व इन दोनोंका जैसे सामान्यादिरूप एकाधिकरणमें अभाव है, तैसे एकाधिकरणमें सत्वासत्त्व ये दोनोंभी होंगे इति चेन्न, क्योंकि हम केवल दृष्टान्तसे सत्त्व तथा असत्व इन दोनोंके व्यतिरे-कोंकी स्थितिको एकत्र नहीं कहते हैं जिससेकि ध्वंसोपलक्षितसत्ताराहित्यरूप पारिभाषिक नित्यत्व ध्वंसानुपलक्षितसत्ताराहित्यरूप पारिभाषिक अनित्यत्व इन दोनोंके सामान्यादिरूप एकाधिकरणमें सद्भावके दृष्टान्तसे सत्व तथा असत्व इन दोनोंका एकाधिकरणमें सत्त्व कहा जाय, किन्तु प्रमाणोंसे निषेधसमुच्चयके सिद्ध होनेपर सामान्यादिसे व्यावृत्त जो नित्यत्व तथा अनित्यत्व इन दोनोंके निषेधसमुच्चयको दृष्टान्तत्वेन उपन्यस्त करते हैं।

एवञ्च सामान्याद्यनुगतत्वदुक्तनित्यत्वानित्यत्वयोर्निषेधसमुच्चयस्यादृष्टान्तत्वेऽपि न क्षतिः। अत एवोक्तमध्यस्ते नित्यत्वानित्यत्वयोरिव सत्वासत्त्वयोरप्यभावौ न विरुद्धौ धर्मिण एव कल्पितत्वेन विरुद्धयोरपि धर्मयोरभावात् इति, न चैवं कल्पितस्या-नित्यत्वाभ्युपगमविरोधः; तात्विकानित्यात्वाभावेऽपि धर्मिसमसत्ताकनित्यत्वसत्त्वेना-भ्युपगमे विरोधाभावात् नच कल्पितहेतोर्विरुद्धधर्माभावरूपसाध्यस्य च भावाभावाभ्यां व्याघात इति—वाच्यम्; अतात्त्विकहेतुसद्भावेन तात्त्विकधर्माभावस्य साधनेन व्याघा-ताभावात्। अतएव स्वरूपतो दुर्निरूपस्य न किञ्चिदपि रूपं वास्तवं संभवतीति प्राचा-मुक्तिरपि सङ्गच्छते व्यावहारिकेणैव दुर्निरूपत्वेन हेतुना व्यावहारिकवास्तवरूपाभा-वस्य साधनात्।

ऐसा होनेपर सामान्यादि—अनुगत जो त्वदुक्त नित्यत्व तथा अनित्यत्व तादृशनित्यत्वा-नित्यत्वके निषेधसमुच्चयको दृष्टान्तत्व न होनेपरभी हानि नहीं। अतएव कहा है कि—अध्यस्त पदार्थमें जैसे नित्यत्वानित्यत्व इन दोनोंके अभाव विरुद्ध नहीं है तैसे सत्त्व तथा असत्त्व इन दोनोके अभावभी विरुद्ध नहीं है, धर्मीकोही कल्पितत्व होनेसे विरुद्ध धर्माकेभी अभावसे। ऐसा होनेपर कल्पितके अनित्यत्वके अभ्युपगमका विरोध है, नच=विरोध नहीं है, क्यों? तात्त्विक अनित्यत्वका अभाव होनेपरभी धर्मिसमसत्ताक अनित्यत्वका सत्त्व होनेसे अभ्युपगममें विरोधके अभावसे। शङ्कते नचेति। कल्पितत्वरूपहेतुके भावाभावसे व्याघात है। और विरुद्ध-धर्माभावरूप साध्यके भाव तथा अभावसे व्याघात है=शुक्तिरूप्यम्, वास्तविकसत्त्वासत्त्व-शून्यम्, कल्पितत्वात्, ऐसा सिद्धान्तीका अनुमान मानकर द्वैती दोष देता है, यदि पक्षमें कल्पितत्व हेतु है तो तादृशहेतुमत्त्वेन उसका निर्वचन हो सकता है अतः अनिर्वचनीयत्व कैसे; यदि नहीं है तब तो स्वरूपासिद्धि दोष है, साध्य यदि पक्षमें है तो तद्वत्त्वेन ही निर्वचन

हो सकता है दुर्निरूपत्व कैसे यदि नहीं है तो अनुमानमें बाध दोप है, इति नच वाच्यम्, क्यों ? अतात्विकहेतुके सद्भावसे तात्त्विकधर्माभावका साधन होनेसे व्याघातके अभावसे= अतात्त्विकहेतु पक्षमें है और तादृश हेतुमत्त्वेन निर्वचन होनेपरभी हमारी कोई क्षति नहीं क्योंकि यह निर्वचन मिथ्यात्वका विरोधी नहीं है, सत्त्वेन या असत्त्वेन या सत्त्वासत्त्वेन निर्वचन नहीं होना चाहिए। तैसे साध्यभी है और तादृशसाध्यवत्वेन पक्षका निर्वचनभी हो सकता है, परन्तु ऐसे निर्वचनसे हमारे सिद्धान्तकी हानि नहीं और द्वैतीको कुछ लाभ नहीं, इसी अर्थको आगे स्पष्ट करते हैं–अतएव=उक्तविध हेतुसाध्यके सद्भावके विवक्षित होनेसेही स्वरूपतः दुर्निरूपका कुछभी वास्तविक रूप सम्भवित नहीं है यह प्राचीनोंकी उक्तिभी सङ्गत होती है व्यावहारिक दुर्निरूपत्व हेतुसेही व्यावहारिक जो वास्तवरूपाभाव उसका साधन होनेसे।

अतएव—दुर्निरूपत्वरूपहेतोर्वास्तवरूपाभावसाध्यस्य चातात्विकत्वेऽसिद्धिवाधौ तात्त्विकत्वे व्याघात इति–निरस्तम्, धर्मिसमसत्ताकहेतुसाध्यादिसत्त्वेनासिद्ध्याद्य-भावात् तात्विकहेत्वाद्यभावाच्च। न व्याघातः; स्वरूपतो दुर्निरूपत्वञ्च कल्पितत्वमेव। एतेन–किमिदं स्वरूपतो दुर्निरूपत्वं केनापि प्रकारेण वा, केनापि दुर्निरूपत्वमित्येतद-न्यप्रकारेण वा, सत्वासत्वाभ्यां वा। नाद्यः; केनापि प्रकारेण दुर्निरूपत्वमित्यनेन प्रका-रेण दुर्निरूपत्वादुर्निरूपत्वाभ्यां व्याघातात्, अतएव न द्वितीयः केनापि प्रकारेण दुर्नि-रूपत्वमित्येतदन्यप्रकारेण दुर्निरूपत्वस्य केनापि प्रकारेण दुर्निरूपत्वान्यत्वात्, मिथ्या-त्वादिना कल्पितस्य सुनिरूपत्वाच्च। न तृतीयः तस्य सदसद्वैलक्षण्यावास्तवत्वाहेतुत्वात् इति–निरस्तम् तृतीयपक्षस्य क्षोदसहत्वाच्च।

अतएव=दुर्निरूपत्वरूप जो हेतु है उस हेतुका और वास्तवरूपाभावरूपसाध्यका अता-त्त्विकत्व होनेपर असिद्धि तथा बाध है और उक्त हेतु तथा साध्यका तात्विकत्व होनेपर व्याघात है=ब्रह्मसे अतिरिक्तमें तात्विकत्वके मानलेनेपर ब्रह्मवादीको व्याघात है–यह खण्डित हुआ, अतएव शब्दका अर्थ करतेहैं–धर्मिसमसत्ताक हेतुके सत्त्वसे और धर्मिसमसत्ताक साध्यादिके सत्त्वसे असिद्ध्यादिका अभाव होनेसे, और हेतुसाध्यादिका तात्त्विकत्व न होनेसे व्याघातभी नहीं है। और स्वरूपतः दुर्निरूपत्व तो कल्पितत्व ही है। एतेन=कल्पितत्वको ही स्वरूपतः दुर्नि-रूपत्व होनेसे, यह स्वरूपसे दुर्निरूपत्व क्या है, केनापि प्रकारेण दुर्निरूपत्व या केनापि प्रकारेण दुर्निरूपत्वसे अन्य जो प्रकार उस प्रकारसे दुर्निरूपत्व या सत्वासत्वसे दुर्निरूपत्व; नाद्यः= प्रथमपक्ष नहीं बन सकता है, क्यों ? किसीभी प्रकारसे दुर्निरूपत्व, इस प्रकारसे दुर्निरूपत्व तथा अदुर्निरूपत्व इन दोनोंसे व्याघात होनेसे=उक्तप्रकारसे यदि दुर्निरूपत्व है तो सुनिरूपत्व आया–केनापि प्रकारेण दुर्निरूपत्वसे यदि दुर्निरूपत्व नहीं है तो सुनिरूपत्व है अतः व्याघात है यदि केनापि प्रकारेण दुर्निरूपत्वसे अदुर्निरूपत्व है तब तो केनापि प्रकारेण दुर्निरूपत्वसे निरूपत्व आया तबभी व्याघात है; अत एव न द्वितीयः=अत एव द्वितीय पक्षभी नहीं

वन सकता है अतएवका अर्थ स्पष्ट करते हैं केनापीति । किसीभी प्रकारसे जो दुर्निरूपत्व इस प्रकारसे अन्य जो प्रकार उस प्रकारसे जो दुर्निरूपत्व उस दुर्निरूपत्वको केनापि प्रकारेण दुर्निरूपत्वसे अन्यत्व होनेसे फलतः इस प्रकारसे सुनिरूपत्व होनेपर व्याघात है और मिथ्यात्वादिना कल्पितको सुनिरूपत्व होनेसे भी यह पक्ष नहीं वन सकता है । न तृतीयः=तृतीय पक्षभी ठीक नहीं क्यों ? तस्य=सत्त्वासत्त्वोंसे दुर्निरूपत्वको सदसद्वैलक्षण्यका जो अवास्तवत्व उस अवास्तवत्वमें अहेतुत्व होनेसे=सत्त्वासत्त्वोंसे जो दुर्निरूपत्वको सदसद्वैलक्षण्यका जो अवास्तवत्व उस अवास्तवत्वमें अहेतुत्व होनेसे=सत्त्वासत्त्वोंसे जो दुर्निरूपत्व है वह स्वाधिकरणके अवास्तवत्वका साधक है किन्तु स्वसमानाधिकरण जो सदसद्विलक्षणत्वादिरूपधर्म तादृशधर्मनिष्ठ अवास्तवत्वका साधक नहीं ऐसा द्वैतीका अभिमान है । यह कथन निरस्त हुआ, और तृतीय पक्षको विचारसहत्व होनेसेभी यह कथन ठीक नहीं ।

तथाहि—सत्वसत्त्वाभ्यां दुर्निरूपत्वं हि व्याधिततद्द्वयकत्वम् तच्च धर्मविशिष्टधर्म्यतात्विताात्त्विकत्वे हेतुः । तथाच सदसद्वैलक्षण्यमपि धर्मस्तदतात्त्विकत्वे कथं न हेतुः स्यात् । नच—एवं कल्पितस्य दृश्यादृश्यवाध्यावाध्यदुर्निरूपसुनिरूपत्वादिवहिर्भावोऽपि स्यादिति वाच्यम्; तात्त्विकदृश्यत्वाद्यशेपधर्मवहिर्भावस्य कल्पिते इष्टत्वात् अतात्त्विकस्य दृश्यत्वादेर्व्यावहारिकप्रमाणैर्यथायथमङ्गीकृतस्यैवमप्यविरोधात् । अदृश्यत्वादिकं तु व्यावहारिकं नास्त्येव । प्रातिभासिकं चैतदप्यङ्गीकुर्म एव । एवञ्च तार्किकमते संयोगतदभावयोरिव भट्टमते भेदाभेदयोरिव सत्त्वासत्त्वाभावयोरप्यविरोध एव । नच—एवं सत्त्वासत्त्वयोरपि तद्वदेवाविरोधः स्यादिति—वाच्यम्; अतात्त्विकयोरविरोधे इष्टापत्तेः; निपेधसमुच्चयस्यापि तात्त्विकस्यानङ्गीकारेण तत्साम्येन विधिसमुच्चयस्य तात्त्विकस्यापादयितुमशक्यत्वात् नच तात्त्विकसंयोगतदभावनिदर्शनवलात्तदापादनीयम् दृष्टान्तेऽपि तात्त्विकत्वासंप्रतिपत्तेः ।

तथाहि—तृतीयपक्षका विचारसहत्व दिखलाते हैं सत्त्वसे तथा असत्त्वसे दुर्निरूपत्व क्या है वाधिततद्द्वयकत्व=वाधित है सत्त्वासत्त्वरूप द्वय जहाँ उसका नाम है वाधिततद्द्वयक तच्च= वह वाधित तद्द्वयकत्वरूप दुर्निरूपत्वधर्मविशिष्ट जो धर्मी उस धर्मीके अतात्त्विकत्वमें हेतु है, फलतः सदसद्वैलक्षण्यभी उक्तविध धर्मीमें रहनेवाला धर्म है अतः तदतात्त्विकत्वे=सदसद्वैलक्षण्यके अतात्त्विकत्वमें उक्तविधदुर्निरूपत्व हेतु क्यों न होगा । शङ्कते न चेति । एवम्=उक्तप्रकारसे जैसे कल्पितका सदसत्से वहिर्भाव है तैसे दृश्य—अदृश्य वाध्य—अवाध्य दुर्निरूपत्व सुनिरूपत्वसेभी वहिर्भाव होगा इति नच वाच्यम्, क्यों ? तात्त्विक जो दृश्यत्वादिरूप अशेप धर्म तादृश धर्मोंसे वहिर्भावको कल्पितमें इष्टत्व होनेसे, व्यावहारिक प्रमाणोंसे यथायोग्य अङ्गीकृत जो अतात्त्विक दृश्यत्वादिक हैं उनका ऐसा होनेपरभी विरोध नहीं है=कल्पितमें तात्त्विक दृश्यत्वादिका निपेध है और अतात्त्विकदृश्यत्वादिक रह सकते हैं । और अदृश्यत्वादिक तो

व्यावहारिक नहीं ही हैं और प्रातिभासिक अदृश्यत्वादिकोंको तो हम अङ्गीकार करते ही हैं। इस रीतिसे तार्किक मतमें जैसे संयोग तथा संयोगाभाव ये दोनों एकाधिकरणमें एककालावच्छेदेन रहते हैं अर्थात् इनका विरोध नहीं है और भट्टमतमें भेदाभेदोंका जैसे विरोध नहीं है तैसे सत्त्वासत्त्व और सत्त्वासत्त्वका अभाव इनकाभी विरोध नहीं है किन्तु अविरोध ही है, एवम्=इस रीतिसे सत्त्व तथा असत्त्व इन दोनोंकाभी अविरोध न होगा, जैसे कि इन दोनोंके साथ इन्होंके अभावका नहीं है, इति नच वाच्यम् क्यों ? अतात्त्विकयोः=अतात्त्विक जो सत्त्व तथा असत्त्व इन दोनोंके अविरोधमें इष्टापत्ति होनेसे, और तात्त्विक निषेधसमुच्चयकाभी अङ्गीकार न होनेसे तत्साम्येन=निषेधसमुच्चयके साम्यसे तात्त्विकविधिसमुच्चयको आपादन करनेके लिए अशक्यत्व होनेसे तात्त्विक संयोग और तात्त्विकसंयोगाभाव इनके समुच्चयको निदर्शन बनाकर उसके बलसे तात्त्विकविधिसमुच्चय आपादनीय है नच=आपादनीय नहीं है, क्यों ? दृष्टान्तमेंभी तात्त्विकत्वकी असम्प्रतिपत्तिसे। निदर्शन नाम दृष्टान्तका है यह प्रथमभी आ चुका है।

ननु—अनिर्वाच्यत्वं सत्त्वासत्त्वादिना विचारासहत्वं। तच्च न तावत् सत्त्वाद्यनधिकरणत्वम्, असतो ब्रह्मणश्च निर्धर्मकत्वेन तत्रातिव्याप्तेः। नच—कल्पितसत्त्वाधिकरणत्वं ब्रह्मण्यपीति—वाच्यम् तस्य जगत्यपि विद्यमानत्वेन तत्राव्याप्तेः। नापि सत्त्वाद्यत्यन्ताभावाधिकरणं निर्धर्मकब्रह्मणः सत्त्ववत्तदत्यन्ताभावस्याप्यभावेन तुच्छेप्यसत्त्ववत्तदत्यन्ताभावस्याप्यभावेन कथंचिदतिव्याप्तिनिरासेऽपि तुच्छब्रह्मणोर्निर्धर्मकत्वेन धर्मवत्त्वादेरेवानिर्वाच्यत्वलक्षणत्वापातात्, निर्विशेषश्रुत्यापि व्याघातेन धर्ममात्रनिषेधायोगेन ब्रह्मणि सत्त्वराहित्ये तदत्यन्ताभावस्य दुर्वारत्वात्। नापि सद्रूपत्वाद्यभावः ब्रह्मणः सत्वाभावे सद्रूपत्वाभावेन तत्रातिव्याप्तेः। नापि सत्त्वादेरित्थम् इति निर्वक्तुमशक्यत्वम्; ब्रह्मण्यपि सत्त्वस्येत्थमिति निर्वक्तुमशक्यत्वात्। नापि सत्त्वादिना प्रमाणागोचरत्वम्, अखण्डार्थनिष्ठवेदान्तैकवेद्यब्रह्मणोऽपि सत्त्वादिप्रकारकप्रमाणागोचरत्वादिति—चेन्न;

शङ्कते नन्विति। सत्त्वासत्त्वादिसे विचारासहत्वका नाम है अनिर्वाच्यत्व। तच्च=और वह सत्त्वासत्त्वादिसे विचारासहत्व सत्त्वादिका अनधिकरणत्वरूप तो नहीं बन सकता है क्यों ? असत्को तथा ब्रह्मको निर्धर्मकत्व होनेसे तत्र=असत्‌में और ब्रह्ममें अतिव्याप्ति होनेसे। यदि यों कहो कि कल्पित जो सत्त्व उस सत्त्वका अधिकरणत्व ब्रह्ममेंभी है अतः वहाँ अतिव्याप्ति नहीं है तो ऐसा नहीं कहना क्यों ? तस्य=कल्पित सत्त्वको जगत्‌मेंभी विद्यमानत्व होनेसे तत्र=जगत्‌में अव्याप्तिसे; सत्वादिका जो अत्यन्ताभाव तादृश अत्यन्ताभावका अधिकरणत्व सत्त्वादिना विचारासहत्व है, नापि=वहभी नहीं हो सकता है, क्यों ? निर्धर्मकब्रह्मणः=धर्मशून्य ब्रह्ममें सत्त्वकी तरह—सत्त्वात्यन्ताभावकेभी अभावसे, और तुच्छमें असत्वकी नाईं असत्वात्यन्ताभावकेभी अभावसे कथंचित् अतिव्याप्तिका निरास होनेपरभी तुच्छ ब्रह्मको

निर्धर्मकत्व होनेसे धर्मवत्त्वादिकोही अनिर्वाच्यत्वके लक्षणत्वका आपात होनेसे, कथंचित् शब्दसे सूचित अतिव्याप्तिको ब्रह्ममें दिखलाते हैं निर्विशेपेति। निर्विशेप श्रुतिसेभी व्याघातप्रयुक्त धर्ममात्रके निपेधके अयोगसे सत्त्वराहित्यको ब्रह्ममें बोधनीयत्व होनेपर सत्त्वात्यन्ताभावको दुर्वारत्व होनेसे=ब्रह्मको निर्विशेप बतलानेवाली जो श्रुति है वहभी धर्मसामान्यका तो ब्रह्ममें निपेध नहीं कर सकती है क्योंकि धर्मसामान्यान्तरगत–निर्विशेपत्वभी है और उसको बोधन करनेके लिए प्रवृत्त हुई उसका निपेध कैसे करेगी अतः ऐसा मानना चाहिए कि भावभूतधर्मोंका निर्विशेपश्रुति ब्रह्ममें निपेध करती है, और जब ऐसा मान लिया तब सत्त्वात्यन्ताभाव ब्रह्ममें सिद्ध हुआ, सद्रूपत्वादिका अभावभी नहीं कहा जा सकता है क्यों ? ब्रह्मणः= ब्रह्ममें सत्त्वके अभावसे सद्रूपत्वाभाव है और सद्रूपत्वाभावसे तत्र=ब्रह्ममें अतिव्याप्ति होनेसे। सत्त्वादिनिष्ठ जो 'इत्थम्' इत्याकारक निर्वचनाशक्यत्व वहभी सत्त्वादिना विचारासहत्व नहीं हो सकता है, क्यों ? ब्रह्ममेंभी सत्त्वको 'इत्थम्' इस रीतिसे निर्वचन करनेके लिए अशक्यत्व होनेसे। सत्वादिना प्रमाणागोचरत्व रूपभी नहीं हो सकता है क्यों ? अखण्डार्थनिष्ठ जो वेदान्त तादृश वेदान्तैकवेद्य ब्रह्मकोभी सत्त्वादिप्रकारकप्रमाणागोचरत्व होनेसे; ननुसे लेकर यहाँतक पूर्वपक्ष है अब उत्तर पक्ष दिखलाते हैं इति–चेन्न; क्योंकि—

सत्त्वादिना विचारासहत्वं सत्त्वाद्यत्यन्ताभावाधिकरणत्वम् । नचातिव्याप्तिः; ब्रह्मणि सत्त्ववत्तदत्यन्ताभावस्याप्यभावात्, अन्यथा निर्विशेपत्वादिश्रुतिविरोधापत्तेः । नच निर्विशेपत्वरूपविशेपसत्त्वासत्त्वाभ्याम् व्याघातेन श्रुतिरन्यपरा विशेपस्य कल्पितत्वेन तदभावासत्त्वेन तत्सत्वाभावेन व्याघाताभावात् स्वप्नगजतदभाववत् । अतएव सत्त्वराहित्येऽपि तदत्यन्ताभाव आवश्यक इत्यपास्तम् ।

सत्त्वादिना विचारासहत्व सत्त्वाद्यत्यन्ताभावाधिकरणत्वरूप है। अतिव्याप्तिः=ब्रह्ममें अतिव्याप्ति है, नच=अतिव्याप्ति नहीं है क्यों ? ब्रह्ममें सत्वकी तरह सत्त्वके अत्यन्ताभावकेभी अभावसे अन्यथा=अभावकाभी अभाव होनेपर निर्विशेपत्वादिबोधक श्रुतिके साथ विरोधकी आपत्तिसे। निर्विशेपत्वरूप जो विशेप है उस विशेपके सत्त्वसे तथा असत्त्वसे व्याघात होनेसे निर्विशेपत्वबोधिका श्रुति अन्यार्थपरा है=निर्विशेपत्वरूप विशेप ब्रह्ममें है या नहीं है ? यदि है तो निर्विशेपत्व नहीं रहा–विशेपसामान्याभावत्वरूप निर्विशेपत्व न रहा यदि नहीं है तोभी बाधितार्थबोधकत्व श्रुतिको होगा, तथाच उभयतः व्याघात है, नच=व्याघात नहीं है क्यों ? विशेपको कल्पितत्व होनेसे, तदभावासत्त्वेन=ब्रह्ममें उसके अभावका अभाव होनेसे=कल्पितही सही परन्तु है तो अतः उसके अभावका अभाव है अतः, और तत्सत्वाभावके=ब्रह्ममें विशेपके सत्त्वके अभावसे=कल्पित होनेसेही विशेपका तात्त्विक सत्त्व नहीं है अतः व्याघातके अभावसे जैसे स्वप्नका गज और उसका अभाव। अतएव=ब्रह्ममें विद्यमान सत्त्वाभावादिकेभी अभावसेही='विद्यमान' सत्त्वाभावका विशेपण है, सत्त्वका राहित्य होनेपरभी सत्वात्यन्ताभाव आवश्यक है यह अपास्त हुआ।

ननु—एवं विशेषवत्त्वं धर्मवत्त्वं वा, अनिर्वाच्यत्वमस्त्विति—चेन्न; आस्तां तावदयं सुहृदुपदेशः । उपलक्षणस्य निष्पन्नत्वात् । यद्वा—सत्त्वादिना विचारासहत्वं सद्रूपत्वाद्यभावः । सत्त्वरूपधर्माभावेऽपि यथा ब्रह्मणः सद्रूपत्वं तथोपपादितमधस्तात् अतो न तत्रातिव्याप्तिः । नच—एवं सदात्मके ब्रह्मणि श्रौतसत्यपदादौ लाक्षणिकत्वं न स्यादिति—वाच्यम्; सत्त्वधर्म—विशिष्टवाचकस्य तस्य निर्धर्मके लक्षणाया आवश्यकत्वात् । नहि निर्धर्मकस्वरूपवाचकत्वं कस्यचिदपि पदस्यास्ति । ननु—सत्त्वादिराहित्यमतात्त्विकमपि न तावत् प्रातिभासिकम्; रूप्यप्रपञ्चयोर्ब्रह्मवत् पारमार्थिकत्वापत्तेः नापि धर्मिसमसत्ताकं, बाधबोध्यस्य भ्रान्तिसिद्धेन साम्यायोगात् नापि व्यावहारिकं, जगति व्यावहारिकत्वे रूप्ये प्रातिभासिकत्वे चोक्तदोषात् रूप्ये व्यावहारिकत्वे च जगति पारमार्थिकत्वापातेनाद्वैतहानिरिति चेन्न; धर्मिसमसत्ताकस्यैव सत्त्वादिविरहस्येष्टत्वात् ।

शङ्कते नन्विति । ऐसा है तो विशेषवत्त्व या धर्मवत्त्व अनिर्वाच्यत्व रहो इति चेन्न; अङ्गीकार किया जाता है आपका यह सुहृदुपदेश=आप जैसा कहते हैं वैसाही रहो आपने हमको ठीकही स्मरण करादिया । उक्त लक्षणको निष्पन्न होनेसे=विशेषवत्त्व या धर्मवत्व अनिर्वाच्यत्वका लक्षण निष्पन्न हुआ है । अथवा सत्त्वादिना विचारासहत्व सद्रूपत्वादिका अभावरूप है । सत्त्वरूपधर्मका अभाव होनेपरभी जैसे ब्रह्मको सद्रूपत्व है तैसे उपपादन कर दिया है अधस्तात्=मिथ्यात्वानुमानमें अतः ब्रह्ममें अतिव्याप्ति नहीं । ऐसा होनेपर सदात्मक ब्रह्म निरूपित श्रौतसत्यादि पदोंमें लाक्षणिकत्व न होगा इति नच वाच्यम् सत्त्वधर्मविशिष्टवाचक श्रौत सत्यादिपदोंमें निर्धर्मक ब्रह्मनिरूपित लक्षणाको आवश्यकत्व होनेसे, क्योंकि निर्धर्मकस्वरूपवाचकत्व किसीभी पदको नहीं है । शङ्कते नन्विति । अतात्त्विकभी सत्त्वादिराहित्य प्रातिभासिक तो नहीं है रूप्य तथा प्रपञ्च इन दोनोंको ब्रह्मवत् पारमार्थिकत्वकी आपत्तिसे । तैसे सत्त्वादिराहित्य धर्मिसमसत्ताकभी नहीं है—बाधसे बोध्यका भ्रान्तिसिद्धके साथ साम्यका अयोग होनेसे=सत्त्वराहित्य बाध्यबोध्य है और धर्मी भ्रान्तिसिद्ध है । तैसे सत्त्वादिराहित्य व्यावहारिकभी नहीं है जगति=जगत्में रहनेवाले सत्वादिराहित्यमें प्रातिभासिकत्व होनेपर उक्त दोपसे=बाधबोध्यके साथ भ्रान्तिसिद्धके साम्यका अयोगरूप जो दोष उस दोपसे= व्यावहारिक प्रपञ्चमें व्यावहारिक सत्त्वराहित्य नहीं बन सकता है, और प्रातिभासिकमें प्रातिभासिक सत्वादिराहित्य नहीं बन सकता है, अन्यथा धर्मीकी नाई सत्त्वादिराहित्यकोभी बाधबोध्यत्व न होगा, और रूप्यमें रहनेवाले सत्त्वराहित्यमें यदि व्यावहारिकत्व होगा, तो व्यावहारिक प्रपञ्चमें रहनेवाले सत्त्वादिराहित्यमें पारमार्थिकत्व होगा, तथा च ब्रह्मातिरिक्तमें पारमार्थिकत्व रह जानेसे अद्वैतकी हानि है, इति चेन्न; क्यों ? धर्मिसमसत्ताक सत्त्वादिविरहकोही इष्टत्व होनेसे ।

नच—बाधबोध्यस्य भ्रान्तिसिद्धेन साम्यायोगः । बाधस्याधिष्ठानमात्रगोचरत्वेन रूप्यवत्तत्सत्त्वविरहस्यापि साक्षिसिद्धतया बाध्यबोध्यत्वाभावात् नचैवं सत्त्वप्रती-

तिविरोधः, अतात्विकस्य तस्याप्यङ्गीकारात्। न चैवं तात्विकसत्त्वविरहस्यैव लक्षणत्वपर्यवसानम् तात्विकत्वं चावाध्यत्वम् तथाच वाध्यत्वमेव लक्षणमस्त्विति—वाच्यम् वाध्यत्वस्यान्यविशेषणत्वेनोपात्तस्य लक्ष्ये धर्मिण्यनन्वयेन तन्मात्रमुपादायेतरवैयर्थ्यस्य वक्तुमशक्यत्वात्। नच श्रुत्या युक्त्या च भेदं निराकुर्वता कथं सदसद्भिन्नत्वरूपं तद्व्याप्तं वाऽनिर्वाच्यत्वम् समर्थ्येत इति—वाच्यम्, मा विषीद अतात्विकस्यैव तस्य समर्थनात् वाध्यत्वं तु मिथ्यात्वनिरूपणसमय एव निरूपितम्। तस्मात् न शुक्तिरूप्यप्रपञ्चसाधारणानिर्वाच्यत्वलक्षणानुपपत्तिः।

इत्यद्वैतसिद्धौ अनिर्वाच्यत्वलक्षणम्।

वाध्यवोध्यका भ्रांतिसिद्धके साथ साम्यका अयोग है नच=यह दोष नहीं है, क्यों? वाधको अधिष्ठानमात्र का गोचरत्व होनेसे रूप्यकी तरह रूप्यीयसत्त्वविरहकोभी साक्षिसिद्धत्व होनेसे, वाधवोध्यत्वके अभावसे—सत्त्वविरह साक्षिसिद्ध है नकि वाधवोध्य। ऐसा होनेपर सत्त्वकी प्रतीतिका विरोध है नच=विरोध नहीं है क्यों? अतात्त्विक सत्त्वकाभी अङ्गीकार होनेसे। ऐसा होनेपर तात्त्विकसत्त्वके विरहकाही लक्षणत्वेन पर्यवसान हुआ, और तात्त्विकत्व अवाध्यत्वरूप है तथाच वाध्यत्व अनिर्वाच्यत्वका लक्षण रहो इति नच वाच्यम् क्यों? अन्यविशेषणत्वेनोपात्तस्य=अभावविशेषणत्वेन उपात्त वाधका लक्ष्यभूत धर्मीमें अन्वय न होनेसे, तन्मात्रको लेकर इतरके वैयर्थ्यको कहनेके लिए अशक्यत्व होनेसे। श्रुतिसे और युक्तिसे भेदको खण्डित करनेवाले तुमसे सदसद्भिन्नत्वरूप या सदसद्भिन्नत्वका व्याप्तरूप अनिर्वाच्यत्व कैसे समर्थित किया जाता है, इति नच वाच्यम्, मा विषीद=घवडा मत, क्यों? अतात्त्विकभेदघटित अनिर्वाच्यत्वके समर्थनसे। और वाध्य तो मिथ्यात्वके निरूपण समयमेंही निरूपित हो चुका है। यतः द्वैतीकी शङ्काओंका सर्वथा परासन हो चुका है, तस्मात् शुक्तिरूप्यप्रपञ्चसाधारण अनिर्वाच्यत्वके लक्षणकी अनुपपत्ति नहीं।

इति सरलायामनिर्वाच्यत्वलक्षणोपपत्तिः।

अथाविद्यानिर्वाच्यत्वे प्रत्यक्षानुमानप्रमाणनिरूपणम्।

प्रमाणञ्च प्रत्यक्षानुमानागमार्थापत्तयः। प्रत्यक्षं तावन्मिथ्यैव रजतमभादित्यादि। नच मिथ्याशब्दोऽसत्पर्यायः, वक्ष्यमाणयुक्त्या नृशृङ्गादिसाधारणासत्त्वस्य ख्यायमानरूप्यादौ वक्तुमशक्यत्वात्। न चैतावन्तं कालमसदेव रजतमभादित्यनुभवविरोधः; अनिर्वाच्यत्वैकदेशसत्त्वव्यतिरेकविषयत्वेनैवोपपत्तेः। न चैवं सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्मेत्यत्रापि सत्यमित्यस्यासत्वव्यतिरेकविषयतयैवोपपत्तिः; ब्रह्मणि सद्रूपतायाः प्रागुपपादितत्वेन तस्यासत्त्वव्यतिरेकविषयत्वकल्पनाया अनुचितत्वात् तथाच ब्रह्मणि सत्प्रत्ययस्य रूप्ये असत्प्रत्ययस्य च सत्त्वासत्त्वयोर्बाधकासत्त्वतत्सत्त्वाभ्यां विशेषेण न प्रसङ्गसाम्यम्।

अथ सरलायामविद्यानिर्वाच्यत्वे प्रत्यक्षानुमानप्रमाणनिरूपणम् ।

अनिर्वाच्यत्वमें प्रमाण तो प्रत्यक्ष–अनुमान–आगम–अर्थापत्ति है। मुझको मिथ्याही रजत प्रतीत हुआ, इत्यादि प्रत्यक्ष अनिर्वाच्यत्वमें प्रमाण है। मिथ्याशब्द असत् शब्दका पर्याय=असत् शब्दका जो अर्थ है, उसी अर्थवाला मिथ्याशब्द है नच=ऐसा नहीं है, क्यों? वक्ष्यमाण=आगे कही जानेवाली युक्तिसे नरशृङ्गादिसाधारण असत्त्वको ख्यायमान प्रत्यक्षरूप्यादिमें कहनेके लिए अशक्यत्व होनेसे। इतने कालतक असत्ही रजत प्रतीत हुआ, इत्याकारक अनुभवके साथ विरोध है नच=विरोध नहीं है, क्यों? अनिर्वाच्यत्वका एकदेश जो सत्त्वव्यतिरेक तादृशसत्त्वव्यतिरेकविषयत्वेन ही उक्त अनुभवकी उपपत्तिसे। ऐसा है तब तो 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म '(तै०२।१।१)यहाँपरभी सत्यम् इस अंशकी असत्वव्यतिरेकविषयताही उपपत्ति है नच=नहीं है, क्यों? ब्रह्ममें सद्रूपताको पूर्वमें उपपादित हो चुकनेसे तस्य=उक्त श्रुतिघटक सत्यपदजन्यज्ञानमें असत्त्वव्यतिरेकविषयत्वकी कल्पनाको अनुचितत्व होनेसे। तथाच ब्रह्ममें जो सत्प्रत्यय होता है उसको अबाध्यत्वरूपसत्त्वविषयकत्व होनेमें कोई बाधक नहीं है, और रूप्यमें जो असत् प्रत्यय होता है उसमें असत्त्वविषयकत्व माननेमें तो प्रत्यक्षही बाधक है, फलतः बाधकासत्त्व और बाधकसत्त्वं एतदुभयकृत विशेष होनेसे उभयत्र प्रसङ्गका साम्य नहीं है।

अनुमानञ्च ' विमतं ' सत्वरहितत्वे सति असत्वरहितत्वे सति सत्त्वासत्त्वरहितम्, बाध्यत्वाद्दोषप्रयुक्तभानत्वाद्वा, यन्नैवं तन्नैवं यथा ब्रह्म। नचाप्रसिद्धविशेषणत्वम्, सत्त्वासत्वे, समानाधिकरणात्यन्ताभावप्रतियोगिनी, धर्मत्वाद्रूपरसवत् सत्त्वमसत्त्वानधिकरणानिष्ठम् असत्त्वं वा, सत्त्वानधिकरणानिष्ठम्, धर्मत्वाद्रूपवदिति सामान्यतस्तत्सिद्धेः। नच साध्यैकदेशसिद्ध्या अंशतः सिद्धसाधनम् गुणादिकं गुण्यादिना भिन्नाभिन्नम् समानाधिकृतत्वादित्यत्रेव सिपाधयिषाबलेन सिद्धसाधनविरहस्योपपादितत्वात्।

अनिर्वाच्यत्वमें अनुमान दिखलाते हैं अनुमानञ्चेति। विमत, सत्त्वरहितत्वविशिष्ट असत्वरहितत्वविशिष्ट होकर सत्त्वासत्त्वोंसे रहित है, बाध्यत्व होनेसे, या दोषप्रयुक्तभानत्व होनेसे यन्नैवम्=जो उक्त साध्याभाववाला है, तन्नैवं=वह उक्त हेत्वभाववाला है, जैसे शुद्ध ब्रह्म। इस अनुमानमें अप्रसिद्धविशेषणत्व है नच=अप्रसिद्धविशेषणत्व नहीं है, क्यों? सत्त्व तथा असत्त्व ये दोनों एकाधिकरणवृत्ति–अत्यन्ताभावके प्रतियोगी हैं, धर्मत्व होनेसे रूपरसकी तरह=रूपरसमें धर्मत्वरूप हेतुभी है, और पवनादिरूप–एकाधिकरणवृत्ति–अत्यन्ताभावप्रतियोगित्वभी है, सत्त्व असत्त्वानधिकरणमें अवृत्ति है, अथवा असत्त्व सत्त्वानधिकरणमें अवृत्ति है धर्मत्व होनेसे, रूपवत्=रूपमें धर्मत्वरूप हेतु है, और साध्यभी है, इति=इस अनुमानद्वयसे सामान्यतः साध्यकी सिद्धिसे। साध्यैकदेशसिद्ध्या=असत्वरहितत्वरूप साध्यैकदेशकी सिद्धिसे सिद्धसाधन है नच=सिद्धसाधन नहीं है, क्यों? गुणादिकं गुण्यादिना भिन्नाभिन्नं समानाधिकृतत्वात् यहाँकी नाई सिपाधयिषाके बलसे सिद्धसाधनके विरहको उपपादित हो चुकनेसे=यह विषय प्रथम मिथ्यात्वनिरुक्तिमें द्रष्टव्य है।

नच—सत्वासत्वयोः परस्परविरहरूपतया साध्यव्याहतमिति वाच्यम्; अतात्त्विकत्वेन च परस्परविरहानात्मकत्वेन च समाहितत्वात्। भेदस्य तात्त्विकस्यैव निरसिष्यमाणत्वेन न तेन विरोधः। नच ब्रह्मवत् सत्त्वराहित्येऽपि सद्रूपत्वेनानिर्वाच्यत्वाभावोपपत्त्या अर्थान्तरम्; सत्वरहितस्य प्रपञ्चस्य सद्रूपत्वेन मानाभावेन बाधात्। ब्रह्मणि च शून्यतापत्तिरेव सद्रूपत्वे प्रमाणम्। नच—विमतं सदसदात्मकम्, बाध्यत्वात् व्यतिरेकेण ब्रह्मवत् इत्याभाससाम्यं, विमतमसत्, सत्त्वानधिकरणत्वात् नृशृङ्गवत् इति सत्प्रतिपक्षश्चेति—वाच्यम्। ख्यातिबाधान्यथानुपपत्तिलक्षणविपक्षबाधकतर्कस्य वक्ष्यमाणत्वेनाभाससाम्यसत्प्रतिपक्षयोरभावात्। नचासदेव रजतमभादिति प्रत्यक्षबाधः असदित्यस्य सत्त्वाभावविषयकत्वस्योक्तत्वात् अन्यथाख्यात्यनुपपत्तेः। अतएव मिथ्याशब्दोऽसत्पर्याय इति निरस्तम्।

शङ्कते नचेति। सत्त्व तथा असत्त्व इन दोनोंको परस्पर अभावरूपता होनेसे साध्यव्याहत है=एकाधिकरणमें दोनोंका विरह नहीं मिल सकता है, अतः व्याहत है इति न वाच्यम् क्यों? विरहोंको अतात्त्विकत्वेन और सत्त्वसत्त्वोंको परस्परविरहानात्मकत्वेन समाहित हो चुकनेसे। और तात्त्विक भेदकोही खण्डित किया जानेवाला होनेसे भेदखण्डनसे विरोध नहीं है=यथा कथञ्चित् भेदको मानकर साध्यादिकी व्यवस्था हो सकती है। ब्रह्मवत्=जैसे ब्रह्ममें सत्त्वराहित्य होनेपरभी सद्रूपता है तैसे पक्षमें सत्त्वका राहित्य होनेपरभी सद्रूपत्व होनेसे अनिर्वाच्यत्वाभावकी उपपत्तिसे अर्थान्तर है नच=अर्थान्तर नहीं है, क्यों? सत्त्वसे रहित प्रपञ्चके सद्रूपत्वमें प्रमाणके अभावसे सद्रूपत्वके बाधसे। और ब्रह्ममें तो शून्यापत्तिही सद्रूपत्वमें प्रमाण है। विमत, सदसदात्मक है, बाध्यत्वात् जो सदसदात्मक नहीं होता है वह बाध्यभी नहीं होता है जैसे शुद्धब्रह्म इत्याकारक जो आभास उस आभासका साम्य है आपके अनुमानमें, और विमत असत् है, सत्त्वका अनधिकरण होनेसे नृशृङ्गवत् यह सत्प्रतिपक्षभी है, इति नच वाच्यम् क्यों? ख्यातिः=प्रत्यक्ष और बाध इन दोनोंकी अन्यथानुपपत्तिरूप जो विपक्षमें बाधक तर्क है, उस तर्कको कहा जानेवाला होनेसे, आभाससाम्य और सत्प्रतिपक्ष इन दोनोंका अभाव होनेसे 'असत् ही रजत प्रतीत हुआ' इत्याकारक प्रत्यक्षसे बाध है, नच=बाध नहीं है, क्यों? असत् इसमें सत्त्वाभावविषयकत्वको अनुपदमेंही उक्त होनेसे, अन्यथा=ऐसा न माननेपर प्रत्यक्षकी अनुपपत्ति है, अतः जैसा कहा गया है वैसाही ठीक है। अतएव=प्रत्यक्षानुपपत्तिसेही मिथ्याशब्दभी असत्का पर्याय है यह व्युदस्त हुआ।

नचैवं ब्रह्मण्यपि सत्त्वाभावेनासदिति बुद्धिः स्यात्; निर्धर्मके सत्त्वरूपधर्माभावविषयकप्रतीतेरिष्टत्वात्। तुच्छत्वविषयकप्रतीतेरापादकाभावात्। नचैवमसत्त्वाभावेन जगति सदिति प्रतीत्यापत्तिः इष्टापत्तेः। नच नृशृङ्गासत्त्वबुद्धितो नास्यावैलक्षण्यमनुभूयत इति—वाच्यम्; एतावता तस्या अपि सत्त्वराहित्यविषयकत्वमस्तु नतु तदनुरोधेन

एतस्यास्तुच्छत्वविषयकत्वम्; तुच्छत्वे अत्र बाधकसत्त्वात् समानाकारप्रतीत्योरपि विचित्रविषयकत्वस्य प्रागेवदर्शितत्वाच्च । यत्तु सत्त्वासत्त्वविकल्पेषु आद्यद्वितीययोर्जगतीति सत्त्वराहित्यांशे रूप्यादावसत्त्वराहित्यांशे तृतीयचतुर्थयोः उभयत्राप्यसत्त्वराहित्यांशे पञ्चमे तूभयत्र सत्त्वराहित्यांशे सप्तमेऽप्युक्तन्यायेन उभयत्राप्यसत्त्वराहित्यांशे एवमेवाबाध्यत्वशून्यत्वे प्रामाणिकत्वशून्यत्वे च पक्षे बाधः । षष्ठे त्वबाध्यत्वरूपसत्त्वेनाप्युपपत्त्या अर्थान्तरम्—इति तन्न; पूर्वोक्तासत्त्वमादायांशतो बाधसिद्धसाधनादेः परिहृतत्वात् ।

ऐसा होनेपर ब्रह्ममेंभी सत्त्वाभाव होनेसे 'असत्' इत्याकारक बुद्धि होगी नच= ऐसी शङ्का नहीं करना, क्यों ? निर्धर्मकब्रह्ममें सत्त्वरूप जो धर्म तादृश सत्त्वरूपधर्माभावविषयक प्रतीतिको इष्टत्व होनेसे, ब्रह्ममें तुच्छत्वविषयक प्रतीतिके आपादकके अभावसे । एवम् असत्त्वाभावसे जगत्‌में 'सत्' इत्याकारक प्रतीतिकी आपत्ति है । नच=ऐसी शङ्काभी नहीं करना, क्यों ? इष्टापत्तिसे । नृशृङ्गमें रहनेवाला जो असत्त्व तादृश—असत्त्वविषयक जो बुद्धि उस बुद्धिसे अस्याः=असत् रजतमभात्, इसका वैलक्षण्य अनुभूत नहीं होता है इति नच वाच्यम्, इतनेसे तस्या अपि=नृशृङ्गासत्त्वविषयक बुद्धिकोभी सत्त्वराहित्यविषयकत्व रहो, तदनुरोधसे=नृशृङ्गासत्त्वविषयकबुद्धिके अनुरोधसे प्रकृत बुद्धिको तुच्छविषयकत्व नहीं माना जा सकता है यहाँ तुच्छत्वमें बाधका सत्त्व होनेसे और समानाकार प्रतीतिओंकेभी विचित्रविषयकत्वको प्रथम ही दिखला दिया होनेसेभी । सत्त्वासत्त्वविकल्पेषु=इस प्रमाण निरूपण प्रकरणसे पूर्व अनिर्वाच्यत्व लक्षणप्रकरणमें प्रकृतोपयोगि सत्त्वासत्त्व किं रूप है एतदर्थक विकल्प किये गये हैं सत्ताजातिरूप सत्त्व है या अर्थक्रियाकारित्वरूप सत्त्व है अथवा अबाध्यत्वरूप सत्त्व है या प्रामाणिकत्वरूप सत्त्व है या अशून्यत्वरूप सत्त्व है, अथवा ब्रह्मत्वरूप सत्त्व है या पराङ्गीकृतरूप सत्त्व है, इन पक्षोंका निषेधकर अन्तमें बतलाया है कि जब ये सत्त्वलक्षण प्रकृतोपयोगी नहीं हो सकते हैं तब इन्होंके विरहको असत्त्वरूपताभी नहीं बन सकती है, सो इसी वृत्तार्थका यहांपर अनुवाद कर समाधान दिखलाते हैं आद्येति । आद्यद्वितीययोः=सत्ताजातिरूपसत्त्व है इस प्रथममें और अर्थक्रियाकारित्वरूप सत्त्व है इस द्वितीयपक्षमें जगत्‌में सत्त्वराहित्यांशमें बाध है=उक्तविध सत्त्व जगत्‌में रहता है, अतः सत्त्वराहित्यांशमें बाध है, और शुक्तिरूप्यादिमें असत्त्वराहित्यांशमें बाध है=उक्तविधसत्त्वाभावरूप असत्त्व शुक्तिरूप्यादिमें रहता है, अतः असत्त्वराहित्यांशमें बाध है । तृतीयचतुर्थयोः=अबाध्यरूप सत्त्व है इस तृतीयपक्षमें और प्रामाणिकत्वरूप सत्त्व है इस चतुर्थ पक्षमें उभयत्रापि=जगत् शुक्तिरूप्य इन दोनोंमें असत्त्वराहित्यांशमें बाध है=बाध्यत्व और अप्रामाणिकत्वरूप असत्त्वका उभयत्र सद्भाव होनेसे असत्त्वाभावका बाध है । पञ्चमे तु=अशून्यत्वरूप पञ्चम पक्षमें तो उभयासत्त्वराहित्यांशमें बाध है=अशून्यत्वरूप सत्त्वके रह जानेसे शून्यत्व-

रूप सत्त्वराहित्यांशमें बाध है। सप्तमेऽपि उक्तन्यायेन=असत्वाभावरूप सत्त्व है इस पराङ्गी-कृतरूप सप्तम पक्षमेंभी उक्तन्यायेन=सत्त्वका निषेध होनेपर सत्त्वाभावरूप असत्त्वको आवश्यक होनेसे असत्त्वराहित्यांशमें बाध है, इसी रीतिसे अबाध्यत्वशून्यत्वे=तृतीय पक्षरूप सत्त्वके अभावांशमें और प्रामाणिकत्वशून्यत्वे=चतुर्थ पक्षरूप सत्त्वके अभावांशमें मेरे मतमें जगति=पक्षमें बाध है और पष्ठ पक्षमें तो अबाध्यत्वरूप सत्त्वसेभी अब्रह्मत्वकी पक्षमें उपपत्ति होनेसे अर्थान्तर है। इति यत् तत् तु न=ऐसा जो कथन है वहभी ठीक नहीं क्यों ? पूर्वोक्तासत्त्वमादाय=पराङ्गीकृत असत्त्वको लेकर या सत्त्वेनप्रतीत्यनर्हत्वरूप असत्त्वको लेकर बाधसिद्धसाधनादिको परिहृत हो चुकनेसे।

एवं सामान्यतो अनिर्वाच्यत्वसाधकमप्येतदर्थपरतया नेयम् व्याघातादिपरिहा-रोऽप्येवमेव। ननु—साध्यप्रसिद्ध्यर्थानुमाने सत्त्वासत्त्वे समानाधिकरणात्यन्ताभावप्रतियो-गिनी न भवतः परस्परात्यन्ताभावत्वात् घटत्वाघटत्ववत् असत्त्वं सत्वानधिकरणानिष्ठं न तत्प्रतिषेधरूपत्वात् यथा अनित्यत्वं नित्यत्वानधिकरणानिष्ठं न, एवं सत्त्वमपि पक्षी-कृत्य प्रयोक्तव्यमिति सत्प्रतिपक्षता परस्परविरहानात्मकत्वं चोपाधिरिति—चेन्न; सत्त्वा-सत्त्वयोः परस्परविरहानात्मकत्वस्योक्तत्वेन हेतोरसिद्धत्वात् उपाधेः साधनव्यापकत्वाच्च, ख्यातिबाधान्यथानुपपत्त्या विपक्षबाधकतर्केण उपाधिसत्प्रतिपक्षयोरनवकाशात्।

इस रीतिसे सामान्यतः अनिर्वाच्यत्वसाधक अनुमानभी एतदर्थपरतया नेय है। और व्याघातादिका परिहारभी इसी प्रकारसे है, शङ्कते नन्विति। साध्यकी प्रसिद्धिके लिये किये गये अनुमानमें सत्त्व तथा असत्त्व ये दोनों समानाधिकरण जो अत्यन्ताभाव तादृश अत्यन्ताभावके प्रतियोगी नहीं है परस्परात्यन्ताभावरूपत्व होनेसे, घटत्वाघटत्ववत्, असत्त्व सत्त्वानधिकरणमें अनिष्ठ नहीं है, सत्त्वका प्रतिषेधरूपत्व होनेसे, जैसे अनित्यत्व नित्यत्वानधिकरणमें अनिष्ठ नहीं है, इसी रीतिसे सत्त्वकोभी पक्षकर प्रयोग करणीय है इस रीतिसे सत्प्रतिपक्षताहै, और परस्परविरहानात्मकत्व उपाधिभी उक्त सिद्धान्तीके अनुमानमें है=रूपरसमें परस्परविरहा-नात्मकत्व है अतः साध्यव्यापकत्व है, और धर्मत्वरूपहेतु तो सत्त्वासत्त्वमें है परन्तु वहाँ परस्पर-विरहात्मकत्व है न कि परस्पर विरहानात्मकत्व अतः—उपाधिमें साधनाव्यापकत्व है, इति चेन्न क्यों ? सत्त्व तथा असत्त्व इन दोनोंको परस्परविरहानात्मकत्व होनेसे हेतुको असिद्धत्व होनेसे, परस्पर विरहात्मकत्व न होनेसेही उपाधिको साधनव्यापकत्वभी है, अतः और ख्याति-बाधान्यथानुपपत्तिरूप विपक्षमें बाधक जो तर्क हैं उससे उपाधि तथा सत्प्रतिपक्ष इन दोनोंको अवकाश न होनेसे।

यत्तु नित्यानित्यत्वदृष्टान्ते साधनवैकल्यमुक्तं तदयुक्तम् परेण ध्वंसाप्रतियोगित्वत-त्प्रतियोगित्वयोः परस्परविरहरूपयोः नित्यत्वानित्यत्वयोः सविध एवोक्तेः। यत्तु—घटत्वा-

घटत्वे समानाधिकरणात्यन्ताभावप्रतियोगिनी, धर्मत्वात् रूपरसवत्, कल्पितत्वमकल्पितत्वानधिकरणानिष्ठम्, धर्मत्वाद्रूपवदिति चाभाससाम्यम् सद्विलक्षणत्वासद्विलक्षणत्वकल्पितत्वाकल्पितत्वदृश्यत्वादृश्यत्वदुर्निरूपत्वादुर्निरूपत्वादौ प्रथमस्य द्वितीयतृतीययोर्यथाक्रममसद्वैलक्षण्ये सद्वैलक्षण्ये च त्रिष्वपि ज्ञेयत्वव्यवहार्यत्वादौ व्यभिचारश्च—इति तन्न; क्षितिः सकर्तृका कार्यत्वात् घटवदित्यनुमाने अङ्कुरः सकर्तृकः कार्यत्वादित्याभाससाम्यम् अङ्कुरादौ व्यभिचारो वा यथा न दोषः तथा धर्मत्वेन हेतुना समानाधिकरणाभावप्रतियोगित्वं साधयतो मम घटत्वाघटत्वादौ साध्यसत्वेन व्यभिचाराऽभावात् हेतोश्चानाभासत्वात् ।

द्वैतीके सत्प्रतिपक्षानुमानमें किसीने परिहारान्तर किया है, उसका शिष्यकी व्युत्पत्तिके लिए उपन्यास कर वारण करते हैं, यत्त्विति । नित्यत्वानित्यत्वदृष्टान्तमें जो किसीने साधनवैकल्य कहा है वह अयुक्त है, क्यों ? परेण=द्वैतीसे परस्पर विरहरूप जो ध्वंसाप्रतियोगित्व और ध्वंसप्रतियोगित्व तादृश ध्वंसाप्रतियोगित्व ध्वंसप्रतियोगित्व जो नित्यत्व अनित्यत्व तादृशनित्यत्व अनित्यत्वको सविधे=पासमेंही उक्त होनेसे=द्वैतीने जैसे नित्यत्व अनित्यत्व माने हैं तैसे नित्यत्व अनित्यत्वमें परस्पर विरहरूपता है अतः हेतुकी असिद्धि नहीं कही जा सकती है; अनिर्वाच्यत्वरूप साध्यकी प्रसिद्धिके लिए इसी प्रकरणके आरम्भमें जो तीन अनुमान किये हैं उनमें द्वैतिदत्त दोषोंका अनुवादकर समाधान करते हैं यत्त्विति । घटत्व तथा अघटत्व ये दोनों समानाधिकरण—अत्यन्ताभावके प्रतियोगी हैं धर्मत्व होनेसे रूपरसवत्, कल्पितत्व अकल्पितत्वके अनधिकरणमें अनिष्ठ है धर्मत्व होनेसे रूपवत्, इस रीतिसे आपके अनुमानमें आभाससाम्य है, सद्विलक्षणत्व असद्विलक्षणत्व, कल्पितत्व अकल्पितत्व दृश्यत्व अदृश्यत्व दुर्निरूपत्व अदुर्निरूपत्व इत्यादिमें प्रथमस्य=प्रथम हेतुका व्यभिचार है=उक्त धर्मोंमें धर्मत्वरूप हेतु तो रहता है परन्तु समानाधिकरणात्यन्ताभावप्रतियोगित्व नहीं रहता है। अतः व्यभिचार है, द्वितीयतृतीययोः=सत्त्वपक्षक तथा असत्त्वपक्षक जो द्वितीय तथा तृतीय अनुमान हैं, उन्होंका क्रमशः असद्वैलक्षण्यमें और सद्वैलक्षण्यमें व्यभिचार है=असद्वैलक्षण्यमें धर्मत्वरूप हेतु रहता है, परन्तु वहाँपर असत्त्वानधिकरणमें अनिष्ठत्व नहीं है किन्तु निष्ठत्व है। अतः द्वितीयमें व्यभिचार है तैसे सद्वैलक्षण्यमेंभी धर्मत्वरूप हेतुहै परन्तु सत्त्वानधिकरणमें अनिष्ठत्व नहीं है किन्तु निष्ठत्व है अतः तृतीयमें व्यभिचार है । और तीनोंमें ज्ञेयत्व व्यवहार्यत्वादिको लेकर व्यभिचार है—ज्ञेयत्व व्यवहार्य्यत्वादिकोंको केवलान्वयित्व होनेसे यत्किञ्चिन्निरूपितभी अनिष्ठत्व=अवृत्तित्व नहीं है, और धर्मत्वरूप हेतु है अतः व्यभिचार है, इति यत् तन्न=ऐसा जो कहा है वह ठीक नहीं क्यों ? क्षिति सकर्तृका है, कार्य्यत्व होनेसे घटवत् इस अनुमानमें जैसे अङ्कुर सकर्तृक है कार्यत्व होनेसे इत्याकारक आभासका साम्य और अङ्कुरादिमें व्यभिचार ये दोनों नहीं हैं, तैसे धर्मत्वरूप हेतुसे समानाधिकरणाभावप्रतियोगित्व साधन करनेवाले मुझको घटत्वाघटत्वादिमें साध्यका सत्त्व होनेसे व्यभिचारके अभावसे और हेतुके अनाभासत्वसे ।

नह्यविरुद्धधर्मत्वादिकं तादृक्साध्यसत्त्वे प्रयोजकम् किन्तु धर्मत्वमात्रम्। नहि दृश्यत्वादिधर्माणां कुत्राप्यभावसंभवः, तदुक्तं नहि स्वरूपतो दुर्निरूपस्य किञ्चिदपिरूपं वास्तवं संभवतीति। अतएवात्यन्ताभावप्रतियोगित्वेऽपि न व्यभिचारः। नचात्मनिष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगित्वेनार्थान्तरम्, आत्मनो निर्धर्मकत्वेनात्यन्ताभावस्याप्यभावात् अनात्मनिष्ठत्वेन विशेषणाद्वा। नचैवं कल्पितत्वमकल्पितत्वानधिकरणानात्मनिष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगि,—अनात्मनिष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगित्वात् अकल्पितत्ववदित्यभाससाम्यम्; अस्याः प्रसक्तेरिष्टत्वात्। मिथ्यात्वे यथा मिथ्यात्वसाधकदृश्यत्वादेर्नव्यभिचारः तथास्यापि वादिविशेषं प्रति एकदेशसाधने न साध्याप्रसिद्धिशङ्कापि।

अविरुद्ध धर्मत्वादिक तादृश साध्यसत्वमें प्रयोजक नहीं है किन्तु धर्मत्वमात्र प्रयोजक है क्योंकि दृश्यत्वादिक धर्मोंके कहीं परभी अभावका असम्भव नहीं है, सो कहा है कि स्वरूपतः दुर्निरूपका कोईभी वास्तविकरूप नहीं वन सकता है। अत एव=स्वरूपतः दुर्निरूपका कोई वास्ताविक रूप नहीं हो सकता है इसलिए ही अत्यन्ताभावप्रतियोगित्वमेंभी व्यभिचार नहीं है। आत्मनिष्ठ जो सत्त्वासत्त्व-अत्यन्ताभाव उसको लेकर अर्थान्तर है नच=नहीं है, क्यों? आत्माको निर्धर्मकत्व होनेसे अत्यन्ताभावका भी वहाँ अभाव होनेसे, अथवा अभावको अनात्मनिष्ठत्वेन विशेषित करनेसेभी। इस रीतिसे कल्पितत्व अकल्पितत्वानधिकरणअनात्मनिष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगि, अनात्मनिष्ठात्यन्ताभावत्वका प्रतियोगित्व होनेसे अकल्पितत्ववत् इस अनुमानाभासके साथ साम्य है नच=ऐसी शङ्का नहीं करनी क्यों? इस प्रसक्तिको इष्टत्व होनेसे मिथ्यात्वमें जैसे मिथ्यात्वसाधक दृश्यत्वादिका व्यभिचार नहीं है तथा=तैसे अस्यापि= अनात्मनिष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगित्वरूप हेतुकाभी वस्तुतः वादिविशेषके प्रति एकदेशके साधनमें साध्याप्रसिद्धिकी शङ्काभी नहीं है।

तथाहि सत्ख्यातिवादिनं प्रति असद्विलक्षणं विमतं, सद्विलक्षणम्, बाध्यत्वात्, शुक्तिरजतसंसर्गवत्, असत्ख्यातिवादिनंप्रति सद्विलक्षणम् विमतं, असद्विलक्षणम्, अपरोक्षधीविषयत्वात् घटवत्। पक्षधर्मताबलादनिर्वचनीयत्वसिद्धिः। यथाच न सिद्धसाधनव्याघातादिकं तथोक्तमधस्तात्। एवं प्रपञ्चनिष्ठव्यतिरेकप्रतियोगित्वं सत्त्वासत्त्वोभयवृत्ति प्रपञ्चनिष्ठव्यतिरेकप्रतियोगिमात्रवृत्तित्वात् व्यवहार्य्यवत्। सदसदुभयवृत्तित्वं,—प्रपञ्चनिष्ठव्यतिरेकप्रतियोगित्ववृत्ति, सत्वासत्वोभयवद्वृत्त्यशेषवृत्तित्वात् भेदप्रतियोगित्ववत्। अप्रयोजकत्वमनुकूलतर्कोक्त्या निरसिष्यते। तस्मादनुमानमत्रमानम्।

इत्यद्वैतसिद्धौ अनिर्वाच्यत्वे प्रत्यक्षानुमाने।

तथाहि—सत्ख्यातिवादिनं प्रति=प्रपञ्चमें सत्त्व है ऐसा कहनेवालेके प्रति असत्से विलक्षण विमत, सत्से विलक्षण है बाध्यत्व होनेसे शुक्तिरजतसंसर्गवत्, असत्ख्यातिवादिनं-

प्रति=प्रपञ्चमें असत्व रहता है ऐसा कहने वालेके प्रति सत्से विलक्षण विमत, असत्से विलक्षण, है, अपरोक्षधीका विषयत्व होनेसे घटवत् यहाँ पक्षधर्मताके बलसे अनिर्वचनीयत्वकी सिद्धि है, और जैसे सिद्धसाधन व्याघातादिक नहीं हैं तैसे कहा है प्रथम। इस रीतिसे प्रपञ्चनिष्ठव्यतिरेकप्रतियोगित्व सत्त्वासत्त्वोभयवृत्ति है प्रपञ्चनिष्ठव्यतिरेकमात्रप्रतियोगित्व होनेसे व्यवहार्य्यवत्; सदसदुभयवृत्तित्व, प्रपञ्चनिष्ठव्यतिरेकप्रतियोगित्ववृत्ति, सत्त्वासत्त्वोभयवृत्त्यशेषवृत्तित्वात् भेदप्रतियोगित्ववत्, इन अनुमानोंमे अप्रयोजकत्वकी शङ्का अनुकूलतर्ककी उक्तिसे निरस्त की जायगी अत: अनुमान अत्र=अनिर्वाच्यत्वमें प्रमाण है।

इतिसरलायामनिर्वाच्यत्वे प्रत्यक्षानुमाननिरूपणम्।

अथाविद्यानिर्वचनीयत्वेऽर्थापत्तिप्रमाणनिरूपणम्।

अर्थापत्तिरपि ख्यातिबाधान्यथानुपपत्त्यादिरूपा तत्र प्रमाणम् तथाहि—विमतं रूप्यादि सच्चेन्न बाध्येत असच्चेन्न प्रतीयेत, बाध्यते प्रतीयतेऽपि तस्मात् सदसद्विलक्षणत्वादनिर्वचनीयम्, ननु—सत्ताजात्यर्थक्रियाकारित्वादिकमनङ्गीकारपराहतं त्वन्मते व्यभिचारिच, नच व्यवहारदशाबाध्यत्वमापाद्यम्, तथासति नेहनानेति श्रौतनिषेधेन व्यवहारदशायामबाध्यस्य जगतोऽनिर्वचनीयत्वासिद्धिप्रसङ्गात् यौक्तिकबाधस्य व्यवहारदशायामपि दर्शनाच्च। अबाध्यत्वरूपं सत्त्वमापाद्याविशिष्टम्, प्रामाणिकत्वं तु ब्रह्मनिष्ठनिर्विशेषत्वादौ तत्त्वावेदकश्रुतिवेद्ये ब्रह्मभिन्नतया बाध्ये व्यभिचारीति सत्वानिरुक्तिः इति मैवम्।

अथसरलायामविद्यानिर्वचनीयत्वेऽर्थापत्तिप्रमाणनिरूपणम्।

ख्यात्यन्यथानुपपत्तिरूप तथा बाधान्यथानुपपत्त्यादिरूप अर्थापत्तिभी तत्र=अविद्याके अनिर्वचनीयत्वमें प्रमाण है इसी अर्थको स्पष्ट करते हैं, तथाहि—विवादास्पदीभूत रूप्यादि यदि सत् है तो बाधित न होना चाहिए, और यदि असत् है तो प्रतीत न होना चाहिए= सद्रूप ब्रह्म है वह बाधित नहीं होता है और असद्रूप शशशृङ्गादि है वह प्रतीत नहीं होता है, शुक्तिरूप्यभी यदि उक्तविध होगा तो वह बाधित तथा प्रतीत न होगा, परन्तु बाधितभी होता है और प्रतीतभी होता है तस्मात्=बाधसे तथा प्रतीतिसे सदसद्विलक्षणता होनेसे अनिर्वचनीयत्व है=शुक्तिरूप्यादि अनिर्वचनीय हैं। शङ्कते नन्विति। सत्ताजातिरूप तथा अर्थक्रियाकारित्वादिरूप सत्त्व तो हमारे मतमें शुक्तिरूप्यादिमें अनङ्गीकारसे पराहत है अतः उक्तरूपसत्त्वको आप आपादक नहीं बना सकते हो, और तुह्मारे मतमें शुक्तिरूप्यादिमें तथा प्रपञ्चमें व्यभिचारिभी है=शुक्तिरूप्यादिमें तथा प्रपञ्चमें तुह्मारे मतमें उक्तरूप सत्त्व है परन्तु बाध्यत्वाभाव नहीं है किन्तु बाध्यत्वही है अतः व्यभिचारि है। प्रपञ्चमें व्यभिचाराभावकी शङ्का करते हैं नचेति। व्यवहारदशामें अबाध्यत्व आपाद्य है और तादृश अबाध्यत्वको प्रपञ्चमें रहजानेसे व्यभिचार नहीं है नच=व्यवहारदशामें अबाध्यत्व आपाद्य नहीं बन सकता है, क्यों ? तैसा हो-

नेपर ' नेह नाना (बृ० ४।४।१२, क० ४।११)' इस श्रौतनिषेधसे व्यवहारदशामें अबाध्य जो जगत् उस जगतके अनिर्वचनीयत्वकी असिद्धिके प्रसङ्गसे, यौक्तिकबाध्यस्य=किसी दृश्यमें यौक्तिक मिथ्यात्वको व्यवहारदशामेंभी देखनेसे और अबाध्यत्वरूप सत्त्वतो आपाद्यसे अविशिष्ट है। और प्रामाणिकत्वरूप सत्त्व तो तत्त्वावेदक श्रुतिसे वेद्य और ब्रह्मभिन्न होनेसे बाध्य एवं भूत जो ब्रह्मनिष्ठनिर्विशेषत्वादि उस निर्विशेषत्वादिमें व्यभिचारी है,=ब्रह्मनिष्ठनिर्विशेषत्वादिमें तत्त्वावेदकश्रुतिवेद्यत्वरूप प्रामाणिकत्व है, परन्तु ब्रह्मभिन्नत्व होनेसे अबाध्यत्व नहीं है अतः व्यभिचारी है इस रीतिसे सत्त्वकी अनिरुक्ति है, निषेध करते हैं मैवम्=ऐसा नहीं है, क्योंकि—

सत्त्वं ह्यत्र प्रामाणिकत्वम्, प्रमाणत्वञ्च तत्त्वावेदकत्वं तच्च लक्षणया शुद्धब्रह्मबोधकवेदान्तवाक्ये, नतु निर्विशेषत्वादिधर्मप्रतिपादके अतो न तत्र व्यभिचारः। नच स्वतः प्रकाशमाने ब्रह्मणि चिन्मात्रे वैयर्थ्येन प्रमाणाप्रवृत्त्या प्रामाणिकत्वाबाध्यत्वयोर्व्याप्तिग्रहो न स्यात्, प्रत्युत ब्रह्मभिन्न एव प्रामाणिकत्वसत्त्वेन तस्य बाध्यत्वेनैव सह व्याप्तिः स्यादिति वाच्यम्, ब्रह्मणः स्वप्रकाशत्वेऽपि व्यवहारप्रतिबन्धकाज्ञाननिवृत्त्यर्थं प्रमाणप्रवृत्तेः सफलत्वात्। अतएव न बाध्यत्वेन सह प्रामाणिकत्वस्य व्याप्तिः, ब्रह्मणि व्यभिचाराद्विरोधाच्च। न हि तत्त्वमावेदयता वेद्यमतत्त्वं नाम।

सत्त्व यहाँपर प्रामाणिकत्वरूप है, और प्रमाणत्व तत्त्वावेदकत्वरूप है, तच्च=वह प्रमाणत्वतो लक्षणासे शुद्धब्रह्मबोधक वेदान्तवाक्यमें है, निर्विशेषत्वादिधर्मप्रतिपादक वाक्यमें नहीं अतः तत्र=ब्रह्मनिष्ठनिर्विशेषत्वादिमें व्यभिचार नहीं है। शङ्कते नचेति। स्वतः प्रकाशमान चिन्मात्र जो ब्रह्म है उस ब्रह्ममें वैयर्थ्येन=फलाभावप्रयुक्तप्रमाणकी प्रवृत्ति न होनेसे ब्रह्ममें प्रामाणिकत्व और अबाध्यत्व इन दोनोंकी व्याप्तिका ज्ञान न होगा, उल्टा ब्रह्मभिन्नमेंही प्रामाणिकत्वके सत्त्वसे, तस्य=प्रामाणिकत्वकी बाध्यत्वके साथ ही व्याप्ति होगी, इति नच वाच्यम् क्यों ? ब्रह्मको स्वप्रकाशत्व होनेपरभी व्यवहारका प्रतिबन्धक जो अज्ञान तादृश अज्ञानकी निवृत्तिके लिए ब्रह्ममें प्रमाणकी प्रवृत्तिको सफलत्व होनेसे। अतएव=उक्त प्रकारसे ब्रह्ममें प्रमाणप्रवृत्तिको उपपन्न होनेसेही बाध्यत्वके साथ प्रामाणिकत्वकी व्याप्ति नहीं है, ब्रह्ममें व्यभिचार होनेसे और विरोध होनेसेभी—विरोधको स्पष्ट करते हैं नहीति। तत्त्वको आवेदन करनेवाला जो प्रमाण उस प्रमाणसे वेद्य अतत्त्व नहीं हो सकता है।

ननु—रूप्यादिबाधकस्य तत्त्वावेदकत्वे अद्वैतहानिः अतत्त्वावेदकत्वे तन्निबन्धनं रूप्यादेरप्रामाणिकत्वं न स्यादिति—चेन्न; बाधकस्यातत्त्वावेदकत्वेऽपि रूप्याद्यप्रामाणिकत्वे प्रयोजकतैव बाध्यान्यूनसत्ताकत्वस्यैव बाधकत्वे तन्त्रत्वात्, अतएव अतत्त्वावेदकव्यावहारिकप्रमाणाबाधितस्यापि रूप्यादेरद्वैतवत् स्वतः प्रामाण्यप्रयुक्तपारमार्थिकत्वमस्तु। नचास्य तत्त्वावेदकाद्वैतश्रुतिबाधः तस्याः भेदश्रुतिवत्, प्रत्यक्षप्राप्त-

व्यावहारिकरूप्यनिषेधानुवादितयोपपत्तेरिति निरस्तम्, अधिकरणानात्मकत्वपक्षे द्वैतनिषेधस्यापि व्यावहारिकत्वोपपादनाच्च।

शङ्कते नन्विति। शुक्तिरूप्यादिका जो बाधक है उस बाधकको तत्त्वावेदकत्व होनेपर अद्वैतकी हानि है। अतत्त्वावेदकत्वे=शुक्तिरूप्यादिके बाधकको अतत्त्वावेदकत्व होनेपर तन्निबन्धनम्=बाधकाधीन शुक्तिरूप्यादिका अप्रमाणिकत्व न होगा इति चेन्न, क्योंकि—बाधकको अतत्त्वावेदकत्व होनेपरभी रूप्यादिके अप्रामाणिकत्वमें प्रयोजकताही है बाध्यसे अन्यूनसत्ताकत्वकोही बाधकत्वमें तन्त्रत्व होनेसे, अतएव=बाध्यसे अन्यूनसत्ताकत्वको बाधकत्वमें तन्त्रत्व होनेसेही अतत्त्वावेदक जो व्यावहारिक प्रमाण उस प्रमाणसे बाधित जो रूप्यादि तादृशरूप्यादिकाभी अद्वैतवत्=द्वैतनिषेधवत् स्वतः प्रामाण्यप्रयुक्त पारमार्थिकत्व रहो; अस्य=शुक्तिरूप्यादिका तत्त्वावेदक जो श्रुति तादृश श्रुतिसे बाध है, नच=श्रुतिसे बाध नहीं है, क्यों ? तस्याः=तत्त्वावेदक अद्वैतश्रुतिको भेदप्रतिपादक श्रुतिकी नाई प्रत्यक्षसे प्राप्त जो व्यावहारिक रूप्यका निषेध तादृशनिषेधानुवादित्वेनापि उपपन्न होनेसे यह निरस्त हुआ, और अभाव अधिकरणात्मक नहीं है इस पक्षमें द्वैतनिषेधकेभी व्यावहारिकत्वके उपपादनसेभी।

केचित्तु सदित्यसत एव विलक्षणमिह विवक्षितं, नच—असत एवेत्यवधारणस्य सदसद्विलक्षणं न चेदित्यर्थपर्य्यवसानेन प्रतियोग्यप्रसिद्ध्या आपादकाप्रसिद्धिरिति वाच्यम् प्रतियोगिप्रसिद्धेरनुमानेन प्रागेव साधितत्वात्। नच सदसद्विलक्षणं नचेदित्यत्र सत् किमिति पूर्वविकल्पप्रसरः; प्रामाणिकत्वरूपसत्वे दोषानवकाशात्। नच बाधेनैवानिर्वाच्यत्वसिद्ध्या ख्यात्युक्त्ययोगः; तस्या अर्थापत्त्यन्तरत्वात् आकरे एकत्वोक्तिस्तु प्रयोजनैक्यादिति कण्ठतः तात्पर्यतश्चेति—आहुः।

केचित्तु=अस्मदीय कोई लोग तो 'सत्' यहाँपर असत्सेही विलक्षण विवक्षित है, 'असत् एव' इत्याकारक अवधारणको सदसत्से विलक्षण यदि न हो इत्याकारक अर्थमें पर्य्यवसान होनेसे प्रतियोगीकी अप्रसिद्धिसे आपादककी अप्रसिद्धि है, इति नच वाच्यम्, क्यों ? प्रतियोगीकी प्रसिद्धिको अनुमानसे प्रथमही साधित हो चुकनेसे। सदसद्विलक्षणं न चेत् यहाँपर सत् क्या है इत्यादि पूर्वविकल्पोंका प्रसरः=प्रसक्ति है नच=प्रसर नहीं है, क्यों ? प्रामाणिकत्वरूप सत्त्वमें दोषका अवकाश न होनेसे। बाधसेही अनिर्वाच्यत्वकी सिद्धिसे ख्यातिकी उक्तिका अयोग है, नच=अयोग नहीं है, क्यों ? तस्याः=ख्यातिकी उक्तिको अर्थापत्त्यन्तर होनेसे और आकरग्रन्थमें एकत्वकी उक्ति तो सदसदन्यत्वसिद्धिरूप प्रयोजनैक्यसे है, इस रीतिसे कण्ठतः और तात्पर्य्यतः ऐसा कहते हैं।

यद्वा—अबाध्यत्वमेव सत्त्वम्; नच तर्ह्यापाद्यावैशिष्ट्यम् अबाध्यत्वं हि त्रैकालिकनिषेधाप्रतियोगित्वम्। तेन च विपरीतप्रमाविषयत्वाभाव आपाद्यत इति नापाद्यवैशिष्ट्यम्। नच बाध्यत्वेनैवासद्व्यावृत्तेरपि सिद्ध्या अनिर्वचनीयत्वसिद्धिपर्यवसानेन शेष-

वैयर्थ्यम्, न प्रतीयेतेत्यत्र विपर्यये दृश्यत्वेनैव सद्वैलक्षण्यसिद्ध्या न बाध्येतेत्युक्तिरप्ययुक्तेति वाच्यम् बाध्यत्वदृश्यत्वयोरेकैकस्य सदसद्व्यावृत्त्युभयसाधकत्वं यद्यपि संभवति तथाप्येकैकस्य एकैकदेशव्याप्यत्वग्रहदशायामुभयोः साफल्यात्, उभयव्याप्यमप्येकैकमेकदेशसाधकत्वेनोपन्यस्यतः प्रति एकैकसाधकत्वस्य दोषावहत्वाभावात् । अर्थापत्तिद्वयं वैतत् एकत्वोक्तिस्तु असतो बाध्यत्वं सतोऽप्यात्मनो दृश्यत्वमङ्गीकुर्वतः परस्य मते एकैकेन उभयसाधनासम्भवनिबन्धना ।

अथवा अबाध्यत्वरूपही सत्त्व है, तब तो आपाद्यके साथ सत्त्वका अवैशिष्ट्य है नच= अवैशिष्ट्य नहीं है, क्योंकि त्रैकालिकनिषेधाप्रतियोगित्वका नाम है अबाध्यत्व और उस अबाध्यत्वसे विपरीत प्रमाविषयत्वाभाव आपादन किया जाता है, इस लिए आपाद्यसे अवैशिष्ट्य नहीं है, अथवा व्यवहारको आपाद्यत्व होनेसे आपाद्यका अवैशिष्ट्य नहीं है । शङ्कते नचेति । बाध्यत्वसे ही असत्की व्यावृत्तिकीभी सिद्धिसे अनिर्वचनीयत्वकी सिद्धिमें पर्यवसानसे शेषका वैयर्थ्य है, और 'न प्रतीयेत' यहाँपर दृश्यत्वसे ही सद्वैलक्षण्यकी सिद्धिसे 'न बाध्येत' यह उक्तिभी अयुक्त है इति नच वाच्यम् क्योंकि बाध्यत्व तथा दृश्यत्व इन दोनोंमेंसे एक एकको यद्यपि सदसद्व्यावृत्तिरूप उभयसाधकत्व सम्भवित है तथापि एक एकको एकैकदेशव्याप्यत्वग्रहदशामें उभयके साफल्यसे उभयव्यापक जो एकैक उस एकैककोभी एकदेशसाधकत्वेन उपन्यास करनेवालेके प्रति एकैकसाधकत्वको दोषावहत्वके अभावसे । अथवा यह अर्थापत्तिद्वय है और एकत्वकी उक्तितो असत् को बाध्यत्व अङ्गीकार करनेवाले और सद्रूप आत्माकेभी दृश्यत्वको अङ्गीकार करनेवाले द्वैतीके मतमें एक एकसे उभयके साधनका जो असम्भव तादृश असम्भवनिबन्धना है ।

ननु—न बाध्येतेत्यत्र बाधः किं बाधकज्ञानेन निवृत्तिः त्रैकालिकनिषेधो वा । आद्ये इष्टापत्तिः । द्वितीये असद्विलक्षणत्वपक्षेण बाध्यते चेति विपर्ययापर्यवसानमिति—चेन्न; उभयथाप्यदोषात् । नचाद्ये इष्टापत्तिः; ज्ञाननिवर्त्यत्वे श्रुत्यादिसम्मतेरुक्तत्वात् । द्वितीयेऽपि नासद्विलक्षणत्वेन विपर्ययापर्यवसानम्, प्रतिपन्नोपाधिस्थनिषेधप्रतियोगित्वस्यासत्यसम्भवेनासद्वैलक्षण्यस्यैव विपर्ययपर्यवसानप्रयोजकत्वात् । असच्चेदित्यत्रापि यद्यप्यसत्त्वं न सत्ताजातिराहित्यम्; सत्ताहीने सामान्यादौ व्यभिचारात् । यत्त्वात्मनि व्यभिचारादित्युक्तं परैस्तन्न; तन्मते आत्मनि सत्तायाः सत्त्वेनापादकस्यैवाभावात् अस्मन्मते च तत्र दृश्यत्वस्यैवाभावेनापाद्यस्यैवाभावात्, नापि बाध्यत्वम्; शुक्तिरूप्यादौ व्यभिचारापत्तेः, तथापि निरुपाख्यत्वं निःस्वरूपत्वं वा असत्त्वम् । नच निरुपाख्यत्वं ख्यात्यभावः तथाचापाद्यवैशिष्ट्यमिति—वाच्यम्, निरुपाख्यत्वस्य पदवृत्त्यविषयत्व रूपत्वात् ।

शङ्कते नन्विति । न बाध्येत यहाँपर बाध क्या है? बाधक ज्ञानसे निवृत्ति या त्रैकालिकनिषेध । आद्ये=आदिमपक्ष हो तो इष्टकी आपत्ति है, क्योंकि बाधकज्ञानसे रूप्यादिकी

निवृत्ति हमको इष्ट नहीं है। द्वितीये=द्वितीयपक्ष हो तो असद्विलक्षणत्वपक्षसे 'बाध्यते च' यह जो विपर्ययमें अनुमानका पर्य्यवसान होता है वह न होगा=असत्‌से विलक्षणत्वके साधनके लिए जो 'बाध्यते च' इत्यादि जो पर्य्यवसायि-अनुमान होता है वह न होगा क्योंकि त्रैकालिक निषेधप्रतियोगित्व असत्‌कोभी है, इति चेन्न; क्यों? उभयथाप्यदोषात्=बाधकज्ञानसे निवृत्तिका नाम बाध है, या त्रैकालिक निषेधका नाम बाध है इन दोनों प्रकारोंसे दोषके न होनेसे। आद्ये=आदिमपक्षमें इष्टापत्ति है, नच=इष्टापत्ति नहीं है क्यों? ज्ञाननिवर्त्यत्वे=शुक्तिरूप्यादिनिष्ठ ज्ञाननिवर्त्यत्वमें श्रुत्यादिकी सम्मतिको उक्त होनेसे। द्वितीयपक्षमेंभी असद्विलक्षणत्वेन विपर्य्ययमें अपर्य्यवसान नहीं है, क्यों? प्रतिपन्नोपाधिस्थ जो निषेध तादृश निषेधप्रतियोगित्वका असत्‌में असम्भव होनेसे, असद्वैलक्षण्यकोही विपर्य्ययपर्यवसानका प्रयोजकत्व होनेसे। 'असचेत्' यहाँपरभी यद्यपि असत्त्व सत्ताजातिराहित्यरूप नहीं है सत्तासे हीन सामान्यादिमें व्यभिचार होनेसे=सामान्यादिमें सत्ताजातिराहित्यरूप असत्त्व तो है परन्तु प्रतीतत्वाभाव नहीं है किन्तु प्रतीतत्व है अतः व्यभिचार है। आत्मामें व्यभिचार होनेसे इति यत् परैः उक्तम् तन्न; क्यों? तन्मते=परमतमें आत्मामें सत्ताका सत्त्व होनेसे सत्ताराहित्यरूप आपादकके ही अभावसे और हमारे मतमें तो तत्र=आत्मामें दृश्यत्वके ही अभावसे आपाद्यकेही अभावसे और बाध्यत्वरूपभी असत्त्व नहीं हो सकता है, शुक्तिरूप्यादिमें व्यभिचारकी आपत्तिसे बाध्यत्वरूप असत्त्व तो शुक्तिरूप्यादिमें है परन्तु प्रतीतत्वाभाव नहीं अतः व्यभिचार है। तथापि निरुपाख्यत्व या निःस्वरूपत्वरूप असत्त्व है। शङ्कते नचेति। निरूपाख्यत्व नाम है ख्यातिके=प्रतीतिके अभावका तथाच आपादक तथा आपाद्य इन दोनोंका अवैशिष्ट्य है इति नच वाच्यम् क्यों? निरुपाख्यत्वको पदवृत्तिका अविषयत्वरूपत्व होनेसे=शशविषाणादिविषयक जो विकल्पनामक वृत्ति होती है वह पदवृत्ति सापेक्ष नहीं होती है किन्तु पदज्ञानमात्रसे सापेक्ष होती है जैसा कि योगदर्शनमें कहा है-शब्दज्ञानानुपाती वस्तुशून्यो विकल्पः (पात० १।९) तथाच पदवृत्तिविषयत्वरूप निरुपाख्यत्व शशशृङ्गादिमें है।

ननु—निःस्वरूपत्वं स्वरूपेण निषेधप्रतियोगित्वम् तच्च प्रपञ्चसाधारणमिति तत्र व्यभिचारः नच—पारमार्थिकत्वाकारेण निषेधो न स्वरूपतः प्रपञ्चस्येति—वाच्यम् निर्धर्मकब्रह्मण्यपि तेन रूपेण निषेधात्तस्यापि मिथ्यात्वापत्तेरिति—चेन्न; मिथ्यात्वलक्षणे प्रतिपन्नोपाधौ इति विशेषणबलात् नातिव्याप्तिरित्युक्तत्वात्। यस्मिन्नपि पक्षे प्रपञ्चस्य स्वरूपेण निषेधः तदा अप्रतिपन्नोपाधिकत्वे सति स्वरूपेण निषेधप्रतियोगित्वम् निःस्वरूपत्वम् न चैतत् प्रपञ्चेऽस्ति, येन तस्मादसन्न भवतीति विपर्ययपर्यवसानं न स्यात्।

शङ्कते नन्विति। स्वरूपसे निषेधप्रतियोगित्वका नाम निःस्वरूपत्व है तच्च=उक्तविध निःस्वरूपत्व तो प्रपञ्च-साधारण है, इति=अतः तत्र प्रपञ्चमें व्यभिचार है=निःस्वरूपत्व प्रपञ्चमें है परन्तु अप्रतीतत्व नहीं अतः व्यभिचार है यदि यों कहोकि पारमार्थिकत्वाकारसे निषेध है

प्रपञ्चका, नकि स्वरूपसे तो ऐसा नहीं कहना क्यों ? निर्धर्मक ब्रह्ममेंभी पारमार्थिकत्वाकारसे निषेध होनेसे तस्यापि=ब्रह्मकेभी मिथ्यात्वकी आपत्तिसे इति चेन्न; क्यों ? मिथ्यात्वलक्षणमें प्रतिपन्नोपाधौ इस विशेषणके बलसे तत्र=ब्रह्ममें अतिव्याप्ति नहीं है, इस रीतिसे कह चुकनेसे। और जिस पक्षमें प्रपञ्चका स्वरूपसे निषेध है उसपक्षमें अप्रतिपन्नोपाधिकत्वे सति स्वरूपेण निषेधप्रतियोगित्व, निःस्वरूपत्व है, । एतत्=उक्तविध निःस्वरूपत्व प्रपञ्चमें नहीं है, जिससे कि (तस्मात् असत् न भवति) इत्याकारक विपर्ययपर्यवसान न हो।

ननु–न प्रतीयेतेत्यत्र प्रतीतिसामान्यविरहस्तावदापाद्यते तदयुक्तम्; असन्नृशृङ्गमित्यादिवाक्यादसतोऽपि प्रतीतेः अन्यथा असद्वैलक्षण्यज्ञानायोगः, असत्प्रतीतिनिरासायोगश्च असत्पदस्य अनर्थकत्वे प्रयुक्तपदानां संभूय कार्यकारित्वायोगे बोधकत्वानुपपत्तिः। असतोऽसत्त्वेनाप्रतीतौ असद्व्यवहारानुपपत्तिः; तदुक्तं–'असद्विलक्षणज्ञप्तौ ज्ञातव्यमसदेव हि तस्मादसत्प्रतीतिश्च कथं तेन निवार्यते'॥ इति चेन्न–प्रतीत्यभावेऽपि असतो असन्नृशृङ्गमिति विकल्पमात्रेणैव सर्वोपपत्तेः। तदुक्तं–'शब्दज्ञानानुपाती वस्तुशून्योविकल्प इति। नच विकल्प इच्छादिवत् ज्ञानान्यवृत्तिर्वा ज्ञानविशेषो वा, आद्ये, अनुभवविरोधप्रतीत्ययोगौ, द्वितीये असतः प्रतीतिरागतैव, वस्तुशून्य इत्यत्रापि किमपि नोल्लिखतीति वा, असदेवोल्लिखतीति वा, आद्ये अनुभवविरोधः, द्वितीये इष्टापत्तिरिति–वाच्यम्, विकल्पस्य ज्ञानान्यवृत्तित्वे बाधकाभावात्, शशविषाणमनुभवामीति प्रत्ययाभावाच्च।

शङ्कते नन्विति 'न प्रतीयेत' यहांपर प्रतीतिका सामान्याभाव आपादन किया जाता है वह अयुक्त है; क्यों ? 'असत् नृशृङ्ग है' इत्यादिवाक्यसे असत्कीभी प्रतीतिसे अन्यथा=यदि असत्की प्रतीति न मानों तो असत्से वैलक्षण्यके ज्ञानका अयोग है=असत्की यदि प्रतीति न होगी तो असद्वैलक्षण्यका ज्ञान न होगा, और असत्की प्रतीतिका जो निरास किया जाता है उसकाभी अयोग है, असत्पदको अनर्थकत्व होनेपर प्रयुक्त पदोंको सम्भूय कार्यकारित्वके अयोगसे बोधकत्वकी अनुपपत्ति है और असत्की असत्त्वेन–प्रतीति न होनेपर असद्व्यवहारकी अनुपपत्ति है, सो कहा है असद्विलक्षणज्ञप्तिमें अवश्य ही असत् ज्ञातव्य है ततः असत्की प्रतीति कैसे अद्वैतीसे निवारित की जाती है इति चेन्न; क्यों ? प्रतीत्यभावेऽपि=असत् की प्रतीति न होनेपरभी असद्विषयक जो 'असत् नृशृङ्गम्' इत्याकारक विकल्पमात्र है, उस विकल्पमात्रसेही सर्वकी उपपत्तिसे। सो कहा है–शब्दविषयक श्रावण प्रत्यक्षके बाद होनेके स्वभाववाला जो वस्तुशून्य चित्तका परिणामविशेष उसका नाम है विकल्प। शङ्कते नचेति। विकल्प इच्छादिकी तरह ज्ञानसे भिन्न कोई वृत्ति है या ज्ञानविशेष है। आद्य पक्ष कहो तो अनुभवका विरोध है और असत् की प्रतीतिका अयोग है, द्वितीय पक्ष कहो तो असत् की प्रतीति आ ही गई। 'वस्तुशून्य' यहाँपर क्या किसीकोभी विषय नहीं करता है, या असत् को ही विषय करता है आद्य पक्ष कहो तो अनुभवके साथ विरोध है, और

द्वितीयपक्ष कहो तो इष्टापत्ति है, इति नच वाच्यम् क्यों ? विकल्पको ज्ञानसे भिन्नवृत्तित्व होनेमें बाधकके अभावसे और शशविषाणमनुभवामि इत्याकारकप्रत्ययके न होनेसेभी ।

वस्तुशून्यता च सोपाख्यधर्मानुल्लेखित्वम्, अतो न कोऽपि दोषः । विकल्पस्य ज्ञानत्वे तु तदन्यज्ञानविषयत्वाभाव आपाद्यः । शुक्तिरूप्यादेरसत्वे च प्रतीतिविषयत्वम्, विकल्पान्यप्रतीतिविषयत्वं वानुपपन्नमित्यनिर्वाच्यत्वसिद्धिः । यद्वा—सत्त्वेन प्रतीत्यभाव एवापाद्यः । ननु—प्रमारूपतादृक्प्रत्ययाभावापादनमिष्टमेव । न ह्यसतः सत्त्वेन प्रतीतिः केनचित् प्रमोच्यते नच तादृक्भ्रान्तिविरहःतादृक्सामान्यविरहो वा आपाद्यः येन पुंसा शशे शृङ्गाभावो नावगतः तस्य गोशृङ्गमस्तीति वाक्यादिव शशशृङ्गमस्तीति वाक्यादपि भ्रान्तिदर्शनात्, नहि घढपादिशब्दवदत्र पदार्थानुपस्थापकत्वम्, न वा कुण्डमजाजिनमित्यादिवदन्वयावोधकत्वम्; अयोग्यता ज्ञानाभावस्य योग्यताभ्रमस्य वा आकाङ्क्षादिसामग्रीसध्रीचीनस्य सत्त्वात्, अन्यथा प्रतीत्याद्यभावप्रसङ्ग इति चेन्न;

और विकल्पमें वस्तुशून्यता तो सोपाख्यधर्मानुल्लेखित्वरूप है, अतः कोई दोष नहीं। और विकल्पको ज्ञानत्व होनेपर तो विकल्पसे भिन्नज्ञानाविषयत्वाभाव आपाद्य है । शुक्तिरूप्यादिका असत्त्व होनेपर तो प्रतीतिविषयत्व या, विकल्पान्यप्रतीतिविषयत्व अनुपपन्न है अतः अनिर्वाच्यत्वकी सिद्धि है । यद्वा सत्त्वेन प्रतीतिका अभाव आपाद्य है । शङ्कते नन्विति । प्रमारूप जो तादृश प्रतीति तादृश प्रतीतिका जो अभाव तादृश अभावका आपादन तो इष्ट ही है, क्योंकि असत्की सत्त्वेन प्रतीति किसीसे प्रमा तो नहीं कही जाती है । तादृग्भ्रान्तिविरहः=सत्त्वेन भ्रान्तिका विरह, या सत्त्वेन प्रतीतिसामान्यका विरह आपाद्य है, नच=यहभी आपाद्य नहीं बन सकता है क्यों ? जिस पुरुषने शशमें शृङ्गका अभाव नहीं जाना है तस्य=उस पुरुषको जैसे 'गोशृङ्गमस्ति' इस वाक्यसे ज्ञान होता है तैसे 'शशशृङ्गमस्ति' इस वाक्यसेभी भ्रान्तिके देखनेसे । और जैसे घढपप शब्दको पदार्थका उपस्थापकत्व नहीं है तैसे यहाँपर पदार्थका उपस्थापकत्वाभाव नहीं है । और जैसे कुण्डमजाजिनम् यहाँपर अन्वयका अबोधकत्व है तैसे यहाँपर अन्वयका अबोधकत्वभी नहीं है—आकाङ्क्षादिसामग्रीसध्रीचीन अयोग्यताज्ञानाभावका या योग्यताभ्रमका सत्त्व होनेसे, अन्यथा प्रतीत्यादिके अभावका प्रसङ्ग होगा, इति चेन्न; क्यों ?

इदंरजतमिति प्रात्यक्षिकभ्रमवत् अस्यापि निर्वाच्यविषयत्वात्, नच—अस्याप्यनिर्वाच्यत्वे रूप्यात् भेदो न स्यादिति—वाच्यम् कोहि अनिर्वाच्यादनिर्वाच्यं भेत्तुमध्यवसितः ? यमेवाक्षिपसि किन्तु निःस्वरूपात् । यथा च सत्त्वेन न निःस्वरूपविषयत्वं तथोक्तं प्राक् । न चैवं शशशृङ्गादेरनिर्वाच्यत्वे निःस्वरूपत्वोच्छेदः; शशशृङ्गमस्तीत्यत्र शशे शृङ्गारोपेण शशीयत्वारोपेण वा अनिर्वाच्यविषयत्वेऽपि 'असन्नृशृङ्गमित्यादिवाक्यश्रवणसमनन्तरं विकल्पमानाखण्डशशशृङ्गादेरनिर्वाच्यानात्मकस्य निःस्वरूपत्वात् । न चात्र निःस्वरूपत्वादिविकल्पः उक्तोत्तरत्वात् । नच—अत्यन्तासत्यपि ज्ञानमर्थे शब्दः

करोति हि'। इति त्वन्मते तस्याध्यस्तस्यास्तित्वस्यानिर्वाच्यत्वेऽपि शशशृङ्गमसदिति वाक्यादिव शशशृङ्गमस्तीति वाक्येऽपि शशशृङ्गशब्देनासत एव प्रतीतिरिति—वाच्यम्। अस्तित्वस्यानिर्वाच्यत्वेन शशशृङ्गपदाभ्यां तदधिष्ठानमवश्यं वक्तव्यम्।

'इदम् रजतम्' इस प्रत्यक्षप्रमाणजन्यभ्रमको जैसे अनिर्वचनीयविषयत्व है, तैसे 'शशशृङ्गमस्ति' इस वाक्यजन्य ज्ञानकोभी अनिर्वचनीयविषयत्व होनेसे, अस्यापि='शशशृङ्गमस्ति' इत्याकारक वाक्यजन्यज्ञानविषयीभूत शशशृङ्गकोभी अनिर्वाच्यत्व होनेपर इसका रूप्यसे भेद न होगा, इति नच वाच्यम्, यतः कौन अनिर्वचनीयसे अनीर्वचनीयका भेद करनेके लिए तुला हुआ बैठा है जिससे इस रीतिसे आक्षिप्त करता है किन्तु निःस्वरूपसे अनिर्वचनीयके भेद करनेके लिए अध्यवसित हैं हम लोग। और जैसे ज्ञानको सत्त्वेन निःस्वरूपविषयत्व नहीं है, तैसे प्राक्=मिथ्यात्वानुमानमें कहा है, एवम्=उक्त प्रकारसे शशशृङ्गादिको अनिर्वाच्यत्व होनेपर शशशृङ्गादिके निःस्वरूपत्वका उच्छेद है, नच=निःस्वरूपत्वका उच्छेद नहीं है, क्यों ? 'शशशृङ्गमस्ति' यहाँपर शशमें शृङ्गारोपसे या शृङ्गमें शशीयत्वके आरोपसे अनिर्वाच्यत्वविषयत्व होनेपरभी 'असत् शशशृङ्गम्' इत्यादि वाक्यके श्रवणके समनन्तर अनिर्वाच्यानात्मक विकल्प्यमानाखण्डशशशृङ्गादिमें निःस्वरूपत्वादिका विकल्प है= निःस्वरूपत्व क्या है, सत्ताजातिराहित्यरूप है या बाध्यत्वरूप है, इत्यादि विकल्प है, नच= विकल्प नहीं है, क्यों ? उक्तोत्तरत्व होनेसे=पदवृत्त्यविषयत्वरूप निःस्वरूपत्व है इत्यादिसे इसी प्रकरणमें उक्तोत्तरत्व होनेसे। शङ्कते नचेति। अत्यन्त असदर्थमेंभी शब्द, ज्ञानको उत्पन्न करता है, (खण्डन, का० ११) इस तुम्हारे मतमें तिस, अध्यस्त अस्तित्वका अनिर्वाच्यत्व होनेपरभी 'शशशृङ्गमसत्' इस वाक्यकी नाई 'शशशृङ्गमस्ति' इस वाक्यमेंभी शशशृङ्गशब्दसे असत्की ही प्रतीति है इति नच वाच्यम् क्योंकि—अस्तित्वका अनिर्वाच्यत्व होनेसे शश तथा शृङ्ग इन दोनों पदोंसे अध्यस्त अस्तित्वका अधिष्ठान अवश्य वक्तव्य है।

अत्यन्तासच्चानधिष्ठानमिति न शशशृङ्गपदाभ्यां तदुपस्थितिः; दृष्टान्तीकृतवाक्ये तु नानिर्वाच्यं किंचिदपि प्रतीयत इति नाधिष्ठानज्ञानापेक्षेति वैषम्यात्। अत्यन्तासत्यपि ज्ञानमित्यादि तु अस्त्यादिपदासमभिव्याहृतशशशृङ्गमसदिति वाक्यपरम्। नच—तद्धैक आहुः असदेवेदमग्र आसीदिति श्रुत्या असतः सत्त्वेन प्रतीतिरिति—वाच्यम् यथानानया असतः सत्त्वप्रतिपादनं तथोक्तं मिथ्यात्वलक्षणे। तार्किकास्तु—शशशृङ्गादिपदानामपार्थकतैवेति—वदन्ति। न चानन्वयनिश्चयविरहदशायां प्रवृत्तिपर्यन्तानुभवविरोधः अनन्वयनिश्चयदशायामेवाबोधकतोक्तेस्तद्विरहदशायामपि नाखण्डशशशृङ्गादिबोधकत्वम् किन्तु सन्मात्रगोचरव्यधिकरणप्रकारकज्ञानं वा, सदुपरागेणासद्गोचरज्ञानं वा। केवलासज्ज्ञाने सामग्रीविरहात्। तदुक्तम्—बौद्धाधिकारे—'सङ्गतिग्रहणाभावान् शशशृङ्गादिपदानामबोधकतेति।

और अत्यन्त असत् तो अधिष्ठान नहीं होता है अतः शश तथा शृङ्ग इन दोनों पदोंसे अत्यन्त असत् की उपस्थिति नहीं है, दृष्टान्तीकृतवाक्ये तु='शशशृङ्गमसत्' इस दृष्टान्तीभूत वाक्यमें तो कुछभी अनिर्वचनीय नहीं प्रतीत होता है, अतः अधिष्ठानके ज्ञानकी अपेक्षा नहीं है इस वैषम्यसे। और अत्यन्तासत्यपि—इत्यादि वाक्य तो अस्त्यादिके साथ अनुच्चारित 'शशशृङ्गमसत्' इत्याकारक वाक्यपर है, शङ्कते नचेति। 'तद्धैके' (छां०३।२।११) इत्यादिश्रुतिसे असत् की सत्त्वेन प्रतीति होती है, इति नच वाच्यम्, क्योंकि—जैसे इस श्रुतिसे असत्के सत्त्वका प्रतिपादन नहीं है तैसे मिथ्यात्वलक्षणनिरूपणावसरमें कहा है। और तार्किक लोग तो शशशृङ्गादिपदोंको—अपार्थकत्व=अलीकार्थकताही है यह कहते हैं। शशपदार्थका शृङ्गपदार्थके साथ जो अनन्वय उस अनन्वयके निश्चयका जो विरह वह विरह है जिस दशा=कालमें उसकालमें जो प्रवृत्तिपर्य्यन्त अनुभव होता है उसके साथ विरोध है नच=विरोध नहीं है, क्यों ? अनन्वयनिश्चयदशामें ही अबोधकताकी उक्तिसे और अनन्वयनिश्चयविरहदशामेंभी अखण्ड-शशशृङ्गादिबोधकत्व नहीं है, किन्तु सन्मात्रविषयक व्यधिकरणप्रकारक ज्ञान है=शशीयत्व शशवृत्ति लोमादिमें रहता है, अतः शृङ्गमें उसका भान व्यधिकरणभान है, अथवा सदुपरागसे असद्गोचरज्ञान है, केवल असत्के भानमें सामग्रीका विरह होनेसे। सो कहा है, बौद्धाधिकारमें—सङ्गतिका ग्रहण न होनेसे शशशृङ्गादि पदोंको अबोधकता है।

नच यौगिकशब्दानामवयवसङ्गत्यतिरेकेण पृथक्सङ्गत्यनपेक्षत्वम् अवयवशक्तिप्राधान्येन बोधने अखण्डासद्बोधनस्याशक्तत्वात् अवयवानां स्वशक्त्यपुरस्कारेणाप्रत्यायकत्वात्। न हि पाचकादिः पाकादिमबोधयन् बोधयति। नच तर्हि शशशृङ्गमसच्छशशृंङ्गं नास्तीत्यादिवाक्यानामबोधकत्वम्; तेषां शशे शृंङ्गाभावबोधकत्वात्। एषा तु बोधकता न शशशृंङ्गपदमात्रे, किन्तु नास्तीति पदसमभिव्याहृते। अतो न नास्तीति पौनरुक्त्यरूपशङ्काभासाद्यवकाश इति।

यौगिकशब्दोंको अवयवसङ्गतिसे अतिरिक्त सङ्गतिका अनपेक्षत्व है, नच=ऐसी शङ्का नहीं करना, क्यों ? अवयव—शक्तिप्राधान्यसे अर्थबोधन होनेपर अखण्ड—असद्बोधनमें अशक्तत्व होनेसे; अवयवोंको स्वशक्तिको द्वार न बनाकर अप्रत्यायकत्व होनेसे। क्योंकि—पाचकादि पाकादिको न बोधित करता हुआ तो बोधित नहीं करता है। तर्हि=तब 'शशशृङ्गमसत्' 'शशशृङ्गं नास्ति' इत्यादि वाक्योंको अबोधकत्व है, नच=अबोधकत्व नहीं है, उन्होंको शशमें शृङ्गाभावका बोधकत्व होनेसे। और यह बोधकता, शशशृङ्गपदमात्रमें नहीं है। किन्तु 'नास्ति' इस पदके साथ उच्चरितमें है। अतः 'नास्ति' इसमें पौनरुक्त्यरूप शङ्काभासादिका अवकाश नहीं है।

यद्वा—अपरोक्षप्रतीत्यभाव आपाद्यः। नच यदसत्तन्न प्रतीयत इति व्याप्तिज्ञानस्य प्रत्यक्षमावश्यकम्, अतश्चासतोऽपि प्रत्यक्षत्वम्; ज्ञानाज्ञानस्य तद्विषयविषयकत्व-

नियमात्। किञ्च शशशृङ्गाद्यत्यन्ताभावप्रत्यक्षमावश्यकम्, अन्यथा असतोऽपि असत्त्वबुद्धिर्न स्यात्। तथाच शशशृङ्गादेः प्रत्यक्षत्वमेवेति वाच्यम्, साक्षादित्यनिषेध्यतयेति चापरोक्षप्रतीतिविषयविशेषणात्। उक्तस्थले च ज्ञानज्ञानविषयतया निषेध्यतया च विषयत्वमिति नास्ति विशिष्टाभावस्यापाद्यस्यासंभवः।

अथवा असच्चेत् न प्रतीयेत् यहांपर अपरोक्षप्रतीतिका अभाव आपाद्य है, । शङ्कते नचेति । जो असत् है वह प्रतीत नहीं होता है इत्याकारक व्याप्तिज्ञानका प्रत्यक्ष आवश्यक है अतश्च= व्याप्तिज्ञानका प्रत्यक्ष होनेसे असत् को भी प्रत्यक्षत्व है उक्तार्थमें हेतु दिखलाते हैं ज्ञानेति । ज्ञानके ज्ञानको तद्विषय=विषयरूपज्ञानका जो विषय तादृशविषयविषयकत्वका नियम होनेसे—स्वविषयक ज्ञानमें स्वविषयविषयकत्वका नियम है अतः । किञ्च शशशृङ्गादिके अत्यन्ताभावका प्रत्यक्ष आवश्यक है अन्यथा असत्कीभी असत्त्वबुद्धि न होगी फलतः शशशृङ्गादिका प्रत्यक्षत्व ही है=अत्यन्ताभावका प्रत्यक्ष प्रतियोगीके प्रत्यक्षत्व विना नहीं होसकता है क्योंकि अत्यन्ताभावमें अवच्छेदकविधया प्रतियोगी प्रविष्ट रहता है तथाच असत्काभी प्रत्यक्षत्व अनिवार्य्य है, इति नच वाच्यम्, साक्षात् तथा अनिषेध्यतया, इन दोनोंको क्रमशः दोषवारणके लिए अपरोक्ष प्रतीतिके विषयमें विशेषणत्व होनेसे असत्पदार्थ, अनिषेध्यतया साक्षात् अपरोक्ष प्रतीतिका विषय नहीं इसी अर्थको स्पष्ट करते हैं उक्तेति। उक्तस्थलमें असत्को ज्ञानज्ञानविषयतया और निषेध्यतया विषयत्व है, इस रीतिसे विशिष्टाभावरूप आपाद्यका असंभव नहीं है।

यद्वा—सत्त्वेनापरोक्षप्रतीतिविषयत्वाभाव आपाद्यः। नच—इदं रूप्यमित्यादिभ्रान्त्या अत्यन्तासदेव सत्त्वेन प्रतीयत इति वाच्यम् अत्यन्तासतस्तादृशप्रतीतिविषयत्वे सामग्र्यभावात्, इन्द्रियसन्निकर्षो हि प्रत्यक्षे सामान्यसामग्री, नचासति सोऽस्ति नच प्रातिभासिकत्वपक्षे रूप्यादेः प्रतीतिपूर्वकालेऽसत्त्वेन कथं सन्निकर्षरूपप्रत्यक्षसामग्रीसम्भव इति वाच्यम्, अस्मन्मते ज्ञातैकसति रूप्यादौ साक्ष्यपरोक्षे अज्ञाननाशकान्तःकरणवृत्तिप्रयोजकसन्निकर्षानुपयोगात्। नहि तवापि ईश्वरसाधारणप्रत्यक्षमात्रे सन्निकर्षो हेतुः। नच प्रमायां निर्दुष्टेन्द्रियसन्निकर्षो हेतुः; नतु भ्रमे सहि दोषसहितेन्द्रियादेव भविष्यतीतिवाच्यम्, सन्निकर्षो हि इन्द्रियवत् सामान्यसामग्री तदनपेक्षस्येन्द्रियस्याजनकत्वमित्युक्तत्वात्।

अथवा, सत्त्वेन जो अपरोक्ष प्रतीति तादृशप्रतीतिविषयत्वाभाव आपाद्य है=असच्चेत् तर्हि सत्त्वेन अपरोक्षप्रतीतिविषयो न स्यात्। शङ्कते नचेति। 'इदं रूप्यम्' इत्यादि भ्रान्तिसे अत्यन्त असत् ही सत्त्वेन प्रतीत होता है इति नच वाच्यम् क्यों? अत्यन्त असत्को तादृशप्रतीतिविषयत्वमें सामग्रीका अभाव होनेसे। क्योंकि इन्द्रियका विषयके साथ सन्निकर्ष प्रत्यक्ष ज्ञानमें सामान्यसामग्री है, परन्तु असति=असत्पदार्थमें न सोऽस्ति=इन्द्रियसन्निकर्ष नहीं है। शुक्तिरूप्यादिके प्रातिभासिकत्व पक्षमें रूप्यादिको प्रतीतिसे पूर्वकालमें न होनेसे वहाँपर सन्नि-

कर्परूप जो प्रत्यक्षकी सामग्री उसका सम्भव कैसे है, इति नच वाच्यम् क्यों ? हमारे मतमें साक्षिभास्य ज्ञातैकसत् रूप्यादिमें अज्ञाननाशक जो अन्तःकरणकी वृत्ति तादृशवृत्तिप्रयोजक जो सन्निकर्ष उसका अनुपयोग होनेसे। और तुम्हारे मतमेंभी ईश्वरसाधारण प्रत्यक्षमात्रमें सन्निकर्ष हेतु नहीं है। प्रमामें निर्दोष जो इन्द्रिय उसका सन्निकर्ष हेतु है भ्रममें सन्निकर्ष हेतु नहीं वह तो दोषसहित जो इन्द्रिय उससेही होगा इति नच वाच्यम् क्यों ? सन्निकर्ष इन्द्रियकी तरह प्रत्यक्ष ज्ञानकी सामान्यसामग्री है उस सन्निकर्षसे निरपेक्ष इन्द्रियको प्रत्यक्षका अजनकत्व है इस अर्थको उक्तत्व होनेसे।

नच—तर्हि शाब्दबोधसामान्यसामग्र्या योग्यताज्ञानादेरभावात् कथं परोक्षविकल्पः स्यात्, अयोग्यताज्ञानविरहो हि सामान्यसामग्री, न तु योग्यताज्ञानम्, असंसर्गाग्रहरूपायोग्यताज्ञानविरहस्य विशिष्टज्ञाने आवश्यकत्वात्। स चासद्बोधके वाक्येऽस्त्येव। नहि शशशृङ्गेऽसत्त्वं नास्तीति जानानः शशशृङ्गमसदित्यवगच्छति। एतन्निबन्धन एवापरोक्षप्रतीतौ प्रद्वेषः। एतेन सन्मात्राविषयकापरोक्षज्ञानमसद्विषयकम् सत्त्वानधिकरणविषयकप्रतीतित्वादसद्विषयकपरोक्षप्रतीतिवत्। नच—अत्र प्रातिभासिकसाधारणसद्विवक्षायामाश्रयासिद्धिः, परमार्थसद्विवक्षायां मात्रपदवैयर्थ्यमिति—वाच्यम्; भ्रममात्रस्यैवाधिष्ठानीभूतपरमार्थसद्विषयतया मात्रपदं विना आश्रयासिद्धेर्दुष्परिहरत्वादिति—निरस्तम्, सामग्रीविरहेण बाधात् शाब्दत्वस्योपाधित्वात्, धर्मादिकमपरोक्षप्रतीतिविषयः, प्रतीतिविषयत्वादित्यादि—आभाससाम्याच्च।

तर्हि=तब तो शाब्दबोधकी सामान्यसामग्री जो योग्यताज्ञानादि उस योग्यताज्ञानादिरूपसामान्यसामग्रीका अभाव होनेसे, परोक्षरूपविकल्प कैसे होगा, नच—ऐसी शङ्का नहीं करना, क्योंकि—अयोग्यताज्ञानका अभाव शाब्दबोधकी सामान्यसामग्री है, योग्यताज्ञान नहीं असंसर्गका अग्रहरूप जो अयोग्यताज्ञानका विरह उस विरहको विशिष्टज्ञानमें आवश्यकत्व होनेसे। और वह तो असद्बोधकवाक्यमें है ही। क्योंकि शशशृङ्गमें असत्त्व नहीं है, इस रीतिसे असंसर्गको जानता हुआ कोईभी शशशृङ्ग असत् है, ऐसा नहीं जानता है। शाब्दबोधकी सामग्री है, और प्रत्यक्ष की सामग्री नहीं है, एतत्प्रयुक्तही असद्विषयकापरोक्षप्रतीतिमें विद्वेष है, एतेन=अपरोक्षज्ञानकी सामग्रीके न होनेसे ही—यह अनुमानभी निरस्त हुआ, इस रीतिसे व्यवहितके साथ सम्बन्ध है, सन्मात्र—अविषयक अपरोक्षज्ञान पक्ष है, असद्विषयकत्व साध्य है, सत्त्वका जो अनधिकरण तद्विषयकप्रतीतित्व होनेसे यह हेतु है, असद्विषयक परोक्ष प्रतीतिवत् यह उदाहरण है, उदाहरणीभूत प्रतीतिमें सत्वानधिकरणविषयक प्रतीतित्व है क्योंकि उसका विषय असत्वाधिकरण है, न कि सत्वाधिकरण अतः सत्वानधिकरणविषयक प्रतीतित्व है, और असद्विषयकत्वरूप साध्यभी उसमें है यहाँपर सिद्धान्तीकी तरफसे शङ्का कर द्वैती उसका समाधान करता है नचेति। अत्र=इस अनुमानमें प्रातिभासिक साधारण जो

सत्त्व उसकी विवक्षा होनेपर आश्रयासिद्धि है, असद्विषयक अपरोक्ष ज्ञानमेंभी प्रातिभासिक सद्विषयत्वके रह जानेसे सन्मात्रविषयकत्व उसमें नहीं है, अतः पक्षमें पक्षतावच्छेदकका अभावरूप आश्रयासिद्धि है, और परमार्थसत्की विवक्षा होनेपर मात्रपदका वैयर्थ्य है इति नच वाच्यम् क्यों ? भ्रममात्रकोही अधिष्ठानीभूत जो परमार्थसत् तादृशपरमार्थसद्विषयता होनेसे मात्रपदके विना आश्रयासिद्धिको दुष्परिहरत्व होनेसे एतेन पदसे संगृहीत अर्थका विवरण करते हैं—असद्विषयक अपरोक्ष भानकी सामग्रीके न होनेसे पक्षमें साध्याभावरूपबाधसे और शब्दत्वके उपाधिसे=असद्विषयक परोक्षप्रतीतिमें असद्विषयकत्वरूप साध्य है और शब्दत्वभी है अतः उपाधि साध्यकी व्यापक है और पक्षान्तर्भावसे साधनकी अव्यापक है; धर्मादिक अपरोक्ष प्रतीतिके विषय हैं, प्रतीतिविषयत्व होनेसे घटादिवत् इत्याद्याभासके साम्यसेभी ।

किञ्चासतो रूप्यस्यापरोक्षप्रतीतिविषयत्वे, शशशृङ्गादेरपि अपरोक्षप्रतीतिविषयत्वं स्यात्, विशेषाभावात् सविशेषत्वे असत्त्वव्याकोपात् ननु—सदसतोः सत्त्वानिःस्वरूपत्वादिनेव, नृशृङ्गशशशृङ्गादीनामपि परस्परं नृशृङ्गशशशृङ्गादिशब्दैरेव परोक्षप्रतीतिव्यवहारविषयत्वादेर्विशेषस्यासत्त्वाविरोधिनो बुद्धिसिद्धस्य संभवः नच—सर्वसामर्थ्यहीनस्यासतः सता ज्ञानेन कथं सम्बन्धः। विषयत्वस्य तत्र वक्तुमशक्यत्वात् भाति, प्रतीयत इत्यादिकर्तृकर्मत्वादिविरोधाच्चेति—वाच्यम्, अतीतादेः स्मृत्यनुमित्यादिविषयत्वादिवदुपपत्तेः, नच—तत्र प्रतीत्यादेरेव विषयत्वम् तावतैव तत्र विषयताव्यवहार इति—वाच्यम् समं ममापीति चेत्—मैवम्; शशशब्दस्य नरि भ्रमदशायां नृशृङ्गशब्देनेव शशशृङ्गशब्देनापि नृशृङ्गस्य प्रतीयमानत्वेन नृशृङ्गादिशब्दैरेव प्रतीयमानत्वादेरपि परस्परविशेषस्य वक्तुमशक्यत्वात् ।

किञ्च असत् रूप्यको अपरोक्षप्रतीतिविषयत्व होनेपर शशशृङ्गादिकोभी अपरोक्षप्रतीतिविषयत्व होगा, विशेषके अभावसे शशशृङ्गमें विशेषत्व होनेपर असत्त्वके व्याकोपसे । शङ्कते नन्विति । सत् तथा असत् इन दोनोंका जैसे सत्तावत्त्वेन तथा निःस्वरूपत्वेन विशेष है, तैसे मनुष्यशृङ्ग और शशशृङ्गादिकाभी परस्पर नृशृङ्गशशशृङ्गादिशब्दोंसेही असत्त्वाविरोधिबुद्धिसिद्ध परोक्षप्रतीतिव्यवहारविषयत्वादिरूप विशेषका सम्भव है, द्वैती सिद्धान्तीकी तरफसे शङ्काका उद्भावनकर अभिभावन करता है, नचेति । सर्वसामर्थ्यसे रहित जो असत् है उस असत्का सद्रूपज्ञानके साथ सम्बन्ध कैसे है, विषयत्वको तत्र=असत्में कहने लिए अशक्यत्व होनेसे 'भाति, प्रतीयते' इत्यादिकर्तृत्वकर्मत्वादिके विरोधसेभी, इति नच वाच्यम् क्यों ? अतीतादिमें जैसे स्मृतिअनुमित्यादिका विषयत्व रहता है तैसे असत्मेंभी उपपन्न होनेसे । तत्र=अतीतादिस्थलमें प्रतीत्यादिनिष्ठही विषयत्व है, और तितनेसेही तत्र=अतीतादिमें विषयताव्यवहार होता है, इति नच वाच्यम्, क्योंकि मुझकोभी प्रस्तुतमें वैसाही सम्मत है,—असद्विषयकज्ञानमें ही विषयता रहती है, नकि असत्में ऐसा मैंभी मान सकता हूँ, ननुसे लेकर यहाँतक शङ्का है, अब समाधान किया जाता है, इति चेन्न; मैवम्, क्यों ? शशशब्द नरवाची

है, इत्याकारक भ्रम जिस कालमें है उस कालमें नृशृङ्गशब्दसेभी जैसे नृशृङ्ग प्रतीत होता है, तैसे शशशृङ्गशब्दसेभी नृशृङ्गको प्रतीयमानत्व होनेसे नृशृङ्गादिशब्दोंसेही प्रतीयमानत्वादिरूप परस्पर विशेषको कहनेके लिए अशक्यत्व होनेसे।

नच—दुष्टेन्द्रियादे रूप्यसंस्कारसाचिव्यवच्छशशृङ्गसंस्कारसाचिव्याभावात् तस्यापरोक्षभ्रमाविषयत्वम्, अन्यथा तवाप्यनिर्वाच्यान्तरमेव तत्र कथं नोत्पद्यतेति—वाच्यम् संस्कारस्य न तावत्प्रतीतौ साक्षादुपयोगः स्मृतित्वापत्तेः; किन्त्वर्थोत्पत्तिद्वारा। तथाच संस्कारनियामकतापि अनिर्वाच्यतापक्षे एव, नत्वसद्विषयतापक्षे वस्तुतस्तु संस्कारस्तावत् ताच्विकरजतादिगोचर एव, प्राथमिकरजतादिभ्रमे प्रयोजकः सर्वमते, स चासद्रूपशशशृङ्गादिसर्वसाधारण एव तद्विषयत्वाविशेषात्। तथाच कथं स नियामको भवतु एवं प्रवृत्तिविषयत्वान्यथानुपपत्त्यान्यथानुपपत्तिरपि प्रमाणम्। इदमंशस्यासद्रूप्यात्मना प्रतीतौ सामग्रीविरहस्योपपादनात्।

शङ्कते नचेति। दुष्टइन्द्रियको जैसे रूप्यसंस्कारका साचिव्य है, तैसे शशशृङ्गसंस्कारका साचिव्य न होनेसे तस्य=शशशृङ्गको अपरोक्षभ्रमका अविषयत्व है, अन्यथा=आरोप्यसंस्कारके साचिव्यकी अपेक्षा न होनेपर तुम्हारे मतमेंभी भ्रमस्थलमें द्वितीय ही अनिर्वचनीय क्यों न उत्पन्न होगा, इति नच वाच्यम् क्योंकि संस्कारका प्रतीतिमें साक्षात् उपयोग तो नहीं ही है, प्रतीतिमें स्मृतित्वकी आपत्ति होनेसे। किन्तु अर्थोत्पत्तिद्वारा संस्कारका उपयोग प्रतीतिमें है। फलतः संस्कारको अध्यासकी नियामकताभी अनिर्वाच्यत्व पक्षमेंभी है, अध्यासके असद्विषयता पक्षमें नहीं। वस्तुतः तो ताच्विकरजतविषयक संस्कारही प्रथम होनेवाला जो रजतादि भ्रम उस भ्रममें प्रयोजक है सर्वमतमें। और वह तो असद्रूप्यशशशृङ्गादिसर्वसाधारण सर्वासद्भ्रमजननयोग्यही है, उस संस्कारमें असद्रूप्यादिके अविषयत्वको समान होनेसे=तात्विकरजतगोचर होनेसे उसमें तात्विकरजतविषयत्व है, और शुक्तिरूप्य शशशृङ्गादिका अविषयत्व है, फलतः वह अध्यासका नियामक कैसे होगा? इसी रीतिसे प्रवृत्तिविषयत्वकी अन्यथानुपपत्तिभी शुक्तिरजतादिके अनिर्वचनीयत्वमें प्रमाण है। ननु—इदमंशकी असत् जो रूप्य तदात्मना प्रतीतत्वमात्रसे रूप्यार्थीके प्रवृत्तिविषयत्वकी उपपत्ति है फिर अनिर्वचनीयरजतोत्पत्तिके माननेकी क्या आवश्यकता है, तहाँ कहते हैं इदमिति। इदमंशकी असद्रूप्यात्मना प्रतीतिमें सामग्रीके विरहके उपपादनसे=असत्‌के साथ इन्द्रियसन्निकर्ष नहीं बन सकता है, अतः असत्‌की प्रतीति अनुपपन्न है, यह इसी प्रकरणमें कह चुके हैं।

ननु—अनिदंरूपे प्रातिभासिके यदिदंत्वं व्यावहारिकसत्त्वं च तद्द्वयं न तावत् सत्; अद्वैतव्याकोपात् नाप्यनिर्वाच्यम् तथासति तस्यासद्वैलक्षण्यार्थं प्रातिभासिकत्वाय सत्त्वेन प्रतीत्या भाव्यम्। एवञ्च तदपि सत्वमनिर्वाच्यं चेत् तस्यापि सत्त्वेन प्रतीत्या भाव्यमित्यनवस्था तथा च तयोरसत्त्वं वाच्यम्। तदुक्तम्—अन्यथात्वमसत्तस्मात् भ्रान्ता-

वेव प्रतीयते। सत्त्वस्यासत एवं हि स्वीकार्यैव प्रतीतया, तस्यानिर्वचनीयत्वे स्यादेव ह्यनवस्थितिः ॥ इति ॥ टीकायामपि इदन्त्वसत्त्वयोः सत्त्वायोगादनिर्वाच्यत्वे इदन्त्वेन रूप्यावगाहितदप्रतीतौ प्रवृत्त्ययोगात् सत्त्वेन भाने च तस्मिन्नपि सत्वादिविकल्पप्रसरेणानवस्थानादिदंत्वव्यावहारिकसत्त्वयोरसत्वमित्युक्तमिति—चेन्न; तयोरसत्त्वे अपरोक्षप्रतीतिविषयत्वे सामग्र्यभावादेर्बाधकस्योक्तत्वात् अनिर्वाच्यत्वमेव। नच तया सत्त्वेन प्रतीत्या भाव्यम्; इष्टापत्तेः।

शङ्कते नन्विति। अनिदंरूप जो प्रातिभासिक पदार्थ है, उस प्रातिभासिक पदार्थमें जो इदन्त्व तथा व्यावहारिक सत्त्व है ये दोनों सत् तो नहीं है अद्वैतका विरोध होनेसे, और ये दोनों अनिर्वचनीयभी नहीं हैं तथासति=अनिर्वचनीय होनेपर तस्य=उक्त इदन्त्व तथा व्यावहारिक सत्त्व एतद्द्वयके असद्वैलक्षण्यके लिए उस प्रातिभासिकत्वकी अपेक्षा होगी और प्रातिभासिकत्वके लिए उक्तद्वयविषयक सत्त्वेन प्रतीतिसे भाव्य है=उक्त दोनों पदार्थोंको विषय करनेवाली सत्त्वेन प्रतीति माननी पडेगी। एवञ्च=इसी रीतिसे जिस सत्त्वसे इदन्त्वकी और व्यावहारिक सत्त्वकी प्रतीति होती है, वहभी यदि अनिर्वाच्यत्व है तो तद्विषयकभी सत्त्वेन प्रतीति माननी चाहिए इस रीतिसे अनवस्था है=अनिर्वचनीयकी प्रतीतिके लिए सत्त्वकी अपेक्षा है, और अनिर्वचनीयापेक्ष सत्त्वकोभी अनिर्वचनीयत्व माननेपर अनवस्था स्पष्टही है, और सत् माननेमें अद्वैतका व्याकोप कह चुके हैं फलतः तयोः=अनिदंरूप प्रातिभासिकमें जो इदन्त्व तथा सत्त्व है, इन दोनोंका असत्त्व वाच्य है, द्वैती उक्तार्थसंग्राहक अपने पूर्वपुरुषकी कारिकाका उपन्यास करता है, तदुक्तमिति। तस्मात्=उक्त प्रकारसे यतः गत्यन्तर नहीं है तस्मात् अन्यथात्वम्=शुक्त्यादिका रूप्यादिरूपत्व भ्रान्तावेव=भ्रान्तिमेंही असत् प्रतीत होता है, एवम्=इस रीतिसे, असतः सत्त्वस्य=असद्रूप सत्त्वकी प्रतीतता भ्रान्तिमें स्वीकार्य ही है, तस्य=उक्त सत्त्वका अनिर्वचनीयत्व होनेपर अनवस्थिति होगी ही। टीकायामपि=भामतीमेंभी, इदन्त्वसत्त्वयोः=आरोप्यनिष्ठत्वेन ज्ञायमान जो इदन्त्व तथा सत्त्व इन दोनोंके सत्त्वके अयोगसे, और इन दोनोंको अनिर्वाच्यत्व होनेपर इदन्त्वेन रूप्यावगाहि ज्ञानमें तदप्रतीतौ=इदन्त्वकी प्रतीति न होनेपर इदन्त्वेन रूप्यावगाहि प्रवृत्तिके अयोगसे, और सत्त्वेन रूप्यावगाहि प्रतीतिमें सत्त्वकी प्रतीति न होनेपर सद्विषयकत्वरूप प्रामाण्यके अग्रहणसे प्रवृत्तिके अयोगसे, और सत्त्वेन भानमें तस्मिन्नपि=उक्त सत्त्वमेंभी सत्त्वादिविकल्पप्रसरप्रयुक्त अनवस्थाके होनेसे, आरोप्यसंसृष्ट तया प्रतीयमान जो इदन्त्व तथा व्यावहारिक सत्त्व है, उन दोनोंका असत्त्व है; यह कहा है, इति चेन्न; क्यों ? उन दोनोंके असत्त्वमें अपरोक्षप्रतीतिविषयत्वमें सामग्र्यभावादिरूप बाधकको उक्त होनेसे=उक्त दोनों पदार्थ यदि असत् होंगे तो उन्होंका अपरोक्षत्व न बनेगा, इसलिए ये दोनों पदार्थ असत् तो नहीं है, फलतः इन दोनोंका अनिर्वाच्यत्वही है, ऐसा होनेपर रूप्यादिवत् सत्त्वेन प्रतीतिसे भाव्य है=सत्त्वेन इनकी प्रतीति होनी चाहिए नच=ऐसी शङ्का नहीं करना, क्यों ? इष्टापत्तिसे।

न चैवमनवस्था, सत्त्वस्य सदितिप्रतीतावतिरिक्तसत्त्वस्यानपेक्षणात् अन्यथा त्वत्पक्षेऽपि असति रूप्ये यत्सत्त्वं प्रतीयते तस्य सत्त्वायोगात् असत्त्वे च तथैव प्रतीतौ प्रवृत्त्यनुपपत्तिः सत्त्वेन प्रतीतावनवस्था च स्यात्। नच सत्त्वे सत्त्वासत्त्वयोरौदासीन्येऽपि असतः सत्त्वेन प्रतीत्या प्रवृत्त्युपपत्तेः; असति प्रतीतस्य सत्त्वस्य सत्त्वेनाप्रतीतावपि असत्त्वसिद्धेश्च नास्माकं काप्यनुपपत्तिः तव तु रूप्यादिसत्त्वस्य सत्त्वेनाप्रतीतौ प्रवृत्त्युपपत्तावपि प्रातिभासिकत्वानुपपत्तिरिति—वाच्यम्, एवं हि तत्सत्त्वं स्वरूपतो न सत् तुच्छत्वात्, विज्ञानतोऽपि न सत्; सत्त्वेनाप्रतीतेः।

एवम्=ऐसा होनेपर पूर्वोक्त प्रकारसे अनवस्था है नच=अनवस्था नहीं है, क्यों? सत्त्वकी 'सत्' इत्याकारक जो प्रतीति उस प्रतीतिमें अतिरिक्त सत्त्वका अपेक्षण न होनेसे, अन्यथा=सत्त्वविषयक प्रतीतिमें अतिरिक्त सत्त्वकी अपेक्षा होनेपर तुम्हारे पक्षमेंभी असत् रूप्यमें जो सत्त्व प्रतीत होता है उसके सत्त्वके अयोगसे और असत्त्व होनेपर और असत्त्वेन ही प्रतीति होनेपर प्रवृत्तिकी अनुपपत्ति है, और सत्त्वेन उसकी प्रतीति होनेपर अनवस्था होगी। शङ्कते नचेति। सत्त्वमें सत्त्व तथा असत्त्व इन दोनोंका औदासीन्य होनेपरभी असद्विषयक सत्त्वेन प्रतीतिसे प्रवृत्तिकी उपपत्तिसे, असत्में प्रतीतसत्त्वकी सत्त्वेन प्रतीति न होनेपरभी और उसके=असत्में प्रतीतसत्त्वके असत्त्वकी सिद्धिसेभी हमलोगोंको कोईभी अनुपपत्ति नहीं हैं, और तुह्मारे मतमें तो रूप्यादिके सत्त्वकी सत्त्वेन प्रतीति न होनेपर प्रवृत्तिकी उपपत्ति होनेपरभी प्रातिभासिकत्वकी अनुपपत्ति है, इति नच—वाच्यम् क्योंकि ऐसा होनेपर यह सत्त्व स्वरूपसे सत् नहीं है, तुच्छ होनेसे और विज्ञानसेभी सत् नहीं है, सत्त्वेन प्रतीत न होनेसे।

तथाच असति कथं तन्निबन्धनो व्यवहारः नच प्रतिभासकाले सत्त्वे स्वरूपतो निषेधप्रतियोगित्वं न स्यात् पारमार्थिकत्वेन निषेधप्रतियोगित्वे अनवस्थैवेत्यसत्त्वमेव, रूप्यादीनामिति—वाच्यम्, प्रतीतिकाले सत्त्वेऽपि स्वरूपतो निषेधस्य पारमार्थिकत्वेन निषेधेऽप्यनवस्थापरिहारस्य चोक्तत्वात्। नापि प्रत्येकात्मकत्वे अनुपपत्त्या उभयात्मकतैवास्त्विति—वाच्यम्; दत्तोत्तरत्वात्, भ्रमत्वानुपपतेश्च, नचानिर्वाच्यविषयत्वेन यथा तवमते भ्रमत्वं तथा सदसदात्मकत्वे यत् सत्त्वं तद्विषयत्वेन भ्रमत्वमस्तु, एवं तर्हि सच्चासच्चरजतमित्याकारताया दुर्निवारत्वापत्तेः। नच—असदेव रूप्यमितिबाधस्य सद्वैलक्षण्यविषयत्ववत् सद्रजतमिति भ्रमस्याप्यसद्वैलक्षण्यमेव विषयोऽस्तु, तथाच प्रातीतिकमपि सत्वं मास्त्विति—वाच्यम्; तथा सति बाधेन भ्रमविषयसत्त्वानपहारे बाधकत्वव्यवहारोच्छेदप्रसङ्गात् अगृहीतासत्त्वस्यापि 'इदं रजतं सदिति' प्रतीतेश्च। नहि पुनरगृहीतसत्त्वस्यासद्रूप्यमभादितिप्रत्ययः; बाधस्य प्रसक्तिपूर्वकत्वात्।

फलतः असत्में तदधीनव्यवहार कैसे होगा, शङ्कते नचेति। प्रतिभासकालमें सत्त्व होनेपर स्वरूपसे निषेधप्रतियोगित्व न होगा, पारमार्थिकत्वेन निषेधका प्रतियोगित्व होनेपर अनवस्था ही है, अतः रूप्यादिका असत्वही है, इति नच वाच्यम्, क्यों ? प्रतीतिकालमें सत्त्व होनेपरभी स्वरूपतः निषेधको उक्त होनेसे और पारमार्थिकत्वेन निषेध होनेपरभी अनवस्थाके परिहारको उक्त होनेसे प्रत्येकात्मकत्वे=सत्यात्मकत्वमें और असत्यात्मकत्वमें अनुपपत्ति होनेसे=एकएकमें अनुपपत्ति होनेसे उभयात्मकता ही रहो इति नच वाच्यम् क्यों ? दत्तोत्तरत्वात्=विरोधादिसे दत्तोत्तरत्व होनेसे–परस्पर विरुद्धोभयात्मकत्व एक पदार्थको नहीं बन सकता है, और भ्रमत्वकी अनुपपत्तिसेभी यह पक्ष नहीं बन सकता है; अनिर्वाच्यत्वविषयत्वेन जैसे तुह्मारे मतमें भ्रमत्व है, तैसे सदसदात्मकत्वमें जो सत्त्व है तद्विषयत्वेन भ्रमत्व रहो, नच=ऐसा नहीं हो सकता है क्योंकि ऐसा होनेपर 'सच्चासच रजतम्' इस आकारवाके दुष्परिहारत्वकी आपत्ति है अतः ऐसा नहीं हो सकता है। शङ्कते नचेति। 'असत् ही रूप्य है' इत्याकारक जो बाध तादृश बाधको जैसे असद्वैलक्षण्यविषयत्व है, तैसे 'सद्रजतम्' इस भ्रमकाभी असद्वैलक्षण्य ही विषय रहो, फलतः प्रातीतिकसत्त्वभी शुक्तिरूप्यादिमें मत रहो, इति नच वाच्यम्, क्यों ? तैसा होनेपर बाधसे भ्रमविषयके सत्त्वका अपहार न होनेपर बाधकत्व व्यवहारके उच्छेदके प्रसङ्गसे, और जिसको असत्त्वगृहीत नहीं हुआ है उसकोभी 'इदं रजतं सत्' ऐसी प्रतीति होनेसे। क्योंकि अगृहीत सत्त्वको 'असद्रूप्यमभात्' ऐसा प्रत्यय नहीं होता है, बाधको प्रसक्तिपूर्वकत्व होनेसे=भ्रममें सत्का भान हो तभी बाध तदभावको विषय करता है, अन्यथा नहीं।

ननु—असद्विलक्षणं चेन्न बाध्येत, सद्विलक्षणं चेन्न प्रतीयेत, अतोऽनुपपत्त्या अनिर्वाच्यत्वाभाव एव किं न सिध्येत् नच—बाधप्रतीत्योर्लाघवात् सत्वासत्त्वे प्रयोजके नत्वसद्वैलक्षण्यसद्वैलक्षण्ये गौरवादिति—वाच्यम्; बाधप्रतीत्योरेव प्रथमोपस्थितयोः प्रयोजकजिज्ञासायामसत्त्वसत्त्वयोः प्रयोजकत्वं कल्प्यते, लाघवात् प्रथमोपस्थितत्वाच्च। ननु सद्विलक्षणत्वादेः गौरवात् चरमोपस्थितत्वाच्च। तदनन्तरं च भानप्रयोजकाभावादेवाभानोपपत्तौ न प्रयोजकान्तरकल्पना। नृशृङ्गादेरसत्त्वेऽपि न बाधः प्रसक्त्यभावादिति चेत् मैवम्, सत्त्वं न तावत्प्रतीतिप्रयोजकम्; रूप्यस्य उभयमतेऽप्यप्रतीत्यापत्तेः, नाप्यसत्त्वं बाधप्रयोजकम्, उभयमतसिद्धासति बाधादर्शनात्, रूप्ये चासत्त्वस्याद्याप्यसिद्धेः, प्रत्युतासत्त्वेऽनुपपत्तेर्वक्ष्यमाणत्वात् गौरवं प्रामाणिकं। तस्मात् सिद्धं ख्यातिबाधान्यथानुपपत्त्या अनिर्वाच्यत्वमिति।

इत्यद्वैतसिद्धौ ख्यातिबाधान्यथानुपपत्तिः।

शङ्कते नन्विति। असत्से विलक्षण यदि हो तो बाधित न हो सत्से विलक्षण यदि हो तो प्रतीत न हो इस अनुपपत्तिसे अनिर्वाच्यत्वाभाव ही क्यों न सिद्ध हो, यदि यों कहोकि

बाध तथा अप्रतीति इन दोनोंके लाघवसे क्रमशः सत्त्व तथा असत्त्व ये दोनों प्रयोजक हैं न कि असद्वैलक्षण्य और सद्वैलक्षण्य, गौरवसे; तो ऐसा नहीं कहना, क्योंकि प्रथमोपस्थित जो बाध तथा प्रतीति इन दोनोंके प्रयोजककी जिज्ञासा होनेपर बाधमें असत्त्वको और प्रतीतिमें सत्त्वको प्रयोजकत्वं कल्पन किया जाता है, लाघवसे और प्रथमोपस्थित होनेसे=सद्विलक्षणत्वको बाधके प्रति और असद्विलक्षणत्वको प्रतीतिके प्रति कल्पना करनेकी अपेक्षा असत्व तथा सत्त्वकी कल्पनामें उपस्थितिकृत लाघव है, और ये दोनों प्रथमोपस्थितभी हैं, सद्विलक्षणत्वादिको प्रयोजकत्व नहीं है, गौरव होनेसे और चरमोपस्थितत्व होनेसे। तदनन्तरञ्च=उक्त प्रयोजककी कल्पनाके बाद भानप्रयोजकके अभावसेही अभानकी उपपत्ति होनेपर अभानमें अन्यप्रयोजककी कल्पना नहीं। नृश्रृङ्गादिका असत्त्व होनेपरभी बाध नहीं है। प्रसक्तिके अभावसे इतिचेत् मैवम्, क्योंकि सत्त्व जो है, वह प्रतीतिका प्रयोजक नहीं है, रूप्यकी उभयमतमेंभी अप्रतीतिकी आपत्तिसे=शुक्तिरूप्यमें उभयमतसेभी सत्त्व नहीं है, अतः उसकी प्रतीति न होगी, और असत्त्व बाधका प्रयोजक नहीं है, उभयमतसिद्ध शशश्रृङ्गादिरूप असत्में बाधके न देखनेसे, और रूप्यमें असत्त्वकीभी असिद्धिसे, प्रत्युत शुक्तिरूप्यादिके असत्त्वमें अनुपपत्तिको वक्ष्यमाणत्व होनेसे गौरव प्रामाणिक है, और प्रामाणिक गौरव दोष नहीं माना जाता है, अन्यथा जगतीतलमें लाघवसे एकही घट मानना पडेगा, इसी रीतिसे पटादिमेंभी ज्ञातव्य है। यतः द्वैतिदत्त दोषोंका निरसन हो चुका है ततः ख्यातिबाधान्यथानुपपत्त्या अविद्याका अनिर्वाच्यत्व सिद्ध हुआ।

इति सरलायामविद्यानिर्वाच्यत्वे अर्थापत्तिनिरूपणम्।

अथ निषेधप्रतियोगित्वानुपपत्त्याऽनिर्वचनीयत्वसमर्थनम्।

केचित्तु—बाध्यत्वं सत्यसति चानुपपन्नमिति अनिर्वाच्यत्वमिति आहुः। नच—अतीते तत्कालेऽसति ध्वंसप्रतियोगित्ववत् सर्वदा असत्यप्यत्यन्ताभावप्रतियोगित्वं स्यात् तथाच बाध्यत्वं नात्यन्तासत्त्वविरोधि—इति—वाच्यम्; कालान्तरसत्तायाः; कालान्तरसत्तां प्रत्यनुपयोगेन विद्यमानतादशायामेव घटादौ ध्वंसप्रतियोगित्वम्, अनित्यो घटोऽस्तीति प्रतीतेः, नतु ध्वंसादिकाले घटे ध्वंसप्रतियोगित्वम्; तदानीं घटादीनामेवाभावात् नच तर्हि घटो न ध्वंसप्रतियोगीति प्रत्ययः स्यात्, नच रूपवानित्यस्यापि प्रसङ्गात्।

अथ सरलायां निषेधप्रतियोगित्वानुपपत्त्याऽनिर्वचनीयत्वसमर्थनम्।

कोई लोग तो बाध्यत्व सत्में तथा असत्में अनुपपन्न है, अतः अनिर्वाच्यत्व है, यह कहते हैं। शङ्कते नचेति। तत्कालमें असत् जो अतीतपदार्थ है, उस अतीतपदार्थमें जैसे ध्वंसप्रतियोगित्व रहता है, वैसे सर्वदा असत्मेंभी अत्यन्ताभावप्रतियोगित्व रहो, फलतः बाध्यत्व अत्यन्त असत्त्वका विरोधी नहीं है, इति नच वाच्यम्, क्योंकि—कालान्तरमें रहनेवाली सत्ताका कालान्तरसत्ताके प्रति उपयोग न होनेसे, विद्यमानतादशामेंही घटादिमें ध्वंसका प्रति-

योगित्व है, 'अनित्य घट है' ऐसी प्रतीति होनेसे, ध्वंसादिकालमें घटमें ध्वंसप्रतियोगित्व नहीं है, उस कालमें घटादिकाही अभाव होनेसे। तब घट ध्वंसका प्रतियोगी नहीं है, ऐसा प्रत्यय होना चाहिए नच=ऐसा नहीं कहना, 'घटरूपवाला नहीं है' इस प्रत्ययकेभी प्रसङ्गसे= घटकी विद्यमान् दशामें जैसे घटमें रूप रहता है, घटकी अविद्यमान दशामें नहीं तथापि 'घटो न रूपवान' ऐसा प्रत्यय नहीं होता है, तैसे घटकी विद्यमान दशामें घटमें ध्वंसप्रतियोगित्व रहनेसे 'घटो न ध्वंसप्रतियोगी' ऐसा प्रत्ययभी नहीं होता है।

अथ यावत्सत्वं स्वरूपसत्वान्नैवम्, समं प्रकृतेऽपि। वस्तुतस्तु ध्वंसकालेऽपि घटो ध्वस्त इति ध्वंसप्रतियोगिता घटे प्रतीयत एव। तथा चानागतवर्तमानातीतावस्थाः क्रमेणाविर्भावयन् तिरोभावयंश्चानिर्वाच्यो घटः कालत्रयेऽप्यनुस्यूत इति नः सिद्धान्तः एवञ्च सत्यनिर्वाच्यत्वमेव प्रतियोगित्वादौ प्रयोजकमिति स्थितम्।

अथ=यदि यों कहोकि जबतक घटका सत्त्व है तबतक घटमें रूपका सत्त्व होनेसे 'रूपवान् घटो न' ऐसी प्रतीति नहीं होती है, तो प्रकृतमेंभी समान है=जबतक घटका सत्त्व है तबतक घटमें ध्वंसप्रतियोगित्व रहता है, अतः 'घटो न ध्वंसप्रतियोगी' ऐसी प्रतीति नहीं होती है, और वस्तुतः तो ध्वंसकालमेंभी 'घटो ध्वस्तः' इस रीतिसे ध्वंसप्रतियोगिता घटमें प्रतीतही होती है। फलतः अनागत वर्त्तमान अतीत ये जो तीन अवस्थायें हैं इन अवस्थाओंको क्रमशः आविर्भूत तथा तिरोभूत करता हुआ, अनिर्वाच्य घट कालत्रयमेंभी अनुस्यूत है, यह नः=हम लोगोंका सिद्धान्त है। और ऐसा होनेपर अनिर्वाच्यत्वही प्रतियोगित्वादिमें प्रयोजक है यह स्थित है।

ननु—असद्वैलक्षण्यापेक्षया लघुत्वात् सत्वमेव प्रतियोगित्वादौ प्रयोजकमस्तु, तथाचानिर्वाच्यत्वेऽपि प्रतियोगित्वादिकमनुपपन्नमेवेऽइति—चेत्, सत्यम् यत्किञ्चित्कालावाध्यत्वरूपं तत्र प्रयोजकम् नतु, त्रिकालावाध्यत्वरूपं, गौरवात्। नच तर्हि कथं? सति वाध्यत्वमनुपपन्नम्; न सन्मात्रे, किन्तु परमार्थसतीत्यवेहि, तथाचानिर्वाच्यतापक्षे नानुपपत्तिः। नच तर्हि कथमसद्वैलक्षण्यप्रतियोगित्वमसति कथं वा नासदसीदिति श्रौतनिषेधः; असत्त्वं तावन्निःस्वरूपत्वं तद्वैलक्षण्यम् सत्स्वरूपत्वं तच्च निष्प्रतियोगिकमेव, श्रुत्यर्थोऽपि तदेव तथाच नास्ति प्रतियोगित्वप्रतिपत्तिः।

शङ्कते नन्विति। असद्वैलक्षण्यकी अपेक्षासे लघुत्व होनेसे सत्त्वही प्रतियोगित्वादिमें प्रयोजक रहो, तथाच अनिर्वाच्यत्व होनेपर, प्रतियोगित्वादिक अनुपपन्नही है, इति चेत्= ऐसा यदि कहते हो तो ठीक ही कहते हो क्योंकि यत्किञ्चित्कालावाध्यत्वरूप सत्त्वही तत्र=प्रतियोगित्वादिकमें प्रयोजक है त्रिकालावाध्यत्वरूप सत्त्व नहीं, गौरव होनेसे। तर्हि=तब सति=सत्में वाध्यत्व अनुपपन्न कैसे है, नच=ऐसी शङ्का नहीं करना, क्योंकि सन्मात्रमें वाध्यत्व अनुपपन्न नहीं है, किन्तु परमार्थ सत्में वाध्यत्व अनुपपन्न है, इत्यवेहि=ऐसा समझ, तथाच

अनिर्वाच्यतापक्षमें प्रतियोगित्वादिकी अनुपपत्ति नहीं है। तर्हि=तब असद्वैलक्षण्यका प्रतियोगित्व असत्‌में कैसे है, और 'असत् न था' (ऋ० सं० मण्ड० १० सूक्त १२९। मं० १) यह श्रौतनिषेध असत्‌में कैसे है, नच=ऐसी शङ्का नहीं करना क्योंकि असत्त्व नाम है निःस्वरूपत्वका तद्वैलक्षण्य सत्स्वरूपत्व है वह तो निष्प्रतियोगिकही है। और श्रुत्यर्थभी वही है। फलतः असत्‌में प्रतियोगित्वप्रतिपत्ति नहीं है।

नच—शशशृङ्गं नास्तीति प्रत्यक्षत एवासति निषेधप्रतियोगित्वमनुभूयत इति वाच्यम्; योग्यानुपलब्धिस्तावदभावग्राहिका योग्यताच शशशृङ्गादीनां दोषघटिता वाच्या। तस्यां नानुपलम्भः अनुपलम्भे च न सेति योग्यानुपलब्धेरसंभवात्। तदुक्तम्—दुष्टोपलम्भसामग्री शशशृङ्गादियोग्यता। तस्यां नानुपलम्भोऽस्ति नास्ति सानुपलम्भने (न्यायकुसुमाञ्जलि. प०३।३) इति। नच—प्रतियोगिसत्त्वविरोध्यनुपलब्धिरेव तद्ग्राहिका साच प्रकृतेऽस्त्येवेति—वाच्यम्। स्तम्भात्मनि योग्यत्वप्रसिद्ध्या, पिशाचोपलम्भापादनं संभवति। शशशृङ्गास्तित्वं न योग्यतया व्याप्तम्। यद्बलात्तेन उपलम्भ आपाद्येत। तथाच नात्र प्रतियोगित्वविरोधिनी—अनुपलब्धिः। अत एव पिशाचादीनां भेदः प्रत्यक्षः नात्यन्ताभावः। नच—शृङ्गादिकं योग्यताव्याप्तमेवेति—वाच्यम्; तावता हि शृङ्गाभाव एव योग्यानुपलब्धिसंभवः, नत्वलीकाभावे।

शङ्कते नन्विति। शशशृङ्ग नहीं है, इत्याकारक जो प्रत्यक्ष तादृश प्रत्यक्षसे ही असत्‌में निषेधका प्रतियोगित्व अनुभूत होता है, इति नच वाच्यम्, क्योंकि अभावकी ग्राहिका प्रतियोगिसत्त्वप्रसञ्जनप्रसञ्जितप्रतियोगिकत्वरूपा, योग्यानुपलब्धि है, और शशशृङ्गादिकी योग्यता दोषसे घटिता कहनी चाहिए। तस्याम्=उस योग्यताके होते हुए शशशृङ्गादिका अनुपलम्भ नहीं है; और अनुपलम्भ होनेपर वह योग्यता नहीं है, इस रीतिसे योग्यानुपलब्धिका असम्भव है, अतः असत्‌में प्रत्यक्षतः प्रतियोगित्वका अनुभव नहीं बन सकता है, सो कहा है, उदयनाचार्य्यने कुसुमाञ्जलिमें, शशशृङ्गादिकी योग्यता दुष्टा उपलम्भकी सामग्रीरूप है, उस योग्यताके होनेपर प्रतियोगीका=शशशृङ्गादिका अनुपलम्भ नहीं है, और अनुपलम्भ होनेपर वह नहीं है, शङ्कते नचेति। प्रतियोगिसत्त्वविरोध्यनुपलब्धिरेव=प्रतियोगिके सत्त्वसे जो प्रतियोगिकी उपलब्धि आपादन करनेके लिए शक्य है, तादृश उपलब्धिका अभावरूप जो अनुपलब्धि है, वही अनुपलब्धि तद्ग्राहिका=अभावकी ग्राहिका है, और वह तो प्रकृतमें है ही, इति नच—वाच्यम् क्योंकि स्तम्भमें योग्यत्वकी प्रसिद्धिसे पिशाचमें उपलम्भका आपादन सम्भवित है, और शशशृङ्गका अस्तित्व तो योग्यतासे व्याप्त नहीं है, जिसके बलसे तेन=अस्तित्वेन उपलम्भ आपादित हो, फलतः यहाँपर प्रतियोगिसत्त्वविरोधिनी अनुपलब्धि नहीं है। अतएव=प्रतियोगिसत्त्वविरोधिनी अनुपलब्धिको संसर्गाभावके प्रत्यक्षमें हेतुत्व होनेसे ही पिशाचादिके भेदका प्रत्यक्ष होता है, पिशाचात्यन्ताभावका नहीं,—पिशाचकी अनुपलब्धि

पिशाचसत्त्वकी विरोधिनी नहीं क्योंकि पितृवनमें जहाँ पिशाचरूप प्रतियोगिका सत्त्व है वहाँभी पिशाचकी अनुपलब्धि है;=यदि पिशाचः स्यात् तर्हि उपलभ्येत ऐसा आरोप नहीं होता है, अतःपिशाचात्यन्ताभावका प्रत्यक्ष नहीं होता है, और यदि स्तम्भः पिशाचः स्यात् तर्हि पिशाचत्वेन उपलभ्येत, नतु स्तम्भत्वेन उपलभ्यते च स्तम्भत्वेन तेन स्तम्भः–पिशाचो न ऐसा आरोप बन सकता है, अतः पिशाचान्योन्याभावका प्रत्यक्ष होता है। शृङ्गादिक तो योग्यतासे व्याप्त ही हैं इति नच वाच्यम्–क्योंकि तितनेसे शृङ्गाभावमें ही योग्यानुपलब्धिका सम्भव है, नकि अलीकाभावमें।

एवञ्च शशशृङ्गं नास्तीत्युल्लिखन्त्या अपि बुद्धेः शशे शृङ्गाभाव एव विषयः। गवि शशशृङ्गं नास्तीत्यस्या अपि गवाधिकरणकशृङ्गे शशीयत्वाभावो विषयः अनन्यगतिकत्वात्, अतएव गोरनन्वयोऽपि नास्ति, शशशृङ्गादेरुपस्थित्यभावात् न तद्भावग्रह इति तार्किकरीत्या उक्तत्वाच्च। अतएव सप्तमे पदार्थत्वनिषेधस्यासंभवात् पदार्थाः षडेवेत्यत्र न कुसृष्टिव्याख्यानम्। नच घटो नास्तीति बुद्धेर्घटसंसर्गाभाव एव विषयः नतु घटाभावः पूर्वं तत्र घटस्य सत्त्वेन तदत्यन्ताभावस्याभावात्, प्राक्प्रध्वंसाभावयोः प्रतियोगिकाले असम्भावितत्त्वात्, भेदस्य घटापसरणानपसरणयोस्तुल्यत्वात्, संसर्गोऽपि न तात्विकः प्रतियोगिनि पूर्ववद्ध्वंसाद्यनुपपत्तेः किन्त्वसन् संसर्ग इति–वाच्यम्, उक्तमत्रोदयनाचार्यैः–यन्निबन्धना हि यत् प्रतीतिः तदभावनिबन्धनैव तदभावप्रतीतिः। इह च घटास्तित्वप्रतीतिः सयोगनिबन्धना, तदभावप्रतीतिः संयोगाभावनिबन्धनैव। स च संयोगस्तात्त्विकः एव न च ध्वंसादिविकल्पः घटानयनात् प्राक् संयोगप्रागभावस्य घटे अपसारिते संयोगध्वंसस्य सत्त्वात्।

एवञ्च=जब यों हुआ तब 'शशशृंग नहीं है' इस रीतिसे उल्लेख करती हुई बुद्धिकाभी शशमें शृङ्गाभावही विषय है। गोमें शशशृङ्ग नहीं है, इस बुद्धिकाभी गोमें रहनेवाले शृङ्गमें शशीयत्वाभाव विषय है, अन्यगतिकत्व न होनेसे। अतएव गोका अनन्वयभी नहीं है, शशशृङ्गादिकी उपस्थितिके अभावसे शशशृङ्गादिके अभावका ग्रह नहीं होता है, इस तार्किक रीतिसे उक्त होनेसे=शशशृङ्गादिके अभावका ग्रह नहीं होता है, ऐसा जो वेदान्तग्रन्थोंमें लेख है वह उक्त तार्किक रीतिसे है, अतएव=अप्रसिद्ध पदार्थका अभाव बुद्धिमें विशेष्यतया या विशेषणतया प्रत्यय न होनेसेही सप्तममें पदार्थत्वके निषेधके असम्भवसे पदार्थ छ ही हैं यहाँपर कुसृष्टिव्याख्यान नहीं है=प्राचीन नैयायिकोंनें 'षडेव भावपदार्थाः' ऐसा कहा है इसमें एवकारसे सप्तमभावपदार्थका अभाव प्रतीत होता है, वहाँ यह शङ्का हुई कि सप्तमभावपदार्थ प्रमित है, या नहीं, यदि प्रमित है तब तो उसका अभाव नहीं हो सकता, सप्त भाव सिद्ध होगये, यदि अप्रमित है तबभी अभाव नहीं बन सकता है, क्योंकि अप्रमित पदार्थ अलीक है, और अलीकप्रतियोगिक अभाव नहीं माना जा सकता है, ऐसी आशङ्काकर उक्तवाक्यका

यह अर्थ कियाकि, द्रव्यादिषट्कात्यन्ताभावमें भावत्वका सामानाधिकरण्य नहीं है, ऐसा अर्थ करनेमें सप्तमकी भावत्वेन प्रसिद्धिभी आवश्यक नहीं और अलीकप्रतियोगिक अभावभी नहीं इस यथार्थको द्वैतीने भ्रान्तिसे अपने उदस्यमानग्रन्थमें कुसृष्टिव्याख्यान बतलाया है, और अलीकप्रतियोगिक अभावको मानकर आत्मीय व्याख्यानको सुसृष्टिव्याख्यान समझा है, सो अलीकप्रतियोगिक अभावके न सिद्ध होनेसे प्रथम व्याख्यान ही सुसृष्टिव्याख्यान है, और द्वैतीका व्याख्यानही कुसृष्टिव्याख्यान हैं, इस अर्थको सिद्धान्तीने ' न कुसृष्टिव्याख्यानम् इससे, द्योतित किया है। शङ्कते नचेति। 'घट नहीं है' इस बुद्धिका विषय घटका ससंर्गाभाव ही है, घटका अभाव नहीं; पूर्वमें वहाँपर घटका सत्त्व होनेसे घटके अत्यन्ताभावके अभावसे प्रागभाव तथा प्रध्वंसाभाव इन दोनोंके प्रतियोगिकालमें असम्भावितत्वसे, भेदको घटानयनानयनमें तुल्यत्व होनेसे, और संसर्गभी तात्त्विक नहीं है, प्रतियोगीमें=सद्रूपप्रतियोगीमें पूर्वकी नाईं ध्वंसादिकीभी अनुपपत्तिसे, किन्तु संसर्ग असत् है, इति नच वाच्यम्, क्योंकि यहाँपर उदयनाचार्यने कहा है—यदधीन जिसकी प्रतीति होती है, तदभावाधीन तदभावकी प्रतीति होती है, यहाँपर तो घटके अस्तित्वकी प्रतीति संयोगसम्बन्धके अधीन है, और घटास्तित्वके अभावकी प्रतीति घटसंयोगाभावाधीना है, और वह संयोग तो तात्त्विकही है। ध्वंसादिका विकल्प है, नच विकल्प नहीं है, क्यों ? घटके ले आनेसे पहिले संयोगके प्रागभावके सत्त्वसे, और घटके दूर कर देनेपर संयोगके ध्वंसका सत्त्व होनेसे।

नहि घटे अन्यत्र नीते तद्देशे घटसंयोगोऽस्ति, येन प्रागभावादिर्व्याहन्येत। तथाच संसर्गप्रतियोगिकाभावस्वीकारेऽपि नासत्प्रतियोगिकाभावसिद्धिः। वस्तुतस्तु घटप्रतियोगिकत्वेनैवाभावस्यानुभवान्नायं संयोगप्रतियोगिको भवितुमर्हति एवञ्च सति कालविशेषसंसर्ग्यन्ताभावो वा उत्पादविनाशशीलः तुरीयः संसर्गाभावो वा भूतलादिसंयुक्तस्य घटस्य विशेषणाभावप्रयुक्तविशिष्टाभावो वा अङ्गीकरणीयः। नच—अत्राद्ये ध्वंसादेरुच्छेदः कपालेऽपि घटान्यकालसंसर्गिणैवात्यन्ताभावेन तद्व्यवहारोपपत्तिः—वाच्यम्; दण्डी गौरश्चलतीति विलक्षणव्यवहारत्रये द्रव्यगुणकर्माणि विलक्षणानि हेतुर्यथा तथात्रापि नास्ति नष्टो, भविष्यतीति विलक्षणव्यवहारत्रयस्यैकेनात्यन्ताभावेनोपपादयितुमशक्यत्वाद्विलक्षणाभावत्रयसिद्धिः। समयविशेषसंसर्गश्च तत्समयावच्छिन्नं स्वरूपमेव। संयोगध्वंसादिर्वा।

घटके अन्यत्र नीत होनेपर तद्देशे=घटदेशमें घटसंयोग नहीं है जिससे कि प्रागभावादिक व्याहत हों। फलतः संसर्ग है प्रतियोगि जिसका एवम्भूत अभावके उक्त स्थलादिमें स्वीकार होनेपरभी असत्प्रतियोगिक अभावकी सिद्धि नहीं है और वस्तुतः तो 'घटो नास्ति' इस रीतिसे घटप्रतियोगिकत्वेन ही अभावका अनुभव होनेसे यह अभाव संयोगप्रतियोगिक होनेसे व्यापक नहीं है। एवञ्च=जब इस अभावको घटप्रतियोगिकत्व अनुभवसिद्ध है तब तो कालविशेषसे सम्बन्धरखनेवाला अत्यन्ताभाव या उत्पत्तिविनाशस्वभाववाला तुरीय संसर्गाभाव=

सामयिकाभाव अथवा भूतलादिसंयुक्त घटका, विशेषणाभावप्रयुक्तविशिष्टाभाव अङ्गीकरणीय हैं। शङ्कते नचेति। अत्र=उक्त तीनों पक्षोंमेंसे आदिमपक्षके स्वीकार होनेपर ध्वंसादिका उच्छेद है, कपालमें घटभिन्नकालसंसर्गि अत्यन्ताभावसेही ध्वंसादिके व्यवहारकी उपपत्तिसे इति नच वाच्यम् क्योंकि जैसे दण्डी, गौरः, चलति, इस विलक्षणव्यवहारत्रयमें द्रव्य गुण कर्मरूप विलक्षण तीन हेतु हैं तैसे अभावस्थलमेंभी नास्ति=नहीं है, नष्टः=नाशको प्राप्त हुआ भविष्यति=होगा, इस विलक्षणव्यवहारत्रयको एक अत्यन्ताभावसे उपपादन करनेके लिए अशक्यत्व होनेसे विलक्षण–अभावत्रयकी सिद्धि है। और समय विशेषका संसर्गतो तत्समयावच्छिन्न भूतलादिरूप आश्रयका स्वरूपही है या संयोगध्वंसादिरूप है, आदिशब्दसे संयोगप्रागभावादिका ग्रहण है।

न—संयोगादिध्वंसादिनैवावश्यकेन तर्हि प्रतीत्युपपत्तिरिति–वाच्यम्, घटप्रतियोगिकत्वेनानुभवानुपपत्तेरुक्तत्वात्। नच–कपालेऽपि घटध्वंसादिः सम्बन्धस्थानीयोऽस्तु, एकएवात्यन्ताभावो व्यवहारयत्विति–वाच्यम्, विलक्षणव्यवहारत्रयानुपपत्त्या दत्तोत्तरत्वात्। अत एव द्वितीयतृतीयपक्षावपि क्षोदसहौ घटप्रतियोगिकत्वानुभवस्यान्यथाउपपादयितुमशक्यत्वात्। एतेन–दण्डसत्त्वेऽपि पुरुषासत्त्वात् दण्ड्यभावदर्शनादस्तु तत्र विशिष्टाभावः, नचात्र संयोगसत्त्वे संयोग्यभावो दृष्टः; तथाच न विशिष्टस्याभावः किन्तु विशेषणस्यैवेति–निरस्तम्, संयोगिप्रतियोगिकत्वेनानुभवात्। संविदेव हि भगवती वस्तूपगमे शरणमिति। तस्मान्निषेधप्रतियोगित्वान्यथानुपपत्त्यापि अनिर्वाच्यत्वसिद्धिः।

इत्यद्वैतसिद्धौ निषेधप्रतियोगित्वानुपपत्त्याऽनिर्वचनीयत्वसमर्थनम्।

शङ्कते नचेति। आवश्यक जो संयोगादिका ध्वंसादि उस संयोगादिके ध्वंसादिसेही तत्र तो अभावप्रतीतिकी उपपत्ति है, इति नच वाच्यम्, क्यों? घटप्रतियोगिकत्वेन जो अभावका अनुभव होता है उसकी अनुपपत्तिको उक्त होनेसे। कपालमें भी घटध्वंसादि सम्बन्धके स्थानमें रहो एकही अत्यन्ताभाव व्यवहार करावे, इति नच वाच्यम् क्यों? विलक्षण जो व्यवहारत्रय उस व्यवहारत्रयकी अनुपपत्तिसे अनुपदमेव दत्तोत्तरत्व होनेसे। अतएव द्वितीयतृतीयपक्षभी विचारसह हैं, अतएव शब्दकाही अर्थ करते हैं–घटप्रतियोगिकत्वानुभवको अन्यथा उपपादन करनेके लिए अशक्यत्व होनेसे। एतेन=इस कथनसे दण्डका सत्व होनेपरभी पुरुषके असत्त्वसे दण्डीका अभाव देखनेसे रहो वहाँपर विशिष्टाभाव, परन्तु प्रकृतमें तो संयोगका सत्त्व होनेपर संयोगीका अभाव दृष्ट नहीं है, फलतः विशिष्टका अभाव नहीं है, किन्तु विशेषणकाही अभाव है, यह कथन खण्डित हुआ, हेतुको स्पष्ट करते हैं संयोगिप्रतियोगिकत्वेन अभावका अनुभव होनेसे प्रतीति भगवती ही वस्त्वङ्गीकारमें शरण है। फलतः निषेधप्रतियोगित्वान्यथानुपपत्तिसेभी अनिर्वाच्यत्वकी सिद्धि है।

इति सरलायां निषेधप्रतियोगित्वानुपपत्त्याऽनिर्वचनीयत्वसमर्थनम्।

अथ श्रुत्यर्थापत्त्युपपत्तिः ।

'नासदासीन्नोसदासीदित्यादिश्रुतयोऽप्यनिर्वाच्यत्वे प्रमाणम् ।' नच—अत्र सदसच्छब्दौ पञ्चभूतपरौ, 'न सत्तन्नासदुच्यत' इत्यादौ भूते प्रयोगात् 'यदन्यद्वायोरन्तरिक्षाच्चैतत्सद्वायुरन्तरिक्षं चेत्यसदिति श्रुतेश्चेति—वाच्यम्, प्रसिद्धपरत्वे संभवति, अप्रसिद्धपरताया अयुक्तत्वात्, नहि भूते सदसच्छब्दौ प्रसिद्धौ, किन्तु पारमार्थिकापारमार्थिकयोरेव । नच नासदासीदित्यत्राप्रसिद्धप्रतिषेधापत्तिः नोसदासीदित्यनेन सद्भिन्नत्वे उक्ते असत्त्वस्यापि प्रसक्तेः । नच तदानीमित्यस्य वैयर्थ्यम्; 'नासीद्रजो नो व्योमेति' रजोनिषेधादावेव तदन्वयात्, नहि रजःप्रभृतीनां सर्वदा अनस्तित्वम् ।

अथ सरलायां श्रुत्यर्थापत्त्युपपत्तिः ।

असत् न था और सत् न था (ऋ० सं० मण्ड० १० सू० १२९ मं० १) इत्यादि श्रुतियाँभी अनिर्वाच्यत्वमें प्रमाण हैं । शङ्कते नचेति । अत्र=प्रकृतश्रुतिओंमें सत् तथा असत् ये दोनों शब्द पञ्चभूतपर हैं, न वह सत् कहा जाता है, न असत् (गी० १३।१२) इत्यादि स्थलोंमें भूतोंमें प्रयोगसे, वायोः=वायुसे च=और अन्तरिक्षात्=आकाशसे यदन्यत्=जो पृथक् है एतत्=वह सत् है—पृथिव्यादि सत् हैं, वायु तथा अन्तरिक्ष ये दोनों असत् हैं (बृ०२।३।२) इस श्रुतिसेभी इति नच वाच्यम् क्यों ? प्रसिद्धपरत्वका सम्भव होनेपर अप्रसिद्धपरताको अयुक्तत्व होनेसे भूतोमें सत् तथा असत् शब्द प्रसिद्ध नहीं है, किन्तु पारमार्थिक तथा अपारमार्थिक इन दोनोंमेंही क्रमशः प्रसिद्ध हैं । असत् न था यहाँपर आपकी रीतिसे अप्रसिद्धके प्रतिषेधकी आपत्ति है, नच=ऐसी आपत्ति नहीं है, 'नो सदासीत्' इससे सद्भिन्नत्वके उक्त होनेपर असत्त्वकीभी प्रसक्तिसे । असत्त्वका निषेध होनेपर 'तदानीम्' इस विशेषणका वैयर्थ्य है=असत्त्वका निषेध सार्वदिक है नकि यत्किञ्चित्कालावच्छेदेन तथा च तदानींका वैयर्थ्य है, नच=वैयर्थ्य नहीं है, क्यों ? न था रज और न था व्योम(ऋ०१०।१२९।१) इस रीतिसे रजोनिषेधादिमेंही तदानींका अन्वय होनेसे=उस कालमें रजोगुण न था और व्योम न था उस कालमें; इस रीतिसे अन्वय होनेसे । रजःप्रभृतिओंका सर्वदा अस्तित्वाभाव नहीं है ।

नच—नोसदासीदित्यनेनैव रजःप्रभृतिनिषेधे सिद्धे पृथङ्निषेधानुपपत्तिः नो सदासीदित्यत्र सच्छब्दस्य परमार्थसत्परत्वेन व्यावहारिकसतो रजःप्रभृतेर्निषेधस्य ततः प्राप्त्यभावात् 'आनीदवातं स्वधया तदेकमिति वाक्यशेषात् ब्रह्मणोऽपि अनिर्वाच्यत्वप्रसङ्गः तम आसीदिति वाक्यात् अविद्याया इवेति चेत् श्रुत्यन्तराविरोधाय सदेकं ब्रह्म सदासीन्न सदसद्विलक्षणमित्यर्थपर्यवसानात् ।

इत्यद्वैतसिद्धौ नासदासीदित्यादिश्रुत्यर्थापत्तिः ।

शङ्कते नचेति । 'सत् न था' इससे ही रजः प्रभृतिका निषेधसिद्ध होनेपर रजआदिकके भिन्ननिषेधकी अनुपपत्ति है नच=अनुपपत्ति नही है, क्यों ? 'नो सदासीत्' यहाँपर

सच्छब्दको परमार्थसत्परत्व होनेसे व्यावहारिकसतः=व्यावहारिकादिसत् जो रजःप्रभृति उस रजःप्रभृतिके निषेधको उस श्रुतिसे प्राप्त न होनेसे। शङ्कते आनीदिति। आनीदवातं स्वधया तदेकम्, इस वाक्यशेषसे ब्रह्मकोभी अनिर्वाच्यत्वका प्रसङ्ग है, 'तम आसीत्' इस वाक्यसे अविद्याकी नाईं=जब 'तम आसीत्' इस वाक्यशेषसे अविद्याका और अविद्यात्मककार्य्य-सामान्यका सदसत्से अन्यत्व लब्ध होता है और तमःपदको अविद्यात्मकार्थकत्व होनेसे अ-विद्यात्मकमें 'आसीत्' इसका अन्वय होनेसे अविद्यामेंभी सदन्वय होनेसे—अर्थात् अविद्यामेंभी सत्त्वलाभके सम्भवसे तब 'आनीत्' इसको आस्पदर्थकता होनेसे आसीत् इत्यादि उपसंहारसे ब्रह्मकोभी सदसदन्यत्व होगा, यह भाव है, इति चेन्न; क्यों? श्रुत्यन्तराविरोधाय='सदेव सौम्य' सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म इत्यादि श्रुतिओंसे अविरोधके लिए सद्रूप एक ब्रह्म सत् था सदसद्विलक्षण नहीं इस अर्थमें पर्य्यवसान होनेसे। यहाँपर प्रस्तुत ऋग्वेदके दो मन्त्र लिखकर उन्होंका संक्षेपसे अर्थ लिखते हैं—

ऋग्वेद मण्डल १०। अध्याय ११। सूक्त १२९

नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं नासीद्रजो नो व्योमापरोयत्।
किमावरीवः कुहकस्य शर्मन्नम्भः किमासीद्गहनं गभीरम्॥ १॥
न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि न रात्र्या अह्न आसीत्प्रकेतः।
आनीदवातं स्वधया तदेकं तस्माद्धान्यन्नपरः किञ्चनास॥ २॥

अर्थ—तदानीम्=प्रलयमें असत्=निरुपाख्य नासीत्=न था=असत्को अकारणत्व होनेसे वह न था; सत् नो आसीत्=सत्त्वेन निरुक्तयर्हभी न था,—सद्रूपको सद्विलक्षण जो जगत् उसके परिणामित्वका असम्भव होनेसे=सद्रूपमें स्वविलक्षण जगत्का परिणामित्व नहीं बन सकता है, अतः सत्भी न था फलतः अनिर्वचनीय था। रजः=लोका रजांस्युच्यन्ते (नि० अ० ४ खण्ड १९) इस वचनसे रजः=नाम लोकोंका है और एकवचन सामान्यापेक्ष है, यद्यपि रजश्शब्दके व्योमा-दिरूप औरभी अनेक अर्थ निरुक्तमें लिखे हैं परन्तु यहाँपर व्योमादिको पृथक् वक्ष्यमाण होनेसे व्योमादिसे भिन्न लोक रजश्शब्दसे लेने चाहिएँ, फलतः व्योमादितः भिन्न लोक प्रलयमें न थे यह अर्थ निकला, तथा,—व्योम=अन्तरिक्ष लोक और परः=परस्तात्=उपरिद्युलोकादिसे सत्य-लोकादिपर्य्यन्त उस कालमें न था। इस रीतिसे चतुर्दश भुवनोंसे गर्भित ब्रह्माण्डका निषेधकर पुराणप्रसिद्ध भूतोंका निषेध करता है—किमावरीव इति। किमावरीवः=क्या वहाँ आवरणीय पदार्थको भूत आवृत्त करेंगे=अर्थात् आवरणीय पदार्थके अभावसे प्रलयमें आवरक भूत न थे। कुह=किस देशमें स्थित होकर भूत आवृत्त करेगा,=अर्थात् उस कालमें देशभी नथा। कस्य= किसके शर्मन्=सुखके लिए—भोगके लिए भूत आवृत्त करेगा=अर्थात् मनोरूप उपाधिके लयसे उस कालमें भोक्ताभी न थे। आपो वा इदमग्रे सलिलमासीत्, (नृ० पू० ता० १।१) इस श्रुतिसे प्रलयमें जलके सत्त्वभ्रमको निरस्त करता है, अम्भ क्या था गहन गम्भीर=गहन गम्भीर

जलभी न था, प्रलयमें संहर्त्ता मृत्यु होगी, तहाँ कहता है न मृत्युरासीत्=मृत्युभी न था, तब अमृत-जीवन तो होगा, तहाँ कहता है अमृतम्=जीवनभी न था। रात्र्याः=रातका अह्नः=दिनका प्रकेतः=विज्ञान न था-चन्द्र तथा सूर्य्य इन दोनोंके अभावसे रातदिनका ज्ञान न था तत्=सर्ववेदान्तप्रसिद्ध ब्रह्म आनीत्=जीवितवत् था प्राणका सम्बन्ध न होनेसे जीवन कैसे होगा, तहाँ कहता है अवातम्=वातशून्य=भावार्थ यह कि आनीत्का अर्थ यहाँपर आसीत् है, स्वधया=मायाके सहित वातरहित एकम्=अद्वितीय ब्रह्म था यहाँपर स्वधाके साहित्यकी उक्ति व्यवहारतः है नकि परमार्थतः, स्वस्मिन् धार्यते इति स्वधा-इस व्युत्पत्तिसे स्वधाशब्द मायाका वाचक है। ननु यदि स्वधासहित ब्रह्म प्रव्यय कालमें है तब न रजः इत्यादि असङ्गत है, क्योंकि मायारूप स्वधासे अतिरिक्त तो रज आदिक नहीं है, तहाँ कहता है तस्मादिति तस्मात्=स्वधासहित ब्रह्मसे अन्यः परः=सृष्टिकालमें जायमान कुछभी नास=उस कालमें नथा।

इति सरलायां श्रुत्यर्थापत्त्युपपत्तिः।

अथासत्ख्यातिभङ्गः।

तस्मादनिर्वाच्यख्यातिरेव प्रमाणसम्भवात्। ननु—असदन्यथाख्यातिः प्रमाणविरहात्। नचासद्भाने असदेव रजतमभादिति प्रत्यक्षं मानम्; अनन्तरोक्तबाधकेन सद्वैलक्षण्यविषयकत्वात्; नचेदं प्रत्यक्षमपि; त्वयापि हि असदात्मनः सतः प्रत्यक्षत्वमङ्गीक्रियते। नचात्रपूर्वकालीनभानविषये रजते असत्त्वमिति ज्ञानम् असदात्मना सद्विषयी करोति। नचविमतमसत् सत्त्वानधिकरणत्वात्, शशशृङ्गवत् विमता, अप्रमा असद्विषयिणी, सत्त्वानधिकरणविषयकत्वात् सन्मात्राविषयकत्वे सति सविषयकत्वात्। नृशृङ्गमसदित्यादिवाक्यजन्यपरोक्षज्ञानवदित्यनुमानं तत्र मानम्। पूर्वोक्तयुक्त्या तत्र बाधात्, प्रथमानुमाने शब्दैकसमधिगम्यत्वस्य द्वितीयतृतीययोः परोक्षत्वस्योपाधित्वाच्च।

अथ सरलायामसत्ख्यातिभङ्गः।

तस्मात् अनिर्वचनीय ख्याति ही ठीक है प्रमाणका संभव होनेसे, असत्ख्याति या अन्यथा ख्याति ठीक नहीं प्रमाणका अभाव होनेसे। असत्के भानमें असत् ही रजत प्रतीत हुआ यह प्रत्यक्षही प्रमाण है, नच=प्रत्यक्षप्रमाण असत्के भानमें नहीं है अनन्तरोक्तबाधकेन=गतपूर्वप्रकरणमें उक्त बाधकसे इस प्रत्यक्षको असद्वैलक्षण्यविषयकत्व होनेसे=असत्के साथ इन्द्रियका सन्निकर्ष नहीं बन सकता है, अतः असत्का भान नहीं होता है यह गतपूर्वप्रकरणमें कहा जा चुका है। इदम्=असदेव रजतमभात्=यह ज्ञान प्रत्यक्षभी नहीं है, क्योंकि तुमसेभी असत्त्वेन सत्का प्रत्यक्षत्व अङ्गीकार किया जाता है और यहाँपर पूर्वकालीनज्ञानविषय जो रजत तादृश रजतविषयक जो 'असत्त्वम्' इत्याकारक ज्ञान वह ज्ञान असद्रूपेण सत्को विषय नहीं करता है। विमत, असत् है, सत्त्वका अनधिकरणत्व होनेसे शशशृङ्गवत्, विमता अप्रमा असद्विषयिणी है

सत्त्वानधिकरणविषयकत्व होनेसे, सन्मात्राविषयकत्वविशिष्टसविषयकत्वं होनेसे नृशृङ्गमसत् इत्यादिवाक्यजन्यपरोक्षज्ञानवत्, इत्यनुमानम्=ये अनुमान तत्र=असत्में प्रमाण हैं नच=नहीं हैं क्यों ? पूर्वोक्तयुक्त्या=असत्के प्रत्यक्षत्वका असम्भव है इत्यादि पूर्वोक्त युक्तिसे तत्र=उन तीनों अनुमानोंमें बाधसे। और प्रथमानुमानमें शब्दैकसमधिगम्यत्वको तथा द्वितीय तृतीय इन दोनों अनुमानोंमें परोक्षत्वको उपाधित्व होनेसे भी ये अनुमान नहीं बन सकते हैं।

किञ्चासत्ख्यात्यङ्गीकारेण बौद्धमतप्रवेशापत्तिः। नच सदुपरागो विशेषः; तथाप्यसत्ख्यात्यापत्तेः तदवस्थत्वात्। नच तार्किकैरपि असतः संसर्गस्य भानाङ्गीकारेण तेषामप्येवमापाद्येतेति—वाच्यम्; तथाङ्गीकारे तेषामपि तथैव। वस्तुतस्तु तेषामपि सत्संसर्गभान एव निर्भरता। शुक्तिरूप्यं तत्तादात्म्यम् चेत्यतोऽन्यस्य रजतभ्रमे अविषयत्वात्, तेषां च सत्यत्वात् नच तर्हि भ्रमत्वानुपपत्तिः; व्यधिकरणप्रकारकत्वेन तत्त्वात्। नच—रजतप्रतियोगिकसंसर्गस्य शुक्त्यनिष्ठत्वात् असत्—संसर्गभानं विना व्यधिकरणप्रकारकत्वमेव न स्यादिति वाच्यम्; तात्त्विकमायुष्मन्नसत्संसर्गः शुक्तिनिष्ठः येन तद्विषयत्वं व्यधिकरणप्रकारकत्वाय अङ्गीकुरुषे। तस्मात् भासमानवैशिष्ट्यप्रतियोगित्वं न प्रकारत्वं, किन्तु ज्ञानविषययोः स्वरूपसम्बन्धविशेषः। स च स्वरूपसम्बन्धः सन् वा संसर्गो भासतामसन्वा। उभयथापि समान एव। नच—शशशृङ्गमसदित्यादिवाक्यैरसत्यपि परोक्षप्रतीतेस्त्वयाङ्गीकारेण तवाप्यसत्ख्यात्यापत्तिः; तत्र हि न प्रतीतिः किन्तु विकल्पमात्रमित्युक्तत्वात् तस्मान्नासत्ख्यातिः।

इत्यसत्ख्यातिभङ्गः।

किञ्च=औरभी वक्तव्य है, असत्ख्यातिके अङ्गीकारसे द्वैतीको बौद्धमतमें प्रवेशकी आपत्ति है, सत्का उपराग विशेष है=बौद्धमतमें सत्का उपराग नहीं मेरे मतमें सत्का उपराग है, यह विशेष है, नच=यह विशेष अकिञ्चित्कर है—क्योंकि तैसा होनेपरभी असत्ख्यात्यापत्तिको तदवस्थ होनेसे=सत् का उपराग होनेपरभी बौद्धसम्मत असत्ख्याति तो है ही। शङ्कते नचेति। तार्किकोंसेभी असत्संसर्गके भानका अङ्गीकार होनेसे तेषामपि=तार्किकोंकोभी असत्ख्यातिकी आपत्ति है इति नच वाच्यम् क्योंकि तथाङ्गीकारे=असत्संसर्गका भान अङ्गीकार करनेपर तेषामपि=तार्किकोंकोभी तथैव=तिस प्रकारसे ही असत्ख्यातिकी आपत्ति है। और वस्तुतः तो तार्किकोंकोभी सत्संसर्गके भानमें निर्भरता है। शुक्ति रूप्य और शुक्ति रूप्यका तादात्म्य इन तीनोंसे अन्यको रजतभ्रममें अविषयत्व होनेसे, तेषां च, शुक्ति रूप्य तादात्म्य इन तीनोंका सत्यत्व होनेसे, तब तार्किकमतमें भ्रमत्वकी अनुपपत्ति है, नच भ्रमत्वकी अनुपपत्ति नहीं है, क्यों ? तार्किकमतमें व्यधिकरणप्रकारकत्वेन भ्रमत्व होनेसे। रजतप्रतियोगिकसंसर्गको शुक्तिनिष्ठत्व न होनेसे असत्संसर्गके भान बिना व्यधिकरणप्रकारकत्व ही न होगा, इति नच वाच्यम्, तत् किम्=सो क्या आयुष्मन्, असत् का संसर्ग शुक्तिनिष्ठ है—

जिससे कि तद्विषयत्व व्यधिकरणप्रकारकत्वकेलिए अङ्गीकार करता है=यदि असत् का संसर्ग शुक्तिनिष्ठ है तब असत् कैसे और उसका भान असद्भान कैसे होगा, तथाच द्वैतीका यह कथन भ्रान्तियुक्त है। ततः भासमान जो वैशिष्ट्य=सम्बन्ध तादृशवैशिष्ट्यप्रतियोगित्वरूप प्रकारत्व नहीं है किन्तु ज्ञान तथा विषय इन दोनोंके स्वरूपसम्बन्धविशेषका नाम है—प्रकारत्व। और यह स्वरूपसम्बन्ध सत्संसर्गभासित हो या असत् उभयथापि समान है। शशशृङ्गमसत् इत्यादिवाक्योंसे असत्मेंभी परोक्षप्रतीतिका तुमसे अङ्गीकार होनेसे तुमकोभी असत्ख्यातिकी आपत्ति है नच=हमको असत्ख्यातिकी आपत्ति नहीं है, क्योंकि तत्र=शशशृङ्गादिमें प्रतीति नहीं है किन्तु विकल्पमात्र है, ऐसा उक्त होनेसे। तस्मात् असत् की ख्याति नहीं है।

इति सरलायामसत्ख्यातिभङ्गः।

अथान्यथाख्यातिभङ्गः।

नाप्यन्यत्र स्थितस्य रूप्यस्य भानादन्यथाख्यातिः; अत्यन्तासत इवान्यत्र सतोऽप्यपरोक्षप्रतीतिप्रयोजकसन्निकर्षानुपपत्तेस्तुल्यत्वात्‌ नच संस्कारस्मृतिदोषाणां प्रत्यासत्तित्वं रजतप्रत्यक्षमात्रे रजतसंयोगत्वेन कारणत्वावधारणात्, सन्निकर्षान्तरसत्त्वेऽपि तदभावे जरतप्रत्यक्षोत्पत्तेर्वक्तुमशक्यत्वात्। नच लौकिकप्रमारूपप्रत्यक्ष एव तस्य कारणत्वम्; अस्य विभागस्य स्वशिष्यानेव प्रत्युचितत्वात्, गौरवकरत्वात्, निर्विकल्पकसाधारण्याभावाच्च। रजतेन्द्रियसन्निकर्षजस्य रजते रजतत्वप्रकारकज्ञानस्य भ्रमत्वानुपपत्तेः। इमे रङ्गरजते इति भ्रमे विद्यमानोऽपि रजतसन्निकर्षो जनको न भवति अनुमिताविव क्वचिद्विद्यमानोऽपि विषयः।

अथ सरलायामन्यथाख्यातिभङ्गः।

और अन्यत्र स्थित जो रूप्य उस रूप्यके भानसे अन्यथाख्यातिभी नहीं है=अन्यत्रत्यका अन्यथाभानरूप जो अन्यथाख्याति है वहभी ठीक नहीं। क्यों ? जैसे अत्यन्त असत्में अपरोक्षप्रतीतिप्रयोजक जो सन्निकर्ष उस सन्निकर्षकी अनुपपत्ति है, तैसे अन्यत्र सत्मेंभी अपरोक्षप्रतीतिजनकसन्निकर्षकी अनुपपत्तिको तुल्यत्व होनेसे। संस्कार, स्मृति दोष इन्होंको प्रत्यासत्तित्व है, नच=इन्होंको प्रत्यासत्तित्व नहीं बन सकता है, क्यों ? रजतप्रत्यक्षमात्रमें रजतसंयोगत्वेन कारणत्वके अवधारणसे अन्यसन्निकर्षके होनेपरभी तद्भावे=रजतसंयोगके न होनेपर रजतविषयक प्रत्यक्षोत्पत्तिको कहनेके लिए अशक्यत्व होनेसे लौकिकप्रमारूप जो प्रत्यक्ष होता है उस प्रत्यक्षमेंही तस्य=रजतसंयोगको कारणत्व है, नच=ऐसा नहीं हो सकता है क्यों ? इस विभागको स्वशिष्योंके प्रति ही उचित होनेसे=यह विभाग आपके घरकी परिभाषामात्र है, इसको आप तथा आपके शिष्यही आँखोंपर पट्टी चढाकर मान सकते हैं इतर विद्वान् लोग नहीं, गौरवकरत्व होनेसे, निर्विकल्पके साधारण्यके अभावसेभी यह पक्ष ठीक नहीं। रजतके साथ जो इन्द्रियका सन्निकर्ष उस सन्निकर्षसे जायमान जो 'रजतमें

रजतत्वप्रकारक ज्ञान उन ज्ञानको भ्रमत्वकी अनुपपत्तिसे। 'इमे रजतरङ्गे' इस भ्रममें विद्यमानभी रजतसन्निकर्ष जनक नहीं होता है, जैसे अनुमितिमें कहींपर विद्यमानभी हुआ विषय अनुमितिका जनक नहीं होता है।

अथानुमितेर्विषयजन्यत्वे प्रत्यक्षत्वापत्तिः, अतीते अनागते च विषये अनुमितिर्न स्यादिति बाधकम्, रजतप्रत्यक्षस्य रजतसन्निकर्षजन्यत्वे प्रमात्वापत्तिः, असन्निकर्षे च तत्प्रत्यक्षं न स्यादितिबाधकं प्रकृतेऽपि तुल्यम्। यदि तु दोषमहिम्ना रजतसन्निकर्षस्य रङ्गज्ञानांशे जनकत्वम्, रङ्गसन्निकर्षस्य च रजतज्ञानांशे तदा रजतज्ञानांशे तत्सन्निकर्षाजन्यत्वात् प्रमात्वाभाववत् प्रत्यक्षत्वाभावोऽपि स्यात्। तस्मात् इमे इत्येवेन्द्रियजन्यम्। रङ्गरजते इति तु स्मृतिरूपमविद्यावृत्त्यात्मकमनिर्वचनीयत्वादित्यन्यत्र विस्तरः।

इत्यन्यथाख्यातिभङ्गः।

अथ=यदि यों कहो कि अनुमितिको विषयसे जन्यत्व होनेपर प्रत्यक्षत्वकी आपत्ति है, और अतीत तथा अनागतविषयक अनुमिति न होगी यह बाधक है, तो रजतप्रत्यक्षको रजतसन्निकर्षजन्यत्व होनेपर प्रमात्वकी आपत्ति है, और सन्निकर्ष न होनेपर रजतका प्रत्यक्ष न होगा, इस रीतिसे बाधक तो प्रकृतमेंभी तुल्य है। यदि यों कहो कि दोषकी महिमासे रजतसन्निकर्षको रङ्गज्ञानांशमें जनकत्व है, और रङ्गसन्निकर्षको रजतज्ञानांशमें जनकत्व है तो रजतज्ञानांशमें रजतसन्निकर्षजन्यत्वके अभावसे जैसे प्रमात्वाभाव है तैसे प्रत्यक्षत्वाभावभी होगा। ततः 'इमे' इतनाही इन्द्रियजन्य है। 'रङ्गरजते' यह तो स्मृतिरूप अविद्यावृत्त्यात्मक है, अनिर्वचनीय होनेसे, इसका अन्यत्र विस्तर है।

इति सरलायामन्यथाख्यातिभङ्गः।

अथाऽऽविद्यकरजतोत्पत्त्युपपत्तिः।

तच्चानिर्वचनीयमज्ञानोपादानकम्, तत्त्वज्ञानेन नाश्यं च। ननु—एवं रूप्यमुत्पन्नं नष्टं चेतिधीप्रसङ्गः; त्रैकालिकनिषेधप्रतीतिश्च न स्यादिति—चेन्न; उत्पादविनाशप्रतीतिरियं भ्रान्तिसमये आपाद्यते बाधसमये वा। नाद्यः; पूर्वोत्पन्नाविनष्टशुक्त्यभिन्नतया ग्रहस्यैव तत्र प्रतिबन्धकत्वात्, विरोधिज्ञानानुदयेन रूप्यस्याविनाशाच्च। न द्वितीयः अत्यन्ताभावग्रहस्यैव प्रतियोगिग्रह इव तदुत्पादविनाशग्रहेऽपि प्रतिबन्धकत्वात्। नहि कुत्रापि कदापि अत्यन्ताभावाधिकरणत्वेन प्रतीते उत्पादविनाशप्रतीतिरस्ति। नच—त्रयाणां सत्त्वे कथमत्यन्ताभावबुद्ध्या विनाशबुद्धि प्रतिबन्धः? विनाशबुद्ध्यैवात्यन्ताभावबुद्धिः किमिति न प्रतिबध्यते? नियामकाभावादिति—वाच्यम् फलबलेनात्यन्ताभावधीसामग्र्या एव बलवत्त्वेन तस्यैव विनिगमकत्वात्। नच तर्हि उत्पादाद्यधिकरणे अत्यन्ताभावः कथम्? प्रतीतिमुपलभस्व।

अथसरलायामाविद्यकरजतोत्पत्त्युपपत्तिः।

वह अनिर्वचनीय अज्ञानोपादानक है, और, तत्त्वज्ञानसे नाश्य है. शङ्कते नन्विति। एवम्=ऐसा होनेपर रूप्य उत्पन्न हुआ, और नष्ट हुआ इत्याकारकधीका प्रसङ्ग है=उत्पाद और विनाश होता है. तो उत्पादविनाशावगाहिनी बुद्धि होनी चाहिए। और त्रैकालिकनिषेधकी प्रतीतिभी न होगी, इति चेन्न; उत्पादविनाशकी यह प्रतीति भ्रान्तिसमयमें आपादन की जाती है, या बाध समयमें। नाद्यः=प्रथमपक्ष नहीं बन सकता है, पूर्वमें उत्पन्न और अविनष्ट जो शुक्ति तादृशशुक्तिके साथ अभिन्नरूपसे रजतका ग्रह है, उस ग्रहकोही आपाद्यमानप्रतीतिके प्रति प्रतिबन्धकत्व होनेसे और भ्रान्तिकालमें विरोधिज्ञानके अनुदयसे रूप्यके अविनाशसेभी विनाशग्रह भ्रान्तिकालमें नहीं बन सकता है। न द्वितीयः=बाधकालमें भी नहीं आपत्ति हो सकती है, अत्यन्ताभावग्रहको ही प्रतियोगिग्रहकी नाईं प्रतियोगिके उत्पादविनाशग्रहमें भी प्रतिबन्धकत्व होनेसे=जैसे अत्यन्ताभावग्रह प्रतियोगिग्रहका विरोधी है, तैसे प्रतियोगीके उत्पादविनाशग्रहकाभी प्रतिबन्धक है अतः बाधरूपअत्यन्ताभावग्रहकालमें उत्पादविनाशग्रहका आपादन नहीं बन सकता है, क्योंकि अत्यन्ताभावाधिकरणत्वेन प्रतीतमें कहीं भी और कभीभी उत्पादविनाशकी प्रतीति नहीं होती है। शङ्कते नचेति। त्रयाणां सत्त्वे=उत्पाद विनाश अत्यन्ताभाव इन तीनोंका सत्त्व होनेपर अत्यन्ताभावकी बुद्धिसे विनाशकी बुद्धिका प्रतिबन्ध कैसे है विनाशबुद्धिसे अत्यन्ताभावबुद्धिही, किमिति=किसलिए प्रतिबद्ध नहीं होती है, नियामकका अभाव होनेसे इति नच वाच्यम्; फलबलतः अत्यन्ताभावधीकी सामग्रीकोही बलवत्ता होनेसे तस्यैव=अत्यन्ताभावग्रहरूपफलकोही विनिगमकत्व होनेसे। ऐसा होनेपर उत्पादादिके अधिकरणमें अत्यन्ताभाव कैसे है=अत्यन्ताभावका जैसे एककालावच्छेदेन प्रतियोगीके साथ सामाधिकरण्य नहीं है तैसे प्रागभाव तथा प्रध्वंसके साथ भी एककालावच्छेदेन सामानाधिकरण्य अनुपपन्न है इस अभिमानसे द्वैतीकी शङ्का है, नच=ऐसी शङ्का नहीं करना क्यों ? प्रतीतिका अनुभवकर 'इह कालत्रयेऽपि रजतं नास्ति' इत्यादिप्रतीतिसेही अत्यन्ताभावका ध्वंसादिके साथ सामानाधिकरण्य प्रतीत होता है फिर इसका बाध कैसे हो सकता है।

यथापरोक्षप्रतीत्याद्यन्यथानुपपत्त्या सिद्धोत्पादादिकस्य त्रैकालिकनिषेधप्रतियोगित्वम्, विपयीक्रियते। यद्वा—न स्वरूपेण त्रैकालिकनिषेधप्रतियोगित्वं किन्तु पारमार्थिकत्वाकारेण नच—पारमार्थिकसत्वस्यापि प्रतिभाससमये प्रतीतत्वेन न त्रैकालिकनिषेधप्रतियोगित्वं संभवति रजतप्रतियोगित्वेनानुभवविरोधश्चेति—वाच्यम्; प्रतीतिकालप्रतीतं पारमार्थिकत्वमपि प्रातीतिकमेवेति न तत् निषिध्यते किन्तु अन्यत्र दृष्टमेवेति तेनाकारेण रजतस्यैव निषेध इति न तत्प्रतियोगित्वेऽनुभवविरोधोऽपि।

जैसे अपरोक्षप्रतीत्याद्यन्यथानुपपत्तिसे सिद्ध है उत्पादादि जिसका तन्निष्ठत्रैकालिक-

निषेधप्रतियोगित्व विषय किया जाता है। अथवा स्वरूपसे त्रैकालिकनिषेधप्रतियोगित्व नहीं है, किन्तु पारमार्थिकत्वाकारसे है। शङ्कते नचेति। पारमार्थिकत्वकोभी प्रतिभासकालमें प्रतीतत्व होनेसे, त्रैकालिकनिषेधप्रतियोगित्व सम्भवित नहीं है, और रजतप्रतियोगिकत्वेन जो अभावका अनुभव होता है उसका विरोधभी है इति नच वाच्यम्, क्योंकि प्रतीतिकालमें प्रतीतपारमार्थिकत्वभी प्रातीतिकही है अतः वह नहीं निषिद्ध होता है। किन्तु अन्यवृत्ति पारमार्थिकत्वही निषिद्ध होता है। और तादृशपारमार्थिकत्वाकारसे रजतकाही निषेध है अतः रजतप्रतियोगित्वावगाहि जो अनुभव उस अनुभवका विरोधभी नहीं।

ननु—यद्यपि प्रसक्तिर्ज्ञानं सा च स्मृतिरूपा पारमार्थिकत्वस्यास्त्येव; तथापि निषेध्यताप्रयोजकपारमार्थिकत्वाकारेण प्रातिभासिकस्य प्रसक्तिर्नास्तीति–चेन्न; व्यधिकरणधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिको ह्ययमभावः, तत्प्रतीतौ च न विशिष्टप्रसक्तिरुद्देश्या प्रत्येकप्रसक्त्यैव तत्प्रतीत्युपपत्तेः। निर्विकल्पकादभावप्रतीतिरिष्टापत्त्यैव परिहरणीया। यद्वा–लौकिकपरमार्थरजतस्यैव तत्र त्रैकालिकनिषेधः। नच तर्हि, नेह नानेति निषेधायापि तात्त्विकप्रपञ्चान्तरोररीकारापत्तिः; नेह नानेति निषेधस्थले किंच नेति पदसन्दंशात् प्रतीयमानसर्वनिषेधस्यावश्यकतया निषेध्यत्वेन प्रपञ्चान्तरकल्पनाया गौरवकरत्वात्, प्रकृते तु सर्वत्वेन प्रतियोग्यनुल्लेखात् आपणस्थरूप्यनिषेधस्य इदम्यावश्यकत्वेनाप्रतीतनिषेधकल्पनैव युक्ता। न चान्यथाख्यातिभिया तस्याप्रसक्तौ कथं तन्निषेधः? अपरोक्षत्वाभावेऽपि स्मृतिरूपतत्प्रसक्तेः सम्भवात्। एतेन–अधीस्थं पारमार्थिकत्वमवच्छेदकम्, अनवच्छेदकस्याभासस्य धीस्तु निषेधधीहेतुरिति–परास्तम्।

शङ्कते नन्विति। यद्यपि प्रसक्ति नाम ज्ञानका है, और वह प्रसक्ति तो स्मृतिरूपा पारमार्थिकत्वकीभी है ही, तथापि निषेध्यताप्रयोजक जो पारमार्थिकत्व तादृशपारमार्थिकत्वाकारसे प्रातिभासिककी प्रसक्ति नहीं है इति चेन्न; क्यों? व्यधिकरणधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताक यह अभाव है, तत्प्रतीतौ च=और व्यधिकरणधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताक अभावप्रतीतिमें तो विशिष्टकी प्रसक्ति उद्देश्य नहीं है, प्रत्येककी प्रसक्तिसे ही उक्ताभावकी प्रतीतिकी उपपत्तिसे। निर्विकल्पादपि=पारमार्थिकत्वके निर्विकल्पसेभी अभावप्रतीतिः=पारमार्थिकत्वधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताक अभावकी प्रतीति इष्टापत्तिसे ही परिहरणीय है। अथवा लौकिक जो परमार्थरजत उस लौकिकपरमार्थरजतका ही यहाँपर त्रैकालिक निषेध है। तब 'नेह नाना' इस श्रुतिसे प्रतिपादित निषेधके लिएभी तात्त्विकप्रपञ्चान्तरके अङ्गीकारकी आपत्ति है, नच=ऐसी आपत्ति नहीं है, क्योंकि–'नेहनाना' इत्याकारकनिषेधस्थलमें प्रतियोगि–उपस्थापक 'किञ्चन' इस पदके सन्दंशसे प्रतीयमान सर्वके निषेधको आवश्यकत्व होनेसे, निषेध्यत्वेन अन्यप्रपञ्चकी कल्पनाको गौरवकरत्व होनेसे, और प्रकृतमें तो सर्वत्वेन प्रतियोगीका उल्लेख न होनेसे, आपणस्थ जो रूप्य तादृश रूप्यके निषेधको इदमि=इदम्पदार्थमें

आवश्यकत्व होनेसे अप्रतीतके निषेधकी कल्पना ही युक्त है। अन्यथाख्यातिके भयसे तस्य= आपणस्थ रूप्यकी प्रसक्ति न होनेपर कैसे तन्निषेधः=आपणस्थरूप्यका निषेध है ? नच= यह शङ्का युक्त नहीं है, क्यों ? आपणस्थ रूप्यका निषेधसे पूर्वकालमें अपरोक्षत्व न होनेपरभी स्मृतिरूप आपणस्थरूप्यकी प्रसक्तिका सम्भव होनेसे। एतेन=इस कथनसे अधीस्थम्= प्रतियोगीकी प्रसक्तिमें अप्रकार जो पारमार्थिकत्व वह पारमार्थिकत्व अवच्छेदकम्=निषेध्यताव- च्छेदक है, और अनवच्छेदकीभूत जो आभास=प्रातीतिक पारमार्थिकत्व है तद्विषयकधी निषेधधीकी हेतु है, यह खण्डित हुआ।

नच—आरोपपूर्विकैव निषेधधीः; तस्यानारोपात् कथं तदभावप्रत्यय इति वाच्यम्; आरोपस्य हेतुतायां मानाभावेन प्रतियोगिस्मरणाधिकरणानुभवादिनैव तदुप- पत्तेः। अतएव न बुद्धिपूर्वकृतदारोपोऽपि। अन्यथाख्यातेः सामग्र्यभावेनासत्ख्यातिवत् प्रागेव निरासादारोपस्य विशेषादर्शनजन्यत्वेन बुद्धिपूर्वकत्वानुपपत्तेश्च। किंचाभास- प्रसक्तिरेव तत्प्रसक्तिः। ननु—आभास इत्यप्रसक्तेः रजतत्वाकारेणाभासानाभासयोः प्रसक्तिर्वाच्या, सा चानुपपन्ना; उभयोरेकसामान्याभावात् फलबलेन व्याप्तिग्रहे सामा- न्यस्य प्रत्यासत्तित्वेऽपि अन्यत्रातिप्रसङ्गेन तदभावाच्चेति—चेन्न; शुक्तिरूप्यास्यापण- रूप्येण प्रातीतिकस्य सामान्यस्याभावे तदर्थिप्रवृत्त्यानुपपत्त्या तदुभयसामान्यस्यैकस्या- वश्यकत्वात्।

शङ्कते नचेति। आरोप पूर्विकैव=प्रतियोगीकी प्रसक्तिपूर्वकही निषेधधी होती है, तस्या- नारोपात्=आपणस्थरूप्यकी प्रसक्तिके न होनेसे तदभावप्रत्यय=आपणस्थरूप्यके अभावका प्रत्यय कैसे होगा, इति नच वाच्यम् क्यों ? आरोपस्य=प्रतियोगीकी प्रसक्तिको अभाव ज्ञानकी हेतुतामें मानका अभाव होनेसे, प्रतियोगिके स्मरणका जो अधिकरण तादृशाधिकरणानुभवा- दिसेही तदुपपत्तेः=अभावप्रत्ययकी उपपत्तिसे। अतएव=उक्त हेतुसे अभावप्रत्ययकी उपप- त्तिसेही बुद्धिपूर्वकभी प्रतियोगीका आरोप नहीं होता है। सामग्रीके न होनेसे असत्ख्यातिकी तरह अन्यथाख्यातिके प्रथमही निराससे और आरोपको विशेषादर्शनजन्यत्व होनेसे बुद्धिपूर्व- कत्वकी अनुपपत्तिसेभी। किञ्च आभासरूप्यकी प्रसक्तिही तत्प्रसक्तिः=लौकिकपरमार्थकी प्रसक्ति है, शङ्कते नचेति। 'आभास' इस रूपसे प्रसक्त न होनेसे रजतत्त्वाकारसे आभासा- नाभासयोः=प्रातिभासिक और लौकिक परमार्थकी प्रसक्ति कहनी होगी, और वह तो अनु- पपन्न है, उभयोः=उक्त आभासानाभास इन दोनोंमें एकसामान्यके अभावसे, फलबलतः व्याप्तिग्रहणमें, सामान्यको प्रत्यासत्तित्व होनेपरभी अतिप्रसङ्गेन=सार्वज्ञ्यापत्तिसे अन्यत्र उस सामान्यरूप प्रत्यासत्तिके अभावसेभी इति चेन्न; क्यों ? शुक्तिरूप्यका आपणस्थरूप्यके साथ प्रतीतिमें प्रकारीभूतसामान्यका अभाव होनेपर तदर्थि=व्यवहारिकरजतार्थीकी प्रवृत्तिकी अनुपपत्तिसे तदुभय=आभासानाभास एतदुभयवृत्ति एकसामान्यका आवश्यकत्व होनेसे।

तेन सामान्येन प्रत्यासत्त्या आपणरूप्ये ज्ञानं न ब्रूमः किन्तु प्रतियोगितावच्छेदकप्रकारकं ज्ञानं प्रतियोग्यविषयकमपि अभावप्रतीत्युपयुक्तं सम्वृत्तमिति । अतो न सामान्यप्रत्यासत्तिनिबन्धनातिप्रसङ्गावकाशः । यत्तु व्याप्तिग्रहे सामान्यप्रत्यासत्तिमङ्गीकृत्यातिप्रसङ्गेनान्यत्र तदनङ्गीकरणं, तदाशीविषमुखे अङ्गुलिं निवेश्य वृश्चिकाद्भयनाटनम् । प्रमेयत्वेन व्याप्तिं परिच्छिन्दन् सर्वज्ञः स्यादिति व्याप्तिग्रहे एवातिप्रसङ्गस्य प्राचीनैरुक्तत्वात् । इदञ्च यथाश्रुतप्राचीनग्रन्थानुसारेणोक्तम् । अन्योन्याभावमादाय तु लौकिकपरमार्थरजतस्य निषेध्यत्वं प्राग्व्याख्यातं न विस्मर्त्तव्यम् नच सोपादानत्वे सकर्तृकत्वापत्तिः; इष्टापत्तेः ।

उस सामान्यरूप प्रत्यासत्तिसे आपणस्थरूप्यविषयक ज्ञान है । यह हम नहीं कहते हैं, किन्तु प्रतियोगितावच्छेदकप्रकारकज्ञानं=रूप्यत्वादिरूपसे–आभासीभूतरूप रूप्यादिका ज्ञान प्रतियोग्यविषयकम्=लौकिकपरमार्थरूप्याविषयकभी अभाव प्रतीतिमें उपयुक्त सम्वृत्त हुआ अतः सामान्यप्रत्यासत्तिनिबन्धनातिप्रसङ्गका अवकाशन हीं है, और जो व्याप्तिग्रहमें सामान्यप्रत्यासत्तिको अङ्गीकारकर अतिप्रसङ्गसे अन्यत्र उसका अनङ्गीकरण है वह तो सत्वरमरणशरणगरलगल सर्पके मुखमें अङ्गुलिको डालकर वृश्चिकके भयसे भागना है इसी अर्थको स्पष्ट करते हैं प्रमेयत्वेनेति । प्रमेयत्वेन व्याप्तिको जानता हुआ सर्वज्ञ होगा, इसी रीतिसे व्याप्तिग्रहमेंभी अतिप्रसङ्गको प्राचीनोंसे उक्त होनेसे । यह यथाश्रुत प्राचीनग्रन्थ=तत्त्वदीपिकादि ग्रन्थानुसारेण कहा है । अन्योन्याभावको लेकर लौकिक परमार्थ रजतका निषेध्यत्व प्राग्व्याख्यातम्=मिथ्यात्वनिरुक्तिमें व्याख्यात है वह भुलानेके लायक नहीं है । अनिर्वचनीय पदार्थको सोपादानकत्व होनेपर सकर्तृकत्वकी आपत्ति है । नच=ऐसी शङ्का नहीं करना, क्यों ? इष्टापत्तिसे ।

ननु—एवमपि रूप्यस्य कथमज्ञानमुपादानम् ? तदनुविद्धतया अप्रतीतेः; इदमंशानुविद्धतया प्रतीतेरङ्गुलिनिर्देशाच्चेलाञ्चलबन्धनादितश्चेदमंश एव सत्यविकाराविरोधेन मिथ्याविकारात्मना विवर्तेत इत्यङ्गीक्रियतामिति–चेन्न; शुक्त्यज्ञानस्य तावदन्वयव्यतिरेकाभ्यां कारणत्वमावश्यकमिति उपादानमपि तदेवास्तु । तत्कल्पनाया एवाभ्यर्हितत्वात् उपादानान्तरासिद्धेः किञ्च शुक्तिज्ञानमज्ञानं नाशयद्रूप्यमपि नाशयति । तच्च तदुपादानत्वं विना न घटते; निमित्तनाशस्य कार्यनाशं प्रत्यप्रयोजकत्वात्, उपादेये, उपादानानुवेधनियमाभावात्, 'रूपं घटः' 'कपालं घटः' इत्यप्रतीतेः; कथंचिदनुवेधस्य जडत्वादिनात्रापि संभवात् ।

शङ्कते नन्विति । ऐसा होनेपरभी रूप्यका, अज्ञान उपादान कैसे है, अज्ञानानुविद्धतया रजतकी प्रतीति न होनेसे, इदमंशानुविद्धतया रूप्यकी प्रतीतिसे और अङ्गुलिनिर्देशसे तथा चेलाञ्चलबन्धनादिसेभी इदमंशही सत्य जो विकार उसके अविरोधसे मिथ्याविकारात्मना निवर्त्तमान होता है=ऐसा अङ्गीकार करना चाहिए । पुरोवृत्तिमें रूप्यज्ञानके बाद रूप्यके

आदानके लिए, झपटसे चलनेके लिए या दौडनेके लिए जो वस्त्रादिक सँभालने पडते हैं उन वस्त्रादिकोंके सँभालनेका नाम है–चेलाञ्चलबन्धनादि, इतिचेन्न, क्यों ? अन्वय व्यतिरेकसे शुक्त्यज्ञानको कारणत्व आवश्यक है और उपादानभी तदेव=उक्त अज्ञानही रहो। शुक्त्यज्ञानके उपादानत्वकी कल्पनाकोही अभ्यर्हितत्व होनेसे, और अन्य उपादानकी असिद्धिसे। किञ्च शुक्तिज्ञान अज्ञानको नाश करता हुआ रूप्यकोभी नष्ट करता है तच्च=शुक्त्यज्ञानके नाशसे शुक्तिरूप्यका नाश अज्ञानोपादानत्वके विना संघटित नहीं हो सकता है, निमित्तके नाशको कार्यनाशकेप्रति अप्रयोजकत्व होनेसे। और उपादेयमें उपादानके अनुवेधके नियमके अभावसे 'रूपं घटः' 'कपालं घटः' ऐसी प्रतीतिके न होनेसे और कथञ्चित् अनुवेधको जडत्वादिना यहाँपरभी सम्भव होनेसे।

अज्ञानावच्छेदकतया इदमंशे इदमंशानुविद्धतया प्रतीतिरेव तदनुविद्धतया प्रतीतिः। कार्यकारणयोरभेदाङ्गुलिनिर्देशादिकमप्युपपद्यते। नच–अपरोक्षज्ञानस्यापि अज्ञाननाशकतया श्वैत्यानुमित्या अज्ञाने नाशिते पीतभ्रमानुदयः स्यात्, उपादानाभावादिति–वाच्यम् विषयगताज्ञानस्य परोक्षवृत्त्याऽनाशात्। नच–अपरोक्षवृत्तेरज्ञाननाशकतायामपि 'घटोऽयमिति साक्षात्कृते पटोऽयमिति वाक्याभासात् भ्रमानुत्पत्तिप्रसङ्गः। नह्यत्र वह्निना सिञ्चति इत्यत्रेवान्वयविरोध्युपस्थितिरस्ति येनेष्टापत्तिरवकाशमासादयेदिति–वाच्यम्, यदा हि घटत्वं पटत्वविरुद्धतया अवगतं तदा हि तद्दर्शनं विरोधिदर्शनमेवेति कथं नेष्टापत्त्यवकाशः? यदा घटत्वस्य पटत्वविरुद्धतया न ज्ञानं तदा घटत्वज्ञानेन तदज्ञाननाशेऽपि पटत्वविरुद्धतया अज्ञातविशेषाज्ञानस्य सत्त्वात्तदुपादानक एव भ्रम इति न काप्यनुपपत्तिः।

और अज्ञानावच्छेदक जो इदमंश उस इदमंशमें इदमंशानुविद्धतया प्रतीतिही अज्ञानानुविद्धतया प्रतीति है। और कार्यकारणका अभेद होनेसे अङ्गुलिनिर्देशादिकभी उपपन्न होते हैं। शङ्कते नचेति। परोक्षज्ञानकोभी अज्ञानका नाशक होनेसे श्वैत्यानुमानसे=अयं शङ्खः श्वेतः शङ्खत्वात् शङ्खान्तरवत् इस श्वैत्यानुमानसे अज्ञानके नाशित होनेपर शङ्खमें पीतभ्रमका उदय न होगा उपादानके अभावसे इति नच वाच्यम् क्यों? विषयगत अज्ञानका परोक्षवृत्तिसे नाश न होनेसे। शङ्कते नचेति। अपरोक्षवृत्तिको अज्ञानकी नाशकता होनेपरभी 'घटोऽयम्' इस रीतिसे घटको साक्षात्कृत होनेपर 'पटोयम्' इस वाक्याभाससे घटमें भ्रमकी अनुत्पत्तिका प्रसङ्ग है। यहाँपर 'वह्निना सिञ्चति' यहाँका नाईं शाब्दबोधकी विरोधिनी उपस्थिति नहीं है जिससे कि इष्टापत्ति अवकाशको प्राप्त हो, इति नच वाच्यम् क्योंकि जब घटत्व पटत्वविरुद्धतया अवगत है तब तद्दर्शनम्=घटत्वका दर्शन विरोधिका दर्शन ही है, जब यों है तब इष्टापत्तिको अवकाश कैसे न होगा, जब घटत्वका पटत्वविरुद्धतया ज्ञान नहीं है तब घटत्वज्ञानसे घटत्वके अज्ञानका नाश होनेपरभी पटत्वविरुद्धतया अज्ञातविशेषाज्ञानका सत्त्व होनेसे तदुपादानकही भ्रम है, अतः कोई अनुपपत्ति नहीं।

नच—साक्षिवेद्याज्ञानसुखादौ, ज्ञानाभावत्वदुःखाभावत्वारोपौ न स्याताम्, अज्ञानरूपोपादानाभावात्–इति–वाच्यम्, दुःखाभावभिन्नत्वेन ज्ञानाभावभिन्नत्वेन दुःखत्वविरुद्धधर्मवत्तयाऽज्ञानत्वविरुद्धधर्मवत्तया वा अधिष्ठानज्ञानं भ्रमनिवर्त्तकम्। तच्च विरोधभेदादि न साक्षिगम्यम्, किन्त्वनुपलब्धिगम्यम्। तथाच तदज्ञानमेव भ्रमोपादानम्। नच–परोक्षाध्यासो न परोक्षज्ञानेन निवर्त्तेत तस्याज्ञाननिवर्त्तकत्वादिति–वाच्यम्, परोक्षाध्यासे हि प्रमातृगताज्ञानमेवोपादानम्। तच्च परोक्षज्ञानेनापि निवर्त्तत इत्युक्तत्वात्। नच–रूप्यं दृष्ट्वा अधिष्ठानतत्त्वज्ञानं विना निवृत्तस्य पुंसोऽज्ञाननिवृत्त्यभावेन रूप्यतज्ज्ञानयोरविद्यापरिणामयोरनिवृत्त्या रूप्यधीसामग्रीसद्भावेन तद्धीर्दुर्वारैवेति-वाच्यम्।

शङ्कते नचेति। साक्षीसे वेद्य जो अज्ञानसुखादिक हैं उन अज्ञान सुखादिकोंमें ज्ञानाभावत्व तथा दुःखाभावत्व इन दोनोंके आरोप न होंगे, अज्ञानरूप उपादानके अभावसे इति नच वाच्यम्, क्यों ? उक्तस्थलोंमें दुःखाभावभिन्नत्वेन और ज्ञानाभावभिन्नत्वेन अधिष्ठानज्ञान भ्रमका निवर्त्तक है, या दुःखत्वविरुद्धधर्मवत्तया और अज्ञानत्वविरुद्धधर्मवत्तया अधिष्ठानज्ञान भ्रमका निवर्त्तक है। और वह विरोधभेदादि साक्षिगम्य नहीं है, किंतु अनुपलब्धिगम्य है। तथाच विरोधभेदादिका अज्ञानही वहाँपर भ्रमका हेतु है। परोक्षाध्यास परोक्षज्ञानसे निवृत्त नहीं होता है, तस्य=परोक्षज्ञानको अज्ञानका अनिवर्त्तकत्व होनेसे इति नच वाच्यम्, क्योंकि परोक्षाध्यासमें प्रमातृगताज्ञानही उपादान है और वह तो परोक्षज्ञानसे भी निवृत्त होता है यह उक्त होनेसे। शङ्कते नचेति। रूप्यको देखकर अधिष्ठानतत्त्वज्ञानके विना निवृत्त जो पुरुष है उसके अज्ञानकी निवृत्ति न होनेसे अविद्याके परिणामभूत जो रूप्य और रूप्यका ज्ञान इन दोनोंकी निवृत्ति न होनेसे रूप्यधीकी सामग्रीके सद्भावसे रूप्यधी दुर्वारही है इति नच वाच्यम् क्योंकि—

रूप्यं तद्धीश्च उत्पन्ने तावदुदीच्यज्ञानेन उपादाने विलीयते। उपादानस्य निवृत्तिः परं न भवति अधिष्ठानतत्त्वज्ञानाभावात्। रूप्यबुद्ध्यन्तरोत्पत्तिस्तु इदमाकारान्तःकरणवृत्तिसद्भावेनानुत्पन्नाधिष्ठानतत्त्वसाक्षात्कारस्य भवत्येव। तदभावे तद्विलम्बादेव विलम्बइति न काप्यनुपपत्तिः। तथाच सर्वप्रत्ययानां स्वगोचरशूरत्वात् प्रतीतिकाले रजतस्य विद्यमानता सिद्धा। न चैवं तात्त्विकत्वमपि सिध्येत्, तस्यापि प्रातीतिकत्वादिति–वाच्यम्, अपरोक्षप्रतीत्या तावत् त्रिकालाबाध्यत्वरूपं तात्त्विकत्वं विषयीकर्तुं न शक्यत इत्युक्तत्वात्। परोक्षप्रतीत्या विषयीकृतमपि तात्त्विकत्वं प्रातीतिकमेव कालान्तरबाधेन पुनरतात्त्विकत्वस्य संभवात्, तस्मादधिष्ठानांशे अन्तःकरणवृत्तिः अध्यस्तांशे चाविद्यावृत्तिः तस्याश्च तादात्म्यस्य भानान्नान्यख्यातिमतप्रवेशः।

इत्याविद्यकरजतोत्पत्त्युपपत्तिः।

रूप्य तथा रूप्यज्ञान ये दोनों उत्पन्न हुए उदीच्यज्ञानसे उपादानमें विलीन होते हैं। केवल उपादानकी निवृत्ति नहीं होती है अधिष्ठानीयतत्वज्ञानके अभावसे। रूप्यान्तर और बुद्धयन्तर इन दोनोंकी उत्पत्ति तो नहीं उत्पन्न हुआ है अधिष्ठानके तत्त्वका साक्षात्कार जिसको ऐसा जो पुरुष है उसको होती ही है। तद्भावे=इदमाकारअन्तःकरणकी वृत्तिका अभाव होनेपर तद्विलम्बादेव=उक्तवृत्तिके विलम्बसे ही कार्यमें विलम्ब है, अतः कोई अनुपपत्ति नहीं। तथाच सर्वे प्रत्ययोंको स्वगोचरशूरत्वात्=स्वविषयका व्यवस्थापकत्व होनेसे प्रतीतिकालमें रजतकी विद्यमानता सिद्ध हुई। ऐसा होनेपर तात्त्विकत्वभी रूप्यमें सिद्ध हो तस्यापि=तात्त्विकत्वकोभी प्रातीतिकत्वात्=प्रतीतिसिद्ध होनेसे, इति न च वाच्यम्, अपरोक्षप्रतीतिसे त्रिकालाबाध्यत्वरूपतात्त्विकत्व विषयकरनेके लिए शक्य नहीं है, इसको बाधोद्धारके आरम्भमें ही कहा हुआ होनेसे, और परोक्ष प्रतीतिसे विषयीकृतभी तात्त्विकत्व प्रातीतिकही है। कालान्तरमें बाधसे पुनः अतात्त्विकत्वके सम्भवसे। तस्मात् अधिष्ठानांशमें अन्तःकरणकी-वृत्ति है और अध्यस्तांशमें अविद्याकी वृत्ति है, तस्याश्च=अन्तःकरणकी वृत्तिमें तादात्म्यस्य=अविद्यावृत्तिके तादात्म्यके भानसे आख्यातिमतमें प्रवेश नहीं है।

इति सरलायामाविद्यकरजतोत्पत्त्युपपत्तिः।

अथ भ्रमस्य वृत्तिद्वयोपपत्तिः।

ननु—एवं इदमंशस्यापि अध्यस्तत्वेन इदमितिद्व्यात्मकम्; इदं रूप्यमिति च त्र्यात्मकम्, स्वप्ने इदंरूप्यमितिज्ञानं चतुरात्मकञ्च स्यादिति—चेन्न; इदन्त्वस्याध्यस्तत्वेऽपि नेदमितिद्व्यात्मकम्; इदन्त्वाधिष्ठानस्य स्वप्रकाशकत्वात्। न हि वयं सर्वत्राध्यासे द्व्यात्मकतां ब्रूमः अपि त्वन्तःकरणवृत्तिसव्यपेक्षाधिष्ठानप्रकाशे। अतएव नेदं रूप्यमिति त्र्यात्मकम्, स्वप्ने तु चातुरात्मकत्वशङ्का सर्वथाऽनुपपन्ना; इदंरूप्ययोरप्यध्यसनीयत्वात्, अविद्यावच्छिन्नचैतन्यरूपाधिष्ठानस्य स्वप्रकाशत्वात्। नच रूप्यज्ञानस्याचाक्षुषत्वे रूप्यं पश्यामीति चाक्षुषत्वानुभवविरोधः, चाक्षुषेदंवृत्त्यवच्छिन्नचैतन्यस्थाविद्यापरिणामत्वेन चाक्षुषत्वोपचारात्, अनुभवत्वमात्रानुभवे एव आत्मानं पश्यामीत्युल्लेखदर्शनाच्च।

अथ सरलायां भ्रमस्य वृत्तिद्वयोपपत्तिः।

शङ्कते नन्विति। एवम्=अध्यस्तको अधिष्ठानविषयकमनोवृत्तिसापेक्षत्व होनेपर इदमंशस्य=इदन्त्वकोभी अध्यस्तत्वेन=संसृष्टरूपसे अध्यस्तत्व होनेसे 'इदम्' यह द्व्यात्मक होगा, और 'इदंरूप्यम्' यह त्र्यात्मक होगा क्योंकि इसमें रूप्यरूप विषय अधिक होगया है, स्वप्नमें 'इदं रूप्यम्' यह ज्ञान चतुरात्मक होगा इति चेन्न, क्योंकि इदन्त्वको अध्यस्तत्व होनेपरभी 'इदम्' यह द्व्यात्मक नहीं है, इदन्त्वाधिष्ठानस्य=संसृष्टेदन्त्वके प्रति आधारभूत रूप्यावच्छिन्न चित्को स्वप्रकाशत्व होनेसे=मनोवृत्तिविषयानात्मकत्व होनेसे। हमलोक सर्वत्र अध्यासमें द्व्यात्मकताम्=मनोवृत्तिका विषय आधार और अविद्यावृत्तिका विषय आरोप इन

दोनोंसे घटितताको नहीं कहते हैं, किन्तु अन्तःकरणकी वृत्तिसव्यपेक्ष अधिष्ठानका प्रकाश है जिसमें ऐसा जो भ्रम है उस भ्रममें उक्तविधद्व्यात्मकताको कहते हैं। अतएव इदं रूप्यम् यह ज्ञान त्र्यात्मक नहीं है। और स्वप्नमें तो चतुरात्मकत्वकी शङ्का सर्वथा अनुपपन्न है 'इदम्' तथा 'रूप्य' इन दोनोंकोभी अध्यसनीयत्व होनेसे, अविद्यावच्छिन्नचैतन्यरूप जो अधिष्ठान है, उसको स्वप्रकाशत्व होनेसे। रूप्यज्ञानको अचाक्षुषत्व होनेपर 'रूप्यं पश्यामि' इस चाक्षुषत्वके अनुभवका विरोध है नच=विरोध नहीं है, क्यों ? चाक्षुष जो इदं वृत्ति तादृश वृत्त्यवच्छिन्न चैतन्यनिष्ठाविद्यापरिणामत्व होनेसे चाक्षुषत्वके उपचारसे, और 'पश्यामि' यहाँपर अनुभवत्व मात्रका अनुभव होता है नकि चाक्षुषत्वादि विशेषकाभी—अचाक्षुष पदार्थ आत्मामें 'आत्मानं पश्यामि' इत्याकारक उल्लेखके देखनेसेभी।

ननु—रूप्यज्ञानस्याविद्यावृत्तित्वेन प्रातिभासिकतया प्रतिभासावश्यंभावेनाध्यस्तविषयज्ञानस्य चाध्यस्तत्वनियमेनाविद्यावृत्तेरपि अविद्यावृत्तिप्रतिबिम्बितचैतन्यवेद्यत्वम्, एवं तस्यापि तस्यापीत्यनवस्थिति रिति—चेत् सत्यमेतत्। न पुनरनवस्था; अविद्यावृत्तिप्रतिभासके चैतन्ये अविद्यावृत्तेः स्वत एव उपाधित्वेन वृत्त्यन्तरानपेक्षत्वात्। ननु—अज्ञानस्य रूप्याकारज्ञानात्मना परिणामे रूप्यमिति प्रतीतेर्ज्ञानगताकारेणैवोपपत्तावतीतविषयकज्ञानन्यायेन वोपपत्तौ रूप्यरूपाविद्यापरिणामकल्पना न युक्तेति—चेन्न, ज्ञानाकारेणैव सविषयकत्वे साकारवादप्रसङ्गात्। अतीतविषयवदुपपादनेऽपि अपरोक्षत्वानुपपत्तेरुक्तत्वात्।

शङ्कते नन्विति। रूप्यज्ञानको अविद्यावृत्तित्व होनेसे प्रातिभासिक है, और प्रातिभासकता होनेसे रूप्यवत् तद्विषयक प्रतिभाससे अवश्यही होना चाहिए=रूप्यविषयकाविद्यावृत्तिको प्रातिभासिकहोनेसे अविद्यावृत्तिविषयकभी ज्ञान आवश्यक है, और अध्यस्तविषयकज्ञानको अध्यस्तत्वके नियमसे अविद्यावृत्तिकोभी अविद्यावृत्तिप्रतिबिम्बितचैतन्यवेद्यत्व होगा, इसीरीतिसे अध्यस्तीभूताविद्यावृत्तिओंके प्रकाशके लिए आगे २ अविद्याकी वृत्तियाँ कल्पनेमें अनवस्था है, इति चेत्=ऐसा यदि कहते होतो किसी अंशमें सत्यही कहते हो परन्तु अनवस्था नहीं है, क्यों ? अविद्यावृत्तिप्रतिभासकचैतन्यमें अविद्यावृत्तिको स्वतः ही उपाधिता होनेसे वृत्त्यन्तरकी अपेक्षा न होनेसे। शङ्कते नन्विति। अज्ञानका रूप्याकारज्ञानात्मना परिणाम होनेपर या 'रूप्यम्' इस प्रतीतिको ज्ञानगताकारसेही उपपन्नहोनेपर अतीतविषयकज्ञानके न्यायसे उपपन्न होनेपर रूप्यरूपाविद्यापरिणामकी कल्पना युक्त नहीं है=अविद्या रूप्यरूपसेभी परिणत होतीहै इस कल्पनाकी क्या जरूरत है अर्थात् ज्ञानाध्यास मानना ठीक है अर्थाध्यास मानना ठीक नहीं इतिचेन्न, क्यों ? ज्ञानाकारसेही सविषयकत्व होनेपर बौद्धाभिमतसाकारवादके प्रसङ्गसे। और अतीतविषयवत् उपपादन होनेपरभी अपरोक्षत्वकी अनुपपत्तिको उक्त होनेसे= अर्थाध्यास यदि न माना जाय तो 'इदं रूप्यं' 'रूप्यं पश्यामि' इत्यादिरूप प्रत्यक्ष उपपन्न होगा यह बात कहते चले आते हैं।

नच—दोषाणां स्वाश्रय एवातिशयहेतुत्वेन चक्षुर्गतदोषजन्यो भ्रमः कथमचाक्षुषः स्यात् ? अन्यथा त्वचा गृहीते शङ्खे चक्षुषा गृहीते रूप्यसादृश्ये च निमीलितचक्षुषोऽपि पीतभ्रमरूप्यभ्रमयोरापत्तेरिति—वाच्यम्, दोषाणां स्वाश्रय एवातिशयजनकत्वमित्यस्यैवासिद्धेः नियामकाभावात् न चोक्तातिप्रसङ्गो नियामकः, स्वसम्बन्धिनि कार्यजनकत्वाङ्गीकारेणानतिप्रसङ्गात्। सम्बन्धश्च स्वाश्रयजन्यज्ञानविषयत्वरूपः। स च न तदेति संस्कारविषयग्राहीन्द्रियजन्याधिष्ठानज्ञानस्यापरोक्षभ्रमहेतुत्वात् त्वचा गृहीते तदभावात् सादृश्यं गृहीत्वा चक्षुर्निमीलनस्थले इदंवृत्तिसद्भावे प्रमाणाभावेन नातिप्रसङ्गापादनं शक्यम्। तत्सत्त्वे इष्टापत्तिरेव।

शङ्कते नचेति। दोषोंको स्वाश्रयमें ही अतिशयका हेतुत्व होनेसे चक्षुगत जो दोष उस दोषसे जन्य जो भ्रम वह अचाक्षुष कैसे होगा, अन्यथा=स्वाश्रयसे भिन्नमेंभी दोषोंको अतिशय जनकत्व होनेपर त्वचासे गृहीत जो शङ्ख उस शङ्खमें 'पीतः शङ्खः' इत्याकारक भ्रमकी आपत्तिसे, और चक्षुसे गृहीत रूप्यसादृश्यमें निमीलितचक्षुषेऽपि=निमीलितचक्षुष्क पुरुषमेंभी 'इदं रजतम्' इत्याकारक भ्रमकी आपत्तिसे, इति नच वाच्यम्, क्यों ? दोषोंको स्वाश्रयमेंही अतिशयजनकत्व है, इस अर्थकी असिद्धिसे, नियामकके अभावसे इस अर्थकी असिद्धि है। उक्त अतिप्रसङ्ग नियामक है, नच=वह नियामक नहीं है ? क्यों ? स्वसम्बन्धिमें कार्यजनकत्वके अङ्गीकारसे अतिप्रसङ्गके अभावसे। और सम्बन्ध तो स्वाश्रयजन्यज्ञानविषयत्वरूप है, स्वशब्दसे दोषका ग्रहण है। सच=पित्ताश्रयचक्षुर्जन्यज्ञानविशेष्यत्वरूप सम्बन्ध न तदेति=त्वङ्मात्रसे शङ्खग्रहणकालमें नहीं है, संस्कारविषयग्राहि=संस्कारजनकानुभवजनक जो इन्द्रिय तादृश इन्द्रियजन्याधिष्ठानज्ञानको अपरोक्ष भ्रमका हेतुत्व होनेसे, त्वचासे गृहीतमें उक्त हेतुके अभावसे अतिप्रसङ्गका आपादन शक्य नहीं है, सादृश्यको ग्रहणकर नयननिमीलनस्थलमें इदं वृत्तिके सद्भावमें प्रमाणके अभावसे अतिप्रसङ्गका आपादन शक्य नहीं है तत्सत्त्वे=उक्त स्थलमें इदं वृत्तिका सत्त्व होनेपर तो इष्टापत्ति ही है।

ननु—एवं वृत्तिभेदे ज्ञानैक्यानुभवविरोधः। नच—अध्यस्तेनाभेदेन विषयोरेकतापन्नत्वात् ज्ञानयोरैक्यमुपचर्यत इति—वाच्यम् एवमेकत्वप्रतिपादकप्रयोगसमर्थनेऽपि अनुभवविरोधस्यापरिहारादिति—चेन्न; विषययोरभेदाध्यासे ज्ञानयोरप्यभेदाध्यास इत्यस्य उपचारशब्दार्थत्वेनानुभवतिरोधाभावात्। नच तर्हि धारावाहिकज्ञानेष्वैक्याध्यासापत्तिः, विषयैक्यज्ञानस्यारोपनिदानस्य सत्वादिति—वाच्यम्; आरोपस्य कारणानापाद्यत्वात्। नच—विषयैक्यस्य ज्ञानैक्याध्यासनिमित्तत्त्वं न दृष्टमिति—वाच्यम् पूर्वोक्तयुक्त्या ज्ञानभेदे सिद्धे अपूर्वकल्पनायामपि दोषाभावात्।

शङ्कते नन्विति। एवम्=उक्तप्रकारसे वृत्तिका भेद होनेपर ज्ञानमें जो ऐक्यका अनुभव होता है उसका विरोध है। यदि यों कहोकि अध्यस्त जो अभेद तादृश अभेदके साथ विष-

योंको एकतापन्नत्व होनेसे, ज्ञानोंका ऐक्य उपचरित होता है, तो ऐसा नहीं कहना, क्यों? ऐसा कहनेसे एकत्वप्रतिपादक प्रयोगका समर्थन होनेपरभी अनुभव विरोधके अपरिहारसे, इति चेन्न, क्यों? विषयोंका अभेदाध्यास होनेपर ज्ञानोंकाभीअभे दाध्यास है, इसको उपचार-शब्दार्थत्व होनेसे अनुभव विरोधके अभावसे। तब तो धारावाहिक ज्ञानोंमें ऐक्यके अध्यासकी आपत्ति है, आरोपका निदान जो विषयैक्यज्ञान उसका सत्त्व होनेसे इति नच वाच्यम् क्यों? आरोपको कारणसे अनापाद्यत्व होनेसे। विषयके ऐक्यका ज्ञानैक्याध्यासके प्रति निमित्तत्व नहीं देखागया है इति नच वाच्यम् क्यों? पूर्वोक्त युक्तिसे ज्ञानका भेद सिद्ध होनेपर अपूर्व कल्पनामेंभी दोषके अभावसे।

यद्वा—यथेदमंशावच्छिन्नचैतन्यगताविद्यापरिणामत्वात् रूप्यमिदन्त्वेन भाति, तथेदमाकारान्तःकरणवृत्त्यवच्छिन्नचैतन्यगताविद्यापरिणामत्वेन रूप्यज्ञानमिदंज्ञानत्वेन भाति नच तर्हि बाधकाद्विषयोरिव ज्ञानयोरपि भेदधीप्रसङ्गः; विषयभेदग्रहज्ञानभेद-ग्रहयोर्भिन्नसामग्रीकत्वेनापादनस्यावश्यकत्वात्। केचित्तु भ्रमकाले विषयैक्यग्रहनियमवत् न ज्ञानैक्यग्रहनियमः तं विनापि प्रवृत्त्याद्युपपत्तेः। तथाच बाधकाले न तदनैक्यग्रह-नियमोऽपीति—आहुः।

अथवा इदमंशावच्छिन्नचैतन्यगतअविद्याका परिणाम होनेसे रूप्य इदन्त्वेन प्रतीत होता है, तैसे इदमाकारा अन्तःकरणकी जो वृत्ति तादृशवृत्त्यवच्छिन्नचैतन्यगत अविद्याका परिणाम होनेसे रूप्यज्ञान इदंज्ञानत्वेन प्रतीत होता है। जब यों है तब तो बाधकसे विषयोंकी तरह ज्ञानोंकीभी भेदधीका प्रसङ्ग है, नच=ऐसा प्रसङ्ग नहीं है, क्यों? विषयभेदग्रह और ज्ञानभेद-ग्रह इन दोनोंको भिन्नसामग्रीत्व होनेसे आपादनको अशक्यत्व होनेसे। कोई तो भ्रमकालमें जैसे विषयके ऐक्यग्रहका नियम है, तैसे ज्ञानोंके ऐक्यग्रहका नियम नहीं तं विनापि=ज्ञानैक्य-ग्रहणके विनाभी प्रवृत्त्यादिकी उपपत्तिसे फलतः बाधकालमें ज्ञानके भेदग्रहकाभी नियम नहीं इति=यह कहते हैं।

नच—इदंवृत्तेर्ज्ञातैकसत्त्वेन तदवच्छिन्नचैतन्यगताज्ञानमेव नास्तीति—वाच्यम्; वृत्तेः साक्षिवेद्यत्वेन यद्यपि तद्गोचराज्ञानं नास्ति, तथापि तदवच्छिन्नचैतन्ये शुक्त्यवच्छिन्न-गोचराज्ञानसत्त्वात्। तथाच इदंवृत्तिराश्रयावच्छेदिका नतु विषयावच्छेदिकेति वस्तु-स्थितिः। अतएव—शुक्तितत्त्वं जानतः इदंवृत्तितत्त्वं चाजानतो रूप्यनिवृत्तावपि तदज्ञाना-नुवृत्तिप्रसङ्ग इति—निरस्तम्; शुक्तितत्त्वाज्ञानस्यैव उभयपरिणामित्वात्, इदमंशस्तदा-कारवृत्तिश्च एतद्द्वयमाश्रयमात्रावच्छेदकमित्युक्तत्वात्। नचैवमपि अबाधितज्ञानैक्यानुभव-विरोधः; अध्यस्तेन सहेन्द्रियासंयोगस्यैव बाधकत्वात्। नच सन्निकर्षः प्रमासामग्री, करणानां प्राप्यकारित्वनियमेन सन्निकर्षस्यापि सामान्यसामग्रीत्वात्। नहि दृष्टा छिदा दारुवियुक्तकुठारेणेत्यन्यत्र विस्तरः।

शङ्कते नचेति। इदं वृत्तिका ज्ञातैकसत्त्व होनेसे तदवच्छिन्न=इदं वृत्तिसे अवच्छिन्न चैतन्यगत अज्ञानही नहीं है, इति नच वाच्यम्, क्यों ? वृत्तिको साक्षिवेद्यत्व होनेसे यद्यपि तद्गोचर=वृत्तिगोचर अज्ञान नहीं है, तथापि तदवच्छिन्नचैतन्ये=इदंवृत्त्यवच्छिन्नचैतन्यमें शुक्त्यवच्छिन्नगोचर जो अज्ञान उसका सत्त्व होनेसे। तथाच इदंवृत्ति आश्रयकी अवच्छेदिका है, न कि विषयावच्छेदिका यह वस्तुस्थिति है। अतएव शुक्तितत्त्वको जाननेवाला और इदंवृत्तिके तत्त्वको=इदं वृत्तिमें रजतवृत्तिके भेदको नहीं जाननेवाला ऐसा जो पुरुष है उस पुरुषके प्रति रूप्यकी निवृत्ति होनेपरभी, तदज्ञान=इदंवृत्तिमें जो रजतवृत्तिका भेद तादृश भेदका तो अज्ञान उस अज्ञानकी अनुवृत्तिका प्रसङ्ग है, यह खण्डित हुआ, अतएव शब्दके अर्थका स्पष्टीकरण करते हैं—शुक्तितत्त्वके अज्ञानको उभयरूपसे परिणामित्व होनेसे, और इदमंश तथा इदमंशाकारवृत्ति ये दोनों आश्रयमात्रके अवच्छेदक हैं, यह उक्त होनेसे। एवमपि= ऐसा होनेपरभी अबाधित जो ज्ञानके ऐक्यका अनुभव इस अनुभवका विरोध है, नच विरोध नहीं है, क्यों ? अध्यस्तके साथमें इन्द्रियके असंयोगको ही ज्ञानैक्यमें बाधकत्व होनेसे=यदि अध्यस्तके साथ इन्द्रियका सन्निकर्ष बन सकता तब तो अधिष्ठान तथा अध्यस्तविषयक एकही इन्द्रियजन्यज्ञान मान लिया जाता, परन्तु अध्यस्तके साथ इन्द्रियका संयोग नहीं बन सकता है अतः अध्यस्तविषयक अविद्यावृत्त्यात्मक ज्ञानान्तर माना जाता है। सन्निकर्षः=इन्द्रियका जो विषयके साथ सम्बन्ध है वह प्रमाकी सामग्री है न कि भ्रमकी तथाच भ्रमस्थलमें सन्निकर्ष विनाही ज्ञानको इन्द्रियजन्यत्व रहो नच=ऐसा नहीं है, क्यों ? करणोंको प्राप्यकारित्वका नियम होनेसे सन्निकर्षकोभी सामान्य=भ्रमसाधारणज्ञानकी सामग्रीत्व होनेसे क्योंकि दारुसे असंयुक्त कुठारसे छेदन नहीं देखा गया है इसका अन्यत्र विस्तर है।

यत्तु—शुक्तिरेव विवर्ताधिष्ठानमस्तु न चैतन्यमिति—तन्न, अधिष्ठानस्य भ्रमजनकाज्ञानविषयत्वेन तदकल्पिततया सत्यत्वनियमात्; शुक्तेश्च मिथ्यात्वात्। यद्वा—अविद्यावृत्तेर्न ज्ञानत्वम्, अतः ज्ञानैक्यधीः ज्ञानत्वस्याज्ञाननिवर्तकमात्रवृत्तित्वात्। नच—एवं धारावाहनस्थले द्वितीयादिज्ञाने ज्ञानत्वं न स्यात्, इति—वाच्यम्; तस्यापि तत्तत्कालविशिष्टग्राहकत्वेनागृहीतग्राहकतयाऽज्ञाननिवर्त्तकत्वात्। वस्तुतस्तु—यावन्ति ज्ञानानि तावन्त्यज्ञानानि इति व्यवहितज्ञानेनैवाव्यवहितज्ञानेनापि अज्ञाननिवर्त्तनादिति न काप्यनुपपत्तिः। परोक्षस्थलेपि प्रमावृगताज्ञाननिवृत्तिरस्त्येवेति तत्र जानामीति प्रत्ययः। तेन सहाभेदग्रहात् परोक्षभ्रमेऽपि जानामीति प्रत्ययः।

शुक्ति ही विवर्त्ताधिष्ठान रहो चैतन्य नहीं इति यत् तन्न; ऐसा जो कहना है वह ठीक नहीं, क्यों ? अधिष्ठानको भ्रमजनकाज्ञानका विषयत्व होनेसे तदकल्पिततया=अज्ञानसे अकल्पित होनेसे सत्यत्वके नियमसे, और शुक्तिका मिथ्यात्व होनेसे, अथवा अविद्याकी वृत्तिको ज्ञानत्व नहीं है, इसलिए ज्ञानके ऐक्यकी धी है, ज्ञानत्वको अज्ञाननिवर्त्तकमात्रमें वृत्तित्व होनेसे।

ऐसा है तब तो धारावाहिकज्ञानस्थलमें द्वितीयादिज्ञानोंमें ज्ञानत्व न होगा=द्वितीयादिज्ञानोंको धारावाहिकस्थलमें अज्ञाननिवर्त्तकत्व नहीं है अतः ज्ञानत्व न होगा, इति नच वाच्यम् ; क्यों ? तस्यापि=उक्तस्थलीयद्वितीयादिज्ञानोंकोभी तत्तत्काल=पूर्वपूर्वज्ञानाविषय-तत्तत्क्षणविशिष्टविषयग्राहकत्वसे अगृहीतग्राहकत्वप्रयुक्त अज्ञानका निवर्त्तकत्व होनेसे। वस्तुतः तो जितने ज्ञान हैं उतने अज्ञान हैं अतः प्रथमादि ज्ञानकी नाई द्वितीयादि ज्ञानसेभी अज्ञानके निवर्त्तनसे कोई अनुपपत्ति नहीं। परोक्षस्थलमेंभी प्रमातृगत अज्ञानकी निवृत्ति है ही इसलिए तत्र=परोक्षज्ञानस्थलमें 'जानामि' ऐसा प्रत्यय होता है। तेन=परोक्ष जो अज्ञानका निवर्त्तक उस निवर्त्तकके साथ अभेदके ग्रहसे परोक्ष भ्रममें भी जानामि ऐसा प्रत्यय होता है।

नच—विवरणे अन्तःकरणपरिणामे ज्ञानत्वोपचारात्, इदंवृत्तेरपि ज्ञानत्वोक्तौ विवरणविरोधः तस्य प्रकाशकत्वनिवन्धनज्ञानपदप्रयोगविषयत्वमित्येतत्परत्वात्, नत्व-ज्ञाननिवर्त्तकत्वनिवन्धन–ज्ञानपदप्रयोगोऽप्यौपचारिक इति तस्यार्थः। तथाचाविद्यावृत्तौ यत्र ज्ञानपदप्रयोगः तत्रौपचारिक एव। नच–अविद्यावृत्तेरज्ञानत्वे ज्ञानस्यौत्सर्गिकं प्रामाण्यमिति विरुध्येत, निरपवादनियमस्यैव सम्भवादिति–वाच्यम्, इच्छाजनकवृत्तिमात्रस्य ज्ञानत्वमभिप्रेत्य उत्सर्गत्वोक्तेः। यद्वा–वृत्तिभेदेऽपि इदंरूप्ययोरिदमंशावच्छिन्न-चैतन्यप्रकाश्यत्वेन फलैक्यात् ज्ञानैक्यधीः। नच–परोक्षभ्रमे अपरोक्षैकरसचैतन्यरूपफलैक्याभावात् कथं तन्निबन्धनज्ञानैक्यानुभव इति–वाच्यम्। तत्र फलैक्यमुपचर्य्य ज्ञानैक्योपचार इत्येव विशेषात्।

विवरणमें अन्तःकरणके परिणाममें ज्ञानत्वके उपचारसे इदंवृत्तिमेंभी ज्ञानत्वकी उक्ति होनेपर विवरणका विरोध है नच=विरोध नहीं है, क्यों? तस्य=विवरणवाक्यको अन्तःकरणके परिणाममें प्रकाशत्वनिवन्धनज्ञानपदप्रयोगविषयत्व औपचारिक है, एतदर्थपरत्व होनेसे, अज्ञाननिवर्त्तकत्वनिवन्धन ज्ञानपदप्रयोगभी अन्तःकरणपरिणाममें औपचारिक है, यह तस्यार्थः=विवरणवाक्यका अर्थ नहीं है। फलतः अविद्यावृत्तिमें जहाँ ज्ञानपदका प्रयोग होता है वहाँ औपचारिकही होता है। शङ्कते नचेति। अविद्याकी वृत्तिको अज्ञानत्वे=ज्ञानभिन्नत्व होनेपर ज्ञानका औत्सर्गिक प्रामाण्य है यह कथन विरुद्ध होगा=यह कथन विरोधयुक्त होगा, निरपवादनियमकाही सम्भव होनेसे, इति नच वाच्यम्, क्यों? इच्छाजनकवृत्तिमात्रको ज्ञानत्वका अधिकरण समझकर=एवम्भूतअभिप्रायको रखकर प्रामाण्यके उत्सर्गत्वकी उक्तिसे; अथवा वृत्तिभेद होनेपरभी 'इदं तथा रूप्य' इन दोनोंको इदमंशावच्छिन्नचैतन्यसे प्रकाश्यत्व होनेसे फलके ऐक्यसे=आवरणनाशरूपफलविशिष्टदमंशावच्छिन्न चैतन्यही फल है उसके ऐक्यसे ज्ञानके ऐक्यकी धी होती है। शङ्कते न चेति। परोक्षभ्रममें अपरोक्षैकरसचैतन्यरूप-फलके ऐक्यके अभावसे तन्निबन्धन=तदधीन ज्ञानैक्यानुभव कैसे होगा इति नच वाच्यम्, क्यों? वहाँपर फलके ऐक्यका उपचारकर ज्ञानके ऐक्यका उपचार है, इस ही विशेषसे।

ननु—त्वन्मते यथाक्रममिदंरूप्याकारान्तःकरणवृत्त्यविद्यावृत्तिप्रतिबिम्बिताभ्यां वा, तदभिव्यक्ताभ्यां वा इदमंशावच्छिन्नतदनवच्छिन्नाभ्यामिदमंशरूप्याधिष्ठानचैतन्याभ्यां वा, वेद्यत्वेनावच्छिन्नफलस्य भेदात् कथं फलैक्यम् ? अनवच्छिन्नफलीभूतचिन्मात्रभेदस्य सर्वत्र समानत्वात् । नहीदमंशेऽपि तदवच्छिन्नमेव चैतन्यमुपादानम्; आत्माश्रयात् । न वा रूप्ये इदमंशावच्छिन्नमुपादानम्, इदं रूप्यमितिप्रतीत्यनुपपत्तेरिति—चेन्न, अविद्यावृत्तिस्तावन्नाज्ञाननाशिका किन्त्वन्तःकरणवृत्तिरिदमाकारा तथा च तदभिव्यक्तचैतन्यमेव रूप्यमभिव्यनक्ति इति फलैक्यसंभवात् । नह्यवच्छेदकभेदेन फलभेदः किन्तु व्यञ्जकभेदेन ।। तथाच परमार्थसच्चैतन्यमधिष्ठानमध्यस्तज्ञानस्य । तच्च द्विविधं व्यावहारिकसत् प्रातिभासिकसच्चेति । तदुक्तम्—प्राग्व्यावहारिकसत्त्वविषयत्वात् प्रत्यक्षं नागमबाधकमिति । परमार्थसत्त्वमादाय त्रिविधं सत्त्वम् ।

इति भ्रमस्य वृत्तिद्वयत्वोपपत्तिः ।

शङ्कते नन्विति । तुह्मारे मतमें—यथाक्रम इदमाकारान्तःकरणकी वृत्तिमें प्रतिविम्बित चैतन्यसे और रूप्याकाराविद्याकी वृत्तिमें प्रतिबिम्बित चैतन्यसे वेद्यत्व होनेसे, अथवा तदभिव्यक्ताभ्यां=उक्तवृत्तिकृतावरणनाशविशिष्ट जो चैतन्य हैं उन्ही चैतन्योंसे वेद्यत्व होनेसे, अथवा इदमंशावच्छिन्न जो इदमंशका अधिष्ठानचैतन्य और इदमंशावच्छिन्न जो रूप्याधिष्ठानचैतन्य इन दोनों चैतन्योंसे वेद्यत्व होनेसे उक्तोपाध्यवच्छिन्न फलके भेदसे फलका ऐक्य कैसे है ? और अनवच्छिन्न तथा अफलीभूतचिन्मात्रको सर्वत्र समानत्व है, क्योंकि इदमंशमेंभी इदमंशावच्छिन्न चैतन्य ही उपादानम्=अधिष्ठान नहीं है, आत्माश्रय होनेसे=इदं वृत्तिको स्वकीयअधिष्ठानतामें स्वकी अपेक्षा है अतः आत्माश्रय है । तैसे ही रूप्यमें इदमंशानवच्छिन्न चैतन्य अधिष्ठान नहीं है, 'इदं रूप्यम्' इत्याकारिका जो प्रतीति होती है उसकी अनुपपत्तिसे, इति चेन्न; क्योंकि अविद्याकी वृत्ति अज्ञानकी नाशिका नहीं है किन्तु अन्तःकरणकी इदमाकारावृत्ति अज्ञानकी नाशिका है, तथाच उक्तान्तःकरणकी वृत्तिसे अभिव्यक्त चैतन्य ही रूप्यको अभिव्यक्त करता है, इस रीतिसे फलैक्यका सम्भव है । अवच्छेदकके भेदसे फलका भेद नहीं होता है किन्तु व्यञ्जकभेदेन=अज्ञाननाशकवृत्तिभेदसे फलका भेद होता है । फलतः परमार्थसच्चैतन्य अध्यस्त ज्ञानका अधिष्ठान है । तच्च=अध्यस्त तो दो प्रकारका है—व्यावहारिक सत् और प्रातिभासिक सत्—तदुक्तं प्राक्=सो कहा है पहिले—व्यावहारिकसत्त्वविषयकत्व होनेसे प्रत्यक्ष आगमका बाधक नहीं है । और परमार्थसत्त्वको लेकर तीन प्रकारका सत्त्व है ।

इति सरलायां भ्रमस्य वृत्तिद्वयत्वोपपत्तिः ।

अथ सत्तात्रैविध्योपपत्तिः ।

ननु—एवं सत्तात्रैविध्यविभागो नोपपद्यते, प्रातिभासिकादप्यपकृष्टस्य स्वाप्नरूप्यस्य व्यावहारिकादप्युत्कृष्टाया अविद्यानिवृत्तेः सद्भावात्—इति चेन्न; स्वाप्ने प्राति-

भासिकनिकृष्टत्वे प्रमाणाभावात् । तथाहि–प्रातिभासिकत्वं हि प्रतिभासमात्रसत्त्वम्, तच्च स्वप्नजागरयोः समानम् । ननु—जागरे अधिष्ठानतावच्छेदकेदमंशस्याधिकसत्ता-कत्वं स्वप्नकाले तस्यापि प्रातिभासिकत्वमित्येव निकृष्टत्वमिति–चेन्न; स्वप्ने हि इदमो नाधिष्ठानतावच्छेदकत्वम् तुल्यवदारोप्यत्वात् । तत्राधिष्ठानमविद्यावच्छिन्नचैतन्यमिति वक्ष्यते । अविद्यानिवृत्तेः पञ्चमप्रकारतापक्षे संसारकालीनसत्त्वस्यैवायं विभाग इति न न्यूनता । यद्वा–अविद्यानिवृत्तेः सत्त्वाभावेन सत्त्वविभागे न तदसंग्रहनिवन्धनो दोषः ।

अथ सरलायां सत्तात्रैविध्योपपत्तिः ।

शङ्कते नन्विति । उक्त प्रकारसे त्रैविध्यका विभाग उपपन्न=युक्तियुक्त नहीं है=व्याव-हारिक प्रातिभासिक, पारमार्थिकत्वेन जो सत्त्वका त्रिविध विभाग है वह युक्त नहीं है, क्यों ? प्रातिभासिकसेभी अपकृष्ट जो स्वप्नका रूप्य उसका सद्भाव होनेसे, और व्यावहारिकसेभी उत्कृष्ट जो अविद्याकी निवृत्ति उसका सद्भाव होनेसे इति चेन्न; क्यों ? स्वाप्ने=स्वप्नप्रभव पदार्थमें प्रातिभासिकसे निकृष्टत्वमें प्रमाणके अभावसे=स्वप्नरूप्यादिमें प्रातिभासिकसेभी निकृष्टत्व रहता है इसमें कोई प्रमाण नहीं । इसी अर्थको स्पष्ट करते हैं तथाहि–प्रातिभासिकत्व नाम है प्रतिभासमात्र सत्त्वका । तच्च=और वह प्रतिभासमात्र सत्त्व तो स्वप्नस्थ प्रातिभासिकमें तथा जागरस्थ प्रातिभासिकमें समान है । शङ्कते नन्विति । जाग्रत्में अधिष्ठानतावच्छेदक इदमंशको अधिकसत्ताकत्व है और स्वप्नकालमें अधिष्ठानतावच्छेदक इदमंशकोभी प्रातिभासिकत्व है यही उसमें निकृष्टत्व है, इति चेन्न; क्यों ? स्वप्नमें इदम्को अधिष्ठानतावच्छेदकत्व नहीं है, रूप्यवत् आरोप्यत्व होनेसे । तत्र=स्वप्नमें अधिष्ठान अविद्यावच्छिन्न चैतन्य है यह कहा जायगा । अथवा अविद्यानिवृत्तिनिष्ठ सत्त्वके अभावसे सत्त्वके विभागमें तदसंग्रहः=अविद्यानिवृत्तिका जो असंग्रह तादृश असंग्रहाधीन दोष नहीं है ।

वस्तुतस्तु—अविद्यानिवृत्तिः, ब्रह्मस्वरूपा अनिर्वचनीयावेति न विभागन्यूनता । नच–विभागस्य तात्त्विकत्वे अपसिद्धान्तः अतात्त्विकत्वे त्रिविधत्वं गतमेवेति–वाच्यम् ब्रह्मातिरिक्तमतात्त्विकम् इति वदतो विभागातात्त्विकस्येष्टत्वात् । नच तर्हि तात्त्विक-त्रैविध्यहानिः; कोहि त्रैविध्यस्य तात्त्विकत्वं ब्रवीति ? किन्तु व्याहारिकत्वमेव । नच–तात्त्विकस्य ब्रह्मणोऽतात्त्विकाच्छुक्तिरूप्यात् बाधाधिगम्यस्य विभागस्य कथमतात्त्वि-कत्वमिति–वाच्यम्; बाधबोध्यत्वं न तात्त्विकत्वे प्रयोजकम्; किन्त्वबाध्यत्वम् । तच्च न ब्रह्मातिरिक्तवृत्तिः नेहनानेत्यादिना बाधात् । नच त्रिविधसत्त्वाङ्गीकारे ब्रह्मैव सदिति स्वमतविरोधः तस्य परमार्थसद्ब्रह्मैवेत्येतत्परत्वात् । एतेन विश्वमिथ्यात्वब्रह्मनिर्विशेषत्वा-दावप्येवं विकल्प्य दूषणमिति–अपास्तम् ।

वस्तुतः तो अविद्याकी निवृत्ति ब्रह्मस्वरूपा है या अनिर्वचनीया है, इसलिए विभागमें न्यूनता नहीं । विभागको तात्त्विकत्व होनेपर अपसिद्धान्त है=ब्रह्मातिरिक्त विभागमें तात्त्वि-

कत्व होनेपर ब्रह्ममात्रमें तात्त्विकत्व माननेवाले अद्वैतीको अपसिद्धान्त है, विभागको अतात्त्विकत्व होनेपर त्रिविधत्व गया ही इति न च वाच्यम् क्यों? ब्रह्मसे अतिरिक्त अतात्त्विक है, ऐसा कहनेवालेको विभागके अतात्त्विकत्वको इष्टता होनेसे, तब तात्त्विक जो त्रैविध्य उसकी हानि है नच ऐसी शङ्का नहीं करना, कौन त्रैविध्यके तात्त्विकत्वको कहता है? किन्तु त्रैविध्यका व्यावहारिकत्व ही है। तात्त्विकब्रह्मका अतात्त्विक शुक्तिरूप्यसे जो बाधबोध्य विभाग है, उस विभागका अतात्त्विकत्व कैसे है, इति नच वाच्यम्, क्योंकि बाधबोध्यत्व तात्त्विकत्वमें तन्त्र नहीं है, किन्तु अबाध्यत्व तात्त्विकत्वमें तन्त्र है। तच्च=वह अबाध्यत्व तो ब्रह्मातिरिक्तमें वृत्ति नहीं है। नेहनाना, (बृ० ४।४।१९) इत्यादिसे बाध होनसे। त्रिविधसत्त्वाङ्गीकारे=तीन प्रकारका सत्त्व अङ्गीकार करनेपर ब्रह्मही सत् है इस स्वमतका विरोध है, नच=स्वमतका विरोध नहीं है, क्यों? तस्य='ब्रह्मही सत् है। इसको परमार्थसत् ब्रह्मही है, एतदर्थपरत्वहोनेसे। एतेन=उक्तव्यवस्थापनसे विश्वमें रहनेवाला मिथ्यात्व और ब्रह्ममें रहनेवाले निर्विशेषत्वादि इत्यादिमेंभी उक्तरीतिसे विकल्पकर दूषण है=मिथ्यात्वादिक धर्म तात्त्विक है या अतात्त्विक, तात्त्विक होनेपर अद्वैतकी हानि है अतात्त्विक होनेसे उन धर्मोंका तात्त्विकत्व न सिद्ध होगा, यह कथन उक्तव्यवस्थानसे ही परास्त हुआ।

ननु—अत्र परमार्थसदेव सदितरद्वयं सद्विलक्षणमेव सत्त्वेन भाति, बाधविलम्बाविलम्बाभ्यां तद्भेद इत्यभिप्रेतम् उत सत्त्वस्यैवावान्तरभेद इति। नाद्यः; त्वन्मते रूप्याभावे रूप्यधीरिव सत्त्वाभावे सत्त्वबुद्धेरयोगात्। कदाचिदपि सत्त्वाभावे तुच्छवदुत्पत्त्याद्ययोगात्, व्यावहारिके प्रातिभासिकादर्थगतविशेषाभावेन तत्रार्थक्रियादेः श्रुतीनां तद्विषयत्वेन प्रामाण्यस्य चायुक्तत्वापातात्। प्रत्युत नभोनैल्यभ्रमहेतोरिव अर्थभ्रान्तिहेतुत्वेनाप्रामाण्यनिश्चय एव स्यात्। नान्त्यः, आरोपितानारोपितसाधारणसामान्यधर्माभावात्, व्यावहारिकस्यानारोपितविशेषत्वे इष्टापत्तेश्चेति—चेन्न; द्वितीयपक्षस्यैव क्षोदक्षमत्वात्।

शङ्कते नन्विति। प्रकृत सत्त्वके विषयमें कुछ विचारणीय है—परमार्थ सत् ही सत् है, उससे इतर जो दो सत् हैं वे तो सत्से विलक्षण हुए ही सत्त्वेन प्रतीत होते हैं, बाधके विलम्बसे तथा बाधके अविलम्बसे उन दोनों सत्त्वोंका भेद है, यह अर्थ अत्र=यहाँपर विवक्षित है, या सत्त्वका ही अवान्तर भेद अभिप्रेत है। नाद्यः=प्रथमपक्ष नहीं बन सकता है, क्यों? तुम्हारे मतमें रूप्यका अभाव होनेपर जैसे रूप्यकी बुद्धि नहीं बन सकती है तैसे सत्त्वाभावके होनेपर सत्त्वबुद्धिके अयोगसे। किसीभी कालमें सत्त्वका अभाव होनेपर तुच्छकी नाईं उत्पत्त्यादिके अयोगसे व्यावहारिकमें प्रातिभासिकसे अर्थगतविशेषके अभावसे तत्र=व्यावहारिक पदार्थोंमें अर्थक्रियादिके अयुक्तत्वके आपातसे और तद्विषयत्वेन श्रुतिओंके प्रामाण्यके अयुक्तत्वके आपातसे। प्रत्युत नभमें नैल्यभ्रमके हेतुमें जैसे अप्रमाण्यका निश्चय होता है, तैसे अर्थभ्रान्तिका

हेतुत्व होनेसे व्यावहारिक ज्ञानके और उक्त श्रुतिओंके अप्रामाण्यका निश्चय ही होगा। नान्त्यः= अन्तिमपक्षभी नहीं बन सकता है क्यों? आरोपितसाधारण सामान्यधर्मके अभावसे। और व्यावहारिकमें अनारोपितविशेषत्व होनेपर इष्टापत्तिसेभी। इति चेन्न; क्यों? द्वितीय पक्षकोही विचारसहत्व होनेसे।

तथाहि—अबाध्यत्वरूपमारोपितानारोपितयोः सामान्यम् अन्यदा बाध्येऽपि स्वकालाबाध्यत्वमात्रेणारोपितेऽपि तस्य संभवात्, आरोपितानारोपितयोरेकसामान्याभावे प्रवृत्त्याद्यनुपपत्तेरुक्तत्वात् अत एवोक्तं—आकाशादौ सत्यता तावदेका प्रत्यङ्मात्रे सत्यता काचिदन्या। तत्सम्पर्कात् सत्यता तत्र चान्या व्युत्पन्नोऽयं सत्यशब्दस्तुस्तत्र ॥ इति ॥ यथा प्रातिभासिकरजते ज्ञातैकसदेकं रजतत्वम्, लौकिकपरमार्थरजते चाज्ञातसदपरं रजतत्वम्, तदुभयानुगतं चारोपितानारोपितसाधारणं रजतत्वम् रजतशब्दावलम्बनम्, एवमाकाशाद्यावारोपितैकासत्यता; चिदात्मनि चानारोपिताऽपरा, तदुभयसाधारणी चान्या व्यावहारिकी सत्यता सत्यशब्दालम्बनमितिभावः।

तथाहि—अबाध्यत्वरूप आरोपित तथा अनारोपित इन दोनोंका सामान्य है। अन्यकालमें बाध्य होनेपरभी स्वकालमें अबाध्यत्वमात्रसे आरोपितमेंभी तस्य=अबाध्यत्वरूपसामान्यका सम्भव होनेसे, और आरोपित तथा अनारोपित इन दोनोंमें सामान्यका अभाव होनेपर प्रवृत्यादिकी अनुपपत्तिको उक्त होनेसे। अतएव=उक्त व्यवस्थापनके लिए ही कहा है—आकाशादिमें एक आरोपित सत्यता है, और शुद्धात्मामें आरोपित सत्यतासे भिन्न पारमार्थिक सत्यता है। तत्सम्पर्कात्=उक्त उभयविधसत्यताके संसर्गसे तत्र=आकाशात्मादिमें अन्या=व्यावहारिकी सत्यता है तत्र=उसी अनुगतव्यावहारिकी सत्यतामें सत्यशब्द व्युत्पन्न है=अनुगत सत्यतामें सत्यशब्द व्युत्पन्न है=अनुगत सत्यतामें सत्यशब्दका शक्तिग्रह होता है (सं० शा० १।७९)। इसी पद्यका अर्थ स्पष्ट करते हैं यथेति। जैसे—प्रातिभासिक रजतमें ज्ञातैकसत्=प्रतीतिसमकालीन एक रजतत्व है, और लौकिकपरमार्थरजतमें अज्ञातसत् दूसरा रजतत्व है, और उभयविध रजतमें अनुगत आरोपितानारोपित साधारण रजतत्व है और वह रजतशब्दका आलम्बन है। ऐसे ही आकाशादिमें आरोपित एक सत्यता है, और तदुभयसाधारणी व्यवहारिका सत्यता अन्या है और वह सत्यशब्दका आलम्बन है यह भाव है;

सद्विशेषत्वेऽपि व्यावहारिकस्य प्रपञ्चस्य नानारोपितविशेषत्वम्, येनेष्टापत्तिरवकाशमासादयेत् सत्त्वस्यानारोपितत्त्वात्मकत्वाभावात्। सत्त्वाङ्गीकारादेव नोत्पत्त्यादिविरोधोऽपि। नच—स्वरूपेण बाध्यत्वं प्रपञ्चेऽपि नास्ति; तुच्छत्वप्रसङ्गात्, पारमार्थिकत्वाकारेण बाध्यत्वं निर्धर्मकतया ब्रह्मण्यप्यस्तीति कथं कदाचिद्बाध्यत्वमादाय व्यावहारिकत्वादिस्थितिरिति—वाच्यम्; मिथ्यात्वरूपसाध्यनिरुक्तावेवास्य दत्तोत्तरत्वात्। यत्तु—स्वप्रकारकस्यैव ज्ञानस्य प्रपञ्चबाधकत्वं वक्तव्यम्; निष्प्रकारकत्वे बाधकत्वायोगात्

तथाच प्रकारस्तात्विक एव स्यात्-इति तन्न; स्वरूपोपलक्षणोपलक्षितस्वरूपविषयक-व्यावृत्ताकारज्ञानस्यैव निष्प्रकारकत्वेऽपि बाधकत्वमित्यस्यापि प्रागेवोक्तत्वात्, स्वरूपोपलक्षणनिबन्धनव्यावृत्ताकारत्वेऽपि यथा नाखण्डार्थत्वक्षतिः तदप्युक्तमधस्तात्।

और व्यावहारिक प्रपञ्चमें सद्विशेषत्व होनेपरभी अनारोपित विशेषत्व नहीं है, जिससे कि इष्टापत्ति अवकाशको सम्पादन करे, सत्त्वको अनारोपितत्त्वात्मक न होनेसे। और सत्त्वके अङ्गीकारसेही उत्पत्त्यादिका विरोधभी नहीं। शङ्कते नचेति। स्वरूपसे बाध्यत्व प्रपञ्चमेंभी नहीं है, तुच्छत्वके प्रसङ्गसे। और परामार्थिकत्वाकारसे बाध्यत्व तो निर्धर्मकत्वेन ब्रह्ममेंभी है, अतः कदाचित् बाध्यत्वको लेकर व्यावहारिकत्वादिकी स्थिति कैसे है, इति नच वाच्यम्, क्यों? मिथ्यात्वरूप जो साध्य तादृश साध्यकी निरुक्तिस्थलमें ही इसको दत्तोत्तरत्व होनेसे। सप्रकारक ज्ञानकोही प्रपञ्चका बाधकत्व कहना चाहिए, निष्प्रकारत्व होनेपर बाधकत्वके अयोगसे, फलतः वह प्रकार तात्त्विकही होगा, इति यत् तत् न, क्यों? स्वरूपरूप उपलक्षणसे उपलक्षित जो स्वरूप तादृशस्वरूपविषयक व्यावृत्ताकार ज्ञानकोही निष्प्रकारकत्व होनेपरभी बाधकत्व है इस अर्थकोभी पूर्वमेंही उक्त होनेसे=भाविबाधोपपत्तिप्रकरणमें यह अर्थ उक्त है। और स्वरूपोपलक्षणनिबन्धन व्यावृत्ताकारता होनेपरभी जैसे अखण्डार्थत्वकी हानि नहीं है यह भी कहा है पहिले।

ननु—व्यावहारिकप्रातिभासिकयोर्बाध्यत्वाविशेषे किंनिबन्धनो भेदः, न तावन्मायिकत्वाविद्यकत्वाभ्यां भेदः, मायाविद्ययोरभेदात्, अर्थगतविशेषाभावे तदयोगाच्च। नापि अर्थक्रियाकारित्वाकारित्वाभ्यां विशेषः स्वाप्नघटादौ स्वाप्नजलाहरणाद्यर्थक्रियादर्शनात्। नचार्थक्रियायां व्यावहारिकत्वं विशेषणम्; अन्योन्याश्रयात् स्वाप्नाङ्गनालिङ्गनादौ प्रातिभासिके व्यावहारिकसुखजनकेऽतिव्याप्तेश्च। नापि ब्रह्मज्ञानबाध्यत्वतद्भिन्नज्ञानबाध्यत्वाभ्यां विशेषः त्वन्मते रूप्यादेरपि शुक्त्यवच्छिन्नब्रह्मधीबाध्यत्वात्, ब्रह्मण्यध्यस्तस्यक्षणिकत्वादेरपि प्रातिभासिकस्य ब्रह्मधीबाध्यत्वेनातिप्रसङ्गाच्च। नापि ब्रह्म प्रमाबाध्यत्वतदन्यप्रमाबाध्यत्वाभ्यां विशेषः; त्वन्मते ब्रह्मज्ञानस्यैव प्रमात्वात्। नापि प्रमाबाध्यत्वभ्रान्तिबाध्यत्वाभ्यां विशेषः; भ्रान्तिबाध्यत्वस्य ब्रह्मण्यपि सत्त्वात्। नापि पारमार्थिकविषयधीबाध्यत्वव्यावहारिकविषयधीबाध्यत्वाभ्यां विशेषः, अन्योन्याश्रयात्। नाप्यन्योन्येतरत्वाभ्याम्, भेदकाभावे इतरत्वस्यैवायोगात्, अन्योन्याश्रयाच्चेति—चेन्न;

शङ्कते नन्विति। व्यावहारिक तथा प्रातिभासिक इन दोनोंमें बाध्यत्वको तुल्य होनेपर इन दोनोंका भेद किन्निबन्धन है, मायिकत्वेन और आविद्यकत्वेन तो भेद नहीं हो सकता है, माया और अविद्याका अभेद होनेसे और अर्थगत विशेषके न होनेपर तदयोगाच्च=मायिकत्वआविद्यकत्वप्रयुक्त भेदके अभावसेभी=व्यावहारिक तथा प्रातिभासिक इन दोनोंमें विशेषता न

होनेपर दोनोंमें मायिकत्व होगा, या आविद्यकत्वही होगा। अर्थक्रिया=कार्यकारित्वेन कार्याकारित्वेनभी विशेषः=भेद नहीं है, स्वप्नभव घटादिमें स्वप्नभवजलकर्मक आहरणादिरूप अर्थक्रियाके देखनेसे, यदि यों कहोकि अर्थक्रियामें व्यावहारिकत्व विशेषण है तो ऐसा नहीं कहना, अन्योन्याश्रय होनेसे=व्यावहारिकत्वके ज्ञानमें अर्थक्रियाकी अपेक्षा है, और अर्थक्रियाकेज्ञानमें व्यावहारिकत्वकी अपेक्षा है, क्योंकि आप व्यावहारिकत्वविशिष्ट अर्थक्रिया वतलाते हैं, तथा च अन्योन्याश्रय है। तैसे व्यावहारिकसुखजनक स्वप्नसम्भूत-अङ्गनालिङ्गनादिरूप प्रातिभासिक पदार्थमें अतिव्याप्तिसेभी यह कथन नहीं वन सकता है। ब्रह्मज्ञानवाध्यत्वेन ब्रह्मज्ञानभिन्नज्ञानवाध्यत्वेनभी भेद नहीं हो सकता है, और तुह्मारे मतमें रूप्यादिकोभी शुक्त्यवच्छिन्न जो ब्रह्म तादृश ब्रह्मधीसे वाध्यत्व होनेसे अतिप्रसङ्ग है। और ब्रह्ममें अध्यस्त जो क्षणिकत्वादिरूप प्रातिभासिक तादृश प्रातिभासिककोभी ब्रह्मधीसे वाध्यत्व होनेसेभी अतिप्रसङ्ग है। ब्रह्मप्रमावाध्यत्वेन ब्रह्मप्रमाऽन्यवाध्यत्वेनभी विशेष नहीं है, तुह्मारे मतमें ब्रह्मज्ञानको ही प्रमात्व होनेसे। प्रमावाध्यत्वेन और भ्रान्तिवाध्यत्वेनभी विशेष नहीं है, भ्रान्तिवाध्यत्वका ब्रह्ममेंभी सत्त्व होनेसे। पारमार्थिकविषयधीवाध्यत्वेन व्यावहारिक विषयधीवाध्यत्वेनभी भेद नहीं होसकता है, अन्योन्याश्रय होनेसे=पारमार्थिकत्वके ज्ञानसे तद्घटित व्यावहारिकत्वका ज्ञान होता है और व्यावहारिकत्वके ज्ञानसे पारमार्थिकत्वका ज्ञान होता है अतः अन्योन्याश्रय है। व्यावहारिकेतरत्वेन और प्रातिभासिकेतरत्वेनभी भेद नहीं वन सकता है—भेदकका अभाव होनेपर इतरत्वके ही अयोगसे और अन्योन्याश्रयसेभी यह पक्ष नहीं वन सकता है इति चेन्न;

सप्रकारकनिष्प्रकारकज्ञानवाध्यत्वाभ्यां शुद्धब्रह्मधीवाध्यत्वतदन्यधीवाध्यत्वाभ्यां वा महावाक्यजन्यधीवाध्यत्वतदन्यधीवाध्यत्वाभ्यां वा स्ववाधकधीवाध्यत्व तदन्यधीवाध्यत्वाभ्यां वा भेदसम्भवात्। शुद्धशब्देन निर्धर्मकाधिष्ठानमात्रमेवात्र विवक्षितम्‌ नच निर्धर्मकं यद् वस्तुगत्या तज्ज्ञानं भ्रमकालेऽपि, निर्धर्मकत्वविशिष्टस्य तदुपलक्षितस्य वा ज्ञानं चेद्विवक्षितं, तदा अखण्डार्थता हानिः; प्रकारीभूतनिर्धर्मकत्वद्वितीयाभावादेः तात्त्विकत्वापत्तेश्चेति—वाच्यम्; निर्धर्मकं यद् वस्तुगत्या तन्मात्रगोचरज्ञानस्य विवक्षितत्वात्, तस्य च भ्रमकालेऽभावात्। निर्धर्मकत्वादेस्तद्बुद्धावुपायत्वमात्रम्; न तु तद्बुद्धौ विषयत्वम्। अतो नाखण्डार्थताहानिप्रकारतात्त्विकत्वापत्ती। निष्प्रकारकत्वेऽपि संशयादिनिवर्त्तकत्वमुपपादितमेव। तस्मादज्ञानोपादानकं जगन्मिथ्येति सिद्धम्॥

सप्रकारकज्ञानवाध्यत्वेन और निष्प्रकारकज्ञानवाध्यत्वेन भेदका सम्भव होनेसे, या शुद्धधीवाध्यत्वेन शुद्धब्रह्मधीभिन्नधीवाध्यत्वेन भेदका सम्भव होनेसे, या महावाक्यजन्यधीवाध्यत्वेन, महावाक्यजन्यधीभिन्नधीवाध्यत्वेन भेदका सम्भव होनेसे या स्वकी वाधक जो धी तादृशधीवाध्यत्वेन स्ववाधकधीभिन्नवाध्यत्वेन भेदका सम्भव होनेसे, स्वशब्दसे धीका ग्रहण है। शुद्ध शब्दसे यहाँपर निर्धर्मकाधिष्ठान चेतनमात्र ही विवक्षित है। शङ्कते नचेति।

जो निर्धर्मक वस्तुगत्या है उसका ज्ञान भ्रमकालमेंभी है, यदि निर्धर्मकत्वविशिष्टका या निर्धर्मकत्वोपलक्षितका ज्ञान विवक्षित है तब अखण्डार्थताकी हानि है और प्रकारीभूत जो निर्धर्मकत्व और द्वितीयाभावादि, उन्होंके तात्त्विकत्व की आपत्तिभी है, इति नच वाच्यम्, क्यों ? निर्धर्मक जो वस्तुगत्या है तन्मात्रगोचरज्ञानको विवक्षित होनेसे, और उसका भ्रमकालमें अभाव होनेसे और निर्धर्मकत्वादिको उसकी बुद्धिमें उपायत्व मात्र है, अतः अखण्डार्थताकी हानि और प्रकारताके तात्त्विकत्वकी आपत्ति ये दोनों नहीं। और निष्प्रकारत्व होनेपरभी संशयादिका निवर्त्तकत्व उपपादित ही है। तस्मात् अज्ञानोपादानक जगत् मिथ्या है यह सिद्ध हुआ।

उपाधिवाधप्रतिपक्षशून्यं, विपक्षवाधागमसव्यपेक्षम्।
दृश्यत्वमव्याहतमम्बरादिमिथ्यात्वसिद्धौ सुदृढं हि मानम् ॥

उपाधि तथा वाध एवम् सत्प्रतिपक्ष इन तीनोंसे शून्य, विपक्षवाध=अनुकूल तर्क और आगम इनदोनोंसे सहकृत व्याघातशून्य—आत्मीयकार्यकरनेमें सक्षम ऐसा जो दृश्यतादिरूप मानम्=हेतु है वह आकाशादिके मिथ्यात्वसिद्धिमें सुदृढ ही है

तदेवं दृश्यस्य प्रपञ्चस्य मिथ्यात्वात् तदतिरिक्तब्रह्मरूपाखण्डार्थनिष्ठवेदान्तवाक्यं परतत्त्वावेदकम्। सखण्डार्थविषयकं सर्वमतत्त्वावेदकमेवेति। यद्यपीदं ब्रह्मज्ञानाव्यवहितभ्रमविषये प्रातिभासिके व्यावहारिकलक्षणमतिव्याप्तम्। प्रातिभासिकलक्षणञ्चाव्याप्तम्। तथापि करणसंसर्गिदोषप्रयुक्तत्वम् तदसंसर्गिदोषप्रयुक्तत्वञ्च तयोर्लक्षणम्—निरवद्यम्।

सो उक्त प्रकारसे दृश्य प्रपञ्चका मिथ्यात्व होनेसे तदतिरिक्त=दृश्यरूप प्रपञ्चसे भिन्न ब्रह्मरूप जो अखण्डार्थ तादृश—अखण्डार्थनिष्ठ वेदान्तवाक्य परतत्त्वके आवेदक हैं। और सखण्डार्थविषयक सर्ववेदान्तवाक्य अतत्त्वावेदक ही हैं। यद्यपि, इदम्=निष्प्रकारकज्ञानवाध्यत्वादिरूप जो व्यावहारिकके चार लक्षण कहे हैं वे सबके सब ब्रह्मज्ञानसे अव्यवहित प्राक्कालमें होनेवाला जो भ्रम तादृशभ्रमका विषयीभूत जो प्रातिभासिकपदार्थ उस प्रातिभासिक पदार्थमें अतिव्याप्त हैं, क्योंकि उक्तविध प्रातिभासिक पदार्थमें ब्रह्मज्ञानवाध्यत्व ही है, नकि सप्रकारकज्ञानादिवाध्यत्व प्रातिभासिकलक्षणञ्च=सप्रकारकज्ञान वाध्यत्वादिरूप जो प्रातिभासिकके चार लक्षण कहे हैं वे सबके सब ब्रह्मज्ञानाव्यवहित प्राक्कालमें जायमान भ्रमविषयीभूत प्रातिभासिक पदार्थमें अव्याप्त हैं, तथापि करणसंसर्गि=पित्तादिरूपदोषाधीनत्व और तदसंसर्गि=करणासंसर्गि—अविद्यारूपदोषप्रयुक्तत्व क्रमशः तयोः=प्रातिभासिक तथा व्यावहारिकके निर्दोष लक्षण हैं=अविद्यान्यदोषप्रयुक्तत्व प्रतिभासिकका लक्षण है, तैसे मूलाविद्याप्रयुक्तत्व व्यावहारिकका लक्षण है। अविद्याप्रयुक्तत्वका अर्थ है,—अविद्यातत्प्रयुक्तान्यतरत्व, तथाच अविद्यामें व्यावहारिकत्वकी अव्याप्ति नहीं।

अविद्यातत्कार्यात्मकनिविडवन्धव्यपगमे यमद्वैतसत्यं प्रततपरमानन्दममृतं। भजन्ते भूमानं भवभयमिदं भव्यमतयो नमस्तस्मै नित्यं निखिलनिगमेशाय हरये ॥

भव्यमतयः=कामक्रोधादिरूप स्थूल तथा विषयासक्तिरूप सूक्ष्म इन दोनों प्रकारके दोषोंसे रहित है मति जिन्हों की ऐसे जो पुरुष हैं वे पुरुष अविद्यातत्कार्यात्मक निविड-वन्धव्यपगमे=अविद्या और अविद्याका कार्य्य एतदुभयात्मक जो जटिल=आवद्धमूल बन्ध है तादृश वन्धका जो अपगम=निवृत्ति उस निवृत्तिके निमित्त 'चर्मणि द्वीपिनं हन्ति' इत्यादिकी तरह निमित्तार्थक सप्तमी है, जिस, सत्यम्=बाधशून्य प्रततम्=विसृत परमानन्दम्=परप्रेमाऽऽस्पद अमृतम्=मरण धर्मसे शून्य भूमानम्=दिगादिपरिच्छेदशून्य अद्वैतको भजन्ते=भजते हैं=श्रवणादिद्वारा तद्विषयक प्रत्ययोंका धारावाहिकरूपसे अनन्तरित सत्कारित दीर्घ-सामयिक सन्तान सम्पादन करते हैं उस निखिलनिगमेश हरिके लिए मेरा नमस्कार हो, इससे यह द्योतित होता है कि जबतक प्रारब्धाधीन ज्ञानिओंके शरीरका अवस्थान हो, तब पर्य्यन्त उन्होंकोभी भगवत्की भक्ति करनी उचित है।

अनादिसुखरूपता, निखिलदृश्यनिर्मुक्तता
निरन्तरमनन्तता, स्फुरणरूपता च स्वतः।
त्रिकालपरमार्थता, त्रिविधभेदशून्यात्मता
मम श्रुतिशतार्पिता तदहमस्मि पूर्णो हरिः ॥ १ ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीविश्वेश्वरसरस्वतीश्रीचरणशिष्य-
श्रीमधुसूदनसरस्वतीविरचितायामद्वैतसिद्धौ सपरिकरप्रपञ्च-
मिथ्यात्वनिरूपणं नाम प्रथमः परिच्छेदः ॥

मम—मेरी अनादिसुखरूपता और निखिलदृश्यनिर्मुक्तता और निरन्तरमनन्तता तथा स्वतःस्फुरणरूपता और त्रिकालपरमार्थता तथा त्रिविधभेदशून्यात्मता श्रुतिशतसे अर्पिता है, तत्=तस्मात् अहम्=मैं पूर्णः=मन्निष्ठत्वेन उक्तश्रुतिशतार्पितनिखिलविशेषणोपलक्षित हरि हूँ। पूर्व श्लोकमें भक्ति दिखलाकर ज्ञानके दिखलानेसे यह सूचित कियाकि भक्ति तथा ज्ञानका विरोध नहीं है क्योंकि अविद्यातत्प्रयुक्तैतदुभयधर्मिकमिथ्यात्वनिश्चयपूर्वक ब्रह्मात्म्यैक्यविषयकदृढनिश्चयका नाम ज्ञान है उस ज्ञानके बादभी बाधितानुवृत्तिसे प्रारब्धपरिसमाप्तिपर्य्यन्त विक्षेप शक्तिमती अविद्या और तत्स्थित्यधीनस्थितिक जीवेशादि पदार्थ पूर्ववत् स्वोचित अर्थक्रियाकारित्वविशिष्ट हुए अवस्थान करते हैं और पदार्थोंका बाध्यबाधकभावभी तदवस्थ रहता है अतएव ज्ञानिओंकी भोजनादिमें प्रवृत्ति यथापूर्व हुआ करती है आसक्तिका पूर्ववत् न होना यह दूसरी बात है, फलतः जैसे अन्यक्रियायें ज्ञानका बाध नहीं करती हैं तैसे भक्तिसेभी ज्ञानका बाध नहीं हो सकता है, इससे अतिरिक्त भजनीय पदार्थका और

ज्ञेयपदार्थका अत्यन्त सान्निध्य है अतः भक्तिके साथमें अनायासही ज्ञेयका स्मरण हुआ करता है। इसी लिए परमभक्तत्वेन और परमज्ञानित्वेन प्रसिद्ध मूलकर्त्ताने भक्ति तथा ज्ञान इन दोनोंका साथ २ उल्लेख किया है।

सर्वस्वरूपे सर्वेशे सर्वशक्तिसमन्विते।
भयेभ्यस्त्राहि नो देवि दुर्गे देवि नमोऽस्तु ते॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाऽऽचार्यश्रीरामाश्रमशिष्यकान्यकुब्जवंशसम्भूत-ब्रह्मचारिश्रीरामेश्वरदत्तशर्मप्रणीतायां सरलाभिधायामद्वैत-सिद्धिटीकायां प्रथमः परिच्छेदः।